CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

लोकप्रियसाहित्यग्रन्थमाला-९४

॥ ॐ ॥

कालिदास-प्रणीतस्य

अभिज्ञानशकुन्तला नाटकस्य पञ्च रङ्गावृत्तयः

(काश्मीरी, मैथिली, बंगीय, दाक्षिणात्य एवं देवनागरी रंगावृत्तियों के मूल संस्कृत-पाठ, उन पाँचों का तुलनात्मक अध्ययन एवं पुनर्ग्रथित प्रथम अनुमित पाठ)

प्रधानसम्पादकः

प्रो. परमेश्वरनारायणशास्त्री

कुलपतिः

सम्पादकः

वसन्तकुमार म. भट्ट

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

महाकवि कालिदास के अभिज्ञानशकुन्तला नाटक की काश्मीरी, मैथिली, बंगाली, दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनाओं के साद्यन्त पाठों को यहाँ पहली बार एक साथ प्रस्तुत किये गये हैं। अब कोई भी पाठक इन सभी पाठ-परम्पराओं के प्रक्षेप, संक्षेप, पाठान्तरादि का सर्वाङ्गीण तुलनात्मक अध्ययन कर सकेगा। इसको पहला The Variorum of Abhijnanashakuntala भी कहा जा सकता है। इस नाटक की अद्यावधि प्रकाशित हुई किसी भी वाचना में कालिदास-प्रणीत मूल पाठ अखण्ड एवं अनवद्य रूप में प्राप्त नहीं होता है। इनमें तो अनेक प्रदेशों की अज्ञात नटमण्डलियों ने मंचन के लिए बनाई रंगावृत्ति (stage versions) के पाठ ही मिल रहे हैं । ग्रन्थकार डॉ. भट्ट ने काश्मीरादि पाँच पाठों की विस्तृत प्रस्तावनाओं में बताया है कि इस नाटक के मूलपाठ में प्रविष्ट हुए विपुल प्रक्षेप, संक्षेप एवं पाठान्तरों का कारण बहुशः मंचनलक्ष्यी ही सिद्ध होता है। जिसके कारण इन 5 वाचनाओं के पाठों का विवेचनात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन करके उच्चतर समीक्षा के मानदण्ड से निर्धारित किया गया एक पुनर्ग्रथित (प्रथम) अनुमानित पाठ भी प्रस्तुत करना आवश्यक था। इसको भी यहाँ सप्रमाण रखा गया है। इस पुनर्ग्रथित पाठ के सहारे नाट्यकार कालिदास के मूलपाठ की नजदीक का एवं सर्वाधिक श्रद्धेय पाठ अवगत होगा। निदर्श के रूप में तृतीयांक के मध्यवर्ती (एकान्त-मिलन) दृश्य का जो पुनःप्रतिष्ठापन किया गया है- वह द्रष्टव्य है। अन्त में रखें 6 परिशिष्टों से बहुत नयें एवं अल्पज्ञात विचार-बिन्दु ध्यान में आयेंगे। इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किये गये तौलनिक अभ्यास से इस नाटक के पाठविचलन की आनुक्रमिकता समझ में आयेगी। तथा काश्मीरी पाठ की प्राचीनतमता एवं बहुशः ग्राह्यता दिखाई देगी। नये स्वरूप की पाठालोचना का मार्ग प्रशस्त होगा। एवञ्च इस नाटक की मंचन-यात्रा का इतिहास भी अनावृत्त होगा। पठन-पाठन में सुप्रचलित बने इस नाटक के देवनागरी-पाठ को अब पाठ्यक्रम में से हटाने की नौबत आ गयी है।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

लोकप्रियसाहित्यग्रन्थमाला–98

॥ ॐ ॥

कालिदास–प्रणीतस्य

अभिज्ञानशकुन्तला नाटकस्य पञ्च रङ्गावृत्तयः

(काश्मीरी, मैथिली, बंगीय, दाक्षिणात्य एवं देवनागरी रंगावृत्तियों के मूल संस्कृत-पाठ, उन पाँचों का तुलनात्मक अध्ययन एवं पुनर्ग्रथित प्रथम अनुमित पाठ)

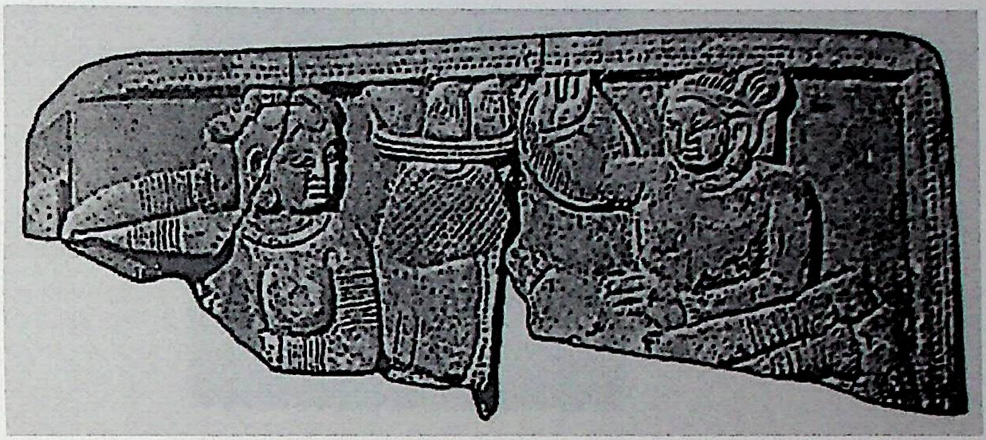

किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातं, संचालयामि नलिनीदलतालवृन्तैः।
अङ्के निधाय चरणावुत पद्मताम्रौ संवाहयामि करभोरु! यथासुखं ते।। अभि. शकु. 3-19।।

सम्पादकः
वसन्तकुमार म. भट्ट
पूर्व-निदेशक, भाषा-साहित्य भवन
(आचार्य एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग)
गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद

केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः
संसदः अधिनियमेन स्थापितः
(प्राक्तनं राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, मानितविश्वविद्यालयः)
भारतसर्वकारस्य-मानवसंसाधनविकासमन्त्रालयाधीनः

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रकाशकः
कुलसचिवः
केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः
(प्राक्तनं राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, मानितविश्वविद्यालयः)
56-57, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, जनकपुरी, नवदेहली-110058
ईपीएबीएक्स : 28524993, 28521994, 28524995
ई मेल : rsks@nda.vsnl.net.in
वेबसाईट : www.sanskrit.nic.in

© केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः

संस्करणम् : 2020

ISBN : 978-93-85791-42-0

मूल्यम् : ₹ 1178.00

मुद्रकः
इन्फिनिटी इमेजिंग सिस्टम
वी-75, गली नं. 15-ए, विजय पार्क,
शिव साधना मन्दिर, यमुना विहार, दिल्ली-110053

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

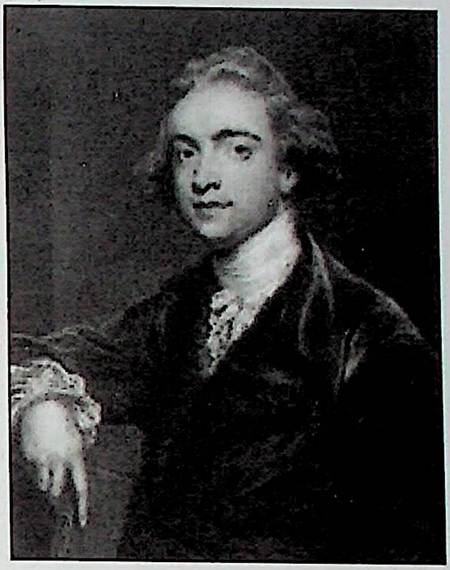

समर्पण

Dedicated to Sir William Jones

पुण्यश्लोक श्री सर विलियम जोन्स को सादर समर्पित

जिन्होंने अभिज्ञानशकुन्तलम् का 1789 में प्रथमबार अंग्रेजी अनुवाद किया,

जिसके कारण संस्कृत भाषा में निहित ज्ञान-विज्ञान की ओर सारे संसार का ध्यान आकृष्ट हुआ।

परिणामतः प्राच्य-विद्या के अध्ययन-अध्यापन का नव-जागरण हुआ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रकाशकीयम्

महान् आनन्दस्यायं विषयो यदद्य लोकप्रियसंस्कृतग्रन्थमालायाम् "अभिज्ञानशकुन्तला नाटकस्य पञ्च रङ्गावृत्तयः" इति नामाङ्कितम् एकं विशिष्टं पुष्पं ग्रथ्नाति राष्ट्रिय संस्कृत संस्थानम्। महाकवेः कालिदासस्य अनितरसाधारणम् अभिज्ञानशाकुन्तलं नाम नाटकं भास-सौमिल्ल-कविपुत्रादीनां नाट्यसमूहेऽधिराजतेतराम्। विश्वनाट्यसाहित्ये च तस्य प्रथमपङ्क्तौ नामग्रहणमपरिहार्यम्। द्विसहस्राब्दात्पूर्वं प्रणीतमिदं नाटकं नैरन्तर्येण रङ्गमञ्चोपरि सर्वत्राभिनीयमानमासीत्। अतश्च भारतवर्षस्य विविधेषु प्रान्तेषु अस्य नाटकस्य त्रिविधानि शीर्षकाणि समुपलभ्यन्ते। एतावत्पर्यन्तमस्य नाटकस्य वाचनापञ्चकमपि क्रमशः प्रकाशितं वर्तते। तद्यथा-काश्मीरदेशीयम् अभिज्ञान-शकुन्तला नाटकम्, मैथिल-प्रान्तीयं बंगदेशीयञ्चाभिज्ञान-शकुन्तलं, ग्रन्थादयो दाक्षिणात्यलिपयः देवनागरी-लिपिश्च यत्र प्रचलन्ति तासु तासु मातृकासु प्रचलितम् अभिज्ञानशाकुन्तलम् इति। किन्तु कुत्रास्ति नाटकस्यास्य मौलिकः प्राचीनतमो वा पाठः सुरक्षित? इति विचार्यमाणे महती विप्रतिपत्तिः समापतति विद्वत्समूहे। अतः केनापि विदुषा विषयेऽस्मिन् गभीरतरा गवेषणा कर्तव्येति समेषां मनीषासीत्। सा च ग्रन्थेनानेन साकारीकृता विराजते भवतां करकमलेषु। संस्थानस्यायं संकल्पो वर्तते यत् लोकप्रियाणां संस्कृत-ग्रन्थानां संप्राप्तिः सुलभा स्यात्, नवीनायाश्च गवेषणाया अपि सततं प्रकाशनं स्यात्।

संस्थानस्य प्रकाशनप्रवृत्तिः बहुकालात् पूर्वमेव प्रचाल्यते, भविष्यति च कालेऽपि सा प्रचालयिष्यते इत्यत्र नास्ति संदेहावकाशः। संस्कृताध्ययनस्य प्रचारः प्रसारश्च देशेऽस्मिन् विदेशेऽपि भवत्विति लक्ष्यमुररीकृत्य ये ये ग्रन्था अस्माभिः प्रकाश्यन्ते तत्र बहुविधानां ग्रन्थानां सदैव स्वागतं क्रियते। पठन-पाठने सौकर्यार्थं तु प्रयत्यते निरंतरम्, किन्तु संस्कृतभाषासाहित्ये तुलनात्मकदृष्ट्या विरचितैः ग्रन्थैः, पाण्डुग्रन्थेभ्यः समुद्धृताभिः समीक्षितावृत्तिभिश्च पाठशालासु विश्वविद्यालयेषु च नवीना ग्रन्थनद्यः सततं समागच्छेयुरित्यप्यभिलाषा पौनःपुन्येन वितन्यते।

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थानपक्षतः डॉ. वसन्तकुमार म. भट्टमहाशयेभ्यो नैकशो धन्यवादान् प्रकटीकरोमि। अस्य ग्रन्थस्य च भूरिशः स्वागतं करोमि। यतो हि, कालिदासस्य सर्वस्वभूतं नाटकमिदमभिनवेन विवेचनेन सहृदयानां मनांसि रञ्जयिष्यतीति निश्चप्रचम्। विदुषां समक्षं नवीनमिदं प्रकाशनं सहर्षम् समर्प्यते, आशास्महे च नवोदिताः संस्कृताध्येतारः, आरूढाश्च विद्वज्जना अनेन ग्रन्थेन लाभान्विता भवेयुरिति।

(प्रो. परमेश्वर नारायण शास्त्री)
कुलपतिः
राष्ट्रिय-संस्कृत-संस्थानम्, नवदेहली

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

PREFACE

The work that you have in your hands, dear reader, is an outcome of monumental endeavour combined with an extra-ordinary scholarship and has been produced after a constant labour of many years executed with great perseverance and patience. The author had to wade through the text of many thousand pages (i.e. folia) of hundreds of Manuscripts of this immortal work of Kalidasa available in more than a dozen scripts to come to the conclusions which he has assiduously and carefully put together in this work which now logically and convincingly narrates the long and eventful journey of the present text through many regions of India — from top (Kashmir) to bottom (Kerala) and back to its heartland. One may agree, or occasionally even disagree with the views and the statements of the author or the conclusions drawn by him, however cannot help but wonder the tremendous labour that he has invested in interpreting with sharp logic each Act, each scene, each situation, each dialogue, each sentence and even each word and each expression of each version!

As mentioned, there are almost innumerable number of MSs of Shakuntala scattered all over India in private and institutional collections, and some good ones are also preserved in the libraries of the West. Scanning a large number of these MSs of all varieties, all genres and of all scripts, the author comes to the conclusion that the significant text varieties that we have today are most probably outcomes of two main recensions, the Kashmirian or the Sharada recension and the other Non-Sharada or some of Mid-Indian recension, a combination and contamination of the two, with reductions and new additions (i.e. interpolations) give rise to five clear-cut and almost independent versions of the text : the Kashmirian, the Maithili, the Bengali, the South-Indian and the most widely circulated — although perhaps standing at the farthest one from the original —the Devanagari version. Examining bit for bit the readings of these many texts , he springs a great surprise to us — which may even well be a shock to most of the lovers of this unique dramatic work, that has traveled not only to every nook and corner of this land but all through the world in its translations—, that None of these five versions faithfully and exactly represent the 'Original' of our greatest poet and dramatist! All of these are simply 'Stage-scripts' (raṅgāvṛttayaH) of the original play prepared by the stage-directors (Sūtradhāras) of different cultural or linguistic regions, sporadically and slightly moderating the text here and there, reducing or omitting certain sub-scenes or dialogues which they considered redundant or which they thought did not suit the cultural milieu, the ethical views, or the social practices of the region in which the play was to be staged, but sometimes also enriching it with fresh dialogues or one or two fresh and newly composed verses in order to let the scene look more logical or to be more effective on the stage!

With his penetrating skill, which our Patañjali would term as 'mahatī sūkṣmekṣikā', the author has examined and logically analyzed each scene with all its actions and all its dialogues giving his remarks on their appropriateness or otherwise, adducing full and detailed justification for his comments and remarks which absolves the author—to a great extent at least— of the charge of a purely subjective assessment of a reading or a scene as per his personal choice, predilections, or an ingrained bias.

The author divides these five versions of the Shakuntala primarily into two text-groups, a larger one which comprises in itself the present Kashmirian, Maithili and Bengali versions, and a smaller text-group which is a slightly abridged and compact form of the original and out of which have emerged the

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

other two — the South-Indian and the Devanagari versions. According to the author, of all these versions the Kashmirian is predictably the oldest, its next successor is the Maithili version which branches off into Bengali over the time. When the text more or less in the form in which the Kashmirian text might have been at that time, reaches South India, its supposedly superfluous elements are trimmed off with a view to make it easily presentable in a compact form on the stage and partly also to adapt itself to the cultural and social milieu of that region. However the Sūtradhāra who did it, was well aware of the existence of other (Maithili/Bengali) versions as well and incorporated from them too certain elements which he considered important or relevant to the situations. With such changes it assumed the form of a standard text and was commented upon by Kāṭayavema in the 14th century. But its real popularity in the lower Vindhya region came into being actually with the commentary of Raghava Bhatta (of Maharashtra-Karnatak region) and once it was made available in Nagari script by Bombay publishers, it not only gained wide circulation but also acquired the status of a sort of standard text being prescribed for reading in the universities. This Devanagari version, so to say, is basically, or by and large, the South Indian version slightly moderated from time to time by different editors who tried to prepare a "critical" or a "new" edition of the text.

The best advantage of the work is not, that it contains valuable comments and critiques on all the versions of the text by such a mature, experienced and consummate scholar as Prof. Vasant Kumar Bhatt, one who has devoted a large part of his life studying the text, but also the parallel availability of all the five versions of the Shakuntala at one place— which are rare to find these days in our libraries — along with copious notes and parallel passages below. This provides an easy opportunity to an enlightened reader to check the variations and changes that a particular passage has undergone in relation to other versions — what has it in excess, in what is it deficient, and in what way it differs from the others, which will help him form his own opinion about the original nature of the text and its history. But last not the least, I wish to say that the most precious gift that the author has given to us in the form of this book are not these many versions, but *his own version* of the text, that is supposedly the original, to which he has tried to penetrate pushing aside all the weeds and wild grass that has grown around it. This sort of methodology opens up a new possibility towards editing such over-popular texts to which every erudite scholar-lover was tempted to contribute something of his own in order to stand in line with the great poet, although at the cost of the original.

The impetus of this work by Prof. Bhatt, I am sure, is going to last long. It is certainly going to incite a careful reader to critically examine the views of Prof. Bhatt, which will not only evoke and enlighten him (the reader) about the 'pāṭha-paramparā' of the Shakuntala but also help him form his own views about the text, its original form and nature. I believe that a best work is not the one which utters the last word on an issue but generates discussion and provokes the reader to evolve his own views, may be also counter to the views of the author, or to improve upon it. I can very well foresee that a volley of works is going to come out in the form of critical articles or independent works, discussing the original character of this text. Some may even be tempted to bring out fresh editions and fresh scholarly studies of this immortal creation of the greatest of our poet-dramatist' fulfilling his ardent desire expressed in the Bharata-vākyam of this very work (probably the last verse that he wrote towards the end of his life, cf. 'mamā'pi ca kṣapayatu nīlalohita punarbhavam...'), namely : Sarasvatī Śruta-mahatām Mahīyatām.

-Dr. G. C. Tripathi

Ph.D.; Dr. Phil., D.Litt,

Director, B.L. Institute of Indology, Delhi-110036

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

भूमिका

संस्कृत तथा भारतीय विद्या के अध्येताओं के लिये यह परम प्रसन्नता का विषय है कि प्रो. वसंतकुमार भट्ट के द्वारा परिश्रमपूर्वक निर्मित अभिज्ञानशकुन्तला की पाँच रंग आवृतियों का प्रामाणिक सुसंपादित संस्करण प्रकाशित हो रहा है। प्रो. भट्ट का यह कार्य कालिदासविषयक अध्ययन तथा पांडुलिपिशास्त्र को अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान है।

प्रो. भट्ट ने पांडुलिपियों पर अनुसंधान की एक विशिष्ट प्रणाली विकसित की है। इस क्षेत्र में यह उनकी मौलिक देन है। उन्होंने अभिज्ञानशकुन्तला नाटक की काश्मीरी, मैथिली, बंगाली, देवनागरी तथा दाक्षिणात्य - इन पाँच वाचनाओं का विभिन्न पांडुलिपियों के गहन अध्ययन कर के विश्लेषण किया है, साथ ही इस नाटक की अनेक टीकाओं का भी मंथन और आलोडन-विलोडन किया है। अपने अध्ययन में सारी वाचनाओं के उपलब्ध पाठों व पाठान्तरों की मीमांसा करते हुए वे इस नाटक के मूल पाठ में विचलन-क्रम की आनुक्रमिकता का संधान करते हैं। उनके निष्कर्ष रंगावृत्तियों में विचलन की प्रक्रिया की पैनी समझ के साथ प्रस्तुत हुए हैं। तदनुसार उपलब्ध पाँचों वाचनाओं में से काश्मीरी वाचना को वे प्राचीनतम सिद्ध करते हैं। इस काश्मीरी पाठ में किस प्रकार कतिपय परिवर्तन होते हुए मैथिल पाठ बना, और इन दोनों वाचनाओं की बंगदेश की यात्रा में इस पाठ में किस प्रकार नये आयाम जुड़े तथा इन तीनों वाचनाओं में कालिदास की रचना का पाठ किस प्रकार क्रमशः बृहत् से बृहत्तर, एवं बृहत्तर से बृहत्तम होता गया - शकुंतलानाटक की अखिलभारतीय यात्रा का यह सर्वेक्षण जितना ही प्रमाणप्रतिपन्न है, उतना ही विस्मयकारी भी है। प्रो. भट्ट के इस अनुसंधान के शकुंतलानाटक के संबंध में प्रचलित कतिपय पूर्वनिर्मित धारणाएँ टूट गई हैं - विशेष रूप से देवनागरी वाचना की प्रामाणिकता पर उन्होने जो प्रश्नचिह्न लगायें हैं, वे विचारणीय हैं। शकुंतलानाटक के पाठविचलन की यह प्रक्रिया प्राचीन काल में सारे भारत में पांडुलिपियों के निर्गमन और प्रदाय को ले कर भी चौंकाने वाले तथ्य सामने रखती है। प्रो. भट्ट की यह मान्यता सही लगती है कि शकुंतला नाटक ने दक्षिण में पहुँच कर अपेक्षाकृत संक्षिप्त कलेवर धारण किया, क्यों कि दक्षिण के नाट्य प्रयोक्ता या चाक्यार संस्कृत के प्राचीन नाटकों को अभिनय की दृष्टि से संक्षिप्त बना लेते थे। काश्मीर या सुदूर दक्षिण से संस्कृत की पांडुलिपि मध्यदेश में पहुंचे - इसकी भी कोई व्यवस्था अवश्य रही होगी। पाठविचलन की प्रक्रिया में किस तरह कालिदास की मूल रचना का तर्क कहीं कहीं टूट गया है - यह भट्ट जी ने रोचक उदाहरणों से स्पष्ट किया है। केवल संस्कृत के पाठ्य की ही नहीं उन्होंने पाँचों रंगावृत्तियों में प्रयुक्त प्राकृत भाषा के पाठ की प्राकृत व्याकरण की दृष्टि से भी इसी प्रकार अच्छी छानबीन की है। उनके निष्कर्ष में प्राकृत भाषा के पाठों की दृष्टि से भी काश्मीरी वाचना की प्रामाणिकता और प्राचीनता ही सिद्ध होती है। भट्ट जी ने नाट्यशास्त्र के कुछ विधानों तथा परिभाषाओं का विनियोग कालिदास की रचना में दिखाते हुए पुनः यह सत्यापित किया है कि काश्मीरी वाचना नाट्यशास्त्र के अधिक निकट है, जब कि देवनागरी वाचना में दशरूपक आदि परवर्ती ग्रंथों के संस्कार से नाट्यविषयक पारिभाषिक शब्दावली में व्यत्यास हुआ है। नाट्यशास्त्र में स्वगतम् इस संवाद शैली के प्रयोग का निर्देश नहीं है, अतः काश्मीरी वाचना में उचित ही स्वगतम् के निर्देश के साथ संवाद नहीं आये हैं। जब कि देवनागरी पाठ में दशरूपक आदि परवर्ती ग्रंथों के प्रभाव से स्वगतम् जैसे नाट्य निर्देश समाविष्ट हो गये हैं। अलम् अतिविस्तरेण इस सूत्रधारोक्ति की काश्मीरी वाचना में अनुपस्थिति और अन्य वाचनाओं में इसके समावेश की भट्ट जी की मीमांसा भी इस दृष्टि से विश्वसनीय लगती है।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri

प्रो. भट्ट के इस कार्य से कालिदास के स्थान, देश-काल, इतिहास तथा उनके नाटक के वास्तविक नाम आदि अनेक समस्याओं पर विद्वज्जनों को पुनर्विचार के लिये बाध्य होना पड़ेगा। वस्तुतः उनके अनुसंधान ने कालिदास विषयक अध्ययन की कुछ नई दिशाएँ खोल दी हैं।

मुझे विश्वास है कि भट्ट जी का संस्कृतविद्या के प्रति इस महनीय अवदान को इस नये संस्करण के प्रकाशन के साथ और भी व्यापक स्वीकृति और मान्यता मिलेगी।

-राधावल्लभ त्रिपाठी
पूर्व-कुलपति
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

मामकीनं निवेदनम्

महाकवि कालिदास-प्रणीत अभिज्ञानशकुन्तला नाटक की पाँच रंगावृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन कालिदासानुरागी संस्कृतज्ञ पाठकों के करकमलों में समर्पित करते हुए परम हर्ष का अनुभव हो रहा है। इस ग्रन्थ में काश्मीरी, मैथिली, बंगाली, दाक्षिणात्य एवं देवनागरी की (तथाकथित) वाचनाओं के मूल संस्कृत पाठ के साथ साथ, उन प्रत्येक वाचना के पाठ में कैसे कैसे मंचनलक्ष्यी पाठपरिवर्तन होते रहे हैं- उनका प्रत्येक उक्ति को लेकर सर्वाङ्गीण विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। शायद पहली बार, पाँचों वाचनाओं के पाठ एकत्र सुलभ होंगे, तथा पहली बार ऐसा व्यापक तुलनात्मक अध्ययन देखने को, पढ़ने को मिलेगा। इससे प्रत्येक साहित्य रसिक भी अपनी बुद्धि से इन सब की समीक्षा कर सकेगा। इस नाटक के उपलब्ध सभी पाठान्तरों का साकल्येन अध्ययन करने की सामग्री के रूप में T- Foulkes ने 1904 में एवं A- Scharpeus 1954 में दो अलग अलग विधाओं के ग्रन्थों को प्रकाशित किये थे। किन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ में एक स्वोपज्ञ तीसरी विधा का स्वरूप रखा गया है। इस ग्रन्थ के दो पहलु हैः- (क) इस नाटक के मंचनलक्ष्यी पाठपरिवर्तनों की यात्रा का समुद्घाटन किया गया है। तथा (ख) तुलनात्मक दृष्टि से की गई पाठसमीक्षा के आधार पर, इस नाटक के सर्वाधिक श्रद्धेय पाठ का निर्धारण एवं पुनःस्थापन करने का उपक्रम भी किया गया है।

सर विलियम जोन्स ने 1789 में इस नाटक का प्रथम बार अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित करके, पश्चिमी साहित्य जगत् को "भारत के शेक्सपियर" कालिदास का परिचय करवाया। तदनन्तर पूरे विश्व में भारत की साहित्यकला की ओर सब का ध्यान गया। जिससे भारत की प्राचीन साहित्य-संस्कृति की ओर सम्मान बढ़ने के साथ, उसके प्रति आकर्षण भी बढ़ा। कालिदास का यह नाटक विश्वनाट्य साहित्य में अनिवार्यतः पाङ्क्तेय बना।। किन्तु तब से लेकर, अद्यावधि यानी 230 वर्षों के बाद भी, उसके मूल पाठ के विषय में दुविधा प्रवर्तित होती रही है। देश एवं विदेश का विद्वज्जगत्, संस्कृत से सम्बद्ध अनेक विषयों में दो या तीन पक्ष खड़े करके, उनमें से किसी एक का पक्षधर बन, वहीं पर स्थगित हो जाता है। जैसे कि, कालिदास ईसा के पूर्व प्रथम शती में हुए, या फिर गुप्तकाल में चौथी-पाँचवी शती में?। एवमेव, अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक का बृहत्पाठ कविप्रणीत होगा कि उसका लघुपाठ?। ऐसे विषयों के दो दो पक्ष उपस्थित हो जाने के बाद, उस विषय में प्रायः कोई नवीन चिन्तन प्रस्तुत होता ही नहीं है। यह भी दुःखद है कि पाँच वाचनाओं में संचरित हुए इस नाटक के पाठ में से किसी एक को चुन कर, कुछ विद्वान् उसी एक को कवि-प्रणीत मूलपाठ मान लेने के हठाग्रही हो जाते हैं। तथा दूसरी वाचनाओं के साथ तुलनात्मक अध्ययन भी कोई नहीं करता है। एवमेव, बंगाल के समाजसुधारक विद्वान् श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के अभिप्राय को शिरोधार्य रखते हुए सौ डेढ़ सौ साल से सारे भारत वर्ष में, राघवभट्ट ने जिस देवनागरी पाठ पर टीका लिखी है, उसी पाठवाला अभिज्ञानशाकुन्तल पठन-पाठन में प्रवर्तित हो गया है। परिणामतः अद्यावधि किसी को यह समझ में ही नहीं आया है कि इन पाँच वाचनाओं में से किसी एक में भी कविप्रणीत मूलपाठ साद्यन्त सुरक्षित मिलता ही नहीं है। उन पाँचों में जो भी है वह नितान्त रूप से केवल रंगावृत्ति का पाठ ही प्रवाहित होकर हम तक पहुँचा है! अस्तु। विशेष कहने की आवश्यकता ही नहीं है। जहाँ तक इस नाटक की पाठालोचना करने का सवाल है-जब से इस नाटक का प्रकाशन हुआ है, (सर विलियम जोन्स-1789 तब से लेकर आज तक) दो सौवर्षों की कालावधि में केवल चार-पाँच विद्वानों (श्री पी. एन. पाटणकर-1889, श्री बलवन्तराय ठाकोर-1919, डॉ. बेलवालकर-1923-1965, श्री दिलीपकुमार काञ्जीलाल-1980) ने ही इस नाटक की व्यापकतया पाठालोचना की है। अब आप सुधी पाठकों के हाथ में इन सब तथाकथित वाचनाओं के

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

पाठ विद्यमान हैं, और साथ में मेरे तुलनात्मक अध्ययन का निचोड़ भी है। आपसे अनुरोध है कि आप स्वयं भी इस नाटक की पाठालोचना कीजिए, और मेरे प्रयास की पर्यालोचना कीजिए। दो हजार वर्षों की कालावधि में इस नाटक के पाठ में हुए मंचनलक्ष्यी परिवर्तनों का एक नया रसास्वाद लेने के साथ साथ पाठनिर्धारण की मेरी कोशिश का मूल्यांकन कीजिए। मैं आप सब सुधी सक्षम पाठकों का आह्वान करता हूँ।

पाँचों वाचनाओं (= रंगावृत्तियों) का तुलनात्मक अध्ययन करने के बाद, मैंने उच्चतर समीक्षा के सहारे इस नाटक के सर्वाधिक श्रद्धेय एवं मौलिकता के नजदीक हो ऐसे अनुमित पाठ का पुनर्ग्रथन एवं पुन:प्रतिष्ठापन करने का भी प्रयास किया है। जिसको सब से अन्त में रखा गया है। प्रो. श्री एस. एन. दासगुप्ता एवं श्री एस. के. डे ने "But no critical edition, utilizing all the recensions, has been undertaken." See:- A History of Sanskrit Literature, Vol. 1, University of Calcutta, 1947 (p. 140) ऐसा कहा था। तदनन्तर, प्रो. क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय ने Sir William Jones Bicentenary of his Birth Commemoration Volume (1746 - 1946), Published by TheAsiatic Society, Kolkata. 1948, (The Sakuntala Problem) page - 167 में जो लिखा था, वह भी स्मरणीय है:- It is, therefore, right and proper that the Royal Asiatic Society of Bengal should decide to commemorate the bicentenary of Sir William by launching a scheme for a variorum edition of the drama. … In doing this, we shall have to utilize not only canons of scientific text criticism but also a comprehensive study of the mind and art of Kalidasa. The question of the Prakrita will also have to be tackled lastly, the problem of Kalidasa's age will have to be solved. [In the foot-note it is mentioned that - Prof. P. L. Vaidya, Dr. Katre, Dr. Nag & others participated in the discussion developing the plan of preparing & publishing a VARIORUM EDITION of Kalidasa's Sakuntala.]

इस तरह से, अगली पिढी के प्राच्यविद्या के धुरन्धर अध्येताओं द्वारा संकल्पित, लेकिन अद्यावधि अछुते या अनारब्ध रहे,इस तरह के कार्य को (संकल्पित स्वरूप से बहेतर आयामों में) आज सम्पन्न किया जा रहा है, जिसका मुझे परम हर्ष है।।

दूसरी ओर, कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 1920 में शकुन्तला – इट्स इनरर मीनिंग शीर्षक से जो काव्यार्थ समुद्घाटित किया है और सारा साहित्य संसार उस विवेचन से अद्यावधि न केवल संतुष्ट, बल्कि अभिभूत ही रहा है। किन्तु यदि इस नाटक की रंगावृत्तियों के यहाँ किये गये विश्लेषण के साथ, यदि आप सहमत होते हैं, तो गुरुदेव श्री रवीन्द्र नाथ जी के विवेचन से बाहर निकलना होगा तथा इस नाटक का नया काव्यार्थ ढूँढना होगा। मुझे इसकी अनिवार्यता लग रही है। अभी तक जो भी काव्यशास्त्रीय आलोचना होती रही है, वह बिना किसी सर्वाश्लेषी पाठालोचना को पुरस्कृत किये हुए ही होती रही है। मेरा यह दृढ विचार है कि पाठालोचना को पुरस्कृत किये बिना जो भी साहित्यालोचना होगी, वह चिरस्थायी नहीं हो सकेगी। अत: इस ग्रन्थ के माध्यम से इस नाटक की पाठालोचना के विषय में एक नया मार्ग मैंने प्रशस्त किया है। आशा है कि कालिदास का अनुरागी पाठकवर्ग उसकी खुले मन से और नेक दिल से समीक्षा करेगा।।

हाँ, यह बताना भी बहुत आवश्यक है कि इस नाटक की इस तरह की पाठालोचना करने का विचार सहसा नहीं आया है। एक ओर विक्रम विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित कालिदास समारोह, उज्जयिनी में, सचिव श्री प्रो. डॉ. श्रीबालकृष्ण शर्मा और उनके सहयोगियों के द्वारा प्रेम भरे निमन्त्रण मिलते रहने से, करीब 25 वर्षों से शोध–आलेख प्रस्तुत करने का मौका मिलता रहा है तथा कालिदास अकादेमी, उज्जयिनी के द्वारा भी पं. श्रीसूर्यनारायण व्यास स्मृति व्याख्यानमाला में शोध–विचार प्रस्तुत करने का मौका मिलता रहा है, जिनसे इस नाटक के पाठोद्धार की प्रेरणा भगवान् महाकाल की पुण्यभूमि से मिलती रही है। दूसरी ओर, प्रो. श्रीनिवास वरखेडी जी ने 2010 में संस्कृत अकादमी, हैदराबाद में तत्त्वबोध व्याख्यान देने के लिए निमन्त्रण दिया। मैंने उसका विषय 'अभिज्ञानशाकुन्तल : कृतिसमीक्षा से पाठसमीक्षा' चुना। जिसमें, बंगाली वाचना के पाठ

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

में मौलिक पाठ के बीज बिखरे हुए हैं- यह सप्रमाण बताया था। तत्पश्चात् बंगाली वाचना की अप्रकाशित सन्दर्भ दीपिका टीका का (लन्दन की पाण्डुलिपियों के आधार पर) समीक्षित पाठसम्पादित किया, जो राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन, दिल्ली की ओर से 2013 में प्रकाशित हुआ। इसकी विस्तृत भूमिका में मैंने बंगाली पाठ की कड़ी पाठालोचना की, और उच्चतर समीक्षा के आधार पर बंगाली पाठ में प्रक्षेप के अनेक स्थान समुद्घाटित किये। तत्पश्चात् काश्मीर की शारदा पाण्डुलिपियाँ ऑक्सफर्ड युनिवर्सिटी एवं भाण्डारकर ओरि. रिसर्च इन्स्टीट्यूट से प्राप्त शारदा भूर्जपत्रवाली (क्र. 192) पाण्डुलिपि के आधार पर काश्मीरी वाचना का समीक्षित पाठ सम्पादित किया। (जिसका प्रकाशन राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली की ओर से 2018 में हुआ है।) इतने लम्बे समय से निरन्तर चलते रहे स्वाध्याय से, जो नवीन दृष्टि प्राप्त हुई है- उससे प्रस्तुत कार्य करना अनिवार्य लगने लगा था। जिसको सम्पन्न करके आज मैं कृतकृत्यता का भाव अनुभव करता हूँ।

इसी सन्दर्भ में, यह बताना भी बहुत आवश्यक है कि हेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी, पाटण के संस्कृत विभाग ने मार्च 2016 में "स्वर्गीय प्रॉफेसर डॉ. तपस्वी शम्भुचन्द्र नान्दी-स्मृति व्याख्यानमाला" में पहला पुष्प समर्पित करने का निमन्त्रण दिया था। उस विभाग के प्राध्यापकों ने मुझसे अभिज्ञानशाकुन्तल पर ही व्याख्यान देने का आग्रह किया। तब "अभिज्ञानशाकुन्तल की पञ्च रंगावृत्तियाँ" इस विषय को चुन कर मैंने, डॉ. सदाशिवकुमार द्विवेदी जी, वाराणसी की अध्यक्षता में, और डॉ. मल्हार कुलकर्णी जी, मुंबई की सारस्वत उपस्थिति में एक व्याख्यान दिया था। उस बीजभूत व्याख्यान का यह विकसित वृक्ष आपके हाथ में है। मैं प्रॉफेसर डॉ. श्री देवीसिंह राठवा एवं डॉ. दिलीपभाई पटेल, उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी, पाटण का बहुत आभारी हूँ।

मैंने इस ग्रन्थ में इस नाटक की विविध पाठ परम्पराओं का पौर्वापर्य ढूँढ कर, उसका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। जिससे इस नाटक के मंचन का इतिहास या दृश्य-परिवर्तन का सिलसिला उजागर हो गया है। लेकिन इस नाटक के पद्यों में प्राप्त होनेवाले पाठभेदों से इस नाटक के काव्य-पक्ष में कैसे क्रमिक परिवर्तन हुए हैं, उस पर विचार नहीं किया है। इस के लिए मैं चाहूँगा कि संस्कृत के नवोदित विद्वान् आगे आयेंगे और काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में हुए काव्यदोष-विमर्श के कारण (उससे प्रभावित होकर पाठसुधारणा करने की चेष्टा से) कितने पाठभेद प्रस्तुत किये गये होंगे? या कहाँ काव्यगत नवीन चमत्कार या व्यंजना-स्फोरण करने के लिए पाठान्तरों को उद्भावित किये गये हैं? उसका परामर्श करेंगे।। मेरी दूसरी चाहना यह भी है कि इस ग्रन्थ में प्रस्तुत की गई विधा पर नाट्यशास्त्र एवं आयुर्वेद की संहिताओं के पाठभेदों का तुलनात्मक अध्ययन करके, उनकी पाठपरम्पराओं का पौर्वापर्य भी ढूँढ निकाला जाय। क्योंकि जो भी प्रायोगिक एवं अनुभवमूलक (Practices, Performances. & Experiences) विद्याओं के ग्रन्थ हैं वे भी कालक्रम से अनेक-कर्तृक ग्रन्थ बन जाते हैं, बन चूके हैं। अतः उनकी पाठपरम्पराओं के परिवर्तन का इतिहास खोजने से ही, प्राचीन से प्राचीनतर एवं प्राचीनतर से प्राचीनतम पाठ की गवेषणा का मार्ग प्रशस्त होगा। जिससे, प्राचीन भारत के विविध प्रदेशों में ऐसी विद्याओं से जुड़ी गतिविधियों का ज्ञान होगा एवं अन्यान्य बहुविध जानकारियाँ हांसिल हो सकेगी। अन्ततो गत्वा, मूलगामी पाठ के पुनर्गठन का प्रयास भी आत्मलक्षिता से आक्रान्त न होकर, केवल वस्तुनिष्ठ सिद्ध होगा, तर्कसंगत सिद्ध होगा। इति दिक्।

सविशेष कृतज्ञता-ज्ञापनः- वेद-पुराण-मूर्तिकला एवं साहित्यकला के गहन अध्येता विश्वविश्रुत विद्वान् प्रोफेसर श्री जी.सी. त्रिपाठी जी का मैं आभारी हूँ। उन्होंने मेरे पाठालोचना के कार्य को बारिकी से परखा है और उसका सही समर्थन किया है। उनकी दृष्टि से मेरे शोधकार्य की परीक्षा हुई है- इस बात से मैं धन्य हो गया हूँ तथा उनके विचारों से मेरा ग्रन्थ पढ़ने वाले को एक निश्चित दिशा मिलेगी। मैं उनका आभारी हूँ- ऋणी हूँ।

नाट्यशास्त्र एवं संस्कृत नाट्यसाहित्य के मर्मज्ञ और हम सबके श्रद्धेय प्रोफेसर डॉ. श्रीराधावल्लभ त्रिपाठी जी ने मेरे इस ग्रन्थ की "भूमिका" लिख कर मुझे अनुगृहीत किया है। इसी नाटक के पाठोद्धार विषयक मेरे तीन शोध-आलेख उन्होंने अपनी नाट्यम् पत्रिका में प्रकाशित करके, इस दिशा में मेरा प्रयास जारी रखने का उत्साह पौनःपुन्येन संवर्धित किया था।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अतः इस शोधकार्य की प्रेरणा का बहुत कुछ श्रेय मैं उनकी नवोन्मेष-समीक्षाकारिणी निष्पक्ष दृष्टि को देना चाहूँगा। मैं उनका भी ऋणी हूँ।।

इस ग्रन्थ के कवर-पेज का चित्र बनाने वाले नवोदित कलाकार श्री टी.एस. सानु (ओटपलम्, पलक्कड़) केरला को मैं धन्यवाद देता हूँ। उन्होंने, इस नाटक के तृतीयांक का तिरोहित हुआ एक कल्पनागम्य दृश्य दुनिया के सामने प्रस्तुत करने का मेरा स्वप्न साकार किया है।

इस कार्य में सहायक होनेवाले एवं सद्भावना दिखाने वाले वरिष्ठ विद्वज्जनों में वैयाकरणोत्तम प्रो. माधव देशपाण्डे, डॉ. ममता सिनिरुद्ध दास, प्रो. श्री नागराज पातुरि तथा भारतीय-विद्वत्परिषत् के डॉ. शंकर आदि सहभागियों एवं मेरे सुहृद्-वैयाकरण श्रीकमलेशकुमार चोक्सी, छन्दःशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् प्रो. डॉ. श्री मनःसुख मोलिया, कुलपति प्रो. डॉ. बालकृष्ण शर्मा, प्रो. दिलीपकुमार राणा, डॉ. प्रभुनाथ द्विवेदी जी, सन्मित्र पूर्णिमा उपाध्याय, डॉ. कालिन्दी पाठक, डॉ. अञ्जना महेता, डॉ. धर्मेन्द्र भट्ट, डॉ. पंकज ठाकर का मैं आभारी हूँ।

यदि मेरे प्रिय श्रीमती सौ. वृन्दा का प्रतिपल का सकारात्मक साथ न होता तो मैं कुछ स्वाध्याय नहीं कर पाता। सर्वे प्रारम्भास्तण्डुलप्रस्थमूलाः! मैं उनका किन शब्दों से धन्यवाद ज्ञापित करुँ, जो पर्याप्त होगा? सधन्यवाद केवल विनत वन्दन एवं स्नेह ही अर्पित करता हूँ।। मेरी प्रिय बेटी डॉ. कृष्णा एवं बेटा डॉ. विश्वेश ने भी पाण्डुलिपियों में संचरित हुए पाठ की परीक्षा करने के लिए जो तर्क-वितर्क प्रस्तुत किये थे, वे भी दिशासूचक सिद्ध होते थे! अतः मैं उन दोनों को धन्यवाद देता हूँ!! सरस्वती श्रुतिमहतां महीयताम्।।

-वसन्तकुमार म. भट्ट

A-2, सुरभि एपार्ट. सुभाष सोसायटी,
विजय क्रोस रोड, नवरंगपुरा, अहमदाबाद-380009
दूरभाष- 94277 00064 v.k.bhatt53@gmail-com

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

मुखपृष्ठ का चित्रः

(शुंग-कालिक मथुरा शैली में शकुन्तला का शिल्प)

यह शिल्प इन्डियन म्युझियम, कोलकाता में संगृहीत है। उसका उत्खनन प्रयाग के नजदीक भिन्टा ग्राम से हुआ था। एन्युअल रिपोर्ट ओफ आर्कीओलोजीकल सर्वे ओफ इन्डिया, 1911-12 में Sir John Marshall ने उसका पहली बार विवरण दिया था। तत्पश्चात् श्री आनन्द के. कुमारस्वामी ने हिस्ट्री ओफ इन्डियन एन्ड इन्डोनेशियन आर्ट, लंदन, 1927 में इसी शिल्प के लिए लिखा। उनके मत से यह शिल्प मौर्य अथवा शुंगकालिक है। यानि उसका समय ईसा पूर्व तीसरी से पहली शताब्दि है। लेकिन पूर्वोक्त दोनों कला-मर्मज्ञों ने इस शिल्प में किस प्रसंग का आलेखन है, वह नहीं कह था। अन्त में, डॉ. बहादूर चन्द्र छाबरा ने सुस्पष्ट किया है कि यह अभिज्ञानशकुन्तला नाटक में निरूपित प्रसंग है, जिसमें शकुन्तला लेटी हुई अवस्था में है और दुष्यन्त उसका पाद-संवाहन करता हुआ पंखे से पवन झल रहा है।

(1) इस शिल्प के आधार पर हम कह सकते है कि कालिदास ईसा पूर्व दूसरी-पहली शती में हुए थे। वे ईसा की 4 या 5 वीं शती में, यानी गुप्तकाल में नहीं हुए थे।। (द्रष्टव्य- डॉ. एम. एस. रन्धावा सम्मान-विशेषांक, 'रूपलेखा' (अंक-38), ओल इन्डिया फाइन आर्ट्स एन्ड क्राफ्ट सोसायटी, नई दिल्ली, 1969, में प्रकाशित डॉ. बहादूरचन्द्र छाबरा का शोध-आलेख "Sakuntala in Sunga Sculpture" पृ.195 से 199)

(2) इस पुरातात्त्विक ऐतिहासिक शिल्प से अब यह भी प्रमाणित होता है कि अभिज्ञानशाकुन्तल नाम से प्रचलित हुई दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनाओं के (तथा भोजराज के द्वारा शृङ्गारप्रकाश में उद्धृत) तृतीयांक के "किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातम्०" वाले श्लोक का पाठ परवर्ती काल का है। किन्तु काश्मीरी-आदि बृहत्पाठवाली वाचनाओं में सुरक्षित रहा पाठ ही प्राचीनतम एवं कवि-प्रणीत हो सकता है। अतः कुसुमास्तरण पर लेटी हुई नायिका शकुन्तला के दृश्य में मदनलेख लिखते समय भी शकुन्तला लेटी हुई रहती है और अनसूया की विज्ञप्ति से उसी शिलातल पर दुष्यन्त साथ में बैठता है तब भी वह लेटी रहती है। तत्पश्चात् दोनों सहेलियों के चले जाने के बाद भी वह लेटी रहती है। जब दुष्यन्त उसे पूर्व-निर्दिष्ट श्लोक से उसके पाँव अपनी गोदी में लेकर, उसका पादसंवाहन करने की तत्परता व्यक्त करता है तब तक वह निरन्तर लेटी ही रहती है। कविसंकल्पित दृश्य-योजना मूल में भी इस तरह की ही रही होगी ऐसा प्रमाणित हो रहा है।।

(3) शुंगकालिक इस शिल्प को आधार बना कर, कवर-पेज का चित्र सोचा गया है। जिसको मुराल-पेन्टींग से चित्रकार टी.एस. सानु (पलक्कड़, केराला) ने साकार किया है।

(4) अन्तिम कवर-पेज का चित्र श्री दिलीप दवे (EMRCE, गुजरात युनि., अहमदाबाद) ने बनाया है।। (मैं इन दोनों का आभारी हूँ।)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अनुक्रमणिका

समर्पण *iii*

प्रकाशकीयम् –प्रो. परमेश्वर नारायण शास्त्री *v*

Preface -Dr. G. C. Tripathi *vii*

भूमिका –प्रोफेसर डॉ. श्री राधावल्लभ त्रिपाठी *ix*

मामकीनं निवेदनम् –वसन्तकुमार म. भट्ट *xi*

1. **पूर्वपीठिका :** **पृ. 1 –50**

(1) पांच रंगावृत्तियों की प्रस्तावना:–1. अभिज्ञानशकुन्तला/अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक के पाँच पाठों से सम्बद्ध जिज्ञास्य विषय (पृ.–1), 2. आधुनिक पाठसम्पादनों का परीक्षण (पृ.–3), 3. अभिज्ञान-शकुन्तला के पाठविचलन की आनुक्रमिकता (पृ.–4), 4. पाँच वाचनाओं के पाठ में 'रंगावृत्तियों के (ही) पाठ है' इस मत के साधक-प्रमाण (पृ.–6), 5. इस नाटक के विविध दृश्यों की परिवर्तन-यात्रा का आलेखन (सातों अंकों के पाठभेदों में प्रतिबिम्बित प्रयोग-वैविध्य, एवं रंगावृत्तियों के आन्तर प्रवाहों का चित्र) (पृ.–13 से 38), 6. रंगावृत्तियों के अनुमानित कालखण्ड (पृ.–38), 7. रंगावृत्तियाँ होते हुए भी मूल पाठ की बहुशः सुरक्षा (पृ.–39), 8. 230 वर्षों के दौरान इस नाटक के पाठ की प्रकाशन सम्बन्धी प्रवृत्तियों का विहंगावलोकन (पृ.–40), 9. प्रस्तुत उपक्रम की आवश्यकता एवं स्वरूप (पृ.–42), 10. इस नाटक के तीन शीर्षक (पृ.–45), 11. अभिज्ञानशकुन्तला की वाचनाओं का निर्धारण एवं वंशवृक्ष (पृ.–47), 12. भविष्य के लिए अवशिष्ट कार्य (पृ.–49), 13. प्रस्तुत सम्पादन की पद्धति (पृ.–49-50)।

उत्तर-पीठिका:–

2. **मूल नाटक की काश्मीरी रंगावृत्ति का पाठ॥** **पृ. 51 से 162**

भूमिका:- काश्मीरी रंगावृत्ति के सातों अंकों का मंचनलक्षी विश्लेषण **पृ. 51 से 77**

(क) अङ्क – 1, (पृ. 78 से 89)

(ख) अङ्क – 2, (पृ. 90 से 97)

(ग) अङ्क – 3, (पृ. 98 से 109)

(घ) अङ्क – 4, (पृ. 110 से 121)

(ङ) अङ्क – 5, (पृ. 122 से 131)

(च) अङ्क – 6, (पृ. 132 से 149)

(छ) अङ्क – 7, (पृ. 150 से 162)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

3. मैथिली रंगावृत्ति का पाठ॥ कुल:- 163 से 288

भूमिका:-मैथिली रंगावृत्ति के सातों अंकों का मंचनलक्षी विश्लेषण पृ. 163 से 190

(क) अङ्क - 1 (पृ. 191 से 204)

(ख) अङ्क - 2 (पृ. 205 से 213)

(ग) अङ्क - 3 (पृ. 214 से 227)

(घ) अङ्क - 4 (पृ. 228 से 241)

(ङ) अङ्क - 5 (पृ. 242 से 254)

(च) अङ्क - 6 (पृ. 255 से 274)

(छ) अङ्क - 7 (पृ. 275 से 288)

4. बंगाली रंगावृत्ति का पाठ॥ कुल:-289 से 413

भूमिका:- बंगाली रंगावृत्ति के सातों अंकों का मंचनलक्षी विश्लेषण पृ. 289 से 310

(क) अङ्क - 1 (पृ. 311 से 325)

(ख) अङ्क - 2 (पृ. 326 से 335)

(ग) अङ्क - 3 (पृ. 336 से 350)

(घ) अङ्क - 4 (पृ. 351 से 365)

(ङ) अङ्क - 5 (पृ. 366 से 378)

(च) अङ्क - 6 (पृ. 379 से 399)

(छ) अङ्क - 7 (पृ. 400 से 413)

5. दाक्षिणात्य रंगावृत्ति का पाठ॥ कुल:-414 से 528

भूमिका:-दाक्षिणात्य रंगावृत्ति के सातों अंकों का मंचनलक्षी विश्लेषण पृ. 414 से 437

(क) अङ्क - 1 (पृ. 438 से 451)

(ख) अङ्क - 2 (पृ. 452 से 461)

(ग) अङ्क - 3 (पृ. 462 से 471)

(घ) अङ्क - 4 (पृ. 472 से 484)

(ङ) अङ्क - 5 (पृ. 485 से 496)

(च) अङ्क - 6 (पृ. 497 से 515)

(छ) अङ्क - 7 (पृ. 516 से 528)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

6. **देवनागरी रंगावृत्ति का पाठ॥** **कुल:-529 से 654**
भूमिका:-देवनागरी रंगावृत्ति के सातों अंकों का मंचनलक्षी विश्लेषण **पृ. 529 से 555**
(क) अङ्क - 1 (पृ. 556 से 571)
(ख) अङ्क - 2 (पृ. 572 से 581)
(ग) अङ्क - 3 (पृ. 582 से 592)
(घ) अङ्क - 4 (पृ. 593 से 607)
(ङ) अङ्क - 5 (पृ. 608 से 619)
(च) अङ्क - 6 (पृ. 620 से 640)
(छ) अङ्क - 7 (पृ. 641 से 654)

7. **पुनर्ग्रथितः प्रथमोऽनुमितश्च पाठः॥** **कुल:-655 से 748**
भूमिका:- पुनर्गठित प्रथम अनुमित सातों अंकों का पाठ **पृ. 655 से 666**
(क) अङ्कः - 1 (पृ. 667 से 679)
(ख) अङ्कः - 2 (पृ. 680 से 688)
(ग) अङ्कः - 3 (पृ. 689 से 699)
(घ) अङ्कः - 4 (पृ. 700 से 711)
(ङ) अङ्कः - 5 (पृ. 712 से 720)
(च) अङ्कः - 6 (पृ. 721 से 736)
(छ) अङ्कः - 7 (पृ. 737 से 748)

8. **परिशिष्ट -1**, नाटक की पात्रसृष्टि के नामों की तालिका **पृ. 749 से 752**
9. **परिशिष्ट -2**, पाँच रंगावृत्तियों में प्रयुक्त प्राकृत भाषाएँ **पृ. 753 से 764**
10. **परिशिष्ट -3**, प्रक्षिप्त श्लोकों की सूची **पृ. 765 से 766**
11. **परिशिष्ट -4**, पाँच रंगावृत्तियों में श्लोकों का स्वीकार/अस्वीकार **पृ. 767 से 776**
12. **परिशिष्ट - 5**, भरत मुनि एवं कालिदास **पृ. 777-784**
13. **परिशिष्ट -6**, शृङ्गारप्रकाश में उद्धृत अभि. शकु. के श्लोकों के सूचितार्थ **पृ. 785 से 791**
14. **सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची** **पृ. 792 से 796**

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अभिज्ञानशकुन्तला की पाँच रंगावृत्तियाँ

पूर्वपीठिका

[1]

अभिज्ञानशकुन्तला/अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक के पाँच पाठों से सम्बद्ध जिज्ञास्य विषय:– महाकवि कालिदास का "अभिज्ञानशाकुन्तल" नामक नाटक समग्र संस्कृत साहित्य की सर्वोत्तम कृति है, और विश्व नाट्यसाहित्य का अनुपेक्ष्य कुतूहल है। यह अभिप्राय सब को एकमति से मान्य होगा। किन्तु उसी नाटक की कोई भी उक्ति या श्लोक को लेकर, उसमें कितने पाठभेद हैं? ऐसा विचार आरम्भ करेंगे तो निश्चित रूप से हमारे सामने एकाधिक पाठभेद आ जायेंगे। संस्कृत नाट्य-साहित्य का यह एक ऐसा नाटक है कि जिसके पाठ्यांश में शीर्षक से लेकर भरतवाक्य पर्यन्त प्राय: सर्वत्र अनेक पाठभेद मिलते हैं। इस नाटक के पाठभेदों में न केवल शब्द-परिवर्तन ही दिखते हैं, उनमें तो उक्तियाँ एवं श्लोकों के प्रक्षेप एवं संक्षेप का खेलवाड़ भी दिखता है! एवञ्च रंगसज्जा, वेशभूषा तथा संवादो (उक्तियों/dialogue) को बोलनेवाले पात्रों में भी बदलाव प्राप्त होता है। जिनको देख कर सहसा दो-तीन प्रश्न उपस्थित होते हैं:-

(क) प्रथम प्रश्न है कि इस नाटक का मूल पाठ क्या रहा होगा, जो कवि ने अपने हाथ से लिखा होगा?

(ख) दूसरा प्रश्न होता है कि सहस्राधिक पाण्डुलिपियों में इस नाटक का जो पाठ संचरित हुआ है, और विद्वानों ने जिनकी पहचान पाँच वाचनाओं/शाखाओं में प्रवाहित पाठ के रूप में की है, वह पाठ किस स्वरूप का दिखता है?। इस प्रश्न के सन्दर्भ में त्रिविध सम्भावनाएं हो सकती हैं :-

1. समीक्षात्मक दृष्टि से परस्पर में पृथक् पृथक् हो ऐसी पञ्चविध स्वतन्त्र वाचनाओं के ये पाठ है?। या,
2. अलग अलग रंगकर्मियों की, परस्पर में पृथक् हो ऐसी, पाँच स्वतन्त्र रंगावृत्तियाँ प्राप्त हो रही है?। या,
3. जो कवि-प्रणीत हो ऐसे एक ही पाठ में अनेक प्रदेशों के रंगकर्मियों द्वारा किये सुधार/विकार का सांकर्य हुआ दिखता है?।।

(ग) तथा तीसरा प्रश्न होता है कि स्वयं कालिदास के द्वारा लिखे गये मूल पाठ में इन परिवर्तन तथा परिवर्धन (पाठभेद, संक्षेप एवं प्रक्षेप) आदि किस क्रम में पैदा हुए होंगे? अर्थात् पाठविचलन की आनुक्रमिकता में कौन सा पाठ प्राचीनतम, प्राचीनतर या उत्तरवर्ती काल का सिद्ध होता है?।।

इन में से पहले प्रश्न का उत्तर ही हमारी उत्कृष्ट एवं चरम जिज्ञासा का विषय है। किन्तु लगता है कि कवि-प्रणीत मूल पाठ को हम कथमपि पुन: प्राप्त नहीं कर सकेंगे। बहुविध एवं सैंकड़ों प्रयासों के बाद जो भी हासिल किया जाएगा वह केवल पुनर्गठित आनुमानिक पाठ ही होगा और वह सम्भवत: विवादास्पद भी होगा। अत:, उपर्युक्त तीन प्रश्नों में से कम से कम दूसरे एवं तीसरे प्रश्न का उत्तर मिल जाने पर भी हम अपने आप को बड़-भागी मानेंगे। प्रस्तुत प्रयास इस दिशा में अग्रेसर होना चाहता है।

कवि-प्रणीत पाठ अपने मूल रूप में कथमपि पुन:प्राप्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि (1) कवि कालिदास का स्वहस्तलेख कालग्रस्त हो चुका है।, (2) इस नाटक के मंचन की परम्पराएँ करीब दो हजार वर्षों की कालावधि में फैली हुई हैं, जिसके कारण विविध प्रदेश के रंगकर्मियों के द्वारा उसमें परिवर्तन एवं परिवर्धन, या कदाचित् जगह जगह पर कटौती करने की भी प्रवृत्ति बे-रोक-टोक निरन्तर होती रही है। (3) संस्कृत नाटकों में नीच एवं स्त्री-पात्रों के मुख में शौरसेनी (एवं कुत्रचित् मागधी) प्राकृत भाषा रखी जानी चाहिए ऐसा नाट्यशास्त्र का मार्गदर्शक नियम है। लेकिन स्थल-काल के बदलने

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

के साथ साथ उसी प्राकृत भाषा का महाराष्ट्री प्राकृत में परिवर्तन भी किया गया है। (4) आर्याओं (प्राकृत गाथाओं) को अधिक गेय बनाने के लिए उनमें भी नवीन पाठभेद दाखिल किये जाते हैं। [अथवा पथ्या आर्या प्रकार की गाथा को गीति-आर्या में परिवर्तित की जाती है। अथवा पिंगलसूत्रोक्त आर्या के लक्षण का त्याग करके, श्रुतबोध-प्रदर्शित आर्या के लक्षणानुसारी परिवर्तन किये जाते हैं]। एवमेव, (5) मूल कवि के द्वारा (ईसा की प्रथम शताब्दी में) इस नाटक का लिखित पाठ्यांश उस जमाने की ब्राह्मी लिपि में लिखा गया होगा। लेकिन कालक्रम से जब उसी ब्राह्मी लिपि से अन्य प्रादेशिक लिपियों का भी विकास होने लगा, तो कविप्रणीत ब्राह्मी लिपिनिबद्ध मूलपाठ का नवीन लिपियों में लिप्यन्तरण भी होने लगा होगा। इस तरह से लिप्यन्तरण के हर मौके पर भी "लिपि-सारूप्य के मोह/भ्रम में" परम्परागत पाठ में कुछ अशुद्धियाँ प्रविष्ट होने लगी होगी। एवमेव, (6) वह लिप्यन्तरित पाठ का प्रतिलिपिकरण भी वनस्पतिजन्य अचिरस्थायीफलक (भूर्जपत्र, ताडपत्र, कागज) पर होने के कारण, वह जल्दी से जीर्णशीर्ण भी होता था। अतः भारतीय प्रजा ने उस कृति के पाठ को अगली पीढ़ी के पास पहुँचाने के लिए, उसका बार बार प्रतिलिपिकरण भी किया है। ऐसे प्रतिलिपिकरण की भी बड़ी लम्बी परम्परा रही है। जिसमें भी लिपिकारों के अज्ञान एवं अनवधान से कुत्रचित् अशुद्धियाँ प्रविष्ट हुई हैं तथा कदाचित् लिपिकार ज्ञानी होने के कारण, वह कविंमन्यमान बुद्धि से प्रेरित होकर, परम्परागत पाठ में प्रक्षेप एवं परिवर्तनादि भी करता है। अतः स्वाभाविक ही है कि दो हजार वर्ष पहले लिखे गये इस नाटक का पाठ आज बहुविध स्वरूप में प्राप्त हो रहा है। अभिज्ञानशाकुन्तल की एक भी ज्ञात पाण्डुलिपि या छपी हुई आवृत्ति के माध्यम से हमारा सीधा साक्षात्कार मूल कवि कालिदास के साथ होना सम्भव नहीं है।। मूल कवि और आज के पाठक के बीच में न केवल लिपिकार ही खड़े हैं, बल्कि अनेक अज्ञात रंगकर्मियों के समूह भी खड़े हैं, जो हमें इस नाटक के मूल पाठ से बहुत दूर बने रहने के लिए विवश कर देते हैं। लगता है कि उन्हीं रंगकर्मियों द्वारा बनाई रंगावृत्तियाँ ही हम तक पहुँची हैं।

यद्यपि अभी तक विद्वानों ने लिपिभेद या प्रदेशभेद के आधार पर इस नाटक की पाँच वाचनाओं[1] की समीक्षित आवृत्तियाँ निकालने का प्रथम चरण का (निम्न स्तरीय पाठालोचना का) कार्य प्रायः पूर्ण[2] किया है, तथापि इन वाचनाओं में संचरित हुआ पाठ किस स्वरूप का है?, तथा इनमें से किस वाचना का पाठ प्राचीनतम है। इसकी सप्रमाण चर्चा भी सुदुर्लभ है। दो हजार वर्ष पहले लिखे गये इस नाटक की विभिन्न पाठपरम्पराओं के आविष्कार का आलेखन भी किसी विद्वान् ने (ऐतिहासिक दृष्टि से) किया हो ऐसा ज्ञात नहीं है। हमारी जानकारी के अनुसार, (डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल को छोड़ कर, जिनके मत के साथ हम सहमत नहीं हैं) किसी ने इस नाटक की पाठयात्रा का कोई प्रामाणिक / तर्कसंगत एवं विशद चित्र प्रस्तुत ही नहीं किया है। एवमेव, किस वाचना का पाठ सर्वाधिक मात्रा में आन्तरिक सम्भावना-युक्त है?। इत्यादि कठिन से कठिनतर प्रश्नों का समाधान देने का, द्वितीय चरण का (यानी उच्च स्तरीय पाठालोचना का) आवश्यक कार्य भी सर्वाङ्गीण रूप से किसीने नहीं किया है। क्योंकि उसके लिए इस नाटक के पाँचों पाठों का पङ्क्तिशः तुलनात्मक अध्ययन परम आवश्यक है, जो किसी विद्वान् ने अभी तक[3] किया ही नहीं है। उच्चतर समीक्षा के दायरे में जिसका समावेश होता है, वह है आन्तरिक सम्भावना-युक्त पाठ की गवेषणा। इतना होने के बाद ही, चतुर्थ चरण पर, कवि-प्रणीत मूल पाठ का (या कहें Ur-text का) आनुमानिक पुनर्गठन करने का कार्य किया जा सकता है।

---

1. अभी तक बंगाली, मैथिली, देवनागरी, दाक्षिणात्य तथा काश्मीरी वाचनाओं के पाठ प्रकाशित हुए हैं।
2. यहाँ "प्रायः पूर्ण" इस लिए लिखा है कि अभी तक दाक्षिणात्य वाचना का समीक्षित पाठ तैयार करने का काम ही नहीं हुआ है तथा देवनागरी वाचना का समीक्षित पाठ निकालने वाले किसी भी विद्वान् को यह मालूम ही नहीं है (था) कि कतिपय देवनागरी पाण्डुलिपियों में बृहत्पाठ भी संचरित हुआ है। अर्थात् सही अर्थ में देवनागरी-वाचना का भी समीक्षित पाठ अभी तक नहीं निकला है।। (मेरी जानकारी के मुताबिक दक्षिण भारतीय लिपिनिबद्ध पाण्डुलिपियों में भी कुत्रचित् काश्मीरी पाठ प्रतिबिम्बित हुआ है!)
3. सर विलियम जोन्स ने इस नाटक का प्रथम अंग्रेजी अनुवाद1789 में प्रकाशित किया तब से लेकर ई. स. 2020 तक। कुल 230 वर्षों की इस कालावधि में निम्न स्तरीय पाठालोचना ही होती रही है।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

[2]

आधुनिक पाठसम्पादनों का परीक्षण:- अद्यावधि इस नाटक के प्रकाशित हुए पाठ सम्पादनों में दो-तीन तरह के उपक्रम प्रमुखतया देखने को मिलते हैं :- (क) 1. प्राप्त की गयी अनेक पाण्डुलिपियों में से बहुसंख्यक पाण्डुलिपियों में उपलब्ध हो रहे सामान्य पाठ का समादर किया गया है।, या 2. प्राचीनतमकाल में लिखी गई किसी एक पाण्डुलिपि में सुरक्षित रहे पाठ को ग्राह्य रखा गया है।, या 3. अनेक पाण्डुलिपियों में से जहाँ से जो जो पाठान्तर व्यञ्जना-युक्त प्रतीत हुए हों, उनका चयन करके पाठ सम्पादित किया गया है। ऐसे सम्पादनों में पृष्ठ के उपरि भाग में मान्य या अभीष्ट पाठ का स्थापन और अस्वीकार्य पाठभेद को पादटिप्पणी में प्रस्तुत करके, पाठसम्पादन-कार्य पूर्ण हुआ है ऐसा माना जाता है[1]। ऐसे संस्करणों में निःशेष पाठान्तरों का ब्यौरा नहीं होता है, अथवा पाठान्तरों के उद्भव का कारण एवं पौर्वापर्य जानने की कोशिश ही नहीं होती है तथा पादटिप्पणी में रखे गये पाठभेदों की अग्राह्यता का क्या कारण है? उनका एक भी कारण हमारे सामने नहीं रखा जाता है। पाठान्तरों की ग्राह्याग्राह्यता पर विस्तार से परामर्श करने की रूढि या रीति भी कहीं पर नहीं दिखती है। (ख) अभिज्ञान-शाकुन्तल नाट्यकृति की एकाधिक वाचनाएँ जब क्रमशः प्रकाश में आयी तब, उनकी पादटिप्पणियों में अन्यान्य वाचनाओं के पाठान्तरों को उपलब्ध नहीं करवाया गया हैं तथा उन वाचनाओं की प्रास्ताविक भूमिका में भी केवल उपलब्ध हुई पाण्डुलिपियों का वंशवृक्ष (=प्राप्त की गई प्रतिलिपियों का वर्गीकरण तथा परस्पर में पूर्वज-अनुज होने का आनुमानिक चित्र) सामान्यतः सोचा जाता है। परन्तु मूल कृति के पाठसंचरण का इतिहास एवं पाठ परम्पराओं का वंशवृक्ष स्वतन्त्र रूप से प्रायः सोचा ही नहीं जाता है। [इस दूसरे तरह के वंशवृक्ष के बिना तो मूल नाट्यकृति की पाठयात्रा (Journey of the text) कैसे चलती रही होगी, कहाँ कैसे कुछ परिवर्धित या परिवर्तित स्वरूप आकारित हुआ होगा? यह समझ में नहीं आता है। एवमेव, किसी एक वाचना के पाठ को हाथ में लेकर बैठे पाठक को दूसरी वाचनाओं के पाठान्तरों के साथ तुलना करने का अवसर ही नहीं मिलता है।] (ग) कोई परिश्रमी विद्वान् इस तरह के सम्पादन का स्वप्न भी देख सकता है कि अभीष्ट ग्रन्थ की सभी (प्रदेशों का प्रतिनिधित्व करनेवाली शताधिक) पाण्डुलिपियाँ पहले एकत्र की जायँ, तत्पश्चात् उस ग्रन्थ के प्रत्येक वाक्य को सांख्यिक क्रमांक दिया जाय और बारी बारी प्रत्येक वाक्य को लेकर, उस एक एक वाक्य/पङ्क्ति में उपलब्ध हो रहे विविध पाठान्तरों की विशाल राशि पाठकों के सामने रख देना चाहिए! जैसे महावीर हनुमान् जी ने संजीविनी का केवल पौधा न ला कर, पूरे पर्वत को उठा कर भगवान् श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में भेट कर दिया था। यद्यपि ऐसा भगीरथ कार्य निरतिशय महनीय है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। तथापि तुलनात्मक अभ्यास में, ऐसे प्रयासों से भी अनेक तरह की बाधाएँ आती हैं। भूतकाल में हुए ऐसे पाठसम्पादन (यानी सभी उपलब्ध पाठान्तरों के सम्पादन) का कोई निदर्श देखना हो तो Kalidasa : Complete Collection of the Various Readings of the Madras Manuscripts. (Vol. 1-4) Edited by T. Foulkes. Published by the Govt. of Madras, 1904 ग्रन्थ दर्शनीय है। इसमें केवल गवर्नमेन्ट ओरिएन्टल मेन्युस्क्रिप्ट लाईब्रेरी, (7वी मंजिल, अण्णा सेन्टेनरी बिल्डिंग) चेन्नै में संगृहीत पाण्डुलिपियों के आधार पर, कालिदास की रघुवंशादि सातों कृतियों की प्रत्येक पंक्ति में कौन कौन से पाठभेद उपलब्ध होते हैं? इसका अतिविस्तृत निरूपण है। इसी तरह से, A-Scharpe' (ए. शार्पे) द्वारा 1954 में तैयार किये "कालिदास लेक्सिकोन" में अभिज्ञानशाकुन्तल की (क) देवनागरी एवं बंगाली वाचनाओं के जो जो संस्कृत-प्राकृत गद्यात्मक वाक्य हैं, उनके पाठान्तरों का संग्रह है। (ख) तथा केवल पद्य श्लोकों के विषय में देवनागरी, दाक्षिणात्य, बंगाली, काश्मीरी वाचनाओं तथा अलंकार-शास्त्रीय ग्रन्थों में उद्धृतांशों में प्राप्त होने वाले पाठान्तरों का निरूपण किया गया है। (शार्पे के इस लेक्सिकोन में मैथिली वाचना के पाठभेदों का समावेश नहीं है। क्योंकि मैथिली वाचना का प्रकाशन ई. स. 1957 में हुआ था।) लेकिन पाठान्तरों का संग्रह प्रस्तुत करनेवाले ऐसे ग्रन्थों के माध्यम

1. अद्यावधि बहुशः ऐसा हुआ है कि बड़े बड़े ख्यात विद्वानों ने भी अपनी मति या रुचि के अनुसार, यानी इकलेक्टीक प्रिन्सीपल्स पर चल कर भूतकाल में प्रकाशित हुए संस्करणों में से अच्छे अच्छे पाठान्तरों का मधुकर-वृत्ति से चयन करके ही अपना अपना सम्पादन हमारे सामने रखा है। डॉ. गौरीनाथ शास्त्री ने तो एक भी पाण्डुलिपि देखने का तनिक भी आवश्यक नहीं समझा है। तथापि केन्द्रीय साहित्य अकादेमी, दिल्ली ने उनके संस्करण को प्रकाशित भी किया है!

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

से भी,इतने सारे पाठान्तरों का प्रादुर्भाव किस ऐतिहासिक क्रम में हुआ होगा? इसका हमें कथमपि अंदाजा नहीं लग सकता है। अस्तु।

अतः मन में दूसरा विचार आता है कि इस नाटक की बहुशः सम्मत हो सके ऐसी कोई पुनर्गठित आवृत्ति (Restored & Reconstructed Text) निकालने की चेष्टा करने से बेहतर (एवं पहले,) आवश्यक तो यही है कि एक ही जिल्द में पाँचों वाचनाओं का पाठ प्रेक्षक या पाठक के हाथ में रखा जाय! क्योंकि पाण्डुलिपियों में जो विभिन्न वाचनाओं के पाठ संचरित हुए हैं वे हकीकत में तो विविध रंगावृत्तियों के पाठ ही हैं ऐसा अब हमें दिख रहा है! अतः, पाँचों वाचनाओं में से किस एक वाचना का पाठ मौलिक हो सकता है? (ज्यादा से ज्यादा आन्तरिक सम्भावना-युक्त सिद्ध होता है।) इसके विवाद में जाने से पहले, इन पाँचों वाचनाओं के पाठों को एक साथ उपलब्ध करवाया जाय तो वह अधिक उपयुक्त होगा। कालिदास सब के हैं, और सब के लिए हैं। अतः यदि साहित्य रसिकों को इन पाँचों तथाकथित वाचनाओं के पाठ एक साथ में उपलब्ध करवाये जायेंगे तो, सभी को तुलनात्मक अभ्यास करने का समान मौका मिल सकेगा। तथा कविप्रणीत मूल पाठ क्यों और कैसे क्रमिक रूप से बदलता रहा है? उसका चित्र स्पष्ट हो जाएगा।

प्रसंगवशात् यह कहना आवश्यक है कि अभिज्ञानशकुन्तला नाटक की जिन पाँच वाचनाओं का निर्देश किया गया है, उनमें से जो काश्मीरी वाचना का पाठ है, वह अद्यावधि सभी संस्कृतज्ञों के लिए तमसावृत्त रहा था[1]। हमने ऑक्सफर्ड युनि., श्रीनगर, भाण्डारकर ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीट्युट, पुणें आदि स्थानों से पांच शारदा पाण्डुलिपियाँ प्राप्त करके, काश्मीरी वाचना का समीक्षित पाठसम्पादित किया है, जो राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली के द्वारा मार्च 2018 में प्रकाशित हुआ है। अतः अब तक कोई विद्वान् चाहे तो भी, पाँचों वाचनाओं का पौर्वापर्य भी नहीं जान सकता था, तथा उन सब का पारस्परिक तौलनिक अभ्यास भी नहीं कर सकता था। हाँ, जिन्होंने इन वाचनाओं के बंगाली या मैथिली पाठ देखे थे, उन्होंने बिना तलस्पर्शी अध्ययन किये ही उनकी गलत आलोचनाएं कर दी है। इस लिए, प्रस्तुत ग्रन्थ में काश्मीरी वाचना सहित की पाँचों वाचनाओं के पाठ एक साथ में देने का विचार किया है। मेरा पक्का विश्वास है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के द्वारा सभी पाठक के लिए पाँचों पाठ सुलभ हो जाएँगे तथा उनका जो तुलनात्मक अध्ययन भी उसमें जोड़ा गया है, उससे दो हजार वर्षों की सुदीर्घ कालावधि में, इस महान् नाटक के पाठ का भारतीय रंगमंच पर जिन विविधताओं के साथ, मंचन होता रहा है वह बहुशः स्पष्ट रूप से जाना जाएगा।

[3]

अभिज्ञानशकुन्तला के पाठविचलन की आनुक्रमिकताः- जब, एक ही जिल्द में, इस नाटक की पाँचों वाचनाओं को एक साथ में रखने का विचार किया है, तब सब से पहले यही प्रश्न होगा ही कि किस वाचना के पाठ को पहले क्रमांक पर रखना चाहिए, और किस वाचना के पाठ को दूसरे एवं तीसरे क्रमांक पर रखना चाहिए? इत्यादि। इसके समाधान के लिए पाँचों वाचनाओं के (जिसको हम रंगावृत्तियाँ कहते हैं) आविष्कार का कोई दस्तावेजीय या अभिलेखीय इतिहास तो हमारे पास नहीं हैं। किन्तु कृतिनिष्ठ अन्तःसाक्ष्यों के आधार पर इन सब का पौर्वापर्य सुनिश्चित किया जा सकता है। (पुरातत्त्वीय प्रमाणों के अभाव में तर्क-सिद्ध अनुमान ही सहायक हो सकता है।) हमने इसके लिए दो-तीन शोध-आलेख लिखे हैं, जैसे कि, 1. अभिज्ञान-शाकुन्तल की देवनागरी वाचना में संक्षेपीकरण के पदचिह्न, 2. अभिज्ञानशाकुन्तल के पाठविचलन की

1. डॉ. एस. के. बेलवालकर जी (पुणें) ने शारदा पाण्डुलिपि के आधार पर, काश्मीरी वाचना के पाठ का सम्पादन करने का कार्य उठाया था। लेकिन शायद वार्धक्य के कारण वे उसे पूरा नहीं कर पाये थे। उनके मरणोपरान्त, साहित्य अकादेमी, दिल्ली ने उनका सम्पादित किया हुआ जो तथाकथित समीक्षित पाठ था, उसको स्मरणाञ्जलि के रूप में प्रकाशित किया है (1965)। लेकिन उसमें एक भी पादटिप्पणी नहीं है। साथ ही कहीं पर भी पाठान्तरों का निर्देश नहीं है। उपयोग में ली गई पाण्डुलिपि की कोई जानकारी नहीं दी गयी है। डॉ. बेलवालकर जी ने उसकी प्रस्तावना भी नहीं लिखी है। वह डॉ. वी. राघवन् जी ने बहुत संक्षेप में लिखी है। हमारे अभिप्राय से वह एक इकलेक्टीक टेक्स्ट ही है। क्योंकि उसमें अनेक स्थानों पर देवनागरी एवं बंगाली आदि वाचनाओं के पाठान्तरों को भी स्वीकार किया गया है। यही कारण है कि काश्मीरी वाचना का असली शारदा पाठ अभी (2018) तक तमसावृत्त ही रहा।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

आनुक्रमिकता, तथा 3. दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों की आलोचना। इन शोध-आलेखों का प्रकाशन डॉ. श्री राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा सम्पादित "नाट्यम्" पत्रिका (अंक :71-74, पृ. 27 से 57, अंक- 76, पृ. 26 से 54, एवं अंक- 77, पृ. 33 से 58। वर्षः-2011-12, 2014 एवं 2015)में हुआ है। अतः उन्हें वहीं पढ़ने का हम अनुरोध करते हैं, यहाँ उनकी पुनरावृत्ति करना अनावश्यक है। तथापि कतिपय सारभूत प्रमाणों की ओर अंगुलि-निर्देश करते हैं :-

1. बृहत्पाठ एवं लघुपाठवाली वाचनाओं में से पहली कौन?- इस प्रश्न का समाधान लघुपाठवाली दोनों वाचनाओं के पाठ में से मिलता है। (क) तृतीयांक में नायक-नायिका का मिलन-दृश्य कुछ क्षणों में ही समेट लिया गया है। जिसके कारण मध्याह्न में शुरू हुआ मिलन-दृश्य दो-चार मिनिटों में ही 'रात्रि काल का आगमन' हो जाने की नेपथ्योक्ति से समाप्त किया जाता है। यहाँ समयनिर्देशक सूचनाओं में विसंगति पैदा होती है। (ख) इसी अंक के उपान्त्य श्लोक में शकुन्तला के हाथ में से गिर गये मृणालतन्तु (बिसाभरण) का उल्लेख है, लेकिन उससे सम्बद्ध कोई प्रसंगालेखन इन दो लघुपाठों में नहीं मिलता है। उसके प्रतिपक्ष में बृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं में दुष्यन्त शकुन्तला के हाथ में मृणाल-वलय पहनाता है- उसका पूरा दृश्य उपलब्ध होता है। इन कृतिनिष्ठ आन्तरिक प्रमाणों से सिद्ध होता है कि लघुपाठवाले अभिज्ञानशाकुन्तल की अपेक्षा से बृहत्पाठवाला अभिज्ञानशकुन्तला एवं अभिज्ञानशकुन्तल नाटक का पाठ ही पुरोगामी है। (ग) सातवीं-आठवीं शती से लेकर 13वीं शती के आलंकारिकों ने इस नाटक के जिन श्लोकों के उद्धरण दिये हैं, उनमें बृहत्पाठानुसारी नाटक के श्लोक भी मौजूद हैं। (घ) तथा इससे भी पहले, ई. स. 650 में श्रीहर्षदेव ने भी रत्नावली-आदि नाटिकाओं में अनेक स्थान पर अभिज्ञानशकुन्तल के दृश्यों का अनुकरण किया है। इन बहिरंग प्रमाणों से भी दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनाओं के लघुपाठ की अपेक्षा से काश्मीरी-आदि बृहत्पाठानुसारिणी तीनों वाचनाओं के पाठ पुरोवर्ती सिद्ध होते हैं।

2. बृहत्पाठ की तीनों वाचनाओं में से भी किसको पहले क्रम पर रखना चाहिए?- इस प्रश्न का उत्तर है कि काश्मीरी वाचना प्राचीनतम है, मैथिली वाचना प्राचीनतर है एवं बंगाली वाचना प्राचीन है। (क) लिपियों के उद्भव विकास को देखा जाय तो, ब्राह्मी से निकली अन्यान्य लिपियों में (मैथिली एवं बंगाली लिपि की अपेक्षा से) शारदा-लिपि ही प्राचीनतम है। अतः शारदा-पाण्डुलिपियों में संचरित हुए काश्मीरी पाठ को ही प्राथम्य मिलता है। (ख) काश्मीरी पाठ में सर्वाधिक मात्रा में आन्तरिक सम्भावनायुक्त पाठ सुरक्षित रहा है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। उदाहरणतया- "लब्धं मया नेत्रनिर्वाणम्" के स्थान में काश्मीर परम्परा में "लब्धं मया नेत्रनिर्वापणम्" है।, "कथं तातस्य अङ्कात् परिभ्रष्टा मलयपर्वताद् उन्मूलितेव चन्दनलता देशान्तरे जीवितं धारयिष्यामि"। के स्थान में काश्मीरी पाठ में "कथमिदानीं तातेन विरहिता करिसार्थपरिभ्रष्टा करेणुकेव प्राणान् धारयिष्ये"। ऐसी भिन्न उपमा मिलती है। (ग) मैथिली एवं बंगाली पाठानुसार तृतीयांक के आरम्भ में "ततः प्रविशति मदनावस्थो राजा", तथा दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों में "ततः प्रविशति कामयमानाऽवस्थो राजा" ऐसी रंगसूचनाएँ प्राप्त होती हैं। केवल काश्मीरी पाठ में "ततः प्रविशति कामयानावस्थो राजा" ऐसी रंगसूचना मिलती है। इस काश्मीरी पाठ को वामन के "कामयानशब्दः सिद्धोऽनादिश्चेत्" (काव्यालंकारसूत्रवृत्ति 5-2-82) सूत्र का समर्थन मिल रहा है। तथा स्वयं कालिदास ने ही रघुवंश (19-50) में उसका विनियोग किया है[1]। अतः बृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं में से काश्मीरी वाचना के पाठ को प्राचीनतम कहना सयुक्तिक होगा।

3. मैथिली वाचना को द्वितीय स्थान पर रखने का हेतु यह है कि- इस नाटक का जो नान्दी-पद्य है, उसमें काश्मीरी पाठ के अनुसार "या स्रष्टुः सृष्टिराद्या पिबति विधिहुतम्॰" ऐसा पदक्रम मिलता है। मैथिली पाठ में "या स्रष्टुः सृष्टिराद्या वहति विधिहुतम्॰" ऐसे क्रियापद में पाठभेद किया जाता है। किन्तु श्लोकारम्भ में पहले चार पदों का पदक्रम तो काश्मीरी पाठ के अनुसार ही रखा गया है। तथा बंगाली पाठ में वही पदक्रम बदल करके "या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतम्॰" किया गया है। इन पाठभेदों से सिद्ध होता है कि मैथिली एवं बंगाली पाठों का

1. द्रष्टव्यः- कालिदासशब्दानुक्रम-कोशः।, सं. डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी एवं डॉ. सदाशिव द्विवेदी, वाराणसी, 2017, (पृ. 129 एवं 584)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

आविष्कार द्वितीय एवं तृतीय सोपान पर ही हुआ होगा। (अभिनवभारती, वॉ. 2, अ. 9–178 में भी काश्मीरी पाठानुसारी ही यह पद्य उद्धृत है।)

4. बंगाली वाचना तृतीय क्रमांक पर ही खड़ी है– उसका समर्थन प्राप्त करने के लिए, षष्ठांक के पाठभेदों का तुलनात्मक अभ्यास करना चाहिए। काश्मीरी वाचना में दो दासियों के नाम (लिपिकरी) मेधाविनी एवं पिङ्गलिका ऐसे प्राप्त होते हैं। इन नामों का अनुसरण मैथिली में भी यथावत् हुआ है। हम जैसे ही बंगाली पाठ को देखते हैं तो वहाँ मेधाविनी के लिए एक नया नामान्तर, "चतुरिका" प्रयुक्त किया गया है। किन्तु बंगाली रंगकर्मियों की असावधानी से दूसरे एक स्थान में "मेधाविनी" यह पुराना नाम भी[1] उपयोग में लिया गया है! इस गलती के आधार पर ही निश्चित होता है कि बंगाली पाठ तृतीय क्रमांक पर ही आविष्कृत हुआ है। (इसी तरह से, प्रातःकाल का वर्णन करनेवाले चतुर्थांक के चार श्लोकों का क्रम–परिवर्तन देखेंगे तो भी यह बात समर्थित होगी।)

5. दाक्षिणात्य पाठ चतुर्थ क्रमांक पर तैयार हुआ है, इसका प्रमाण भी उपर्युक्त पाठभेद के अनुसन्धान में ही मिल रहा है। जैसे कि, बंगाली रंगकर्मियों ने जैसे मेधाविनी का नाम बदल कर उसके स्थान में "चतुरिका" नाम दाखिल किया है, वैसे दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने पिङ्गलिका नाम को भी बदल दिया है, और उसके स्थान में नया "तरलिका" नाम दाखिल किया है तथा इस नाटक के बृहत्पाठ में संक्षेपीकरण का आरम्भ कर दिया है। जिसके कारण 235 श्लोकवाले पाठ में से 193 श्लोकवाला पाठ तैयार किया है।

6. राघवभट्ट ने जिस देवनागरी पाठ पर टीका लिखी है, उसमें 190 श्लोकवाला संक्षिप्ततर पाठ मिलता है। इससे उसके आविष्कार का क्रम पञ्चम स्थान पर आता है। तथा देवनागरी पाठ से दाक्षिणात्य पाठ पुरोवर्ती है– ऐसा कहने का दूसरा प्रमाण यह है कि–धीवर के मुख में रखी "भर्तः, अथ कीदृशो मे आजीवः?" उक्ति अन्यत्र कहीं पर नहीं है। यह प्रथम बार केवल देवनागरी पाठ में मिलती है।।

इस तरह से, पाँचों वाचनाओं का सूक्ष्मेक्षिका से अभ्यास करने के बाद, उन सब का जो पौर्वापर्य क्रमनिश्चित होता है, उसको स्वीकार के यहाँ उसी क्रम से सभी पाठ रखे हैं:–

इस सन्दर्भ में, पाठकों को फिर से याद दिलाते हैं कि काश्मीरी वाचना का जो पाठ प्राचीनतम सिद्ध हुआ है, वह एक रंगावृत्ति का ही पाठ है। जिसमें इस कृति का शीर्षक "अभिज्ञानशकुन्तला" दिया गया है, तथा उसी में ही विभिन्न प्रदेशों के रंगकर्मियों के द्वारा परिवर्तन–परिवर्धनादि करते रहने के कारण अन्य चार वाचनाएं कालक्रम से आकारित हुई हैं। मतलब कि कविप्रणीत मूल पाठ में से सीधी / स्वतन्त्र रूप से चली आ रही हो ऐसी प्रतिलिपि–करण की कोई पाठ–परम्परा अद्यावधि ध्यान में नहीं आयी है। यह एक गम्भीर और चौंकानेवाली हकीकत है। आज उपलब्ध हो रही पाँचों वाचनाओं की पाण्डुलिपियाँ काश्मीरी रंगावृत्ति की वंशज–प्रतियाँ ही हैं! काश्मीर की रंगावृत्ति के पाठ में ही, अनुगामी काल के सभी रंगकर्मियों ने पुनः पुनः संशोधन करके, अपनी अपनी रंगावृत्ति का पाठ बनाया है, जो इस नाटक की आज उपलब्ध हो रही सैंकड़ों पाण्डुलिपियों में संचरित हुआ है। तथा उन्हीं पाठों की, प्रतिलिपिकरण परम्परा से पैदा हुई, पाण्डुलिपियाँ आज हमें मिल रही हैं। अत एव, प्रस्तुत ग्रन्थ को "अभिज्ञानशकुन्तला नाटक की पाँच रंगावृत्तियाँ" ऐसा शीर्षक दिया गया है।

[4]

पाँच वाचनाओं के पाठ में "रंगावृत्तियों के (ही) पाठ हैं" इस मत के साधक-प्रमाणः– इस नाटक की सभी वाचनाओं में प्राप्त हो रहे पाठान्तरों का विश्लेषण किया जाय तो, बहुशः पाठान्तरों का सम्बन्ध रंगकर्म के साथ जुड़ा हुआ दिखता है। तथा बहुत अल्प मात्रा में ऐसे पाठान्तर मिलते हैं कि जिनका सम्बन्ध काव्यगत सौन्दर्य को बढ़ाने/ बदल देने के साथ है। अतः सब से पहले यह सोचना चाहिए कि हम किसे "रंगावृत्ति" कह सकते हैं? कवि कालिदास के मतानुसार

1. डॉ. रिचार्ड पिशेल सम्पादित बंगाली समीक्षितावृत्ति के पृष्ठ– 83 एवं 86, उसी तरह से डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल द्वारा सम्पादित बंगाली पाठ में भी पृष्ठ– 319 एवं 324 में उपर्युक्त असावधानी प्रकट है।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

"आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्" कहने वाले सभी सूत्रधारों के द्वारा कविप्रणीत "अभिनेय काव्य" में प्रयोग-लक्षिता से प्रेरित होकर जो परिवर्तन किये जाते हैं- उनका जिसमें संग्रथन हुआ हो ऐसा पाठ प्रस्तुत करनेवाली आवृत्ति को रंगावृत्ति कहते है।। इस दृष्टि से, रंगाय=रंगकर्मण: कृते केनापि सूत्रधारेण संशोधिता संग्रथिता च या आवृत्तिः, सा रंगावृत्तिरित्युच्यते।। कविप्रणीत मौलिक पाठ की प्रतिलिपिभूत पाण्डुलिपियों में संचरित हुआ पाठ मुख्य रूप से वाचिकाभिनय के लिए उपयोग में लिया जाता है। इस वाचिक पाठ्यांश को ही भरत मुनि ने "वाचि यत्नस्तु कर्तव्यो नाट्यस्यैषा तनुः स्मृता" (14-2) कहा है। यह पाठ्यांश नाटक की भित्ति होती है, जिस पर अन्य आङ्गिक, आहार्यादि अभिनय अवलम्बित होते हैं, अवतरित होते हैं। अतः नाट्यप्रयोग में उसीका मूल्य प्रथम पंक्ति में परीक्षणीय बनता है। कविप्रणीत इस वाचिकांश में कांट-छांट करके, कुत्रचित् नवीन पाठभेद एवं काकु-परिवर्तनादि करके प्रत्येक सूत्रधार अपनी प्रतिभा एवं मंचनकौशल के अनुसार वाचिकाभिनय को अधिक सशक्त एवं प्रभावी बनाता है। इन सूत्रधारों के द्वारा नाट्यप्रयोग के लिए जो पाठ तैयार किया जाता है उसको "रंगावृत्ति" कहते हैं। किन्तु यह भी ध्यातव्य है कि जब सूत्रधार किसी दृश्य की मंचन-प्रस्तुति भी बदल देता है तो, नाटक के वाचिकांश में भी कदाचित् परिवर्तन करना आवश्यक होता है। मंचन-प्रस्तुति में रंगसूचनाएँ, रंगसज्जा, वेषभूषा-आदि का भी समावेश होता है, जिन्हें भी शब्दबद्ध करना होता है। एवमेव, वाचिकांश में उल्लिखित विचार, व्यक्ति एवं जीव-जन्तुओं के नामों, तथा प्राकृत के स्वरूप में भी मंचन के स्थल-काल के अनुरूप परिवर्तन या नवीनीकरण अनिवार्य हो जाता है। मंचन के हर मौके पर होनेवाले इस तरह के बहुविध परिवर्तनों की हकीकत जब नाटक के पाठ्यांश में प्रतिबिम्बित होती हैऔर उसी की एक पाठपरम्परा बनती है, तो वह एक "रंगावृत्ति" (stage script) के सिवा और कुछ नहीं होती है। इस अवधारणा (concept) को ध्यान में रखते हुए, इस नाटक की पाण्डुलिपियों में संचरित हुए पाठ को "रंगावृत्ति का पाठ" कहने के क्या क्या प्रमाण हैं? यह सब से पहले विवेचनीय बिन्दु बनता है:-

प्रथम-प्रमाण, नाट्योक्तियाँ एवं रंगसूचनाएँ : कविप्रणीत नाट्यकृति के पाठ्यांश में दी गई "प्रकाशम्", "आत्मगतम्", "जनान्तिकम्", "अपवार्य" जैसी रंगसूचनाओं से कौन सी उक्ति (संवाद /dialogue) किस स्वरूप में नट या नटी को प्रस्तुत करनी है? उसका मार्गदर्शन हम प्राप्त कर सकते हैं। "निष्क्रम्य, प्रविश्य", "नेपथ्याभिमुखम् अवलोक्य", "परिक्रम्य", "इति रोदिति", "इति मूर्च्छति" जैसी रंगसूचनाओं से रंगमंच पर नट को कैसा आङ्गिकाभिनय करना है? वह भी कवि के पाठ से हम जान सकते हैं। एवमेव, "ततः प्रविशति रथारूढो राजा, सूतश्च", "जलसेचनं नाटयति" जैसी रंगसूचनाओं से दृश्यविशेष की प्रस्तुति भी कैसे करनी हैं वह जान सकते हैं। किन्तु यह तभी सम्भव है कि जब एक ही नाट्यकृति की उपलब्ध हो रही सभी पाण्डुलिपियों में इस तरह की रंगसूचनाएँ सर्वत्र एक समान मिलती हों, तथा उनकी संख्या भी सर्वत्र एक समान हो। ऐसी स्थिति में ही हम मान सकते हैं कि ये सभी पाण्डुलिपियाँ कविप्रणीत मूल पाठ की ही (समान वंशज) प्रतिलिपियाँ होगीं। परन्तु इस नाटक की पाण्डुलिपियों में तो रंगसूचना-सम्बन्धी एकरूपता मिलती ही नहीं हैं। जैसे कि- "आत्मगतम्" के साथ में कुत्रचित् "स्वगतम्" भी मिलता है और "जनान्तिकम्" के स्थान में कभी "अपवार्य" भी मिलता है। एवमेव, एक स्थान में जिसको "प्रवेशक" कहा गया है, उसी को दूसरी पाठपरम्परा में "विष्कम्भक" कहा गया है। अतः इस नाटक की पाण्डुलिपियों को हम "कविप्रणीत पाठ की (ही)प्रतिलिपियाँ" नहीं मान सकते हैं। आज उपलब्ध हो रही पाण्डुलिपियों के पाठ में, मंचन-विषयक इन रंगसूचनाओं में विसंवादिता एवं विसंगतियों को देख कर लगता है कि कवि के मूल पाठ में अनेक अज्ञात रंगकर्मियों ने हस्तक्षेप किया होगा। इन रंगसूचनाओं को यदि प्रथम प्रमाण माना जाय तो, इस नाटक की पाँचों वाचनाओं के पाठों को 'रंगावृत्तियों के पाठ' ही कहना होगा।।

द्वितीय-प्रमाण, श्लोक-संख्या विषयक विवादः किसी एक नाट्यकृति की सभी पाण्डुलिपियों में यदि समान संख्या में एवं समान शब्दावली में श्लोक मिलते हों तो भी हम मान सकते हैं कि इन प्रतिलिपिभूत पाण्डुलिपियों के माध्यम से कविप्रणीत मूल पाठ की परम्परा हम तक पहुँची है। किन्तु अभिज्ञानशकुन्तला नाटक की आज उपलब्ध हो रही पाण्डुलिपियों में ऐसा बिलकुल नहीं है। विभिन्न पाण्डुलिपियों के पाठ की तुलना करने से स्पष्ट होता है कि इस नाट्यकृति के गेय/ पद्य पाठ्यांश में श्लोक-संख्या कम-ज्यादा दिख रही है। इससे असंदिग्धतया सिद्ध होता है कि इन पाण्डुलिपियों में अलग अलग नटमण्डलियों की ही पाठ-परम्परा संचरित हुई है। क्योंकि प्रदेशविशेष के तत्-तत्कालिक सामाजिकों की रुचि को ध्यान में

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

लेकर भी अमुक प्रकार के (हास्य या शृङ्गार) रसनिष्पादक श्लोकों को प्रक्षिप्त किये जाते हैं, या हटाये जाते हैं।। (इसके लिए द्रष्टव्य है:- परिशिष्ट-3 एवं 4)

नाटक की द्विविध इयत्ताः- कदाचित् अल्पसमयावधि में ही पूरे नाटक का मंचन करने की आवश्यकता होने पर, नाटक के कविप्रणीत मूल पाठ में कटौती की जाती है। अथवा शृङ्गारप्रधान इस नाटक के मूल पाठ में, अश्लीलता-पूर्ण कुछ श्लोकों का प्रक्षेप बहुत आरम्भिक काल में ही हुआ है ऐसा लगता है। (इसके लिए द्रष्टव्य है:-परिशिष्ट-3) अभिज्ञान-शकुन्तला नाटक की वर्तमान पाण्डुलिपियों में ये दोनों ही स्थितियाँ बहुत प्रकट रूप से देखी जा सकती हैं।

तृतीय-प्रमाण, उक्ति-संख्या एवं उक्ति-स्वरूप: किसी भी नाट्यकृति के गद्य भाग (वाचिकाभिनय के लिए अनिवार्य मानी गई गद्य-उक्तियाँ, संवादों की माला) को लेकर भी उपलब्ध हो रही पाण्डुलिपियों का तुलनात्मक परीक्षण करना चाहिए। क्योंकि कवि ने यदि किसी वाक्य को मूल में सकारात्मक भाव में लिखा होगा, तो हो सकता है कि किसी नटमण्डली ने उसे नकारात्मक या प्रश्नार्थक या आश्चर्यजनक बना कर भी मंचन के दौरान प्रस्तुत किया हो। वाचिकाभिनय के विषय में बहुशः ऐसा देखा जाता है:- (क) द्वितीयांक में से विदूषक की उक्ति को लीजिए:-1. काश्मीरी पाठ में, यदा तावत् सा तापसकन्यकाऽप्रार्थनीया, तत् किं तया दृष्टया।, 2. मैथिली एवं बंगाली पाठों में- भोः, यतः तावत् सा तपस्विकन्यका अनभ्यर्थनीया, ततः किं तया दृष्ट्या।, 3. दाक्षिणात्य पाठ में, भो वयस्य, अद्य तापसकन्यका किमभ्यर्थनीया दृश्यते?!।, तथा 4. देवनागरी पाठ में-, भो वयस्य, ते तापसकन्यकाऽभ्यर्थनीया दृश्यते! (ख) तृतीयांक में, सखियों ने दुष्यन्त को मदनलेख लिख कर भेजा जाय- ऐसा सुझाव दिया। लेकिन इस विषय में शकुन्तला की क्या सोच है? वह भी जानना आवश्यक है। तब शकुन्तला के मुख में जो वाक्य है- उसके लिए विविध पाठान्तर द्रष्टव्य है। 1. काश्मीरी पाठ में, नियोगोऽपि विकल्प्यते। (आज्ञा में भी क्या विकल्प होता है।), 2. मैथिली पाठ में, सखीनियोगोऽपि विकल्प्यते। (सखियों की आज्ञा भी वैकल्पिक होती है!), 3. दाक्षिणात्य पाठ में, किं नियोगोऽपि विकल्प्यते। (आज्ञा में भी विकल्प को स्थान होता है।), 4. देवनागरी पाठ में, को नियोगो विकल्प्यते। (ऐसी कौन सी आज्ञा है कि जिसमें विकल्प होता है?)। अभिज्ञानशकुन्तला नाटक की विभिन्न पाण्डुलिपियों में ऐसे दूसरे भी अनेक वाक्य हैं कि जिनमें सकारात्मक वाक्य को नकारात्मक या प्रश्नार्थक के रूप में परिवर्तित किया गया है। वाचिकाभिनय में काकुभेद का महत्त्व होता है। कविप्रणीत मूल पाठ का यथावत् अनुसरण करके जो प्रतिलिपियाँ बनायी जाती हैं, उनमें ऐसा भेद नहीं मिल सकता है। किन्तु इस नाटक की हमें उपलब्ध हो रही आज की सभी पाण्डुलिपियों में एक ही गद्य वाक्य बहुविध स्वरूप में मिलता है। एवमेव, एक व्यक्ति के द्वारा उच्चरित होने वाला वाक्य कदाचित् कुत्रचित् दो व्यक्तियों के मुख में विभक्त किया गया भी दिखता है। अथवा एक व्यक्ति से उच्चरित होने वाला वाक्य दो व्यक्ति मिल कर साथ में बोलते हैं। वाचिकाभिनय के साथ जुड़े ऐसे पाठान्तरों को केवल रंगावृत्ति होने के प्रमाण/परिचायक ही मानना होगा।।

चतुर्थ-प्रमाण, प्राकृतभाषा विषयकः संस्कृत नाटकों में स्त्री-पात्र, विदूषक, दास-दासी जैसे निम्न कोटि के पात्र प्राकृत भाषा में व्यवहार करते हैं। कालिदास ने भरत के नाट्यशास्त्र के नियमों का प्रायः परिपालन किया होगा। तदनुसार उनके नाटकों में शौरसेनी प्राकृत का विनियोग होना अपेक्षित है। लेकिन उपलब्ध हो रही पाण्डुलिपियों में तो शौरसेनी (आर्य का अय्य) से लेकर महाराष्ट्री प्राकृत (आर्य का अज्ज) तक का वैविध्य दिख रहा है। इसी तरह से कृत्वा के लिए कदुअ और करिअ जैसे दोनों ही रूप मिलते हैं। तथा देशी शब्दों के प्रयोगों को निरस्त किये गये हैं। एवं तादर्थ्ये चतुर्थी विभक्ति के रूपों में भी परिवर्तन करके, उसके स्थान में षष्ठी विभक्ति का प्रवर्तन किया गया है। (द्रष्टव्यः- परिशिष्ट-2) एवमेव, आर्या छन्द में लिखी गई प्राकृत गाथाओं में भी नित्य परिवर्तन[1] होता रहा है।। अतः वाचिकाभिनय में भेद पैदा करने वाले इन प्राकृत भेदों को देख कर भी कहना ही पड़ेगा कि अभिज्ञानशकुन्तला नाटक का पाठ विभिन्न रंगावृत्तियों के रूप में ही संचरित हो कर हम तक पहुँचा है।।

---

1. उदाहरणतया प्रस्तावना में नटी-गीत की आर्या, तृतीयांक में मदनलेख की आर्या, षष्ठांक में उद्यानपालिका की आर्या द्रष्टव्य हैं। इनमें पाठभेद करके पथ्या आर्या को गीति में भी परिवर्तित की जाती है। इत्यादि।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

पञ्चम प्रमाण के रूप में, एक ही दृश्य की रंगसज्जा एवं वेशभूषा (आहार्याभिनय) सम्बन्धी रंगसूचनाओं का भी तुलनात्मक अभ्यास करना उपकारक सिद्ध होगा। क्योंकि इसका तो सीधा सम्बन्ध रंगकर्मियों के साथ ही होता है। जैसे कि, (क) रंगमंच पर "वनपुष्पों की माला धारण किया हुआ राजा दुष्यन्त" आता है, कि "वनपुष्पों की माला धारण करनेवाली यवनिकाओं से परिवृत्त राजा दुष्यन्त" रंगमंच पर आता है? इसकी परीक्षा की जाएगी तो मालूम होगा कि इन पाण्डुलिपियों में एकरूपता नहीं हैं। (ख) कण्वाश्रम के प्राङ्गण में दो वृक्ष और दो लताएँ थी, या फिर एक वृक्ष एवं दो लताएँ थीं, या दो वृक्ष एवं एक ही लता थी?! प्रथम अङ्क की रंगसज्जा को लेकर प्राप्त हो रहे पाठभेदों से ऐसी आशङ्काएं पैदा होती हैं। (ग) षष्ठाङ्क में आनेवाली मेनका की अप्सरा-सखी के नाम त्रिविध मिल रहे हैं : अक्षमाला, मिश्रकेशी तथा सानुमती। इन नामान्तरों का सम्बन्ध अप्सरा का पात्र अभिनीत करनेवाली नटी की वेशभूषा (आहार्याभिनय) के साथ ही है- यह निर्विवाद है।।

षष्ठ प्रमाण किसी दृश्य की मंचनविधाएँ यदि अलग अलग तरह की मिलती है तो वह भी रंगावृत्तियों का ही वैविध्य घोषित कर रही हैं। जैसे कि, तृतीय अंक के आरम्भ में कहा गया है कि नायिका शकुन्तला कुसुमास्तरण पर लेटी हुई है। लेकिन लेटी हुई शकुन्तला कब तक लेटी रहती है? उस दृश्य का तुलनात्मक अभ्यास करते हैं तो मालूम होता है कि- 1. कहीं पर नायिका अन्त तक (दोनों सहेलियों के चली जाने के बाद भी) लेटी रहती है, और जब दुष्यन्त "अंके निधाय चरणावुत पद्मताम्रौ संवाहयामि करभोरु यथासुखं ते" कहता है, तब "अवस्थासदृशमुत्थाय गच्छति" की रंगसूचना मिलती है।, 2. कहीं पर लेटी हुई अवस्था में ही वह मदनलेख लिखती है, और जब मदनलेख के शब्दों को सुन कर राजा सहसा मंच पर आ जाता है, तथा अनसूया उसे शिलातल के एकदेश में बैठने को कहती है तब शकुन्तला "सलज्जा तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से खड़ी हो जाती है।, 3. कहीं पर राजा के मंच पर आने से पहले ही, मदनलेख लिखने के लिए "आसीना / उपविष्टा चिन्तयति" की रंगसूचना से बैठा दी जाती है और जब राजा को शिलातल पर बिठाया जाता है, तब वह सलज्जा खड़ी हो जाती है। इन वाचनाओं में एक ही दृश्य की त्रिविध मंचन-विधाएँ प्राप्त होना- एक ऐसा असंदिग्ध प्रमाण है कि जिसको देख कर सभी पाठकों और आलोचकों को मानना होगा कि रंगकर्मियों के द्वारा समयान्तर में एक ही दृश्य की प्रस्तुतियाँ बार बार परिवर्तित की जा रही है- इनके यह प्रकट प्रमाण हैं।।

सप्तम-प्रमाण दृश्यावली के क्रमांक से जुड़ा है। यदि इस नाटक की आज उपलब्ध होनेवाली सभी पाण्डुलिपियों में दृश्य-क्रमांक सर्वत्र एक समान ही मिलता हो, तो हम निश्चित रूप से कह सकेंगे कि ये पाण्डुलिपियाँ कविप्रणीत मूल पाठ की ही वंशज प्रतिलिपियाँ हैं। लेकिन ऐसा नहीं है। उदाहरणतया पञ्चम अङ्क के आरम्भिक दृश्य में "पहले कञ्चुकी की उक्ति आयेगी?", या फिर "हंसपदिका के गीत से ही पहले दृश्य का आरम्भ होगा?"अथवा वैतालिकों के गान का क्रम हंसपदिका के गीत से पूर्व में है या उसके पश्चात् है? इस तरह के प्रश्न को लेकर तुलनात्मक अभ्यास किया जाएगा तो, तीन तरह की योजनाएँ इन पाण्डुलिपियों में प्रवर्तमान हैं ऐसा दिखेगा। न केवल दृश्य-क्रमांक, दृश्य-संख्या की दृष्टि से तुलनात्मक अभ्यास करेंगे तो भी तुरंत मालूम होगा ही कि इनमें भी एक रूपता नहीं है। जैसे कि, तृतीयांक में दो दृश्य ऐसे है कि जो बृहत्पाठवाली वाचनाओं में सुरक्षित है, लेकिन लघुपाठवाली वाचनाओं में वे अनुपलब्ध है।

अष्टम-प्रमाण विभिन्न कालखण्डों के प्रेक्षकों के कौतुक-विशेष का शमन करने के लिए कुत्रचित् नवीन पाठान्तरों का संनिवेश किया गया है। जैसे कि, (1) कण्वाश्रम में रहनेवाली आर्या गौतमी कौन है?। कवि ने तो इस विषय में मौन धारण किया है। लेकिन काश्मीर प्रदेश के रंगकर्मियों ने शकुन्तला के मुख से उसे 'तातस्य धर्म-कनीयसी' (धर्म की मानी हुई छोटी भगिनी) कहलाया है। (2) दुर्वासा के शाप के कारण दुष्यन्त शकुन्तला का प्रत्याख्यान कर दे- ऐसा पौराणिक कथाओं में हो सकता है। लेकिन आधुनिक प्रेक्षक उस भोली शकुन्तला की विवशता (निःसहायता यानी लाचारी को) देखना पसंद भी नहीं करेगा। तब उसके मुँह में "क्या आप पुरुष लोग ही धर्म को जाननेवाले होते हैं? और लज्जा से पराभूत महिलाओं को धर्म क्या होता है, वह नहीं समझ में आता है?।" ऐसे प्रश्न भी काश्मीर एवं मिथिला के रंगमंच पर प्रस्तुत हुए हैं। (3) शकुन्तला के मन में अपना प्रत्याख्यान करने के लिए दुष्यन्त के प्रति जो कडवापन आया होगा, उसका क्या हुआ?। तो मैथिली रंगकर्मियों ने अप्सरा मिश्रकेशी के मुख में एक नया वाक्य जोड़ दिया है:-सर्वथा वयस्य, प्रमार्जितं त्वया

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रत्यादेशदुःखं प्रियसख्याः शकुन्तलायाः, प्रत्यक्षमेव सखीजनस्य। (4) तथा कदाचित् कवि की अभिज्ञान-विषयक मूलयोजना पर ही अरुचि दिखानेवाली टिप्पणी भी मिश्रकेशी के मुख में रख दी हैः-अथवा न ईदृशोऽनुराग अभिज्ञानमपेक्षते। इन स्थानों को देख कर लगता है कि कवि कालिदास के कथा-प्रवाह में जहाँ पर प्रेक्षकों को कुछ मनभावन विचार सुनने को नहीं मिलते हैं, उसे रंगकर्मियों के माध्यम से ठीक करने की भी कोशिश की गयी है।

नवम-प्रमाण यह भी है कि (क) नाटक का प्रतिपाद्य (प्रदर्श्य) विषयवस्तु क्या है? इस तरह की जिज्ञासा से प्रेरित होकर, इस नाटक का जो शीर्षक इन पाण्डुलिपियों में दिये गये हैं, उनकी परीक्षा करेंगे तो मालूम होगा कि वह भी तीन तरह का है! (सभी संस्कृतज्ञों को इस विषय की जानकारी भी नहीं है।) काश्मीरी पाठ में कहा गया है कि यह "अभिज्ञानशकुन्तला नाटक" है, तो मैथिली एवं बंगाली पाठों में उसका शीर्षक "अभिज्ञानशकुन्तलम्" लिखा गया है, तथा दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाण्डुलिपियों में उसी नाटक का शीर्षक "अभिज्ञानशाकुन्तलम्" दिया गया है। यहाँ, त्रिविध शीर्षकों से विभिन्न कालखण्डों में अलग अलग काव्यार्थ-बोध कराने का गर्भित आशय सुनिहित है।।

दशम प्रमाण है चरित्रचित्रण में वैविध्य : नायक दुष्यन्त को आश्रमकन्याओं ने प्रियवयस्य या वयस्य शब्दों से सम्बोधित किया है। लेकिन बंगाली रंगकर्मियों ने उसको "महाराज" बनाया है। काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली पाठों में नायिका शकुन्तला को "मुनिसुता" कही है। लेकिन दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने उसी मुनिकन्या को राजर्षिकन्या बनाई है। एवमेव, चतुर्थांक में उसे "ऋषिपरिगृहीताम्" में से "राजर्षि-परिगृहीताम्" भी बनायी है। (अर्थात् महर्षि कण्व की कन्या से राजर्षि विश्वामित्र की कन्या बनाई है।) इस तरह के पाठभेदों के कारण नायक-नायिका की व्यक्तिरेखा ही पूरी बदल जाती है और नैसर्गिक तपोवन में हुए प्रणय-प्रसंगवाले इस नाटक को राज-दरबारी नाटक का मुखौटा पहनाया जाता है।

प्रचलित वाचनाओं के पाठों को "रंगावृत्ति का पाठ" कहने के लिए रस-विषयक प्रमाण भी होना आवश्यक है, जो **ग्यारहवाँ प्रमाण** होगा। यदि कविप्रणीत मूल पाठ की ही प्रतिलिपियों के रूप में आज की पाण्डुलिपियाँ होतीं तो उनमें शृङ्गार रस का अखण्ड एवं अनवद्य निरूपण सर्वत्र एक समान होना अपेक्षित है। लेकिन यह विचारणीय हकीकत है कि ऐसा भी नहीं है! एक काश्मीरी-पाठ है, जिसमें दुष्यन्त की पूर्वपरिणीता रानी कुलप्रभा की ओर से राजा के नवीन प्रेम-प्रसंग में कोई बाधा नहीं डाली जाती। रानी कुलप्रभा किसी तरह की स्पर्धा में नहीं आती है। मतलब कि वह ईर्ष्या-कषायिता नहीं होती है। दूसरा मैथिली-पाठ है, जिसमें (षष्ठांक में) राजा के लिए वर्तिका-करण्डक ले जा रही मेधाविनी नामक दासी के हाथ में से रानी वसुमती ही उसको छीन लेती है। वह स्वयं उसे राजा के पास पहुँचाने का सोचती है। यहाँ आलिखित किये गये प्रसंग के कारण एक क्षण के लिए प्रेक्षकों को आशङ्का होती है कि राजा की पूर्वपरिणीता रानी निश्चित रूप से ईर्ष्या-कषायिता हुई है। यदि ऐसा हुआ है तो, जब शकुन्तला इस राजमहल में पटरानी होकर बैठेगी, तब उसे निरंतर राजा का पूर्ण प्रेमास्वाद मिलने वाला नहीं है। क्योंकि उसके साथ स्पर्धा करने के लिए पूर्वपरिणीता रानी वसुमती सक्रिय है। जिसके कारण नाटक के अन्त में जब सामाजिक प्रेक्षागार से बाहर निकलेंगे तब उनके मन में भी पूर्ण अखण्ड शृङ्गार रस व्यञ्जित नहीं होगा। आज उपलब्ध हो रही पाण्डुलिपियों में ऐसे शृङ्गार रस का द्विधा निरूपण होने के कारण कहना पड़ेगा कि हमारे हाथों में अनेक प्रदेशों के अज्ञात रंगकर्मियों के द्वारा बार बार परिवर्तित किया गया पाठ (अर्थात् रंगावृत्ति का पाठ) ही पहुँचा है।।

बारहवाँ-प्रमाण है पात्रों के नामों में मिल रहें पाठभेदः- नायक दुष्यन्त के नामान्तर दुःषन्त, दुष्मन्त, दुष्वन्तादि मिलते हैं। एक ही रानी का नाम वसुमती भी है और कुलप्रभा भी है। शकुन्तला की सहेली अनसूया का दूसरा नाम अनुसूया भी मिलता है। इस तरह से पात्रसृष्टि के अन्य नामों में भी विकृतियाँ एवं वैविध्य मिलता है। केवल नायिका शकुन्तला के नाम को छोड़ कर, प्रायः अन्य सभी पात्रों के नामों में पाठभेद उपलब्ध होते हैं। (द्रष्टव्यः-परिशिष्ट-1)

तेरहवें प्रमाण के रूप में, इन पाठों में जो स्थानीय वस्तुओं एवं जीव-जन्तुओं के नामों में भी परिवर्तन परिलक्षित हो रहे हैं, उन्हें देखना चाहिए। जैसे कि, (1) काश्मीरी पाठ में "चिह्नांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य।" के सामने मैथिली पाठ में "चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य" ऐसा पाठभेद किया गया है। चीनांशुक के लिए टीकाकार काटयवेम लिखते है कि चीनांशुकं नाम चीनदेशप्रभवो वस्त्रविशेषः। (पृ. 32) (2) काश्मीरी पाठ में विदूषक "मज्जारगिहीदो विअ उन्दुरो

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

णिरासो म्हि जीविदे संवुत्तो" कहता है, तो उसके सामने दाक्षिणात्य पाठ में "बिडालगहीद मूसओ विअ णिरासो म्हि जीविदे संवुत्तो" बोलता है। एवमेव, ऋक्ष का तद्भव रिच्छ (रीछ) शब्द भी कहीं मिलता है, तो कहीं पर भल्लुक शब्द (भालू) भी मिलता है। (3) राजा की दासी "मेधाविनी" और रानी वसुमती की दासी "पिङ्गलिका" को कालान्तर में "चतुरिका" एवं "तरलिका" में परिवर्तित किया गया है। (4) नाटक के आरम्भ में राजा को चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त होने का आशीर्वाद दिया जाता है, तब काश्मीरी पाठ में राजा प्रणामपूर्वक बोलता है कि "प्रतिगृहीतं तपोधनवचनम्", लेकिन साहसाङ्क चन्द्रगुप्त-2 के समय में, (4-5वी शती के गुप्तवंशीय राजाओं के समय में) जब फिर से ब्राह्मण संस्कृति का महत्त्व उजागर हुआ था तब, राजा के मुख से "गृहीतं ब्राह्मण-वचनम् अस्माभिः" ऐसा प्रत्युत्तर निकलता है। इसी पाठान्तर का बंगाल में एवं दाक्षिणात्य प्रदेशों में भी अनुसरण दिख रहा है। किन्तु कालान्तर में, देवनागरी पाठवाली रंगभूमि पर राजा प्रणामपूर्वक केवल "प्रतिगृहीतम्" इतना ही बोलता है। (5) इसी तरह से भरतवाक्य में "सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम्", एवं "सरस्वती श्रुतिमहतां महीयताम्", तथा "सरस्वती श्रुतमहतां महीयताम्" जैसे बहुविध पाठभेदों में भी अलग अलग प्रदेशों के रंगकर्मियों की भावनाएँ प्रतिबिम्बित हो रही हैं। (6) ऐसा ही षष्ठांक के धीवर-प्रसंग में काश्मीरी पाठ कहता है कि "पशुमालक-कम्म दालुणे अणुकम्पामिदु एव सोत्तिए"। यहाँ "श्रोत्रिय" शब्द है। मैथिली पाठ में "पशुमालि कलेइ कालणा छक्कम्मा विदुवे शोत्तिके" इन शब्द रखे गये हैं। यहाँ काश्मीरी पाठ के "अनुकम्पामृदु" शब्द को बदल कर, "छक्कम्मा" (षट्कर्मा) श्रोत्रिय को उपस्थित किया गया है। तथा बंगाल की रंगभूमि पर "पशुमालिं कलेदि दालुणं अणुकम्पामिदुले वि शोणिके" शब्दों का प्रयोग होता है। इसमें "श्रोत्रिय" के स्थान में "सौनिक" (कसाई) को उपस्थित किया गया है। (मतलब कि बंगाल के रंगकर्मियों ने यज्ञक्रिया के दौरान पशुघातक श्रोत्रिय ब्राह्मण को दोषमुक्त दिखाने के लिए "सौनिक" शब्द को रख दिया है। किन्तु सौनिक को कैसे "अनुकम्पामृदु" कहना उचित होगा? वह नहीं सोचा!) इन दोनों ही प्रदेशों की रंगभूमि पर ब्राह्मण को बचाने की चेष्टा साफ साफ दिख रही है। अतः उनमें कालिदासीय पाठ को ढूँढने की चेष्टा करने से बेहतर / पहले, यही कहना समुचित होगा कि ये सब "प्रदेशविशेष की रंगावृत्तियों के ही पाठान्तर" हैं।।

चौदहवाँ प्रमाण : समीक्षकों के द्वारा यदि यह नाटक सर्वोत्तम माना गया है तो उसकी वस्तुसंकलना में कोई क्षति, दोष या संदेहास्पद स्थान नहीं होना चाहिए। साहित्य-रसिकों की परम्परा में कालिदास को कविकुलगुरु का बिरुद भी दिया गया है, इस लिए भी उसका याथार्थ्य सदैव बना रहना चाहिए। किन्तु वर्तमान में उपलब्ध हो रहे सभी पाठ रंगावृत्ति के ही हैं- इस लिए उनमें अनेक स्थानों पर वस्तुसंकलना से जुड़ी क्षतियाँ भी दिख रही हैं, जिसके कारण कालिदास का महाकवित्व एवं कविकुलगुरुत्व संशयग्रस्त हो रहा है। जैसे कि, 1. दुष्यन्त के द्वारा शकुन्तला के हाथ में पहनाई गई अंगूठी, (नामाक्षरों की गिनती के लिए दी गई थी, वह) किस निमित्त से और कब अनसूया के हाथ में चली गई?। यह प्रश्न अनुत्तरित रहता है। (अनसूया जानती थी कि अभिज्ञानाभरण से ही शापमुक्ति होने वाली है, इस लिए उसने ही वह अंगूठी ले ली होगी- ऐसी कल्पना हमें करनी पड़ती है)। तथापि यह प्रश्न तो बना रहता है कि शकुन्तला ने अपने प्रियतम का स्मृतिचिह्न अनसूया को देने की सहमति कैसे दी होगी?। यहाँ ऐसा भी प्रश्न होता है कि पतिगृह की ओर प्रस्थान करते समय स्वयं शकुन्तला को वह अंगूठी क्यूं याद नहीं आई?। इत्यादि शंकाओं का समाधान देने का सामर्थ्य वर्तमान पाठों में कहीं पर नहीं है। 2. षष्ठांक में, राजा विदूषक से पूछता है कि क्या वह भी दुष्यन्त की तरह शकुन्तला-वृत्तान्त को भूल गया था? तो उसने कहा है कि वह कुछ भूला नहीं था। तो फिर, प्रश्न होता है कि शकुन्ताल-प्रत्याख्यान के बाद, (हंसपदिका के आवास से वापस लौटते ही, तुरंत) राजा ने विदूषक को क्या कुछ कहा ही नहीं था?। दुष्यन्त को तो बहुत दिनों के बाद होनेवाले धीवर-प्रसंग से ही स्मृतिलाभ होता है। यहाँ उठाया गया प्रश्न बंगाली रंगकर्मियों को भी हुआ होगा ऐसा लगता है। क्योंकि उन्होंने इसी स्थान पर दुष्यन्त की उक्ति में नये पाठान्तर को जन्म दिया है। ऐसा नया पाठभेद इसी बात का द्योतक है कि वर्तमान पाठ में कुछ स्थान अनुत्तरित रहते हैं। अतः उपलब्ध पाठों को रंगावृत्ति का पाठ मानने की विवशता खड़ी होती है। इस तरह से कुत्रचित् वस्तुसंकलना विषयक क्षतियाँ विचक्षण रंगकर्मी, प्रेक्षक एवं पाठक को खटकती है। जिनसे लगता है कि यह (=उपलब्ध हो रहे सभी पाठ) कवि-प्रणीत मूल पाठ नहीं हो सकते हैं। (रंगकर्मियों द्वारा परिवर्तित किया पाठ ही हमारे सामने होने से ऐसी क्षतियाँ आकारित हुई होंगी।) सारांशतः वस्तुसंकलना सम्बन्धी क्षतियाँ भी एक विशेष प्रमाण है, जो हमें ऐसा

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

मानने को बाध्य करती है कि आज उपलब्ध हो रहे पाँचों पाठ रंगावृत्ति के ही पाठ हो सकते हैं।।

अद्यावधि प्रकाशित हुई पाँचों (तथाकथित) वाचनाओं के पाठों का तुलनात्मक अध्ययन करने से, हमें जो उपर्युक्त चौदा (14) प्रमाण मिले हैं, उन पर यह अभिप्राय खड़ा है कि इस नाटक की एक भी वाचना के पाठ में या एक भी उपलब्ध पाण्डुलिपि में कविप्रणीत मूलपाठ की पूर्ण एवं अक्षुण्ण परम्परा प्रतिबिम्बित नहीं हुई है। शारदा, मैथिली, बंगाली, ग्रन्थ, तेलुगु, नन्दी-नागरी, मळयालम या देवनागरी जैसी विभिन्न लिपियों में लिखी गई सैंकड़ों पाण्डुलिपियों के माध्यम से जो भी हम तक पहुँचा है, वह किसी न किसी नट-मण्डली की रंगावृत्ति का ही पाठ है। हमारा पक्का विश्वास है कि रंगावृत्तियों के ऐसे पाठों का ऐतिहासिक दृष्टि से किया गया तुलनात्मक अभ्यास ही हमें प्राचीनतम एवं सम्भवतः कविप्रणीत मूल पाठ के निकट पहुँचने में सहायता करेगा।।

पुरातत्त्वीय / दस्तावेजीय प्रमाणों के अभाव में, पाँचों रंगावृत्तियों का तुलनात्मक अभ्यास भी कैसे किया जाय? ऐसा प्रश्न किसी को भी हो सकता है। क्योंकि तुलनात्मक अभ्यास के लिए पहले तुलनीय ग्रन्थों की आनुक्रमिकता तो हमारे सामने होनी ही चाहिए। किन्तु निश्चिंत इतिहास जब अनुपलब्ध है, तब तर्कसिद्ध पौर्वापर्य के आधार पर किया गया तुलनात्मक अध्ययन भी विश्वसनीय परिणाम दे सकता है।।

डॉ. श्रीराधावल्लभ त्रिपाठी जी ने संस्कृत नाटकों के मंचन से जुडे कुछ अतिप्राचीन काल के अज्ञात या अल्पज्ञात सन्दर्भों को एकत्र करके "भारतीय नाट्य - स्वरूप और परंपरा" (1988) शीर्षकवाले, गागर में सागर भरनेवाले, महनीय ग्रन्थ को लिखा है। इसमें, श्रीहर्षदेव की रत्नावली नाटिका का वाराणसी में हुए मंचन का एक प्रसंग, जो 8वीं शती के दामोदर गुप्त ने "कुट्टनीमतं काव्यम्" में लिखा है, उसकी ओर उन्होंने हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। उपर्युक्त परामर्श लिखने के बाद, वह भाग्यवशात् देखने को मिला। इसको पढने से मेरे उपर्युक्त सकल परामर्श का सुदृढ समर्थन मिल गया! उपर्युक्त काव्य में एक नर्तकी / गणिका मंजरी का आख्यान (श्लोक 736 से 928) है, उसका डॉ. राधावल्लभ जी ने विश्लेषण करके, रत्नावली के उस मंचन के दौरान नटमण्डली ने जो छह-सात परिवर्तन किये थे, उनका विशदीकरण किया है। उनमें बताया है कि स्थान स्थान पर नवीन ध्रुवा गीतियाँ जोडी गई थी, जिसमें प्रावेशिकी ध्रुवाएँ भी थी और नैष्क्रामिक ध्रुवाएँ भी थी।संवादों में हेरा-फेरी की गई थी, किन्तु सभी संवादों को ज्यों का त्यों रखा गया था। उसमें तिरस्करिणी का प्रयोग भी ध्यानास्पद है। डॉ. श्रीराधावल्लभ जी लिखते हैं कि नाट्याचार्य (जो श्रीहर्ष की नाट्यशाला में रह चूका था[1]) उदाहरणतया प्रस्तावना में नटी-गीत की आर्या, तृतीयांक में मदनलेख की आर्या, षष्ठांक में उद्यानपालिका की आर्या द्रष्टव्य हैं। इनमें पाठभेद करके पथ्या आर्या को गीति में भी परिवर्तित की जाती है। इत्यादि।।) ने मूल नाटिका के प्रसंगों या संविधान में भी कहीं कहीं परिवर्तन किया था। रत्नावली के मूल आलेख में रानी वासवदत्ता स्वयं नायिका सागरिका से उद्यान से चले जाने के लिए कहती है, ताकि वह राजा के दृष्टिपथ में न आये। इस प्रस्तुति में रानी अपनी विश्वासपात्र चेटी कांचनमाला से कहती है कि सागरिका को किसी बहाने यहाँ से दूर भेज दो।[2] नाटक में यह एक सार्थक परिवर्तन है।। (भारतीय नाट्यः स्वरूप और परंपरा, पृ. 100) इसी तरह का परिवर्तन मैथिली रंगावृत्ति में हुआ है, जिसका अनुसरण प्रायः सभी वाचनाओं के पाठ में देखा जाता है- ऐसा मैंने इस ग्रन्थ में बताया है। मैथिली रंगकर्मियों ने परम्परागत काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ में गान्धर्वेण विवाहेन बह्वयो मुनि-कन्यकाः० श्लोक-सहित कुछ नवीन श्लोकों का प्रक्षेप करने के साथ, पूर्वपरिणीता रानी वसुमती का संघर्ष कल्पित करके उसका भी प्रक्षेप किया है। तथा रसभावविशेषदीक्षागुरु श्रीसाहसांक चन्द्रगुप्त-2, जो विक्रमादित्य विरुदधारी शकारि राजा था, उसकी राजसभा में उस नवीन रंगावृत्ति का मंचन करने का प्रकट शब्दों में निर्देश भी किया है।। अतः, नाट्यपरम्परा के मर्मोद्घाटक डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी जी ने जिस तरह से रत्नावली की रंगावृत्ति की ओर हमारा ध्यान

1. वयमपि देवनिकेतनमनङ्गहर्षे गते त्रिदशलोकम्। आश्रितवन्तोऽगत्या तीर्थस्थानानुरोधेन।। 799।।
इह तु कदाचित्किंचिद्वृत्तिनिरोधाभिशंकया निरुत्साहा। रत्नावल्यामेतां विदधातिकरपादविक्षेपम्।। 800।। कुट्टनीमतं काव्यम्। (दामोदर गुप्तेन प्रणीतम्), सं. जगन्नाथ पाठक, इलाहाबाद, 1961, (पृ. 167)

2. अथ दृष्ट्वा सागरिकां, प्रमादितां परिजनस्य निन्दित्वा। कांचनमालामवदन्नृपमहिषी जातसंक्षोभा।।910, प्रेषस्य कन्यामेनामवरोधं त्वं गृहाण कुसुमादि। यावन्न भवति विषये वीक्षणयोर्भूमिनाथस्य।। 911।। कुट्टनीमतं काव्यम्।, (पृ. 191)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

आकृष्ट किया है, उससे भी प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय सप्रमाण समर्थित हो रहा है।।

[5]

इस नाटक के विविध दृश्यों की परिवर्तन-यात्रा का आलेखन : इस नाटक की पाँच वाचनाओं का इयत्ता की दृष्टि से द्विधा विभाजन किया जाता है:- (क) बृहत्पाठवाली वाचनाएँ, जिनमें 1. काश्मीरी, 2. मैथिली तथा 3. बंगाली का समावेश होता है। (ख) लघुपाठवाली वाचनाएँ, जिनमें 4. दाक्षिणात्य एवं 5. देवनागरी वाचनाओं का समावेश होता है। इन पाँच वाचनाओं के वर्तमान स्वरूप (या अस्तित्व) के पीछे ही इस नाटक की परिवर्तन-यात्रा संगोपित होकर खड़ी है। अतः इन पाँच वाचनानुसारी सातों अंकों की विविध दृश्यावली में जिन परिवर्तनों को हमने पहचाने हैं, उनमें से कतिपय दृश्यों का आलेखन करना भी आवश्यक है। जिससे 1.पाँचों वाचनाओं के आविष्कार का जो क्रम पहले प्रदर्शित किया है, उसीका दृढीकरण होगा। 2. काश्मीरी पाठ भी रंगावृत्ति का ही पाठ है, तथापि उसमें अनेक दृश्य अपरिवर्तित रहे हैं- ऐसा सटीक सिद्ध हो सकता है, जिससे यह स्पष्ट हो जाएगा कि ऐसे दृश्य मौलिकता के निकट होंगे।, 3. तथा काश्मीरी पाठ का ही अनुसरण करते हुए मैथिली, बंगाली-आदि अन्यान्य पाठों ने कहाँ पर कैसे कैसे मंचन लक्ष्यी परिवर्तन किये हैं? उनकी जानकारियाँ, इन चुने हुए उदाहरणों से हस्तामलकवत् हो जाएँगी।।

[1] प्रथम अंक के पाठभेदों में प्रतिबिम्बित प्रयोग-वैविध्यः- इस अंक में मृगयाविहारी राजा दुष्यन्त का कण्वाश्रम में प्रवेश होता है। तापसों के द्वारा राजा दुष्यन्त को आश्रम के मृग को नहीं मारने के लिए चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त होने का आशीर्वाद मिलता है। उसके बाद जहाँ शकुन्तला अपनी दो सखियों के साथ आश्रम वृक्षों को जलसिंचन कर रही थी, वहाँ दुष्यन्त पहुँचते हैं। दुष्यन्त एवं शकुन्तला परस्पर प्रेमाकृष्ट होते हैं, इत्यादि प्रणयकथा का प्रवाह शुरू होता है। इस तरह के घटनाचक्र का निरूपण करनेवाली दृश्यावली में बहुविध परिवर्तन एवं परिवर्धन होते रहे हैं। जैसे कि-

(क) काश्मीरी पाठ में, राजा दुष्यन्त को आशीर्वाद-प्रदान करने के प्रथम दृश्य का स्वरूप निम्नोक्त है:-

(ततः प्रविशत्यात्मना तृतीयस्तापसः)

तापसः-(ससंभ्रमं हस्तमुद्यम्य) राजन्, राजन्, आश्रममृगोऽयम्। आश्रममृगोऽयम्।

तत्साधु कृतसन्धानं प्रतिसंहर सायकम्।
आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि।। (1-10)

राजा- एषः प्रतिसंहृतः। (यथोक्तं करोति)

तापसः-(सहर्षम्) साधु भोः। सदृशमेतत् पुरुवंशजातस्य भवतः। सर्वथा चक्रवर्तिनं पुत्रमवाप्नुहि।

राजा- (सप्रणामम्) प्रतिगृहीतं तपोधनवचनम्।

यहाँ इस दृश्य की प्रस्तुति संक्षेप में की गयी है, जिसमें कोई पुनरुक्ति या अनावश्यक विस्तार नहीं दिखता है। किन्तु मैथिली एवं बंगाली पाठों में (1) पहले एक नेपथ्योक्ति से कहा जाता है कि- "भो भो राजन्, आश्रम-मृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः"। जिससे सूत एवं राजा दोनों को ही पहले सावधान किया जाता हैं, उसके बाद तापस अपने एक शिष्य के साथ रंगमंच पर आकर उसी आदेशात्मक उक्ति का पुनरुच्चारण करता है। तत्पश्चात् (2) एक नये श्लोक-गान का प्रक्षेप किया गया है:- "न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्, मृदुनि मृगशरीरे पुष्पराशाविवाग्निः० इत्यादि।।" मैथिली रंगकर्मियों द्वारा किये गये इस श्लोक के प्रक्षेप का अनुसरण बंगाली और दाक्षिणात्य पाठों में भी प्राप्त होता है। देवनागरी पाठ में इस श्लोक का स्वीकार नहीं किया गया है। (3) राजा को चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त होने का आशीर्वाद मिलने के बाद, काश्मीरी पाठ के "प्रतिगृहीतं तपोधन-वचनम्" को परिवर्तित करके, मैथिली पाठ में "गृहीतं ब्राह्मणवचनम्" लिखा गया है, तथा बंगाली पाठ में "प्रतिगृहीतं ब्राह्मणवचः" ऐसा प्रतिभाव व्यक्त किया जाता है। दाक्षिणात्य पाठ में भी "प्रतिगृहीतं ब्राह्मणवचनम्" ऐसा ही मिलता है। किन्तु देवनागरी पाठ में "तपोधन" तथा "ब्राह्मण" इन दोनों शब्दों का त्याग किया गया है, और केवल "प्रतिगृहीतम्" ही रखा गया है। इन परिवर्तनों को देखने के बाद लगता है कि इस सन्दर्भ में काश्मीरी पाठ यहाँ शायद अधिक

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

संगत है। (4) काश्मीरी-मैथिली-बंगाली पाठों में केवल गद्य वाक्य में ही राजा को चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त होने के आशीर्वाद कहे जाते हैं। किन्तु कालान्तर में, जब दाक्षिणात्य पाठ का आविष्कार हुआ तब उन्होंने आशीर्वचन के लिए "जन्म यस्य पुरोर्वंशे युक्तरूपमिदं तव। पुत्रमेवं गुणोपेतं चक्रवर्तिनमाप्नुहि।।" ऐसा नवीन श्लोक प्रक्षिप्त किया है। तथा तापस का श्लोक-गान पूरा होते ही, उसके साथ में आये शिष्य के द्वारा हाथ उठा कर गद्य वाक्य से उसी आशीर्वाद की पुनरुक्ति की जाती है। जिससे इस दृश्य की प्रस्तुति में गेय तत्त्व नया दाखिल होता है और रंगमंच पर आये शिष्य की सक्रियता दिखती है। इस तरह के परिवर्तन का देवनागरी पाठ में स्वीकार किया गया है। (5) शिष्य की संख्या का.-पाठ में दो है, मै.-पाठ और बं.-पाठ में एक है। किन्तु इन तीनों पाठों में, शिष्य की नाट्यक्रिया में कोई भागीदारी नहीं है। दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों ने का.-पाठ का अनुसरण करते हुए दो शिष्यों को रंगमंच पर उपस्थित किया है, तथा आशीर्वाद-प्रदान की विधि में उनकी सक्रियता दिखा कर, इस पूरे दृश्य की नयनरम्यता बढ़ायी है।

इस दृश्य की उपर्युक्त परिवर्तन-यात्रा में जो तृतीय क्रमांक का परिवर्तन है, उसको सूक्ष्मेक्षिका से देखा जाएगा तो वह इन पाँचों वाचनाओं की आनुक्रमिकता भी सूचित कर रहा है- वह ध्यातव्य बिन्दु है। तथा मैथिली एवं दाक्षिणात्य पाठों में किये एक एक श्लोक का संनिवेश पुनरुक्ति-दोषग्रस्त होने से प्रक्षेप ही सिद्ध हो रहा है। तापस के द्वारा शिकारी राजा को 'आश्रममृगोऽयम्' इतना कहना ही पर्याप्त था, इससे आगे बढ़ कर, मृग के मृदु शरीर की दयनीयता शब्दबद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। एवमेव, 'सर्वथा चक्रवर्तिनं पुत्रमवाप्नुहि' इतना गद्य वाक्य ही आशीर्वाद के लिए पर्याप्त था, उसको भी श्लोक से जब गेय रूप दिया जाता है, तो उसमें भी पुनरुक्ति है। नाटक जैसी समय की पाबंदी स्वीकारनेवाली कला में पुनरुक्ति असह्य मानी गयी है।।

(ख) प्रथम अंक की दृश्यावली में एक **वल्कल-शिथिलीकरण का प्रसंग** आता है। जिस पाठ में काश्मीर के रंगकर्मियों ने परिवर्तन किये हैं, वे स्पष्ट रूप से मंचनलक्ष्यी ही परिवर्तन हैं:- शकुन्तला अपनी दो सखियों के साथ वृक्षों को जलसिञ्चन करने लिए हाथ में घट लेकर रंगभूमि पर (कण्वाश्रम के प्राङ्गण में) प्रवेश करती है। दुष्यन्त ने तपोवन में प्रवेश कर लिया है, वह एक वृक्ष के पीछे छिप कर इन सखियों की बातचीत सुन रहा है। इस प्रसंग का निरूपण करने वाला काश्मीरी पाठ निम्नोक्त है:-

(नाट्येन सिञ्चति)

राजा- (निर्वर्ण्य सकौतुकम्) कथमियं सा कण्वदुहिता, अहो विस्मयः।

शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनो यदि जनस्य।
दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः।। (1-15)

भवतु, पादपान्तरित एव विश्वस्तभावाम् एनां पश्यामि। (तथा करोति)

शकुन्तला- एष वातेरितपल्लवाङ्गुलिभिस्त्वरयतीव मां बकुलवृक्षकः। यावदेनां संभावयामि।

(राज्ञः संनिकर्षमागच्छति)

राजा- (निर्वर्ण्य) असाधुदर्शी तत्रभवान् काश्यपः, य इमाम् आश्रमधर्मचरणे नियुङ्क्ते।

इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तपःक्षमं साधयितुं भविष्यति।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया समिल्लतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति।। (1-16)

शकुन्तला- हले अनसूये, अतिपिनद्धेन प्रियंवदया वल्कलेन नियन्त्रितास्मि, तच्छिथिलय तावदेनम्।

(अनसूया शिथिलयति)

इस काश्मीरी पाठ का मंचनलक्ष्यी वैशिष्ट्य यह है कि उपर्युक्त 1-15 श्लोक को स्थानान्तरित करके रखा गया है। क्योंकि, रंगभूमि के एक भाग में दुष्यन्त बकुलवृक्ष के नीचे खड़ा है, और सामने की दिशा में आश्रम-कन्याएं जलसिञ्चन

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

कर रही हैं। यानी रंगमंच का दो भागों में बटवारा हुआ है। काश्मीरी पाठ के अनुसार यहाँ दुष्यन्त जिस वृक्ष के नीचे खड़ा है, उसी बकुलवृक्ष के पल्लव हिलते हैं। जिससे शकुन्तला ऐसा संकेत समझती है कि बकुलवृक्ष उसको अपने पास बुला रहा है। वह अपनी दोनों सहेलियों से पृथक् होकर बकुलवृक्ष के पास पहुँचती है। यहाँ काश्मीरी रंगकर्मियों ने नयी रंगसूचना जोडी है कि "राज्ञः संनिकर्षम् आगच्छति"। अब यहीं पर खड़ी रह कर, वह अपने वल्कलवस्त्र को प्रियंवदा ने दृढतया बांधा है- ऐसी शिकायत करती है। जिसके फलस्वरूप सामने वाले भाग से चल कर अनसूया शकुन्तला के पास जाती है, और वहाँ पर वल्कलशिथिलीकरण का कार्य किया जाता है। मतलब कि उसी बकुलवृक्ष के पीछे खड़ा नायक दुष्यन्त शकुन्तला के "पयोधरविस्तारयितृक यौवन" को बहुत नजदीक से देख सकता है! इस तरह की रंगमंचीय-योजना अन्य किसी भी पाठ में नहीं मिलती है। डॉ. बेलवालकर जी ने इस सन्दर्भ के काश्मीरी-पाठ को समुचित बताया है[1]। किन्तु उनका मत चिन्त्य है। क्योंकि, काश्मीर के रंगकर्मियों ने "शुद्धान्त-दुर्लभमिदम्०" श्लोक को जो स्थानान्तरित करके केवल नायिका शकुन्तला पर घटित करने का सोचा है- वह आन्तरिक सम्भावना के विरुद्ध है। जैसे कि, काश्मीरी पाठ के अनुसार दुष्यन्त ने शकुन्तला को वनलता की उपमा दी है, और अन्तःपुर की रानियों को उद्यानलताओं की उपमा दी है। जिसका वाक्यार्थ बोध उसको ऐसा अभीष्ट है कि (सहज सुन्दर) वनलता स्वरूपिणी शकुन्तला ने उद्यानलता स्वरूपिणी रानियों को जीत लिया है। यह उपमा नायिका के स्वाभाविक एवं नैसर्गिक सौन्दर्य को तुलनात्मक दृष्टि से श्रेष्ठता जरूर प्रदान करती है। किन्तु व्याकरण की दृष्टि से वनलता की वह उपमा (केवल) शकुन्तला पर घटित करने के लिए नहीं है। कालिदास ने "वनलताभिः" ऐसा जो बहुवचनान्त प्रयोग किया है, वह तो तीनों सहेलियों के लिए प्रयुक्त किया है। और इस श्लोक के पहले 'मधुरमासाम् दर्शनम्' वाक्य से भी तीनों सहेलियाँ को ही उद्दिष्ट किया गया है। अर्थात् काश्मीरी रंगकर्मियों ने शकुन्तला को राजा के निकट भेज कर जो वल्कलशिथिली-करण का प्रसंग अभिनीत करवाया है- उस परिवर्तन को व्याकरण की सम्मति नहीं होने से, उसको मूलगामी पाठ का स्थान नहीं दिया जा सकता। उसको तो रंगावृत्ति का ही पाठ कहना होगा। डॉ. बेलवालकर जी इस पाठ्यांश का रंगावृत्तित्व नहीं पहचान पाये हैं।

(ग) प्रथम अंक की रंगसज्जाः कण्वाश्रम के प्राङ्गण में नायक-नायिका का प्रथम मिलन आकारित करने के लिए, आश्रम के परिसर में (= रंगभूमि पर)कितने वृक्ष एवं लताएँ रहे होंगे? उसका परीक्षण करने से इन पाँचों पाठों का रंगावृत्तित्व उभर कर सामने आता है। (कवि ने क्या लिखा होगा- ऐसी चर्चा को यहाँ अप्रस्तुत समझ कर, इस दृश्य के प्रयोग-वैविध्य को पहचानना चाहिए:-) काश्मीरी रंगभूमि पर दो वृक्ष एवं दो लताओं का उल्लेख किया गया है। इसमें सहकारवृक्ष (जिसको वनतोषिन् कहा गया है) के साथ नवमालिका नामक लता ने स्वयंवर रच लिया है- ऐसा कहा जाता है। तथा दूसरी माधवीलता का निर्देश तो स्वल्प मात्रा (दो उक्तियों) में ही किया गया है। तथा ग्रीष्मकाल में कुसुम देनेवाले गुल्मक वृक्ष भी वहाँ पर आसपास में है। यानी पूरी रंगभूमि नैसर्गिक वनस्पति से आच्छादित दिखाई दे रही है। यहाँ बकुलवृक्ष की पल्लवांगुलियाँ हिलने से शकुन्तला उसके पास जाती है, तब प्रियंवदा ने लतास्वरूपा शकुन्तला से बकुलवृक्ष को लतासनाथ के रूप में उल्लिखित किया है।

मैथिली एवं बंगाली रंगसज्जा में एक चूतवृक्ष एवं दो लताएं उल्लिखित की गयी हैं। तथा आश्रम के परिसर में ग्रीष्मकाल में कुसुमदायिन् वृक्ष भी खड़े हैं। किन्तु दो-तीन परिवर्तन विशेष रूप से हुए हैं, जो ध्यानाकर्षक हैं :-1. सहकारवृक्ष के साथ स्वयंवर रचनेवाली नवमालिका का निर्देश करने के साथ साथ, प्रियंवदाने लता स्वरूप शकुन्तला से चूतवृक्ष (=सहकारवृक्ष) को लतासनाथ बताया है। 2. यहाँ सहकारवृक्ष ने ही अपनी पल्लवांगुलियाँ हिला कर शकुन्तला को अपने पास बुलाया है। (ऐसा होने का कारण यह है कि मैथिली एवं बंगाली रंगभूमि पर बकुलवृक्ष / केसरवृक्ष का अस्तित्व ही नहीं बताया है।) 3. दूसरी माधवीलता का अस्तित्व यहाँ जो कहा गया है, उससे जुड़ी उक्तियाँ दो नहीं, द्वादश हैं! यानी एक लम्बा प्रक्षेप प्राप्त हो रहा है[2]। माधवीलता असमय में मुकुलित हो गयी है, इससे ऐसा निमित्त प्राप्त होता है कि शकुन्तला

1. The Original Shakuntala, Dr. S. K, Belvalkar, Pub. In SirAshutosh Mookharjee Silver Jubilee Vol- 3] Orientalia] part - 2, Calcutta, 1925, pp-349-359.
2. डॉ. बेलवालकर जी के मत से किसी (पाठशोधक) ने रत्नावली का अनुकरण करके माधवीलता का यह प्रक्षेप किया है।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

आसन्न पाणिग्रहणा है!। (डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल के मत से यह निमित्त-प्रदर्शन वाला पाठ्यांश मौलिक है। लेकिन उन्होंने माधवीलता के निरूपण से जुडी निम्नोक्त विसंगतियाँ तनिक भी सोची ही नहीं है।[1]) इन परिवर्तनों से जुड़ी जो विसंगतियाँ आकारित हुई हैं वे इस तरह की हैं :- (1) नाटक के आरम्भ में ही जब कहा गया है कि कण्व मुनि शकुन्तला के दुरितशमन के लिए सोमतीर्थ की यात्रा पर गये हैं- तो उसके साथ यह शकुन्तला का आसन्न पाणिग्रहण होने का निर्देश अत्यन्त विरोध में जा रहा है। (2) नवमालिका को सहकारवृक्ष की स्वयंवरवधू का विशेषण देकर, कवि ने जब शकुन्तला के भावी का सूचन एक बार कर ही दिया है तब माधवीलता के असमय मुकुलित होने के निमित्त से शकुन्तला को आसन्नपाणि-ग्रहणा बतानें में भी पुनरुक्ति ही हो रही है।, (3) नवमालिका लता की जड़ों में जलसिंचन करने के बाद, बारह उक्तियों का लम्बा संवाद/ प्रक्षेप है, तत्पश्चात् कहा जाता है कि नवमालिका पर बैठा हुआ भ्रमर (अब) उड़ता है और शकुन्तला के मुख पर मँडराने लगा है- तब प्रश्न होता है कि इतनी देरी से भ्रमर कैसे उड़ेगा?। इस तरह से भ्रमर का देरी से उड़ने का निरूपण भी इस बात का सूचक है कि माधवीलता से सम्बद्ध सारी उक्तियाँ प्रक्षिप्त ही हैं[2]। (काश्मीरी पाठ में "वनतोषिन्" शब्द को सहकार वृक्ष के विशेषण के रूप में प्रयुक्त किया था, वह मैथिली एवं बंगाली पाठों में नवमालिका का "वनतोषिणी" ऐसा नामान्तर बन गया है! तथा दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठ में, नवमालिका को अनुक्रम से वनज्योत्स्नी एवं वनज्योत्स्ना बनाया गया है)।

दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों के अनुसार इन दोनों की रंगभूमि पर दो वृक्ष रखे हैं और लता एक ही नवमालिका है। यानी इन पाठों में माधवीलता को हटाया गया है। दोनों में नवमालिका को सहकारवृक्ष की स्वयंवरवधू कहा गया है, और शकुन्तला के सांनिध्य से केसरवृक्ष को "लतासनाथ इव" कहा है। काश्मीर की रंगभूमि पर केसरवृक्ष नहीं था, किन्तु बकुलवृक्ष था- जो आश्चर्यजनक है। यहाँ देवनागरी में बकुलवृक्ष को केसरवृक्ष बनाया गया है! तथा दाक्षिणात्य पाठ में, सहकारवृक्ष को "बालसहकार" बताया गया है। इनमें ग्रीष्मकाल में पुष्प देनेवाले गुल्मकों का उल्लेख नहीं है। इस तरह की वनस्पतियों के निर्देशों को ध्यान में रखकर सोचते हैं तो, दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठानुसारी रंगसज्जा पूर्वोक्त तीन पाठों से भिन्न होगी।।

(घ) प्रथम अंक का तीसरा सन्दर्भ **भ्रमरबाधा-प्रसंग** है, जिसमें भी मंचनलक्ष्यी अनेक परिवर्तन आकारित होते रहे हैं। आश्रमवृक्षों को जलसिञ्चन कर रही शकुन्तला, अनसूया एवं प्रियंवदा को दुष्यन्त ने "एता-स्तपस्विकन्यकास्स्वप्रमाणानुरूपैः सेचनघटकै-र्बालपादपान् सिञ्चन्त्य इत एवाभिवर्तन्ते" देखा है। यहाँ पाँचों पाठों में "वृक्षसेकं निरूपयति", "नाट्येन सिञ्चति", "कलशम् आवर्जयति" जैसी रंगसूचनाएँ प्राप्त होती हैं तथा वृक्षसिंचन के साथ साथ तीनों सहेलियों की यौवनानुरूप बातचीत चलती है, जिसको दुष्यन्त पादापन्तर्हित होकर सुन रहा है। इस दृश्य में "इति कलशमावर्जयति" जैसी रंगसूचना का शब्दार्थ मंचन की दृष्टि से विचारणीय बनता है:-काश्मीर के पाठ में शकुन्तला की उक्ति ("एष नूनमात्मनस्ते चित्तगतो मनोरथः" के पीछे) "इति कलशमावर्जयति" रंगसूचना दी जाती है। इसके अनुसन्धान में शकुन्तला कलश को जमीन पर रख देती है। इसके बाद तुरंत "भ्रमरसम्पातं नाटयति" की रंगसूचना आती है। शकुन्तला बोलती है कि सलिलसेक के कारण सम्भ्रमित हुआ भ्रमर मेरे वदन पर मंडरा रहा है। किन्तु मैथिली एवं बंगाली पाठों में "इति कलशमावर्जयति" शब्दों वाली रंगसूचना कुल दो बार दी गयी है। एक तो उपर्युक्त सन्दर्भ में, यानी नवमालिका के ऊपर जलसिंचन करने के बाद। तथा दूसरी बार, उसके पीछे शुरू हुए माधवीलता सम्बन्धी द्वादश उक्तियों के लम्बे संवाद के बाद। (अर्थात् शकुन्तला ने नवमालिका को जलसिंचन करने के बाद माधवीलता को भी जलसिंचन किया है।) अतः मैथिली और बंगाली पाठों में "इति कलशमावर्जयति" का शब्दार्थ बदलना पड़ेगा। क्योंकि नवमालिका को जलसिंचन करने के बाद शकुन्तला यदि कलश को जमीन पर छोड़ देती है, तो वह माधवीलता को कैसे जलसिंचन करेगी?। अतः इन दोनों में शकुन्तला कलश को अधोमुख करती है- ऐसा अर्थ

---

1. द्रष्टव्यः-A Reconstruction of theAbhijnanas'akuntalam, Ed. D. K. Kanjilal, Calcutta, Introduction -p. 122-123._And part / Book-3, Notes on Variants, p- 394.
2. डॉ. बेलवालकर जी ने 1929 के शोध-लेख (द्रष्टव्य-पृ. 190) में ऐसी कोई चर्चा नहीं की है।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

करना पड़ता है। सारांशतः उक्त रंगसूचना से शकुन्तला कलश को जमीन पर रख देती है- ऐसा अर्थ नहीं लिया जायेगा।

अब, इस तरह से रंगसूचना के शब्दार्थ में भेद करेंगे तो, भ्रमरबाधा के समय क्या स्थिति होगी? यह भी विचारणीय बनता है। काश्मीर के पाठानुसार शकुन्तला ने उक्त रंगसूचना से कलश को जमीन पर रख दिया है, अतः वह दोनों हाथों से भ्रमर का अपसारण करने का अभिनय करेगी। तथा मैथिली एवं बंगाली रंगभूमि पर वही शकुन्तला एक हाथ में कलश को पकड़ रखती है, और दूसरे हाथ से भ्रमर का अपसारण करती है। उभयत्र अभिनय में भेद हो जायेगा। इस बात का समर्थन तब मिलता है कि जब हम "चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं०" श्लोक के पाठभेदों का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं। इस श्लोक के काश्मीरी पाठ की तीसरी पङ्क्ति में "करौ व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरम्" में दो हाथों से भ्रमर का अपसारण करने का कहा है[1]। किन्तु मैथिली एवं बंगाली पाठ में 'करं व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्व-मधरम्' ऐसा एकवचनान्त प्रयोग[2] होने से सूचित होता है कि शकुन्तला केवल एक हाथ से ही भ्रमर का अपसारण अभिनीत करेगी, क्योंकि उसने दूसरे हाथ में कलश को अभी भी पकड़ रखा है!

भ्रमरबाधा प्रसंग के पाठ्यांश में अन्य दो पाठभेद भी हैं, जिसका विवरण करना जरूरी है। जैसे कि, काश्मीरी वाचना में "चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं०" ऐसा एक ही श्लोक मिलता है। तथा तदनुगामिनी दाक्षिणात्य वाचनाओं में भी वैसा ही एक श्लोक है। यहाँ विचारणीय बिन्दु यह है कि इन तीनों में "चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीम्०" श्लोक का अवतार "सस्पृहम्" ऐसी रंगसूचना के साथ किया गया है। किन्तु इस श्लोक में तो नायक का ईर्ष्याभाव (वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती) निरूपित किया गया है, इसके साथ "सस्पृहम्" रंगसूचना एकदम विसंगति सिद्ध होती है। अब, इस विसंगति का निरसन तो तब होता है कि जब मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं के पाठ देखते हैं। वहाँ पर भ्रमरबाधा से जुड़े दो श्लोक प्राप्त होते हैं, एक नहीं। जैसे कि, "सस्पृहम्" रंगसूचना के साथ "यतो यतः षट्चरणोऽभिवर्तते०" श्लोक का अवतार करने के बाद, "सासूयम्" रंगसूचना से "चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीम्०" श्लोक को प्रस्तुत किया है। इस तरह की पाठयोजना सुसंगत है। किन्तु पूर्वोक्त विसंगत पाठयोजना काश्मीरी में (एवं तदनुगामिनी दाक्षिणात्य एवं देवनागरी में भी) इस लिए प्राप्त होती है कि काश्मीर के रंगकर्मियों ने अल्प समयावधि में इस दृश्य का मंचन करने के लिए "अपि च"/ "अथवा" निपात से बांधे गये दो दो श्लोकवाले सन्दर्भों में कटौती कर दी होगी। (परिणामतः "सस्पृहम्" रंगसूचना से अवतारित "यतो यतः षट्चरणोऽभिवर्तते०" श्लोक निकाल देने के बाद, उससे सम्बद्ध "सस्पृहम्" रंगसूचना अनुगामी "चलापाङ्गाम् दृष्टिम्०" श्लोक के साथ जुड़ गयी है!)॥

एक ओर अल्प समयावधि में नाटक का मंचन करने की कदाचित् आवश्यकता होती है, तो कुछ पाठ्यांश में कटौती की जाती है, तो दूसरी ओर कदाचित् नाट्यकौशल दिखाने की इच्छा से परम्परागत पाठ्यांश में विस्तार करने की भी चाहत होती है। भ्रमरबाधा प्रसंग के निरूपण में यह दूसरी सम्भावना भी आकारित हुई है, जो पाण्डुलिपियों में प्रतिबिम्बित भी हुई है। जैसे कि, कुत्रचित् उपर्युक्त दो श्लोकों के उपरान्त एक तीसरा श्लोक भी उपलब्ध हो रहा है:- "अपि च,

लोलां दृष्टिमितस्ततो वितनुते सभ्रूलता-विभ्रमाम्,
आभुग्नेन विवर्तिता वलिमता मध्येन कम्रस्तनी।
हस्ताग्रं विधुनोति पल्लवनिभं शीत्कारभिन्नाधरा,
जातेयं भ्रमरा-भिलङ्घनभिया वाद्यैर्विना नर्तकी॥"

इस तीसरे श्लोक के द्वारा किसी अज्ञात बंगाली (या नेपाली या उत्कलीय) रंगकर्मियों ने रंगमंच पर भ्रमरबाधा से पीडित शकुन्तला को "बिना वाद्य से नर्तन करनेवाली नर्तकी" के रूप में भी पेश किया है।। यह श्लोक जल्हण (1258 ई. स.) की सूक्तिमुक्तावली (कुसुमापचयादि-पद्धति, 65, श्लोक-14, पृ. 240) में भी कालिदास के नाम से उद्धृत हुआ है।

1. यह पाठ ध्वन्यालोकः (2-19), काव्यानुशासनम् (2-14) तथा अलंकारमहोदधिः (3-52) में दिया है।
2. यह पाठ शृङ्गारप्रकाशः- प्र.-22 (पृ. 1113) में उद्धृत हुआ है।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(ङ) प्रथमांक के अन्तभाग में **शकुन्तला का निष्क्रमण दृश्यः**-हस्तिसंभ्रम के कारण शकुन्तला अपनी सहेलियों के साथ रंगमंच से निष्क्रमण करती है, तब काश्मीरी पाठ में ऐसी रंगसूचना दी है कि-"शकुन्तला सव्याजविलम्बितं कृत्वा परिक्रम्य सखीभ्यां सह निष्क्रान्ता"। यहाँ वह केवल आङ्गिक अभिनय से अपना दुष्यन्त के प्रति अनुराग प्रकट करके, रंगभूमि से बाहर जाती है। इसी रंगसूचना का अनुसरण दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों में भी हुआ है। इस रंगसूचना में यह अन्तर्गर्भित है कि शकुन्तला का अनुराग दिखाने का बहाना प्रत्येक रंगकर्मी अपनी अपनी प्रतिभा के अनुसार अभिनीत करवा सकता है।। निष्क्रमण की दूसरी विधा मैथिली एवं बंगाली पाठों में प्राप्त होती हैः-शकुन्तला ने अपने मुख से प्रकटतया कहा है कि-"अभिनवकुशसूचिपरिक्षतो मे चरणः, कुरबकशाखापरिलग्नं च मे वल्कलम्। तस्मात् परिपालयत मां यावद् एनं मोचयामि"। यहाँ, दुष्यन्त के प्रति अपना अनुराग प्रकट करने के लिए शकुन्तला ने आङ्गिक एवं वाचिक अभिनयों का उपयोग किया है। मैथिली एवं बंगाली रंगमंच पर जिन वृक्षों तथा लताओं का निर्देश हुआ है- उसको देखते हुए इस तरह की दूसरी योजना सम्भव हो सकती है। यहाँ दूसरा बिन्दु यह ध्यातव्य है कि इस नाटक के द्वितीयांक में "दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे०" ऐसा एक श्लोक आता है, जिसके शब्दों से मैथिली-बंगाली पाठ में लिखी रंगयोजना एवं मंचनविधा समर्थित होती है।

[2] द्वितीय अंक के पाठभेदों में प्रतिबिम्बित प्रयोग-वैविध्यः इस द्वितीयांक में राजा और विदूषक के बीच में हुए संवाद का प्राधान्य है। यहाँ प्रथम दृश्य में राजा की सपरिवार उपस्थिति का मंचन, दूसरे दृश्य में सेनापति का प्रवेश, तृतीय दृश्य में राजा और विदूषक की बातचीत एवं चतुर्थ दृश्य में करभक का आगमन निरूपित है। इनमें से उदाहरण के रूप में दो दृश्यों का प्रयोग-वैविध्य विवेच्य हैः-

(क) विदूषक की एकोक्ति से प्रथम दृश्य का आरम्भ होता है। वह राजा की मृगयाशीलता से संत्रस्त है, जिसका वह वर्णन करता है। इसके अन्त भाग में वह सामने से आ रहे सपरिवार राजा को शब्दांकित करता हैः- "एसो राआ बाणासणहत्थाहिं जवणीहिं परिवुदो वणपुप्फमालाधारी इदो य्येवागच्छदि। ता जाव णं उवसप्पामि। (एषो राजा बाणासन-हस्ताभिर्यवनीभिः परिवृतो वन-पुष्पमालाधारीत एवागच्छति। तद् यावदेनम् उपसर्पामि।)" तथा इसके बाद, "ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टपरिवारो राजा" ऐसी रंगसूचना के बाद राजा रंगमंच पर प्रवेश करता है। इस काश्मीरी पाठ के अनुसार राजा दुष्यन्त ने अपने गले में वनपुष्पों की माला धारण की है, तथा उसके आसपास यवनियाँ खड़ी हैं, जिनके हाथों में बाणासन भी हैं। इस तरह की शब्दावली से मालूम होता है कि इस दृश्य के मंचन में राजा एवं यवनियों की वेशभूषा कैसी होनी चाहिए। यहाँ राजा को सपरिवार प्रस्तुत करके रंगकर्मियों ने पूरे रंगमंच को भर दिया है।। अब, मैथिली एवं बंगाली पाठों का पर्यालोचन करते हैं :- "एस बाणासणहत्थो हिअअ-णिहिद-पिअअणो वणपुप्फमालाधारी इदो ज्जेव आअच्छदि पिअवअस्सो। (एष बाणासनहस्तो हृदयनिहितप्रियजनो वनपुष्पमालाधारी इत एव आगच्छति प्रियवयस्यः।)" तथा, उसके नीचे रंगसूचना में कहा है कि- "ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो राजा"। यहाँ सपरिवार राजा का प्रवेश नहीं बताया है, वह अकेला ही रंगमंच पर आता है। इस समय उसकी वेशभूषा कैसी है?, तो राजा ने स्वयं ही अपने हाथ में बाणासन उठाया है, एवं उसने अपने गले में वनपुष्पों की माला धारण की है। राजा की वेशभूषा के सन्दर्भ में इतना परिवर्तन होने के अलावा, यहाँ राजा के लिए एक विशेषण का भी प्रयोग हुआ है। जैसे कि, "हृदय-निहित-प्रियजनः"। इस विशेषण से राजा की मुखाकृति का हावभाव सूचित होता है, जिसके लिए राजा का अभिनय करनेवाले नट को सात्त्विकाभिनय का प्रयोग करना होगा। यहाँ ध्यानास्पद है कि मैथिली एवं बंगाली रंगभूमि पर यवनियों का प्रवेश नहीं बताया है। इतने बिन्दुओं के सहारे स्पष्ट हो जाता है कि काश्मीर के रंगकर्मियों से सर्वथा भिन्न वेशभूषा एवं रंगयोजनावाली प्रस्तुति मैथिली एवं बंगाली नटमण्डली ने सोची थी।

अब, दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों का परीक्षण करने से तीसरे तरह की दृश्य-प्रस्तुति सामने आती हैः- "एसो बाणासणहत्थाहिं वणपुप्फमालाधारिणीहिं जवणीहिं पडिउदो इदो एव आअच्छदि वअस्सो"। (एष बाणासनहस्ताभिः वनपुष्पमालाधारिणीभिः यवनीभिः परिवृतः इतः एवागच्छति वयस्यः)। इन दोनों ने काश्मीरी पाठ का अंशतः अनुसरण किया है, किन्तु दृश्य की प्रस्तुति के लिए वेशभूषा के सन्दर्भ में बदलाव भी किया है। जैसे कि, काश्मीरी पाठ में राजा ने वनपुष्पों की माला पहनी थी, जो दाक्षिणात्य एवं देवनागरी रंगभूमि पर यवनियों के गले में आ गयी है! रंगमंच पर दुष्यन्त राजा के परम्परागत परिधान

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

में होगा, किन्तु उनके पीछे अर्धवर्तुलाकार में यवनियाँ खड़ी होगी, जिनके गले में वनपुष्पों की मालाएँ होंगी, तथा उन सब के हाथों में बाणासन होगा। इस तरह से मृगया-विहारी राजा का वैभव एवं सन्नद्धता प्रेक्षकों के सामने आयेगी।

राजा दुष्यन्त के प्रवेश सम्बन्धी तीन तरह की दृश्य-योजनाओं में से कौन सी योजना कवि-प्रणीत होगी? उसका निर्णय करने से बेहतर तो इन सब को रंगावृत्ति का पाठ कहना अधिक उचित लगता है। हाँ, यहाँ यह कहना भी आवश्यक है कि इन रंगावृत्तियों के पाठों का पौर्वापर्य निश्चित करना मुश्किल नहीं है। लिपियों के उद्भव-विकास के इतिहास को ध्यान में रखते हुए शारदा-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपियों में संचरित काश्मीरी पाठ को हमने प्राचीनतम कहा है। तथा दूसरे-तीसरे क्रमांक पर मैथिली एवं बंगाली पाठ आकारित हुए हैं- ऐसा तो उपर्युक्त त्रिविध पाठभेदों में से भी सिद्ध हो रहा है। जैसे कि, इसी अंक में आगे चल कर देखते हैं कि राजा ने विदूषक के प्रस्ताव पर मृगया-कर्म में छुट्टी घोषित कर दी, और सेनापति को भी निवृत्त हो जाने को कहा है। उसीके साथ साथ राजा ने अपने परिजन-वर्ग (यानी यवनियों) के सामने देख कर, "अपनयन्तु भवत्यः मृगयावेषम्। (आप सब लोग भी मृगया-वेश को निकाल कर, सेवानिवृत्त हो जायँ)।" यह उक्ति पाँचों पाठों में हैं। जिसका सीधा मतलब यही होता है कि मैथिली एवं बंगाली पाठों के पाठशोधकों ने यवनी शब्द को हटा कर, हृदयनिहितप्रियजन शब्द को दाखिल कर दिया। तथा राजा को बिना किसी परिजन के साथ अकेला ही रंगमंच पर आता हुआ कहा है। परन्तु आगे चल कर जब "मृगया-वेषम् अपनयन्तु भवन्तः" इस उक्ति को निकालना वे भूल गये हैं (!), तब वह इस बात का प्रमाण बन जाती है कि मूल में (कविप्रणीत पाठ में) राजा ने रंगमंच पर सपरिवार ही प्रवेश किया होगा। इस तरह का पाठ काश्मीरी में सुरक्षित रहा है, वह भी उसकी प्राचीनतमता का ही दृढीकरण कर रहा है, एवं मैथिली पाठ का उत्तरवर्तित्व निश्चित करता है।

[डॉ. एस. के बेलवालकर जी ने यवनिकाओं का निर्देश विलुप्त हो कर, उसके स्थान पर "हृदयनिहित प्रियजन" शब्द कैसे स्थानापन्न हो गया होगा? उसकी वैदुष्य-पूर्ण एक कल्पना प्रस्तुत की है। इसके द्वारा उन्होंने अनुलेखनीयसम्भावना से "यवनीभिः" पद की मूलपाठ के रूप में आनुमानिक सिद्धि की है, लेकिन उसकी निर्विवाद सिद्धि तो पूर्वोक्त चर्चा में पेश किये गये कृतिनिष्ठ आन्तरिक प्रमाण से ही हो जाती है।]

(ख) विदूषक के कहने से राजा ने मृगया-कर्म से विरत होने का सोच लिया और उसी सन्दर्भ में अपने सेनापति को बुलाया। दुष्यन्त सूचना देना चाहता है कि मृगया के लिए एकत्र किये जंगल के प्राणियों को मुक्त किये जाय। दौवारिक जा कर सेनापति को ले आता है। रंगमंच पर आ रहे सेनापति ने राजा के शरीर की ओर देखा। मृगया के कारण राजा को जो शारीरिक लाभ हुआ था उनका वह गुण-वर्णन शुरू करता है। जैसे कि, "अनवरतधनु-र्ज्यास्फालन-क्रूरपूर्वम्०"। काश्मीरी वाचना में यहाँ पर दौवारिक की एक उक्ति है:-अय्य, एसो क्खु अणुवअणदिण्णकण्णो इदो दिण्णदिठ् येव भट्टा तुमं पडिवालेदि। ता उवसप्पदु अय्यो। (आर्य, एष खल्वनुवचनदत्तकर्ण इतो दत्तदृष्टिरेव भर्ता त्वां प्रतिपालयति। तस्माद् उपसर्पत्वार्यः।) पूर्वापर सन्दर्भ में इस उक्ति को देखेंगे तो मालूम होगा कि राजा ने सामने से आ रहे सेनापति के मृगया की प्रशंसा करते हुए शब्दों को ध्यान से सुने था, और वह उसकी प्रतीक्षा भी कर रहे था। मतलब कि यहाँ राजा के लिए प्रयुक्त 'अनुवचनदत्तकर्ण' एवं "इतो दत्तदृष्टि" ये दोनों विशेषण राजा के आङ्गिक अभिनय के साथ ही जुड़े हुए हैं। नाट्यप्रयोग के दौरान ही राजा के आङ्गिक अभिनय से समझ में आयेगा कि ये दोनों शब्द सर्वथा उपयोगी हैं।।

इसी उक्ति का मैथिली रंगावृत्ति में निम्नोक्त स्वरूप है:-एदु एदु अज्जो। एसो अणुवअण-दिण्णकण्णो भट्टा तुमं जेव्व पडिवालेदि। ता उअसप्पदु अज्जो।। यहाँ "इतो दत्तदृष्टिः" इतने शब्द नहीं हैं, अर्थात् नाट्यप्रयोग के दौरान राजा के आङ्गिक अभिनय से स्पष्ट होगा कि राजा केवल सेनापति के शब्दों को सुन रहा था, किन्तु उसकी दृष्टि सेनापति के आने की दिशा में नहीं घुमायी गयी थी।।

बंगाली वाचना में इस सन्दर्भ की उक्तियाँ परीक्षणीय है। सब से पहले यह ज्ञातव्य है कि राजाज्ञा से दौवारिक जब सेनापति को लेकर रंगमंच पर आता है तो वहाँ किसी रंगकर्मी ने समय की बचत करने के लिए "निष्क्रम्य - प्रविश्य"

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

की युक्ति का विनियोग किया है, और सेनापति की उक्ति को स्थानान्तरित करके पीछे ले लिया है। अतः बंगाली पाठ का सन्दर्भ प्रथम द्रष्टव्य है:-

राजा- रैवतक, सेनापतिस्तावदाहूयताम्।

दौवारिकः- तधा। (इति निष्क्रम्य पुनः सेनापतिना सह प्रविश्य) एदु एदु अज्जो। एस आलावदिण्णकण्णो भट्टा इदो ज्जेव चिट्ठदि। उवसप्पदु णं अज्जो। (तथा। एतु एतु आर्यः। एष आलापदत्तकर्णो भर्ता इत एव तिष्ठति। उपसर्पतु एनम् आर्यः।।)

सेनापतिः- (राजानमवलोक्य स्वगतम्) कथं दृष्टदोषापि मृगया स्वामिनि केवलं गुणायैव संवृत्ता। तथा हि देवः,

अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरकर्मा,
रविकिरणसहिष्णुः स्वेदलेशैरभिन्नः।
अपचितमपि गात्रं व्यायतत्वादलक्ष्यं,
गिरिचर इव नागः प्राणसारं बिभर्ति।। (2-4)

इसमें, सेनापति के मुख में जो श्लोक जहाँ रखा है, वह अन्य सभी वाचनाओं में तब है, जब दौवारिक उसको बुला कर साथ में ला रहा है। वह आते समय रास्ते में ही इस श्लोक के द्वारा मृगया के व्यायाम से कसे गये राजा के शरीर का निरूपण करता है। इस श्लोक का उच्चारण (या गान) पूरा हो जाने पर ही दौवारिक उसको कहता है कि राजा आपके कथन को सुन ही रहे है, अतः आप उसके निकट में जा सकते हैं। लेकिन बंगाली पाठ में इस श्लोक को पीछे कर देने से दौवारिक जब कहता है कि राजा, जो आलापदत्तकर्ण है, वह यहीं खड़े हैं और अब आप उसके निकट जा सकते हैं, तो यह वाक्य विसंगत बन जाता है। क्योंकि इस बंगाली पाठ में तो अभी तक सेनापति ने रास्ते में आते समय यह श्लोक बोला (या गाया) ही नहीं है!फिर दौवारिक कैसे कह सकेगा कि राजा आपके आलाप की ओर ध्यान देकर सुन रहे है? बंगाली पाठ की इस तरह की नवीन पाठयोजना असम्बद्ध है, इसमें कोई शक नहीं है[1]।। काश्मीरी और मैथिली पाठों में इस तरह की विसंगति नहीं है। तथा देवनागरी वाचना ने यद्यपि बंगाली वाचना की नवीन पाठयोजना का अनुसरण किया है, किन्तु उपर्युक्त विसंगति से बचने के लिए दौवारिक की पूर्वोक्त उक्ति में "आलापदत्तकर्ण" शब्द को बदल कर, उसके स्थान में ["एसो अण्णावअणुक्कंठो भट्टा इदो दिण्णदिट्ठी एव्व चिठ्ठदि। उवसप्पदु अज्जो। (एष आज्ञावचनोत्कण्ठो भर्ता इतो दत्तदृष्टिरेव तिष्ठति। उपसर्पतु आर्यः।)"] "आज्ञावचनोत्कण्ठ" शब्द से एक नया ही (चौथा) पाठान्तर अवतारित किया है।।

उपर्युक्त चर्चा में पाठ-परिवर्तन की यात्रा भी स्पष्टतया उद्भासित हो रही है। जैसे कि, उपलब्ध प्राचीनतम काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ में पहले "अनुवचनदत्तकर्णः", एवं "इतो दत्तदृष्टिः" ऐसे दो शब्द मिलते थे। द्वितीय क्रम में, मैथिली वाचना ने काश्मीरी पाठ का अनुसरण जरूर किया, लेकिन एक शब्द को कम करके केवल "अनुवचन-दत्तकर्णः" शब्द बनाये रखा। तथा सेनापति के श्लोक को, राजा के सामने लाने से पहले, प्रस्तुत करवानेवाली काश्मीरी योजना को नहीं बदला। तीसरे क्रम में, बंगाली पाठ में सेनापति के मुख में रखे श्लोक को स्थानान्तरित किया गया है। तथा "आलापदत्तकर्णः" जैसे तीसरे पाठान्तर को प्रस्तुत किया। लेकिन उसमें पूर्वोक्त प्रकार की विसंगति आने के कारण दाक्षिणात्य तथा देवनागरी रंगावृत्तियों में चौथे पाठान्तर को अवतारित किया गया है, जिसमें राजा के लिए "आज्ञा-वचनोत्कण्ठः" शब्द आ गया है।।

[3] तृतीय अंक के पाठभेदों में प्रतिबिम्बित प्रयोग-वैविध्यः इस अंक में नायक-नायिका का गान्धर्व-विवाह निरूपित हुआ है, जिसकी दृश्यावली में अतिप्राचीन समय से ही बहुविध परिवर्तन होते रहे हैं। कालिदास ने शकुन्तला की मदनसंतप्त दशा दिखाने के लिए, कुसुमास्तरण वाले शिलापट्ट पर उसको लेटी हुई अवस्था में प्रस्तुत किया है। लतावलयों से बने मण्डप में शिलापट्ट पर लेटी हुई शकुन्तला को उसकी दो सखियाँ पवन झल रही हैं। इस दृश्य में लम्बे समय तक

1. इस तरह की असम्बद्धता समान रूप से डॉ. रिचार्ड पिशेल (पृ. 19) एवं डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल (पृ. 223) द्वारा सम्पादित बंगाली वाचना के पाठ में दृष्टिगोचर हो रही है।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

नायिका की लेटी हुई अवस्था निरूपित करने की कवि-संकल्पित-योजना कहाँ से कहाँ तक रही होगी?- वह निश्चित करने के बाद ही, कालान्तर में किस क्रम में कैसे कैसे परिवर्तन आते रहे हैं- वह कहना उचित रहेगा। तीसरे अङ्क के आरम्भ में दुष्यन्त के मुख से कहा जाता है कि- "अये, लब्धं खलु नेत्रनिर्वापणम्। एषा मनोरथभूमिप्रियतमा मे सकुसुमास्तरणं शिलापट्ट-मधिशयाना सखीभ्याम् अन्वास्यते"। उसके बाद रंगसूचना है कि- "ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टा शकुन्तला सख्यौ च"। यहाँ रंगमंच पर लतामण्डप होगा, जिसमें कुसुमाच्छादित एक ही शिलापट्ट होगा ऐसी रंग-सज्जा बनानी होगी। इसमें प्रथम क्षण से ही पुष्पमयी शय्या पर लेटी हुई शकुन्तला का प्रवेश करवाना है। तत्पश्चात्, वह मदनलेख लिखते समय भी लेटी रहे और मदनलेख को सुन कर राजा उनके सामने प्रकट हो जाय, उसके बाद भी लेटी रहे। यानी अनसूया की प्रार्थना पर राजा उसी शिलापट्ट पर, शकुन्तला के पास में बैठ जाए, तब भी वह लेटी रहे। फिर जब दोनों सहेलियाँ रंगमंच से बिदा लें और नायक नायिका से कहे कि-

"अङ्के निधाय चरणावुत पद्मताम्रौ,
संवाहयामि करभोरु यथासुखं ते।। (3-20)"

(अर्थात् हे करभोरु! तेरे पद्मताम्रवर्णी दोनों चरणों को मेरी गोदी में लेकर, तुझे सुख हो ऐसे मैं उनका संवाहन करूँ।।) तभी वह अपनी मदनावस्था के अनुरूप धीरे से, बहुत कष्ट के साथ कुसुमास्तरण से उठ कर चलने का आरम्भ करे। जिसके लिए कवि ने रंगसूचना दी है:-"अवस्थासदृशमुत्थाय प्रस्थिता"। कालिदास द्वारा सोची हुई इस दृश्य की मंचनविधा तो यही रही होगी, जिसमें शकुन्तला लम्बे समय तक रंगमंच पर लेटी रहेगी।

किन्तु रंगमंच पर लेटी हुई नायिका का दृश्य हाथ में आते ही, रंगकर्मी लोग अपने जमाने के लोगों की रुचि के अनुसार शृङ्गारातिरेक को प्रदर्शित करने के लिए लालायित हो गये। ऐसे अतीत के अज्ञात रंगकर्मियों ने इस दृश्य में किस क्रम में, कैसे परिवर्तन किये हैं? वह जानने के लिए निम्नोक्त तुलनात्मक अध्ययन अनिवार्य है[1]। **प्रथम स्तर के परिवर्तन** (=प्रक्षेप) :-शकुन्तला की लेटी हुई अवस्था को ध्यान में रख कर, किसी अज्ञात रंगकर्मी ने सखियों एवं दुष्यन्त की बातचीत के दौरान तीन अश्लीलता से भरी उक्तियाँ प्रक्षिप्त करके, मूल पाठ को परिवर्तित करने की कोशिश की है:-

(क) अनसूया ने दुष्यन्त को कहा था कि राजाओं की अनेक वल्लभाएँ होती हैं, अतः हमारी सखी बन्धुजनों के लिए शोचनीय दशा में न आ जाय, ऐसा व्यवहार कीजिये। अनसूया की इस उक्ति के अनुसन्धान में शकुन्तला-आदि की निम्नोक्त पाँच उक्तियाँ देखिये:-

शकुन्तला- हले मर्षयतं लोकपालं यत् किञ्चास्माभिरुपचारातिक्रमेण विस्रम्भप्रलापिनीभिः भणितम्।

सख्यौ- येन मन्त्रितं स मर्षयतु। अन्यस्य जनस्य कोऽत्ययः। परोक्षं को वा किं न मन्त्रयति।

राजा- (सस्मितम्)

अपराधमिमं ततः सहिष्ये यदि रम्भोरु तवाङ्गरेचितार्धे।
कुसुमास्तरणे क्लमापहं मे सुजनत्वादनुमन्यसेऽवकाशम्।। (3 - 19)

प्रियंवदा- एतावता पुनस्ते तुष्टिर्भवेत्?।

शकुन्तला- (सरोषमिव) विरम दुर्ललिते, एतावदवस्थयाऽपि मे क्रीडसि।

इसमें दुष्यन्त ने शकुन्तला के साथ सहशयन की प्रकट भाषा में माँग की है, वह नितान्त अश्लीलता-युक्त है। किन्तु ऐसा / इतना प्रक्षेप इसी लिए आकारित किया जा सका है कि कालिदास ने शकुन्तला को रंगमंच पर लेटी हुई अवस्था में प्रस्तुत करनेवाला दृश्य सोचा था।

1. विद्वान् लोग 230 वर्षों से मूलपाठ का निर्धारण करने का प्रयास करते रहे हैं। लेकिन इस नाटक के विविध दृश्यों की परिवर्तन-यात्रा भी जानना रसप्रद था। कलारसिकों का तो पहला ज्ञातव्य विषय यही होना चाहिए। एवञ्च, यही विषय विद्वान् पाठसम्पादकों के लिए भी अनुपेक्ष्य एवं अनिवार्य था।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(ख) प्रथम स्तर के पाठ-परिवर्तन-कर्ताओं ने अश्लीलता भरे संवादों (dialogue) की नवीन प्रविष्टि करने के लिए आरम्भ में ही बीज-निक्षेप कर दिया है। जैसे कि, शकुन्तला ने जब कहा कि उस तपोवन-रक्षिता राजर्षि से मेरा समागम नहीं होगा तो मुझ पर उदक छिड़क देना। इसको सुनते ही दुष्यन्त ने कहा:- "विमर्शच्छेदि वचनम्। एतावत् कामफलं, यत्फलमन्यत्।" इनमें से दूसरे वाक्य को प्रक्षिप्त करनेवाले वही रंगकर्मी लोग हैं कि जो नये अश्लील संवादों को दाखिल करना चाहते थे। "कामदेव ने नायिका को प्रेमाविष्ट कर दिया है, लेकिन दुष्यन्त अब उसको स्वप्रयत्न-साध्य मानने लगा था"- ऐसा कहला कर, रंगकर्मियों ने दुष्यन्त के मुख में भोग-वासना से भरे वाक्य रखे हैं। जैसे कि,लेटी हुई शकुन्तला का पाद-संवाहन करने की दुष्यन्त ने तत्परता दिखाई, जिसके अनुसन्धान में शकुन्तला अवस्था-सदृश खड़ी होकर, चलने लगती है। इसी स्थान पर अश्लीलता-युक्त दूसरा संवाद प्रक्षिप्त किया गया है:-

शकुन्तला- सखिमात्रशरणा, कं वा शरणयिष्यामि।

राजा- इदानीं व्रीडितोऽस्मि।

शकुन्तला- न खलु आर्यम्, दैवमुपालभे।

राजा- किम् अनुकूलकारिण उपालभ्यते दैवस्य।

शकुन्तला- कथमिदानीमुपालप्स्ये य आत्मनोऽनीशां परगुणैर्माम् उपहासयति।

राजा- (स्वगतम्)

अप्यौत्सुक्ये महति न वरप्रार्थनासु प्रतार्याः
काङ्क्षन्त्योऽपि व्यतिकरसुखं कातराः स्वाङ्गदाने।

आबाधन्ते न खलु मदनेनापि लब्धास्पदत्वाद्
आबाधन्ते मनसिजमपि क्षिप्तकालाः कुमार्यः॥ (3 - 22)

(शकुन्तला प्रस्थितैव)

राजा- (स्वगतम्) कथमात्मनः प्रियं न करिष्ये। (उत्थायोपसृत्य पटान्तादवलम्बते)

शकुन्तला- पौरव, मुञ्च माम्।

राजा- भवतु, मोक्ष्यामि।

शकुन्तला- कदा।

राजा- यदा सुरतज्ञो भविष्यामि। (इत्यादि)

जिन रंगकर्मियों ने पहला (क) अश्लीलता-युक्त प्रक्षेप किया था, उन्हीं ने इस (ख) दूसरा प्रक्षेप किया होगा। क्योंकि पहले में दुष्यन्त से सहशयन की माँग करवाने वाले रंगकर्मी ने ही, कन्याओं को "व्यतिकरसुख" की अभिलाषावाली, एवं "कातराः स्वाङ्गदाने" होती है- ऐसा कहा है। तथा शकुन्तला को पटान्त से पकड़वा कर दुष्यन्त को सुरतरसज्ञ बनने को उद्यत हुआ चित्रित किया है॥

(ग) अश्लीलता में रममाण इन्हीं रंगकर्मियों ने अङ्क के अन्त भाग में भी दुष्यन्त के मुख में जो निम्नोक्त श्लोक रखा है, उसके पहले दो शब्दों से लेटी हुई शकुन्तला ही उसके दिमाग में घूम रही है- ऐसा सूचित होता है। आश्रम-माता गौतमी रंगमंच पर आकर, जब शकुन्तला को अपने साथ ले जाती है तब भोगवंचित दुष्यन्त कहता है:- हा धिक्, न सम्यग् आचेष्टितं मया प्रियामासाद्य कालहरणं कुर्वता। इदानीम् -

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

रहः प्रत्यासत्तिं यदि सुवदना यास्यति पुन-
र्न कालं हास्यामि प्रणयिदुरवापा हि विषयाः।
इति क्लिष्टं विघ्नैर्गणयति च मे मूढहृदयं
प्रियायाः प्रत्यक्षं किमपि च तथा कातरमिदम्।। (3 - 34)

इस श्लोक में पूर्वनिर्दिष्ट रंगकर्मियों ने विषयी दुष्यन्त को आलिखित कर दिया है, जो कालिदास के "कथमप्युन्नमितं, न चुम्बितं तु" (3 - 32) कहनेवाले प्रणयी दुष्यन्त से पृथक् है।

यहाँ तीन बिन्दु ध्यानास्पद हैं :- (1) लेटी हुई शकुन्तला को उद्दिष्ट करके उपरि निर्दिष्ट अश्लीलता-युक्त तीनों ही प्रक्षिप्तांश बृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं के पाठों में विद्यमान है। यानी भौगोलिक दृष्टि से देखें तो काश्मीर, मिथिला एवं बंगाल की सभी पाण्डुलिपियों में ये अश्लील संवाद फैले हुए हैं। (2) इन तीन में से जो काश्मीर की शारदा पाठपरम्परा है, वह प्राचीनतम है और जो सातवीं शती से शुरू हुई सिद्ध होती है। यानी इन अश्लीलांशों का प्रवेश बहुत पुराना है। (3) तथा अलंकारशास्त्रीय ग्रन्थों में भी इनमें से कुछ श्लोक उद्धृत भी हुए हैं। जैसे कि, शृङ्गारप्रकाश में "अप्यौत्सुक्ये०। (शृ. प्र. 33-9)" श्लोक उद्धृत हुआ है। इसका मतलब यह हुआ कि भोजराज के (ई. स.1050) समय से लेकर, साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ के (13वीं शती) समय तक, पूर्वोत्तर भारत से लेकर मध्य भारत तक ये श्लोक सुप्रचलित भी थे।।

****** ****** ****** ****** ******* *******

तीसरे अंक में, उपर्युक्त तीन अश्लील उक्तियाँ लेटी हुई शकुन्तला की दृश्य-योजना का दुर्लाभ उठाते हुए प्रथम स्तर पर प्रक्षिप्त हुई हैं। पूर्वापर में विरोध पैदा करने वाली एवं सुरुचि का भङ्ग करनेवाली ऐसी अश्लील उक्तियों को देख कर खिन्न हुए किन्हीं दूसरे रंगकर्मियों ने इन अश्लील प्रक्षेपों की जड़ कहाँ हैं? यह सोचा होगा। तो जब उन्होंने लम्बे समय तक रंगमंच पर लेटी हुई शकुन्तला की दृश्य-योजना में उनकी जड़ रही है- ऐसा देखा होगा तब, उसकी शयनावस्था के काल में कुछ कटौती करने का विचार किया। एवं तदनुसार **द्वितीय स्तर पर**, दृश्य-परिवर्तन की चेष्टाएँ शुरू हुई हैं। जिसका विवरण अधोभाग में दिया जा रहा है:-

भूर्जपत्र पर लिखित प्राचीनतम पाण्डुलिपि, जिसका क्रमांक 192 (B.O.R.I., Pune) है, उसमें शकुन्तला जब मदनलेख लिखती है, तब उसके लिए "आसीना चिन्तयति" जैसी कोई रंगसूचना नहीं है। मतलब कि प्राचीनतम पाठ के अनुसार शकुन्तला मदनलेख लिखते समय भी लेटी हुई अवस्था में ही थी। तथा शकुन्तला के मदनलेख को सुन कर जब दुष्यन्त सखियों के सामने प्रकट होता है और अनसूया के ("इतः शिलातलैकदेशम् अनुगृह्णातु वयस्यः") कहने पर वह शकुन्तला के पास में बैठता है, तब भी शकुन्तला तो लेटी हुई अवस्था में ही है। यहाँ पर, भूर्जपत्र वाली 192 क्रमांक की पाण्डुलिपि में, "सलज्जा तिष्ठति", अथवा "शकुन्तला पादावपसारयति" जैसी एक भी रंगसूचना नहीं दी गयी है। मतलब कि, भूर्जपत्रवाली पाण्डुलिपि के साक्ष्य पर हम कह सकते हैं कि प्राचीनतम पाठ में शकुन्तला जैसी कुसुमास्तरणवाले शिलापट्ट पर लेटी हुई प्रवेश करती है, वैसे ही मदनलेख लिखते समय, एवं तत्पश्चात् उसके सामने दुष्यन्त आ कर, उसके पास में बैठता है तब भी वह लेटी हुई रहती है। अब देखना है कि शकुन्तला की लेटी हुई अवस्था में कब परिवर्तन आता है?। द्वितीय स्तर के रंगकर्मी लोग, जो शकुन्तला की शयनावस्था के कारण हुए पूर्वोक्त अश्लील प्रक्षिप्त पाठ्यांश को अधिक विकृति की दिशा में आगे बढ़ने से बचाने के लिए संकल्पित थे, उन्होंने सखियों की उपस्थिति में ही शकुन्तला को खड़ी कर दे- ऐसा एक नया काव्यात्मक प्रक्षेप किया है:-

अनसूया- इतः शिलातलैकदेशमनुगृह्णातु वयस्यः।

राजा- (उपविश्य) प्रियंवदे, कच्चित् सखीं वो नातिबाधते शरीरसंतापः।

प्रियंवदा- (सख्या सहोपविष्टा) लब्धौषधस्साम्प्रतम् उपशमं गमिष्यति कालेन।

अनसूया- (जनान्तिकम्) प्रियंवदे, कालेन इति किम्। प्रेक्षस्व, मेघनादाहतामिव मयूरीं निमेषान्तरेण प्रत्यागतां प्रियसखीम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला- (सलज्जा तिष्ठति)।।

यहाँ, द्वितीय स्तर पर आये नवीन रंगकर्मियों ने, प्रियंवदा के मुख से दुष्यन्त को शकुन्तला की औषधि कहा है, और अनसूया ने दुष्यन्त की आवाज से प्रत्यागत जीवितवाली सखी को मेघनादाहत मयूरी का उपमान देकर, उसे लेटी हुई अवस्था का त्याग करते हुए वर्णित किया है। (रंगमंच पर इस संवाद के समय अनसूया खड़ी होगी, पास में दुष्यन्त भी खड़ा होगा,तब प्रियंवदा लेटी हुई शकुन्तला के पास में बैठ कर यह बोलती है।) इस प्रक्षिप्त पाठ्यांश से "कुसुमशयना शकुन्तला" का दृश्य थोड़ा सा परिवर्तित हो जाता है।।

इसके बाद, तृतीय स्तर के रंगकर्मियों ने शकुन्तला की लेटी हुई अवस्था का समय कुछ और कम करने के प्रयास किया। इन रंगकर्मियों की गवाही देनेवाली दो शारदा पाण्डुलिपियों के क्रमांक 1247 एवं 1435 हैं, जिनमें से 1247 क्रमवाली पाण्डुलिपि ऑक्सफर्ड युनिवर्सिटी की बोडलियन लाइब्रेरी में संगृहीत है। तथा 1435 क्रमांक की पाण्डुलिपि श्रीनगर की आलम इकबाल लाइब्रेरी में संगृहीत है। इनमें, शकुन्तला ने सखियों के नियोग (आज्ञा) से दुष्यन्त को उद्दिष्ट करके मदनलेख लिखने का स्वीकार किया तब, एक रंगसूचना "आसीना चिन्तयति" दी है। यह रंगसूचना इस बात का दस्तावेजीय / अभिलेखीय प्रमाण है कि कुछ रंगकर्मियों ने रंगमंच पर लेटी हुई नायिका को बहुत थोड़े समय के लिए ही प्रस्तुत करने की दृश्य-योजना बनायी है। जिसके फलस्वरूप रंगमंच पर दुष्यन्त के प्रकट होने से बहुत पहले, यानी मदनलेख लिखते समय ही, शयनावस्था का त्याग करवा दिया है।। इस तरह "कुसुमशयना शकुन्तला" का दृश्य, अलग अलग रंगकर्मियों के द्वारा तीन बार परिवर्तित हुआ है। इन तीन में से जो तृतीय स्तर पर आये रंगकर्मी हैं, जिन्होंने शकुन्तला को मदनलेख लिखने के निमित्त से ही शिलातल पर बिठा दिया है, उन रंगकर्मियों ने दुष्यन्त जब शकुन्तला का मदनलेख सुन कर, उनके सामने प्रकट होता है, तब 'शकुन्तला पादावपसारयति' ऐसी रंगसूचना भी जोड़ी है। इससे यह सूचित होता है कि मदनलेख लिखने के निमित्त से जो नायिका शिलापट्ट पर बैठी थी, उसने (अनसूया की विज्ञप्ति से प्रेरित) दुष्यन्त को बैठने के लिए अपने पाँव थोड़े सिकोड़े हैं।।

****** ******* ******* ******* ****** ****** ******

यहाँ एक अतीव महत्त्वपूर्ण बिन्दु की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहेंगे:- हमने उपर्युक्त परामर्श में तीन स्तर के जिन रंगकर्मियों को पहचाना हैं, उन तीनों की पृथक् रूप से/स्वतन्त्र रूप से तीन पाठ-परम्पराएँ जिनमें प्रतिबिम्बित हुई हों, ऐसी तीन तरह की शारदा पाण्डुलिपियाँ विद्यमान नहीं हैं। किन्तु हमने जो चार (पूर्ण) शारदा पाण्डुलिपियाँ देखी हैं, उनमें एक साथ रंगकर्मियों के द्वारा किये गये सभी तीनों परिवर्तनों का समाहार (सांकर्य) हुआ है! निष्कर्षतः, काश्मीर के अलग अलग रंगकर्मियों ने बनायी हो ऐसी अलग अलग रंगावृत्तियाँ प्रस्तुत करनेवाली अलग अलग पाण्डुलिपियाँ नहीं मिलती है। आज मिल रही इन शारदा पाण्डुलिपियों में तो, तीन काल के अलग अलग रंगकर्मियों ने 'कुसुमशयना शकुन्तला' के दृश्य में जो क्रमशः तीन बार परिवर्तन किये हैं- उनका समुदित चित्र मिलता है। इसका नतीजा यह आया है कि इन पाण्डुलिपियों में, परस्पर में विरुद्ध एवं विसंगतियाँ पैदा करनेवाली रंगसूचनाओं का जमावड़ा हुआ है! दूसरी आश्चर्यजनक परिस्थिति यह भी है कि ऐसी विसंगतियों से भरी रंगसूचनाओं वाला पाठ ही दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाण्डुलिपियों में संचरित होता रहा है।।

****** ******* ******* ******* ****** ****** ******

काश्मीरी रंगावृत्ति में प्राप्त हो रही अश्लीलता युक्त संवादमाला का अनुसरण मैथिली रंगावृत्ति में भी देखा जाता है। इस विषय में मैथिली रंगकर्मियों ने कुछ नया जोड़ा नहीं है। किन्तु "कुसुमशयना शकुन्तला" के पूर्वोक्त दृश्य में, मैथिली रंगमंच पर कैसा परिवर्तन आता है? वह विशद करना है:-इसमें लेटी हुई शकुन्तला के दृश्य का समय कम किया गया है। मदनलेख लिखने के प्रस्ताव के साथ शकुन्तला (नियोजिताऽस्मि। इन शब्दों से) सहमत होती है, तब वहाँ केवल 'इति चिन्तयति' ऐसी ही रंगसूचना मिलती है। मतलब कि मैथिली रंगमंच पर शकुन्तला मदनलेख लिखते समय बैठी हुई अवस्था में नहीं है। उसने तो लेटी हुई स्थिति में ही मदनलेख लिखा है। तथापि यह कहना भी जरूरी है कि अनुसूया ने जब दुष्यन्त

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(दुष्यन्त) को कुसुमास्तरणवाले शिलापट्ट के एकदेश पर बैठने की विज्ञप्ति की है, तब रंगसूचना रखी गयी है कि- "शकुन्तला किञ्चित् पादावपसारयति"। यानी शकुन्तला ने सोये हुए ही अपने दोनों पैरों को थोड़े से सिकोड़ लिया थे, जिससे दुष्यन्त को बैठने के लिए थोड़ी जगह मिल जाय।। उसके बाद दोनों सखियों ने (काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ का अनुसरण करते हुए) शकुन्तला को मेघवाताहत ग्रीष्मकाल की मयूरी का उपमान देकर, "शकुन्तला सलज्जा तिष्ठति" की रंगसूचना से उसको खड़ी होती बताया है। मतलब कि मैथिली रंगकर्मियों ने भी "अङ्के निधाय चरणावुत पद्मताम्रौ, संवाहयामि करभोरु यथासुखं ते।। (3-24)" श्लोक-पर्यन्त शकुन्तला को रंगमंच पर लेटे हुए नहीं रखा है, जिसकी वजह से कुसुमशयना शकुन्तला का दृश्य अल्प-समयावधि के लिए प्रस्तुत होता है। परन्तु अब कवि-संकल्पित दृश्य-योजना बदल जाती है और दो तरह की विसंगतियाँ प्रविष्ट होती हैं :- (1) शकुन्तला को सलज्जा खड़ी कर देने के बाद, जब दुष्मन्त शकुन्तला के पाँव अपनी गोदी में लेकर उनका संवाहन करने का प्रस्ताव रखता है तब, शकुन्तला उसके पास में खड़ी है, और नायक शिलातल पर बैठा हुआ है (!), और (2) वहाँ पर "इति अवस्थासदृशम् उत्थाय प्रस्थिता" ऐसी रंगसूचना से, खड़ी हुई शकुन्तला के लिए "उत्थाय=उठ कर जाती है" कहना भी विसंगत बन जाता है।

[**विशेष विमर्शः**- उपर्युक्त विसंगतियों से भरा पाठ हमारे सामने इस लिए आया है कि इन रंगकर्मियों ने अपने मंचन के लिए जो नयी रंगसूचनाएँ जोड़ कर परम्परागत पाठ में सुधार/विकार पैदा किये हैं वे, कवि द्वारा स्वयं लिखी हुई "इति अवस्थासदृशम् उत्थाय प्रस्थिता" ऐसी रंगसूचना को हटाये बिना ही, उसको भी हम तक पहुँचाया है। कवि की मूल रंगसूचनाओं के साथ रंगकर्मियों द्वारा जोड़ी नयी रंगसूचनाओं का सांकर्य होने का यह नतीजा है।।]

मैथिली रंगावृत्ति में जो दूसरा परिवर्तन है, वह प्रक्षिप्त श्लोकों से सम्बद्ध है। मैथिली रंगकर्मियों ने काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ का बहुशः अनुसरण किया है। तथापि उन्हों ने तृतीयांक के पाठ्यांश में नवीन श्लोकों का प्रक्षेप करके, नाटक में काव्यतत्त्व (अथवा कदाचित् गेयतत्त्व) को बढावा देने का प्रयास किया है। ऐसे प्रक्षेपों को भी प्रयोगलक्ष्यी माने जा सकते हैं। काश्मीरी रंगावृत्ति के इस अंक में 35 श्लोक हैं, किन्तु मैथिली रंगकर्मियों ने उसमें पाँच नये श्लोक जोड़ दिये हैं। उनमें से "गान्धर्वेण विवाहेन बह्वयोः हि मुनि-कन्यकाः। श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चानुमोदिताः।। (3-27)" वाला जो श्लोक है, वह अतीव महत्त्व का है। क्योंकि परवर्ती काल की सभी वाचनाओं ने उस श्लोक का अनुसरण किया है। और उसी के कारण दुष्यन्त एवं शकुन्तला के नैसर्गिक प्रेमसहचार को प्रस्तुत करनेवाले दो (मूलगामी) दृश्यों की कटौती करने का मार्ग प्रशस्त हुआ है।।

****** ******* ******* ******* ****** ****** ******

बंगाली रंगावृत्ति के पाठ में भी पूर्वोक्त अश्लील पाठ्यांश विद्यमान है, यानी बंगाली रंगकर्मियों के सामने बैठनेवाले प्रेक्षकगण ऐसे शृङ्गारातिरेक वाले संवाद सुनने के इच्छुक रहते होंगे। इस विषय में यह स्पष्ट है कि बंगाली रंगावृत्ति ने भी, मैथिली पाठ के अनुसार, काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ का अनुसरण किया है। इन अश्लील पाठ्यांशों को प्रक्षिप्त मानने का कारण यही है कि नायक एवं नायिका का प्रेमसहचार, जो अंक के उत्तरार्ध में नैसर्गिक स्वरूप का है, उसके विरोध में जानेवाले ये अश्लील पाठ्यांश अंक के पूर्वार्ध में आते हैं। बृहत्पाठ की तीनों रंगावृत्तियों में प्राप्त हो रहे ये अश्लील पाठ्यांश (जिसमें नायक ने नायिका से सहशयन की माँग प्रकटतया की है, वह) यदि मौलिक होते, तो अंक के उत्तरार्ध में बलात्कार का ही दृश्य होना चाहिए। लेकिन ऐसा तो कुछ उत्तरार्ध में नहीं है। अतः हमें मानना होगा कि काश्मीरी रंगावृत्ति को विरासत में मिले ऐसे अश्लील पाठ्यांश अज्ञात रंगकर्मियों की ही रचना है।

बंगाली रंगावृत्ति के पाठ के लिए दूसरा कथनीय बिन्दु यह है कि बंगाली रंगकर्मियों ने मैथिली रंगावृत्ति के पाँच प्रक्षिप्त श्लोकों का स्वीकार करने के साथ साथ एक नया श्लोक अपनी ओर से भी प्रक्षिप्त किया है। जिसके फलस्वरूप तीसरे अंक की श्लोक-संख्या 35 से बढ़ कर, पहले 40 हुई, और अन्ततोगत्वा बंगाली पाठ में 41 श्लोक की हो जाती है।। ("कालिदास के नाटकों में गद्य-संवादों की अपेक्षा से काव्यतत्त्व अधिक होता है" ऐसी समीक्षा पुनर्विचारणीय है।)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

बंगाली रंगावृत्ति का तीसरा बिन्दु ध्यानाकर्षक है:- "कुसुमशयना शकुन्तला" दृश्य में रंगसूचनाओं से सम्बद्ध पूर्वोक्त विसंगतियाँ नहीं हैं, क्योंकि इसमें मदनलेख लिखते समय "आसीना/उपविष्टा चिन्तयति" ऐसी रंगसूचना नहीं है। एवमेव, मदनलेख सुन कर उन सखियों के सामने दुःषन्त (दुष्यन्त) प्रकट होता है तब "शकुन्तला सलज्जा तिष्ठति" वाली रंगसूचना भी नहीं दी गयी है। बंगाली रंगकर्मियों ने काश्मीर एवं मिथिला के रंगावृत्ति के पाठ में परिष्कार कर लिया है। परिणामतः बंगाल की रंगभूमि पर शकुन्तला की लेटी हुई अवस्था लम्बे समय तक बनी रहती है। जब नायक दुष्यन्त ने शकुन्तला के पाँव अपनी गोदी में लेकर, उनका संवाहन करने का प्रस्ताव रखा तब वह 'अवस्थासदृशम् उत्थाय प्रस्थिता' रंगसूचना के अनुसन्धान में उठ कर खड़ी होती है, चलती है। अतः कहना होगा कि बंगाली रंगकर्मियों ने "कुसुमशयना शकुन्तला" की दृश्य-योजना जो कवि-संकल्पित थी, उसको **चतुर्थ स्तर पर**, पुनःप्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। परन्तु, जैसा पहले बताया गया है, अश्लील पाठ्यांशों का अनुसरण करके, कवि-प्रणीत पाठ से वे दूर भी खड़े रहे हैं। यहाँ एक विशेष बिन्दु भी ध्यानास्पद है:- काश्मीरी एवं तदनुगामिनी मैथिली रंगावृत्ति के पाठ में शकुन्तला को जैसे मेघनादा-हत/मेघवाताहत मयूरी का उपमान देकर "सलज्जा तिष्ठति" रंगसूचना से खड़ा कर दिया गया है, वैसे ही बंगाली रंगमंच पर नहीं होता है। तथापि मेघनादाहत मयूरीवाली उक्ति का स्थानान्तरण करके विनियोग किया है। दुःषन्त ने जब जाहिर किया है कि-

**"परिग्रहबहुत्वेपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य नः[1]।
समुद्ररसना चोर्वी सखी च युवयोरियम्।। (3-23)"**

तब, उसको सुन कर दोनों सहेलियों ने "निर्वृते स्वः।" का भाव प्रकट किया है, और शकुन्तला राजा की इस घोषणा से हर्ष सूचित करती है ऐसी रंगसूचना दी गयी है। तत्पश्चात् प्रियंवदा ने शकुन्तला के लिए मेघवाताहत मयूरी का उपमान दिया है। (पुनः याद दिला देते हैं कि इस उक्ति के निमित्त से बंगाली रंगमंच पर शकुन्तला सलज्जा खड़ी नहीं की गयीहै।) यहाँ तो, "शकुन्तला हर्षं सूचयति" रंगसूचना से जो आङ्गिक अभिनय करवाया गया है, उसका व्यंग्यार्थ ऐसा लगता है कि शकुन्तला ने जो सुन लिया कि दुःषन्त ने उसको अपनी "कुल-प्रतिष्ठा" के रूप में घोषित किया है (यानी भविष्य में शकुन्तला की संतान को ही राज-गादी मिलेगी) उस बात का वह हर्ष व्यक्त करती है।। बंगाली रंगकर्मियों द्वारा चतुर्थ स्तर पर किया गया इतना हलका सा परिवर्तन भी महत्त्व रखता है।।

****** ******* ******* ******* ****** ****** ******

दाक्षिणात्य रंगावृत्ति के तीसरे अंक के पाठ में किये गये जो जो परिवर्तन हैं वे बहुत महत्त्वपूर्ण हैं, किन्तु इन सब परिवर्तनों में रंगकर्म के साथ जुड़ा जो एक साधारण विचारतन्तु अनुस्यूत दिखता है वह है:- अल्प समयावधि में एवं अतिसंयत स्वरूप में शृङ्गार की प्रस्तुति करना है। अतः दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने पूर्वोक्त दृश्यों में एवं कुछ अन्यस्थानों में निम्नोक्त परिवर्तन किये हैं:-

(क) दाक्षिणात्य पाठशोधक रंगकर्मियों ने काश्मीरी रंगकर्मियों को विरासत में मिले, एवं मैथिली तथा बंगाली रंगावृत्तियों में भी अनुसृत हुए, जो जो अश्लील (एवं प्रक्षिप्त) पाठ्यांश थे उन सब को सर्वथा निष्कासित कर दिया गया हैं।

(ख) मैथिली एवं बंगाली रंगकर्मियों ने गेयतत्त्व को बढ़ावा देने के लिए जिन नवीन श्लोकों को प्रक्षिप्त किया था, उन सब का भी दाक्षिणात्यों ने निष्कासन कर दिया हैं। (जिसके फलस्वरूप, बंगाली पाठ के 41 श्लोकों के सामने दाक्षिणात्य पाठ में, इस अंक में केवल 24 श्लोक रह गये हैं।)

(ग) "कुसुमशयना शकुन्तला" को प्रस्तुत करने वाले दृश्य में जिन रंगसूचनाओं को आज हम देख रहे हैं, उनमें भी परस्पर में विरोध एवं विसंगतियाँ मिल रही हैं। फिर भी इतना कहना आवश्यक है कि दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने विसंगत

---

1. इस स्थान में "नः" ऐसा पाठान्तर केवल बंगाली पाठ में ही मिलता है, अन्य सभी वाचनाओं के पाठों में तो "मे" ऐसा एकवचनान्त प्रयोग ही दिया है। जिससे सूचित होता है कि बंगाली रंगकर्मियों ने "नः" पद से दुःषन्त का राजर्षित्व द्योतित करना चाहा है। जिससे शकुन्तला पटरानी बनने का स्वप्न देखने लगती है।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

रंगसूचनाओं से भरे इस दृश्य के परम्परागत पाठ में तीन स्थान **पर परिवर्तन** किये है:-जैसे कि, (1) शकुन्तला को मेघनादाहत मयूरी का उपमान देकर उसको सलज्जा खड़ी नहीं किया गया है, एवमेव उस उपमान से, उसको हर्ष सूचित करते भी नहीं कहा है। इस बात पर दाक्षिणात्य रंगकर्मी लोग काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली रंगावृत्ति से पृथक् पाठ दे रहे हैं। (2) इन लोगों ने दृश्य का आरम्भ कुसुमास्तरण वाले शिलापट्ट पर लेटी हुई शकुन्तला के प्रवेश से करवाने के बाद, प्रियंवदा के प्रस्ताव पर शकुन्तला जब मदनलेख लिखने के लिए उद्यत होती है, तब "उपविष्टा चिन्तयति" की रंगसूचना से शकुन्तला को रंगमंच पर बिठाई है। तत्पश्चात् अनसूया ने जब दुष्यन्त को शिलापट्ट के एकदेश में बैठने की विज्ञप्ति की, तब (काश्मीर की दो पाण्डुलिपियों में, एवं मैथिली पाठ में मिलनेवाली) 'शकुन्तला पादावपसारयति' या (बंगाली रंगावृत्ति में मिलनेवाली) "शकुन्तला किञ्चिद् अपसरति" जैसी रंगसूचनाएँ दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने हटा दी है। उसके बदले में, अनसूया के प्रस्ताव / विज्ञप्ति से दुष्यन्त जैसे ही उस शिलापट्ट पर बैठते हैं, वैसे ही शकुन्तला सलज्जा खडी हो जाती है- ऐसा कहा है। दाक्षिणात्य रंगावृत्ति में यहाँ पर "राजा उपविष्टः। शकुन्तला सलज्जा तिष्ठति" ऐसी रंगसूचना दी गई है।। (3) उसके बाद, दोनों सहेलियाँ जब मृगपोतक को उसकी माँ के साथ संयोजित करवाने के बहाने, वहाँ से चली जाती है तब प्रणयी दुष्यन्त ने शकुन्तला के पाँव का संवाहन करने का प्रस्ताव रखा है। जिसके अनुसन्धान में शकुन्तला कहती है कि मैं माननीय व्यक्ति की अपराधी नहीं बन सकती। यहाँ रंगसूचना है कि- "इत्युत्थाय प्रस्थिता"। (इसी के अनुसार देवनागरी पाठ में भी "इत्युत्थाय गन्तुमिच्छति" रंगसूचना है।) इस तरह से दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने भी रंगमंच पर नायिका की लेटी हुई अवस्था का समय कम करने का उपक्रम स्वीकारा है। किन्तु ऐसा करने से कवि-संकल्पित मूल दृश्य-योजना में विकार पैदा हो ही जाता है। उपर्युक्त रंगसूचना देख कर तुरंत प्रश्न होता है कि जो शकुन्तला पहले से ही सलज्जा खड़ी हो गयी है, तो वहाँ पर "खड़ी होकर चली जाती है" (या 'खड़ी होकर जाना चाहती है') ऐसी रंगसूचना कैसे दी जा रही है? इस तरह से यहाँ भी रंगसूचनाओं में विरोध आ रहा है। दूसरा बिन्दु यह है कि जब राजा शिलातल पर बैठा हो और शकुन्तला उसके पास में खड़ी हो, तो उसको उद्देश्य करके राजा ऐसा कहे कि- "मेरी गोदी में तेरे पद्मताम्र-वर्णी पाँव रख कर, क्या मैं उसका संवाहन करूँ?" तो इन परम्परागत "अङ्के निधाय चरणावुत पद्मताम्रौ०" शब्दों का सन्दर्भगत औचित्य बिलकुल नहीं है। इस बात को ध्यान में लेकर दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने, पञ्चम स्तर पर, उक्त श्लोक में पदक्रम को आगे पीछे कर दिया है। जैसे कि,

(काश्मीरी-मैथिली-बंगाली रंगावृत्तियों में-)

"अङ्के निधाय चरणावुत पद्मताम्रौ,
संवाहयामि करभोरु यथासुखं ते।।" के स्थान में,

दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने, उपर्युक्त पदक्रमवाले श्लोक को, नये पदक्रम के साथ प्रस्तुत किया है:-

"अङ्के निधाय करभोरु यथासुखं ते,
संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ।।"

इस तरह का नया पदक्रम देने से पूर्वनिर्दिष्ट औचित्यभङ्ग दूर करने का प्रयास किया गया है। अब इस तरह के नये पदक्रम का मतलब यह होगा कि शिलापट्ट पर बैठा हुआ दुष्यन्त[1] पास में खड़ी शकुन्तला को (ही पहले) अपनी गोदी में बिठा कर, (बाद में) उसका पाद-संवाहन करने का प्रस्ताव रखता है!।

इस तरह से लेटी हुई शकुन्तला के दृश्य के पाठ्यांश में, पाँच बार परिवर्तन हुए हैं। जिनमें पहले चार बार के परिवर्तनों के कारण उनमें दी गयी रंगसूचनाओं में विसंगति एवं परस्पर विरोध आता ही रहा है। जिसको पंचम बार के परिवर्तन

1. भोजराज (ई. स.1050) ने शृङ्गारप्रकाश [16-210 (पृ. 967), 20-56 (पृ.1060), 21-41 (पृ.- 1086), 34-185 (पृ.1577) में] इस नवीन पदक्रम के साथ ही इस श्लोक को उद्धृत किया है। जिससे सूचित होता है कि दाक्षिणात्य रंगावृत्ति का गठन 11वीं शती के पहले से समारब्ध हुआ होगा।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

से सुधार लेने का प्रयास किया गया है। किन्तु ऐसा प्रयास करने के बाद भी कवि-संकल्पित दृश्य-योजना तो अद्यावधि अन्धकारग्रस्त ही रही है।।

(घ) दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने अल्प समयावधि में इस नाटक का मंचन कैसे किया जाय? इस दृष्टि से अपना पाठ तैयार किया है, अतः (1. अश्लील पाठ्यांशों एवं 2. मैथिली पाठ के नवीन प्रक्षिप्त श्लोकों को हटाने के साथ) 3. इस अंक के दो सम्पूर्ण दृश्यों की कटौती भी की है। जिनमें 1. दुष्यन्त शकुन्तला को अपने पास में बिठा कर उसके हाथ में मृणालवलय पहनाता है, एवं 2. शकुन्तला के कानों पर धारण किये पुष्प की पराग-रज जब उसके नेत्र में गिरती है, तब राजा अपने वदनमारुत से, कलुषित हुए शकुन्तला के नेत्र को प्रमार्जित कर देता है। इन दो दृश्यों का समावेश होता है। इन दृश्यों का निष्कासन करने से तीसरा अंक अति अल्प समय में रंगभूमि पर पेश किया जा सकता है। किन्तु ऐसे दृश्य-परिवर्तन का परिणाम अच्छा तो नहीं आया। जैसे 1. डॉ. एस.के. बेलवालकर जी ने बताया है, वैसे इस अंक की समय-निर्देशक सूचनाओं में विसंगति पैदा होती है। कुसुमशयना शकुन्तला का आरम्भ मध्याह्न के समय में हुआ है।[**दुष्यन्तः**- (सूर्यमवलोक्य) इमाम् उग्रातपां वेलां प्रायेण लतावलयवत्सु मालिनीतीरेषु ससखीजना शकुन्तला गमयति।] तब दोनों सहेलियाँ मृगपोतक को उसकी माँ के साथ संयोजित करवाने के बहाने लतावलय से बाहर निकल जाती हैं और नायक-नायिका को एकान्त दिया जाता है। तत्पश्चात् उन दोनों के बीच केवल आठ-नौ उक्तियों का संवाद होता है, वहीं पर गौतमी का आगमन हो जाता है। और नेपथ्य से कहा जाता है कि - चक्रवाकवधूके, आमन्त्रयस्व सहचरम्, उपस्थिता रजनी। यहाँ प्रश्न होता है कि मध्याह्न का समय कहने के बाद तुरंत, अत्यन्त अल्प समय में ही रजनी का आगमन कैसे हो गया? शकुन्तला जब पादसंवाहन के प्रस्ताव को सुन कर, खड़ी होकर वहाँ से चली जाना चाहती थी, तब भी दुष्यन्त ने कहा है कि- सुन्दरि, अपरिनिर्वाणो दिवसः। इयं च तेऽसमवस्था। उत्सृज्य कुसुमशयनं कथम् आतपे गमिष्यसि०?। यानी मध्याह्न के समय में हो रहे मिलन के दृश्य को सहसा सिमट लिया गया है। लेकिन ऐसा करने से समयनिर्देशक सूचनाओं में विसंगति आती है। दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने नायक-नायिका का मिलन अत्यन्त संयम के साथ कुछ क्षणों के लिए ही प्रस्तुत करने की मंचनविधा आकारित की है। एक दूसरी विसंगति भी हमारे ध्यान में आयी है:-इसी अंक के उपान्त्य श्लोक में दुष्यन्त के उद्गार ऐसे है:-

"तस्याः पुष्पमयी शरीरलुलिता शय्या शिलायामियं,
क्लान्ते मन्मथलेख एष नलिनीपत्रे नखैरर्पितः।
हस्ताद् भ्रष्टमिदं बिसाभरणमित्यासज्यमानेक्षणो,
निर्गन्तुं सहसा न वेतसगृहाच्छक्नोमि शून्यादपि।। (3-23)"

इसमें दुष्यन्त ने प्रिया शकुन्तला की तीन चीजों का उल्लेख किया है:- 1. पुष्पमयी शय्या, 2. मदनलेख, तथा 3. उसके हाथ से निकला बिसाभरण। इन चीजों पर वह अपनी आँखें आसक्त करके यावन्मनःसंतुष्टि उस वेतसगृह में रहना चाहता है। किन्तु चतुर दर्शक को प्रश्न होगा ही कि प्रिया शकुन्तला की पहले दो चीजों के साथ जुड़ी घटनाएं तो अंक में प्रस्तुत हुई हैं। परन्तु जिस बिसाभरण का यहाँ उल्लेख हुआ है, उससे जुड़ा कोई प्रसंग तो दाक्षिणात्य रंगभूमि पर खेला ही नहीं गया है! तो फिर, दुष्यन्त किसकी बात कर रहा है?। बृहत्पाठानुसारी काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली रंगावृत्तियों में ही यह प्रसंग आता है। जिसमें दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला के हाथ में मृणाल-वलय पहनाने का प्रसंग अभिनीत हुआ है। (इससे यह भी प्रमाणित होता है कि लघुपाठवाली दाक्षिणात्य एवं देवनागरी रंगावृत्तियाँ उत्तरकाल में ही बनायी गयी हैं। तथा बृहत्पाठवाली काश्मीरी-आदि तीनों रंगावृत्तियाँ पुरोवर्ती काल की रचनाएँ हैं।)।

(ङ) तीसरे अंक के अन्त भाग में, रंगभूमि से शकुन्तला का निष्क्रमण कैसे होता है? इस विषय में भी दो तरह की दृश्य-योजना देखी जाती है:- 1. काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली रंगावृत्तियों में केवल गौतमी ही शान्त्युदक लेकर आती है, उसके साथ में अनसूया एवं प्रियंवदा नहीं हैं। वह जब देखती है कि हाय रे, क्या तुम केवल देवताओं

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

की सहाय में, यानी अकेली हो?। तब शकुन्तला ने कहा कि अभी अभी वे दोनों सहेलियाँ नदी में अवतीर्ण हुई हैं। 2. किन्तु दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों में गौतमी अकेली नहीं आती है, उसके साथ में शकुन्तला की दोनों सहेलियाँ भी हैं। उसका मतलब होगा कि इन रंगकर्मियों ने दोनों सहेलियों को, नायक-नायिका के एकान्त मिलन के समय में, वहाँ पर आसपास में पहरा देने वाली के रूप में सोचा है।।

[4] चतुर्थ अंक के पाठभेदों में प्रतिबिम्बित प्रयोग-वैविध्यः बहुत पुराने काल से कहा गया है :- काव्येषु नाटकं रम्यं, तत्र रम्या शकुन्तला। तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कः, तत्र श्लोकचतुष्टयम्।। कवि कालिदास के अभिज्ञान-शकुन्तला नाटक का चौथा अंक सर्वश्रेष्ठ है- इस अभिप्राय में दो मत नहीं हो सकते। लेकिन यह गवेषणीय है कि क्या कवि-प्रणीत पाठ से लेकर अद्यावधि उसकी जितनी भी रंगावृत्तियाँ प्रकाश में आयी हैं, उन सब में प्रयोग-वैविध्य दिखता है कि नहीं? मंचनलक्षिता की दृष्टि से इस अंक की दृश्यावली की परिवर्तन-यात्रा कैसी चलती रही है?। 2000 वर्ष पहले लिखे गये एवं सर्वश्रेष्ठ होने के कारण बार बार अभिनीत होते रहे, इस नाटक के चतुर्थाङ्क में निम्नोक्त परिवर्तन ध्यानास्पद हैं :-

(क) इस अंक के आरम्भ में मिश्र-विष्कम्भक रखा गया है, जिसमें दुर्वासा-शाप का प्रसंग आता है। यहाँ रंगमंच पर केवल दो सहेलियाँ ही हैं, और नेपथ्य में रहे दुर्वासा शापोच्चारण करके अन्तर्धान हो जाते है। किन्तु तत्पश्चात् दुर्वासा से शाप-मोचन माँगने के लिए कौन सखी जाती है?, एवं शकुन्तला से इस शाप-वृत्तान्त को संगोपित रखने का प्रस्ताव किस सखी ने रखा है?, पुष्पभाजन किसके हाथ से नीचे गिर जाता है? इस विषय में विवाद है। केवल प्राचीनतम काश्मीरी रंगावृत्ति में उसका मौलिक स्वरूप सुरक्षित रहा प्राप्त होता है। काश्मीरी पाठ के अनुसार शाप-मोचन की याचना करने के लिए अनसूया जाती है, क्योंकि दुर्वासा शाप देकर किस दिशा में गये है- वह अनसूया ने ही देखा था। प्रियंवदा के हाथ से पुष्पभाजन गिरता है तथा दृश्य के अन्त भाग में, शाप-वृत्तान्त शकुन्तला से संगोपित रखने का प्रस्ताव भी प्रियंवदा ने किया था। किन्तु मैथिली रंगावृत्ति में शाप-मोचन की प्रार्थना के लिए अनसूया जाती है, एवं उसीने ही शापवृत्तान्त संगोपित रखने का प्रस्ताव रखा है। ऐसा वक्त्री-परिवर्तन कैसे हो गया? उत्तर यह है कि मैथिली रंगकर्मियों ने, जब दोनों सहेलियाँ शकुन्तला के पास जा रही थी तब उनका रंगमंच पर परिक्रमण दिखाते समय अनसूया के मुख में एक नवीन उक्ति का प्रक्षेप कर दिया। जैसे कि, "एहि, देवकार्यम् तावत् निर्वर्तयावः"। जिसके कारण अनुगामिनी उक्तियों की वक्त्रियों में उलटफेर होता है, और शाप-वृत्तान्त को शकुन्तला से संगोपित रखने का प्रस्ताव अनसूया ही करती है। बंगाली रंगावृत्ति ने मैथिली पाठ का अनुगमन किया है। किन्तु दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने दो विशेष परिवर्तन कर दिये हैं :- इस रंगभूमि पर शाप-मोचन की याचना करने के लिए अनसूया नहीं जाती है, बल्कि वही प्रियंवदा को दुर्वासा के पास भेजती है। पुष्पभाजन अनसूया के हाथ से गिरता है और वही दृश्य के अन्त भाग में, शकुन्तला से शाप-वृत्तान्त संगोपित रखने का प्रस्ताव करती है। देवनागरी रंगावृत्ति ने यहाँ दाक्षिणात्य रंगावृत्ति का अनुसरण ही किया है।। (मैथिली रंगकर्मियों ने अनसूया के मुख में जिस उक्ति का प्रक्षेप किया है उसका परवर्ती काल के सभी रंगकर्मियों ने अनुसरण किया है।)।।

(ख) प्रथम दृश्य में कण्व मुनि का एक शिष्य "कियद् अवशिष्टं रजन्याः" जानने के लिए रंगमंच पर आता है, और चार श्लोकों से प्रातःकाल का निरूपण करता है। इन श्लोकों की प्रस्तुति काश्मीर, मिथिला एवं बंगाल के रंगमंच पर एक समान नहीं है। कालान्तर में आविष्कृत हुई दाक्षिणात्य एवं देवनागरी रंगावृत्ति में तो इनमें से केवल दो ही श्लोक उपलब्ध होते हैं। ऐसा लगता है कि जिन दो (कर्कन्धूनामुपरि तुहिनम्०। एवं पादन्यासं क्षितिधरगुरोः०।) श्लोकों को काश्मीरी तथा मैथिली में प्राथम्य दिया गया है, वे प्रकरण-संगत होने से कवि-प्रणीत हो सकते हैं। अन्य दो (यात्येकतोऽस्तशिखरम्०। एवं अन्तर्हिते शशिनि सैव०।) श्लोक प्रक्षिप्त हो सकते हैं, क्योंकि वे पुनरुक्ति-ग्रस्त हैं। तथा विरह, दुःख, करुण से भरा शकुन्तला-विदाई का प्रकरण निरूपित करना है उसमें तो वसन्ततिलका छन्द में लिखे गये ये श्लोक कथमपि उचित भी नहीं है। (उसमें तो मन्दाक्रान्ता छन्द में लिखे गये पहले दो श्लोक ही औचित्य रखते हैं, जो प्रासंगिक भी है।) बंगाली रंगकर्मियों ने इन दो प्रक्षिप्त श्लोकों को पहले-दूसरे क्रम पर रख दिये हैं तथा जो मौलिक प्रतीत होते हैं, उनको तीसरे-चौथे क्रम पर धकेल दिये हैं, जिसके कारण दाक्षिणात्य एवं

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

देवनागरी रंगकर्मियों ने, बंगाली रंगावृत्ति में पहले-दूसरे क्रम पर रखे दो श्लोकों को ही अपना लिया है, और संक्षेप सिद्ध कर लिया है। किन्तु वे प्रक्षिप्त दिख रहे हैं। (ये दोनों श्लोक अलंकारशास्त्रीय ग्रन्थों में कहीं पर कालिदास के पद्य के रूप में उद्धृत भी नहीं हुए हैं।)। यहाँ उल्लिखित पाठ-परिवर्तनों में प्रयोग-वैविध्य तो है ही, साथ में ही उनमें इन रंगावृत्तियों के आविष्कार का पौर्वापर्य भी झलकता है[1]।

(ग) "निसर्ग-कन्या शकुन्तला" की बिदाई के समय कण्वाश्रम के पशु-पक्षियों का विषाद भी कवि ने दृश्य का विषय बनाया है। इस स्थान पर, तीन गाथाएँ प्राप्त होती हैं :- 1. उद्गीर्णदर्भकवला मृगी०।, 2. पद्मिनीपत्रान्तरितां व्याहृतां नानुव्यावहरति जायाम्०।, 3. अद्यापि विना प्रियेण गमयति रात्रिं विसूरणादीर्घाम्०। जिनका स्वारस्य बताते हुए डॉ. एस. के. बेलवालकर जी ने कहा है[2] कि भले हि कण्व मुनि ने, या दोनों सखियों ने शकुन्तला को दुर्वासा के शाप का वृत्तान्त न कहा हो, किन्तु शकुन्तला, जो "निसर्ग-कन्या" है, उसको निसर्ग के पशु-पक्षियों ने तो चक्रवाक-युगल के व्यवहार से बता ही दिया था कि शकुन्तला के भाग्य में क्या लिखा है। इतना गम्भीर महत्त्व रखनेवाली इन गाथाओं को काश्मीरी एवं मैथिली रंगकर्मियों ने मंचन के योग्य समझा है। किन्तु बंगाल के रंगकर्मियों ने यहाँ संक्षेपमूलक दो परिवर्तन कर दिये हैं। जैसे कि, पुटकिनीपत्रान्तरितां व्याहृतो नानुव्याहरति प्रियाम्०। गाथा को रखा है, किन्तु उसके अनुसन्धान में आने वाली शकुन्तला की उक्ति (दुष्करं अहम् करोमि।) को निकाल दिया है। पूर्वोक्त तीसरी गाथा को भी सर्वथा निकाल दिया है। यानी बंगाली रंगकर्मियों ने इन गाथाओं का, अथवा कहें कि "निसर्ग-कन्या" का, सही स्वारस्य समझा ही नहीं है। वस्तुतः यहाँ रंगकर्मियों की संक्षेपीकरण की प्रवृत्ति ने नाटक को हानि पहुँचाई है। किन्तु दाक्षिणात्य एवं देवनागरी रंगकर्मियों ने बंगाली रंगावृत्ति का अनुसरण करते हुए, 'पुटकिनीपत्रान्तरितां व्याहृतो०' गाथा का त्याग अवश्य किया है, परन्तु शकुन्तला की तदनुगामिनी उक्ति को रंगमंच पर वाचा दी है, जो अनिवार्य थी। यानी इन दोनों ने, पाठ्यांश का संक्षेप करते समय यहाँ सावधानी बरती है।।

(घ) इस अंक के शकुन्तला-विदाई के प्रसंग में कुछ (अनिर्दिष्ट नामवाली) तापसियाँ भी रंगमंच पर आती हैं, और शकुन्तला को आशीर्वचन कहती हैं। यद्यपि इस दृश्य को अभी तक किसी भी विद्वान् ने रंगकर्मियों के द्वारा किये गये प्रक्षेप के रूप में देखा नहीं है। किन्तु वह संवाद-माला निश्चित ही प्रक्षिप्त हो सकती है। इस में किसी तापसी ने शकुन्तला को महादेवी शब्द को प्राप्त करनेवाली हो- ऐसा आशीर्वाद दिया है, दूसरी तापसी ने शकुन्तला को वीरप्रसविनी होने का आशीर्वचन कहा है। इतने आशीर्वचन कहने के बाद, वे रंगमंच से बाहर चली जाती है, "आशिसो दत्त्वा गौतमीवर्जं निष्क्रान्ताः"। गौतमी वहीं रंगमंच पर रहती है। परन्तु उपर्युक्त दोनों ही आशीर्वाद देने की पात्रता / शक्ति तो केवल पिता कण्व में ही हो सकती है। तथा उन्होंने ऐसे ही दो आशीर्वाद ("ययातेरिव शर्मिष्ठा पत्युर्बहुमता भव। पुत्रं त्वमपि सम्राजं सेव पूरुं समाप्नुहि।। 4-9" शब्दों से) समुदित रूप में कहा भी है। अतः स्थानिक लोकाचार जाननेवाले रंगकर्मियों ने इस अंश को दाखिल किया होगा। जिसका आरम्भ काश्मीर से शुरू हुआ है, और बाद में सर्वत्र स्वीकार्य रहा है।।

(ङ) कण्व मुनि ने ससुराल जा रही अपनी बेटी शकुन्तला को वैतानिक वह्नि की प्रदक्षिणा करवाई है, और अग्नि देवता से प्रार्थना की है कि वे उसका पालन-पोषण करें। किन्तु इस प्रार्थना को जिस श्लोक में शब्दबद्ध किया गया है, "अमीं वेदीं परितः क्लृप्तधूमाः०" उसको मंचन के समय कैसे प्रस्तुत किया जाय? इस विषय में काश्मीर, मिथिला एवं बंगाल के रंगकर्मियों ने कोई रंगसूचना नहीं दी है। परन्तु कालानुक्रम की दृष्टि से, सब से पहले तो दाक्षिणात्य एवं देवनागरी रंगकर्मियों ने ही "ऋक्छन्दसाशास्ते" ऐसी विशेष रंगसूचना दी है। जिससे, दक्षिण भारत में उस श्लोक को कैसे लय के साथ प्रस्तुत किया जाता होगा- उसका अन्दाजा मिल सकता है।

1. द्रष्टव्यः- धीमहि, (अंक-3, पृ. 76 से 89), चिन्मय इन्टर-नेशनल फाउन्डेशन, शोध संस्थान, एर्णाकुलम्, 2012 में "अभिज्ञानशाकुन्तल में अपि च से सम्बद्ध प्रक्षेप एवं संक्षेप की पहचान" शीर्षकवाला मेरा आलेख।
2. कालिदास-ग्रन्थावली, सं.-अनुवादक श्रीसीताराम चतुर्वेदी, अलीगढ, 1963 के परिशिष्ट में दिया आलेख।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(इसी तरह से चतुर्थांक के अन्य स्थानों पर भी जो जो पाठान्तर मिलते हैं, उनमें भी मंचनलक्षिता सोची जा सकती है, जिसका निरूपण अनुगामी प्रकरणों में किया भी है। पाठकों को अनुरोध है कि वे उनको वहीं देखलें। पुनरुक्ति से बचने के लिए "इति दिक्"।)

[5] पञ्चम अंक के पाठभेदों में प्रतिबिम्बित प्रयोग-वैविध्यः इस अंक के उपलक्ष्य में पाठ-परिवर्तन से जहाँ प्रयोग-वैविध्य पैदा हुए हैं उनमें से जो दो-तीन प्रमुख स्थान हैं, उनको विशद करना चाहिए:-

(क) इस अंक के प्रथम दृश्य में ही जो प्रस्तुति-क्रम का वैविध्य प्राप्त होता है, वही इस नाटक की पाँचों तथाकथित वाचनाओं के पाठ "रंगावृत्ति के पाठ" होने का अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत करता है:-1. यद्यपि बृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं में इस अंक का आरम्भ तो कंचुकी की उक्ति से ही होता है, तथापि उनमें बहुत अन्तर है। काश्मीरी रंगावृत्ति के अनुसार कञ्चुकी की उक्ति आदि से अन्त तक एकल उक्ति के रूप में प्रस्तुत नहीं होती है। इस पाठ में तो वह बीच में आकाशोक्ति (आकाश-भाषित)का भी आश्रयण करता है। जिसमें वह मौद्गल्य नामक परिजन से बात करता है। इस तरह की प्रस्तुति में स्पष्टतया नाटकीयता आती है, लेकिन मैथिली एवं बंगाली रंगावृत्तियों में ऐसी आकाशोक्ति का प्रयोग नहीं किया गया है। काश्मीरी रंगावृत्ति में कञ्चुकी के मुख में रहे तीन श्लोकों के बाद तुरन्त हंसपदिका-गीत का आरम्भ हो जाता है। जिसके कारण कञ्चुकी की उक्तियों का अतिविस्तार नहीं होता है। किन्तु मैथिली एवं बंगाली रंगावृत्तियों में कञ्चुकी की उक्ति में चार श्लोकों के बाद भी जब राजा और विदूषक का रंगमंच पर प्रवेश होता है, तब भी हंसवती के गीत का आरम्भ नहीं होता, राजा अपना अधिकार-खेद पहले व्यक्त करने लगता है। जिसको दूर करने के लिए वैतालिकों का श्लोक-गान शुरू हो जाता है। इस तरह से, मैथिली एवं बंगाली रंगावृत्तियों में सात श्लोकों के प्रस्तार में ग्लानिपूर्ण दृश्य एक समान प्रस्तुत होता रहता है, जो प्रेक्षकों एवं पाठकों को किसी नये कौतुक में आबद्ध नहीं कर पाता है। कहने का तात्पर्य यही है कि काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ में जो वैविध्य के साथ नाटकीयता उभर कर सामने आती है, वह अन्य दो रंगावृत्तियों में नहीं है।। 2. तथा, काश्मीरी रंगावृत्ति में दृश्य-क्रमांक में पहले कञ्चुकी की उक्ति, उसके बाद हंसवती का गीत आयेगा, तीसरे क्रम में वैतालिकों का गान आयेगा। परन्तु मैथिली एवं बंगाली रंगावृत्तियों में पहले कञ्चुकी की उक्ति, दूसरे क्रम में वैतालिकों का गान, तथा तीसरे क्रम में हंसवती का गीत प्रस्तुत होता है।। इन तीन रंगावृत्तियों के प्रतिपक्ष में, यानी दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों में देखा जाय तो मालूम होता है कि उन रंगकर्मियों ने अंक के आरम्भ में ही हंसपदिका-गीत को प्रस्तुत कर दिया है, और तत्पश्चात् कञ्चुकी की उक्तियाँ (जिनसे सस्त्रीक कण्वशिष्यों का आगमन कहा जाता है), तीसरे क्रम में वैतालिकों का श्लोक-गान रखा गया है।।

इस सन्दर्भ में सोचने से लगता है कि काश्मीरी रंगकर्मियों ने जो उपर्युक्त क्रम रखा है, उसमें कञ्चुकी की उक्ति के पश्चात् (दूसरे क्रम में) आनेवाले हंसवतिका के गीत से राजा दुष्यन्त उद्विग्न मनवाले होते हैं। तब कण्वशिष्यों का आगमन निवेदित किया जाता है। और उसके पीछे, यानी तीसरे क्रम में, वैतालिकों का श्लोक-गान रखा है। वैतालिकों के श्लोकों के शब्दों से राजा की धर्मबुद्धि आलोकित की जाती है। जिसके परिणाम स्वरूप वे (विस्मृत) शकुन्तला का प्रत्याख्यान दृढता के साथ कर सकते हैं।। किन्तु मैथिली एवं बंगाली रंगावृत्ति में कञ्चुकी की उक्ति के बाद राज-कार्य से परिश्रान्त हुए राजा का प्रवेश होता है, और वहीं पर वैतालिकों के श्लोक-गान से राजा के अधिकारखेद को दूर करने का प्रयोजन साधा जाता है। तत्पश्चात्, तीसरे क्रम में हंसवती का गीत प्रस्तुत होता है, जिससे राजा जननान्तर के सौहृद की याद आने पर उन्मनस्क हो जाते हैं। ऐसी मानसिकता में फँसे राजा को कण्वशिष्यों के आगमन का निवेदन किया जाता है। तब लगता है कि मिथिला एवं बंगाल के रंगकर्मियों ने, दुष्यन्त ने जिस मानसिकता के दबाव में शकुन्तला का प्रत्याख्यान किया है- उसकी ओर ध्यान देते हुए दृश्य-क्रम को बदल दिया है। काश्मीरी रंगकर्मी यह बताना चाहते हैं कि दुष्यन्त इतनी दृढता के साथ शकुन्तला का प्रत्याख्यान क्यूं कर सका है। परन्तु मैथिली एवं बंगाली रंगकर्मी लोग उन्मनस्क हुए दुष्यन्त के लिए शकुन्तला का प्रत्याख्यान करना कितना दुष्कर है? यह दिखाना चाहते हैं।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अल्प समयावधि में इस नाटक का मंचन कैसे किया जाय- इस विचार से आबद्ध दाक्षिणात्य (एवं तदनुगामी देवनागरी) रंगकर्मी लोग मूलपाठ को संक्षिप्त करने में दत्तचित्त तो थे ही। इस लिये उन्होंने कञ्चुकी की उक्ति को स्थानान्तरित किया है, तथा उनके द्वारा बोले जानेवाले चार श्लोकों में से एक श्लोक को हटा दिया है। किन्तु दृश्य-क्रम में हंसपदिका के गीत को प्रथम स्थान दे दिया है, जिसको सुन कर दुष्यन्त उद्विग्न हो जाते हैं, तत्पश्चात् कञ्चुकी की उक्ति आती है। कञ्चुकी के द्वारा कण्वशिष्यों का आगमन जान कर, राजा अग्निशरण मार्ग की ओर प्रस्थान करते हैं। तब तीसरे क्रम में वैतालिकों का श्लोक-गान आता है। इस गान को सुन कर वह अपने लिए कहते हैं कि- "एते वयं क्लान्तमनसः पुनर्नवीकृताः स्मः"। इस तरह वैतालिकों के श्लोक-गान से जिस क्लान्तमना की धर्मबुद्धि को जागृत किया गया है, उस दुष्यन्त ने शकुन्तला का प्रत्याख्यान किया है- ऐसा दिखला कर, इन दाक्षिणात्य एवं देवनागरी रंगकर्मियों ने तात्त्विक दृष्टि से काश्मीरी रंगकर्मियों का ही अनुसरण किया है। परन्तु दृश्य-क्रम में हंसपदिका-गीत को सर्व-प्रथम स्थान क्यों दिया होगा? वह भी विचारणीय है। हंसपदिका के गीत में "एनां चूतमञ्जरीं कथं विस्मृतोऽसि" ऐसे शब्द आते हैं, जिनसे सूचित होता है कि नायक शकुन्तला को भूल गया है। अंकारम्भ में इस गाथा को प्रस्तुत करके दाक्षिणात्य रंगकर्मी लोग अपने दर्शकों का इस बात पर ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं कि दुर्वासा का शाप अब दुष्यन्त के चित्त पर सर्वथा प्रभावी हो चुका है। इतनी व्यंजना के बाद यदि शकुन्तला का प्रत्याख्यान अभिनीत किया जाय तो वह कदाचित् अधिक उपयुक्त रहेगा। इस तरह के परिवर्तन में इतना गुणपक्ष होते हुए भी उन्होंने कञ्चुकी की उक्ति को जो स्थानान्तरित किया है- वह स्थान ठीक नहीं है। दाक्षिणात्य पाठ में हंसपदिका-गीत एवं वैतालिकों के श्लोक-गान के बीच में कञ्चुकी के तीन श्लोकवाली उक्ति रखी है। जिसके कारण पर्याकुलित हुए दुष्यन्त को कञ्चुकी की एकल उक्ति के दौरान पर्याकुलित स्थिति का लम्बे समय तक अभिनय करते रहना होगा। कञ्चुकी की उक्ति का इससे भिन्न एवं समुचित स्थान काश्मीरी पाठ में दिखता है। वहाँ पर बुढ़ापे के कारण होनेवाली एक तरह की विस्मृति का चित्र प्रेक्षकों को पहले मिलता है। तत्पश्चात्, उसके सामने हंसपदिका-गीत से दूसरे तरह की विशिष्ट विस्मृति का आभास मिलता है, जिससे दो विस्मृतियों का विरोध आकारित होता है। अतः लगता है कि पञ्चम अंक का उद्घाटन जिस तरह के दृश्य-क्रम के साथ काश्मीरी रंगावृत्ति में सुरक्षित रहा है- वह तुलनात्मक दृष्टि से सर्वाधिक नाट्यक्षम है।।

तथापि पञ्चमांक के प्रथम दृश्य की प्रस्तुति में ही जो त्रिविध क्रम दृष्टिगोचर होते हैं- उनको देख कर, "इन में से कवि-प्रणीत दृश्य-क्रम" क्या रहा होगा? उसका निर्णय करने की जल्द बाजी में दौड़ जाने से, बेहतर तो यही होगा कि इन पाँचों ही पाठों को रंगावृत्ति के पाठ के रूप में देखा जाय। क्योंकि इस तरह के दृश्य-क्रम के परिवर्तन के पीछे रंगकर्मियों का क्या लक्ष्य/प्रयोजन सुनिहित रहा होगा? यही सोचना तार्किक एवं उचित होगा। अन्यथा दृश्य-क्रमांक के निर्धारण के लिए कितने भी प्रयास किये जायेंगे, उनमें आत्मलक्षिता प्रविष्ट होगी ही, और वे विवादास्पद भी रहेंगे।।

(ख) शकुन्तला-प्रत्याख्यान की प्रस्तुति किस क्रम में प्रस्तुत की जानी चाहिए? उस विषय में रंगकर्मियों के बीच काफी मतभेद रहा है- यह हमने उपर्युक्त परामर्श से देखा। किन्तु मतभेद का क्षेत्र यहाँ तक सीमित रहा है- ऐसा भी नहीं है। बहुत पुरातन काल से प्रचलित हुई काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली पाण्डुलिपियों में दुष्यन्त को उद्दिष्ट करके शकुन्तला के मुख में एक गाथा रखी गई है। जैसे कि, यूयमेव प्रमाणं जानीथ धर्मस्थितं च लोकस्य। लज्जाविनिर्जिता जानन्ति न किमपि महिलाः।। (5-26) जिन रंगकर्मियों ने नायिका शकुन्तला को निःसहाय अबला के रूप में निरूपित करना नहीं चाहा होगा, उन रंगकर्मियों ने शकुन्तला से दुष्यन्त के साथ वाद-विवाद भी करवाया है। यह गाथा उसी का प्रमाण है। नाटकादि कला-माध्यमों से भी महिला-सशक्तीकरण का प्रयास किया जा सकता है- उसका भी यह प्रमाण है। किन्तु इस प्रसंग में मैथिली रंगावृत्ति का एक पाठभेद भी अतीव ध्यानास्पद है। इस गाथा का पूर्व सन्दर्भ देखा जाय तो जब दुष्यन्त कहता है कि- "भद्रे, प्रथितं दुष्यन्तस्य चरितं प्रजासु। नापीदं/न चापीदं दृश्यते"। तब उसके प्रतिभाव में उपर्युक्त गाथा शकुन्तला के मुख से निकलती है। यहाँ पर मैथिली रंगावृत्ति में "भद्रे, प्रथितं

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

दुष्यन्तस्य चरितं प्रजासु। तवापीदं दृश्यते" ऐसा पाठान्तर किया गया है। इस नये पाठान्तर के द्वारा दुष्यन्त से जब ऐसा कहा जाता है कि मेरा चरित्र तो प्रजा में सुविख्यात है, लेकिन तेरा (शकुन्तला का) चरित्र कैसा है- वह भी यहाँ दिख रहा है। तब इस ताने का सही प्रतिकार शकुन्तला ने पूर्वोक्त गाथा से किया है। वह बताती है कि हम महिलाएं लज्जा-क्रान्त होने से कुछ बोलती नहीं है, किन्तु इससे ऐसा मत मानना कि महिलाएं धर्मस्थिति क्या होनी चाहिए? यह नहीं जानती हैं। यानी धर्म-स्थिति जानने एवं समझने का एकाधिकार पुरुषों ने ही रखा है- ऐसा नहीं मानना।। स्थानिक रंगकर्मियों के प्रयोगावसर में कदाचित् ऐसे भी पाठ-परिवर्तन हुए हैं।।

[6] षष्ठ अंक के पाठभेदों में प्रतिबिम्बित प्रयोग-वैविध्यः यह अंक इयत्ता की दृष्टि से सब से लम्बा है। अर्थात् उसमें सर्वाधिक दृश्य आये हुए हैं। अतः उसमें से उदाहरण के रूप में कतिपय दृश्यों को लेकर प्रयोग-वैविध्य की चर्चा करेंगेः-

(क) मंचनलक्ष्यी परिवर्तनों में यदि कदाचिद् रसलक्ष्यिता का प्रयोजन भी सम्मिलित किया जाता है, तब वह सर्वप्रथम ध्यानाकर्षक बनता हैः- काश्मीर की रंगावृत्ति में दुष्यन्त की पूर्वपरिणीता रानी का नाम कुलप्रभा है। तथा षष्ठांक में, जब दुष्यन्त को धीवर के माध्यम से, शकुन्तला को दी हुई मुद्रा पुनः प्राप्त हो जाती है तब उसकी शाप-निवृत्ति होती है तथा उसको पुनः शकुन्तला की स्मृति हो आती है। अब, विरह की स्थिति में अपने द्वारा बनाया शकुन्तला का चित्र मँगवा कर, वह उस चित्र को पूरा करना चाहता है। इस निमित्त से राजा ने अपनी दासी (लिपिकरी) मेधाविनी को वर्तिका-करण्डक ले आने के लिए भेजा था। जिसको रास्ते में रानी कुलप्रभा की दासी पिङ्गलिका ने रोका एवं उसके हाथ में से वर्तिका-करण्डक छीन लिया - इस तरह काश्मीरी रंगावृत्ति में दो दासियों के बीच में स्पर्धा/संघर्ष होता है, ऐसा कहा गया है। किन्तु मैथिली रंगकर्मियों ने इसी स्थान पर एक भारी परिवर्तन किया है। इनके पाठ में, राजा की दासी मेधाविनी के हाथ में से रानी (वसुमती) ने वर्तिका-करण्डक छीन लिया है। (शकुन्तला के प्रति) स्पर्धा के भाव से ईर्ष्या-कषायिता हुई रानी ने स्वयं प्रवृत्त हो कर यह कार्य किया है- ऐसा जान कर विदूषक ने भी राजा की दासी मेधाविनी को मृगी स्वरूप कहा है, एवं वसुमती रानी को अन्तःपुर की व्याघ्री के रूप में वर्णित की है। तथा उसको अन्तःपुर का कूटपाश-कालकूटादि भी कहा है। (काश्मीरी पाठ के अनुसार, विदूषक ने दासी पिङ्गलिका को अन्तःपुर की व्याघ्री कहा है तथा अन्तःपुर के कूटपाशादि का नामोनिशान नहीं है)। यहाँ स्पष्ट है कि मैथिली रंगकर्मियों ने कालिदास के पुरोगामी दो नाटकों में जैसा पूर्व-परिणीता रानियों का संघर्ष निरूपित किया था, उसीका अवतार इस (मैथिल-पाठानुग) "अभिज्ञानशकुन्तल" में प्रक्षिप्त कर दिया है। (जिसको देख कर सुज्ञ दर्शक चौंक जायेगा। दुष्यन्त-शकुन्तला का जब नाटक के अन्त में मिलन होगा, तब भी शकुन्तला को पूर्ण शृङ्गार का सुख मिलने की सम्भावना नहीं रहती है। क्योंकि अन्तःपुर यदि ईर्ष्या-कषायित होगा तो नवपरिणीता को पूर्ण सुख-चैन नहीं मिल सकता है।) इस तरह का, यानी पूर्वपरिणीता रानी की ओर से होनेवाला संघर्ष काश्मीरी रंगावृत्ति में तनिक भी नहीं है। मैथिली रंगकर्मियों द्वारा किया गया यह प्रक्षेप अनुगामी काल की सभी वाचनाओं/ रंगावृत्तियों के पाठ में अनुकरणीय, अनुसरणीय बना है।।

इस सन्दर्भ में दूसरा बिन्दु यह कथनीय है कि काश्मीरी रंगावृत्ति में दो दासियों के जो नाम है, वे मैथिली रंगावृत्ति में यथावत् ग्राह्य रहे हैं। लेकिन बंगाली रंगावृत्ति में पिङ्गलिका को नया नाम देकर, 'चतुरिका' नाम से घोषित किया गया है। जिस परिवर्तन से ऐसा सिद्ध होता है कि जिसमें पूर्वपरिणीता रानी का संघर्ष नहीं है, वह काश्मीरी रंगावृत्ति का पाठ प्रथम क्रमांक पर स्थित है। मैथिली रंगावृत्ति का स्थान द्वितीय क्रम पर है, और बंगाली रंगावृत्ति तृतीय क्रम पर आता है। तदनन्तर, दाक्षिणात्य रंगावृत्ति ने राजा की दासी का भी नाम परिवर्तित करके "तरलिका" बना दिया है, अतः वह रंगावृत्ति चतुर्थ क्रमांक पर तैयार की गई होगी। सब के अन्त में, यानी पञ्चम क्रमांक पर वर्तमान देवनागरी का पाठ आकारित हुआ है, क्योंकि उसको दाक्षिणात्य संक्षिप्त पाठ की अपेक्षा से संक्षिप्ततर बनाया गया है। - यह है प्रयोग-वैविध्य में अन्तर्निहित आनुक्रमिक परिवर्तन-यात्रा।।

(ख) इस अंक के प्रवेशक में धीवर-प्रसंग आता है। इसमें जितने मंचनलक्ष्यी परिवर्तन हुए हैं, उनमें से कतिपय

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

ऐसे हैं :-1. धीवर ने अंगुलीयक कहाँ से, कैसे प्राप्त हुआ उसका वर्णन किया। इस बात की सच्चाई प्रमाणित करने के लिए, काश्मीरी-आदि रंगावृत्तियों के पाठों में स्याल उस अंगुलीयक को सूंघता है और फिर बताता है कि जानुक, यह अंगुलीयक मत्स्योदर में ही रहा था- उसमें तो कोई संदेह नहीं लगता है। किन्तु दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों में श्याल उस धीवर का पूरा शरीर ही विस्रगन्धी यानी आमगन्धी है- ऐसा महसूस / सूँघ कर कहता है कि यह मत्स्यबन्धन (माछीमारी) करनेवाला ही होगा ऐसा लगता है। अर्थात् लघुपाठों के अनुसार, रंगमंच पर अंगुलीयक को सूंघने की चेष्टा के स्थान पर, धीवर का शरीर ही सूँघ कर परीक्षा ली जाती है। 2. तदुपरान्त, मंचनलक्ष्यी अन्य भेद यह है कि दाक्षिणात्य पाठ में धीवर को "घोराकृति" कहा है, और देवनागरी पाठ में उसको "गोधादी" कहा है। दाक्षिणात्य पाठ का सम्बन्ध वेशभूषा के साथ था, देवनागरी पाठभेद का सम्बन्ध धीवर के दुर्गन्धी शरीर के साथ है। 3. काश्मीरादि रंगावृत्तियों में धीवर की मागधी प्राकृत भाषा का दाक्षिणात्य एवं देवनागरी में परिवर्तन करके, उसको महाराष्ट्री प्राकृत का स्वरूप दिया गया है। इति दिक्।।

(ग) शकुन्तला का प्रत्याख्यान होने के बाद, उसकी माता मेनका उसको उठा कर, अन्तरिक्षस्थित मारीच ऋषि के आश्रम में पहुँचा देती है। परन्तु धीवर से राजमुद्रा मिल जाने के बाद विरह-संतप्त राजा दुष्यन्त के कैसे हाल हुए हैं?- उसकी जानकारियाँ शकुन्तला तक पहुँचाने के लिए कवि कालिदास ने एक अप्सरा का पात्र प्रस्तुत किया है। किन्तु रंगभूमि पर किसी अप्सरा को प्रस्तुत करने के लिए कैसा आहार्य (वेशभूषा एवं मेक-अप) होना चाहिए? यह रंगकर्मियों की चिन्ता का विषय था। काश्मीर की रंगावृत्ति में इस अप्सरा का नाम "अक्षमाला" रखा गया है, मैथिली एवं बंगाली रंगावृत्तियों में नामान्तर "मिश्रकेशी" प्राप्त हो रहा है। तथा दाक्षिणात्य एवं देवनागरी रंगावृत्तियों में उसी अप्सरा का नाम "सानुमती" मिलता है।। एक ही अप्सरा के तीन तरह के नाम ही उनकी वेशभूषाओं का वैविध्य प्रकट कर रहे हैं। जैसे कि, काश्मीर की रंगभूमि पर रुद्राक्ष की माला को धारण की हुई अप्सरा प्रस्तुत की गयी होगी, क्योंकि उसको अक्षमाला नाम दिया गया है। मिथिला एवं बंगाल की रंगभूमियों पर श्वेत-श्याम रंगवाले केश को धारण करनेवाली अप्सरा होगी, क्योंकि उसका नाम मिश्रकेशी दिया गया है। तत्पश्चात् उसी अप्सरा को दाक्षिणात्य एवं देवनागरी रंगावृत्तियों में सानुमती नामवाली कहा गया है। अतः उसने अपने मस्तक पर मुकुट धारण किया होगा ऐसा हम सोच सकते हैं। क्योंकि उसको सानुमती नाम दिया है।। इस तरह से, अप्सरा की रंगमंच पर प्रस्तुति करने के लिए विभिन्न काल एवं प्रदेश के रंगकर्मियों ने अलग अलग वेशभूषा सोची है, एवं तदनुसार उसके नामान्तर दाखिल किये हैं।।

इस अप्सरा के पात्र के साथ जुड़ा दूसरा बिन्दु ऐसा है कि अक्षमाला (अपर नाम मिश्रकेशी एवं सानुमती) की उक्तियों की संख्या में एकरूपता नहीं है। क्योंकि काश्मीरी वाचना के पाठ में अक्षमाला के मुख में जितने वाक्य रखे गये हैं उनसे कहीं अधिक वाक्य मैथिली एवं बंगाली वाचना के पाठ में मिलते हैं। इस तरह के अधिक वाक्यों का प्रभाव देवनागरी तथा दाक्षिणात्य वाचना के पाठ में भी दृष्टिगोचर हो रहा है। दूसरे शब्दों में कहें तो काश्मीरी पाठ में निरूपित अक्षमाला परोक्ष में रह कर राजा की विरहावस्था का आकलन कर रही है और बहुत कम स्थानों पर, छोटे वाक्य में ही अपना मनोगत विचार व्यक्त करती है। उसकी अपेक्षा से कहीं अधिक मात्रा में मैथिली पाठ की मिश्रकेशी अपने प्रतिभाव/ प्रतिक्रियाएं व्यक्त करने में ज्यादा सक्रिय है। मिश्रकेशी न केवल अधिक सक्रिय है, वह दुष्यन्त-शकुन्तला के प्रणय-प्रसंग से सम्बद्ध आनुषंगिक प्रश्नों की कल्पना करके, (उदाहरणतया- प्रत्याख्यान से दुःखी एवं अपमानित हुई शकुन्तला के मन में दुष्यन्त के प्रति कोई शिकायत थी या नहीं?, शकुन्तला के मन का समाधान कैसे हुआ होगा?) उन सब के उत्तर देने का प्रयास भी करती है। लगता है कि मैथिली रंगकर्मियों ने अपने देश-काल के प्रेक्षकों के दिमाग में उठनेवाले तर्क-वितर्क का समाधान देने का उपक्रम किया है। अलबत्ता, इसमें मूल कवि को अभिप्रेत ही न हो ऐसी कईं बातें प्रविष्ट हुई हैं, प्रक्षिप्त हुई हैं।।

एवमेव, इस अप्सरा का रंगमंच पर कैसे निष्क्रमण दिखाया जाय? इस विषय को लेकर भी इन रंगावृत्तियों में द्विविध प्रस्तुतियाँ दिख रही हैं :-अक्षमाला-मिश्रकेशी-सानुमती अप्सरा होने के नाते जब रंगमंच से बाहर जाती है तब पाँचों पाठों में "उद्भ्रान्तकेन निष्क्रान्ता" ऐसी रंगसूचना से एक समान आङ्गिक अभिनय का निर्देश है। किन्तु केवल काश्मीरी रंगावृत्ति में ही, जब दुष्यन्त अपनी अनपत्यता से संतप्त होकर मूर्च्छित हो गये हैं, तब अक्षमाला रंगमंच से निकलने के पहले बताती

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

है कि- "०यज्ञभागोत्सुका देवा एव तथा करिष्यन्ति यथैष राजर्षिस्तया सहधर्मचारिण्या समागमिष्यति।" (नभोऽवलोक्य) करिष्यन्ति कथमेव, तत्र प्रेक्षे। यावद् अनेन वृत्तान्तेन प्रियसखीं समाश्वासयामि। इसमें अक्षमाला आकाश की ओर देख कर प्रेक्षकों को सूचित कर ही देती है कि स्वर्गलोक से कोई (मातलि) आ रहा है।। परन्तु परवर्ती काल की एक भी अन्य रंगावृत्ति में मातलि का आगमन सूचित किये बिना ही मिश्रकेशी / सानुमती रंगमंच से चली जाती है। इस क्षण पर सहृदय प्रेक्षकों को निश्चित रूप से ऐसा लगता होगा कि रंगमंच पर एक ओर राजा बेसुध अवस्था में गिरा हुआ पड़ा है, और उसको ऐसे ही छोड़ कर यह अप्सरा जा रही है। परवर्ती काल में हुआ यह मंचनलक्ष्यी परिवर्तन खटकनेवाला सिद्ध होता है। यहाँ काश्मीरी रंगावृत्ति का पाठ ही नाट्य-शास्त्रीय मर्यादा का पालन करनेवाला लगता है।।

(घ) कालिदास ने इस नाटक में दुष्यन्त, विदूषक, सेनापति, अमात्य पिशून, रानी वसुमती एवं हंसपदिका आदि जैसे मानवीय पात्र प्रस्तुत किये हैं। नायिका शकुन्तला अर्धदैवी पात्र है। इनके साथ साथ कतिपय मिथकीय पात्र भी हैं, जिनमें मेनका, सानुमती / मिश्रकेशी अप्सराएं, इन्द्र-सारथि मातलि इत्यादि हैं। ऋषिगण में कण्व, मारीच, अरुन्धती, गौतमी, दुर्वासा, विश्वामित्र आदि का समावेश होता है। तदुपरान्त, हरिण-हरिणी, (दीर्घापांग नामक) मृगपोतक, चक्रवाक पक्षी-युगल, भ्रमर, केसरवृक्ष, वनज्योत्स्ना नवमालिका जैसी लताएँ इत्यादि भी नाट्यसृष्टि के अनिवार्य पात्र हैं।। अब, षष्ठांक की पात्रसृष्टि को देखते हैं तो नाट्यकार कालिदास की सोची हुई एक नवीन योजना, जो रंगकर्मियों से सर्वथा अनजान रही है, उसका परामर्श किया जाता है:-षष्ठांक के प्रथम दृश्य में दो उद्यानपालिकाओं का संवाद आता है। वे दोनों कौन हैं? यह विचारणीय है। प्रथमा के नाम से एक परभृतिका, और द्वितीया के नाम से मधुकरिका यानी एक छोटी सी मधुमक्षिका[1] को ही स्त्री-पात्र का रूप देकर, कालिदास ने रंगमंच पर प्रस्तुत करने का आयोजन किया है। इन पात्रों की प्रस्तुति में वेशभूषा बदल जायेगी। जिस तरह से भास ने दूतवाक्य में, गरुड पक्षी रूप वाहन, पांचजन्य शंख, सुदर्शन चक्र, नन्दक असि, कौमोदकी गदा इत्यादि को मानवाकृति के रूप में (निश्चित व्यक्तित्व-धारी पात्र बनाकर) प्रस्तुत किये थे, उसी के अनुसार कालिदास ने भी यहाँ जीव-जन्तु और पक्षी को भी स्त्रीरूप में रंगमंच पर प्रस्तुत किया है यह अद्यावधि अनुल्लिखित रहा नाटकीय तथ्य ध्यानार्ह है।। प्रायः सभी विद्वान् पाठसम्पादकों और अनुवादकों ने इन दोनों को "चेटियाँ" के रूप में ही पहचाना है। लेकिन मंचन के दौरान चेटियों की वेशभूषा में और स्त्री-रूपधारी कोकिला तथा मधुमक्षिका की वेशभूषा में बहुत ही अन्तर आ जायेगा। यदि पाठसंशुद्धि नहीं होगी, तो निश्चित है कि हम यहाँ पात्रसृष्टि के वैविध्य के विषय में नाट्यकार कालिदास को सही स्वरूप में नहीं देख पायेंगे।।

(ङ) चित्रफलक प्रसंग के पाठ्यांश में मंचन की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण पाठभेद है। जैसे कि, राजा जब लिपिकरी मेधाविनी को वर्तिका लेने के लिए भेजते हैं, तब उसने विदूषक के हाथों में शकुन्तला का चित्र सौंप दिया है ऐसा काश्मीरी पाठ में बताया गया है। किन्तु मैथिली वाचना में, और तदनुगामिनी बंगाली वाचना के पाठ में वह चित्रफलक राजा ने ही मेधाविनी से मांग कर अपने हाथों में धारण किया है। मंचन की दृष्टि से यह पाठभेद बहुत महत्त्व रखता है। जैसे कि, काश्मीरी पाठ में राजा जब कहते हैं कि यदि यह भ्रमर मेरे अनुशासन में नहीं रहेगा तो मैं उसे कमलोदर में बन्द कर दूँगा। तब विदूषक ने कहा कि राजा तो अभी उन्मत्त हुए हैं, और मैं भी उनके साथ साथ वैसा ही हो गया हूँ। अब राजा भावाविष्ट होकर, विदूषक के हाथ में रहे चित्रफलक में चित्रित शकुन्तला को सजीव पात्र मान कर सम्बोधन करते हैं कि, हे प्रिये! मैं अब तेरे और भ्रमर के बीच में खड़ा हूँ। इस तरह रंगमंच पर चित्रस्थ भ्रमर और राजा के बीच जो द्वन्द्व रचा गया है वह नाटकीयता से परिपूर्ण है। इसके सामने मैथिली एवं बंगाली पाठवाली योजना में, शकुन्तला का चित्र तो राजा ने अपने हाथ में ही ले लिया है। इसलिए चित्रस्थ भ्रमर और राजा के बीच द्वन्द्व खड़ा करने की गुँजाईश ही नहीं है। अतः इन दोनों में से "प्रिये, स्थितोऽहम् एतावति"। ऐसा काश्मीरी वाचना का वाक्य (और तदनुरूप आङ्गिक अभिनय) हटाया गया है।।

[7] सप्तम अंक के पाठभेदों में प्रतिबिम्बित प्रयोग-वैविध्यः इस अंक में निर्वहण सन्धि का उपक्रम किया गया है। समग्र नाटक के घटनाचक्र का उपसंहार करते समय रंगकर्मियों से प्रयोग-कौशल की अपेक्षा रहती है, एवं

1. मैथिली एवं बंगाली रंगावृत्तियों में मधुकरिका के लिए मधुरिका शब्द का प्रयोग हुआ है, लेकिन वह अपपाठ है।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रयोग-वैविध्य दिखलाने का अवकाश भी होता है। काश्मीर के रंगकर्मियों ने अपनी प्रतिभा का करिश्मा इस अंक के प्रवेशक में दिखलाया है। जैसे कि, इस प्रवेशक में नाकलासिकाओं का नृत्य रखा गया है। षष्ठांक के अन्त भाग में हमें बताया गया है कि इन्द्र ने दुर्जय दानवबल को परास्त करने के लिए दुष्यन्त को पृथिवी लोक से बुलाया था। अतः वह मातलि के साथ स्वर्गलोक में पहुँचा था। वहाँ वह दानवगण पर आक्रमण करने के लिए जिस दिन जानेवाला था उस दिन उसके मंगल की कामना करते हुए कुछ प्रेक्षणक (यानी दर्शनीय नृत्य) प्रस्तुत करना था। इस लिए देवगुरु नारद ने पारिजातमञ्जरी नामक नाकलासिका को कहा था कि किसी दूसरी लासिका को बुला कर ले आओ। लेकिन, पारिजातमञ्जरी को रास्ते में जब दूसरी चूतमञ्जरी नामक लासिका मिल जाती है, तो उसने बताया कि दुष्यन्त ने तो पृथिवीलोक में वापस जाने का आरम्भ भी कर दिया है। अब किसके लिए नृत्य प्रदर्शित करना है? इस तरह, इन दो नाकलासिकाओं की बातचीत से प्रेक्षकों को बताया जाता है कि दुष्यन्त ने एक ही क्षण में दुर्जय दानवबल पर विजय प्राप्त कर ली है और वह स्वर्गलोक से वापस लौट रहा है। तब पारिजात-मञ्जरी ने कहा कि उपाध्याय नारद ने जो नृत्य पुरुवंश के राजर्षि के सामने प्रस्तुत करने की आज्ञा दी थी, वही नृत्य यहाँ पर कर लेते हैं।। एक अर्थोपक्षेपक के रूप में इस प्रवेशक का प्रयोजन स्पष्ट है। तथापि विद्वानों के लिए इसकी मौलिकता संदेहास्पद है, दूसरी ओर डॉ. एस. के. बेलवालकर जी के मत से वह कालिदास-प्रणीत हो सकता है। किन्तु यहाँ उस चर्चा में हम नहीं जायेंगे।।

मान लीजिए कि काश्मीरी रंगकर्मियों द्वारा किया हुआ यह प्रक्षेप है, तो भी यह ध्यानास्पद है। क्योंकि इस प्रवेशक ने न केवल वृत्त-वर्तिष्यमाण घटना का सूचन किया है, उसने रंगकर्मियों को नृत्य का मौका भी दिया है। किन्तु इस प्रवेशक में जो गाथा आती है, जिसके आश्रित होकर नाकलासिकाओं ने रंगमंच पर नृत्य पेश किया है, उसका वाक्यार्थ विचारणीय है:-"अविषयगमनं कंचन अन्यं च सरागमालि मधुसमये। अन्यं करोति विसंज्ञं, पात्यमानं भूम्याम्।।" (इस गाथा का प्राकृत-पाठ बडा संदिग्ध है, विवादास्पद है[1]। क्योंकि उनमें प्रतिलिपि-कर्ताओं का दोष भी हो सकता है।) इस आर्या का प्रसंगानुसारी ऐसा अर्थ हो सकता है कि मधुमास में जैसे किसी (भ्रमर) की स्थिति विषय-गमन से उपरत होती है, वैसे मारीच के आश्रम में शकुन्तला की स्थिति विषयोपभोग से विरत हुई दिखती है। मधुमास में कोई दूसरा (भ्रमर), प्रकृत में दुष्यन्त, रागानुरक्त होता है। वही मधुमास में किसी तीसरा व्यक्ति (भ्रमर), याने दानवगण स्वर्गलोक में परास्त होकर गिर जाता है, विसंज्ञ होता है[2]।। यहाँ इस आर्या के शब्दार्थ का कोई गूढ साम्य नाटक के आरम्भ में नटी के द्वारा गाई "क्षणचुम्बितानि भ्रमरैः०" इत्यादि आर्या के साथ क्या सोचा जा सकता है? ऐसा प्रश्न होता है। महाकवि कालिदास ने नाटक के उपक्रमोपसंहार में शायद कुछ कहा होगा, ऐसी आकूति मन में पैदा हो रही है।। काश्मीरी रंगावृत्ति में सुरक्षित रही यह गाथा महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि यदि इस गाथा के पीछे उपर्युक्त मर्म संगोपित रहा होगा, तो काश्मीरी रंगकर्मियों का वह विशेष प्रदान माना जायेगा।

(क) अब इस अंक की दृश्यावली में हुए मंचनलक्ष्यी परिवर्तन की चर्चा करते हैं :- काश्मीरी वाचना को छोड़ कर अन्य सभी वाचनाओं में, तापसी की उक्ति इस तरह की है:- "सव्वदमण, सउन्द-लावण्णं पेक्ख। (सर्वदमन, शकुन्तलावण्यं प्रेक्ष्य।)" बालक सर्वदमन ने तुरंत कहा कि कहाँ है मेरी माता?। (तापसी ने "शकुन्त=पक्षी का लावण्य") देख, ऐसा कहा था। लेकिन बालक ने तो "शकुन्त-ला" ऐसे शब्द को ही पकड़ लिया, और पूछ लिया कि कहाँ है मेरी माता।) तब दोनों तापसियाँ बोलती हैं कि नाम-सादृश्य से यह मातृवत्सल बालक वंचित (छलित) हुआ है। जिसको सुन कर दुष्यन्त को तुरंत विदित हो जाता है कि इस बालक की माता का नाम "शकुन्तला" है। इस तरह की उक्ति में उत्कृष्ट प्रकार की नाटकीय संवादकला झलकती है। किन्तु इसी उक्ति के सन्दर्भ में काश्मीरी वाचना का पाठभेद जब दृष्टिगोचर होता है तो बडा आश्चर्य होता है। क्योंकि उसमें "सउन्तलावण्णं पेक्ख" ऐसा

1. द्रष्टव्यः-अभिज्ञानशकुन्तला नाटकम् (काश्मीरी वाचना की समीक्षितावृत्ति), सं. वसन्तकुमार म. भट्ट, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, 2017, (पृ. 309 से 312)

2. डॉ. बेलवालकर जी ने इस आर्या का अंग्रेजी अनुवाद ऐसा दिया है:-This time of the Spring, while it renders someone averse to the influence of love, another, My Friend, is filled with passion : while a third it makes senseless, being thrown down on the earth. Ibid, page : 24.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

वाक्य है ही नहीं! यहाँ पर शारदा पाण्डुलिपियों में तापसी की उक्ति इस तरह की है:-सव्वदमण, सउन्तला ....। (सर्वदमन, शकुन्तला ....।) तापसी कुछ आगे भी कहने जा रही थी, लेकिन मातृवत्सल बालक सहसा बीच में ही पूछ लेता है कि कहाँ है मेरी माता। तापसी की पूर्ण उक्ति इस तरह से आगे सुनने को मिलती है:- "वत्स, शकुन्तला भणति। अस्य कृत्रिममयूरस्य रमणीयतां पश्येति"। तो इस तरह की वाचिक-योजना में भी नाटकीय ढंग से दुष्यन्त को विदित किया जाता है कि इस बालक की माता का नाम "शकुन्तला" है। यहाँ पर पूर्वोक्त दोनों ही पाठभेदों में से कौन मौलिक हो सकता है? यह कहना विवादग्रस्त होगा। तथापि यह भी स्मर्तव्य है कि शारदालिपि में संचरित हुआ एवं सुरक्षित रहा काश्मीरी वाचना का पाठ ही प्राचीनतम होने का दावा कर रहा है। यानी यदि काश्मीरी रंगावृत्ति प्राचीनतम है, तो उपर्युक्त संवाद की योजना बदलने का यश मैथिल रंगकर्मियों को देना होगा।।

(ख) इस कृति के भरत-वाक्य के पूर्व में 1. "क्रतुभिरुचितभागांस्त्वं सुरान्०"। तथा 2. "तव भवतु बिडौजा: प्राज्यवृष्टि: प्रजासु०" ऐसे दो शुभाशंसा व्यक्त करनेवाले श्लोक भी मिलते हैं। इनमें से केवल पहला श्लोक काश्मीरी रंगावृत्ति में दिया गया है। परन्तु मैथिली रंगावृत्ति में दोनों ही श्लोक प्राप्त होते हैं। बंगाली रंगावृत्ति में इनमें से केवल दूसरा श्लोक ही स्वीकार्य रहा है। यहाँ विचारणीय बिन्दु यही है कि नाटक यदि एक समयबद्ध कला है तो भरत-वाक्य अकेला ही पर्याप्त है। उसके पूर्व में आये हुए इन दो श्लोकों का कर्तृत्व रंगकर्मियों का ही हो सकता है। अब, प्रश्न होगा कि ऐसी विशेष शुभाशंसा व्यक्त करनेवाले श्लोक कब दाखिल हो सकते हैं?, तो लगता है कि मैथिली रंगावृत्ति में नाटक की प्रस्तावना में एक निर्देश दिया है कि- 'रसभाव-विशेषदीक्षागुरो: श्रीविक्रमादित्यस्य साहसाङ्कस्य अभिरूपभूयिष्ठा परिषदियम्'। इसमें कहा गया है कि साहसाङ्क यानी चन्द्रगुप्त-2 के काल (ई. स. 3-4थी शती) में, उसकी राजसभा में मैथिली रंगावृत्ति के पाठानुसार इस नाटक का मंचन हुआ था। इस कारण से भरत-वाक्य के पूर्व में भी नवीन श्लोक का प्रक्षेप करके तत्कालिक / सम्मुख विराजमान राजा को शुभाशंसा दी जाती है। (राजशेखर ने काव्यमीमांसा में कहा भी है कि साहसांक की राजसभा में काव्य- प्रस्तुतियाँ होती थी)।।

****** ******* ******* ******* ****** ****** ******

निष्कर्षत: (1) महाकवि कालिदास ने अभिज्ञानशकुन्तला नाटक की रचना की, लेकिन उसके बाद वह रचना उनकी नहीं रही। क्योंकि कोई भी नाट्यकृति अभिनेय-काव्य होने के कारण जैसे ही रंगकर्मियों के हाथ में चली जाती है, वैसे ही वह कृति उनके हाथों से नया रूप धारण करती है। उपर्युक्त उदाहरणों से यह हकीकत समर्थित होती है।अत: वर्तमान में पाँच वाचनाओं के जो पाठ प्रकाशित हुए हैं, उन सभी को "रंगावृत्ति के पाठ" ही घोषित करना सयुक्तिक माना जायेगा। (2) इस नाटक के विविध दृश्यों की इस मंचनलक्ष्यी परिवर्तन-यात्रा का गुणात्मक दृष्टि से मूल्यांकन किया जाय तो,यह परिवर्तन-यात्रा इस नाटक की विकृति-यात्रा का ही इतिहास प्रस्तुत कर रही है! तथा उनमें रंगावृत्ति के आविष्कार का जो क्रम परिलक्षित होता है वह प्रथम काश्मीरी, द्वितीय मैथिली, तृतीय बंगाली, चतुर्थ दाक्षिणात्य और अन्त में देवनागरी रंगावृत्ति बनाई गई है। (3) यह भी हकीकत है कि उपलब्ध हुई किसी भी पाण्डुलिपि/वाचना के पाठ में कवि-प्रणीत मूलपाठ की धारा साद्यन्त एवं अपरिवर्तित संचरित हुई हो- ऐसा दिखता नहीं है।।

रंगावृत्तियों के आन्तर प्रवाहों का चित्र:- इस नाटक की रंगावृत्तियों की आनुक्रमिकता निश्चित करने के बाद भी एक सूक्ष्म बात की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना जरूरी लगता है। कोई भी नाट्यकृति प्रथम क्षण में एक-कर्तृक रचना होती है। लेकिन वह जैसे ही रंगकर्मियों के हाथ में जाती है, वैसे ही वह अनेक-कर्तृक रचना बन जाती है। इसी कारण से कालिदास का यह सर्वश्रेष्ठ नाटक सर्वाधिक लोकप्रिय होने के कारण बार बार अभिनीत होता रहा है। जिसके फलस्वरूप आज उसकी पाँच रंगावृत्तियाँ हमें मिल रही हैं। किन्तु हमने यह भी देखा है कि वे सब काश्मीर की रंगावृत्ति की ही वंशज रंगावृत्तियों के रूप में क्रमश: आविष्कृत हुई हैं। अत: इन सब की अस्मिता एवं वैशिष्ट्य को पहचान ने के लिए हमें तीन प्रश्न उठाने होंगे। जैसे कि, 1. किस रंगावृत्ति ने कितने अंश अपने पुरोगामी पाठ में से लिये हैं?, 2. पुरोगामी पाठ का कितना अंश छोड़ दिया है?, 3. कितना अंश अपनी ओर से नया जोड़ा है?। इस विषय का निरूपण भी इति दिङ्-न्याय से एवं

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

उदाहरणतया करना आवश्यक है:- (क) काश्मीरी रंगकर्मियों ने स्वयं जो वल्कलशिथिलीकरण के दृश्य का स्थानान्तरण किया है, उनके साथ तृतीयांक के अश्लीलतापूर्ण श्लोक किसी पुरोगामी से लिये हैं। यानी काश्मीरी रंगावृत्ति में कवि-प्रणीत मूलपाठ की बहुशः रक्षा (संचरण) होने के साथ किसी अज्ञात रंगकर्मियों के भी हाथ मिले जुले हैं। परिणामतः काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ को हम द्वि-कर्तृक रचना के रूप में देखते हैं। (ख) मैथिली रंगकर्मियों ने जब अपने रंगमंच के लिए पाठशोधन किया तो वही पाठ त्रि-कर्तृक रचना बन गई। जिसमें तृतीयांक के अश्लील श्लोक स्वीकारने के साथ बहुत सारे नये श्लोकों का प्रक्षेप किया। तथा सप्तम अंक का नाकलासिका दृश्य यानी प्रवेशक हटाया गया है, पंचम अंक के आरम्भ में दृश्य-क्रम थोडा सा बदला गया, एवं पूर्वपरिणीता रानी का संघर्ष नया शामिल किया गया है। (ग) तत्पश्चात् बंगाल प्रदेश के रंगकर्मियों ने अपना कलाकौशल दिखाया, जिससे वही पाठ चतुष्कर्तृक रचना के रूप में आविष्कृत हुआ। इन लोगों ने भी तृतीयांक का अश्लील पाठ्यांश ग्राह्य तो रखा। लेकिन कुसुमशयना शकुन्तला का जो दृश्य था उसको पुनः परिष्कृत करके, उसके मूल रूप में स्थापित किया। किन्तु उन्होंने संक्षेपीकरण की प्रवृत्ति का आरम्भ भी किया। जिसमें कहीं पात्रसंख्या कम की, तो अन्यत्र कहीं चक्रवाक पक्षी से जुड़ी गाथा में कटौती की। किन्तु मैथिलियों द्वारा दाखिल किया पूर्वपरिणीता रानी का संघर्ष स्वीकार लिया। साथ में मेधाविनी दासी के नाम का नवीनीकरण भी शुरू किया। (घ) दाक्षिणात्य रंगकर्मियों द्वारा इस नाटक के परम्परागत रंगावृत्तियों के उपर्युक्त तीनों पाठों का यथेच्छ विनियोग करने साथ के साथ, अपना कौशल सविशेष रूप से संक्षेपीकरण में ही दिखाया। अतः उनके हाथ से इस नाटक का पाठ पञ्च-कर्तृक रचना के रूप में हमारे सामने आता है। इन रंगकर्मियों ने काश्मीरी पाठ में बहुत प्राचीन काल से संचरित हुए तृतीयांक के अश्लील श्लोकों को तो हटा दिया, लेकिन उसके साथ में उसी अंक के अन्य दो मूलगामी दृश्यों की भी कटौती कर दी। विशेषतः, कुसुमशयना शकुन्तला दृश्य को परस्पर विरुद्ध त्रिविध रंगसूचनाओं के साथ पेश किया। तथा सर्वत्र महाराष्ट्री प्राकृत का उपयोग किया। ये दो-तीन आघात करने के बावजुद भी जो कुछ अच्छा किया, वह इस तरह का है:- मृगयाविहारी राजा को चक्रवर्ती पुत्र प्राप्ति होने के दृश्य को सर्वाधिक नयनरम्य बनाया तथा पञ्चम अंक का आरम्भ सर्वथा बदल कर हंसपदिका के गीत से किया, यद्यपि उसमें काश्मीरी पाठ की सुषमा बनाये रखी है। तदुपरान्त, नायक दुष्यन्त को वयस्य से महाराज की पदवी पर पहुँचाया, और शकुन्तला को मुनिकन्या (कण्व की कन्या) में से राजर्षिकन्या (विश्वामित्र की कन्या) के दरजे के साथ प्रस्तुत करना शुरू किया। (ङ) देवनागरी रंगकर्मियों ने उसी पाठ को संक्षिप्ततर बनाया। जिसके फलस्वरूप यह पाठ षट्-कर्तृक रचना बनी है। अन्ध-परम्परा से उसी लघुपाठ को कालिदास-प्रणीत पाठ समझ कर, दुर्भाग्य से हम उसीको सौ डेढ़ सौ साल से पठन-पाठन में ढो रहे हैं।।

[6]

रंगावृत्तियों के अनुमानित कालखण्डः- ब्राह्मी लिपि से क्रमिकतया निकली शारदा लिपि का प्रचलन, पुरातत्त्वीय प्रमाणों से, सातवीं या आठवीं शती में बताया जाता है। अतः काश्मीर की शारदा पाण्डुलिपियों में संचरित हुआ काश्मीरी वाचना का पाठ 7वीं शती से भी पहले का अनुमाना जा सकता है। जैसा कि हमने अन्यत्र[1] सप्रमाण दिखाया है वैसा मैथिली वाचना में उपलब्ध हो रहा पाठ तो साहसाङ्क चन्द्रगुप्त-2 के समय में तैयार किया गया था। गुप्तकाल में, याने चौथी शताब्दी में विक्रमादित्य नाम-धारक चन्द्रगुप्त-2 की राजसभा में, इस नाटक का मंचन करने के लिए मैथिली संस्करण बनाया गया था[2]। इस हिसाब से देखा जायेगा तो, काश्मीर की शारदा-लिपि में संचरित हो रहा पाठ सम्भवतः दूसरी या तीसरी शताब्दी में

1. विक्रम युनिवर्सिटी, उज्जयिनी की पत्रिका "The Vikram", Kalidasa Special Number, Vol. 17, 2015, (pp.1 -15) में "कालिदास और विक्रमादित्य - नवोन्मेष" शीर्षकवाला शोध-आलेख द्रष्टव्य है।
2. यहाँ राजशेखर की काव्यमीमांसा के निम्नोक्त शब्द स्मर्तव्य हैं :-तत्र यथासुखमासीनः काव्यगोष्ठीं प्रवर्तयेत् भावयेत् परीक्षेत च। वासुदेव-सातवाहन-शूद्रक-साहसाङ्कादीन् सभापतीन् दानमानाभ्याम् अनुकुर्यात्।। तुष्टपुष्टाश्चास्य सभ्याः भवेयुः, स्थाने च पारितोषिकं लभेरन्।। यहाँ कहा है कि साहसाङ्क यानी चन्द्रगुप्त-2 जैसे राजाओं ने काव्यगोष्ठियों का (जिसको ब्रह्मसभा कहते थे) आयोजन किया था। उसमें कवियों को दान एवं सम्मान दिया था, जिसका अन्य राजाओं को भी अनुकरण करना चाहिए।। (काव्य-मीमांसा, सं. सी. डी. दलाल, ओरिएन्टल इन्स्टीट्यूट, बरोडा, 1934, पृ. 55)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

आविष्कृत हुआ मानना होगा। क्योंकि जैसे पाण्डुलिपियों का (=उनके प्रतिलिपिकरण का) वंशवृक्ष सोचा जाता है, वैसे ही उन पाण्डुलिपियों में संचरित हुई पाठपरम्पराओं का भी वंशवृक्ष सोचना आवश्यक और अनिवार्य होता है। इस दृष्टि से शारदा-लिपि में निबद्ध पाण्डुलिपियों का आरम्भ 7वीं शती से परवर्ती काल का नहीं हो सकता, लेकिन उनमें अवतरित हुआ पाठ तो दूसरी-तीसरी शती का हो सकता है।। तत्पश्चात् चौथी शताब्दी में तैयार किया गया मैथिली रंगावृत्ति का पाठ करीब आठ सौ, नौ सौ साल तक चलता रहा होगा। इसके बाद, काश्मीर एवं मिथिला की दोनों परम्पराओं का विनियोग करके 12-13वीं शती में बंगाली पाठ बनाया गया होगा, जिसमें प्राधान्येन मैथिली पाठ का अनुसरण किया गया है, और परम्परागत (काश्मीरी-मैथिली) पाठ को अधिक परिष्कृत करने का प्रयास भी किया गया है- ऐसा लगता है।।

इस नाटक का बृहत्पाठ काश्मीर से कन्याकुमारी तक की पाण्डुलिपियों में प्रवहमान हुआ है, उसमें भी कोई शक नहीं है। क्योंकि (क) 1904 में मद्रास से प्रकाशित हुए Kalidasa : Complete Collection of the Various Readings of the Madras Manuscripts, (Vol.1-4) Edited by T. Foulkes. ग्रन्थ में ऐसे पाठान्तर सुस्पष्ट सन्दर्भों के साथ दिये हैं कि वे सभी पाठान्तर बृहत्पाठ परम्परा के ही हैं। जिनको देख कर हमें स्वीकारना पडेगा कि काश्मीरी-मैथिली पाठ बहुत लम्बे समय तक इस देश में सर्वत्र, सभी लिपियों में लिखी गई पाण्डुलिपियों में, संचरित होता रहा होगा।। (ख) हमने कतिपय (=15) ऐसी भी पाण्डुलिपियाँ प्राप्त की है कि जिनमें देवनागरी वाचना में भी बृहत्पाठ का अवतरण हुआ है ऐसा प्रकटतया दिखता है।। (ग) मद्रास में सुरक्षित दक्षिणावर्तनाथ की टीका[1] के आरम्भ में ही एक काश्मीरी पाठान्तर का दर्शन होना भी इस बात का तीसरा प्रमाण है।। इसके बाद, यानी 12-13वीं शती के आसपास बंगाली रंगावृत्ति का पाठ बनाया गया होगा ऐसा अनुमान कर सकते हैं। चतुर्थ क्रमांक पर, यानी 14-15वीं शती में, इस नाटक के बृहत्तम बंगाली-आदि पाठों का विनियोग करके दाक्षिणात्य नटमण्डलियों ने संक्षिप्त करने का कार्य शुरू किया होगा। जिसमें तीनों बृहत्पाठों में से अमुक अमुक पाठान्तरों का चयन भी किया गया है। परिणामतः दाक्षिणात्य पाठ न केवल संक्षिप्त अपि तु संमिश्रित स्वरूप का तैयार हुआ है। तथा सब के अन्त में, 16वीं शती के आस पास देवनागरी वाचना के संक्षिप्ततर एवं संमिश्रित पाठ ने जन्म लिया होगा। पाँचों वाचनाओं के आविष्कार सम्बन्धी इन अनुमानित कालखण्डों को अलंकारशास्त्रीय अनेक उद्धरणों का भी बहुशः समर्थन मिलता है।।

[7]

रंगावृत्तियाँ होते हुए भी मूल पाठ की बहुशः सुरक्षाः इस नाटक की पाँचों वाचनाओं के पाठ रंगावृत्ति स्वरूप के हैं ऐसा जब असंदिग्धतया दिख रहा है, तब अविलम्बेन कहना होगा कि रंगकर्मियों ने रंगकर्म के लिए (क) जहाँ जो भी नये परिवर्तन किये हैं उनसे नाटक की वाक्यावली (संवाद-माला) को अपेक्षाकृत बहुत कम हानि पहुँची है। हाँ, इन परिवर्तनों में वाक्यों के वक्ताओं में कदाचित् परिवर्तन किया गया है, वाक्यों के काकु में भी कुत्रचित् परिवर्तन हुए हैं, या कुत्रचित् नवीन वाक्यों एवं वाक्यांशों का प्रक्षेप या संक्षेप भी मिलते हैं, फिर भी कालिदास के मूल शब्दों की बहुशः रक्षा भी हुई है ऐसा दिख रहा है। उदाहरण के लिए 1. प्रथमांक में राजा और प्रियंवदा-अनसूया के द्वारा की गई बातचीत, 2. चतुर्थाङ्क के आरम्भ में दुर्वासा-शाप प्रसंग को लेकर दोनों सहेलियों की वाक्यावली देखी जा सकती है। 3. षष्ठांक में मेनका की सखी अक्षमाला / मिश्रकेशी / सानुमती अप्सरा के द्वारा उच्चरित वाक्यावली। 4. द्वितीय, पञ्चम एवं षष्ठांक में विदूषक के द्वारा उच्चरित वाक्यावली। महाकवि कालिदास की श्रेष्ठता एवं लोकप्रियता सदैव बनी रहने का यह भी एक महनीय कारण है।। (ख) इस नाटक के गेय श्लोकों का विश्लेषण किया जाय तो उनमें भी दश-ग्यारह प्रतिशत ही प्रक्षेप एवं उतनी ही मात्रा में संक्षेप का चित्र उभर कर सामने आता है[2]। जिससे भी कालिदास के कवित्व को बहुत कम हानि पहुँची है, ऐसा साधार निश्चित हो रहा है।।

---

1. मद्रास गवर्न्मेन्ट मेन्युस्क्रिप्ट लाईब्रेरी, चेन्नै में संगृहीत पाण्डुलिपि-क्रमांकत् 2775.
2. द्रष्टव्यः- परिशिष्ट क्रमांक - 2 एवं 3। तथा अभिज्ञानशकुन्तला नाटक की काश्मीरी वाचना का हमारा सम्पादन, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, 2018, पृ. 321 से 344.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

[8]

230 वर्षों के दौरान इस नाटक के पाठ की प्रकाशन सम्बन्धी प्रवृत्तियों का विहंगावलोकनः- (क) पाण्डुलिपियों में संचरित हुए पाठों का लिपिभेद एवं प्रदेशभेद के आधार पर पाँच वाचनाओं के रूप में प्रकाशन हुआ है। जैसे कि, सब से पहले सर विलियम जोन्स ने 1789 –1791 में इस नाटक का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद प्रकाशित किया था[1]। जिसके कारण पश्चिमी जगत् को मालूम हुआ था कि भारत में भी उनके शेक्सपियर की बराबरी करनेवाला कालिदास नाम का कोई नाट्यकार हुआ है। तत्पश्चात् (1) देवनागरी वाचना का समीक्षित पाठ श्री ओटो बोटलिंक ने 1842 में, तथा डॉ. मोनियर विलियम्स ने 1855 में प्रकाशित किया। किन्तु कालान्तर में कुछ नवीन पाण्डुलिपियाँ मिलने पर, दूसरे विद्वानों ने भी देवनागरी वाचना का पाठ पुनः पुनः सम्पादित किया है। तथा इसी वाचना के अलग अलग संस्करण भी बार बार होते रहे हैं। जिसमें प्रो. पी. एन. पाटणकर (इन्दौर, 1898) ने शुद्धतर देवनागरी वाचना का पाठ प्रस्तुत करने का दावा किया है, उसके बाद कोलकाता के श्रीशारदा रंजन राय (1902), श्री एम. आर. काळे (1898), एवं काशी के मूर्धन्य पण्डित श्री रेवाप्रसाद द्विवेदी जी (1976 एवं 1986) के नाम अग्रगण्य हैं। देवनागरी पाठ के सम्पादकों की इस पङ्क्ति में और भी नाम शामिल किये जा सकते हैं।। (2) विदेशों में जब बंगाली एवं देवनागरी पाठों के सम्पादन तथा अनुवाद होना शुरू हुआ उससे भी पहले भारत में बंगाल के विद्वानों ने महनीय कार्य किये थे। जैसे कि, प्रेमचन्द्र तर्कवागीश ने 1839 में 228 श्लोकों वाला बंगाली पाठ प्रकाशित किया। तथा डमरुवल्लभ पन्त ने 1870 में नेवारी पाण्डुलिपियों के आधार पर 230 श्लोकों वाला पाठ भी निकाला था। तत्पश्चात् डॉ. रिचार्ड पिशेल ने हार्वर्ड युनिवर्सिटी, अमरिका से 1876 में बंगाली वाचना का समीक्षित पाठ प्रकाशित किया था, जिसकी द्वितीयावृत्ति ई. स.1922 में हुई है। सन 1980 में डॉ. दिलीपकुमार कांजीलाल ने बंगाली पाठ को ही मौलिक एवं सर्वाधिक श्रद्धेय घोषित किया है[2]। (3) श्रीरमानाथ झा ने 1957 में मैथिली वाचना का समीक्षित पाठ, शंकर एवं नरहरि की टीकाओं के साथ, प्रकाशित किया है[3]। तत्पश्चात् (4) डॉ. बेलवालकर, पुणें के द्वारा सम्पादित अभिज्ञानशकुन्तल की काश्मीरी वाचना का पाठ सन 1964 में केन्द्रीय साहित्य अकादेमी, दिल्ली ने प्रकाशित किया है। किन्तु यह सच्ची काश्मीरी वाचना का पाठ नहीं है, तथा उसको "समीक्षितावृत्ति का पाठ" कहना भी योग्य नहीं है। क्योंकि उसमें एक भी पाण्डुलिपि के क्रमांकादि का निर्देश नहीं है, प्रस्तावना भी नहीं है। पादटिप्पणी में एक भी पाठभेद नहीं है। काश्मीरी पाठ के नाम पर उसमें बंगाली या देवनागरी जैसी वाचनाओं के पाठान्तरों का स्वीकार भी कर लिया है। अर्थात् वह संदोहन पद्धति से (Eclectic Principles) पर बनायी गयी आवृत्ति ही है। अतः हमने शारदा लिपि में लिखी हुई पाँच पाण्डुलिपियों[4] (जिसमें से दो भूर्जपत्र पर लिखी हुई हैं) का विनियोग करके उस काश्मीरी वाचना का समीक्षित पाठ 2015 में तैयार किया था, जिसका प्रकाशन 2018 में हुआ है। (5) दाक्षिणात्य वाचना का समीक्षित पाठ अद्यावधि सही अर्थ में निकला ही नहीं है। किन्तु आन्ध्र प्रदेश संस्कृत अकादेमी, हैदराबाद का अभिज्ञानशाकुन्तल, जो काटयवेम की कुमारगिरिराजीया टीका के साथ

---

1. SACONTALÁ;OR, The~ FATAL RING : AN INDIAN DRAMA-By CÁLIDÁS. TRANSLATED FROM THE ORIGINAL SANSCRIT AND PRACRIT. by Sir William Jones (1789) [online version prepared by FWP, January 2004]
2. द्रष्टव्यः अभिज्ञानशकुन्तलम्। सं. डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल, संस्कृत कॉलेज, कोलकाता, 1980
3. अभिज्ञानशकुन्तलम्, मैथिलपाठानुगम्।, सं. श्री रमानाथ झा, मिथिला विद्यापीठ, दरभङ्गा, 1957
4. शारदा लिपि में लिखी गई पाँच पाण्डुलिपियों का हमने परीक्षण किया है :- (1) भूर्जपत्र पर लिखी गई प्राचीनतम एवं साद्यन्त पाण्डुलिपि, जिसको ब्युल्हर ने 1875-76 में काश्मीर से खरीदी थी, और जिसको 192 क्रमांक दिया था। यह औरंगझेब के समय में (ई. स. 1630) लिखी गई थी और वह भाण्डारकर ओरि. रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पुणें में अज्ञात रूप से सुरक्षित थी। (2) ऑक्सफर्ड युनिवर्सिटी की बोडेलियन लाईब्रेरी से प्राप्त की गयी1247 क्रमांक की शारदा पाण्डुलिपि, (3) ऑक्सफर्ड युनि. की 159 क्रमांक की एक प्राचीनतर तीसरी शारदा पाण्डुलिपि, (जिसमें कुछ अंश अधुरा है), (4) ऑक्सफर्ड युनि. की 87 क्रमांक की शारदा पाण्डुलिपि, जिसको स्टेन कलेक्शन में ताडपत्र के रूप में घोषित की गयी है, किन्तु हकीकत में वह भूर्जपत्र पर लिखी गयी है। यद्यपि उसमें केवल षष्ठांक के बीच में से आरम्भ करके सप्तम अंक तक का अपूर्णांश ही मिलता है। तथा (5) श्रीनगर युनिवर्सिटी की आलम इकबाल लाईब्रेरी से प्राप्त की गई 1435 क्रमांक की शारदा पाण्डुलिपि।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

1982 में प्रकाशित हुआ है, उसको दाक्षिणात्य वाचना का बहुमान्यपाठ कह सकते हैं।। इस तरह, सर विलियम जोन्स द्वारा प्रथमबार प्रकाशित किये अंग्रेजी अनुवाद (1789) से आरम्भ करके, करीब दो सौ तीस साल के अन्तराल में अनेक संस्कृत विद्वानों ने इस नाटक की अद्यावधि चार से पाँच वाचनाओं के पाठों का प्रकाशन करवाने का महनीय कार्य किया है।।

(ख) अभिज्ञानशकुन्तला की पञ्चविध वाचनाओं के प्रकाशनोपरान्त, विद्वानों ने विभिन्न टीकाओं के प्रकाशन का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य भी किया है। जैसे कि, (1) देवनागरी वाचना के पाठ पर राघवभट्ट की अर्थद्योतनिका टीका[1], (2) दाक्षिणात्य वाचना पर काटयवेम भूप की कुमारगिरि-राजीया टीका, जो समयानुक्रम में, 15वीं शती में लिखी गई सब से पहली टीका है[2]।, (3) अभिराम की दिङ्मात्रदर्शिनी टीका[3], (4) श्रीनिवासाचार्य की टीका[4], (5) घनश्याम की संजीवन टिप्पण[5], (6) अज्ञात कर्तृक चर्चा टीका, (7) सेतु माधव की बालबोधिनी टीका, [इनमें 2 से 7 तक की सभी टीकाएँ दाक्षिणात्य वाचना के पाठ पर लिखी गयी हैं], (8-9) मैथिली वाचना पर शङ्कर की रसचन्द्रिका टीका, तथा नरहरि की टिप्पणी नामक टीका[6], (10) बंगाली पाठ पर चन्द्रशेखर चक्रवर्ती की सन्दर्भदीपिका टीका[7]।। [इसके अलावा बंगाली पाठ पर न्यायाचार्य ने लिखी रसिकमनोरमा टीका, देवनागरी पाठ पर बालम जिह्म ने लिखी टीका एवं नारायण पंडित की टीकाओं का समीक्षित पाठसम्पादन का कार्य चल रहा है। एवमेव, दाक्षिणात्यपाठ पर दक्षिणावर्तनाथ की टिप्पणी का भी प्रकाशन होनेवाला है।] काश्मीरी वाचना के पाठ पर कोई टीका है या नहीं? उसकी जानकारी नहीं है। (उत्कलीय पाण्डुलिपियाँ अनेक प्रयास करने के बावजूद भी प्राप्त नहीं हुई हैं।)।। (इस नाटक की केवल प्राकृत उक्तियों के संस्कृतच्छायानुवाद प्रस्तुत करनेवाली जो प्राकृत-विवृतियाँ एवं प्राकृतच्छायाएं लिखी गई हैं, वे बहुत परवर्ती काल की प्रवृत्ति है। इनके प्रणेताओं में रामेश का पुत्र, या रामेश जिसके गुरु है ऐसा एक शिष्य और नारायण पण्डित एवं बाल्हजिद् भट्टादि के नाम अग्रेसर हैं। ऐसी प्राकृतविवृतियाँ अभी तक पाण्डुलिपिओं में ही अप्रकाशित स्थिति में हैं[8]। किन्तु इस नाटक का प्राचीनतम पाठ ढूँढने के लिए ऐसी पाण्डुलिपियाँ उपकारक नहीं हैं, क्योंकि ऐसी प्राकृतविवृति एवं प्राकृच्छायाएँ लिखने की प्रवृत्ति सौ-दो साल से अधिक पुरानी नहीं है।)

(ग) "उन विभिन्न वाचनाओं में से किस एक के पाठ को सर्वाधिक प्रामाणिक या श्रद्धेय माना जाय?" इसके परामर्शन का तीसरा कार्य भी विद्वानों ने अंशतः किया है। जैसे कि, डॉ. दिलीपकुमार कांजीलाल के अभिमत से बंगाली वाचना का पाठ ही मौलिकता का दावा कर सकता है। तथा म.म. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, प्रो. पी. एन. पाटणकर, श्रीशारदा रंजन राय तथा डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी जी जैसे अनेक वरेण्य विद्वानों के मत से केवल देवनागरी वाचना का पाठ ही सर्वाधिक श्रद्धेय एवं मौलिक कहने योग्य है।।

[यहाँ जिज्ञासा होगी कि देवनागरी वाचना का पाठ सारे देश में सुप्रचलित एवं सर्व-स्वीकार्य बना है, तथा सर्वत्र दृढासन लगा कर एकचक्री शासन कर रहा है- वह कैसे या कब से हुआ है? तो उत्तर है कि, पश्चिम बंगाल के समाज-सुधारक महामहोपाध्याय श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जी ने 1871 में अभिज्ञान-शकुन्तल के बंगाली पाठ को अस्वीकार्य घोषित किया। उस बंगाली पाठ में कुछ अशिष्टता भरे श्लोकों को देख कर उन्होंने उस पाठ की कड़ी आलोचना की। तथा

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम्। (राघवभट्टटीकायुतम्), सं. नारायण राम, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, 2006
2. अभिज्ञानशाकुन्तलम्। (काटयवेमटीकयासहितम्), आन्ध्रप्रदेश संस्कृत अकादेमी, हैदराबाद, 1982
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम्। (अभिरामटीकया संभूषितम्), श्रीवाणीविलास मुद्रायन्त्रालय, श्रीरंगम्, 1917
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम्। (श्रीनिवासाचार्यकृतटीकया सहितम्), निर्णय सागर प्रेस, मुंबई, 1966
5. अभिज्ञानशाकुन्तलम्। (घनश्यामकृतसंजीवनाख्यटिप्पणसमेतम्), सं. पूनम पंकज रावळ, सरस्वती पुस्तक भण्डार, अहमदावाद, 1999
6. अभिज्ञानशकुन्तलम्। (शंकर-नरहरिटीकाद्वयसमलंकृतम्), सं. रमानाथ झा, मिथिला विद्यापीठ, दरभङ्गा, 1957
7. अभिज्ञानशकुन्तलम्, (सन्दर्भदीपिकया समेतम्), सं. वसन्तकुमार म. भट्ट, राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन, दिल्ली, 2013
8. मेरा शोध-आलेख द्रष्टव्य है:- अभिज्ञानशाकुन्तल - प्राकृतविवृति एवं प्राकृतच्छायें।, सम्बोधि (अंक-36, पृ. 154 से 169) एल. डी. इन्स्टीट्युट ओफ इन्डोलोजी, अमदावाद, 2013 में प्रकाशित। (ISSN 2249-6661)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

उसको त्याज्य कहने के साथ साथ इसी नाटक का जो देवनागरी पाठ (टीकाकार राघव भट्ट को मान्य) था उसको सर्वथा ग्राह्य एवं कवि-प्रणीत कहा। तब से लेकर इस नाटक का देवनागरी पाठ सुप्रचलित हो गया है।]

डॉ. एस. के. बेलवालकर जी के कुछ शोध-आलेखों से सूचित होता है कि वे काश्मीरी पाठ को अधिक श्रद्धेय मानने के पक्षधर थे। किन्तु वे डॉ. सिल्वाँ लेवी के विचारों से प्रेरित हुए थे, एवं अन्त में ऐसी निर्णयात्मक भूमिका पर पहुँचे थे कि इस नाटक का "नातिदीर्घ एवं नातिलघु पाठ" ही श्रद्धेय हो सकता है। (जो उनके द्वारा सम्पादित काश्मीरी पाठ में रखा गया है[1]।) कदाचित् ऐसा भी विचार किया गया है कि सभी वाचनाओं के अनेकविध पाठान्तरों में से जो पाठ सब से अधिक नाट्यक्षम हो, काव्यसौन्दर्य से भरा हो एवं व्यंजनापूर्ण हो उसको मधुकर-वृत्ति से चुन चुन कर, जो सर्वोत्तम हो ऐसे पाठ का सम्पादन करना चाहिए[2]। इसी तरह से, ऐसा भी सोचा गया है कि बहुविध पाठान्तरों में से जिस पाठान्तर को बहुसंख्यक पाण्डुलिपियों का (या सर्वाधिक वाचनाओं के पाठ का) समर्थन मिलता हो उसीको संदोहन पद्धति से स्वीकारना चाहिए। इस तरह के संदोहित पाठ को "बहुमान्य पाठ" के रूप में स्थापित करना चाहिए[3]।।

[9]

प्रस्तुत उपक्रम की आवश्यकता एवं स्वरूपः- इस नाटक की पाठालोचना करते समय विविध वाचनाओं के बहुविध पाठान्तरों में से "अमुक पाठान्तर ही सही है", या "वही मौलिक हो सकता है", और "दूसरे अन्य सभी पाठान्तर अग्राह्य हैं, कल्पित हैं, या गलत हैं" इत्यादि अभिनिवेशबुद्धिजन्य या आत्मलक्षिता से भरे अभिप्रायों को प्रकट नहीं करना चाहिए। क्योंकि उनमें दुराग्रह या पूर्वाग्रह प्रतिबिम्बित होता ही है, जिसके कारण वैसे सम्पादन कदापि कथमपि सर्वसम्मत नहीं हो सकते हैं। पाठान्तरों की मौलिकता का विचार करना तभी समीचीन लगता है कि जब किसी एक-कर्तृक ग्रन्थ का संचरण केवल लिखित परम्परा से ही हुआ हो। नाटक जैसी अभिनेय कृति के पाठसंचरण में केवल भूर्जपत्र, ताडपत्रादि पर प्रतिलिपिकरण का रास्ता ही नहीं होता है। उसमें तो मंचन का, और वह भी दो हजार वर्षों के कालावधि में फैला हुआ, सन्दर्भ भी जुड़ा हो सकता है। रंगकर्म से जुड़े सूत्रधारों ने कवि-प्रणीत नाटक के पाठ में परिवर्तनादि करके, मंचन के लिए जो रंगावृत्ति बनाई होती है, उसकी भी प्रतिलिपिकरण परम्परा जब शुरू होती है, तो ऐसी रंगावृत्तियों की भी पाण्डुलिपियाँ प्रचलित हो जाती है। मतलब कि नाट्यकृतियाँ तो कहने के लिए ही, या प्रथम क्षण में ही, एक-कर्तृक रचना होती हैं। क्योंकि कवियों के द्वारा नाट्यरचना हो जाने के बाद, जैसे ही रंगकर्मियों के हाथ में पड़ती है, निश्चित रूप से वे अनेक-कर्तृक रचना बन ही जाती हैं। अतः उसमें उपलब्ध हो रहे पाठभेदों के अवतार तो बहुधा रंगकर्मियों के द्वारा ही हो सकते हैं, यह बात शायद भूल कर ही विद्वज्जगत् पाठनिर्धारण की चेष्टा कर रहा है। मंचन के दौरान होनेवाले बहुविध परिवर्तनों की उपस्थिति प्रत्येक वाचना में प्रकट रूप से दिख रही है, फिर भी विद्वानों के द्वारा उसकी गम्भीर चर्चाएँ होती नहीं हैं। अथवा, यदि कोई विद्वान् उसको जानता भी होगा, तो वह भी गजनिमीलिका न्याय से "अमुक पाठान्तर ही मुझे सही लगता है", अथवा "अमुक पाठ ही मौलिक हो सकता है" इत्यादि मत-मतान्तर प्रकट कर रहा होता है। यानी इस नाटक के मूलपाठ का निर्धारण कर लेने की ही सब को जल्दी है! विद्वानों ने अद्यावधि प्रायः मंचन के सन्दर्भ को भूल कर ही विभिन्न पाठान्तरों में से कौन सा पाठ मौलिक हो सकता है, या नहीं हो सकता है? उस विषय में अपनी अपनी सोच रखी है। तथा, इस नाटक का केवल रसलक्ष्यी विवेचन एवं उसके पद्यों का साहित्यशास्त्रीय मूल्यांकन प्रस्तुत करने तक सीमित रहे हैं। किन्तु किसी भी साहित्यशास्त्रीय अभ्यास के पूर्व में, जब तक नाटक के पाठ की तुलनात्मक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से पाठालोचना नहीं की

1. उनके द्वारा सम्पादित नातिदीर्घ एवं नातिलघु पाठ इक्लेक्टीक प्रिन्सीपल्स पर तैयार किया गया है।
2. Text of Shakuntala] B. K. Thakore, Bombay. 1922 (Presented in the First All India Oriental Conference] at Poona] 1919)प्रॉफेसर बलवन्तराय ठाकोर गुजरात के लब्धप्रतिष्ठ सॉनेटकार कवि एवं डेक्कन कॉलेज, पुणें में इतिहास के प्राध्यापक थे। बहुविध पाठवाले अभिज्ञानशाकुन्तल को देख कर, उसकी पाठालोचना करके एकरूप पाठ निर्धारित करना चाहिए ऐसा कहनेवाले संसार के ये पहले विद्वान् थे।
3. मधुकर-वृत्ति से या संदोहन पद्धति से किये गये पाठसम्पादन को "इक्लेक्टीक प्रिन्सीपल्स" पर किया गया पाठ-सम्पादन कहा जायेगा।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

जाती है, तब तक किस पाठान्तर पहले आकारित हुआ होगा और किस पाठान्तर उत्तरवर्ती काल में आया होगा?,या अमुक पाठान्तर पैदा होने के क्या कारण हो सकते हैं?- यह हम नहीं जान सकते हैं। विभिन्न पाठभेदों में संनिहित पौर्वापर्य का क्रम, यदि सप्रमाण सिद्ध किया जायेगा तो (ही) हम उक्त पञ्चविध वाचनाओं में से प्राचीन से प्राचीनतर, एवं प्राचीनतर से प्राचीनतम पाठ की गवेषणा का महत्त्वपूर्ण लक्ष्य सिद्ध कर पायेंगे। पाठालोचना का प्रथम कर्तव्य भी यही होता है। क्योंकि प्राचीन से प्राचीनतर, और तत्पश्चात् प्राचीनतम पाठ का निर्धारण होने के बाद ही, "उच्चतर समीक्षा" के अन्तिम चरण पर सर्वाधिक श्रद्धेय (= मौलिक पाठ के नजदीक के) पाठ का पुनर्गठन करने की विचारणा की जाती है।।

अत: सहृदय पाठकवर्ग के करकमलों में पाँचों वाचनाओं के पाठ को सामूहिक रूप से (यानी एक ही जिल्द में) रखना पहले जरूरी समझा गया है। जिससे प्रत्येक सक्षम पाठक भी चाहे तो अपनी बुद्धि-प्रतिभा से इन विविध पाठ-परम्पराओं का स्वयं भी तुलनात्मक अभ्यास कर सकेगा।। अत: प्रस्तुत सम्पादन के उत्तरपीठिका भाग में,

(क) प्रत्येक वाचना (अर्थात् रंगावृत्ति) का पाठ देने से पहले, उसकी एक विस्तृत भूमिका रखी गई है। जिसमें उस तथाकथित वाचना का पाठ क्यों "रंगावृत्ति का ही पाठ" कहने योग्य है? इस प्रश्न का समाधान करने के लिए सातों अङ्कों का क्रमश: विश्लेषण किया गया है। पहले उसका अभ्यास कर लेने से, उस वाचना के पाठ में कहाँ कहाँ, कैसे कैसे रंगावृत्ति के लक्षण प्रकटतया मिल रहे हैं? उसका पूर्व-परिचय हो जायेगा।।

(ख) इन वाचनाओं में जहाँ जहाँ सार्थक पाठभेदों (पाठान्तरों) के दर्शन होते हैं, वहाँ पर हमने संस्कृत में पादटिप्पणियाँ दी हैं। जिनको पढ़ने से मालूम होगा कि, 1. गद्य उक्तियों में उपलब्ध हो रहे पाठभेदों में तो विशेष रूप से रंगकर्मियों की मंचन-लक्ष्यिता ही झलक रही है। अत: इन वाचनाओं के पाठों को तो "रंगावृत्ति का पाठ" ही कहना यथार्थ है। 2. पद्य भाग में प्राप्त होने वाले पाठान्तर, जब शब्दपर्यन्त सीमित रहनेवाले होते हैं, तो वे प्राय: काव्य सौन्दर्य को बढ़ाने (या बदलने) के आशय से आकारित किये गये हैं। 3. इन पाठभेदों में मंचनलक्ष्यी पाठ-परिवर्तनों की मात्रा ही सब से ज्यादा हैं, और उसकी अपेक्षा से पद्य भाग में हुए परिवर्तनों की मात्रा बहुत कम है। 4. इस नाटक की तथाकथित सभी वाचनाओं में प्राचीनतम काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ का ही अनुसरण हुआ है। इस काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ का प्रभाव मैथिली-आदि में कम है या ज्यादा है? यह प्रश्न बहुत गौण है। क्योंकि काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ का प्रभाव तो सर्वत्र विद्यमान है यह हकीकत ही अतीव महत्त्वपूर्ण है। 5. यह भी ध्यातव्य है कि (केवल) मैथिली रंगावृत्ति को तैयार करनेवाले अज्ञात पाठशोधक के सामने, आदर्शभूत काश्मीरी रंगावृत्ति का पाठ होने के साथ साथ कदाचित् कवि-प्रणीत मूलपाठ की धारा जिसमें प्रवाहित हुई हो ऐसी भी कोई प्रति रही होगी। ऐसा लगने का कारण यह है कि काश्मीरी रंगकर्मियों ने नाटक के पाठ में संक्षेपीकरण के आशय से जिन श्लोकों को हटा दिये हैं, उनकी हमें पुन: प्राप्ति मैथिली रंगावृत्ति के पाठ में से हो रही है। 6. यद्यपि देवनागरी रंगावृत्ति ने बहुश: दाक्षिणात्य रंगकर्मियों द्वारा किये परिवर्तनों को अपना लिये हैं, तथापि पुरोगामिनी तीनों वाचनाओं के पाठान्तरों में से काश्मीरी पाठान्तर ही उसके लिए ज्यादा वरणीय रहे हैं।।

इस नाटक की पाँचों वाचनाओं के पाठों का इतिहासानुप्राणित तुलनात्मक अभ्यास करने से ही अध्येता को अनुसन्धानात्मक नवीन जानकारियाँ मिल सकती हैं। जैसे कि, (क) आज उपलब्ध हो रही पाण्डुलिपियों में कविप्रणीत मूल पाठ की प्रत्यक्ष परम्परा नहीं उतर आयी है।, (ख) कालिदास के इस महान् नाटक का पाठ, दो हजार वर्षों के बाद, विविध रंगावृत्तियों में ही बिखरा हुआ पड़ा है, और केवल मंचन लक्ष्यी आशय से बनी पाण्डुलिपियों के माध्यम से जीवित रह पाया है।, (ग) इन रंगावृत्तियों का उद्गम बिन्दु काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ में दिखता है। अर्थात् उपलब्ध हो रही मैथिली, बंगाली, दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनाओं का पाठ काश्मीरी रंगावृत्ति की वंशज रंगावृत्तियाँ हैं- ऐसा सप्रमाण कहा जा सकता है। तथा (घ) इस नाटक के जिस देवनागरी पाठ को सौ या दो सौ साल से पठन-पाठन में स्थान दिया गया है, वह देवनागरी का पाठ तो सप्तम क्रमांक[1] पर आकारित की गई रंगावृत्ति का संक्षिप्ततर एवं संमिश्रित पाठ है!!!

---

1 वर्तमान में उपलब्ध हुई काश्मीरी पाण्डुलिपियों के पाठ में ही तीन पीढियों के रंगकर्मियों द्वारा किये परिवर्तनों का जमावड़ा हुआ है। अत: मैथिली-आदि रंगावृत्तियाँ चतुर्थादि क्रमांक पर खड़ी हैं- ऐसा मानना होगा।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

इस सन्दर्भ में हमारा एक विशेष निरीक्षण भी कथनीय है : जिन विद्वानों ने अभिज्ञानशकुन्तलम् की समीक्षित आवृत्तियाँ बनायी हैं उन सभी में रंगावृत्तियों के लक्षण सुतराम् विद्यमान होते हुए भी, उनकी ओर उन विद्वानों का ध्यान ही शायद नहीं गया है। उदाहरणतया 1. डॉ. रिचार्ड पिशेल जी के बंगाली वाचना का समीक्षित पाठ सम्पादन देखिए[2]। इसमें यद्यपि बंगाली वाचना का बृहत्तम पाठ रखा गया है, तथापि उसमें भी कुत्रचित् संक्षेपीकरण के पदचिह्न मिलते हैं। जैसे कि, चतुर्थ अङ्क (रिचार्ड पृ. 54) में पिता कण्व क्षीरवृक्ष की छाया में बैठ कर सोचते हैं कि जामाता दुःषन्त को क्या संदेश भेजा जाय? उस क्षण तीन सहेलियों के बीच में एक संवाद होता है। यहाँ पर दो नहीं, केवल एक (पुडइणिवत्तन्तरिअं०) गाथा का संनिवेश किया गया है। जिसको सुन कर शकुन्तला के द्वारा किसी भी तरह की कोई प्रतिक्रिया / प्रतिभाव भी नहीं दिखाया जाता है, जिसके कारण अनुसूया की उक्ति विफल ही लगती है। उसके सामने काश्मीरी एवं मैथिली वाचनाओं के पाठ को देखा जाय तो वहाँ कुल मिला कर दो गाथाओं का समूह है, जो विदाई-प्रसंग के निरूपण में एक भाव-वर्तुल पूर्ण करता है। यहाँ जो गाथाद्वय का संपुट देखने को मिलता है, उसके प्रतिपक्ष में बंगाली वाचना के पाठ में केवल एक ही गाथा का होना- यह सिद्ध करता है कि बंगाल के रंगकर्मियों ने चक्रवाक-पक्षी से सम्बद्ध दो गाथाओं में से एक गाथा का संक्षेप किया है।। (बंगाली वाचना के टीकाकार चन्द्रशेखर चक्रवर्ती ने सन्दर्भदीपिका टीका में भी पूर्वोक्त एक ही गाथा पर टीका लिखी है।) 2. श्री पी. एन. पाटणकर जी ने देवनागरी वाचना के "शुद्धतर देवनागरी वाचना" का जो समीक्षित पाठ सम्पादित किया है, तथा पण्डित-मूर्धन्य श्री रेवाप्रसाद द्विवेदी जी ने जो देवनागरी पाठ का सम्पादन किया है उनमें भी संक्षेपीकरण के ऐसे ही चिह्न प्रकट रूप से सर्वत्र बिखरे हुए हैं। जैसे कि, प्रथमाङ्क के भ्रमरबाधा प्रसंग को हम परीक्षण के लिए लेते हैं :-यहाँ पर बंगाली एवं मैथिली वाचना में 'अपि च' से सम्बद्ध किये गये दो श्लोक हैं। :-

"राजा- (सस्पृहम्)

यतो यतः षट्चरणोऽभिवर्तते, ततस्ततः प्रेरितवामलोचना।
विवर्तितभ्रूरियमद्य शिक्षते भयादकामापि हि दृष्टिविभ्रमम्।। 1 - 22।।

अपि च - (सासूयमिव)

चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचरः।
करं व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वम् अधरं
वयं तत्त्वान्वेषान् मधुकर, हतास्त्वं खलु कृती।। 1 - 23।।

इन शब्दों से वर्णित भ्रमरबाधा प्रसंग में, पहले श्लोक में भ्रमर से संत्रस्त हो रही शकुन्तला का चित्र खींचा गया है, जिसको नायक सस्पृह देख रहा है[2]। तत्पश्चात् दूसरे श्लोक में शकुन्तला के मुखारविन्द पर मंडरा रहे ईर्ष्याजनक भ्रमर का चित्र खींचा गया है, अब नायक भ्रमर को असूया सहित देख रहा है[3]। यहाँ एक ही दृश्य की द्विपार्श्वी रमणीयता को दो अलग अलग श्लोकों में वर्णित करने की आवश्यकता है। अतः कालिदास ने यहाँ समुच्चयार्थक "अपि च" का यथार्थ प्रयोग करके उन दोनों को परस्पर बांधा है। यहाँ दोनों श्लोकों में दृष्टिकोणों का ही भेद होने से उसमें पुनरुक्ति का कोई अवकाश ही नहीं है। अतः यह मूलगामी पाठ हो सकता है, जो मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में सुरक्षित रहा है।। लेकिन समय-मर्यादा की बाधा से पीडित काश्मीर के सूत्रधारों ने उन दोनों में से पहलेवाले श्लोक को हटा दिया है। (परिणामतः दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनाओं की पाठपरम्परा में भी केवल चलापाङ्गां दृष्टिम्० वाला एक श्लोक ही अवतारित किया गया है।)अब, प्रश्न होगा कि यहाँ रंगकर्मियों के द्वारा संक्षेप हुआ है ऐसा कैसे सिद्ध हो रहा है? तो वर्तमान में सुप्रचलित (श्री पाटणकर

---

1. Kalidasa's S'akuntala (The Bengali Recension), Ed. Richard Pischel, second edition, Harvard Uni; 1922.
2. यह श्लोक वंशस्थविल वृत्त में लिखा गया है।
3. यह श्लोक शिखरिणी वृत्त में लिखा गया है।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

जी एवं श्रीरेवाप्रसाद जी आदि के) सम्पादनों में देखेंगे तो, उनमें "चलापाङ्गां दृष्टिम्०" वाला श्लोक "सस्पृहम्" जैसी विसंगत रंगसूचना के साथ जुड़ा हुआ मिलता है! नायक भ्रमर की ओर ईर्ष्याभाव से देख रहा है, फिर भी "सस्पृहम्" जैसी रंगसूचना कैसे जोड़ी गई है?- यह गवेषणीय बात किसी अलंकारशास्त्र के भी विद्वान् के ध्यान में ही नहीं आयी। मैथिली एवं बंगाली पाठों में सुरक्षित रहे-यतो यतः षट्चरणो० वाले श्लोक को देखने से मालूम होता है कि उसीको हटा देने के कारण, उसीके साथ में जुड़ी हुई "सस्पृहम्" जैसी रंगसूचना चलापाङ्गाम्० वाले श्लोक के साथ जुड़ गई है! वस्तुतः नायक पहले जब नायिका के दृष्टिविभ्रम को देखता था, तब "सस्पृहम्" का सात्त्विकाभिनय उचित था। तथा नायक जब ईर्ष्यालु हो कर भ्रमर का निरूपण करता है, तब 'सासूयम्' जैसी रंगसूचना का होना ही योग्य था। लेकिन रंगकर्मियों के सामने इस दृश्य को अल्प समयावधि में प्रस्तुत करने का जब आशय रहा होगा तब उपर्युक्त पहला श्लोक निकाला गया होगा, और नायक स्पृहयालु होकर नायिका को देखने लगता है ऐसी रंगसूचना के साथ उसका अभिनय मंच पर पेश किया गया होगा।। [इन विसंगत रंगसूचनाओं के लिए द्रष्टव्य है:-श्री पी. एन. पाटणकर का अभिज्ञानशकुन्तल, द्वितीयावृत्ति, 1902, पृ. 16-17 , तथा विद्वद्वरेण्य श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी[1] जी की कालिदास ग्रन्थावली, द्वितीयावृत्ति, वाराणसी, 1986, पृ. 540] 3. तृतीयांक के कुसुमशयना शकुन्तला-वाले मुख्य दृश्य के साथ जुड़ी जो रंगसूचनाएँ हैं, उनमें भी परस्पर विरोधी सूचनायें संचरित होकर हम तक पहुँची हैं। लेटी हुई शकुन्तला को रंगकर्मियों के द्वारा अनुचित स्थान पर 'सलज्जा तिष्ठति' घोषित करने के बाद, जब उसको "उत्थाय गन्तुमिच्छति" भी बताया जाता है, तो ये दोनों रंगसूचनाएं परस्पर विसंगत सिद्ध होती हैं- वह भी किसी पाठसम्पादक ने देखा नहीं है। तथाकथित वाचनाओं के सभी पाठों का तुलनात्मक अभ्यास करने से यह बात असंदिग्ध रूप से सिद्ध हो रही है।। "इति दिङ्" न्याय से प्रदर्शित किये गये इन तीन उदाहरणों से दो हकीकतें सूचित हो रही हैं :-1. इस नाटक की अद्यावधि जितनी भी पाण्डुलिपियों का विनियोग करके, जो भी विभिन्न वाचनाओं की समीक्षित आवृत्तियाँ प्रकाशित की गई हैं, उनमें से एक भी पाण्डुलिपि कविप्रणीत पाठ की साक्षात् वंशज-प्रति नहीं है, बल्कि वे रंगावृत्तियों की ही परम्परागत प्रतिलिपियाँ हैं। 2. काश्मीरी रंगावृत्ति की ही वंशज रंगावृत्तियों के रूप में मैथिली-आदि अन्य चारों रंगावृत्तियों का आविष्कार हुआ है। क्योंकि एक भी मैथिली-आदि रंगावृत्ति में सर्वथा पृथक् / नवीन पाठ्यांश नहीं मिलता है। सभी में प्राचीनतम काश्मीरी रंगावृत्ति के अमुक पाठ्यांश एवं कुछ रंगसूचनाएँ सर्वत्र यथावत् संचरित / प्रतिबिम्बित होती रही हैं।।

[10]

इस नाटक के तीन शीर्षकः- अभी तक पाँच वाचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। पहले उनका प्राथमिक परिचय करना आवश्यक है :- इन पाँचों वाचनाओं में इस नाटक का जो पाठ प्रवाहित हुआ है वह मुख्य रूप से द्विविध है : (क) बृहत्पाठ। एवं (2) लघुपाठ। काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली इन तीन वाचनाओं में बृहत्पाठ संचरित हुआ है तथा दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनाओं में लघुपाठ संचरित होकर हम तक पहुँचा है। प्रथम काश्मीरी वाचना के पाठ को धारण करनेवाली शारदा पाण्डुलिपियों में इस नाटक का शीर्षक "अभिज्ञानशकुन्तला नाटकम्" दिया गया है। द्वितीय एवं तृतीय मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में "अभिज्ञानशकुन्तलम्" शीर्षक रखा गया है। इन तीनों बृहत्पाठ वाली वाचनाओं का विशेष अध्ययन करने से यह भी मालूम होता है कि काश्मीरी वाचना में जो बृहत्पाठ था वह क्रमशः मैथिली वाचना में बृहत्तर बनता है, और वही पाठ आगे चल कर बंगाली वाचना में बृहत्तम बन गया है।। जिन दोनों वाचनाओं में इस नाटक का लघुपाठ संचरित हुआ है, वे हैं दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनाओं के पाठ। इन दोनों में इस नाटक का शीर्षक "अभिज्ञानशाकुन्तलम्" रखा गया है।।

---

1. प्रॉफे. श्रीरेवाप्रसाद जी ने हिन्दी अनुवाद के साथ कालिदास ग्रन्थावली, उज्जयिनी से 2008 में प्रकाशित की है, उसमें चलापाङ्गां दृष्टिम्० श्लोक को "सस्पृहं सासूयमिव विलोक्य" (पृ. 328) ऐसी रंगसूचना के साथ दे दिया है। जो रंगसूचना उनकी 1986 वाली कालिदास ग्रन्थावली में नहीं थी। अतः प्रश्न होता है कि इस पाठसुधारणा का उद्गम कहाँ से हुआ है?। अथवा, कौन सी नयी पाण्डुलिपि मिल गई, जिसमें ऐसी मिश्रित भावों वाली रंगसूचना है?, उस आधारभूत पाण्डुलिपि का संग्रह-स्थान एवं उसका क्रमांक क्या है?।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

इन **तीन तरह के शीर्षकों** से ऐसा सूचित होता है कि एक ही नाटक का हार्द (आकलन) विविध कालखण्डों में बदलता रहा है। जैसे कि, किसीने उसे अभिज्ञानशकुन्तला कहा है, तो दूसरे ने उसे अभिज्ञानशकुन्तलम् नाम दिया है, तीसरे ने उसी को अभिज्ञानशाकुन्तल नाम दे दिया है। इन तीन तरह के शीर्षकों में से कौन सा शीर्षक कवि कालिदास के द्वारा लिखा गया होगा? या इन तीनों में से कौन सा शीर्षक सब से अधिक समीचीन है? ऐसी चर्चाएँ करके, अन्तिम निर्णय पर पहुँचना कथमपि सम्भव नहीं है। क्योंकि ऐसा निर्णय सर्वसम्मत नहीं हो सकता है। जब मूल कवि का स्वहस्तलेख मिलने की कोई शक्यता ही नहीं है, तब हर कोई भावक अपनी अपनी राय देता रहेगा। क्योंकि एक ही नाटक की कथावस्तु का आकलन अलग अलग कालखण्ड में अलग अलग स्वरूप में होता रहा है। तीन तरह के शीर्षकों की प्राप्ति भी इसी लिए ही हो रही है!।

(क) नाटक के आरम्भ से लेकर अन्त तक, अभिज्ञानपूर्विका शकुन्तला इति अभिज्ञानशकुन्तला। ताम् अधिकृत्य कृतं नाटकमपि (अभेदोपचाराद्) अभिज्ञानशकुन्तला। ऐसी सोच से प्रेरित होकर काश्मीरी पाठपरम्परा में 'अभिज्ञानशकुन्तला' ऐसा नाम दिया गया होगा। इस तरह के शीर्षक का उपर्युक्त विग्रहवाक्य सोचने से सातों अंकों में फैली शकुन्तला की पहचान या कहानी अभिज्ञान-पुरस्सर ही चलती है- इसकी ओर सभी प्रेक्षकों का ध्यान आकृष्ट किया जा रहा है। नायक ने जब भी शकुन्तला को देखा है, तब वह किसी न किसी तरह की विशेष अभिज्ञा को प्राप्त करके ही प्रेमचेष्टा में, या उसका स्वीकारादि करने में आगे बढा है। ("किमियम् असवर्ण-क्षेत्रसम्भवा स्यात्" से शूरु करके, "विमर्शच्छेदि वचनम्" से आश्वस्त होकर, "किमियं मया परिणीतपूर्वा" जैसे संशयग्रस्त मानस में फँसता है। तथा, षष्ठांक में "कण्डूयमानां मृगीम्०" का चित्र बनाने की चाहत के पीछे प्रतिबिम्बित हो रही मानसिकता को यदि शब्दबद्ध करें तो "शिकारी बन कर तो मुझे शकुन्तला नहीं मिलेगी, किन्तु उसको प्राप्त करने के लिए मुझे भी अनागस एवं 'सगन्ध' मृग बनना पड़ेगा" ऐसा दुष्यन्त को अब समझ में आ गया है। यानी शकुन्तला की अनागस हरिणी के रूप में पहली बार सच्ची पहचान (अभिज्ञान) प्राप्त कर लेता है। तथा "तृषितापि सती त्वया विना मधु न पिबति" इन शब्दों से भी जब शकुन्तला की एक प्रेमपिपासु पत्नी की सम्यक् पहचान प्राप्त करता है, उसके बाद ही स्थूल रूप से पुनर्मिलन का मार्ग प्रशस्त होता है। अन्त में जा कर, "चक्रवर्ती के लक्षणोंवाले यह सर्वदमन पुत्र भरत की माता शकुन्तला है"-इस तरह की पहचान प्राप्त करता है- वहाँ तक, विविध अभिज्ञानों का अजस्र आवर्तन चलता रहता है।) "अभिज्ञान-पूर्विका शकुन्तला" -यह लक्षण भूरिशः प्रथम, तृतीय, पञ्चम, षष्ठ एवं सप्तम अंकों में दिखाई दे रहा है। अभिज्ञानपूर्विका या शकुन्तला, सा अभिज्ञानशकुन्तला (मध्यमपदलोपी समासः)।, अभिज्ञानशकुन्तला वर्ण्यते यस्मिन् नाटके, तन्नाटकम् (अभेदोपचाराद्) अभिज्ञानशकुन्तला[1]।

(ख) मैथिली एवं बंगाली परम्परा में "अभिज्ञानशकुन्तलम्" ऐसे शीर्षक के अनुसार (दुर्वासा का शाप मिलने के बाद) अभिज्ञान से संस्मृता शकुन्तला जिसमें निरूपित हुई है ऐसा यह नाटक है- ऐसी सोच दिख रही है। इस तरह के शीर्षक से यह नाटक अंगूठी रूप अभिज्ञान की समस्या (The Lost Ring, The Fatal Ring) का है ऐसा बोध होता है। अभिज्ञानेन स्मृता शकुन्तला इति अभिज्ञानशकुन्तला। तामधिकृत्य कृतं नाटकमिति (तद्धित-प्रत्यय का लोप होने से आदिस्वरवृद्धि का अभाव रहेगा) अभिज्ञानशकुन्तलम्। विद्वानों ने बहुशः ऐसा विग्रहवाक्य ही सोचा है।

---

1. यह सोच हमारी है। इस तरह के विग्रह में, कात्यायन के 'लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलम्' वार्तिक से शकुन्तला शब्द में से स्त्रीत्ववाचक टाप् प्रत्यय का लोप विकल्प से नहीं होगा।। किसी अज्ञात समीक्षक ने "काव्येषु नाटकं रम्यम्, तत्र रम्या शकुन्तला। तत्रापि चतुर्थोऽङ्कः, तत्र श्लोकचतुष्टयम्।। 'ऐसी जो श्लोकबद्ध प्रशंसा की है, उसमें भी इस 'अभिज्ञानशकुन्तला' नाम की ओर ही अंगुलिनिर्देश किया है। एवमेव, इसी नाम में से पूर्वपद का लोप करके, (नामैकदेश-ग्रहण करके) केवल 'शकुन्तला' शीर्षक भी सिद्ध होता है। सारांशतः, पूर्वोक्त श्लोक के शब्द काश्मीरी वाचना में प्रचलित शीर्षक के साथ ही सुसंगत होते हैं। तथा दक्षिण प्रदेश की "चर्चा" टीका में भी इस तरह के शीर्षक का प्रकट निर्देश किया गया है- वह ध्यानास्पद है।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(ग) लघुपाठवाली अन्तिम दोनों पाठपरम्पराओं के अनुसार, इस नाटक में केवल अंगूठी की समस्या अथवा पत्नी के रूप में शकुन्तला के अभिज्ञान की ही समस्या नहीं है। क्योंकि ऐसा सोचने से तो धीवर से अंगूठी मिल जाने के बाद नाटक समाप्त हो जाना चाहिए। एवं सप्तम अंक की नाट्यक्रिया का कोई प्रयोजन ही नहीं रहेगा। अतः सप्तमांक की पूरी गतिविधि देखने से मालूम होता है कि उसमें तो शकुन्तला के साथ साथ शाकुन्तलेय - शकुन्तला के पुत्र - के अभिज्ञान की भी बात रखी गई है, जिसको हम नजर-अंदाज नहीं कर सकते हैं। "सर्वदमन भरत दुष्यन्त का पुत्र है ऐसी पहचान के साथ साथ वह शकुन्तला का पुत्र है, यह भी सप्तम अंक में निरूपित किया गया है" इस बात को ध्यान में रख कर यह तीसरा शीर्षक सोचा गया होगा[1]। अर्थात् इस तीसरे शीर्षक से सप्तमांक की नाट्यक्रिया पर ध्यान आकर्षित किया जाता है।।

सारांशतः ऐसे त्रिविध गर्भित आशयों को व्यक्त करने के लिए एक ही नाट्यकृति के शीर्षक में तीन तरह के इन पाठान्तरों ने जन्म लिया होगा। दूसरे शब्दों में कहें तो, मंचन के मौके पर रंगकर्मियों ने / प्रेक्षकों ने अलग अलग समय में इस नाटक का जो आकलन किया होगा, वह भी निरंतर बदलता रहा है। इन त्रिविध आकलन को ही इनमें प्रतिबिम्बित होता हुआ देखना चाहिए। कवि कालिदास ने अमुक शीर्षक ही दिया होगा, या अमुक शीर्षक ही सही हो सकता है- इत्यादि अभिनिवेशपूर्वक के आत्मलक्ष्यिता से भरे स्वाभिप्रायों को व्यक्त करने से बचना चाहिए।।

[11]

अभिज्ञानशकुन्तला की वाचनाओं का निर्धारणः- इस नाटक की जिन **पाँच वाचनाओं/रंगावृत्तियों** का नामोल्लेख हुआ है उनसे ऐसा प्रतीत होता है कि ये वाचनाभेद लिपिभेद एवं प्रदेशभेद के वाचक हैं। इस लिए सही अर्थ में तो इयत्ता की दृष्टि से ही इन पाठभेदों का बँटवारा किया जाय तो वह समुचित होगा। जैसे कि, बृहत्पाठ एवं लघुपाठ। किन्तु वाचनाभेद करने का यह तर्क भी ठीक नहीं है। क्योंकि जहाँ तक वाचना-भेद का निर्धारण करने का सवाल है, इस नाटक की दो ही वाचनाएँ हो सकती हैं :- 1. शारदा वाचना, और 2. शारदेतर वाचना। इस दूसरी वाचना का दो प्रवाहों में (बृहत्पाठपरम्परा एवं लघुपाठ परम्परा में) संचरण हुआ है। (इस तरह की द्विविध वाचनाओं का प्रमुख भेदक तत्त्व जो है वह पूर्वपरिणीता रानी का संघर्ष होना या नहीं होना, उनमें ही समाहित है। इस नाटक की अपूर्वता एवं नवीनता को भी उजागर करने-वाला यही प्रधान भेदक तत्त्व है। अतः, इसी बिन्दु को अग्रेसर करके इन पाठभेदों को वाचनाओं में निबद्ध करना चाहिए।। यहाँ जो शारदेतर वाचना है उसकी पाठपरम्परा का दो प्रवाहों में (बृहत्पाठपरम्परा एवं लघुपाठ परम्परा में) संचरण हुआ है।।

यद्यपि इस नाटक की वाचना-निर्धारण करने का उपक्रम प्रारम्भिक कक्षा में ही है ऐसा हम मानते हैं, क्योंकि अभी भी सैंकड़ों पाण्डुलिपियाँ हमारी पहुँच के बाहर हैं। तथापि जितनी सामग्री देखने का अवसर मिला है, उनके आधार पर जो विचार मन में उठ रहे हैं उसे विद्वानों की परीक्षा के लिए प्रकाशित करना आवश्यक भी है। पाठालोचना एक विरल बौद्धिक यात्रा होती है, इसके हर पड़ाव पर नया ज्ञान अर्जित करने का उपक्रम होता है, अतः उस यात्रा में थकावट को स्थान नहीं होता है। एवमेव, इस यात्रा में कदाचित् लक्ष्य दूर खिसकता चला जा रहा भी दिखता है, तथापि हर पड़ाव में कुछ नवीन तथ्य की जो प्राप्ति होती है, उसका आनन्द कायाकल्प करनेवाला एवं अविस्मरणीय होता है!!!

इस नाटक की उपलब्ध हो रही रंगावृत्तियों के पाठ का वंशवृक्ष निम्नोक्त रूप में आकारित हो रहा है :-

1. सम्मान्य प्रो. श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी के अभिज्ञान विषयक स्पृहणीय एवं हृदयंगम मत की उपस्थापना के लिए द्रष्टव्य है:-कालिदास - अपनी बात। (वाराणसी, 2004, पृ. 43 से 46)।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

ई. स. पूर्व प्रथम शती में कवि कालिदास का स्वहस्तलेख (कालग्रस्त)

↓

मूलादर्श प्रति का पाठ (अनुमानित प्रथम प्रति, वह भी कालग्रस्त)

↓

कवि-प्रणीत मूल पाठ की अज्ञात / विलुप्त पाण्डुलिपियाँ

↓

शारदा लिपि की पूर्वावस्था में निबद्ध काश्मीरी वाचना

↓

1. दूसरी-तीसरी शती का काश्मीरी रंगावृत्ति का पाठ

↓ (दो शाखाएँ)

काश्मीरी शारदा पाठ
↓
वर्तमान में उपलब्ध होनेवाली शारदा वाचना
↓

2. मैथिली (चौथी शती) का बृहत्तर पाठ
(चन्द्रगुप्त-2, = साहसांक, विक्रमादित्य के सामने मंचन)
↓
3. बंगाली रंगभूमि का बृहत्तम पाठ
(जो प्रायः 14वीं शती में हो सकता है)
↓

↓

4. दाक्षिणात्य रंगावृत्ति का संक्षिप्त एवं संमिश्रित पाठ
(यह पाठ 15वीं शती में बन गया था, जिस पर काटयवेम ने टीका[1] लिखी है)

↓

5. देवनागरी का संक्षिप्ततर एवं पुनः संमिश्रित किया गया पाठ
(प्रायः सोलहवीं शती का पाठ)

[देवनागरी वाचना (?) का यही पाठ आज मंचन एवं पठन-पाठन में सर्वत्र प्रचलित है]

इन पाँच रंगावृत्तियों की पाठपरम्परा के अनुमानित वंशवृक्ष को देख कर समझ में आयेगा कि "क्व आसीत् मूलपाठः, क्व चाधुना स समापतितः?।" गंगोत्री से समारब्ध गङ्गा नदी का परिशुद्ध जल, कालचक्र के साथ साथ आगे बढ़ता हुआ जब बहता है, तब हर कदम पर प्रदूषित होता रहता है, वैसी ही इस नाटक का पाठ बहुविध परिवर्तनों के साथ निरन्तर बदलता रहा है। तथापि जैसे गंगाजी में निहित पवित्रता अक्षुण्ण बनी रहती है, वैसे इस नाटक की अद्वितीय सुन्दरता की छाया उससे बिछड़ी नहीं है! फिर भी वह पाठ किस स्वरूप में आज हम तक पहुँचा है? यह विचारणीय बिन्दु है। उपर्युक्त परामर्श में हमने ऐसे प्रमाण प्रस्तुत किये हैं कि जिनके आधार पर मानना होगा कि प्रतिलिपिकरण की परम्परा में कविप्रणीत मूल पाठ हम तक पहुँचा ही नहीं है। आज उपलब्ध हो रही सभी विदित पाण्डुलिपियों में जो परम्परागत पाठ दिखता है वह तो केवल

---

1. काटयवेम भूप ने कुमारगिरिराजीया नामक टीका 15वीं शती में लिखी है, जो उपलब्ध सभी टीकाओं में सब से पहली है। इससे पहले लिखी गई हो ऐसी एक भी टीका की जानकारी नहीं है।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

किसी न किसी रंगावृत्ति का ही पाठ है। तथा वे सभी काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ को आधार बना कर, मिथिला, बंगाल-आदि प्रदेशों के रंगकर्मियों ने बनाई अपनी अपनी रंगावृत्तियाँ ही हैं। उनमें से काश्मीरी रंगावृत्ति का पाठ प्राचीनतम है। जिससे मैथिली-आदि रंगावृत्तियों के पाठ प्रभावित हैं।।

इस सिलसिले में, नाटक के पाठोद्धार विषय में एक सूक्ष्म बात, जो ध्यान में आयी है वह यहाँ पुनरुक्ति के साथ कहने योग्य है:-मैथिली रंगावृत्ति की रचना (चौथी शती, गुप्तकाल में) हुई तब तक कदाचित् कविप्रणीत मूल पाठ की कोई धारा भी उन मैथिली रंगकर्मियों के सामने रही होगी। क्योंकि काश्मीरी रंगावृत्ति में दो-चार स्थानों में जहाँ संक्षेपीकरण के आशय से अमुक श्लोकों को हटा दिया है, उनकी सुरक्षा मैथिली पाठ में हुई है ऐसा साफ दिखता है। जिसके कारण उन्हों ने काश्मीरी रंगावृत्ति के संक्षेपों की दुरस्ती कर दी है।। मैथिली रंगावृत्ति के पाठ में केवल पाठ-परिवर्तन एवं प्रक्षेपों का प्रदूषण प्रविष्ट हुआ है, संक्षेपीकरण का नहीं। और यह तो जाहिर है कि पाठविचलन में संक्षेप की अपेक्षा से प्रक्षेप कम हानिकारक होते हैं।। इसी सन्दर्भ में यह भी कथनीय है कि जैसे मैथिली रंगकर्मियों को कविप्रणीत पाठ की जानकारी थी, वैसे बंगीय रंगकर्मियों के पास कविप्रणीत मूल पाठ की कोई परम्परा थी या नहीं? उसका कोई प्रमाण अभी तक ध्यान में नहीं आया है।। निष्कर्षतः-1. इन पञ्चविध पाठों में पाँच स्वतन्त्र वाचनाओं के पाठ नहीं है, बल्कि समीक्षात्मक दृष्टि से देखा जाय तो इन पाँचों पाठों का केवल दो ही वाचनाओं में विभाजन हो सकता है। 2. इनमें, परस्पर से पृथक् हो ऐसी पाँच स्वतन्त्र रंगावृत्तियाँ भी नहीं हैं। 3. इन पाँचों में तो, कविप्रणीत मूल पाठ में ही विभिन्न कालखण्ड के अनेक रंगकर्मियों के किये पाठपरिवर्तनों का सांकर्य हुआ है ऐसा स्पष्ट दिख रहा है।।

[12]

भविष्य के लिए अवशिष्ट कार्यः- कालिदास के इस नाटक के पाठोद्धार के लिए अभी तक अवशिष्ट रहे, जो कार्य हमें दिख रहे हैं वह हैं :- (क) इस नाटक का बृहत्पाठ जिन देवनागरी-लिपि-निबद्ध पाण्डुलिपियों में भी संचरित हुआ है उनका एकत्रीकरण, तदनन्तर उन सब का तुलनात्मक अध्ययन करके, उनमें से **क्रमशः** कैसे लघुपाठ आया- यह निश्चित करना चाहिए[1]। (ख) दाक्षिणात्य वाचना का समीक्षित पाठसम्पादन, जिसमें टी. फॉलकेस ने एकत्रित किये हुए पाठान्तरों का विशेष रूप से परीक्षण करना है। जिसके लिए ग्रन्थ, तेलुगु, मळयालम, कन्नड, नन्दी-नागरी जैसी लिपियों में लिखी गई शताधिक पाण्डुलिपियाँ एकत्र की गई हैं। (ग) उड़िया, असमिया आदि लिपियों में संचरित हुई पाठ-परम्पराओं की गवेषणा करने के लिए इन प्रदेशों की पाण्डुलिपियाँ एकत्र करनी हैं। (घ) नेवारी पाण्डुलिपियों को प्राप्त करना एवं दूर सुदूर विदेशों में चली गई, और दुष्प्राप्य पाण्डुलिपियों का भारत में पुनर्वसन करवाने का कार्य करना है।। (ङ) कालिदास के अन्य दो नाटक, मालविकाग्निमित्र एवं विक्रमोर्वशीयम् की पाठ-परम्परा भी रंगकर्मियों की ही दिख रही है! क्योंकि इन के पाठभेदों में भी यही रंगकर्मिता झलक रही है। जिसकी समीक्षा भी करनी चाहिए।।

[13]

प्रस्तुत सम्पादन की पद्धति : इस नाटक की पाँच रंगावृत्तियों का समूह एक ही ग्रन्थ में प्रस्तुत करने के लिए उन सब के आविष्कारों का गवेषणामूलक जो पौर्वापर्य निश्चित होता है, उसको ध्यान में रखा गया है। जैसे कि, (इस ग्रन्थ की उत्तरपीठिका में-) सब से पहले काश्मीरी रंगावृत्ति का पाठ रखा है, जो प्राचीनतम भी है और बृहत् भी है। द्वितीय स्थान पर मैथिली रंगावृत्ति का पाठ रखा है, जो प्राचीनतर और बृहत्तर सिद्ध होता है। तृतीय स्थान पर बंगाली रंगावृत्ति का पाठ रखा है, जो प्राचीन और बृहत्तम है।। चतुर्थ क्रमांक पर दाक्षिणात्य रंगावृत्ति का पाठ स्थापित किया है, जो संक्षिप्त भी है और संमिश्रित पाठ भी है। सब के अन्त में, पञ्चम क्रमांक पर देवनागरी रंगावृत्ति का पाठ दिया है, जो संक्षिप्ततर एवं संमिश्रित पाठ है। यानी बृहत्पाठवाली तीन रंगावृत्तियाँ पहले दी हैं, तत्पश्चात् उनके पीछे दो लघुपाठवाली रंगावृत्तियाँ दी गई हैं।। इन

1. इस विषय में You-tube पर मेरे दो वीडियो द्रष्टव्य है:-
(क) https://youtu.be/Ervy_pXC6_E
(ख) https://youtu.be/CttrEG-y2fc

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

रंगावृत्तियों के पाठ की सम्पादन पद्धति निम्नोक्त रखी है:-

(1) प्रत्येक रंगावृत्ति की सभी उक्तियों की संख्या प्रदर्शित करने के लिए, उन उक्तियों के अन्त में उनके क्रमांक भी [1], [2], [3], [4] ऐसे दिये गये हैं।।

(2) प्रत्येक रंगावृत्ति के पाठ का आरम्भ करने से पहले उस रंगावृत्ति (= वाचना) का मान्य पाठ कहाँ से लिया है? एवं उसमें कौन से अपवाद करना जरूरी समझा है?- यह स्पष्ट किया गया है। तत्पश्चात् उस रंगावृत्ति के सातों अंकों के महत्त्वपूर्ण पाठान्तरों को लेकर एक छोटी सी पूर्व-भूमिका रखी है। जिसमें दृश्य-परिवर्तन, रंगसज्जा एवं वेशभूषा में होने वाले परिवर्तन, वक्ताओं में परिवर्तन, काकु-परिवर्तन, रंगसूचना-सम्बन्धी विसंगति आदि का विशदीकरण किया गया है।। तथा कुत्रचित् अनेक पाठभेदों में से किस पाठभेद को आन्तरिक सम्भावना या कृतिनिष्ठ आन्तःसाक्ष्य का समर्थन मिल रहा है? उसकी चर्चा भी जोड़ी गई है। तथा ऐसी चर्चाओं का सम्बन्ध किस क्रमांक की उक्ति के साथ है? उन सन्दर्भों को बताया है।।

(3) जिस शब्द या वाक्य के शीर्ष पर पादटिप्पणी का क्रमांक दिया है, वह पाठभेद दर्शक स्थान है। प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण पाठान्तर प्रदर्शित किये गये हैं।।

(4) ऐसे पाठभेदों के लिए जो पादटिप्पणियाँ लिखी गई हैं, वे संस्कृत में है। यहाँ प्रयुक्त संक्षिप्त शब्दों को ऐसे समझना है:- "का.-पाठे" का मतलब होगा कि "काश्मीर-पाठे"। "का.-मै.-पाठयोः" =काश्मीर-मैथिल-पाठयोः।, का.-पाठेषु = काश्मीर-मैथिल-बंगीय-पाठेषु। इत्यादि।।

(5) संस्कृत पादटिप्पणियों में प्राधान्येन तीन तरह का विवेक प्रस्तुत किया है। जैसे कि, (क) अमुक पाठान्तर के कारण मंचनलक्ष्यी क्या वैशिष्ट्य आयेगा।, (ख) वाचनान्तर में कैसा पाठभेद है, या (ग) उन पाठान्तरों का आदान-प्रदान (= अनुसरण) स्पष्ट किया गया है।।

(6) जिन पाठ्यांशों को प्रक्षिप्त भाग के रूप में पहचाने गये हैं, उनको [< ... >] ऐसे कोष्टकों के अन्तर्गत रखे गये हैं। जिससे उनको सरलता से पृथक् रूप में देखा जा सके। एवञ्च, उसको प्रक्षेप के रूप में क्यों देखा गया है- उसकी इति दिङ्-न्याय से चर्चा भी पादटिप्पणी में रखी गई है।

(7) काश्मीरी रंगकर्मियों के द्वारा संक्षेप के लिए हटाये गये पाठ को भी पादटिप्पणी में रखे हैं। (संक्षिप्त किये गये ऐसे पाठ्यांशों की उपलब्धि प्रायः मैथिली पाठ में से होती है।)

(8) पादटिप्पणीओं में 'किस वाचना ने कौन सी दूसरी वाचना का अनुसरण किया है।' ऐसा जो तुलनात्मक दृष्टि से दिखाया गया है, उनसे पाठविचलन का क्रम (जो प्रमाणान्तरों से) निश्चित किया गया है, उसका पुनरपि समर्थन किया गया है।

(9) ऐसी पादटिप्पणियों से उच्चतर समीक्षा से काश्मीरी पाठ मौलिकता के निकट है, या अधिक श्रद्धेय है, उसका समर्थन भी देखा जायेगा।

(10) दाक्षिणात्य और देवनागरी के पाठों में यह दिखाया गया है कि उन दोनों ने कहाँ कहाँ से अमुक अमुक पाठान्तरों का चयन करके संमिश्रण किया है। तथा उन दोनों का क्या क्या नवीन प्रदान है- यह भी पादटिप्पणियों में स्पष्ट किया गया है।

✦✦✦

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

उत्तर पीठिका

काश्मीरी वाचनानुसारी

"अभिज्ञानशकुन्तला" नाटक की रंगावृत्ति का पाठ।।

अभिज्ञानशाकुन्तल नाम से सुविख्यात बने इस नाटक की काश्मीरी वाचना का समीक्षित पाठ हमने शारदा पाण्डुलिपियों के आधार पर प्रथम बार सम्पादित किया है, उसी पाठ को यहाँ रखा गया है। काश्मीरी पाठपरम्परा में इसका शीर्षक "अभिज्ञानशकुन्तला नाटक" है। हमने पाँच शारदा पाण्डुलिपियाँ प्राप्त करके जो समीक्षित पाठ-सम्पादन किया है, उसका प्रकाशन 2018 में राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली ने किया है। इन पांच पाण्डुलिपियों में से एक पाण्डुलिपि ई.स. 1630 में भूर्जपत्र पर लिखी गई (192 क्रमांक) है। अन्य तीन पाण्डुलिपियाँ ऑक्सफर्ड युनिवर्सिटी की बोडलियन लाईब्रेरी में संगृहीत है, उनके क्रमांक 1247,159 एवं 87 है। पाँचवी पाण्डुलिपि श्रीनगर युनिवर्सिटी के ग्रन्थालय में से प्राप्त की है, उसका क्रमांक 1435 है। अद्यावधि संस्कृत के किसी भी विद्वान् ने इन शारदा पाण्डुलिपियों में संचरित हुए इस नाटक के पाठ को देखा नहीं है, जाना नहीं है। [डॉ. एस. के. बेलवालकर जी के द्वारा सम्पादित काश्मीरी पाठ का प्रकाशन केन्द्रीय साहित्य अकादेमी, दिल्ली के द्वारा 1965 में हुआ है, जिसकी प्रस्तावना डॉ. वी. राघवन् ने लिखी है। वह सही स्वरूप में समीक्षित आवृत्ति नहीं है। क्योंकि उसमें उपयोग में ली गई एक भी पाण्डुलिपि का निर्देश नहीं है, तथा एक भी पाठान्तर का उल्लेख पाद-टिप्पणी में नहीं है। उसमें डॉ. बेलवालकर जी ने लिखी प्रस्तावना भी नहीं है। एवञ्च, उसमें अनेक स्थानों पर देवनागरी वाचना के भी पाठान्तरों का ग्रहण किया गया है। यानी वह भी "मधुकर-वृत्ति" (Eclectic principle) से बनी एक साधारण आवृत्ति ही है। उसमें शारदा पाण्डुलिपियों में संचरित हुआ काश्मीरी पाठ अविकल स्वरूप में नहीं है[1]। अस्तु।]

इस नाटक की कुल मिला कर पाँच वाचनाओं का पाठ आज उपलब्ध हो रहा है, उनमें से काश्मीरी वाचना का पाठ ही प्राचीनतम सिद्ध होता है। क्योंकि (क) ब्राह्मी से निकली अन्यान्य लिपियों में मैथिली एवं बंगाली आदि की अपेक्षा से काश्मीर की शारदा लिपि ही प्राचीनतम है। अर्थात् लिपियों के उद्‌भव-विकास की दृष्टि से देखेंगे तो, शारदा पाण्डुलिपियों में जो पाठ संचरित हुआ है, वही सब से पुरातन कहना होगा। (ख) प्राकृत उक्तियों में प्रयुक्त शौरसेनी का ध्वन्यात्मक स्वरूप काश्मीरी पाठ में ही सर्वाधिक मात्रा में सुरक्षित पाया जाता है। (ग) काश्मीरी पाठ के तीसरे चौथे अंकों के आरम्भ में "प्रवेशक" नामका अर्थोपक्षेपक ही दिया गया है, जो नाट्यशास्त्रानुसार है। अन्यत्र ऐसा नहीं है। यह भी इसकी प्राचीनतमता का प्रमाण है। (घ) अन्य वाचनाओं के पाठान्तरों की तुलना में काश्मीरी वाचना के पाठ में ही सर्वाधिक मात्रा में आन्तरिक सम्भावना-युक्त पाठ सुरक्षित रहा है। इस लिए भी काश्मीरी पाठ को प्राचीनतम एवं सर्वाधिक श्रद्धेय मानना चाहिए। समयावधि की दृष्टि से सोचा जाय तो शारदा लिपि का प्रचलन सातवीं शती में हुआ है- ऐसे अभिलेख-शास्त्रीय प्रमाण मिल रहे हैं। अतः आज उपलब्ध हो रही उपर्युक्त पाँच पाण्डुलिपियाँ भले ही सोलहवीं या सतरहवीं शती में लिखी गई हो, किन्तु उसमें

---

1. न्यूयोर्क युनिवर्सिटी प्रेस की Clay Sanskrit Library सिरीज में, सोमदेव वासुदेव ने 2006 में, जो काश्मीरी वाचना के नाम से रोमन टाईप में इस (The Recognition of Shakuntala) का पाठ दिया है, वह तो कार्ल बुरखाड द्वारा 1884 में दिये गये पाठ का पुनर्मुद्रण मात्र है। (जिसमें केवल भूर्जपत्रवाली पाण्डुलिपि का पाठ है।) श्री सोमदेव वासुदेव ने दूसरी किसी शारदा पाण्डुलिपि का विनियोग नहीं किया है। उन्होंने जो एक शारदा पाण्डुलिपि का फोटोग्राफ दिया है, वह श्रीनगरवाली 1435 क्रमांक की पाण्डुलिपि का है। किन्तु उसका भी विनियोग नहीं किया है। तथा उनके द्वारा दिये गये अंग्रेजी अनुवाद को मूल भूर्जपत्रवाली पाण्डुलिपि के पाठ का पूर्णतः समर्थन नहीं है। यानी वह अनुवाद भी अनेक स्थान पर क्षति-ग्रस्त है। जिसके लिए द्रष्टव्य हैं उसी पुस्तक के पृष्ठः-144, 164, 208, 280, 292, 300, 318.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

परम्परागत रूप से संचरित हुए पाठ को सातवीं शती का तो निश्चित रूप से कह सकते हैं।। एवञ्च, इस विचारणा में कुछ ओर संशोधन करने की भी आवश्यकता है। जैसे कि, मैथिली वाचना के संग्रथन का काल 'साहसाङ्क श्रीविक्रमादित्य' के समय में, यानी चौथी शती के चन्द्रगुप्त-2 के समय में हुआ हो, तो मैथिली वाचना से भी पहले, यानी तीसरी शती में काश्मीरी वाचना का पाठ शूरु हुआ होगा- ऐसी कल्पना करनी होगी। इति दिक्।

काश्मीर की इन परम्परागत पाण्डुलिपियों में इस नाटक का जो शारदा-लिपि-निबद्ध पाठ हम तक पहुँचा है वह प्राचीनतम पाठ है, यह सुनिश्चित है। तथापि यह भी कहना होगा कि आज उपलब्ध हो रही पाँच शारदा पाण्डुलिपियों में से एक भी कवि-प्रणीत मूल पाठ की वंशज प्रतिलिपि हो ऐसा दिखता नहीं है। क्योंकि उनमें संचरित हुआ पाठ तो काश्मीर के किसी अज्ञात रंगकर्मियों की एकाधिक रंगावृत्तियों का संमिश्रित पाठ है। काश्मीरी-पाठ के अलावा जो अन्यान्य मैथिली, बंगाली, देवनागरी आदि चार वाचनाएं हैं, उनमें भी रंगावृत्तियों का ही पाठ संचरित हुआ है ऐसे चिह्न साद्यन्त दिख रहे हैं। तथा यह भी ध्यातव्य है कि इसी काश्मीरी-रंगावृत्ति के पाठ से मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं के पाठ प्रभावित भी हुए हैं। कालान्तर में जब दाक्षिणात्य तथा देवनागरी वाचनाओं के पाठों का संग्रथन हुआ होगा तब उन दोनों में भी काश्मीरी के पाठों का स्वागत किया गया है, तथा कुत्रचित् मैथिली-बंगाली वाचनाओं के पाठान्तरों का भी स्वीकार किया गया है। यानी ये दोनों पश्चाद्वर्ती वाचनाएँ तो सर्वथा संमिश्रित वाचनाएँ ही कहने के योग्य हैं। अन्त में, अनतिविलम्बेन यह भी कहना आवश्यक है कि इस काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ में से मंचनलक्षी परिवर्तनों को यदि पहचान कर, अलग किये जायेंगे, तो अवशिष्ट रहे पाठ्यांश के आधार पर मूलगामी एवं सर्वाधिक श्रद्धेय पाठ्यांश का पुनर्गठन भी किया जा सकता है।

काश्मीर की शारदा पाण्डुलिपियों में मिलनेवाला इस नाटक का पाठ ही प्राचीनतम है- ऐसा हमारा अभिमत साधार, सप्रमाण है। इसके साथ अन्य दो-तीन बिन्दु भी कहना आवश्यक है:- (1) किसी जमाने में यह शारदा -लिपि-निबद्ध पाठ केवल काश्मीर प्रदेश तक ही सीमित नहीं रहा था। उस पाठ का प्रचलन तो उत्तर में काश्मीर से लेकर, दक्षिण के केरळ प्रदेश तक फैला हुआ था- उसके भी दस्तावेजीय प्रमाण मिल रहे हैं। जैसे कि, अज्ञात-कर्तृक 'चर्चा' टीका, जिसका प्रकाशन केरळ विश्वविद्यालय, त्रिवेन्द्रम्, 1977 ने किया है, उसमें अनेक स्थान पर जिन पाठान्तरों का निर्देश किया हैं वे केवल काश्मीर की शारदा पाण्डुलिपियों में ही मिलने वाले हैं! उदाहरणतया, (क) केवल काश्मीरी पाठपरम्परा में ही इस नाटक का शीर्षक "अभिज्ञानशकुन्तला" या "शकुन्तला" मिलता है। [अन्यत्र मैथिली-बंगाली में "अभिज्ञानशकुन्तलम्" एवं लघुपाठवाली दाक्षिणात्य तथा देवनागरी में "अभिज्ञानशाकुन्तलम्" मिलता है।] इसी की ओर निर्देश करते हुए चर्चाकार ने लिखा है कि- "शाकुन्तलमित्यपि भवति। अधिकृत्य कृते ग्रन्थे इत्यण्। अभिज्ञान-शकुन्तलेत्यपि भवति। नैतत्, तथा रूपं हि ग्रन्थप्रत्ययस्य लुपि सम्भवेत्। लुप्ताख्यायिकाविषयः, लुबाख्यायिकाभ्यः प्रत्ययस्य बहुलमिति। अथवा अभिधेयाभिधायकयोरभेदव्यपदेशात् तथापि स्यात्" (पृ. 17)। (ख) तृतीयांक का एक सन्दर्भ द्रष्टव्य है:- "अथ नायिका नायकमनुरक्तमवधार्य तस्मादसाधारणीं पदवीं लिप्सुस्तस्मिन् कृतकमनादरलेशमारोप्य सखीनिर्बन्धं निरुणद्धि **-अन्तःपुर-विहार-पर्युत्सुकस्येति।** अनेन महाराजस्य विरहदुःखं न सत्कृतमित्युक्तम्।" (पृ.127) चर्चाकार ने जिस पंक्ति का यहाँ प्रतीकात्मक निर्देश किया है वह भी इस बात का प्रमाण है। मैथिली-आदि अन्य चारों वाचनाओं में "अन्तःपुर-विरह-पर्युत्सुकस्य" ऐसा पाठभेद मिलता है। उसके सामने केवल काश्मीरी पाठ में ही "अन्तःपुरविहारपर्युत्सुकस्य" पाठ चलता है। अतः जब चर्चाकार ने काश्मीरी पाठान्तर का स्वीकार करके, उस पर टीका लिखी है तो इससे सिद्ध हो जाता है कि काश्मीर से केरळ पर्यन्त शारदा पाठ का प्रचलन था।। (2) काल की दृष्टि से काश्मीरी पाठ के प्रचलन की उत्तर सीमा देखी जाय तो, भोजराज (11वीं शती) के शृङ्गारप्रकाश में इस नाटक के जिन श्लोकों के उद्धरण दिये हैं, उनमें प्रायः काश्मीरी पाठ का ही प्रतिबिम्ब है। द्रष्टव्य : परिशिष्ट-6। तथा हेमचन्द्र ने दिये शौरसेनी-प्राकृत के उदाहरणों में भी इस नाटक का काश्मीरी पाठ ही उपयोग में लिया गया है। (3) T. Foulkes नाम के विद्वान् के Kalidasa Complete collection of various readings in Madras Manuscripts (vol.1-4) ग्रन्थ में (P a, A) के सांकेतिक नाम से उल्लिखित ताडपत्रीय पाण्डुलिपि में भी काश्मीरी शारदा-पाठ का ही सीधा/अविकल रूप में प्रतिबिम्बित हुआ है।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रकृत में, काश्मीर प्रदेश की शारदा-पाण्डुलिपियों में उपलब्ध हो रहा पाठ (जिसका हमने प्रथमबार समीक्षित पाठसम्पादन किया है, वह) किसी प्राचीन काल की अज्ञात नटमण्डली की "रङ्गावृत्ति का पाठ" (stage-script) है, ऐसे हमारे अभिमत को प्रमाणित करने के लिए सातों ही अङ्कों के प्रमुख निर्देशों को क्रमशः देखना आवश्यक है :-

॥ प्रथमोऽङ्कः॥

काश्मीरी-रंगावृत्ति के (प्रथमांक के) पाठ में कुल दश स्थान ऐसे दिख रहे हैं कि जिनमें किन्हीं अज्ञात रंगकर्मियों ने मंचनलक्ष्यी परिवर्तन किये हैं। तद्यथा, 1. राजा को चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त होने के आशीर्वाद का दृश्य, 2. रंगसज्जा के सन्दर्भ में दो वृक्ष और दो लताओं का संनिवेश, 3. नायिका शकुन्तला की पहचान झटिति सिद्ध करने की योजना, 4. जलसिञ्चन सम्बन्धी रंगसूचनाएँ, 5. वल्कलशिथिलीकरण का स्थल, 6. वल्कल की चारुता के वर्णन सम्बन्धी श्लोक का संक्षेप, 7. भ्रमरबाधा प्रसंग के सन्दर्भ में श्लोक का संक्षेप, 8. शकुन्तला के द्वारा भ्रमर के अपसारण का अभिनयन, 9. हस्ति-संभ्रम के सन्दर्भ में नेपथ्योक्ति का विगलन, तथा 10. अन्त में, रंगभूमि से शकुन्तला का सव्याज निष्क्रमण।

(1) नाटक की प्रस्तावना पूर्ण होने के बाद, तापस के द्वारा राजा दुष्यन्त को चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त होने का आशीर्वाद दिया जाता है। इस दृश्य में रंगमंच पर तापस के साथ दो शिष्य आये थे, लेकिन उन दोनों के लिए कोई करणीय कार्य (कोई विशेष आङ्गिक या वाचिक अभिनय) नहीं है। कवि की मूल योजना ऐसी होगी या नहीं? वह भारी शङ्का का विषय है। अनुगामिनी सभी वाचनाओं [रंगावृत्तियों] के पाठ में इस सन्दर्भ की योजनाएँ तुलनीय हैं। क्योंकि उनमें शिष्यों की संख्या बदलती रही है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 23 से 32]

(2) काश्मीरी रंगमंच पर, आश्रम के परिसर में वृक्षों को जलसिञ्चन करने का दृश्य आकारित करने के लिए जिन वृक्षों और लताओं का निर्देश हैं, उसमें दो वृक्ष और दो लताओं का समावेश है। जैसे कि, बकुलवृक्ष, सहकारवृक्ष, नवमालिका तथा माधवीलता। इनके द्वारा रंगसज्जा करनी होगी। एवञ्च, काश्मीर पाठ के अनुसार शकुन्तला ने नवमालिका लता का कोई दूसरा नाम नहीं रखा है। किन्तु सहकार (आम्रवृक्ष) का नाम वनतोषिन् ऐसा रखा है। (कालान्तर में जिसको नवमालिका का विशेषण बनाने के लिए वनतोषिणी एवं वनज्योत्स्नी / वनज्योत्स्ना में परिवर्तित किया गया है।) [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 55, 61 एवं 68]

(3) तापस के कहने पर अतिथि-सत्कार ग्रहण करने के लिए राजा दुष्यन्त कण्वाश्रम में प्रवेश करता है, रंगमंच के सामनेवाले भाग से तीन आश्रमकन्याओं का प्रवेश होता है। वे तीनों आश्रम के वृक्षों को जलसिञ्चन करती हुई आपस में बातचीत कर रही हैं। यहाँ तत्कालीन किसी स्थानिक रंगकर्मी ने ऐसी योजना बनाई है कि प्रेक्षकों (रंगमंच पर आये राजा और सामने बैठे सामाजिकों) को झटिति यह पहचान हो जाय कि जलसिञ्चन कर रही इन तीनों सहेलियों में से शकुन्तला कौन है? इसके लिए उस रंगकर्मी ने अनसूया और प्रियंवदा को संयुक्त रूप से शकुन्तला को सम्बोधन करते हुए प्रस्तुत किया है। दृश्य के आरम्भ में, रंगकर्मी यह जल्दी से स्पष्ट कर देना चाहता है कि ये तीन सखियों में से मुख्य नायिका "शकुन्तला" कौन है। अतः दोनों सहेलियाँ एक साथ में (सख्यौ एवं उभे) ही शकुन्तला को उद्देश्य करके, उसका बारी बारी से नामोच्चारणपूर्वक बातचीत करती हैं। अन्यान्य वाचनाओं के पाठों के साथ इस भाग की तुलना करने से दृश्य की प्रस्तुति में कैसा अन्तर हो रहा है? यह समझ में आयेगा।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 47 से 54]

(4) तीन सखियाँ, जो आश्रम के वृक्षों को जलसिञ्चन कर रही हैं, उस दृश्य में उक्ति-क्रमांक 50, 53 एवं 74 में अनुक्रम से लिखा है : "वृक्षसेकं निरूपयति"। "नाट्येन सिञ्चति"। एवं "इति कलशम् आवर्जयति"।। इनको देखते ही सिद्ध होता है कि काश्मीरी-पाठ एक रंगावृत्ति का पाठ है। क्योंकि यहाँ "नाट्येन सिञ्चति" जैसी नाट्यधर्मी रंगसूचना होने के साथ साथ "इति कलशमावर्जयति" जैसी रंगसूचना भी दिख रही है। जिसमें स्पष्टतया लोकधर्मिता प्रतिबिम्बित हो रही है। ऐसी रंगसूचना किसी स्थानिक रंगकर्मी के द्वारा ही दी गई होगी। (तथा उभयविध रंगसूचनाओं का ऐसा मिश्रण सभी वाचनाओं के पाठ में समान रूप से दिखाई रहा है।) [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -50 से 74]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(5) प्रथमांक में शकुन्तला के वल्कल-शिथिलीकरण का प्रसंग भी तुलनात्मक दृष्टि से देखने से तुरंत मालूम हो जायेगा कि काश्मीरी पाठ एक रंगावृत्ति का ही पाठ है। रंगभूमि पर नायक जहाँ खड़ा है, उसके सामने वाले भाग से जलसिञ्चन कर रही तीनों सहेलियों का प्रवेश होता है। इस तरह से रंगमंच दो भागों में विभक्त है। यहाँ काश्मीर के रंगकर्मियों ने वल्कल शिथिलीकरण का प्रसंग कहाँ, कैसे प्रस्तुत किया जाय? इसमें अपनी कल्पना का प्रदर्शन किया है। उन कलाकारों ने राजा जहाँ खड़ा था वहाँ के बकुलवृक्ष की पल्लवांगुलियों को हिला कर शकुन्तला को वहाँ जाने के लिए प्रेरित किया। शकुन्तला दोनों सहेलियों को छोड़ कर, रंगमंच के सामनेवाले भाग में, जहाँ राजा खड़ा है वहाँ जाती है। यहाँ रंगकर्मियों ने सूचना दी है कि 'राज्ञः संनिकर्षम् आगच्छति'। अब राजा नायिका को बहुत निकट से देख पाता है, और वहीं पर कुछ ही क्षणों में शकुन्तला शिकायत करती है कि प्रियंवदा ने उसके वल्कल को कस कर बाँधा है, जिसको शिथिल करने की आवश्यकता है। नायक दुष्यन्त इस दृश्य को बहुत पास से देख सके ऐसी मंचनविधा केवल काश्मीरी पाठ में ही देखी जाती है।। अब प्रश्न होगा कि हम कैसे कह सकते हैं कि वल्कलशिथिली-करण का ऐसा स्थानान्तरण काश्मीरी रंगकर्मियों की ही देन है? तो वहाँ "शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुः०" श्लोक को केवल शकुन्तला को उद्देश्य करके प्रस्तुत किया गया है, वही प्रमाण है। अन्यथा श्लोक के शब्द तो हमें कह रहे हैं कि राजा ने अन्तःपुर की रानियों को उद्यानलताएँ कहा है, और तीनों आश्रम-कन्याओं को वनलताएँ कहा है। इस श्लोक की (बहुवचन में रखी गई) उपमा केवल शकुन्तला के लिए नहीं प्रयुक्त हुई है। अतः मानना होगा कि इस काश्मीरी पाठ में वहाँ के स्थानिक रंगकर्मियों की बनाई हुई नयी व्यवस्था मिलती है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 54 से 59]

(6) इसी बात का समर्थन करनेवाला दूसरा बिन्दु भी कहना जरूरी है:- उपर्युक्त स्थानान्तरण को प्रस्तुत करनेवाले रंगकर्मियों ने महर्षि कण्व के लिए काश्यप शब्द का प्रयोग किया है। आश्रममृग को नहीं मारने के लिए राजा को पुत्रप्राप्ति का आशीर्वाद देकर समिदाहरण के लिए जानेवाले तापस के मुख में प्रथम वाक्य ऐसा है:-"एष चास्मद्गुरोः काश्यपस्य संसक्तहिमवत्सानु-रनुमालिनीतीरम् आश्रमो दृश्यते। न चेद् अन्यकार्यातिपातस्तत् प्रविश्यात्र प्रतिगृह्यताम् अतिथि-सत्कारः। "इसके बाद रंगमंच पर तीन सहेलियाँ आश्रमवृक्षों को जलसिंचन करने के निमित्त से प्रविष्ट होती हैं। रंग पर आते ही दोनों सहेलियों ने कहा है कि- "हले शकुन्तले, त्वत्तोऽपि खलु तातकाश्यपस्याश्रमवृक्षकाः प्रिया इति तर्कयावः०"। तत्पश्चात् राजा दुष्यन्त तीनों सहेलियों में से अमुक शकुन्तला है ऐसा पहचान कर, बोलता है कि- "कथमियं सा कण्वदुहिता, अहो विस्मयः।" तब प्रश्न उठता है कि जिस राजा को पुरोगामी दोनों वाक्यों में इस आश्रम के मुनि का नाम "काश्यप" ही सुनने को मिला है, वह राजा इस "काश्यप" नाम में परिवर्तन करके, "कथमियं सा कण्वदुहिता" ऐसा कैसे बोलेगा? उसको तो "कथमियं सा काश्यप-दुहिता" ऐसा ही बोलना चाहिए! लेकिन जिन रंगकर्मियों ने शकुन्तला का वल्कलशिथिली-करण का दृश्य स्थानान्तरित किया होगा, उन्होंने कुछ नवीन वाक्यावली का प्रक्षेप करने के साथ साथ कण्व मुनि को "काश्यप" भी बना दिया हैं। (जिसके कारण कालान्तर में जब दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनाओं का संक्षिप्त पाठ तैयार किये गये हैं, तब उनमें भी "राजा- (आत्मगतम्) कथमियं सा कण्वदुहिता। असाधुदर्शी खलु तत्रभवान् काश्यपः, य इमामाश्रमधर्मे नियुङ्क्ते।" ऐसी एक ही उक्ति में, "कण्व" और "काश्यप" ऐसे दो तरह के नाम पास पास में आकर खड़े रहते हैं।। मैथिली और बंगाली में सर्वत्र केवल "कण्व" नाम का ही विनियोग हुआ है। किन्तु काश्मीरी पाठ का अनुसरण करनेवाले दाक्षिणात्य और देवनागरी पाठ के रचयिताओं ने कण्व और काश्यप- इन दोनों नामों का संमिश्रण प्रवर्तित किया है।)। जैसे कि [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 54 से 59]

(7) प्रथमांक में, रंगमंच पर, आश्रम के वृक्षों को जलसिंचन करते समय शकुन्तला ने शिकायत की है कि प्रियंवदा ने मेरे वल्कल को कस कर बाँधा है। उसको थोड़ा सा ढीला करने की आवश्यकता है। अनसूया शकुन्तला को सहायता करती है। किन्तु प्रियंवदा ने तुरंत कहा कि उसमें मेरा दोष नहीं है, लेकिन तेरे पयोधरों का विस्तार करनेवाला तेरा यौवन ही उसमें जिम्मेदार है। उस यौवन को उपालम्भ देना चाहिए। इसको सुन कर ही दुष्यन्त का अब ध्यान

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला के वल्कल की ओर जाता है। वह बोलता है कि प्रियंवदा ने ठीक ही कहा है। यहाँ मैथिली तथा बंगाली पाठ के अनुसार दुष्यन्त ने दो श्लोकों का उच्चारण किया है। जैसे कि, (1) इदमुपहित सूक्ष्म ग्रन्थिना स्कन्धदेशे०। (श्लोक-18), एवं (2) सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्०। (श्लोक-19) इन दोनों श्लोकों को पक्षान्तर वाचक "अथवा" निपात से बांधा गया है। इनमें से पहले श्लोक द्वारा कहा गया है कि वल्कल से बाँधे गये स्तनद्वय के कारण शकुन्तला का शरीर अपनी शोभा को उजागर नहीं कर रहा है, जैसे पाण्डुवर्ण के (सूखे) पर्णों में बाँधे गये कुसुम शोभा नहीं देते हैं। किन्तु दुष्यन्त को तुरंत अपने विचार में रहे एक सूक्ष्म तर्कदोष की ओर ध्यान जाता है। जैसे कि, यदि वल्कल से बांधा गया उसका शरीर शोभनीय नहीं लगता है, तो उसका मतलब तो यही हुआ कि शकुन्तला के सौन्दर्य को निखारने के लिए वल्कल नहीं, बल्कि कुछ अच्छे वस्त्रों की आवश्यकता है। लेकिन ऐसा कहना भी ठीक (सही) तो नहीं है। अतः दुष्यन्त तुरंत "अथवा" निपात का प्रयोग करते हुए दूसरे पक्ष को व्यक्त करता है। सरसिजमपि विद्धं शैवलेनापि रम्यम्०। (श्लोक-19) अर्थात् वल्कल शकुन्तला के शरीर की शोभा नहीं बढ़ाते हैं, ऐसा नहीं है। क्योंकि जो मधुर आकृतिवाले लोग होते हैं, उनको तो सब कुछ अच्छा ही लगता है।। यहाँ काश्मीरी-पाठ में से किसी रंगकर्मियों ने इदमुपहितसूक्ष्मग्रन्थिना स्कन्धदेशे०। (श्लोक-18) को हटा दिया होगा, जिसके कारण वह शारदा-पाण्डुलिपियों में आज उपलब्ध नहीं होता है। सम्भव है कि राजा दुष्यन्त का पात्र अभिनीत करनेवाले नट के लिए, श्लोकों के कण्ठस्थीकरण का बोझ कुछ कम करने के लिए, या अल्प समय में नाट्यप्रयोग करने की आवश्यकता होने पर, काश्मीर के रंगकर्मियों ने उस एक श्लोक को हटा दिया होगा।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 59 से 60]

(8) इसी तरह से काश्मीर की इस रंगावृत्ति में अन्यत्र भी श्लोक का संक्षेप किया गया है। जैसे कि, प्रथमांक के भ्रमर बाधा प्रसंग में चलापाङ्गां दृष्टि० वाला श्लोक 'सस्पृहम्' जैसी रंगसूचना के साथ रखा गया है, जो विसंगत है। क्योंकि इस श्लोक से तो नायक "वयं तत्त्वान्वेषान् मधुकर! हताः, त्वं खलु कृती' इन शब्दों को बोल कर, भ्रमर से ईर्ष्या कर रहा है। अतः चलापाङ्गां दृष्टि० वाले श्लोक के पूर्व में "यतो यतः चरणोऽभिवर्तते०" वाला श्लोक होना अपेक्षित है। इसमें वह नायक दुष्यन्त शकुन्तला के नेत्रविभ्रम का सौन्दर्य देख रहा है। अतः उसके साथ ही "सस्पृहम्" वाली रंगसूचना होनी चाहिए, वही सुसंगत होगी। किन्तु नट की सुविधा के लिए अथवा अल्प समय में अमुक दृश्य का मंचन करने के आशय से ("अपि च" तथा "अथवा" जैसे निपातों से बाँधे गये) दो दो श्लोकवाले स्थानों में से किसी एक श्लोक को हटाने की गतिविधि रंगकर्मी लोग प्रायः करते ही हैं। जिसके कारण यतो यतः षट्चरणो० श्लोक से जुड़ी "सस्पृहम्" जैसी रंगसूचना अनवधानतया चलापाङ्गां दृष्टिम्० के साथ जुड़ गयी है।। [सन्दर्भ-उक्ति-क्रमांक -78 एवं 79]

(9) शकुन्तला के द्वारा भ्रमर का अपसारण करने के लिए जो अभिनय कवि कालिदास ने मूल में सोचा होगा, वह शायद हम नहीं जान पायेंगे। क्योंकि आज उपलब्ध हो रही विभिन्न रंगावृत्तियों में "चलापाङ्गां दृष्टिम्०" वाले श्लोक के शब्दों में एकरूपता नहीं है। रंगमंच पर जब तीन सहेलियाँ आश्रमवृक्षों को जलसिञ्चन के निमित्त से आयी थी, तब हमें कहा गया है कि, "एताः तपस्वि-कन्यकाः स्वप्रमाणानुरूपैः सेचनघटकैर्बालपादपान् सिञ्चन्त्य इत एवाभिवर्तन्ते"। अर्थात् तीनों के हाथ में घट है। किन्तु नवमालिका के मूल में जल सिञ्चन करने के बाद, वहाँ से भ्रमर उठ कर शकुन्तला के मुखारविन्द पर मँडराने लगता है, तब प्रादेशिक रंगकर्मियों के द्वारा उस प्रसंग का निरूपण अलग अलग स्वरूप में पेश किया गया है। जैसे कि, काश्मीर की रंगभूमि पर "करौ व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरम्" कहा जाता है। इससे अनुमित होता है कि काश्मीरी रंगमंच पर भ्रमरबाधा का अभिनयन करने से पहले, "कलशमावर्जयति" रंगसूचना से शकुन्तला ने जलसिंचन के लिए हाथ में जिस घट को धारण किया था, उसको नीचे रख दिया होगा। अतः, वह दोनों ही हाथों से भ्रमर का अपसारण करने की कोशिश कर रही होगी। इससे विपरीत मैथिली एवं बंगाली पाठ में 'करं व्याधुन्वत्याः' ऐसा पाठभेद होने से मालूम होता है कि उन दोनों रंगमंचों पर, शकुन्तला ने अपने एक हाथ में लिया घट ('कलशमावर्जयति' रंगसूचना होते हुए भी) नहीं छोड़ा है। अतः वह केवल एक हाथ से ही भ्रमर

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

का अपसारण करने की कोशिश कर रही है- ऐसा श्लोक में कहा गया है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -79]

(10) भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र (अ. 25-88) में केवल "आत्मगतम्" उक्ति का प्रावधान किया है, वहाँ पर "स्वगतम्" जैसी उक्ति का निर्देश नहीं है[1]। (दशरूपककार ने स्वगतम् का निर्देश (1-64 में) किया है) अतः इस नाटक की पाण्डुलिपियों में जहाँ "आत्मगतम्" के साथ साथ "स्वगतम्" का भी प्रयोग मिलता है, तो वहाँ रंगकर्मियों का हस्तक्षेप हो सकता है। ऐसे स्थानों की परीक्षा करने से मालूम होता है कि ऐसे स्थानों में कदाचित् नवीन उक्ति या नवीन श्लोक दाखिल किये गये हैं। जैसे कि- प्रथमांक में, "स्वगतम्" रंगसूचना से राजा की उक्ति की अवतारणा की गई है :- "कथमिदानीमात्मानं निवेदये। कथं वात्मपरिहारं करोमि। भवत्वेवं तावदेनां वक्ष्ये।" यह रंगकर्मियों का प्रक्षेप ही है। (द्रष्टव्य है : परिशिष्ट-5)। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 102, 122]

(11) अङ्क का समापन करने के लिए कवि ने हस्ति-सम्भ्रम प्रसंग की योजना की है। यहाँ नेपथ्योक्ति से कहा जाता है : "भो भोस्तपस्विनः, अवहितास्तपोवन-सत्त्वरक्षायै भवन्तु भवन्तः। प्रत्यासन्नः किल मृगयाविहारी पार्थिवो दुष्यन्तः।" उसके बाद तुरगखुरहतस्तथा० श्लोक से राजा के सैन्य के आने की गतिविधि से हो रहा धूलिका-प्रक्षेप वर्णित किया जाता है। लेकिन यह काव्यात्मक वर्णन प्रक्षिप्त हो सकता है। क्योंकि आश्रम के द्वार पर ही राजा ने वैखानस के कहने से अपने बाण का प्रतिसंहरण कर ही लिया था। अतः सत्त्वरक्षा के लिए तापसों को एकत्र करने की सूचना वदतोव्याघात है। लेकिन दूसरा श्लोक मौलिक हो सकता है, जिसमें सूचित किया है कि मूर्तिमान् विघ्न ही हो ऐसा कोई गज, जो हस्तिनापुर से आये रथ को देख कर भड़क उठा है, वह धर्मारण्य में प्रवेश कर रहा है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -148 एवं 149]

(12) प्रथमांक के अन्त भाग में, शकुन्तला को रंगमंच से बाहर भेजने से पहले कालिदास ने उसके प्रणयासक्त मानस को व्यक्त करने के लिए क्या / कौन सी दृश्य-योजना सोची होगी? यह विचारणीय है[2]। काश्मीरी पाठ में तो शकुन्तला की एक ही आत्मगत उक्ति है कि "हद्धी ऊरुत्थम्भेण विअलम्हि संवुत्ता। (हा धिक्, ऊरुस्तम्भेन विकलास्मि संवृत्ता)" यह बहाना बिलकुल स्थानीय रंगकर्मियों ने सोचा होगा ऐसा लगता है। इसमें कोई चारुता नहीं दिखती है। क्योंकि ऊरुस्तम्भ की विकलता के कारण शकुन्तला कितनी बेढंग चलेगी? वह भी विचारणीय है। एवमेव, राजा की उक्ति के बाद, पुनः रंगसूचना मिलती है कि "शकुन्तला सव्याजविलम्बितं कृत्वा, परिक्रम्य सखीभ्यां सह निष्क्रान्ता"। इससे भी प्रतीत होता है कि काश्मीरी पाठ में स्थानीय रंगकर्मिता ही जिम्मेदार हो सकती है।। लेकिन कवि ने इस प्रसंग की दृश्य-योजना कैसी सोची होगी? उस पर विचार करेंगे तो उसका उत्तर द्वितीयांक के निम्नोक्त श्लोक में से मिलता है :

राजा- सखे, सखीभ्यां मिथः प्रस्थाने शालीनतयापि तत्रभवत्या मयि भूयिष्ठमाविष्कृतो भावः।
तदा खलु,

दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे
तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा।
आसीद् विवृतवदना च विमोचयन्ती,
शाखासु वल्कलम् असक्तमपि द्रुमाणाम्।। 2-13।।

इससे सिद्ध होता है कि शकुन्तला की विदाई का दृश्य काश्मीरी पाठ में यथातथ नहीं रह पाया है, उसमें प्रादेशिक रंगकर्मिता बलवती हो गई है। (कवि की मूल योजना का संरक्षण मैथिली पाठ में हुआ है, वह हम आगे चल कर देखेंगे।।) [सन्दर्भः उक्ति-क्रमांक -157 से 159]

---

1. नानाकारणसंयुक्तैः काव्यभावसमुत्थितैः। हृदयस्य (स्थं) वाचो यत्तु तदात्मगतमीष्यते।। ना.शा. 25-88
2. इस सन्दर्भ में विक्रमोर्वशीय के प्रथमांक की योजना भी स्मर्तव्य है।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(13) प्रथमांक के अन्तभाग में, नायक का निष्क्रमण दिखाने के लिए काश्मीरी रंगकर्मियों ने एक विशेष सूचना दी है : "सचिन्तः स्खलितानि पदानि दत्त्वा निष्क्रान्तः।" (इस रंगसूचना की तुलना अन्य मैथिली, बंगाली आदि के पाठों की साथ करणीय है।) [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -160]

(14) श्लोकात्मक पद्य भाग के सन्दर्भ में दो शब्द कहना आवश्यक है:- यद्यपि प्रथमांक में एक भी श्लोक ऐसा नहीं दिखता कि जो मूलगामी न हो। बल्कि इससे विपरीत, काश्मीर के रंगकर्मियों ने संक्षेपीकरण के आशय से दो मूलगामी श्लोकों को निष्कासित जरूर कर दिया है। जैसे कि, 1. इदम् उपहितसूक्ष्मग्रन्थिना स्कन्धदेशे०।, तथा 2. यतो यतः षट् चरणोऽभिवर्तते०। इन दोनों श्लोकों का होना बहुत आवश्यक लगता है। किन्तु काश्मीर के रंगमंच पर भी कभी इस नाटक को अल्प समयावधि में प्रस्तुत करने की आवश्यकता हुई होगी, जिसके कारण प्रथमांक के मूल पाठ्यांश में कदाचित् उक्त दो श्लोकों को हटा दिया होगा।।

॥ द्वितीयोऽङ्कः॥

अंक के आरम्भ में विदूषक और राजा के बीच में शकुन्तला को उद्देश्य करके बातचीत होती है। यद्यपि नर्मसचिव की भूमिका निभानेवाला विदूषक निश्चित रूप से नाट्यकार्य के निर्वहण में कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य करता ही है। विदूषक का आङ्गिक एवं आहार्य अभिनय भी जरूर हास्यजनक होता है, किन्तु इसके अलावा उसके मुख में रखी गई कुछ उक्तियाँ प्रसंग-विशेष (नाट्यकार्य) को ठीक तरह से समझने के लिए उपयोगी भी सिद्ध होती हैं। एवमेव, वह बीच-बीच में राजा के मनोगत भावों का जिस विशिष्ट रीति से विश्लेषण करता है, समीक्षा करता है, वह भी मनुष्य जीवन को समझने की चाबी बन जाती है। इस दृष्टि से भी, मूल कवि ने विदूषक के मुख में जो वाक्य रखे होते हैं, उनमें परवर्ती रंगकर्मियों के द्वारा प्रायः हमेशा नये पाठान्तर पैदा करके नाट्य-प्रयोग को आधुनिकता प्रदान करने की कोशिश की जाती है। अतः इस विदूषक के वाक्यों का पाँचों वाचनाओं के पाठ में कैसा कैसा परिवर्तन होता रहा है? यह तुलनात्मक दृष्टि से देखना रसप्रद सिद्ध होगा। रंगकर्मिता का कौशल दिखाने की गुंजाइश विदूषक के चरित्र चित्रण में ही ज्यादा होती है। इस सन्दर्भ में, अभिज्ञानशकुन्तला नाटक का द्वितीयांक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यहीं पर राजा और विदूषक के बीच में होनेवाली बातचीत साद्यन्त निरूपित हुई है।

(1) द्वितीयाङ्क की रंगभूमि का विचार करने के लिए विदूषक के दो वाक्य उपयोगी हो सकते हैं। 1. कण्वाश्रम के आसपास में कहीं विदूषक दण्डकाष्ठ का अवलम्बन लेकर खड़ा है, और राजा के वहाँ आने की प्रतीक्षा कर रहा है। राजा को आते हुए देख कर विदूषक बोलता है : एष राजा बाणासन-हस्ताभिर्यवनीभिः परिवृतो वनपुष्पमालाधारीत इवागच्छति। इससे मालूम होता है कि राजा ने अपने गले में वनपुष्पों की माला पहनी है, और उसके आसपास हाथ में बाणासन लेकर यवनियाँ भी साथ में चल रही हैं। काश्मीर की रंगभूमि पर इस दृश्य का मंचन ऐसे होता था। जो आगे चल कर मैथिली एवं बंगाली रंगभूमियों में बदल जाता है। 2. राजा ने जब सेनापति को बुलाकर विश्राम घोषित कर दिया तब राजा और विदूषक किस / कैसे स्थान में बैठते है : तत् साम्प्रतम् एतस्मिन् आवासपादपच्छायापरिवृते वितानक-सनाथासने यथासुखम् उपविशतु भवान्, यावदहमपि सुखासीनो भवामि। अर्थात् रंगमंच के ऊपर वृक्षों की छाया में, जहाँ एक वितान भी बाँधा गया है ऐसा आसन (आसन्दी) है, जिस पर राजा बैठे हुए हैं। राजा को बिठाना है, इस लिए काश्मीरी रंगकर्मियों को वितान बाँधना आवश्यक लगा होगा। लेकिन यहाँ विचारणीय बिन्दु तो यही है कि भले ही राजा को बिठाना हो, किन्तु यह स्थान तो तपोवन का ही है। अतः आहार्यरूप वितान का तपोवन में होना सुसंगत नहीं लगता है। (मैथिली रंगावृत्ति के पाठ में वितान का निर्देश नहीं है, उसका शायद यही कारण होगा।)।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 4 एवं 41]

(2) विदूषक वैसे ही राजा दुष्यन्त के मृगयाविहार के कष्टों से संत्रस्त हो गया है, उस स्थिति में दूसरी आपत्ति आ पहुँची, जैसे कि राजा किसी तापसकन्या में आसक्त हुए! अब वह नगरगमन की बात भी करनेवाले नहीं हैं। अतः विदूषक भारी उद्विग्न है। इतनी पूर्वभूमिका के बाद, जब मृगया में विश्राम घोषित किया जाता है, तथा दोनों किसी

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

वितान-सनाथ आसन पर बैठे हैं। वहाँ राजा ने जब शकुन्तला के सन्दर्भ में कुछ कहने का उपक्रम शुरू किया तो तुरंत विदूषक ने मन में संकल्प कर लिया कि मैं राजा को इस दिशा में आगे नहीं बढ़ने दूँगा। यहाँ पर काश्मीरी पाठ में संचरित हुआ उक्ति-क्रम बहुत युक्तियुक्त प्रतीत होता है। इसमें विदूषक कुल चार बार राजा की प्रणयघटना का अनौचित्य दिखा कर, उसको त्याज्य बताने की कोशिश करता है। सामने से राजा भी विविध हेतु पुरस्सर उसका औचित्य सिद्ध करने की कोशिश करता रहता है। (इसके लिए मूल में द्रष्टव्य हैं 45 से 52 तक की उक्तियाँ।) इस पाठ में विचार-सातत्य एवम् काकु से जो आरोह-अवरोह है वह बहुत प्रतीतिकर है तथा अन्तिम चरण पर विदूषक ने राजा जी को स्त्रीरत्नपरिभाविन् कह दिया है वह भी बिलकुल सुसंगत लगता है। यद्यपि इस स्थान की संवाद-माला में अनुगामी काल के रंगकर्मियों ने बहुत परिवर्तन किये हैं। तथापि काश्मीरी-पाठ की तुलना में वे सर्वथा उचित नहीं सिद्ध होते हैं। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -45 एवं 52]

(3) कालिदास ने विक्रमोर्वशीय नाटक में रंगमंच पर विदूषक को समाधि लगाने का अभिनय करता हुआ आलिखित किया है। इस काश्मीरी पाठ में भी राजा शकुन्तला को किस उपाय से पुनः मिल सके? यह सोचने के लिए विदूषक रंगमंच पर समाधि लगाता है ऐसा दृश्य मिलता है। यह दृश्य मैथिली-आदि किसी भी अनुगामिनी वाचनाओं के पाठ में उपलब्ध नहीं होता है। यहाँ काश्मीर के रंगकर्मियों ने विदूषक की समाधि का प्रसंग नया प्रक्षिप्त किया होगा ऐसा सोचना उचित नहीं है। क्योंकि ऐसा प्रसंग विक्रमोर्वशीय में है, तथा काश्मीरी शारदा-पाठ प्राचीनतम भी है एवं बहुत स्थानों में अधिक श्रद्धेय भी सिद्ध हो रहा है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -63 से 65]

॥ तृतीयोऽङ्कः॥

इस प्रणय-प्रधान नाटक का तीसरा अङ्क बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उसीमें दुष्यन्त एवं शकुन्तला के गान्धर्व-विवाह की घटना का मंचन होता है। किन्तु इस अङ्क के प्रथम दृश्य की योजना जो कवि ने स्वयं सोची थी, उसीमें एकाधिक रंगकर्मियों ने प्रक्षेप, संक्षेप एवं परिवर्तनादि किये हैं। मूल कवि की संकल्पित दृश्य-योजना में कुठाराघात करने वाले इन परिवर्तनों के कम से कम तीन सोपान तो केवल काश्मीरी-पाठ में ही स्पष्टतया पहचाने जा सकते हैं। इस तरह के निरीक्षण का फलितार्थ यह भी होगा कि वर्तमान में उपलब्ध हो रहा काश्मीरी पाठ किसी एक ही नट मण्डली की रंगावृत्ति का पाठ नहीं है। उपलब्ध हो रही इसी एक रंगावृत्ति के पाठ में ही क्रमिक रूप से तीन तीन रंगकर्मियों के द्वारा किये गये परिवर्तनों का संकर एकत्र हुआ है। जिसके कारण, कालिदास द्वारा निरूपित किया हुआ नैसर्गिक प्रेम का सच्चा स्वरूप काश्मीरी रंगमंच पर विकृत होना शुरू होता है, और आगे चल कर मैथिली-आदि रंगमंच पर तो वह तिरोहित होने की दिशा में जाकर खड़ा रहता है। अब काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ में, एक साथ तीन तीन रंगकर्मियों के पदचिह्न कैसे अंकित हुए हैं?। इसे निम्नोक्त चर्चा से विशद करेंगे।।

(1) तीसरे अङ्क के प्रथम दृश्य को प्रस्तुत करने की कालिदास की मूल योजना तो यही है कि मालिनी नदी के पास लतावलयों में स्थित एक शिलातल पर शकुन्तला मदनाविष्ट दशा में पुष्पमयी शय्या पर लेटी हो और दोनों सहेलियाँ उसको पवन झल रही हो। (यद्यपि रंगमंच पर सुषुप्ति क्रिया का निषेध है, किन्तु प्रयोजनवशात् शयनावस्था मान्य है।[1]) शकुन्तला जब सहेलियों के प्रस्ताव पर मदनलेख लिखती है, तब भी शिलातल पर लेटी हुई ही है। तथा उस मदनलेख के शब्दों को सुन कर राजा उनके सामने साक्षात् प्रकट होता है, तब भी लेटी हुई अवस्था में ही है। जब दोनों सहेलियाँ रंगमंच से बिदाई ले लें, और नायक नायिका से कहे कि हे करभोरु! तुम कहो तो मैं आपके पद्म जैसे ताम्रवर्णी चरणों को मेरी गोदी में लेकर उनका संवाहन करूँ। "अङ्के निधाय चरणावुत पद्मताम्रौ, संवाहयामि करभोरु यथासुखं ते। 3-20" तब, वह अपनी मदनावस्था के अनुरूप धीरे से कुसुमास्तरण से उठ कर चलने का आरम्भ करे। (अवस्थासदृशम् उत्थाय प्रस्थिता)। इस तरह लम्बे समय तक रंगमंच पर नायिका को लेटे ही रहना

1. न कार्यं शयनं रङ्गे नाट्ययोगमपेक्षता। केनचिद् व्यपदेशेन तद्विच्छेदं च कारयेत्।।
यदि स्वपेदर्थवशात् पुरुषः सहितः स्त्रिया। न तत्र चुम्बनं कुर्यान्निर्व्याजालिङ्गनं न च।। (ना. शा. अध्याय 24-285)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

था। लेकिन कवि ने नायिका को रंगमंच पर लेटी हुई अवस्था में प्रस्तुत करने की जो दृश्य-योजना सोची थी, वही मूलपाठ के विचलन का भारी निमित्त बन गई है! लगता है कि बहुत प्राचीनतम काल से ही रंगकर्मी लोग लेटी हुई शकुन्तला को रंगमंच पर प्रस्तुत करने का मौका मिलते ही शृङ्गारातिरेक भरे अश्लील श्लोकों एवं नवीन उक्तियों का प्रक्षेप करने के लिए लालायित हो गये थे[1]। प्रथम सोपान पर ही यहाँ सुदूर अतीत के अज्ञात रंगकर्मियों ने जिन चार अश्लील श्लोकों को दाखिल किये हैं, वे इस तरह के हैं:-

(क) उक्ति-क्रमांक 75 से 79, जिसमें "अपराधमिमं ततः सहिष्ये यदि रम्भोरु तवाङ्ग-रेचितार्धे। कुसुमास्तरणे क्लमापहं मे सुजनत्वाद् अनुमन्यसेऽवकाशम्।। (3 -19)" यह श्लोक आता है।,

(ख) उक्ति-क्रमांक 90 से 95, जिसमें "अप्यौत्सुक्ये महति न वरप्रार्थनासु प्रतार्याः, काङ्क्षन्त्योऽपि व्यतिकरसुखं कातराः स्वाङ्गदाने। आबाध्यन्ते न खलु मदनेनापि लब्धास्पदत्वाद् आबाधन्ते मनसिजमपि क्षिप्तकालाः कुमार्यः।। (3-22)" यह श्लोक है।,

(ग) उक्ति-क्रमांक 97 से 102, जिसमें "यदा सुरतज्ञो / सुरतरसज्ञो भविष्यामि।" वाक्य आता है।,

(घ) उक्ति-क्रमांक168, जिसमें "रहः प्रत्यासत्तिं यदि सुवदना यास्यति पुनर्न कालं हास्यामि प्रकृतिदुरवापा हि विषयाः। इति क्लिष्टं विघ्नैर्गणयति च मे मूढहृदयं प्रियायाः प्रत्यक्षं किमपि च तथा कातरमिव।। (3-34)" यह श्लोक आता है।।

इन तीन प्रक्षिप्त श्लोकों[2] में काश्मीर के रंगकर्मियों ने नायक के मुख से सीधे सहशयन की मांग करवाई है, क्योंकि नायिका रंगभूमि पर लेटी हुई अवस्था में थी! उपरि निर्दिष्ट चार पाठ्यांशों को हम काश्मीरी रंगावृत्ति का प्रथम किरणोदय कहेंगे[3]। अथवा, हो सकता है कि ये अश्लील श्लोक उसको विरासत में मिले हो।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -75 से 168]

(2) काश्मीरी रंगावृत्ति में जब अश्लील कोटि के श्लोकों ने प्रवेश किया तब, कुछ दूसरे रंगकर्मियों ने उसी तरह के नये अश्लील श्लोकों का अधिक प्रक्षेप न हो, इसका उपाय सोचना शुरू किया। जिसके परिणाम स्वरूप (द्वितीय सोपान पर आये) उन रंगकर्मियों ने शकुन्तला की रंगमंच पर लेटी हुई अवस्था की कालावधि कम कर देने की युक्ति खोज निकाली। जैसा कि, शकुन्तला के मदनलेख को सुन कर राजा तीन सखियों के सामने आता है और अनसूया उसको उसी शिलातल पर, (जिस पर शकुन्तला लेटी थी,) बैठने की विज्ञप्ति करती है। तब, शकुन्तला को "सलज्जा तिष्ठति" की रंगसूचना से खड़ी कर देने का उपाय पेश कर दिया[4]। परन्तु इस दूसरे सोपान पर आये रंगकर्मियों ने पहलेवाली रंगावृत्ति के पाठ में ही ऐसी नवीन रंगसूचना दाखिल कर दी! मतलब कि, मूल में नायक जब लेटी हुई शकुन्तला के पद्मताम्र चरणों का संवाहन करने की तत्परता दिखाता है, तब "अवस्थासदृशम् उत्थाय प्रस्थिता" वाली कविप्रणीत रंगसूचना को हटाये बिना ही, "सलज्जा तिष्ठति" जैसी नवीन रंगसूचना जोड़ दी है। परिणाम यह हुआ कि आज का पाठक 'शकुन्तला सलज्जा खड़ी हुई है' ऐसा पहले सुनता है, और तत्पश्चात् आगे चल कर वह "अवस्था सदृश उठ कर चलती है" ऐसा भी पढ़ता है! [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -62 से 63, ये दोनों ही उक्तियाँ प्रक्षिप्त हैं।]

(3) लेटी हुई शकुन्तला के दृश्य में शयनावस्था का जो लम्बा समयावधि था, उसी को अभी भी कैसे कम किया जा

---

1. यहाँ प्रायः "स्वगतम्" जैसी अनाट्यशास्त्रीय रंगसूचनाओं से प्रक्षेप किया जाता है।
2. इन श्लोकों का प्रक्षेप हुआ है ऐसा इस आधार पर कहा जाता है कि जिस दृश्य के आरम्भ में नायक के मुख से तीन तीन बार सहशयन की माँग हुई हो, उसके उत्तरवर्ती दृश्य में तो कामकेलि का ही दृश्य आना चाहिए। किन्तु इससे विपरीत उत्तरार्ध में तो नायक-नायिका के बीच शिष्ट एवं सुशील प्रेमसहचार के दृश्य आते हैं।
3. ये वही रंगकर्मी होंगे जिन्होंने (प्रथमांक में) शकुन्तला के वल्कलशिथिलीकरण का स्थानान्तरण किया है।
4. अश्लील श्लोकों का प्रक्षेप पहले हुआ था और तत्पश्चात् ही (= द्वितीय स्तर पर) शकु. सलज्जा तिष्ठति-वाली रंगसूचना आयी है, इसका प्रमाण "अपराधमिमं ततः सहिष्ये०" (3-19) श्लोक की शब्दावली ही है।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

सकता है? इसी बिन्दु को लेकर, (तृतीय सोपान पर आये) रंगकर्मियों ने राजा के आगमन से पहले ही शकुन्तला को बिठा देने की दूसरी युक्ति का आविष्कार किया। कविप्रणीत दृश्य-योजना के अनुसार तो शकुन्तला को मदनलेख लिखते समय भी रंगमंच पर लेटी हुई अवस्था में ही रखना था। लेकिन ये जो तीसरे रंगकर्मी लोग आये, उन्होंने (उक्ति-क्रमांक 45) "चिन्तयिष्यामि। अवधीरणाभीरुकं पुनर्वेपते मे हृदयम्।" इस उक्ति पर रंगसूचना दे दी है कि "आसीना चिन्तयति"। अब इसका मतलब यह होगा कि राजा के रंगमंच पर उपस्थित होने से पहले ही, शकुन्तला अपनी लेटी हुई अवस्था को त्याग देती है। एवमेव, तीसरे क्रम पर आये इन्हीं रंगकर्मियों ने (मदनलेख को सुन कर) सहसा उपस्थित हुए राजा को जब अनसूया शिलातल के एकदेश में बैठने की विनती करती है तब, एक दूसरी रंगसूचना भी जोड़ दी है। जैसे कि, "शकुन्तला पादावपसारयति।" यानी जो शकुन्तला मदनलेख लिखने के निमित्त से बैठ गई थी, उसीने अब शिलातल पर बैठे हुए ही, अपने दोनों पाँव को सिकोड़ लेना है।

यहाँ एक बात की ओर ध्यान आकर्षित करना आवश्यक है कि तीसरे क्रम में ही आये काश्मीर के ही रंगकर्मियों ने उपर्युक्त दोनों रंगसूचनाएं ("आसीना चिन्तयति"। एवं "शकुन्तला पादावपसारयति"।) दाखिल की हैं ऐसा कहने का दस्तावेजीय प्रमाण क्या है? यह जानना चाहिए:- जिन पाँच शारदा पाण्डुलिपियों को हमने उपयोग में लिया है, उनमें से भूर्जपत्र पर लिखी गई प्रति (क्रमांक-192) ही प्राचीनतम है, तथा क्रमांक-159 वाली प्रति भी अपेक्षाकृत प्राचीनतर है। उन दोनों प्रतियों में ये दोनों ही रंगसूचनाएं नहीं हैं। वे तो केवल ऑक्सफर्ड की 1247 तथा श्रीनगर की 1345 क्रमांकवाली पाण्डुलिपियों में ही लिखी गई हैं। अत: इन दो रंगसूचनाएँ देनेवाले रंगकर्मियों को हम तीसरे क्रम में आनेवाले कहते हैं।।

अब, पुनरुक्ति के साथ हम याद दिलाते हैं कि काश्मीर की रंगावृत्ति का जो पहला पाठ था, (जिसमें प्रथम किरणोदय के रूप में चार अश्लील श्लोक प्रक्षिप्त हुए हैं), उसी पाठ के अन्दर ही दूसरे क्रम में आये रंगकर्मियों ने "सलज्जा तिष्ठति" -वाली रंगसूचना नयी डाली थी। तथा तीसरे क्रम में जो रंगकर्मी लोग आये उन्होंने भी काश्मीर की पहलेवाली रंगावृत्ति में ही अपनी ओर से दो नवीन रंगसूचनाएँ (जैसी कि, आसीना चिन्तयति। एवं शकुन्तला पादावपसारयति।) दाखिल की हैं! इस तरह से काश्मीरी पाठ में जब परस्पर विरुद्धार्थ दिखनेवाली सभी रंगसूचनाएं एकत्र उपलब्ध होती हैं, तब यह निश्चित हो जाता है कि आज उपलब्ध हो रहा काश्मीरी वाचना का प्राचीनतम पाठ केवल रंगावृत्ति का ही पाठ है। एवमेव, उस पाठ में बारी बारी परिवर्तन करनेवाले रंगकर्मी-लोग तीन सोपानों पर अलग अलग खड़े हैं। तथा वर्तमान काश्मीरी पाठ में तीन पीढ़ी के रंगकर्मियों का हस्तक्षेप देखा जा सकता है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -45 एवं 59]

(4) काश्मीरी रंगावृत्ति में, शकुन्तला की लेटी हुई अवस्था का प्रथम दृश्य अश्लील श्लोकों के प्रक्षेप से दूषित हुआ है। एवं तत्पश्चात् शकुन्तला की लेटी हुई अवस्था की समयावधि कुछ कम करने के आशय से दाखिल की गई नवीन रंगसूचनाओं से और दूषित हुआ है। क्योंकि ऐसी रंगसूचनाएं परस्पर में विरोध पैदा करने वाली है। उस प्रथम दृश्य की तुलना में यदि इसी अङ्क के उत्तरार्ध में रखे गये दूसरे दृश्य को देखते हैं तो मालूम होता है कि उस दूसरे दृश्य में रंगकर्मियों ने अपनी ओर से कोई खेलवाड़ नहीं किया है। शब्दान्तर से कहें तो, उत्तरार्ध में निरूपित नायक-नायिका के नैसर्गिक प्रेमसहचार का दृश्य काश्मीर के रंगकर्मियों ने उसके मूल रूप में सुरक्षित रखने का उपकारक कार्य किया है। (उत्तरार्ध में सुरक्षित रहे सहज प्रेमसहचार के दृश्य को देख कर ही यह निश्चित हो जाता है कि इस अङ्क के प्रथम दृश्य में रखे गये अश्लील श्लोकादि किसी अज्ञात रंगकर्मियों के द्वारा किया गया प्रक्षेप ही है। क्योंकि, प्रथम दृश्य में ही यदि नायक की भोगेच्छा बार बार मुखरित होती हो, और वह नायिका से सहशयन की मांग करता हो, तो उत्तरार्ध के दृश्य में कामकेलि / बलात्कार का दृश्य ही आना चाहिए। लेकिन ऐसा तो कुछ उत्तरवर्ती दृश्य में होता नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि प्रथम दृश्य के अशिष्ट पाठ्यांश का कर्तृत्व काश्मीर के प्राचीनतम रंगकर्मियों का हो सकता है। किन्तु वह भाग मूल कवि ने तो नहीं ही लिखा होगा।)[सही नैसर्गिक प्रेमसहचार का सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -103 से 152]

(5) काश्मीर के रंगकर्मियों में कुछ कविंमन्यमान बुद्धिवाले पाठशोधक भी कार्यरत थे। उन लोगों ने उपर्युक्त अश्लील

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

श्लोकों तथा परस्पर विरुद्धार्थक रंगसूचनाओं का प्रक्षेप करने के उपरान्त भी, एक-दो स्थान पर काव्यत्वपूर्ण उक्तियों का प्रक्षेप भी किया है। जैसे कि, कामयानावस्थ राजा का रंगमंच पर प्रवेश होता है। वह अपना दैन्य प्रकट करने के लिए कामदेव को कोसता है। "भगवन् काम, एवमप्युपपद्यते न ते मय्यनुक्रोशः। कुतश्च ते कुसुमायुधस्य सतस्तीक्ष्णत्वम्। (विचिन्त्य) आं ज्ञातम्। अद्यापि नूनं हरकोप-वह्निस्त्वयि ज्वलत्यौर्व इवाम्बुराशौ। त्वमन्यथा मन्मथ मद्विधानां भस्मावशेषः कथम् एवमुष्णम्। (3-3)" यह श्लोक निश्चित रूप से प्रक्षिप्त है। उसके दो कारण हैः- 1. इसी श्लोक के नीचे "तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दोः०" श्लोक आ रहा है। उसमें भी दुष्यन्त कामदेव को कोसता ही है। नाटक जैसी समयबद्ध कला में पुनरुक्ति कथमपि सह्य नहीं होती है।, 2. इसी अङ्क में, आगे चल कर दुष्यन्त जब शकुन्तला के हाथ में मृणालवलय पहनाता है तब भी वह एक श्लोक बोलता है। जिसके शब्द इस तरह के हैः- "हरकोपाग्निदग्धस्य दैवेनामृतवर्षिणा०" (3-28) इस श्लोक की शब्दावली और (3-3) की शब्दावली में बहुत साम्य है। कुमारसम्भव में कालिदास ने हरकोपाग्नि से कामदेव का दहन वर्णित किया है। उसका अनुकरण करते हुए किसी अज्ञात रंगकर्मी ने इन दोनों का प्रक्षेप किया होगा। क्योंकि कालिदास अपनी एक ही कृति में "हरकोपवह्नि" एवं "हरकोपाग्नि" जैसे शब्दों से पुनरुक्ति नहीं करेंगे। एवञ्च उपर्युक्त दोनों श्लोकों में से पहला (3-3) श्लोक अप्रासंगिक है, अतः वह प्रक्षिप्त होगा तथा दूसरा "स्वगतम्" उक्ति से अवतरित है। अतः वह भी प्रक्षिप्त हो सकता है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -06 एवं 129]

(6) काश्मीर के किसी अज्ञात रंगकर्मी ने जैसे प्रथमांक के "यतो यतः षट्चरणोऽभिवर्तते०" एवं "इदमुपहित-सूक्ष्मग्रन्थिना स्कन्धदेशे०" इन दो श्लोकों को हटा दिया है, वैसे ही इस तीसरे अङ्क में से भी एक श्लोक को हटा दिया है। (सम्भव है कि अश्लील श्लोकों के प्रक्षेप करने के बाद कुछ संक्षेप की भी आवश्यकता महसूस हुई होगी।) यह श्लोक मैथिली रंगावृत्ति में सुरक्षित रह गया है। दुष्यन्त ने "तव कुसुमशरत्वम्०" श्लोक से कामदेव को उपालम्भ तो दे दिया, लेकिन प्रेम की वेदना अच्छी भी लगती है! अतः, कालिदास की यह शैली सर्वथा सुविदित है कि वे किसी एक विचार को प्रस्तुत करने के बाद, उस विचार में निहित तर्कदोष को प्रमार्जित करने के लिए, "अथवा" निपात से तुरन्त पक्षान्तर भी प्रस्तुत करते ही हैं[1]। तदनुसार यहाँ भी कहा जाता हैः "अथवा, अनिशमपि मकरकेतुर्मनसो रुजमावहन्नभिमतो मे। यदि मदिरायतनयनां तामधिकृत्य प्रहरतीति।" लेकिन काश्मीरी रंगकर्मियों ने संक्षेप के आशय से तीसरे अङ्क में से इस श्लोक को भी निकाल दिया है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -7 एवं 8 के मध्य में]

(7) इस अङ्क के अन्तिम दृश्य में भी अज्ञात रंगकर्मियों ने खेलवाड़ किया है। नायक-नायिका के एकान्त मिलन को रोकने के लिए माता गौतमी का आगमन होना है, यह बात कवि ने ही हमको "प्रवेशक" में कह रखी है[2]। अतः नायक से नायिका को अलग करने के लिए जब गौतमी का आगमन बताया जाता है तब वहाँ (लतावलय के आसपास में) पहरा दे रही दोनों सखियों ने शकुन्तला को चेतावनी देदी है। लेकिन कैसे? तो काश्मीरी रंगावृत्ति में नेपथ्योक्ति से आवाज आती है : "अय्या गोदमी"। उसके प्रतिपक्ष में, यानी मैथिली रंगावृत्ति के पाठ में नेपथ्य से कहा जाता है : "अइ चक्कवाअ-वहू, आमन्तेहि सहअरं। उवत्थिदा रअणी।" (मैथिली-पाठ की यही उक्ति अन्यान्य वाचनाओं के पाठ में भी उपलब्ध होती है।) यहाँ पर विचार करने से लगता है कि काश्मीरी रंगकर्मियों ने, सामाजिकों को अभिधा से ही झटिति अर्थबोध होगा ऐसा सोच कर 'आर्या गौतमी' जैसे शब्दों से, सीधा गौतमी का नामोच्चारण करवा देना उचित समझा होगा। इस कारण से उनके पाठ में ऐसा पाठान्तर मिलता है। इस तरह के पाठान्तर में निश्चित ही सरलीकरण का आशय ही रहा होगा। लेकिन इसके कारण उन रंगकर्मियों ने प्रसंग की व्यंजकता को

1. कालिदास रघुवंश में "मन्दः कवियशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्। (1-3)" कहने के बाद, तुरंत "अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन् पूर्वसूरिभिः। मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः।। (1-4)" भी कहते हैं।।

2. शिष्यः - अहमपि वैतानिकशान्त्युदकमस्यै प्रहेष्यामि। (इति निष्क्रान्तः)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

हानि पहुँचाई है यह बात निश्चित है। हमारा भाग्य है कि मैथिली रंगकर्मियों ने इस स्थान पर मूल पाठ की सुरक्षा की है। लगता है कि मैथिली रंगकर्मियों ने अपने सामने भले ही काश्मीरी रंगावृत्ति का ही पाठ रख कर, उसमें ही परिवर्तन एवं प्रक्षेपादि किये हों, लेकिन सम्भव है कि उनके हाथों में कदाचित् कविप्रणीत मूल पाठ की भी कोई प्रति रही होगी। जिसके आधार पर वे काश्मीरी रंगावृत्ति में संक्षिप्त एवं परिवर्तित किये गये स्थानों का अ-खण्डित एवं अपरिवर्तित पाठ भी दे रहे हो। मैथिली-पाठ में सुरक्षित रहा यह वाक्य (चक्रवाकवधु, आमन्त्रयस्व सहचरम्, उपपस्थिता रजनी।)ही अधिक श्रद्धेय लगता है। क्योंकि,आन्तरिक सम्भावना की दृष्टि से सोचा जाय तो, महाकवि ने पूरे नाटक में शकुन्त-ला के लिए परभृतिका, चक्रवाक आदि विविध पक्षियों के प्रतीकों का भी साद्यन्त विनियोग किया ही है।। [सन्दर्भः उक्ति-क्रमांक -153]

(8) काश्मीरी पाठ में रंगावृत्ति का पाठ है ऐसा कहने के लिए छोटे छोटे प्रमाण भी अत्र तत्र बिखरे हुए मिलते हैं। उदाहरणतया, (क) नायक-नायिका को एकान्त मिलन का अवकाश देने के लिए अनसूया एक मृगबाल को उसकी माता के पास पहुँचाने का बहाना बनाती है। इस प्रसंग की जो संवाद-शृङ्खला है, उसकी तुलना मैथिली पाठ के साथ करणीय है। काश्मीरी पाठ में,

प्रियंवदा- ननु चपलकः खल्वेषः। एकाकिनी नियोजयितुं न पारयसि। तदहमपि ते अनुवर्तितुं करयिष्यामि। (इत्युभे प्रस्थिते),

शकुन्तला- हले, अन्यतरा वो गच्छतु। अन्यथाऽशरणाऽस्मि।,

उभे- (सस्मितम्) यः पृथिव्याः शरणं स तव समीपे। (इति निष्क्रान्ते)।।

अब, मैथिली-पाठ में दी गई शब्दावली देखिए :

प्रियंवदा- हला चपलो खलु एषो दुर्विनीतः। तस्मात् न एनं संयोजयितुम् एकाकिनी पारयसि। तस्माद् अहमपि सहायतां करिष्यामि। (उभे प्रस्थिते),

शकुन्तला- हला, न वो गमनं अनुमन्ये। असहायिनी अस्मि।,

उभे- (सस्मितम्) त्वम् इदानीम् असहायिनी?! यः पृथिवीनाथः, ते समीपे वर्तते।।

इन दोनों की तुलना करने से साफ दिखेगा कि कथनीय अर्थ प्रायः एक समान होते हुए भी इन गद्य-वाक्यों की सारी शब्दावली रंगकर्मियों के द्वारा यथेच्छ रूप से (काकुभेद के साथ) गढ़ी गयी है।। उसी तरह से, दूसरा उदाहरण भी परीक्षणीय है:- (ख) काश्मीरी पाठ में,

प्रियंवदा- महाभाग, द्वयोरपि वामन्योऽन्यानुरागः प्रत्यक्षः। सखीस्नेहः पुनर्माम् पुनरुक्तवादिनीं करोति।,

राजा- उच्यताम्, विवक्षितं ह्यनुक्तमनुतापं जनयति।,

प्रियंवदा- तेन हि शृणोतु महाराजः।,

राजा- अवहितोऽस्मि।,

प्रियंवदा- इयं नस्सखी त्वामेवोद्दिश्य भगवता मदनेनेदमीदृशमवस्थान्तरं नीता। तदर्हस्यभ्युपपत्याऽस्या जीवितमवलम्बितुम्।,

राजा- अनुगृहीतोऽस्मि।।

अब, मैथिली-पाठ में दी गई शब्दावली देखिए :

प्रियंवदा- महाराज, द्वयोरपि वोऽन्यानुराग प्रत्यक्षः। सखीस्नेहः पुनः मां पुनरुक्तवादिनीं करोति।, अनुसूया-एष ननु धर्मः।,

राजा- विवक्षितं ह्यनुक्तमनुतापं जनयति। अस्मात्परं किं तत्।,

प्रियंवदा- तेन हि इयं नः प्रियसखी त्वामेवोद्दिश्य भगवता मदनेन इमामवस्थां प्रापिता। तस्मात् अर्हसि अभ्युपपत्या जीवितमस्या अवलम्बितुम्।,

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- भद्रे, साधारण एषः प्रणयः। सर्वथाऽनुगृहीतोऽस्मि।।

यहाँ तुलना करने से यह बात ध्यान में आयेगी कि काश्मीरी पाठ में किन्हीं रंगकर्मियों ने बनाया हुआ पाठ चल रहा है। उसके प्रतिपक्ष में जो मैथिली-पाठ है वह अधिक श्रद्धेय प्रतीत हो रहा है। क्योंकि काश्मीरी-पाठ के अनुसार, जब प्रियंवदा राजा को यह बताती है कि आपको उद्देश्य करके हमारी प्रियसखी की ऐसी अवस्था हुई है, और अब आप ही उसके जीवन को अवलम्बन दीजिए। तब राजा "मैं आपके प्रस्ताव से अनुगृहीत हुआ हूँ" ऐसा कहे, तो उसमें वह उपकारक कोटि में आ जाता है। उसके प्रतिपक्ष में मैथिली-पाठ में जब राजा कहते हैं कि हम दोनों का प्रणय साधारण (परस्परावलम्बी) है। तब उसमें राजा केवल उपकारक नहीं रहता, वह स्वयं उपकार्य भी है ऐसा स्वीकार करता है। सही दाम्पत्य जीवन का स्वरूप भी वही होता है, जिसमें पति और पत्नी दोनों परस्पर के उपकार्योपकारक बने रहते हैं।। अतः मैथिली पाठ, जिसके सामने काश्मीरी रंगावृत्ति का पाठ भी है और कविप्रणीत मूल पाठ की परम्परा भी शायद जीवित है, उसने यहाँ मौलिक या अधिक श्रद्धेय पाठ हम तक पहुँचाया है ऐसा लगता है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -81 से 84, एवं 64 से 69]

(9) काश्मीर की रंगावृत्ति के मूल पाठ्यांश में अश्लीलता-पूर्ण चार श्लोकों का प्रक्षेप बहुत पहले से हुआ होगा, जो काश्मीर के रंगकर्मियों को विरासत में मिले होंगे। अथवा, यह भी सम्भव है कि काश्मीर के ही स्थानिक रंगकर्मियों ने उनका प्रक्षेप किया हो। परन्तु ऐसी दूसरी सम्भावना कम लगती है। क्योंकि काश्मीर की रंगावृत्ति के सातों अंकों के पाठ का परीक्षण करने से इतना तो सिद्ध होता है कि इस पाठ में बहुत कुछ अंश मूलगामी पाठ के रूप में अभी भी सुरक्षित बचा हुआ है। किसी भी पाठ्यांश को मूलगामी कहने के लिए उसकी जब परीक्षा की जाती है तब यदि कोई आन्तरिक सम्भावना के नाम पर प्रमाण मिल जाता है, तो वही सब से बड़ा प्रमाण होता है। इस दृष्टि से काश्मीरी पाठ में बहुत कुछ भाग आन्तरिक सम्भावना से समर्थित होता है। इस लिए ऐसा मानने का मन होता है कि इस तृतीयांक में अश्लीलता से भरे जिन चार श्लोकों का पाठ संचरित हुआ है, वह काश्मीरी रंगकर्मियों को विरासत में मिला होगा। उन श्लोकों का कर्तृत्व किसका होगा, यह कहना कठिन है। वे प्रक्षिप्त चार श्लोक इस तरह के हैं:-1. अद्यापि नूनं हरकोप-वह्निस्त्वयि०। (3-3), 2. अपराधमिमं ततः सहिष्ये यदि रम्भोरु०। (3-19), 3. अप्यौत्सुक्ये महति न वरप्रार्थनासु०। (3-22), तथा 4. रहः प्रत्यासत्तिं यदि सुवदना यास्यति पुनः०। (3-34)।।

।। चतुर्थोऽङ्कः।।

कालिदास के सर्वोत्तम सिद्ध हुए इस नाटक के सातों अङ्कों में से चतुर्थाङ्क विशेष रूप से प्रशंसनीय कहा गया है। (प्रासंगिकरूप से कहना है कि इस नाटक की प्रशस्ति के रूप में "काव्येषु नाटकं रम्यम्, तत्र रम्या शकुन्तला। तत्रापि चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयम्।" ऐसा जो श्लोक प्रचलित हुआ है, उसमें नाटक का नाम "शकुन्तला" दिया गया है। वह काश्मीरी वाचना में उपलब्ध हो रहे शीर्षक का ही निर्देश कर रहा है!)इस अङ्क में तापस-पिता कण्व अपनी पाल्यापुत्री शकुन्तला को पतिगृह भेज रहे हैं। कन्या-बिदाई का यह दृश्य बहुत हृदयद्रावक है। इस दृश्य की प्रस्तुति के विषय में महाकवि कालिदास अद्वितीय कवि सिद्ध हुए है। क्योंकि उन्होंने ही सब से पहले इस कन्याविदाई के चिरंजीवी दृश्य को (और इसके निमित्त से पिता पुत्री के बीच का वात्सल्य भाव) रंगभूमि पर साकार किया है। उत्तरवर्ती काल में किसी भी दूसरे कवि ने उसे निरूपित नहीं किया है। भारत के सामाजिक जीवन में ही देखने को मिलनेवाले इस प्रसंग का नाट्यात्मक आलेखन हृदय-द्रावक सिद्ध हुआ है। अतः उसकी युगों युगों से सर्वत्र भूरि भूरि प्रशंसा होती रही है।। किन्तु जब हम विविध प्रदेशों की पाण्डुलिपियों में संचरित हुए इस नाटक के पाठों का तौलनिक अभ्यास कर रहे हैं, और उनमें संगोपित रहे मंचन का वैविध्य ढूँढने का उपक्रम किया हैं तो इससे मालूम होता है कि कालिदासानुरागियों को इस अङ्क की कुछ विरल क्षणों का साक्षात्कार करना अभी भी बाकी ही है। बिटिया की बिदाई का दृश्य जब रंगकर्मियों के हाथों में पहुँचा है, तब इन बहुविध प्रतिभाओं ने उसको रंगमंच पर कैसे मूर्तिमन्त किया है। एवमेव उसमें कैसे कैसे परिवर्तन, परिवर्धन, संक्षेपादि होते रहे हैं? यह जानने को हमारा मन बहुत उत्सुक हो जाता है:-

(1) इस अङ्क के आरम्भ में दुर्वासा-शाप प्रसंग आकारित होता है। इसके साथ दो बातें जुड़ी हैं:- (क) शाप-मोचन की

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

याचना को लेकर जाना, तथा (ख) शाप-वृत्तान्त को संगोपित रखने का प्रस्ताव करना। काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ में पहला कार्य अनसूया के द्वारा सम्पन्न किया जाता है। दूसरा कार्य प्रियंवदा के मुख से निकले वाक्य द्वारा किया जाता है। लेकिन इनमें कुछ विशेष रंगकर्म के कारण कैसे क्रमशः परिवर्तन आ गया है। वह रोचक बिन्दु ज्ञातव्य है।

(काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठानुसार), प्रातःकाल में दोनों सहेलियाँ आश्रम के उपवन में पुष्पावचयन का कार्य कर रही थी। अनसूया को यह बात ठीक तरह से ध्यान में है कि शकुन्तला को आज से सौभाग्यदेवता की अर्चना करनी है। अतः वे दोनों कुछ अधिक पुष्पों का चयन करने को रुक जाती हैं। इतने में नेपथ्य से, "अयमहम् भोः" की ध्वनि सुनाई पड़ती है। किसी अतिथि के आने की यह आवाज है, ऐसा जान पड़ता है। प्रियंवदा ने बताया कि आश्रम की कुटीर में शकुन्तला उपस्थित है, लेकिन वह आज हृदय से असंनिहित है। (क्योंकि आज सुबह में ही दुष्यन्त हस्तिनापुर वापस चला गया है।) ऐसा सुनते ही अनसूया ने तुरंत कह दिया कि तभी तो इतने पुष्प पर्याप्त हैं, चलो हम जल्दी से वापस चलें।- इस तरह की प्रस्तुति, जो काश्मीरी पाठ में सुरक्षित है, उसमें जब दुर्वासा शाप-वचन देकर चले जाते हैं, तब शाप-मोचन की प्रार्थना करने के लिए प्रियंवदा ही अनसूया को भेजती है। जिस सहेली (अनसूया) ने पूर्वोक्त वचनों से शकुन्तला के सुखी जीवन की चिन्ता जताई है, और उसीने ही देखा है कि दुर्वासा किस मार्ग से वापस चले गये हैं, उसी अनसूया का, शाप-मोचन की प्रार्थना लेकर जाना सर्वथा उचित प्रतीत होता है। लेकिन कालान्तर में, इस प्रसंग का जब मंचन होता है तो मैथिली रंगकर्मियों के द्वारा उसमें विकृति प्रविष्ट होती है। उपर्युक्त दोनों प्रस्तावों में क्रमशः आगे चलते पूरा उलटा-पुलटा हो जाता है। साहित्य -रसिकों को यह मालूम है कि किसी एक व्यक्ति के द्वारा बोला गया वाक्य जब दूसरे ही व्यक्ति के द्वारा बोला जाता है तो, वाक्यार्थ वही का वही रहते हुए भी वक्तृ-विशेष के व्यक्तित्व की गरिमा को बदल देता है। जिसके कारण पात्रविशेष की नाट्यगत व्यक्तिरेखा भी बदल जायेगी।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 10, 12, 14-15, 19-20, एवं 30]

(2) अङ्क के आरम्भ में काश्यप का शिष्य रंगमंच पर आ कर प्रभात-वेला का वर्णन करता है। उसने कुल चार श्लोकों के द्वारा प्रभात का वर्णन किया है। लेकिन इनमें से प्रथम दो श्लोक ही सन्दर्भोचित हैं। इन दो श्लोकों में शिष्य ने, पहले अपने समक्ष कर्कन्धू वृक्ष पर गिरे तुहिन, कुटीर से नीचे उतर रहे मयूर और अँगड़ाई लेकर खड़े हो रहे मृगादि, जो दिख रहा है, उनका निरूपण किया है। तत्पश्चात् अपनी दृष्टि उपर उठा कर सामने आकाश में जो चन्द्र और सूर्य का युगपत् व्यसनोदय दिख रहा है, उसको दूसरे श्लोक में वर्णित किया है। इन दोनों के बीच में समुच्चयार्थक "अपि च" निपातसमूह का विनियोग हुआ है, वह यथार्थ है। क्योंकि दोनों में वर्णित विषय की द्वि-पार्श्विता प्रकटतया स्पष्ट है। लेकिन उन दोनों के पीछे जो "यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनाम्०" एवं "अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे०" जैसे श्लोक आते हैं, वे दोनों ही काश्मीरी रंगावृत्ति को विरासत में मिले प्रक्षिप्त श्लोक प्रतीत होते हैं[1]। क्योंकि उनमें पुनरुक्ति का दोष स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है। केवल पहले दो श्लोकों में ही प्रसंगोचित वर्णन है एवं अपि च निपातद्वय का स्वारस्य भी ठीक बैठता है।। किन्तु अनुगामी काल के रंगकर्मियों ने इन चार श्लोकों के सन्दर्भ में क्या क्या किया है? वह देखना रसप्रद होगा।।[सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 34 से 40]

(3) रंगमंच पर शकुन्तला को लेकर दो-तीन तापसियों और गौतमी का प्रवेश होता है। (अभी प्रियंवदा और अनसूया वहाँ नहीं पहुँची हैं।) काश्मीरी रंगमंच पर गौतमी और तीन तापसियाँ आती हैं, जिन में से किसी एक ने "पुत्रि, भर्तृबहुमानयुक्तकं महादेवी-शब्दकम् अधिगच्छ" ऐसा आशीर्वाद दिया। दूसरी तापसी ने "वत्से, वीरप्रसविनी भव" ऐसा कहा। तीसरी तापसी की उक्ति नहीं है। बाद में वे तीनों तुरंत वहाँ से निकल जाती हैं। तब रंगमंच पर केवल गौतमी और शकुन्तला रह जाते हैं। यहाँ ध्यातव्य है कि आश्रममाता गौतमी के मुख में से एक भी आशीर्वाद नहीं

1. द्रष्टव्य है:- अभिज्ञानशाकुन्तल में अपि च से सम्बद्ध प्रक्षेप एवं संक्षेप की पहचान।,धीमहि (अंक-3, में पृ. 76-89), 2012, प्रका. चिन्मय इन्टरनेशनल फाउन्डेशन शोध-संस्थान, एरानाकुलम्

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

निकलता है। इस तरह की योजना में, गौतमी की निष्क्रियता दिखती है, खटकती भी है। दूसरा ध्यातव्य बिन्दु यह है कि पिता कण्व अभी रंगमंच पर आये नहीं है, दोनों सहेलियाँ (जिनका सांनिध्य तो प्रथमांक से निरन्तर दिखाया गया है) भी शकुन्तला के पास पहुँची नहीं है, तब आशीर्वाद देने वाली ये तापसियाँ क्या कवि की सर्जना है, या फिर किसी अज्ञात रंगकर्मी का दृश्य-प्रक्षेप है?। यह दृश्य निश्चित रूप से प्रक्षेप ही हो सकता है। क्योंकि शकुन्तला को वह पति को बहुमता बने, एवं वीरपुत्र को जन्म देनेवाली बने- ऐसा महत्त्वपूर्ण आशीर्वाद देने का अधिकार पिता कण्व को ही है। तथा आगे चल कर, पिता कण्व के मुख से वह निकलता भी है:-ययातेरिव शर्मिष्ठा पत्युर्बहुमता भव० (4-9) इत्यादि। इससे सिद्ध हो जाता है कि काश्मीरी रंगावृत्ति में प्रथमवार दृश्यमान होती हुई इन तापसियों का दृश्य सर्वत्र कुछ वैशिष्ट्य के साथ (अनुगामी काल के) सब रंगकर्मियों ने स्वीकृत एवं अनुकृत किया है। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 64 से 68]

(4) आश्रमसुलभ प्रसाधनों से प्रियंवदा और अनसूया जब शकुन्तला का मण्डन कर रही हैं, तब वहाँ दो ऋषिकुमार क्षौमवस्त्र, लाक्षारस एवं अलंकारादि लेकर उपस्थित होते हैं। वे बताते हैं कि काश्यप मुनि की आज्ञा से वे वनस्पति के पास कुसुमादि लेने के लिए पहुँचे थे, तब वनस्पतियों में से प्रकट हुई वनदेवता ने अपने हाथों से यह सब सामग्री दी है। इस मौके पर प्रियंवदा की एक उक्ति है:- हले, अद्भुत सम्पत्तिः सूचिता। भर्तृगृहेऽनुभवितव्या ते राजलक्ष्मीः।, जिसको सुन कर शकुन्तला लज्जा का अनुभव करती हुई कहती है कि "सखि, कल्याणिनीदानीमसि। कोटरसम्भवेव मधुकरी पुष्करमुखमभिलषसि।" प्रियंवदा की उक्ति से जो सद्भावना व्यक्त हो रही थी, उसके प्रतिभाव में शकुन्तला ने यह वाक्य कहा है। एक सखी के रूप में प्रियंवदा, तपोवन रूप कोटर में पैदा हुई मधुकरी जैसी शकुन्तला के लिए (=कोटर सम्भवाया इव मधुकर्याः कृते) पुष्कर-मधु का अभिलाष रखती है, तो उस सखी को सच में ही कल्याणिनी कहना होगा।। यद्यपि इसका वाक्यार्थ दुरुह है। तथापि सरलपाठ की अपेक्षा से कठिन पाठ को पसंद किया जाना चाहिए- ऐसा पाठालोचना का अधिनियम है। अनुगामी काल के पाठों में हम देखेंगे कि इस सद्भावना का माहौल कुछ दूसरे ही स्वरूप में परिवर्तित किया जाता है। जो पाठ "कोटरसम्भवा इव" शब्दों से आकारित किया गया है, वह "कोटरसम्भवा अपि" में रूपान्तरित किया जाता है, और उसको बोलनेवाला पात्र भी शकुन्तला के स्थान पर प्रियंवदा हो जाता है! [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 83 एवं 84]

(5) काश्यप मुनि ने प्रस्थान कर रही शकुन्तला को कहा है कि तुम्हारे आसपास में खड़े तपोवन के तरुओं को बता दो वत्से, कि आपको पानी पिलाये बिना जो स्वयं पानी नहीं पीती थी, (इत्यादि) वही शकुन्तला आज पतिगृह की ओर जा रही है, तो आप सब उसको अनुज्ञा दे दो। यहाँ काश्यप ने शकुन्तला से तपोवन-तरुओं से अनुज्ञा माँगने को कहा है। (इस तरह के सन्दर्भ को अनुगामी काल के मैथिली रंगकर्मियों ने बदल दिया है।) तत्पश्चात् नेपथ्योक्ति (रम्यान्तरः कमलकीर्णजलैः०) से शकुन्तला को अनुज्ञा दी जाती है, उस दिव्य ध्वनि को सुन कर मंचस्थ सभी पात्र विस्मय का अनुभव करते हैं। (यहाँ काश्मीरी पाठ में "कोकिलशब्दं सूचयित्वा" जैसी रंगसूचना नहीं है। ऐसी रंगसूचना तो प्रथम बार मैथिली रंगकर्मियों ने दाखिल की है।) नेपथ्योक्ति के अनुसन्धान में शार्ङ्गरव बोलता है कि "अनुमतगमना शकुन्तला तरुभिरियं वनवासबन्धुभिः। परभृतरसितं प्रियं यदा प्रतिवचनीकृतम् एभिरात्मनः।।" इस श्लोक के शब्दों में स्वयं कवि ने परभृतिका का ध्वनि होने का संकेत जरूर दे रखा है, किन्तु काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ में उसकी कोई रंगसूचना प्रकटतया नहीं मिलती है। मैथिली पाठ में बहुत नवीकृत प्रस्तुति उपलब्ध होती है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -106 से 110]

(6) पिता काश्यप जामाता दुष्यन्त के लिए क्या समुचित सन्देश होगा? यह सोचने के लिए क्षीरवृक्ष की छाया में बैठते हैं। तब तक तीन सहेलियों के बीच एक बातचीत होती है। जिसमें अनसूया के मुख से "पद्मिनीपत्रान्तरितां व्याहृतां नानुव्याहरति जायाम्। मुखोद्व्यूढमृणालस्त्वयि दृष्टिं ददाति चक्रवाकः।। (4-18)" गाथा रखी है। इसको सुन कर शकुन्तला बड़ी संतप्त होती है। उसके मुख से निकलता है कि "सखि, सत्यमेव नलिनीपत्रान्तरितं प्रियं सहचरम्

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अप्रेक्षन्ती आतुरं चक्रवाकी आरसति। दुष्करं खल्वहं करोमि।" वेदना-भरी इस उक्ति के प्रतिभाव में प्रियंवदा ने आश्वासन देती हुई एक दूसरी गाथा रखी गई है। "अद्यापि विना प्रियेण गमयति रात्रिं विसूरणादीर्घाम्। हन्त, गुरुकमपि दुःखम् आशाबन्धस्सहयति।।" बंगाली रंगकर्मियों ने इन चक्रवाक सम्बन्धी दो गाथाओं में से दूसरी गाथा को हटा दिया है। डॉ. एस. के. बेलवालकर जी जैसे सहृदय विद्वान् ने कहा है[1] कि यदि शकुन्तला सही अर्थ में निसर्ग कन्या है तो, भले ही सखियों ने उससे दुर्वासा का शाप-वृत्तान्त छिपा कर रखा हो, परन्तु समस्त निसर्ग के प्रतिनिधिभूत इन चक्रवाक पक्षियों द्वारा तो उसे सूचित किया ही जाता है कि पति के घर जाने के बाद क्या होनेवाला है?। (०नानुव्याहरति जायाम्।)।। किन्तु बंगाली रंगकर्मियों ने शकुन्तला की उपर्युक्त उक्ति एवं प्रियंवदा की उक्ति को सर्वथा निष्कासित कर दिया है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 133 से 136]

(7) शकुन्तला पिता से बिदाई लेते समय पूछती है कि करिसार्थ से बिछुड गई छोटी सी एक करेणुका के लिए जैसे प्राण धारण करना मुश्किल हो जाता है, वैसे मैं तुम्हारे बिना वहाँ हस्तिनापुर में कैसे एकाकिनी रह पाऊँगी?। तब पिता काश्यप ने सांत्वना देते हुए कहा कि कुलीन पति की गृहिणी होकर, नवीन कार्यों में व्यस्त हो जाने पर और अचिरेण पुत्र-प्रसव हो जाने के बाद तेरी गोदी भर जायेगी। जिससे तुम पितृविरह के शोक को भूल जाओगी। यहाँ कवि ने "अपि च" समुच्चयार्थक निपात का विनियोग करके आरण्यक पिता के मुख में एक दूसरा श्लोक भी रखा है:- यदा शरीरस्य शरीरिणश्च पृथक्त्वम् एकान्तत एव भावि। आहार्ययोगेन विभज्यमानः परेण को नाम भवेद् विषादी।। उसके बाद, पुत्री शकुन्तला पिता के दोनों चरणों में वन्दन करती है।। यहाँ "अपि च" निपात का प्रयोग बहुत सटीक प्रतीत होता है। बिटिया पिता के घर से जब निकलती है, तब उसके दिमाग में पिता की चिन्ता निरन्तर बनी रहती है। ससुराल में कितना भी सुख मिले, फिर भी उसके मन के एक कोने में तो पिता-विषयक कुछ चिन्ता छिप कर रहती ही है। अतः पिता काश्यप जब इस सन्दर्भ को लेकर, दूसरे श्लोक में कहते हैं कि पतिगृह में नाना कारणों से सुख मिलने ही वाला है। परन्तु पिता के स्वास्थ्य को लेकर कुछ अन्यथा भी कदाचित् सुनने को मिल जाय तो, विषाद-ग्रस्त नहीं होना। क्योंकि शरीर-शरीरी का पृथक्त्व तो एक दिन होने ही वाला है। लेकिन जैसे कोई नट मंचनोपरान्त जब अपना किराये पर लाया गया मुकुट-आदि वापस लौटाता है तब दुःखी नहीं होता है, वैसे बिटिया को भी विषाद नहीं करना है।। कवि ने इन दोनों श्लोक में सुग्रथित किये औपनिषदिक दर्शन को, जो काश्मीरी रंगकर्मियों ने सुरक्षित रखा है, वह हम पा रहे हैं। परन्तु अनुगामी काल के बंगाली रंगकर्मियों ने संक्षेपीकरण की अविचारी प्रक्रिया में इस दूसरे श्लोक को हटा कर, एक मार्मिक स्थान को तिरोहित किया है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -149 से 153]

(8) डॉ. एस. के. बेलवालकर जी के द्वारा सम्पादित तथाकथित काश्मीरी-वाचना का पाठ, जो साहित्य अकादेमी, दिल्ली से 1965 में श्री वी. राघवन् जी ने प्रकाशित किया है, उसमें काश्यप मुनि के द्वारा उच्चरित "अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्या०" (4-10) श्लोक को (स्वकल्पित) अनुदात्त-स्वरित स्वर-चिह्नों के साथ दिया गया है। तथा उसकी अवतरणा के रूप में 'ऋक्-छन्दसाशास्ते' ऐसी रंगसूचना दी गई है। किन्तु इन दोनों को (वर्तमान में उपलब्ध) एक भी शारदा-पाण्डुलिपि का समर्थन नहीं हैं। मतलब कि काश्मीरी पाठ में ऐसा नहीं है।।

(9) काश्मीरी रंगावृत्ति में शकुन्तला के पालक पिता का नाम कण्व मुनि में से परिवर्तित करके काश्यप मुनि किया है। किन्तु मैथिली पाठ में उसको कण्व मुनि में पुनःस्थापित किया गया है।।

(10) इस अंक का हृद्य पद्यांश प्रायः सर्वाङ्गीण रूप से सुरक्षित उपलब्ध हो रहा है। यानी कुछ श्लोकों की कटौती करके जैसे अन्यत्र मूल पाठ्यांश को संक्षिप्त किया गया है, वैसा यहाँ नहीं हुआ है। अलबत्ता इस अंक के पद्य भाग में दो श्लोकों का प्रक्षेप होने से एक स्थान पर पुनरुक्ति-दोष ने प्रवेश कर लिया है। चतुर्थ अंक के आरम्भ में,

1. द्रष्टव्यः-कालिदास ग्रन्थावली, हिन्दी अनुवादक एवं सं. सीताराम चतुर्वेदी, अलीगढ, 1963 के परिशिष्ट में दिया गया "निसर्ग कन्या शकुन्तला" शीर्षकवाला शोध-आलेख।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रभात-वेला का वर्णन करनेवाले वे दो प्रक्षिप्त श्लोक हैं :- 1. यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनाम्०। (4-4) तथा, 2. अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे०। (4-5)।। ये दोनों श्लोक परम्परागत रूप से काश्मीरी रंगावृत्ति को विरासत में मिले होंगे। लेकिन आश्वसनीय स्थिति यही है कि इसमें दो श्लोक मौलिक श्लोकों की सुरक्षा भी हुई है। जैसे कि, कर्कन्धूनामुपरि तुहिनम्०। एवं पादन्यासं क्षितिधरगुरोः०।।

।। पञ्चमोऽङ्कः।।

अभिज्ञानशकुन्तला नाटक के पचमाङ्क में कवि ने शकुन्तला-प्रत्याख्यान का आलेखन किया है। लेकिन इससे पूर्व, चतुर्थाङ्क के आरम्भ में दुर्वासा मुनि के शाप द्वारा एक अपूर्व संघर्ष तत्त्व का जो संनिवेश किया गया है, उस शाप का परिणाम पञ्चम अंक में निरूपित होता है। नाट्यविशारद लोग कहते हैं कि संघर्ष नहीं है, तो नाटक ही नहीं है। अतः हमें अब यह देखना है कि संघर्ष तत्त्व के निरूपण का क्रम कवि ने एवं रंगकर्मियों ने कैसे प्रस्तुत किया है। प्रासंगिकतया यह कहना भी आवश्यक है कि दुर्वासा का शाप रूप एक संघर्ष का निरूपण हो जाने के बाद, षष्ठांक में पूर्वपरिणीता रानी का भी संघर्ष दाखिल करना आवश्यक नहीं रहता है। क्योंकि तब ही शाप-निरूपण की अपूर्वता सिद्ध होगी। इस दृष्टि से देखना है कि काश्मीरी रंगावृत्ति से आरम्भ करके देवनागरी रंगावृत्ति तक की पाठयात्रा में कहाँ कहाँ और कैसे कैसे परिवर्तन होते रहें हैं। पञ्चमाङ्क में निरूपित शकुन्तला-प्रत्याख्यान प्रसंग में आठ से अधिक स्थान हैं कि जहाँ पर रंगकर्मियों ने ध्यानाकर्षक परिवर्तन कर दिये हैं। इन सब को हम क्रमशः देखेंगे।।

(1) इस अंक का आरम्भ कंचुकी की उक्ति से होने के बाद, हंसवतिका का गीत प्रस्तुत होता है, तथा तीसरे क्रम में वैतालिकों का गान आता है। इस तरह के दृश्यक्रम के पीछे मूल कवि / रंगकर्मियों की एक सुनिश्चित प्रकार की मानसिकता रही होगी:- काश्मीरी पाठ में हंसपदिका के गीत के बाद वैतालिकों का गान आता है। हंसपदिका के गीत द्वारा राजा को जननान्तर का सौहृद याद आता है। इससे विक्षिप्त हुए (क्लान्त-मनस्) राजा के मन में धर्मबुद्धि का संचार करने का कार्य वैतालिकों का गान करता है। अब इस धर्मबुद्धि से संनद्ध हुए राजा के द्वारा शकुन्तला का प्रत्याख्यान होना सम्भव होता है।। किन्तु मैथिली एवं बंगाली पाठों में पहले वैतालिकों का श्लोक-गान होता है, जिससे राजा का राजकर्म का बोझ उतरता है। राजा दुष्यन्त नवीभूत हो जाते हैं। (कार्यशासनपरिश्रान्ताः पुनर्नवीभूता स्मः।) तत्पश्चात् हंसवती का गीत प्रस्तुत होता है। मतलब कि मैथिली एवं बंगाली पाठों के दृश्यक्रम के अनुसार हंसवती के गीत से उद्विग्न हुए राजा के द्वारा (कुछ अनजान गड़बड़ी में) शकुन्तला का प्रत्याख्यान हो जाता है ऐसी पूर्वभूमिका बनायी जाती है। इस सन्दर्भ में, दाक्षिणात्य पाठ का अवलोकन किया जायेगा तो उसमें, यद्यपि कंचुकी का पहले प्रवेश नहीं होता है, परन्तु काश्मीरी की तरह दाक्षिणात्य में भी हंसपदिका गीत क्रम में पहले आता है, तत्पश्चात् वैतालिकों का गान प्रस्तुत होता है। देवनागरी रंगावृत्ति दाक्षिणात्य पाठ का अनुगमन करती है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -2, 12-13, 15, 34 एवं 37]

(2) जब रंगमंच पर राजा एवं विदूषक का प्रवेश होता है तो कहा जाता है कि, ततः प्रविशत्या-सनस्थः परिमितपरिवारो राजा विदूषकश्च। अर्थात् राजा के परिजन-वर्ग में बहुत कम व्यक्ति रहे होंगे। इससे विपरीत मैथिली रंगभूमि पर "विभवतः परिवारः" वाला राजा मंच पर प्रस्तुत होता है। राजा के वैभव को प्रदर्शित करने का मौका मिलते ही, मैथिली रंगकर्मियों ने कुछ अधिक संख्या में ही परिजन-वर्ग को उपस्थित किया होगा। (यहाँ उपलब्ध हो रहे पाठान्तरों का सीधा सम्बन्ध रंगकर्म के साथ ही है। इसको देख कर सुनिश्चित हो जाता है कि ये काश्मीरी, मैथिली आदि पाठवैविध्य तो ज्यादातर रंगावृत्ति / रंगकर्म के हिसाब से ही है।) [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 11]

(3) हंसवतिका के गीत का श्रवण करके राजा जननान्तर के सौहृद को याद करते हुए उत्कण्ठित हो जाते हैं। उनको सूचना मिलती है कि हिमगिरि की उपत्यका से एक ऋषिगण स्त्रियों के साथ आया है। अतः वे उनसे मिलने के लिए अग्निशरण की ओर जाते हैं। तब नेपथ्य से वैतालिकों का गान शुरू होता है। यहाँ पर, काश्मीरी रंगावृत्ति में "वैतालिकाः" ऐसा बहुवचनान्त प्रयोग दिया है। मतलब कि नेपथ्योक्ति के रूप में जिन दो श्लोकों की प्रस्तुति होती

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

है, उनका गान अनेक व्यक्तियों के संयुक्त-गान के रूप में होना चाहिए। इससे भिन्न स्थिति मैथिली पाठ में देखने को मिलती है। वहाँ दोनों ही श्लोक बारी बारी पर अलग अलग व्यक्तियों के द्वारा गाया जाता है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -34, 35 एवं 36]

(4) राजा कण्वाश्रम से आये तपस्विजनों को मिलने के लिए प्रतीहारी को अग्रेसर करते हैं। इस प्रसंग की रंगसज्जा में सद्यः संमार्जित एक अग्निशरणालिन्द यानी यज्ञशाला है, और जिसके एक कोने में कपिला गौ खड़ी की गई है। ऐसे स्थान में शकुन्तला-प्रत्याख्यान प्रसंग आयोजित किया जाता है। यहाँ पर राजा दुष्यन्त प्रतीहारी के स्कन्ध का अवलम्बन लेकर खड़े रहते हैं।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक 30, 38 एवं 39]

(5) राजा दुष्यन्त रंगमंच पर परिमित परिवार के साथ आये हैं। अब देखना यह है कि काश्मीर के रंगकर्मियों ने उस परिजन-वर्ग से क्या काम लिया है?। काश्यप मुनि का सन्देश लेकर ऋषिगण राजा के सामने आता है। उस ऋषिगण के साथ दो स्त्रियाँ भी थीं, जिनमें से एक शकुन्तला थी। उसको देख कर दुष्यन्त कहता है कि इन तपोधनों के बीच में कोई अवगुण्ठन-वती अपरिस्फुटलावण्य वाली स्त्री पाण्डुपत्रों के बीच में रहे किसलय जैसी दिखती है। तब राजा की प्रतिहारी कहती है कि मैं भी कुतूहल से विस्मित हूँ, मेरी समझ में कुछ आता नहीं है। अब तुरंत परिजन-वर्ग की उक्ति आती है, "देव, दर्शनीया खल्वस्या: आकृतिर्लक्ष्यते।" यहाँ परिजन-वर्ग की उक्ति को सुन कर राजा की ओर से कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं होती है। यह बात हमें याद रखनी है। परिजन का ऐसा साश्चर्योद्गार व्यक्त होने के बाद, शकुन्तला की उक्ति आती है कि हे मेरे हृदय, तू क्यों इतना कम्पित होता है? इत्यादि। कथानक में आगे चल कर जब माता गौतमी शकुन्तला का अवगुण्ठन उठा कर, राजा को उसका मुख-दर्शन करवाती है तब राजा के मुख से उक्ति निकलती है:-"भ्रमर इव विभाते कुन्दमन्तस्तुषारम्, न च खलु परिभोक्तुं नापि शक्नोमि हातुम्। (5-20)" यहाँ पर फिर से परिजन-वर्ग के द्वारा टिप्पणी की जाती है कि, "(जनान्तिकम्) अहो धर्मापेक्षिता भर्तु:। ईदृशं नाम सुखोपनतं स्त्रीरत्नं प्रेक्ष्य कोऽन्यो विचारयति।" अर्थात्, काश्मीर के रंगकर्मियों ने जिस परिजन-समूह का रंगमंच पर प्रवेश करवाया है, उसका प्रकट विनियोग भी किया है और समाज के छोटे व्यक्तियों की दृष्टि में राजा का उच्च चरित्र भी निखारा है।। लेकिन जब हम तुलनात्मक दृष्टि से अनुगामी काल की मैथिली आदि रंगावृत्तियाँ देखते हैं, तब उस में बहुत कुछ परिवर्तित हो कर हमारे सामने पेश किया गया है यह ध्यान में आता है।।[सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -56 एवं 88]

(6) दुष्यन्त के राजमहल में आये हुए ऋषिगण के लिए कहा गया है कि, एते खलु हिमगिरेरुपत्यका-रण्यका: काश्यपसन्देशम् आदाय सस्त्रीका: तपस्विन: सम्प्राप्ता:। यहाँ "तपस्विन:" शब्द भी बहुवचन में है। मतलब कि कण्वाश्रम में से केवल दो शिष्य (शार्ङ्गरव और शारद्वत) ही नहीं आये थे, उन दोनों के साथ कोई तीसरा व्यक्ति भी था। काश्मीरी रंगावृत्ति में आगे चल कर उस तीसरे व्यक्ति का उल्लेख "भागुरि" के नाम से होता है। उसके मुख में एक उक्ति (5-26) भी रखी गई है। यह भागुरि नामक विशेष पात्र काश्मीरी पाठ के सिवा अन्यत्र किसी भी पाठ में नहीं है।।[सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -25, 26 एवं 119-120]

(7) काश्मीरी पाठ में, शकुन्तला ने राजा दुष्यन्त को अनार्य शब्द से संबोधित नहीं किया है। हो सकता है कि काश्मीरी रंगकर्मियों ने उसे निकाल दिया हो। मैथिली पाठ में उस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम देखा जाता है। तथा उस प्रकार के संबोधन का अनुसरण परवर्ती काल के सभी पाठों में भी देखा जाता है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 112]

(8) शकुन्तला के स्वाभाविक क्रोध को देख कर, काश्मीरी पाठ में, राजा ने उसकी भ्रूकुटियों का वर्णन "न तिर्यगवलोकि चक्षुरतिलोहितं केवलं॰" इत्यादि एक ही श्लोक से किया है। परन्तु मैथिली एवं बंगाली पाठ में वहाँ पर राजा के मुख में से दो श्लोक निकलते हैं। किन्तु दोनों श्लोक प्रक्षिप्त ही है, क्योंकि वे अप्रासंगिक है एवं "स्वगतम्" उक्ति के रूप में है।[सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 114]

(9) काश्मीरी रंगावृत्ति में, शकुन्तला के मुख में एक गाथा रखी है:- तुम्हे य्येव पमाणं जाणध धम्मत्थितिं च लोअस्स।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

लज्जाविणिज्जिदाओ जाणन्ति खु किण्ण महिलाओ।। अर्थात् (यूयमेव प्रमाणं जानीथ धर्मस्थितिञ्च लोकस्य। लज्जाविनिर्जिता जानन्ति खलु किं न महिला:।। 5-25) यहाँ पर शकुन्तला मुग्धा नायिका नहीं रहती है। शकुन्तला ने मुखर होकर जो अपमान एवं अन्याय का प्रतिकार किया है, उसमें आधुनिक समय की नारीवादी विचारधारा का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। यह बहुत पुरातन काल के रंगकर्मियों का प्रक्षेप लगता है। एवं, बृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं में यह गाथा उपलब्ध हो रही है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 116]

(10) काश्मीरी पाठ के अनुसार दुष्यन्त के रानीवास में हंसपदिका के साथ एक अन्य कुलप्रभा नामक देवी भी है। जो षष्ठांक के अन्त भाग में पुनरुल्लिखित होती है। किन्तु मैथिलीपाठ में और तदनुसारी बंगाली पाठ में कुलप्रभा के स्थान में वसुमती नामक देवी का निर्देश प्राप्त होता है। काश्मीरी पाठ में वसुमती तो राजा के पास रहने वाली वेत्रवती का नाम है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक 19, 30, 39 एवं 160]

॥ षष्ठोऽङ्कः॥

कालिदास के अभिज्ञानशकुन्तला नाटक की उत्कृष्टता सर्वमान्य है। फिर भी, उसीका षष्ठाङ्क बहुत लम्बा है ऐसी आलोचना भी की जाती है। लेकिन कालिदास की नाट्यकला में दिख रहा यह दोष क्या वास्तविक है? इस प्रश्न पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। क्योंकि जब इस नाटक की पाँचों वाचनाओं के पाठों का तुलनात्मक अभ्यास करते हैं और उसमें भी काश्मीरी वाचना का पाठ देखते हैं, तब मालूम होता है कि षष्ठाङ्क की दृश्यावली प्रलम्ब बनाने का कार्य तो बहुशः मैथिली रंगकर्मियों का है! कवि के द्वारा इस अंक का मूल विधान शायद इस स्वरूप का नहीं था। काश्मीरी पाठ में, शकुन्तला के चित्र के साथ राजा की तन्मयता इतनी गहराई के साथ आलिखित की गई है कि विप्रलम्भ का निरूपण भाववाही बना है। उत्तरवर्ती काल के रंगकर्मियों ने उसी चित्र को उद्देश्य करके नवीन श्लोकों का प्रक्षेप किया है, जिसमें अंशतः अश्लीलता ने भी प्रवेश किया है। ऐसा होने पर प्रस्तुत दृश्य की नाटकीयता कम होती है, और कविता का विस्तार ज्यादा होने लगता है। दूसरा प्रमुख बिन्दु यह भी उल्लेखनीय है कि काश्मीरी पाठ में राजा की पूर्वपरिणीता रानी (ज्येष्ठा नायिका) की मानसिकता ईर्ष्याग्रस्त दिखाई नहीं है। केवल राजा की दासी मेधाविनी और रानी कुलप्रभा की दासी पिङ्गलिका के बीच में ही स्पर्धा का भाव दिखाया है। (किन्तु मैथिली रंगकर्मियों ने शकुन्तला के चित्र के निमित्त से दासी (मेधाविनी) और रानी वसुमती के बीच सीधा संघर्ष दिखा दिया है। रानी वसुमती को ईर्ष्याग्रस्त दिखाने का उपक्रम मैथिली रंगकर्मियों का है, जिसका अनुकरण परवर्ती काल में सभी ने किया है।) उक्त दोनों सन्दर्भों में काश्मीरी पाठ मौलिकता के नजदीक है- ऐसा जब सिद्ध होगा तब, षष्ठांक का कथापट बहुत विस्तार-युक्त होने का दोष हट जायेगा। काश्मीरी पाठ की विशेषता और ग्राह्यता को समझने के लिए निम्नोक्त बिन्दुओं को देखना चाहिए:-

(1) षष्ठाङ्क के प्रारम्भ में प्रवेशक आता है, जिसमें धीवर-प्रसंग का निरूपण किया गया है। कालिदास ने इसमें मागधी-प्राकृत भाषा का विनियोग किया है। नाट्यशास्त्र में भरतमुनि ने कहा है कि नाटक में नायिका आदि स्त्री-पात्रों के द्वारा शौरसेनी प्रकार की प्राकृतभाषा ही बोली जानी चाहिए। तथा व्यसन के सन्दर्भों में, विशेष रूप से आत्मरक्षा करने की स्थिति होने पर मागधी-प्राकृत का विनियोग होना चाहिए। एवमेव, गङ्गा-सागर के बीचवाले (अर्थात् उत्तरप्रदेश, बिहार एवं बंगाल) प्रदेशों में एकार बहुल (मागधी) भाषा का प्रयोग होना अपेक्षित है[1]। इस दृष्टि से परखा जाय तो नगर-रक्षकों के द्वारा मारा-पीटा जा रहा धीवर आत्मरक्षा के सन्दर्भ में मागधी भाषा का प्रयोग करता है, उस मागधी के ध्वनिस्वरूप की रक्षा काश्मीरी पाठ में दिख रही है। जैसे कि, 1. अकारान्त नाम का एकारान्त के रूप में उच्चारण (उदा. धीवरः के लिए धीवले), 2. दन्त्य सकार के लिए तालव्य शकार का प्रयोग (उदा. यमवसतिम् के लिए जमवशदिं), इत्यादि।

1. नायिकानां सखीनाञ्च सौरसेन्यविरोधिनी। यौधनागरिकादीनां दाक्षिणात्या च दीव्यताम्।।
व्यसने नायिकादीनां आत्मरक्षासु मागधी। गङ्गा-सागरमध्ये तु ये देशाः संप्रकीर्तिताः।। नाट्यशास्त्रम्, सं. बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा ओरिएन्टालिया, वाराणसी, 1980, पृ. 217 (अ. 18 - 39, 45)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(2) एवमेव, राजा ने ही प्रसन्न हो कर धीवर के लिए पारितोषिक भी भेजा है और उसको बन्धन से मुक्त कर देने की आज्ञा की है, तब नगर-रक्षकों के द्वारा कहा जाता है कि, "जमवशदिं गमिअ गुडखण्डं च दइअ पडिणिअत्ते। (इति पुरुषं मुञ्चति।)"। यहाँ यमराज के घर जाकर भी यह मत्स्यजालोपजीवी धीवर क्यूं छूट गया। इसका समाधान देते हुए कहा जाता है कि धीवर यमराज को गुड-खण्ड देकर (गुडखण्डं च दत्वा), यानी यमराज को घूस देकर छूट आया है! ऐसे शब्द केवल काश्मीरी रंगावृत्ति में ही उपलब्ध होते हैं। अन्य किसी भी पाठ में ऐसे शब्द मिलते नहीं हैं, इस लिए यह पाठान्तर ध्यानाकर्षक है। (यहाँ गुड़खण्ड़ राजमुद्राङ्कित अंगूठी का वाचक है।)

(3) प्रवेशक के बाद, परभृतिका एवं मधुकरिका नामक दो उद्यानपालिकाएँ रंगमंच पर आती हैं। इन दोनों के साथ कञ्चुकी की बातचीत होती है। जिससे प्रेक्षकों को मालूम होता है कि राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला के विरह में, हस्तिनापुर में वसन्त- कौमुदी महोत्सव स्थगित करवा दिया है। इस दृश्य से कवि प्रेक्षकों को सूचित करना चाहते है कि अंगूठी की प्राप्ति होने के बाद राजा दुष्यन्त विरही एवं पश्चात्ताप-ग्रस्त है। जिसके कारण उन्होंने हस्तिनापुर में उत्सवादि मनाने पर पाबंदी लगाई है। इस सूचना से मालूम होता है कि आनेवाले दृश्य में विप्रलम्भ-शृङ्गार का निरूपण होनेवाला है। लेकिन यहाँ तीन उक्तियों का प्रक्षेप हुआ है ऐसा स्पष्ट प्रतीत हो रहा है। (काश्मीरी वाचना को यह प्रक्षेप अपने किसी पुरोगामी पाठ में से मिला हो सकता है।) यद्यपि यह प्रक्षेप किसी विशेष रंगकर्म में परिवर्तन लाने के आशय से नहीं हुआ है, उसमें तो कविंमन्यमान बुद्धिवाले अज्ञात व्यक्ति का ही हस्तक्षेप दिखता है। इस व्यक्ति ने, राजाज्ञा से वासन्तिक तरुओं ने एवं तदाश्रित अन्य पक्षी-आदि ने भी दुष्यन्त का शासन कैसे कैसे प्रमाणीकृत किया है? यह कहने के लिए "चूतानां चिरनिर्गता-ऽपि०" जैसा (6-4) श्लोक बना कर अपने कवित्व का प्रदर्शन किया है। किन्तु इस श्लोक का वर्ण्य वस्तु और पूर्व में आयी हुई दो गाथाएँ, तथा पश्चाद्-भाग में आ रहे विदूषक एवं राजा के वार्तालाप के शब्दों के साथ पूर्ण विरोध आ रहा है- यह जाना ही नहीं है। अतः यह प्रक्षेप के रूप में लगाई थिगड़ी है ऐसा अनुमान होता है। इस तरह के पूर्वापर विरोध के कारण कञ्चुकी का श्लोक, अक्षमाला और प्रथमा चेटी की (कुल मिला कर तीन) उक्तियाँ नितान्त प्रक्षिप्त सिद्ध होती है।। चेटी कहती है कि नगर में वसन्तोत्सव मनाने का निषेध किया गया है, यह बात वे दोनों नहीं जानती थी। क्योंकि राष्ट्रिय मित्रावसु ने उन दोनों को भर्ता के पास से कहीं भेज दिया था, बाद में "इहाक्रीडागृहे प्रतिकर्मार्पितम्" इस क्रीडागृह में उन दोनों को कुछ प्रतिकर्म सौंपा था। यहाँ पर क्रीडागृह के प्रतिकर्म की जो बात कही है, वह स्पष्ट नहीं होती है। (मैथिली पाठ में "कला-गृहकर्म" का निर्देश है, तथा बंगाली पाठ में "चित्रकर्म" का निर्देश है। दाक्षिणात्य पाठ में "पालनकर्म" की बात कही है। एवमेव,"भर्ता के पास से०" या "भट्टिनी के पास से०" ऐसे भी दो पाठभेद किये गये हैं। लेकिन इनमें से एक भी पाठान्तर की कथाप्रवाह के साथ संगति बैठती नहीं है। राष्ट्रिय मित्रावसु को ऐसा करने का क्या कारण था- वह अस्पष्ट ही रहता है।) प्रेक्षकों को इन उद्यान पालिकाओं की बातचीत से नगर में वसन्तकौमुदी महोत्सव क्यूं स्थगित किया गया है, उसकी केवल जानकारी देना ही पर्याप्त है। लेकिन उद्यानपालिकाओं को किस आशय से क्रीडागृह का प्रतिकर्म सौंपा गया था, एवं उसका प्रस्तूयमान मुख्य अंक के दृश्यों से साथ क्या सम्बन्ध है? यह बात तो सभी वाचनाओं के विविध पाठान्तरों के बावजूद भी अस्पष्ट ही रहती है। अतः लगता है कि इस नाटक में काव्य-सौन्दर्य को बढावा देने के आशय से श्लोक 6-4 एवं उससे जुड़ी उक्तियों का प्रक्षेप किया गया है।। इस नाटक की पाठ-परम्परा में कुत्रचित् ऐसे स्थान मिल जाते हैं कि जहाँ लगता है कि कविप्रणीत मूल पाठ की धारा अक्षुण्ण एवं परिशुद्ध नहीं रह पायी है।। हम कवि के मूलपाठ से बहुत दूर खड़े हैं।

(4) एवमेव, रंगकर्मियों ने उन दोनों उद्यानपालिकाओं को 'चेटी' के रूप में पहचानी है, और चेटियाँ की वेशभूषा पहनाई होगी। लेकिन मूल कवि ने उन दोनों के जो नाम (परभृतिका एवं मधुकरिका) दिये हैं, उससे लगता है कि उद्यान में रहनेवाले इन दोनों को जन्तुविशेष की ही वेशभूषा से रंग पर प्रस्तुत करना चाहिए। (चेटी की वेशभूषाओं में नहीं।) द्रष्टव्य :नाट्यम् (82-83), पृ. 125-139, 2017 में प्रकाशित मेरा आलेख।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(5) पश्चात्ताप-ग्रस्त दुष्यन्त का वृत्तान्त शकुन्तला के पास पहुँचाने के लिए कालिदास ने एक अप्सरा का पात्र कल्पित किया है। इस अप्सरा के नाम और प्रवेश के सम्बन्ध में दो बिन्दु ध्यानास्पद हैं :- (1) इस अप्सरा का रंगमंच पर प्रवेश "आकाशयान" से होता है ऐसी रंगसूचना काश्मीरी पाठ में है। अतः प्रश्न होता है कि काश्मीर की रंगभूमि पर स्वर्गलोक से नीचे पृथिवीलोक में उतरती हुई अप्सरा का मंचन कैसे किया जाता होगा, तथा उस आकाशयान का स्वरूप कैसा रहा होगा? यह गवेषणीय है। क्योंकि अक्षमाला रंगमंच पर आकर एक लम्बी उक्ति से अपने आने का प्रयोजन बताती है। यहाँ, इस उक्ति के अन्त में, "इति नाट्येनावतीर्य स्थिता" ऐसी (आङ्गिक मुद्राभिनय की) रंगसूचना काश्मीरी पाठ में नहीं है। अतः ऐसी आशंका करने का मन होता है कि क्या काश्मीरी रंगकर्मियों के पास किसी तरह के आकाशयान की व्यवस्था रही होगी?। (2) यहाँ अप्सरा का नाम अक्षमाला है। इसी नाम से सूचित होता है कि उसके हाथ में रुद्राक्ष की माला रही होगी। लेकिन इस वेशभूषा में ऐसा कोई वैशिष्ट्य नहीं है कि वह अप्सरा है ऐसी प्रतीति प्रेक्षकों को हो सके। अतः कालान्तर में, दूसरे प्रदेशों की रंगभूमि पर उसी की वेशभूषा में परिवर्तन किया गया है। तथा उस वेशभूषा के अनुरूप उसके दूसरे नामान्तर भी पाठभेद के रूप में मिलते हैं। जैसे कि, मिश्रकेशी एवं सानुमती। रंगभूमि पर श्वेत-श्याम वर्णों से केशभूषा (मेक-अप) करके जब किसी नटी को अप्सरा के रूप में प्रस्तुत की जायेगी, तो वह मिश्रकेशी कहलायेगी। ऐसा नामान्तर मैथिली और बंगाली पाठों में मिलता है। लेकिन दाक्षिणात्य और देवनागरी पाठों में वही नाम सानुमती बनता है। उसका मतलब होगा कि उन दोनों की रंगभूमि पर जिस नटी को अप्सरा बनना है वह अपने मस्तक पर शङ्कु आकार की टोपी रख कर, उसके ऊपर एक पारदर्शक वस्त्र पहन कर, अन्तर्हित मुखवाली बनती होगी। जिससे वह सानुमती कहलाई होगी। सारांशतः, अप्सरा के नाम में उपलब्ध हो रहे पूर्वोक्त पाठान्तर अलग अलग प्रदेश की, रंगभूमियों पर मंचन के दौरान, बदलती रही वेशभूषाओं के ही परिचायक हैं।।

(6) विरही राजा शकुन्तला के चित्रकर्म में प्रवृत्त होता है। काश्मीरी पाठ में उसकी तन्मयता बहुत रोचक है। दुष्यन्त ने शकुन्तला को कण्वाश्रम में प्रथम बार देखा था। वहाँ पर जो भ्रमर-बाधा प्रसंग आकारित हुआ था, उसीका चित्र यहाँ (षष्ठांक में) आलिखित किया गया है। लिपिकरी शकुन्तला का चित्र विदूषक के हाथ में सौंप कर वर्तिका-करण्डक लेने के लिए चली गई। तब चित्र में आलिखित भ्रमर से पीडित शकुन्तला को देख कर दुष्यन्त उसकी रक्षा करने के लिए उद्यत हो जाता है। वह भूल जाता है कि यह तो चित्र है। एक ओर विदूषक के हाथ में शकुन्तला का चित्र है तथा सामने राजा दुष्यन्त खड़े हैं, तब वह कहते हैं कि मैं शकुन्तला और भ्रमर के बीच में खडा हूँ! इस तरह की तल्लीनता में नाटकीयता का अनुभव होता है।। किन्तु कालान्तर में मैथिली पाठ-शोधकों ने उस चित्र को राजा के हाथ में रखवा दिया। जैसे कि, जब लिपिकरी शकुन्तला के चित्र को विदूषक को देकर, वर्तिका-करण्डक लेने के लिए जाना चाहती है, तब राजा दुष्यन्त ही कहते है कि "मैं ही उस चित्र को पकड़ता हूँ" ऐसा कहते हैं। परिणामतः, भ्रमर से आक्रान्त शकुन्तला को बचाने की जो बात काश्मीरी पाठ में है, वह मैथिली पाठ में सर्वथा बदल जाती है।। एवमेव, जब शकुन्तला का चित्रपट लेकर लिपिकरी मेधाविनी रंगमंच पर आती है, तब उसको देख कर, राजाजी (काश्मीरी पाठ में) अपने द्वारा ही बनाये गये चित्र की प्रशंसा नहीं करते हैं। तथा उस चित्र के निमित्त से एक भी अश्लील श्लोक का उच्चारण नहीं होता है। किन्तु मैथिली पाठ में यहाँ पर, अनेक अश्लील श्लोकों का प्रक्षेप किया जाता है[1], जिससे अंक का विस्तार होता जाता है।।

(7) षष्ठांक की दृश्यावली का स्थल प्रमदवन है। इसमें राजा दुष्यन्त, विदूषक, शकुन्तला का चित्र लानेवाली दासी लिपिकरी मेधाविनी का समावेश है। यानी रंगमंच पर मुख्य रूप से ये तीन पात्र ही आते हैं। तथा राजा की पूर्वपरिणीता रानी कुलप्रभा और उसकी दासी पिङ्गलिका रंगमंच पर नहीं आते हैं, केवल उनका नाम-निर्देश होता है। काश्मीरी पाठ के अनुसार, शकुन्तला के चित्र के निमित्त से मेधाविनी तथा पिङ्गलिका नामक दो दासियों के बीच

---

1. जिसकी विस्तृत चर्चा के लिए धीमहि (अंक- 6, पृ. वर्ष-2015) में प्रकाशित मेरा शोध-आलेख द्रष्टव्य है।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

में ही ईर्ष्याजनित स्पर्धा या संघर्ष होता है। किन्तु कालान्तर में, मैथिली पाठशोधकों ने उसमें भारी परिवर्तन कर दिया है। जिसके कारण, राजा ने जब वर्तिका-करण्डक मंगवाया तब, वसुमती नामक रानी ने मेधाविनी के हाथ में से वह करण्डक छीन लिया। यानी मूल में जो संघर्ष पहले दो दासियों के बीच में होता था, उसके स्थान में अब वह संघर्ष रानी और दासी के बीच होता है। (जिससे किसी प्रेक्षक के मन में ऐसी आशङ्का उठ सकती है कि, नायक और नायिका का जब भी पुनर्मिलन होगा, तब शकुन्तला को राजा की इस पूर्वपरिणीता से सम्भल के रहना होगा। ऐसी आशङ्का नाट्यकृति के अन्त में पूर्ण शृङ्गार की प्रतीति में बाधा डाल सकती है।) किन्तु काश्मीरी पाठ में ऐसी कोई बाधा नहीं आती है। अतः षष्ठांक का काश्मीरी पाठ इस मामले में अधिक श्रद्धेय प्रतीत होता है।।

मैथिली पाठ में इस तरह के नवीन संघर्ष का निरूपण होने से साक्षात् कोई मंचनलक्षी परिवर्तन नहीं है, किन्तु प्रणय कथा के निरूपण में कोई नवीनता भी नहीं रहती है, क्योंकि प्रेमी राजा की पूर्वपरिणीताओं का संघर्ष तो कवि कालिदास ने पहले मालविकाग्निमित्र और विक्रमोर्वशीय में भी दिखाया ही था, जिसका यहाँ अभिज्ञानशकुन्तल के मैथिली पाठ में भी पुनरवतार हो गया!।। कहने का तात्पर्य इतना ही है कि उपर्युक्त परिवर्तन साक्षात् मंचनलक्षी न होते हुए भी, रसलक्षी परिवर्तन बनने के कारण, बहुत गम्भीर क्षतिजनक सिद्ध होता है। क्योंकि इस नाटक में एक अपूर्व (दुर्वासा का शाप) संघर्ष प्रस्तुत करने के बाद, इस परम्परागत प्रकार के संघर्ष के पुनरावर्तन की जरूरत नहीं थी। स्मर्तव्य है कि शूद्रक ने भी शकार जैसे खल-नायक को प्रस्तुत करने के बाद, चारुदत्त की पत्नी धूता की ओर से वसन्तसेना के प्रेम-प्रसंग में किसी तरह की बाधा पहुँचाने का उपक्रम नहीं किया है।।

काश्मीरी पाठ में राजा दुष्यन्त की विरही अवस्था को ही केन्द्र में रखते हुए जिस रूप में चित्र-फलक का दृश्य एवं रानी कुलप्रभा का व्यवहार मिलता है वह उचित एवं सुसंगत प्रतीत होता है। इस बिन्दु को विस्तार से कहना आवश्यक लगता है:-मेधाविनी ने जब बताया कि रानी कुलप्रभा की दासी पिङ्गलिका ने उसके हाथ में से वर्तिका-करण्डक छीन लिया है, तब राजा दुष्यन्त अपने शकुन्तला विषयक प्रेम-सम्बन्ध को रानी कुलप्रभा जान लेगी तो बड़ा कलह होगा ऐसी किसी भीति से पीड़ित नहीं दिखाये हैं। राजा तो अपनी विरही भावदशा में बोलते है कि हम तो अविश्राम दुःख का ही अनुभव करते जा रहे हैं। देखो, रात्रि काल में जागरण होने से प्रिया के साथ स्वप्न में भी समागम नहीं होता है, एवं आँखों से निकल रही अश्रुओं की धारा चित्र में स्थित प्रिया को भी देखने नहीं देती है। तब लिपिकरी मेधाविनी राजा को सावधान करती है की पिङ्गलिका-मिश्रादि यहाँ आकर चित्रस्थ शकुन्तला की प्रतिकृति को बिगाड़ देंगी। इस चेतावनी को सुनकर राजा तुरंत भावाविष्ट होकर, हुँकार करके, मानो शकुन्तला की रक्षा करने के लिए उसके स्तनान्तर पर हस्तक्षेप करते हैं। बस, उसी क्षण नेपथ्य से आवाज आती है:-"जयदु जयदु भट्टिणी"। अर्थात् अब रंगमंच पर कुलप्रभा का प्रवेश करेगी ऐसा इङ्गित किया जाता है। इस नेपथ्योक्ति को सुन कर विदूषक बताता है कि अन्तःपुर की व्याघ्री पिङ्गलिका दासी इस मेधाविनी-मृगी का अनुसरण करती आ रही है। राजा को लगता है कि इन दो परिजनों की (दासियों की) लड़ाई में प्रिया की प्रतिकृति कहीं कलुषित न हो जाय। इस लिए वह विदूषक को उसकी रक्षा करने की विज्ञप्ति करते हैं।। इन संवादों में कहीं पर भी दुष्यन्त के शकुन्तला-वृत्तान्त को लेकर, अन्तःपुर में किसी ईर्ष्या या स्पर्धा की परछाइयाँ फैली है- ऐसा आभास भी नहीं मिलता है। एवं इस स्थिति में दुष्यन्त अपनी रानियों से डरता है- ऐसा भी भाव व्यक्त नहीं हुआ है।। अतः इस अंक के द्वारा मुख्य रूप से केवल विप्रलम्भ शृङ्गार ही अभिव्यक्त होता है, जो अन्य सभी वाचना के पाठों की अपेक्षा से अधिक बहेतर, श्रद्धेय एवं ग्राह्य लगता है।।

(8) काश्मीरी पाठ में, राजा और विदूषक की बातचीत चल रही है। तब परोक्ष में स्थित अक्षमाला नामक अप्सरा के मुख में जिन उक्तियाँ रखी गयी हैं, वे सीमित, संयमित और आवश्यकतानुसारिणी है। उनकी अपेक्षा से मैथिली पाठ में अधिक उक्तियाँ प्राप्त होती हैं, जो प्रक्षिप्त लगती हैं। (मैथिली पाठ की प्रस्तावना में उन प्रक्षिप्त उक्तियों की चर्चा रखी जायेगी।)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(9) प्रमदवन में राजा और विदूषक ने प्रवेश किया। विदूषक ने कहा कि शिशिर का विच्छेद होने के बाद वसन्तमास में रमणीय बने प्रमदवन में आप मनोविनोदन कीजिए। तब राजा ने वसन्त का आगमन हुआ हैं ऐसा सुनते ही कहा कि एक छिद्र होते ही अनर्थों की परम्परा शुरू होती है यह बात सत्य है। यहाँ पर, मैथिल-पाठ में दो श्लोक प्राप्त होते हैं :- (1) मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना० (6-8) एवं (2) उपहितस्मृतिरङ्गुलिमुद्रया० (6-9)। किन्तु उनमें जो विचार प्रस्तुत हुआ है वह एक समान है। अतः पुनरुक्ति दोष आता है। मतलब कि इन दोनों में से कोई एक श्लोक प्रक्षिप्त होगा। इस लिए काश्मीरी पाठ में क्या स्थिति है? वह द्रष्टव्य है। काश्मीरी पाठ में उपर्युक्त दोनों श्लोकों में से दूसरा श्लोक ही प्राप्त होता है। किन्तु काश्मीरी पाठ में जो श्लोक स्वीकृत हुआ है, उसके साथ विदूषक की अनुगामिनी उक्ति सुसंगत नहीं है। जैसे कि, मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना मम च मुक्तमिदं मनः। मनसिजेन सखे प्रहरिष्यता धनुषि चूतशरश्च निवेशितः। यहाँ पर जो कहा है कि कामदेव ने चूतशर (आम्रमञ्जरी) और धनुष उठाये हैं, इसके अनुसन्धान में विदूषक बोलता है कि "भो वअस्स, चिट्ठ दाव। इमिणा दण्डअट्ठेण कन्दप्पबाणं णासेमि"। वह सुसंगत लगता है। अतः सिद्ध होता है कि काश्मीरी रंगकर्मियों ने जो श्लोक (मुनिसुताप्रणयरोधिना०) मौलिक था, या पूर्वापर में सुसंगत था, उसको संक्षेपीकरण के आशय से हटा दिया है। तथा जो प्रक्षिप्त सिद्ध होता है, उस (उपहितस्मृति-रङ्गुलि०) श्लोक को मान्य किया है।। यहाँ ध्यातव्य बिन्दु यह है कि काश्मीरी पाठ का संघटन करनेवालों के सामने दोनों ही श्लोक रहे होंगे, जिनमें से उन्होंने एक ही स्वीकारा है।।

(10) एवमेव, काश्मीरी पाठ में कञ्चुकी के मुख में रखा गया एक और श्लोक भी है, जो प्रक्षिप्त सिद्ध होता है। जैसे कि, कञ्चुकी दो उद्यानपालिकाओं को कहता है कि- हुँ, न खलु श्रुतं युवाभ्यां यथा वासन्तै-स्तरुभिरपि देवस्य शासनं प्रमाणीकृतं, तदाश्रयिभिश्च। तथा हि, चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका बध्नाति न स्वं रजः० (6-4)। यहाँ "अपि", तथा "च" इन दो निपातों का प्रयोग देख कर चूतानां चिरनिर्गतापि०- वाला श्लोक प्रक्षिप्त होने की आशङ्का पैदा होती है। तत्पश्चात् आगे चल कर विदूषक जब कहता है कि- कृतं भवता निर्मक्षिकम्। साम्प्रतं शिशिरविच्छेदे रमणीयेऽस्मिन् प्रमदवने सुखं विहरिष्यामः।। तब प्रश्न उठता है कि उपर्युक्त श्लोक में तो कहा गया है कि निसर्ग में वसन्त ऋतु का संचार ही नहीं हुआ है। राजाज्ञा से ऋतुकाल भी स्तब्ध हो गया है। तो फिर विदूषक कैसे कह सकेगा कि शिशिर का विच्छेद होने के बाद, वसन्तागमन होने से रमणीय बने उद्यान में हम सुख पूर्वक विहार करें?। एवमेव, राजा के मुख से निकले एक श्लोक में भी कहा है कि कामदेव ने चूतशर को उठाया है। इस तरह से, पूर्वोक्त श्लोक के वर्णन के साथ विदूषक एवं राजा की उक्तियाँ का आन्तर विरोध पैदा होता है। इस लिए यह श्लोक प्रक्षिप्त होगा ऐसा सिद्ध होता है।।

(11) नाटकीयता की दृष्टि से अक्षमाला के निर्गमन के क्षण का अभ्यास करणीय है। इस अंक के अन्त भाग में, राजा अपनी अनपत्यता पर शोकाविष्ट होकर मूर्च्छित हो जाता है। उस समय परिजन वर्ग के लोग संभ्रम में पड जाते है, तब अक्षमाला सोचती है कि मैं चाहूँ तो उसे अभी शोकमुक्त कर सकती हूँ। लेकिन देवताओं की योजना में मुझे हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। यज्ञभाग के लिए उत्सुक देवता ही उसका सहधर्मचारिणी के साथ संयोग करवायेंगे। यहाँ अक्षमाला सहसा नभोलोक की ओर देख कर बोलती है (सूचित करती है) कि देवताएँ करेंगे ऐसा नहीं, अभी इसे होता हुआ मैं देख रही हूँ! चलो, जा कर प्रियसखी (यानी शकुन्तला) को इस वृत्तान्त से आश्वासन देती हूँ। इतना बोल कर वह रंगमंच से विदाई होती है। अर्थात् अक्षमाला रंगभूमि से निकलने से पहले इन्द्र-सारथि मातलि आ रहा है, उसका नभोवलोकन से निर्देश कर देती है।। इस तरह की नाट्य-योजना मैथिली आदि पाठों में सुरक्षित नहीं रह पायी है। इस सन्दर्भ में भी काश्मीरी पाठ की ही उत्कृष्टता एवं श्रद्धेयता अधिक सिद्ध होती है।।

(12) मातलि ने राजा को विरही अवस्था में से बाहर निकालने के लिए विदूषक को पकड़ा है। तब रंगकर्मियों ने (या किसी अज्ञात कविंमन्यमान व्यक्ति ने) तीन श्लोकों का प्रक्षेप किया है। जैसे कि, कञ्चुकी के मुख में,

(क) प्रागेव जरसा कम्पः० (6-26),

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(ख) तस्याग्रभूमेर्गृहनीलकण्ठै०। (6-27)

(ग) अहन्यहन्यात्मन एव तावज्ज्ञातुम्० (6-28)।

इन श्लोकों को प्रक्षिप्त मानने का कारण एक ही है कि मातलि के ताडन से जब विदूषक आर्तस्वर में चीत्कार करता है, तब परित्राण का कार्य ही प्रस्तुत होता है। वहाँ पर कविता-गान करके कालक्षय करना असमीचीन लगता है। काश्मीरी पाठ के संघटन-काल से पहले इन श्लोकों का प्रक्षेप हो गया होगा।।

॥ सप्तमोऽङ्कः॥

सप्तमांक में निर्वहण-सन्धि शुरू होती है। षष्ठांक में राजा को धीवर के पास से दुष्यन्त-नामधेयांकिता अंगूठी मिल जाने से विस्मृत एवं प्रत्याख्यात शकुन्तला याद आ जाती है। किन्तु इस नाटक में केवल शकुन्तला का पत्नी के रूप में अभिज्ञान होना ही नाट्य-कार्य नहीं है। अपि तु दुष्यन्त-शकुन्तला के संयोग से पैदा हुई संतति का अभिज्ञान भी एक अतीव महत्त्वपूर्ण नाट्य-कार्य है। जब तक सर्वदमन भरत की पहचान दौष्यन्ति एवं शाकुन्तलेय के रूप में न हो जाय तब तक नाटक विराम नहीं प्राप्त कर सकता है। भरत की पैतृक पहचान यानी अभिज्ञान का कार्य सप्तमांक का मुख्य विषय है। महाकवि ने इस मुख्य नाट्य-कार्य के साथ साथ अन्य भी जो जिज्ञास्य कथा-तन्तु हो सकते हैं, उनका भी संहार यहाँ कर दिया है।।

काश्मीरी वाचना में प्राचीनतम एवं सर्वाधिक श्रद्धेय पाठ सुरक्षित रहा है- इस मत का समर्थन करने वाला एक प्रमाण सप्तांक के पाठ में है:- दो तापसियाँ सर्वदमन भरत के हाथों से सिंहशावक को छुड़वाने के लिए कोशिश करती हैं, उस दृश्य के पाठ्यांश में प्रथमा तापसी का नाम संयता है, और द्वितीया तापसी का नाम सुव्रता है। इन दोनों नामों की रक्षा काश्मीरी पाठ के कारण हुई है। कालान्तर में, द्वितीय क्रमांक पर मैथिली पाठ में भी इन दोनों नामों की प्राप्ति जरूर होती है, लेकिन कुत्रचित् प्रथमा तापसी की उक्ति को द्वितीया तापसी की उक्ति बनायी गयी है- ऐसी विकृति शुरू हुई है। तथा तृतीय क्रमांक पर बंगाली पाठ में से द्वितीया तापसी का नाम अन्धेरे में चला जाता है, जो दाक्षिणात्य और देवनागरी पाठों में भी खोया हुआ ही रहता है।। (देवनागरी पाठ के सप्तमांक की समीक्षा में इस विषय का विस्तृत निरूपण द्रष्टव्य है।)

अब हमें सप्तमांक के काश्मीरी पाठ में कहाँ कहाँ पर रंगावृत्ति के लक्षण उभर कर सामने आते हैं, उनका विश्लेषण देना है:-

(1) कालिदास ने अपने मालविकाग्निमित्र एवं विक्रमोर्वशीय नाटकों में जैसे संगीत एवं नृत्य के दृश्यों का संनिवेश किया है, वैसी ही अभिज्ञानशकुन्तला नामक तृतीय नाटक में भी संनिवेश किया है। केवल काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ में, सप्तमांक के प्रारम्भ में जो प्रवेशक आता है, उसी में उसकी सुरक्षा हुई है। इस दृश्य में स्वर्गलोक की जो नाकलासिका है, उसका नाम पारिजातमञ्जरी है। दूसरी लासिका पृथिवीलोक की है, उसका नाम चूतमञ्जरी है। उन दोनों की बातचीत से मालूम होता है कि इन्द्र को साहाय्य करने के लिए जो दुष्यन्त स्वर्गलोक में गया था, वह दावनगण को परास्त करके पृथिवी लोक में वापस आ रहा है। दुष्यन्त की सम्भावना में नृत्य की प्रस्तुति करने के आशय से दोनों रंगमंच पर आती हैं, और अन्त में वह नृत्य करके वहीं से निवृत्त होती हैं। यहाँ उल्लेखनीय है कि पृथिवीलोक की लासिका (चूतमञ्जरी) के मन में इस बात का परम हर्ष है कि दानवों को परास्त करके दुष्यन्त पृथिवीलोक में वापस पधार रहा है। जिन विद्वानों ने इस दृश्य का पाठ पढ़ा है, उनमें से बहुशः विद्वान् ऐसा मानते हैं कि यह कालिदास-प्रणीत पाठ्यांश नहीं है। यानी काश्मीर के रंगकर्मियों ने इस दृश्य का प्रक्षेप किया है। किन्तु प्रॉफेसर एस. के. बेलवालकर जी ने उसको मौलिक सिद्ध किया है। यद्यपि इस प्रवेशक के पाठ का अनुगामी समय में मैथिली तथा बंगाली पाठों में अनुसरण नहीं हुआ है।।

---

1. डॉ. बेलवालकर जी ने इस आर्या का अंग्रेजी अनुवाद ऐसा दिया है:- This time of the Spring, while it renders someone averse to the influence of love, another, My Friend, is filled with passion : while a third it makes senseless, being thrown down on the earth. ibid, page : 24.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

इस प्रवेशक में कुत्रचित् दुर्बोध पाठ्यांश भी है, जिससे सूचित होता है कि प्रतिलिपि-कर्ताओं की असावधानी एवं अज्ञान के कारण ऐसा हुआ होगा। विशेष रूप में जिस प्राकृत गाथा को आश्रित रह कर नाकलासिकाओं ने रंगमंच पर नृत्य पेश किया है, उसका वाक्यार्थ-बोध प्राप्त करना मुश्किल है। तथापि इस आर्या का, सम्भवतः प्रसंगानुसारी ऐसा अर्थ हो सकता है कि मधुमास में जैसे किसी (भ्रमर) की स्थिति विषय-गमन से उपरत होती है, वैसे मारीच के आश्रम में शकुन्तला की स्थिति विषयोपभोग से विरत हुई दिखती है। मधुमास में कोई दूसरा (भ्रमर), प्रकृत में दुष्यन्त, रागानुरक्त होता है। वही मधुमास में किसी तीसरा व्यक्ति (भ्रमर) यानी दानवगण स्वर्गलोक में परास्त होकर गिर जाता है, विसंज्ञ होता है[1]।। यहाँ इस आर्या के शब्दार्थ का कोई गूढ साम्य नाटक के आरम्भ में नटी के द्वारा गाई क्षणचुम्बितानि भ्रमरैः० इत्यादि आर्या के साथ क्या सोचा जा सकता है? ऐसा प्रश्न होता है। महाकवि कालिदास ने नाटक के उपक्रमोपक्रम-संहार में शायद कुछ कहा होगा, ऐसी आकूति मन में पैदा हो रही है।।

(2) कालिदास ने दुष्यन्त का रथ आकाशमार्ग से वापस आ रहा है, उसका सुन्दर वर्णन कुछ श्लोकों में किया है। किन्तु मंचन की दृष्टि से जो ध्यानाकर्षक है वह देवराज इन्द्र का "समययन्त्रितरथ" है। इसमें से राजा दुष्यन्त पहले अवतीर्ण हो जाते हैं, लेकिन मातलि कुछ देर के बाद अवतीर्ण होते हैं- ऐसा कहा गया है। अतः कौतुक होता है कि यह कौन सा / किस तरीके का रथ होगा? तथा उसका अभिनयन कैसे होता होगा? (इस प्रकार के रथ का उल्लेख मैथिली एवं बंगाली पाठों में भी देखा जाता है। किन्तु कालान्तर में इसको दुर्बोध समझ कर, दाक्षिणात्यादि पाठों में, उसको पाठान्तर से "संयन्त्रितो मया रथः" बना दिया है। लेकिन प्राचीन भारत की कोई निश्चित विरासत अन्धेरे में चली गई होगी ऐसा लगता है।)

(3) इस नाटक की कुछ संवाद-उक्तियाँ अविस्मरणीय बनी हैं। जैसे कि, भरत ने एक सिंहबाल को पकड़ रखा है, क्योंकि वह उसके मुँह में कितने दाँत है वह गिनना चाहता है। तब आश्रमकन्याएँ उसे एक नया खिलौना, मृत्तिकामयूर दे कर कहती है कि, "(सव्वदमण, पेक्ख सउन्त-लावण्णं।)= सर्वदमन, प्रेक्षस्व शकुन्तला-वर्णम्। "इस उक्ति में सभङ्ग श्लेष होने से, उभय पक्ष में (यानी वक्ता-श्रोता को) द्विधा-अर्थावगति कराती है, जो उसकी रमणीयता है। किन्तु इस सुप्रसिद्ध संवादोक्ति का स्वरूप काश्मीरी पाठ में कुछ भिन्न ही है। यहाँ तापसीद्वय (=प्रथमा का नाम संयता है, और दूसरी तापसी का नाम सुव्रता है) सर्वदमन के हाथों में से सिंहशावक को मुक्त करवाने की कोशिश करती है। अन्त में, सुव्रता संयता के उटज से एक वर्णचित्रित मृत्तिकामयूर ला कर उसको देती है। देते समय उसके मुख से "सव्वदमण, सउन्तला..." इतने दो ही शब्द निकलते हैं, जिसको सुनते ही सहसा बालक पूछता है कि, "कहिं अज्जू?"। (जिसके बाद रंगसूचना है कि- उभे प्रहसिते।) यानी काश्मीरी रंगमंच पर "सव्वदमण, पेक्ख सउन्तलावण्णं" ऐसी उक्ति नहीं है। (ऐसी उक्ति तो प्रथमबार मैथिली रंगावृत्ति के पाठ में प्राप्त हुई है। जो कालान्तर में अन्य सभी वाचनाओं की पाण्डुलिपियों में संचरित हुई है।)

(4) दुष्यन्त ने सर्वदमन के हाथ में से गिरी हुई अंगूठी उठा ली, और फिर भी वह सर्प बन कर दुष्यन्त को दंश नहीं देती है, तब आश्रम की तापसियाँ साश्चर्य देखती रह जाती हैं। क्रमिक बातचीत से जब यह बात खुल जाती है कि मारीच ने अपराजिता नामक महौषधि से बनाई अंगूठी अभिमन्त्रित करके सर्वदमन को पहनाई थी, माता-पिता एवं स्वयं बालक के सिवा अन्य, उस भूमिपतिता अंगूठी को उठा नहीं सकता था। तब सिद्ध हो जाता है कि दुष्यन्त ही इस बालक का पिता है। वह बालक को गले से लगाता है। दोनों तापसियाँ इस प्रिय घटना का शकुन्तला को निवेदन करने के लिए वहाँ से चली जाती हैं। तथा रंगमंच पर, सामने से एकवेणीधरा शकुन्तला का प्रवेश होता है। काश्मीरी पाठ में इस क्षण की जो दृश्य-योजना है, वह ध्यानास्पद है। बाल सर्वदमन को अपने हाथ से पकड़ कर दुष्यन्त रंगमंच पर चलता है, परिक्रमण करता है। जिसको देख कर, सामने से आ रही शकुन्तला कहती है कि "न खल्वार्यपुत्र इव। तत्को नु खल्वेष कृतरक्षा-मंगलं दारकं मे हस्तसंसर्गेण दूषयति"। 'इससे ऐसा फलित होता है कि काश्मीरी रंगमंच पर बालक नट की वयोवस्था थोड़ी ज्यादा रखी गई होगी, क्योंकि दुष्यन्त ने उस बालक को उठाया

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

नहीं है। उससे विपरीत बंगाली रंगमंच पर वही बालक कुछ छोटी उमरवाला होगा, और दुष्यन्त उसको उठा कर आ रहा होगा। इसको देख कर, वहाँ शकुन्तला कहती है कि,"..गात्र-संसर्गेण दूषयति"। ऐसा पाठ तभी सम्भव है कि उस बालक की वयोवस्था बहुत कम रखी गई होगी।।

(5) काश्मीर की शारदा-पाण्डुलिपियों में संचरित हुआ पाठ रंगावृत्ति का पाठ है, (यानी कवि-प्रणीत मूल पाठ की अखण्ड धारा इन पाण्डुलिपियों में सर्वांश में नहीं है)- ऐसा सूचित करनेवाला एक प्रसंग उल्लेखनीय है:- दुष्यन्त शकुन्तला सामने आते ही क्षमा-याचना करता हुआ, उस बालक के लिए अपनी पहचान देने का कहता है! (यतोऽहमिदानीं त्वया प्रत्यभिज्ञातम् आत्मानमिच्छामि।) अब शकुन्तला को प्रतीति हो जाती है कि "आर्यपुत्र एवैषः"। राजा भी कहता है कि राहु का ग्रहण-काल पूरा हो जाने पर जैसे चन्द्रमा का रोहिणी से योग होता है- ऐसी यह क्षण है। तब शकुन्तला के मुख से "जयतु जयतु आर्यपुत्रः" ऐसी एक उक्ति निकलती है। किन्तु यह उचित नहीं लगती है। (तथा मैथिली एवं बंगाली पाठों में "जयतु जयतु..." इतने ही शब्द है।) क्योंकि यह एक ऐसा क्षण है कि एक चिरविरहिणी पत्नी अपना वाक्य पूरा कर सके- यह सम्भव ही नहीं है। एवञ्च, इसी उक्ति के तुरंत बाद राजा की जो उक्ति है, वह द्रष्टव्य है:- बाष्पेण प्रतिषिद्धेऽपि जयशब्दे जितं मया। (7-24) इस पङ्क्ति में स्पष्ट कहा गया है कि शकुन्तला का कण्ठ भले ही बाष्प से अवरुद्ध हो गया, (वह शकुन्तला पूरा वाक्य न बोल पायी हो), फिर भी अकेले जयतु क्रियापद के "जय" शब्दोच्चारण से ही मैं ने सारी दुनिया जीत ली है- ऐसा मैं महसूस कर रहा हूँ।। मतलब कि काश्मीरी रंगकर्मियों ने जयतु जयतु आर्यपुत्रः - जैसा पूरा वाक्य रखा है वह स्वाभाविक नहीं है और मूलगामी पाठ भी नहीं है। इस अंश में वह रंगावृत्ति का पाठ सिद्ध होता है।।

(6) काश्मीरी पाठ में जो रंगसूचनाएं दी हैं उन्हें ध्यान से देखने से मालूम होता है कि किसी प्रसंग-विशेष का मंचन किस तरह से होता होगा। उदाहरणतया, इस अंक के अन्त भाग में पुत्र भरत और पत्नी शकुन्तला को लेकर दुष्यन्त मारीच ऋषि को पादवन्दन करने के लिए जाता है। श्लोक-29 के नीचे रंगसूचना है कि- सर्वे प्रजापतिनाभिहितम् आसनम् उपविशन्ति। यानी मंचन की क्षणों में मारीच के सामने तीन आसन रखे होंगे, जिस पर बारी बारी से, पहले शकुन्तला को, दूसरे क्रम में सर्वदमन भरत को और अन्त में तृतीय आसन पर दुष्यन्त को मारीच के द्वारा दिये गये प्रकट इशारों के साथ बिठाया जाएगा। तत्पश्चात् पुनः एक बार रंगसूचना आती है कि, "एकैकम् निर्दिशन्"। जिस क्रम से इन तीनों को बिठाया गया है, उन तीनों का व्यक्तिशः अंगुली से निर्देश करते हुए मारीच को निम्नोक्त श्लोक बोलना है:-दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी, सदपत्यमिदं, भवान्। श्रद्धा, वित्तं, विधि-श्चेति त्रितयं तत् समागतम्।। (7-30) अन्य मैथिली एवं बंगाली रंगावृत्तियों में ऐसी द्विविध रंगसूचनाएं नहीं मिलती हैं। जिससे सिद्ध होता है कि काश्मीरी पाठ किसी नटमण्डली का मंचन के लिए लिखा हुआ पाठ है।।

(7) काश्मीरी पाठ में रंगावृत्ति के लक्षण होते हुए भी उसमें अनेक स्थान पर अधिक श्रद्धेय एवं नाट्य के अनुरूप पाठ की सुरक्षा हुई है। उदाहरण के रूप में, शकुन्तला का दुष्यन्त के साथ समागम हो जाने के बाद मारीच की पत्नी अदिति कहती है कि इस शुभ वृत्तान्त से कण्व मुनि को अवगत कराया जाय, क्योंकि वे इस शकुन्तला के पालक पिता हैं। तब मारीच कहते हैं कि कण्व मुनि को तो अपने तपःप्रभाव से सब घटना-चक्र प्रत्यक्ष ही है। तथापि हमारी और से सन्देश भेजना चाहिए। वे कहते हैं कि, "तथाप्यसौ प्रियम् अस्माभिः श्रावयितव्यः। कः कोऽत्र भोः।" यहाँ प्रियम् शब्द में सब वृत्तान्त समाहित है। लेकिन तुलनात्मक दृष्टि से जब हम मैथिल पाठ को देखते हैं तो मालूम होता है कि वहाँ तो इसी उक्ति का भारी विस्तार किया गया है:- "तथापि दुहितुः सपुत्राया भर्त्रा परिग्रहः प्रियतमोऽस्माभिः कण्वः श्रावयितव्यः। कः कोऽत्र भोः।" नाटक जैसी समय की पाबन्दीवाली कला में ऐसा विस्तार असह्य होता है। यहाँ मैथिल-पाठ की अपेक्षा से काश्मीर-पाठ अधिक उचित एवं नाट्यक्षम प्रतीत होता है।।

(8) काश्मीरी पाठ में, भरत-वाक्य से पहले "क्रतुभिरुचितभागांस्त्वं सुरान् भावयालम्" ऐसा श्लोक ही आता है। किन्तु मैथिल-पाठ में "तव भवतु बिडौजाः०"शब्दों से एक दूसरा श्लोक भी प्राप्त होता है। जो विचार की दृष्टि से पुनरुक्ति रूप ही प्रतीत होता है। कहने का तात्पर्य यही है कि काश्मीरी पाठ यहाँ प्रक्षिप्त श्लोक से मुक्त है।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(9) काश्मीरी पाठ (एवं तदनुगामी अन्य मैथिलादि पाठपरम्पराओं) के सप्तमांक में कुछ स्थान ऐसे हैं कि जिनमें कवि-प्रणीत पाठ की विकृतियाँ या क्षतियाँ विद्यमान हैं ऐसा लगता है। (क) प्रवेशक में, पारिजातमञ्जरी के मुख में एक वाक्य है:-"सखि, संक्षेपेण कथयिष्यामि, अहं खलु राजर्षेर्दुष्यन्तस्य दानवविजयव्यपदेशेनाद्य मङ्गलनिमित्तं किमपि प्रेक्षणकं दर्शयत इति उपाध्यायस्याज्ञया उभे एव सकाशम् - - -"। यह वाक्य अपूर्ण है, और इस लिए उसका वाक्यार्थ भी संतोषजनक नहीं मिलता है। (डॉ. एस. के. बेलवालकर जी ने सम्पादित किये पाठ में भी वह अधूरा छोड़ दिया है।) (ख) राजा की उक्ति है:-"अभूमिरियम् अविनयस्य। को नु खल्वविनयं निषिध्यते। "इसमें निषेध क्रिया के योग में अविनयात् ऐसा पञ्चम्यन्त प्रयोग ही होना उचित लगता है। लेकिन उपलब्ध शारदा पाण्डुलिपियों में अविनयम् ऐसा द्वितीयान्त रूप ही पढ़ा जाता है। (ग) आश्रमकन्याएं जब सिंहशावक को सर्वदमन के हाथों में छुड़ाने के लिए दूसरा खिलौना अपनी कुटिर से मंगवाती है। यहाँ जो वाक्य है उसमें कुछ क्षति हुई है:- सुव्वदे, ण सक्को एसो आआसमित्तेण सअमिदुं। ता गच्छ। मम केरए उडए इसि [मङ्कणअस्स] इसिकुमारअस्स वण्णअचित्तिदो मिट्टिआमऊरओ चिट्ठदि। तं से उवाहर।" यहाँ किस ऋषि का नाम दिया है वह पाण्डुलिपियों के पाठ से स्पष्ट नहीं होता है। जैसे कि, ऑक्सफर्ड-1247 क्रमांक की एवं श्रीनगर की 1435 क्रमांकवाली पाण्डुलिपियों में यह नाम दिया ही नहीं है। भूर्जपत्रवाली सब से प्राचीनतम (192 क्रमांक की) तथा ऑक्सफर्ड (159 क्रमांक की) पाण्डुलिपियों में मण्कस्स ऐसा शब्द पढ़ा जाता है। कार्ल बुरखाड़ ने 1884 में मण्कणअस्स ऐसा शब्द दिया है।। तुलनात्मक दृष्टि से अन्य वाचनाओं में जब देखते हैं तो, मैथिली पाठ में शालंकायन नाम दिया है, और बंगाली पाठ में मङ्कणक नाम मिलता है। तथा दाक्षिणात्य एवं देवनागरी में उसे मार्कण्डेय के रूप में प्रस्तुत किया गया है।।

❖ ❖ ❖

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ अभिज्ञानशकुन्तला[1] नाटकम्॥

॥ प्रथमोऽङ्कः॥

या स्त्रष्टुस्सृष्टिराद्या[2], पिबति[3] विधिहुतं या हवि, र्या च होत्री,
ये द्वे कालं विधत्तः, श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुस्सर्वबीजप्रकृतिरिति, यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रसन्नस्तनुभिरवतु नस्ताभिरष्टाभिरीशः॥ 1-1॥ [1]

(नान्द्यन्ते)

सूत्रधारः - (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य)[4] आर्ये, यदि नेपथ्यविधानमवसितं तदितस्तावद् आगम्यताम्। [2]

नटी - (प्रविश्य) अय्य, इअम्हि। आणवेदु अय्यो को णिओओ अणुचिट्ठहीअदु त्ति। (आर्य, इयमस्मि। आज्ञापयत्वार्यः को नियोगोऽनुष्ठीयताम् इति।) [3]

सूत्रधारः - (दृष्ट्वा) आर्ये, अभिरूपप्रायभूयिष्ठेयं परिषत्। अस्यां च किल कालिदासग्रथितवस्तुना नवेन नाटकेनो[5] -पस्थातव्यम् अस्माभिः। तत्प्रतिपात्रम् आस्थीयतां यत्नः। [4]

नटी - सुविहिदप्पओअदाए अय्यस्स ण किं चि परिहाइस्सदि। (सुविहितप्रयोगतयाऽऽर्यस्य न किंचित् परिहास्यते।) [5]

सूत्रधारः - (सस्मितम्) आर्ये, वेदयामि ते भूतार्थम्।

आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः॥ 1-2॥ [6]

नटी - एवं णेदं। अणन्तरकरणीअं दाणिं अय्यो आणवेदु। (एवमेतत्। अनन्तरकरणीयमिदानीमार्य आज्ञापयतु।) [7]

सूत्रधारः - (दृष्ट्वा) किमन्यत्। अस्याः परिषदः श्रुतिप्रसादहेतोरिमम् एव नातिचिरप्रवृत्तमुपभोगक्षमं ग्रीष्मकालम् अधिकृत्य गीयतां तावत्। सम्प्रति हि -

सुभगसलिलावगाहाः पाटलिसंसर्गसुरभिवनवाताः।
प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः॥ 1-3॥ [8]

नटी - (तथा गायति)

खणचुम्बिआइं भमरेहिं सुअअ सुउमारकेसरसिहाइं।
अवदंसअन्ति पमदा दअमाणाओ सिरीसकुसुमाइं[6]॥ 1-4॥

---

1. काश्मीर(शारदा)-पाठे शीर्षकमिदं प्रचलति।, अभिज्ञानपुरस्सरा शकुन्तला सर्वत्र वर्ण्यते यत्र, तन्नाटकम्॥
2. अभिनवभारत्यामप्ययमेव पदक्रमो वर्तते। (द्रष्टव्यम्- ना. शा. 9-173, पृ. 67)
3. हविर्घृतमित्यर्थः, पिबतिशब्दसाहचर्याद्।, "तत्रैक एव जलहुताशनाभिनय उत्तमेनेत्यभिनवगुप्ताः" (ना.शा. 9-173)। अनेनास्य काश्मीर-पाठस्य समर्थनं भवति।
4. अलमतिविस्तरेणेति वाक्यं नास्तीत्यवधेयम्।
5. सूत्रधारस्य मुखे नाटकस्य नामोल्लेखो नास्ति।
6. पूर्वार्धे द्वात्रिंशन्मात्राः सन्ति। द्वितीय-चतुर्थगणयोर्यद्यनुस्वारद्वयं न स्यात्तर्हि तत्रार्याछन्दसो लक्षणं संगच्छेत। पूर्वार्धोत्तरार्धयोः 30+30 मात्रासमूहमनुसृत्य गीतिर्भवेद्। नटमण्डलस्यायं पाठः रंगाय स्याद्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(क्षणचुम्बितानि भ्रमरैस्सुभग-सुकुमार-केसर-शिखानि।
अवतंसयन्ति प्रमदा दयमानाः शिरीषकुसुमानि॥ 1-4॥) [9]

सूत्रधारः - आर्ये, सुष्ठु गीतम्। एष हि - गीतरागावबद्धचित्तवृत्तिरालिखित इव स्थितस्सर्वत रङ्गः। तददानीं कतमत् प्रकरणम्[1] आश्रित्य जनमाराधयावः। [10]

नटी - णं पढमं येव अय्येण आणत्तं जहा ण अहिणाणसउन्तला[2] नाम अपुरवं णाडअं पओएण अधिअरीअदुत्ति। (ननु प्रथममेवार्येणाज्ञप्तं यथा नोऽभिज्ञानशकुन्तला नामापूर्वं नाटकं प्रयोगेणाधिक्रियताम् इति।) [11]

सूत्रधारः - भवतु, सम्यग् अनुप्रबोधितोऽहम्, अस्मिन् क्षणे खलु विस्मृतं मया तत्। कुतः -

तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः।

(नेपथ्याभिमुखम् अवलोक्य[3])

एष राजेव दुष्यन्तस्सारङ्गेणा[4]-तिरंहसा॥ 1-5॥ [12]

(इति निष्क्रान्तौ॥

॥ प्रस्तावना॥

(ततः प्रविशतः रथयातकेन मृगानुसारी चापहस्तो राजा दुष्यन्तस्सूतश्च।)[13]

सूतः - (राजानं मृगं चावलोक्य)

कृष्णसारे ददच्चक्षुस्त्वयि चाधिज्यकार्मुके।
मृगानुसारिणं साक्षात् पश्यामीव पिनाकिनम्॥ 1-6॥ [14]

राजा - सुदूरमनेन कृष्णसारेण वयमाकृष्टाः। अयमिदानीमपि -

ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने दत्तदृष्टिः
पश्चार्द्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम्।
शष्पैरर्धावलीढैः श्रमविततमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतित्वाद् वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति॥ 1-7॥

कथमनुपातिन एव मे प्रयत्नप्रेक्षणीयस्संवृत्तः। [15]

सूतः - आयुष्मन्, उद्घातिनी भूमिरियम्, मया रश्मिसंयमनाद् रथस्य वेगो मन्दीकृतः। तेनैष ते मृगो विप्रकृष्टान्तरस्संवृत्तः। सम्प्रति तु समदेशवर्ती, न ते दूरासदो भविष्यति। [16]

राजा - मुच्यन्ताम् अभीषवः। [17]

सूतः - यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (तथा कृत्वा रथवेगान्तरं निरूपयन्) आयुष्मन् पश्य, पश्य। एते-

मुक्तेषु रश्मिषु निरायतपूर्वकाया निष्कम्पचामरशिखा-निभृतोच्चकर्णाः।
आत्मोद्धतैरपि रजोभिरलंघनीया धावन्ति ते मृगजवाक्षमयेव रथ्याः॥ 1-8॥ [18]

---

1. सूत्रधारः शब्देनानेनास्मिन् नाटके विस्मृतेः प्रसङ्गः समागमिष्यतीति व्यञ्जयितुमभिलषति।
2. नाटकस्यास्य "अभिज्ञानशकुन्तला" इति शीर्षकं प्रदत्तम्। (अस्मिन् नाटके सर्वत्र अभिज्ञानपुरस्सरैव शकुन्तला वर्ण्यते। प्रथमे, तृतीये, पञ्चमे, षष्ठे सप्तमे चाङ्के समीक्षणीयमिदम्।)
3. काश्मीर-पाठ एवेयं रंगसूचना दरीदृश्यते। अन्यत्र कुत्रापि नास्तीयम्।
4. नाट्यप्रयोगावसरे सारङ्गेति शब्दस्योच्चारणं केनापि वैशिष्ट्येन क्रियेत तर्हि प्रेक्षकाणां चित्ते सम्भ्रमो जायेत, किमनेन सारङ्गपदेन संगीतस्य रागो निर्दिष्ट उत वा हरिणस्यार्थः सूचित इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा - सत्यम्, अतीत्य हरिहरीनपि हरयो वर्तन्ते।

तथा हि -

यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद् विपुलताम्
यदर्धे विच्छिन्नं भवति कृतसन्धानमिव तत्।
प्रकृत्या यद् वक्रं तदपि समरेखं नयनयो-
र्न मे दूरे किञ्चिन्, न च भवति पार्श्वे रथजवात्॥ 1-9॥ [19]

सूतः[1] - आयुष्मन्, अस्य खलु बाणपथवर्तिनः कृष्णसारङ्गस्या[2]-न्तरे तपस्विनः। [20]

राजा - (ससंभ्रमम्) तेन हि, निगृह्यन्ताम् वाजिनः। [21]

सूतः - तथा करोमि। (इत्युक्त्वा रथं स्थापयति) [22]

(ततः प्रविशत्यात्मना तृतीयस्तापसः[3]) [23]

तापसः - (ससंभ्रमं हस्तम् उद्यम्य) राजन्, राजन्। आश्रममृगोऽयम्, आश्रममृगोऽयम्।[4]

तत्साधुकृतसन्धानं प्रतिसंहर सायकम्।
आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि॥ 1-10॥ [24]

राजा - एषः प्रतिसंहृतः। (यथोक्तं करोति) [25]

तापसः - (सहर्षम्) साधु भोः। सदृशमेतत् पुरुवंशजातस्य भवतः। सर्वथा चक्रवर्तिनं पुत्रमवाप्नुहि। [26]

राजा - (सप्रणामम्) प्रतिगृहीतं तपोधनवचनम्। [27]

तापसः - समिदाहरणाय प्रस्थिता वयम्। एष चास्मद्गुरोः काश्यपस्य संसक्तहिमवत्सानुरनुमालिनीतीरम् आश्रमो दृश्यते। न चेद् अन्यकार्यातिपातस्तत् प्रविश्यात्र प्रतिगृह्यतामतिथिसत्कारः। अपि च,

धन्यास्तपोधनानां प्रतिहतविघ्नाः क्रियास्समा(मव)लोक्य।
ज्ञास्यसि कियद् भुजो मे रक्षति मौर्वीकिणाङ्क इति॥ 1-11॥ [28]

राजा - अयं संनिहितोऽत्र कुलपतिः। [29]

तापसः - अद्यैवानवद्याम् दुहितरं शकुन्तलाम् अतिथिसत्काराय संदिश्य, प्रतिकुलं दैवं चास्या शमयितुं सोमतीर्थं प्रभासं गतः। [30]

राजा - (आत्मगतम्) भवतु, तां द्रक्ष्यामि, सा मां विहितभक्तिं महर्षेः करिष्यति। [31]

तापसः - साधयामस्तावत्। (इति सशिष्यो निष्क्रान्तः) [32]

राजा - सूत, चोदयाश्वान्। पुण्याश्रमदर्शनेन तावदात्मानं पुनीमहे। [33]

सूतः - यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (परिक्रम्य रथयातकं निरूपयति) [34]

राजा - (समन्ताद् विलोक्य) सूत, अकथितोऽपि ज्ञायत एव यथाऽयमाभोगस्तपोवनस्येति। [35]

सूतः - कथमिति। [36]

---

1. सूतस्योक्तेः प्राक् "भो राजन्, आश्रममृगोऽयं, न हन्तव्य" इति नेपथ्योक्तिरत्र नास्ति, तदवधेयम्।
2. अत्र 12 क्रमांके स्थितोक्तिरवधेया।, मैथिल-बंगीय-पाठयोः कृष्णसारस्येति पठ्यते, तदसंगतम्।
3. नाट्यप्रयोगे तापसेन सह द्वौ शिष्यौ मञ्चोपरि समागमिष्यत इति योजना। (किन्तु शिष्यद्वयस्य नास्ति कश्चिद् वाचिकाद्यभिनयविशेषः,अतस्तयोः प्रवेशो निष्क्रियः प्रतिभाति। तेन मैथिलादिषु पाठेषु किं किं परिवर्तनमभवदिति तुलनात्मकदृष्ट्या द्रष्टव्यम्।)
4. इतः परं, मैथिल-पाठे "न खलु न खलु बाणः०" इत्ययं श्लोकः पठ्यते। (सः च प्रक्षिप्त एव।)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा - न पश्यति भवान्। इह हि -

नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरूणाम् अधः
प्रस्निग्धाः क्वचिद् इङ्गुदीफलभिदस्सूच्यन्त एवोपलाः।
विश्वासोपगमाद् अभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगा-
स्तोयाधारपथाश्च वल्कलशिखा निष्यन्दलेखाङ्किताः॥ 1-12॥ [37]

सूतः - सर्वम् उपपन्नम्। [38]

राजा - (स्तोकमन्तरं गत्वा)

कुल्याम्भोभिः प्रसृतचपलैः शाखिनो धौतमूला
भिन्नो रागः किसलयरुचामाज्यधूमोद्गमेन।
एते चार्वागुपवनभुवि च्छिन्नदर्भाङ्कुरायां
नष्टाशङ्का हरिणशिशवो मन्दमन्दं चरन्ति॥ 1-13॥ [38]

मा तपोवनवासिनामुपरोधो भूत्। तद् एतावत्येव रथं स्थापय, यावद् अवतरामि। [39]

सूतः - धृताः प्रग्रहाः, अवतरत्वायुष्मान्। [40]

राजा - (अवतीर्य) विनीतवेषेण प्रवेश्यानि तपोवनानि। तदिदमाभरणं तावद् प्रगृह्यताम्। (इति सूतायाभरणं दत्त्वा धनुश्चोत्सृज्य) सूत, यावदहम् उपास्य महर्षीन् उपावर्ते, तावद् आर्द्रपृष्ठाः क्रियन्तां वाजिनः। [41]

सूतः - यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (इति निष्क्रान्तः) [42]

राजा - (परिक्रम्यावलोक्य च) इदमाश्रमद्वारं, यावत् प्रविशामि। (प्रविश्य निमित्तं सूचयन्) (विमृशति)

शान्तमिदम् आश्रमपदं, स्फुरति च बाहुः, कुतः फलमिहास्य।
अथ वा, भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र॥ 1-14॥ [43]

(नेपथ्ये)

इदो इदो पिअसही। (इत इतः प्रियसखी[1]) [44]

राजा - (कर्णं दत्त्वा) अये दक्षिणेन कुसुमपादपवीथीमालापम् इव, यावदत्र गच्छामि। [45]

(परिक्रम्यावलोक्य च) एतास्तपस्विकन्यकास्स्वप्रमाणानुरूपैस्सेचनघटकैर्बालपादपान् सिञ्चन्त्य इत एवाभिवर्तन्ते। (निपुणं निर्वर्ण्य) अहो माधुर्यकान्तं खलु दर्शनम् आसाम्। तद् यावदेतां छायामाश्रित्य प्रतिपालयामि। (विलोकयन् स्थितः) [46]

(ततः प्रविशति यथोक्तव्यापारा सह सखीभ्यां शकुन्तला) [47]

सख्यौ[2] - हला सउन्तले, तइत्तो वि खु ताद कस्सवस्स अस्सम-रुक्खआ पिअ त्ति तक्केम्ह, जेण णवमालिआ पेलवावि तुममेदस्स आलवालपूरणे णिउत्ता। (हले शकुन्तले, त्वत्तोऽपि खलु तातकाश्यपस्याश्रम-वृक्षकाः प्रिया इति तर्कयामो, येन नवमालिका-पेलवापि त्वम् एतस्यालवालपूरणे नियुक्ता।) [48]

शकुन्तला - सहि, ण केअलं ताद णिओओ त्ति। बहुमाणो जाव ममावि। सुअरिसिणिहो एदेसु अत्थि य्येव। (सखि, न केवलं तातनियोग इति। बहुमानो यावन् ममापि। सोदरीस्नेह एतेष्वस्त्येव।) [49]

(वृक्षसेकं निरूपयति) [50]

1. का.-पाठेनेदं सूच्यते यन् नेपथ्यतः सखीद्वयेन शकुन्तला संबोध्यते।, मै.-बं.-पाठयोर्भिन्ना योजना दृश्यते।
2. रंगकर्मिभिरत्र सखिद्वयस्योक्तिः प्रयुज्यते, तदवधेयम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

उभे[1] - हले सउन्तले, उदअं लम्भिदा गिम्हकालकुसुमदाइणो गुम्मआ। दाणिं अदिक्कन्तसमए वि रुक्खए सिञ्चम्ह। तसुणो अणहिसन्धिदपुरवो धम्मो भविस्सदि। (हले शकुन्तले, उदकं लम्भिता ग्रीष्मकालकुसुमदायिनो गुल्मका:। इदानीमतिक्रान्तसमयेऽपि वृक्षकान् सिञ्चाम:। तस्माद् अनभिसन्धितपूर्वो धर्मो भविष्यति।) [51]

शकुन्तला - अहिणन्दणीअं मन्तेधि। (अभिनन्दनीयं मन्त्रयथ:।) [52], (नाट्येन सिञ्चति) [53]

राजा - (निर्वर्ण्य सकौतुकम्) कथमियं सा कण्वदुहिता[2], अहो विस्मय:।

शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनो यदि जनस्य।
दूरीकृता: खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभि:॥ 1-15॥

भवतु, पादपान्तरित एव विश्वस्तभावाम् एनां पश्यामि। (तथा करोति) [54]

शकुन्तला - एसो वादेरिदपल्लवाङ्गुलीहिं तुवरावेदि विअ मं बउलरुक्खको, जाव णं सम्भावेमि।
(एष वातेरितपल्लवाङ्गुलिभिस्त्वरयतीव मां बकुलवृक्षक:। यावदेनं संभावयामि।) [55]

(राज्ञ: संनिकर्षम्[3] आगच्छति।) [56]

राजा - (निर्वर्ण्य) असाधुदर्शी तत्रभवान् काश्यप: य इमाम् आश्रमधर्मचरणे नियुङ्क्ते।

इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तप:क्षमं साधयितुं भविष्यति।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया समिल्लतां छेत्तुम् ऋषिर्व्यवस्यति॥ 1-16॥ [57]

शकुन्तला - हला अणसूए, अदिपिणद्धेण पिअंवदाए वक्कलेण णिअन्तिदाम्हि। ता सिढिलेहि दाव णम्। (हले अनसूये,अतिपिनद्धेन प्रियंवदया वल्कलेन नियन्त्रितास्मि, तच्छिथिलय तावदेनम्।)

(अनसूया शिथिलयति) [58]

प्रियंवदा - (सस्मितम्) पओहरवित्थारइत्तुअं अप्पणो जोव्वणं उवालह। (पयोधरविस्तारयितृकम् आत्मनो यौवनम् उपालभस्व।) [59]

राजा - कामम्[4] अप्रतिरूपम् अस्य वयसो वल्कलम्, न पुनरलंकारश्रियं न पुष्यति। कुत: -

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं मलिनपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्॥ 1-17॥ [60]

प्रियंवदा - हला सउन्तले, एसा तादकस्सवेण तुअं विअ संवद्धिढदा अलिन्दए माहवीलदा। पेक्ख णम्। किं विसुमरिदा दे। (हले शकुन्तले, एषा तातकाश्यपेन त्वमिव संवर्द्धितालिन्दके माधवीलता[5]। प्रेक्षस्वैनाम्। किं विस्मृता ते।)[61]

---

1. रंगकर्मिभिरत्रापि सखिद्वयस्योक्ति: प्रयुज्यते, तदवधेयम्।
2. रंगकर्मिभि: शकुन्तलाया एवाभिज्ञानं प्राथम्येन साधितम्। सखिद्वयस्य परिचय: पश्चादेव स्यादिति। रंगकर्मिणामेवेयं योजना (न तु कवे:), यतो हि शुद्धान्तेति श्लोके तु तिसृणां सखीनां वनलताभि: तुलना क्रियते। किन्तु श्लोकस्योपरि नीचैश्च नायकस्य ये वाक्ये वर्तेते, ते तु केवलां शकुन्तलामेव लक्ष्यीकुरुत:।
3. काश्मीरप्रदेशीय-रंगभूमौ यत्र दुष्यन्त: तिष्ठति तत्रैव नायिकामानीय वल्कलशिथिलीकरणं नाट्यते।
4. इत: पूर्वम् "इदमुपहितसूक्ष्मग्रन्थिना स्कन्धदेशे, स्तनयुगपरिणाहाच्छादिना वल्कलेन। वपुरभिनवमस्या: पुष्यति स्वां न शोभां, कुसुममिव पिनद्धं पाण्डुपत्रोदरेण।।-अथवा" इति श्लोको भवितुमर्हति। 5-15 श्लोकेन च तस्यास्तित्वं संसूच्यते। किन्तु शारदापाठत: केनापि रंगकर्मिणा स दूरीकृत: स्यादिति प्रतिभाति।
5. रंगसज्जामभिलक्ष्य केनापि रंगकर्मिणा माधवीलताया प्रक्षेप: कृत:। कण्वाश्रमे सहकारो बकुलवृक्षश्च स्त:, तत्र चैका नवमालिका नाम्नी लता वर्तते। तेषु त्रिषु माधवीलताया: प्रक्षेपणं काश्मीर-रंगमंचे प्रथमवारं दृश्यते, तच्चानुगामिनो: (मै.-बं.)पाठयो: कथं विस्तरतां गच्छतीति, सहृदयैर्विभावनीयम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला – अत्ता पि विसुमरिस्सदि। (आत्मापि विस्मरिष्यते।) (इति तत्समीपं गच्छति) [62]

प्रियंवदा – हला सउन्तले, चिट्ठिआ इध य्येव मुहुत्तअअं, दाव बउलरुक्खसमीवे। (हले शकुन्तले, तिष्ठेहैव मुहूर्तकम्, तावद् बकुलवृक्षसमीपे।) [63]

शकुन्तला – किं ति। (किम् इति।) [64]

प्रियंवदा – तए समीवट्ठीदाए लदासणाहो विअ मे बउलरुक्खको पडिभादि। (त्वया समीपस्थितया लतासनाथ इव मे बकुलवृक्षः प्रतिभाति।) [65]

शकुन्तला – अदो खु पिअंवदासि। (अतः खलु प्रियंवदाऽसि।) [66]

राजा – प्रियमपि तथ्यमाहैषा। अस्याः खलु,

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनम् अङ्गेषु सन्नद्धम्।। 1-18।। [67]

अनसूया – हला सउन्तले, इअं स्वअंवरवहूस्सहआरस्स तए किदणामधेअस्स वणदोसिणो णवमालिका।
(हले शकुन्तले, इयं स्वयंवरवधूः सहकारस्य, त्वया कृतनामधेयस्य वनतोषिणः[1], नवमालिका।) [68]

शकुन्तला – (उपगम्यावलोक्य च) हला रमणीये काले इमस्स पादवमिहुणस्स वदिअरो संवुत्तो। इअं णवकुसुमजोव्वणा अअं वि बद्धफलदाए उवभोअक्खमो सहआरो। (हले, रमणीये काले अस्य पादपमिथुनस्य व्यतिकरस्संवृत्तः, इयं नवकुसुमयौवना, अयमपि बद्धफलतयोपभोगक्षमस्सहकारः।) (पश्यन्ती तिष्ठति) [69]

प्रियंवदा – हला अणसूए, जाणासि किं णिमित्तं सउन्तला वणदोसिणं अधिमेत्तं पेक्खदि त्ति।
(हले अनसूये, जानासि किं निमित्तं शकुन्तला वनतोषिणम् अधिमात्रं प्रेक्षत इति।) [70]

अनसूया – ण खु विभावेमि। (न खलु विभावयामि।)[71]

प्रियंवदा – जधा वनदोसिणा अणुसदिसेण पादपेण सङ्गदा णवमालिआ। अवि णाम एवं अहम्पि अत्तणो अणुरूवं वरं लभेमि त्ति। (यथा वनतोषिणानुसदृशेन पादपेन संगता नवमालिका, अपि नाम एवमहम् अप्यात्मनोऽनुरूपं वरं लभ इति।) [72]

शकुन्तला – एस णूणं अत्तणो दे चित्तगदो मणोरहो। (एष नूनम् आत्मनस्ते चित्तगतो मनोरथः।) [73]

(इति कलशम् आवर्जयति[2]) [74]

राजा – अपि नाम कुलपतेरियम् असवर्णक्षेत्रसम्भवा स्यात्। अथ वा,

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदेवम् अस्याम्[3] अभिलाषि मे मनः।
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः।। 1-19।।

तथापि तत्त्वत एनां वेदितुमिच्छामि। [75]

शकुन्तला – (भ्रमरसम्पातं नाटयति) अम्हो, सलिलसेअसंवुत्तो णवमालिअं उज्झिअ वअणं मे महुअरो अणुवत्तदि। (अहो सलिलसेकसंवृत्तो नवमालिकामुज्झित्वा वदनं मे मधुकरोऽनुवर्तते।) [76]

(भ्रमरबाधां निरूपयति) [77]

---

1. काश्मीर-शारदा-पाठे"वनतोषिन्" इति तु सहकारस्य नामधेयमित्यवधेयम्।
2. अत्र कलशमावर्जयतीति रंगसूचनया शकुन्तला कलशं भूमौ स्थापयति। तेन, क्षणादूर्ध्वं यदा भ्रमरो नवमालिकात उत्पतिष्यति तदा सा भ्रमरस्यापसारणं हस्तद्वयेन कर्तुं शक्नोति। (मैथिल-पाठे न तथा)
3. अत्र मन इति शब्दस्य विशेषणत्वेनार्यमिति न प्रयुक्तम्, तदवधेयम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा - (विलोक्य सस्पृहम्[1]) [78]

चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं,
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकगतः।
करौ व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं
वयं देवैर्मौग्ध्यान् मधुकर हतास्त्वं खलु कृती॥ 1-20॥ [79]

शकुन्तला - परित्ताअध मं इमिणा कुसुमपाडच्चरेण अभिभूअमाणं।
(परित्रायध्वम् मामनेन कुसुमपाटच्चरेणाभिभूयमानाम्।) [80]

उभे - (विहस्य) केवअं परित्ताणे दुस्सन्तं आकन्द। राअरक्खिदाणि खु तवोवणाणि होन्ति।
(केवलं परित्राणे दुष्यन्तम् आक्रन्द। राजरक्षितानि खलु तपोवनानि भवन्ति।) [81]

राजा - अवसरः खल्वयं ममात्मानं दर्शयितुम्। (उपसृत्य) न भेतव्यम्, न भेतव्यम्.....।
(इत्यर्धोक्तेऽपवार्य)
एवं राजाहमिति प्रतिज्ञातं भवति। भवत्वतिथिसमुचिताचारसत्कारम् अवलम्बिष्ये। [82]

शकुन्तला - (सत्रासम्) ण एसो मे पुरदो अ़इधट्ठो विरमदि। ता अण्णदो गमिस्सं। (इति पटान्तरेण स्थित्वा सदृष्टिक्षेपम्) हद्धी कधं इतो वि मं अणुसरदि। (नैष मे पुरतोऽतिधृष्टो विरमति। तदन्यतो गमिष्यामि। हा धिक्, कथम् इतोऽपि मामनुसरति।) [83]

राजा - (सत्वरम् उपेत्य) [84]

कः पौरवे वसुमतीं[2] शासति शासितरि दुर्विनीतानाम्।
अयमाचरत्यविनयं मुग्धासु तपस्विकन्यासु॥ 1-21॥ [85]

(सर्वा राजानं दृष्ट्वा किञ्चिदिव सम्भ्रान्ताः।)[86]

अनसूया - ण खु किञ्चि अच्चाहिदं। इअं पुणो ण पिअसही महुअरेण आउलीकिअमाणा कादरीभूदा। (न खलु किञ्चिदत्याहितम्। इयं पुनर्नः प्रियसखी मधुकरेणाकुलीक्रियमाणा कातरीभूता।) (शकुन्तलां दर्शयति) [87]

राजा - (शकुन्तलामुपेत्य) भवति, अपि तपस्ते वर्धते। [88]
(शकुन्तला ससाध्वसाऽवनतमुखी अवचना तिष्ठति) [89]

अनसूया - (राजानं प्रति) दाणिं अदिधिविसेसलाभेण। (इदानीमतिथिविशेषलाभेन।) [90]

प्रियंवदा - साअदं अय्यस्स। (स्वागतमार्यस्य) [91]

अनसूया - हला सउन्तले, गच्छ तुमं उडआदो फलमिस्सं उवाहर, पादोदअं अत्थि य्येव। (हले शकुन्तले, गच्छ त्वं, उटजतः फलमिश्रम् उपाहर, पादोदकम् अस्त्येव।) [92]

राजा - भवतु, सुनृतयैव वाचा कृतमातिथ्यम्। [93]

प्रियंवदा - तेण इमस्सिं दाव पादवच्छाआसीअलाए सत्तवण्णवेदिआए अय्यो उपविसिअ मुहुत्तअं परिस्समं अवणेदु। (तेनास्मिन् तावत् पादपच्छायाशीतलायां सप्तपर्णवेदीकायाम् आर्य उपविश्य मुहूर्तं परिश्रमम् अपनयतु।) [94]

---

1. अनया रंगसूचनया सह तु शकुन्तलाया दृष्टिविभ्रमं वर्णयितुं "यतो यतः षट्चरणोऽभिवर्तते०" इति श्लोको भवितुमर्हति। यतो हिं, "चलापाङ्गां दृष्टिमिति" श्लोकेन राजा भ्रमरं सासूयं निरूपयति। रंगसूचनाया असामञ्जस्यमेव "यतो यतः षट्चरणोऽभिवर्तत" इति श्लोकस्य निष्कासनं जातमिति द्योतयति।
2. काश्मीर-पाठे राज्ञो पूर्वपरिणीताया नाम कुलप्रभेति यद्वर्तते, तदेव समीचीनमित्यनेनैव शब्देन ज्ञाप्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा - ननु यूयम् अप्यनेन धर्मकर्मणा परिश्रान्ताः, तन्मुहूर्तम् उपविशत। [95]

प्रियंवदा - (जनान्तिकम्) हला सउन्तले, उइदं णो अदिधिपय्युवासणं, ता इध उवविसम्ह। (सर्वा उपविशन्ति) (हले शकुन्तले, उचितं नोऽतिथि-पर्युपासनम्। तद् इहोपविशामः।) [96]

शकुन्तला - (आत्मगतम्) किं णु खु इमं पेक्खिअ तवोवणविरोधिणो विआरस्स गमणीअम्हि संवुत्ता।
(किं नु खल्विमं प्रेक्ष्य तपोवनविरोधिनो विकारस्य गमनीयास्मि संवृत्ता।) [97]

राजा - (सर्वा विलोक्य) अहो समानवयोरूपरमणीयं सौहार्दं भवतीनाम्। [98]

प्रियंवदा - (जनान्तिकम्) को णु खु एसो महुरगम्भीराकिदी, महुरं पिअं आलवन्तो। पहवन्तं दक्खिण्णं विअ करेदि। (को नु खल्वेष मधुरगम्भीराकृतिर्मधुरं प्रियमालपन् प्रभवन्तं दाक्षिण्यमिव करोति।) [99]

अनसूया - (जनान्तिकम् एव) सहि, ममावि कोदूहलम् अत्थि य्येव। ता पुच्छिस्सं दाव णं। (प्रकाशम्) अय्यस्स णो महुरालावजणिदो विसम्भो मन्तावेदि। कदमं पुण अय्यो वण्णं अलंकरेदि। किं णिमित्तं वा सुउमारेण अय्येण तवोवणागमणपरिसमस्स अत्ता पत्थिकिदो। (सखि, ममापि कौतूहलम् अस्त्येव। तत् प्रक्ष्यामि तावदेनम्। आर्यस्य नो मधुरालापजनितो विस्रम्भो मन्त्रयति। कतमं पुनरार्यो वर्णम् अलंकरोति। किं निमित्तं वा सुकुमारेण आर्येण तपोवनागमनपरिश्रमस्यात्मा पात्रीकृतः[1]।)[100]

शकुन्तला - (आत्मगतम्) हिअअ, मा उत्तम्म जं तए चिन्तिदं तं अणसूआ मन्तेदि। (हृदय, मा उत्ताम्य, यत् त्वया चिन्तितं तद् अनसूया मन्त्रयति।) [101]

राजा - (स्वगतम्) कथम् इदानीम् आत्मानं निवेदये। कथं वात्मपरिहारं करोमि। भवत्वेवं तावदेनां वक्ष्ये[2]। (प्रकाशम्) भवति, वेदविदस्मि पौरवेण राज्ञा धर्माधिकारे नियुक्तः। सोऽहम् आश्रमिणाम् अविघ्नक्रियोपलम्भाय धर्मारण्यमिदमायातः। [102]

अनसूया - सणाधा धम्मआरिणो। (सनाथा धर्मचारिणः।)[103]
(शकुन्तला शृङ्गारलज्जां[3] निरूपयति) [104]

सख्यौ - (उभयोराकारं विदित्वा) (जनान्तिकम्) हला सउन्तले, जदि अज्ज तादो इध सण्णिहिदो भवे।
(हले शकुन्तले, यद्यद्य तात इह संनिहितो भवेत्।) [105]

शकुन्तला - (सभ्रूभेदम्) तदो किं भवे। (ततः किं भवेत्।) [106]

उभे - तदो इमं अदिधिं जीविदसव्वस्सेणावि कदत्थं करे। (तत इमम् अतिथिम् जीवितसर्वस्वेनापि कृतार्थं कुर्यात्।) [107]

शकुन्तला- (सरोषम्) इं अवेध, किं पि हिदए करेअ मन्तेध, ण खु सुणिस्सं। (परावृत्य तिष्ठति) (युवाम् अपेतम्। किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रयथः। न खलु श्रोष्यामि।) [108]

राजा - वयमपि तावद् भवत्यौ सखीगतं पृच्छामः। [109]

उभे - अय्य, अणुग्गहेवि अब्भत्थणा। (आर्य, अनुग्रहेऽप्यभ्यर्थना।) [110]

राजा - भगवान् काश्यपः शाश्वते ब्रह्मणि वर्तते, इयं च वां सखी तदात्मजेति कथमेतत्। [111]

अनसूया - सुणादु अय्यो। अत्थि कोसिओ त्ति गोत्तणामधेओ महाप्पहावो राएसी। (शृणोत्वार्यः, अस्ति कौशिकइति गोत्रनामधेयो

---

1. अनसूययात्र प्रश्नद्वयमेवोपस्थाप्यत इत्यवधेयम्। (अनुगामिषु पाठेषु त्रयः प्रश्नाः समुपस्थाप्यन्ते।)
2. स्वगतोक्तिरूपेण प्रस्तुतेयमुक्तिः कदाचिन्मौलिकी न स्यात्। नाट्यशास्त्रे(25-88) आत्मगतमित्येव।
3. रंगसूचनेयं कविनैव प्रदत्ता स्यादिति प्रतिभाति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

महाप्रभावो राजर्षिः।) [112]

राजा - प्रकाशस्तत्रभवान्। [113]

अनसूया - तं सहीअणे पहवं अवगच्छ। उज्झिअसरीरसंरक्खणादीहिं उण तादकस्सवो से पिदा। [114]
(तं सखीजने प्रभवम् अवगच्छ। उज्झितशरीरसंरक्षणादिभिः पुनस्तातकाश्यपोऽस्याः पिता।)

राजा - उज्झितशब्देन जनितं मे कुतूहलम्। तदामूलाच्छ्रोतुमिच्छामि। [115]

अनसूया - पुराकिल तस्स कोसिअस्स राएसिणो उग्गे तवसि वट्टमाणस्स किं वि जादसंकेहिं देवेहिं मेणआ णाम अच्छरा णिअमविग्घकारिणि पहिदा। (पुराकिल तस्य कौशिकस्य राजर्षेरुग्रे तपसि वर्तमानस्य किमपि जातशङ्कैर्देवैर्मेनका नामाप्सरा नियमविघ्नकारिणी प्रहिता।) [116]

राजा - अस्त्येतद् अन्यसमाधिभीरुत्वं देवानाम्, ततस्ततः। [117]

अनसूया - तदो वसन्तोदयसमए तए उम्मादइत्तअं रूवं पेक्खिअ .... (इत्यर्धे लज्जया विरमति।) [118]
(ततो वसन्तोदयसमये तस्या उन्मादयितृकं रूपं प्रेक्ष्य ...)

राजा - भवतु, पुरस्ताद् अवगम्यत एव। अप्सरस्सम्भवैषा। [118]

अनसूया - अध इं। (अथ किम्।) [119]

राजा - युज्यते।

मानुषीषु कथं वा स्याद् अस्य रूपस्य सम्भवः।
न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्॥ 1-22॥ [120]

(शकुन्तलाऽधोमुखी तिष्ठति) [121]

राजा - (स्वगतम्) लब्धावकाशो मे मनोरथः। किन्तु परिहासोदाहृतां वरप्रार्थनां श्रुत्वापि न श्रद्-दधते कातरं मे मनः। [122]

प्रियंवदा - (शकुन्तलां सस्मितं विलोक्य) (नायकाभिमुखी) पुणो वि वत्तुकामो अय्यो।
(पुनरपि वक्तुकाम आर्यः।) (शकुन्तला सखीम् अङ्गुल्या तर्जयति) [123]

राजा - सम्यगुपलक्षितं भवत्या। अस्ति नस्सच्चरितश्रवणलोभाद् अन्यद् प्रष्टव्यम्। [124]

प्रियंवदा - तेण हि विआरिदेण अलम्। णियन्तणाजुत्तो तवस्सिअअणो। (तेन हि, विचारितेनालम्। नियन्त्रणायुक्तस्तपस्विजनः।) [125]

राजा - उपपद्यते। भवति, सखीं ते विज्ञातुमिच्छामि।

वैखानसं किम् अनया व्रतम् आप्रदानाद् व्यापाररोधि मदनस्य निषेवितव्यम्।
अत्यन्तम् आत्मसदृशेक्षण-वल्लभाभिराहो निवत्स्यति समं हरिणाङ्गनाभिः॥ 1-23॥ [126]

प्रियंवदा - अय्य, धम्माचरणे वि एस पराधीणो जणो। गुरुणो उण से अणुरूववरपडिवादणे संकप्पो।
(आर्य, धर्माचरणेऽप्येष पराधीनो जनः। गुरोः पुनरस्या अनुरूपवरप्रदाने सङ्कल्पः।) [127]

राजा - न खलु दुर्लभैषा प्रार्थना। (आत्मगतम्)

भव हृदय साभिलाषं, सम्प्रति सन्देहनिर्णयो जातः।
आशङ्कसे यदग्निं तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नम्॥ 1-24॥ [128]

शकुन्तला - (सरोषमिव) अणसूए, गमिस्से अहं। (अनसूये, गमिष्याम्यहम्।) [129]

अनसूया - किं णिमित्तं। (किं निमित्तम्।) [130]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला -इमं असम्बद्धालाविणीं पियंवदां अय्याए गोदमीए णिवेदयिस्से। (इत्युत्तिष्ठति)
(इमाम् असम्बद्धालापिनीं प्रियंवदाम् आर्यायै गौतम्यै निवेदयिष्ये।) [131]

अनसूया - सहि, ण जुत्तं अस्समवासिणो जणस्स अकिदसक्कारं अदिधिविसेसं उज्झिअ सच्छन्ददो गमणं।
(सखि, न युक्तम् आश्रमवासिनो जनस्य अकृतसत्कारमतिथिविशेषमुज्झित्वा स्वच्छन्दतो गमनम्।) [132]
(शकुन्तला न किञ्चिद् उक्त्वा प्रस्थितैव।) [133]

राजा - (अपवार्य) कथं गच्छति। (ग्रहीतुमिच्छन् पुनरात्मानं निगृह्य) अहो चेष्टाप्रतिरूपिका कामिनो मनोवृत्तिः। अहं हि

अनुयास्यन् मुनितनयां सहसा विनयेन वारितप्रसरः।
स्थानाद् अनुच्चलन्नपि गत्वैव पुनः प्रतिनिवृत्तः॥ 1-25॥ [134]

प्रियंवदा - (शकुन्तलामुपसृत्य) हला चण्डि, ण दे जुत्तं गच्छिदुं। (हले चण्डि, न ते युक्तं गन्तुम्।) [135]

शकुन्तला- (सभ्रूभङ्गम्) किं ति। (किमिति) [136]

प्रियंवदा - रुक्खसेचके दुए मे धारयसि। (वृक्षसेचनके द्वे मे धारयसि।) तेहिं दाव अत्ताणअं मोआवेहि। तदो गमिस्ससि। (बलादेनां निवारयति) (ताभ्यां तावद् आत्मानं मोचय। ततो गमिष्यसि।) [137]

राजा - भद्रे, वृक्षसेचनकाद् एव परिश्रान्ताम् अत्रभवतीं लक्षये। तथा ह्यस्याः,

स्रस्तांसावतिमात्रलोहित-करौ बाहू घटोत्क्षेपणाद्
अद्यापि स्तनवेपथुं जनयति श्वासः प्रमाणाधिकः।
बद्धं कर्णशिरीषरोधि वदने घर्माम्भसां जालकं,
बन्धे स्रंसिनि चैकहस्तयमिताः पर्याकुला मूर्धजाः॥ 1-26॥ [138]

तदहमेनाम् अनृणां त्वयि करोमि।

(स्वम् अङ्गुलीयं प्रयच्छति) [139]

(उभे नाममुद्राक्षराण्यनुवाच्य [1]परस्परं मुखमवलोकयतः) [140]

राजा - अलम् अस्माकम् अन्यथा सम्भावितेन। राज्ञः परिग्रहोऽयम्। [141]

प्रियंवदा - तेण हि णारहदि इदं अण्णो अङ्गुलीकविओगकारणं। अय्यस्स तुह वअणेण एसा अरिणा येव मम। (तेन हि नार्हतीदमन्योऽङ्गुलीयक-वियोगकारणम्। आर्यस्य तव वचनेनैषाऽनृणैव मम।) [142]

प्रियंवदा - (परिवृत्यापवार्य च) हला सउन्तले, मोइदासि अणुअम्पिणा अय्येण, अह वा महाणुभावेण। किदण्णा दाणिं होहिसि। (हले शकुन्तले, मोचितास्यनुकम्पिनार्येणाथ वा महानुभावेन। कृतज्ञेदानीं भविष्यसि[2]।) [143]

शकुन्तला -(अपवार्य निःश्वस्य) ण इदं विसुमरिस्सदि जदि अत्तणो पहवे। (नेदं विस्मरिष्यते, यद्यात्मनः प्रभवामि।) [144]

प्रियंवदा - हला, किं दाणिं सम्पदं जदि ण गच्छसि। (हला, किमिदानीं साम्प्रतं यदि न गच्छसि।) [145]

शकुन्तला- दाणिं किं पि तए वत्तव्वं। जदा रोइस्सदि तदा गमिस्सं। (इदानीं किमपि त्वया वक्तव्यम्। यदा रोचिष्यते तदा गमिष्यामि।)[3] [146]

---

1. मैथिल-पाठ"उभे प्रतिगृह्ये"ति। बंगीय-पाठेऽपि तथा।
2. काश्मीर-पाठे 142 एवं 143 उक्तिद्वयं प्रियंवदैव वक्ति। (मैथिल-बंगीय-पाठयोस्तथा नास्ति।)
3. काश्मीर-पाठे वर्तमानाः 142 त आरभ्य 146 पर्यन्ता उक्तयोऽन्यैर्मैथिलादिपाठैः सह तुलनीयाः। वक्तृभेदेन काकुभेदेन च सर्वत्र रंगकर्मिताया वैविध्यं परिलक्ष्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा - (शकुन्तलां विलोकयन् स्वगतम्) किं नु खलु यथा वयम् अस्याम्, एवम् इयमपि अस्मान् प्रति स्यात्। अथवा लब्धगाधा मे प्रार्थना। कुतः -

वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः कर्णं ददात्यवहिता मयि भाषमाणे।
कामं न तिष्ठति मदाननसम्मुखीयं भूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्याः॥ 1-27॥ [147]

(नेपथ्ये)

[<भो भोस्तपस्विनः, अवहितास्तपोवने सत्त्वरक्षायै भवन्तु भवन्तः। पर्याप्लुतं स्त्रीकुमारम्, प्रत्यासन्नः किल मृगयाविहारी पार्थिवः।

तुरगखुरहतस्तथा हि रेणुर्विटपविषक्त-जलार्द्रवल्कलेषु।
पतति परिणतारुणप्रकाशः शलभसमूह इवाश्रमद्रुमेषु॥ 1-28॥ [148]

राजा - अहो धिक्। एष खलु तथा निभृतचारी भूत्वा>][1]

तीव्रापातप्रतिहततरुस्कन्धलग्नैकदन्तः
प्रौढासक्तव्रततिवलयासङ्गसञ्जातपाशः।
मूर्तो विघ्नस्तपस इव नो भिन्नसारंगयूथो
धर्मारण्यं विरुजति गजस्स्यन्दनालोकभीतः[2]॥ 1-29॥ [149]

[<राजा - (स्वगतम्) अहो धिक् प्रमादः। मदन्वेषिणः सैनिकाः तपोवनमुपरुन्धन्ति। तदपराद्धं तपस्विनाम् अस्माभिः। भवतु, गमिष्यामि तावत्। [150]>][3]

(सर्वाः कर्णं दत्त्वा ससंभ्रमम् उत्तिष्ठन्ति) [151]

अनसूया - अय्य इमिणा अक्कन्दिदेण पय्याउलम्ह। ता अणुजाणिहि णो उडअगमणाअ। (आर्य, अनेनाक्रन्दितेन पर्याकुलास्स्मः। तदनुजानीहि न उटजगमनाय।) [152]

राजा - (ससम्भ्रमम्) गच्छन्तु भवत्यः। आश्रमबाधा यथा न भविष्यति, तथा प्रयतिष्यामहे। [153]

सख्यौ - असम्भाविदसक्कारं भूओ वि दाव पच्चवेक्खणनिमित्तं लज्जामो अय्यं विण्णवेदुं। विदिदभूइट्ठो सि णो सम्पदं जं दाणिं उवआर मज्झत्थदाए अवरद्धम्ह तं मरिसेसि। (असम्भावितसत्कारं भूयोऽपि तावत्प्रत्यवेक्षणनिमित्तं लज्जाम आर्यं विज्ञापयितुम्। विदितभूयिष्ठोऽसि नस्साम्प्रतं यदिदानीम् उपकारमध्यस्थतयाऽपराद्धास्स्मः, तन्मर्षयसि।) [154]

राजा - मा मैवम्। दर्शनेन भवतीनां पुरस्कृतोऽस्मि। [155]

उभे - हला सउन्तले, एहि सिग्घतरं। आउला अय्या गोदमी भविस्सदि। (हले शकुन्तले, एहि शीघ्रतरम्, आकुलार्या गौतमी भविष्यति।) [156]

शकुन्तला - (सव्याजविलम्बितं कृत्वाऽत्मगतम्) हद्धी ऊरुत्थम्भेण विअलम्हि संवुत्ता।[4] (हा धिक्, ऊरुस्तम्भेन विकलास्मि संवृत्ता।) [157]

---

1. कोष्ठान्तर्गतः पाठः प्रक्षिप्तः स्यात्। यतो हि- वैखानसमुखाद् "आश्रममृगोऽयमिति" श्रुत्वा राजा स्वकीयं बाणं प्रतिसंहृतवान्नित्युक्तमेव। अतो नास्त्यावश्यकता सत्त्वरक्षायाः।
2. मैथिल-पाठे श्लोकोऽयं नेपथ्योक्तिरूपेणैव प्रस्तूयते।
3. स्वगतोक्तिरूपमिदमपि वाक्यं प्रक्षिप्तं प्रतिभाति। नाट्यशास्त्रे (25-88) नास्ति स्वगतमित्यस्य विधानम्। तत्तु परवर्तिनि काले दशरूपककारेण (1-64) प्रयुक्ता शब्दावली वर्तते, अतश्च संदेहास्पदमिदं वाक्यम्।
4. काश्मीर-शारदा-पाठे शकुन्तलाया विलम्बेन गमनाय यद् व्याजमत्र निर्दिष्टम्, तत्तु तस्या ऊरुस्तम्भेन विकलत्वमेकमेवोल्लिखितम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा - स्वैरं स्वैरं गच्छन्तु भवत्यः। वयम् आवेगम् आश्रमस्यापनेष्यामः। (शकुन्तला सव्याजविलम्बितं[1] कृत्वा परिक्रम्य सखीभ्यां सह निष्क्रान्ता।)[158]

राजा - (उत्थाय सखेदम्) मन्दौत्सुक्योऽस्मि नगरं प्रति, यावद् अनुयात्रिकजनं समेत्य नातिदूरे तपोवनस्य निवेशयामि। न खलु शक्नोमि शकुन्तलाव्यापाराद् आत्मानं निवर्तयितुम्। मम हि,

गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चाद् असंवृतं चेतः।
चिह्नांशुक[2]मिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य॥ 1-30॥ [159]

(सचिन्तः स्खलितानि पदानि दत्त्वा निष्क्रान्तः) [160]

॥ इति प्रथमोऽङ्कः[3]॥ [161]

---

1. सव्याजविलम्बेन शकुन्तलाया गमनं द्विवारं निर्दिश्यते, तदपि रंगकर्मिणां कर्तृत्वं सूचयति।
2. मैथिल-पाठे "चीनांशुक०" इति पठ्यते।
3. काश्मीर-शारदा-पाठे प्रत्येकानामङ्कानां नामानि न प्रदत्तानि, तदवधेयम्।, मैथिल-पाठे"आखेटको नाम प्रथमोऽङ्कः"इति।, बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ अथ द्वितीयोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशति परिश्रान्तो विदूषकः) [1]

विदूषकः- (श्रमं नाटयति, निःश्वस्य) भोः दिढ म्हि। एदस्स मिगआ सीलस्स रण्णो वअस्सभावेण णिविण्णो। अअं मिगो, अअं वराहो त्ति। मज्झंदिणे वि गिम्हविरलपादवच्छायासु वणराईसु आफ(ह?)ण्डीयदि। पत्तसङ्कर-कसाआणि पीअन्ते, कडुआणि उण्हाइं गिरिणदीजलाइं अणिअदवेलं सूलमंस-सउण-मंसभूइट्ठं अण्हीअदि। तुरगआण-कण्ठइद-सन्धि-बन्धणाणं अङ्गाणं रत्तिं पि णत्थि पकामं सयितव्वं। तदो मम महन्ति य्येव पच्चीसे दासीए पुत्तेहिं, सउणलुब्धएहिं कण्णघादिणा वणगहण-कोलाहलेण पडिबोधीआमि। [2]

(विचिन्त्य)

एत्तिएण वि मे पाणा ण णिक्कन्ता। (सासूयं विहस्य) तदो गण्डोवरि पिडिआ संवुत्ता। हिय्यो अम्हेसु ओहीणेसु तत्थभवदो मआणुसारेण अस्समपदं पइट्ठस्स किल तावसकण्णआ सउन्तला णाम म अधण्णदाए दसिदा। सम्पदं णअरगमणस्स सङ्कधं पि ण करेदि। अज्ज तं य्येव सञ्चिन्तअन्तस्स विभादं अच्छीसु। ता का गदी। जाव णं किदाचारपरिक्कमं कहिं पेक्खामि। [3]

(परिक्रम्यावलोक्य च)

एसो राआ बाणासणहत्थाहिं जवणीहिं परिवुदो वणपुप्फमालाधारी इदो य्येवागच्छदि। ता जाव णं उवसप्पामि। (किञ्चिद् उपसृत्य) भोदु। अंगसम्मड्डविहलो दाणिं भविअ इध य्येव चिट्ठिसं। जदो एवं पि दाव विसामं लभेमि॥ [4]

(दण्डकाष्ठम् अवलम्ब्य तिष्ठति)[1]॥

(भोः दृढोऽस्मि, एतस्य मृगयाशीलस्य राज्ञो वयस्यभावेन निर्विण्णः, अयं मृगः, अयं वराह इति। मध्यंदिनेऽपि ग्रीष्मविरलपादपच्छायासु वनराजिसु आहिण्ड्यते। पत्रसंकरकषायाणि पीयन्ते कटुकान्युष्णानि गिरिनदीजलानि, अनियतवेलं शूलमांसशकुणमांसभूयिष्ठं अद्यते। तुरगयानकण्ठकृतसन्धिबन्धनानाम् अङ्गानां रात्रिमपि नास्ति प्रकामं शयितव्यम्। ततो मम महत्येव प्रत्यूषे दास्याः पुत्रैः शकुनलुब्धकैः कर्णघातिना वनग्रहणकोलाहलेन प्रतिबोध्ये। एतावतापि मे प्राणा न निष्क्रान्ताः। ततो गण्डोपरि पिटिका संवृत्ता। ह्योऽस्मास्वहीनेषु तत्रभवतो मृगानुसारेणाश्रमपदं प्रविष्टस्य किल तापसकन्यका शकुन्तला नाम ममाधन्यतया दर्शिता। साम्प्रतं नगरगमनस्य संकथामपि न करोति। अद्य तामेव सञ्चितयतो विभातम् अक्ष्णोः। तत्का गतिः। यावदेनं कृताचारपरिक्रमं कुत्र प्रेक्ष्ये। ..... एष राजा बाणासनहस्ताभिर्यवनीभिः परिवृतो वनपुष्पमालाधारीत[2] इवागच्छति। तद् यावद् एनम् उपसर्पामि। भवतु, अङ्गसम्मर्दविह्वल इदानीं भूत्वेहैव स्थास्यामि। यत एवमपि तावद् विश्रामं लभे॥)

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टपरिवारो राजा।) [5]

राजा- (सचिन्तम्। निःश्वस्यात्मगतम्)

कामं प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भावदर्शनाश्वासि।
अकृतार्थे मनसिजे रतिम् उभयं प्रार्थना कुरुते॥ 2-1॥ [6]

(स्मृतिमभिनीय[3]) (विहस्य) एवमात्माभिप्रायसंभावितेष्टजनचित्तवृत्तिः प्रार्थयिता विडम्ब्यते। कुतः,

---

1. अत्र दाक्षिणात्य-पाठे "प्रवेशकः" इति निर्दिश्यते, नान्यत्र।
2. रंगसज्जा च वेशभूषा चात्र विचारणीया। सन्दर्भेऽस्मिन् बहूनि परिवर्तनानि दृश्यन्तेऽनुगामिनि काले।
3. काश्मीर-पाठ एवेयं रंगसूचना प्राप्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

स्निग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि नयने यत्प्रेरयन्त्या तया,
यातं यच्च नितम्बयोर्गुरुतया मन्दं विलासादिव।
मा गा इत्यवरुद्धया यदपि सा सासूयम् उक्ता सखी,
सर्वं तत् किल मत्परायणमहो कामः स्वतां पश्यति।। 2-2।। [7]

(परिक्रामति[1])

विदूषकः- (तथा स्थित एव) भो राअं, ण मे हत्थो पसरदि। वाआमेत्तकेण जआवीअसि। जअदु जअदु भवं। (भो राजन्, न मे हस्तः प्रसरति। वाङ्मात्रकेण जाप्यसे। जयतु जयतु भवान्।) [8]

राजा- (विलोक्य सस्मितम्) वयस्य, कुतोऽयं गात्रोपघातः। [9]

विदूषकः- कुदो किल। स्वअं मेवं अच्छी आकूलीकरेअ अंसुकारणं पुच्छसि।
(कुतः किल, स्वयमेवाक्षीण्याकुलीकृत्याऽश्रुकारणं पृच्छसि।[2]) [10]

राजा- वयस्य, न खल्वगच्छामि। [11]

विदूषकः- (सरोषमिव) भोः तए णाम राअकय्याइं उज्झिअ तादिसे अ कीलापसादे वणअरेकवित्तिणा होदव्वं। जं सच्चं पच्चहं सावदसऊणाणुगमणेहिं सङ्खोहिद-सन्धिबन्धणाणं अङ्गाणं अणीसोम्हिं संवुत्तो। (सप्रणयम्) ता पसीद। मं वज्जेहि एक्काहं पि दाव वी (वि)समीअदु। (भोः त्वया नाम राजकार्याण्युज्झित्वा तादृशे च क्रीडाप्रसादे वनचरैकवृत्तिना भवितव्यम्। यत्सत्यं प्रत्यहं श्वापदशकुनानुगमनैः सङ्क्षोभितसन्धिबन्धनानाम् अङ्गानाम् अनीशोऽस्मि संवृत्तः। तत्प्रसीद, मां वर्जय एकाहमपि तावद् विश्राम्यताम्।) [12]

राजा- (आत्मगतम्) अयमेवमाह। ममापि काश्यपसुताम् अनुसृत्य मृगयाविक्लवं चेतः।
[< कुतः -

न नमयितुम् अधिज्यम् उत्सहिष्ये धनुरिदम् आहितसायकं मृगेषु।
सहवसतिमुपेत्य यैः प्रियायाः कृत इव लोचनकान्तिसंविभागः।। 2 - 3।। [13]>][3]

विदूषकः- (राज्ञो मुखमवलोक्य) भो अत्थभवं हिअएण किं पि मन्तेदि। अरण्णे मए रुदिदं।
(भोः अत्रभवान् हृदयेन किमपि मन्त्रयति। अरण्ये मया रुदितम्।) [14]

राजा- (सस्मितमिव) किमन्यत्। अनतिक्रमणीयं सुहृदवाक्यमिति स्थितोऽस्मि। [15]

विदूषकः- चिरं जीव। (चिरं जीव) [16]

राजा- तिष्ठ। सावशेषं मे वचः। [17]

विदूषकः- आणवेदु भवं। (आज्ञापयतु भवान्।) [18]

राजा- विश्रान्तेन भवता ममान्यस्मिन्ननायासे कर्मणि सहायेन भवितव्यम्। [19]

विदूषकः- (साभिलाषम्) अवि मोदअखज्जिआए। (अपि मोदकखादिकायाम्।) [20]

राजा- यत्र वक्ष्यामि। [21]

विदूषकः- गहिदो खणो। (गृहीतः क्षणः।) [22]

राजा- कः कोऽत्र भोः। [23]

---

1. काश्मीर-पाठ एवेयं रंगसूचना प्राप्यते।
2. प्रसंगेऽस्मिन् विदूषकस्य मुखे नवीनस्य वाक्यस्यापि प्रक्षेपः मैथिल-पाठेऽस्तीति तत्र द्रष्टव्यम्।
3. प्रक्षिप्तोऽयं श्लोकः स्यात्, यतो हि- शकुन्तलाया अनुस्मरणमेव मृगयां प्रति निरुत्साहिनं कर्तुमलम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(प्रविश्य) **दौवारिकः**:- आणवेदु भट्टा। (आज्ञापयतु भर्ता।) [24]

राजा- रेवक, सेनापतिस्तावद् आहूयताम्। [25]

रेवकः:- जं भट्टा आणवेदि। (यद् भर्ता आज्ञापयति।) (इति निष्क्रान्तः।) [26]

(ततः प्रविशति सेनापतिर्दौवारिकश्च।)

सेनापतिः:- (राजानं विलोक्य) दृष्टदोषापि मृगया स्वामिनि खलु केवलं गुणायैव संवृत्ता।

[< तथाहि,

अनवरतधनु-र्ज्यास्फालनक्रूरपूर्वं
रविकिरणसहिष्णुस्स्वेदलेशैरभिन्नम्।
अपचितमपि गात्रं व्यायतत्वाद् अलक्ष्यं
गिरिचर इव नागः प्राणसारं बिभर्ति।। 2-4।। [27] >][1]

दौवारिकः:- अय्य, एसो खु अणुवअणदिण्णकण्णो इदो दिण्णदिट्ठी एव भट्टा तुमं पडिवालेदि। ता उवसप्पदु अय्यो। (आर्य, एष खल्वनुवचनदत्तकर्ण इतो दत्तदृष्टि[2] -रेव भर्ता त्वां प्रतिपालयति। तस्माद् उपसर्पत्वार्यः।) [28]

सेनापतिः:- (उपसृत्य सप्रणामम्) जयतु जयतु स्वामी। स्वामिन्, गृहीतं प्रचारसूचितश्वापदमरण्यम्। किम् अन्यद् अवस्थीयते। [29]

राजा- भद्र सेनापते, मन्दोत्साहः कृतोऽस्मि मृगयापवादिना माधव्येन। [30]

सेनापतिः:- (जनान्तिकम्[3]) माधव्य, स्थिरप्रतिबन्धो भव। अहमपि तावत् स्वामिनश्चित्तम् अनुवर्तिष्ये। (प्रकाशम्) देव, प्रलपत्वेष वैधेयः। ननु प्रभुरेव निदर्शनं मृगया-गुणानाम्। [31]

मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः
सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः।
उत्कर्षस्स च धन्विनां यदिषवः सिद्ध्यन्ति लक्ष्ये चले
मिथ्या हि व्यसनं वदन्ति मृगयाम् ईदृग्विनोदः कुतः।। 2-5।। [32]

विदूषकः:- (कृतकरोषम्) अत्थभवं दाव पकिदिम् आवण्णो। तुमं पुण अडवीदो अडविं आहिण्ड जाव सीमासिआलो विअ जुण्णरिक्खस्स मुहे पडिस्ससि। (अत्रभवांस्तावत् प्रकृतिम् आपन्नः। त्वं पुनरटवीतोऽटविं भ्रम, यावत् सीमाशृगालस्येव जीर्णर्क्षस्य मुखे पतिष्यसि।) [33]

राजा- भद्र सेनापते, आश्रमसंनिकर्षे वर्तामहे। अतस्ते वचो नाभिनन्दामि। अद्य तावत् -

गाहन्तां महिषा निपानसलिलं शृङ्गैर्मुहुस्ताडितं
छायाबद्धकदम्बकं मृगकुलं रोमन्थमभ्यस्यतु।
विश्वस्तैः क्रियतां वराहपतिभिर्मुस्ताक्षतिः पल्वले
विश्रान्तिं लभतामिदं च शिथिलज्याबन्धम् अस्मद्धनुः।। 2-6।। [34]

सेनापतिः:- यथा प्रभविष्णवे रोचते। [35]

राजा- तेन निवर्त्यन्तां वनग्राहिणः। यथा च सैनिकास्तपोवनं दूरात् परिहरन्ति तथा निषेद्धव्याः।

---

1. अयमपि श्लोकः प्रक्षिप्तः स्यात्। मेदश्छेदकृशोदरमिति (2-5) इति श्लोकार्थस्य प्रपञ्च एवात्र वर्तते।
2. भर्तुः कृते प्रयुक्तमत्र विशेषणद्वयम् राज्ञ आङ्गिकाभिनयविशेषमपेक्षते।
3. अनया जनान्तिकमित्युक्त्या सह विदूषकस्य कृतकरोषमिति रंगसूचना संगच्छते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

पश्य -

शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकम् अस्ति तेजः।
स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्तास्तद् अन्यतेजोऽभिभवाद् वमन्ति॥ 2-7॥ [36]

सेनापतिः- यदाज्ञापयति देवः। [37]

विदूषकः- गच्छ, सम्पदं दासीए पुत्त। (गच्छ, साम्प्रतं दास्याः पुत्र।) (इति निष्क्रान्तस्सेनापतिः) [38]

राजा- (परिजनमवलोक्य) अप[न]यन्तु भवन्तो (त्यो) मृगयावेषम्। रेवक, त्वमपि स्वनियोगमशून्यं कुरु। [39]

परिजनः- जं भट्टा आणवेदि। (यद् भर्ताज्ञापयति) (इति निष्क्रान्तः परिजनः) [40]

विदूषकः- (सहासम्) किदो भवदा णिद्धूमको[1] दंसपडीआरो। ता सम्पदं एदस्सिं आवासपादवच्छाआपरिवुदे विदाणअ-सणाहे आसणे जहा सुहं उवविसदु भवं, जाव अहं पि सुहासनत्थो होमि। (कृतो भवता निर्धूमको दंशप्रतिकारः। तत् साम्प्रतम् एतस्मिन्नावासपादपच्छायापरिवृत्ते वितानक-सनाथ[2] आसने यथासुखम् उपविशतु भवान्, यावदहमपि सुखासनस्थो भवामि।) [41]

(उभावुपविष्टौ)

राजा- सखे, माधव्य, अनवाप्तचक्षुः फलोऽसि, येन त्वया दर्शनीयं न दृष्टम्। [42]

विदूषकः- णं भवं अग्गदो मे चिट्ठदि। (ननु भवान् अग्रतो मे तिष्ठति।) [43]

राजा- सर्वः कान्तमात्मानं पश्यति। किन्तु तामेवाहम् आश्रमललामभूतां शकुन्तलाम् अधिकृत्य ब्रवीमि। [44]

विदूषकः- (अपवार्य) भोदु। ण से पसरं वद्धयिस्सं। (प्रकाशम्) जदा दाव सा तावसकञ्चका अप्र (प्रा)र्थनीया, ता किं तए दिट्ठए। (भवतु, नास्य प्रसरं वर्धयिष्यामि। यदा तावत् सा तापसकन्यकाऽप्रार्थनीया, तत् किं तया दृष्टया।) [45]

राजा- मूर्ख, परिहार्येऽपि वस्तुनि दुष्यन्तस्य मनः प्रवर्तते?।[3] [46]

विदूषकः- ता कधं एदम्। (तत् कथमेतत्।) [47]

राजा-

ललितान्यसम्भवं किल मुनेरपत्यं तदुज्झिताधिगतम्।
अर्कस्योपरि शिथिलं च्युतमिव नवमालती कुसुमम्॥ 2-8॥ [48]

विदूषकः- जदि वि ण कस्सवस्स महेसिणो ओरसा दूधा, तधा वि किं तए दिट्ठए। [49]
(यद्यपि न काश्यपस्य महर्षेरौरसा दुहिता, तथापि किं तया दृष्टया।[4])

राजा- अविशेषज्ञ,

चिरं गतनिमेषाभिर्नेत्रपङ्क्तिभिरुन्मुखः
नवाम् इन्दुकलां लोकः केन भावेन पश्यति।
न च सा मादृशानाम् अप्रार्थनीया
समासतः समिन्मध्यकालागुरुखण्डवत्॥ 2-9॥[5] [50]

---

1. स्थानिकरंगकर्मिणामत्र संस्पर्शो दृश्यते। यतो हि, अनुगामिषु पाठेषु निर्मक्षिकमित्येव पाठः पठ्यते।
2. आहार्यसामग्रीरूपेण वितानकम् उपयुज्यते काश्मीरमंचे।
3. अत्र किमिति शब्दस्याभावेऽपि काकुतः प्रश्नार्थकस्यावबोधः करणीयः।
4. विदूषकस्याभिप्रायेण सा शकुन्तला तु काश्यपस्यावैधानिकी कन्या, अतः पक्षान्तरेणापि न दर्शनार्हा।
5. काश्मीर-पाठे शकुन्तला दर्शनयोग्यास्ति न वेति विषयमभिलक्ष्याविकला तर्क-वितर्कशृङ्खला प्राप्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

विदूषकः- (विहस्य) भो जधा कस्सा वि पिण्डखज्जूरीहिं उव्वेजिदस्स तिन्तिआणं अहिलासो होदि तहा इत्थीरअणपरिभाविणो[1] भवदो इअं पत्थणा। (भोः यथा कस्यापि पिण्डखर्जूरिभिरुद्वेजितस्य तिन्तिकानाम् अभिलाषो भवति, तथा स्त्रीरत्नपरिभाविनो भवत इयं प्रार्थना।) [51]

राजा- सखे, न तावद् एनां पश्यसि, येन त्वमेवं वादी। [52]

विदूषकः- तं खु रमणीअं णाम जं भवदो वि विम्हअं जनदि।
(तत्खलु रमणीयं नाम यद् भवतोऽपि विस्मयं जनयति।) [53]

राजा- वयस्य, किं बहुना,

चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगाद्
रूपोच्चयेन विहिता मनसा कृता नु।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे
धातुर्विभुत्वम् अनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः॥ 2-10॥ [54]

विदूषकः- (सविस्मयम्) पच्चादेसो दाणिं रूववदीणम्। (प्रत्यादेश इदानीं रूपवतीनाम्।) [55]

राजा- इदं च मे मनसि वर्तते।

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै-
रनामुक्तं[2] रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं,
न जाने भोक्तारं कमिव समुपस्थास्यति भुवि।।[3] 2-11।। [56]

विदूषकः- तेण हि लघु परिणदु भवं, मा कस्स वि तपस्सिणो इङ्गुदीतिलचिक्कणसीसस्स आरण्णकस्स हत्थे पडिस्सदि। (तेन हि, लघु परिणयतु भवान्, मा कस्यापि तपस्विन इङ्गुदीतैलचिक्कणशीर्षस्य आरण्यकस्य हस्ते पतिष्यति।) [57]

राजा- परवती खलु तत्रभवती, न च सन्निहितगुरुजना। [58]

विदूषकः- अध भवन्तं अन्तरेण कीदिसो से चित्ताणुराओ। (अथ भवन्तम् अन्तरेण कीदृशोऽस्याश्चित्तानुरागः।) [59]

राजा- सखे, स्वभावाद् अप्रगल्भस्तपस्विकन्यकाजनः। तथापि तु -

अभिमुखं मयि संहृतमीक्षितं हसितमन्यनिमित्तकथोदयम्।
विनयबाधितवृत्तिरतस्तया न विवृतो मदनो, न च संहृतः॥ 2-12॥ [60]

विदूषकः- (विहस्य)किं खु सा भवदो दिट्ठमेत्तस्स य्येव अङ्कं आरुहदु। (किं खलु सा भवतो दृष्टमात्रस्यैवाङ्कमारोहतु।) [61]

राजा- सखे, सखीभ्यां मिथः प्रस्थाने शालीनयापि तत्रभवत्या मयि भूयिष्ठम् आविष्कृतो भावः।
तदा खलु -

दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे
तन्वी स्थिता कतिचिद् एव पदानि गत्वा।

---

1. अन्यासु वाचनासु स्त्रीरत्नपरिभोगिन इति पाठभेदः क्रियते।
2. लघुपाठानुसारिणोर्दाक्षिणात्य-देवनागर्योः पाठयो-"रनाविद्ध" मिति पाठपरिवर्तनं प्राप्यते।
3. अत्र विधिरिति पाठभेदोऽन्येषु पाठेषु दृश्यते। किन्तु, न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलादित्यनेन सह भुवीत्येव संगच्छते। (भुवीति पदेन सह शकुन्तलेति कर्तृपदमध्याहार्यमत्र।)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

आसीद् विवृत्तवदना च विमोचयन्ती
शाखासु वल्कलम् असक्तमपि द्रुमाणाम्॥ 2-13॥ [62]

विदूषकः- भो गिहीदपाधेओ होसि। कधं पुणः(णो) उण तवोवणगमणं त्ति पेक्खामि।
(भोः गृहीतपाथेयो भवसि। कथं पुनः पुनस्तपोवनगमनमिति प्रेक्षे।) [63]

राजा- सखे, चिन्तय तावत् केनोपायेन पुनराश्रमपदं गच्छामः। [64]

विदूषकः- एसो चिन्तेमि। मा खु से अलिअपरिदेविदेहिं समाधिं[1] भञ्जिहिसि। (एष चिन्तयामि, मा खल्वस्यालीकपरिदेवितैः समाधिं भाङ्क्षीः।) [65]
(चिन्तयित्वा) भो को अण्णो उपाओ, णं भवं राआ। (भोः कोऽन्य उपायो, ननु भवान् राजा।) [66]

राजा- ततः किम्। [67]

विदूषकः- णिवारच्छब्भाअं दाव सामि उवहरदु त्ति। (निवारषड्भागं तावत् स्वामिने उपहरत्विति) [68]

राजा- मूर्ख, अन्यं भागम् एते रक्षिणे निर्वपन्ति, रत्नराशीन् अपि विहायाभिनन्द्यम्। पश्य,

यद् उत्तिष्ठति वर्णेभ्यो नृपाणां क्षयि तत् फलम्।
तपष्षड्भागम् अक्षयं ददात्यारण्यको जनः॥ 2-14॥ [69]

(नेपथ्ये) हन्त, सिद्धार्थौ स्वः। [70]

राजा- (कर्णं दत्वा) अये धीरप्रशान्तस्वरैस्तपस्विभिर्भवितव्यम्। [71]

(प्रविश्य) दौवारिकः- जअदु जअदु भट्टा। एदे दुवे इसिकुमारआ पडिहारभूमिं उवत्थिदा।
(जयतु जयतु भर्ता। एतौ द्वावृषिकुमारकौ प्रतिहारभूमिम् उपस्थितौ।) [72]

राजा- अविलम्बितं प्रवेशय। [73]

दौवारिकः- अअं पवेसामि। (अयं प्रवेशयामि।) (इति निष्क्रान्तः) [74]
(ततः प्रविशतस्तापसौ दौवारिकश्च।) [75]

दौवारिकः- इदो इदो भवन्तो। (इत इतो भवन्तः।) [76]

तापसौ- (राजानं दृष्ट्वा) अहो दीप्तिमतोऽपि विश्वसनीयता वपुषः। अथवा, उपपन्नमेतद् अस्मिन्नृषिकल्पे राजनि। तथाहि,

अध्याक्रान्ता वसतिरमुनाऽप्याश्रमे सर्वपूर्वे[2]
रक्षायोगाद् अयमपि तपः प्रत्यहं सञ्चिनोति।
अस्यापि द्यां स्पृशति वशिनश्चारणद्वन्द्वगीतः
पुण्यः शब्दो मुनिरिति मुहुः केवलं राजपूर्वः॥ 2-15॥ [77]

द्वितीयः- गौतम, अयं स बलभित्सखो दुष्यन्तः। [78]

प्रथमः- अथ किम्। [79]

द्वितीयः- तेन हि,

---

1. काश्मीर-पाठे विदूषकः समाधिमभिनीय शकुन्तलादर्शनस्योपायं चिन्तयति। एतादृशं दृश्यं नोपलभ्यतेऽन्यत्र। किन्तु विक्रमोर्वशीये प्राप्यत एतादृशं दृश्यं तदत्र स्मरणीयम्। कविप्रणीतपाठस्यायमंशः कदाचित् काश्मीरस्य रंगावृत्तौ विद्यमानं स्यादिति कथं न सम्भाव्यते?। तच्चिन्त्यम्।
2. मैथिल-पाठे "सर्वभोग्ये" इति पाठभेदः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

नैतच्चित्रं यदयमुदधिश्यामसीमां धरित्रीम्,
एकः कृत्स्नां नगरपरिघप्रांशुबाहुर्भुनक्ति।
आशंसन्ते सुरसमितयस्सक्तवैरा हि दैत्यैर्[1]
अस्याधिज्ये धनुषि विजयं पौरहूते च वज्रे॥ 2 - 16॥ [80]

उभौ- (उपसृत्य) स्वस्ति भवते। (फलान्युनयतः[2]) [81]

राजा- (सादरम् उत्थाय) अभिवादये भवन्तौ। [82]
(सप्रणामं गृहीतासन उपविश्य) किमाज्ञापयतो भवन्तौ। [83]

ऋषिः- विदितो भवान् आश्रमवासिनाम् इहस्थः। तेन भवन्तम् अभ्यर्थयन्ते। [84]

राजा- किमाज्ञापयन्ति। [85]

उभौ- तत्रभवतः काश्यपमुनेरसांनिध्याद् रक्षांसि परापतिष्यन्ति, विघ्नमुत्पादयितुम् इच्छन्ति। तत्कतिपयरात्रं सारथिद्वितीयेन भवता सनाथीक्रियताम् आश्रम इति। [86]

राजा - अनुगृहीतोऽस्मि। [87]

विदूषकः- (अपवार्य) इअं दाणिं अणुऊल-गलत्था[3]। (इयमिदानीम् अनुकूलप्रार्थना।) [88]

राजा- रेवक, मद्वचनाद् उच्यतां सारथिः। सबाणकार्मुकं रथम् उपनयेति। [89]

दौवारिकः- जं भट्टा आणवेदि। (यद् भर्ताऽऽज्ञापयति।) (इति निष्क्रान्तः) [90]

ऋषिः- (सहर्षम्)
अनुकारिणि पूर्वेषां युक्तरूपमिदं त्वयि।
आपन्नाभयसत्रेण दीक्षिताः खलु पौरवाः॥ 2-17॥ [91]

राजा- गच्छतां भवन्तौ। अहम् अप्यनुपदम् आगत एव। [92]

ऋषिः- विजयस्व। (इत्युत्थाय निष्क्रान्तौ) [93]

राजा- माधव्य, अप्यस्ति शकुन्तलादर्शनकौतुकम्। [94]

विदूषकः- पढमं अपरिबाधं आसि। (सभयम्) रक्खसवुत्तान्तेण उण सम्पदं विसाददंसिणा विसेसिदम्। (प्रथममपरिबाधमासीत्। राक्षसवृत्तान्तेन पुनस्साम्प्रतं विषाददर्शिना विशेषितम्।) [95]

राजा- मा भैषीः। ननु मत्समीपे भविष्यसि। [96]

विदूषकः- एस चक्काकी[4] भूदो म्हि। (एषः चक्राकी भूतोऽस्मि।) [97]

(प्रविश्य) दौवारिकः- भट्टा, सज्जो रहो भट्टिणो विजअपत्थाणं उदीक्खदि। एसो उण णअरादो देवीणं सआसादो कर[भ]ओ उपत्थिदो। (भर्तः, सज्जो रथो, भर्तुर्विजयप्रस्थानम् उदीक्षते। एष पुनर्नगरतो देवीनां सकाशतः करभकः उपस्थितः।) [98]

1. मैथिल-बंगीय-पाठयो-"राशंसन्ते समितिषु सुराः सक्तवैरा हि दैत्यै०" इति पाठभेदः। किन्तु तदनुगामिनि काल "आशंसन्ते सुरयुवतयो त्यक्तभोगा / बद्धवैरा हि दैत्यै०" इति विपरिवर्त्यते रंगकर्मिभिः॥
2. रंगभूमावाहार्यत्वेनाभिनीयते। अनुगामिनि काल इयं रंगसूचना निष्कासिता दृश्यते।
3. काश्मीर-पाठे सुरक्षितोऽयं गलत्था शब्दः, स च प्रार्थनार्थपरो देश्यः प्रतिभाति।
4. मैथिल-पाठे "रक्खीभूद म्हि" इति पठ्यते।, बंगीयपाठे "चक्करक्खीभूद्" इति पठ्यते।, दाक्षिणात्य-देवनागर्योः पाठयोः "रच्छेहिंतो / रक्खसादो रक्छिदो म्हि" इति पठ्यते। वर्ततेऽत्राङ्गिकाभिनयानां भेदः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- सादरम्। किमज्जुभिः प्रेषितः। [99]

दौवारिकः- अध इं। (अथ किम्)। [100]

राजा- प्रवेश्यताम्। [101]

दौवारिकः- जं भट्टा आणवेदि। (यद् भर्ताज्ञापयति) (इति निष्क्रान्तः) [102]

॥ ततः प्रविशति दौवारिकेण सह करभकः॥ [103]

करभकः- (उपसृत्य) जयदु जयदु भट्टा। देविओ आणवेन्ति, जहा आगामिणि चउत्थे दिअसे पुत्तपिण्डओदाणओ णाम उववासो भविस्सदि। तत्थ दीहाउणा अवसं(स्सं) सण्णिहिदेण होदव्वम्।

(जयतु जयतु भर्ता। देव्य आज्ञापयन्ति यथागामिनि चतुर्थे दिवसे पुत्रपिण्डकदानको नामोपवासो भविष्यति। तत्र दीर्घायुषाऽवश्यं सन्निहितेन भवितव्यम्।) [104]

राजा- साकुलम्। माधव्य, इतस्तपस्विकार्यम् इतो गुरुजनाज्ञा। उभयमपि अनुल्लङ्घनीयं मया। कथमत्र प्रतिविधेयम्। [105]

विदूषकः- तिसङ्कु विअ अन्तरे[1] चिट्ठ। (त्रिशङ्कुरिवान्तरे तिष्ठ।) [106]

राजा- सत्यम् आकुलोऽस्मि।

कृत्ययोर्भिन्नदेशत्वाद् द्वैधीभवति मे मनः।
पुरः प्रतिहतं शैले स्रोतस्स्रोतोवहो यथा॥ 2-18॥ [107]

(सखेदम् चिन्तयित्वा) सखे माधव्य, त्वम् अज्जुभिः पुत्र इति परिगृहीतस्तद् भवान् इतः प्रतिनिवृत्य, तत्रभवतीनां पुत्रकार्यम् अनुष्ठातुमर्हति। तपस्विकार्यव्यग्रितास्स्मः इत्यावेदय। [108]

विदूषकः- (सगर्वम्) साधु, रक्खसभीरुअं मं गणयिसदि। (साधु, राक्षसभीरुकं मां गणयिष्यति।) [109]

राजा- (सस्मितम्) महाब्राह्मण, कथमेतद् भवति सम्भाव्यते। [110]

विदूषकः- तेण हि जधा राआणुराजेण गन्तव्वं तधा गमिस्सं। (तेन हि यथा राजानुराजेन गन्तव्यम् तथा गमिष्यामि।) [111]

राजा- ननु तपोवनोपरोधः परिहरणीय इति सर्वम् अनुयात्रिकजनम् त्वया सह प्रस्थापयामि। [112]

विदूषकः- (सगर्वम्) तेण हि, जुअराआ खु अम्हि संवुत्तो। (तेन हि, युवराजः खल्वस्मि संवृत्तः।) [113]

राजा- (आत्मगतम्) चपलोऽयं बटुः। कदाचिद् अस्मत्प्रार्थनाम् अन्तःपुरेभ्यः कथयेत्। भवतु, एवं तावद् वक्ष्यामि। (प्रकाशम्) (विदूषकं हस्ते गृहीत्वा) वयस्य, ऋषिगौरवाद् आश्रमं गच्छामि। न खलु सत्यमेव तापसकन्यकायाम् ममाभिलाषः। [114] पश्य,

क्व वयं क्व परोक्षमन्मथो मृगशावैस्सममम् एधितो जनः।
परिहासविकल्पितं सखे परमार्थेन न गृह्यते वचः॥ 2 - 19॥ [115]

विदूषकः- एवम् णेदम्। स(सो)त्थि भवदे।, (एवमेतत्। स्वस्ति भवते।) [116]

(इति निष्क्रान्तास्सर्वे॥) [117]

॥ द्वितीयोऽङ्कः[2]॥ [118]

---

1. अन्तरे इत्यस्य शब्दस्यार्थः किमन्तरिक्षे इति स्यात्।, अनुगामिनि काल "अन्तराले" इति पाठभेदः।
2. मैथिल-पाठे "तपोवनानुगमनो नाम द्वितीयोऽङ्कः समाप्त" इति।, बंगीय-पाठे "आख्यानगुप्तिर्नाम०" इति पठ्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ अथ तृतीयोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशति यजमानशिष्यः।)

शिष्यः - (कुशान् आदाय) अहो महाप्रभावो दुष्यन्तः। प्रविष्टमात्र एव सारथिद्वितीये तत्रभवतीदम् आश्रमपदं निवृत्तरक्षोविघ्नं संवृत्तम्, निरुपप्लवानि च नः कर्माणि सिद्धानि। [1]

का कथा बाणसन्धाने ज्याशब्देनैव दूरतः।
हुङ्कारेणेव धनुषस्स हि विघ्नान् अपोहति॥ 3 -1॥ [2]

यावदिमान् वेदिसंस्तरणार्थं दर्भान् ऋत्विग्भ्य उपाहरामि। (परिक्रम्याकाशे) प्रियंवदे, कस्येदम् उशीरानुलेपनं मृणालवलयवन्ति च कमलिनीपत्राणि नीयन्ते। (श्रुतिमभिनीय) किं ब्रवीषि। आतपलङ्घनाद् बलवद् अस्वस्था शकुन्तला। तस्या दाहे निर्वापणायेति[1]। अहो यत्नाद् उपक्रम्यतां सखी, यतस्तत्रभवतः कुलपतेस्तद् उच्छ्वसितम्। अहमपि वैतानिकशान्त्युदकम् अस्यै गौतमीहस्ते प्रहेष्यामि। (इति निष्क्रान्तः) [3]

॥ प्रवेशकः[2]॥ [4]

(ततः प्रविशति कामयानावस्थो[3] राजा)

राजा - (सवितर्कम्)

जाने तपसो वीर्यं सा बाला परवतीति मे विदितम्।
अलमस्मि ततो हृदयं तथापि नेदं निवर्तयितुम्॥[4] 3 - 2॥ [5]

[< (सदैन्यम्) भगवन् काम, एवमप्युपपद्यते न ते मय्यनुक्रोशः। कुतश्च ते कुसुमायुधस्य सततस्तीक्ष्णत्वम्। (विचिन्त्य) आं ज्ञातम्,

अद्यापि नूनं हरकोपवह्नि-स्त्वयि ज्वलत्यौर्व इवाम्बुराशौ।
त्वमन्यथा मन्मथ मद्विधानां भस्मावशेषः कथमेवमुष्णः॥ 3-3॥ >][5] [6]

(सासूयम्) कुसुमायुध, त्वया चन्द्रमसा च विश्वसनीयाभ्यामभिसन्धीयते कामिजनसार्थः। कथमिति,

तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दोर्द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु।
विसृजति हिमगर्भैरग्निम् इन्दुर्मयूखैस्त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारीकरोषि[6]॥ 3-4॥ [7]

(सखेदम्) क्व नु खलु संस्थिते कर्मणि सदस्यैरनुज्ञातविश्रान्तिः श्रान्तम् आत्मानं विनोदयामि।

---

1. मैथिल-पाठे "शरीरनिर्वापणायेती"ति।, निर्वापणस्यार्थः शैत्यमिति बोधनाय काश्मीर-पाठे दाहेति शब्दः।
2. नाट्यशास्त्रे नाटकस्य कृतेऽर्थोपक्षेपकत्वेन प्रवेशक इत्यस्यैव केवलं विधानं प्राप्यते। (द्रष्टव्यम्- अ. 18-11, 26, 28, एवं 44, तत्रैव चाभिनवभारती) अनेन बृहत्पाठस्यैव प्राचीनतरता सिध्यति। दाक्षि.-देव.-पाठयोस्तु विष्कम्भक इति प्राप्यते, तादृशश्च शब्दप्रयोग उत्तरवर्तिनः कालस्य दशरूपकाद्यनुसारी।
3. कामयानशब्दः सिद्धोऽनादिश्चेत्। (का. सू. वृ. 5-2-82) इति वामनप्रामाण्याच्छब्दोऽयं साधुश्च श्रद्धेयश्च। रघुवंशे (19-50) च।
4. मैथिल-पाठे "न च निम्नादिव सलिलं निवर्तते मे ततो हृदयमि"ति। तच्च काव्यत्वयुक्तं प्रतिभाति।
5. . कोष्ठान्तर्गतः पाठ्यांशः प्रक्षिप्तः प्रतिभाति।, काश्मीर-पाठे परम्परया प्राप्तः स्यात्।
6. इतः परं मैथिल-पाठे "ऽथवे" ति निपातपुरस्सरम्, "अनिशमपि मकरकेतुर्मनसो रुजमावहन्नभिमतो मे। यदि मदिरायतनयनां तामधिकृत्य प्रहरतीति।।" इति श्लोकेन पक्षान्तरमप्युपस्थाप्यते। स चात्र काश्मीर-पाठे केनापि रंगकर्मिणा संक्षेपीकरणस्याशयेन निष्कासितः स्यादिति प्रतीयते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(निःश्वस्य) किं नु खलु प्रियादर्शनाद् ऋते शरणम् अन्यत्। यावदेनाम् अन्विष्ये। (सूर्यम् अवलोक्य) इमाम् उग्रतमां वेलां प्रायेण लतावलयवत्सु मालिनीतीरेषु तत्रभवती ससखीजना गमयति। तत्रैव तावद् गमिष्यामि। [8]

(परिक्रम्य साह्लादं वायुस्पर्शं निरूपयन्) अहो, प्रवातसुभगोऽयमुद्देशः।

शक्योऽरविन्दसुरभिः कणवाही मालिनीतरङ्गाणाम्।
मदनग्लानैरङ्गैः पीडितमालिङ्गितुं पवनः॥ 3-5॥ [9]

(परिक्रम्यावलोक्य च) अस्मिन् वेतसपरिक्षिप्ते लतामण्डपके शकुन्तलया भवितव्यम्। तथा हि,

(अधोऽवलोक्य[1])

अल्पनिहिता पुरस्तादवगाढा जघनगौरवात्पश्चात्।
द्वारेऽस्य पाण्डुसिकते पदपङ्क्तिर्दृश्यतेऽभिनवा॥ 3-6॥ [10]

यावद्विटपान्तरेणावलोकयामि। (तथा कृत्वा सहर्षम्) अये, लब्धं खलु नेत्रनिर्वापणम्[2]। एषा मनोरथभूमि-प्रियतमा मे सकुसुमास्तरणं शिलापट्टमधिशयाना सखीभ्याम् अन्वास्यते। भवतु।

लताव्यवहितः श्रोष्यामि यावदासां विप्र(स्र)ब्धकथितानि। (तथा कुर्वन् स्थितः) [11]

(ततः प्रविशति यथा निर्दिष्टा शकुन्तला सख्यौ च) [12]

सख्यौ - (उपवीज्य सस्नेहम्) सहि सउन्तले, अवि सुहाअदि दे णलिणीपत्तवादो।
(सखि शकुन्तले, अपि सुखायते ते नलिनीपत्रवातः।) [13]

शकुन्तला -(वेदनां नाटयित्वा[3]) किं वा वीजअन्ति, मं सहीओ[4]। (किं वा वीजयतः, मां सख्यौ।) [14]

(उभे सविषादं मुखम् अन्योन्यं पश्यतः।) [15]

(शकुन्तला सखेदं निश्श्वसिति।) [16]

राजा - बलवदस्वस्था खल्वत्रभवती। (सवितर्कम्) किमत्रायमातपदोषः स्याद्, उत यथा मे मनसि वर्तते। (साभिलाषं निर्वर्ण्य) अथवा कृतं सन्देहेन। [17]

स्तनन्यस्तोशीरं प्रशिथिलमृणालैकवलयं
प्रियायाः साबाधं तदपि कमनीयं वपुरिदम्।
समस्तापः कामं मनसिजनिदाघप्रसरयो-
र्न तु ग्रीष्मस्यैवं सुभगमपराद्धं युवतिषु॥ 3-7॥ [18]

अनसूया - हला सउन्तले, अनन्तरण्णा अम्हे मअणगदस्स वुत्तन्तस्स। तहावि जादिसी इदिहास गदेसु मअणवुत्तन्तेसु कामअमाणस्स अवत्था सुणीअदि तादिसं च लक्खम्ह। ता कहेहि किं णिमित्तं दे अअं आआसो, विआरं खु परमत्थदो अआणिअ अणारम्भो पदि(डी)आरस्स। (हला शकुन्तले, अनन्तरज्ञे आवाम्मदनगतस्य वृत्तान्तस्य। तथापि यादृशीतिहासगतेषु मदनवृत्तान्तेषु कामयमानस्यावस्था श्रूयते तादृशञ्च लक्षावहे। तत्कथय, किं निमित्तं तेऽयम् आयासो, विकारं खलु परमार्थतोऽज्ञात्वाऽनारम्भः प्रतिकारस्य।) [19]

---

1. मैथिल-पाठे रंगसूचनेयं निष्कासिता वर्तते।
2. काश्मीर-पाठे समुपलब्धोऽयमेव शब्दो मूलगामी स्यादिति सिध्यति। यतो हि, प्रवेशके "तस्याः दाहे निर्वापणाये" ति शिष्योक्त्या सह शब्दोऽयं संगच्छते।
3. मैथिल-पाठे "शून्याभिनयमि"ति रंगसूचना प्रदीयते।
4. रंगसूचनायां दृश्यमानेन वेदनाशब्देन सह वीजनक्रियायाः सम्बन्धः स्यात्। काकुवैशिष्ट्यमत्र अपेक्षते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा - अनसूययाप्यनुगतो मदीयस्तर्कः। [20]

शकुन्तला -(आत्मगतम्) बलवं च मे अहिणिवेसो। ण अ सक्कणोमि सहसा णिवट्टिदुम्।
(बलवान् च मेऽभिनिवेशः। न च शक्नोमि सहसा निवर्तितुम्।) [21]

प्रियंवदा - सहि, सुट्ठु एसा भणादि। किं णेदं अत्तणो उवद्दवं निगूहसि। अणुदिअसं च परिहीअसे अङ्गेहिं। केवलं लावण्णमण्णच्छाआ तुमं ण मुञ्चदि। (सखि, सुष्ठ्वेषा भणति। किमेतमात्मन उपद्रवं निगूहसि। अनुदिवसं च परिहीयसेऽङ्गकैः। केवलं लावण्यमयीच्छाया त्वां न मुञ्चति।) [22]

राजा - अवितथमाह प्रियंवदा। तथा ह्यस्याः -

क्षामक्षामकपोलमाननमुरः काठिन्यमुक्तस्तनं
मध्यं कान्ततरं प्रकामविनतावंसौ छविः पाण्डुरा।
शोच्या च प्रियदर्शना च मदनक्लिष्टेयमालक्ष्यते
पत्राणामिव शोषणेन मरुता स्पृष्टा लता माधवी।।3 - 8।। [23]

शकुन्तला -कस्स वा अण्णस्स इदं कधइदव्वं। आआसइत्ति दाणिं वो भविस्सं।
(कस्य वा अन्यस्येदं कथयितव्यम्। आयासयित्रीदानीं वो भविष्यामि।) [24]

उभे - अदो य्येव णो णिब्बन्धो। संविभत्तं खु दुःखं सज्झवेअणं होसि(दि)।
(अत एव नो निर्बन्धः। संविभक्तं खलु दुःखं सह्यवेदनं भवति।) [25]

राजा -

पृष्टा जनेन समदुःखसुखेन बाला नेयं न वक्ष्यति मनोगतमाधिहेतुम्।
दृष्टो विवृत्य बहुशोऽप्यनया सहावम् अत्रोत्तरं श्रवणकातरतां गतोऽस्मि।। 3-9।। [26]

शकुन्तला -(सलज्जम्) जदो पहुदि सो तवोवणरक्खिदा राएसि मम दंसणपधं गदो, तदो आरभिअ उग्गदेण अहिलासेण एदावत्थम्हि संवुत्ता। (यतः प्रभृति सः तपोवनरक्षिता राजर्षिर्मम दर्शनपथं गतः, तत आरभ्योद्गतेनाभिलाषेणैतदवस्थास्मि संवृत्ता[1]।) [27]

राजा - (सहर्षम्) श्रुतं श्रोतव्यम्।

स्मर एव तापहेतुर्निर्वापयिता[2] स एव मे जातः।
दिवस इवाभ्रश्यामस्तपात्यये जीवलोकस्य।।3 - 10।। [28]

शकुन्तला -एवं जदि वो अहिमदं तत् तधा मन्तेधं मं जदा तस्स राएसिणो अणुअम्पणीआ होमि। अण्णधा मां सिञ्चध दाणिं उदएण। (एवं यदि वोऽभिमतं तत्तथा मन्त्रयेथां मां यथा तस्य राजर्षेरनुकम्पनीया भवामि। अन्यथा मां सिञ्चतमिदानीम् उदकेन।) [29]

राजा - विमर्शच्छेदि वचनम्। [<एतावत् कामफलं, यत्फलमन्यत्।>][3] [30]

प्रियंवदा - (अपवार्य[4]) अणुसूए, दूरेगदमम्महा इअं अक्खमा कालहरणस्स। (अनुसूये, दूरेगतमन्मथेयमक्षमा कालहरणस्य।)। [31]जस्सिं बद्धभावा सो वि ललामभूदो पोरवाणं। ता तुरिदव्वं येव से अहिलासं अणुवट्टिदुं। (यस्मिन् बद्धभावा

1. मैथिल-पाठानुसारेणात्र शकुन्तलया लज्जया वाक्यं विभज्यैवोच्यते। ततश्च सख्यौ सागरं वर्जयित्वेत्यादिकं संमील्य वदतः।, उभयत्रापि पृथगेवोक्तिक्रमः परिलक्ष्यते, रंगावृत्तित्वञ्च द्योतयति।
2. अयमपि शब्दो "लब्धं मया नेत्रनिर्वापणमि"ति पाठस्य कृतेऽन्तःसाक्ष्यं प्रस्तौति।
3. कोष्ठान्तर्गतं वाक्यं प्रक्षिप्तं प्रतिभाति। (यद्यपि तादृशं वाक्यं शृंगारप्रकाशेऽपि वर्तते।)
4. उक्तिरियं जनान्तिकमिति भवितुमर्हति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

सोऽपि ललामभूतः पौरवाणाम्, तत् त्वरितव्यम् एवास्या अभिलाषम् अनुवर्तितुम्।) [32]

अनसूया - (अपवार्य) जधा भणसि। (प्रकाशम्) सहि, दिट्ठिआ अणुरुवो से अहिलासो। साअरं वज्जिअ कहिं वा महाणदीओ गन्तव्वं। (यथा भणसि। सखि, दिष्ट्या अनुरूपस्तस्या अभिलाषः। सागरं वर्जयित्वा कुत्र वा महानद्या गन्तव्यम्।) [33]

[< **प्रियंवदा** - को दाणिं सहआरं अदिमुत्तलदाए पल्लविदुं न इच्छदि।

(क इदानीं सहकारम् अतिमुक्तलतया[1] पल्लवितुं नेच्छति।) [34]

राजा - किमत्र चित्रम्। यदि चित्राविशाखे शशाङ्कलेखामनुवर्तेते। अयमत्रभवतीभ्यां क्रीतो जनः।>][2] [35]

अनसूया - को उण उवाओ भवे जेण सहीए अविलम्बिदं णिगूढं मणोरहं संपादेम्ह।

(कः पुनरुपायो भवेद् येन सख्या अविलम्बितं निगूढं मनोरथं सम्पादयावः।) [36]

प्रियंवदा- णिउणं(गूढं) पअदिदव्वं त्ति चिन्तणीअं भवे। सिग्घं त्ति ण दुक्करं।

(निगूढं प्रयतितव्यम् इति चिन्तनीयं भवेद्। शीघ्रमिति न दुष्करम्।) [37]

अनसूया - कधं विअ। (कथमिव।) [38]

प्रियंवदा - सो राएसी इमाए सिणद्धदिट्ठि सूइदाहिलासो, इमाइं दिवसाइं पआअरकिसो विअ लक्खेअदि।

(स राजर्षिरस्यां स्निग्धदृष्टिः सूचिताभिलाष, इमानि दिवसानि प्रजागरकृश इव लक्ष्यते।) [39]

राजा - सत्यमित्थंभूतोऽस्मि। तथा हि -

इदमशिशिरैरन्तस्तापैर्विवर्णमणीकृतं
निशि निशि भुजन्यस्तापाङ्गप्रवृत्तिभिरश्रुभिः।
अनभिलुलितज्याघाताङ्कान्मुहुर्मणिबन्धनात्
कनकवलयं स्रस्तं स्रस्तं मया प्रतिसार्यते॥ 3-11॥ [40]

प्रियंवदा - (विचिन्त्य) अणसूए, मअणलेहो दाणिं करीअदु। तं सुमणोगोविदं करिअ देवसेसावदेसेण तस्स रण्णो हत्थे पाडइस्सं। (अनसूये, मदनलेख इदानीं क्रियताम्। तं सुमनोगोपितं कृत्वा देवशेषापदेशेन तस्य राज्ञो हस्ते पातयिष्यामि।) [41]

अनसूया - रोअदि मे सुउमारपओओ। किं वा सउन्तला भणादि। (रोचते मे सुकुमार-प्रयोगः। किं वा शकुन्तला भणति।) [42]

शकुन्तला -(सलज्जम्) णिओओ वि विकप्पीअदि। (नियोगोऽपि विकल्प्यते?।) [43]

प्रियंवदा - (शकुन्तलां प्रति) तेण हि उवण्णासपुरवं अत्तणो चिन्तेहि किंपि सुललिदं पदबन्धं।

(तेन हि उपन्यासपूर्वम् आत्मनश्चिन्तय किमपि सुललितं पदबन्धम्।) [44]

शकुन्तला -चिन्तइस्सं। अवधीरणाभीरुअं पुणो वेवदि मे हिअअं[3]। (चिन्तयिष्यामि। अवधीरणाभीरुकं पुनर्वेपते मे हृदयम्।) [45]

राजा - (सहर्षम्)

---

1. कण्वाश्रमे सहकारेण सह नवमालिकाया उल्लेखो वर्तते, नातिमुक्तलतायाः। अतः प्रक्षिप्त एवायम्।
2. कोष्ठान्तर्गतः पाठ्यांशः केनापि रंगकर्मिणा (द्वितीये सोपाने) प्रक्षिप्तः स्यादिति प्रतिभाति।
3. अत्र शारदा-पाण्डुग्रन्थयोः (1247 एवं 1345) "आसीना चिन्तयती"ति रंगसूचनास्ति। तया सा नायिका शयनावस्थां त्यजति, रंगभूमौ चोपविष्टा प्रदर्श्यते। रंगकर्मिणैतादृशं परिवर्तनं तृतीये सोपाने कृतम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अयं स ते तिष्ठति संगमोत्सुको विशङ्कसे भीरु यतोऽवधीरणाम्।
लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं श्रियो दुरापः कथमीप्सितो भवेत्॥ 3-12॥ [46]

सख्यौ - अत्तगुणावमाणिणि। को दाणि[1] सारदिअं जोण्हं आदवत्तेण वारयिस्सदि।
(आत्मगुणावमानिनि, क इदानीं शारदीयां ज्योत्स्नाम् आतपत्रेण वारयिष्यति[2]।) [47]

राजा - (विलोकयन्) स्थाने खलु विस्मृतनिमेषेण चक्षुषा प्रियामवलोकयामि। [48]

उन्नमितैकभ्रूलतमाननमस्याः पदानि रचयन्त्याः।
कण्टकितेन प्रथयति मय्यनुरागं कपोलेन॥ 3-13॥ [49]

शकुन्तला- हला, चिन्तिदा मए गीदिया। असण्णिहिदाणि उण लेहसाहणाणि।
(हले, चिन्तिता मया गीतिका[3]। असन्निहितानि पुनर्लेखसाधनानि।) [50]

प्रयंवदा - णं इमस्सिं सुओदरसुउमारे णलिणीवत्ते पत्तच्छेदभत्तीए णहेहिं णिक्खित्तवण्णं करेहि। तदो सुणम्ह से अक्खराइं।
(नन्वस्मिंश्शुकोदरसुकुमारे नलिनीपत्रे पत्रच्छेदभक्त्या नखैर्निक्षिप्तवर्णं कुरु। ततः शृणुमोऽस्याक्षराणि[4]।) [51]

शकुन्तला -(तथा कृत्वा) सुणेह दाव णं संगदत्था ण वे त्ति। (शृणुतं तावदेनां सङ्गतार्था न वेति।) [52]

उभे - अवहिदम्ह। (अवहिते स्वः।) [53]

शकुन्तला -(पठति)

तुज्झ ण आणे हिअअं मम उण कामो दिवा अ रत्तिं अ।
णिक्कीव तवेइ बलिअं तुह हुत्तमणो रहाइ अङ्गा इं[5]॥ 3 - 14॥

(तव न जाने हृदयं मम पुनः कामो[6] दिवा च रात्रिञ्च।
निष्कृप[7], तपति बलीयस्तवाभिमुखमनोरथान्यङ्गानि)॥ 3 - 14॥ [54]

राजा - (सहर्षमुपगम्य)

तपति तनुगात्रि मदनस्त्वामनिशं मां पुनर्दहत्येव।
ग्लपयति यथा शशाङ्कं न तथा हि कुमुद्वतीं दिवसः॥ 3 -15॥ [55]

सख्यौ- (विलोक्य सहर्षमुत्थाय) सागदं जहा चिन्तिदफलस्स अवलम्बिणो मणोरहस्स।
(स्वागतं यथा चिन्तितफलस्यावलम्बिनो मनोरथस्य। [56]

शकुन्तला- (आत्मगतं ससाध्वसं च)हिअअ, तहा उत्तम्मिअ इआणिं ण किंचि पडिवज्जसि।
(हृदय, तथोत्ताम्येदानीं न किञ्चित् प्रतिपद्यसे। (इत्युत्थातुमिच्छति) [57]

राजा- अलमायासेन।

---

1. मैथिल-पाठे "संतापनिर्वापयित्रीम्" इति पठ्यते।, काश्मीर-पाठे सरलीकरणस्याशयाच्छब्दोऽयं त्यक्तः।
2. मैथिल-पाठ इतः परं "नियोजितास्मि। (इति चिन्तयति)" इत्यधिकम्।
3. मातृका क्र. 192 भूर्जपत्रोपरि लिखिते का.-पाठे नास्ति काप्यत्र रंगसूचना। किन्तु मातृका क्रं. 159 इत्यत्र "चिन्तयती" त्येव, मातृका क्र.1247 एवं क्र. 1435 इत्यत्र "आसीना चिन्तयती"ति। क्रमशः परिवर्तनं जायते
4. मैथिल-पाठे मदनलेखस्य लेखनात् पूर्वं गीतिकाक्षराणां श्रवणं क्रियते, तत्कथमपि नैव युक्तम्।
5. प्राकृत-पाठे गाथेयं गीतिः (आर्या), पूर्वार्धोत्तरार्धयोः 30+30 मात्राः सन्ति। मध्यगुरुरस्ति षष्ठो गणः।
6. मैथिल-पाठेऽत्र"मदन" इति वर्तते।, स च समीचीनः प्रतीयते, यतो हि राज्ञ उक्तावपि मदन इत्येवास्ति।
7. यथा तस्य राजर्षेरनुकम्पनीया भवामीति शकुन्तलाया पूर्वोक्तेन वचनेन सहेदमेव सम्बोधनं संगच्छते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

संस्पृष्टकुसुमशयनान्याशुर्विवर्णितमृणालवलयानि।
गुरुसंतापानि न ते गात्राण्युपचारमर्हन्ति॥ 3-16॥ [58]

अनसूया - इदो सिलादलेक्कदेसं अणुगेण्हदु वअस्सो[1]। (इतः शिलातलैकदेशमनुगृह्णातु वयस्यः।) [59]

राजा - (उपविश्य) प्रियंवदे, कच्चित् सखीं वो नातिबाधते शरीरसंतापः। [60]

प्रियंवदा - (सख्या सहोपविष्टा) लब्धोसधो संपदं उवसमं गमिस्सदि कालेण।
(लब्धौषधस्साम्प्रतम् उपशमं गमिष्यति कालेन।) [61]

[<**अनसूया** - (जनान्तिकम्) पिअंवदे, कालेण त्ति किम्। पेक्ख, मेहणादाहदं विअ मयूरिं णिमिसन्तरेण पच्चागदं पिअसहिं। (प्रियंवदे, कालेन इति किम्। प्रेक्षस्व, मेघनादाहताम् इव मयूरीं निमेषान्तरेण प्रत्यागताम् प्रियसखीम्।) [62]

शकुन्तला- (सलज्जा तिष्ठति)>][2] [63]

प्रियंवदा - महाभाअ, दोण्हं पि वो अण्णोण्णाणुराओ पच्चक्खो। सहीसिणेहो उण मं पुणरुत्तवादिणीं करेदि। (महाभाग, द्वयोरपि वाम् अन्योन्यानुरागः प्रत्यक्षः। सखीस्नेहः पुनर्माम् पुनरुक्तवादिनीं करोति।) [64]

राजा - उच्यताम्, विवक्षितं ह्यनुक्तम् अनुतापं जनयति। [65]

प्रियंवदा - तेण हि सुणादु महाराओ। (तेन हि शृणोतु महाराजः।) [66]

राजा - अवहितोऽस्मि[3]। [67]

प्रियंवदा - इअं णो सही तुमं य्येव उद्देसिअ भअवदा मअणेण इदं ईदिसं अवत्थन्तरं णीदा। ता अरिहसि अब्भुवत्तीए से जीविदं अवलम्बिदुं। (इयं नस्सखी त्वामेवोद्दिश्य भगवता मदनेनेदमीदृशम् अवस्थान्तरं नीता। तदर्हस्यभ्युपपत्त्याऽस्या जीवितम् अवलम्बितुम्।) [68]

राजा - अनुगृहीतोऽस्मि[4]। [69]

शकुन्तला -(सस्मितम्) हला, अलं वो अन्दा(न्त)उर-विहार-पय्युस्सुएण राएसिणा उवरुद्धेण।
(हला, अलं वोऽन्तःपुर-विहार[5] -पर्युत्सुकेन राजर्षिणोपरोधेन।) [70]

राजा- सुन्दरि,

इदमनन्यपरायणमन्यथा हृदयसन्निहिता हृदयं मम।
यदि समर्थयसे मदिरेक्षणे मदनबाणहतोऽपि हतः पुनः॥ 3-17॥ [71]

अनसूया - वअस्स, बहुवल्लभा राआणो सुणीअन्ति। जह णो सही बन्धुअणे असोअणीआ होदि तहा णिव्वाहेहि। (वयस्य, बहुवल्लभा राजानः श्रूयन्ते। यथा नः सखी बन्धुजनेऽशोचनीया भवति, तथा निर्वाहय।) [72]

राजा - भद्रे,

---

1. शारदा पाण्डुग्रन्थयोः (1247 एवं 1345) अत्रास्ति "शकुन्तला पादावपसारयती"ति रंगसूचना। किन्तु भूर्जपत्रोपरि लिखितयोः प्राचीनतरयोः पाण्डुग्रन्थयोः (192 एवं 159) नास्त्येतादृशी रंगसूचना।
2. कोष्ठान्तर्गतः पाठ्यांशः रंगकर्मिणा (द्वितीये सोपाने) प्रक्षिप्तः स्यादिति प्रतीयते। यतो हि, शकुन्तलायाः शयनावस्था प्रवर्तमानैव स्यादिति कवेर्योजनास्तीति 20 श्लोकादेव सिध्यति। किन्तु नूतनस्याश्लीलांशस्य प्रक्षेपं निरोद्धुं, शकुन्तलायाः शयनावस्था परिवर्तनीयेति विचार्यैव केनापि रंगकर्मिणा द्वितीये स्तरे मेघनादस्योपमा प्रयुक्ता स्यादित्यनुमातुं शक्यते॥
3. मैथिल-पाठे वाक्यद्वयमिदं (उक्ति-क्रमांक -66-67) नास्ति।
4. मैथिल-पाठेऽत्र "भद्रे, साधारण एष प्रणयः। सर्वथानुगृहीतोऽस्मी"ति वाक्यं वर्तते। तदेव मौलिकतां धत्ते।
5. ०विहार० इति पाठस्य समर्थनं "बहुवल्लभा०", "परिग्रहबहुत्वेऽपि०" इत्यत्रत्येन च बहुशब्देन भवति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

परिग्रहबहुत्वेऽपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य मे।
धर्मेणोल्लिखिता लक्ष्मीस्सखी च युवयोरियम्।। 3-18।। [73]

उभे - अणुगिहिद म्ह। (अनुगृहीते स्वः।) [74]

[<**शकुन्तला** - हला मरिसावेध लोअवालं जं किञ्च अम्हेहिं उवआरादिक्कमेण बीसम्भपलाविणीहिं भणिदं। (हले, मर्षयतं लोकपालं यत् किञ्चास्माभिरुपचारातिक्रमेण विस्रम्भप्रलापिनीभिः भणितम्।) [75]

सख्यौ - जेण तं मन्तिदं सो मरिसावेदु। अणस्स जणस्य को अच्चओ। परोक्खं को वा किं ण मन्तेदि।
(येन तन्मन्त्रितं स मर्षयतु। अन्यस्य जनस्य कोऽत्ययः। परोक्षं को वा किं न मन्त्रयति।) [76]

राजा - (सस्मितम्)

अपराधमिमं ततः सहिष्ये यदि रम्भोरु तवाङ्गरेचितार्द्धे।
कुसुमास्तरणे क्लमापहं मे सुजनत्वादनुमन्यसेऽवकाशम्।। 3-19।। [77]

प्रियंवदा - एत्तिएण उण दे तुट्ठि भवे?। (एतावता पुनस्ते तुष्टिर्भवेत्[1]।) [78]

शकुन्तला - (सरोषमिव) विरम दुल्ललिदे। एदावत्थाए वि मे कीलसि। (विरम दुर्ललिते, एतावदवस्थयापि मे क्रीडसि।)>][2][79]

अनसूया - (बहिर्विलोक्य) पिअंवदे, एसो मिअपोदओ इदो तदो दिण्णदिट्ठी उस्सुओ णूणं मादरं परिब्भट्ठं अण्णेसदि। ता संजोजइस्सं दाव णम्। (इत्युत्तिष्ठति) (प्रियंवदे, एष मृगपोतक इतस्ततो दत्तदृष्टिरुत्सुको नूनं मातरं परिभ्रष्टाम् अन्वेषति। तत्संयोजयिष्यामि तावदेनम्।) [80]

प्रियंवदा - णं चवलओ खु एसो। एआइणी णिओजेदुं ण पारेसि। ता अहं पि दे अणुवत्तिदुं करयिस्सं।
(ननु चपलकः खल्वेषः। एकाकिनी नियोजयितुं न पारयसि। तदहमपि ते अनुवर्तितुं करिष्यामि।) [81]

(इत्युभे प्रस्थिते) [82]

शकुन्तला - हला अण्णदरा ओ(वो) गच्छदु, अण्णहा असरण म्हि। (हले, अन्यतरा वो गच्छतु। अन्यथाऽशरणाऽस्मि।) [83]

उभे - (सस्मितम्) जो पुहवीए सरणं, सो तुह समीवे। (यः पृथिव्याः शरणं स तव समीपे।) [84]

(इति निष्क्रान्ते)

शकुन्तला - कधं गदं य्येव। (कथं गतम् एव।) [85]

राजा - अलमावेगेन। नन्वयमाराधयिता जनस्तव सखीभूमौ वर्तते। तदुच्यताम् -

किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातं
संचालयामि नलिनीदलतालवृन्तैः।
अङ्के निधाय चरणावुत पद्मताम्रौ
संवाहयामि करभोरु यथासुखं ते[3]।। 3-20।। [86]

शकुन्तला - ण माणणीए जणे अत्ताणअं अवराधइस्सं। (न माननीये जने आत्मानम् अपराधयिष्यामि।) [87] (अवस्थासदृशमुत्थाय प्रस्थिता[4]) [88]

---

1. मैथिल-पाठे "ननु एतावतैव तुष्टिर्भविष्यती" ति रंगकर्मिभिः काकुभेदेनोच्यते।
2. काश्मीर-पाठेऽश्लीलतापरिपूर्णोऽयं पाठ्यांशो रंगकर्मिणा (प्रथमे सोपाने) प्रक्षिप्त इति प्रतीयते।
3. एतावत्पर्यन्तं शकुन्तलया रंगभूमौ कुसुमास्तरणे शयनं कर्तव्यमिति मूलकवेर्दृश्य-योजनासीदिति निश्चप्रचम्।
4. इयमेव रंगसूचना मूलगामिनी भवेद्।, संचरितपाठेषु बह्व्यो विपरीता रंगसूचनाः प्रचालिता दृश्यन्ते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा - (अवष्टभ्य) सुन्दरि, अपरिनिर्वाणोऽयं दिवसः। इयं च तेऽवस्था।

उत्सृज्य कुसुमशयनं कदलीदलकल्पितस्तनावरणम्[1]।
कथमातपे गमिष्यसि परिपाण्डुरपेलवैरङ्गैः।। 3-21।। [89]

[<**शकुन्तला** - सहिमेत्तसरणा, कं वा सरणयिस्सम्। (सखीमात्रशरणा, कं वा शरणयिष्यामि।)

राजा - इदानीं व्रीडितोऽस्मि। [90]

शकुन्तला - ण खु अय्यं, देव्वं उवालहामि। (न खल्वार्यम्, दैवमुपालभे।) [91]

राजा - किम् अनुकूलकारिण उपालभ्यते दैवस्य। [92]

शकुन्तला - कधं दाणिं उवालभिस्सं जो अत्तणो अणीसं परगुणेहिं मं ओहासेदि।
(कथमिदानीम् उपालप्स्ये य आत्मनोऽनीशां परगुणै र्माम् उपहासयति।) [93]

राजा - (स्वगतम्)

अप्यौत्सुक्ये महति न वरप्रार्थनासु प्रतार्याः
काङ्क्षन्त्योऽपि व्यतिकरसुखं कातराः स्वाङ्गदाने।
आबाध्यन्ते न खलु मदनेनापि लब्धास्पदत्वाद्
आबाधन्ते मनसिजमपि क्षिप्तकालाः कुमार्यः।। 3-22।।[2] >][3] [94]

(शकुन्तला प्रस्थितैव) [95]

राजा - (स्वगतम्) कथमात्मनः प्रियं न करिष्ये। (उत्थायोपसृत्य पटान्तादवलम्बते) [96]

[<**शकुन्तला** - पोरव, मुञ्च मं। (पौरव, मुञ्च माम्।) [97]

राजा - भवति, मोक्ष्यामि। [98]

शकुन्तला - कदा। [99]

राजा - यदा सुरतज्ञो भविष्यामि। [100]

शकुन्तला - मअणावट्ठद्धो वि ण अत्तणो कण्णआअणो पहवदि। भूयो वि दाव सहीअणं अणुमाणइस्सम्।
(मदनावष्टब्धोऽपि नात्मनः कन्यकाजनः प्रभवति। भूयोऽपि तावत् सखीजनम् अनुमानयिष्यामि।) [101]

राजा - (मुहूर्तम् उपविश्य) ततो मोक्ष्यामि। >][4] [102]

शकुन्तला - (कृतककोपा) पोरव, रक्ख विणअं। इदो इदो इसिओ सञ्चरन्ति। (पौरव, रक्ष विनयम्। इत इत ऋषयः सञ्चरन्ति।) [103]

राजा - (दिशोऽवलोक्य) कथं प्रकाशम् अस्मि निर्गतः।[5] [104] (ससंभ्रमम्, शकुन्तलां मुक्त्वा तैरेव पदैर्निवर्तते[6]।)

---

1. शब्दोऽयं शकुन्तलाया वेशभूषां द्योतयति। तच्च काश्मीरदेशीयानां रंगकर्मिणां कर्तृत्वं प्रकटीकरोति।
2. काश्मीर-पाठेऽश्लीलतापरिपूर्णोऽयमपि पाठ्यांशो रंगकर्मिणा (प्रथमे सोपाने) प्रक्षिप्त इति प्रतीयते।
3. कोष्ठान्तर्गतः पाठ्यांशः प्रक्षिप्तः प्रतिभाति। नायक-नायिकयोः प्रेमसहचारस्य यादृशं स्वरूपमुत्तरवर्तिनि दृश्ये प्राप्यते, तेन सहास्य श्लोकस्य विचारो न संगच्छते। संवननिरूपणे पूर्वापरविरोधादमौलिकः पाठः।
4. काश्मीर-पाठेऽश्लीलतापरिपूर्णोऽयमपि पाठ्यांशो रंगकर्मिणा (प्रथमे सोपाने) प्रक्षिप्त इति प्रतीयते।, किन्तु मैथिल-पाठात् सो निष्कासितो दृश्यते।, बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमत्रानुसरति।
5. काश्मीर-पाठेऽत्र 'गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्योः०' इति श्लोकः नास्ति। तत्तु संस्कृतनाट्यरसिकैरवधेयम्।
6. इयमेव रंगसूचना शकुन्तलायाः पूर्ववर्तिन्योक्त्या [103] सह संगच्छते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

[105]

शकुन्तला -(स्तोकमुपगम्य साङ्गभङ्गम्) पोरव, अणिच्छापो(पू)रओ वि दंसणमेत्तसुहदो ण ते अअं जणो विसुमरिदव्वो। (पौरव, अनिच्छापूरकोऽपि दर्शनमात्रसुखदो न तेऽयं जनो विस्मर्तव्यः) [106]

राजा - सुन्दरि,

त्वं दूरमपि गच्छन्ती हृदयं न जहासि मे।
दिनावसानच्छायेव पुरोमूलं वनस्पतेः॥ 3 - 23॥ [107]

शकुन्तला -(स्तोकमिव गत्वा) हद्धी, ण मे चरणा पुरोमुहा पहवन्ति। इमेहिं अय्यउत्तस्स[1] कुरवएहिं ववहिदा पच्छादो लदामण्डवअस्स पेक्खिस्सं दाव से भावानुबन्धं। (तथा करोति) (हा धिक्, न मे चरणौ पुरोमुखौ प्रभवतः। एभिरार्यपुत्रस्य, कुरबकैर्व्यवहिता पश्चाल्लतामण्डपकस्य प्रेक्षिष्ये तावद् अस्य भावानुबन्धम्।) [108]

राजा - प्रिये, मामेवम् अनुरागैकरसं समुत्सृज्य प्रस्थितैवासि निरपेक्षं गन्तुम्। [109]

अनिर्दयोपभोग्यस्य रूपस्य मृदुनस्तथा।
दारुणं खलु ते चेतः शिरीषस्येव बन्धनम्॥ 3 - 24॥ [110]

शकुन्तला -इमं सुणिअ ण मे अत्थि विहवो गन्तुम्। (इमं श्रुत्वा न मेऽस्ति विभवो गन्तुम्।) [111]

राजा - किमिहाहं सम्प्रति प्रियाशून्ये करोमि। गमिष्यामि। (प्रस्थितः। भूमिं विलोक्य) हन्त, व्याहतं मे गमनम्। [112]

मणिबन्धविगलितमिदं संक्रान्तोशीरपरिमलं तस्याः।
हृदयस्य निगडमिव मे मृणालवलयं स्थितं पुरतः[2]॥ 3 - 25॥ [113]

(सबहुमानमादत्ते) [114]

शकुन्तला -(हस्तमवलोक्य) अम्मो, दुब्बलसिधिलदाए पब्भट्ठं पि एदं मुणालवलअं मए ण विण्णादं।
(अहो, दुर्बलशिथिलतया प्रभ्रष्टमपि एतन्मृणालवलयं मया न विज्ञातम्।) [115]

राजा - (वलयाभरणमुरसि विन्यस्य) अहो सुखस्पर्शः। [116]

अनेन लीलाभरणेन ते प्रिये विहाय कान्तं भुजमत्र तिष्ठता।
जनः समाश्वासित एष दुःखभाग् अचेतनेनापि सता, न तु त्वया॥ 3 - 26॥ [117]

शकुन्तला -अदो अवरं असमत्थ म्हि विलम्बिदुं। भोदु। एदेण य्येव ववदेसेण से अत्ताणअं दंसयिस्सं।
(अतोऽपरमसमर्थास्मि विलम्बितुम्। भवतु। एतेनैव व्यपदेशेनास्यात्मानं दर्शयिष्यामि।) [118]

(इत्युपगच्छति) [119]

राजा - (दृष्ट्वा सहर्षम्) अये, जीवितेश्वरी मे प्राप्ता[3]। परिदेवितानन्तरं प्रसादेनो[प]कर्तव्योऽस्मि खलु दैवस्य। [120]

पिपासाक्षामकण्ठेन याचितं चाल्पयाचिना।
नवमेघोज्झिता चास्य धारा निपतिता मुखे॥ 3 - 27॥ [121]

---

1. मैथिल-पाठे "अय्यउत्तस्स" इति शब्दो नास्ति।
2. श्लोकोऽयं गणरत्नमहोदधौ (पृ. 110) समुपलभ्यते।,
3. अस्याङ्कस्योत्तरवर्तिनमेतादृशं दृश्यमेव प्रमाणीकरोति यत् पूर्वार्धे दुष्यन्तमुखाद् येऽश्लीलतायुक्ताः श्लोका निगद्यन्ते, ते सर्वे कैश्चिद् रंगकर्मिभिः प्रक्षिप्ता स्युः। तथा च, षष्ठांऽके यद् गोत्रस्खलनस्योल्लेखः (6-5 इत्यत्र) समागमिष्यति, तस्य बीजमपि जीवितेश्वरीत्यादिसम्बोधने संनिहितमस्तीति सुधीभिर्विभावनीयम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला -(राज्ञः प्रमुखे स्थिता) अङ्ग, अद्धपहे सुमरिअ एदस्स हत्थब्भंसिणो मुणालवलअस्स किदे सण्णिअत्तम्हि। आचक्खिअं विअ मे हिअएण तए गिहीदं त्ति। ता क्खिव इदं, मा मुणिअणे अत्ताणअं मं च सुअइस्ससि। (अङ्ग, अर्धपथे स्मृत्वैतस्य हस्तभ्रंशिनो मृणालवलयस्य कृते सन्निवृत्तास्मि। आख्यातमिव मे हृदयेन त्वया गृहीतमिति। तत् क्षिपेदम्। मा मुनिजन आत्मानं मां च सूचयिष्यसि।) [122]

राजा - एकेनाभिसन्धिना प्रत्यर्पयेयम्, नान्यथा। [123]

शकुन्तला- केण। (केन।) [124]

राजा- यदीदमहमेव यथास्थानं निवेशये। [125]

शकुन्तला- (स्वगतम्) का गदी। (का गतिः।) [126]

राजा - इमं शिलापट्टमेव संश्रयावः। (उभौ परिक्रम्योपविष्टौ) [127]

राजा - (शकुन्तलाहस्तमादाय) (स्वगतम्) [128]

हरकोपाग्निदग्धस्य, दैवेनामृतवर्षिणा।
प्ररोहः संभृतो भूयः, किं स्वित्कामतरोरयम्।। 3 - 28।। [129][1]

शकुन्तला- (हर्षरोमाञ्चं रूपयति) तुवरअदु अय्यउत्तो। (त्वरयत्वार्यपुत्रः।) [130]

राजा - (स्वगतम्) इदानीमस्मि विश्वस्तो भर्तुराभाषणेन[2]। (प्रकाशम्) सुन्दरि, नातिश्लिष्टः सन्धिरस्य मृणालवलयस्य। यदि तेऽभिप्राय एतद् अन्यथा घटयिष्यामि। [131]

शकुन्तला- (विहस्य) कालक्खेवकुसलो, जं दे रोअदि। (कालक्षेपकुशलः, यत् ते रोचते।) [132]

राजा- (सव्याजं विलम्बितम् अवमुच्यावलम्ब्य च) सुन्दरि, दृश्यताम् इदम् -

अयं हि ते श्यामलतामनोहरो विशेषशोभार्थमिवोज्झिताम्बरः।
मृणालरूपेण नवो निशाकरः करं समेत्योभयकोटिराश्रितः।। 3 - 29।। [133]

शकुन्तला- ण दाव णं पेक्खामि। पवणकम्पिणा कण्णुप्पलरेणुणा कलुसीकिदा मे दिट्ठि।
(न तावदेनं प्रेक्षे। पवनकम्पिना कर्णोत्पलरेणुना कलुषीकृता मे दृष्टिः।) [134]

राजा- (सस्मितम्) यदि मन्यसे तदाहमेनां वदनमारुतेन विशदां करिष्ये। [135]

शकुन्तला- अणुकम्पिदा भवेअं। ण उवणदे विस्ससामि। (अनुकम्पिता भवेयम्। नोपनते विश्वसिमि।) [136]

राजा - मा मैवम्। नवो हि परिजनः सेव्यानामादेशात्परं न वर्तते। [137]

शकुन्तला -एसो य्येव दे अच्चुवआरो अविसम्भजणओ। (एष एव तेऽत्युपचारोऽविश्रम्भजनकः।) [138]

राजा - नाहमेवं रमणीयमात्मनस्सेवाकालं शिथिलयिष्यामि। [139]
(मुखम् उन्नमयितुं प्रवृत्तः। शकुन्तला अकामप्रतिषेधं रूपयन्ती विहरति।) [140]

राजा- अये पर्यश्रुतां ते गतं चक्षुः। अलमस्मान् प्रत्यविनयशङ्कया । उन्नीयतामाननम्। [141]

(शकुन्तला किंचिद्दृष्ट्वा स्थिता) [142]

राजा - (मुखमुन्नमय्याङ्गुलीभ्यां) [< (स्वगतम्) [143]

---

1. स्वगतमिति रंगसूचनयाऽवतारितोऽयं श्लोकः प्रक्षिप्तः स्यान्न वेति संशीतिः। नाट्यशास्त्रे (25-88) केवलमात्मगतमित्यस्यैव विधानम्। तथापि 3-3 इति श्लोकस्यापेक्षया 3-28 इति प्रासंगिकः प्रतिभाति।
2. स्वगतोक्तिरूपमिदमपि वाक्यं प्रक्षिप्तं स्यात्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

चारुणा स्फुरितेनायमपरिक्षतकोमलः।
पिपासतो ममानुज्ञां करोत्येव प्रियाधरः॥ 3 - 30॥ [144]>][1]

शकुन्तला –पडिण्णादं मन्थरो विअ अय्यउत्तो संवुत्तो। (प्रतिज्ञातं मन्थर इवार्यपुत्रस्संवृत्तः।) [145]

राजा – सुन्दरि, कर्णोत्पलसन्निकर्षाद् ईक्षणसादृश्येन मूढोऽस्मि। [146]

(मुखमारुतेन नेत्रं सिञ्चति।) [147]

शकुन्तला –भोदु। पकिदित्थ म्हि संवुत्ता। लज्जामि उण अणुवआरिणी पिअआरिणो अय्यउत्तस्स।
(भवतु, प्रकृतिस्थाऽस्मि संवृत्ता। लज्जे पुनरुनुपकारिणी प्रियकारिण आर्यपुत्रस्य।) [148]

राजा – किमन्यत्। [149]

इदमप्युपकृतमबले सुरभि मुखं ते मया यदाघ्रातम्।
(सस्मितम्) न तु कमलस्य मधुकरः सन्तुष्यति गन्धमात्रेण?॥ 3-31॥ [150]

शकुन्तला –असंतोसेण किं करयिस्ससि। (असंतोषेण किं करिष्यसि।[2]) [151]

राजा – इदम्। (इति व्यवसितः) [152]

(नेपथ्ये)

अय्या गोदमी।

(आर्या गौतमी)[3] [153]

शकुन्तला –(कर्णं दत्त्वा ससंभ्रमम्) पोरव, एसा मम सरीरवुत्तान्तोवलम्भाअ तादस्स धम्म-कणिअसी[4] उवत्थिदा, ता विडवान्तरिदो होहि। (पौरव, एषा मम शरीरवृत्तान्तोपालम्भाय तातस्य धर्मकनीयस्युपस्थिता। तद् विटपान्तरितो भव।) [154]

राजा – (तथा करोति।) [155]

(ततः प्रविशति पात्रहस्ता गौतमी) [156]

गौतमी – (उपसृत्य) अच्चाहिदं। इदो देवदासहाआ चिट्ठसि। (अत्याहितम्, इत देवतासहाया तिष्ठसि।) [157]

शकुन्तला –इदाणिं य्येव मालिणिं अवदीण्णाओ पिअंवदामिस्साओ।
(इदानीमेव मालिनीम् अवतीर्णाः प्रियंवदामिश्राः[5]।) [158]

गौतमी – (दर्भोदकेन शकुन्तलामभ्युक्ष्य) वत्से, निराबाधा त्वं चिरं जीव। अवि लहुसंतावाइं दे अङ्गाइं। वत्से, निराबाधा त्वं चिरं जीव। अपि लघुकसन्तापानि तेऽङ्गानि।) [159]

शकुन्तला –अत्थि विसेसो। (अस्ति विशेषः।) [160]

गौतमी– वच्छे, परिणदो दिअसो। ता एहि। उडअं य्येव गच्छम्ह।
(वत्से, परिणतो दिवसः। तदेहि। उटजमेव गच्छामः।) [161]

---

1. कोष्ठान्तर्गतः श्लोकः प्रक्षिप्तः स्यात्, स्वगतोक्तिरूपेण प्रस्तावितत्वात्।
2. काक्वा भणितं दुष्यन्तस्य प्रश्नं श्रुत्वा, शकुन्तलैव दुष्यन्तं प्रेरयति रतये।
3. काश्मीर-पाठेऽत्र 'चक्रवाकवधूके, आमन्त्रयस्व सहचरम्, उपस्थिता रजनी'ति नास्ति। तादृशं वाक्यं तु मैथिल-पाठे सुरक्षितं वर्तते। शकुन्तलायाः कृते चक्रवाक-परभृतिकादीनां पक्षिणां प्रतीकानि कविनैव प्रयुक्तानि सन्ति। शकुन्तलेति नामापि तदेव सूचयति। अतः काश्मीर-पाठे पठ्यमानम् 'आर्या गौतमी'ति वाक्यं कस्यचिद् रंगकर्मिणैव सरलीकरणस्याशयेन स्थापितं स्यात्।
4. काश्मीर-पाठ एव गौतम्याः कृते विशेषणं प्रयुक्तम्। एतदपि काश्मीरप्रदेशस्थितेन केनापि रंगकर्मिणा स्वकल्पनया प्रदत्तमिति प्रतीयते।
5. काश्मीर-पाठेऽत्र यो मिश्रेति शब्दस्य प्रयोगो दृश्यते, स देवनागरी-पाठेऽपि कुत्रचिदनुसृत इति दृश्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला -(अपवार्य) हिअअ, मणोरहदुल्लहं जणं पाविअ कालहरणं करेसि। अणुसअ विघट्टिदस्स कधं दे सम्पदं। (पदानि गत्वा प्रतिनिवृत्य प्रकाशम्) लदागहअ आमन्तए तुमं पुणो वि परि[भो]आअ। (इति निष्क्रान्ता) (हृदय, मनोरथदुर्लभं जनं प्राप्य कालहरणं करोषि।

अनुशयविघट्टितस्य कथं ते साम्प्रतम्। लतागृहक, आमन्त्रये त्वां पुनरपि परिभोगाय।) [162]

(इति निष्क्रान्ते) [163]

राजा- (पूर्वस्थानमेत्य सनिःश्वासम्) अहो विघ्नवत्यः प्रार्थितसिद्धयः।

मया हि,

मुहुरङ्गुलिसंवृत्ताधरोष्ठं प्रतिषेधाक्षरविक्लवाभिधानम्।
मुखमंसविवर्ति पक्ष्मलाक्ष्याः कथमप्युन्नमितं, न चुम्बितं तु[1]।। 3 - 32।। [164]

क्व नु खलु साम्प्रतं गच्छामि। अथवा इहैव तावत् प्रियापरिभुक्तेऽतिमुक्तकलतावलये स्थास्यामि। [165]

(सर्वतो विलोक्य) [166]

तस्याः पुष्पमयी शरीरलुलिता शय्या शिलायामियं
कान्तो मन्मथलेख एष नलिनीपत्रे नखैरर्पितः।
हस्ताद् भ्रष्टमिदं बिसाभरणमित्यासाद्य हीनेक्षणान्
निर्गन्तुं सहसा न वेतसगृहादीशोऽस्मि शून्यादपि।। 3 - 33।। [167]

[<हा हा धिक्, न सम्यग् आचेष्टितं मया प्रियामासाद्य कालहरणं कुर्वता। इदानीं -

रहः प्रत्यासत्तिं यदि सुवदना यास्यति पुन-
र्न कालं हास्यामि प्रणयिदुरवापा हि विषयाः।
इति क्लिष्टं विघ्नैर्गणयति च मे मूढहृदयं
प्रियायाः प्रत्यक्षं किमपि च तथा कातरमिदम्।। 3 - 34।।>][2] [168]

(नेपथ्ये)

राजन् .. राजन्...। [169]

सायन्तने सवनकर्मणि संप्रवृत्ते वेदीं हुताशनवतीं परितः प्रयस्ताम:।
छायाश्चरन्ति बहुधा भयमादधानाः सन्ध्याभ्रकूटकपिशाः पिशिताशनानाम्।। 3 - 35।। [170]

राजा - (ससम्भ्रमम्) भो भोस्तपस्विनः। मा भैष्ट। अयमहमागतोऽस्मि। [171]

(इति निष्क्रान्तः) [172]

।। इति शकुन्तला-नाटके तृतीयोऽङ्कः[3]।। [173]

---

1. काश्मीर-पाठे वर्तमानस्य "तु" इति निपातस्य व्यञ्जकतां प्रदर्शयति ध्वन्यालोककारः। कविप्रणीते मूलपाठेऽपि तुकारस्यैव संनिवेशो भवितुमर्हति, महाकवेर्व्यञ्जनापाटवं सुप्रसिद्धमेव। तथा च रंगकर्मिणां कृतेऽपि चुम्बनप्रदर्शिकां मुखमुद्रां प्रकटयितुं तुकारस्योच्चारणं साहाय्यमपि वितनोति तदप्यवधेयम्।
2. काश्मीर-पाठेऽश्लीलतापरिपूर्णोऽयं पाठ्यांशो रंगकर्मिणा (प्रथमे सोपाने) प्रक्षिप्त इति प्रतीयते।
3. मैथिल-बंगीय-पाठयोः "शृङ्गारभोगो नाम तृतीयोऽङ्कः" इति पठ्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ अथ चतुर्थोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशतः कुसुमावचयं नाटयन्त्यौ तपस्विकन्यके) [1]

अनसूया - पिअंवदे, जदपि गन्धव्वेण विवाहविहिणा णिव्वुत्तकल्लाणा सउन्तला अणुरूवभत्तिभाइणी संवुत्ता तहावि ण णिवुत्तं मे हिअअं। (प्रियंवदे, यद्यपि गान्धर्वेण विवाहविधिना निर्वृत्तकल्याणा शकुन्तलानुरूपभर्तृभागिनी संवृत्ता, तथापि न निवृत्तं मे हृदयम्।) [2]

प्रियंवदा - कधं विअ। (कथमिव।) [3]

अनसूया- अज्ज सो राआ इट्ठिपरिसमत्तीए इसे(सी)हिं विसज्जिदो अत्तणो णअरं पविसिअ अन्दउरे इदोगदं सुमरिस्सदि वा ण वेत्ति। (अद्य स राजेष्टिपरिसमाप्तावृषिभिर्विसर्जित आत्मनो नगरं {तत्र} प्रविश्यान्तःपुरे(रम्)इतो गतं स्मरिष्यति वा न वेति।) [4]

प्रियंवदा - इत्थ विसत्था होहि। ण तादिसा आकिदिविसेसा गुणविरोहिणो होन्ति। इत्थिअं उण चिन्तणिज्जं। तादो दाणिं इमं वुत्तान्तं सुणिअ ण जाणे किं पडिवज्जिस्सदित्ति। (अत्र विश्वस्ता भव। न तादृशा आकृतिविशेषा गुणविरोधिनो भवन्ति। एतावत्पुनश्चिन्तनीयम्। तात इदानीम् इमं वृत्तान्तं श्रुत्वा न जाने किं प्रतिपत्स्यत इति।) [5]

अनसूया - सहि, जहा मं पुच्छसि तहा तादस्स अणुमदं पिअं च। (सखि, यथा मां पृच्छसि तथा तातस्यानुमतं प्रियञ्च।) [6]

प्रियंवदा - कधं विअ अणुमदं पिअं च। (कथमिवानुमतं प्रियं च।) [7]

अनसूया - किम् अण्णं। गुणवदे कण्णआ पडिवादइदव्वेत्ति अअं दाव पढमो से संकप्पो। तं जदि देव्वं सम्पादेदि णणु अप्पआसेण कदत्थो गुरुअणो। (किमन्यत्। गुणवते कन्यका प्रतिपादयितव्येत्ययं तावत्प्रथमोऽस्य संकल्पः। तद्यदि दैवं सम्पादयति नन्वप्रयासेन। कृतार्थो गुरुजनः।) [8]

प्रियंवदा - एवम् णेदम्। (पुष्पभाजनमवलोक्य) सहि, अवचिदाइं खु बलिकम्मपय्यत्ताइं कुसुमाइं।
(एवमेतत्। सखि, अवचितानि खलु बलिकर्मपर्याप्तानि कुसुमानि।) [9]

अनसूया - सहि, सउन्तलाए वि सोहग्गदेवदा अच्चणीआ।
(सखि, शकुन्तलया[1] पि सौभाग्यदेवतार्चनीया।) [10]

प्रियंवदा - जुज्जदि। (युज्यते।) (तदेव कर्म नाटयतः) [11]

(नेपथ्ये)

अयं अहं भोः। [12]

अनसूया - (श्रुत्वा) अदिधिणा विअ णिवेदिदं। (अतिथिनेव निवेदितम्।) [13]

प्रियंवदा - सहि, णं उडजसण्णिहिदा सउन्तला। आं, अज्ज उण हिअएण असण्णिहिदा।
(सखि, नन्वुटज-संनिहिता शकुन्तला। आम् अद्य पुनर्हृदयेनासंनिहिता[2]।) [14]

---

1. शकुन्तलयेति पदं न विस्मर्तव्यं प्रेक्षकैः।
2. प्रियंवदाया उक्तिरियं प्रकाशोक्तिः, यां श्रुत्वैवानसूया सत्वरं प्रत्यावर्तितुमिच्छति।, अनुगामिषु पाठेषु नास्त्येतादृशी योजना।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अनसूया - (सत्वरम्) तेण हि होन्दु (भोदु)। इत्तिआइं कुसुमाइं। (प्रस्थिता)
(तेन हि भवतु, एतावन्ति कुसुमानि।) [15]

(नेपथ्ये)

आः, अतिथिपरिभाविनि, [16]

विचिन्तयन्ती यम् अनन्यमानसा यतोऽतिथिं वेत्सि न माम् उपस्थितम्।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन् कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव॥ (4-1)॥ [17]

उभे- (श्रुत्वा विषण्णे) हद्धि य्येव संवुत्तं। कस्सिं वि पूआरहे अवरद्धा सुण्णहिअआ सही।
(हा धिग् एव संवृत्तम्, कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शून्यहृदया सखी।) [18]

अनसूया - (विलोक्य[1]) ण खु, ण खु जस्सिं तस्सिं। सुलहकोओ खु एसो दुव्वासा महेसि। हुदासो विअ तुरिदपादुद्धाराए गदीए गच्छिदुं पउत्तो। (न खलु न खलु यस्मिन् तस्मिन्, सुलभकोपः खल्वेष दुर्वासा महर्षिः। हुताश इव त्वरितपादोद्धारया गत्या गन्तुं प्रवृत्तः।) [19]

प्रियंवदा - को अण्णो हुदवहादो दहिदुं पहविस्सदि। अणसूये, गच्छ पादेसु पडिअ पसाएहि णं। जाव अहं से अग्घाइ (दि)अं उपकप्पेमि। (कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभविष्यति। अनसूये, गच्छ पादेषु पतित्वा प्रसादयैनम्। यावद् अहम् अस्य अर्घादिकम् उपकल्पयामि।) (अनसूया निष्क्रान्ता) [20]

प्रियंवदा - (पादान्तरे स्खलितं निरूप्य) अम्मो, आवेगक्खलिदाए पब्भट्ठं अग्गहत्थादो पुप्फभाअणं मे।
ता पुणो वि अवचिणिस्सं। (अहो आवेगस्खलितायाः प्रभ्रष्टमग्रहस्तात् पुष्पभाजनं मे। तत् पुनरप्यवचेष्यामि।) (तथा करोति) [21]

(प्रविश्य) अनसूया - सहि, सरीरबद्धो कोओ विअ कस्स सो अणुणअं गेण्हदि। किं च उण साणुक्कोसो कदो। (सखि, शरीरबद्धः कोप इव कस्य सोऽनुनयं गृह्णाति। किं च पुनस्सानुक्रोशः कृतः।) [22]

प्रियंवदा - तस्सिं बहुअं एदं। ततः (तदो) कहेहि कधं विअ।
(तस्मिन् बहुकं एतत्। ततः कथय कथमिव।) [23]

अनसूया - जदा णिवत्तिदुं ण इच्छदि। तदा विण्णाविदो मए भगवं, पढमभत्तिं अवेक्खिअ अज्ज अत्तपहावविण्णाद[सा]मत्थस्स दुहिदाजणस्स भअवदा अवराहो मरिसिदव्वो त्ति।
(यदा निवर्तितुं नेच्छति तदाविज्ञापितो मया। भगवन्, प्रथमभक्तिम् अवेक्ष्याद्यात्म- प्रभावविज्ञातसामर्थ्यस्य दुहितृजनस्य भगवताऽपराधो मर्षितव्य इति।) [24]

प्रियंवदा - तदो तदो। (ततः ततः।) [25]

अनसूया - तदो ण मे वअणं अण्णधा भविदुं अरिहदि। आहरणाहिण्णाण दंसणेण से सावो णिवट्टिस्सदिति मन्तअन्तो य्येव अन्तरिहिदो। (ततः न मे वचनं अन्यथा भवितुम् अर्हति।
आभरणाभिज्ञान-दर्शनेनास्याः शापो निवर्तिष्यत इति मन्त्रयन्नेवान्तर्हितः।) [26]

प्रियंवदा - सक्कं दाणिं अस्ससिदुं। अत्थि तेण राएसिणा सम्पत्थिदेण सणामधेआङ्किदं अङ्गुलीअं सुमरणिअं त्ति सउन्तलाए सअं य्येव हत्थे पिणद्धम्। तस्सिं च साहिणे अअं उवाओ भविस्सदि त्ति। (शक्यमिदानीमाश्वासितुम्। अस्ति तेन राजर्षिणा संप्रस्थितेन स्वनामधेयाङ्कितमङ्गुलीयं स्मरणीयमिति शकुन्तलायास्स्वयमेव हस्ते पिनद्धम्। तस्मिंश्च

1. अनसूययैव दुर्वासा कस्यां दिशि गन्तुं प्रवृत्त इति दृष्टम्। अतः सैव तं प्रसादयितुं गच्छेदिति युक्तियुक्तम्। सन्दर्भेऽस्मिन्ननुगामिषु पाठेषु महती विकृतिः संजातेति दृश्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

स्वाधीनेऽयमुपायो भविष्यतीति।) [27]

(परिक्रामतः) [28]

अनसूया - हला पिअंवदे, पेक्ख पेक्ख वामहत्थोवणिहिद वअणा आलिहिदा विअ सहि भट्टिगडाए चिन्ताए अत्ताणअं वि एसा ण विभावेदि, किं उण आगन्तुअं। (हले प्रियंवदे, प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व।
वामहस्तोपनिहितवदनाऽलिखितेव सखी भर्तृगतया चिन्तयाऽत्मानम् अप्येषा न विभावयति, किं पुनरागन्तुकम्।) [29]

प्रियंवदा - हला अणसूए, दोण्हं येव अम्हेसु एसो साववुत्तन्तो चिट्ठदु। रक्खणीआ खु पकिदिपेलवा सही।
(हला अनसूये, द्वयोरेवावयोरेष शापवृत्तान्तस्तिष्ठतु[1]। रक्षणीया खलु प्रकृतिपेलवा सखी।) [30]

अनसूया - को दाणिं तावोदएण णवमालिअं सिञ्चदि। (क इदानीं तापोदकेन नवमालिकां सिञ्चति।) [31]
(इति निष्क्रान्ते।)

॥ प्रवेशकः[2]॥ [32]

॥ ततः प्रविशति सुप्तोत्थितः काश्यपशिष्यः[3]॥ [33]

शिष्यः - वेलोपलक्षणार्थमादिष्टोऽस्मि तत्रभवता प्रभासात्[4] प्रतिनिवृत्तेनोपाध्यायकाश्यपेन। तत् प्रकाश्यं निर्गत्य तावद् अवलोकयामि किम् अवशिष्टं रजन्या इति। (परिक्रम्यावलोक्य च) हन्त प्रभातम्। तथा हि - [34]

कर्कन्धूनाम् उपरि तुहिनं रञ्जयत्यग्रसन्ध्या
दार्भं मुञ्चत्युटजपटलं वीतनिद्रो मयूरः।
वेदिप्रान्तात् खुरविलिखिताद् उत्थितश्चैष सद्यः
पश्चाद् उच्चैर्भवति हरिणो गात्रम् आयच्छमानः॥ 4 - 2॥ [35]

अपि च[5] - [36]

पादन्यासं क्षितिधरगुरोर्मूर्ध्नि कृत्वा सुमेरोः
क्रान्तं येन क्षपिततमसा मध्यमं धाम विष्णोः।
सोऽयं सोमः पतति गगनाद् अल्पशेषैर्मयूखैस्
सूरारोहो भवति महतामप्यपभ्रंशनिष्ठः॥ 4 - 3॥ [37]

[< तत्सत्यं यतस्सूर्याचन्द्रमसौ जगतोऽस्य सम्पद्विपत्त्योरनित्यत्वं दर्शयत इव॥ तथा च -

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनाम् आविष्कृतारुणपुरस्सर एकतोऽर्कः।
तेजो द्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु॥ 4 - 4॥ [38]

अपि च - अस्मिन् काले, [39]

---

1. प्रियंवदया शाप-वृत्तान्तस्य संगोपनं प्रस्तावितम्, नानसूययेति न विस्मर्तव्यं प्रेक्षकैः। अनुगामिषु कालेषु मैथिल-रंगकर्मिभिः सन्दर्भेऽस्मिन् सर्वथा परिवर्तनं क्रियते तदवधेयम्॥
2. यद्यपि दुर्वाससः उक्तिरत्र संस्कृतभाषामयी, तथापि नाट्यशास्त्रानुसारी प्रवेशक इत्येव पाठः प्राप्यते।
3. मैथिल-बंगीय-पाठयोः कण्वशिष्य इति पठ्यते।
4. मैथिल-पाठे प्रवासादिति पठ्यते।
5. शिष्यः प्रथमं स्वसम्मुखे वर्तमानस्य मयूर-हरिणादीनां वर्णनं करोति, तत उपरि स्थिते नभसि यद् दृश्यते तद् द्वितीयेन श्लोकेन निरूपयति। अत्रापि चेति समुच्चयार्थकस्याव्ययस्य सार्थकत्वं सिद्ध्यति। एतावेव द्वौ श्लोकौ मूलगामिनौ स्याताम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा।
इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य दुःखानि दूरम् अतिमात्रदुरुत्सहानि[1]॥ 4 - 5।>][2] [40]

॥ ततः प्रविशत्यपटीक्षेपेणानसूया॥ [41]

अनसूया - एवं णाम विसयपराम्मुहस्स वि एदं ण विदिदं जधा तेण रण्णा सउन्तलाए अणय्यदा आअरिदव्वत्ति। (एवं नाम विषयपराङ्मुखस्यापि एतद् न विदितं यथा तेन राज्ञा शकुन्तलाया अनार्यताऽचरितव्येति।) [42]

शिष्यः - यावद् उपस्थितां वेलां[3] निवेदयामि। (इति निष्क्रान्तः) [43]

अनसूया - पडिबुद्धा वि किं करयिस्सं। ण मे उत्थिदाए चिन्तीदेसु पहादव्वावारकरणीएसु हत्था पादा वा पहवन्ति। सकामो दाणिं कामो होदु। जेण सिणद्धहिअआ सही असच्चसन्धे जणे पदं कारिदा। (स्मृत्वा) अह वा ण तस्स राएसिणो अवराहो दुव्वासकोवो ईत्थ विप्पकरेदि। अण्णधा कधं तादिसो राएसि तादिसाइं वअणाइं मन्तिअ एत्तिअस्स वि कालस्स लेहमेत्तं वि ण विस्सज्जइस्सदि। (विचिन्त्य) इदं अङ्गुलीअं से अहिण्णाणं विसज्जेम्ह। अह वा दुक्खसीले तवस्सिअणे को अब्भत्थिअदु। ण सहीगमणेण दोसो त्ति ववसिदुं दाणिं पारेम्ह। पभासणिव्वुत्तस्स तादकस्सवस्स दुस्सन्तपरिणीदां आवण्णसत्तां कोवि सउन्तलां णिवेदयिस्सदि। इत्थंगदे किं णु खु अम्हेहिं कादव्वम्। (प्रतिबुद्धाऽपि किं करिष्यामि। न म उत्थितायाश्चिन्तितेषु प्रभातव्यापार- करणीयेषु हस्तौ पादौ वा प्रभवन्ति। सकाम इदानीं कामो भवतु। येन स्निग्धहृदया सखी असत्यसन्धे जने पदं कारिता। (स्मृत्वा)अथ वा, न तस्य राजर्षेरपराधो, दुर्वा[स]सः कोपोऽत्र विप्रकरोति। अन्यथा कथं तादृशो राजर्षिस्तादृशानि वचनानि मन्त्रयित्वैतावतोऽपि कालस्य लेखमात्रमपि न विसर्जयति। (विचिन्त्य) इदमङ्गुलीयमस्याभिज्ञानं विसर्जयामः। अथवा, दुःखशीले तपस्विजने कोऽभ्यर्थताम्। न सखिगमनेन दोष इति व्यवसितुम् इदानीं पारयामः। प्रभासनिवृत्तस्य तातकाश्यपस्य दुष्यन्तपरिणीताम् आपन्नसत्त्वां कोऽपि शकुन्तलां निवेदयिष्यति। इत्थंगते किं नु खल्वस्माभिः कर्तव्यम्।) [44]

॥ ततः प्रविशति प्रियंवदा॥ [45]

प्रियंवदा - अणसूये, सउन्तलाए पत्थाणकोदुआणि करेअत्तु।
(अनसूये, शकुन्तलायाः प्रस्थानकौतुकानि क्रियन्ताम्।) [46]

अनसूया - सहि, कहं णेदं। (सखि, कथमेतत्।) [47]

प्रियंवदा - अणसूये, सुणिस। दाणिं सुहसयिदविबुद्धाए सउन्तलाए समीवं गदम्ह(म्हिं), जाव तं लज्जावणदमुहिं परिसजिअ तादकस्सवो अहिणन्ददि। दिट्ठिआ धूमोवरुद्धदिट्ठिणो विअ जणस्स पावक एव आहुदी पडिदा। सुसिस्सपडिपादिआ विअ विज्जा असोअणिज्जासि मे संवुत्ता। ता अज्ज य्येव इसिपरिगृहीदं तुमं भत्तुणो सआसं विसज्जेमि त्ति। (अनसूये, शृणु, इदानीं सुखशयितविबुद्धायाः शकुन्तलायास्समीपं गतास्मि, यावत् तां लज्जावनतमुखीम् परिष्वज्य तातकाश्यपोऽभिनन्दति। दिष्ट्या धूमोपरुद्धदृष्टेरपि जनस्य पावक एव आहुतिः पतिता। सुशिष्यप्रतिपादितेव विद्याऽशोचनीयासि मे संवृत्ता। तद् अद्यैवर्षिपरिगृहीतां त्वां भर्तुस्सकाशं विसर्जयामीति।) [48]

अनसूया - अध केण आचक्किदो तादस्स अअं सउन्तलावुत्तान्तो।
(अथ केन आख्यातस्तातस्यायं शकुन्तलावृत्तान्तः।) [49]

प्रियंवदा - तादस्स अग्गिसरणं पविट्ठस्स किल सरीरं विणा छन्दोवदीए वाआए।
(तातस्याग्निशरणं प्रविष्टस्य किल शरीरं विना छन्दोवत्या वाचा।) [50]

---

1. श्लोकद्वयमिदं काश्मीर-पाठे बहुकालात्पूर्वमेव प्रक्षिप्तं प्रतिभाति। पुनरुक्तिदोषग्रस्तौ चेतौ।
2. कोष्ठान्तर्गतः पाठः प्रक्षिप्तो वर्तते, पुनरुक्तिदोषग्रस्तत्वाद्।
3. होमवेलां गुरव इति मैथिल-पाठे पठ्यते।, सम्भवतः काश्मीर-पाठे रंगकर्मिभिः संक्षेपः कृतः स्याद्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अनसूया - (सविस्मयम्) कधं विअ। (कथमिव।) [51]

प्रियंवदा - सहि, सुणु। (सखि, शृणु।) (संस्कृतमाश्रित्य पठति) [52]

दुष्ष(ष्य)न्तेनाहितं वीर्यं दधानां भूतये भुवः।
अवेहि तनयां ब्रह्मन्, नग्निगर्भां शमीमिव॥ 4 - 6॥ [53]

अनसूया - (सहर्षं प्रियंवदामाश्लिष्य) सहि, पिअं मे। किं तु अज्ज य्येव सउन्तला णीअदि त्ति उक्कण्ठा-साहारणं खु दाणिं परितोसं समुव्वहामि। (सखि, प्रियं मे। किन्तु अद्यैव शकुन्तला नीयतेत्युत्कण्ठासाधारणं खल्विदानीं परितोषं समुद्वहामि।) [54]

प्रियंवदा - उक्कण्ठं विणोदयिस्सामो, सा दाणिं णिव्वुदा होदु।
(उत्कण्ठां विनोदयिष्यामः। सेदानीं निर्वृत्ता भवतु।) [55]

अनसूया - तेण हि एदस्सिं चुदसाहावलम्बिदे णालिएर समुग्गए तण्णिमित्तं एव कालान्तर[क्ख]मा क्खित्ता मए सकेसरगुणा। ते तुमं हत्थसण्णिहिदे करेहि, जाव अहं से मअ (?)रोहणं तित्थमित्तिअं दुव्वाकिसलआइं मङ्गलसमा[ल]हणत्थं विरएमि। (इति निष्क्रान्ता) [56]

(प्रियंवदा नाट्येन सुमनसो गृह्णाति।) [57]

(तेन हि, एतस्मिंश्चूतशाखावलम्बिते नारिकेलसमुद्गके तन्निमित्तम् एव कालान्तरक्षमा क्षिप्ता मया सकेसरगुणा (तथा) त्वं हस्तसन्निहिताम् कुरु। यावद् अहम् अस्या मृग-रोचनां (आमयरोधनां?) तीर्थमृत्तिकां दूर्वाकिसलयानि मङ्गलसमालम्भनार्थं विरचयामि।) [58]

(नेपथ्ये)

आदिश्यन्ताम् शार्ङ्गरवमिश्राः शकुन्तलानयनाय सज्जीभवतेति। [59]

प्रियंवदा - (आकर्ण्य) अणसूए, तुवर तुवर, एदे खु हत्थिणाउरगामिण इसिओ सज्जीभवन्ति त्ति।
(अनसूये, त्वरस्व त्वरस्व। एते खलु हस्तिनापुरगामिना ऋषयः सज्जीभवन्तीति।) [60]

(प्रविश्य समालभनहस्ता) [61]

अनसूया - सहि, एहि गच्छम्ह। (सखि, एहि गच्छावः।) [62] (उभे परिक्रामतः) [63]

प्रियंवदा - (विलोक्य) एसा खु सुओदय्य एव विसज्जिदा पडिच्छिदणीवारभाअणकाहिं तावसीहिं अहिणन्दीअमाणा सउन्तला चिट्ठदि। ता उपविसप्पम्ह णम्। (तथा कुरुतः) (एषा खलु सूर्योदय एव विसर्जिता प्रतिष्ठितनिवारभाजनकाभिस्तापसी-भिरभिनन्द्यमाना शकुन्तला तिष्ठति। तदुपसर्पाव एनाम्।) [64]

॥ ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टासनस्था शकुन्तला गौतमी तापस्यश्च॥ [65]

एका तापसी - जादे भट्टिणो बहुमाणउत्तअं महादेवीसद्दकं अधिगच्छ।
(पुत्रि, भर्तुर्बहुमानयुक्तकं महा[देवी]शब्दकं अधिगच्छ[1]।) [66]

अन्या - वच्छे, वीरपसविणी होहि। (वत्से, वीरप्रसविनी भव[2]।) [67]
(आशिसो दत्त्वा गौतमीवर्जं निष्क्रान्ताः[3]) [68]

---

1. मैथिल-पाठेऽस्याशीर्वादस्योच्चारणं गौतमीमुखात् क्रियते।
2. मैथिल-पाठ उक्तिरियं तापसीद्वयेनोच्यते।, तापसीनां न्यूनाधिकता निरूप्यते सर्वैः रंगकर्मिभिरुत्तरवर्तिनि काले।
3. अत्र तापसीनां प्रवेशः, तासामुक्तयश्च (65-68) रंगकर्मिभिः प्रक्षिप्ताः स्युरिति प्रतीयते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

सख्यौ - (उपगम्य) सहि, सुमज्जणं दे होदु। (सखि, सुमज्जनं ते भवतु।) [69]

शकुन्तला -(दृष्ट्वा सादरम्) साअदं पिअसहीणं। इदो णिसीदध।
(स्वागतं प्रियसख्योः। इतो निषीदतम्।) [70]

उभे - (उपविश्य) हला सउन्तले। उज्जुअगदा होहि। जाव दे मङ्गलसमालद्धं अङ्गं करीअदु।
(हला शकुन्तले, ऋजुकगता भव। यावत् ते मङ्गलसमालब्धं अङ्गं क्रियताम्।) [71]

शकुन्तला -उचितं, इदं पि बहुमणिदव्वं, दुल्लहं दाणिं मे सहीमण्डणं भविस्सदि। (रुदत्युत्तिष्ठति)
(उचितमिदमपि बहुमन्तव्यम्। दुर्लभम् इदानीं मे सखीमण्डनं भविष्यति।) [72]

उभे - सहि, ण दे इच्छिदव्वे मङ्गलकाले रोइदव्वं। (अश्रूणि प्रमृज्य नाट्येन प्रसाधयतः) [73]
(सखि, न त एष्टव्ये मङ्गलकाले रोदितव्यम्।) [74]

प्रियंवदा - आहरणारहं रूपं। अस्समसुलहेहिं पसाहणेहिं विप्पआरीअदि।
(आभरणार्हं रूपम्। आश्रमसुलभैः प्रसाधनैर्विप्रक्रियते।) [75]

।। ततः प्रविशत उपायनहस्तावृषिकुमारकौ।। [76]

[ऋषिकुमारौ] - इदमलङ्करणम्। तावदलङ्क्रियताम् अत्रभवती। (तथा विलोक्य विस्मिताः) [77]

गौतमी - वच्छ हारीद, कुदो एदं। (वत्स हारीत, कुत एतत्।) [78]

प्रथमः - तातकाश्यपप्रसादात्। [79]

गौतमी- किं माणसी सिद्धी। (किं मानसी सिद्धिः।) [80]

द्वितीयः- न खलु। श्रूयताम् - तत्रभवता वयमाज्ञापिताः। शकुन्तलाहेतोर्वनस्पतिभ्यः कुसुमान्याहरतेति।
तत इदानीं, [81]

क्षौमं केनचिद् इन्दुपाण्डुतरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं,
निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुभगो लाक्षारसः केनचित्।
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वमूलोत्थितै-[1]
र्दत्तान्याभरणानि नः किसलयच्छायाप्रतिस्पर्धिभिः।। 4 - 7।। [82]

प्रियंवदा - (शकुन्तलां विलोक्य) हला, अब्भुदसम्पत्ति सूइदा। भट्टिणो गेहे अणुभविदव्वा दे राअलच्छी।
(हले अद्भुतसम्पत्तिस्सूचिता। भर्तुर्गृहेऽनुभवितव्या ते राजलक्ष्मीः।) [83]

शकुन्तला -(लज्जां निरूपयति) सहि, कल्याणिणी दाणिं सि। कोडरसम्भवा[2] विअ महुअरी पुक्खरमुहं अहिलससि। (सखि, कल्याणिनीदानीमसि। कोटरसम्भवेव मधुकरी पुष्करमुखमभिलषसि।) [84]

प्रियंवदा - (मण्डयन्ती) अणुभूदभूसणो अअं जणो। चित्तकम्मपरिचिएण दाणिं दे अङ्गेसु आहरणणिओअं करेदि। (अ[न]नुभूतभूषणोऽयं जनः। चित्रकर्मपरिचयेनेदानीं तेऽङ्गेषु आभरणनियोगं करोति।) [85]

शकुन्तला -(सस्मितम्) जाणे वो णिउणत्तणम्। (जाने वो निपुणत्वम्।) [86]

(उभे नाट्येनाभरणम् आमुञ्चतः) [87]

---

1. मैथिल-पाठ आपर्वभागोत्थितैरिति पठ्यते।
2. मैथिल-पाठे "कोडरसम्भवा वि" इति।, एवञ्चोक्तिरियं प्रियंवदाया मुखे स्थापिता वर्तते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

ऋषिकुमारः-गौतम, एहि अभिषेकाद् अवतीर्णाय तातकाश्यपाय वनस्पतिसेवां निवेदयावः। [88]

द्वितीयः - एवं कुर्वः। (इति निष्क्रान्तौ) [89]

॥ ततः प्रविशति सुप्तो(स्नानो)त्थितः[1] काश्यपः॥ [90]

काश्यपः - (निश्श्वस्य)

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठस्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषं चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं न तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः॥ 4-8॥ [91]

(परिक्रामति) [92]

सख्यौ - हला सउन्तले, अवसिदमण्डनासि। परिधेहि संपदं इमं पवित्तं खोमणिम्मोअं।
(हले शकुन्तले, अवसितमण्डनासि। परिधेहि साम्प्रतम् इमं पवित्रं क्षौमनिर्मोकम्।) [93]
(शकुन्तला लतागृहान् निर्गत्य परिधाय पुनः प्रविश्योपविष्टा। काश्यपः उपसर्पति।) [94]

गौतमी - एसो दे आनन्दवप्फपरिवाहिणा चक्खुणा परिस्सजन्तो विअ गुरू उवत्थिदो। ता आआरं से पडिवज्ज। (एष ते आनन्दबाष्पपरिवाहिना चक्षुषा परिष्वजन्निव गुरुरुपस्थितः। तद् आचारमस्य प्रतिपद्यस्व।) [95]

शकुन्तला -(उत्थाय सव्रीडम्) ताद वन्दामि। (तात वन्दे) [96]

काश्यपः - वत्से,

ययातेरिव शर्मिष्ठा पत्युर्बहुमता भव।
पुत्रं त्वमपि सम्राजं सेव पूरुं समाप्नुहि॥ 4 - 9॥ [97]

गौतमी - भअवं, वरो खु एसो, ण आसिसा। (भगवन्, वरः खल्वेष, न आशीः।) [98]

काश्यपः - वत्से, इतः सद्यो हुतान् अग्नीन् प्रदक्षिणीकुरुष्व। (सर्वे परिक्रामन्ति)[2] [99]

अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्यास्समिद्वन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः।
अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धैर्वैतानास्त्वां वह्नयः पालयन्तु[3]॥ 4 - 10॥ [100]

(शकुन्तला प्रदक्षिणीकरोति) [101]

काश्यपः - वत्से, प्रतिष्ठस्वेदानीम्। (सदृष्टिक्षेपम्) क्व ते शार्ङ्गरवमिश्राः। [102]
(प्रविश्य समं त्रयः) भगवन्, इमे वयम्। [103]

काश्यपः - शार्ङ्गरव, भगिन्या मार्गम् आदेशय। [104]

शार्ङ्गरवः- इत इतो भवती। (सर्वे परिक्रामन्ति) [105]

काश्यपः - वत्से शकुन्तले, विज्ञाप्यन्ताम् सन्निहितदेवतास्तपोवनतरवः[4]। [106]

---

1. लिपिकारस्य प्रमादादेव स्नानशब्दस्य स्थाने सुप्तेति प्रयोगो भवेत्। यतो हि पूर्वस्मिन् वाक्ये कथितमेव यदभिषेकादवतीर्णाय तातकाश्यपायेति।
2. डॉ. बेलवालकरेणात्र काश्यपः ऋक्छन्दसाशास्त इति रंगसूचना प्रदत्ता। शारदा-मातृकासु नैव सा।
3. डॉ. बेलवालकरेण "अमी वेदि" मिति श्लोकस्य सर्वेषु पदेष्वनुदात्तादि-स्वरधर्माणां चिह्नानि प्रदत्तानि। किन्त्वस्मत्परीक्षितासु शारदा-मातृकासु कुत्रापि न सन्ति तादृशानि स्वरचिह्नानि।
4. ध्यातव्यमत्र यत्काश्यपः शकुन्तलामुद्दिश्य तपोवनतरुभ्योऽनुज्ञां याचयति/प्रार्थयति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वसिक्तेषु या,
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवान्।
आद्ये वः कुसुमप्रबोधसमये यस्या भवत्युत्सवः,
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥ 4-11॥[1] [107]

॥ नेपथ्ये॥

रम्यान्तरः कमलकीर्णजलैस्सरोभिश्छायाद्रुमैर्नियमितार्कमयूखतापः।
भूयात् कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्याः शान्तानुकूल[2] पवनश्च शिवश्च पन्थाः॥ 4-12॥ [108]

(सर्वे सविस्मयम् आकर्णयन्ति) [109]

शार्ङ्गरवः -

अनुमतगमना शकुन्तला तरुभिरियं वनवासबन्धुभिः।
परभृतरसितं प्रियं यदा प्रतिवचनीकृतम् एभिरात्मनः॥ 4 - 13॥ [110]

गौतमी - जादे, णादिजणसिणिद्धं अब्भणुण्णादगमणासि तवोवणदेवदाहिं। ता पणम भअवदीओ। (जाते ज्ञातिजनस्निग्धम् अभ्यनुज्ञातगमनासि तपोवनदेवताभिः। तत्प्रणम भगवतीः।) [111]

शकुन्तला -(तथा कृत्वा) (परिक्रम्य जनान्तिकम्) हला पिअंवदे, अय्यउत्तदंसणोस्सुआए वि अस्समं परिच्चअन्तीए दुक्खदुक्खेण मे चलणा पुरदोमुहा पहवन्ति। (हले प्रियंवदे, आर्यपुत्रदर्शनोत्सुकयाऽप्याश्रमं परित्यजन्त्या दुःखदुःखेन मे चरणौ पुरतोमुखौ प्रभवतः।) [112]

प्रियंवदा - ण केवलं तव विरहपय्युस्सुआओ सहीओ य्येव। जाव तए उवत्थिअविओअस्स तवोवणस्स वि अपेक्खं अवत्थन्तरं। तहा अ, (न केवलं तव विरहपर्युत्सुके सख्यौ एव[3], यावत् त्वयोपस्थितवियोगस्य तपोवनस्याप्यवेक्ष्यम् अवस्थान्तरम्। तथा च, [113]

उल्लदिदव्वकवला मई, परिसन्त-णच्चणा मोरी।
ओसरिअ-पण्डुपत्ता धुअन्ति अङ्गाइ व[ण]लदाओ॥ 4 - 14॥
उद्गीर्णदर्भकवला मृगी, परिश्रान्त(शान्त)नर्तना मयूरी।
अपसृतपाण्डुपत्रा धुन्वन्त्यङ्गानि व[न]लताः॥ 4 - 14॥) [114]

[<शकुन्तला[4] - ताद लदाबहिणीअं दाव माधवीं आमन्तयिस्सं। (तात, लताभगिनीं तावद् माधवीम् आमन्त्रयिष्ये।) [115]

काश्यपः - अवैमि तेऽस्यां सौदर्यस्नेहम्, इमां तावत् दक्षिणेनामन्त्रयतां भवती। [116]

शकुन्तला -(लताम् उपेत्यालिङ्ग्य च सस्नेहगद्गदम्) माहवि, पच्चालिङ्ग मं साहामएहिं बाहुहिं। अज्ज पहुदि दूरवत्तिणी दे भविस्सं। (माधवि, प्रत्यालिङ्ग मां शाखामयैर्बाहुभिः। अद्यप्रभृति दूरवर्तिनी ते भविष्यामि।) [117]

काश्यपः - वत्से, इयमिदानीं चिन्तनीया मे। पश्य, [118]

1. मैथिल-पाठ इतः परं, कोकिलशब्दं सूचयित्वेति रंगसूचना वर्तते। ततश्च "अनुमतगमना शकुन्तला" (4-13) इति श्लोकः (क्रमपरिवर्तनं कृत्वा) स्थापितः॥
2. मैथिल-पाठे कमलिनीहरितैः, मरीचितापः, शान्तोऽनुकूलपवनश्चेति पाठान्तराणि दृश्यन्ते।
3. मैथिल-पाठे "न केवलं तपोवनविरहकातरा त्वमेवे"ति।, काश्मीर-पाठेऽत्र रंगकर्मिभिः कृतं परिवर्तनं न युक्तियुक्तं प्रतिभाति। यतो हि पूर्वस्मिन् वाक्ये शकुन्तलया न सखीनां विरहविषये किञ्चिदुक्तम्।
4. काश्मीर-पाठे माधवीलतामधिकृत्य विनिवेशितोऽयं कोष्ठान्तर्गतः पाठ्यांशः प्रक्षिप्त एव। यतो हि, प्रथमांके नवमालिका सहकारेण (वनतोषिणा) सह स्वयंवरवधूत्वेन परिणीतवतीति तु कथितमेव।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

सङ्कल्पितं प्रथममेव मया तवार्थे भर्तारमात्मसदृशं स्वगुणैर्गता त्वम्।
अस्यास्तु सम्प्रति वरं त्वयि वीतचिन्तः कान्तं समीपसहकारमहं करिष्ये॥ 4-15।।>][119]

शकुन्तला -(सख्यावुपेत्य) एसा दोण्हं पि हत्थे णिक्खेवो। (एषा द्वयोरपि हस्ते निक्षेपः[1]।) [120]

सख्यौ - (सास्रम्) अअं जणो दाणिं कस्स सन्दिट्ठो। (रुदतः)
(अयं जनः इदानीं कस्य सन्दिष्टः।) [121]

काश्यपः - अनसूये, अलं रुदित्वा। ननु भवतीभ्यामेव शकुन्तला स्थापयितव्या। (परिक्रामन्ति) [122]

शकुन्तला -(विलोक्य) ताद एसा उडजपय्यन्तचारिणी गब्भमन्थरा मअवहू जदा आसण्णपसविणी भवे तदा मे किं पि पिअं णिवेदइत्तअं विसज्जइस्सध। (तात, एषोटजपर्यन्तचारिणी गर्भमन्थरा मृगवधू-र्यदासन्नप्रसविनी भवेत् तदा मे कम् अपि प्रियं निवेदयितारं विसर्जयिष्यथ।) [123]

काश्यपः - वत्से, नेदं विस्मरिष्यति। (शकुन्तला गतिभङ्गं निरूपयति) [124]

शकुन्तला - को णु खु एसो मादक्कन्तो विअ पुणो पुणो वसणस्स अन्तं गण्हदि।
(को नु खलु एष मात्रा क्रान्त इव पुनःपुनर्वसनस्यान्तं गृह्णाति।) [125]

काश्यपः - वत्से,

यस्य त्वया व्रणविरोहणम् इङ्गुदीनां तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे।
श्यामाकमुष्टिपरिवर्द्धितको जहाति, सोऽयं न पुत्रककृतः पदवीं मृगस्ते॥ 4-16।। [126]

शकुन्तला -(दृष्ट्वा) वच्छ, किं मं सहवासपरिच्चाइणिं केदवसिणेहं अण्णेससि। अचिरपसूदो वरदाए जणणिए विणा वड्ढिदोसि। इदाणिं पि मए विरहिदं तुमं तादो चिन्तइस्सदि। ता पडिणिअत्तसु।
(रुदती प्रस्थिता) (वत्स, किं मां सहवासपरित्यागिनीं कैतवस्नेहाम् अन्वेषसि। अचिरप्रसूतोपरतया जनन्या विना वर्द्धितोऽसि। इदानीमपि मया विरहितं त्वां तातः चिन्तयिष्यति। तत् प्रतिनिवर्तस्य।) [127]

काश्यपः - वत्से,

उत्पक्ष्मणोर्नयनयोरुपरुद्धवृत्तिर्बाष्पं कुरु स्थिरतरं विहितानुबन्धम्।
अस्मिन्नलक्षितनतोन्नतभूमिभागे मार्गे पदानि खलु ते विषमीभवन्ति॥ 4-17।। [128]

शार्ङ्गरवः - आ उदकान्तात् स्निग्धोऽनुगम्यत इति स्मर्यताम्। तदिदं सरस्तीरम्। अत्र संदिश्य ततः प्रतिगन्तुमर्हसि। [129]

काश्यपः - तेन हीमां क्षीरवृक्षच्छायाम् आश्रयामः। (उपविश्य) (सर्वे तथा कृत्वा तिष्ठन्ति।) [130]

काश्यपः - (अपवार्य) किं नु खलु तत्रभवतो दुष्यन्तस्य युक्तरूपम् अस्माभिस्संदेश्यम्। [131]
(चिन्तयति) [132]

अनसूया - सहि, ण सो अस्समे चिन्तणिज्जो अत्थि। जो तए विरहअन्तीए ण उस्सुओकदो अज्ज, पेक्ख दाव,

पडमिणीपत्तन्तरिदं वाहरिदं णाणुवाहरदि जाअं।
मुहोउब्भोढमिणालो तयि दिट्ठिं देइ चक्काओ॥ 4 - 18॥

(सखि, न स आश्रमे चिन्तनीयोऽस्ति यस्त्वया विरहयन्त्या नोत्सुकीकृतोऽद्य। प्रेक्षस्व तावत् -[133]

---

1. धर्मशास्त्रीयोऽयं निक्षेप इति (मनुस्मृतिः 8-180, 181) शब्दो न्यासार्थे प्रयुज्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

पद्मिनीपत्रान्तरितां व्याहृतां नानुव्याहरति जायाम्।
मुखोद्व्यूढमृणालस्त्वयि दृष्टिं ददाति चक्रवाकः॥ 4 - 18॥) [134]

शकुन्तला -(विलोक्य) सहि, सच्चं य्येव णलिणीपत्तन्तरिदं पिअं सहअरं अवेक्खन्ती आदुरं चक्कवाइ आरसदि, दुक्करं खु अहं करेमि। (सखि, सत्यमेव नलिनीपत्रान्तरितं प्रियं सहचरम् अप्रेक्षन्ती आतुरं चक्रवाक्यारसति, दुष्करं खल्वहं करोमि।) [135]

प्रियंवदा - अज्ज वि विणा पिएण गमअदि राइं विसूरणादीहं। हन्त गुरुअं पि दुक्खं आसाबन्धो सहावेदि॥ 4-19॥

(अद्यापि विना प्रियेण गमयति रात्रिं विसूरणादीर्घाम्।
हन्त गुरुकमपि दुःखम् आशाबन्धस्सहयति॥ 4-19॥) [136]

काश्यपः - शार्ङ्गरव, इति त्वया मद्वचनाद् राजा शकुन्तलाम् पुरस्कृत्य वक्तव्यः। [137]

शार्ङ्गरवः - आज्ञापयतु भगवान्। [138]

काश्यपः -

अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधनान् उच्चैः कुलं चात्मन-
स्त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां भावप्रवृत्तिं च ताम्।
सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वक[मियं] दारेषु दृश्या त्वया
भाग्याधीनमतः परं, न खलु तत्स्त्रीबन्धुभिर्याच्यते॥ 4-20॥ [139]

शार्ङ्गरवः - गृहीतस्सन्देशः। [140]

काश्यपः - (शकुन्तलां प्रति) वत्से, त्वमिदानीमनुशासनीया। पश्य, वनौकसोऽपि लोकज्ञा वयम्। [141]

शार्ङ्गरवः - भगवन्, न खलु धीमतां कश्चिद् अविषयो नाम। [142]

काश्यपः - वत्से, सा त्वम् इतः पतिकुलम् अवाप्य,

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी[1]
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः॥ 4-21॥ [143]

किं वा गौतमी ब्रवीति। [144]

[गौतमी] -इत्ति[अं] खु य्येव एदं वहूअणे उवदेसो। (शकुन्तलां प्रति) जादे, एवं खु अवधारेहि। (एतावत् खलु एवैतद् वधूजन उपदेशः। जाते, एवं खल्ववधारय।) [145]

काश्यपः - वत्से, एहि परिष्वजस्व मां सखीजनं च। [146]

शकुन्तला -ताद, किं इदो य्येव पिअसहिओ णिअत्तन्ति। (तात, किं इत एव प्रियसख्यौ निवर्तेते।) [147]

काश्यपः - वत्से, इमे अपि प्रदेये। तन्न युक्तमनयोस्तत्रागन्तुम्। त्वया सह गौतमी यास्यति। [148]

शकुन्तला -(उत्थाय पितरमालिङ्ग्य) कधं दाणिं तादेण विरहिदा करिसत्थपरिब्भट्ठा करेणुआ विअ पाणा धारइस्सं। (इति रोदिति) (कथमिदानीं तातेन विरहिता करिसार्थपरिभ्रष्टा करेणुकेव प्राणान् धारयिष्ये[2]।) [149]

---

1. मैथिल-पाठे "भोगेष्वनुत्सेकिनी" ति पठ्यते।
2. मैथिल-पाठे शकुन्तला स्वस्य कृते चन्दनलतायाः उपमानं प्रयोजयति। किन्तु कण्वाश्रमस्यावस्थानं तु हिमगिरेरुपत्यकासु वर्तते, तत्र तु करिसार्थस्यैव स्थानं भवति। न स्यात् तत्र चन्दनलता। काश्मीर-पाठ एवान्तरिक-सम्भावना-युक्तः पाठः सुरक्षितो वर्तते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

काश्यपः - किमेवं कातरासि।

अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे
विभवगुरुभिः कृत्यैरस्य प्रतिक्षणम् आकुला।
तनयमचिरात् प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनं
मम विरहजं न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि॥ 4-22॥ [150]

अपि चे[1] दमवधारय - [151]

यदा शरीरस्य शरीरिणश्च पृथक्त्वम् एकान्तत एव भावि।
आहार्ययोगेन विभज्यमान[2] परेण को नाम भवेद् विषादी॥ 4-23॥ [152]

(शकुन्तला पितुः पादयोः पतति।) [153]

काश्यपः - वत्से, यदिच्छसि तत् तेऽस्तु। [154]

शकुन्तला -(सख्यावुपगम्य) हला एध दुवे य्येव मं समं परिस्सजधं।
(एतं द्वे एव मां समं परिष्वजेथाम्।) [155]

उभे - (तथा कृत्वा) सहि, सो राआ जदि पच्चभिण्णाणमन्थरो भवे, तदा से इमं तदीअ-णामधेअङ्किदं अङ्गुलीअं दंसेढि। (इत्यङ्गुलीयकं दत्तः) (सखि, स राजा यदि प्रत्यभिज्ञानमन्थरो भवेत्तदास्येदं तदीयनामधेयाङ्कितमङ्गुलीयकं दर्शय।) [156]

शकुन्तला -(साशङ्कम्) इमिणा सन्देसेण अणुकम्पिदम्हि। (अनेन सन्देशेनानुकम्पितास्मि।) [157]

उभे - मा भाआहि। सिणिहो वामं आसङ्कदि (मा भैषीः। स्नेहो वामम् आशङ्कते।) [158]

शार्ङ्गरवः - (ऊर्ध्वम् अवलोक्य) युगान्तरमधिरूढस्सविता। तत् त्वरतां भवती। [159]

शारद्वतः - (उत्थाय) इत इतो भवती। (सर्वे परिक्रामन्ति) [160]

शकुन्तला -(भूयः पितरमाश्लिष्य सगद्गदम्) ताद, कदा णु खु भूओ तवोवणं पेक्खिस्सं।
(तात, कदा नु खलु भूयस्तपोवनं प्रेक्षिष्ये।) [161]

काश्यपः - वत्से, श्रूयताम् -

भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी दौष्यन्तिम् अप्रतिरथं तनयं प्रसूय।
तस्मिन् निवेशितधुरेण सहैव भर्त्रा शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन्॥ 4-24॥ [162]

गौतमी - जादे, परिहीअदि गमणवेला। ता णिवट्टेहि पिदरं। (काश्यपं प्रति) अध वा, चिरेण एसा पिदरं ण णिवट्टयिस्सदि। ता णिवट्टदु भवं। (जाते परिहीयते गमनवेला। तन्निवर्तय पितरम्।
अथ वा, चिरेण एषा पितरं न निवर्तयिष्यति। तन्निवर्तयतु भवान्।) [163]

काश्यपः - वत्से, उपरुद्ध्यते मे तपोऽनुष्ठानम्। प्रतिनिवर्तितुमिच्छामि। [164]

(शकुन्तला पुनः पितरमाश्लिष्य) [165]

शकुन्तला -तवोवापारेण तादो णिरुक्कण्ठो भविस्सदि। अहं दाणिं उक्कण्ठाभाइणि संवुत्ता।

---

1. पूर्वस्मिन् श्लोके सा कीदृशं सुखं पतिगृहेऽवाप्स्यतीति कथितम्, तदनन्तरमपि चेति समुच्चयार्थकेन निपातेन पितुर्गृहे किं भवितुमर्हति, तन्निरूप्यते।, श्लोकोऽयं काश्मीर-मैथिल-पाठयोरेव समुपलभ्यते।
2. मैथिल-पाठे वियुज्यमान इति पठ्यते।, (शृङ्गारप्रकाशे च [प्र. 21-16, पृ. 1082] समुद्धृतोऽयं श्लोकः।)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(तपोव्यापारेण तातो निरुत्कण्ठो भविष्यति। अहम् इदानीं उत्कण्ठाभागिनी संवृत्ता।) [166]

काश्यपः - अयि, किं मां जडीकरोषि। [167]

शममेष्यति मम वत्से कथमिव शोकस्त्वया रचितपूर्वम्।
उटजद्वारविरूढं नीवारबलिं विलोकयतः॥ 4 - 25॥ [168]

वत्से, गच्छ। शिवास्ते पन्थानस्सन्तु। (इति निष्क्रान्ता शकुन्तलाऽनुयायिभिः सह) [169]

सख्यौ - (चिरं विलोक्य) हद्धी अन्तरिआ(दा) सउन्तला वणराइहिं।

(हा धिक्, अन्तरिता शकुन्तला वनराजिभिः।) [170]

काश्यपः - अनसूये, गता वां सहधर्मचारिणी, निगृह्यतां शोकावेगः। अनुगच्छतं मां प्रस्थितम्। [171]

उभे - ताद, सउन्तलाविरहिदं सुण्णं विअ तवोवणं पविसामो।

(तात, शकुन्तलाविरहितं शून्यम् इव तपोवनम् प्रविशामः।) [172]

काश्यपः - स्नेहवृत्तिरिव दर्शनीया। (सविमर्शं परिक्रम्य) [173]

हन्त भोः, शकुन्तलां विसृज्य लब्धमिदानीं स्वास्थ्यम्। कुतः - [174]

अर्थो हि कन्या परकीय एव ताम् एव सम्प्रेष्य परिगृहीतुः।
जातोऽस्मि सद्यो विशदान्तरात्मा चिरस्य निक्षेपम्[1] **इवार्पयित्वा॥** 4 - 26॥ [175]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे) [176]

॥ इति अभिज्ञानाख्ये शकुन्तलाख्ये नाटा (ट)के चतुर्थोऽङ्कः[2]**॥ [177]**

1. न्यासस्य कृते प्रयुज्यमानोऽयं शब्दो धर्मशास्त्रे सुप्रचलितः। एवञ्च, शकुन्तलायाः 120 क्रमांके स्थितायाम् उक्तावप्ययमेव शब्दो विनियुक्तः। तेनास्य पाठस्यैव प्रामाणिकता सिध्यति। (मनुस्मृतिः 8-180, 181)
2. मैथिल-पाठे "शकुन्तला-प्रस्थानो नाम०" इति।, बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ अथ पञ्चमोऽङ्कः॥

॥ ततः प्रविशति कञ्चुकी[1]॥ [1]

कञ्चुकी - (आत्मानं विलोक्य) (निःश्वस्य) अहो बत कीदृशीं वयोऽवस्थां प्राप्तोऽस्मि। [2]

आचार इत्यधिकृतेन मया गृहीता या वेत्रयष्टिरवरोधगृहेषु राज्ञः।
कालेन सैव परिहीननियोगशक्तेर्गन्तुं ममेयम् अवलम्बनवस्तु जाता॥ 5-1॥ [3]

यावद् अभ्यन्तरगताय देवायानुष्ठेयम् अकालक्षेपार्हं निवेदयामि। (द्वे पदे गत्वा) किं पुनस्तत्।

(संस्मृत्य) आम्, कण्वशिष्याः तपोधना देवं द्रष्टुम् इच्छन्ति। भोश्चित्रम् इदम् - [4]

क्षणात्प्रबोधमायाति लङ्घ्यते तमसा पुनः।
निर्वास्यतः प्रदीपस्य शिखेव जरतो मतिः[2]॥ 5 - 2॥ [5]

(परिक्रम्याकाशे[3]) [6]

मौद्गल्य, धर्मकार्यमनतिपात्यं, तद्देवस्य तदावेदयितुमिच्छामि। किं ब्रवीषि। नन्विदानीमेव धर्मासनाद् उत्थितः पुनरुपरुध्यते देव इति। न त्वीदृशो लोकतन्त्राधिकारः। पश्य,[7]

भानुस्सकृद् युक्ततुरङ्ग एव रात्रिन्दिवं गन्धवहः प्रयाति।
अवेक्ष्य दाह्यं न शमोऽस्ति वह्नेष्षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः[4]॥ 5-3॥ [8]

किं ब्रवीषि। तेन सङ्गीतकशालासङ्गतं मण्डपं गच्छ, अनुष्ठीयतां नियोग इति। यावत् तत्र गच्छामि। (परिक्रम्यावलोक्य च) एष देवः। [9]

मनुः प्रजास्स्वा इव तन्त्रयित्वा निषेवते शान्तमना विविक्तम्।
यूथानि संचार्य रविप्रतप्तः शीतं दिवा स्थानमिव द्विपेन्द्रः॥ 5-4॥ [10]

(ततः प्रविशत्यासनस्थः परिमितपरिवारो[5] राजा विदूषकश्च) [11]

विदूषकः - (कर्णं दत्त्वा) भोः णं सङ्गीदसालअं। तेण अवधानं देहि। तालगती(ति)विसुद्धाए खु वीणाए सरसञ्जोआ सुणीअन्ति। जाणे तत्थभोदी हंसवदिआ वण्णपरिचअं करेदित्ति। (भोः, ननु सङ्गीतशालकम्। तेनावधानं देहि। तालगतिविशुद्धायाः खलु वीणायाः स्वरसंयोगाः श्रूयन्ते। जाने तत्रभवती हंसवतिका वर्णपरिचयं करोतीति।) [12]

राजा - (आकर्णयन्) माधव्य, तूष्णीं भव, यावद् आकर्णयामि। [13]

कञ्चुकी - अये, व्यासक्तचित्तो देवः। अवसरं तावत् प्रतिपालयामि। (विलोकयन् स्थितः[6]) [14]

---

1. काश्मीर-मैथिल-बंगीय-पाठेषु कञ्चुकिन उक्त्याङ्कस्यारम्भो जायते।, दाक्षिणात्य-देवनागरी-पाठयो-रारम्भो हंसपदिकाया गीतेन सह भवति।, दृश्यक्रमांके परिवर्तनं रंगकर्मिभिरेव क्रियते, तत्तु सुविदितम्।
2. काश्मीर-पाठे कञ्चुकिजनस्यानयोक्तया दुष्यन्तस्य मनसि शकुन्तलेदानीं विस्मृतैवेति व्यञ्जयितुमुपक्रम्यते।
3. काश्मीर-पाठ एवेदमाकाशभाषितम्।, मैथिल-पाठे तादृशं दृश्यं सर्वथा परिवर्तितम्।
4. काश्मीर-पाठे (तृतीय-चतुर्थ-क्रमांकयोः) स्थितौ श्लोकौ मैथिल-पाठे विपरितेन क्रमेणोपस्थाप्येते।
5. काश्मीर-रंगभूमौ दुष्यन्त-विदूषकाभ्यां सहान्यान्यल्पसंख्याकानि पात्राणि स्युरित्यनुमीयते।
6. काश्मीर-पाठे राज्ञः परिवारेण सह कञ्चुकी रंगभूमावेव कस्मिन्नपि कोणे तिष्ठति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(नेपथ्ये गीयते) [15]

अहिणव-महुलोहभाविणं तह परिचुम्बिअ चूदमञ्जरिं।
कमलवसतिमेत्तणिव्वुदो महुअर वीस्सरदो सि णं कहं॥ 5 - 5॥

(अभिनव-मधुलोभभावितस्तथा परिचुम्ब्य चूतमञ्जरीम्।
कमलवसतिमात्रनिर्वृतो मधुकर[1] विस्मृतोऽस्येनां कथम्॥ 5 - 5॥) [16]

राजा - अहो रागपरिवाहिणी गीतिः। [17]

विदूषकः - किं दाव से गीतिआए। अवि गिहिदो भअवदा अक्खरत्थो। (किं तावदस्या गीतिकायाः, अपि गृहीतो भगवता[2]-क्षरार्थः।) [18]

राजा - (स्मितं कृत्वा) वयस्य, सत्कृतप्रणयोऽय[3] जनः। तदस्याः कृते कुलप्रभाम्[4] अन्तरेण समुपालम्भम् उपागतोऽस्मि। तन्मद्वचनाद् उच्यतां हंसवतिका। निपुणम् उपालब्धास्स्म इति। [19]

विदूषकः - जं भवं आणवेदि। (उत्थाय) भो वअस्स। गिहीदो तए परकीहिं हत्थेहिं सिखण्डए अच्छभल्लो, अवीदराअस्स विअ णत्थि मे मोक्खो। (यद् भवान् आज्ञापयति। भो वयस्य,गृहीतस्त्वया परकीयैर्हस्तैः शिखण्डके भल्लूकः। अवीतरागस्येव नास्ति मे मोक्षः।) [20]

राजा - वयस्य, गच्छ, नागरकवृत्त्या संज्ञापयैनाम्। [21]

विदूषकः - का गदी। (का गतिः।) (इति निष्क्रान्तः) [22]

राजा - (स्वगतम्) किं नु खलु गीतमाकर्ण्येदम् एवं विधार्थम् इष्टजनविरहाद् ऋतेऽपि बलवदुत्कण्ठितोऽस्मि। अथवा, [23]

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुकीभवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनम् अभोगपूर्वम्[5]
भाविस्थितानि[6] जननान्तरसौहृदा[नि]॥ 5 - 6॥ [24]

कञ्चुकी - (उपसृत्य) (प्रणिपत्य) जयतु जयतु देवः। एते खलु हिमगिरेरुपत्यकारण्यकाः काश्यपसन्देशम् आदाय सस्त्रीकास्तपस्विनस्सम्प्राप्ताः। श्रुत्वा प्रभविष्णुः प्रमाणम्। [25]

राजा - किं काश्यपसन्देशहारिणः सस्त्रीकाः तपस्विनः[7]। [26]

कञ्चुकी - अथ किम्। [27]

राजा - तेन हि, मद् वचनाद् विज्ञाप्यताम् उपाध्यायस्सोमरातः। अमूनाऽऽश्रमवासिनः श्रौतेन विधिना सत्कृत्य स्वयमेव प्रवेशयितुमर्हसि। अहमप्येनांस्तपस्विदर्शनोचिते देशे प्रतिपालयामीति। [28]

---

1. कवीन्द्रेण रवीन्द्रेणानेनैकेनैव श्लोकेन दुष्यन्तस्य भ्रमरवृत्तिता प्रदर्शिता। किन्तु तत्त्वैकदेशि-भाष्यम्। सुधीभिः संस्कृतमञ्जरी (देहली-संस्कृत-अकादेमीतः प्रकाशिता 90, वर्षम्-2015, पृ. 90) द्रष्टव्या।
2. काश्मीर-पाठे राज्ञः कृते प्रयुज्यमानं भगवदिति सर्वनाम चिन्त्यम्।, प्रतिलिपिकर्तृणां दोषः स्यात्?।
3. मैथिल-पाठे "सकृत्कृतप्रणयो०" इति परिवर्तनम्।
4. काश्मीर-पाठे राज्ञः पूर्वपरिणीताया देव्या नाम कुलप्रभा वर्तते, न वसुमतीति तदवधेयम्।
5. मैथिल-पाठे-"ऽबोधपूर्वमि"ति।
6. मैथिल-पाठे "भावस्थिराणी" ति।
7. मैथिल-पाठ एतौ द्वौ शब्दौ न स्तः।, काश्मीर-पाठे तौ प्रक्षिप्तौ स्याताम्, उक्ति-क्रमांकः 29 इत्यस्या अनुरोधात्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

कञ्चुकी - यद् आज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रान्तः) [29]

राजा - (उत्थाय) वसुमति[1], अग्निशरणम् आदेशय। [30]

प्रतीहारी - इदो इदो देवः। (परिक्रामन्ती) (इतः इतः देवः।) [31]

राजा - (अधिकारखेदं रूपयित्वा) सर्वः प्रार्थितमधिगम्य सुखी सम्पद्यते, राज्ञां तु चरितार्थतापि दुःखोत्तरैव। कुतः - [32]

औत्सुक्यमात्रमवसादयति प्रतिष्ठा क्लिश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेव।
नातिश्रमापनयनाय यथा श्रमाय राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम्॥ 5-7॥ [33]

(नेपथ्ये)

वैतालिकाः[2]- विजयतां देवः[3]। [34]

स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः
प्रतिदिनमथवा ते सृष्टिरेवंविधैव।
अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम्॥ 5-8॥ [35]

अपि च,

नियमयसि विमार्गप्रस्थितान् आत्तदण्डः
प्रशमयसि विवादं कल्पसे रक्षणाय।
अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः सन्तु नाम
त्वयि तु परिसमाप्तं बन्धुकृत्यं प्रजानाम्॥ 5-9॥ [36]

राजा - (आकर्ण्य) एते क्लान्तमनसः पुनर्नवीभूतास्स्मः।[4] (परिक्रम्य) [37]

प्रतीहारी- एसो अहिणवसम्मज्जनरमणीओ सण्णिहिदकविलधेणू[5] अग्गिसरणालिन्दो। ता आरुहदु देवो। (एषोऽभिनव सम्मार्जनरमणीयस्सन्निहितकपिलधेनुरग्निशरणालिन्दः। तदारोहतु देवः।) [38]

राजा - (आरोहणं नाटयित्वा) (परिजनांसावलम्बी तिष्ठति) (सवितर्कम्) वसुमति, किम् उद्दिश्य तत्रभवता काश्यपेन मत्सकाशम् ऋषयः प्रहितास्स्युः। [39]

किं तावद् व्रतिनाम् उपोढतपसां विघ्नैस्तपो दूषितं
धर्मारण्यगतेषु केनचिद् उत प्राणिष्वसच्चेष्टितम्।
आहोस्वित् प्रसवो ममापचरितैर्विष्टम्भितो वीरुधाम्
इत्यालीढबहुप्रतर्कम् अपरिच्छेदाकुलं मे मनः॥ 5-10॥ [40]

प्रतीहारी - देवस्स भुअणपरिसङ्गणिव्वुदे चतुरस्समे कुदो एदं। किं तु सुअरिदाभिणन्दिणो इसओ देवं सभाजइदुं आगदित्ति तक्केमि। (देवस्य भुवनपरिष्वङ्गनिर्वृते चतुराश्रमे कुत एतत्। किन्तु सुचरिताभिनन्दिन ऋषयो देवं सभाजयितुम् आगता इति तर्कयामि।) [41]

---

1. काश्मीर-पाठे "वसुमती" ति तु प्रतीहारीत्यस्या नाम।
2. काश्मीर-पाठे हंसवतिकाया गीतादनन्तरमेव तृतीय-क्रमांके वैतालिकानां श्लोकगानं प्रस्तूयते, तदवधेयम्।
3. काश्मीर-पाठे सर्वे वैतालिकाः संमील्यैव श्लोकद्वयं प्रस्तुवन्ति।, मैथिल-पाठे वैतालिकौ पृथक् पृथक् श्लोकं प्रस्तुवतः।, रंगकर्मसु पार्थक्यं सुस्पष्टं दृश्यते।
4. काश्मीर-पाठे हंसवतिकाया गीतेन संक्षुब्धे राज्ञो मनसि धर्मबुद्धिं प्रकटयितुं वैतालिकानां गानं प्रस्तूयते। यया च धर्मबुद्ध्या शकुन्तलायाः प्रत्याख्यानं भवति।
5. काश्मीर-पाठे वैतालिकगानेन राज्ञो या धर्मबुद्धिरालोकिता, तां संपोषयितुं कपिला गौर्निर्दिश्यतेऽत्र रंगे।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(ततः प्रविशन्ति गौतमीसहिताः शकुन्तलां पुरस्कृत्य मुनयः। पुरतश्चैषां पुरोहित-कञ्चुकिनौ।) [42]

कञ्चुकी - इत इतो भवन्तः। (सर्वे परिक्रामन्ति) [43]

शार्ङ्गरवः -

महाभागस्सत्यं नरपतिरभिन्नस्थितिरसौ
न कश्चिद् वर्णानाम् अपथम् अपकृष्टोऽपि भजते।
तथापीदं शश्वत् परिचितविविक्तेन मनसा
जनाकीर्णं मन्ये हुतवहपरीतं गृहमिव॥ 5-11॥ [44]

शारद्वतः - स्थाने भवतः पुरप्रवेशाद् इत्थंभूतस्संवेगः। अहमपि, [45]

अभ्यक्तमिव स्नातः, शुचिरशुचिमिव, प्रबुद्ध इव सुप्तम्।
बद्धमिव स्वैरगतिर्जनम् अवशस्सङ्गिनमवैमि॥ 5-12॥ [46]

शकुन्तला -(दुर्निमित्तं सूचयन्ती) (सखेदम्) अम्मो, किं पि वामेदरं मे णअणं विप्पकरेदि।
(अहो किम् अपि वामेतरं मे नयनं विप्रकरोति।) [47]

गौतमी - पडिहदं अमङ्गलं। सुहाइं दे भत्तु-कुलदेवदाओ विदरन्तु। (परिक्रामन्ति)
(प्रतिहतम् अमङ्गलं, सुखानि ते भर्तृकुलदेवता वितरन्तु।) [48]

पुरोहितः - (राजानं निर्दिशन्) भोस्तपस्विनः। असावत्रभवान् वर्णाश्रमाणां रक्षिता प्रागेव मुक्तासनः प्रतिपालयति। पश्यतैनम्। [49]

ऋषयः- महाब्राह्मण, काममेतद् अभिनन्दनीयम्। तथापि वयमत्र मध्यमस्थाः। कुतः - [50]

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैर्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धतास्सत्पुरुषास्समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्॥ 5-13॥ [51]

प्रतीहारी - देव, पसण्णमुहराआ दीसन्ति सत्थकय्या इसओ। (देव, प्रसन्नमुखरागा दृश्यन्ते स्वस्थकार्या ऋषयः।) [52]

राजा - (शकुन्तलां दृष्ट्वा) अथात्रभवती - [53]

कास्विद् अवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या।
मध्ये तपोधनानां किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम्॥ 5-14॥ [54]

प्रतीहारी - देव, कुदूहलदाए विम्हिदम्हि। ण मे तक्को पसीददि। (देव, कुतूहलतया विस्मितास्मि। न मे तर्कः प्रसीदति।) [55]

परिजनः[1] - भट्टा, दंसणीआ खु से आकिदी लक्खीअदि। (भर्तः, दर्शनीया खल्वस्या आकृति र्लक्ष्यते।) [56]

शकुन्तला -(आत्मगतम्) (उरसि हस्तं दत्त्वा) (ससाध्वसम्) हिअअ, किं एवं वेवसि। अय्यउत्तस्स भावत्थिदिं सुमरिअ धीरं दाव होहि। (हृदय, किमेवं वेपसि। आर्यपुत्रस्य भावस्थितिं स्मृत्वा धीरं तावद् भव।) [57]

पुरोहितः- (पुरो गत्वा) देव, एते विधिवद् अर्चितास्तपस्विनः। कश्चिदेतेषाम् उपाध्यायसन्देशः। तं देवः श्रोतुम् अर्हति। [58]

राजा - (सादरम्) अवहितोऽस्मि। [59]

ऋषयः- (उपसृत्य) (हस्तान् उद्यम्य) विजयस्व राजन्। [60]

राजा - (सप्रणामम्) सर्वान् अभिवादये वः। [61]

---

1. काश्मीर-पाठ एवेयं उक्तिः परिजन-मुखे दृश्यते। काश्मीर-रंगकर्मिणामत्र सावधानता परिलक्ष्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

ऋषयः- स्वस्ति भवते। [62]

राजा- अपि निर्विघ्नं तपः। [63]

ऋषयः-

कुतो धर्मक्रियाविघ्नस्सतां रक्षितरि त्वयि।
तमस्तपति घर्मांशौ कथम् आविर्भविष्यति।। 5-15।। [64]

राजा- अर्थवान् मे खलु राजशब्दः। अथ तत्रभवाल्ँलोकानुग्रहाय कुशली काश्यपः। [65]

शार्ङ्गरवः- स्वाधीनकुशलास्सिद्धिमन्तः। स भवन्तमनामयप्रश्नपूर्वम् इदम् आह। [66]

राजा- किम् आज्ञापयति। [67]

शार्ङ्गरवः - (शकुन्तलाम् उद्दिश्य) यन् मिथस्समयाद् इमाम् मदीयां दुहितरम् उपयेमे। तन्मया प्रीतमनसा युवयोरनुज्ञातम्। कुतः - [68]

त्वमर्हतां प्राग्रहरः स्मृतो हि नः, शकुन्तला मूर्तिमतीव सत्क्रिया।
समानयंस्तुल्यगुणं वधूवरं चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः।। 5-16।। [70]

तदियम् इदानीं आपन्नसत्त्वा प्रतिगृह्यतां सहधर्मचारणायेति। [71]

गौतमी - भद्दमुह, वत्तुकामा त्थिदा म्हि। ण अ मे वअणावकासो अत्थि। कधं त्थि (ति) - [72]

णावेक्खिदो गुरुअणो इमा इणा इह पुच्छिदा बन्धू।
एक्केक्कमेण वरिए किं भण्णत एक्कम् एक्कमि।। 5-17।।

(भद्रमुख, वक्तुकामा स्थिताऽस्मि। न च मे वचनावकाशोऽस्ति। कथमिति-

नापेक्षितो गुरुजनोऽनया, न चात्र पृष्टा बन्धवः।
एकैकेन वरिते किं भण्यताम् एकम् एकस्मिन्।। 5-17।।) [73]

राजा - (साशङ्काकुलम् आकर्ण्य) अयि, किमिदम् उपन्यस्तम्। [74]

शकुन्तला- (स्वगतं, साशङ्कम्) हुं पावो से वअणोवक्खेवो। (हुँ, पावकोऽस्य वचनोपक्षेपः[1]।) [75]

शार्ङ्गरवः - [2]कथं नाम अत्रभवन्त एव सुतरां लोकयात्रानिष्णाताः। [76]

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयाम् जनोऽन्यथा भर्तृमतीं विशङ्कते।
अतः समीपे परिणेतुरिष्यते तद् अप्रियापि प्रमदा स्वबन्धुभिः।। 5-18।। [77]

राजा - किम् अत्रभवती मया परिणीतपूर्वा[3]?। [78]

शकुन्तला -(सविषादमात्मगतम्) हिअअ, संवदिदा खु दे आसङ्का। (हृदय, संवर्द्धिता खलु त आशङ्का।) [79]

शार्ङ्गरवः - राजन्! किं कृतकार्यद्वेषाद् धर्मं प्रति विमुखता राज्ञः। [80]

राजा- कुतोऽयम् असत्कल्पनाप्रसङ्गः?। [81]

शार्ङ्गरवः - मूर्च्छन्त्यमी विकाराः प्रायेणैश्वर्यमत्तेषु[4]।। 5 - 19।। [82]

---

1. स्वगतमिति रंगसूचनया प्रस्तुतेयमुक्तिः संदेहास्पदा, नाट्यशास्त्रे (25-88) त्वात्मगतमित्येव विहितम्।
2. मैथिल-पाठे "किं नाम किमिदमुपन्यस्तमिती" त्यधिकं वाक्यम्।, तच्चात्र काश्मीर-पाठे भवितुमर्हति।
3. मैथिल-पाठे "परिणीतपूर्वा, मये"ति पदक्रमभेदेन काकुभेदो व्यज्यते।
4. काश्मीर-पाठे वाक्यद्वयमिदं गद्यात्मकं परिलक्ष्यते, नास्तीयमार्या (गाथा)। अनुगामिनि काले तत्तु मैथिल-रंगकर्मिभिः पाठान्तर-प्रस्तावेनार्याछन्दसि परिवर्तितम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- विशेषेणाधिक्षिप्तोऽस्मि। [83]

गौतमी - (शकुन्तलां प्रति) जादे, मा मुहुत्तअं लज्ज, अवणयिस्सं दाव दे अवगुण्ठनं। तदो भट्टा तुमं अहिजाणइस्सदि त्ति। (जाते, मा मुहूर्तकं लज्जस्व। अपनेष्यामि तावत् तेऽवगुण्ठनम्। ततो भर्ता त्वाम् अभिज्ञास्यतीति।) [84]

(शकुन्तला[1] यथोक्तं करोति) [85]

राजा- (शकुन्तलां निर्वर्णयन् सविस्मयम् आत्मगतम्) [86]

इदमुपनतमेवं रूपम् अक्लिष्टकान्ति प्रथमपरिगृहीतं स्यान्न वेत्यध्यवस्यन्।
भ्रमर इव विभाते कुन्दमन्तस्तुषारम् न च खलु परिभोक्तुं नापि शक्नोमि हातुम्।। 5-20।।[87]

परिजनः - (जनान्तिकम्[2]) अहो धम्मावेक्खिदा भट्टिणो। ईदिसं णाम सुहोवणदं इत्थीरदणं पेक्खिअ को अण्णो विआरेदि। (अहो धर्मावेक्षिता भर्तुः। ईदृशं नाम सुखोपनतं स्त्रीरत्नं प्रेक्ष्य कोऽन्यो विचारयति।) [88]

शार्ङ्गरवः- राजन्, किम् एवम् जोषम् आस्यते?। [89]

राजा- भोस्तपस्विन्, चिन्तयन्नपि न खलु स्वीकरणम् अत्रभवत्याः स्मरामि। तत्कथमनभिव्यक्तसन्धिलक्षणम् आत्मानं क्षेत्रिणम् अनाशंसमानः प्रतिपत्स्ये। [90]

शकुन्तला- (अपवार्य) हद्धी कधं परिणए य्येव सन्देहो। भग्गा दाणिं मे दूरारोहिणी आसा। (हा धिक्, कथं परिणय एव सन्देहः। भग्नेदानीं मे दूरारोहिण्याशा।) [91]

शार्ङ्गरवः - मा तावत्।

कृताभिमर्शाम् अवमन्यमानस्सुतां त्वया नाम मुनिर्विमान्यः।
जुष्टं प्रतिग्राहयता स्वम् अर्थं पात्रीकृतो दस्युरिवासि येन।। 5-21।। [92]

शारद्वतः - शार्ङ्गरव, विरम त्वमिदानीम्। शकुन्तले, वक्तव्यमुक्तमस्माभिः। सोऽयमत्रभवान् इदमाह। तद् दीयताम् अस्मै प्रतिवचनम्। [93]

शकुन्तला - (स्वगतम्) (सखेदं निःश्वस्य) इदं अवत्थान्तरं गदे तादिसे मुहुत्तरागे, किं वा सुमराविदेण सम्पदं तेण। अह वा, अत्ता दाणिं मे सोधणीओ त्थि, विवदिस्सं एदं। (इदम् अवस्थान्तरं गते तादृशे मुहूर्तरागे किं वा स्मारितेन साम्प्रतं तेन। अथ वा, आत्मेदानीं मे शोधनीयोऽस्ति, विवदिष्याम्येतत्।) [94][3]

(प्रकाशम्) अय्यउत्त ......, (इत्यर्धोक्ते **स्वगतम्**[4]) अहवा, संसइदो दाणिं मे समुदाआरो।

(आर्यपुत्र, ...। अथवा, संशयित इदानीं मे समुदाचारः।) [95]

(प्रकाशम्) पोरव, जुत्तं णाम पुरा अस्समपदे सब्भावुत्ताण हिअअं इमं जणं समयपुरवं पदारिअ, इदिसेहिं अक्खरेहिं पच्चाचक्खिदुं। (पौरव, युक्तं नाम पुराश्रमपदे सद्भावोत्तानहृदयम् इमं जनं समयपूर्वम् प्रतार्येदृशैरक्षरैः प्रत्याख्यातुम्।) [96]

राजा- (कर्णौ स्पृष्ट्वा) शान्तं [पापम्]। [97]

व्यपदेशम् आविलयितुं किम् ईहसे माम् [च पातयितुम्।
कूलङ्कषेव] सिन्धुः प्रसन्नमोघं तटरुहं च।। 5-22।। [98]

---

1. काश्मीर-पाठेऽत्र "गौतमी"ति भवितुमर्हति।, रंगकर्मिणामियं प्रतिलिपिः स्यादिति निश्चीयते।
2. मैथिल-पाठे प्रतीहारी भणतीदं वाक्यम्।, स्वगतमित्युक्त्या प्रस्तूयते च तत्।, तन्न युक्तम्।
3. अत्रापि शकुन्तलाया उक्तिः स्वगतमिति शब्दात्मिकया रंगसूचनया प्रस्तूयते। अतो रंगकर्मिणां प्रक्षेपः स्यादित्यनुमीयते।
4. अत्र स्वगतमित्यस्य स्थाने "आत्मगतमि"ति भवितुमर्हति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला – जदि परमत्थदो परपरिग्गहणसङ्किणा तए एवं वुत्तं। दा अहिण्णाणेण गुरुणा तुह सन्देहं अवनइस्सं। (यदि परमार्थतः परपरिग्रहणशङ्किना त्वयैवमुक्तम्। तदभिज्ञानेन गुरुणा तव सन्देहम् अपनेष्यामि।) [99]

राजा– उदारम्। [100]

शकुन्तला– (मुद्रास्थानम् परामृश्य) हद्धी, अङ्गुलीअसुण्णा मे अङ्गुली। (तापसीं पश्यति)
(हा धिक्, अङ्गुलीयशून्या मेऽङ्गुली।) [101]

गौतमी– ण खु दे सक्कावदारे सचिदि(ति)त्थोदअं अवगाहमाणाए पब्भट्ठो अङ्गुलीओ।
(न खलु ते शक्रावतारे शचीतीर्थोदकम् अवगाहमानायाः प्रभ्रष्टोऽङ्गुलीयकः।) [102]

राजा– (सस्मितम्) इदम् तद् यौतुकं प्रत्युपन्नं स्त्रीणाम् इति यदुच्यते। [103]

शकुन्तला – एत्थ दाव विहिणा दंसिदं पहुत्तणं, अवरं दे कधयिस्सं।
(अत्र तावत् विधिना दर्शितम् प्रभुत्वम्, अपरं ते कथयिष्यामि।) [104]

राजा– श्रोतव्यमिदानीं संवृत्तम्। [105]

शकुन्तला – ण खु तत्थइक्कदिअसे णवमालिआमण्डवके णलिणीपत्तभाअणगदं उदअं तव हत्थसण्णिहिदं आसी। (न खलु तत्रैकदिवसे नवमालिकामण्डपके नलिनीपत्रभाजनगतमुदकं तव हस्तसन्निहितम् आसीत्।) [106]

राजा – शृणुमस्तावत्। [107]

शकुन्तला – तक्खणं च मम सो किदअपुत्तओ हरिणओ उवत्थिदो। तदो तए अअं दाव पढुमं पिवदु त्ति अणुकम्पिणा उवच्छन्दिदो। ण उण दे अवरिइदस्स हत्थब्भासो उवगदो। पच्छा तस्सिं य्येव उदए मए गिहीदे पणअपकासइव्वं अं (प)हसिदो सि, भणिदं च तए, सव्वो सगन्धे विससिदि, दुवेवि एत्थ आरण्णआ त्ति। (तत्क्षणं च मम स कृतकपुत्रको हरिणक उपस्थितः। ततस्त्वयायं तावत् प्रथमं पिबत्वित्यनुकम्पिनोपच्छन्दितः। न पुनस्तेऽपरिचितस्य हस्ताभ्यास उपगतः। पश्चात् तस्मिन्नेवोदके मया गृहीते प्रणयप्रकाशपूर्वं प्रहसितोऽसि, भणितं च त्वया सर्वस्सगन्धे विश्वसिति। द्वावप्यत्रारण्यकाविति।) [108]

राजा– (विहसन्) एभिरात्मकार्यनिर्वत्तिनीनां योषितामनृतवाङ्मधुभि[1] राकृष्यन्ते विषयिणः। [109]

गौतमी – महाभाअ, णारहसि इत्तिकं मन्तइदुं। तवोवणसंवड्ढिदो खु अअं जणो अणभिण्णो केदवस्स।
(महाभाग, नार्हस्येतावन्मन्त्रयितुम्। तपोवनसंवर्द्धितः खलु अयं जनोऽनभिज्ञः कैतवस्य।) [110]

राजा– तापसवृद्धे,

> **स्त्रीणाम् अशिक्षितपटुत्वम् अमानुषीषु**
> **सन्दृश्यते किम् उत याः परिबोधवत्यः।**
> **प्राग् अन्तरिक्षगमनात् स्वम् अपत्यजातम्**
> **अन्यद्विजैः परभृतः किल पोषयन्ति॥ 5 - 23॥ [111]**

शकुन्तला – (सरोषम्) अत्तणो हिअआणुमाणेण सव्वं पेक्खसि[2]। को अण्णो धम्मकञ्चुअपवेसिणो तण च्छण्णकूवोपमस्स तवाणुकारी भविस्सदि। (आत्मनो हृदयानुमानेन सर्वं प्रेक्षसे, कोऽन्यो धर्मकञ्चुकप्रवेशिन-स्तृणच्छन्नकूपोपमस्य तवानुकारी भविष्यति।) [112]

---

1. मैथिल-पाठे "मधुराभिरनृतवाग्भिरि" ति।
2. काश्मीर-पाठे शकुन्तला दुष्यन्तम् अनार्येति सम्बोधनं न करोति, तदवधेयम्।, मैथिल-पाठे तद्दृश्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा - [< (स्वगतम्) वनवासाद् अविभ्रमः पुनरत्रभवत्याः कोपो लक्ष्यते। तथा हि - [113]

न तिर्यग् अवलोकि चक्षुरतिलोहितं केवलं[1]
वचोऽपि परुषाक्षरं न च पदेषु संसज्जते।
हिमार्त इव वेपते सकल एष बिम्बाधरः
स्वभावविनते भ्रुवौ युगपद् एव भेदं गते।। 5-24।। [114]

(प्रकाशम्)>][2] भद्रे, दुष्यन्तचरितं प्रजासु प्रथितम्। न चापीदं दृश्यते[3]। [115]

शकुन्तला[4] -

[< तुम्हे य्येव पमाणं जाणध धम्मत्थितिं च लोअस्स।
लज्जा विणिज्जिदाओ जाणन्ति खु किण्ण महिलाओ।।[5] 5-25।।

(युवामेव प्रमाणं जानीथो धर्मस्थितिं च लोकस्य।
लज्जाविनिर्जिता जानन्ति खलु किं न महिलाः।। 5-25।।)>][116]

सुट्ठु दाव सच्छन्दआरिणी कदम्हि जा अहं इमस्स पुरुवंसपच्चएण हिअअसत्थधारस्स मुहमहुणो हत्थब्भासं उवगदा। (सुष्ठु तावत् स्वच्छन्दचारिणी कृतास्मि, याहं अस्य पुरुवंशप्रत्ययेन हृदयशस्त्रधरस्य मुखमधुनो हस्ताभ्याशम् उपगता।) [117]

(इति मुखमावृत्य रोदिति।) [118]

भागुरिः[6] - इत्थम् अप्रतिहतं चापलं दहति। अतः खलु, [119]

परीक्ष्य सर्वं कर्तव्यं विशेषात् संविदः क्रियाः।
अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम्।। 5 - 26।। [120]

राजा- अयि भोः, किमत्रभवतीप्रत्ययाद् एवास्मान् अतिबलेन क्षिण्वन्ति भवन्तः। [121]

शार्ङ्गरवः- श्रुतं भवद्भिरधरोत्तरम्। [122]

आ जन्मनः शाठ्यम् अलक्षितो यः, तस्याप्रमाणं वचनं जनस्य।
पराभिसन्धानमधीयते यैर्विद्येति ते सन्तु किलाप्तवाचः।। 5-27।। [123]

राजा- हन्त भोस्सत्यवादिन्, अभ्युपगतं तावदस्माभिः। एवं विधा वयम्। किं पुनरिमाम् अभिसन्धाय लभ्यते। [124]

शारद्वतः - विनिपातः। [125]

राजा- तं नाहं प्रार्थये। [126]

शारद्वतः - भो राजन्, किमुत्तरोत्तरैः। अनुष्ठितगुरुनिदेशाः स्मः। सम्प्रति निर्गच्छामहे[7] (प्रतिनिवर्तामहे) वयम्, [127]

---

1. मैथिल-पाठ इतः परमपि नवीनः श्लोकः प्रक्षिप्यते।
2. कोष्ठान्तर्गतोऽयमपि श्लोकः स्वगतोक्तिरूपेण प्रस्तावितत्वात् प्रक्षिप्तः स्यात्।
3. मैथिल-पाठे "तवापीदं दृश्यत" इति।
4. केनापि स्थानिकेन रंगकर्मिणा शकुन्तलाया मुखे (कोष्ठान्तर्गतः) पाठ्यांशोऽयं प्रक्षिप्त इति प्रतीयते।
5. काश्मीर-पाठे वर्तमानेयं प्राकृत-गाथा पथ्याऽऽर्या भवति। (नास्त्यत्र कश्चिद् दोषः।)
6. काश्यपस्याश्रमाद् ये जना हस्तिनापुरं प्रति प्रस्थिता आसन्, तेषु भागुरेरुल्लेखो न प्राप्यते।
7. मैथिल-पाठे "प्रतिनिवर्तामहे वयमि"ति साधु क्रियापदम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

तदेषा भवतः पत्नी त्यज वैनां गृहाण वा।
उपयन्तुर्हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी॥ 5 – 28॥ [128]

गौतमि, गच्छ गच्छाग्रतः। (सर्वे प्रस्थिताः) [129]

शकुन्तला –(सदैन्यम्) हुं इमिणा दाव केतवेण विप्र(प्प)लब्धम्हि। तुम्हे वि मं परिच्चइदुमिच्छध। ता (का) गदी। (इति गौतमीम् अनुगच्छति।) (हुं अनेन तावत् कैतवेन विप्रलब्धास्मि। यूयमपि मां परित्यक्तुम् इच्छथ, तत्का गतिः।) [130]

गौतमी- (स्थित्वा) वच्छ साङ्गरव, अणुगच्छदि एसा करुणपरिदेविणी सउन्तला। पच्चादेसकलुसे भत्तारे किंवा पुत्तिआ मे करेदु। (वत्स शार्ङ्गरव, अनुगच्छत्येषा करुणपरिदेविणी शकुन्तला प्रत्यादेशकलुषे भर्तरि किं वा पुत्रिका मे करोतु।) [131]

शार्ङ्गरवः - (पुरोधसा संज्ञितः प्रतिनिवृत्य[1]) आः पुरोभागे, किम् इदम् स्वातन्त्र्यम् अवलम्ब्यते। [132]

(शकुन्तला भीता वेपते) [133]

शार्ङ्गरवः - शृणोतु भवती। [134]

यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा त्वम् असि किं पितृशोकदया त्वया।
अथ तु वेत्सि शुचि व्रतमात्मनः पतिगृहे तव दास्यमपि क्षमम्॥ 5 – 29॥ [135]

तिष्ठ, साधयामो वयम्। [136]

राजा - भोस्तपस्विन् , किमत्रभवतीम् विप्रलभसे। पश्य, [137]

कुमुदान्येव शशाङ्कस्सविता बोधयति पङ्कजान्येव।
वशिनां हि परपरिग्रहसंश्लेषपराङ्मुखी वृत्तिः॥ 5 – 30॥ [138]

शार्ङ्गरवः - राजन्, अथ पूर्वपरिग्रहोऽन्यासङ्गाद् विस्मृतो भवेत्, तदा कथम् अधर्मभीरुः। [139]

राजा- भवन्तम् एव गुरुलाघवं प्रक्ष्यामि। [140]

मूढः स्याम् अहमेषा वा वदेन् मिथ्येति संशये।
दारत्यागी भवाम्यहो परस्त्रीस्पर्शपांसुलः॥ 5 – 31॥ [141]

पुरोधाः- देव, विचारय, यदि तावद् एवम् क्रियते। [142]

राजा- अनुशास्तु मां भवान्। [143]

पुरोधाः - अत्रभवती तावद् आप्रसवाद् आपन्नसत्त्वा मद्गृहे तिष्ठतु। भूतमिदम् उच्यते – त्वं साधुभिरादिष्टः प्रथमं चक्रवर्तिनं जनयिष्यसीति। स चेन्मुनिदौहित्रस्तल्लक्षणोपपन्नो भविष्यति इति ततः प्रतिनन्द्य शुद्धान्तमेनां प्रवेशयिष्यसीति। विपर्यये पितुरस्यास्समीपगमनम् उपस्थितम् एव। [144]

राजा- यथा गुरुभ्यो रोचते। [145]

पुरोधाः- वत्से, अनुगच्छ माम्। [146]

शकुन्तला- (रुदती) भअवदि वसुहे, देहि मे विअरं। (भगवति वसुधे, देहि मे विवरम्।) [147]

(इति निष्क्रान्ता सह सकलैः पुरोधसा च) [148]

---

1. मैथिल-पाठे "सरोषं प्रतिनिवृत्ये" ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- (शापव्यवहितस्मृतिः शकुन्तलाम् एव चिन्तयति।) [149]

॥ **नेपथ्ये**॥ आश्चर्यम् आश्चर्यम्। [150]

राजा- (कर्णं दत्त्वा) किं नु खलु स्यात्। [151]

(प्रविश्य **पुरोहितः**) देव, अद्भुतम् खलु संवृत्तम्। [152]

राजा- किमिव। [153]

पुरोधाः- परिवृत्तेषु कण्वशिष्येषु,

सा निन्दन्ती स्वानि भाग्यानि बाला बाहूत्क्षेपं क्रन्दितुं च प्रवृत्ता। [154]

राजा - किं च, [155]

पुरोधाः-

स्त्रीसंस्थानं चाप्सरस्तीर्थमाराद्
आक्षिप्यैव ज्योतिरेनाम् तिरोऽभूत्॥ 5 - 32॥ [156]

(सर्वे विस्मिताः) [157]

राजा - भगवन्, प्रागेव सोऽस्माभिरर्थः प्रत्यादिष्ट एव। किं वृथा तर्केणान्विष्टेन। विश्रमामि। [158]

पुरोधाः- विजयस्व। (इति निष्क्रान्तः) [159]

राजा- (सखेदम्) वसुमति, पर्याकुलोऽस्मि। शयनभूमिम् आदेशय। [160]

प्रतीहारी- (सादरम्) इदो इदो देवो। (इत इतो देवः।) (परिक्रामति) [162]

राजा - (आत्मगतम्)

कामं प्रत्यादिष्टां स्मरामि न परिग्रहं मुनेस्तनयाम्।
बलवत् तु दूयमानं प्रत्यायतीव सा हृदयम्॥ 5 - 33॥ [163]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे) [164]

॥ अभिज्ञानशकुन्तला[1]ख्ये नाटके पञ्चमोऽङ्कः[2]॥

---

1. काश्मीर-पाठे नाटकस्य शीर्षकम् अभिज्ञानशकुन्तलास्ति तदवधेयम्।
2. काश्मीर-पाठे प्रत्येकानाम् अङ्कानां नामानि नैव प्रदत्तानि।, मैथिल-पाठे "शकुन्तला-प्रत्याख्यानो नाम॰"इति।, बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ षष्ठोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशति नागरिकस्यालः, पश्चाद् बद्धं पुरुषमादाय रक्षिणौ च) [1]

रक्षिणौ - (पुरुषं ताडयित्वा) अले कुम्भिलआ, कहेहि कहिं तए एशे महामणिपत्थलुक्किण्ण णामक्खले लाअकीअङ्गुलीअए समासादिदे। (अरे कुम्भिलक, कथय कुत्र त्वयैषा महामणिप्रस्तरोत्कीर्णनामाक्षरो राजकीयाङ्गुलीयक[1] स्समासादितः।) [2]

पुरुषः - (भयं नाटयित्वा) पसीदन्तु पसीदन्तु भादुअमिच्चा। हगे खुई दिसस्स कम्मणो कले?।
(प्रसीदतु, प्रसीदतु भ्रातृकमिश्राः। अहम् खलु ईदृशस्य कर्मणः कुर्वे?[2]।) [3]

प्रथमः - किं णु खु शोहणो बम्हणे त्ति कलिअ लञ्ञा[3] पदिग्गहे दिण्णे।
(किं नु खलु शोभनो ब्राह्मण इति कलयित्वा (=कृत्वा) राज्ञा प्रतिग्रहो दत्तः।) [4]

पुरुषः - आणवा दाणिं हगे सक्कावदालवासिके धीवले।
(आनव, इदानीम् अहम् शक्रावतारवासिको धीवरः।) [5]

द्वितीयः - पाडच्चल, किं खु दे अम्हेहिं जादी पुच्छिदा। (पाटच्चर, किं खलु तेऽस्माभिर्जातिः पृष्टा।) [6]

स्यालः - सूचअ, कधेदु सव्वं अणुक्कमेण। मा णं अन्तरा पडिबन्धिट्ठ।
(सूचक, कथय सर्वम् अनुक्रमेण। मा एनम् अन्तरा प्रतिबन्धिष्ठ।) [7]

रक्षिणौ- जं आउत्ते आणवेदि। (पुरुषं प्रति) भण भण। (यदावुत्त आज्ञापयति।) (भण भण)। [8]

पुरुषः- से हगे जालपडिसादेहिं मश्चबन्धणोवाएहिं कुडुम्बभलणं कलेमि।
(सोऽहं जालपडिसादिभि-र्मत्स्यबन्धनोपायैः कुटुम्बभरणं करोमि।) [9]

स्यालः - (प्रहस्य) विशुद्धो दाणिं दे आजीओ। (विशुद्ध इदानीं त आजीवः।) [10]

पुरुषः - भट्टा,

सहजं किल जं पि णिन्दिदं ण हि तं कम्म विवज्जणीअए।
पशुमालककम्म दालुणे अणुकम्पामिदु एव सोत्तिए॥ 6 - 1॥

(सहजं किल यदपि निन्दितं न हि तत्कर्म विवर्जनीय[क]म्।
पशुमारककर्म्मदारुणो ऽनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रियः॥ 6 - 1॥) [11]

स्यालः - तदो तदो। (ततस्ततः) [12]

पुरुषः - अधेक्कदिअशे खण्डशो लोहिदमच्छे मए कप्पिदे। जाव तस्स उदलब्भन्तला एदं रअणभासुलं अङ्गुलीअं पेक्खामि॥ पश्चा इध णं विक्कआअ दंशअन्ते गहिदे भावमिश्शेहिं। इत्तिके दाव एदश्श आगमे। अधुणा मालेध

---

1. महामणिप्रस्तरोत्कीर्णेत्यादि-पाठोऽयमशुद्धो भवेत्। यतो हि, अङ्गुलीयक इति शब्दः पुंलिङ्गे भवितुं नार्हति। एवं च, धीवरस्याग्रिमे संवादे (13)"रत्नभासुरम् अङ्गुलीयकम्" इति पठ्यते।
2. काश्मीर-पाठे प्रश्नार्थकं वाक्यमिदं काक्वा सहोच्यते।, तच्चानुगामिनि काले नकारेण सह परिवर्त्यते।
3. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः समुपलभ्यमानः शब्दोऽयं सम्राज अशोकस्याभिलेखेष्वपि प्रयुक्तो दृश्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

कुट्टेध वा। (अथैकदिवसे खण्डशो रोहितमत्स्यो मया कल्पितः यावत् तस्योदराभ्यन्तर एतद् रत्नभासुरम् अङ्गुलीयकं प्रेक्षे। पश्चाद् इहैतद् विक्रयाय दर्शयन् गृहीतो भावमिश्रैः। एतावान् तावद् एतस्यागमः, अधुना मारयत कर्तयत वा।) [13]

स्यालः - (अङ्गुलीयकम् आघ्राय) जाणअ, मच्छोदरसण्ठिदं ति णत्थि संदेहो। तधा अअं से विसगन्धो, आगमो दाणिं एदस्स विमरिसिदव्वो। ता एध राअउलं येव गच्छम्ह।

(जानक, मत्स्योदर-संस्थितम् इति नास्ति सन्देहः। तथायम् अस्य विस्रगन्धः, आगम इदानीमेतस्य विमर्ष्टव्यः। तद् एतम् राजकुलम् एव गच्छामः।) [14]

रक्षिणौ - गच्छ(श्च) णाध गण्ठिभेदअ। (सर्वे परिक्रामन्ति) (गच्छ नाथ ग्रन्थिभेदक।) [15]

स्यालः - सूचअ, इह मं गोउलदुव्वारे अप्पमत्ता पडिवालेद, जाव इमं जहागमं अङ्गुलीअअं भट्टिणो उवणिअ तदीअसासणं पडिच्छअ णिक्कमामि। (सूचक, इह मां गोपुरद्वारेऽप्रमत्तौ प्रतिपालयतं यावद् इदं यथागमं अङ्गुलीयकं भर्तुरुपनीय तदीयशासनं प्रतीष्य निष्क्रमामि।) [16]

उभौ - पविसदु आउत्ते सामिपसादाअ। (स्यालो निष्क्रान्तः) (प्रविशत्वाबुत्तस्स्वामिप्रसादाय) [17]

प्रथमः[1] - जाणआ, चिलाअदि आउत्ते। (जानक, चिरायत्याबुत्तः।) [18]

द्वितीयः - णं अवशलोवशप्पअणिआ लाआणो। (ननु अवसरोपसर्पणीया राजानः।) [19]

प्रथमः - वअश्शा, फुलन्ति मम हत्था इमश्श वशणं पिणद्धुं।

(वयस्य, स्फुरतो मम हस्तावस्य व्यसनं पिनद्धुम्[2]।) [20]

(पुरुषं निर्दिशति) [21]

पुरुषः- णालहदि भादुभादुके अकालमालके भविदुम्। (नार्हति भ्रातृभ्रातृकोऽकालमारको भवितुम्।) [22]

द्वितीयः - (विलोक्य) आगच्छदु अम्हाणं ईशले, पदिगिण्हिअ लाअशाशणं। (पुरुषं प्रति) शउलाणं मुहं पेक्खशि, अध वा गिद्धशिआलाणं बली भविश्शशि। (आगच्छतु अस्माकमीश्वरः, प्रतिगृह्य राजशासनम्। शकुलानां मुखं प्रेक्षसेऽथवा गृध्रशृगालानां बलिर्भविष्यसि।) [23]

(प्रविश्य) **स्यालः**- सिग्घं सिग्घं एदम्। (इत्यर्धोक्ते) (शीघ्रं शीघ्रम् एतम्।) [24]

पुरुषः - हा हदे म्हि। (हा हतोऽस्मि।) (इति विषादं नाटयति) [25]

स्यालः - मुञ्चेध रे मुञ्चेध जालोवजीविणं। उववण्णो से किल अङ्गुलीअअस्स आगमो। अम्हसामिणा येव मे कधिदम्। (मुञ्चतं रे मुञ्चतं जालोपजीविनम्। उपपन्नोऽस्य किल अङ्गुलीयकस्यागमः। अस्मत्स्वामिनैव मे कथितम्।) [26]

रक्षिणौ- जं आणवेदि आउत्ते। (यद् आज्ञापयत्याबुत्तः।) [27]

प्रथमः - जमवशदिं गमिअ गुडखण्डं च [द]इअ पडिणिअत्ते। (पुरुषं मुञ्चति) [28]

(यमवसतिं गत्वा गुडखण्डं च दत्त्वा[3] प्रतिनिवृत्तः।) [29]

पुरुषः- (पुरुषः स्यालं प्रणम्य) भट्टा, तव केलके मे जीविदे। (भर्तः, त्वदीयो मे जीवितः।) [30]

---

1. का.-पाठेऽत्रैका विसंगतिः, तद्यथा- पूर्वं तु "द्वितीयः" इति शब्देन "सूचकः" निर्दिष्ट आसीद्, अत्र तु द्वितीयस्य कृते "जानकः" शब्दः प्रयुज्यते। विसंगतिरियं दाक्षिणात्य-देवनागरी-पाठयोरप्यनुसरति।
2. वाक्येऽस्मिन् बहुविधं परिवर्तनं दृश्यते मैथिल-पाठादिषु।
3. काश्मीर-पाठ एव समुपलभ्यन्ते शब्दा एते।, भूर्जपत्रोपरि लिखितायां मातृकायां दृश्यन्ते ते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

स्याल: - उत्थेहि। एस भट्टिणा अङ्गुलीअअ-मुल्लसम्मिदो पारितोसको वि दे दाविदो।
(उत्तिष्ठ। एष भर्त्राङ्गुलीयकमूल्यसम्मितः पारितोषिकोऽपि ते दापित:।) [31]

पुरुष: - (सहर्षम् प्रगृह्य) अणुगिहिदो म्हि। (अनुगृहीतोऽस्मि।) [32]

प्रथम:- तं णाम अणुगिहिदे जं शूलेहिं (शूलादो) अवदालिअ हत्थिकन्धे पडिच्छिदे।
(तथा नामानुगृहीतो यच्छूलाद् अवतार्य हस्तिस्कन्धे प्रतिष्ठापित:।) [33]

द्वितीय: - आउत्त, पालिदोस कहेदि महालह-लअणेण तेण अङ्गुलीअएण भट्टिणो पढमबहुमदेण होदव्वम्। (आवुत्त, पारितोषिक: कथयति महार्घरत्नेन तेनाङ्गुलीयकेन भर्तुः प्रथमबहुमतेन भवितव्यम्।) [34]

स्याल: - ण अ तस्सिं महालह-लअणं त्ति बहुमाणं भट्टिणो तक्केमि।
(न च तस्मिन् महार्घरत्नम् इति बहुमानं भर्तुः तर्कयामि।) [35]

उभौ - किं खु। (किं खलु) [36]

स्याल: - तक्केमि तस्स दंसणेण कोवि अहिलइदो जणो भट्टिणा सुमरिदो त्ति, जदो तं [पेक्खिअ] मुहूत्तं पकिदिगम्भीरो [वि]पय्युस्सुअमनो संवुत्तो। (तर्कयामि तस्य दर्शनेन कोऽप्यभिलषितो जनो भर्त्रा स्मृत इति। यतस्तद् प्रेक्ष्य मुहूर्तं प्रकृतिगम्भीरोऽपि पर्युत्सुकमनास्संवृत्त:।) [37]

द्वितीय: - साधु मन्तिदं णाम आउत्तेण। (साधु मन्त्रितं नामावुत्तेन।) [38]

प्रथम: - णं भणामि इमश्श कदे मच्छालिआ (मशेअलिआ) -शत्तुणोदि (त्ति)। (पुरुषं सासूयं पश्यति)
(ननु भणाम्यस्य कृते मत्स्यलिका-शत्रोरिति।) [39]

पुरुष: - भट्टा, इदो अद्धं तुम्हाणं शुमणोमुल्लं होदु।
(भर्तः, इतोऽर्धम् युष्माकं सुमनोमूल्य[1] भवतु।) [40]

उभौ- इत्तिके जुज्जदि। (एतावत् युज्यते।) [41]

स्याल:[2] - धीवल, महत्तलए हि सम्पदं पिअवअस्सकोसि मे संवुत्तो। कादम्बिलिसक्खिअं च अम्हाणं पढमसोहिदं इच्छिअदि। ता एहि सुण्डिअसालं गच्छम्ह। (इति निष्क्रान्ता:)
(धीवर, महत्तरको हि साम्प्रतं प्रियवयस्यकोऽसि मे संवृत्त:। कादम्बरीसाक्षिक[3] च अस्माकं प्रथमसौहृदम् इष्यते। तद् एहि शुण्डिकशालां गच्छाम:।) (इति निष्क्रान्ता:) [42]

॥ प्रवेशक:॥ [43]

॥ तत: प्रविशत्याकाशयानेना-क्षमाला[4]॥ [44]

अक्षमाला - णिव्वत्तिदं मए पय्याअणिव्वटत्तणीअं अच्छरा-तित्थ-सण्णीज्झं। ता जाव इमस्स राएसिणो उदन्तं पच्चक्खीकरेमि। मेणआ-सम्बन्धेण सरीरभूदा मे सउन्तला। ताए अ एतण्णिमित्तं य्येव संदिट्ठ-पूरवम्हि। (परिक्रम्य पुरस्समन्ताद्

---

1. मैथिल-पाठे "मूल्यकमि"ति।, बंगीय-पाठे "शुलामुल्लं=सुरामूल्यमि" ति पठ्यते।
2. मैथिल-पाठेऽस्य प्रस्तावस्य वक्तारौ स्त: जानुक-सूचकौ।, बंगीय-पाठे जानुको भणति प्रस्तावमिमम्।
3. मैथिल-पाठे "कादम्बरीस्वस्तिकमि" ति।, बंगीय-पाठे "कादम्बरीसग्धिकमि" ति पठ्यते।
4. काश्मीर-पाठ एवोपलभ्यते नामेदम्। नाम्नैव तस्या वेशभूषा सूच्यते रुद्राक्षमालाधारिणीयं स्यादिति। अनुगामिनि कालेऽस्या अप्सरसो नाम मिश्रकेशीति जातम्, ततश्च सानुमती प्राप्यते। नामत्रयं भिन्नामेव वेशभूषां सूचयति। यया चेयं नटी त्वप्सरस: पात्रमभिनयतीति प्रेक्षक अनुमीनोति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अवलोक्य च)किं णु खु ऊसंविणि (उसवंदिणे) विणिरूसवारम्भं विअ राअउलं दीसदि। अह वा, अत्थि मे विभवो पणिधानेन सव्वं जाणिदुं। किं तु सहिए आदरो मे आणिदव्वो। भोदु, इमाणां दाव उज्जाणवलिणं तिरक्करिणीपच्छण्णा पासपरिवत्तिणी भविअ उवालभिस्से। (तथा करोति)। (निर्वर्तितं मया पर्यायनिर्वतनीयम् अप्सरस्तीर्थसान्निध्यम्। तद् यावद् अस्य राजर्षेरुदन्तं प्रत्यक्षीकरोमि। मेनकासम्बन्धेन शरीरभूता मे शकुन्तला। तया चैतन्निमित्तम् एव सन्दिष्टपूर्वास्मि। किं नु खलूत्सवंदिनेऽपि निरुत्सवारम्भमिव राजकुलं दृश्यते। अथ वास्ति मे विभवः प्रणिधानेन सर्वं ज्ञातुम्। किन्तु सख्यादरो म आनीतव्यः। भवतु, एषां तावदुद्यानपालिनीनां तिरस्करिणी-प्रच्छन्ना पार्श्वपरिवर्तिनी भूत्वोपालभिष्ये।) [45]

(ततः प्रविशति चूताङ्कुरम् अवलोकयन्ती चेटी तस्याश्च पृष्टतोऽपरा) [46]

प्रथमा[1] -

आताम्रहरिदवेण्टअ जो ऊस्ससिदं सि सुरहिमासस्स।
दिट्ठो अ चूअच्छारअ खणमङ्गलं पेक्खामि॥ 6 - 2॥
(आताम्रहरितवृन्त[क] य उच्छ्वसितोऽसि सुरभिमासस्य।
दृष्टश्च चूतक्षार[क] क्षणमङ्गल[क]म् [इव] प्रेक्षे॥ 6 - 2॥) [47]

द्वितीया - (उपसृत्य) हला परहुदिए, किं णेदं एआइणी मन्तेसि।
(हले परभृतिके[2], किमिदानीमेकाकिनी मन्त्रयसि।) [48]

प्रथमा - सहि चूदलदिअं पेक्खिअ उम्मत्ता परहुदिआ भोदि।
(सखि, चूतलतिकां प्रेक्ष्योन्मत्ता परभृतिका भवति।) [49]

द्वितीया - (सहर्षम्) कधं उवत्थिदं(दो) महुमासो। (कथम् उपस्थितो मधुमासः।) [50]

प्रथमा - महुअरिए, तवेदाणिं कालो एसो मदविब्भमुग्गीदाणं।
(मधुकरिके, तवेदानीं काल एष मदविभ्रमोद्गीतानाम्।) [51]

द्वितीया[3] - सहि, अवलम्बस्स जाव अग्गपादपडिट्ठाविदा भविअ कामदेवस्स अच्चणं करेमि।
(सखि, अवलम्बस्व यावद् अग्रपादप्रतिष्ठापिता भूत्वा कामदेवस्यार्चनं करोमि।) [52]

प्रथमा[4] - जदि ममा वि अद्धं अच्चणअफलस्स। (यदि ममाप्यर्धम् अर्चनकफलस्य।) [53]

द्वितीया[5] - हला, अभणीदे पि एदं भोदि। जदो एक्कम् येव णो दुधात्थिदं सरीरम्।
(हले अभणितेऽप्येतद् भवति, यत एकम् एव नो द्विधास्थितं शरीरम्।) [54]

(सख्यावलम्बितं कृत्वा[6] चूतभङ्गं नाटयति) [55]

अम्महे, अप्पडिबुद्धो पि चूदपसवो एस(सो) बन्धणभङ्गसुरहि वादि। (कपोतकं कृत्वा)

---

1. मैथिल-पाठे तु कधं उवत्थिदो मधुमासो इति गद्यवाक्यमपि वर्तते। तत्तु समीचीनं प्रतिभाति।
2. उद्यानपालिकयोः परभृतिका-मधुकरिकेति नामद्वयं सूचयति यन्नेदं चेट्योः नाम। (कोकिला-मधुमक्षिकयोः विनियोगः क्रियते स्त्रीवेशधारिण्योः।)
3. मैथिल-पाठ उक्तिरियं प्रथमाया मुखे वर्तते। तादृशी योजना तु समीचीना प्रतिभाति।
4. मैथिल-पाठ उक्तिरियं द्वितीयाया मुखे वर्तते। तादृशी योजना तु समीचीना प्रतिभाति।
5. मैथिल-पाठ उक्तिरियं प्रथमाया मुखे वर्तते। तादृशी योजना तु समीचीना प्रतिभाति।
6. मैथिल-पाठे "सख्यवलम्बितकेन नाट्येने" ति।, बंगीय-पाठे "सख्यामि" ति सप्तमी।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

णमो भअवदे मअरद्धजाअ। (अहो, अप्रतिबुद्धोऽपि चूतप्रसव एष बन्धनभङ्ग-सुरभिर्वाति। नमो भगवते मकरध्वजाय।) [56]

अरिहसि मे चूअङ्कुर दिण्णो कामस्स गहिअधनुअस्स।
सण्ठविअ-जुवइ-लक्खो पच्छाखदिदो सरो होदुं॥ 6 -3॥

(अर्हसि मे चूताङ्कुर दत्तः कामस्य गृहीतधनो-।
स्संस्थापितयुवतिलक्षः प्रतिस्खलितश्शरो भवितुम्॥ 6 -3॥) [57]

(चूताङ्कुरं क्षिपति) [58]

कञ्चुकी - (प्रविश्य रुषितः कञ्चुकी) मा तावद् अनात्मज्ञे, देवेनाप्रमुखत एव प्रतिषिद्धे वसन्तोत्सवे त्वमत्र मञ्जरीभङ्गम् आरभसे। [59]

उभे - (भीते) पसीददु अय्यो, अगहीदत्था खु अम्हे। (प्रसीदत्वार्यः। अगृहीतार्थाः खलु वयम्।) [60]

कञ्चुकी - [<हुं, न खलु श्रुतं युवाभ्यां यथा वासन्तैस्तरुभिरपि देवस्य शासनं प्रमाणीकृतं तदाश्रयिभिश्च[1]। तथा हि, [61]

चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका बध्नाति न स्वं रजः
संनद्धं यदपि स्थितं कुरबकं तत् कोरकावस्थया।
कण्ठेषु स्खलितं गतेऽपि शिशिरे पुंस्कोकिलानां रुतं
शङ्के संहरति स्मरोऽपि चकितस्तूणार्धकृष्टं शरम्॥ 6 - 4॥ [62]

अक्षमाला - ण एत्थ सन्देहो। महप्पभावो राएसी। (नात्र सन्देहः। महाप्रभावो राजर्षिः।) [63]

प्रथमा - अय्य, कदि दिअसा अम्हाणं मित्तावसुणा रत्थिएण भट्टिणो पादमुलादो पेसिदाणं। इध आकीलगिहे[2] पडिकम्मं अप्पिदं। अदो ण कदा वि सुदपुरवो एसो अम्हेहिं वुत्तन्तो। (आर्य, कति दिवसा अस्माकं मित्रावसुना राष्ट्रियेण भर्तुः पादमूलात् प्रेषितानाम्। इहाक्रीडागृहे प्रतिकर्मार्पितम्। अतो न कदापि श्रुतपूर्व एष अस्माभिर्वृत्तान्तः।)>][3] [64]

कञ्चुकी - भवतु, पुनर्न एवम् वर्तितव्यम्। [65]

उभे - अय्य, कोदूहल्लं जं इमिणा जणेण सोदव्वं ता कधेदु, अय्यो किं णिमित्तं भट्टिणा वसन्तकोमुदी[4] पडिसिद्ध त्ति। (आर्य, कौतुहल्यं यद् अनेन जनेन श्रोतव्यं तत् कथयत्वार्यः किं निमित्तं भर्त्रा वसन्तकौमुदी प्रतिषिद्धेति।) [66]

अक्षमाला - ऊसवे पि (ऊसवपिआ) राआणो। एत्थ गुरुणा कारणेण होदव्वं।
(उत्सवप्रिया राजानः। अत्र गुरुणा कारणेन भवितव्यम्।) [67]

कञ्चुकी - बहुलीभूतम् एतत्। तत् किं न कथ्यते। अस्ति भवत्योः कर्णपथम् आयातं शकुन्तलाप्रत्यादेशकौलीनम्। [68]

उभे - अय्य, सुदं रट्ठिअमुहादो जधा (जाव) अङ्गुलीअअदंसणं।
(आर्य, श्रुतं राष्ट्रियमुखाद् यथा (यावद्) अङ्गुलीयकदर्शनम्।) [69]

---

1. अत्र 'अपीति, चेति' च निपातद्वयेन चूतानामिति० (6-4) श्लोकः प्रक्षिप्तः स्यादिति संसूच्यते। एवञ्च, श्लोकस्यास्य वर्णनीयो विषयः विदूषकस्य राज्ञश्चोक्तिभ्यां (91-93) सह न संगच्छते।
2. अशुद्धो वा विकृतीकृतोऽयं पाठ्यांशः परिलक्ष्यते।, वाक्यस्यास्य मूलकथाप्रवाहेन सह का संगतिः स्याद् इति न निश्चीयते। तेनापि सूच्यते यद् कोष्ठान्तर्गतोऽयं पाठ्यांशः प्रक्षिप्तः स्यात्।
3. कोष्ठान्तर्गतः पाठ्यांशः प्रक्षिप्तः प्रतिभाति।, काश्मीर-पाठपरम्परायाः प्रारम्भात्पूर्वमेव प्रक्षिप्तः स्यात्। एवञ्च, प्रक्षिप्तोऽयं पाठ्यांशः सर्वासु वाचनासु स्वीकृतः प्रचलितश्च दृश्यते, किन्तु निष्कासनीय एव॥
4. काश्मीर-पाठे पूर्वं तु कञ्चुकिना (उक्तिः 59) वसन्तोत्सव इति नामोल्लिखितम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

कञ्चुकी - तेन हि स्वल्पं कथयितव्यम्। यदा खलु स्वाङ्गुलीयकदर्शनाद् अनुस्मृतं देवेन सत्यम् ऊढपूर्वा मया रहसि तत्रभवती शकुन्तला। मोहात् प्रत्यादिष्टेति, तदाप्रभृत्येव पश्चात्तापपरिगतो देवः। [70]

कुतः -

रम्यं द्वेष्टि यथासुखं प्रकृतिभि र्न प्रत्यहं सेव्यते
शय्योपान्तविवर्तनैर्विगमयत्युन्निद्र एव क्षपाः।
दाक्षिण्येन ददाति वाचम् उचिताम् अन्तःपुरेभ्यो यदा
गोत्रेषु स्खलितं तदा भवति च व्रीडा-विलक्ष्यश्चिरम्॥ 6-5॥ [71]

अक्षमाला - पिअं मे। (प्रियं मे।) [72]

कञ्चुकी - प्रभवतो वैमनस्याद् उत्सवप्रतिषेध इति। [73]

प्रथमा - जुज्जदि। (युज्यते) [74]

(नेपथ्ये) [75]

एदु एदु भवं। (एतु एतु भवान्।) [76]

कञ्चुकी - (कर्णं दत्त्वा) अयं इत एवाभिवर्तते देवः। तत्स्वकर्मानुष्ठीयताम्। (इति निष्क्रान्ते चेटिके) [77]

(ततः प्रविशतः पश्चात्तापसदृशवेषो राजा विदूषकः प्रतीहारी च) [78]

कञ्चुकी - (राजानम् अवलोक्य) अहो सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वम् एवाकृतिविशेषाणाम्। समुत्सुकोऽपि शकुन्तलां प्रति प्रियदर्शनो देवः। [79]

य एषः -

प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनविधिर्वामप्रकोष्ठे श्लथं
बिभ्रत् काञ्चनम् एकमेव वलयं श्वासोपरक्ताधरः।
चिन्ताजागरणप्रतान्तनयनस्तेजोगुणाद् आत्मनः
संस्कारोल्लिखितो महामणिरिव क्षीणोऽपि नालक्ष्यते॥ 6-6॥ [80]

अक्षमाला - थाणे खु पच्चादेसविमाणिदा वि सउन्तला जं इमस्स किदे किल तम्मदि।

(स्थाने खलु प्रत्यादेश-विमानितापि शकुन्तला यदस्य कृते किल ताम्यति।) [81]

प्रतीहारी - एदु एदु महाराओ। (एतु एतु महाराजः।) [82]

राजा - (ध्यानमन्दं परिक्रम्य) [क]

प्रथमं सारङ्गाक्ष्या प्रियया प्रतिबोध्यमानमपि सुप्तम्।
अनुशयदुःखायेदं हतहृदयं सम्प्रति विबुद्धम्॥ 6-7॥ [83]

अक्षमाला - ईदिसाइं से तवस्सिणीए भागधेआइं। (ईदृशान्यस्यास्तपस्विन्या भागधेयानि।) [84]

विदूषकः - (अपवार्य) लङ्घिदो एसो भूओ सउन्तलावादेण। ण आणे कधम् किच्छिदव्वो हु(भ)विस्सदि।

(लङ्घित एष भूयः शकुन्तलावातेन। न जाने कथं चिकित्सितव्यो भविष्यति।) [85]

कञ्चुकी - (उपगम्य) जयतु जयतु देवो महाराजः। मया तावद् राज्ञः प्रत्यवेक्षिताः प्रमदवनभूमयः यथाकामम् अध्यास्ताम् विनोदस्थानानि देवः। [86]

राजा - (प्रतीहारीम् प्रति) वसुमति, मद्वचनाद् अमात्यपिशुनं ब्रूहि। चिरप्रबोधान्न सम्भावितम् अस्माभिरद्य धर्मासनमध्यासितुम्। यत् प्रत्यवेक्षितमार्येण पौरकार्यं तत् पत्रकमारोप्य दीयतामिति। [87]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रतीहारी - जं देवो आणवेदि। (यद् देव आज्ञापयति।) (इति निष्क्रान्ता) [88]

राजा - पार्वतायन, त्वमपि स्वनियोगम् अशून्यं कुरु। [89]

कञ्चुकी - तथा। (इति निष्क्रान्तः) [90]

विदूषकः - किदम् भवदा णिम्मक्खिअं। सम्पदं सिसिरविच्छेदे रमणीए इमस्सिं पमदवणे सुहं विहरिस्सामो। (कृतं भवता निर्मक्षिकम्। साम्प्रतं शिशिरविच्छेदे रमणीयेऽस्मिन् प्रमदवने[1] सुखं विहरिष्यामः।) [91]

राजा - वयस्य, यदुच्यते रन्ध्रोपरिपातिनोऽनर्था इति, तद् अव्यभिचारि। पश्य, [92]

उपहितस्मृतिरङ्गुलीमुद्रया प्रियतमाम् अनिमित्तनिराकृताम्।
अनुशयाद् अनुरोदिमि चोत्सुकस्सुरभिमाससुखं च पुरः स्थितम्[2]॥ 6 - 8॥ [93]

विदूषकः - दिट्ठ जाव। इमं दण्डअं चूदमम्मधए पाडए। (तिष्ठ यावत्। इमं दण्डकं चूतमन्मथ(के) पातये।) [94]

राजा - (सस्मितम्) भवतु, दृष्टं ब्रह्मवर्चसम्। सखे, अत्रोपविष्टः प्रियायाः किंचिद् अनुकारिणीषु लतासु दृष्टिं विलोभयामि। [95]

विदूषकः - णं खु भअदा मेधाविणी लिविकरी सन्दिट्ठा। माहवीमण्डवे इमं खणं पडिवालइस्सं। तहिं मे चित्तफलए सुहत्थलिहिदं तत्थभोदीए सउन्तलाए पडिकिदिं आणेहि त्ति। (ननु खलु भवता मेधाविनी लिपिकरी सन्दिष्टा, माधवीमण्डप इमं क्षणं प्रतिपालयिष्यामि। तत्र मे चित्रफलके स्वहस्तलिखितं तत्रभवत्याः शकुन्तलायाः प्रतिकृतिम् आनयेति।) [96]

राजा - ईदृशं मे हृदयसंस्थानम्। तत् तम् एवादेशय माधवीमण्डपम्। [97]

विदूषकः - एदु भवं। (परिक्रामतः) (एतु भवान्।) [98]

(अक्षमालाऽनुगच्छति) [99]

विदूषकः - (विलोक्य) एसो मणिसिलापट्टकसणाहो माहवीमण्डवको विवित्तदाए णिसद्दं सागदेण विअ पडिच्छदि पिअवअस्सम्। उवविसम्ह। णिसीददु भवं। (उभौ प्रविश्योपविष्टौ)

(एष मणिशिलापट्टकसनाथो माधवीमण्डपको विविक्ततया निश्शब्दं स्वागतेनेव प्रतिच्छति प्रियवयस्यम्। उपविशामः। निषीदतु भवान्।) [100]

अक्षमाला - (लतामाश्रित्य स्थिता[3]) [101]

राजा - (स्मरणमभिनीय) सखे माधव्य, सर्वम् इदं स्मरामि शकुन्तलायाः प्रथमदर्शनवृत्तान्ते, यत् कथितवान् अस्मि भवते, स भवान् प्रत्यादेशदिवसे मत्समीपगो नासीत्। प्रथममपि न त्वया कदाचित् संकथासु तत्रभवत्याः कीर्तितं नाम। न खलु अहमिव मिथस्संविदं स्मृतोऽसि[4]। [102]

---

1. एतैः शब्दैरपि सिध्यति यत् "चूतानां चिरनिर्गतापि० (6-4)" इति श्लोकः प्रक्षिप्त एव।
2. मैथिल-पाठेऽस्माच्छ्लोकात् पूर्वं "मुनिसुताप्रणयस्मृति०"इति श्लोको वर्तते। स च मौलिकः स्यात्। किन्तु काश्मीर-पाठात् स निष्कासितः स्यात्। तथा च "उपहितस्मृति०" (6-8) इति प्रक्षिप्तः स्यात्। यतो हि, विदूषकस्योक्तिः "मुनिसुताप्रणयस्मृति०" इत्यनेनैव संगच्छते ।
3. मैथिल-पाठे "लतासंस्थिता भूत्वा प्रेक्षिष्ये तावत् सख्याः प्रतिकृतिमि" त्यादिभिर्वचनैः स्वस्यागमनस्य प्रयोजनं विनिवेद्यते।, बंगीय-पाठेऽपि तादृशं वाक्यं श्रूयते।, काश्मीर-पाठे संक्षेपीकरणस्याशयो दृश्यते।
4. मैथिल-पाठे "कच्चिदहमिव विस्मृतवांस्त्वमसी" ति पठ्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

विदूषकः – ण विसुमरामि। किं तु सव्वं कहिअ तए [य्ये]व वुत्तं। परिहासविअप्पो एसो, ण भूदत्थो त्ति। रहस्सभेदभीरुणा मए वि मिप्पिण्ड-मन्द-बुद्धिणा तहा येव गिहिदम्। अवि अ, भविदव्वदा बलवदी। (न विस्मरामि। किन्तु सर्वं कथयित्वा त्वयैव उक्तम्। परिहासविकल्प एष, न भूतार्थ इति। रहस्यभेदभीरुणा मयापि मृत्पिण्डमन्दबुद्धिना[1] तथैव गृहीतम्। अपि च, भवितव्यता बलवती।) [103]

अक्षमाला – एवं णेदम्। (एवमेतत्।) [104]

राजा – (ध्यात्वा) सखे, परित्रायस्व माम्, परित्रायस्व माम्। [105]

विदूषकः – किं णेदम्। ईदिसं उवणदम्। कदा उण सप्पुरिषा सोअबद्धधिय्या होन्ति। णं पवादेण वि गिरिओ णिप्पकम्पा। (किम् एतत्। ईदृशम् उपनतम्। कदा पुनस्सत्पुरुषाः शोकबद्धधैर्या भवन्ति। ननु प्रवातेनाऽपि गिरयो निष्प्रकम्पाः।) [106]

राजा – वयस्य, निराकरणविप्लवायाः प्रियायास्समवस्थाम् अनुस्मृत्य बलवद् अस्वस्थोऽस्मि। [107]

सा मया,

> **ततः प्रत्यादिष्टा स्वजनमनुगन्तुं व्यवसिता**
> **स्थिता तिष्ठेत्युच्चैर्वदति गुरुशिष्ये गुरुसमे।**
> **पुनर्दृष्टिं बाष्पप्रसरकलुषाम् अर्पितवती**
> **मयि क्रूरे यत् तत् सविषमिव शल्यं दहति माम्॥ 6-9॥** [108]

अक्षमाला – अम्महे, ईदिसी कट्ठावत्था। इमस्स सन्तावेण अहं रमे। (अहो ईदृशी कष्टावस्था। अस्य सन्तापेनाहं रमे।) [109]

विदूषकः – अत्थि देव तक्को। केण तत्थभोदी आकासगामिणा अवहित त्ति। (अस्ति देव तर्कः। केन तत्रभवत्याऽकाशगामिनाऽपहृतेति।) [110]

राजा – क इव देवताभ्योऽन्यः सम्भाव्यते। मेनका किल सख्यास्ते जन्मप्रतिष्ठेति श्रुतवान् अस्मि। तत्सखीभिस्ताम् [हृताम् इति] एव हृदयम् आशङ्कते। [111]

अक्षमाला – अम्मो, मोहो खु एसो रमणीओ, उण पडिबोहो। (अहो मोहः खल्वेष रमणीयः, पुनः प्रतिबोधः।) [112]

विदूषकः – जदि एवं ता अत्थि खु समागमो वि कालेन तत्थभवदीए। (यद्येवं तदस्ति खलु समागमोऽपि कालेन तत्रभवत्या।) [113]

राजा – कथमिव। [114]

विदूषकः – ण खु मादापिदरो भत्तुविरहिदं दुहिदरं चिरं पेक्खिदुं पारेदि। (न खलु मातापितरौ भर्तृविरहितां दुहितरं चिरं प्रेक्षितुं पारयेते।) [115]

राजा – वयस्य,

> **स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो वा क्लिष्टं नु तावत् फलमेव पुण्यम्।**
> **आसन्नवृत्तेस्तद् अतीतम् एष, मनोरथानाम् अतटप्रपातः॥ 6 - 10॥** [116]

---

1. मैथिल-पाठे"मया मन्दबुद्धिने" त्येव पठ्यते।, काश्मीर-पाठे "त्वयैव उक्तम्" इति शब्दयोर्मध्ये "रहस्यभेदभीरुणा" शब्दस्य मूलेऽवस्थानं स्यादिति संभाव्यते। लिपिकारस्यानवधानात् पदस्य कदाचित् स्थानपरिवर्तनं भवितुमर्हति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

विदूषकः - भो, मा एवं भण। णं खु अङ्गुलीअअं येव णिदरसणं। एवं येव संभाविणो चिन्तणीया समागमा होन्ति। (भोः मैवं भण। ननु खल्वङ्गुलीयकम् एव निदर्शनम्। एवमेव संभाविनोऽचिन्तनीयास्समागमा भवन्ति।) [117]

राजा - (अङ्गुलीयं विलोक्य) अये, इदं तद् असुलभस्थानभ्रंशि शोचनीयम्। [118]

तव सुचरितम् अङ्गुलीय नूनं प्रतनु ममेव विभज्यते फलेन।
अरुणनखमनोहरासु तस्याश्च्युतमसि लब्धपदं यद् अङ्गुलीषु॥ 6-11॥ [119]

अक्षमाला - (आत्मगतम्) सहि, दूरे वत्तसे[1]। एआइणि दाव कण्णसुहं अनुभवामि।
(सखि, दूरे वर्तस, एकाकिनी तावत् कर्णसुखमनुभवामि।) [120]

विदूषकः - भो वअस्स, इदं अङ्गुलीअअं केण उग्घादेण तत्थभोदिए हत्थसंसग्गं पाविद[2]।
(भो वयस्य, इदम् अङ्गुलीयकं केनोद्घातेन तत्रभवत्या हस्तसंसर्गम् प्रापितम्।) [121]

राजा - श्रूयताम्। यदा तपोवनात् स्वनगरगमनाय प्रस्थितं मां प्रिया सबाष्पमिदम् आह, कियच्चिरेणार्यपुत्रोऽस्माकं संस्मरिष्यतीति। [122]

विदूषकः - तदो तदो। (ततः ततः।) [123]

राजा - पश्चाद् इमां नाममुद्रां तदङ्गुलौ निवेशयता मया प्रत्यभिहितम्। [124]

एकैकमत्र दिवसे दिवसे मदीयं नामाक्षरं गणय, गच्छसि यावदन्तम्।
तावत् प्रिये, मदवरोधगृहप्रवेशी नेता जनस्तव समीपमुपेष्यतीति॥ 6-12॥ [126]

तच्च मोहात्तथा दारुणम् अनुष्ठितम्। [127]

अक्षमाला - रमणीओ दे विहिणा दंसिदो मग्गो।[3] (रमणीयस्ते विधिना दर्शितो मार्गः।) [128]

विदूषकः - अध कधं दासीए पुत्तस्स रोहिदमच्छस्स बलिसं विअ एदं अंगुलीअअं मुहे पविट्ठम्।
(अथ कथं दास्याःपुत्रस्य रोहितमत्स्यस्य बडीश[4] मिवैतद् अंगुलीयकं मुखे प्रविष्टम्।) [129]

राजा - शचीतीर्थसलिलं किल वन्दमानायास्ते सख्या गङ्गास्रोतसि परिभ्रष्टम्। भवतु, उपालप्स्ये तावदेतत्[5]। [130]

कथं नु तं बन्धुरकोमलाङ्गुलिं करं विहायासि निमग्नमम्भसि।

अथ वा -

अचेतनं नाम गुणान् न लक्षयेन्
मयैव कस्माद् अवधीरिता प्रिया॥ 6-13॥ [131]

अक्षमाला - पुव्वावरविरोधी एसो वुत्तन्तो वट्टदि। (पूर्वापरविरोध्येष वृत्तान्तो वर्तते[6]।) [132]

राजा - अकारणपरित्यक्ता कदा नु प्रेक्षणीया भविष्यति। [133]

(ततः प्रविशति फलकहस्ता लिपिकरी) [134]

---

1. मैथिल-पाठ इतः पूर्वमेकं वाक्यमधिकं प्राप्यते। यथा- यदि अन्यहस्तगतं भवेत, सत्यं शोचनीयं भवेद्।
2. मैथिल-पाठ इतः पश्चाद् वाक्यमेकमधिकं पठ्यते। यथा- ममापि कौतुहलेन व्यापारित एषः।
3. मैथिल-पाठे वाक्यमिदं सर्वथा विपरिवर्त्यते। यथा- रमणीयः खल्ववधिः विधिना विसंवादितः।
4. पाइअ-सद्द-महाण्णवो इति कोशे "बडीश=बलिस" शब्दस्यार्थः-"मछली पकडने का काँटा" इति।
5. मैथिल-पाठेऽनयोर्वाक्ययोर्मध्ये मिश्रकेश्या एकाधिकोक्तिर्वर्तते।, ततश्च तत्र विदूषकस्य मुखेऽप्यधिकोक्तिः।
6. मैथिल-पाठेऽन्यदेव वाक्यं प्राप्यते। यथा- स्वयमेव प्रतिपन्नो, यद् वक्तुकामास्मि।, इतः परं मैथिल-पाठे विदूषकस्याप्येकोक्तिरधिका वर्तते। यथा- भोः, अहं सर्वथा बुभूक्षया मारयितव्यः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

लिपिकरी -(समन्ताद् अवलोक्य) एसो खु भट्टा जाव णं उपसप्पामि। (उपसृत्य) जअदु जअदु भट्टा। इअं चित्तगदा भट्टिणी। (एषः खलु भर्ता, यावद् एनम् उपसर्पामि। जयतु जयतु भर्ता। इयं चित्रगता भर्त्री।) [135]

(चित्रफलकं दर्शयति) [136]

विदूषकः - (विलोक्य) हे हे भो, सभावमहुरा आकीदि खु। साहु वअस्स साहु। किं बहुणा। सन्तानुप्पवेस संकाए आलवणकुदूहलं मं जणअदि। (हे हे भोः, स-भावमधुरा आकृतिः खलु। साधु वयस्य साधु। किं बहुना। स्वान्तानुप्रवेशशङ्कयालपनकुतूहलं मां जनयति।) [137]

अक्षमाला - अहो वअस्सस्स वत्तिकारेहाए णिउणदा। जाणे सही अग्गदो मे तिट्ठदि।[1]
(अहो वयस्यस्य वर्तिकारेखाया निपुणता। जाने सख्यग्रतो मे तिष्ठति।) [138]

राजा - (निःश्वस्य)

साक्षात् प्रियाम् उपगताम् अपहाय पूर्वं
चित्रार्पितामहम् इमां बहु मन्यमानः।
स्रोतोवहां बहुनिकामजलाम् अतीत्य
जातोऽस्मि रे प्रणयवान् मृगतृष्णिकायाम्॥ 6-14॥ [139]

अक्षमाला - अअं य्येव सव्वं पडिवण्णो जम्हि वत्तुकामा। (अयमेव सर्वं प्रतिपन्नो यद् अस्मि वक्तुकामा।) [140]

विदूषकः - (निर्वर्ण्य) भो तिण्हो अत्थभोदीए(ओ) दीसन्ति। सव्वाओ दंसणीआ। कदमा इत्थ दीसदे सउन्तला। (भोः तिस्रोऽत्रभवत्यो दृश्यन्ते। सर्वा दर्शनीयाः। कतमा इह दृश्यते शकुन्तला।) [141]

अक्षमाला - मोहदक्खो तवस्सी। अवस्सं ण से पच्चक्खा सही। (मोहदक्षस्तपस्वी। अवश्यं नास्य प्रत्यक्षा सखी।) [142]

राजा- त्वं तावत् कतमां तर्कयसि। [143]

विदूषकः - (चिरं विलोक्य) तक्केमि जा एसा अवसेअसिणिद्ध पल्लवं असोअलदिअं संसिदा सिहिलकेसबन्धोव्वमन्तकुसुमेण बद्धसेअबिन्दुणा वदणकेण विसेस-णमिद-सा[हा]हिं बाहुलदाहिं ऊससिद-णीविणा वसणेण ईसि परिसन्ता विअ आलिहिदा एसा अत्थभोदी सउन्तला। इदराओ सहीओ। (तर्कयामि यैषावसेकस्निग्धपल्लवाम् अशोकलतिकाम् संश्रिता[2] शिथिलकेशबन्धोद्वमत्कुसुमेन बद्धस्वेदबिन्दुना वदनकेन विशेष-नमित-शाखाभ्यां बाहुलताभ्यामुच्छ्वसितनीविना वसनेनेषत्परिश्रान्तेवालिखितैषात्रभवती शकुन्तला। इतरे सख्यौ।) [144]

राजा - निपुणो भवान्। अस्त्यत्र मे भावचिह्नम्। [145]

स्विन्नाङ्गुलीनिवेशो रेखाप्रान्तेषु दृश्यते मलिनः।
अश्रु च कपोलपतितं लक्ष्यमिदं वर्तिकोच्छ्वासात्॥ 6 - 15॥ [146]

मेधाविनि, अवलिखितम् एतद् विनोदनम् अस्माभिस्तद् गच्छ, वर्तिकास्तावद् आनय। [147]

लिपिकरी -अय्य माधव, अवलम्भ चित्तफलअं यावद् गच्छामि। (इति विदूषकाय दत्त्वा निष्क्रान्ता)
(आर्य माधव्य, अवलम्भस्व चित्रफलकं[3], यावद् गच्छामि।) [148]

विदूषकः - किं अवरं इत्थ अभिलिहिदव्वं। (किमपरम् इहाभिलिखितव्यम्।) [149]

---

1. काश्मीर-पाठेऽत्र दुष्यन्तः स्वकीयचित्रकर्मणो न कामपि प्रशंसां प्रकटयति।, मैथिल-पाठे न तथा।
2. मैथिल-पाठे "स्निग्धतरपल्लवस्य बालचूतवृक्षस्य पार्श्वे आलिखिता" इति।
3. काश्मीर-पाठे चित्रफलकं विदूषकस्यैव हस्ते स्थाप्यते, किन्तूत्तरवर्तिनि काले तच्चित्रं राजैव धारयतीति मैथिल-रंगकर्मिभिः प्रदर्श्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अक्षमाला - असंसअं, जो जो सहीए मे अभिरुइदो पदेसो तं आलिहिदुकामो भविस्सदि त्ति तक्केमि। (असंशयम्। यो यस्सख्या मेऽभिरुचितः प्रदेशस्तं तम् आलिलिखितुकामो भविष्यतीति तर्कयामि।) [150]

राजा - माधव्य, श्रूयताम् -

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्त्रोतोवहा मालिनी
पादान्ते निभृतं निषण्णचमरो गौरीगुरोः पावने।
शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः
शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम्।। 6-16।। [151]

विदूषकः - (आत्मगतम्) तहा तक्केमि पूरिदमणेण चित्तफलअं कुच्चालआणं तवसाणं त्ति।
(तथा तर्कयामि पूरितमनेन चित्रफलकं कूर्चालकानां तापसानाम् इति।) [152]

राजा - माधव्य, अन्यच्च शकुन्तलायाः प्रसाधनम् अभिप्रीतम् अत्र विस्मृतम् अस्माभिः। [153]

विदूषकः - किं विअ। (किमिव।) [154]

अक्षमाला - वणवासस्स तस्सा अ सोउमय्यस्स जं अणुसदिसं भविस्सदि त्ति। (वनवासस्य तस्याश्च सौकुमार्यस्य यद् अनुसदृशं भविष्यतीति।) [155]

राजा -

कृतं न कर्णार्पितबन्धनं सखे शिरीषमागण्डविलम्बिकेसरम्।
न वा शरच्चन्द्रमरीचिकोमलं मृणालसूत्रं रचितं स्तनान्तरे।। 6-17।। [156]

विदूषकः - किं णु अत्थभोदी रत्तकुवलअसोहिणा अग्गहत्थेण मुहं ओवारिअ चकिदचकिदा विअ ट्ठिदा।
(किं नु अत्रभवती रक्तकुवलयशोभिनाग्रहस्तेन मुखमपवार्य चकितचकितेव स्थिता।)
(दृष्ट्वा) [157]हे हे भो, एसो दासीए पुत्तो कुसुमपाडच्चरो महुअरो अत्थभोदीए वअणकमलं अभिलसदि। (हेहे भोः, एष दास्याः पुत्रः कुसुमपाटच्चरो मधुकरोऽत्रभवत्या वदनकमलम् अभिलषति।) [158]

राजा - ननु निवार्यताम् एष धृष्टः।[1] [159]

विदूषकः - भवं य्येव अविणीदाणुसासी वारणे पभवदि। (भवान्नेवाविनीतानुशासी वारणे प्रभवति।)

राजा - युज्यते। अयि भोः, कुसुमलताप्रियातिथे! किं इतः परिपतनखेदम् अनुभवसि। [161]

एषा कुसुमनिषण्णा तृषितापि सती भवन्तम् अनुरक्ता।
प्रतिपालयति मधुकरी न खलु मधु त्वया विना पिबति।। 6 - 18।। [162]

अक्षमाला - अभिजादं खु वारिदो। (अभिजातं खलु वारितः।) [163]

विदूषकः - पडिसिद्धवामा एसा जादी। (प्रतिषिद्धवामैषा जातिः।) [164]

राजा - एवं भोः, न मे शासने तिष्ठसि.......।
श्रूयताम् तर्हि सम्प्रति। [165]

अक्लिष्टबालतरुपल्लवलोभनीयं,
पीतं मया सदयमेव रतोत्सवेषु।
बिम्बाधरं दशसि चेद् भ्रमर प्रियाया-
स्त्वां कारयामि कमलोदरबन्धनस्थम्।। 6 - 19।। [166]

---

1. काश्मीर-पाठे शकुन्तलायाश्चित्रं विदूषकस्य हस्त एवास्तीत्यधेयम्। मैथिल-पाठे न तथा।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

विदूषकः - एवं तिक्खदण्डस्स कधं ते ण भाईस्सदि। (प्रहस्य) एस(सो) उम्मत्तको खु। अहं पि ईदिसस्स संसग्गेण ईदिसवण्णो विअ संवुत्तो। (एवं तीक्ष्णदण्डस्य कथं ते न भेष्यति। एष उन्मत्तकः खलु। अहमपीदृशस्य संसर्गेण ईदृशवर्ण इव संवृत्तः।) [167]

अक्षमाला - ममा वि अत्तणो अनन्तरं गुणेहि जा अहं दाणिं पडिबुद्धा। (ममाप्यात्मनोऽनन्तरं गणय याहमिदानीं प्रतिबुद्धा।) [168]

राजा - प्रिये, स्थितोऽहम् एतावति[1]। [169]

अक्षमाला - अहो धीरे वि जणे रसो पदं करेदि। (अहो धीरेऽपि जने रसः पदं करोति[2]।) [170]

विदूषकः - भो चित्तम् खु एदम्। (भोः चित्रम् खलु एतत्।) [171]

राजा - (सविषादम्) वयस्य, किमिदम् अनुष्ठितम् पौरोभाग्यम्। [172]

दर्शनसुखम् अनुभवतस्साक्षाद् इव तन्मयेन हृदयेन।
स्मृतिकारिणा त्वया मे पुनरपि चित्रीकृता कान्ता॥ 6 - 20॥ (रोदिति) [173]

अक्षमाला - वअस्स, सुमरिदं तए पच्चादेसविमाणणं सउन्तलाए सहीए, दिट्ठं खु पच्चक्खं अम्हेहिं। (वयस्य, स्मृतं त्वया प्रत्यादेशविमाननं शकुन्तलायाः सख्याः, दृष्टं खलु प्रत्यक्षमस्माभिः।) [174]

लिपिकरी -(प्रविश्य लिपिकरी)भट्टा, देवीए कुलप्पभाए परिजणेण अन्तरा अवच्छिण्णो दे वत्तिकाकरण्डओ। (भर्तः, देव्याः कुलप्रभायाः परिजनेना[3]न्तरावच्छिन्नस्ते वर्तिकाकरण्डकः।) [175]

राजा - भवतु, वयमप्यक्षमास्सम्प्रति वर्तिकाकर्मणि। [176]

अक्षमाला - बहुमाणा असे कुलप्पभा। अह वा,ण एदम् किं चि। विपञ्चीए खु असण्णिधाने एकतन्तुरपि अग्घदि। (बहुमान्याऽस्य कुलप्रभा। अथ वा, नैतत् किञ्चित्। विपञ्च्याः खलु असन्निधान एकतन्तुरप्यर्घति[4]।) [178]

राजा - वयस्य, पश्य, कथम् अविश्रामदुःखम् अनुभवामः। [179]

प्रजागरात् खिलीभूतस्तस्याः स्वप्नसमागमः।
बाष्पोऽपि न ददात्येनाम् द्रष्टुं चित्रगतामपि॥ 6-21॥ [180]

लिपिकरी -भट्टा, इदं पि दाणिं चित्तपडिकिदं पिङ्गलिआमिस्सीओ अवहट्टिदं यदन्ति (जं अत्थि)।
(भर्तः, इदमप्यिदानीं चित्रप्रतिकृतं पिङ्गलिकामिश्राभिः अवघट्टितं यदस्ति।) [181]

विदूषकः - छिण्णा दाणिं से आसा। (छिन्ना इदानीम् अस्य आशा।) [182]

राजा - हुं। (स्तनान्तरे हस्तं निक्षिपति[5]) [183]

॥ नेपथ्ये॥ [184]

जअदु जअदु भट्टिणी। (जयतु जयतु भर्त्री।) [185]

विदूषकः - (कर्णं दत्त्वा) अवेध भो, मेधाविणिं मिगीं विअ अनुसरन्ती उवत्थिदा अन्तेउरव्वग्गी पिंगलिआ[6]।

1. मैथिल-पाठे नास्ति राज्ञ उक्तिरियम्।, काश्मीर-पाठे राज्ञ अन्यमनस्कता नाटकीयतामावहति।
2. मैथिल-पाठात् वाक्यमिदं दूरीकृतम्।
3. काश्मीर-पाठे कुलप्रभा राज्ञो दास्या सह कलहं स्पर्धां वा नैव करोति। तदवधेयम्।
4. काश्मीर-पाठ एव समुपलभ्यते वाक्यमिदम्।, मैथिल-पाठेऽन्यदेव वाक्यं पाठान्तरत्वेन स्थाप्यते।
5. मैथिल-पाठेऽस्य प्रसंगस्य भिन्नैव योजनात्रोद्भाविता।, काश्मीर-पाठे राज्ञोऽधिकैवोन्मत्तता प्रदर्श्यते।
6. काश्मीर-पाठे दासीद्वयस्य मध्ये कलहः प्रवर्तते, तदवधेयम्। मैथिल-रंगकर्मिभिः राज्ञः दास्या मेधाविन्या सह साक्षात् देव्या वसुमत्याः कलहः प्रदर्श्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(अपेत भोः, मेधाविनीं मृगीम् इवानुसरन्त्युपस्थितान्तःपुर-व्याघ्री पिङ्गलिका।) [186]

राजा - वयस्य, इमाम् रक्षेमाम् प्रियाप्रतिकृतिम्। [187]

विदूषकः - अत्ताणअं त्ति भणाहि। (आत्मानमिति भण[1]।) [188]

अक्षमाला - सहि एसा पदिकिदी वि दे पडिवक्खस्स अलङ्घणीआ करीअदि। (सखि, एषा प्रतिकृतिरपि ते प्रतिपक्षस्यालङ्घनीया क्रियते।) [189]

विदूषकः - (फलकमादाय) एसो णं तहिं गोएमि जत्थ पारावदिं वज्जिअ अवरो ण पेक्खदि[2]। (द्रुतपदं निष्क्रान्तः) (एष एनं तत्र गोपयामि यत्र पारावतीं वर्जयित्वाऽपरो न प्रेक्षते।) [190]

(प्रविश्य पत्रहस्ता प्रतीहारी) [191]

जअदु जअदु देवो। (जयतु जयतु देवः) [192]

राजा - वसुमति, न खलु देव्यागता[3]। [193]

प्रतीहारी - भट्टा, पत्तकहस्तं(त्थं) मं पेक्खिअ पडिणिवुत्ता। (भर्तः, पत्रकहस्तां मां प्रेक्ष्य प्रतिनिवृत्ता।) [194]

राजा - कालज्ञा[4] कार्योपरोधं मे परिहरति। [195]

प्रतीहारी - देव, अमच्चो विण्णवेदि। अत्थजादस्स गणणाबहुलदाए एक्कं येव पूरकय्यं अवेक्खिदं। तं देवो सोढुं अरिहदि। (देव, अमात्यो विज्ञापयति। अर्थजातस्य गणनाबहुलतयैकमेव पौरकार्यम् अपेक्षितम्। तद् देवस्सोढुम् अर्हति।) [196]

राजा - मेधाविनि, वाच्यताम्। [197]

लिपिकरी- जं भट्टा आणवेदि। (यद् भर्ता आज्ञापयति।) (पत्रकं प्रसार्य वाचयति[5]) "विदितम् अस्तु देवपादानां, यथा धनवृद्ध[6] इति यथार्थनामा वणिग् वारिपथोपजिवी नौ-व्यसने विपन्नः। स चानपत्यः। तस्य कोटिशतसंख्यातं वसु। तदिदानीं राजार्थमापद्यते। श्रुत्वा राजा प्रमाणमिति।"[198]

राजा - (आकम्पितः) कष्टा खल्वनपत्यता। वसुमति, महाधनत्वाद् बहुपत्नीकेन तत्रभवता भवितव्यम्। विचार्यतां यदि कदाचिद् आपन्नसत्त्वा कापि तस्य भार्या स्यात्। [199]

प्रतीहारी - देव, इदाणीमेव केसवसेट्ठिणो दुहिदा णिव्वुत्तपुंसवणा जाआ सुणीअदि।
(देव, इदानीमेव, केशवश्रेष्ठिनो[7] दुहिता निर्वृत्तपुंसवना जाया श्रूयते।) [200]

राजा - ननु स गर्भः पित्र्यं रिक्थम् अर्हति। गच्छ एवम् आर्यपिशुनं ब्रूहि। [201]

प्रतीहारी - जं देवो आणवेदि। (यद् देव आज्ञापयति।) (प्रस्थिता) [202]

राजा - एह्येहि तावत्। [203]

---

1. बंगीय-रंगकर्मिभिर्वाक्यमिदम् "आत्मानपि किमिति न भणती" ति प्रश्नार्थकं प्रयुज्यते।
2. मैथिल-पाठ इतः पूर्वम् "जइ भवं अन्तेउरकूडवासादो मुंचिस्सदी" त्यादिकमधिकं वाक्यं प्रक्षिप्यते।
3. काश्मीर-पाठे देव्या नाम कुलप्रभेति वर्तते, वसुमतीति नाम्ना तु प्रतीहारी निर्दिश्यते।
4. मैथिल-पाठे समयज्ञा देवीति पठ्यते।, बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
5. मैथिल-पाठे राजा स्वयमेव पत्रं पठति।, काश्मीर-पाठे प्राकृतभाषिणी लिपिकरी संस्कृतं पठति।
6. मैथिल-पाठे धनवृद्धिरिति नाम पठ्यते।
7. मैथिल-पाठे तु साकेतश्रेष्ठिनो नामोल्लेखः प्राप्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रतीहारी - (निवृत्य) इअम्हि। (इयमस्मि।) [204]

राजा - अपि च, तत्रभवान् वक्तव्यः। किम् अनेन सन्ततिरस्ति नास्ति वेति। [205]

येन येन वियुज्यन्ते प्रजाः स्निग्धेन बन्धुना।
स स पापाद् ऋते तासां दुष्यन्त[1] इति घोष्यताम्॥ 6 - 22॥ [206]

प्रतीहारी - इदं णाम इत्थ घोसिदव्वम्। (निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य च) देव, काले घुट्ठमिव अहिणन्दिदं देवसासणं महाअणेण। (इदम् नामात्र घोषितव्यम्। देव, काले घुष्टम् इव अभिनन्दितं देवशासनं महाजनेन।) [207]

राजा - एवं, (दीर्घं निःश्वस्य) एवं सन्ततिच्छेदनिरवलम्बानां मूलपुरुषाणाम् अवसाने सम्पदः परम् उपतिष्ठन्ते। ममाप्यन्ते पुरुवंशश्रिय एष एव वृत्तान्तः। [208]

प्रतीहारी - पडिहदं आसङ्किदम्। (प्रतिहतम् आशङ्कितम्।) [209]

राजा - धिङ् माम् उपस्थितश्रेयोऽवमानिनम्। [210]

अक्षमाला - असंसअं सहिं य्येव हिदए करिअ णिन्दिदो णेण अत्ता।

(असंशयं सखीम् एव हृदये कृत्वा निन्दितोऽनेनात्मा।) [211]

राजा -

संरोपितेऽप्यात्मनि धर्मपत्नी त्यक्ता मया नाम कुलप्रतिष्ठा।
कल्पिष्यमाणा महते फलाय वसुन्धरा काल इवोप्तबीजा॥ 6-23॥ [212]

लिपिकरी -(जनान्तिकम्) इमं पत्तकं पेसअन्तेण किं स्मारिदं अमच्चेण जं पेक्ख (क्खिअ) दाव भट्टिणो जलावसेको संवुत्तो। (विचिन्त्य) अह वा, ण सो अबुद्धिपुरवं पवट्टदि।

(इमं पत्रकं प्रेषयता किं स्मारितम् अमात्येन[2], यत् प्रेक्ष्य तावत् भर्तुर्जलावसेकः संवृत्तः। अथवा, न सोऽबुद्धिपूर्वकं प्रवर्तते।) [213]

राजा - अहो दुष्यन्तस्य संशयम् आरूढाः पिण्डभाजः। [214]

अस्मात् परं बत यथाश्रुतसंभृतानि
को नः कुले निवपनानि करिष्यतीति।
नूनं प्रसूतिविकलेन मया प्रमुक्तं
धौताश्रुशेषम् उदकं पितरः पिबन्ति॥ 6-24॥ [215]

अक्षमाला - सदिसं खु दे, ववधान-दोसेण अन्धआरो होदि। (सदृशं खलु ते, व्यवधानदोषेणान्धकारो भवति।) [216]

प्रतीहारी- देव, अलं सन्तापितेन। वअत्थो पहु अवरासु देवीसु अणुरूवपुत्तजम्मणा पुव्वपुरिसाणां अरिणो भविस्सदि त्ति। (देव, अलं सन्तापितेन। वयःस्थः प्रभुरपरासु देवीष्वनुरूपपुत्रजन्मना पूर्वपुरुषाणाम् अनृणो भविष्यतीति।) (स्वगतम्) ण मे वअणं पडिगेण्हदि। अहवा अणुरूवमेव ऊसवं (ओसधं) आतङ्कं णिवारेदि। (न मे वचनं प्रतिगृह्णाति। अथवानुरूपमेवौषधम् आतङ्कं निवारयति।)[3] [217]

राजा - (शोकावेगनाटितकेन) सर्वथा, [218]

---

1. मैथिल-पाठे "दुष्मन्तः", बंगीय-पाठे तु "दुःषन्त" इति।, स्थानिकरंगकर्मिणामुच्चारणभेदो दृश्यते।
2. मैथिल-पाठेऽत्र लिपिकरी विदूषकमाह्वयितुं प्रतीहारीं रंगभूमेर्बहिः प्रेषयति।
3. स्वगतमिति रंगसूचनया यदधिकं वचनं प्राप्यते, तत् संदेहास्पदम्। यतो हि- भरतमुनिना तु (25-88) केवलमात्मगतमित्यस्य विधानं क्रियते। दशरूपककारेण स्वगतमि (1-64)ति शब्दस्य प्रयोगः क्रियते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

आमूलशुद्धसंतति कुलमेतत् पौरवं प्रजावन्ध्ये।
मय्यस्तमितमनार्ये देश इव सरस्वतीस्त्रोतः॥ 6-25॥ [219]

(संमोहं गतः) [220]

परिजनः - (ससंभ्रममवलोक्य) समस्ससदु समस्ससदु भट्टा। (समाश्वासितु समाश्वासितु भर्ता।) [221]

अक्षमाला - इदाणिं य्येव णं णिव्वुदं करेए। अधवा महदीहिं उण देवदाहिं एदं दंसिदम्। ण सक्को(क्कं) मए अणणुण्णादाए हत्थसंसग्गं णेदुं। भोदु, जण्णभाओस्सुआओ देवाओ य्येव तहा करइस्सन्ति जधा एसो राएसि ताए सहधम्मचारिणीए समागमिस्सदि। [222]

(नभोऽवलोक्य[1]) [223]

(सहर्षम्) करयिस्सन्ति कधं य्येव, तहि पेक्खामि[2]। जाव इमिणा वुत्तान्तेण पिअसहिं समस्सासेमि। [224]

(उद्भ्रान्तकेन निष्क्रान्ता) [225]

(इदानीमेवैनं निर्वृतं कुर्वे। अथवा महतीभिः पुनर्देवताभिरेतद् दर्शितम्। न शक्यो(क्यं) मयाननुज्ञातया हस्तसंसर्गं नेतुम्। भवतु, यज्ञभागोत्सुका देवा एव तथा करिष्यन्ति यथैष राजर्षि-स्तया सहधर्मचारिण्या समागमिष्यति।। करिष्यन्ति कथमेव, तत्र प्रेक्षे। यावद् अनेन वृत्तान्तेन प्रियसखीं समाश्वासयामि।) [226]

(नेपथ्ये) [227]

अब्बम्हण्णं अब्बम्हण्णं भो। अब्बम्हण्णं। (अब्रह्मण्यम् अब्रह्मण्यम् भोः। अब्रह्मण्यम्) [228]

राजा - (शनैः प्रत्याश्वस्य।) (कर्णं दत्त्वा) अये माधव्यस्येवार्तनादः। [229]

लिपिकरी - तवस्सी, पिङ्गलिआमिसीणं मुहे पडिदो भविस्सदि।
(तपस्वी पिङ्गलिकामिश्राणां मुखे[3] पतितो भविष्यति।) [230]

राजा - वसुमति, गच्छ मद्वचनाद् अनिषिद्धपरिजनां देवीम् उपालभस्व[4]। [231]

प्रतीहारी - तथा। (इति निष्क्रान्ता) [232]

(नेपथ्ये) [233]

अब्बम्हण्णं अब्बम्हण्णं भो। (अब्रह्मण्यम् अब्रह्मण्यम् भोः।) [234]

राजा - परमार्थभीत एव भिन्नस्वरो ब्राह्मणः। कः कोऽत्र भोः। [235]

कञ्चुकी- (प्रविश्य) आज्ञापयतु देवः। [236]

राजा - किम् एष माधव्यो माणवकः[5] क्रन्दति। [237]

कञ्चुकी - देव, यावद् अवलोकयामि। (निष्क्रम्य संभ्रमात् पुनः प्रविष्टः) [238]

राजा - पार्वतायन, न खलु किञ्चिद् अत्ययिकम्। [239]

---

1. काश्मीर-पाठ एवैतादृशी नाट्ययोजना दृश्यतेऽक्षमालाया रंगान्निष्क्रमणार्थम्। अन्यत्र परिवर्तिता सा।
2. काश्मीर-पाठे वाक्येनानेनाक्षमाला मातलेरागमनम्, इन्द्रस्य च साहाय्यार्थं दुष्यन्तस्य स्वर्गं प्रति प्रस्थानं संसूच्यते। नास्तीदं वाक्यमन्यासु वाचनासु।, काश्मीर-रङ्गकर्मिणां मूलपाठरक्षणे वैशिष्ट्यं प्रतिभाति।
3. काश्मीर-पाठे राज्ञः पूर्वपरिणीतया देव्या विदूषकस्य ताडनं भवतीति नास्ति। किन्तु दास्या पिङ्गलिकया स गृहीत इति कल्प्यते।
4. मैथिल-बंगीय-पाठयो-"श्चित्रफलकहस्तः प्रापित" इति उपलभ्यते।
5 कस्याश्चिन्मातृकायाः पार्श्वान्तरे शब्दार्थत्वेन प्रदत्तो माणवक इति शब्दोऽत्र मूलपाठत्वेन प्रविष्टः स्यादिति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

कञ्चुकी - देव, नैवम्। [240]

राजा- तत्कुतोऽयं वेपथुः[1]। [241]

कञ्चुकी - किन्तु[2] ,

प्रागेव जरसा कम्पस्सविशेषं तु साम्प्रतम्।
आविष्करोति सर्वाङ्गम् अश्वत्थम् इव मारुतः[3]॥ 6-26॥ [242]

तत्परित्रायताम् सुहृदं महाराजः। [243]

राजा - कस्मात् परित्रातव्यः। [244]

कञ्चुकी - महतः कृच्छ्रात्। [245]

राजा - अये, अनिर्भिन्नार्थम् उच्यताम्। [246]

कञ्चुकी - देव, योऽसावभ्रंलिहो नाम प्रासादः। [247]

राजा - किं तत्र। [248]

कञ्चुकी -

तस्याग्रभूमेर्गृहनीलकण्ठैरनेकविश्रान्तिविलङ्घ्यशृङ्गम्।
सखा प्रकाशेतरमूर्तिना ते सत्त्वेन केनापि निगृह्य नीतः[4]॥ 6-27॥ [249]

राजा - (सहसोत्थाय) [मा] तावत्। ममापि सत्त्वैरभिभूयन्ते गृहाः। अथवा, बहुप्रत्यवायं नृपत्वम्। [250]

अहन्यहन्यात्मन एव तावज्ज्ञातुं प्रमादस्खलितं न शक्यम्।
प्रजासु कः केन पथा प्रयातीत्यशेषतः कस्य नु शक्तिरस्ति[5]॥ 6-28॥ [251]

(नेपथ्ये) [252]

अयि, धाव भो। (अयि, धाव भोः।) [253]

राजा - (सहसोत्थाय) (गतिभङ्गेन परिक्रामन्) वयस्य, न भेतव्यम्। न भेतव्यम्। [254]

(नेपथ्ये) [255]

विदूषकः - कधम् दाणिं ण भाइस्सं। एसो मं को वि पच्छामोडिदसिरोधरं इक्खुं विअ थीरभङ्गं[6]य्येव करेदुं इच्छदि। (कथमिदानीं न भेष्यामि। एष मां कोऽपि पश्चान्मोटितशिरोधरम् इक्षुम् इव स्थिरभङ्गम्[7] एव कर्तुम् इच्छति।) [256]

राजा - (सदृष्टिक्षेपम्) धनुर्धनुस्तावत्। [257]

यवनी- (प्रविश्य शार्ङ्गहस्ता यवनी[8]) जअदु जअदु भट्टा। एदं सरासणं हत्थावापसहिदम्।

1. अनुगामिनः श्लोकस्यावतारणायेयमुक्तिः प्रक्षिप्ता प्रतिभाति।
2. मै.-बं.-पाठयोरस्य शब्दस्य सम्बन्धः"तत्परित्रायतां सुहृदं महाराज" इत्यनेन सहैव समुचितो भाति।
3. मैथिल-बंगीयपाठयोः कस्यचित् त्राणस्य प्रसंगे श्लोकगानमप्रस्तुतं प्रतिभाति, तेन प्रक्षिप्तत्वेन उद्घोष्यते।
4. विदूषकस्य त्राणस्य प्रसंगे श्लोकगानम् अनुचितमेव। अतः प्रक्षिप्तत्वेन उद्घोष्यते।
5. विदूषकस्यार्तस्वरं श्रुत्वापि श्लोकगानेन कालक्षयः क्रियते, तत्तु नाट्यस्य कृते सर्वथा नोचितम्। अतः प्रक्षिप्तः प्रतिभाति श्लोकोऽयम्।, तस्य च समर्थनं "सहसोत्थाये"ति रंगसूचनायाः पुनरुक्त्या प्राप्यते।
6. मैथिल-पाठेऽस्मिन् वाक्ये नास्त्युपमा प्रयोगः।
7. मैथिल-पाठे-"ऽस्थिभङ्गमि" ति।, बंगीय-पाठे "भग्नग्रन्थिम्" इति।
8. काश्मीर-बंगीय-पाठयोर्यवन्या निर्देशः प्राप्यते।, मैथिल-पाठे प्रतीहारीत्यस्या निर्देशो वर्तते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(जयतु जयतु भर्ता। एतच्छरासनं हस्ताचापसहितम्।) [258]

राजा - (सशरं धनुरादत्ते।) [259]

(नेपथ्ये) [260]

एष त्वाम् अभिनवकण्ठशोणितार्थी, शार्दूलः पशुमिव हन्मि वेष्टमानम्।
आर्तानाम् भयमपनेतुम् आत्तधन्वा दुष्यन्तस्तव शरणं भवत्विदानीम्।। 6-29।। [261]

राजा - (सरोषम्) कथं माम् एवम् उद्दिशति। तिष्ठ तिष्ठ कुलपांसन, अयम् इदानीं न भवसि।
(चापमादाय) पार्वतायन, सोपानमार्गम् आदेशय। [262]

कञ्चुकी - इत इतो देवः। (सर्वे सत्वरम् उपसर्पन्ति) [263]

राजा - (समन्ताद् विलोक्य) शून्यं खल्विदम्। [264]

(नेपथ्ये) [265]

विदूषकः - अभिधाव भो, अहं भवं पेक्खामि। एसो भवं मं न पेक्खदि। मज्जारगिहीदो विअ उन्दुरो णिरासो म्हि जीविदे संवुत्तो। (अभिधाव भोः। अहं भवन्तं प्रेक्षे। एष भवान् माम् न प्रेक्षते। मार्जारगृहीत इवोन्दुरो निराशोऽस्मि जीविते संवृत्तः।) [266]

राजा - भोः तिरस्करिणीगर्वित, मदीयम् अस्त्रं त्वां पश्यति। स्थितो भव। मा च वयस्यसम्पर्काद् विश्वासोऽभूत्। एष त्वदर्थं तमिषुम् संदधे। [267]

यो हनिष्यति वध्यं त्वां रक्ष्यं रक्षिष्यति द्विजम्।
हंसोऽपि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः।। 6-30।। (अस्त्रं सन्धत्ते) [268]

(प्रविश्य सम्भ्रान्तो विदूषकमुत्सृज्य मातलिर्विदूषकश्च) [269]

मातलिः - आयुष्मान्,

कृताः शरव्या हरिणा तवासुराः शरासनं तेषु विकृष्यताम् इदम्।
प्रसादसौम्यानि सतां सुहृज्जने पतन्ति चक्षूंषि न दारुणाः शराः।। 6-31।। [270]

राजा - (अस्त्रमुपसंहरन्) अये मातलिः। स्वागतम् देवराजसारथये। [271]

विदूषकः - (निकटमेत्य) भो अहं णेण पसुमारेण मारिदो इमम्हि। साअदेण अभिनन्दासि।
(भोः अहमनेन पशुमारेण मारितः अस्मि। स्वागतेन अभिनन्दसि।) [272]

मातलिः - (सस्मितम्) आयुष्मन्, श्रूयतां यदस्मि हरिणा भवत्सकाशं प्रेषितः। [273]

राजा - अवहितोऽस्मि। [274]

मातलिः - अस्ति कालनेमिप्रसूतिर्दुर्जयो नाम दानवगणः। [275]

राजा - श्रुतपूर्वो मया नारदात्। [276]

मातलिः -

सख्युस्ते स किल शतक्रतोरवध्यः तस्य त्वं रणशिरसि स्मृतो निहन्ता।
उच्छेत्तुं प्रभवति यन्न सप्तसप्तिः तन् नैशं तिमिरमपाकरोति चन्द्रः।। 6-32।। [277]

तद् भवान् गृहीतचाप एवेदानीं ऐन्द्रं रथम् अधिरुह्य विजयाय प्रतिष्ठताम्। [278]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा - अनुगृहीतम् अनया मघवतस्सम्भावनया। अथ भवद्भिर्माधव्यं प्रति किमेवं प्रयुक्तम्। [279]

मातलिः - (सस्मितम् विदूषकम् अवलोक्य) तदपि कथ्यते। कुतोऽपि निमित्तान् मनस्तापाद् आयुष्मान् मया विक्लवो दृष्टः। पश्चात् कोपयितुम् आयुष्मन्तं तथा कृतवान् अस्मि। [280] कुतः,

ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निर्विकृतः पन्नगः फणां कुरुते।
प्रायस्स्वं महिमानं क्षोभात् प्रतिपद्यते जन्तुः॥ 6 - 33॥ [281]

राजा - (जनान्तिकम्) वयस्य माधव्य, अनतिक्रमणीया दिवस्पतेराज्ञा। तदत्र परिगतार्थं कृत्वा मद् वचनाद् अमात्यपिशुनं ब्रूयाः - [282]

त्वन्मतिः केवला तावत् परिपालयितुं प्रजाः।
अधिज्यमिदम् अन्यस्मिन् कर्मणि व्यापृतं धनुः॥ 6-34॥ [283]

विदूषकः - जं भवं आणवेदि। (यद् भवान् आज्ञापयति।) (इति निष्क्रान्तः।) [284]

मातलिः - इत इत आयुष्मान्[1]। [285]

(इति परिक्रम्य निष्क्रान्ताः सर्वे) [286]

॥ इति अभिज्ञानशकुन्तला-नाटके षष्ठोऽङ्कः[2]॥ [287]

1. मैथिल-पाठे "रथमारोहत्वायुष्मान्" इति वाक्यं प्राप्यते।
2. काश्मीर-पाठे न कुत्रापि प्रत्येकस्याङ्कस्य नामोपलभ्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

।। अथ सप्तमोऽङ्कः।।

(ततः प्रविशति नाकलासिका[1]) [1]

नाकलासिका – आणत्तं हि गुरुणा णारएण जहा – एदेसु य्येव दिवसेसु मच्चलोआदो उत्तिण्णेण राएसिणा दुस्सन्तेण भअवदो पुरन्दरस्स पिअआरिणा दाणववहणिमिद्दं गन्तव्वं। जाव अभि[च्चि]अ इमं आपुच्छिअमाणो णिक्खिवदि ताव य्येव मए विबुहपच्चक्खं मङ्गलणिमित्तं किं पि पेक्खणअं दरसइदव्वं। ता तुमं कं पि लासिअं अण्णेसिअ सङ्गीदसालाअं आगच्छ त्ति। ता जाव लासिअं अण्णेमि। (परिक्रम्यावलोक्य च) का पुण एसा गिहीदवरणा पच्छा हरिसिदुक्कण्ठिदा विअ इदो एवागच्छदि। (निपुणमवलोक्य) कहं पिअसही चूदमञ्जरी। ता जाव एदाए सह उवज्झाअ समीपं गच्छामि। (इति प्रतिपालयति) (आज्ञप्तं हि गुरुणा नारदेन यथैतेष्वेव दिवसेषु मर्त्यलोकाद् उत्तीर्णेन राजर्षिणा दुष्यन्तेन भगवतः पुरन्दरस्य प्रियकारिणा दानववधनिमित्तं गन्तव्यं, यावद् अभ्यर्च्येममापृच्छ्यमानो(नं) निक्षिपति तावदेव मया विबुधप्रत्यक्षं मङ्गलनिमित्तं किमपि प्रेक्षणकं दर्शयितव्यम्। तत् त्वं कामपि लासिकाम् अन्वेष्य सङ्गीतशालामागच्छेति।

तद् यावल्लासिकाम् अन्वेषयामि। का पुनरेषा गृहीतवर्णा पश्चाद् हर्षितोत्कण्ठेवेत एवागच्छति।

कथं प्रियसखी चूतमञ्जरी। तद् यावद् एतया सहोपाध्यायसमीपं गच्छामि।) [2]

।। ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टा लासिका सविस्मयं सहर्षं च।। [3]

अहो, महप्पभावो राएसी दुस्सन्तो। (सासूयम्) अहो महाबलो सो हदो दुज्जओ दाणवबलो।

(विचार्य)अहवा, दुस्सन्तो य्येव, जेण सारधि-दुदीएण य्येव अणेअ पहरण साहस्सइं विकिरन्तो खणेण य्येव णिहदो सो दुज्जअदाणवबलो। (नृत्यति[2]) (अहो महाप्रभावो राजर्षिर्दुष्यन्तः।

अहो महाबलस्स हतो दुर्जयो दानवबलः। अथवा दुष्यन्तः एव[3], येन सारथिद्वितीयेनैवानेक- प्रहरणसाहसानि विकिरन्(रता) क्षणेनैव निहतः स दुर्जयदानवबलः।) [4]

प्रथमा - (उपसृत्य) सहि चूदमञ्जरिए उक्कण्ठिदा विअ लक्खीअसि।

(सखि चूतमञ्जरिके, उत्कण्ठितेव लक्ष्यसे।) [5]

द्वितीया - (विलोक्य) कहं पारिजाअमञ्जरी। सहि, सव्वं कधयिस्सं। तुअं दाव कहिं पत्थिद त्ति पुच्छिस्सं।

(कथं पारिजातमञ्जरी[4]। सखि, सर्वं कथयिष्यामि। त्वं तावत् कुत्र प्रस्थितेति प्रक्ष्यामि।) [6]

प्रथमा - सहि, सङ्खेवेण कधइस्सं। अहं खु राएसिणो दुस्सन्तस्स दाणवविजअ-ववदेसेण अज्ज मङ्गल निमित्तं किं पि पेक्खणअं दंसीअदि त्ति, उवज्झाअस्स आणाए उभे य्येव सआसं। (सखि, सङ्क्षेपेण कथयिष्यामि, अहं खलु राजर्षेर्दुष्यन्तस्य दानवविजयव्यपदेशेनाद्य मङ्गलनिमित्तं किमपि प्रेक्षणकं दर्शयत इति उपाध्यायस्याज्ञया उभे एव सकाशम् - - -।) [7]

---

1. काश्मीर-पाठ एवायं प्रवेशकः प्राप्यते। यत्र च नाकलासिके रंगभूमिं समागत्य वार्तालापं कुरुतः। नाकलासिकेति नामतो ज्ञायते यदेते स्वर्गलोकस्य नृत्याङ्गने स्याताम्। ताभ्याञ्च नृत्यं प्रस्तूयते। काश्मीर-रंगकर्मिणां पाठरक्षणे विशिष्टमवदानं प्रतीयते।
2. काश्मीर-पाठे समुपलभ्यमानमिदं नृत्यं काश्मीर-रंगकर्मिणामनितरसाधारणवैशिष्ट्यं प्रदर्शयति।
3. कालिदासोऽत्र दुष्यन्तेति शब्दस्य स्वारस्यं प्रकटयति, दुष्कर अस्त्यन्तो यस्य सः, अथवा दुष्टानामन्तः,= अन्तकर्तेति दुष्यन्तः। कालिदासेनान्यत्रापि नायकादीनां निरुक्तिः प्रदत्तैव।
4. षष्ठांके यथा परभृतिका मधुकरिका चेति स्त्रीवेशधारिभ्यां नटीभ्यां निसर्गस्थितयोः कोकिला-मधुमक्षिकयोः प्रस्तुतिर्विहिता तथैवात्रापि चूतमञ्जरी पारिजातमञ्जरी चेति नाकलासिकाभ्यां निसर्गस्यैव प्रातिनिध्यं प्रस्तूयते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

द्वितीया - (सोत्कण्ठम्) आसि अवसरो एदस्स दाणिं पुणो मच्चलोअं पत्थिदे एदस्सिं महाराए कस्स दंसीअदि। (आसीदवसर एतस्य। इदानीं पुनर्मर्त्यलोकं प्रस्थित एतस्मिन् महाराजे कस्य दृश्यते।) [8]

प्रथमा - (साशङ्कम्) सहि, किं महेन्दस्स मनोरहाइं सम्पादिअ गदो, आद अण्णदि त्ति।

(सखि, किम् महेन्द्रस्य मनोरथान् सम्पाद्य गत, उतान्यथेति।) [9]

द्वितीया - सहि, सुणु। अज्ज य्येव गोसग्गसमए णवरं दुज्जयदाणवजीविअसव्वस्ससेसं गिहितुण एव अ तिदसविलासिणि सरसहिअआइं अवणिं अहिपडिदो अदो अ मए हरिसोकण्ठाणं कारणं।

(सखि, शृणु। अद्यैव गोसर्गसमये केवलं दुर्जयदानवजीवितसर्वस्वशेषं गृहीत्वा, एवञ्च त्रिदश विलासिनीसरसहृदयान्यवनिम् अभिप्रस्थितः। अतश्च मे हर्षोत्कण्ठानां कारणम्।) [10]

प्रथमा - सहि तए पिअं णिवेदिदं जं य्येव उवज्झाएण पुरुवंसराएसिणो पुरओ कय्यं कादुं आणत्तं। तं य्येव गीअं कादुण इत्थ य्येव करेम्ह। (सखि, त्वया प्रियं निवेदितं यद् एवोपाध्यायेन पुरुवंशराजर्षेः पुरतः कार्यं कर्तुम् आज्ञप्तम्। तदेव गीतं कृत्वाऽत्रैव कुर्वः।) [11]

द्वितीया - जं दे [रोअदि], य्येव ता ज य्येव गीअं मए लविदं, तए वा, सह णच्छम्म।

(यत्ते [रोचते], एवं तत् यदेव गीतं मया लपितं, त्वया वा, सह नृत्यावः।) [12]

प्रथमा - सहि, एवं करेम्ह। (उभे गायतः) [13]

अविसअगमणं कंचन अण्णं अ सराअमालि महुसमओ।
अण्णं कुणइं विसण्णं पाडीइमाणं भूमीए।। 7-1।।

(सखि, एवं कुर्वः।

अविषयगमनं कंचनान्यं च सरागम् आलिं मधुसमयः।
अन्यं करोति विषण्णं पात्यमानं भूम्याः (भूम्याम्)।। 7-1।।) [14]

(इत्यन्ते नर्तित्वा निष्क्रान्ते।) [15]

(प्रवेशकः[1]) [16]

(ततः प्रविशति रथयानेन रथाधिरूढो राजा दुष्यन्तो मातलिश्च) [17]

राजा - मातले, अनुष्ठितनिदेशोऽपि मघवतस्सत्क्रियाविशेषाद् अनुपयुक्तमिवात्मानं समर्थये। [18]

मातलिः - आयुष्मान् उभयमप्यपरितोषम्। कुतः - [19]

उपकृत्य हरेस्तथा भवाल्लँघु सत्कारम् अवेक्ष्य मन्यते।
गणयत्यप(व)दानसम्मितां भवतस्सोऽपि न सत्क्रियाम् इमाम्।। 7-2।। [20]

राजा - मा मैवम्। स खलु मनोरथानाम् अप्यतिभूमिवर्ती विसर्जनावसरे सत्कारः। मम हि दिवौकसां समक्षम् अर्धासनोपवेशितस्य। [21]

अन्तर्गतप्रार्थनम् अन्तरस्थं जयन्तमुद्वीक्ष्य कृतस्मितेन।
प्रमृज्य वक्षो हरिचन्दनाक्तं मन्दारमाला हरिणा पिनद्धा।। 7-3।। [22]

[मातलिः] - किमिव नायुष्मान् परमेश्वराद् अर्हति। पश्य - [23]

---

1. काश्मीर-पाठ एवायं प्रवेशकः प्राप्नोति।, प्रवेशकोऽयं मौलिको न स्यादिति केचन। किन्तु विदुषा डॉ. श्री बेलवालकरेण तस्य मौलिकता भवितुमर्हतीति प्रतिपादितम्। यथा कालिदासेनान्ययोः नाटकयोः संगीत-नृत्ययोः संनिवेशः कृत, तथैवात्रापि भवितुमर्हतीति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

सुखपरस्य हरेरुभयैः कृतं त्रिदिवम् उद्धृतदानवकण्टकम्।
तव शरैरधुना नतपर्वभिः पुरुषकेसरिणश्च पुरा नखैः॥ 7-4॥ [24]

राजा- अत्र शतक्रतोरेव महिमा। पश्य, [25]

सिद्ध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः
संभावनागुणम् अवेहि तमीश्वराणाम्।
किं प्राभविष्यद्[1] अरुणस्तमसां वधाय
तं चेत् सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत्॥ 7-5॥ [26]

मातलिः - सदृशं तवैतत्। (स्तोकम् अन्तरमतीत्य) आयुष्मान्, इतः पश्य, नाकपृष्ठप्रतिष्ठितस्य सौभाग्यम् आत्मयशसः। [27]

विच्छित्तिशेषैस्सुरसुन्दरीणां वर्णैरमी कल्पलतान्तरेषु।
संचिन्त्य गीतिक्षमम् अर्थतत्त्वं दिवौकसस्त्वच्चरितं लिखन्ति॥ 7-6॥ [28]

राजा - मातले, असुरसंप्रहारोत्सुकेन पूर्वं दूरम् अधिरोहता न लक्षितो मया स्वर्गमार्गः। तत् कतमस्मिन् पथि मरुतां वर्तामहे। [29]

मातलिः -

त्रिस्रोतसं वहति यो गगनप्रतिष्ठां ज्योतींषि वर्तयति चक्रविभक्तरश्मिः।
तस्य व्यपेतरजसः प्रवहस्य वायोर्मार्गो द्वितीयहरिविक्रमपूत एषः[2]॥ 7-7॥ [30]

राजा - ततः खलु मे सबाह्यान्तःकरणोऽन्तरात्मा प्रसीदति। (रथाङ्गे विलोक्य) शङ्के मेघपथम् अवतीर्णौ स्वः। [31]

मातलिः - (सस्मितम्) कथम् अवगम्यते। [32]

राजा -

अयम् अरिविवरेभ्य[3]श्चातकैर्निष्पतद्भिः
हरिभिरचिरभासां तेजसा चानुलिप्तैः।
गतमुपरि घनानां वारिगर्भोदराणां
पिशुनयति रथस्ते शीकरक्लिन्ननेमिः॥ 7-8॥ [33]

मातलिः - क्षणम् ऊर्ध्वम् आयुष्मान् नात्माधिकारभूमौ वर्तिष्यते। [34]

राजा - (अधोऽवलोक्य) मातले, वेगावरणाद् आश्चर्यदर्शनः खलु सम्पद्यते मनुष्यलोकः। तथा -

शैलानाम् अवरोहतीव शिखरादुन्मज्जतां मेदिनी
पर्णेष्वन्तरलीनतां विजहति स्कन्धोदयात् पादपाः।
सन्धानं तनुभावनष्टसलिला व्यक्ता व्रजन्त्यापगाः
केनाप्युत्क्षिपतेव पश्य भुवनं मत्पार्श्वम् आनीयते॥ 7-9॥ [35]

मातलिः - (सबहुमानम् आलोक्य) अहो उदग्ररमणीया पृथिवी। [36]

राजा - मातले, कतमोऽयं पूर्वापरसमुद्रावगाढः कनकनिष्यन्दशोभी सान्ध्य इव मेघपरिघः सानुमान् आलोक्यते। [37]

मातलिः - आयुष्मान् एष हेमकूटो नाम किम्पुरुषपर्वतः, परं तपस्विनां सिद्धिक्षेत्रम्। पश्य, [38]

---

1. प्राभविष्यदिति रूपमेवोचितम्।, मैथिल-पाठे वाभविष्यदिति रूपं न सन्दर्भानुसारि।
2. मैथिल-पाठे "तस्य द्वितीयहरिविक्रमपूतमेनं, वायोरधः परिवहस्य रहस्यमार्गमि" ति।
3. मैथिल-पाठे-"ऽयम् अगविवरेभ्य0" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

स्वायम्भुवो[1] मरीचेर्यः प्रबभूव प्रजापतिः।
सुरासुरगुरुः सोऽस्मिन् सपत्नीकस्तपस्यति॥ 7-10॥ [39]

राजा - (सादरम्) तेन हि अनतिक्रमणीयानि श्रेयांसि। प्रदक्षिणीकृत्य भगवन्तं [गन्तुम्] इच्छामि यावत्। [40]

मातलिः - प्रथमः कल्पः। (अवतरणं नाटयित्वा) एतावदवतीर्णौ स्वः। [41]

राजा - (सविस्मयम्) मातले,

उपोढशब्दा न रथाङ्गनेमयः प्रवर्तमानं च न दृश्यते रजः।
अभूतलस्पर्शतया निरुद्धतिस्तवावतीर्णोऽपि रथो न लक्ष्यते॥ 7-11॥ [42]

मातलिः- एतावान् एव शतमन्योरायुष्मतश्च विशेषः। [43]

राजा - कतमस्मिन् प्रदेशे मारीचाश्रमः। [44]

मातलिः - (हस्तेन दर्शयन्)

वल्मीकार्धनिमग्नमूर्तिरुरगत्वग्ब्रह्मसूत्रान्तरः
कण्ठे जीर्णलताप्रतानवलयेनात्यर्थसंपीडितः।
अंसव्यापि शकुन्तनीडनिचितं बिभ्रज्जटामण्डलं
यत्र स्थाणुरिवाचलो मुनिरसावभ्यर्कबिम्बं स्थितः॥ 7-12॥ [45]

राजा- नमोऽस्मै कष्टतपसे। [46]

मातलिः - (संयतप्रग्रहं कृत्वा) एतावदिति परिवर्धितमन्दारवृक्षकं प्रजापतेस्तपोवनं प्रविष्टौ स्वः। [47]

राजा - अहो विस्मयः। स्वर्गाद् अधिकनिवृत्तिस्थानम्। अधिक(अमृत)ह्रदमिवावगाढोऽस्मि। [48]

मातलिः - (रथं स्थापयित्वा) अवतीर्यताम्। [49]

राजा - (साभिनयम् अवतीर्य) भवान् कथम् इदानीम्। [50]

मातलिः - समय[य]न्त्रितो[2]ऽयम् आस्ते रथः। वयमप्यवतरामः। [51]

(तथा कृत्वा) इत इत आयुष्मान्। [51], (उभौ परिक्रम्य) [53]

मातलिः - आयुष्मन्, दृश्यन्ताम् अत्रभवतां सिद्धर्षीणां तपोवनभूमयः। [54]

राजा - ननु विस्मयाद् उभयमप्यवलोकयामि। [55]

प्राणानाम् अनिलेन वृत्तिरुचिता सत्कल्पवृक्षे वने
तोये हैमसहस्रपत्रसुभगे नक्तंदिवं सद्-व्रतम्।
ध्यानं रत्नशिलागृहेषु विबुधस्त्रीसंनिधौ संयमो
यत्काङ्क्षन्ति तपोभिरन्यमुनयस्तस्मिंस्तपस्यन्त्यमी॥ 7-13॥ [56]

मातलिः - उत्कर्षिणी खलु महतां प्रार्थना। (परिक्रामतः) [57]

मातलिः - (आकाशे) वृद्धशाकल्य, किं व्यापारो भवान्। (कर्णं दत्त्वा) किं ब्रवीषि। एष दाक्षायण्या पतिव्रतापुण्यम् अधिकृत्य पृष्टः। तस्यास्तद् व्याकरोतीति प्रतिपाल्यावसरः खलु प्रस्तावः।

(राजानं दृष्ट्वा) अस्मिन् नशोकपादपे तावद् आयुष्मान् आस्ताम्। यावत् त्वां प्रजापतय आवेदयामि। [58]

---

1. का.-पाठे चिन्त्यमिदं शब्दरूपम्। (स्वयंभुवोऽपत्यं पुमान् इति स्वायंभुवः, तस्मादिति स्वायंभुवात्।)
2. स्वर्गलोकस्यास्य रथस्य किमपि विशिष्टं स्वरूपं स्यादित्यनुमीयते।, काश्मीर-प्रदेशस्य रंगभूमौ तस्य प्रदर्शनमासीदिति न जानीमहे।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा - यथा भवान् मन्यते। (स्थितः), [59] (निष्क्रान्तो मातलिः।) [60]

राजा- (निमित्तं सूचयित्वा) [61]

मनोरथाय नाशंसे बाहो स्फुरसि किं वृथा।
पूर्वावधीरितं श्रेयो दुःखं हि परिवर्तते।। 7-14।। [62]

(नेपथ्ये)

मा खु मा खु चवलदं करेहि। सिङ्घ.....। कधं कधं य्येव अत्तणो पकिदिं दंसेसि। [63]

(मा खलु मा खलु चपलतां कुरु। सिंह ....। कथं कथमेवात्मनः प्रकृतिं दर्शयसि।)

राजा - (कर्णं दत्त्वा) अभूमिरियम् अविनयस्य। को नु खल्वविनयं(यात्) निषिध्यते। (शब्दानुसारेणाऽवलोक्य) (विस्मयाभिनयपूर्वकम्) अये, अनुरुध्यमानस्तापसीभ्याम् अबालसत्त्वो बालः। [64]

अव(र्ध)पीतस्तनं मातुरामर्दक्लिष्टकेसरम्।
विलम्बितं सिंहशिशुं करेणाहत्य कर्षति।। 7-15।। [65]

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टकर्मा तापसीभ्याम् अनुरुध्यमानो बालः।) [66]

बालः - जिम्भ जिम्भ, ले सिङ्घ। दन्ताइं दे गणइस्सं। (जृम्भ जृम्भ, रे सिंह, दन्तानि ते गणयिष्यामि।) [67]

तापसी - अविणीद, किं ति णो अवच्चणिव्विसेसाइं सत्ताइं विप्पकरोसि। पवट्टदि[दे] संरम्भो। थाणे क्खु इसिजणेण सव्वदमणो त्ति किदणामधेओसि। (अविनीत, किमिति नोऽपत्य-निर्विशेषाणि सत्त्वानि विप्रकरोषि। प्रवर्तते [तव] संरम्भः। स्थाने खल्वृषिजनेन सर्वदमन इति कृतनामधेयोऽसि।) [68]

राजा- किं नु खलु बालेऽस्मिन् नौरस इव पुत्रे स्निह्यति मे मनः। (विचिन्त्य) नूनमनपत्यता मां वत्सलयति। [69]

द्वितीया[1] - एसा केसरिणी तुमं लङ्घेदि, जदि से पुत्तकं ण मुञ्चेसि। (एषा केसरिणी त्वाम् लङ्घयति यद्यस्याः पुत्रकं न मुञ्चसि।) [70]

बालः - (सस्मितम्) अम्महे, बलिअं खु भीदेम्हि। (इत्यधरं दशति) (अहो बलीयः खलु भीतोऽस्मि।) [71]

राजा -

महतस्तेजसो बीजं बालोऽयं प्रतिभाति मे।
स्फुलिङ्गावस्थया वह्निरेधोपेक्ष इव स्थितः।। 7-16।। [72]

प्रथमा - वच्छक, मुञ्च एदं बालं मइन्दं। अण्णं दे कीलणकं दाइस्सं। (वत्सक, मुञ्चैतम् बालं मृगेन्द्रम्। अन्यं ते क्रीडनकं दास्यामि।) [73]

बालः - कहिं शे। देहि मे एणं। (कुत्र सः। देहि म एनम्) (इति दक्षिणहस्तं प्रसारयति) [74]

राजा - कथं चक्रवर्तिलक्षणम् अनेन धार्यते। तथा ह्यस्य, [75]

प्रलोभ्यवस्तुप्रणयप्रसारितो विभाति जालग्रथिताङ्गुलिःकरः।
अलक्ष्यपत्रान्तरम् इद्धरागया नवोषसा भिन्नमिवैकपङ्कजम्।। 7-17।। [76]

प्रथमा - सुव्वदे, ण सक्को एसो आआसमित्तेण सअमिदुं। ता गच्छ। मम केरए उडए मङ्कणअस्स[2] इसिकुमारअस्स वण्णअचित्तिदो मिट्टिआमऊरओ चिट्ठदि। तं से उवाहर।

---

1. प्रथमा तापसी संयता, द्वितीया च तापसी सुव्रतेति।
2. शारदा-पाण्डुग्रन्थेषु शब्दोऽयमस्पष्ट एवाभाति। वाचनान्तरेऽपि तादृशमेवास्ति।, मैथिल-पाठे शालंकायन इति, दाक्षिणात्य-पाठे मार्कण्डेय इति छाया प्राप्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(सुव्रते, न शक्य एष आश्वासमात्रेण संयमितुम्। तद् गच्छ। मामक उडजे मङ्कनकस्य ऋषि कुमारकस्य वर्णकचित्रितो मृत्तिकामयूरकस्तिष्ठति। तम् अस्योपाहर।) [77]

द्वितीया - तधा। (तथा) (इति निष्क्रान्ता) [78]

बालः - ताव इमिणा य्येव कीलयिस्सं। (तावद् अनेनैव क्रीडिष्यामि।) [79]

(तापसी विलोक्य हसति) [80]

राजा - स्पृहयामि दुर्ललितकायास्मै[1]। (निश्श्वस्य) [81]

आलक्ष्यदन्तमुकुलान् अनिमित्तहासैरव्यक्तवर्णरमणीयवचः प्रवृत्तीन्।
अङ्काश्रयप्रणयिनस्तनयान् वहन्तो धन्यास्तदङ्गरजसा परुषीभवन्ति।। 7-18।। [82]

तापसी - (साङ्गुलितर्जनम्) भोदु। ण मं गणअसि। (पार्श्वम् अवलोक्य) को एत्थ इसिकुमारकाणं।

(राजानं दृष्ट्वा) भद्दमुह, एहि मोएहि दाव इमिणा दुम्मोहहत्थग्गेण डिम्बकलिणा बाधीअमाणं बालमइन्दअं। (भवतु, न मां गणयसि। कोऽत्र ऋषिकुमारकाणाम्। भद्रमुख, एहि मोचय तावद् अनेन दुर्मोचहस्ताग्रेण डिम्बकरिणा[2] बाध्यमानं बालमृगेन्द्रम्।) [83]

राजा - तथे- (त्युपगम्य) अयि महर्षिपुत्र, [84]

एवमाश्रमविरुद्धवृत्तिना संयमी किमिति जन्मदस्त्वया।
सत्त्वसंश्रयसुखोऽपि दूष्यते कृष्णसर्पशिशुनेव चन्दनः।। 7-19।। [85]

तापसी - भोदु। ण खु अअं इसिकुमारओ। (भवतु। न खलु अयम् ऋषिकुमारकः।) [86]

राजा - आकारसदृशं चेष्टितम् एवास्य कथयति। स्थानप्रत्ययात् तु वयम् अतर्किणः।

(सिंहं मोचयित्वा, यथाभ्यर्थितम् अनुष्ठितम्। बालस्पर्शम् अनुभूयात्मगतम्।) [87]

अनेन कस्यापि कुलाङ्कुरेण स्पृष्टस्य गात्रेषु सुखं ममैवम्।
कां निर्वृतिं चेतसि तस्य कुर्याद् यस्यायम् अङ्गात् कृतिनः प्रसूतः।। 7-20।। [88]

तापसी - (उभावलोक्य) अच्छरीअं अच्छरीअं। (आश्चर्यम् आश्चर्यम्।) [89]

राजा - किम् इव। [90]

तापसी - अस्स बालस्स असम्बद्धे वि भद्ध(द्द)मुहे संवादिणी आकिदित्ति विम्हिदम्हि। अवि अ, अच्चन्तपरिइदस्स विअ अप्पडिलोमो एसो दे संवुत्तो। (अस्य बालस्यासम्बद्धेऽपि भद्रमुखे संवादिन्याकृतिरिति विस्मिताऽस्मि। अपि च, अत्यन्तपरिचितस्येवाप्रतिलोम एष ते संवृत्तः।) [91]

राजा - (बालम् उपलालयन्) न चेन्मुनिकुमारोऽयम्, अथ कोऽस्य व्यपदेशः।

तापसी - पुरुवंसो[3]। (पुरुवंशः।[4]) [92]

राजा - (स्वगतम्) कथम् एकान्वयोऽयमस्माकम्। अतः खलु मदनुकारिणम् अत्रभवती मन्यते।

(प्रकाशम्) अस्त्येतत् पौरवाणाम् अन्त्यं कुलव्रतम्। [93]

---

1. वाक्येऽस्मिन् "स्पृहेरीप्सित" इति पाणिनिसूत्रेण चतुर्थ्येव भवति, प्रकर्षविवक्षायामत्र सत्यामपि। कर्मत्वं न भवति, द्वितीया नैव प्रयुक्ता।
2. मैथिल-पाठे "डिम्भकेन" इति।, तथैव बंगीय-पाठः। किन्तु प्राकृतशब्दकोशे डिम्बेति शब्दस्यार्थां भय-विघ्न-विप्लवादयः प्रदत्ताः। तेन काश्मीर-पाठे डिम्बकरिणेति शब्दस्यार्थः भय-विघ्न-विप्लव-जनकहस्तिनेति स्यादिति प्रतीयते।
3. मैथिल-बंगीय-पाठयोः "पोरवो" (=पौरवः) इति। (एतदेव भवितुमर्हति।)
4. प्रथममिदम् अभिज्ञानम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

भवनेषु सुधासितेषु पूर्वं क्षितिरक्षार्थम् उशन्ति ते निवासम्।
नियतैकयति-व्रतानि पश्चात् तरुमूलानि गृहीभवन्ति तेषाम्॥ 7-21॥ [94]

न पुनरात्मगत्या मानुषाणाम् एष विषयः। [95]

तापसी - णं जधा भद्दमुहो भणादि। अच्छरासम्बन्धेण पुणो इमस्स बालस्स जणणी एत्थ य्येव गुरुणो तवोवणे पसूदा। (ननु यथा भद्रमुखो भणति - अप्सरसम्बन्धेन पुनरस्य बालस्य जनन्यत्रैव गुरोस्तपोवने प्रसूता।) [96]

राजा - (आत्मगतम्) दत्तं द्वितीयमिदमाशङ्काजननम्। (प्रकाशम्) तत्रभवती किमाख्यस्य राजर्षेः पत्नी। [97]

तापसी - को तस्स धम्मदारपरिच्चाइणो णामधेअं गिण्हीसदि। (कस्तस्य धर्मदारपरित्यागिनो नामधेयं ग्रहीष्यति[1]।) [98]

राजा - (स्वगतम्) इयं खलु कथा मामेव लक्षीकरोति। किं तावद् अस्य शिशोर्मातरं नामतः पृच्छेयम्। अथवा, अन्याय्यः परदारव्यवहारः। [99]

(प्रविश्य मृन्मयमयूरहस्ता द्वितीया) [100]

तापसी - सव्वदमण, सउन्तला[2] -। (सर्वदमन, शकुन्तला-।[3]) [101]

बालः - (सदृष्टिक्षेपम्) कहिं अज्जू। (कुत्र अज्जू (=माता)) [102]

(उभे प्रहसिते) [103]

प्रथमा - णामसादिस्सेण छलिदो मादुअच्छलओ। (नामसादृश्येन छलितो[4] मातृवत्सलकः।) [104]

द्वितीया - वच्छ, सउन्तला भणादि। इमस्स कित्तिम-मऊरस्स रमणीअदं पेक्खत्ति।
(वत्स, शकुन्तला भणति। अस्य कृत्रिम-मयूरस्य रमणीयतां प्रेक्षस्वेति।) [105]

राजा - (स्वगतम्) किं शकु[न्त]लेति मातुराख्या। सन्ति पुनर्नामसादृश्यानि। अपि नाम मृगतृष्णिकेव नायमन्तेन प्रस्तावो विषादाय कल्पते। [106]

बालः- अत्ताके[5], लोअदि मे भद्दालके[6] एहे (शे) मऊले। (अत्ताके[7], रोचते मे भद्रालक एषो मयूरः। [107]

(क्रीडणकमादत्ते) [108]

द्वितीया - (आलोक्य ससंभ्रमम्) अम्मो, रक्खाकरण्डकं से मणिबन्धे ण दीसदि। (अहो रक्षाकरण्डकमस्य मणिबन्धे न दृश्यते।) [109]

राजा - अलमावेगेन। नन्वयम् अस्य सिंहशावकमर्दात् परिभ्रष्टम्। (आदातुमिच्छति) [110]

उभे - मा खु णं आलबिट्ठा। कधं .... गिहीदं येव णेण। (सविस्मयम्) (मा खल्वेनमालम्बिष्ठाः। कथं गृहीतमेवानेन।) [111]

(उरो-निहितहस्ते परस्परम् अवलोकयतः) [112]

---

1. तृतीयमिदम् अभिज्ञानम्।
2. चतुर्थमिदम् अभिज्ञानम्।
3. मैथिल-पाठे "सर्वदमन, प्रेक्षस्व, शकुन्त-लावण्यमि" ति।, बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।, काश्मीर-देशानां रंगकर्मिणां वाचिकाभिनयेऽत्र भेदः परिलक्ष्यते।
4. मैथिल-बंगीय-पाठयोर् "उपच्छन्दितः (=प्रलोभित)" इति।
5. यथा अज्जूकेति देशीशब्दो जननी-वाचको भवति, तथैव ज्येष्ठा भगिनीत्यर्थेऽयं शब्दः स्यात्।
6. मैथिल-पाठे "चडुले" (चटुले) इति।, बंगीय-पाठे "चडुलके" (चटुलके) इति।
7. मैथिल-पाठे "अत्तिके" इति।, बंगीय-पाठे "अन्तिके" इति।, (अन्तिका = ज्येष्ठा भगिनीति पिशेलः)।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा - किमर्थं प्रतिषिद्धोऽस्मि। [113]

प्रथमा - सुणादु अय्यो। महाप्पहावा एसा खु अवराइदा णाम महोसहि इमस्स दारअस्स जादकम्मसमए भअवदा मारीएण दिण्णा। एदम् किल मादापिदरो अत्ताणअं वा वज्जिअ अवरो भूमिपदिदं ण गिण्हादि। (शृणोत्वार्यः। महाप्रभावैषा खलु अपराजिता नाम महौषधिरस्य दारकस्य जातकर्मसमये भगवता मारीचेन दत्ता, एताम् किल मातापितरावात्मानं वा वर्जयित्वाऽपरो भूमिपतितां न गृह्णाति।) [114]

राजा - अथ गृह्णाति, किं भवति। [115]

प्रथमा - तदो सप्पो भविअ अण्णं दंसेदि। (ततस्सर्पो भूत्वाऽन्यं दशति।) [116]

राजा - अथ भवतीभ्यां कदाचिदस्याः प्रत्यक्षीकृता विक्रिया। [117]

उभे - अणेअसो। (अनेकशः) [118]

राजा - (सहर्षम्) तत्किम् खल्विदानीं पूर्णमपि मनोरथं नाभिनन्दामि। [119]

(बालं परिष्वजति(ते)[1] [120]

द्वितीया - सञ्जदे[2], एहि, इमं वुत्तान्तं णिअमणिव्वुदाए सउन्तलाए णिवेदेम्ह।
(संयते, एहि इमं वृत्तान्तं नियमनिर्वृतायै शकुन्तलायै निवेदयामः।) [121]

प्रथमा - एवम् करेम्ह। (इति निष्क्रान्ते तापस्यौ) (एवं करिष्यावः।) [122]

बालः - मुञ्च मं, जाव अज्जूसकासं गच्छामि। (मुञ्च मां, यावद् मातृसकाशं गच्छामि।) [123]

राजा - पुत्रक, मयैव सह मातरं नन्दयिष्यसि। [124]

बालः - मम खु तादे दुश्शन्ते[3], ण तुवं। (मम खलु तातो दुष्यन्तो, न त्वम्।) [125]

राजा- (सस्मितम्) एष विवाद एव मां प्रत्याययति। [126]

(ततः प्रविशति एकवेणीधरा शकुन्तला)[127]

शकुन्तला -विआरकाले वि पकिदित्थं तं सव्वदमणस्स ओसहिं सुणिअ ण मे आसासो अत्तणो भाअधेएसु। अह वा, जधा मे अक्खमालाए आचक्खिदं तदा(धा) सम्भावो एदं। (विकारकालेऽपि प्रकृतिस्थां तां सर्वदमनस्यौषधिं श्रुत्वा न म आश्वास आत्मनो भागधेयेषु। अथवा, यथा मेऽक्षमालया आख्यातं, तथा सम्भाव्यत एतत्।) (परिक्रामति) [128]

राजा- (शकुन्तलां दृष्ट्वा) अये इयमत्रभवती शकुन्तला। [129]

वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी कृतैकवेणिः[4]।
अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीला मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्ति।। 7-22।। [130]

शकुन्तला -(राजानं दृष्ट्वा[5]) ण क्खु अय्यउत्तो[6] विअ। ता को णु खु एसो किदरक्खामङ्गलं दारअं मे हत्थसंसग्गेण दुसेदि।
(न खल्वार्यपुत्र इव। तत् को नु खल्वेष कृतरक्षामङ्गलं दारकं मे हस्तसंसर्गेण[7] दूषयति।) [131]

---

1. पञ्चममिदम् अभिज्ञानम्।
2. उत्तरवर्तिनि कालेऽत्र पाठाशुद्धिः प्रविष्टा। संयतेति प्रथमायाः तापस्या नामापि विलुप्तं भवति।
3. मैथिल-पाठे "दुस्मन्तो" इति। न तत्र मागधीप्राकृतानुसारि प्रथमान्तं शब्दरूपमेकारान्तम्।
4. मैथिल-पाठे "धृतैकवेणिरि" ति।, बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
5. बंगीय-पाठे "पश्चात्तापविवर्णं राजानमवलोक्य सवितर्कमि"ति।, मैथिल-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
6. मैथिल-बंगीय-पाठयोः "अज्जउत्तो" इति।, केवलं काश्मीर-पाठ एव शौरसेनीशब्दरूपं सुरक्षितं वर्तते।
7. बंगीय-पाठे "गात्रसंसर्गेणे" ति।, अनेन सूच्यते यद् बंगीय-रंगभूमौ बालको धार्यते दुःषन्तेन हस्तयोः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

बालः - (मातरमुपेत्य) अज्जुए, एस कोवि परो, को मं माणुसो पुत्तके त्ति आलवदि।
(अज्जुके, एष कोऽपि परः। को मां मानुषः पुत्रक इत्यालपति।) [132]

राजा - प्रिये, क्रौर्यमपि मे त्वयि प्रयुक्तम्[1] अनुकूलपरिणामं संवृत्तम्। यतोऽहमिदानीं त्वया प्रत्यभिज्ञातम् आत्मानमिच्छामि। [133]

शकुन्तला -(स्वगतम्) हिअअ, समस्सस समस्सस। पहरिअ णिव्वुत्तमच्छरेण अणुकम्पिदम्हि देव्वेण।
(हृदय, समाश्वासिहि समाश्वासिहि। प्रहृत्यनिर्वृत्त-मत्सरेणानुकम्पिताऽस्मि दैवेन[2]।) (सहर्षम्) अय्यउत्तो य्येव एसो।
(आर्यपुत्र एवैषः।) [134]

राजा -

स्मृतिभिन्नमोहतमसो दिष्ट्या प्रमुखे स्थितासि मे सुमुखि।
उपरागान्ते शशिनस्समुपनतो रोहिणीयोगः॥ 7-23॥ [135]

शकुन्तला -जअदु जअदु अय्यउत्तो[3]। (जयतु जयतु आर्यपुत्रः।) [136]

(इत्यर्धोक्ते बाष्पकण्ठी बाष्पं विहरति) [137]

राजा - प्रिये,

बाष्पेण प्रतिषिद्धेऽपि जयशब्दे जितं मया।
यत्ते दृष्टम् असंस्कार-पाटलोष्ठम् इदं मुखम्॥ 7-24॥ [138]

बालः - अज्जुए। को वा एसो। (अज्जुके, क एवैषः।) [139]

शकुन्तला -वच्छ, भाअधेआणि मे पुच्छ। (रोदिति) (वत्स, भागधेयानि मे पृच्छ।) [140]

राजा - (प्रणिपत्य[4]) [141]

सुतनु हृदयात् प्रत्यादेश-व्यलीकम् उपैतु (अपैतु)[5] ते
किमपि मनसस्सम्मोहो मे तदा बलवान् अभूत्।
स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया
प्रबलतमसाम् एवं प्रायः शुभेष्वपि वृत्तयः॥ 7-25॥ [142]

शकुन्तला -उत्थेदु अय्यउत्तो। णं मम सुहपदिबन्धअं पुराकिदं तेसु दिअसेसु परिणामाभिमुहआसि।
जेण साणुक्कोसो वि अय्यउत्तो मए तहाविओ संवुत्तो। (उत्तिष्ठत्वार्यपुत्रः। ननु मम सुखप्रतिबन्धकं पुराकृतं तेषु दिवसेषु परिणामाभिमुखम् आसीद्। येन सानुक्रोशोऽप्यार्यपुत्रो मयि तथाविधस्संवृत्तः।) [143]

(राजोत्तिष्ठति) [144]

शकुन्तला -अध कधं अय्यउत्तेण सुमरिदो अअं जणो। (अथ कथमार्यपुत्रेण स्मृतोऽयं जनः।) [145]

राजा - उद्धृतशल्यविष(षा)दः करोमि, करिष्यामि। [146]

---

1. मैथिल-पाठे "अनार्यमपि मे त्वयि प्रसक्तमि" ति।, बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
2. स्वगतोक्तिरियं प्रक्षिप्ता स्यात्। यतो हि- नाट्यशास्त्रे (25 - 88) केवलमात्मगतमित्यस्येव विधानम्।
3. काश्मीर-पाठे रंगकर्मिभि-"रार्यपुत्र" इति शब्दः प्रक्षिप्तः स्याद्, उत्तरवर्तिनि श्लोके जयशब्देत्येव प्राप्यते।
4. काश्मीर-पाठे राजा प्रणिपातपूर्वकं श्लोकोच्चारणं करोति।, बंगीय-पाठे तादृशं नास्ति।
5. काश्मीर-पाठे "उपैत्वि" ति प्राप्यते, किन्तु "हृदयादि" ति पञ्चम्यन्तेन सह "अपैत्वि" त्येव युज्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

मोहान् मया सुतनु पूर्वम् उपेक्षितस्ते
यो बाष्पबिन्दुरधरं परिधावमानः।
तं तावद् आकुलित-पक्ष्म-विलग्नम् अद्य
कान्ते प्रमृज्य विगतानुशयो भवामि।। 7-26।। [147]

(यथोक्तमनुतिष्ठति) [148]

शकुन्तला -(प्रमृष्टबाष्पा, नाममुद्रां दृष्ट्वा) अय्यउत्त, णणु तं अङ्गुलीअं। (आर्यपुत्र, ननु तद् अङ्गुलीयम्।) [149]

राजा - अथ किम्। अस्माद् अद्भुतोपलम्भान् मया स्मृतिर्लब्धा। [150]

शकुन्तला -सुमुहिकादुं खणेण जं तदा अय्यउत्तस्स पच्चक्खेण करेण(?)[1] दुल्लहं मे संवुत्तम्।
(सुमुखीकर्तुम् क्षणेन यत् तदार्य्यपुत्रस्य, प्रत्यक्षेण करेण (प्रत्ययकरणे?) दुर्लभं मे संवृत्तम्।) [151]

राजा - तेन ह्युतुसमागमाशंसि प्रतिपाद्यतां लता कुसुमम्। [152]

शकुन्तला -ण से वीससामि। अय्यउत्तो एव णं धारेदु। (नास्य विश्वसामि। आर्यपुत्र एवैनत् धारयतु।) [153]

(प्रविश्य) **मातलिः**- दिष्ट्या धर्मपत्नीसमागमेन पुत्रमुखदर्शनेन चायुष्मान् वर्धते। [154]

राजा- सुहृत्संपादितत्वाद् उत्तरफलो हि मनोरथः। मातले, न खलु विदितोऽयम्[2] आखण्डलस्यार्थः। [155]

मातलिः - एहि[3], भगवांस्ते मारीचो दर्शनं वितरति। [156]

राजा - शकुन्तले, अवलम्ब्यतां पुत्रः। त्वां पुरस्कृत्य भगवन्तं द्रष्टुमिच्छामि। [157]

शकुन्तला -अरिहामि अय्यउत्तेण सह समीवं गन्तुम्। (अर्हाम्यार्यपुत्रेण सह, समीपं गन्तुम्?।) [158]

राजा - आचरितमेतद् अभ्युदयकालेषु। एहि एहि। (सर्वे परिक्रामन्ति) [159]

(ततः प्रविशत्यदित्या सार्धम् अर्धासनस्थो मारीचः[4]) [160]

मारीचः - (राजानम् अवलोक्य) दाक्षायणि, [161]

पुत्रस्य ते रणशिरस्ययम् अग्रगामी
दुष्यन्त इत्यभिहितो भुवनस्य भर्ता।
चापेन यस्य विनिवर्तितकर्म जातं
तत्कोटिमत् कुलिशम् आभरणं मघोनः।। 7 - 27।। [162]

अदितिः - संभावणीआ से खु आकिदि। (सम्भावनीयास्य खल्वाकृतिः।) [163]

मातलिः - भूतलपते, एतौ पुत्रप्रीतिपिशुनेन चक्षुषा दिवौकसां पितरावलोकयतः। तदुपसर्पतु। [164]

राजा - मातले,

प्राहुर्द्वादशधा स्थितस्य मुनयो यत्तेजसः कारणं
भर्तारं भुवनत्रयस्य सुषुवे यद् यज्ञभागेश्वरम्।

---

1. प्रकृतसन्दर्भे वाक्यमिदं "सुमुखीकर्तुं यत्तदार्यपुत्रस्य प्रत्ययकरणे दुर्लभं मे संवृत्तमि"ति भवितुम् अर्हति। संदिग्धमिदं वाक्यम्। अत एव मैथिल-बंगीय-पाठयोः पाठभेदेनास्यार्थो विशदीक्रियते।
2. मैथिल-पाठे काकु-परिवर्तनं कृत्वा "मातले, न खल्वविदितोऽयमाखण्डलस्यार्थ" इति पठ्यते।
3. मैथिल-पाठेऽस्मात्पूर्वम् "आयुष्मन्, किमीश्वराणां परोक्षमि" त्यधिकम्।, बंगीय-पाठेऽपि तथैव।
4. मैथिल-पाठे-"ऽर्धासनस्थ" इति नास्ति।, बंगीय-पाठ "आसनोपविष्ठ"इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

यस्मिन्नात्मभवः परोऽपि पुरुषश्चक्रे भवायास्पदं
ब्रह्मानन्तरविश्वयोनिसहितं द्वन्द्वं तदेतद् वशी।। 7-28।। [165]

मातलिः - अथ किम्। [166]

राजा - (प्रणिपत्य) उभावपि[1] वां वासवनियोज्यो दुष्यन्तः प्रणमति। [167]

मारीचः - वत्स, चिरं पृथिवीं पालय। [168]

अदितिः - अप्पदिरहो होहि। (अप्रतिरथो भव।) [169]

शकुन्तला -दारकेण सहिता पादवन्दणं करेमि[2]। (दारकेण सहिता पादवन्दनं करोमि।) [170]

मारीचः - वत्से, चिरम् अविधवा भव[3]। [171]

आखण्डलसमो भर्ता जयन्तप्रतिमस्सुतः।
आशीरन्या न ते योज्या पौलोमीमङ्गला भव।। 7-29।। [172]

अदितिः - जादे, भट्टिणो बहुमदा होहि। अअं च दे देहओ वच्छओ उभअपक्खं अलंकरेदु। ता उवविसध।
(जाते, भर्तुर्बहुमता भव। अयं च ते देहजो वत्सक उभयपक्षम् अलङ्करोतु। तद् उपविशत।) [173]
(सर्वे प्रजापतिनाभिहितम् आसनम् उपविशन्ति[4]) [174]

मारीचः - (एकैकम् निर्दिशन्) [175]

दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी, सदपत्यमिदम्, भवान्।
श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति त्रितयं तत् समागतम्।। 7-30।। [176]

राजा - भगवन्, प्राग् अभिप्रेता सिद्धिः, पश्चात् दर्शनम्। इत्यपूर्वो भगवतोऽनुग्रहः।
पश्यतु भगवान्। [177]

उदेति पूर्वं कुसुमं, ततः फलं, घनोदयः प्राक् तदनन्तरं पयः।
निमित्तनैमित्तकयोरयं विधिस्तव प्रसादस्य पुरस्तु संपदः।। 7-31।। [178]

मातलिः - एवं विश्वगुरवः प्रसीदन्ति। [179]

राजा - भगवन्, इमामाज्ञाकरीं वो गान्धर्वेण विवाहविधिनोपयम्य कस्यचित् कालस्य बन्धुभिरानीतां स्मृतिशैथिल्यात् प्रत्यादिशन् नपराद्धोऽस्मि तत्रभवतः कण्वस्य। पश्चाद् एनाम् अङ्गुलीयकदर्शनाद् आरूढस्मृतिरूढपूर्वाम् अनुगतोऽस्मि। तच्चित्रमेव मे प्रतिभाति। [180]

यथा गजेनेतरपक्षरूपे (?)[5], तस्मिन्नतिक्रामति संशयस्स्यात्।
पदानि दृष्ट्वा तु भवेत् प्रतीतिस्तथाविधो मे मनसो विकारः।। 7-32।। [181]

मारीचः - वत्स, अलम् आत्मापचारशङ्कया। सम्मोहोऽपि त्वय्युपपन्नः। यतः श्रूयताम् - [182]

राजा - अवहितोऽस्मि। [183]

---

1. मैथिल-बंगीय-दाक्षि.-पाठेषू"-भाभ्यामपी" ति। किन्तु नास्त्यत्र चतुर्थ्या अवकाशः। यतो हि, प्रणमतीति तिङन्तेन सह तु कारकविभक्तेरेवौचित्यम्।, अतः काश्मीर-पाठ एव समीचीनः।
2. बंगीय-पाठे नास्त्येतादृशं वाक्यम्। केवला रंगसूचनोपलभ्यते।
3. काश्मीर-पाठ एवोपलभ्यते वाक्यमिदम्।
4. काश्मीर-पाठेऽत्र मंचनवैशिष्ट्यं परिलक्ष्यते।, नास्त्येतादृशी योजना मैथिल-बंगीय-पाठयोः।
5. मैथिल-पाठे "गजे साधुसमक्षरूप" इति।, बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

मारीचः - यदैवाप्सरस्तीर्थावतरणात् प्रत्यक्षवैक्लव्यां शकुन्तलाम् आदाय मेनका दाक्षायणीसकाशमागता। तदैव ध्यानादधिगतोऽस्मि। दुर्वाससः शापादियं तपस्विनी सहधर्मचारिणी प्रत्यादिष्टा, नान्यथेति। स चाङ्गुलीयकदर्शनावसरः। [184]

राजा - (सोच्छ्वासम्) एषोऽहं वचनीयान् मुक्तोऽस्मि। [185]

शकुन्तला -(आत्मगतम्) दिट्ठिआ अकामपच्चादेसी अय्यउत्तो। ण उण [सत्तं] अत्ताणअं सुमरामि।

अहवा,ण सुदो धुवं अण्णहिअआए मए सावो। जदो सहीहिं अच्चादरेण सन्दिट्ठम्हि भत्तुणो अङ्गुलीअअं देसहे त्ति। (दिष्ट्याऽकामप्रत्यादेश्यार्यपुत्रः। न पुनश्शप्तम् आत्मानं स्मरामि। अथवा न श्रुतो ध्रुवम् अन्यहृदयया मया शापः। यतस्सखीभ्याम् अत्यादरेण सन्दिष्टाऽस्मि भर्तुर् अङ्गुलीयकं दर्शयेति।) [186]

मारीचः - वत्से, विदितार्थाऽसि। तदिदानीं सहधर्मचारिणं प्रति न त्वया मन्युः कर्तव्यः। [187]

पश्य,

शापादिति प्रतिहतस्मृतिलोपरूक्षे भर्तर्यपेततमसि प्रभुता तथैव।
छाया न मूर्छति मलोपहतप्रसादे, शुद्धे तु दर्पणतले सुभगावकाशा[1]॥ 7-33॥ [188]

राजा- यथा भगवान् आह। [189]

मारीचः- वत्स, कच्चिद् अभिनन्दितस्त्वया विधिवदस्माभिरनुष्ठितजातकर्मा पुत्र एष शाकुन्तलेयः। [190]

राजा - भगवन्नत्र खलु मे वंशप्रतिष्ठा। [191]

मारीचः - तथा तत्। भाविनं चक्रवर्तिनं एनम् अवगच्छतु भवान्। [192] पश्य,

रथेनानुद्धातस्तिमितगतिरातीर्णजलधिः
पुरा सप्तद्वीपां जयति वसुधाम् अप्रतिरथः।
इहायं सत्त्वानां प्रसभदमनात् सर्वदमनः
पुनर्यास्यत्याख्यां भरत इति सर्वस्य भरणात्॥ 7-34॥ [193]

राजा- भगवता कृतसंस्कारे सर्वम् अस्मिन् आशंसामहे। [194]

अदितिः - इमाए आनन्दमणोरहसम्पत्तिए कण्णो वि दाव सुदवित्थारो करिअदु। मेणआ इध य्येव सण्णिहिदा। (अनया आनन्दमनोरथसम्पत्त्या कण्वोऽपि तावच्छ्रुतविस्तारः क्रियताम्। मेनकेहैव सन्निहिता।) [195]

शकुन्तला - मणोगदं मे मन्तिदं भअवदीए। (मनोगतं मे मन्त्रितं भगवत्या।) [196]

मारीचः - सर्वमेतत् तपःप्रभावात् प्रत्यक्षं तत्रभवतः कण्वस्य। [197]

राजा - हन्त खलु नस्स (स)मभिक्रुद्धो गुरुः[2]। [198]

मारीचः - तथाप्यसौ प्रियमस्माभिः श्रावयितव्यः[3]। कः कोऽत्र भोः। [199]

(प्रविश्य) शिष्यः - भगवन्, अयमस्मि। [200]

मारीचः - वत्स गालव, मद् वचनाद् इदानीमेव विहायसा गत्या तत्रभवते श्रीकण्वाय प्रियम् आवेदय।

यथा शकुन्तला दुर्वाससः शापविनिवृत्तिसमुपागतस्मृतिना दुष्यन्तेन प्रतिगृहीतेति। [201]

---

1. निखिलाप्युक्तिरियं शकुन्तलामुद्दिश्य कथिता, किन्तु नास्ति तस्याः प्रतिवचनम्। अतोऽनुमीयते यदत्र शकुन्तलायाः किमपि वाक्यं विलुप्तं स्याद्।, मैथिल-बंगीयादिषु पाठेष्वपि नोपलभ्यते तस्याः प्रतिवचनम्।
2. मैथिल-पाठे "हन्त, न ममातिक्रुद्धो गुरुरि" ति काकु-परिवर्तनम्।, बंगीय-पाठे नास्तीयमुक्तिः।
3. मैथिल-पाठे "तथापि दुहितुः सपुत्राया भर्त्रा परिग्रहः प्रियतमोऽस्माभिः कण्वः श्रावयितव्य" इति बहु विस्तरतां गतमिदं वाक्यम्।, बंगीय-पाठेऽपि तथैव।, रंगकर्मिभिः यथेच्छं परिवर्त्यन्ते वाक्यानि।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शिष्यः - यदाज्ञापयति भगवान्। (प्रणम्य निष्क्रान्तः) [202]

मारीचः - (राजानं प्रति) वत्स, त्वमपि सापत्यदारः सन्निहितं सख्युराखण्डलस्य रथमारुह्य स्वराजधानीं प्रतिष्ठस्व। [203]

राजा - यदाज्ञापयति भगवान्। [204]

मारीचः - अपि च वत्स,

क्रतुभिरुचितभागांस्त्वं सुरान् भावयालं
सुरपतिरपि वृष्ट्या त्वत्प्रजार्थं विधत्ताम्।
इति समम् उपकारव्यञ्जितश्रीमहिम्नो-
र्व्रजति बहुतिथो वां सौहृदय्येन कालः[1]॥ 7 - 35॥ [205]

राजा - भगवन्, यथाशक्ति श्रेयसेऽहं प्रयतिष्ये। [206]

मारीचः - वत्स, तद् उच्यताम्। किं ते भूयः प्रियम् उपहरामि। [207]

राजा - (सहर्षम् प्रणमन्) यद् अतः परं मे भगवान् प्रसादं कर्तुम् अर्हति। [208]

ततः -

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवस्सरस्वती श्रुतिमहतां महीयताम्।
ममापि च क्षपयतु नीललोहितः पुनर्भवं परिगतभक्तिरात्मभूः॥ 7 - 36॥ [209]

॥ इति निष्क्रान्तास्सर्वे॥ [210]

इत्यभिज्ञानशकुन्तलाख्ये नाटके सप्तमोऽङ्कः॥[2] **[211]**

समाप्तं चेदम् अभिज्ञानशकुन्तलाख्यं[3] **महानाटकम्। [212]**

---

1. मैथिल-पाठेऽस्माच्छ्लोकात्पूर्वम् "तव भवतु बिडौजाः प्राज्यवृष्टिः॰" इत्यधिकः श्लोको वर्तते। स च श्लोकः चन्द्रगुप्तः द्वितीयस्य काले मैथिल-रंगकर्मभिः प्रक्षिप्तः स्यादिति प्रतीयते।, बंगीय-पाठे प्रक्षिप्तस्यास्य श्लोकस्य स्वीकारः कृतः, किन्तु "क्रतुभिरुचितभागान्॰" इति श्लोकस्यास्वीकारः क्रियते।
2. मैथिल-पाठे "शकुन्तलासंवर्धनं नाम सप्तमोऽङ्क" इति पठ्यते।, बंगीय-पाठे नास्त्यस्याङ्कस्य नाम।
3. मैथिल-पाठे "अभिज्ञानशकुन्तलम् नाम नाटकं समाप्तमि" ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

मैथिली वाचनानुसारी

'अभिज्ञानशकुन्तलम्' नाटक की रंगावृत्ति का पाठ।।

[1]

मैथिली वाचना के पाठ का वैशिष्ट्यः- मैथिली वाचना का समीक्षित पाठसम्पादन श्री रमानाथ झा ने किया है, जो मिथिला विद्यापीठ, दरभङ्गा से 1957 में प्रकाशित हुआ है। सम्पादकश्री के मत से इस नाटक की यह मैथिली वाचना काश्मीरी एवं बंगाली से पृथक् एवं स्वतन्त्र वाचना है। यद्यपि उनका मत अनुचित निराधार रूप से विवादास्पद बना था। लेकिन इस विषय में हमारी विचारणा बाद में प्रस्तुत करेंगे। सब से पहले तो हमारे अभ्यास के दौरान जो भी ध्यानार्ह विशेषताएं आयी हैं, उनका निरूपण करना जरूरी है:- (क) इस वाचना की प्रधान विशेषता यह है कि षष्ठांक में, राजा दुष्मन्त ने शकुन्तला के चित्र में पूर्णता लाने के लिए अपनी दासी मेधाविनी से वर्तिका-करण्डक मंगवाया है। तब रास्ते में वापस आते समय रानी वसुमती ने ईर्ष्या-कषायिता हो कर मेधाविनी के हाथ में से उस वर्तिका-करण्डक को छीन लिया। विदूषक ने इस घटनाचक्र को "अन्तःपुर का कूटपाश" ऐसा नाम दिया है। तथा इस घटना का निरूपण करनेवाला पाठ यद्यपि बंगाली, दाक्षिणात्य एवं देवनागरी में भी उपलब्ध होता है। लेकिन, यह प्रसंग जो मैथिली वाचना में है, वह उससे भी प्राचीनतम काश्मीरी वाचना में तो नहीं है। मतलब कि यह प्रसंग मैथिली वाचना में ही प्रथम बार प्रक्षिप्त हुआ है। कालिदास ने नायकों के नवीन प्रेम-प्रसंगों में पूर्वपरिणीता रानियों की ओर से खड़े होनेवाले ईर्ष्याजनित अन्तराय (संघर्ष) का प्रदर्शन तो अपने मालविकाग्निमित्र तथा विक्रमोर्वशीय नामक पुरोगामी दो नाटकों में कर दिया था। अब कालिदास अभिज्ञानशकुन्तल जैसे नवीन एवं अपूर्व कहे गये नाटक का प्रणयन कर रहे हैं, तब उन्होंने पूर्वोक्त प्रकार के अन्तरायों का निरूपण करने का विचार छोड़ दिया है। तथा दुर्वासा के शाप का प्रयोग किया है, अर्थात् उन्होंने यहाँ नवीन प्रकार के संघर्ष को निरूपित करने का सोचा है। उसी सन्दर्भ में, मैथिली पाठशोधकों ने दुर्वासा के शाप के साथ साथ जो पूर्वपरिणीता रानी वसुमती का स्पर्धाभाव या ईर्ष्या-ग्रस्त मनोभाव भी उद्भावित किया है, वही प्रक्षिप्तांश उसकी विशेषता बन जाती है।। इस मैथिली पाठ की तुलना में काश्मीरी पाठ को देखा जाय तो, उसमें पूर्वपरिणीता रानी कुलप्रभा की ओर से ऐसा अन्तराय पैदा नहीं किया गया है। काश्मीरी पाठ में तो राजा की दासी मेधाविनी और रानी की दासी पिङ्गलिका के बीच में, वर्तिका-करण्डक छीन लेने की घटना होती है। यानी दो दासियों के बीच में स्पर्धाभाव चलता है- ऐसा निरूपण है। एवञ्च, विदूषक के मुख में भी किसी "अन्तःपुर कालकूट" या "अन्तःपुर वागुरा" की बात नहीं होती है। तथा विदूषक ने पिङ्गलिका के लिए "अन्तःपुर व्याघ्री" शब्द का प्रयोग किया है, रानी के लिए नहीं। सारांश यही है कि काश्मीरी वाचना के पाठ में केवल दुर्वासा के शाप का ही निरूपण है। किन्तु मैथिली पाठ में दुर्वासा के शाप के साथ साथ पूर्वपरिणीता रानी की ओर से आये अन्तराय का भी निरूपण मिलता है। यही प्रक्षेप मैथिली वाचना को स्वतन्त्र वाचना की श्रेणी में रख रहा है।।

(ख) मैथिली वाचना के पाठ में गौण रूप से भी कुछ अन्य विशेषताएं मिलती है, वे भी तुलनात्मक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। क्योंकि वे भी मैथिली वाचना को अन्यान्य वाचनाओं से पृथक् दिखाने में भेदक रेखाएं खींचती हैं। इनका उदाहरण रूप से परिगणन करें तो, (1) इसमें कृति का शीर्षक "अभिज्ञानशकुन्तलम्" है, एवं नायक का नाम दुष्मन्त मिलता है।, (2) नान्दी-पद्य में, काश्मीरी पाठ में "या स्रष्टुः सृष्टिराद्या पिबति विधिहुतं०" ऐसा प्रथम चरण में लिखा गया है। किन्तु मैथिली पाठ में "या स्रष्टुः सृष्टिराद्या वहति विधिहुतं" ऐसा नया क्रियापद मिलता है। कालान्तर में बंगाली पाठ में "या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं०" ऐसा नया पदक्रम आ जाता है। (3) मैथिली पाठ में रंगकर्मियों ने स्पष्ट शब्दों में हमें कहा है

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

कि उन लोगों ने मैथिली पाठ का कहाँ पहलीबार मंचन किया था। जैसे कि वे लिखते है:-आर्ये, रसभावविशेषदीक्षागुरोः श्री विक्रमादित्यस्य साहसाङ्कस्याभिरूपभूयिष्ठा परिषद्।। इतिहास हमें कहता है कि चन्द्रगुप्त-2 ने शकाधिपति को मार कर, अपनी भ्रातृजाया ध्रुवस्वामिनी देवी को शत्रुओं के हाथ में जाने से बचाया था। यह भारी साहस करने के लिए ही उसको साहसांक का बिरुद मिला था। (उसके पिता समुद्रगुप्त को लोगों ने पराक्रमांक कहा था।) यानी चौथी शती के गुप्तवंशीय राजा के समय में मैथिली रंगावृत्ति के पाठ का संग्रथन एवं मंचन हुआ था[1]। तथा इसी समय भरत मुनि द्वारा जो त्रिगत सहित के विस्तृत पूर्वरंग का विधान किया गया था (नाट्यशास्त्रम्., अ. 5), उसका त्याग किया गया होगा। जिसके कारण यहाँ "अलमतिविस्तरेण" जैसी रंगसूचना नयी दाखिल की गई है। (4) इस नाटक की प्रस्तावना में से इस नाटक के लिए कवि ने जो प्ररोचना के रूप में दो विशेषण "नवेन" एवं "अपूर्वम्" रखे थे, उन दोनों को मिथिला के रंगकर्मियों ने, निकाल दिये है। (5) केवल मैथिली और बंगाली पाठों में ही इस नाटक के प्रत्येक अंकों का नामकरण किया गया है। यद्यपि उन नामों में पूर्णतया समानता नहीं है। मैथिली पाठ के द्वितीयांक का नाम तपोवनानुगमन है, किन्तु बंगाली पाठ के अनुसार वह आख्यानगुप्ति है। (6) यद्यपि मैथिली पाठ में काश्मीरी वाचना के प्रक्षिप्त श्लोकों के सहित सभी श्लोकों को स्वीकार लिए है, किन्तु उनमें अपनी ओर से नवीन 11 श्लोकों का प्रक्षेप भी किया है, जो अन्य सभी वाचनाओं की अपेक्षा से सर्वाधिक प्रक्षेप मानना होगा। (7)उन प्रक्षिप्त श्लोकों में से "गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो मुनिकन्यकाः०" श्लोक भी अन्यतम है। जिसने पुरुवंश के राजर्षि के प्रेम की गरिमा को हानि पहुँचाई है, और अनुगामी काल में इस नाटक के तीसरे अंक के दो दृश्यों की कटौती करने का मार्ग प्रशस्त किया है। (8) अन्त में, भरतवाक्य से पूर्व में, मारीच ऋषि के मुख में "तव भवतु बिडौजाः प्राज्यवृष्टिः०" तथा "क्रतुभि-रुचितभागांस्त्वं सुरान् प्रीणयालम्०" जैसे दो आशीर्वादार्थक श्लोकों का होना वह केवल मैथिली वाचना में ही देखने को मिलता है, क्योंकि जैसा पहले बताया है यह मैथिली पाठ चन्द्रगुप्त-2 के सामने प्रस्तुत करने के लिए विशेष रूप से तैयार किया था। अतः आशीर्वादार्थक अधिक श्लोक होना सम्भवित है।। इति दिक्।।

[2]

मैथिली वाचना का पार्थक्यः- मैथिली वाचना का समीक्षित पाठसम्पादन प्रकाशित करनेवाले डॉ. रमानाथ झा ने इस नाटक का जो पाठ मिथिला की पाण्डुलिपियों में उपलब्ध होता है, उसको काश्मरी एवं बंगाली वाचनाओं के पाठ से पृथक् एवं स्वतन्त्र घोषित किया है। किन्तु डॉ. श्री वी. राघवन् ने लिखा है कि हकीकत में ऐसी कोई पाँचवीं वाचना का अस्तित्व सिद्ध नहीं हो सकता है। क्योंकि श्रीरमानाथ झा द्वारा दिया हुआ पाठ तो कदाचित् काश्मीरी पाठ की ओर झुकता है तो कुत्रचित् बंगाली पाठ की ओर झुकता है[2]। यानी उस मैथिली पाठ का साम्य तो उभयत्र मिल रहा है। अतः इन दोनों में से किसी एक में उसका अन्तर्भाव हो जायेगा। मैथिली पाठ को स्वतन्त्र वाचना कहना उचित नहीं है।। डॉ. वी. राघवन्

1. राजशेखर के शब्द द्रष्टव्य है:-तत्र यथासुखमासीनः काव्यगोष्ठीं प्रवर्तयेत् भावयेत् परीक्षेत च। वासुदेव-सातवाहन-शूद्रक-साहसाङ्कादीन् सभापतीन् दानमानाभ्याम् अनुकुर्यात्।। तुष्टपुष्टाश्चास्य सभ्याः भवेयुः, स्थाने च पारितोषिकं लभेरन्।। (काव्यमीमांसा, सं. सी.डी.दलाल, ओरिएन्टल इन्स्टीट्युट, वडोदरा, 1934, पृ. 55,197-198) यहाँ जो साहसाङ्क नाम लिखा है,उसकी पहचान इतिहासकारों के लिए अब संदिग्ध नहीं रही है, वह चन्द्रगुप्त-2 है।। (मैथिली पाठ में साहसांक की उपाधि के रूप में विक्रमादित्य ऐसा नाम आया है, अतः उसको प्रथम शती के विक्रमादित्य से जोड़ना नहीं हैं।), यहाँ मैथिल-पाठ की प्रस्तावना में आए इन शब्दों का सूचितार्थ यह है कि प्रथम शती में मूलतः लिखे गये इस नाटक के पाठ का मैथिलियों ने (काश्मीरी रंगावृत्ति का अनुसरण करते हुए) दूसरी बारी का मंचनलक्ष्यी परिवर्तन किया, जिसकी प्रस्तुति साहसांक की सभा में हुई होगी।। सूक्तिमुक्तावली (4-57, 111) में साहसांक को कवि भी कहा है।
2. द्रष्टव्य:- Its editor claims that text represents a Maithili recension of the play, but such a fifth recension is not justified by facts. This text belongs to the Bengali-Kashmiri family, sometimes leaning towards the Bengali and sometimes towards the Kashmiri. - V. Raghavan, Introduction, p.-3, TheAbhijnanas'akuntala, Ed. S. K. Belvalkar, SahityaAkademy, Delhi, 1965.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

जी के इस कथन का गर्भितार्थ ऐसा है कि जो पाठ "मैथिल-पाठानुग" के नाम से प्रकाशित किया गया है वह तो संमिश्रित किया गया पाठ है, जिसमें कभी बंगाली वाचना के पाठभेद दिखते हैं, तो कदाचित् काश्मीरी के पाठभेद मिल रहे हैं। हमारे अभिप्राय से इस तरह का अभिप्राय दो तरह से क्षतिग्रस्त दिखता है:- (1) डॉ. वी. राघवन् जी के सामने डॉ. एस. के. बेलवालकर जी का सम्पादित किया हुआ काश्मीरी वाचना का तथाकथित समीक्षित पाठ था। (डॉ. बेलवालकर जी के सम्पादन में एक भी पाण्डुलिपि का उल्लेख नहीं है, तथा एक भी पाठान्तर नहीं दिया गया है। उनकी कोई प्रास्ताविक भूमिका भी नहीं है। इसी लिए वह "तथाकथित" समीक्षित पाठ ही कहने योग्य हैं, एवं ऐसी आवृत्ति के आधार पर जो भी कहा जायेगा, वह गलत ही होगा) (2) उन्होंने बंगाली एवं काश्मीरी वाचनाओं के पाठों में तिरोहित हुए पौर्वापर्य को ढूँढने का प्रयास ही नहीं किया है। जब तक बंगाली एवं काश्मीरी (एवं मैथिली) वाचनाओं के पाठों में निहित पौर्वापर्य ढूँढा न जाय, या निश्चित न किया जाय तब तक मैथिली पाठ क्यूं कुत्रचित् काश्मीरी के साथ साम्य रखता है और कदाचित् बंगाली के साथ साम्य रखता है? उसका निर्णय करना सम्भव नहीं है। हमने इस दिशा में कुछ सोच कर ऐसा प्रतिपादित किया है कि काश्मीरी पाठ सब से प्राचीनतम मानना होगा, क्योंकि शारदा लिपि का समय बंगाली एवं मैथिली लिपियों की अपेक्षा से निश्चित रूप से अधिक पुराना है। अत: शारदा पाण्डुलिपियों में संचरित हुआ पाठ प्राचीनतम मान कर प्रथम क्रमांक पर स्थापित करना चाहिए। तदनन्तर, द्वितीय मैथिली वाचना आकारित हुई है, और तृतीय क्रमांक पर बंगाली वाचना तैयार की गई है।

शारदा-लिपि के उद्भव एवं प्रचलन के विषय में प्राप्त हो रहे पुरातात्त्विक प्रमाणों के आधार पर काश्मीरी वाचना का पाठ अन्य दो (बृहत्पाठवाली) वाचनाओं की अपेक्षा से प्राचीनतर है। एवञ्च, वह काश्मीरी पाठ बहुश: आन्तरिक सम्भावना-युक्त भी सिद्ध हो रहा है। अत: वही पाठ सर्वाधिक श्रद्धेय एवं प्राचीनतम भी कहना होगा। तथापि मैथिली पाठ का उभयत्र दिख रहे साम्य का गभीर रहस्य हस्तगत करना भी अनिवार्य है। जैसे कि, मैथिली वाचना के जिन पाठान्तरों का साम्य काश्मीरी के साथ है, परन्तु बंगाली के साथ उसका वैषम्य है वहाँ पर ऐसा अनुमान करना है कि काश्मीरी वाचना के प्राचीनतम पाठ का मैथिली पाठ में यहाँ अनुसरण हुआ है। तथा मैथिली वाचना के जिन पाठान्तरों का बंगाली वाचना के साथ साम्य है, परन्तु काश्मीरी के साथ वैषम्य है- वहाँ ऐसा अनुमान करना होगा कि मैथिली पाठशोधकों ने काश्मीरी के प्राचीनतम पाठ को बदल कर, नये पाठान्तरों को प्रस्तावित किया होगा, उनका बंगाली वाचना में स्वीकार एवं अनुसरण किया हुआ होगा। तथा बंगाली के जिन पाठान्तरों का साम्य काश्मीरी का साथ भी नहीं हैं, और मैथिली के साथ भी नहीं हैं- वे पाठान्तर बंगाली पाठशोधकों ने नये दाखिल किये होंगे। मतलब कि, इस नाटक के मूल पाठ का प्रथम विचलन काश्मीरी पाठ में देखा जाता है। तदनन्तर, दूसरे क्रमांक पर, कुछ नवीन परिवर्तन एवं प्रक्षेपों के साथ मैथिली वाचना का पाठ तैयार हुआ होगा। तथा तृतीय क्रमांक पर, बंगाल के अज्ञात पाठशोधकों ने मैथिली वाचना के पाठ में हुए कुछ परिवर्तनादि को ग्राह्य रखते हुए, अपनी ओर से भी कुछ पाठसुधार करके, प्रक्षेपादि करके, बंगाली वाचना का अद्यतन रूप तैयार किया होगा।। उपर्युक्त तीन वाचनाओं के इस तरह के विकास का अनुमानित क्रम अनेक उदाहरणों से समर्थित भी हो रहा है। तथा उस क्रम से विपरीत क्रम सिद्ध करने वाला कोई उदाहरण अभी तक मिला नहीं है, इसलिए डॉ. वी. राघवन् के पूर्वोक्त अभिप्राय से हम सहमत नहीं हो सकते हैं।।

[3]

मैथिली पाठ का मूल्यांकनः (1) काश्मीरी के संक्षेपीकृत या त्रुटितांशों, परिवर्तितांशों का पाठोद्धार करने में मैथिली पाठ का सहायक होना। (2) मैथिली-पाठ में प्रक्षेप की मात्रा सर्वाधिक होते हुए भी, वे काश्मीरी पाठ में किये गये संक्षेप की अपेक्षा से कम हानिकारक बने हैं। (3) रंगावृत्ति के रूप में माधवीलता का दृश्य जो (चौथी शती में, यानी गुप्तकाल में) नया विकसित किया गया है, तथा उनमें से परवर्ती (श्रीहर्षवर्धन जैसे) नाट्यकारों ने प्रेरणा ली होगी। (4) इससे यह भी सूचित होता है कि मैथिली पाठ काश्मीरी पाठ की अपेक्षा से उत्तरवर्ती काल का है। किन्तु यह मैथिली पाठ काश्मीरी रंगावृत्ति की किसी पाण्डुलिपि को ही साद्यन्त आदर्श-प्रति बना कर तैयार नहीं किया गया है। दोनों की रंगावृत्तियों का

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

तुलनात्मक अभ्यास करने से ऐसा भी मालूम होता है कि मैथिली रंगावृत्ति का पाठ बनानेवालों के हाथ में कोई ऐसी भी प्रति थी कि जिसमें कविप्रणीत मूल पाठ के प्रतिलिपिकरण की छाया भी अवतरित हुई होगी। अतः काश्मीरी रंगावृत्ति में जिन पाठ्यांशों की कटौती हुई है, उनका पुनर्गठन करने में मैथिली रंगावृत्ति का पाठ बहुत कुछ साहाय्य कर सकता है। एवमेव, काश्मीरी पाठ जहाँ विकृत हुआ है, उसका सही स्वरूप मैथिली में सुरक्षित रहा है। जिससे उन विकृत स्थानों का संमार्जन भी मैथिली पाठ से हो सकता है। इसका मतलब ऐसा भी नहीं है कि मैथिली रंगावृत्ति में सर्वथा शुद्ध एवं सही पाठ ही प्राप्त होता है। क्योंकि मैथिली रंगकर्मियों ने काश्मीरी पाठ को विरासत में मिले जो कतिपय प्रक्षिप्त अशिष्ट श्लोकादि थे, उन सब का अनुसरण भी किया है और सर्वाधिक मात्रा में नवीन श्लोकों का प्रक्षेप भी किया है। पूर्वपरिणीता रानी का संघर्ष तत्त्व भी नया दाखिल कर दिया है।।

[4]

यहाँ दिये गये मैथिली वाचना के पाठ के बारे में सब से पहले दो शब्द कहना आवश्यक है। सम्पादकश्री डॉ. श्रीरमानाथ झा ने ई. स. 1957 में "मैथिलपाठानुग" अभिज्ञानशकुन्तलम् नाटक का पाठ मिथिला विद्यापीठ, दरभङ्गा, बिहार से प्रकाशित किया है। हमने उसीका प्राधान्येन विनियोग किया है। लेकिन उसको यथातथ स्वीकार लेना भी मुश्किल है। क्योंकि उसमें दिया हुआ पाठ कुत्रचित् अवाच्य या त्रुटित भी है। तथा उसमें प्राकृत उक्तियों का संस्कृत छायानुवाद भी कहीं पर नहीं दिया है। अतः हमने उन सब प्राकृत उक्तियों का संस्कृत च्छायानुवाद दिया है। इसके लिए हमें टीकाकार शङ्कर द्वारा दिये हुए संस्कृत-च्छायानुवाद से बहुत साहाय्य मिली है। तदुपरान्त, हमारे पास मैथिली पाठानुसारी दो पाण्डुलिपियाँ भी है। जैसे कि, 1. नेपाल के नेशनल आर्काइव्ज. काठमण्डु से प्राप्त की बंगीय लिपि में लिखी एक ताडपत्रीय पाण्डुलिपि है[1], तथा 2. पं. श्री धर्मानन्द कौशाम्बी द्वारा नेपाल से प्राप्त की दूसरी पाण्डुलिपि, जो देवनागरी लिपि में लिखी गई है[2], और वह आज दिल्ली-स्थित श्रीकालेलकर जी के संग्रह में सुरक्षित है। उन दोनों का भी हमने विनियोग किया है। इन दोनों पाण्डुलिपियों से कुछ उपकारक सामग्री प्राप्त की गई है। परिणामतः श्रीरमानाथ झा की आवृत्ति में जहाँ त्रुटितांशादि थे, उन सब का संमार्जन किया गया है। उदाहरणतया श्रीरमानाथ झा की आवृत्ति में द्वितीयांक का नाम नहीं दिया है, क्योंकि उन्होंने जिन पाण्डुलिपियों का विनियोग किया था उनमें वह नाम अवाच्य था। लेकिन हमने पूर्वोक्त पाण्डुलिपियोंके आधार पर उसका नाम "तपोवनानुगमन" था, ऐसी जानकारी प्राप्त कर ली है।।

दूसरा बिन्दु है कि इस सम्पादन में जो जो मैथिली पाठ्यांश तर्क- संगति की दृष्टि से प्रक्षिप्त सिद्ध हो रहे हैं, उनको हमने इस [<...>] तरह के ब्रेकेट में रखे हैं। इस सम्पादन की चौथी विशेषता यह है कि इस मैथिली पाठ में जहाँ पर भी मंचनलक्षिता से प्रेरित पाठ-परिवर्तनादि दिखते हैं, उनकी "इति दिङ्" न्याय से पादटिप्पणी में सूचना भी दी है। उन्हींके आधार पर हम इस मैथिली वाचना के पाठ को "रंगावृत्ति का पाठ" कहने जा रहे हैं। पाँचवाँ बिन्दु है कि हमारे मत से इस नाटक का प्राचीनतम पाठ काश्मीरी शारदा-पाण्डुलिपियों में मिल रहा है। तथा द्वितीय क्रमांक पर मैथिली वाचना का पाठ आकारित हुआ है। अतः, इस सम्पादन में, जहाँ पर भी काश्मीरी पाठ में परिवर्तन करके मैथिली पाठ में बदलाव लाया गया है, यानी नया पाठान्तर पैदा किया गया है, वहाँ पर पादटिप्पणी का क्रमांक दिया है। जिनसे पाठक को तुरंत ध्यान में यह बात आयेगी कि काश्मीरी पाठ की अपेक्षा से मैथिली पाठ में कहाँ कैसा नया पाठभेद किया गया है।।

अब मैथिली-पाण्डुलिपियों में उपलब्ध होनेवाला पाठ "रङ्गावृत्ति का पाठ" (stage-script) है, उसको प्रमाणित करने के लिए सातों ही अङ्कों के प्रमुख निर्देशों को क्रमशः देखना आवश्यक है :-

---

1. यह पाण्डुलिपि प्राप्त करवाने का श्रेयः संस्कृतानुरागिणी डॉ. श्रीमती कालिन्दी पाठक, अहमदाबाद को है।
2. दिल्ली युनि. के संस्कृत-विभागाध्यक्ष प्रो. रमेश भारद्वाज जी ने इस पाण्डुलिपि की कॉपी भेंट की है। हम उसके लिए उनके भी आभारी हैं।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ प्रथमोऽङ्कः॥

(1) कालिदास शुंगकाल में, यानी ईसा से पूर्व प्रथम शती में हुए थे। इस के बाद आता है गुप्तकाल। जिसमें चन्द्रगुप्त-2 के समय में, (चौथी शती में), इस नाटक के पाठ की मैथिली रंगावृत्ति बनी है। आज उपलब्ध हो रहा इस नाटक का मैथिली पाठ वह किसी रंगकर्मी का बनाया हुआ रंगावृत्ति का पाठ है। तथा इस पाठ का मंचन चन्द्रगुप्त-2 के सामने हुआ होगा। इस ऐतिहासिक बात का प्रकट निर्देश इस मैथिली पाठवाले नाटक की प्रस्तावना में ही मिलता है। मैथिली वाचना का पाठ अपने वर्तमान स्वरूप में रंगावृत्ति का ही पाठ है, इसका समर्थन करनेवाले शब्द इस तरह के हैं: **सूत्रधारः**-*आर्ये, रसभाव-विशेष-दीक्षा-गुरोः श्रीविक्रमादित्यस्य साहसाङ्कस्य अभिरूपभूयिष्ठा परिषत्। अस्यां च कालिदास-ग्रथितवस्तुना अभिज्ञानशकुन्तलनाम्ना नाटकेनोपस्थातव्यम् अस्माभिः। तत्प्रतिपात्रम् आधीयताम् यत्नः॥* यहाँ पर जिस विक्रमादित्य का निर्देश है, वह ईसा पूर्ववाले विक्रमादित्य का नहीं है। क्योंकि यहाँ विक्रमादित्य के साथ एक "साहसाङ्क" विशेषण का भी प्रयोग हुआ है। बाणभट्ट ने हर्षचरित उच्छ्वास: 3 के अन्तभाग में कहा है कि (पराक्रमांक समुद्रगुप्त के पुत्र) चन्द्रगुप्त-2 ने अपने बड़े भाई रामगुप्त की पत्नी (ध्रुवस्वामिनी देवी) जैसा स्त्रीरूप धारण करके, शत्रुभूत शक राजा की शिबिर में जा कर, उसको मार ड़ाला था।इस घटना के बाद उसकी प्रजा ने उसे साहसाङ्क कहा होगा। (चूंकि बड़े भाई रामगुप्त ने शकाधिपति के सामने पराजित होकर, उसको अपनी पत्नी दे देने का सौदा किया था। इस लिए, चन्द्रगुप्त ने उस भाई को भी मार डाला, और राज्य की धुरा अपने हाथ में ली थी। तथा भ्रातृजाया ध्रुवस्वामिनी को अपनी पत्नी बना लिया।) उसकी राजसभा में अभिज्ञानशकुन्तला नाटक खेलने के लिए मैथिली रंगकर्मियों ने, इस नाटक के पाठ में अनेक नवीन श्लोकों का प्रक्षेप एवं परिवर्तनादि करके, रंगावृत्ति तैयार की होगी। अतः मैथिली पाठ की प्रस्तावना में उसी विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त-2 के लिए "रसभावविशेषदीक्षागुरु" एवं "साहसाङ्क" जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ है। इस अनुमान का समर्थन राजशेखर की काव्य-मीमांसा के इन शब्दों से हो रहा है:-तत्र यथासुखमासीनः काव्यगोष्ठीं प्रवर्तयेत् भावयेत् परीक्षेत च। वासुदेव-सातवाहन-शूद्रक-साहसाङ्कादीन् सभापतीन् दानमानाभ्याम् अनुकुर्यात्। तुष्टपुष्टाश्चास्य सभ्याः भवेयुः, स्थाने च पारितोषिकं लभेरन्। (द्रष्टव्यः काव्यमीमांसा, सं. सी.डी. दलाल, बरोडा, 1934, पृ.55) [सन्दर्भ-उक्ति-क्रमांक-4]

(2) मैथिली रंगकर्मियों (अथवा पाठशोधकों) ने नाटक की प्रस्तावना में, "आर्ये, साधु गीतम्। असौ हि रागापहृतचित्तवृत्तिरालिखित इवाभाति सर्वतो रङ्गः। तत् कतमं प्रयोगमाश्रित्यैनमाराधयामः।" जैसी सूत्रधार की उक्ति में (काश्मीरी-पाठ का) "कतमत् प्रकरणम्" शब्द को बदल कर, "कतमं प्रयोगम्" पाठभेद किया है, वह प्रसंग की व्यञ्जकता को हानि पहुँचाने वाला परिवर्तन है। सूत्रधार ने पहले प्रेक्षकों को निवेदन किया था कि आज कालिदास-ग्रथित-वस्तु वाला नाटक खेलना है। किन्तु वह खुद नटी के ऋतु-गीत के गान से क्षण भर के लिए भूल जाता है कि उसको नाटक खेलना था कि प्रकरण? तो यहाँ सूत्रधार की विस्मृति इस बात की व्यञ्जना करती है कि प्रस्तुत नाटक में भी दुष्यन्त शकुन्तला को कदाचित् भूल जानेवाला है! लेकिन जैसे ही "प्रकरण" शब्द के स्थान पर मैथिली पाठ में "प्रयोग" शब्द को बिठाया गया, वैसे ही विस्मृति-प्रसंग की जो व्यञ्जना होनेवाली थी, उसने बिदाई ले ली॥ इसी तरह से मैथिली रंगकर्मियों ने इस नाटक के लिए, कवि के द्वारा मूल में प्रयुक्त किये गये दो विशेषणों ("नवेन" तथा "अपूर्वम्") को भी हटा दिया है, और इस नाटक का "अभिरूप" ऐसा नया विशेषण दिया है। एवमेव, मिथिला की नटमण्डली ने नायक के नाम में भी विकृति पैदा करके "दुष्मन्त" बना दिया है॥ [सन्दर्भ-उक्ति-क्रमांक - 12, 13 एवं 14]

(3) मृगयाविहारी दुष्मन्त का प्रवेश होते ही नाटक के प्रथम दृश्य का आरम्भ होता है। आश्रम के मृग एवं राजा के रथ के बीच में कण्वाश्रम का तापस खड़ा हो जाता है। वह अपने एक शिष्य को साथ में लेकर आया है। यहाँ मैथिली रंगकर्मियों ने दो शिष्यों को नहीं रखा है, एक ही शिष्य रखा है। किन्तु उसका भी कोई आङ्गिक या

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

वाचिकाभिनय यहाँ नहीं है। हाँ, मैथिली रंगकर्मियों ने यहाँ तापस के मुख में मालिनी छन्द में लिखा एक नया श्लोक (न खलु न खलु बाणः संनिपात्योऽयमस्मिन्, मृदुनि मृगशरीरे पुष्पराशाविवाग्नि०) रखा है, जो गेय होने से इस दृश्य की प्रस्तुति रमणीय बन जाती है।। [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक - 26 एवं 27]

(4) आश्रम के प्राङ्गण में तीन सहेलियाँ वृक्षसिञ्चन के निमित्त से प्रवेश करती हैं। इन तीनों में से मुख्य नायिका शकुन्तला कौन है? यह सामाजिकों को झटिति अवगत कराने के लिए मैथिली रंगकर्मियों ने (काश्मीरी पाठ से) पृथक् योजना सोची है। पहले अनुसूया शकुन्तला को नामशः सम्बोधन करती है, जिसका प्रत्युत्तर शकुन्तला देती है। फिर प्रियंवदा शकुन्तला को नामशः सम्बोधन करती है और दूसरे वृक्षों को जलसिञ्चन करने का कहती है। इस प्रियंवदा की उक्ति का भी शकुन्तला जवाब देती है। इस तरह दोनों सखियों के द्वारा नायिका को नामशः सम्बोधन करवाने से प्रेक्षकों को तुरंत पहले यह मालूम हो जाता है कि इन तीनों में से मुख्य नायिका कौन है। रंगकर्मी लोग मंचन के समय ऐसे परिवर्तन करते रहते हैं।। [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक - 56 से 61]

(5) काश्मीरी पाठ के अनुसार तो कण्वाश्रम में बकुलवृक्ष, सहकार वृक्ष एवं नवमालिका नाम की एक लता है। तथा इनके साथ साथ माधवीलता नामक एक दूसरी लता, जो पिता कण्व ने अपने हाथ से बोई (एवं संवर्धित भी की) थी, उसका भी निर्देश आता है। लेकिन मैथिली पाठ की परीक्षा करने से मालूम होता है कि इस रंगभूमि पर बकुलवृक्ष (या केसरवृक्ष) नहीं है। केवल सहकार वृक्ष और नवमालिका के साथ माधवीलता का ही निर्देश है। मतलब कि काश्मीरी एवं मिथिला की रंगसज्जा में काफी अन्तर है। जिसके कारण (क) अब सहकारवृक्ष के पास खड़ी शकुन्तला को बकुलवृक्ष के पास बुला कर दुष्यन्त के सांनिध्य में उसे लाने का उपक्रम मैथिली पाठ में नहीं दिखता है। तथा (ख) काश्मीरी पाठ में माधवीलता के साथ जुड़े संवादों की शृङ्खला केवल दो उक्तियों में रखी गई है, वही माधवीलता सम्बन्धी बातचीत यहाँ मैथिली पाठ में पूरे ग्यारह वाक्यों में विस्तारित की गई है। यह स्पष्टतया स्थानिक रंगकर्मियों का अवदान है ऐसा सिद्ध होता है। प्रथमांक की दृश्यावली में मैथिली रंगकर्मियों ने जो वैशिष्ट्य आकारित किया है, उसको देखने के लिए माधवी-लता से सम्बद्ध तीन सहेलियों की बातचीत श्रवणीय है :- शकुन्तला बताती है कि असमय में माधवीलता मुकुलित हो गई है। उसका रहस्य बताती हुई प्रियंवदा कहती है कि शकुन्तला आसन्न-पाणिग्रहणा है इसका यह सूचन है और यह बात उसको पिता कण्व ने ही बताई है। अब दो प्रश्न होते हैं। (क) पहले तो कहा गया है कि शकुन्तला के किसी अज्ञात दुरित का शमन करने के लिए कण्व सोमतीर्थ की यात्रा पर गये हैं। तो उसी माधवीलता का कल्याणसूचकत्व भी कहना कैसे सुसंगत बनेगा? एवं च, शकुन्तला यदि आसन्नपाणिग्रहणा है- ऐसा पिता ने जान लिया है, तो वे सोमतीर्थ की यात्रा पर क्यों गये?। (ख) शकुन्तला ने पहले तो नवमालिका को जलसिञ्चन किया है, उसके बाद माधवीलता से जुड़ी ग्यारह उक्तियों का लम्बा संवाद होता है। तत्पश्चात् नवमालिका से भ्रमर उड़ता है और शकुन्तला के वदनारविन्द पर मंड़राने लगता है!- ऐसा यहाँ कहा गया है। मैथिली रंगकर्मियों ने सोचा नहीं कि नवमालिका पर जब पहले जलसिञ्चन किया गया तब ही भ्रमर को वहाँ से तुरंत उड़ना था! इन दो कारणों से सिद्ध होता है कि माधवीलता से जुडी लम्बी बातचीत का पाठ्यांश किसी रंगकर्मियों का प्रक्षेप है। (कवि ने तो नवमालिका को स्वयंवरवधूः कह कर, एक छोटे से इशारे में यह व्यञ्जित कर ही दिया है कि शकुन्तला का स्वयंवर होने वाला है। किन्तु मिथिलानिवासी अज्ञात स्थानिक रंगकर्मियों ने उसी व्यञ्जना को पूरी अभिधा में मुखरित करके रख दिया है।।) [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक - 69 से 96]

(6) मैथिली-पाठ में, (क) जलसिञ्चन के अभिनयन के लिए जो रंगसूचनाएं दी गई हैं, वे भी उभयविध है ऐसा दिख रहा है : "इति वृक्षसेचनं नाटयति", "इति भूयो वृक्षसेचनं नाटयति, तथा इति कलशम् आवर्जयति", "इति कलशमावर्जयति"। इनमें नाट्यधर्मिता भी दिखती है, और लोकधर्मिता भी दिखती है। यहाँ पहले वास्तव में बिना पानी गिराये वृक्षसिंचन का केवल अभिनय करना है, तत्पश्चात् हाथों में से वास्तविक कलश को जमीन पर रख

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

देने की सूचना है। किन्तु काश्मीरी रंगावृत्ति की अपेक्षा से यहां एक अधिक बार भी "इति कलशमावर्जयति" रंगसूचना दी गई है। अत: प्रश्न होता है कि मैथिल-पाठ में दो बार घट को जमीन पर छोड देने की सूचना क्यूं दी है?। (ख) काश्मीरी-पाठ में माधवीलता का क्षणिक निर्देश है, परन्तु उसके मूल में जलसिञ्चन करने का उल्लेख नहीं है। मैथिली-पाठ में ऐसी सूचना है, क्योंकि उस लता से जुड़ी संवादशृङ्खला भी विस्तृत बनाई गई है। माधवीलता से जुड़ी संवादमाला प्रक्षिप्त है, उसका एक प्रमाण दो बार कलश को जमीन पर रखने की जो रंगसूचनाएँ हैं, वही है।। [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक - 58, 61, 81, 94 एवं 96]

(7) काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ में से हटाये गये दो श्लोक (1. इदमुपहितसूक्ष्मग्रन्थिना०। एवं 2. यतो यतः षट्चरणोऽभिवर्तते०।) को मैथिली रंगकर्मियों ने सुरक्षित रखा है। उन दोनों श्लोकों को उन्होंने नहीं निकाला है। इस दृष्टि से हमारा मानना है कि कविप्रणीत मूल पाठ का उद्धार करने में मैथिली रंगावृत्ति भी कुत्रचित् सहायक सिद्ध होती है। क्योंकि मैथिली रंगावृत्ति तैयार करनेवालों ने भले ही सर्वाधिक 11 श्लोकों का प्रक्षेप किया हो, लेकिन उन्होंने संक्षेपीकरण के आशय से किसी श्लोक को हटाने की प्रवृत्ति नहीं की है। यह तो स्वाभाविक है कि संक्षेपीकरण की प्रवृत्ति जितनी घातक सिद्ध होती है, इतनी प्रक्षेपों की प्रवृत्ति घातक नहीं होती है।। [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक - 67 एवं 101]

(8) भ्रमरबाधा-प्रसंग के अभिनयन में शकुन्तला ने भ्रमर का अपसारण कैसे किया था? इसको मैथिली रंगमंच के सन्दर्भ में देखना हो तो (क) "चलापाङ्गां दृष्टिम्०" श्लोक के तृतीय चरण को देखना आवश्यक है : "करं व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरम्"। यानी शकुन्तला ने केवल एक हाथ से ही भ्रमर का अपसारण करने की कोशिश अभिनीत की है। मतलब कि उसके दूसरे हाथ में तो जलसिञ्चन के लिए धारण किया घट यथावत् पकड़ रखा होगा। किन्तु यह उचित नहीं लगता है, क्योंकि मैथिली पाठ में "इति कलशमावर्जयति" जैसी रंगसूचना दो बार आती है, फिर भी क्या शकुन्तला ने घट को जमीन पर नहीं छोड़ दिया होगा?। (ख) मैथिली पाठ में शकुन्तला ने पहले नवमालिका को जलसिञ्चन किया ऐसा कहा है, और बाद में माधवीलता से सम्बद्ध उक्तियों का प्रक्षेप किया है। जिसमें माधवीलता को भी जल सिञ्चन किये जाने का निर्देश है। तथा तदनन्तर ही भ्रमर-बाधा शुरू होती है। काश्मीरी रंगकर्मियों ने नवमालिका पर जल सिञ्चन होते ही भ्रमर को तुरंत उड़ाया है। तथा शकुन्तला के हाथ में से घट को छुड़वा दिया है! अत: वहाँ शकुन्तला दोनों ही हाथों से भ्रमर का अपसारण अभिनीत करती है।। भ्रमर का अपसारण करने में एक हाथ की सक्रियता हो अथवा दो हाथों की सक्रियता हो, उन दोनों के अभिनयन में स्वभाविकतया आङ्गिक भावभङ्गिमा अलग ही रहेगी।। [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक -102]

(9) राजा ने अपनी अंगूठी दे कर शकुन्तला को अनृणा कर दिया। इस क्षण की रंगकर्मिता में भी अन्तर है ऐसा काश्मीरी-पाठ की 142 से 146 उक्तियों के साथ मैथिली-पाठ की 162 से 166 उक्तिओं का तुलनात्मक अभ्यास करने से मालूम होता है। उनमें वक्तृभेद एवं काकुभेद मिलते है। इसका सीधा सम्बन्ध रंगकर्मिता के साथ ही होता है। (इसी सन्दर्भ में बंगाली-पाठ की 161 से 165 उक्तियाँ भी तुलनीय हैं। जिससे यह बात स्पष्ट होगी कि इन पाँचों पाठों को "रंगावृत्ति के पाठ" ही कहना समुचित है।) [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक -162 से 166]

(10) इस मैथिली रंगावृत्ति में, अंकान्ते शकुन्तला की विदाई का दृश्य कुछ अधिक मात्रा में सुरक्षित (शायद बहुत कम परिवर्तनों के साथ) रह पाया है। मैथिली रंगकर्मियों ने प्रथमांक की नाट्य-क्रिया से नायिका का चित्त बद्धानुराग हुआ है यह बात व्यञ्जित करने के लिए, प्रथम क्षण में ऊरुस्तम्भ की विकलता को निश्चित प्रदर्शित किया है। लेकिन द्वितीय क्षण में शकुन्तला के मुख में "*अभिनवकुश-सूचिपरिक्षतं मे चरणं, कुरबक-शाखापरिलग्नं च मे वल्कलम्। तस्मात् प्रतिपालयत माम्, यावदेनं मोचयामि।*" ऐसी उक्ति भी रखी है। मतलब कि मैथिली रंगकर्मियों ने विदाई के दृश्य में आङ्गिक एवं वाचिक दोनों अभिनयों का विनियोग किया है। इस पाठ में कहीं

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

पर भी "सव्याजविलम्बितं कृत्वा" जैसी रंगसूचना नहीं दी है। इस तरह की विदाई का पुनरुल्लेख जब द्वितीयांक में "दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे तन्वी स्थिता०" वाले श्लोक में मिलता है, तब इससे सिद्ध होता है कि मैथिली रंगावृत्ति में शकुन्तला की विदाय का दृश्य प्रायः अपने मूल स्वरूप में बचा हुआ मिलता है। इसका कारण यह हो सकता है कि मैथिली रंगकर्मियों के सामने काश्मीरी रंगावृत्ति का पाठ होने के साथ साथ, उनके पास कविप्रणीत मूल पाठ की प्रति भी शायद होगी। मैथिली रंगकर्मियों ने दोनों स्रोतों का विनियोग किया है उसका प्रमाण भी इस बिदाई के प्रसंग के पाठ में से ही मिलता है। जैसे कि, मैथिली रंगकर्मियों ने काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ का अनुसरण करने के कारण ही शकुन्तला के ऊरुस्तम्भ की विकलता का भी अनुसरण किया है! शकुन्तला को किसी व्याज से विलम्ब करवाना वह प्रेम प्रसंग के अनुरूप बात होती है, लेकिन जब उसमें पुनरुक्ति होती है तो वह अस्वीकार्य भी लगता है।। [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक -175, 177, 182एवं 183]

॥ द्वितीयोऽङ्कः॥

(1) द्वितीयांक की रंगभूमि का विचार करने से मालूम होता है कि परिश्रान्त विदूषक के सामने राजा जब उपस्थित होते हैं, तब वह अकेले हैं। यानी वह यवनियों से परिवृत नहीं हैं। अतः उनके ही हाथ में बाणासन है और उन्होंने ही वनपुष्पों की माला धारण की है। मैथिली रंगकर्मियों ने राजा का प्रवेश करवाते समय उनकी मनःस्थिति की ओर इशारा "हृदय-निहित-प्रियजनः" शब्द से कर दिया है, जिससे हम अंदाजा लगा सकते हैं कि राजा का प्रवेश समय का अभिनयन कैसे होगा।। यहाँ, मैथिली एवं बंगाली पाठों में से कैसे यवनियों का निर्देश विलुप्त हुआ है और राजा के लिए "हृदयनिहितप्रियजनः" जैसा विशेषण कहाँ से आकारित हुआ होगा? उस विषय का परामर्श डॉ. बेलवालकर जी ने किया है, वह संक्षेप में यहाँ बताना आवश्यक है।

डॉ. एस. के. बेलवालकर जी ने कहा है कि *"हिअअ-णिहिद-पिअअणो (हृदयनिहित-प्रियजनो)"* जैसा नया शब्द कहाँ से मूल पाठ में प्रविष्ट हुआ होगा? वह विचारणीय है। श्री मोनीयर विलियम्स ने "जवनिहिं" शब्द को मान्य किया है, किन्तु कैप्लर ने उसको हटा दिया है, और "हृदय-निहित-प्रियजनो" शब्द को भी अमान्य किया है। कैप्लर के द्वारा, राजा के लिए प्रयुक्त किये इस विशेषण को अमान्य करने का सम्भवतः एक कारण यह हो सकता है कि विषण्ण विदूषक के मुख से ऐसा विशेषण निकलना अस्वाभाविक लगता होगा। डॉ. रिचार्ड पिशेल ने इस वाक्य में से "यवनिका" शब्द को हटाया है और "हृदय-निहित-प्रियजनो" शब्द को मान्य किया है। (डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल ने भी रिचार्ड पिशेल जैसा ही पाठ मान्य रखा है। द्रष्टव्य पृ. 218-219) जिससे राजा दुष्यन्त के ही हाथ में बाणासन होगा, और वही वनपुष्पों की माला को धारण करके रंगमंच पर आयेगा। रिचार्ड पिशेल ने (अपने शोध-प्रबन्ध में) इसका कारण ऐसा दिया है कि रघुवंश (9-50) में "विपुलकण्ठ-निषक्त-शरासन" एवं "वनमालया ग्रथितमौलिः" जैसे विशेषणों से दशरथ को विशेषित किया है। इन दोनों ही प्रसंगों में समान सन्दर्भ है और दोनों का रचयिता कवि एक ही व्यक्ति है। अतः दुष्यन्त ही बाणासनहस्त और वनपुष्पमालाधारी हो सकता है। मतलब कि बाणासन को पकड़ रखने के लिए यवनिकाओं की जरूरत नहीं है।। किन्तु जब काश्मीर की भूर्जपत्रवाली पाण्डुलिपि में लिखे शारदा-पाठ में *"एसो राआ बाणासन-हत्थाहिं जवणिहिं परिवुदो वणपुप्फमालाधारी इदो य्येवागच्छदि"* ऐसे यदि यवनिकाओं का स्पष्ट निर्देश है तो वह विचारणीय है ही। भूर्जपत्रवाली इस पाण्डुलिपि को डॉ. बेलवालकर जी ने मूलादर्श-प्रति कही है। तथा उसमें लिखे पाठ को सर्वोच्च प्रमाणिक पाठ माना है। एवमेव, उन्होंने लम्बे कालावधि में फैली प्रतिलेखन की प्रक्रिया के दौरान कैसे "जवनिहिं" शब्द निकल गया, तथा उसके स्थान में *"हिअअ-णिहिद-पिअअणो"* शब्द कैसे दाखिल हो गया होगा? यह भी समझाया है। जैसे कि, पाण्डुलिपियों में पूरे वाक्य में दो पदों के बीच में जगह नहीं छोड़ी जाती थी। सभी वर्ण एक साथ में लगातार/निरन्तर लिखे जाने के कारण, तथा पृष्ठमात्राएं या अग्रमात्राएं कदाचित् स्थानान्तरित हो जाने के कारण, एवमेव लिपिकारों के प्रमाद के कारण भी वर्णव्यत्ययादि हो जाने से नया पाठान्तर आकारित होता है। बस ऐसा ही कुछ प्रकृत उदाहरण में हुआ होगा।० "त्ताह-हिं-ज-व-णि-हिं-प-रि-वु-दो", में से दूसरे स्तर में -"थो-हि-अ-व-णि-हिं-अ-प-रि-वु-दो" बना होगा। तत्पश्चात् "त्थो-हि-अ-?-णि-हि-?-प-?-?-दो"

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

जैसा अशुद्ध एवं अस्पष्ट पाठ बना होगा। जिसमें से अन्त में जा कर "त्थो,-हि-अ-अ-णि-हि-द-पि-अ-अ-णो" जैसे अपूर्व पाठान्तर ने जन्म लिया होगा। किसी ने उसे "त्थो हिअअ-णिहिद-पिअअणो" शब्द के रूप में देख कर, राजा का विशेषण बना दिया होगा! इस तरह के प्रतिलेखन के इतिहास की कल्पना करने से, अब समझ में आता है कि "जवणिहिं" जैसा (यवनिकाभिः) तृतीयान्त पद मूल पाठ में से कैसे गायब हुआ होगा।। डॉ. बेलवालकर जी ने यह भी कहा है[1] कि यवनिकाभिः पद को नहीं स्वीकारने का कारण यह भी नहीं है कि उसमें किसी तरह का कालव्युत्क्रम हो रहा है। क्योंकि कैप्लर एवं रिचार्ड पिशेल जैसे दोनों ही विद्वान् पाठसम्पादकों ने इसी नाटक के सप्तमांक में एक जगह पर "प्रतिहारी" जैसा पाठान्तर उपलब्ध होते हुए भी "यवन" शब्द को स्वीकारा है।।

डॉ. बेलवालकर जी की विचक्षणबुद्धि ने जो अनुलेखनीय सम्भावनामूलक समाधान दिया है, वह सम्माननीय है। तथापि कथमपि ग्राह्य नहीं है। क्योंकि मूल कवि का पाठ और आज उपलब्ध हो रही पाण्डुलिपियों के प्रतिलिपिकर्ता (लहियाओं) के बीच में रंगकर्मियों का व्यवधान भी मौजूद है- वह दुनिया के किसी भी विद्वान् ने सोचा ही नहीं है। प्रस्तुत सन्दर्भ में मिथिला और बंगाल के रंगकर्मियों ने बाणासन हाथ में उठाई हुई, गले में वनपुष्पों की मालाधारण की हो ऐसी यवनियों को रंगमंच से हटाने के लिए ही अपने रंगावृत्ति के पाठ में, राजा के लिए "हृदयनिहितप्रियजन" विशेषण को दाखिल किया है। यहाँ मूल में, यानी प्राचीनतम काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ में यवनी शब्द का विनियोग था। इसी रंगावृत्ति के पाठ को आदर्शप्रति के रूप में स्थापित करके जब मैथिली रंगावृत्ति बनाई गई होगी तब राजा से हृदयनिहित-प्रियजन का सात्त्विक अभिनय करवाने के लिए, यवनियों को हटाया गया होगा। परन्तु उन पाठशोधकों की असावधानी के कारण, (सेनापति को रंगमंच से निवृत्त करने के बाद जब) कहा जाता है कि, "(परिजनं विलोक्य) मृगयावेषमपनयन्तु भवन्तः। रैवतक, त्वमपि स्वनियोगमशून्यं कुरु।" (द्रष्टव्य- रमानाथ झा का मैथिली पाठ, पृ. 30, रिचार्ड पिशेल का पृ. 21, तथा डी. के. काञ्जीलाल का पृ. 225)तब विसंगति जाहिर हो जाती है! मैथिली एवं बंगाली रंगमंच पर जब राजा अकेला ही प्रविष्ट हुआ था, तो अब वह कैसे परिजन को (यानी यवनियों को) मृगयावेष को निकालने की सूचना दे सकता है?। इस तरह के अग्रिम पाठ से ही सिद्ध होता है कि मूल में यानी काश्मीरी रंगावृत्ति में जो यवनियों का निर्देश था, वही मैथिलियों और बंगालियों के सामने भी था। पहले मैथिली रंगकर्मियों ने ही यवनियों को हटाने की चेष्टा की है। तत्पश्चात् बंगाली रंगकर्मियों ने उसी पाठ का अनुसरण किया।। इस तरह के कृतिनिष्ठ आन्तरिक प्रमाण से यदि "यवनी" शब्द का होना यहाँ सिद्ध होता है तो, इसके आधार पर यही मानना होगा कि आज उपलब्ध विविध वाचनाओं के पाठ "रंगावृत्तियों के पाठ" है, और उनमें काश्मीरी वाचना का पाठ ही प्रथम क्रमांक पर खड़ा है।। [सन्दर्भ-उक्ति-क्रमांक - 01, 03 एवं 44]

(2) सेनापति को वापस भेजने के बाद, रंगमंच पर राजा और विदूषक को बिठाने के लिए मैथिली रंगकर्मियों ने जो रंगसज्जा का विचार किया है, उसमें किसी वस्त्र का बनाया हुआ वितान नहीं है। क्योंकि विदूषक की उक्ति का पाठ ऐसा है:- "ता इमस्सिं पाअवच्छाआविरइद-विदाण-सणाधे सिलातले उअविसदु"। (तस्मादेतस्मिन् पादपच्छायाविरचित-वितानसनाथे शिलातले उपविशतु।) इन शब्दों से निश्चित होता है कि मैथिल रंगभूमि पर राजा को बिठाने के लिए तो किसी वृक्ष की छाया से ही बना हुआ वितान है। [सन्दर्भ-उक्ति-क्रमांक - 46]

(3) मैथिली रंगकर्मियों ने विदूषक के लिए जिन शब्दों का प्रयोग करवाया है उसमें निम्न कोटि के शब्द का विनियोग दिखाई रहा है, (जो काश्मीरी पाठ में नहीं थे)। उदाहरणतया, 1. मम अधण्णाए पुत्तस्स (उक्तिः-1), 2. मूर्ख (उक्तिः-54, 3. महाब्राह्मण (उक्तिः-117)। उसके प्रतिपक्ष में, यह भी ध्यानार्ह है कि मैथिली रंगकर्मियों ने विदूषक के द्वारा राजा दुष्मन्त की हँसी उड़ाने का, या राजा की परिस्थिति की समीक्षा करते हुए तीखी आलोचना या मजाक उड़ाने का कार्य भी करवाया है। जैसे कि, कण्वाश्रम के तापसकुमारों ने आकर राजा को कुछ दिन के लिए आश्रम की रक्षा करने की विज्ञप्ति की तब विदूषक ने विशेष रूप से अपवार्य-उक्ति से कहा है कि, अअं दाणिं अणुऊलो दे गलहत्थो। (एष इदानीम् अनुकूलः ते गलहस्तः।) यहाँ मूल में तो काश्मीरी पाठ में

1. द्रष्टव्य है:- The application of a few canons of textual criticism to Kalidasa's Sákuntala, by S. K. Belvalkar, Verlag Der, Asia Major, Vol- 2, Leipzig, Germany, 1923, (pp. 79-104)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

गलत्था जैसा देशी (प्रार्थना) शब्द है, उसी को कालान्तर में मिथिला के रंगकर्मियों ने ध्वनिसाम्य के आधार पर गलहत्थो (गलहस्त) के रूप में परिवर्तित कर दिया होगा। जिसके कारण विदूषक, सम्भवतः राजा की/अपनी ग्रीवा के पास गलहस्त का अभिनय करता हुआ-इस उक्ति का उच्चारण करता होगा।। [सन्दर्भ–उक्ति–क्रमांक - 94]

(4) मैथिली रंगकर्मियों ने जैसे प्रथमांक में माधवीलता सम्बन्धी विस्तृत संवाद प्रक्षिप्त किया है, वैसे द्वितीयांक में, विदूषक की भी हास्यकारिता को बढावा देने के लिए कुछ नवीन उक्तियों का भी प्रक्षेप किया है। उदाहरणतया, (क) :-

विदूषकः- कुदो किल। सअं जेव अच्छि आउलीकदुअ अस्सुकारणं पुच्छसि।

राजा- न खल्वगच्छामि। भिन्नार्थमभिधीयताम्।

विदूषकः- *जं वेदसो कुज्जअस्स लीलं विडम्बेदि, तं किल अत्तणो पहावेण अध णदीवेअस्स।*

यहाँ विदूषक ने राजा को आक्षेप दे ही दिया था कि आपने मेरे नेत्र को आकुल कर दिया है। फिर नदीवेग से वक्रता को प्राप्त करनेवाले वेतस दण्ड का उपमान देने में पुनरुक्ति ही सिद्ध होती है। अतः उपर्युक्त नवीन वाक्य मैथिली रंगकर्मियों का ही प्रक्षेप सिद्ध होता है। यद्यपि यह कहना होगा कि मैथिली रंगकर्मियों द्वारा किया यह प्रक्षेप मंचनयोग्य एवं मनोरंजक होने से अनुगामी काल में सर्वत्र अनुकरणीय बन गया है! (ख) इसी तरह से विदूषक ने जब राजा से बातचीत करके यह निश्चित कर लिया कि शकुन्तला भी दुष्मन्त पर आसक्त हुई है, तब वह बोलता है :- "गहिदपाधेओ भवं किदो तए। *अणुरज्जिदं तवोवणं त्ति तक्केमि।*" इनमें से दूसरा वाक्य काश्मीरी-पाठ में नहीं था। वह प्रथम बार मैथिली-पाठ में दृश्यमान होता है। एवमेव, यह वाक्य आगे चल कर सभी वाचनाओं में प्रसारित हुआ है, किन्तु रंगकर्मियों ने उसमें तरह तरह के परिवर्तन उद्भावित किये हैं।। [सन्दर्भ–उक्ति–क्रमांक - 11 एवं 69]

(5) मैथिली रंगकर्मियों ने या स्वयं कालिदास ने विदूषक के मुख में जो "हीमाणहे" ऐसा उद्गार रखा है, वह ध्यानास्पद है। क्योंकि भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में इसी शब्द का निर्देश किया है। जैसे कि, हीमाणहे भये खेदे। दूसरा बिन्दु यह है कि मैथिली-पाठ में, विदूषक रंगमंच पर समाधि लगाने का अभिनय नहीं करता है। बल्कि वह राजा को समय आने पर शाब्दिक रूप से ताड़ने से भी पीछे नहीं हटता है। जैसे कि, काश्मीरी-पाठ में विदूषक ने राजा को अन्तःपुर की रानियों के होते हुए भी एक तापसकन्या में आसक्त होने के अवसर पर कहा है कि राजन्, तुम "स्त्रीरत्न के परिभाविन्" हो। यहाँ विदूषक ने "परिभाविन्" शब्द का प्रयोग करके राजा के नवीन प्रेम-प्रसंग को नीतिविरुद्ध बताया था। लेकिन मैथिली रंगकर्मियों ने "स्त्रीरत्नपरिभोगिन्" ऐसा जो नवीन पाठभेद किया है, उसके द्वारा तो राजा की कामभोगिता की गर्हा होती है, जिसमें उसका हलका पन दिखता है।। [सन्दर्भ–उक्ति–क्रमांक - 01 एवं 57]

॥ तृतीयोऽङ्कः॥

कालिदास ने तीसरे अङ्क में दुष्यन्त-शकुन्तला के गान्धर्व-विवाह का नाट्यकार्य निरूपित किया है। अतः इसके प्रथम दृश्य में नायिका शकुन्तला की मदनसंतप्त अवस्था को प्रदर्शित करने के लिए उसे रंगमंच पर लेटी हुई अवस्था में प्रस्तुत किया है। इस सन्दर्भ में, जैसे पहले बताया गया है, काश्मीरी रंगकर्मियों ने (या उनके पुरोवर्तिनी नटमण्डलियों ने) कुछ अश्लील श्लोकों का प्रक्षेप किया है। तदुपरान्त उसी रंगावृत्ति के पाठ में दूसरे और तीसरे सोपान पर अन्यान्य रंगकर्मियों ने शकुन्तला की लेटी हुई अवस्था में परिवर्तन लाने के लिए कुछ नवीन रंगसूचनाएँ भी दाखिल की हैं, जिनके कारण, मूल में कवि की संकल्पित दृश्य-योजना बहुत कुछ विकृत हो गई है। तथा, ये नवीन रंगसूचनाएँ परस्पर विरुद्धार्थक भी हैं। मैथिली रंगकर्मियों ने काश्मीरी रंगावृत्ति के इस तरह के विकृत पाठ को स्वीकारने के साथ साथ, अपनी ओर से कुछ नावीन्य भी

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

उद्भावित किया है, कुत्रचित् ऐसा भी लगता है कि उन लोगों ने कहीं कहीं पर मौलिक पाठ सुरक्षित भी रखा है। अब उन सब का परिचय करना जरूरी है।।

(1) प्रथम सोपान पर काश्मीरी रंगावृत्ति में जिन चार अश्लील पाठ्यांशों का प्रवेश हुआ था, उनमें से एक (छह उक्तियोंवाले) अश्लील पाठ्यांश में दुष्यन्त ने "यदा सुरतज्ञो/सुरतरसज्ञो भविष्यामि" ऐसा एक वाक्य बोला है, उसका मैथिली रंगकर्मियों ने स्वीकार नहीं किया है।।

(2) प्रथम दृश्य में, रंगमंच पर शकुन्तला की लेटी हुई अवस्था है। उसमें परिवर्तन लानेवाली कुछ रंगसूचनाओं का, काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ में द्वितीय सोपान पर प्रवेश हुआ है। उनमें से किस रंगसूचना का स्वीकार मैथिली रंगकर्मियों ने किया है? वह भी ज्ञातव्य है। मैथिली रंगकर्मियों ने शकुन्तला को मदनलेख लिखने के समय पर, "आसीना/उपविष्टा चिन्तयति" जैसी रंगसूचना देकर, बिठाया नहीं है। बल्कि मदनलेख लिखने के अवसर पर "इति चिन्तयति" ऐसी ही रंगसूचना दी है। जिसमें शकुन्तला को बैठना है कि नहीं? इस बात की स्पष्टता नहीं है। लेकिन मदनलेख के अक्षरों को सुन कर राजा जब शकुन्तला के सामने आ जाते हैं और अनुसूया की विनती से वह शिलातल पर बैठते हैं, तब मैथिली रंगकर्मियों ने एक रंगसूचना दी है: "शकुन्तला किंचित् पादावपसारयति"। यहाँ तक, मैथिली रंगमंच पर शकुन्तला लेटी हुई अवस्था में ही रहती है। यहाँ बैठे हुए राजा और लेटी हुई शकुन्तला एक क्षण के लिए शिलातल पर साथ में दृश्यमान होते हैं। इसके बाद दो-तीन उक्तियों का संवाद है। तत्पश्चात् काश्मीरी-पाठ का अनुसरण करते हुए मैथिली रंगकर्मियों ने भी दुष्यन्त के आगमन के कारण शकुन्तला को "लब्धोषधि" कही है। और शकुन्तला को मेघवात से आहत हुई ग्रीष्म काल की मयूरी का उपमान देकर, "सलज्जा तिष्ठति" जैसी रंगसूचना से नायिका को राजा के सामने खडी कर दी है! जिसके कारण कवि की मूल दृश्य-योजना सर्वथा विक्षिप्त हुई ही है। (क्योंकि मूल में तो कवि ने "अङ्के निधाय चरणावुत पद्मताम्रौ, संवाहयामि करभोरु यथासुखं ते।।" श्लोक के बाद ही, लेटी हुई शकुन्तला को रंगभूमि पर खड़ी करने का सोचा है।।)

[सन्दर्भ-उक्ति-क्रमांक - 51, 63 एवं 67]

(3) मैथिली रंगकर्मियों ने काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ में कुल मिला कर 11 नवीन श्लोकों का प्रक्षेप किया है। उन 11 श्लोकों में से चार श्लोक तो केवल इस तीसरे अङ्क में ही दाखिल किये गये हैं। जैसे कि, (क) वृथैव संकल्पशतैः०। (3-6), (ख) संमीलन्ति न तावद्०। (3-7), (ग) अयं स यस्मात् प्रणया०। (3-16) एवं (घ) गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो०। (3-27)।। जैसा कि हमने पहले बताया है यह मैथिली रंगावृत्ति के पाठ का संग्रथन चौथी शताब्दी में हुआ था, और उसका मंचन रसभावविशेष की दीक्षा देने में जो गुरु थे, उन गुप्तवंशीय साहसांक चन्द्रगुप्त-2 की अभिरूप-भूयिष्ठा परिषद् में हुआ था। अतः काव्यत्वपूर्ण नवीन श्लोकों का प्रक्षेप होना स्वाभाविक ही लगता है। लेकिन उपर्युक्त चार श्लोकों में से जो चतुर्थ श्लोक है, वह इस प्रणयकथा के स्वरूप में भारी हानिकारक सिद्ध हुआ है। प्रणयकथा में जब नायक गान्धर्व-विवाह की दुहाई दे कर, नायिका को उकसाने का कार्य करेगा तो वह गान्धर्व-विवाह स्मृतिशास्त्र-सम्मत होते हुए भी,नैसर्गिक प्रेम के स्वरूप को उसकी गरिमा से नीचे उतारनेवाला ही सिद्ध होगा। एवमेव, इसी एक श्लोक ने ही आगे जा कर इस अङ्क में से दो दृश्यों, (1. शकुन्तला को मृणाल-वलय पहनाने का, तथा 2. पुष्परज से कलुषित हुए शकुन्तला के नेत्र को दुष्यन्त अपने वदनमारुत से प्रमार्जित कर देता है, इन) की कटौती करने का मार्ग प्रशस्त किया है।। मेरी दृष्टि में, इस नाटक में निरूपित नैसर्गिक प्रेमसहचार को द्विविध हानियाँ पहुँचाने का कार्य इस मैथिली रंगकर्मियों ने किया है। जिनमें से पहला स्थान यह "गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो०" वाला प्रक्षिप्त श्लोक है। (तथा दूसरा स्थान षष्ठाङ्क में, दुष्यन्त की पूर्वपरिणीता रानी वसुमती को ईर्ष्या-कषायिता बनाने का कार्य है)।। [सन्दर्भ-उक्ति-क्रमांक -106]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(4) मैथिली रंगावृत्ति के दोष दिखाने के साथ साथ उसका गुणपक्ष भी कहना अतीव आवश्यक है। जैसे कि, (क) "अथवा, अनिशमपि मकरकेतुर्मनसो रुजमावहन्०" श्लोक को काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ में से संक्षेपीकरण के आशय से हटा दिया गया है। परन्तु मैथिली रंगकर्मियों ने इस (3-5) श्लोक की पूरी सुरक्षा की है। (ख) उसी तरह से काश्मीरी पाठ में, राजा के मुख से "पृष्टा जनेन समदुःखेन बाला०" श्लोक निकलने के बाद, शकुन्तला लज्जा के साथ बताती है कि-"यतः प्रभृति सः तपोवन-रक्षिता राजर्षि-र्मम दर्शनपथं गतः, तत आरभ्योद्गतेनाभिलाषेणैतदवस्थास्मि संवृत्ता।" इसी एक ही उक्ति को मैथिली पाठ में दो भागों में विभक्त करके प्रस्तुत किया गया है। तथा (ग) काश्मीरी पाठ में इस मौके पर जो सहकार-अतिमुक्त लता, तथा चित्राविशाखे-शशाङ्कलेखा जैसे उपमानों को हटा कर, मैथिली पाठ में, दोनों सहेलियों की संयुक्त उक्ति में, सागर-महानदी के एक ही उपमान से शकुन्तला के अभिलाष को सम्मानित किया गया है। इस तरह का पाठ्यांश मौलिक प्रतीत हो रहा है। (घ) एवमेव, प्रियंवदा ने जब राजा को कहा कि आपको उद्देश्य करके ही हमारी सखी की यह अवस्था हुई है, तो आप उसे स्वीकार करके उसके जीवन को अवलम्बन दीजिये। तब, राजा के मुख से जो प्रतिभाव निकलता है वह भी मैथिली पाठ में ही सुरक्षित बचा हुआ मिलता है। जैसे कि, "भद्रे, साधारण एषः प्रणयः। सर्वथानुगृहीतोऽस्मि"।। इससे विपरीत काश्मीरी रंगावृत्ति में इस मौलिक पाठ को संक्षिप्त करके, केवल "अनुगृहीतोऽस्मि" इतना ही प्रस्तुत किया गया है।। मैथिली रंगावृत्ति के पाठ में इस तरह से कुत्रचित् मूलगामी पाठ की सुरक्षा भी दिखती है, वह उसका उल्लेखनीय गुणपक्ष है। इसको देख कर ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि मैथिली रंगकर्मियों ने यद्यपि वर्तमान में उपलब्ध होनेवाली काश्मीरी रंगावृत्ति का बहुशः अनुसरण किया है, तथापि उन लोगों के सामने कविप्रणीत नाटक की मूल पाठपरम्परा जिसमें प्रतिबिम्बित हुई हो ऐसी भी कोई प्रति विद्यमान रही होगी।। [सन्दर्भ-उक्ति-क्रमांक -09, 29 से 32,33 एवं 72]

(5) मैथिली रंगकर्मियों ने काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ में सुधार एवं परिवर्तन करके कुछ गद्य-उक्तियों की नाट्यक्षमता बढ़ाई हो ऐसे भी स्थान हैं। उदाहरणतया, (क) मदनसंतप्ता शकुन्तला कुसुमास्तरण पर लेटी हुई है और दोनों सहेलियाँ उसको पवन झल रही हैं। काश्मीरी-पाठ में शकुन्तला की उक्ति है:- (वेदनां नाटयित्वा) किं वा वीजयन्ति मां सख्यः।, यहाँ काश्मीरी रंगकर्मियों ने शकुन्तला के शरीरदाह की मात्रा अधिक है, इस लिए उसको पवन का स्पर्श नहीं होता है, ऐसा दिखाने के लिए "वेदनां नाटयित्वा" की रंगसूचना दी है। तथा विकल्पार्थक "वा" अव्यय का प्रयोग होने से वीजन-क्रिया पर प्रश्नचिह्न लगाया जा रहा है।। अब इसकी तुलना मैथिली-पाठ से करेंगे। मैथिली रंगकर्मियों ने शकुन्तला की उक्ति इन शब्दों में दी है: शकुन्तला-(शून्याभिनयम्) किं मां वीजयन्ति प्रियसख्यः।। यहाँ दी गई रंगसूचना के अनुसार शकुन्तला शून्य-मनस्कता का अभिनय करती है।अर्थात् उसको अपने आसपास में कौन है? उसका भी भान / ज्ञान नहीं है। अतः वह पूछती है कि क्या मुझे प्रियसखियाँ, पवन झल रही हैं?। इन दोनों की तुलना से मालूम होता है कि मैथिली रंगकर्मियों ने काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ में उपर्युक्त काकु-परिवर्तन करके प्रस्तुत प्रसंग की नाट्य-क्षमता बढ़ाई है[1]।। (ख) शकुन्तला अपनी सखियों के सामने आत्मनिवेदन करती है। काश्मीरी पाठ में वह लज्जापूर्वक कहती है कि, "यतः प्रभृति सः तपोवनरक्षिता राजर्षिर्मम दर्शनपथं गतः, तत आरभ्यो-द्गतेनाभिलाषेणैतदवस्थाऽस्मि संवृत्ता"। यहाँ शकुन्तला ने अपनी कामाविष्ट दशा का कारण एक ही वाक्य में प्रस्तुत कर दिया है। लेकिन प्रस्तुत प्रसंग के साथ जुड़ी स्त्रीसहज लज्जा-शीलता को मैथिली रंगकर्मियों ने पूरी नाटकीयता प्रदान की है। इसके लिए उन्होंने शकुन्तला के उपर्युक्त एक ही वाक्य को दो भागों में विभक्त कर दिया है। जैसे कि, **शकुन्तला-** यतः प्रभृति स तपोवनरक्षिता राजर्षिर्मम दर्शनपथं गतः ...., (इत्यर्धोक्तेन लज्जां नाटयति), **उभे-** कथयतु प्रियसखी।, **शकुन्तला-**

1. बंगाली रंगभूमि पर इसी उक्ति का काकु बदल कर, तीसरा ध्वनि भी निकाला गया है:- शकु. सखेद पूछती है कि क्या मुझे.., सखियाँ पवन झल रही हैं?। यहाँ शकु. के मन में अफसोस की भावना हो रही है। एक ही उक्ति की त्रिविध प्रस्तुति ही इन सब को रंगावृत्ति के पाठ के रूप में सिद्ध करती है।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

ततः आरभ्य तद्गतेन अभिलाषेण एतदवस्थास्मि संवृत्ता।। जब कोई कन्या अपने पहले प्रेम की मनोगत बात खुल कर सखियों को बताती है, तब उस निवेदन में एक क्षण के लिए संकोच तो आ ही जाता है। उस साहजिकता का प्रदर्शन करना वह भी रंगकर्मिता का एक भाग है, (आ परितोषाद् न साधु मन्ये *प्रयोगविज्ञानम्।*) जिसको मैथिली रंगकर्मियों ने अपने पाठ में आकारित किया है।। [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक - 18 एवं 29 से 32]

(6) काश्मीरी रंगावृत्ति का प्रक्षिप्त पाठ्यांश, जो काव्यत्वपूर्ण था, उसको मैथिली रंगकर्मियों ने अपनी दृष्टि से संमार्जित या संक्षिप्त करके पेश किया है। जैसे कि, काश्मीरी रंगावृत्ति में, शकुन्तला ने कह दिया कि किसी भी तरह से उस तपोवनरक्षिता राजर्षि के साथ मेरा समागम करवाएँ, अन्यथा मुझ पर जलाञ्जलि दे दीजिए। जिसको सुन कर तुरंत ही राजा के मुख से "विमर्शच्छेदि वचनम्" शब्दों से हर्षोक्ति निकलती है। उसके बाद तीन उक्तियों का एक पाठ्यांश आता है, जो काव्यत्वपूर्ण होते हुए भी प्रक्षिप्त है: **अनसूया-** *सखि, दिष्ट्या अनुरूपस्तस्या अभिलाषः। सागरं वर्जयित्वा कुत्र वा महानद्या गन्तव्यम्।,* **प्रियंवदा-** *क इदानीं सहकारम् अतिमुक्तलतया पल्लवितुं नेच्छति।,* **राजा-** *किमत्र चित्रम्। यदि चित्राविशाखे शशाङ्कलेखामनुवर्तेते। अयमत्रभवतीभ्यां क्रीतो जनः।।* काश्मीरी रंगावृत्ति का यह पाठ्यांश बहुत काव्यत्वपूर्ण है। जिसमें अनसूया ने नायक-नायिका को सागर और महानदी का उपमान दिया है। प्रियंवदा ने सहकार और अतिमुक्तलता का उपमान दिया है। तथा दुष्यन्त ने शकुन्तला सहित उन दोनों सखियों को शशाङ्कलेखा का अनुवर्तन करनेवाले चित्रा-विशाखा नामक नक्षत्रद्वय का उपमान दिया है। उपमाओं की परम्परा का वाचिकाभिनय कर्णप्रिय सिद्ध होता ही है। तथापि वह यहाँ प्रक्षिप्त ही है। क्योंकि इन तीन उक्तियों के उपरि भाग में प्रियंवदा ने यह बताया है कि शकुन्तला अब थोड़ा भी कालविक्षेप सहन नहीं कर सकती है। अतः उसके अभिलाष के अनुरूप प्रवृत्ति शुरू ही करनी होगी। ऐसी स्थिति में एक नहीं, तीन तीन उपमाओं की प्रस्तुति कालक्षय करनेवाली ही सिद्ध होगी। दूसरा प्रमाण यह है कि, कुमारसम्भव में पार्वती की कठोर तपश्चर्या से प्रसन्न होकर भगवान् शङ्कर "तवास्मि दासः तपोभिः क्रीतः" कहें तो वह सर्वथा उचित है। लेकिन दुष्यन्त जैसा धीरोदात्त नायक शकुन्तला की दोनों सहेलियों को कहें कि मैं आप दोनों का क्रीत व्यक्ति (खरीदा गया आदमी) हूँ, तो वह सर्वथा अनुचित है। यह अनौचित्य भी इस काव्यत्वपूर्ण पाठ्यांश की प्रक्षिप्तता घोषित कर देता है।।

अब, यह देखना है कि काश्मीरी रंगावृत्ति के इस काव्यत्वपूर्ण प्रक्षिप्त पाठ्यांश का मैथिलीरंगभूमि पर किस रूप में अवतार किया गया है:- शकुन्तला ने कहा कि जब से मैंने उस राजर्षि को देखा है तब से उसको प्राप्त करने के अभिलाष में मेरी यह अवस्था हुई है। उसके बाद मैथिली रंगावृत्ति में, प्रियंवदा की उक्ति नहीं है। बल्कि दोनों सहेलियों की संयुक्त उक्ति है :- उभे- दिष्ट्या, इदानीं ते अनुरूपवराभिलाषः। अथवा, सागरं वर्जयित्वा कुत्र वा महानद्या प्रवेष्टव्यम्।। यहाँ मैथिली रंगकर्मियों ने काश्मीरी रंगावृत्ति की तीन तीन उपमाओं में से केवल एक ही को स्वीकार्य रखी है। दूसरे अंश निकाल दिये हैं। एवमेव, दुष्यन्त को प्रियंवदा-अनुसूया का क्रीत जन भी नहीं कहलाया है। यानी मैथिली रंगावृत्ति बनाने वाले रंगकर्मियों ने काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ में संक्षेप भी किया है और उसका संमार्जन भी किया है।। (अब हमें देखना होगा कि बंगाली रंगावृत्ति के पाठ में इसी प्रसंग के संवादों में क्या परिवर्तन आये हैं।)।। [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक -33]

(7) मैथिली रंगकर्मियों ने काश्मीरी रंगावृत्ति के सही पाठ में विकृति पैदा की हो ऐसे स्थान की ओर भी अङ्गुलिनिर्देश करना चाहिए :- शकुन्तला ने मदनलेख लिखने का प्रस्ताव मान लिया। (काश्मीरी-पाठ में,) **शकुन्तला-** *हला चिन्तिता मया गीतिका। असन्निहितानि पुनर्लेखसाधनानि।,* **प्रियंवदा-** *ननु एतस्मिन् शुकोदरसुकुमारे नलिनीपत्रे पत्रच्छेदभक्त्या नखैः निक्षिप्तवर्णम् कुरु। ततः शृणुमोऽस्याः अक्षराणि।।* यहाँ शकुन्तला को पहले मदनलेख की गीतिका लिखने की सूचना है और तत्पश्चात् प्रियंवदा-अनसूया को उसके अक्षरों को सुनाने की बात कही है।। किन्तु मैथिली रंगावृत्ति में इस क्रम में वैपरीत्य दिखता है। **शकुन्तला-** *हला मया चिन्तिता गीतिका। असन्निहितानि पुनः लेख-साधनानि।,* **प्रियंवदा-** *शृणुमः तावत् अस्याः अक्षराणि। ततः एतस्मिन् शुकोदरस्निग्धे नलिनीपत्रे पत्रच्छेदभक्त्या नखैः लिखितवर्णां करिष्यसि। साम्प्रतम् पठ्यताम् तावत्।।* यहाँ शकुन्तला

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

के मुख से पहले गीतिका सुनाई जाती है। नलिनीपत्र पर उसको बाद में लिखने की सूचना है। किन्तु यह क्रम सर्वथा अनुचित ही है। क्योंकि, नलिनीपत्र पर बिना लिखे यदि पहले गीतिका के अक्षर सुनाये जायेंगे, तो उनको सुनते ही राजा को वहाँ सहसा उपस्थित होना है। अब ऐसा होने पर, अर्थात् राजा के रंगमंच पर आ जाने के बाद तो, शकुन्तला को नाखूनों से मदनलेख लिखने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी! किन्तु इसी क्रम से यदि दृश्य-योजना होगी तो, इस अङ्क के अन्त में जब राजा बोलेंगे कि "कान्तो मन्मथलेख एष नलिनीपत्रे नखैरर्पित:" तो, वह हास्यास्पद सिद्ध होगा। क्योंकि मदनलेख तो लिखा ही नहीं है! इस तरह से मैथिली रंगावृत्ति के पाठ में क्षतिपूर्ण पाठयोजना दिखती है।। [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक -53 से 57, एवं 162]

(8) मैथिली रंगावृत्ति का पाठ बनानेवालों ने कुत्रचित् पाण्डित्य का अवलम्बन करके भी काश्मीरी रंगावृत्ति के प्राचीनतम एवं अधिक श्रद्धेय पाठ को बदल दिया है! उदाहरणतया, (क) राजा के प्रवेश सम्बन्धी जो रंगसूचना है, "तत: प्रविशति मदनावस्थो राजा" उसमें पहले तो, यानी काश्मीरी पाठ में "कामयानावस्थो" शब्द था। "कामयान" शब्द व्याकरण-सम्मत है या नहीं? उस विवाद से बचने के लिए, उसके स्थान में "मदनावस्थ" शब्द मैथिली पण्डितों ने रखा होगा। लेकिन वामन के "कामयानशब्द: सिद्धोऽनादिश्चेत्"। (का. सू. वृ.5-2-82) सूत्र के अनुसार यह कामयान शब्द साधु एवं प्राचीनतम था, फिर भी मैथिली पाठशोधकों ने उसे बदल दिया है। (ख) अङ्क के अन्त भाग में गौतमी आकर शकुन्तला को ले जाती है। तब दुष्यन्त ने एक श्लोक 'मुखमंसविवर्ति पक्ष्मलाक्ष्या: कथम-प्युन्नमितं न चुम्बितं तत्' ऐसा कहा है। यहाँ काश्मीरी रंगावृत्ति के अनुसार "०न चुम्बितं तु" ऐसा शब्द था, जो अधिक नाट्यक्षम था। (क्योंकि तुकार का उच्चारण करते समय वक्ता के दोनों ओष्ठ वर्तुलाकार की स्थिति में रहते हैं, जो चुम्बन के अभिनयन में यथार्थ सिद्ध होती है।) लेकिन मैथिली पाण्डित्य ने तुकार को अनर्थक पादपूरक निपात समझ कर, मुखम् के साथ अन्वित होनेवाला तत् सर्वनाम रख दिया है। जिससे यहाँ प्रसंगानुरूप नाटकीयता का विलोपन हो गया है। (ग) दुष्यन्त शकुन्तला को ढूँढता हुआ परिक्रमण करता है, और जब मालिनी नदी के तट पर लतावलयों में पहुँचता है, तो वहाँ शकुन्तला को देख कर बोलता है कि "लब्धं मया नेत्रनिर्वाणम्"। यहाँ काश्मीरी रंगावृत्ति में तो "नेत्र-निर्वापणम्" शब्द दिया है, जो प्राचीनतम होने के साथ साथ कृतिनिष्ठ अन्त:साक्ष्य से समर्थित भी है। किन्तु रंगावृत्तियों की प्रतिलिपियाँ बनाने के अवसरों पर लिपिकार के अनवधान से कदाचित् "निर्वापण" शब्द के स्थान में "निर्वाण" बन गया होगा। इति दिक्।। [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक -5, 15 एवं 160]

(9) मैथिली रंगकर्मियों ने तृतीयांक के पाठ्यांश में कुल मिला कर पांच नवीन श्लोक दिये हैं। जैसे कि, 1. अनिशमपि मकरकेतुर्मनसो रुजम्०। (3-5), 2. वृथैव संकल्पशतैरजस्रमनङ्ग०। (3-6), 3. संमीलन्ति न तावद् बन्धनकोशा०। (3-7), 4. अयं स यस्मात् प्रणयावधीरणाम्०। (3-16) एवं 5. गान्धर्वेण विवाहेन बह्वयो०। (3-27)।। इनमें से प्रथम श्लोक (3-5) मौलिक प्रतीत होता है। लेकिन अन्य चार श्लोक तो प्रक्षिप्त ही हैं।। [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक - 9, 10, 12, 49 एवं 106]

।। चतुर्थोऽङ्क:।।

अभिज्ञानशकुन्तल नाटक का चतुर्थ अंक कन्या-विदाई दृश्य के कारण बहुत प्रशंसनीय बना है। पहले तीन अंकों में शृङ्गार, और अन्तिम तीन अंकों में बहुश: विप्रलम्भ शृङ्गार का निरूपण है। किन्तु इन दोनों के बीच में पिता-पुत्री के स्नेह का हृदयस्पर्शी आलेखन, इस अंक की विशेषता है। इस अद्वितीय प्रसंग का आलेखन करनेवाले (कवि-प्रणीत) पाठ का मंचन करते समय रंगकर्मियों ने अनजान में, या जान-बूझ कर जिस तरह के पाठभेद किये हैं, उसका परामर्शन करना उपकारक होगा।।

(1) इस अंक के आरम्भिक दृश्य (प्रवेशक) में दुर्वासा-शाप का प्रसंग आकारित होता है। शकुन्तला तो उटज-द्वार पर दुष्यन्त के विचारों में एकाग्र होकर बैठी है। दूसरी ओर आश्रम के तपोवन में दोनों सहेलियाँ कुसुमावचयन

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

कर रही हैं। दोनों के बीच में हो रही बातचीत रंगमंच पर प्रस्तुत होती है, जिसमें शकुन्तला विषयक चिन्ता ही केन्द्र में है। प्रथम एवं तृतीय अंक में इन दोनों सहेलियों का परिचय जो हमें प्राप्त हुआ है, तदनुसार प्रियंवदा चंचल और अधिक मुखर है। तथा अनसूया गभीर प्रकृति की और अधिक समझदारी दिखाने वाली सखी है। किन्तु मिथिला के रंगकर्मियों ने यहाँ उन दोनों की उक्तियों को कुत्रचित् अलग तरह से विभक्त किया है, तथा अलग वक्ता के मुख में भी रख दिया है। जिसके कारण इन दोनों सहेलियों के व्यक्तित्व की रेखाएँ बदल जाती हैं। इस तरह के दो स्थान मिलते हैं। (क) नेपथ्योक्ति से जब अतिथि (दुर्वासा) के आगमन की आवाज प्रथम बार सुनाई देती है, तब (काश्मीरी-पाठ के अनुसार) प्रियंवदा कहती है कि शकुन्तला उटज के द्वार पर ही बैठी है, लेकिन आज वह हृदय से असंनिहित है। जिसको सुन कर अनसूया तुरंत ही कहती है कि तो फिर चलो यहाँ से, इतने पुष्प भी पर्याप्त हैं। उसके मन में शकुन्तला की हितचिन्ता सक्रिय हो जाती है। इसके साथ यदि मैथिली-पाठ की तुलना की जाय तो, उसमें प्रियंवदा की पूर्वोक्त उक्ति का पूर्वार्ध ही प्रियंवदा के मुख में रखा गया है। यानी मैथिली-पाठ के अनुसार अनुसूया कहती है कि शकुन्तला आज हृदय से असंनिहित है। अब प्रियंवदा इसको सुन कर कहती है कि ठीक है, इतने पुष्पों से प्रयोजन-सिद्धि हो जायेगी। (इसके बाद दोनों सहेलियाँ रंगमंच से बाहर निकलने का आरम्भ करती है।) यहाँ एक ही व्यक्ति के दो वाक्यों को दो अलग अलग वक्त्रियों के मुख में विभक्त कर दिया गया है।। (ख) इसी प्रसंग में आगे चल कर, अनसूया क्षमा-याचना करने के लिए दुर्वासा के पीछे जाती है। उनसे शाप-मोचन की अवधि जान कर वह जब वापस लौटती है तब प्रियंवदा को वह कहती है कि चलो हम (दोनों) देवताकार्य को सम्पन्न करें। इतना कह कर दोनों रंगमंच पर परिक्रमण करते हैं। (**अनुसूया**- *एहि, देवदाकज्जं दाव णिव्वुत्तम्ह। (इति परिक्रामतः)* यह एक वाक्य का प्रक्षेप[1] मैथिली रंगकर्मियों ने कर दिया, जिसके कारण अनुगामी वाक्यों में वक्तृ-क्रम में परिवर्तन हो जाता है। जैसे कि, (काश्मीरी-पाठ में,) दुर्वासा के शाप-वृत्तान्त को संगोपित रखने का प्रस्ताव जो प्रियंवदा के मुख में था, वह (मैथिली-पाठ में) अनुसूया के मुख में चला जाता है! निष्कर्षतः काश्मीरी-पाठ में, शाप-मोचन की प्रार्थना के लिए अनसूया जाती है, और शाप को शकुन्तला से संगोपित रखने का प्रस्ताव प्रियंवदा ने किया था। लेकिन मैथिली-पाठ में, शाप-मोचन की प्रार्थना के लिए तो अनुसूया ही जाती है, परन्तु शाप को संगोपित रखने का प्रस्ताव भी अनुसूया के मुख में आ जाता है।। [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक -14 से 16, एवं 22, 29, 31 एवं 33]

(2) दुर्वासा मुनि के द्वारा उच्चरित जो शाप-वचन है उससे सम्बद्ध एक पाठान्तर महत्त्वपूर्ण है। नेपथ्य में रहे दुर्वासा ने शकुन्तला को "अतिथिपरिभाविनी" कहा है, तदनन्तर शापवचन को श्लोकबद्ध करते हुए उन्होंने अपनी पहचान देते हुए "तपोनिधिं वेत्सि न मामुपस्थितम्" कहा है। किन्तु इसी स्थान पर काश्मीरी वाचना में उन्होंने अपने को "यतोऽतिथिं वेत्सि न माम् उपस्थितम्" शब्दों से अतिथि ही बताया है। इस तरह के पाठभेद से सूचित होता है कि काश्मीरी-पाठ के अनुसार दुर्वासा ने अतिथि का सत्कार नहीं करने के लिए शकुन्तला को दण्डित की है। भारतीय संस्कृति में यह एक जीवन-मूल्य है कि हमें अतिथियों का सत्कार करना ही चाहिए। उसका परिपालन नहीं करने पर दण्ड दिया जा सकता है। किन्तु मैथिली-पाठ का अभिप्राय ऐसा है कि दुर्वासा को अपने तपोनिधि होने का घमण्ड है। अतः वे जब घमण्ड से प्रेरित होकर शाप देते हैं तो शकुन्तला दयनीय है, और शाप मिलने की घटना को केवल दुर्दैव ही मानना होगा। शकुन्तला को किसी भी तरह से दोषी व्यक्ति नहीं माना जायेगा। यदि मैथिली पाठ मौलिक होगा तो, कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने शाप मिलने की घटना के जो सूचितार्थ बताये हैं, वे सभी मिथ्या एवं अप्रस्तुत सिद्ध हो जायेंगे। इति दिक्।। [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक - 17 एवं 18]

---

1. यह वाक्य प्रक्षिप्त है ऐसा इस लिए कहते हैं कि पहले तो हमें कहा गया था कि शकुन्तला को सौभाग्यदेवता की अर्चना करनी है। वह कार्य इन सहेलियों ने कहाँ से, क्यूं शुरू कर दिया? और वह भी जब उन दोनों ने दुर्वासा का शाप सुना है तब?, यह असम्भव है। स्वाभाविक तो यही लगता है कि वे दोनों सीधे ही सखी शकुन्तला के पास पहुँचें।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(3) दुर्वासा-शाप प्रसंग को निरूपित करने वाला प्रवेशक पूर्ण होते ही, कण्व मुनि का एक शिष्य रंगमंच पर आता है। वह प्राभातिक समय का वर्णन चार श्लोकों से करता है। ये सभी श्लोक काश्मीरी रंगावृत्ति में से यथावत् लिए गये हैं। (यद्यपि काश्मीरी-पाठ में भी जो चार श्लोक मिलते हैं, उनमें से आरम्भिक दो श्लोक ही प्रतिपाद्य विषय (प्रभात-वेला) का वर्णन करते हैं, जो सही है, प्रासंगिक है। परन्तु तीसरा-चौथा श्लोक प्रक्षिप्त है ऐसा प्रतीत हो रहा है। क्योंकि उन दोनों में स्पष्टतया पुनरुक्ति दोष आ रहा है।) मैथिली रंगावृत्ति में, केवल उन श्लोकों की शब्दावली में कुत्रचित् पाठान्तर दाखिल किये गये हैं। किन्तु मंचन की दृष्टि से उनमें कुछ विशेष परिवर्तन नहीं दिखता है, क्योंकि वे केवल गेय हैं।। [सन्दर्भ –उक्ति-क्रमांक 37 से 41]

(4) शकुन्तला-प्रस्थान के प्रसंग पर आश्रमवासिनी कतिपय तापसियाँ मिल कर शकुन्तला को आशीर्वाद दे रही हैं। इस दृश्य की वाक्यावली और उनके वक्ताओं का तुलनात्मक अभ्यास करना चाहिए। क्योंकि काश्मीरी-पाठ में, इस स्थान में माता गौतमी की निष्क्रिय उपस्थिति खटकती है, ऐसा हमने पहले देखा है। अतः मैथिली-रंगावृत्ति के पाठ के अनुसार यहाँ गौतमी की भागीदारी कैसी है? वह परीक्षणीय है। मैथिली रंगमंच पर सबसे पहले शकुन्तला गौतमी को प्रणाम करती है, जिसकी प्रतिक्रिया के रूप में वह शकुन्तला को "भर्ता की ओर से बहुमान सूचक देवी-शब्द" को प्राप्त करे ऐसा आशीर्वाद देती है। तदनन्तर, दो तापसियाँ एक साथ में मिल कर शकुन्तला को वीरपुत्र को पैदा करनेवाली हो, ऐसा आशीर्वाद देकर रंगभूमि से निकल जाती है। मतलब कि मैथिली रंगावृत्ति के पाठ में रंगभूमि पर तापसियों के आगमन को सप्रयोजन दिखाने की कोशिश की गई है। क्योंकि यहाँ शकुन्तला को लेकर आये सभी पात्र (माता गौतमी और दो तापसियाँ) पूर्ण रूप से मंचन में अपनी अपनी भागीदारी निभाते हैं। किन्तु लगता है कि रंगभूमि पर तापसियों का आगमन एवं उनके द्वारा दिये गये आशीर्वचन का प्रसंग परापूर्व से चला आ रहा होगा, जो काश्मीरी रंगावृत्ति को विरासत में मिला हुआ एक मंचनलक्षी प्रक्षेप ही है। क्योंकि, जैसे पहले कहा है- "ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तुर्बहुमता भव०" इत्यादि वक्ष्यमाण श्लोक से, कण्व मुनि वही आशीर्वाद देने वाले ही हैं। अतः इन तापसियों के आगमन के साथ जुड़ा प्रसंग (दृश्य) किसी अज्ञात रंगकर्मियों का किया हुआ प्रपञ्च ही हो सकता है।। [सन्दर्भ–उक्ति- क्रमांक - 64 से 67]

(5) शकुन्तला को आश्रम-सुलभ प्रसाधनों से सुशोभित करने का दृश्य शुरू होता है। तब आश्रम के दो ऋषिकुमार कुछ अलंकारादि की सामग्री लेकर वहाँ आते हैं। वे बताते हैं कि वनस्पतियों से निकले वनदेवता के हाथों ने शकुन्तला के मण्डन के लिए कुछ अलंकार भेट किये हैं,तो उससे अब शकुन्तला का सुशोभन किया जाय। इसको सुन कर (काश्मीरी-पाठ में) प्रियंवदा कहती है कि यह जो अद्भुत सम्पत्ति प्राप्त हुई है, उससे ऐसा सूचित हो रहा है कि शकुन्तला को अपने भर्ता के घर में राजलक्ष्मी का उपभोग करने को मिलने वाला है। जिसको सुन कर शकुन्तला लज्जा का अनुभव करती हुई बताती है कि तुम मेरी सखी बड़ी कल्याणिनी हो, कोटर में पैदा हुई मुझ जैसी (कोटर-सम्भवेव) मधुकरी के लिए (भी) पौष्कर मधु का अभिलाष रखती हो। लेकिन बातचीत के इन वाक्यों को जब मैथिली-पाठ में देखा जाते है तो, उसमें उसके वक्ता बदल जाते हैं! यहाँ, मैथिली में तो ऋषिकुमार से अलंकारादि प्राप्त होते ही प्रियंवदा के मुख से "हला, कोडरसम्भवा वि महुकरी पोक्खरमहुं जेव अहिलसदि।" अर्थात् अरे सखि, तुम कोटर में पैदा हुई हो, फिर भी (कोटर-सम्भवा अपि) पुष्कर मधु का ही अभिलाष रखती हो। यहाँ स्मर्तव्य है कि काश्मीरी-पाठ में जो वाक्य शकुन्तला के मुख में था, वही वाक्य अब मैथिली-पाठ में प्रियंवदा के मुख में रखा गया है। तथा काश्मीरी में वह इव-शब्द सहित का जो वाक्य था, उसको मैथिली में अपि-शब्द के साथ रखा गया है!इसी को रंगकर्मियों का हस्तकौशल कहते है।। इसी तरह की नवीन योजनावाला पाठभेद बंगाली रंगकर्मियों ने भी स्वीकार लिया है। किन्तु कुछ गहराई के साथ सोचने पर काश्मीरी-पाठ अधिक श्रद्धेय लगता है। क्योंकि समीक्षित पाठ-सम्पादन का एक

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अधिनियम ऐसा भी है कि सरल एवं सुगम पाठान्तर की अपेक्षा से जो दुर्गम या कठिन या आर्ष पाठ होता है, वह मूलगामी पाठ होने की सम्भावना अधिक होती है।। [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक - 82 एवं 83]

(6) शकुन्तला बिदाई से पहले उसका जो सुशोभन-कर्म चल रहा है, उसमें उपयुक्त होनेवाली सामग्री के विषय को लेकर यदि काश्मीरी एवं मैथिली पाठों की तुलना की जायेगी तो भी कुछ महत्त्वपूर्ण अन्तर ध्यान में आयेगा। जैसे कि, (क) काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ में अनसूया ने केसरगुणा यानि केसरपुष्पों की माला का और मृगरोचना नामक तीर्थमृत्तिका का निर्देश किया है। परन्तु मैथिली रंगावृत्ति में उन दोनों चीजों के लिए "केसरचूर्ण" (जिसको इकठ्ठा करने के लिए नलिनीपत्र) और "गोरोचना" तीर्थमृत्तिका का निर्देश किया है। (ख) काश्मीरी-पाठ में शकुन्तला के परिधान के रूप में 'क्षौमनिर्मोक' है, तथा वह लतागृह में जाकर उसको पहन कर, फिर वापस रंगमंच पर आकर बैठती है ऐसा कहा गया है। मैथिली-पाठ के अनुसार 'क्षौमयुगल' है, जिसको शकुन्तला रंगमंच पर ही पहन लेती है, और वहीं पर बैठ जाती है, ऐसी रंगसूचना है। इस तरह से आहार्य-सामग्री के नामों में जो भेद मिलते हैं तथा उसके पहनने का स्थानभेद दिखाया है, वे भी इन दोनों पाठों का रंगावृत्तित्व प्रमाणित करते हैं।। किन्तु इन चीजों के नामभेदों की ओर ध्यान आकृष्ट करने के साथ साथ, यह कहना भी अधिक महत्त्वपूर्ण है कि काश्मीर प्रदेश में ही केसर-पुष्प होते है, वहीं पर केसरपुष्पों की माला हो सकती है, तथा वह शुष्क हो जाने के बाद केसरचूर्ण की प्राप्ति हो सकती है। अतः काश्मीरी रंगावृत्ति का पाठ पुरोगामी है, इसका प्रमाण भी ऐसी छोटी छोटी हकीकतों में मिल रहा है।। [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक -58, 92 एवं 93]

(7) चतुर्थांक के मध्य में, समस्त निसर्ग की ओर से शकुन्तला को अनुज्ञा-वचन-पूर्वक जो बिदाई दी जाती है, उसका मंचन भी तुलनात्मक अभ्यास का रोचक प्रसंग है। काश्मीरी-पाठ के अनुसार काश्यप मुनि ने शकुन्तला को सम्बोधित करते हुए, उससे तपोवन के तरुओं से अनुज्ञा मँगवाई है। जिसके प्रतिभाव में नेपथ्योक्ति (नभोवाणी के स्वरूप) से कहा जाता है कि "रम्यान्तर-कमल-कीर्णजलैस्सरोभि:०"। इसमें कहीं पर भी नेपथ्योक्ति के द्वारा प्रेक्षकों को कोकिलरव नहीं सुनाया जाता - यह ध्यातव्य है। किन्तु जब इसी प्रसंग को मैथिली-पाठ के अनुसार देखा जाता है तो उसमें पहले काश्यप मुनि ही सीधे तपोवन के तरुओं को विज्ञप्ति करते हैं कि "पातुं न प्रथमम्०" इत्यादि ऐसी शकुन्तला पतिगृह की ओर प्रस्थान कर रही है, तो उसको अनुज्ञा दो। तत्पश्चात् तुरंत नेपथ्य में से कोकिलरव पैदा करके, वह प्रेक्षकों को सुनाया जाता है। यहाँ प्रथमबार "कोकिल शब्दं सूचयित्वा" ऐसी रंगसूचना प्राप्त होती है। मैथिली रंगकर्मियों ने इस प्रसंग के पाठ में तीसरा परिवर्तन भी किया है।शार्ङ्गरव के मुख से निकलनेवाला "अनुमतगमना शकुन्तला०" श्लोक, जो काश्मीरी-पाठ में "रम्यान्तरकमलकीर्ण-जलैस्सरोभि:०" इस श्लोक के पीछे आता है, उसको अग्रता देकर, पहले उपस्थापित कर दिया है।। लेकिन काश्मीरी-पाठ में शकुन्तला के लिए अनुज्ञा माँगी जाने के बाद समस्त निसर्ग से रम्यान्तरकमलकीर्ण० जैसे शब्दों की गूँज निकलती है और प्रेक्षकों को दिव्यता का अनुभव होता है। दूसरी ओर, इस मैथिली-पाठ में नेपथ्य से पैदा किये गये कोकिलशब्द से आश्चर्य का अनुभव होता है। उन दोनों में से मौलिकता का अंश किस पाठ में रहा होगा? यह विचारणीय बिन्दु है। इस प्रश्न का उत्तर वैयक्तिक रूप से अलग अलग ही प्राप्त होगा।अतः, कृतिनिष्ठ आन्तरिक प्रमाण ढूँढ़ कर उससे ही उक्त प्रश्न का समाधान प्राप्त करना चाहिए। हमें तो, मैथिली रंगावृत्ति के पाठ में "रम्यान्तर-कमल०" श्लोक को स्थान-परिवर्तन करके, बाद में प्रस्तुत करने में कुछ अनुचित जैसा लगता है। क्योंकि,कण्व मुनि के "पातुं न प्रथमम्०" श्लोक के प्रतिभाव में रंगकर्मियों के द्वारा नेपथ्य से कोकिल शब्द पैदा करके निसर्ग से अनुज्ञा मिल रही है ऐसा जब पहले ध्वनित कर ही दिया है, और वही बात शारङ्गरव के "अनुमतगमना०" श्लोक से अनुदित भी की जाती है। तब, इस अद्भुत शब्दावलीवाले "रम्यान्तर-कमल०" श्लोक की प्रस्तुति में शार्ङ्गरव का वह श्लोक व्यवधान-भूत भी लगता है। जिससे "रम्यान्तर-कमल०" श्लोक की चमत्कृति न्यून हो जाती है। इस दृष्टि से काश्मीरी रंगावृत्ति का पाठ मौलिकता के अधिक नजदीक प्रतीत होता है।। [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक -105 से 110]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(8) शकुन्तला की बिदाई चल रही है, तब वह रास्ते में खड़ी माधवीलता से मिल लेती है। जैसा कि पहले कहा गया है, इस माधवीलता का कण्वाश्रम में होना प्रक्षिप्तांश है। किन्तु काश्मीरी रंगावृत्ति को (प्रथमांक में) माधवीलता का निर्देश विरासत में मिला है, वैसे ही इस चतुर्थांक में भी वही लता पुनः प्रस्तुत होती है। काश्मीरी पाठ की तरह इस मैथिल-पाठ के चतुर्थांक में माधवीलता से जुड़ी जो वाक्यावली प्राप्त हो रही है, वह प्रक्षिप्त ही है ऐसा आन्तरिक प्रमाण से ही सिद्ध होता है:-कवि ने प्रथमांक में कहा है कि नवमालिका सहकारवृक्ष की स्वयंवरवधू है। अब चतुर्थांक में शकुन्तला माधवीलता को अपनी भगिनी कह कर उसे आलिंगन देती है। तथा सहेलियों को उसका खयाल रखने का कहती है। तब कण्व मुनि "संकल्पितं प्रथममेव मया त्वदर्थे, भर्तार-मात्मसदृशं सुकृतैर्गतासि। अस्यास्तु संप्रति वरं त्वयि वीतचिन्तः, कान्तं समीप-सहकारमिमं करिष्ये।" ऐसा श्लोक बोलते हैं। इसमें कहा है कि वे इस माधवीलता का विवाह सहकार वृक्ष के साथ करवायेंगे। लेकिन प्रथमांक में जो कहा गया था, उसके विरोध में ही इस श्लोक का वाक्यार्थ आ कर खड़ा रहता है। इससे सिद्ध होता है कि चतुर्थांक (और प्रथमांक) में आयी हुई माधवीलता सम्बन्धी संवादमाला पूर्णतया प्रक्षिप्त है।। [सन्दर्भ-उक्ति-क्रमांक -115 से 118]

(9) मैथिली रंगकर्मियों ने पिता का घर छोड़ रही शकुन्तला के मुख से कहलाया है कि, "कथं तातस्य अंकात् परिभ्रष्टा मलयपर्वतोन्मूलितेव चन्दनलता देशान्तरे जीवितं धारयिष्यामी"ति। किन्तु काश्मीरी पाठ में सर्वथा दूसरा ही वाक्य मिलता है:-कथमिदानीं तातेन विरहिता करिसार्थ-परिभ्रष्टा करेणुकेव प्राणान् धारयिष्ये।। इन दोनों उक्तियों में केवल उपमा-वाक्य का भेद है। जिससे मंचन के सन्दर्भ में तो कोई बदलाव आनेवाला नहीं है। किन्तु (क) रसबोध में काफी अन्तर हो जाता है। जैसे कि, मैथिली पाठ के अनुसार शकुन्तला जब अपने आप को चन्दनलता के साथ उपमित करती है, तब उसमें नायिका की कोमलता का बोध होता है। तथा काश्मीरी पाठ के अनुसार हाथियों के समूह से बिछुड़ी छोटी हथिनी का उपमान सामने आने से शकुन्तला की वेधक निःसहायता महसूस होती है, जो बिदाई के प्रसंग में करुणरस का परिपोष करती है। एवञ्च, (ख) भौगोलिक सत्य की दृष्टि से देखा जाय तो महर्षि कण्व का आश्रम हिमालय की उपत्यका में स्थित है, और वहीं पर हस्तियूथ का होना यथार्थ हकीकत है। हिमालय के प्रदेश में चन्दनलता का होना असम्भव ही है! अतः यहाँ मैथिली पाठ पूर्णतः विसंगत ही सिद्ध होता है। (ग) मैथिली पाठ में शकुन्तला की उक्ति से पहले एक रंगसूचना दी गई है:- *पितुरङ्कमाश्लिष्य।* क्योंकि शकुन्तला के मुख में जो परिवर्तित वाक्य रखा गया है (कथं तातस्य अङ्कात् परिभ्रष्टा मलयपर्वत०... इत्यादि।) उसमें वह कहनेवाली है कि 'मैं पिता की गोदी छोड कर जा रही हूँ' तो, उसका अभिनय भी मंचन के समय होना चाहिए! इस पूर्वोक्त रंगसूचना से सूचित होता है कि शकुन्तला जब यह परिवर्तित वाक्य बोलेगी तब कण्व मुनि रंगभूमि पर बैठे हुए होंगे। काश्मीरी रंगभूमि पर शकुन्तला ने खड़े हुए पिता काश्यप को आश्लेष देते हुए करिसार्थ से बिछुडने की वेदना कही है।। अतः काश्मीरी रंगावृत्ति का पाठ ही एकाधिक कारणों से मौलिकता के नजदीक प्रतीत हो रहा है।। [सन्दर्भ-उक्ति-क्रमांक - 151]

(10) मैथिली रंगावृत्ति के चतुर्थांक में एक भी श्लोक का संक्षेप या प्रक्षेप हुआ हो ऐसा ध्यान में नहीं आता है। यानी इस अंक के स्वीकृत श्लोकों के सन्दर्भ में मैथिली एवं काश्मीरी रंगावृत्तियों में कोई भेद नहीं है।।

॥ पञ्चमोऽङ्कः॥

इस अंक के आरम्भिक दृश्य की प्रस्तुति में मैथिली रंगकर्मियों ने भारी परिवर्तन कर दिया है। किसी अंक की दृश्यावली में जब अमुक दृश्य का क्रम बदल जाता है, यानी अमुक दृश्य आगे-पीछे हो जाते हैं, तो उसमें प्रायः प्रतिलिपि-कर्ताओं का उत्तरदायित्व नहीं होता है। उसमें तो बहुशः रंगकर्मियों का ही हस्तक्षेप हो सकता है। किसी भी नाटक की लिखित पाठ-परम्परा में यदि कहीं पर दृश्य-क्रम में कोई बदलाव हुआ है ऐसा ध्यान में आता है तो वह इस बात की गवाही बनती है कि इन पाण्डुलिपियों में संचरित हुई ये विभिन्न पाठपरम्पराएँ किसी न किसी रंगावृत्ति का पाठ ही दे रही

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

हैं। अभिज्ञानशकुन्तला नाटक के पञ्चमाङ्क का आरम्भिक दृश्य इस दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है।।

(1) मैथिली पाठ के अनुसार इस अंक का आरम्भ कञ्चुकी से होता है, ततः राजा और विदूषक रंगमंच पर प्रवेश करते हैं। दुष्मन्त एक राजा के रूप में अपना अधिकारखेद व्यक्त करता है। जिसके अनुसन्धान में नेपथ्य से वैतालिकों का गान प्रस्तुत होता है। इसको सुन कर दुष्मन्त कहते है–*आश्चर्यम्, कार्यशासनपरिश्रान्ताः पुनर्नवीभूता स्मः।* इसके बाद, यानी तीसरे क्रम में हंसवती का गीत प्रस्तुत होता है। इस गीत को सुन कर राजा जननान्तर के सौहृद को याद करते हैं और अस्मृति का अभिनय करते हुए उन्मनस्कता सूचित करते हैं। इस के बाद यानी चतुर्थक्रम में कण्वाश्रम के ऋषिगण और शकुन्तला का प्रवेश होता है। मैथिली पाठ का यह क्रम काश्मीरी पाठ से भिन्न है। जिसमें वैतालिकों के श्लोक-गान से पहले हंसवतिका का गीत प्रस्तुत होता है। इसका मतलब यह होगा कि काश्मीरी पाठ में, हंसवतिका के गीत से क्लान्तमनस् हुए राजाजी को स्व-स्थ करने के लिए (=राजा की धर्मबुद्धि को जागृत करने के लिए) वैतालिकों का श्लोक-गान उपयोग में लिया जाता है।। काश्मीरी पाठ की अपेक्षा से मैथिली पाठ में इस तरह के दृश्य-क्रम में जो बदलाव देखा जाता है उसका कारण यही है कि दोनों प्रदेशों के रंगकर्मियों के लिए राजा दुष्यन्त जब शकुन्तला का प्रत्याख्यान करते हैं तो, उस समय उसकी मानसिकता कैसी थी, अथवा उस प्रत्याख्यान की पूर्वभूमिका कैसी होनी चाहिए?- यही मतिभेद का बिन्दु रहा होगा। जिसके कारण दोनों ही प्रदेशों के रंगकर्मियों ने अपनी अपनी सोच के अनुसार वैतालिकों के श्लोक-गान एवं हंसवतिका के गीत का क्रम निश्चित किया है।।

यद्यपि यहाँ इतना कहना आवश्यक लगता है कि (क) मैथिली पाठ में परिवर्तित किये गये दृश्यक्रम के कारण वैतालिकों के गान का कोई विशेष नाटकीय प्रयोजन रहता नहीं है। केवल इस श्लोक-गान के निमित्त से विदूषक ने राजा का मजाक उड़ाने का काम किया, जिससे अनावश्यक हास्योक्ति[1] का निर्माण होता है।। एवमेव, (ख) आगे चल कर शकुन्तला-प्रत्याख्यान समय की रंगसज्जा में जो अग्निशरणालिन्द का स्थान है, जिसके एक कौने में कपिला गौ की उपस्थिति आदि काश्मीरी पाठ में वर्णित की है, उसमें भी मैथिली रंगकर्मियों ने पाठभेद करके कपिला गौ के स्थान में होमधेनु की उपस्थिति कही है। लेकिन इस तरह के पाठभेद करने का मतलब नहीं रहता है। क्योंकि मैथिली रंगकर्मियों ने जब वैतालिकों के श्लोक-गान का क्रम बदल कर, उससे राजा की धर्मबुद्धि को जगाने का लक्ष्य छोड़ दिया है, तब होमधेनु (या कपिला गौ) का वहाँ पर होना किसी भी तरह से धर्मबुद्धि का संपोषण नहीं करेगा। हाँ, काश्मीरी पाठ में वैतालिकों के श्लोक-गान से राजा की धर्मबुद्धि को जगाने का लक्ष्य रखा है, वहाँ कपिला गौ की सन्निधि धर्मबुद्धि की पोषक जरूर बन पायेगी, (और यही कपिला गौ शकुन्तला का प्रतीक भी बन सकती है)। इस दृष्टि से काश्मीरी पाठ में पञ्चमांक के आरम्भ में जो दृश्य-क्रम है, वह मैथिली पाठ की अपेक्षा से अधिक श्रद्धेय एवं मौलिकता के नजदीक है ऐसा सिद्ध होता है।। [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक - 1 से 7, 8 से 10, 12 से 14, एवं 15, 18 से 24, एवं 39]

(2) कञ्चुकी की उक्ति के बाद रंगभूमि पर राजा और विदूषक का प्रवेश होता है। वहाँ मैथिली रंगावृत्ति में "ततः प्रविशति राजा विदूषकः विभवतः परिवारः" ऐसी रंगसूचना दी गई है। यानी मैथिली रंगभूमि पर राजा का जैसा वैभव (ठाठ) होना चाहिए, उसके अनुसार उसके परिवार के साथ राजा को उपस्थित करना है। इस मौके पर किसी भी तरह से मामूली रंगसज्जा एवं वेशभूषादि नहीं होना चाहिए। एवमेव परिजन-वर्ग में व्यक्ति संख्या भी अधिक होनी चाहिए।। (आगे चल कर हमें यह भी देखना होगा कि मैथिली रंगकर्मियों ने शकुन्तला-प्रत्याख्यान के अवसर पर इस वैभवशाली परिजन-वर्ग से क्या काम लिया है?।) तथा जिस स्थान पर शकुन्तला-प्रत्याख्यान के प्रसंग का आयोजन किया जाता है, उस अग्निशरणालिन्द में होमधेनु खड़ी की गई है। क्योंकि मैथिली रंगकर्मियों ने वैतालिकों के श्लोक-गान का सम्बन्ध राजा की धर्मबुद्धि को जागृत करने के लिए किया ही नहीं है, इस लिए रंगसज्जा के सन्दर्भ में, "होमधेनु" जैसे पाठान्तर के द्वारा वह प्रयोजन सिद्ध करने का सोचा होगा।

1. गोविन्दारको त्ति किल भणिदस्स रिसभस्स परिस्समो णस्सदि। (उक्ति-क्रमांक 15)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

काश्मीर पाठ में कपिला गौ का निर्देश था, उसको परिवर्तित करके मैथिली रंगकर्मियों ने होमधेनु को उपस्थित किया है। सम्भव है कि कवि ने कपिला गौ को शकुन्तला का प्रतीक बनाना चाहा हो, परन्तु होमधेनु शब्द से वह व्यंजना नहीं निकलती है। मिथीला के रंगकर्मियों ने होमधेनु शब्द से राजा की धर्मबुद्धि को जागृत करने का लक्ष्य रखा है।। [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक - 8एवं 39]

(3) वैतालिकों की संख्या को लेकर विप्रतिपत्ति ध्यानास्पद है। काश्मीरी पाठ में "वैतालिकाः" ऐसा बहुवचनान्त प्रयोग है। अर्थात् वहाँ पर रंगकर्मियों के द्वारा तीन या तीन से अधिक वैतालिकों का संयुक्त-गान पेश किया जाता है। किन्तु मैथिली पाठ में "वैतालिकौ" ऐसा स्पष्ट द्विवचनान्त प्रयोग मिलता है। तथा वे दोनों बारी बारी एक-एक श्लोक का गान करते हैं। इस तरह से यहाँ वैतालिकों की नेपथ्योक्ति की प्रस्तुति दो पृथक्-पृथक् ध्वनियों से की जाती है।। [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक - 11, 12 एवं 13]

(4) जैसा कि उपरि भाग में कहा है वैतालिकों के श्लोकगान का जो उपयोग मैथिली रंगकर्मियों ने किया है, वह है विदूषक के मुख से राजा का मजाक उड़ाना! राजा ने जब वैतालिकों के श्लोकगान को सुन कर नवीकृत होने का परितोष व्यक्त किया तो, विदूषक ने कहा है कि इसीको कहते है कि गोवृन्दारक कह देने से जैसे वृषभ=बैल का परिश्रम दूर हो जाता है। (दोविन्दारक इति किल भणितस्य ऋषभस्य परिश्रमो नश्यति।)।। मैथिली रंगकर्मियों का यह प्रक्षेप शकुन्तला-प्रत्याख्यान की पूर्वपीठिका की गम्भीरता को निश्चित रूप से नष्ट कर देता है।। [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक -15]

(5) राजदरबार के अनुरूप वैभवशाली परिजन-वर्ग को लेकर राजा और विदूषक रंगमंच पर आये हैं। लेकिन मैथिली रंगकर्मियों ने उस परिजन-वर्ग के मुख में एक भी उक्ति रहने नहीं दी है! (परिजन की उक्तियों को, मैथिली रंगकर्मियों ने प्रतिहारी के मुख में रख दी हैं।) काश्मीरी पाठ में परिजन-वर्ग की व्यक्ति के मुख में कुल मिला कर दो स्थान पर उक्तियाँ रखी हैं, और उन दोनों ही का होना बहुत स्वाभाविक भी लगता है। काश्मीरी पाठ में परिमित परिवार के साथ राजा का प्रवेश होता है ऐसा कहा गया है। उससे विपरीत मैथिली पाठ में विभव के अनुरूप परिवार का निर्देश किया है, फिर भी उस परिवार (या परिजन वर्ग) के एक भी सदस्य की कोई उक्ति ही नहीं मिलती है! यह समुचित नहीं है[1]। (आगे चल कर हम दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनाओं के पाठ का पर्यालोचन करेंगे तब देखेंगे कि उन दोनों में इस प्रसंग का एक तीसरा पहलू[2] आकारित हुआ है।)

(6) कण्वाश्रम से आये ऋषिकुमारों में शार्ङ्गरव और शारद्वत हैं। काश्मीरी पाठ में भागुरि नाम का जो एक तीसरा व्यक्ति भी था, उसको मैथिली रंगावृत्ति में स्थान नहीं दिया है। परिणामतः "अतः समीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात् संगतं रहः०" वाला श्लोक जो भागुरि के द्वारा बोला जाता था, वह अब मैथिली पाठ में शार्ङ्गरव के मुख में रखा गया है।। [सन्दर्भ –उक्ति-क्रमांक - 120 एवं 121]

(7) मैथिली रंगकर्मियों ने प्रतिहारी के मुख में "देव, प्रसन्नमुखरागा ऋषयः सस्त्रीका दृश्यन्ते।" ऐसी जो उक्ति रखी है, उसमें सस्त्रीकाः पद प्रक्षिप्त है। ऋषिमुनियों के साथ "स्त्री सहित" ऐसा विशेषण जोड़ने की चेष्टा काश्मीरी पाठ में नहीं दिखती है। इस एक पद का प्रक्षेप मैथिली रंगकर्मियों ने ही किया है। अब इस बीज-निक्षेप का क्या फल आता है? वह हमें देखना है। जब प्रतिहारी ने कहा कि कण्वाश्रम से स्त्रीसहित ऋषि लोग आये हैं, तब राजा उस स्त्री को देख कर, सोचते हैं कि यह अवगुण्ठनवती कौन है?। यहाँ प्रतिहारी बोलता है कि दर्शनीया

---

1. क्योंकि रंगमंच पर जो भी पात्र प्रवेश करता है, उसका वाचिकाभिनय नहीं होने पर वह केवल दिखावा बन कर रह जाता है। ऐसी स्थिति आंशिक रूप से सह्य हो सकती है, विपुल मात्रा में नहीं।
2. जिसमें काश्मीरी एवं मैथिली पाठों में जिस परिजन के साथ राजा का प्रवेश कहा गया है, वह बात निकाल दी है। तथा मैथिली पाठ में जो राजा के मुख में नवीन उक्ति (अनिर्वर्ण्यं परकलत्रम्।) का प्रक्षेप किया है, उसका स्वीकार करके, उसको प्रतिहारी के मुख में रखा है।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

आकृति है ऐसा लक्षित होता है। परंतु राजा ने तुरंत ही उस प्रतिहारी को संयमित करते हुए कहा कि, भवतु, अनिर्वर्ण्यम् परकलत्रम्। यह वाक्य काश्मीरी पाठ नहीं था। यह तो मैथिली रंगकर्मियों ने किया हुआ प्रक्षेप है। इस वाक्य के द्वारा वे राजा दुष्मन्त के चरित्र को एक ऊँचाई पर स्थापित करना चाहते होंगे। लेकिन यह बात साफ है कि उस वाक्य का प्रक्षेप करने की पूर्व-तैयारी करने के लिए ही, मैथिली रंगकर्मियों ने *देव, प्रसन्नमुखरागा ऋषयः "सस्त्रीकाः" दृश्यन्ते।* ऐसा एक अधिक शब्द का प्रक्षेप किया था।। [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक - 54, 56 एवं 57]

(8) शकुन्तला-प्रत्याख्यान प्रसंग के सन्दर्भ में मैथिली रंगावृत्ति का एक महत्त्व यह है कि राजा दुष्यन्त ने जब शकुन्तला को परभृता का उपमान दिया तब नायिका निरतिशय कोपाविष्ट होकर, उसे अनार्य शब्द से सम्बोधित करती है। काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ में वह अनार्य शब्द उपलब्ध नहीं होता है। यहाँ नायक के मुख से परभृतिका शब्द का प्रयोग होते ही शकुन्तला जैसी अनागस तापस कन्या का प्रत्याख्यान इतनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है कि यहाँ शकुन्तला के लिए अनार्य शब्द का प्रयोग करना स्वाभाविक प्रतीत होता है, और ऐसा हो जाना अनिवार्य भी लगता है। मैथिली रंगावृत्ति की पाठपरम्परा में इस सर्वथा समुचित शब्द की जो रक्षा हुई है, उसीने शकुन्तला की घनीभूत वेदना को वाचा दी है। (ऐसे कुछ स्थानों को देख कर ही लगता है कि जिन पाठों की रक्षा काश्मीरी रंगावृत्ति में नहीं हो पायी है, वे पाठ मैथिली रंगावृत्ति में सुरक्षित रूप में संचरित हुए हैं। जिसको देख कर लगता है कि मैथिली पाठशोधकों के सामने कदाचित्कविप्रणीत मूलपाठ की प्रतिनिधि भूत कोई प्रति रही होगी। इस विचार को कोई केवल कल्पना भी कह सकता है। लेकिन मैथिली पाठ में जहाँ जहाँ प्रसंगोचित या सन्दर्भोचित सटीक अभिव्यक्ति देखी जाती है, और उसके सामने खड़ी प्राचीनतम काश्मीरी पाठपरम्परा में वह नहीं होती है, तब ऐसा अनुमान या कल्पना करने को हम बाध्य हो जाते हैं।।) [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक - 110–111]

(9) शकुन्तला ने दुष्यन्त को अनार्य शब्द से सम्बोधित किया है। यहाँ क्रोधाग्नि प्रकट होने की क्षणों में शकुन्तला की जो मुखाकृति हुई थी, उसका वर्णन करते हुए नायक दुष्मन्त ने दो श्लोकों का उच्चारण किया है। (किन्तु काश्मीरी रंगावृत्ति में इसके लिए केवल एक ही श्लोक आता है।) यहाँ मैथिली रंगावृत्ति में "अपि च" निपात से अवतारित दोनों ही श्लोक प्रक्षिप्त लगते हैं। क्योंकि प्रथम "न तिर्यगवलोकितं भवति चक्षुरालोहितम्०" श्लोक में शकुन्तला की भ्रू का स्वभावोक्तिपूर्ण वर्णन है। तथा दूसरे श्लोक में "मय्येवमस्मरण-दारुण-चित्तवृत्तौ०" इन शब्दों से शकुन्तला की भ्रूकुटि के लिए कामदेव के शरासन का भङ्ग होने की उपमा दी गई है, जो पुनरुक्ति युक्त है। एवमेव, दोनों ही श्लोकों में अप्रासंगिक काव्यालाप है।। [सन्दर्भ –उक्ति-क्रमांक 112 एवं 114]

(10) मैथिली रंगावृत्ति के पाठ में, प्रत्याख्यान-प्रसंग में शकुन्तला जब राजा को धर्मकञ्चुक-प्रवेशिन् एवं तृणच्छन्नकूप की उपमा देती है तब दुष्मन्त ने निम्नोक्त वाक्य कहा है:-"दुष्यन्तः - (प्रकाशम्) भद्रे, प्रथितं दुष्मन्तचरितं प्रजासु। तवापीदं दृश्यते।", किन्तु यहाँ काश्मीरी पाठ में "भद्रे, दुष्यन्त-चरितं प्रजासु प्रथितम्। न चापीदं दृश्यते।" ऐसा लिखा हुआ मिलता है। इन दो पाठभेदों में जो अन्तर है, वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। काश्मीरी पाठ के अनुसार दुष्यन्त केवल अपने चरित की रक्षा के लिए कोशिश कर रहा है ऐसा दिखता है। लेकिन मैथिली पाठ के अनुसार तो दुष्मन्त "मैं ऐसा हूँ, और तू ऐसी है" ऐसी भाषा बोलने लगता है, जो नायक के चरित को शोभा नहीं देता है। यह पाठभेद केवल मैथिली रंगावृत्ति में ही मिलता है।। [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक - 115]

(11) काश्मीरी पाठ की तरह मैथिली पाठ में (एवं बंगाली में भी) शकुन्तला के मुख में रखी निम्नोक्त गाथा मिलती है:-*तुम्हे य्येव पमाणं जाणध धम्मत्थितिं च लोअस्स। लज्जा-विनिज्जिदाओ जाणन्ति खु किण्ण महिलाओ।।* (मैथिली पाठ में यह गाथा कुछ पाठभेद के साथ मिलती है) इसमें नायिका अपना मुग्धत्व छोड कर, "महिलाएं भी धर्मस्थिति ठीक तरह से समझ सकती हैं, इसमें केवल पुरुषों का ही एकाधिकार नहीं है। लज्जावशात्

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

महिलाएं बोलती नहीं है, उसका मतलब यह नहीं कि वे समझती नहीं है" ऐसा साफ सुनाती है। यहाँ आधुनिक नारीवादी विचारधारा देखी जा सकती है। जिसमें स्पष्टतया स्थानीय रंगभूमि का प्रभाव दिख रहा है। यह विरासत में मिली प्रक्षिप्त गाथा है।। [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक - 116]

(12) शकुन्तला के द्वारा उच्चरित उपर्युक्त गाथा के ठीक नीचे एक गद्य वाक्य भी है। काश्मीरी पाठ में वह ऐसा है:-"सुद्धु दाव सच्छन्दआरिणी कदम्हि, जा अहं इमस्स पुरुवंसपच्चएण हिअअ-सत्थधारस्स मुहमहुणो हत्थब्भासं उवगदा। (इति मुखमावृत्य रोदिति)"। किन्तु मैथिली रंगावृत्ति में इस उक्ति को तोड़ कर, उसको दो वाक्य में विभक्त कर दिया गया है। तथा इस उक्ति का उत्तरार्ध गौतमी के मुख में ड़ाल दिया है। जैसे कि, "**शकुन्तला-** *सुद्धु दाणि सच्छन्दआरिणी संवुत्ता दाव अहं।* **गौतमी-** *जाद, इमस्स पुरुवंसपच्चएण मुहमहुणो हिअअपत्थरस्स हत्थं उवगदासि।*" इस के बाद रंगसूचना आती है कि शकुन्तला पटान्तेन मुखमावृत्य रोदिति। लगता है कि प्राचीनतम काश्मीरी पाठ ही इस प्रसंग के सन्दर्भ में उचित है।। [सन्दर्भ –उक्ति-क्रमांक - 117 एवं 118]

॥ षष्ठोऽङ्कः॥

मैथिली रंगावृत्ति की अस्मिता को पहचानने के लिए षष्ठांक की दृश्यावली में जो जो परिवर्तन किए गये हैं उनका तुलनात्मक अध्ययन करना बहुत जरूरी है। जैसे पहले बताया है कि मैथिली रंगकर्मियों ने तृतीयांक में "गान्धर्वेण विवाहेन०" श्लोक का प्रक्षेप करके इस नाटक में निरूपित नैसर्गिक प्रेम की गरिमा को नीचे उतार दिया है, उसी तरह से इस षष्ठांक में भी पूर्वपरिणीता रानी वसुमती का स्पर्धात्मक मनोभाव या नये संघर्ष-तत्त्व को दाखिल करके पूर्ण शृङ्गार को विक्षुब्ध कर दिया है। यद्यपि ये दोनों ही परिवर्धन एवं परिवर्तन अनुगामी काल में सभी वाचनाओं के लिए अनुसरणीय बन गये हैं, तथापि इन्हीं के कारण कवि-प्रणीत मूल नाटक में निरूपित प्रेम का उदात्त स्वरूप ही बदल गया है। इस विषय को ध्यान में रखने के साथ साथ, निम्नोक्त सन्दर्भ भी मैथिली रंगावृत्ति का वैशिष्ट्य जानने/समझने के लिए देखने होंगे।।

इस षष्ठांक में 1. धीवर-प्रसंग, 2. कञ्चुकी और उद्यानपालिकाओं का संवाद, 3. राजा और विदूषक का संवाद, जिसमें शकुन्तला-विषयक विरह का निरूपण, 4. शकुन्तला की प्रतिकृति (उसके चित्रफलक) को निमित्त बना कर रानी के ईर्ष्याभाव का सूचन, 5. अमात्य का पत्र और धनवृद्धि वणिक् की अनपत्यता के निमित्त से राजा की मूर्च्छावस्था, 6. मातलि और विदूषक का प्रसंग, 7. मातलि के साथ राजा का निर्गमन एवं 8. इन सभी प्रसंगों में तिरस्करिणी विद्या से अदृश्यमान अप्सरा (मिश्रकेशी) की प्रतिक्रियाएँ (जो राजा की विरही दशा को उद्दिष्ट करके प्रकट होती रहती) हैं। इन बहुविध दृश्यावली में मैथिली रंगकर्मियों ने कितना/क्या परिवर्तित किया? यह देखना अभीष्ट है –

(1) भरत मुनि के मार्गदर्शक नियमों के अनुसार ही कालिदास ने स्त्री एवं नीच पात्रों के लिए शौरसेनी एवं मागधी प्राकृत का प्रयोग किया होगा। प्राकृत के इस ध्वनिरूप की सुरक्षा बहुशः काश्मीरी पाठ की तरह मैथिली पाठ में भी हुई है। तथापि एक ध्यानास्पद शब्द-रूप की ओर अंगुली-निर्देश करना आवश्यक है। धीवर-प्रसंग में, प्रथम (नगर-रक्षक) की उक्ति है:- *किं णु क्खु शोहणबम्भणे त्ति कदुअ लञ्ञा पलिग्गहे दिण्णे।* यहाँ राजा के लिए जो लञ्ञा ऐसा ध्वनिरूप मिलता है, वह रूप तो सम्राट् अशोक के शिलालेखों में पढ़ा जाता है। मौर्यवंशी अशोक मगध (बिहार) की राजधानी का सम्राट् था। अतः इस रूप की यहाँ जो सुरक्षा हुई है, वह इस मैथिल-पाठ की पहचान बन कर विराजमान है। इसी उक्ति में कृत्वा शब्दरूप के लिए, शौरसेनी का कदुअ ऐसा रूप भी ध्यानाकर्षक है।। अस्तु।। [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक -4]

(2) धीवर-प्रसंग के बाद, उद्यानपालिकाओं का दृश्य शुरू होता है। वे दोनों चूताङ्कुर को तोड़ कर कामदेव की अर्चना करती हैं। तब वहाँ कञ्चुकी सहसा प्रवेश करके दोनों को डाँटता है, और बताता है कि राजा दुष्यन्त ने वसन्तोत्सव को प्रतिषिद्ध किया है। विशेष में कहता है कि वासन्तिक तरुओं ने और तदाश्रयी जीवों ने भी राजा का शासन मान लिया है। (क) यहाँ उसके मुख में एक श्लोक (6-4) मिलता है, जो प्रक्षिप्त सिद्ध होता है। क्योंकि उस श्लोक के वर्ण्य-वस्तु और आगे आनेवाले विदूषक और राजा के शब्दों के साथ उसका विरोध

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

खड़ा होता है। जिससे वह आन्तरिक सम्भावना की विरुद्ध जानेवाला श्लोक कहा जायेगा। यह श्लोक काश्मीरी पाठ में भी मिलता है, तथा अनुगामी सभी वाचनाओं के पाठ में भी संचरित हुआ है। हो सकता है कि यह श्लोक बहुत पहले से प्रक्षिप्त हुआ हो और काश्मीरी रंगकर्मियों को वह विरासत में मिला हो।। (ख) इस श्लोक के अनुसन्धान में आ रही मिश्रकेशी और प्रथमा की दो उक्तियाँ भी प्रक्षिप्त माननी होंगी। (ग) यहाँ यह भी सविशेष उल्लेखनीय है कि केवल मैथिली रंगकर्मियों ने ही इस दृश्य के आरम्भ में आनेवाली उक्तियों की वक्त्रियों का क्रम बिलकुल सही स्वरूप में सुरक्षित रखा है। जैसे कि, प्रथमा यानी परभृतिका ने ही मधुकरिका को अपना अवलम्बन लेकर खड़ा रहने का प्रस्ताव किया है, और वही चूतप्रसव को तोड़ कर, कामदेवार्चन करती है। यही क्रम तर्कसंगत है, और यही मान्य पाठ=अधिक श्रद्धेय पाठ के रूप में स्वीकार्य हो सकता है।। [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक - 54 से 57]

(3) कालिदास ने यहाँ मेनका की एक सखी, अप्सरा को रंगमंच पर साक्षात् प्रस्तुत किया है। लेकिन वह रंगकर्मियों के लिए एक चुनौती होती है कि उस दैवी-पात्र (अप्सरा) को प्रेक्षकों के सामने किस रूप में पेश किया जाय?। काश्मीरी रंगकर्मियों ने तो उसके हाथ में शायद रुद्राक्ष की माला रख दी है और उसकी अक्षमाला के नाम से पहचान दी है। किन्तु मैथिली रंगकर्मियों ने वही पात्र दूसरी वेशभूषा में पेश करने का सोचा है। उन्हों ने नटी को कुछ श्वेत-श्याम केशभूषा के साथ रंगमंच पर उपस्थित कर दिया है, और तदनुसार उसका नाम भी बदल दिया है। उसको यहाँ "मिश्रकेशी" बना कर प्रस्तुत किया गया है। [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक - 41 एवं 56 आदि]

(4) राजा और विदूषक का प्रमदवन में प्रवेश होता है। विदूषक ने कहा कि शिशिर ऋतु पूर्ण हुई है, अतः आप इस प्रमदवन में सुखपूर्वक विहार कर सकते हैं। लेकिन राजा ने तुरंत बताया कि एक भी रन्ध्र होने पर अनर्थों की परम्परा बन जाती है। यहाँ मैथिली रंगावृत्ति में, राजा के मुख में दो श्लोक रखे गये हैं :-1. मुनिसुताप्रणयरोधिना०,। तथा 2.उपहितस्मृतिरङ्गुलि०। तथा इन दोनों श्लोकों को "अपि च" निपात से बाँधा गया हैं। लेकिन जब दोनों ही श्लोकों के वाक्यार्थ की समीक्षा की जाती है, तो मालूम होता है कि यहाँ तो एक ही विचार की पुनरुक्ति हो रही है। अतः अपि च- जैसे समुच्चयार्थक निपात का विनियोग उचित नहीं लगता है। मतलब कि यहाँ दोनों में से किसी एक श्लोक का प्रक्षेप हो सकता है। अब काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ को देखते हैं तो वहाँ पर इन दोनों में से "उपहितस्मृति-रङ्गुलि-मुद्रया०" वाला एक ही श्लोक मिलता है। तथापि वह श्लोक प्रक्षिप्त है। क्योंकि इन दोनों श्लोकों के बाद जो विदूषक की उक्ति है, उसका सम्बन्ध तो "मुनिसुताप्रणय-स्मृतिरोधिना०" श्लोक के अन्तिम चरण के शब्दों के साथ ही बैठता है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि काश्मीरी रंगावृत्ति-वालों ने इस जगह पर (अज्ञात कारणों से) प्रक्षिप्त श्लोक को रखा है और जो मौलिक श्लोक था, उसको संक्षेपीकरण के आशय से हटा दिया होगा। दूसरे शब्दों में कहें तो मैथिली रंगावृत्ति में यहाँ एक प्रक्षिप्त श्लोक होने के साथ में मौलिक श्लोक की रक्षा भी हुई है। मैथिली पाठ की ऐसी महनीयता प्रथमांक में भी देखी गई है।। अस्तु।। [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक - 84 से 86]

(5) मिश्रकेशी अप्सरा को रंगमंच पर लाने का कालिदास का जो आशय है, वह बहुत स्पष्ट है। जैसे कि, पञ्चमांक के अन्त में कहा गया है कि शकुन्तला की जननी मेनका उसको उठा कर (मारीच ऋषि के आश्रम में) ले गई है। अतः अंगूठी की प्राप्ति हो जाने के बाद, विरह एवं पश्चात्ताप में डूबे राजा दुष्यन्त का आँखों देखा हाल शकुन्तला तक पहुँचाने के लिए एक अप्सरा ही होनी चाहिए। लेकिन मैथिली रंगकर्मियों ने उस कवि-संकल्पित आशय का कुछ विस्तार भी कर लिया है। जैसे कि, राजा ने शकुन्तला का प्रत्याख्यान कर दिया, इसके कारण क्या उसके मनोजगत् में दुष्यन्त के लिए कोई शिकायत थी या नहीं?। 1. अकारण परित्याग से संतप्त हुए शकुन्तला के मन का समाधान कब, कैसे होगा?। अंगूठी मिल जाने से शकुन्तला का पत्नी के रूप में अभिज्ञान हो जाता है, स्मृतिपटल पर वह जीवन्त भी हो जाती है, किन्तु शकुन्तला के मन को सान्त्वना कैसे मिलेगी?।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

तथा 2. इतने उदात्त प्रेम-प्रसंग को क्या अभिज्ञान की आवश्यकता होनी चाहिए? ऐसे अनेक प्रश्न कालान्तर में प्रेक्षकों के मन में पैदा हुए होंगे। जिसका समाधान प्रस्तुत करने के लिए मैथिली रंगकर्मियों ने मिश्रकेशी के मुख में कुछ नवीन उक्तियों का प्रक्षेप किया है। जिसके कारण काश्मीरी पाठ की अपेक्षा से मैथिली पाठ में, मिश्रकेशी के मुख में कुछ अधिक उक्तियाँ मिलती हैं। जैसे कि, (क) *अथवा न ईदृशोऽनुरागोऽभिज्ञानम् अपेक्षते।* (ख) *सर्वथा वयस्य प्रमार्जितं त्वया प्रत्यादेशदुःखं प्रियसख्याः शकुन्तलायाः, प्रत्यक्षमेव सखीजनस्य।* यद्यपि ऐसे प्रक्षेपों का सीधा सम्बन्ध मंचन के साथ नहीं है, यह सुस्पष्ट है। तथापि इन प्रक्षेपों के कारण (काश्मीरी रंगमंच पर) अक्षमाला की जो सक्रियता है, उससे कहीं अधिक सक्रियता, मैथिली रंगमंच पर, मिश्रकेशी की सिद्ध होती है।। [सन्दर्भ-उक्ति-क्रमांक -95, 113, 126 एवं 179]

(6) कवि कालिदास ने विप्रलम्भ शृङ्गार का निरूपण करने के लिए इस अंक में शकुन्तला के चित्र को एक माध्यम बनाया है। काश्मीरी पाठ के अनुसार इस चित्र को निमित्त बना कर छह श्लोकों को प्रस्तुत किया गया है, किन्तु मैथिली रंगावृत्ति में नौ श्लोक उपलब्ध होते हैं, (कुत्रचित् दश श्लोक भी प्राप्त होते हैं)। यहाँ लिपिकरी (मेधाविनी) राजा ने बनाया हुआ चित्रफलक रंगमंच पर ले आती है। जिसको देखते ही, "अहो रूपमस्यालेख्यस्य" शब्दों से राजा स्वयं अपने बनाये चित्रफलक की सुन्दरता का बखान शुरू करते है। वे एक श्लोक (दीर्घापाङ्गविसारि नेत्रयुगलम्०) भी प्रस्तुत करते है। लेकिन मैथिली रंगकर्मियों की इस योजना में औचित्य का भङ्ग हो रहा है। (यहाँ पर कतिपय पाण्डुलिपियों में "तस्याः तुङ्गमिव स्तनद्वयम्०" शब्दों से दूसरा श्लोक भी प्रक्षिप्त किया गया है। जिसको टीकाकार शङ्कर ने अनुचित कहा है।) यहाँ विप्रलम्भ शृङ्गार के स्थान पर अशिष्टता ने प्रवेश कर लिया है, जो सुरुचि का भङ्ग करने वाली है। एवमेव मैथिल पाठ में, "यद्यत् साधु न चित्रेऽस्मिन्०" वाला श्लोक भी नया दाखिल किया गया है। उस चित्र की पूर्णता करने के लिए जब मेधाविनी को वर्तिका-करण्डक लेने के लिए भेजा जाता है, तब वह विदूषक को उस शकुन्तला के चित्र को पकड़ कर रखने की बात कहती है। किन्तु विरही राजा शकुन्तला के प्रति बहुमान दिखाने की चेष्टा करता है और कहता है कि "अहमेवैनमवलम्बे"। काश्मीरी रंगावृत्ति में ऐसा नहीं था, यह तो मैथिली रंगकर्मियों ने किया हुआ परिवर्तन है। सारांशतः, मैथिली रंगकर्मियों ने चित्रफलक के निमित्त से न केवल अमुक श्लोकों का प्रक्षेप किया है, उन्होंने उस दृश्य की मंचनविधा में भी नावीन्य दिखाया है। (यद्यपि काश्मीरी रंगकर्मियों ने उसी चित्र को विदूषक के हाथ में रखवा कर जो प्रस्तुति की है, वह भी दूसरे तरह की रोचकता से भरी है। इसमें चित्रस्थ भ्रमर-बाधा प्रसंग में राजा की तन्मयता ध्यानाकर्षक है, उसमें कथमपि दो मत नहीं हो सकते हैं।) [सन्दर्भ-उक्ति-क्रमांक -136,137, 139 एवं 151]

(7) शकुन्तला की प्रतिकृति में कुछ पूर्ति करने के लिए राजा ने वर्तिका-करण्डक मंगवाया। इस सन्दर्भ में आगे जो घटना-चक्र आकारित हुआ है उसमें मैथिली रंगकर्मियों ने एक बहुत महत्त्वपूर्ण हस्तक्षेप किया है। जैसे कि, (काश्मीरी पाठ में) राजा की दासी मेधाविनी जब वर्तिका-करण्डक लेकर वापस आ रही थी, तब उसको रास्ते में रानी कुलप्रभा की दासी पिङ्गलिका ने स्पर्धा के भाव से पकड़ लिया, और उसके हाथ में से वर्तिका-करण्डक छीन लिया। पिङ्गलिका चाहती है कि उस करण्डक को वही राजा के पास पहुँचायेगी। लेकिन मैथिली रंगावृत्ति में उस मेधाविनी के हाथ में से रानी (जिसका नाम बदल कर, उसे यहाँ वसुमती कहा गया है) स्वयं करण्डक छीन लेती है। यहाँ रानी ईर्ष्याभाव से आक्रान्त है! यह सुन कर बहुमानगर्विता रानी से राजा ड़र का अनुभव भी करता है। राजा अब शकुन्तला के चित्र को सुरक्षित एवं संगोपित करना चाहता है। जिसके लिए विदूषक उद्यत होता है। वह सोचता है कि अब शकुन्तला के चित्र को कहीं अगम्य स्थान में छिपा देने की जरूरत है।। मैथिली पाठ में इस प्रकार के परिवर्तन के कारण, जैसे विक्रमोर्वशीय एवं मालविकाग्निमित्र में पूर्वपरिणीता रानियों का संघर्ष देखा जाता है, वैसा इस (अपूर्व और नवीन कहे गये) अभिज्ञानशकुन्तल नाटक में भी देखने को मिलने लगता है।। जिससे अब समग्र कृति के अन्त में निर्बाध शृङ्गार का रसबोध होना मुश्किल हो जाता है। मैथिली

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

रंगकर्मियों ने किया रसविषयक यह परिवर्तन अनुगामी काल में सभी रंगकर्मियों ने अपना लिया है। इस सन्दर्भ में केवल काश्मीरी रंगावृत्ति का स्वरूप ही विशुद्ध एवं उत्कृष्ट सिद्ध होता है। उसमें पूर्वपरिणीता रानी, जिसका नाम कुलप्रभा है, उसके मन में न स्पर्धा है, न ईर्ष्याभाव है। अतः ऐसे काश्मीरी पाठ से ही कृति के अन्त में निर्बाध शृङ्गार का अनुभव हो सकता है।। [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक - 180 से 184, 186 से 190]

(8) मैथिली रंगकर्मियों ने विदूषक के मुख में कुछ नवीन उक्तियों का प्रक्षेप करके, उसके हास्यजनक प्रवर्तन में नया रंग चढ़ाया है। (क) राजा दुष्यन्त ने जब कहा कि मुझे इस चित्र में कृष्णमृग के नुकीले शृङ्ग पर, पास में खड़ी हरिणी अपना वाम नेत्र खुजला रही हो ऐसा आलिखित करना है। तब (काश्मीरी पाठ में) विदूषक स्वगत-उक्ति से बताता है कि मेरी दृष्टि में तो इस चित्रफलक को कूर्चालु तापसों से भर देना चाहिए। इस स्वगत-उक्ति को मैथिली रंगकर्मियों ने अपवार्य प्रकार की उक्ति बना ली है। (जिसके कारण दर्शकों की भी सहभागिता आमन्त्रित की जाती है।) (ख) जब राजा कहते हैं कि मैं इस अंगूठी को ही उपालम्भ देता हूँ। तब विदूषक भी राजा की नकल करता हुआ सस्मित कहने लगता है कि चलो, मैं भी मेरे इस काष्ठदण्ड को उपालम्भ देदूँ कि मैं इतना ऋजु आदमी हूँ, फिर भी तुम क्यूं इतने कुटिल हो?।। (काश्मीरी पाठ में ऐसी उक्ति नहीं थी।), (ग) राजा जब कहते है कि यह अंगूठी तो अचेतन थी, इस लिए उसने शकुन्तला का हाथ छोड़ दिया। लेकिन मैंने क्यूं उसकी अवधीरणा की?। तब विदूषक को राजा की ऐसी पश्चात्ताप भरी वाणी सुनने में कोई दिलचस्पी नहीं है। वह अपना भाग्य रोने लगता है कि राजा ऐसी बातें करते रहेंगे तो मैं तो निश्चित ही सर्वथा बुभुक्षा से मारा जाऊँगा। (काश्मीरी पाठ में ऐसी उक्ति भी नहीं मिलती है।)।। [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक - 128 एवं 131, तथा 156]

(9) मैथिली रंगकर्मियों ने मिश्रकेशी अप्सरा की रंगमंच से जो निवृत्ति निरूपित की है वह मामूली ढंग की है। एक ओर राजा मूर्छित स्थिति में पड़े है और दूसरी दिशा में खड़ी हुई मिश्रकेशी प्रेक्षकों को बताती है कि मैं ने शकुन्तला की जननी से सुना है कि यज्ञभागोत्सुक देवता ही उन दोनों का मिलन करवायेंगे। अतः मुझे इस मामले में दखल-अंदाजी नहीं करनी चाहिए। इतना बोल कर मिश्रकेशी उद्भ्रान्तक नृत्य के साथ रंगभूमि से निकल जाती है। मिश्रकेशी की इस तरह की निवृत्ति के सामने काश्मीरी रंगावृत्ति में जो योजना है, वह सही अर्थ में नाटकीय ढंग की है।। [सन्दर्भ–उक्ति-क्रमांक - 225]

(10) मैथिली रंगावृत्ति के पाठ में दो विसंगतियाँ भी दिख रही हैं। जैसे कि, (क) शकुन्तला का चित्रफलक लेकर विदूषक मेघछन्न प्रासाद पर चला जाता है। तब अमात्य पिशुन ने प्रतीहारी को एक पत्र लेकर रंगमंच पर भेजा था। उस पत्र में वर्णित धनवृद्धि वणिक् के वृत्तान्त को सुन कर राजा उद्विग्न होते हैं। तथा अपनी अनपत्यता के सन्दर्भ में मूर्च्छित भी होते हैं। अब लिपिकरी मेधाविनी राजा की मूर्च्छावस्था को देख कर, विदूषक को वापस बुलाने के लिए प्रतीहारी को भेजती है। प्रतीहारी रंगमंच से निष्क्रान्त हो जाती है। अब रंगमंच पर मेधाविनी और राजा दो पात्र ही हैं। ऐसी क्षणों में, मातलि के द्वारा पीडित विदूषक का आर्तस्वर नेपथ्य से सुनाई पड़ता है, जिससे मूर्च्छित राजा जागृत स्थिति में आते है। यहाँ पर, मेधाविनी ऐसी आशङ्का जताती है कि शकुन्तला का चित्रफलक लेकर जा रहे बेचारे विदूषक को शायद पिङ्गलिका ने पकड़ लिया होगा। इस आशङ्का को सुनते ही राजा ने मेधाविनी को आदेश दिया कि मेधाविनि, तुम रानी के पास जाओ, और मेरे वचनों से रानी को उपालम्भ दो कि तुम ने अपने परिजन (पिङ्गलिका) को क्यूं बे-लगाम बना रखा है?। यहाँ पर विचक्षण प्रेक्षक को प्रश्न होगा कि राजा दुष्यन्त मेधाविनी को रानी के पास भेजेंगे, तो क्या वहाँ पिङ्गलिका के हाथ से या रानी के हाथों से उसकी पिटाई नहीं होगी? क्योंकि मेधाविनी तो उन्हीं लोगों के हाथों से मुश्किल से छुट कर आयी थी। लेकिन

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

मैथिली पाठशोधकों के पास मेधाविनी को भेजने के अलावा कोई चारा ही नहीं था, क्योंकि प्रतीहारी को तो पहले से ही विदूषक को वापस ले आने के लिए मेधाविनी ने ही भेज दिया है[1]। इसके प्रतिपक्ष में, यानी काश्मीरी पाठ में, राजा प्रतीहारी को ही रानी को उपालम्भ देने के लिए भेजते है। अतः काश्मीरी पाठ में पूर्वोक्त विसंगति नहीं आती है। (ख) मैथिली रंगावृत्ति के पाठ में दूसरी विसंगति यह है कि राजा जब विदूषक को किसी अज्ञात व्यक्ति से छुड़वाने के लिए, "धनुस्तावत्"बोल कर अपना धनुष मांगते है तब प्रतीहारी आकर राजा के हाथों में धनुष देती है। यहाँ फिर से प्रश्न होता है कि प्रतीहारी को मेधाविनी ने विदूषक को वापस बुलाने के लिए भेजी थी, वह यहाँ राजा को धनुष देने के लिए कैसे आयेगी?। इसके प्रतिपक्ष में, यानी काश्मीरी पाठ में राजा को धनुष देने के लिए यवनी का रंगमंच पर प्रवेश होता है- ऐसा कहा गया है। इसमें कोई विसंगति नहीं है। (काश्मीरी पाठ के द्वितीयांक में कहा भी गया है कि, बाणासनहस्ताभिः यवनीभिः परिवृत्तः राजा प्रविशति। मैथिली पाठ में बाणासनहस्तो हृदयनिहितप्रियजनो वनपुष्पमालाधारी इत एव आगच्छति प्रियवयस्यः। ऐसा कहा गया है। यानी मैथिली रंगमंच पर यवनियाँ थी ही नहीं।)

॥ सप्तमोऽङ्कः॥

मैथिली वाचना में, सप्तमांक के पाठ में जो मंचनलक्षी परिवर्तन दिखाई रहे हैं, उसकी आलोचना करने का अवसर है। किसी भी नाटक के अन्तिम अंक में प्रायः परिवर्तन एवं प्रक्षेपादि की गुंजाइश कम होती है। तथा संस्कृत नाट्य-साहित्य में सुखान्त प्रकार के ही नाटक होने से अन्तिम दृश्य में ज्यादा परिवर्तन करने की सम्भावना भी कम रहती है। (शेक्सपियर के नाटक *ट्रेजडी ऑफ किंग लियर* में निरूपित करुणान्त को डॉ. ज्होन्सन ने सुखान्त में परिवर्तित किया था, और बाद में यूरोपिय साहित्यकारों ने उसको मूल रूप में पुनःप्रतिष्ठित (restoration) करके,फिर से दुःखान्त में स्थापित भी किया है। ऐसा सन्दर्भ शायद हमारे यहाँ देखने में नहीं आया है। हाँ, यह स्मरणीय बात है कि हिन्दी फिल्म-जगत् में श्री व्ही. शान्ताराम जैसे समर्थ दिग्दर्शक ने अभिज्ञानशाकुन्तल शीर्षक से ही बनाई फिल्म में शकुन्तला का नया ही अवतार किया है। तथा कालिदास की हरिणी स्वरूपा शकुन्तला का उन्होंने बहुत कलात्मक ढंग से अस्वीकार किया है।)लेकिन अभिज्ञानशकुन्तल के मैथिली पाठ का संग्रथन गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त-द्वितीय के समय (चौथी शताब्दी में) हुआ होगा ऐसा संस्कृत साहित्य के विविध सन्दर्भों से हमने अनुमान किया है। इस सन्दर्भ में कवि-प्रणीत भरत-वाक्य के पूर्व में, मैथिली-पाठ में रखे गये मंगल-आशंसा प्रदर्शित करनेवाले श्लोकों के पाठान्तरों की समीक्षा करनी होगी। क्योंकि यह नाटक जब चन्द्रगुप्त-2 के सामने खेला गया होगा तो उस शकारि राजा की वैदिक आस्था को दृढीभूत करने के लिए, या उसकी मंगल-कामना करते हुए मिथिला (मगध) के स्थानिक रंगकर्मियों ने कुछ विशेष प्रयास किया हो सकता है। काश्मीर की प्राचीनतम शारदा-पाठ-परम्परा में "क्रतुभिरुचितभागांस्त्वं सुरान् भावयालं, सुरपतिरपि वृष्ट्या त्वत्प्रजार्थं विधत्ताम्। इति समम् उपकार-व्यञ्जितश्रीमहिम्नो-र्व्रजति बहुतिथो वां सौहृदय्येन कालः॥ (7-35)" ऐसा श्लोक मिलता है। लेकिन मैथिली पाठपरम्परा में (1) इसी श्लोक में दो शब्दों में पाठभेद किये हैं। जैसे कि, भावयालम् के स्थान में प्रीणयालम् लिखा है। एवं सौहृदय्येन के स्थान में सौहृदेनैव लिखा है, (2) तथा एक नवीन श्लोक का प्रक्षेप किया है:-तव भवतु बिडौजाः प्राज्यवृष्टिः प्रजासु, त्वमपि विहितयज्ञो वज्रिणं प्रीणयालम्। गुरुतर-परिवृत्तैरेवम् अन्योन्यकृत्यै-र्नियतमुभयलोकानुग्रह-श्लाघनीयौ॥ (7-34), (3) तथा उस प्रक्षिप्त श्लोक को अग्रता-क्रम दे कर, क्रतुभिरुचित० श्लोक के उपर रखा है। ये तीन तरह के परिवर्तन मैथिली रंगकर्मियों ने किये हैं॥ लेकिन पाठालोचक देख सकता है कि मैथिल पाठ में दिये हुए इन दो श्लोकों में "प्रीणयालम्" ऐसा शब्द पुनरुक्त हो रहा है। तथा दोनों ही श्लोकों में यज्ञादि क्रिया से इन्द्र देवता को प्रसन्न करके वृष्टि की कामना की गई है। यानी एक ही विचार की भी इनमें पुनरुक्ति हो रही है। महाकवि कालिदास कभी पुनरुक्ति दोष नहीं करते हैं, एवञ्च नाटक जैसी समय की पाबन्दी वाली कला में तो बिना वजह की पुनरुक्ति असह्य ही होती है। जिससे सिद्ध होता है कि इन दो श्लोकों में से, कम से कम कोई एक श्लोक

1. इस तरह की विसंगति के लिए मूल कवि जिम्मेदार नहीं हो सकते, इसे तो हमें प्रादेशिक रंगकर्मियों की ही असावधानी कहना चाहिए। एवञ्च, यही विसंगति बंगाली पाठ भी में अनुसृत हुई है।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रक्षिप्त होगा ही। अब इन दोनों श्लोकों में से *क्रतुभिरुचितभागास्त्वम्०* श्लोक प्राचीनतम शारदा-पाण्डुलिपियों में उपलब्ध हो रहा है। इस तरह की प्राचीनतमता का दावा मैथिल पाठ का *तव भवतु बिडौजाः०* श्लोक नहीं कर सकता है। अतः, दूसरे विनिगमक प्रमाण के अभाव में, उसको प्रक्षिप्त मानना चाहिए।।

(1) मैथिल-पाठ में, सप्तमांक के आरम्भ में कोई प्रवेशक नहीं है। यानी काश्मीरी पाठ जैसा यहाँ नाकलासिका के नृत्य का दृश्य नहीं आता है।।

(2) सर्वदमन के हाथों से सिंहशावक को मुक्त करवाने के लिए आश्रम कन्याएँ खिलौना स्वरूप एक मृत्तिकामयूर ला कर देती है। इस प्रसंग में सुव्रता नामक प्रथमा तापसी के मुख में "सव्वदमण, पेक्ख सउन्तलावण्णं" ऐसी उक्ति है। जिसमें से (सभङ्ग श्लेष करने से) द्विविध अर्थों की प्रतीति उद्भूत होती है। वक्ता के मन में शकुन्त-लावण्य का अर्थ अभीष्ट था। लेकिन बालक के लिए माता से अधिक और कुछ ईप्सिततम नहीं होता है। अतः श्रोता के रूप में सर्वदमन के लिए शकुन्तला-वर्ण की अर्थाभिव्यक्ति होती है। बालक तो पूरे शब्द को सुनने का धैर्य नहीं रखता है, जब शकुन्तला ऐसी ध्वनिश्रेणी कर्णपटल में जाती है, तो तुरंत पूछता है कि कहाँ है मेरी माता?। दुष्मन्त ने यह जानना चाहा था कि इस बालक की माता का क्या नाम होगा? उसका उत्तर तो उपर्युक्त उक्ति से झंकृत हुए बालक को देखते मिल जाता है। लेकिन यहाँ प्रश्न होता है कि क्या स्वयं कालिदास ने यह उक्ति लिखी होगी?, या फिर मैथिली रंगकर्मियों की प्रतिभा का यह सर्जन होगा?। ऐसा प्रश्न इस लिए हो रहा है कि काश्मीरी पाठ में इस प्रसंग में, सुव्रता तासपी के मुख में ऐसी उक्ति नहीं है। इस स्थान में भी हमारे पास अन्तिम निर्णय करने का असंदिग्ध प्रमाण नहीं है। दोनों तरह की उक्तियाँ जब संचरित पाठ में चली आ रही है, तब कालिदास का महिमा को दृढीभूत करते चलें, या फिर मिथिला के स्थानिक रंगकर्मियों की कला-प्रतिभा को हम दाद दें - यही एक सवाल हमारे लिए खड़ा होता है।। [सन्दर्भ-उक्ति-क्रमांक - 86]

(3) मैथिली पाठ के सप्तमांक के पाठ का तुलनात्मक अभ्यास करने से मालूम होता है कि कतिपय संवाद-वाक्यों में विशदीकरण के आशय से विस्तार भी किया गया है। जैसे कि, (1) शकुन्तला का दुष्यन्त के साथ समागम हो गया है, एवं उसने उसका स्वीकार भी कर लिया है - इसकी जानकारी कण्व मुनि को भेजने के लिए काश्मीरी पाठ में, मारीच की उक्ति है: *"तथाप्यसौ प्रियमस्माभिः श्रावयितव्यः। कः कोऽत्र भोः।"* उसके प्रतिपक्ष में, मैथिली पाठ में लिखा है कि- *"तथापि दुहितुः सपुत्राया भर्त्रा परिग्रहः प्रियतमोऽस्माभिः कण्वः श्रावयितव्यः। कः कोऽत्र भोः।"* यहाँ काश्मीरी पाठ में जिस कथयितव्य को "प्रियम्" ऐसे एक ही शब्द से व्यक्त किया है, उसीको मिथिला के रंगकर्मियों ने अतिविस्तार से कहने का उपक्रम किया है। कण्व के लिए "प्रियतमः" ऐसा विशेषण भी अनावश्यकतया दाखिल किया है। (2) उसी तरह से, काश्मीरी पाठ में, दुष्यन्त की एक उक्ति है: *"इमाम् आज्ञाकरीं वो गान्धर्वेण विवाहविधिनोपयम्य कस्यचित् कालस्य बन्धुभिरानीतां स्मृतिशैथिल्यात्, प्रत्यादिशन्नपराद्धोऽस्मि तत्रभवतः कण्वस्य।"* इसके सामने मैथिल पाठ का वाक्य देखिए:- *"इमामाज्ञाकरीं वो गान्धर्वेण विधिनोपयम्य कस्यचित् कालस्य बन्धुभिरानीतां स्मृतिदौर्बल्यात् प्रत्यादिशन्नपराद्धोऽस्मि तत्रभवतो युष्मत्सगोत्रस्य कण्वस्य।"* इसमें भी मैथिली पाठ में कण्व के लिए, युष्मत्सगोत्रस्य ऐसा एक अधिक शब्द प्रक्षिप्त किया है, वह साफ देखा जा सकता है।। [सन्दर्भ-उक्ति-क्रमांक -162 एवं180]

(4) काश्मीरी की अपेक्षा से मैथिली रंगावृत्ति में कुत्रचित् अधिक श्रद्धेय पाठ सुरक्षित रहा है ऐसा दिखता है। दुष्यन्त और शकुन्तला का मारीच ऋषि के आश्रम में जब समागम होता है तब शकुन्तला अपने पति का "जयतु जयतु आर्यपुत्रः..." शब्दों से अभिवादन करते समय गद्गदित हो जाती है। यहाँ (1) दुष्यन्त के मुख में निम्नोक्त श्लोक रखा गया है:- *बाष्पेण प्रतिषिद्धेऽपि जयशब्दे जितं मया। यत्ते दृष्टम् असंस्कार-पाटलौ (लो)ष्ठमिदं मुखम्।।* (7-24) किन्तु इस श्लोक के सामने मैथिली पाठ में लिखा है कि:- *बाष्पेण प्रतिषिद्धेऽपि जयशब्दे जितं मया। यत्ते दृष्टम् असंस्काराल् लोलालकमिदं मुखम्।।* (7-23) इन में से काश्मीरी पाठ कहता है कि शकुन्तला के

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अधरोष्ठ पाटल वर्ण का संस्कार किये बिना का, (लालिमा लगाये बिना का) है। उसके प्रतिपक्ष में मैथिली पाठ में कहा गया है कि शकुन्तला ने अपने बालों को नहीं संवारा थे और इसी लिए वे ऐसे वैसे लोलायित थे, हिल रहे थे। ऐसे केशों की चञ्चलतावाला उसका मुख था।। मूलकवि के लिए इस प्रसंग में चिर-विरहिणी स्त्री का चित्र खींचने का उपक्रम है। इस बात को ध्यान में लेंगे, तो काश्मीरी पाठ की अपेक्षा से मैथिली पाठ अधिक सन्दर्भोचित प्रतीत होता है। (2) तथा इस श्लोक के उपरि भाग में, शकुन्तला की जो उक्ति है वे भी दोनों ही पाठों में कैसी है, वह तुलनीय है। काश्मीरी पाठ में, जयतु जयतु आर्यपुत्रः शब्दों से शकुन्तला दुष्यन्त का अभिवादन करती है, उसकी तुलना में मैथिली पाठ में जयतु... इतना केवल एक शब्द ही है। तो इन दोनों में से मैथिली पाठ ही प्रकृत सन्दर्भ में सटीक सिद्ध होता है। यहाँ काश्मीरी पाठ अयथार्थ लगता है।। [सन्दर्भ-उक्ति-क्रमांक -119 एवं 120]

(5) मैथिल पाठ के भरतवाक्य की प्रस्तुति के विषय में एक विशेष कल्पना करने का मन होता है। क्योंकि सामान्यतया सभी संस्कृत नाटकों के भरतवाक्य के बाद नाटक समाप्त हो जाता है। यानी उसके बाद किसी भी पात्र की कोई उक्ति नहीं होती है। लेकिन, केवल मैथिल पाठ में भरतवाक्य के बाद, मारीच की एक उक्ति है:-एवमस्तु। इसको पढ़ कर ऐसी कल्पना की जाती है कि मिथिला के रंगमंच पर इस दृश्य की प्रस्तुति के समय नटसमूह अर्ध-वर्तुलाकार में खड़ा रह कर भरतवाक्य का गान करेगा, परन्तु उसी समय मारीच ऋषि का आसन मध्य भाग में, कोई ऊँची वेदिका बना कर, रखा जायेगा, जहाँ से वे अन्त में, "एवमस्तु" जैसे शब्द बोलेंगे।। इस तरह से मिथिला के रंगमंच पर भरतवाक्य की प्रस्तुति अलग ढंग से की जाती होगी॥

।।इति शिवम्।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ अभिज्ञानशकुन्तलम्[1]॥

(मैथिल-वाचनानुसारी पाठः)

।।प्रथमोऽङ्कः।।

या स्रष्टुः सृष्टिराद्या वहति[2] विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रसन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः॥1- 1॥ [1]

[नान्द्यन्ते]

सूत्रधारः- अलमतिविस्तरेण[3]। आर्ये! यदि नेपथ्यविधानमवसितं तदिहागम्यताम्। [2]

नटी- (प्रविश्य)अज्ज! इअं म्हि। आणवेदु अज्जो को णिओओ अणुचिट्ठीअदु त्ति। (आर्य, इयमस्मि। आज्ञापयतु अद्य को नियोग अनुष्ठीयताम्।) [3]

सूत्रधारः- आर्ये! रसभावविशेषदीक्षागुरोः श्रीविक्रमादित्यस्य साहसाङ्क[4]स्याभिरूपभूयिष्ठा परिषत्।
अस्यां च श्रीकालिदासग्रथितवस्तुनाऽ-भिज्ञानशकुन्तल-नाम्ना[5] नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभिः।
तत्प्रतिपात्रम् आधीयतां यत्नः। [4]

नटी- सुविहिदप्पओअदाए अज्जस्स ण किं पि परिहासइस्सदि। (सुविहितप्रयोगतया आर्यस्य न कोऽपि परिहासयिष्यति।) [5]

सूत्रधारः- (सस्मितम्) कथयामि ते भूतार्थम्।

आ परितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः॥ 1 - 2॥ [6]

नटी- एवं णेदं। अणन्तरकरणिज्जं दाणि आणवेदु अज्जो। (एवं नु एतत्। अनन्तरकरणीयमिदानीम् आज्ञापयत्वार्यः।) [7]

सूत्रधारः- आर्ये किमन्यदस्याः परिषदः श्रुतिप्रसादहेतोर्गीतादनन्तरं करणीयमस्ति। [8]

नटी- कदरं उण समअं समस्सइअ गाइस्सं। (कतमं पुनः समयं समाश्रित्य गास्यामि।) [9]

सूत्रधारः- नन्विममेव तावन्नातिचिरप्रवृत्त-सुखोपभोगक्षमं ग्रीष्मसमयमाश्रित्य गीयताम्। सम्प्रति हि-

सुभगसलिलावगाहाः पाटलिसंसर्गसुरभिवनवाताः।
प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः॥ 1 - 3॥ [10]

---

1. काश्मीर-पाठे "अभिज्ञानशकुन्तले" ति शीर्षकम्।, मैथिल-रंगकर्मिभिस्तत् परिवर्तितम्।
2. काश्मीर-पाठे "पिबती" ति पठ्यते।, अन्तिमे च पादे "नः" इति काश्मीर-पाठः।
3. काश्मीर-शारदापाठे नास्तीदं वाक्यम्।, मै.-पाठे कथमिदं वाक्यं समागतमिति ज्ञातुं द्रष्टव्यं पञ्चमं परिशिष्टम्।
4. समुद्रगुप्तपुत्रस्य चन्द्रगुप्त-द्वितीयस्य कृते साहसाङ्केति शब्दः प्रयुज्यते स्म। स चोज्जयिनीमपि विजीत्य स्वस्य कृते विक्रमादित्य इत्यपि नामान्तरं प्रयुक्तवान्। तस्य राजसभायामस्य नाटकस्य मैथिलपाठानुसारी नाट्यप्रयोगः समायोजितः स्यादिति प्रतीयते। अतो मैथिलरंगावृत्तेः कालः चतुर्थशताब्दः स्यादित्यप्यनुमीयते।।
5. काश्मीर-पाठे "नवेने" ति विशेषणं प्रयुक्तं दृश्यते।, केवलं मैथिल-पाठाद् दूरीकृतोऽयं शब्दः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

नटी- (गायति)

खणचुम्बिआइँ भमरेहिँ उअह सुउमारकेसरसिहाइँ।
अवअंसअन्ति सदअं सिरीसकुसुमाइँ। पमआओ।।[1] 1 – 4।।

क्षणचुम्बितानि भ्रमरैः ऊहत[2] **सुकुमारकेसरशिखानि।**
अवतंसयन्ति सदयं शिरीषकुसुमानि प्रमदाः।। 1 – 4।। [11]

सूत्रधारः- आर्ये! साधु गीतम्। असौ हि रागापहृतचित्तवृत्तिरालिखित इवाभाति सर्वतो रङ्गः। तत् कतमं प्रयोगम्[3] आश्रित्यैनमाराधयामः। [12]

नटी- णं पढुमं जेव अज्जेण आणत्तं जधा अहिण्णाणसउन्तलं[4] अहिरूअं[5] णाडअं अहिणीअदु त्ति। (ननु प्रथममेवार्येण आज्ञप्तं यथा अभिज्ञानशकुन्तलम् अभिरूपनाटकम् अभिनीयतामिति।) [13]

सूत्रधारः- आर्ये! सम्यगवबोधितोऽस्मि। अस्मिन् क्षणे विस्मृतं[6] खलु मयैतत्। कुतः-

तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः।
एष राजेव दुःष्मन्तः[7] **सारङ्गेणातिरंहसा।।** 1 – 5।। [14]

(इति निष्क्रान्तौ)

(प्रस्तावना)

(ततः प्रविशति मृगमनुसरन् सशरचापहस्तो रथारूढो राजा सूतश्च।) [15]

सूतः- (समन्तादवलोक्य[8]) आयुष्मन्! पश्य, पश्य –

कृष्णसारे ददच्चक्षुस्त्वयि चाधिज्यकार्मुके।
मृगानुसारिणं साक्षात्पश्यामीव पिनाकिनम्।। 1 –6।। [16]

राजा- सूत! दूरममुना सारङ्गेण वयमाकृष्टाः। सोऽयमिदानीम्-

ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने दत्तदृष्टिः
पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम्।
शष्पैरर्द्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतत्वाद्वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति।। 1 – 7।। [17]

(सविस्मयम्) कथमनुपतत एव मे प्रयत्नप्रेक्षणीयः संवृत्तः। [18]

सूतः- आयुष्मन्! उत्खातिनी भूमिरियमिति रश्मिसंयमनाद्रथस्य मन्दीभूतो वेगः। तेन मृग एष विप्रकृष्टान्तरः संवृत्तः। सम्प्रति हि समदेशवर्ती न ते दुरासदो भविष्यति। [18]

---

1. मैथिल-पाठे गाथेयं पथ्या-आर्याऽस्ति। किन्तु द्वितीय-चतुर्थ-गणयोर्मात्राभङ्गो भवति। तत्रानुनासिकयोरुच्चारणवेलायां लयपरिवर्तनेन वा कदाचिन्मात्राभङ्गस्य दोषो निवारयितुं शक्यः स्यात्।
2. ऊहत पश्यतेति शङ्करः रसचन्द्रिकायाम्। (पृ. 165), (उअ पश्य/हेम. 8.2.211) काश्मीर-पाठे "सुअअ" इति।
3. काश्मीर-पाठे कतमत् प्रकरणमिति पठ्यते।
4. काश्मीर-पाठे "अभिज्ञानशकुन्तला" इति शीर्षकं पठ्यते।
5. काश्मीर-पाठे "अपूर्वमि"ति द्वितीयं विशेषणमपि प्रयुज्यते। मैथिल-पाठे तस्याप्यभावो वर्तते।
6. आत्मविस्मरणव्याजेन वर्णनीयवस्तुस्वरूपसूचनीयमेवोपमयाहेति शङ्करः। (पृ. 166)
7. नायकस्य नाम दुष्मन्त इति मैथिलपाठः। एतच्च भ्रष्टशब्दोच्चारणं स्थानीयनटानां प्रतिभाति।
8. काश्मीर-पाठे "राजानं मृगं चावलोक्य" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- तेन हि विमुच्यन्तामभीषवः। [19]

सूतः- यथाज्ञापयत्यायुष्मान्। (भूयो रथवेगं रूपयित्वा) आयुष्मन्, पश्य,पश्य। एते हि-

मुक्तेषु रश्मिषु निरायतपूर्वकायाः
स्वेषामपि प्रसरतां रजसामलङ्घ्याः।
निष्कम्पचामरशिखाश्च्युतकर्णभङ्गा
धावन्ति वर्त्मनि तरन्ति नु वाजिनस्ते॥ 1 -8॥ [20]

राजा- (सहर्षम्) सूत! कथमतीत्य हरिणं हरयो वर्तन्ते। तथा हि-

यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद्विपुलतां
यदर्द्धे विच्छिन्नं भवति कृतसन्धानमिव तत्।
प्रकृत्या यद्वक्रं तदपि समरेखं नयनयो-
र्न मे दूरे किञ्चित्क्षणमपि न पार्श्वे रथरयात्॥ 1 -9॥ [21]

(नेपथ्ये)

भो भो राजन्! आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः। [22]

सूतः - (आकर्ण्यावलोक्य च) आयुष्मन्, अस्य खलु ते बाणपातसमवर्तिनः कृष्णसारस्या[1]न्तरे तपस्विनोऽवस्थिताः। [23]

राजा- (ससम्भ्रमम्) तेन हि निगृह्यन्तामभीषवः। [24]

सूतः- तथा। (इति रथं स्थापयति।) [25]

(ततः प्रविशत्यात्मना द्वितीय[2]स्तापसः।) [26]

तापसः- (हस्तमुद्यम्य) राजन्! आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः।

न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्
मृदुनि मृगशरीरे पुष्पराशाविवाग्निः।
क्व बत हरिणकानां जीवितं चातिलोलं
क्व च निशितनिपाताः सारपुङ्खाः शरास्ते[3]॥ 1 -10॥ [27]

तदाशु कृतसंधानं प्रतिसंहर सायकम्।
आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्त्तुमनागसि॥ 1 -11॥ [28]

राजा- एष प्रतिसंहृतः। (इति यथोक्तं करोति) [29]

तापसः- (सहर्षम्) सदृशमेवैतत् पुरुवंशजातस्य नरेन्द्रप्रदीपस्य[4] भवतः। सर्वथा चक्रवर्तिनं पुत्रम् अवाप्नुहि। [30]

राजा- (सप्रणामम्) गृहीतं ब्राह्मणवचनमस्माभिः। [31]

तापसः- समिदाहरणाय प्रस्थितावावाम्। एष चास्मद्गुरोः कण्वस्य साधिदैवत इव शकुन्तलया[5] अनुमालिनीतीरे आश्रमो

---

1. काश्मीर-पाठे "कृष्णसारङ्गस्ये"ति पठ्यते।
2. काश्मीर-शारदापाठे तापसेन सह द्वौ शिष्यौ वर्तेते। अत्रैक एव शिष्यः। किन्तु सोऽपि निष्क्रिय एव।
3. प्रक्षिप्तोऽयं श्लोकः, पुनरुक्तिदोषग्रस्तत्वाद्। (हस्तमुद्यम्येति रंगसूचनया यदा "आश्रममृगोऽयम्, न हन्तव्यो, न हन्तव्य" इत्यादेशात्मकेन वाक्येनोच्यते तदेव पर्याप्तमासीत्। एवञ्च, तस्यानुसन्धानं "तदाशु कृतसन्धानम्" इत्यनेनैव श्लोकेन सह संगच्छते।)
4. काश्मीर-पाठे शब्दोऽयं नास्ति।
5. दर्शकानां पक्षे शकुन्तलायाः परिचयं झटित्येव स्यादिति विचार्य मैथिल-रंगकर्मिभिरेते शब्दाः प्रक्षिप्ताः स्युः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

दृश्यते। न चेदन्यकार्यातिपातस्तदा प्रविश्य गृह्यतामतिथिसत्कारः। [32]

अपि च-

धर्म्यास्तपोधनानां प्रतिहतविघ्नाः क्रियाः समभिवीक्ष्य।
ज्ञास्यसि कियद् भुजो मे रक्षति मौर्वीकिणाङ्क इति॥ 1 -12॥ [33]

राजा- अथ सन्निहितोऽत्र कुलपतिः?। [34]

तापसः- इदानीमेवानवद्यां दुहितरमतिथिसत्कारायादिश्य दैवमस्याः प्रतिकूलं शमयितुं सोमतीर्थं प्रति[1] गतः। [35]

राजा- यद्येवं द्रक्ष्यामि ताम्। सैव विदितभक्तिर्मां मुनये निवेदयिष्यति। [36]

तापसः- एवं भवतु। साधयावस्तावत्। [37]

(इति सशिष्यो निष्क्रान्तः) [38]

राजा- सूत! प्रेरयाश्वान्। पुण्याश्रमदर्शनप्रसङ्गेनात्मानं पुनीमहे। [39]

सूतः - यथाज्ञापयत्यायुष्मान्। (भूयो रथवेगं सूचयति) [40]

राजा- (समन्तादवलोक्य) सूत! अकथितोऽपि ज्ञायते यथायम् आभोगस्तपोवनस्य। [41]

सूतः- कथमिव?। [42]

राजा- किं न पश्यसि? इह हि-

नीवाराः शुककोटरार्भकमुख[2] भ्रष्टास्तरूणामधः
प्रस्निग्धाः क्वचिदिङ्गुदीफलभिदः सूच्यन्त एवोपलाः।
विश्वासोपगमादभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगा-
स्तोयाधारपथाश्च वल्कलशिखानिष्यन्दलेखाङ्किताः॥ 1 -13॥ [43]

अपि च -

कुल्याम्भोभिः प्रसृतिचपलैः[3] शाखिनो धौतमूला
भिन्नो रागः किसलयरुचामाज्यधूमोद्गमेन।
एते चार्वागुपवनभुवि छिन्नदर्भाङ्कुरायां
नष्टाशङ्का हरिणशिशवो मन्दमन्दं चरन्ति॥ 1 -14॥ [44]

सूतः- सर्वमुपपन्नम्। [45]

राजा- (स्तोकमन्तरं गत्वा) सूत, आश्रमोपरोधो मा भूत् तदिहैव रथं स्थापय, यावदहमवतरामि। [46]

सूतः- धृताः प्रग्रहाः। अवतरत्वायुष्मान्। [47]

राजा- (अवतीर्यात्मानमवलोक्य च) सूत, विनीतवेशप्रवेश्यानि तपोवनानि। तदिमानि तावद् गृह्यन्तामाभरणानि धनुश्च।

---

1. काश्मीर-पाठे प्रभासमिति शब्दः। (प्रभासपत्तनं नाम तीर्थक्षेत्रं गुजरातप्रदेशे सोमनाथसमीपे वर्तते।)
2. काश्मीर-पाठे "शुकगर्भकोटरमुख०" इति पठ्यते।
3. काश्मीर-पाठे "प्रसृतचपलैरि" ति।
4. काश्मीर-पाठ "इति सूतायाभरणं दत्त्वा, धनुश्चोत्सृज्ये"ति रंगसूचना।
5. काश्मीर-पाठे "यावदहमुपास्य महर्षीन् उपावर्त" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(इति सूतायोपनयति[4]।) सूत, यावदाश्रमवासिनः प्रेक्ष्य निवर्तिष्ये[5] तावदार्द्रपृष्ठाः क्रियन्तां वाजिनः। [48]

सूतः- यथाज्ञापयत्यायुष्मान्। (इति निष्क्रान्तः) [49]

राजा- (परिक्रम्यावलोक्य च) इदमाश्रमपदम्। यावत्प्रविशामि। (प्रविष्टकेन निमित्तं सूचयित्वा) अये-

शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहुः कुतः फलमिहास्ति।
अथवा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र॥ 1 -15॥ [50]

(नेपथ्ये)

इदो इदो पिअसहीओ। (इत इतः प्रियसख्यौ[1]।) [51]

राजा- (आकर्ण्य) अये दक्षिणेन वृक्षवाटिकाया आलाप इव श्रूयते। तद् भवतु अवगच्छामि। (तथा कृत्वा परिक्रम्यावलोक्य च) अये, एतास्तपस्विकन्यकाः स्वप्रमाणानुरूपैः सेचनघटैर्बालपादपेभ्यः पयो दातुमित एवाभिवर्त्तन्ते। अहो मधुरमासां[2] दर्शनम्। [52]

शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनो यदि जनस्य।
दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः[3]॥ 1 -16॥ [53]

यावदेनां छायामाश्रितः प्रतिपालयामि। (इति विलोकयन् स्थितः।) [54]

(ततः प्रविशति यथोक्तव्यापारा सह सखीभ्यां शकुन्तला) [55]

एका- हला सउन्तले! तवावि सआसादो तादकण्णस्स अस्समरुक्खका पिअ त्ति तक्केमि, जेण णोमालिआ कुसुमपरिपेलवा वि तुमं एदेसुं आलवालपूरणेसुं णिउत्ता। (हला शकुन्तले, तवापि सकाशात् तातकण्वस्य आश्रमवृक्षकाः प्रिया इति तर्कयामि। येन नवमालिका कुसुमपरिपेलवापि त्वाम् आलवालपूरणेषु नियुक्ता।) [56]

शकुन्तला- हला ण केवलं तादकण्णस्स णिओओ ममावि एदेसुं सहोदरसिणेहो। (हला, न केवलं तातकण्वस्य नियोगः, ममापि एतेषु सहोदरस्नेहः।) [57]

(इति वृक्षसेचनं नाटयति) [58]

द्वितीया- सहि सउन्तले! उदअं लम्भिदा एदे गिम्हआलकुसुमदाइणो रुक्खका। दाणिं अदिक्कन्तदिअसेवि रुक्खके सिञ्चम्ह। तेण हि णो अणहिसन्धी गरुओ धम्मो भविस्सदि। (सखि शकुन्तले, उदकं लम्भिताः एते ग्रीष्मकालकुसुमदायिनः वृक्षकाः। इदानीमतिक्रान्तसमयेऽपि वृक्षके सिञ्चामः। तेन हि नोऽनभिसन्धिगुरुको धर्मो भविष्यति।) [60]

शकुन्तला- हला पिअम्वदे! रमणीअं मन्तेसि[4]। (इति भूयो वृक्षसेचनं नाटयति[5]) [61]

(हला प्रियंवदे, रमणीयं मन्त्रयसि।)

राजा- (निर्वर्ण्य सकौतुकम्) कथमियं सा कण्वदुहिता शकुन्तला। अहो असाधुदर्शी तत्रभवान् कण्वः, य इमां वल्कलधारणे नियुङ्क्ते। [62]

इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति

---

1. का.-पाठे "प्रियसखी" त्येकवचनम्।, मैथिल-रंगभूमौ नेपथ्यतः शकुन्तलैव सखीद्वयमाह्वयतीति सूच्यते।
2. काश्मीर-शारदापाठे "अहो माधुर्यकान्तं खलु दर्शनमासाम्" इति पाठभेदो वर्तते।
3. काश्मीर-पाठाद् भिन्नक्रमेणायं श्लोकः समुपस्थापितः, मैथिल-पाठे प्रदत्तः क्रमः समीचीनः प्रतिभाति।
4. काश्मीर-पाठे "अहिणन्दणीअं मन्तेधी" ति।
5. काश्मीर-पाठे "नाट्येन सिञ्चती" ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

ध्रूवं स नीलोत्पलपत्रधारया शमीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति॥ 1 -17॥ [63]

भवतु, पादपान्तरित एवैनां विश्वस्तां पश्यामि। (इत्यपवार्य स्थितः) [64]

शकुन्तला- हला, अणुसूए! अदिपिणद्धेण एदिणा वक्कलेण पिअंवदाए पीडिदम्हि। ता सिढिलेहि दाव णं। (अनुसूया शिथिलयति) (हला अनुसूये, अतिपिनद्धेन एतेन वल्कलेन प्रियंवदया पीडितास्मि। तत् शिथिलय तावदेतत्।) [65]

प्रियंवदा- (विहस्य) एत्थ दाव पओहरवित्थारइत्तकं अत्तणो जोव्वणारम्भं उवालहस्स। (अत्र तावत् पयोधरविस्तारयितृकम् आत्मनो यौवनमुपालभस्व।) [66]

राजा- सम्यगियमाह प्रियंवदा।

इदमुपहितसूक्ष्मग्रन्थिना स्कन्धदेशे
स्तनयुगपरिणाहाच्छादिना वल्कलेन।
वपुरभिनवमस्याः पुष्यति स्वां न शोभां
कुसुममिव पिनद्धं पाण्डुपत्रोदरेण[1]॥ 1 -18॥ [67]

अथवा, काममप्रतिम रूपमस्य वयसो वल्कलं न पुनरलङ्कारशोभां न पुष्यति। कुतः-

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्॥1 -19॥ [68]

शकुन्तला - (अग्रतोऽवलोक्य) सही एस वादेरिदपल्लवङ्गुलीहिं किं पि वाहरदि विअ मं चूअरुक्खओ[2]। ता जाव णं सम्भावेमि। (तथा करोति) (सखि, एष वातेरितपल्लवाङ्गुलिभिः किमपि व्याहरतीव माम् चूतवृक्षकः। तत् यावत् एनम् सम्भावयामि।) [69]

प्रियंवदा- हला सउन्तले! इध ज्जेव मुहुत्तअं चिट्ठ। (हला शकुन्तले, इहैव मुहूर्तकम् तिष्ठ।) [70]

शकुन्तला- किं णिमित्तम्। (किं निमित्तम्।) [71]

प्रियंवदा- तए समीवट्ठिदाए लदासणाहो विअ मे अअं पडिभादि चूअरुक्खओ। (त्वया समीपस्थितया लतासनाथ इव मे अयं प्रतिभाति चूतवृक्षकः।) [72]

शकुन्तला- अदो ज्जेव तुमं पिअंवदे त्ति वुच्चसि। (अत एव त्वम् प्रियंवदेति उच्यसे।) [73]

राजा- अवितथमाह प्रियंवदा, तथा ह्यस्याः-

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम्॥ 1 -20॥ [74]

अनसूया- हला सउन्तले! इअं सअंवरवहू सहआरस्स तए किदणामधेआ वणदोसिणी णोमालिआ। (हला शकुन्तले, इयं स्वयंवरवधूः[3] सहकारस्य त्वया कृतनामधेया वनतोषिणी[4] नवमालिका। [75]

---

1. काश्मीर-पाठे श्लोकोऽयं संक्षेपीकरणाशयेन केनापि रंगकर्मिणा निष्कासितः स्यात्।
2. काश्मीर-पाठे बकुलवृक्षः शकुन्तलामाह्वयति, न तु चूतवृक्षः।
3. सहकारस्य नवमालिकायाश्च व्यतिकरं दृष्ट्वात्र यः स्वयंवरवधूरिति शब्दः प्रयुज्यते, तेन दुष्यन्त-शकुन्तलयो-रपि परिणयप्रसंगो भविष्यतीति व्यज्यते। अतो माधवीलतामधिकृत्य वक्ष्यमाणस्य संलापस्य नास्त्यावश्यकते-त्यवधेयम्।
4. का.-पाठे वनतोषिण इति विशेषणं सहकारस्य वर्तते।, मैथिल-पाठे तदेव नवमालिकाया विशेषणत्वेन स्त्रीलिङ्गे प्रयुज्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला- (उपगम्यावलोक्य च) हला रमणीएकाले इमस्स पादवमिहुणस्स वइअरो संवुत्तो। इअं णवकुसुमजोव्वणा णोमालिआ, अअं पि बद्धफलदाए उअभोअक्खमो सहआरो। (हला, रमणीये काले अस्य पादपमिथुनस्य व्यतिकरः संवृत्तः। इयं नवकुसुमयौवना नवमालिका, अयमपि बद्धफलतया उपभोगक्षमः सहकारः।)

(इति पश्यन्ती तिष्ठति) [76]

प्रियंवदा- (सस्मितम्) अणुसूए! जाणासि किंणिमित्तं सउन्तला वणदोसिणिं अदिमेत्तं पेक्खदि।
(अनुसूये, जानासि किं निमित्तं शकुन्तला वनतोषिणीम् अतिमात्रं प्रेक्षते।) [77]

अनुसूया- ण क्खु विभावेमि। (न खलु विभावयामि।) [78]

प्रियंवदा- जधा वणदोसिणी सरिसेण पादवेण सङ्गदा णोमालिआ, अवि णाम एवं अहं पि अत्तणो अणुरूअं वरं लहेअ त्ति।
(यथा वनतोषिणी सदृशेन पादपेन संगता नवमालिका, अपि नाम एवम् अहमपि आत्मनोऽनुरूपं वरं लभेय इति।) [79]

शकुन्तला- एस दे अत्तणो चित्तगदो मणोरहो। (एष ते आत्मनः चित्तगतो मनोरथः।) [80]

(इति कलशमावर्जयति[1]) [81]

अनुसूया- हला सउन्तले! इअं तादकण्णेण तुमं विअ सहत्थसंवड्ढिदा माहवीलदा। (हला शकुन्तले, इयं तातकण्वेन त्वमिव स्वहस्तसंवर्द्धिता माधवीलता[2]।) [82], इमं विसुमरिदासि। (इयं विस्मृतासि।) [83]

शकुन्तला- अहं अत्ताणं पि तदो विसुमरिस्सं। [84] (लतामुपेत्यावलोक्य च सहर्षम्) [85]
अच्छरीअं अच्छरीअं पिअंवदे। पिअं दे णिवेदेमि।
(अहमात्मानमपि तदा विस्मरिष्यामि। आश्चर्यम्, आश्चर्यम् प्रियंवदे। प्रियं ते निवेदयामि।) [86]

प्रियंवदा- सहि किं मे पिअं। (सखि, किं मे प्रियम्।) [87]

शकुन्तला- असमए क्खु एसा आ मूलादो मउलिदा माहवीलदा। (असमये खलु एषा आमूलाद् मुकुलिता माधवीलता।) [88]

उभे- (सत्वरमुपगम्य) सहि, सच्चम्। (सखि, सत्यम्।) [89]

शकुन्तला- किं ण पेक्खध। (किं न प्रेक्षेथे।) [90]

प्रियंवदा- (निरूप्य सहर्षम्) तेण अहं दे पिअं णिवेदेमि। आसण्णपाणिग्गहणा दाणि सि तुमं।
(तेन अहं ते प्रियं निवेदयामि। आसन्नपाणिग्रहणा इदानीम् असि त्वम्।) [91]

शकुन्तला- (सासूयम्) णूणं तव दे अत्तगदो मणोरहो। (नूनं तव ते आत्मगतो मनोरथः।) [92]

प्रियंवदा- ण क्खु ण क्खु परिहासेण मन्तेमि। सुदं मए एवं तादकण्णस्स मुखादो तव कल्लाणसूअअं इअं णिमित्तं ति।
(न खलु न खलु परिहासेन मन्त्रयामि। श्रुतं मया एवं तातकण्वस्य मुखात् तव कल्याणसूचकमिदम् निमित्तम्[3]।) [93]

अनुसूया- हला पिअंवदे अदो ज्जेव ससिणेहा सउन्तला माहवीलदं सिञ्चदि। (हला प्रियंवदे, अतः एव सस्नेहा शकुन्तला माधवीलतां सिञ्चति।) [94]

---

1. अत्र 81 एवं 96 उक्तिक्रमांके स्थितया रंगसूचनया कलशस्यावर्जनं द्विवारं कथ्यते। तन्न संगतं प्रतिभाति।
2. अत्र 82 तः आरभ्य 95 पर्यन्तो भागः मैथिलरंगकर्मिणां प्रक्षेप इति प्रतिभाति, सिद्ध्यति च।
3. डॉ. दिलीपकुमार कांजीलालस्य मतेन माधवीलतामुद्दिश्य प्रवर्तितोऽयं संलापः (उच्चतरसमीक्षया) मूलगामी भवितुमर्हति। किन्तु तन्न समीचीनम्। यतो हि, 1. पिता कण्वस्तु स्वकीयकन्याया दुरितशमनार्थं सोमतीर्थं प्रति प्रस्थित इति पूर्वमेवोक्तम्। 2. पिता यदि शकुन्तलायाः कल्याणसूचकं निमित्तं जानाति स्म, तर्हि तैः केवलायै प्रियंवदायायेव कथितम्, नान्येभ्य इति प्रश्नद्वयं जागर्ति। नास्त्यस्य कोऽपि समाधिः। अतः प्रक्षिप्तोऽयं भागः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला- जदो मे बहिणिआ भोदि तदो किं ण सिञ्चिस्सं। (यतो मे भगिनी भवति, ततः किं न सिञ्चिष्यामि।) [95]

(इति कलशमावर्जयति[1]) [96]

राजा- अपि नाम कुलपतेरियमसवर्णक्षेत्रसम्भवा भवेत्। अथवा कृतं सन्देहेन-

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः।
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः॥ 1 -21॥ [97]

तथापि तत्त्वत एनाम् उपलप्स्ये[2]। [98]

शकुन्तला- (ससंभ्रमम्) अम्मो सलिलसेअसंभन्तो णोमालिअं उज्झिअ वअणं मे महुअरो अहिभोदि[3]।

(अम्मो, सलिलसेकसम्भ्रान्तो नवमालिकाम् उज्झित्य वदनं मे मधुकरोऽभिभवति। [99]

(इति भ्रमरबाधां रूपयति) [100]

राजा- (सस्पृहम्)

यतो यतः षट्चरणोऽभिवर्त्तते ततस्ततः प्रेरितवामलोचना।
विवर्तितभ्रूरियमद्य शिक्षते भयादकामापि हि दृष्टिविभ्रमम्॥ 1 -22॥ [101]

अपि च- (सासूयमिव)

चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचरः।
करं[4] व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं
वयं तत्त्वान्वेषान्[5] मधुकर हतास्त्वं खलु कृती॥ 1 -23॥ [102]

शकुन्तला- हला, परित्ताअध परित्ताअध मं इमिणा दुट्ठमहुअरेण[6] अहिहूयमाणिं। (हला, परित्रायध्वम् परित्रायध्वम् मामनेन दुष्टमधुकरेण अभिभूयमानाम्।)। [103]

उभे- (सस्मितम्) का अम्हे परित्ताणे। एत्थ दाव दुस्सन्तं अक्कन्द। जदो राअरक्खिदाइं तवोवणाइं।

(के आवाम् परित्राणे। अत्र तावत् दुष्मन्तम् आक्रन्द। यतो राजरक्षितव्यानि तपोवनानि।)। [104]

राजा- अवसरः खल्वयमस्माकमात्मानमुपदर्शयितुम्। न भेतव्यं न भेतव्यम्। (इत्युर्धोक्तेऽपवार्य)

एवं राजाहमस्मीति प्रतिज्ञातं भवति। भवतु, अतिथिसत्कारमवलम्बिष्ये[7]। [105]

शकुन्तला- ण एसो दुव्विणीदो[8] विरमदि। ता अण्णदो गमिस्सं। (पादान्तरेण सदृष्टि-विक्षेपम्) हद्धी हद्धी कधं इदो वि मं अनुसरदि। ता परित्ताअध मं। (न एषो दुर्विनीतो विरमति। तस्माद् अन्यतो गमिष्यामि। हा धिक्। कथम् इतोऽपि

---

1. काश्मीर-पाठेऽपीयमेव रंगसूचना वर्तते। तेनानुमीयते यन्मैथिल-बंगीय-पाठावपि काश्मीर-रंगावृत्तितः समुद्भूताविति।
2. काश्मीर-पाठे "वेदितुमिच्छामी" ति पठ्यते।
3. माधवीलतासम्बन्धी निखिलोऽपि संवादः प्रक्षेप एवेति संसूचयति भ्रमरबाधायाः समयः। नवमालिकायाः मूले जलसिञ्चनं प्रथमं कृतम्। तत्पश्चात् माधवीलतायाः संलापः प्रवर्तते, ततो कथं विलम्बेन नवमालिकातः भ्रमरः समागच्छति शकुन्तलाया वदने? इति समयसंगतिर्नोपपद्यते। (रंगकर्मिणामेवायं नूतनसंवादावतारः प्रतीयते)
4. काश्मीर-पाठे "कर्णान्तिकगतः। करौ॰" इति। अर्थात् शकुन्तलाया हस्ते जलसिञ्चनाय गृहीतो घटः नास्ति।
5. काश्मीर-शारदापाठे "वयं देवैर्मौग्ध्यान्॰" इति संप्राप्यते।
6. काश्मीर-पाठे "कुसुमपाटच्चरेणे"ति पठ्यते।
7. काश्मीर-पाठे "अतिथिसमुचिताचारसत्कारम्॰" इति।
8. काश्मीर-पाठे "अतिधृष्टः" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

माम् अनुसरति। तर्हि परित्रायध्वं माम्।) [106]

राजा- (सत्वरमुपगम्य) आः-

कः पौरवे वसुमतीं[1] शासति शासितरि दुर्विनीतानाम्।
अयमाचरत्यविनयं मुग्धासु तपस्विकन्यासु॥ 1 -24॥ [107]

(सर्वा राजानं दृष्ट्वा किञ्चिदिव सम्भ्रान्ताः) [108]

सख्यौ[2] - अज्ज ण किं पि अच्चाहिदं। इअं णो पिअसही महुअरेण आउलीकिअमाणा कादरीभूदा। (आर्य, न किमप्यत्याहितम्। इयं नः प्रियसखी मधुकरेण आकुलीक्रियमाणा कातरीभूता।) (इति शकुन्तलां दर्शयतः)। [109]

राजा- (शकुन्तलामुपगम्य) अयि तपो वर्धते[3]। (शकुन्तला ससाध्वसाऽधोमुखी[4] तिष्ठति।) [110]

अनुसूया- इदाणिं अदिधिविसेसलम्भेण। (इदानीम् अतिथिविशेषलाभेन।) [111]

प्रियंवदा- साअदं अज्जस्स। हला सउन्तले गच्छ, उडआदो फलमिस्सं अग्घं उवाहर। इदं पि पादोदअं भविस्सदि[5]। (स्वागतम् आर्यस्य। हला शकुन्तले, गच्छ। उटजात् फलमिश्रम् अर्घ्यम् उपाहर। इदमपि पादोदकं भविष्यति।) [112]

राजा- भवति, सूनृतेन वचसा[6] कृतमातिथ्यम्। [113]

अनुसूया- अस्सिं दाव पच्छाअसीअलाए सत्तवण्णवेदिआए उअविसिअ अज्जो परिस्समं अवणेदु।
(अस्यां तावत् प्रच्छायशीतलायां सप्तपर्णवेदिकायामुपविश्य आर्य परिश्रममपनयतु।) [114]

राजा- ननु यूयमप्यनेन कर्मणा परिश्रान्ताः, तन्मुहूर्तमुपविशत। [115]

प्रियंवदा- (जनान्तिकम्) हला सउन्तले, उइदं णो अदिधिपज्जुपासणं। ता एहि। उवविसम्ह। (हला, शकुन्तले, उचितं नः अतिथिपर्युपासनम्। तस्मादेहि, उपविशामः) (सर्वा उपविशन्ति) [116]

शकुन्तला- (आत्मगतम्) किं णु क्खु इमं जणं पेक्खिअ तवोवणविरोहिणो विआरस्स गमणीअ म्हि संवृत्ता। (किं नु खलु इमं जनं प्रेक्ष्य तपोवनविरोधिनो विकारस्य गमनीयास्मि संवृत्ता।) [117]

राजा- (सर्वा अवलोक्य) अहो समानवयो रमणीयं सौहार्दमत्रभवतीनाम्। [118]

प्रियंवदा- (जनान्तिकम्) हला अणुसूए, को एसो चडुलगम्भीराकिदी[7] महुरं आलवन्तो पहुत्तदक्खिण्णं विण्णावेदि?। (हला अनुसूये, क एष चटुलगम्भीराकृतिः मधुरमालपन्तो प्रभूतदाक्षिण्यं विज्ञापयति।)। [119]

अनुसूया- हला, ममावि कोदूहलं पुच्छिदुं दाव णं। (प्रकाशम्) अज्जस्स महुरा-लावजणिदो वीस्सम्भो मं मन्तावेदि- कदरो उण वण्णो अज्जेण अलंकरीअदि। कदमो वा पदेसो विरहपज्जुसुओ करीअदि[8]। किंणिमित्तं अज्जेण कुसुमसुउमारेण अप्पा तवोवणपरिस्समस्स उअणीदो[9]त्ति। (हला ममापि कौतुहलम्, प्रक्ष्यामि तावदेनाम्। आर्यस्य मधुरालापजनितो

---

1. श्लोकेऽस्मिन् प्रयुक्तं "वसुमतीम्" इति शब्दं दृष्ट्वानुमीयते यत् काश्मीर-पाठे वर्तमानं राज्ञो दुष्यन्तस्य पूर्वपरिणीतायाः "कुलप्रभे"ति नामैव मूलगामि स्याद्। वसुमतीति महादेव्या नाम नैव भवितुमर्हति।
2. केवलं मैथिल-पाठ एवेयमुक्तिः सखिद्वयेनोच्चार्यते। (अतः "शकुन्तलां दर्शयतः" इति रंगसूचना।)
3. काश्मीर-पाठे "भवति, अपि तपस्ते वर्धते" इति।
4. काश्मीर-पाठे "ससाध्वसावनतमुखी अवचना तिष्ठती"ति रंगसूचना।
5. काश्मीर-पाठे "अत्थि य्येव" इति।
6. काश्मीर-पाठे "भवतु, सुनृतयैव वाचा" इति।
7. काश्मीर-पाठे "महुरगम्भीराकिदी" इति।
8. काश्मीर-पाठे प्रश्नोऽयं नासीत्।
9. काश्मीर-पाठे "सुउमारेण अय्येण तवोवणागमणपरिसमस्स अत्ता पत्थिकिदो" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

विश्रम्भो मां मन्त्रयते। कतरः पुनः वर्ण आर्येण अलंक्रियते। कतरो वा प्रदेशो विरहपर्युत्सुकः क्रियते। किं निमित्तम् आर्येण कुसुमसुकुमारेण आत्मा तपोवनपरिश्रमस्य उपनीत इति।)। [120]

शकुन्तला- (आत्मगतम्) हिअअ मा उत्तम्म। जं तए चिन्तिदं तं अणुसूआ मन्तेदि। (हृदय, मा उत्ताम्य। यत् त्वया चिन्तितं, तद् अनुसूया मन्त्रयते।) [121]

राजा- (स्वगतम्[1]) कथमिदानीमात्मानं दर्शयामि, कथं वात्मनः परिहारं करोमि?। भवत्वेवं तावत्। (प्रकाशम्) भवति, वेदविदस्मि राज्ञः पौरवस्य नगराद्धर्माधिकारे नियुक्तः। पुण्याश्रमदर्शनप्रसङ्गेन[2] धर्मारण्यमिदमायातः। [122]

अनुसूया- सणाधा धम्मआरिणो। (सनाथा धर्मचारिणः) (शकुन्तला शृङ्गारलज्जां रूपयति।) [123]

सख्यौ- (उभयोराकारं विदित्वा जनान्तिकम्) हला सउन्तले, जइ अज्ज तादो सण्णिहिदो भवे। (हला शकुन्तले, यदि अद्य तात संनिहितो भवेद्।)। [124]

शकुन्तला- [3]तदो किं भवे?। (ततः किं भवेद्।) [125]

सख्यौ- जीविदसव्वस्सेणावि इमं जणं अदिधिविसेसं कदत्थं करेदि। (जीवितसर्वस्वेनापि इमं जनम् अतिथिविशेषं कृतार्थम् कुर्यात्।)। [126]

शकुन्तला- अवेध। किं पि हिअए कदुअ मन्तेध। ण वो वअणं सुणिस्सं। (अपेत। किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रयेथाम्। न युवयोः वचनं श्रोष्यामि[4]।)। [127]

राजा- वयमपि भवत्यौ सखीजनगतं किमपि पृच्छामः। [128]

सख्यौ- अज्ज, अणुग्गहे वि अब्भत्थणा?। (आर्य, अनुग्रहेऽपि अभ्यर्थना।) [129]

राजा- तत्र भवान्कण्वः शाश्वते ब्रह्मणि वर्त्तते। इयं च वः सखी तस्यात्मजेति कथमेतत्?। [130]

अनुसूया- सुणादु अज्जो। अत्थि कोसिओ त्ति गोत्तणामधेओ महपहावो राएसी। (शृणोतु आर्यः, अस्ति कौशिक इति गोत्रनामधेयो महाप्रभावो राजर्षिः।) [131]

राजा - प्रकाशस्तत्रभवान् कौशिकः। [132]

अनुसूया- तं सहीए पहवं अवगच्छ। उज्झिदसरीरसंवड्ढणाए उण तादकण्णो से पिदा। (तं सख्याः प्रभवमवगच्छ। उज्झितशरीसंवर्द्धनायाः[5] पुनः तातकण्वोऽस्याः पिताः।)। [133]

राजा- उज्झित शब्देन जनितं नः कुतूहलम्। तदामूलात् श्रोतुमिच्छामः। [134]

अनुसूया- सुणादु अज्जो। पुरा किल तस्स राएसिणो उग्गे तवसि वत्तमाणस्स कहिं कहिं पि[6] जादसङ्केहिं देवेहिं मेणआ णाम अच्छरा णिअमविग्घआरिणी पेसिदा। (शृणोतु आर्यः। पुरा किल तस्य राजर्षेरुग्रे तपसि वर्तमानस्य कथं कथमपि जातशङ्कैर्देवैर्मेनका नामाप्सरा नियमविघ्नकारिणी प्रेषिता।)। [135]

---

1. स्वगतोक्तिरियं कदाचिन्मौलिकी न स्यात्। नाट्यशास्त्रे (25-88) केवलमात्मगतमित्यस्यैव विधानात्।
2. काश्मीर-पाठे "आश्रमिणामविघ्नक्रियोपलम्भाय" इति।, किन्तु मै.-पाठ एव पूर्वापरसंगतिः सिध्यति।
3. काश्मीर-पाठेऽत्रास्त्येका रंगसूचना "सभ्रूभेदमि"ति। (मैथिल-बंगीय-पाठयोर्नास्ति सा।)
4. काश्मीर-पाठे "सरोषमि"ति रंगसूचनया समारब्धं वाक्यमन्ते "परावृत्य तिष्ठती"ति रंगसूचनया समाप्यते।
5. काश्मीर-पाठे "०संरक्षणादिभिः" इति।
6. काश्मीर-पाठे "किं वि" (किमपि) इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- अस्त्येतदन्यसमाधिभीरुत्वं देवानाम्। ततस्ततः। [136]

अनुसूया[1]- तदो वसन्तोदाररमणीए समए उन्मादइत्तकं ताए रूअं पेक्खिअ। (इत्योर्धोक्तेन लज्जां रूपयति) (ततो वसन्तोदाररमणीये समये उन्मादयितृकं तस्याः रूपं प्रेक्ष्य...।)। [137]

राजा- पुरस्तादवगम्यत एव। सर्वथा अप्सरःसम्भवैषा। [138]

अनुसूया- अध इं। (अथ किम्।) [139]

राजा- उपपद्यते-

मानुषीषु कथं नु स्यादस्य रूपस्य संभवः।
न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्।। 1 -25।। [140]

(शकुन्तला सव्रीडा[2]ऽधोमुखी तिष्ठति) [141]

राजा- (आत्मगतम्) हन्त, लब्धावकाशो मे मनोरथः। किं तु परिहासोदारं वरप्रार्थनमस्याः श्रुत्वापि व्रतद्वैतकातरं मे मनः। [142]

प्रियंवदा- (सस्मितम् शकुन्तलां विलोक्य नायकाभिमुखी भूत्वा) पुणो वि वत्तुकामो विअ अज्जो लक्खीअदि। (पुनरपि वक्तुकाम इव आर्य लक्ष्यते।) [143]

(शकुन्तला सखीमङ्गुल्या तर्जयति) [144]

राजा- सम्यगुपलक्षितं भवत्या। अस्ति नः सच्चरितश्रवणलोभादन्यदपि प्रष्टव्यम्। [145]

प्रियंवदा- तेण हि अविआरणिज्जन्तणणिओओ[3] क्खु तवस्सिअणो। (तेन हि, अविचारनियन्त्रणनियोगः खलु तपस्विजनः।)। [146]

राजा- एतत्पृच्छामि-

वैखानसं किमनया व्रतमा प्रदानाद्
व्यापाररोधि मदनस्य निषेवितव्यम्।
अत्यन्तमेव सदृशे[4] क्षणवल्लभाभि-
राहो निवत्स्यति समं हरिणाङ्गनाभिः।। 1-26।। [147]

प्रियंवदा- अज्ज, धम्माचरणपरव्वसो एसो जणो। गुरुणो उण अणुरूअवरप्पदाणे संकप्पो। (आर्य, धर्माचरणपरवश एषो जनः। गुरोः पुनरनुरूपवरप्रदाने संकल्पः।) [148]

राजा - [5](सहर्षमात्मगतम्)

भव हृदय साभिलाषं सम्प्रति सन्देहनिर्णयो जातः।
आशङ्कसे यदग्निं तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नम्।। 1 -27।। [149]

शकुन्तला- (सरोषमिव) अणुसूए, गमिस्सं। (अनुसूये, गमिष्यामि।)। [150]

---

1. अत्र टीकाकारः शङ्करः अनुसूयायाः स्थाने द्वे सख्यौ वदत इति पाठं स्वीकरोति। (पृ.187), तच्च रंगकर्मिणां प्रयोगवैचित्र्यमासीदिति सूचयति।
2. काश्मीर-पाठे शब्दोऽयं नास्ति।
3. काश्मीर-पाठे "नियन्त्रणायुक्तः" इति।
4. काश्मीर-पाठे "अत्यन्तमात्मसदृशे०" इति।
5. काश्मीर-पाठे "न खलु दुर्लभैषा प्रार्थने"त्यधिकं पठ्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अनुसूया- किंणिमित्तं?। (किं निमित्तम्।)। [151]

शकुन्तला- इअं असंबद्धप्पलाविणि पिअंवदा। अज्जाए गोदमीए गदुअ णिवेदइस्सं। (इयमसम्बद्धप्रलापिनी प्रियंवदा। आर्यायै गौतम्यै गत्वा निवेदयिष्यामि।)। (इत्युत्तिष्ठति) [152]

अनुसूया- सहि , ण जुत्तं अस्समवासिणो जणस्स अकिदसक्कारं अदिधिविसेसं उज्झिअ सच्छन्दतो गमनं। (सखि, न युक्तम् आश्रमवासिनो जनस्याकृतसत्कारम् अतिथिविशेषम् उज्झित्य स्वच्छन्दतो गमनम्।)। [153]

(शकुन्तला उत्तरमदत्त्वैव प्रस्थिता) [154]

राजा- (अपवार्य) कथं गच्छति?। (इत्युत्थाय जिघृक्षुरिवेच्छां[1] निगृह्य) अहो चेष्टाप्रतिरूपिणी कामिजनमनोवृत्तिः[2]। अहं हि-

अनुयास्यन्मुनितनयां सहसा विनयेन वारितप्रसरः।
स्वस्थानादचलन्नपि गत्वेव[3] पुनः प्रतिनिवृत्तः॥ 1-28॥ [155]

प्रियंवदा- (शकुन्तलामुपेत्य) हला चण्डि, न लब्भसि गन्तुं। (हला चण्डि, न लभ्यते गन्तुम्[4]।) [156]

शकुन्तला- (परावृत्य सभ्रूभङ्गम्) किं ति?। (किमिति)। [157]

प्रियंवदा- दुवे मे रुक्खसेअणं धारेसि। तहिं दाव अत्ताणअं मोआवेहि। तदो गमिस्ससि। (इति बलान् निवर्तयति[5]) (द्वे मे वृक्षसेचने धारयसि। ताभ्यां तावदात्मानं मोचय। ततो गमिष्यसि।) [158]

राजा- भवति , वृक्षसेचनादेवात्रभवतीं परिश्रान्तां तर्कयामि[6]। तथा ह्यस्याः-

स्रस्तांसावतिमात्रलोहिततलौ बाहू घटोत्क्षेपणा-
दद्यापि स्तनवेपथुं जनयति श्वासः प्रमाणाधिकः।
बद्धं कर्णशिरीषरोधि वदने घर्माम्भसा जालकं
बन्धे स्रंसिनि चैकहस्तयमिताः पर्याकुलाः कुन्तलाः।[7] 1-29॥ [159]

तदहमेनामनृणां करोमि। (इत्यङ्गुरीयकं ददाति।,उभे प्रतिगृह्य नामाक्षराण्यनुवाच्य[8] परस्परम् अवलोकयतः।) [160]

राजा- अलमन्यथा सम्भावनया। राजप्रतिग्रहोऽयमिति। [161]

प्रियंवदा[9]- तेण हि णारिहदि अज्जो अङ्गुरीअअविओअं। अज्जस्स वअणेण ज्जेव अणिणा भोदु। (तेन हि, नार्हति आर्य अङ्गुरीयकवियोगम्। आर्यस्य वचनेनैव अनृणा भवतु।)। [162]

अनुसूया[10] - हला सउन्तले, मोआविदासि अणुकम्पिणा अज्जेण (स्वगतम्[11]) अहवा महाराएण। (प्रकाशम्) ता कदत्था

---

1. काश्मीर-पाठे "ग्रहीतुमिच्छन् पुनरात्मानमि"ति पठ्यते।
2. काश्मीर-बंगीय-पाठयोः "चेष्टाप्रतिरूपिका कामिनो मनोवृत्तिरि"ति।
3. काश्मीर-पाठे "स्थानाद् अनुच्चलन्नपि गत्वैवे"ति।
4. काश्मीर-पाठे "न ते युक्तं गन्तुम्" इति।
5. काश्मीर-पाठे "निवारयती"ति। (आङ्गिकाभिनये भेदो भविष्यति)
6. काश्मीर-पाठे "लक्षय" इति पठ्यते।
7. काश्मीर-पाठे "०लोहितकरौ", "घर्माम्भसाम्", एवं "मूर्धजाः" इति पठ्यन्ते।
8. काश्मीर.-पाठे "०प्रतिगृह्य"ति शब्दो नास्ति।
9. अत्रापि टीकाकारः शङ्करः प्रियंवदायाः स्थाने उभे (सख्यौ) वदत इति पाठं स्वीकरोति। (पृ.190), तच्च रंगकर्मिणां प्रयोगवैचित्र्यमासीदिति सूचयति।
10. काश्मीर-पाठ इयमुक्तिः प्रियंवदायाः। मैथिल-रंगकर्मिभिरियमनुसूयाया मुखे स्थापिता, शब्दान्तरिता च।
11. टीकाकारोऽत्र जनान्तिकमिति पठति। "जनान्तिकं तत्कर्तव्यं त्रिपताकाकरेण तु"। मंचनसन्दर्भोऽत्र ध्येयः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

दाणि सि तुमं। (हला शकुन्तले, मोचितासि अनुकम्पिना आर्येण। अथवा, महाराजेन। तस्मात् कृतार्था इदानीमसि त्वम्।)। [163]

शकुन्तला- (आत्मगतम्) ण एदं विसुमरिस्सं जइ अत्तणो पहवे। (नेदं विस्मरिष्यामि, यदि आत्मनः प्रभवामि।)। [164]

प्रियंवदा- किं दाणि ण गच्छसि?। (किमिदानीं न गच्छसि।)। [165]

शकुन्तला- इदाणिं पि किं तव आअत्त म्हि? जदा मे रोअदि, तदा गमिस्सं। (इदानीमपि किं तवायत्तास्मि। यदा मे रोचते, तदा गमिष्यामि।[1])। [166]

राजा- (शकुन्तलां विलोकयन्नात्मगतम्) किं नु यथा वयमस्यामेवमियस्मान्प्रति स्यात्? अथवा लब्धावकाशा मे मनोवृत्तिः। कुतः-

वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः कर्णं ददात्यवहिता मयि भाषमाणे।
कामं न तिष्ठति मदाननसम्मुखीयं भूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्याः॥ 1-30॥ [167]

(नेपथ्ये)

[<भो भोस्तपस्विनः तपोवनसन्निहिताः! सत्त्वरक्षायै सज्जीभवन्तु भवन्तः। प्रत्यासन्नः किल मृगयाविहारी राजा दुष्मन्तः। [168]

तुरगखुरहतस्तथा हि रेणुर्विटपनिषक्त[2] जलार्द्रवल्कलेषु।
पतति परिणतारुणप्रकाशः शलभसमूह इवाश्रमद्रुमेषु॥ 1 -31॥ [169]

राजा- (स्वगतम्) धिक्कष्टम्, कथं मदन्वेषिणः सैनिकास्तपोवनमुपरुन्धन्ति?। [170]

(पुनर्नेपथ्ये) >][3]

भो भोस्तपस्विनः। पर्याकुलयन् स्त्रीवृद्धकुमारानेष हस्ती सम्प्राप्तः। [171]

तीव्राघातादभिमुखतरुस्कन्धभग्नैकदन्तः
प्रौढाकृष्टव्रततिवलयासञ्जनाज्जातपाशः।
मूर्तो विघ्नस्तपस इव नो भिन्नसारङ्गयूथो
धर्मारण्यं विरुजति गजः स्यन्दनालोकभीतः[4]॥ 1-32॥ [172]

(सर्वाः कर्णं दत्त्वा ससंभ्रममुत्तिष्ठन्ति) [173]

राजा- धिक्कथमपराद्धस्तपस्विनामस्मि। भवतु, प्रतिगच्छामि तावत्। [174]

सख्यौ- महाभाअ, इमिणा हत्थिसंभमेण पज्जाउल म्ह। ता अणुजाणीहि णो उडअगमणेण। (महाभाग, अनेन हस्तिसंभ्रमेण पर्याकुला स्मः। तस्माद् अनुजानीहि नः उटजगमनाय[5]।)। [175]

---

1. अत्र 163 इत्यत आरभ्य 166 पर्यन्ता उक्तयः काश्मीरी-पाठेन, बंगीय-पाठेन च तुलनीयाः। वक्तृ-भेदेन काकु-भेदेन च प्रस्तुतिः सर्वत्र भिन्नैव। येन च सर्वेषां पाठानां रंगावृत्तित्वं सिध्यति।
2. काश्मीरी-पाठे "०विषक्त०" इति।
3. कोष्ठान्तर्गतः पाठ्यांशः प्रक्षिप्तः स्यात्। आश्रममृगोऽयमिति वैखानसवचनं श्रुत्वा राज्ञा बाणस्य संहरणं कृतमिति पूर्वमेवोक्तम्। अतः सत्त्वरक्षायै संनिहिता भवन्त्वित्यादिकं विसंगतमेव।
4. काश्मीर-पाठे "तीव्रापातप्रतिहत०", द्वितीये च पादे "प्रौढासक्तव्रततिवलयासङ्गसञ्जातपाशः" इति।, काश्मीर-पाठे मंचनभेदाय तीव्राघातेति श्लोको राज्ञो मुखे वर्तते।
5. काश्मीर-पाठे "अनसूया" भणति, एवं च "अक्कन्दिदेण" इति पाठभेदः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अनुसूया- हला सउन्तले, पज्जाउला अज्जा गोदमी भविस्सदि। ता एहि सिग्घं एकत्था होम्ह। (हला शकुन्तले, पर्याकुला आर्या गौतमी भविष्यति। तस्माच्छीघ्रमेकस्था भवामः।)। [176]

शकुन्तला- (गतिरोधं रूपयित्वा) हद्धी हद्धी ऊरुत्थम्भविअल म्हि संवुत्ता। (हा धिक्, हा धिक्, ऊरुस्तम्भविकलास्मि संवृत्ता।)। [177]

राजा- स्वैरं स्वैरं गच्छन्तु भवत्यः। आश्रमबाधा यथा न भवति तथाहं यतिष्ये। [178]

सख्यौ- महाभाअ, अविदिदभूइट्ठो सि। णं सम्पदं जं उअआरमज्झत्थदाए अवरद्ध म्ह, तं दाणि मरिसेसि।

असंभाविअसक्कारं भूओ वि पज्जवेक्खणणिमित्तं सपरिहारं अज्जं विण्णवेम्ह। (महाभाग, अविदित भूयिष्ठोऽसि। ननु साम्प्रतं यदुपचारमध्यस्थतया अपराद्धा स्मः। तदिदानीं मर्षयिष्यसि।

असंभावितसत्कारं भूयोऽपि पर्यवेक्षणनिमित्तं सपरिहारमार्यं विज्ञापयामः।)। [180]

राजा- मैवम्। दर्शनेनैव भवतीनां संभृतसत्कारोऽस्मि।[1] [181]

शकुन्तला- अहिणव-कुस-सूइ-परिक्खदं मे चरणं, कुरुवअसाहापरिलग्गं च मे वक्कलं। ता पलिवालेध मं जाव णं मोआवेमि।[2] (अभिनवकुशसूचिपरिक्षतं मम चरणं, कुरबकशाखापरिलग्नं च मे वल्कलम्। तस्मात् परिपालयत मां यावदेनं मोचयामि।)। [182]

(राजानमवलोकयन्ती सह सखीभ्यां निष्क्रान्ता) [183]

राजा- (निःश्वस्य) गताः सर्वाः। भवतु, अहमपि गच्छामि। शकुन्तलादर्शनादेव मन्दौत्सुक्योऽस्मि नगरगमनं प्रति। यावदनुयात्रिकानतिदूरे तपोवनस्य निवेशयामि। न खलु समर्थोऽस्मि शकुन्तलाव्यापारादात्मानं निवर्तयितुम्। [184] कुतः?-

गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चाद् असंस्थितं चेतः।
चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य[3]।। 1 -33।। [185]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे[4])

[आखेटको नाम प्रथमोऽङ्कः[5]] [186]

---

1. मैथिल-पाठे वर्तमानाः 176 तः 181 पर्यन्ता उक्तयः समुचिताः प्रतिभान्ति, किन्तु काश्मीर-पाठे ता विपर्यस्ताः सन्तीति प्रतीयते। रंगकर्मिभिर्लाघवार्थमेतादृशं कृतं स्यादित्यपि प्रतीयते।
2. यद्यपि काश्मीर-पाठे शकुन्तलया विलम्बनाया"ऽभिनवकुशसूचिपरिक्षतमि"त्यादि द्वितीयं व्याजं नोपन्यस्तम्। संक्षेपीकरणस्याशयेन केनापि तद् दूरीकृतं स्यादित्यपि संभाव्यते।
3. काश्मीर-पाठे"ऽसंवृतमि"ति।
4. काश्मीर-पाठे "चिह्नांशुकमिवे"ति।
5. काश्मीर-पाठे प्रत्येकानाम् अङ्कानां पृथङ् नामानि न प्रदीयन्ते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

।।द्वितीयोऽङ्कः।।

(ततः प्रविशति विदूषकः)

विदूषकः – (निःश्वस्य) हीमाणहे[1], भो हदम्हि। एतस्स मिअआसीलस्स रण्णो वअस्सभावेण निव्विण्णो। अअं मिओ अअं वराहो त्ति मज्झंदिणे वि गिम्हे विरलपादवच्छाआसुं वणराइसुं आहिण्डीअदि। पत्तसङ्करकसाअविरसाइं पिज्जन्ति गिरिणइए सलिलाइं। अणिअदवेलं च सोण्हमंसभूइट्ठं अत्तीअदि। तुरअगआणं च सद्देण रत्तिं पि णीसंकं सुविदुं णत्थि। महन्ते ज्जेव पच्चूसे दासीए पुत्तेहिं साउणिअलुद्धेहिं कण्णोवघादिणा वणगमणकोलाहलेण पबोधीआमि। एत्तिकेणावि ण मे पीडा पज्जत्ता। जदो गण्डस्स उअरि इअं विप्फोडिआ संवुत्ता। तदो सव्वेसुं किल अम्हेसुं ओहीणेसुं तत्थभवदा मिआणुसारिणा अस्समपदं पविट्ठेण मम अधण्णदाए सउन्तला णाम का वि तवस्सिकण्णआ दिट्ठा। तं पेक्खिअ संपदं णअरगमणस्स कधं पि ण करेदि। एदं जेव चिन्तअन्तस्स अज्ज उण सच्चं मम अधण्णाए पुत्तस्स[2] अच्छीसुं पभादा रअणी। का गदी? जाव णं किदाचारं पिअवअस्सं पेक्खामि। (उपसृत्यावलोक्य च) एस बाणासणहत्थो हिअअणिहिदपिअअमो वणपुप्फमालाधारी[3] इदो ज्जेव आअच्छदि पिअवअस्सो। भोदु, अङ्गभङ्गविअलो भविअ चिट्ठिस्सं। एवं पि णाम विस्सामं लहेअं ति। (हीमाणहे, भो हतोऽस्मि। एतस्य मृगयाशीलस्य राज्ञो वयस्यभावेन निर्विण्णः। अयं मृगः अयं वराह इति मध्यंदिनेऽपि ग्रीष्मपादपच्छायासु वनराजिषु आहिण्ड्यते। पत्रसंकरकषायविरसानि पीयन्ते गिरिनद्या जलानि। अनियतवेलं च सोष्णमांसभूयिष्ठम् अद्यते। तुरगगजानां च शब्देन रात्रावपि निःशङ्कं स्वपितं नास्ति। महत्येव प्रत्यूषे दास्याः पुत्रैः शाकुनिकलुब्धैः कर्णोपघातिना वनगमनकोलाहलेन प्रबोध्ये। एतावतापि न मे पीडा पर्यन्ता। यतो गण्डस्य उपरि इयं विस्फोटिका संवृत्ता। ततः सर्वेषु किल अस्मासु अवहीनेषु तत्रभवता मृगानुसारिणा आश्रमपदं प्रविष्टेन, ममाधन्यतया शकुन्तला नाम कापि तपस्विकन्यका दृष्टा। तां प्रेक्ष्य साम्प्रतं नगरगमनस्य कथामपि न करोति। एतदेव चिन्तयतः अद्य पुनः सत्यं मम अधन्यायाः पुत्रस्य अक्ष्णोः प्रभाता रजनी। का गतिः। यावदेनं कृताचारं प्रियवयस्यं प्रेक्षे।।) एष बाणासनहस्तो हृदयनिहितप्रियजनो वनपुष्पमालाधारी इत एवागच्छति प्रियवयस्यः। भवतु, अङ्गभङ्गविकलो भूत्वा स्थास्यामि। एवमपि नाम विश्रामं लभेयमिति। [1]

(इति दण्डकाष्ठमवलम्ब्य स्थितः) [2]

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो[4] राजा) [3]

राजा – (निःश्वस्य, आत्मगतम्)

कामं प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भावदर्शनाश्वासि।
अकृतार्थेऽपि मनसिजे रतिरुभयप्रार्थना कुरुते।। 2-1।। [4]

(स्मितं कृत्वा) एवमात्माभिप्रायसम्भावितेष्टजनचित्तवृत्तिः प्रार्थयिता विप्रलभ्यते। [5]

कुतः:-

स्निग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि नयने यत्प्रेरयन्त्या तया
यातं यच्च नितम्बयोर्गुरुतया मन्दं विलासादिव।

---

1. हीमाणहे शब्दोऽव्ययं प्राकृते खेदे। यदाह भरतः "हीमाणहे भये खेदे"।
2. मैथिल-पाठे विदूषकः स्वस्य कृते शब्दोऽयं प्रयोजयति। अन्यत्र न दृश्यते शब्दोऽयम्।
3. मैथिल-पाठे यवनीनां निर्देशः निष्कासितः। हृदयनिहितप्रियजन इति राज्ञो विशेषणं प्रक्षिप्तं प्रतीयते।
4. मैथिल-पाठे यवनीनां निष्कासनं कृतम्, अतः "यथानिर्दिष्टपरिवारो राजा" इति न लिखितम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

मा मा इत्युपरुद्धया यदपि तत्सासूयमुक्ता सखी
सर्वं तत्किल मत्परायणमहो कामः स्वतां पश्यति॥ 2-2॥ [6]

विदूषकः- (तथा स्थित एव) भो महाराअ, ण मे हत्थो पसरदि। वाआमेत्तकेण जआवीअसि। (भो महाभाग, न मे हस्तः प्रसरति। वाचामात्रकेण जाप्यसे।) [7]

राजा- (विलोक्य सस्मितम्) कुतोऽयं गात्रोपघातः?। [8]

विदूषकः- कुदो किल। सअं जेव अच्छिं आउलीकदुअ अस्सुकारणं पुच्छसि?। (कुतः किल। स्वयमेव अक्षि आकुलीकृत्य अश्रुकारणं पृच्छसि।) [9]

राजा- न खल्ववगच्छामि। भिन्नार्थमभिधीयताम्। [10]

विदूषकः- जं वेदसो कुज्जअस्स लीलं विडम्बेदि, तं किल अत्तणो पहावेण अध णदीवेअस्स?।[1] (यत् वेतसः कुब्जस्य लीलां विडम्बयति, तत् किम् आत्मनः प्रभावेण, अथ नदीवेगस्य।) [11]

राजा- नदीवेगस्तत्र कारणम्। [12]

विदूषकः- ममावि भवं। (ममापि भवान्।) [13]

राजा- कथमिव?। [14]

विदूषकः- जुत्तं णाम एवं तए राजकज्जाइं उज्झिअ तादिसं च अक्खलिदपदेसं वणचरेक्कवित्तिणा होदव्वंति? किं एत्थ मन्तीअदु? अहं उण वम्हणो सच्चं पच्चहं सावदसाउणिआणुगमणेहिं संखोहिद संधिबन्धणाणं अत्तणो गत्ताणं अणीसो म्हि संवुत्तो। ता पसीद मे, अज्ज एक्काहं पि दाव वीसमीअदु। (युक्तं नाम एवं त्वया राजकार्याणि उज्झित्य, तादृशम् अस्खलितप्रदेश[2] वनचरैकवृत्तिना भवितव्यमिति। किमत्र मन्त्र्यताम्। अहं पुनः ब्राह्मणः सत्यं प्रत्यहं श्वापदशाकुनिकानुगमनैः संक्षोभितसन्धिबन्धानम् आत्मनः गात्राणामनीशोऽस्मि संवृत्तः। तस्मात् प्रसीद मे, अद्य एकाहमपि तावत् विश्राम्यतु।) [15]

राजा- (स्वगतम्) अयमेवमाह। ममापि कण्वदुहितरमनुस्मृत्य मृगयां प्रति निरुत्सुकं चेतः।

[<कुतः?।

न नमयितुमधिज्यमुत्सहिष्ये धनुरिदमाहितसायकं मृगेषु।
सहवसतिमुपेत्य यैः प्रियायाः कृत इव लोचनकान्तिसंविभागः॥ 2-3॥ [16]>][3]

विदूषकः- (राजानमवलोक्य) अत्तभवं किं पि हिअए कदुअ मन्तेदि। अरण्णे क्खु मए रुदिदं। (अत्रभवान् किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रयते। अरण्ये खलु मया रुदितम्।) [17]

राजा- (सस्मितम्) किमन्यत्? अनतिक्रमणीयं सुहृद्वाक्यमिति स्थितोऽस्मि। [18]

विदूषकः- (सपरितोषम्) तेण हि चिरं जीव। (इत्युत्थातुमिच्छति) (तेन हि चिरं जीव।) [19]

राजा- तिष्ठ? तावत्। शृणु मे सावशेषं वचः। [20]

विदूषकः- आणवेदु भवं। (आज्ञापयतु भवान्।) [21]

राजा- विश्रान्तेन भवता ममानायासे कर्मणि सहायेन भवितव्यम्। [22]

विदूषकः- किं मोदअखज्जिआए?। (किं मोदकखादने।) [23]

---

1. काश्मीर-पाठे नास्तीदं वाक्यम्। मैथिल-रंगकर्मिभिरत्र विदूषकस्य वाक्यद्वयोः प्रक्षेपः क्रियते। स चानुगामिषु सर्वासु वाचनासु दृश्यते।
2. काश्मीर-पाठे "तादृशे च क्रीडाप्रसादे" इति।
3. श्लोकोऽयं प्रक्षिप्तः स्यात्। शकुन्तलाया अनुस्मरणमेव राजानं मृगयां प्रति निरुत्साहिनं कर्तुमलम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- यत्र वक्ष्यामि। [24]

विदूषकः- गहिदो पणओ। (गृहीतः प्रणयः[1]।) [25]

राजा- कः कोऽत्र भोः। [26]

दौवारिकः- आणवेदु भट्टा। (आज्ञापयतु भर्ता।) [27]

राजा- रैवतक, सेनापतिस्तावदाहूयताम्। [28]

दौवारिकः- तथा। (इति निष्क्रम्य सेनापतिना सह प्रविष्टः।) [29]

सेनापतिः- (राजानमवलोक्य स्वगतम्) कथं दृष्टदोषापि मृगया स्वामिनि केवलं गुणायैव संवृत्ता। [30]

[<तथा हि देवः-

अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरपूर्वं, रविकिरणसहिष्णुक्लेशलेशैरभिन्नम्।
अपचितमपि गात्रं व्यायतत्वादलक्ष्यं, गिरिचर इव नागः प्राणसारं बिभर्ति॥ 2-4॥ [31]>][2]

दौवारिकः- एदु एदु अज्जो। एसो अणुवअणदिण्णकण्णो भट्टा तुमं जेव्व पडिवालेदि। ता उवसप्पदु अज्जो। (एतु एतु आर्यः। एष अनुवचनदत्तकर्णो भर्ता[3] त्वामेव प्रतिपालयति।) [32]

सेनापतिः- (उपगम्य) जयति जयति स्वामी। स्वामिन्, गृहीतमृगप्रचारसूचितश्वापदमरण्यम्। तत्किमिति स्थीयते?। [33]

राजा- भद्र, भग्नोत्साहः[4] कृतोऽस्मि मृगयापरिवादिना माधव्येन[5]। [34]

सेनापतिः- (जनान्तिकम्) सखे माधव्य स्थिरप्रतिज्ञो[6] भव। अहं तावत् स्वामिनश्चित्तवृत्तिमनुवर्तिष्ये। [35]

(प्रकाशम्) देव, प्रलपत्वेष माधव्यः[7]। ननु प्रभुरेवात्र निदर्शनम्। [36]

मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्साहयोग्यं वपुः
सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः।
उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले
मिथ्या हि व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग् विनोदः कुतः॥ 2-5॥ [37]

विदूषकः- (सरोषम्) अत्तभवं पइदिमावण्णो। तुमं दाव दासीए पुत्तअ इदो तदो अडविं आहिण्ड जाव विद्धसिआललोलुवस्स कस्स वि जिण्णरिच्छस्स मुहे णिवडिदो होसि त्ति। (अत्रभवान् प्रकृतिमापन्नः। त्वं तावत् दास्याः पुत्रः इतस्ततः अटविमाहिण्ड्य यावत् वृद्धशृगाललोलुपस्य कस्यापि जीर्णस्य ऋक्षस्य[8] मुखे निपतितः भवसीति।) [38]

राजा- भद्र सेनापते, आश्रमसन्निकर्षे स्थितोऽस्मीति वचनं ते नाभिनन्दामि। अद्य तावत्-

---

1. अन्यत्र सर्वत्र "क्षणः" इति पाठः स्वीकृतः। (क्षण उत्सवे। इति कोशः)।
2. श्लोकोऽयम् प्रक्षिप्तः स्यात्। सूक्ष्मेक्षिकया विचार्यमाणे 2-5 इति श्लोकार्थस्यात्र पुनरुक्तिरेव प्रतीयते।
3. मैथिल-पाठे "इतो दत्तदृष्टिः" इति शब्दो निष्कासितः।
4. काश्मीर-पाठे "मन्दोत्साहः" इति वर्तते।
5. इतः परं दरभङ्गातः प्रकाशिते मैथिल-पाठे विदूषकस्य (उक्ति-क्रमांकः-38) उक्तिः प्रदत्ता। सा न समीचीना। श्रीधर्मानन्द कौशाम्बीमहाभागस्य पाण्डुग्रन्थेऽपि तादृशं नास्ति। एवञ्च, काश्मीर-बंगीय-पाठयोर्व्यवस्थापि यथास्माभिरत्र प्रदत्ता तादृशी दृश्यते। मिथीलाविद्यापीठस्य पुस्तके य उक्तिक्रमदोषो दृश्यते, सोऽत्र शुद्धीकृतः।
6. काश्मीर-पाठे "स्थिरप्रतिबन्धो0" इति पठ्यते।
7. काश्मीर-पाठे "वैधेय" इति पठ्यते।
8. काश्मीर-पाठे "सीमाशृगाल इव जीर्णर्क्षस्य" इति वर्तते। एतैः पाठान्तरैः रंगकर्मिभिः वाचिकाङ्गिकाभिनये किमपि नावीन्यं प्रदर्श्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

गाहन्तां महिषा निपानसलिलं शृङ्गैर्मुहुस्ताडितं
छायाबद्धकदम्बकं मृगकुलं रोमन्थमभ्यस्यतु।
विस्रब्धैः क्रियतां वराहपतिभिर्मुस्ताक्षतिः पल्वले
विश्रामं लभतामिदं च शिथिलज्याबन्धमस्मद्धनुः[1]॥ 2-6॥ [39]

सेनापतिः- यथा प्रभविष्णवे रोचते। [40]

राजा- तेन हि निवर्तय पुरोगान् धनुर्ग्राहिणः[2]। यथा च सैनिका दूरात् तपोवनं परिहरन्ति तथा निषेद्धव्याः। पश्य-

शमप्रधानेषु तपोवनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः।
स्पर्शानुकूला अपि सूर्यकान्तास्ते ह्यन्यतेजोऽभिभवाद्दहन्ति[3]॥ 2 -7॥ [41]

विदूषकः- भो उच्छाहइत्तआ णिक्कम[4]। (भोः, उत्साहयितः, निष्क्राम) [42]

सेनापतिः- यथाज्ञापयति स्वामी। (इति निष्क्रान्तः।) [43]

राजा- (परिजनं विलोक्य) मृगयावेषमपनयन्तु भवन्तः[5]। रैवतक[6], त्वमपि स्वनियोगमशून्यं कुरु। [44]

दौवारिकः- जं देओ आणवेदि। (इति निष्क्रान्तः) (यद् देव आज्ञापयति।) [45]

विदूषकः- किदं भवदा णिम्मक्खिअं[7]। ता इमस्सिं पाअवच्छाआविरइदविदाणसणाधे सिलादले उवबिसदु भवं। जाव अहं पि सुहासीणो होमि। (कृतं भवता निर्मक्षिकम्। तस्माद् एतस्मिन् पादपच्छाया विरचितवितानसनाथे[8] शिलातले उपविशतु भवान्। यावदहमपि सुखासीनो भवामि।) [46]

राजा- गच्छाग्रतः। [47]

विदूषकः- एदु एदु भवं। (उभौ परिक्रम्योपविष्टौ) (एतु एतु भवान्।) [48]

राजा- सखे माधव्य, अनाप्तचक्षुःफलोऽसि, येन त्वया द्रष्टव्यानां परं न दृष्टम्[9]। [50]

विदूषकः- णं भवं जेव अग्गदो मे चिट्ठदि। (ननु भवान् एव अग्रतो मे तिष्ठति।) [51]

राजा- सर्वः कान्तमात्मानं पश्यति। अहं तु पुनस्तामेवाश्रमललामभूतां शकुन्तलामधिकृत्य ब्रवीमि। [52]

विदूषकः- (स्वगतम्) भोदु। ण से पसरं वड्ढावइस्सं। (प्रकाशम्) भो, जदो दाव सा तावस्सिकण्णआ[10] अणब्भत्थणीआ तदो किं ताए दिट्ठाए?। (स्वगतम्[11]) (भवतु, न अस्य प्रसरं वर्धयिष्यामि। भोः, यतस्तावत् सा तापसकन्यका अनभ्यर्थनीया, ततः किं तया दृष्टया।) [53]

राजा[12]- मूर्ख,

---

1. काश्मीर-पाठे "विश्वस्तैरि"ति, "विश्रान्तिमि"ति च पठ्येते।
2. काश्मीर-पाठे "वनग्राहिणः" इति।
3. काश्मीर-पाठे "तपोधनेषु", "वमन्ती"ति च।
4. काश्मीर-पाठे "गच्छ, साम्प्रतं दास्याः पुत्रे" ति।
5. मैथिल-पाठे यवनीभिः परिवृत्तो राजा नैव प्रविष्ट आसीत्। अतो रंगसूचना वाक्यञ्चेदं न संगच्छते।
6. काश्मीर-पाठे "रेवक" इति।
7. काश्मीर-पाठे "(सहासम्) कृतं भवता निर्धूमको दंशप्रतिकारः" इति।
8. आहार्यत्वेन नास्ति वितानसामग्री मैथिलरंगमंचे।
9. काश्मीर-पाठे "दर्शनीयं न दृष्टम्" इति।
10. काश्मीर-पाठे "अप्रार्थनीये" ति पठ्यते।
11. काश्मीर-पाठे "अपवार्य" उक्तिरियम्।
12. काश्मीर-पाठे राज्ञो मुखे स्थापितयोरनयोः श्लोकयोः क्रमवैपरीत्यम्। तच्चाधिकं संगतं प्रतिभाति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

निराकृतनिमेषाभि[1]र्नेत्रपङ्क्तिभिरुन्मुखः।
नवामिन्दुकलां लोकः केन भावेन पश्यति॥ 2-8॥ [54]

न च परिहार्ये वस्तुनि दुःष्मन्तस्य मनः प्रवर्तते। [55]

ललिताप्सरोभवं[2] किल मुनेरपत्यं तदुज्झिताधिगतम्।
अर्कस्योपरि शिथिलं च्युतमिव नवमालतीकुसुमम्॥ 2-9॥ [56]

विदूषकः- (विहस्य) भो, जधा कस्स वि पिण्डखज्जूरेहिं उव्वेजिदस्स तिन्तिडिआए अहिलासो भोदि, तधा इत्थीरअणपरिभोइणो[3] भवदो इअं अब्भत्थणा। (भोः, यथा कस्यापि पिण्डखर्जुरैरुद्वेजितस्य तिन्तिडाभिलाषो भवति, तथा स्त्रीरत्नपरिभोगिनो भवत इयमभ्यर्थना।) [57]

राजा- सखे, न तावदेनां पश्यसि येन त्वमेवम् अवादीः[4]। [58]

विदूषकः- तं खु रमणीअं णाम जं भवदो विम्हअं उप्पादेदी। (तत्खलु रमणीयं नाम यद् भवतो विस्मयम् उत्पादयति[5]।) [59]

राजा- वयस्य, किं बहुना।

चित्ते[6] निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगाद् रूपोच्चयेन महता मनसा कृता नु।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः॥ 2-10॥ [60]

विदूषकः- सव्वधा पच्चादेसो सा रूपवदिणं। (सर्वथा प्रत्यादेशः सा रूपवतीनाम्।) [61]

राजा- इदं च मे मनसि वर्तते-

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररूहै-
रनामुक्तं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति भुवि॥ 2-11॥ [62]

विदूषकः- तेण हि लहुं लहुं गदुअ परिणेदु भवं। सा कस्स वि तावसस्स इङ्गुदीतेल्लचिक्कणसीसस्स हत्थे पडिस्सदि। (तेन हि, लघु लघु गत्वा परिणयतु भवान्। सा कस्यापि तापसस्य इङ्गुदीतैलचिक्कणशीर्षस्य हस्ते पतिष्यति।) [63]

राजा- परवती तत्रभवती, न च सन्निहितगुरुजना। [64]

विदूषकः- अध भवन्तमन्तरेण कीदिसो से दिट्ठिराओ[7]। (अथ भवन्तमन्तरेण कीदृश अस्या दृष्टिरागः।) [65]

राजा- वयस्य, स्वभावादप्रगल्भस्तपस्विकन्यकाजनः।
तथापि-

अभिमुखे मयि संहृतमीक्षितं हसितमन्यनिमित्तकथोदयम्।
विनयवारितवृत्तिरतस्तया न विवृतो मदनो न च संवृतः[8]॥ 2-12॥ [66]

---

1. काश्मीर-पाठे "चिरं गतनिमेषाभिरि" ति पठ्यते।,
2. काश्मीर-पाठे "ललितान्यसम्भवमि" ति।, मै.-पाठभेदेनाहैतुकी प्रीतिर्नाभिव्यज्यते।
3. काश्मीर-पाठे "स्त्रीरत्नपरिभाविनः" इति पठ्यते।
4. काश्मीर-पाठे "त्वम् एवंवादी" इति।, बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठमनुसरति।
5. काश्मीर-पाठे "जनयती" ति।
6. काश्मीर-पाठे "चित्रे" इति।
7. काश्मीर-पाठे "चित्ताणुराओ" इति।
8. काश्मीर-पाठे "अभिमुखमि" ति, "बाधित०", "संवृतः" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

विदूषकः- किं क्खु दिट्ठिमेत्तकेण ज्जेव अङ्कमारुहदु। (किं खलु दृष्टिमात्रेणैव अङ्कमारोहतु।) [67]

राजा- [1]मिथःप्रस्थाने तत्रभवत्या मयि भूयिष्ठमाविष्कृतो भावः। तथाहि-

दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे
तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा।
आसीद् विवृत्तवदना च विमोचयन्ती
शाखासु वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम्[2]॥ 2-13॥ [68]

विदूषकः- गहिदपाधेओ भवं किदो तए। अणुरञ्जिदं तवोवणं ति तक्केमि[3]। (गृहीतपाथेयो भवान् कृतः तया। अनुरञ्जितं[4] तपोवनमिति तर्कयामि।) [69]

राजा- सखे, चिन्तय तावत्। केनापदेशेन पुनराश्रमपदं गच्छामः?।[5] [70]

विदूषकः- को अवरो अवदेसो? णं भवं राआ। (क अपरोऽपदेशः। ननु भवान् राजा।) [71]

राजा- ततः किम्?। [72]

विदूषकः- णीवारछट्ठभाअं मे तावसा उवहरन्तु त्ति। (नीवारषष्ठभागं मे उपहरन्तु इति।) [73]

राजा- मूर्ख, पुण्यभागमेतें[6] रक्षिणे निर्वपन्ति, यं रत्नराशिं परिहायाभिनन्दन्ते।

पश्य-

यदुत्तिष्ठति वर्णेभ्यो नृपाणां क्षयि तत् फलम्।
तपःषड्भागम् अक्षय्यं[7] ददत्यारण्यका हि नः॥ 2 -14॥ [74]

(नेपथ्ये)

हन्त, सिद्धार्थौ स्वः। [75]

राजा- (आकर्ण्य) अये, धीरप्रशान्तः स्वरः। तपस्विभिर्भवितव्यम्। [76]

दौवारिकः- (प्रविश्य) जअदु जअदु भट्टा। एदे क्खु दुवे इसिकुमारा पडिहारभूमीए उवत्थिदा। (जयतु जयतु भर्ता। एते खलु द्वौ ऋषिकुमारौ प्रतिहारभूमावुपस्थितौ।) [77]

राजा- अविलम्बं प्रवेशय। [78]

दौवारिकः- जं भट्टा आणवेदि। (इति निष्क्रम्य ऋषिभ्यां सह प्रविशति।) (यद् भर्ताज्ञापयति) [79]

दौवारिकः- इदो इदो एध। (इत इत एतम् आगच्छतम्।) [80]

एकः- (राजानमवलोक्य) अहो, दीप्तिमतोऽपि विश्वसनीयता अस्य वपुषः। [81]

अथवा उपपन्नमेवैतद् ऋषिकल्पे राजनि।

---

1. काश्मीर-पाठ इतः पूर्वम् "सखे, सखीभ्यामि" त्यधिकम्।
2. मैथिल-पाठस्य प्रथमांके शकुन्तलया "अभिनवकुशसूचिपरिक्षतं मे चरण" मिति यदुक्तं तस्य मौलिकतां समर्थयितुमिदम् अन्तःसाक्ष्यं वचनम्।
3. काश्मीर-पाठात् सर्वथा भिन्नमेवेदं वाक्यम्। तच्चोत्तरोत्तरं नैकधा परिवर्तितं दृश्यते।
4. अनुरक्तं तपोवनमिति शङ्करः। पृ. 203.
5. काश्मीर-पाठे विदूषकः रंगभूमौ समाधिं नाटयति, तादृशं दृश्यं मैथिल-बंगीय-पाठयोर्नास्ति।
6. काश्मीर-पाठे "अन्यभागमि" ति।
7. काश्मीर-पाठे "ऽक्षयमि" ति।, (क्षय्य-जय्यौ शक्यार्थे। पा. सू. 6-1-81 इत्यनेन क्षेतुं शक्यं क्षय्यमिति।)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

कुतः?-

अध्याक्रान्ता वसतिरमुनाप्याश्रमे सर्वभोग्ये[1]
रक्षायोगादयमपि तपः प्रत्यहं सञ्चिनोति।
अस्यापि द्यां स्पृशति वशिनश्चारणद्वन्द्वगीतः
पुण्यः शब्दो मुनिरिति मुहुः केवलं राजपूर्वः॥ 2 -15॥ [82]

द्वितीयः- सखे, अयं स बलभित्सखो दुःष्मन्तः?। [83]

प्रथमः- अथ किम्। [84]

द्वितीयः- तेन हि,

नैतच्चित्रं यदयमुदधिश्यामसीमां धरित्री-
मेकः कृत्स्नां नगरपरिघप्रांशुबाहुर्भुनक्ति।
आशंसन्ते समितिषु सुराः सक्तवैरा[2] हि दैत्यै-
रस्याधिज्ये धनुषि विजयं पौरुहूते च वज्रे॥ 2 -16॥ [85]

उभौ- (उपगम्य)विजयस्व राजन्। [86]

राजा- (आसनादुत्थाय) अभिवादये भवन्तौ। [87]

ऋषी- स्वस्ति भवते। (इति फलान्युपनयतः) [88]

राजा- (सप्रणामं प्रतिगृह्य) आज्ञापयेतां भवन्तौ। [89]

ऋषी- विदितो भवानिहस्थस्तपस्विभिः। ते च भवन्तमभ्यर्थयन्ते। [90]

राजा- किमाज्ञापयन्ति?। [91]

ऋषी- तत्रभवतः कुलपतेरसान्निध्याद् रक्षांसि नस्तपोविघ्नमुत्पादयन्ति[3]। तत्कतिपयरात्रं सारथिद्वितीयेन भवता सनाथीक्रियता-माश्रमपदम्। [92]

राजा- अनुगृहीतोऽस्मि। [93]

विदूषकः- (अपवार्य) अअं दाणिं अणुऊलो दे गलहत्थो[4]। (अयमिदानीम् अनुकूलस्ते गलहस्तः।) [94]

राजा- रैवतक, उच्यतामस्मद्वचनात्सारथिः सबाणकार्मुकं रथमुपस्थापयेति। [95]

दौवारिकः- जं देवो आणवेदि। (इति निष्क्रान्तः) (यद् देव आज्ञापयति।) [96]

ऋषी- (सहर्षम्)

उपकारिणि सर्वेषामनुरूपमिदं त्वयि।
आपन्नानां भयत्राणे दीक्षिताः खलु पौरवाः[5]॥ 2 -17॥ [97]

---

1. काश्मीर-पाठे "सर्वपूर्वे" इति पठ्यते।
2. काश्मीर-पाठे "आशंसन्ते सुरसमितयस्सक्तवैराः0" इति पठ्यते।
3. काश्मीर-पाठे "काश्यपमुनेर0 रक्षांसि परापतिष्यन्ति, विघ्नमुत्पादयितुमिच्छन्ती" ति।
4. काश्मीर-पाठे "गलत्था" इत्येव प्राकृत (देशी)शब्दो वर्तते, तस्यार्थः प्रार्थनेति भवति। किन्तु तस्य दुर्बोधत्वेन केनापि पाठशोधकेन ध्वनिसाम्यात् स शब्दो "गलहत्थो" इत्येवं रीत्या परिवर्तितः स्यात्। येन च रंगकर्मिणां कृते आङ्गिकाभिनयस्य वैशिष्ट्यं निर्माणायावकाशः प्राप्यते।
5. काश्मीर-पाठे "ऽनुकारिणि पूर्वेषामि" ति।, "आपन्नाभयसत्रेणे" ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- गच्छेतां भवन्तौ। अहमप्यनुपदमागत एव। [98]

ऋषी- विजयस्व। (इति निष्क्रान्तौ) [99]

राजा- वयस्य, शकुन्तलादर्शनं प्रति कुतूहलमस्ति ते?। [100]

विदूषकः- पढुमं अपरिबाधं आसि। सम्पदं रक्खसवुत्तन्तेण सपरिबाधं[1]। (प्रथमम् अपरिबाधमासीत्। साम्प्रतं राक्षसवृत्तान्तेन सपरिबाधम्।) [101]

राजा- मा भैषीः। ननु मत्समीप एव वर्तिष्यसे। [102]

विदूषकः- एस तुह रक्खीभूद[2] म्हि। (एषः तव रक्षीभूतोऽस्मि।) [103]

दौवारिकः- (प्रविश्य) सज्जो रहो भट्टिणो विजअपत्थाणं अवेक्खदि। एसो उण णअरादो देवीणं सआसादो करभओ आअदो। (सज्जो रथः, भर्तुः विजयप्रस्थानमपेक्षते। एषः पुनर्नगराद् देवीनां सकाशात् करभकः आगतः।) [104]

राजा- (सादरम्) सत्यमज्जूभिः प्रहितः?। [105]

दौवारिकः- अध इं। (अथ किम्।) [106]

राजा- ननु प्रवेश्यताम्। [107]

दौवारिकः- (निष्क्रम्य करभकेण सह प्रविश्य) करभअ एसो भट्टा। ता उअसप्प। (करभक, एष भर्ता। उपसर्प।) [108]

करभकः- (उपसृत्य प्रणम्य च) जअदु जअदु भट्टा। भट्टाए देवीओ आणवेन्ति। (जयतु जयतु भर्ता। भर्त्रे देव्यः आज्ञापयन्ति।) [109]

राजा- किमाज्ञापयन्ति?। [110]

करभकः- आगामिचउट्ठदिअसे पुत्तपिण्डपज्जुपासणो[3] णाम उपवासो हुविस्सदि। तत्थ दीहाउणा अवस्सं अम्हे सम्भाविदव्व त्ति[4]। (आगामिचतुर्थदिवसे पुत्रपिण्डपर्युपासनो नाम उपवासो भविष्यति। तत्र दीर्घायुषा अवश्यं वयं संभावयितव्या इति।) [111]

राजा- (चिन्तय्) इतस्तपस्विकार्यमितो गुरुजनाज्ञा। उभयमप्यनतिक्रमणीयम्[5]। तत् किमत्र प्रतिविधेयम्?। [112]

विदूषकः- (विहस्य) भो, तिसङ्कु विअ अन्तरा चिट्ठ। (भोः, त्रिशङ्कुरिव अन्तरा तिष्ठ।) [113]

राजा- सत्यमाकुलीभूतोऽस्मि।

कृत्ययोर्भिन्नदेशत्वात् द्वैधीभवति मे मनः।
पुरः प्रतिहतं शैलैः स्त्रोतः स्त्रोतोवहा[6] यथा।। 2-18।। [114]

(विचिन्त्य) सखे, त्वमज्जूभिः पुत्र[7] इव परिगृहीतः। तद् भवानितः प्रतिनिवृत्य तपस्विकार्य- व्यग्रतामस्माकमावेद्य तत्रभवतीनां पुत्रकार्यमनुष्ठातुमर्हति[8]। [115]

---

1. काश्मीर-पाठे "0सम्पदं विसाददंसिणा विसेसिदम्" इति पठ्यते।
2. काश्मीर-पाठे "चक्काकीभूदो" इति पठ्यते।
3. काश्मीर-पाठे "पुत्रपिण्डदानको" इति पठ्यते।
4. काश्मीर-पाठे "सण्णिहिदेण होदव्वम्" इति।
5. काश्मीर-पाठे "ऽनुल्लंघनीयमि"ति।
6. काश्मीर-पाठे "स्त्रोतोवह" इति प्रथमान्तं पदम्।
7. काश्मीर-पाठे "अज्जुभिरि"ति।, किन्तु बंगीय-पाठ "आर्याभि"रिति।
8. काश्मीर-पाठेऽनयोर्वाक्ययोः क्रमो भिन्न एव।, बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

विदूषकः- भो, मा रक्खोभीरुअं मं अवगच्छ। (भोः, मा रक्षोभीरुकं माम् अवगच्छ।[1]) [116]

राजा- (स्मित्वा) महाब्राह्मण, कथमेवं त्वयि सम्भाव्यते?। [117]

विदूषकः- तेण हि जधा जुअराआणुरूएण[2] गन्तव्वं तधा गच्छामि। (तेन हि, यथा युवराजानुरूपेण गन्तव्यं, तथा गच्छामि।) [118]

राजा- तपोवनोपरोधः परिहरणीयः। अतः सर्वानेवानुयात्रिकान् त्वयैव सह प्रस्थापयामि। [119]

विदूषकः- (सगर्वम्) सच्चं तेण हि जुअरावो म्हि संवुत्तो। (सत्यम्, तेन हि युवराजोऽस्मि संवृत्तः।) [120]

राजा- (स्वगतम्) चपलोऽयं बटुः। कदाचिदिमां प्रार्थनामन्तःपुरेभ्यो निवेदयेत्[3]। भवतु,एवं तावद् वक्ष्यामि। (विदूषकं हस्ते गृहीत्वा प्रकाशम्) सखे माधव्य, ऋषिगौरवादाश्रमपदं गच्छामि। न खलु सत्यमेव तापसकन्यकायामभिलाषः। [121]

क्व वयं क्व परोक्षमन्मथो मृगशावैः सह[4] वर्धितो जनः।
परिहासविकल्पितं सखे परमार्थेन न गृह्यतां वचः॥ 2-19॥ [122]

विदूषकः- एवं णेदं। (एवं नु एतत्।) [123]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे) [124]

[तपोवनानुगमनो[5] नाम द्वितीयोऽङ्कः समाप्तः] [125]

---

1. काश्मीर-पाठे "साधु, राक्षसभीरुकं मां गणयिष्यती" ति काकुभेदेनोच्यते।
2. काश्मीर-पाठे "राजानुराजेने"ति।
3. काश्मीर-पाठे "कथयेदि" ति।
4. काश्मीर-पाठे "समम्" इति।
5. मिथीलाविद्यापीठेन प्रकाशिते पुस्तके नामेदं न पठ्यते। एतत्तु श्रीधर्मानन्द कौशाम्बीमहाभागस्य पाण्डुलिपितो ज्ञायते।, काश्मीर-पाठे प्रत्येकानाम् अङ्कानां नामकरणं न क्रियते।, (बंगीय-पाठ "आख्यान-गुप्ति"रिति नाम प्राप्यते।)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ तृतीयोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशति कुशानादाय[1] यजमानशिष्यः) [1]

शिष्यः- (विचिन्त्य) अहो, महाप्रभावोऽयं राजा दुष्मन्तः। प्रविष्टमात्र एव तत्रभवति निरुपप्लवानि नः कर्माणि संवृत्तानि।

का कथा बाणसन्धाने ज्याशब्देनैव दूरतः।
हूंकारेणेव धनुषः स हि विघ्नान् व्यपोहति॥ 3-1॥ [2]

यावदिमान् वेदीसंस्तरणार्थान् दर्भानृषिभ्य उपहरामि। (परिक्रम्यावलोक्य च आकाशे) प्रियंवदे, कस्येदमुशीरानुलेपनं मृणालवन्ति च नलिनीदलानि[2] नीयन्ते? (आकर्ण्य[3]) किं ब्रवीषि? आतपलङ्घनाद् बलवदस्वस्थशरीरा शकुन्तला। तस्या शरीरनिर्वापणाये[4]ति। प्रियंवदे, यत्नादुपचर्यताम्। सा हि तत्रभवतः कुलपतेरुच्छ्वसितम्। अहमपि वैतानं शान्त्युदकमस्या एव गौतमीहस्ते विसर्जयामि। [3] (इति निष्क्रान्तः)

(प्रवेशकः[5]) [4]

(ततः प्रविशति मदनावस्थो[6] राजा) [5]

राजा- (निःश्वस्य सचिन्तम्[7])

जाने तपसो वीर्यं सा बाला परवतीति मे विदितम्।
न च निम्नादिव सलिलं निवर्तते मे ततो हृदयम्[8]॥ 3-2॥ [6]

[<भगवन् मन्मथ, कुतस्ते कुसुमायुधस्य सतस्तैक्ष्ण्यमेतत्?। (स्मृत्वा) आं ज्ञातम्।

अद्यापि नूनं हरकोपवह्निस्त्वयि ज्वलत्यौर्व इवाम्बुराशौ।
त्वमन्यथा मन्मथ मद्विधानां भग्नावशेषः[9] कथमेवमुष्णः[10]॥3- 3॥>] [7]

अपि च,

त्वया चन्द्रमसा चाविश्वसनीयाभ्या[11]मभिसन्धीयते कामिजनः। कुतः?

तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दोर्द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु।
विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखैस्त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारीकरोषि॥ 3-4॥ [8]

अथवा-

---

1. काश्मीर-पाठे "कुशानादाये"ति शब्दो नास्ति।, मैथिल-रंगमंचे कुशा आहार्यत्वेनोपयोज्यन्ते।
2. काश्मीर-पाठे "मृणालवलयवन्ति च कमलिनीपत्राणी" ति पठ्यते।, आहार्याभिनयेन सहास्य सम्बन्धः।
3. काश्मीर-पाठे "श्रुतिमभिनीये"ति।, भिन्नैव रंगावृत्तिरियं मैथिलीति ज्ञाप्यते।
4. काश्मीर-पाठे "दाहे निर्वापणाये0" इति।
5. का.-पाठेऽपि प्रवेशक इत्येव, (ना.शा. 18-11,44 अनुरोधात्)।, अनेन बृहत्पाठस्यैव प्राचीनतरता सिध्यति।
6. काश्मीर-पाठे "कामयानावस्थो" इति।, तच्च वामनेन (कामयानशब्दः सिद्धोऽनादिश्चेत्। 5-2-82) समर्थ्यते।
7. काश्मीर-पाठे "सवितर्कमि"ति भिन्नैव रंगसूचना।
8. काश्मीर-पाठे "अलमस्मि ततो हृदयं तथापि नेदं निवर्तयितुमि"ति।, तत्र सरलीकरणस्याशयः स्याद्।
9. काश्मीर-पाठे "भस्मावशेष" इति।
10. काश्मीर-पाठे प्रक्षिप्तोऽयं श्लोकः परम्परया मैथिल-पाठेऽपि सम्प्राप्तः प्रतिभाति।
11. काश्मीर-पाठे "विश्वसनीया0" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अनिशमपि मकरकेतुर्मनसो रुजमावहन्नभिमतो मे।
यदि मदिरायतनयनां तामधिकृत्य प्रहरतीति[1]॥ 3 -5॥ [9]

[<भगवन्, एवमुपालब्धस्य ते न मां प्रत्यनुक्रोश[2]:।

वृथैव संकल्पशतैरजस्त्रमनङ्ग नीतोऽसि मयातिवृद्धिम्।
आकृष्य चापं श्रवणोपकण्ठं मय्येव युक्तस्तव बाणमोक्षः[3]॥ 3 -6॥ >] [10]

क्व नु खलु निरस्तविघ्नैस्तपस्विभिरनुज्ञातः खिन्नमात्मानं विनोदयामि?। न च प्रियादर्शनादृते शरणमन्यत्। (ऊर्ध्वमवलोक्य[4]) इमामुग्रातपां वेलां प्रायेण लतावलयवत्सु मालिनीतीरेषु ससखीजना तत्रभवती गमयति। भवतु, तत्रैव गच्छामि। (परिक्रम्यावलोक्य च) [<अनया बालपादपवीथ्या तत्रभवती न चिरं गतेति तर्कयामि। कुतः?। [11]

संमीलन्ति न तावद् बन्धनकोशास्तयाऽवचितपुष्पाः।
क्षीरस्निग्धाश्चामी दृश्यन्ते किसलयच्छेदाः[5]॥ 3-7॥ >] [12]

(स्पर्शं रूपयित्वा) अहो, प्रवातसुभगोऽयं प्रदेशः।

शक्योऽरविन्दसुरभिः कणवाही मालिनीतरङ्गाणाम्।
अङ्गैरनङ्गतप्तैर्निर्दयमालिङ्गितुं पवनः[6]॥ 3 -8॥ [13]

(विलोक्य) अस्मिन्नेव वेतसलतामण्डपे शकुन्तलया भवितव्यम्। तथा हि-

अभ्युन्नता[7] पुरस्तादवगाढा जघनगौरवात् पश्चात्।
द्वारेऽस्य पाण्डुसिक्ते पदपङ्क्तिर्दृश्यतेऽभिनवा॥ 3 -9॥ [14]

यावद् विटपान्तरेणावलोकयामि। (तथा कृत्वा सहर्षम्) अये लब्धं नेत्रनिर्वाणम्[8]। एषा मनोरथप्रिया मे कुसुमास्तरणं शिलापट्टमधिशयाना सखीभ्यां पर्युपासते। भवतु, शृणोमि तावदासां विस्रम्भकथितम्। (विलोकयन् स्थितः।) [15]

(ततः प्रविशति सह सखीभ्यां शकुन्तला) [16]

सख्यौ- (उपजीव्य) हला सउन्तले, अवि सुहाअदि दे णलिणीवत्तवादो? (हला शकुन्तले, सुभावयति / सुखयति ते नलिनीपत्रवातः।) [17]

शकुन्तला- (शून्याभिनयम्[9]) किं मं विअअन्ति पिअसहीओ[10]?। (किं मां वीजयतः प्रियसख्यौ।) [18]

(उभे सविषादं परस्परमवलोकयतः।) [19]

राजा- बलवदसुस्थशरीरा तत्रभवती। तत् किमयमातपदोषः स्यात्, उत यथा मे मनसि वर्तते? (निरूप्य) अथवा कृतं सन्देहेन।

---

1. काश्मीर-पाठे संक्षेपीकरणस्याशयेन निष्कासितोऽयं श्लोक इति प्रतिभाति।
2. काश्मीर-पाठे नास्तीदं वाक्यम्।, प्रक्षिप्तश्चात्रेति प्रतीयते।
3. मैथिल-पाठे प्रक्षिप्तोऽयं श्लोकः। काश्मीर-पाठे नास्त्ययं श्लोकः।
4. काश्मीर-पाठे "सूर्यमवलोक्ये"ति।
5. काश्मीर-पाठे नास्त्ययं श्लोकः।, "नादत्ते प्रियमण्डनापी"ति वचनादयं मैथिल-पाठः प्रक्षिप्त इति सिध्यति।
6. काश्मीर-पाठे "मदनग्लानैरङ्गैः पीडितमालिङ्गितुं पवनः" इति।
7. काश्मीर-पाठे "ऽल्पनिहिते"ति।
8. काश्मीर-पाठे "नेत्रनिर्वापणमि"ति। (लिपिकारस्यानवधानादत्र निर्वापणेत्यस्य स्थाने निर्वाणमिति जातम्।)
9. काश्मीर-पाठे "वेदनां नाटयित्वे"ति रंगसूचना।, शून्याभिनयेनात्र प्रियसख्योर्विज्ञप्तिर्नास्तीति परिलक्ष्यते।
10. काश्मीर-पाठे "किं वा वीजयतः, मां सख्यः" इति। (अत्र मैथिल-पाठे काकुभेदेनाभिनयभेदः परिलक्ष्यते)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

स्तनन्यस्तोशीरं प्रशिथिलमृणालैकवलयं
प्रियाया: साबाधं तदपि कमनीयं वपुरिदम्।
समस्ताप: कामं मनसिजनिदाघप्रसरयो-
र्न तु ग्रीष्मस्यैवं सुभगमपराद्धं युवतिषु।। 3 -10।। [20]

अनुसूया- हला सउन्दले, अणब्भन्तरा अम्हे मअणगदस्स वुत्तन्तस्स, किं तु जादिसी इदिहासकधाणिबन्धेसुं कामिजणाणं अवत्था सुणीअदि तादिसी तवावि त्ति तक्केमि। ता कधेहि किं णिमित्तं दे अअं आआसो। विआरं परमत्थदाए अआणिअ अणारम्भो पदीआरस्स। (हला शकुन्तले, अनभ्यन्तरावाम् मदनगतस्य वृत्तान्तस्य, किन्तु यादृशीतिहासकथानिबन्धेषु कामिजनानामवस्था श्रूयते, तादृशी तवास्तीति तर्कयामि। तस्मात्कथय किं निमित्तं तेऽयमायास:।) [21]

राजा- अनुसूययाप्यनुगतो मदीयस्तर्क:। [22]

शकुन्तला- (आत्मगतम्) बलीओ मे आआसो। ण सहसा सक्कणोमि णिविवेदिदुं। (बलवान् मे आयास:। न सहसा शक्नोमि निवेदयितुम्।) [23]

प्रियंवदा- सहि, सुट्ठुक्खु एसा भणादि। किं अत्तणो उवद्दवं उवेक्खसि? अणुदिअहं परिहीअसि। अङ्गेसुं केवलं लावण्णमेत्तकच्छाअं तुमं ण मुञ्चति। (सखि, सुष्ठु खल्वेषा भणति। किमात्मन: उपद्रवम् उपेक्षसे। अनुदिवसं परिहीयसे अङ्गेषु। केवलं लावण्यमयीछाया त्वां न मुञ्चति[1]।) [24]

राजा- अवितथमाह प्रियंवदा। तथा ह्यस्या:-

क्षामक्षामकपोलमाननमुर: काठिन्ययुक्तस्तनं
मध्य: क्लान्ततर: प्रकामविनतावंसौ छवि: पाण्डुरा।
शोच्या च प्रियदर्शना च मदनग्लानेयमालक्ष्यते
पत्राणामिव शोषणेन मरुता स्पृष्टा लता माधवी[2]।। 3 -11।। [25]

शकुन्तला- (नि:श्वस्य) कस्स वा अण्णस्स कथितव्वं? किं ण आआसइत्तिआ वो भविस्सं। (कस्य वा अन्यस्य कथयितव्यम्। किं न आयासयित्री व: भविष्यामि।) [26]

उभे- सहि अदो ज्जेव णो णिव्वन्धो। विभत्तं खु दुक्खं सज्झवेअणं भोदि। (सखि, अत एव न: निर्बन्ध:। विभक्त[3] खलु दु:खं सह्यवेदनं भवति।) [27]

राजा-

पृष्टा जनेन समदु:खसुखेन बाला नेयं न वक्ष्यति मनोगतमाधिहेतुम्।
दृष्टो विवृत्य बहुशोऽप्यनया सतृष्ण[4]मत्रोत्तरश्रवणकातरतां गतोऽस्मि।। 3 -12।। [28]

शकुन्तला- जदो पहुदि सो तपोवणरक्खिदा राएसी मम दंसणपधं गदो। (यत: प्रभृति स तपोवनरक्षिता राजर्षि: मम दर्शनपथं गत: ......।) [29] (इत्यर्धोक्तेन लज्जां नाटयति)[5] [30]

उभे- कधेदु पिअसही। (कथयतु प्रियसखी।) [31]

---

1. अस्या उक्त्या: पाठष्टीकाकारं शङ्करमनुसृत्य प्रदीयते।
2. काश्मीर-पाठे "मुक्त0", "मध्यं कान्ततरं", "0क्लिष्टेय0" इति पठ्यते।
3. काश्मीर-पाठे "संविभक्तम्" इति।
4. काश्मीर-पाठे "सहावम्" इति।
5. काश्मीर-पाठाद् भिन्नैव मौलिकी च योजनात्र दृश्यते।, अनेन मैथिल-पाठेन रंगकर्मिणां वैशिष्ट्यमत्र परिलक्ष्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला- तदो आरम्भिअ तग्गदेण अहिलासेण एदावत्थ म्हि संवुत्ता। (तत आरभ्य तद्गतेन अभिलाषेण एतावदवस्थास्मि संवृत्ता।) [32]

उभे[1]- दिट्ठिआ, दाणिं दे अणुरूअवराहिलासो। अहवा साअरं वज्झिअ कहिं वा महाणदीए पविसिदव्वं?। (दिष्ट्या, इदानीम् ते अनुरूपवराऽभिलाषः। अथवा सागरं वर्जयित्वा कुत्र वा महानद्या प्रवेष्टव्यम्[2])। [33]

राजा- (सहर्षम्) श्रुतं श्रोतव्यम्।

> **स्मर एव तापहेतुर्निर्वापयिता स एव मे जातः।**
> **दिवस इवाभ्रश्यामस्तपात्यये जीवलोकस्य।**। 3 -13।। [34]

शकुन्तला- ता जदि वो अणुमदं तधा पअट्टध जधा तस्स राएसिणो अणुकम्पणीआ होमि। अध अण्णधा, पसीदध सिञ्चध दाणि मे उदअं। (तद् यदि वामनुमतं तथा प्रवर्तेथां, यथा तस्य राजर्षेरनुकम्पनीया भवामि। अथ अन्यथा प्रसीदतं, सिञ्चतमिदानीं मे उदकम्[3]।) [35]

राजा - (सभयानन्दम्) अहो विमर्शच्छेदि वचनम्। एतदवस्थापि मां सुखयति[4]। [36]

प्रियंवदा- (जनान्तिकम्) अणुसूए, दूरगदमम्महा। अक्खमा इअं खु कालहरणस्स। (अनुसूये, दूरगतमन्मथा, अक्षमा इयं खलु कालहरणस्य।) [37]

अनुसूया- अध को उवाओ भवे जेण णो सहीए अविलम्बिदं णिहुअं मणोरहं सम्पादेम्ह?। (अथ क उपायो भवेद् येन नः सख्याः अविलम्बितं निभृतं मनोरथं सम्पादयावः।) [38]

प्रियंवदा- णिहुअ त्ति पअट्टिदव्वं। सिग्घ त्ति ण दुक्करं। (निभृतमिति[5] प्रवर्तितव्यम्। शीघ्रमिति न दुष्करम्।) [39]

अनुसूया- कधं विअ। (कथमिव।) [40]

प्रियंवदा- णं सो वि राएसी इमस्सिं सिणिद्धदिट्ठिसूइदाहिलासो इमेसुं दिअसेसुं पज्जागरणकिसो विअ लक्खीअदी। (ननु सोऽपि राजर्षिरेतस्यां स्निग्धदृष्ट्या सूचिताभिलाषः एतेषु दिवसेषु प्रजागरकृश इव लक्ष्यते।) [41]

राजा- सत्यमित्थंभूत एवास्मि। तथा हि-

> **अशिशिरतरैरन्तस्तापैर्विवर्णमलीमसं**
> **निशि निशि भुजन्यस्तापाङ्गप्रवर्तिभिरश्रुभिः।**
> **अनतिलुलितज्याघाताङ्कान्मुहुर्मणिबन्धनात्**
> **कनकवलयं स्रस्तं स्रस्तं मुहुः प्रतिसार्यते[6]।**। 3 -14।। [42]

प्रियंवदा- (सञ्चिन्त्य) हला अणुसूए, मअणलेहो से करीअदु। तं अहं सुमणोगोविदं कदुअ देवदाववदेसेण तस्स रञ्जो[7] हत्थं पावइस्सं। (हला अनुसूये, मदनलेखः अस्याः क्रियताम्। तमहं सुमनोगोपितं कृत्वा देवतापदेशेन[8] तस्य राज्ञः हस्तं

---

1. काश्मीर-पाठ उक्तिरियम् अनसूयाया अस्ति। मैथिल-रंगावृत्तौ मूलपाठः सुरक्षितः स्यादिति प्रतीयते।
2. अत्र काश्मीर-पाठे रंगकर्मिभिर्विहितो विस्तारः प्रक्षिप्तः परिवर्तितश्च स्यादिति।, (यत्र च सहकाराऽतिमुक्त-लतयोः, चित्राविशाखयोश्चोपमाने वर्तेते।)
3. काश्मीर-पाठमनुसृत्यैवात्र मैथिली-पाठः प्रचलति।
4. काश्मीर-पाठ "एतावत् कामफलं, यत्फलमन्यदि"ति।, अतिप्राचीनेषु देवनागरी-पाण्डुग्रन्थेषु शृंगारप्रकाशे च एतादृशं वाक्यं प्राप्यते।
5. काश्मीर-पाठे "निगूढमि"ति।
6. काश्मीर-पाठ "इदमशिशिरै0", "0मणीकृतं", "प्रवृत्तिभि0", "अनभिलुलित0", "मया" इति च पठ्यन्ते।
7. अशोकस्य शिलालेखे "राज्ञः" इत्यस्य कृते "रञ्जो" इति प्राकृतं विनियुक्तं वर्तते। यथा, इयं धम्मलिपी देवानां पियेन पियदसिना राञ्जा लेखापिता। टोपरा स्तम्भ-लेख, पंक्ति-45.
8. काश्मीर-पाठे "देवशेषापदेशेन" इति।, शङ्करमतेन "देवतासेवापदेशेने"ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रापयिष्यामि।) [43]

अनुसूया- सहि, रोअदि मे सुउमारो एसो पओओ। किं वा सउन्तला भणादि?। (सखि, रोचते मे सुकुमार एष प्रयोगः। किं वा शकुन्तला भणति।) [44]

शकुन्तला- सहि णिओओ वि विअप्पीअदि? (सखि, नियोगोऽपि किं विकल्प्यते।) [45]

प्रियंवदा- तेण हि अत्तणो उवण्णासाणुरूवं चिन्तेहि किं पि ललिदपदणिबन्धिअं गीदिअं। (तेन हि आत्मनः उपन्यासानुरूपं चिन्तय कामपि ललितपदनिबन्धनां गीतिकाम्।) [46]

शकुन्तला- सहि चिन्तइस्सं। किं तु अवधीरणाभीरुअं उण वेवदि मे हिअअं। (सखि, चिन्तयिष्यामि। किन्तु, अवधीरणाभीरुकं पुनः वेपते मे हृदयम्।) [47]

राजा- (विहस्य)

अयं स ते तिष्ठति सङ्गमोत्सुको
विशङ्कसे भीरु यतोऽवधीरणाम्।
लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं
श्रियो दुरापः कथमीप्सितो भवेत्।। 3 -15।। [48]

[<अपि च-

अयं स यस्मात्प्रणयावधीरणामशङ्कनीयां करभोरु शङ्कसे।
उपस्थितस्त्वां प्रणयोत्सुको जनो न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्[1]।। 3 -16।।>][49]

सख्यौ- अत्तगुणावमाणिणि। को णाम संतावणिव्वावइत्तअं[2] सारदीजोण्हं आदवत्तेण वारइस्सदि?। (आत्मगुणावमानिनि, को नाम संतापनिर्वापयित्रीं शारदीं ज्योत्स्नामातपत्रेण वारयिष्यति।) [50]

शकुन्तला- (सस्मितम्) णिओइद म्हि। (नियोजितास्मि।)

(इति चिन्तयति[3]।) [51]

राजा- स्थाने खलु विस्मृतनिमेषेण चक्षुषा प्रियामवलोकयामि।

तथा हि-

उन्नमितैकभ्रूलतमाननमस्याः पदानि रचयन्त्याः।
पुलकाचितेन कथयति[4] मय्यनुरागं कपोलेन।। 3 -17।। [52]

शकुन्तला- हला मए चिन्तिदा गीदिया। असंणिहिदाणि उण लेहसाहणाणि। (हला, मया चिन्तिता गीतिका। असंनिहितानि पुनर्लेखसाधनानि।) [53]

प्रियंवदा- सुणम्ह दाव से अक्खराइं। तदो इमस्सिं सुओदरसिणिद्धे णलिणीवत्ते पत्तच्छेदभत्तीए णहेहिं लिहिअवण्णं करिस्ससि। संपदं पढीअदु दाव। (शृणुवः तावदस्या अक्षराणि। ततोऽस्मिन् शुकोदरस्निग्धे नलिनीपत्रे पत्रच्छेदभक्त्या नखैः लिखितवर्णां करिष्यसि[5]। साम्प्रतं पठ्यतां तावत्।) [54]

---

1. काश्मीर-पाठे श्लोकोऽयं नास्ति। मैथिल-पाठे प्रक्षिप्तः प्रतिभाति, पुनरुक्तिदोषात्।
2. काश्मीर-पाठे शब्दोऽयं निष्कासितः स्यादिति प्रतीयते, सरलीकरणस्याशयेन।
3. मैथिल-पाठेऽत्र सा आसीना / उपविष्टा वा चिन्तयतीति स्पष्टं नास्ति।, काश्मीर-पाठ इयमुक्तिर्नास्ति।
4. काश्मीर-पाठे "कण्टकितेन प्रथयती"ति।
5. काश्मीर-पाठे प्रियंवदा गीतिकां प्रथमं लेखयति, ततः शृणोतीति क्रमः।, मैथिल-पाठे शकुन्तलया मदनलेखो नैव लिखितः। केवलं मनसि संकल्पिता पदावली तया श्राविता, नायकश्च तदैवोपस्थितः। तदयुक्तं संजातम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला- सुणध दाव णं विसदत्था ण व त्ति। (शृणुतं तावदेनां, विशदार्था न वेति।) [55]

उभे- अवहिदम्ह। (अवहिते स्वः) [56]

शकुन्तला- (पठति[1])

तुज्झ ण आणे हिअअं मम उण मअणो दिवा अ रत्तिं च।
णिक्किव दावइ वलिअं तुअ हुत्त मणोरहाइं(इ) अङ्गाइं[2]॥ 3-18॥

(तव न जाने हृदयं मम पुनर्मदनो दिवा च रात्रौ च।
निष्कृप, तपति बलिकं त्वयि युक्तमनोरथानि चाङ्गानि[3]॥) [57]

राजा- (सहसोपसृत्य)

तपति तनुगात्रि मदनस्त्वामनिशं मां पुनर्दहत्येव।
ग्लपयति यथा शशाङ्कं न तथेह कुमुद्वतीं दिवसः॥ 3-19॥ [58]

सख्यौ- (विलोक्य सहर्षम्) साअदं जधा चिन्तिदफलस्स अविलम्विणो मणोरहस्स। (स्वागतं यथा चिन्तितफलस्य अविलम्बिनः मनोरथस्य।) [59]

शकुन्तला- (ससाध्वसा आत्मगतम्) हिअअ तधा उत्तमिअ इदाणिं ण किंचि पडिवज्जसि। (इत्युत्थातुम् इच्छति)। (हृदय, तथा उत्ताम्य इदानीं न किञ्चिदपि प्रतिपद्यसे।) [60]

राजा- अलमयासेन।

संदष्टकुसुमशयनान्याशुविवर्णितमृणालवलयानि।
गुरुपरितापानि न ते गात्राण्युपचारमर्हन्ति[4]॥ 3 -20॥ [61]

अनुसूया- इदो सिलातलेक्कदेसं अणुगेण्हदु पिअवअस्सो। (इतः शिलातलैकदेशम् अनुगृह्णातु प्रियवयस्यः) [62]

(शकुन्तला किञ्चित् पादावपसारयति[5]।) [63]

राजा- (उपविश्य) प्रियंवदे, कच्चित् न सखीं वो बाधते शरीरतापः?। [64]

प्रियंवदा- (सस्मितम्) लद्धोसधो दाणिं उवसमं गमिस्सदि। (लब्धौषध इदानीमुपशमं गमिष्यति।) [65]

अनुसूया- (जनान्तिकम्) पिअंवदे, कालेण किं, ण पेक्खसि मेहवादाहदं विअ गिम्हमोरिं णिमिसन्तरेण पच्चागदजीविअं पिअसहिं?। (प्रियंवदे, कालेन किम्, न प्रेक्षस्व मेघवाताहतामिव ग्रीष्ममयूरीं निमेषान्तरेण प्रत्यागतजीवितां प्रियसखीम्।) [66]

(शकुन्तला सलज्जा तिष्ठति[6]।) [67]

प्रियंवदा- महाराअ, दोण्णं पि वो अण्णोण्णाणुराओ पच्चक्खो। सखीसिणेहो उण मं पुनरुत्तवादिणिं करेदि। (महाराज, द्वयोरपि

---

1. रंगसूचनेयमसंगता प्रतिभाति। यतो हि- शकुन्तलया मदनलेख इदानीं लिखित एव नास्तीत्यवधेयम्।
2. मैथिल-पाठे वर्तमानेयं गाथाऽऽर्या छन्दसि। मध्यगुरुरस्ति षष्ठो गणः, 30+30 मात्रायुग्मेन रचितेयं गीतिः।
3. काश्मीर-पाठे "मम पुनः कामो" एवं च "तपति बलीयस्तवाभिमुखमनोरथान्यङ्गानि" इति पठ्यते।, मैथिल-बंगीय-पाठयोरपि भिन्न एव पाठः प्रवर्तितः। तेनानुमीयते रंगकर्मिणां भिन्नकर्तृत्वं त्रिष्वपि पाठेषु विलसति।
4. काश्मीर-पाठे "संस्पृष्ट0", "गुरुसंतापानी"ति।
5. काश्मीर-पाठे रंगसूचनेयं नास्ति।, मैथिल-पाठे रंगकर्मिणां वैशिष्ट्यमिदं दृश्यते।
6. काश्मीर-पाठेऽपि रंगसूचनेयमस्ति। किन्तु पुरोवर्तिनमुपमा-वाक्यं (उक्तिक्रमांक-66) प्रक्षिप्तं वर्तते। द्रष्टव्या च रंगसूचना (उक्ति-क्रमांक-92), तयापि सिध्यति यदिदं वाक्यं प्रक्षिप्तम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

वोऽन्योन्यानुरागः प्रत्यक्षः। सखीस्नेहः पुनर्मां पुनरुक्तवादिनीं करोति।) [68]

अनुसूया- एस णं धम्मो[1]। (एषो नो धर्मः।) [69]

राजा- विवक्षितं ह्यनुक्तमनुतापं जनयति। अस्मात्परं किं तत्[2]। [70]

प्रियंवदा- तेण हि इअं णो पिअसही तुमं जेव उद्दिसिअ भअवदा मअणेण इमं अवत्थं पाविदा। ता अरिहसि अब्भुववत्तीए जीविदं से अवलम्बिदुं। (तेन हि, इयं नः प्रियसखी त्वामेवोद्दिश्य भगवता मदनेन इममवस्थान्तरं प्रापिता। तदर्हस्यभ्युपपत्या जीवितमस्या अवलम्बितुम्।) [71]

राजा- भद्रे, साधारण एष प्रणयः[3]। सर्वथानुगृहीतोऽस्मि। [72]

शकुन्तला- (सस्मितम्) हला, अलं वो अन्तेउर-विरह[4]-पज्जुस्सुएण राएसिणा उवरुद्धेण। (हला, अलं वोऽन्तःपुर-विरह-पर्युत्सुकेन राजर्षिणा उपरुद्धेन।) [73]

राजा -

इदमनन्यपरायणमन्यथा हृदयसन्निहिते[5] हृदयं मम।
यदि समर्थयसे मदिरेक्षणे मदनबाणहतोऽस्मि हतः पुनः॥ 3 -21॥ [74]

अनुसूया- वअस्स, बहुवल्लहा राआणो होन्ति। ता जधा णो पिअसही बन्धुअणसोअणीआ ण भोदि तधा निव्वाहेसि। (वयस्य, बहुवल्लभा राजानो भवन्ति। तद्यथा नः प्रियसखी बन्धुजनशोचनीया न भवति, तथा निर्वाहयिष्यसि।) [76]

राजा- भद्रे, किं बहुना।

परिग्रहबहुत्वेऽपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य मे।
समुद्ररसना चोर्वी[6] सखी च युवयोरियम्॥ 3 -22॥ [77]

उभे- णिव्वुदाओ म्ह। (निर्वृत्ते स्वः।) [78]

शकुन्तला[7]- [< (हर्षं सूचयित्वा जनान्तिकम्) हला मरिसावेध लोअपालं। जं अम्हेहिं वीसद्धप्पलाविणीहिं उवआरादिक्कमेण भणिदं तं मरिसीअदु। (हला मर्षयतं लोकपालम्। यदस्माभिः विसंबद्ध- प्रलापिनीभिः उपचारातिक्रमेण भणितं तं मर्षयतु।) [79]

उभे- (सस्मितम्) जेण तं मन्तिदं सो ज्जेव तं मरिसावेदु। अण्णस्स जणस्स उण को पच्चओ?।

(येन तन्मन्त्रितं, सा एव मर्षयतु। अन्यस्य जनस्य पुनः कः प्रत्ययः।) [80]

शकुन्तला- अरिहदि क्खु महाराओ इमं पच्चक्खवअणं सोढुं। परोक्खं वा किं न मन्तीअदि?। (अर्हति खलु महाराजः इमं प्रत्यक्षवचनं सोढुम्। परोक्षं वा किं न मन्त्र्यते।) [81]

राजा-

---

1. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं नास्ति।
2. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं नास्ति।
3. काश्मीर-पाठे प्रथममिदं वाक्यं नास्ति।, ततश्च "सर्वथे"ति निपातोऽपि नास्ति।
4. काश्मीर-पाठे "0विहार0" इति शब्दः।, स चाधिकः श्रद्धेयः प्रतिभाति। उत्तरवर्तिन्यामुक्तौ बहुवल्लभेति शब्दस्य प्रयोगेण विहार-शब्दस्यैव समर्थनं भवति।
5. काश्मीर-पाठे "हृदयसन्निहिते"ति।
6. काश्मीर-पाठे "धर्मेणोल्लिखिता लक्ष्मीरि"ति।
7. काश्मीर-पाठात्स्वीकृतोऽयं पाठ्यांशः (उक्ति-क्रमांक 79 -84) प्रक्षिप्त एव।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अपराधमिमं ततः सहिष्ये यदि रम्भोरु तवाङ्गसङ्गसृष्टे।
कुसुमास्तरणे क्लमापहं मे स्वजनत्वादनुमन्यसेऽवकाशम्[1]॥ 3 -23॥>][82]

प्रियंवदा- णं एत्तिकेण ज्जेव तुट्ठी भविस्सदि[2]?। (ननु एतावतैव तुष्टिर्भविष्यति?।) [83]

शकुन्तला- विरम दुल्ललिदे। एदावत्थं गदाए वि मए कीडसि तुमं। (विरम दुर्ललिते। एतावदवस्थां गतया अपि मया क्रीडसि त्वम्।) [84]

अनुसूया- (बहिर्विलोक्य) सहि पिअंवदे, एस तवस्सी मिअपोदओ इदो तदो दिण्णदिट्ठी णूणं मादरं परिब्भट्ठो पज्जुसुओ मादरं अण्णेसदि। ता संजोएमि दाव णं। (सखि प्रियंवदे, एष तपस्वी मृगपोतक इतस्ततो दत्तदृष्टिः नूनं मातुः परिभ्रष्टः, पर्युत्सुको मातरमन्वेषयति। तत्संयोजयामि तावदेनम्।) [85]

प्रियंवदा- हला चवलो क्खु एसो दुव्विणीदो। ता ण एणं संजोइदुं एआइणी पारेसि। ता अहं पि सहाअत्तणं करइस्सं। (हला, चपलः खलु एष दुर्विनीतः। तस्मान्नैनम् संयोजयितुमेकाकिनी पारयसि।
तत अहमपि सहायतां करिष्यामि।) [86] (उभे प्रस्थिते)

शकुन्तला- हला, ण वो गमनं अनुमण्णे। असहाइणि म्हि। (हला, न वां गमनम् अनुमन्ये। असहायिनी अस्मि।[3]) [87]

उभे- (सस्मितम्) तुमं दाणि असहाइणी?। जं पुढवीणाहो[4] दे समीवे वट्टदि। (त्वमिदानीम् असहायिनी?! यः पृथिवीनाथः, स तव समीपे वर्तते।) [88] (इति निष्क्रान्ते)

शकुन्तला- कधं गदाओ पिअसहीओ?। (कथं गते प्रियसख्यौ।) [89]

राजा- (दिशोऽवलोक्य[5]) सुन्दरि, अलमावेगेन। नन्वयमाराधयिता जनस्ते सखीभूमौ वर्तते।

किं शीकरैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातं संचारयामि[6] नलिनीदलतालवृन्तम्।
अङ्के निधाय चरणावुत[7] पद्मताम्रौ संवाहयामि करभोरु यथासुखं ते।॥ 3-24॥ [90]

शकुन्तला- ण माणणीए जणे अत्ताणअं अवराहइस्सं। (न माननीये जने आत्मानमपराधयिष्ये।) [91]

(इति अवस्थासदृशमुत्थाय प्रस्थिता[8]) [92]

राजा- सुन्दरि, अपरिनिर्वाणो दिवसः। इयं च ते शरीरावस्था।

उत्सृज्य कुसुमशयनं नलिनीदल[9] कल्पितस्तनावरणा।
कथमातपे गमिष्यसि परिबाधाकोमलैरङ्गैः[10]॥ 3-25॥ [93]

(इति बलान्निवारयति[11]) [94]

---

1. काश्मीर-पाठे प्रक्षिप्तोऽयं श्लोकः परम्परया संप्राप्तः प्रतिभाति।
2. काश्मीर-पाठे "एत्तिएण उण दे तुट्ठि भवे।" इति।, मैथिल-पाठे भिन्नार्थकेन वाक्येनोच्यते।
3. काश्मीर-पाठे प्रियंवदा-शकुन्तलयोरुक्ती (उक्ति-क्रमांक 86-87) शब्दशः भिन्ने वर्तेते। तच्च रंगावृत्तित्वम्।
4. काश्मीर-पाठे "तुमं दाणि असहाइणी?" इति वाक्यं नास्ति।, तथा च "जो पुहवीए सरणं" इति पठ्यते।
5. काश्मीर-पाठे रंगसूचनेयं नास्ति।, मैथिल-पाठस्यापि रंगावृत्तित्वमेव दृढीभवति।
6. काश्मीर-पाठे "शीतलैरि"ति।, तथा च "संचालयामी"ति च।
7. एभिः शब्दैरेव ज्ञायते यदेतावत्पर्यन्तं शकुन्तलायाः शयनावस्था प्रदर्शनीयेति कवेर्दृश्य-योजनाऽऽसीत्।
8. द्रष्टव्ये (67-92 क्रमिके रंगसूचने)। अनयोर्विसंगतिरेव सूचयति यद् 67 क्रमांके स्थिता रंगसूचना प्रक्षिप्ता।
9. काश्मीर-पाठे "कदलीदल0", "0वरणम्" इति। आहार्यत्वेन योऽत्र भेदः प्रतीयते, स रंगकर्मिणां भेदं सूचयति।
10. काश्मीर-पाठे "परिपाण्डुरपेलवैरङ्गैः" इति।
11. काश्मीर-पाठे रंगसूचना नास्ति।, मैथिल-पाठानुसारेण रंगोपरि दुष्मन्तस्य सक्रियताधिका प्रदर्श्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला- मुञ्च मुञ्च। ण क्खु अहं अत्तणो पहवामि[1]। अहवा सहीमेत्तसरणा किं दाणिं एत्थ करइस्सं?।
(मुञ्च मुञ्च। न खल्वहमात्मनः प्रभवामि। अथवा सखीमात्रशरणा किमीदानीमत्र करिष्ये।) [95]

राजा- धिक्। व्रीडितोऽस्मि। [96]

शकुन्तला- ण क्खु अहं महाराअं भणामि, देव्वं उआलहामि। (न खल्वहं महाराजं भणामि, दैवमुपालभे।) [97]

राजा- अनुकूलकारि किमुपालभ्यते दैवम्?। [98]

शकुन्तला- कधं दाणिं ण उआलहिस्सं?। जं अत्तणो अणीसं मं परगुणेहिं लोहावेदी। (कथमिदानीं न उपालभे?।[2] यः आत्मनः अनीशां मां परगुणैः लोभयति।) [99]

राजा- [< (स्वगतम्)

अप्यौत्सुक्ये महति दयितप्रार्थनासु प्रतीपाः
काङ्क्षन्त्योऽपि व्यतिकरसुखं कातराः स्वाङ्गदाने।
आबाध्यन्ते न खलु मदनेनापि लब्धान्तरत्वा-
दाबाधन्ते मनसिजमपि क्षिप्तकालाः कुमार्यः[3]।। 3 -26।।>] [100]

(शकुन्तला गच्छत्येव[4]) [101]

राजा- कथमात्मनः प्रियं न करिष्ये?। [102] (उपसृत्य पटान्तरमवलम्बते[5]) [103]

शकुन्तला- (कृतकृतक-कोपा) पोरव, रक्ख अविणअं। इदो तदो इसीओ सञ्चरन्ति। (पौरव, रक्ष अविनयम्। इतस्तत ऋषयः सञ्चरन्ति।) [104]

राजा- [< सुन्दरि, अलं गुरुजनाद् भयेन। न ते विदितधर्मा तत्रभवान्कण्वः खेदमुपयास्यति। [105]

गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो हि मुनिकन्यकाः।
श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चानुमोदिताः[6]।। 3 -27।। >] [106]

(दिशोऽवलोक्य) कथं प्रकाशं निर्गतोऽस्मि[7]?। [107]

(ससंभ्रमं शकुन्तलां हित्वा तेनैव पथा पुनर्निवर्तते।) [108]

शकुन्तला- (पदान्तरे प्रतिनिवृत्य) पोरव, अणिच्छापूरओ वि खणमेत्तपरिचिदो अअं जणो ण विसुमरिदव्वो।
(पौरव, अनिच्छापूरकोऽपि क्षणमात्रपरिचितो[8]ऽयं जनो न विस्मर्तव्यः।) [109]

राजा- सुन्दरि,

---

1. काश्मीर-पाठे शकुन्तलाया वाक्यमिदं नास्ति।, यतो हि तत्र, दुष्यन्तेन सा बलान् निवारितेति न कथितम्।
2. काश्मीर-पाठे "कथमिदानीम् उपालप्स्ये" इति।, मैथिल-पाठे काकुभेदः स्पष्टं प्रतीयते।
3. स्वगतोक्तितया प्रस्तावितोऽयं श्लोकः प्रक्षिप्तः।, का.-पाठे "न वरप्रार्थनासु प्रतार्या" एवं "लब्धास्पदत्वादि"ति।
4. काश्मीर-पाठे "प्रस्थितैव" इति।
5. काश्मीर-पाठ "उत्थायोपसृत्य पटान्तादवलम्बते" इति।, एवञ्चेतः परं काश्मीर-पाठे काश्चनोक्तयः प्रक्षिप्ता अधिकाश्च वर्तन्ते। मैथिल-पाठात् ता निष्कासिताः सन्ति।, मैथिल-पाठस्य रंगकर्मिणामिदं वैशिष्ट्यम्।
6. काश्मीर-पाठे श्लोकोऽयं नास्त्येव। मैथिल-पाठ एवेदं प्रथमतया श्रूयते, प्रक्षिप्तश्चायमिति दृढं प्रतीयते। यतो हि शकुन्तलया "इतस्तत ऋषयः संचरन्ती" ति यद्भणितं, तेन सह "(दिशोऽवलोक्य) कथं प्रकाशं निर्गतोऽस्मि" इत्येव सन्धानं सहजं सातत्ययुक्तं च सिध्यति।, (मुनिकन्यका, अनुमोदिताश्चेति द्वौ शब्दौ दाक्षि.-पाठे परिवर्तितौ।)
7. काश्मीर-पाठे "कथं प्रकाशम् अस्मि निर्गतः" इति पदक्रमः दुष्यन्तस्य संभ्रमं ज्ञापयति।
8. काश्मीर-पाठे "दर्शनमात्रसुखद" इति।, बंगीय-पाठे "संभाषणमात्रकेणे"ति

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

त्वं दूरमपि गच्छन्ती हृदयं न जहासि मे।
दिनावसानच्छायेव पुरोमूलं वनस्पतेः॥ 3 -28॥ [110]

शकुन्तला- (आत्मगतम्) हद्धी हद्धी इमं सुणिअ ण मे चलणा पुरोमुहा पसरन्ति। भोदु, इमेहिं पज्जन्तकुरुवएहिं ओवारिदसरीरा पेक्खिस्सं दाव से भावाणुबन्धं। (तथा कृत्वा स्थिता) (हा धिक् हा धिक्। इमं श्रुत्वा न मे चरणौ पुरोमुखौ प्रसरतः। भवतु, एतैः पर्यन्तकुरबकैः अपवारितशरीरा प्रेक्षिष्ये[1] तावद् अस्य भावानुबन्धम्।) [111]

राजा- प्रिये, कथमेवमनुरागैरसं मामुत्सृज्य निरपेक्षैव गतासि।

अनिर्दयोपभोग्यस्य रूपस्य मृदुनः कथम्।
कठिनं[2] खलु ते चेतः शिरीषस्येव बन्धनम्॥ 3-29॥ [112]

शकुन्तला- एदं सुणिअ ण मे अत्थि विहवो गच्छिदुं। (एतच्छ्रुत्वा न मे अस्ति विभवो गन्तुम्।) [113]

राजा- सम्प्रति प्रियाशून्ये किमस्मिन् करोमि। (अग्रतोऽवलोक्य विचिन्त्य च) हन्त, व्याहतं गमनम्।

मणिबन्धाद् गलितमिदं[3] संक्रान्तोशीरपरिमलं तस्याः।
हृदयस्य निगडमिव मे मृणालवलयं स्थितं पुरतः॥ 3-30॥ [114]

(सबहुमानमादत्ते) [115]

शकुन्तला- (हस्तं विलोक्य) अम्भो, दोव्वल्लसिढिलदाए एदं परिब्भट्ठं मुणालवलअं मए ण विण्णादं।
(अम्मो, दौर्बल्यशिथिलतया एतत् परिभ्रष्टं मृणालवलयं मया न विज्ञातम्।) [116]

राजा- (मृणालवलयमुरसि निक्षिप्य[4]) अहो स्पर्शः। [117]

अनेन लीलाभरणेन ते प्रिये विहाय कान्तं भुजमत्र तिष्ठता।
जनः समाश्वासित एष दुःखभागचेतनेनापि सता, न तु त्वया॥ 3-31॥ [118]

शकुन्तला- अदो अवरं असमत्थम्हि अहं विलम्बिदुं। भवदु, एदेण ज्जेव ववदेसेण अत्ताणअं दंसइस्सं। (इत्युपसर्पति) (अतोऽपरम् असमर्थाऽस्मि अहं विलम्बितुम्। भवतु, एतेनैव व्यपदेशेनात्मानं दर्शयिष्यामि।) [119]

राजा- (दृष्ट्वा सहर्षम्) अये, जीवितेश्वरी मे प्राप्ता। परिदेवितानन्तरं प्रसादिनः खलूपकर्तव्योऽस्मि दैवस्य।

पिपासाक्षामकण्ठेन याचितं चाम्बु पक्षिणा[5]।
नवमेघोज्झिता चास्य धारा निपतिता मुखे॥ 3 -32॥ [120]

शकुन्तला- (राज्ञः सम्मुखे स्थिता) अज्ज, अद्धपथे सुमरिअ एदस्स हत्थब्भंसिणो मुणालवलअस्स किदे आअदम्हि। आचक्खिदं विअ मे हिअएण तए गहिदं ति। ता णिक्खिप एदं। मा अत्ताणअं मं च मुणिअणे असूअइस्ससि। (आर्य, अर्धपथे स्मृत्वा एतस्य हस्तभ्रंशिनः मृणालवलयस्य कृते आगतास्मि। आचक्षितमिव मे हृदयेन त्वया गृहीतमिति। तर्हि निक्षिप एतत्। मा आत्मानं मां च मुनिजने असूययिष्यति[6]।) [121]

राजा- एकेनाभिसन्धिना प्रत्यर्पयामि। [122]

---

1. काश्मीर-पाठ "एभिरार्यपुत्रस्य कुरबकैर्व्यवहिता पश्चाल्लतामण्डपकस्य प्रेक्षिष्ये0" इति।
2. काश्मीर-पाठे "तथा। दारुणमि"ति।
3. काश्मीर-पाठे "मणिबन्धविगलितमिदमि"ति।, मैथिल-पाठे न्यूनाक्षरत्वाच् छन्दोभङ्गो भवति।
4. काश्मीर-पाठे "वलयाभरणमुरसि विन्यस्ये"ति।, अनया रंगसूचनयाभिनयभेदो भविष्यति।
5. काश्मीर-पाठे "चाल्पयाचिने"ति पठ्यते।
6. काश्मीर-पाठे "सूचयिष्यसि"ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला- भण[1]। [123]

राजा - यद्यहमेव यथास्थानं निवेशयामि। [124]

शकुन्तला- (स्वगतम्) का गदी?। (प्रकाशम्) एवं करेहि। (का गतिः। एवं कुरु।) [125]

(इत्युपसर्पति[2]) [126]

राजा- इतः शिलापट्टकमेव संश्रयावः। [127]

(उभौ परिक्रम्योपविष्टौ) [128]

राजा- (शकुन्तलाया हस्तमादाय आत्मगतम्।)

अहो स्पर्शः।

हरकोपाग्निदग्धस्य दैवेनामृतवर्षिणा।
प्ररोहः संभृतो भूयः किंस्वित् कामतरोरयम्॥ 3 -33॥ [129][3]

शकुन्तला- (स्पर्शं रूपयित्वा[4]) तुवरदु तुवरदु अज्जउत्तो। (त्वरतां त्वरतामार्यपुत्रः।) [130]

राजा- (सहर्षमात्मगतम्) इदानीमस्मि विश्वसितः। भर्तुराभाषणपदमेतत्[5]। (प्रकाशम्) सुन्दरि, नातिशिलष्टः सन्धिरस्य मृणालवलयस्य। तदन्यथा घटयितव्यः[6]। [131]

शकुन्तला- (विहस्य)[7] जधा दे रोअदि। (यथा ते रोचते।) [132]

राजा- (सव्याजं विलम्ब्य प्रतिमुच्य) सुन्दरि, दृश्यताम्।

अयं स ते श्यामलतामनोहरं विशेषशोभार्थमिवोज्झिताम्बरः[8]।
मृणालरूपेण नवो निशाकरः करं समेत्योभयकोटिमाश्रितः॥ 3 -34॥ [133]

शकुन्तला- ण दाव पेक्खामि। पवनकम्पिणा कण्णुप्पलरेणुणा कलुसीकिदा मे दिट्ठी। (न तावद् पश्यामि। पवनकम्पिना कर्णोत्पलरेणुना कलुषीकृता मे दृष्टिः।) [134]

राजा- (सस्मितम्) यदि मन्यसे, तदहमेनां मुखमारुतेन[9] विशदां करिष्ये। [135]

शकुन्तला- तदो अणुकम्पिदा भवे। अहं ण उण दे वीससिमि। (तत अनुकम्पिता भवेयम्। अहं न पुनः ते विश्वसिमि[10]।) [136]

राजा- मा मैवम्। नवो हि परिजन आदेशात्परं नातिवर्तते[11]। [137]

---

1. काश्मीर-पाठे "केने"ति।
2. काश्मीर-पाठे "एवं करेहि" इति वाक्यं नास्ति।, रंगसूचना चेयं नास्ति।
3. श्लोकोऽयं न प्रक्षिप्तः स्यात्। प्रसंगेऽस्मिन् श्लोकोऽयमुचितो मौलिकश्च प्रतिभाति।
4. काश्मीर-पाठे "हर्षरोमाञ्चं रूपयती"ति।
5. काश्मीर-पाठे "भर्तुराभाषणेने"ति।, वाक्यमिदं प्रक्षिप्तं प्रतिभाति।
6. काश्मीर-पाठे "यदि तेऽभिप्राय एतद् अन्यथा घटयिष्यामी"ति। दुष्यन्तस्य स्त्रीदाक्षिण्यं विलसत्यत्र।
7. काश्मीर-पाठ इतः पूर्वम्, "कालक्खेवकुसलो" इत्यधिकं पठ्यते।
8. काश्मीर-पाठे "अयं हि ते श्यामलतामनोहरो0" इति।
9. काश्मीर-पाठे "वदनमारुतेने"ति शब्दः।
10. काश्मीर-पाठे "नोपनते विश्वसिमी"ति।
11. काश्मीर-पाठे "नवो हि परिजनः सेव्यानामादेशात् परं न वर्तते।" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला- अअं जेव दे अच्चाअरो अविस्सासजणओ। (अयमेव तेऽत्यादरोऽविश्वासजनकः[1]।) [138]

राजा- नाहमेवं रमणीयमात्मनः सेवावकाशं शिथिलयिष्ये। (मुखमुन्नमयितुं प्रवृत्तः। शकुन्तला अकामप्रतिषेधं रूपयन्ती विरमति[2]।) [139]

राजा- पर्यश्रु-ताम्रेक्षणे, अलमस्मदविनयाशङ्कया। [140]

(शकुन्तला किञ्चिद् दृष्ट्वा अवनतमुखी तिष्ठति) [141]

राजा- (अङ्गुलीभ्यां मुखमुन्नमय्यात्मगतम्) [142]

[<चारुणा स्फुरितेनायमपरिक्षतकोमलः।
पिपासतो ममानुज्ञां ददातीव[3] प्रियाधरः॥ 3 -35॥ [143]>][4]

शकुन्तला- पडिण्णादमन्थरो विअ अज्जउत्तो। (प्रतिज्ञातमन्थर इवार्यपुत्रः।) [144]

राजा- सुन्दरि, कर्णोत्पलसान्निध्यादीक्षणसादृश्यमूढोऽस्मि। (मुखमारुतेन चक्षुः सेवते[5]।) [145]

शकुन्तला- भो पइदित्थिददंसणम्हि संवुत्ता। लज्जामि उण अणुवआरिणी पिअआरिणो अज्जउत्तस्स। (भोः, प्रकृतिस्थितदर्शनास्मि संवृत्ता। लज्जे पुनरनुपकारिणी प्रियकारिण आर्यपुत्रस्य।) [146]

राजा- सुन्दरि, किमन्यत्।

इदमप्युपकृतिपक्षे सुरभि मुखं ते मया यदाघ्रातम्।
(सस्मितम्)न तु कमलस्य मधुकरः सन्तुष्यति गन्धमात्रेण[6]॥ 3 -36॥ [147]

शकुन्तला- (विहस्य) असंतोसे उण किं करेदि?। (असन्तोषे पुनः किं करिष्यति।) [148]

राजा- इदमिदम्। (इति व्यवसितः), (शकुन्तला वक्त्रं ढौकते[7]।) [149]

(नेपथ्ये)

अइ चक्कवाअवहु। आमन्तेहि सहअरं। उवत्थिदा रअणी[8]।

(अयि चक्रवाकवधु! आमन्त्रयस्व सहचरम्। उपस्थिता रजनी।) [150]

शकुन्तला- (कर्णं दत्त्वा ससंभ्रमम्) अज्जउत्त। एसा क्खु मम वुत्तन्तोपलम्भणिमित्तं अज्जा गोदमी आअदा। ता विडवनतरिदो होहि। (आर्यपुत्र, एषा खलु मम वृत्तान्तोपम्भनिमित्तम् आर्या गौतमी आगता[9]। तस्माद् विटपान्तरितो भव।) [151]

राजा- तथा। (इत्येकान्ते स्थितः[10])। [152]

---

1. काश्मीर-पाठ "एष एव तेऽत्युपचारोऽविश्रम्भजनकः" इति।
2. काश्मीर-पाठे "विहरती"ति भिन्नमेव क्रियापदम्।
3. काश्मीर-पाठे "करोत्येवे"ति क्रियापदम्।
4. अयमपि श्लोकः प्रक्षिप्तः स्यात्। ददातीति क्रियापदेन सह *"ममे"* ति षष्ठ्यन्तस्य पदस्यासाधुत्वात्।
5. काश्मीर-पाठे "नेत्रं सिञ्चती"ति।
6. काश्मीर-पाठ "इदमप्युपकृतमबले" इति।
7. काश्मीर-पाठ उत्तरवर्तिनीयं रंगसूचना नास्ति।, शङ्करस्तु लिखति "ढौकते पिधत्ते" इत्यर्थः।
8. काश्मीर-पाठ "आर्या गौतमी" इत्येव वर्तते।
9. काश्मीर-पाठे "पौरव", "मम शरीरवृत्तान्तोप0", "तातस्य धर्मकनीयसी" इति।
10. काश्मीर-पाठे "तथा करोति"। (काश्मीर-रंगभूमौ कस्यचिद्विटपस्यावस्थानं स्यादिति प्रतीयते।)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

गौतमी- (प्रविश्य शान्त्युदकपात्रहस्ता) जाद, सन्तिउअअं। कुदो चिट्ठसि[1]? (दृष्ट्वा) अच्चाहिदं। असुत्था दाणि देवदासहाइणी चिट्ठसि?। (जाते, शान्त्युदकम्। कुतः तिष्ठसि। अत्याहितम्। अस्वस्था इदानीं देवता-सहायिनी तिष्ठसि।) [153]

शकुन्तला- इदाणिं जेव पिअंवदाअणुसूआओ [2]मालिणिं अवदिण्णाओ। (इदानीमेव प्रियंवदानुसूये मालिनीम् अवतीर्णे।) [154]

गौतमी- (शान्त्युदकेन[3] शकुन्तलामभ्युक्ष्य)[4] जाद, अवि लहुसंतावाइं दे अङ्गाइं?। (जाते, अपि लघुसंतापानि ते अङ्गानि।) [155] (इति स्पृशति[5])

शकुन्तला- अज्जे, अत्थि विसेसो। (आर्ये, अस्ति विशेषः।) [156]

गौतमी- तेण हि णिराबाधा चिरं मे जीव। जाद,परिणदो दिअसो। ता एहि। उडअं जेव गच्छम्ह। (तेन हि निराबाधा चिरं मे जीव। जाते, परिणतो दिवसः। तदेहि, उटजमेव गच्छावः।) [157]

शकुन्तला- (कथंचिदुत्थायात्मगतम्) हिअअ, पढुमं सुहोवणदे मणोरहे कालहरणं करेसि। सम्पदं अधण्णाए वट्टिदस्य किं पि पडिवज्जसि। (इति पदान्तरे प्रतिनिवृत्य प्रकाशम्)लदाहरअ संतावहारअ। आमन्तेमि दे पुणो वि परिभोअत्थं। (हृदय, प्रथमं सुखोपनते मनोरथे कालहरणं करोषि। साम्प्रतम् अधन्यया वर्धितस्य किमपि प्रतिपद्यसे[6]। लतागृहक, संतापहारक[7], आमन्त्रयामि ते पुनरपि परिभोगार्थम्।) [158]

(इति निष्क्रान्ते)

राजा- (पूर्वस्थानमवलोक्य सनिःश्वासम्)अहो विघ्नवत्यः प्रार्थितसिद्धयः। [159]

मुहुरङ्गुलिसंवृत्ताधरोष्ठं प्रतिषेधाक्षरविक्लवाभिरामम्[8]।
मुखमंसविवर्ति पक्ष्मलाक्ष्याः कथमप्युन्नमितं न चुम्बितं तत्[9]। 3-37।। [160]

क्व नु खलु गच्छामि सम्प्रति? अथवा इहैव प्रियापरिभुक्ते मण्डपे मुहूर्तं तिष्ठामि[10]। [161]

(सर्वतोऽवलोक्य)

तस्याः पुष्पमयी शरीरलुलिता शय्या शिलायामियं
कान्तो मन्मथलेख एष नलिनीपत्रे नखैरर्पितः।
हस्ताद्भ्रष्टमिदं बिसाभरणमित्यासज्यमानेक्षणो[11]
निर्गन्तुं सहसा न वेतसगृहादीशोऽस्मि शून्यादपि।। 3-38।। [162]

---

1. काश्मीर-पाठे वाक्यद्वयमेतन्नास्ति।, मैथिल-रंगकर्मिणां चातुर्यमत्रावलोक्यते।
2. काश्मीर-पाठे "पिअंवदामिस्साओ" (प्रियंवदामिश्राः) इति।
3. काश्मीर-पाठे "दर्भोदकेने"ति।
4. काश्मीर-पाठ इतः पूर्वम्, "वत्से, निराबाधा त्वं चिरं जीवे"ति वाक्यं पठ्यते।, तच्चाधस्तादत्र पठ्यते।
5. काश्मीर-पाठे रंगसूचनेयं नास्ति।
6. काश्मीर-पाठे "ऽनुशयविघट्टितस्य कथं ते साम्प्रतम्" इति।
7. काश्मीर-पाठे सम्बोधनमिदं नास्ति।
8. काश्मीर-पाठे "0विक्लवाभिधानम्" इति।
9. काश्मीर-पाठे "न चुम्बितं तु" इति। (आनन्दवर्धनेनापि श्लोकेऽस्मिन् तुकारस्य व्यञ्जकता कथिता।), मैथिल-पाठे तदिति सर्वनामपदं मुखं लक्ष्यीकृत्य प्रयुक्तम्, किन्तु चुम्बनाभिनये नोपकारकं भवति।
10. काश्मीर-पाठे "ऽतिमुक्तलतावलये स्थास्यामी"ति।
11. काश्मीर-पाठे "0त्यासाद्य हीनेक्षणान्" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

[<हा हा धिक्, न सम्यगाचेष्टितं प्रियां समासाद्य कालहरणं कुर्वता मया। तदिदानीं -

रहः प्रत्यासत्तिं यदि सुवदना यास्यति पुन-
र्न कालं हास्यामि प्रकृतिदुरवापा हि विषयाः।
इति क्लिष्टं विघ्नैर्गणयति च मे मूढहृदयं
प्रियायाः प्रत्यक्षं किमपि च तथा कातरामिव[1]।। 3 -39।।>][163]

(नेपथ्ये)

भो भो राजन्। [164]

सायन्तने सवनकर्मणि संप्रवृत्ते, वेदीं हुताशनवतीं परितः प्रकीर्णाः[2]।
छायाश्चरन्ति बहुधा भयमादधानाः सन्ध्याभ्रकूटकपिशाः पिशिताशनानाम्।। 3-40।। [165]

राजा- भो भोस्तपस्विनः, मा भैष्ट। अयमहमागच्छामि।

(इति साटोपं परिक्रामति[3]।) [166]

।। इति शृङ्गारभोगो नाम[4] तृतीयोऽङ्कः।। [167]

---

1. काश्मीर-पाठे प्रक्षिप्तोऽयं श्लोकः परम्परागतः प्रतिभाति।, काश्मीर-पाठे "प्रणयिदुरवापा", "0मिदम्"।
2. काश्मीर-पाठे "प्रयस्ताम्" इति।
3. काश्मीर-पाठे रंगसूचनेयं नास्ति।
4. काश्मीर-पाठे प्रत्येकानाम् अङ्कानां नामानि न दीयन्ते।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ चतुर्थोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशतः कुसुमावचयं नाटयन्त्यौ सख्यौ[1]) [1]

अनुसूया- पिअंवदे,जइ वि गन्धव्वेण विआहेण णिव्वुत्तकल्लाणा पिअसही सउन्तला अणुरूवभत्तिभाइणी संवुत्ता, तधा वि ण णिव्वुदं मे हिअअं। एत्तिकं दाणिं चिन्तणीयं। (प्रियंवदे, यद्यपि गान्धर्वेण विवाहेन निर्वृत्तकल्याणा प्रियसखी शकुन्तला अनुरूपभर्तृभागिनी संवृत्ता, तथापि न निर्वृत्तं मे हृदयम्। एतावदिदानीं चिन्तनीयम्[2]।) [2]

प्रियंवदा- किं ति?। (किमति।) [3]

अनुसूया- जहा सो राआ इट्ठिपरिसमत्तीए इसीहिं पेसिदो हत्थिणाउरं णअरं पविसिअ अन्तेउरिआसमागदो इमं जणं सुमरेदि ण वेत्ति। (यथा स राजा इष्टिपरिसमाप्तौ ऋषिभिः प्रेषितः[3], हस्तिनापुरं[4] नगरं प्रविश्य, अन्तःपुरिकासमागतो इमं जनं[5] स्मरिष्यति, न वेति।) [4]

प्रियंवदा- एत्थ दाव वीसत्था होहि। ण हि तादिसा आकिदिविसेसा गुणविरोहिणो होन्ति। एत्तिकं उण चिन्तणीयं। तादो दाणिं तित्थादो पडिणिअत्तो इमं वुत्तन्तं सुणिअ ण आणे किं पडिवज्जइस्सदि त्ति।

(अत्र तावद् विश्वस्ता भव। न हि तादृशा आकृतिविशेषा गुणविरोधिनो भवन्ति। एतावत् पुनः चिन्तनीयम्। तात इदानीं तीर्थात्प्रतिनिवृत्तः, इमं वृत्तान्तं श्रुत्वा, न जाने किं प्रतिपत्स्यत इति।) [5]

अनुसूया- जधा मं पुच्छसि तधा अणुमदं तादस्स। (यथा मां पृच्छसि, तथा अनुमतं तातस्य।) [6]

प्रियंवदा- कधं विअ?। (कथमिव।) [7]

अनुसूया- अणुरूवस्स वरस्स हत्थे कण्णका पडिवादणीअ त्ति अअं दाव तस्स पढ्मो संकप्पो। तं जइ देव्वं जेव सम्पादेदि णं कदत्थो गुरू। (अनुरूपस्य वरस्य हस्ते कन्यका प्रतिपादनीयेति अयं तावत् तस्य प्रथमः संकल्पः। तं यदि दैवमेव सम्पादयति, नूनं कृतार्थो गुरुः।) [8]

प्रियंवदा- एवं णेदं। (पुष्पभाजनम् अवलोक्य) अवचिदाइं बलिकम्मपज्जत्ताइं कुसुमाइं। (एवं नु इदम्। अवचितानि बलिकर्मपर्याप्तानि कुसुमानि।) [9]

अनुसूया- णं सउन्तलाए वि सोहग्गदेवदाओ अच्चणीआओ। ता अवराइं पि अवचिणुम्ह[6]। (ननु शकुन्तलयापि सौभाग्यदेवता अर्चनीयाः। तस्माद् अपराण्यप्यवचिनुवः।) [10]

प्रियंवदा- जुज्जदि। (युज्यते।) (उभे तदेव कर्माभिनयतः[7]) [11]

---

1. काश्मीर-पाठे तपस्विकन्यक इति पठ्यते।
2. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं नास्ति।
3. काश्मीर-पाठे विसर्जित इति पठ्यते।
4. काश्मीर-पाठ आत्मन इति पठ्यते।
5. काश्मीर-पाठे प्रविश्यान्तःपुरम् इतो गतमिति पठ्यते।
6. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं नास्ति।
7. काश्मीर-पाठे "कर्म नाटयत"इति पठ्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(नेपथ्ये)

अहमहं भोः ....। [12]

अनुसूया- (कर्णं दत्त्वा) सहि, अदिधिणा विअ णिवेदिदं। (सखि, अतिथिनेव निवेदितम्।) [13]

प्रियंवदा- णं उडए ज्जेव सउन्तला सण्णिहिदा। (ननु उटज एव शकुन्तला सन्निहिता।) [14]

अनुसूया[1] - आं, अज्ज उण असण्णिहिदा हिअअएण। (आम्, अद्य पुनः असंनिहिता हृदयेन।) [15]

प्रियंवदा- भोदु, एत्तिकेण कुसुमेहिं पओअणं।[2] (उभे प्रस्थिते) (भवतु, एतावतैः कुसुमैः प्रयोजनम्।) [16]

(पुनर्नेपथ्ये)

आः अतिथिं, मां परिहरसि।[3] [17]

विचिन्तयन्ती यम् अनन्यमानसा तपोनिधिं[4] वेत्सि न मामुपस्थितम्
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन् कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव॥ 4-1॥ [18]

(उभे श्रुत्वा विषण्णे) [19]

प्रियंवदा- हद्धी हद्धी तं जेव संवुत्तं। कस्सिं पि पूआरहे अवरद्धा सुण्णहिअआ पिअसही। (हा धिक् हा धिक्। तदेव संवृत्तम्। कस्मिन् अपि पूजार्हे अपराद्धा शून्यहृदया प्रियसखी।) [20]

अनुसूया- (विलोक्य) सहि, ण क्खु जस्सिं कस्सिं वा। एसो दुव्वासा सुलहकोवो महेसी अविरलं तुरिदाए गदीए पडिणिअत्तो। (सखि, न खलु यस्मिन् कस्मिन् वा। एष दुर्वासा सुलभकोपो महर्षिः। अविरलया त्वरितया गत्या प्रतिनिवृत्तः[5]।) [21]

प्रियंवदा- को अण्णो हुअवहादो डहिदुं पहवदि। ता गच्छ। पाएसुं पणमिअ णिअत्तावेहि। जाव से अहं पि अग्घोअअं उवकप्पेमि। (कोऽन्यः हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति। तद् गच्छ। पादेसु प्रणम्य, निवर्तय[6]। यावद् अस्याहम् अपि अर्घोदकमुपकल्पयामि।) [22]

अनुसूया- तथा। (इति निष्क्रान्ता) (तथा।) [23]

प्रियंवदा- (पदान्तरे स्खलितं रूपयन्ती) अम्मो, आवेअक्खलिदाए मे परिब्भट्ठं अग्गहत्थादो पुप्फभाअणं। (अम्मो, आवेगस्खलिताया मे परिभ्रष्टमग्रहस्तात् पुष्पभाजनम्।) (पुष्पावचयमादत्ते[7]।) [24]

अनुसूया- (प्रविश्य) सहि सरीरी विअ कोवा कस्स वि सो अणुणअं ण गेह्लादि[8]। किंचि उण सानुकम्पो कदो। (सखि, शरीरीव कोपः, कस्यापि सोऽनुनयं न गृह्णाति। किञ्चित्पुनः सानुकम्पः[9] कृतः।) [25]

---

1. काश्मीर-पाठ उक्तिरियमुपरि भागे स्थितायाः (उक्ति-क्रमांकः 14) प्रियंवदाया एव मुखे वर्तते।
2. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदम् अनसूयाया मुखे वर्तते।, मैथिल-पाठे रंगकर्मिभिः कृतं परिवर्तनं प्रियंवदाया व्यक्तित्वेन सह न संगच्छते।
3. काश्मीर-पाठ "आ अतिथिपरिभाविनी"ति पठ्यते।, अत्र मैथिल-पाठे मामिति शब्देन दुर्वाससः अहङ्कारो व्यज्यते। रंगकर्मिणामिदं कर्तृत्वम्। (रसचन्द्रिकायां शङ्करेण तु काश्मीर-पाठ एव स्वीकृतः।)
4. काश्मीर-पाठे "यतोऽतिथिम्" इति पठ्यते।, मै.-पाठेऽनेन शब्देन दुर्वाससो घमण्डोऽपि कथ्यते।
5. काश्मीर-पाठे "हुताश इव त्वरितपादो॰" इति पठ्यते।
6. काश्मीर-पाठे प्रसादयैनम् इति।
7. काश्मीर-पाठे "तत् पुनरप्यवचेष्यामि। (तथा करोति)" इति पठ्यते।, पाठभेदोऽयं रंगावृत्तित्वं द्योतयति।
8. काश्मीर-पाठे "सरीरबद्धो॰", "कस्स सो अणुणअं गेण्हदि" इति च।
9. काश्मीर-पाठे "सानुक्रोशः" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रियंवदा- णं क्खु एदं जेव तस्सिं बहुदरं। ता कधेहि कधं दाणि सो तुए पसादिदो। (नूनं खलु एतदेव तस्मिन् बहुतरम्। ततः कथय कथमिदानीम् स त्वया प्रसादितः।) [26]

अनुसूया- सहि, सो जदा णिअत्तिदुं ण इच्छदि, तदा पादेसुं पणमिअ विण्णाविदो मए। भअवं। पढुमं भत्तिं अवेक्खिअ अज्ज तव अविण्णदप्पहावपरमत्थस्स दुहिदाजणस्स भअवदा एसो अवराधो मरिसिदव्वोत्ति। (सखि, स यदा निवर्तितुं नेच्छति, तदा पादयोः प्रणम्य[1], विज्ञापितो मया। भगवन्, प्रथमां भक्तिमवेक्ष्य अद्य तव अविज्ञातप्रभावपरमार्थस्य दुहितृजनस्य भगवता एष अपराधो मर्षितव्य इति।) [27]

प्रियंवदा- तदो तदो। (ततस्ततः।) [28]

अनुसूया- तदो सो भणादि- ण मे वअणं अण्णधा भविदुं अरिहदि। किं तु अहिण्णाणाहरणदंसणादो सावो णिअत्तइस्सदि त्ति मन्तअन्तो ज्जेव अन्तरहिदो। (ततः सो भणति। न मे वचनमन्यथा भवितुमर्हति।

किन्तु अभिज्ञानाभरणदर्शनेन शापो निवर्तिष्यत इति, मन्त्रयन्नेवान्तर्हितः।) [29]

प्रियंवदा- सक्कं दाणि अस्ससिदुं। अत्थि उण तेण राएसिणा पत्थिदेण णामधेअङ्किदं अत्तणो अङ्गुलीअअं सुमरावणीअ त्ति सउन्तलाए सअं पिणद्धं। ता से साहीणो उवाओ भविस्सदि। (शक्यमिदानीम् आश्वासयितुम्। अस्ति पुनः तेन राज्ञा प्रस्थितेन नामधेयाङ्कितमात्मनोऽङ्गुलीयकं स्मरणीयमिति शकुन्तलायै स्वयं पिनद्धम्। तस्मात् तस्याः स्वाधीन[2] उपायो भविष्यति।) [30]

अनुसूया- एहि। देवदाकज्जं दाव णिव्वुत्तम्ह[3]। (एहि, देवताकार्यं तावत् निवर्त्तयाव[4]।) [31]

(इति परिक्रामतः)

प्रियंवदा - (विलोक्य) अणुसूए, पेक्ख दाव वामहत्थ-विणिहिदवअणं आलिहिदं विअ पिअसहिं। भत्तुगदाए चिन्ताए अत्ताणअं पि एसा ण विहावेदि। किं उण अदिधिविसेसं। (अनुसूये, प्रेक्षस्व तावत् वामहस्तविनिहितवदनाम् आलिखितामिव प्रियसखीम्। भर्तृगतया चिन्तया आत्मानमपि एषा न विभावयति। किं पुनरतिथिविशेषम्[5]।) [32]

अनुसूया- पिअंवदे, दोहिं ज्जेव णो मुहे एसो साववुत्तन्तो चिट्ठदु[6]। रक्खणीआ क्खु पइदिपेलवा पिअसही।

(प्रियंवदे, द्वयोरेव नौ मुखे एष शापवृत्तान्तः तिष्ठतु। रक्षणीया खलु प्रकृतिपेलवा प्रियसखी।) [33]

प्रियंवदा- को दाणि उण्होदएण[7] णोमालिअं सिञ्चेदि। (क इदानीम् उष्णोदकेन नवमालिकां सिञ्चति।) [34]

(इत्युभे निष्क्रान्ते) (इति प्रवेशकः) [35]

(ततः प्रविशति सुप्तोत्थितः कण्वशिष्यः) [36]

शिष्यः- वेलोपलक्षणायादिष्टोऽस्मि तत्रभवता प्रवासात्[8] प्रतिनिवृत्तेन कण्वेन[9]। तत्प्रकाशं निर्गत्यावलोकयामि किन्ववशिष्टं

---

1. काश्मीर-पाठे पदद्वयमिदं नास्ति।
2. काश्मीर-पाठे "तस्मिंश्च स्वाधीन" इति पठ्यते।
3. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं नास्ति। मैथिल-पाठे प्रथमं वारमिदं प्रक्षिप्यते। येन च प्रियंवदाया मुखादुच्चारितं वाक्यम् अनुसूयाया मुखे संप्राप्तम्। (अत्र 33 क्रमांके स्थितं वाक्यं काश्मीर-पाठे प्रियंवदाया मुखे वर्तते।)
4. मैथिल-पाठे शङ्करो लिखति यत्- से अस्याः शकुन्तलायाः देवताकार्यं गौर्यादिपूजनं तावन्निवर्तयावः इति।, अर्थात् शकुन्तलया देवतार्चनं कर्तव्यमिति पूर्वं यदुक्तमासीत्, तस्य विसंवादि प्रक्षिप्तञ्चेदं वाक्यम्।
5. काश्मीर-पाठे "किं पुनरागन्तुकम्" इति पठ्यते।, एतदधिकं समीचीनं प्रतिभाति।
6. काश्मीर-पाठे प्रस्तावोऽयं प्रियंवदयोच्यते।
7. काश्मीर-पाठे "तावोदएण (तापोदकेने)" ति पठ्यते।
8. काश्मीर-पाठे प्रभासादिति पठ्यते।
9. काश्मीर-पाठे (सर्वत्र) काश्यपेनेति लिख्यते, मैथिल-बंगीय-पाठयोस्तु कण्वेनेति पठ्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

रजन्या इति। (परिक्रम्यावलोक्य च)हन्त प्रभातम्। तथा हि-[37]

कर्कन्धूनामुपरि तुहिनं रञ्जयत्यग्रसन्ध्या
दार्भं मुञ्चत्युटजपटलं वीतनिद्रो मयूरः।
वेदिप्रान्तात्खुरविलिखितादुत्थितश्चैष सद्यः
पश्चादुच्चैर्भवति हरिणः स्वाङ्गमायच्छमानः[1]॥ 4-2॥ [38]

अपि च-

पादन्यासं क्षितिधरगुरोर्मूर्ध्नि कृत्वा सुमेरोः
क्रान्तं येन क्षयिततमसा मध्यमं धाम विष्णोः।
सोऽयं चन्द्रः पतति गगनादल्पशेषैर्मयूखै-
र्दूरारोहो[2] भवति महतामप्यपभ्रंशनिष्ठः[3]॥ 4-3॥ [39]

[<अपि च। यत्सत्यं सूर्याचन्द्रमसौ जगतोऽस्य संपद्विपत्योरनित्यतां दर्शयत इव। तथाहि-

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनामाविष्कृतारुणपुरस्सर एकतोऽर्कः।
तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां लोको नियम्यत इव व्यसनोदयेषु[4]॥ 4-4॥ [40]

अपि च-

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा।
इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य दुःखानि नूनमतिमात्रदुरुद्वहानि[5]॥ 4-5॥[6] [41] >]

(प्रविश्यापटीक्षेपेण)

अनुसूया- एवं पि णाम विसअपरम्मुहस्स एवं ण विदिदं जधा तधाविधेण राएसिणा सउन्तलाए अणज्जमाचरिदं ति। (एवमपि नाम विषयपराङ्मुखस्य एवं न विदितं यथा तथाविधेन राजर्षिणा शकुन्तलाया अनार्यमाचरितमिति।) [42]

शिष्यः- यावदुपस्थितां होमवेलां गुरवे निवेदयामि[7]। (इति निष्क्रान्तः) [43]

अनुसूया- णं पभादवेला। तं णिद्दं पडिच्चआमि[8]। अधवा पलिबुद्धा वि दाणिं किं करइस्सं। ण मे उइदेसुं पभादकरणीएसुं हत्था पसरन्ति। सकामो दाणिं कामो भोदु जेण णो पिअसही सुद्धहिअआ असच्चसन्धे जणे पदं कारिता। (स्मृत्वा)अधवा ण तस्स राएसिणो अवराहो। एसो दुव्वासा-सावो क्खु पहवदि। अण्णधा कधं दाणिं सो राएसी तादिसाइं मन्तिअ एत्तिकस्स वि कालस्स वत्तामेत्तकं पि ण विसज्जेदि। (विचिन्त्य) इदो अहिण्णाणअङ्गुलीयकं विसज्जेमि त्ति। अधवा णिअदुःखसीले तवस्सिजणे को अब्भत्थीअदु? णं सहीगामिदोसो त्ति कदुअ ववसिदाओ वि ण पारेम्ह तादकण्णस्स दुस्सन्तपरिणीदं आवण्णसत्तं पियसहिं णिवेदिदुं। एत्थ दाणिं किं णु क्खु अम्हेहिं करणीअं?। (ननु

---

1. काश्मीर-पाठे गात्रमायच्छमान इति पठ्यते।
2. काश्मीर-पाठे "सोमः", "सूरारोहो"इति च पठ्येते।
3. काश्मीर-पाठे कर्कन्धूनामिति, पादन्यासमिति श्लोकयोरेव प्राथम्यं प्राप्यते। तद्वन्मैथिल-पाण्डुग्रन्थेष्वपि तयोः प्राथम्यं दृश्यते। किन्तु टीकाकारेण शङ्करेण, बंगीय-पाठपरम्परायाञ्च तयोः श्लोकयोः पाठक्रमांकं परिवर्त्य, तौ तृतीयचतुर्थ-क्रमांकयोः स्थापितौ।
4. काश्मीर-पाठ "इवात्मदशान्तरेषु" इति पठ्यते।
5. काश्मीर-पाठे "दूरमतिमात्रदुरुत्सहानी"ति पठ्यते।
6. काश्मीर-पाठात् समागतौ (कोष्ठान्तर्गतौ) श्लोकौ प्रक्षिप्तौ स्तः। पुनरुक्तिदोषग्रस्तत्वात्। अपि चेति निपातस्य स्वारस्यमपि प्रसंगेऽस्मिन् न संघटते।, द्रष्टव्यम्- धीमहि, (अंक-3) पृ. 76-89), एरानाकूलम्, 2012
7. काश्मीर-पाठ उपस्थितां वेलां निवेदयामीत्येव वाक्यं वर्तते।
8. काश्मीर-पाठे वाक्यद्वयमिदं नास्ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रभातवेला। अतो निद्रां परित्यजामि। अथवा प्रतिबुद्धापि इदानीं किं करिष्यामि। न मे उचितेषु प्रभातकरणीयेषु हस्तौ प्रसरतः। सकाम इदानीं कामो भवतु, येन नः प्रियसखी शुद्धहृदया[1] असत्यसन्धे जने पदं कारिता। अथवा न तस्य राजर्षेरपराधः। एषो दुर्वाससः शापः खलु प्रभवति। अन्यथा कथमिदानीं स राजर्षिः तादृशानि मन्त्रयित्वा एतावतोऽपि कालस्य वार्तामात्रकमपि[2] न विसर्जयति। इत अभिज्ञानाङ्गुलीयकं विसर्जयामीति। अथवा नियमदुःखशीले तपस्विजने कोऽभ्यर्थ्यताम्। ननु सखीगामी दोष इति कृत्वा व्यवसितुमपि न पारयावः तातकण्वस्य दुष्मन्तपरिणीताम् आपन्नसत्त्वां प्रियसखीं निवेदयितुम्। अत्रेदानीं किन्तु खलु अस्माभिः करणीयम्।) [44]

(प्रविश्य) **प्रियंवदा-** अणुसूए,तुवरदु तुवरदु[3]। सउन्तलाए पत्थाणकोदुआणि करीअदु त्ति। (अनुसूये, त्वरस्व त्वरस्व।शकुन्तलायाः प्रस्थानकौतुकानि क्रियन्ताम् इति।) [45]

अनुसूया- (सविस्मयम्) सहि, कधं विअ। (सखि, कथमिव।) [46]

प्रियंवदा- सहि सुणाहि। दाणिं जेव सुहसुविदापुच्छणणिमित्तं सउन्तलाए समीवं गद म्हि। (सखि, शृणु। इदानीमेव सुखसुप्तिकाप्रश्ननिमित्तं शकुन्तलायाः समीपं गतास्मि।) [47]

अनुसूया- तदो तदो। (ततस्ततः[4]।) [48]

प्रियंवदा- जाव णं लज्जावणदमुहिं परिस्सइअ तादकण्णो से एवं अहिणन्ददि। वच्छे, दिट्ठिआ धूमोवरुद्ध- दिट्ठिणो वि जजमाणस्स हुअवहस्स ज्जेव मुहे आहुदी णिवडिदा। सुसिस्सपडिवाडिदा विअ विज्जा असोअणीआसि मे संवुत्ता। ता अज्ज ज्जेव तुमं इसिपडिग्गहिदं कदुअ भत्तुणो सआसं विसज्जेमि त्ति।

(यावदेनां लज्जावनतमुखीं परिष्वज्य तातकण्वः तामेवमभिनन्दति। वत्से, दिष्ट्या धूमोपरुद्धदृष्टेरपि यजमानस्य हुतवहस्यैव मुख आहुतिर्निपतिता। सुशिष्यप्रतिपादितेव विद्याऽशोचनीयासि मे संवृत्ता। तस्माद् अद्यैव त्वाम् ऋषिप्रतिगृहीतां कृत्वा भर्तुः सकाशं विसर्जयामीति।) [49]

अनुसूया- सहि, अध केण उण आअक्खिदो तादकण्णस्स अअं वुत्तन्तो?। (सखि, अथ केन पुनः आचक्षितो तातकण्वस्यायं वृत्तान्तः।) [50]

प्रियंवदा- णं सुण्ण, अग्गिसरणं पइट्ठस्स सच्छन्दवदीए वाआए।

(ननु शृणु, अग्निशरणं प्रविष्टस्य सछन्दवत्या[5] वाचा।) [51]

अनुसूया- (सविस्मयम्) कधं विअ?। (कथमिव।) [52]

प्रियंवदा- सहि सुण। (सखि, शृणु।) [53] (संस्कृतमाश्रित्य पठति।) [54]

दुःष्मन्तेनाहितं[7] तेजो[8] दधानां भूतये भुवः।
अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्निगर्भां शमीमिव।। 4-6।। [55]

अनुसूया- (प्रियंवदामाश्लिष्य) सहि, पिअं मे पिअं मे। किंतु अज्ज ज्जेव सउन्तला णीअदि त्ति उक्कण्ठासाहारणं दाणि परितोसमणुभवामि। (सखि, प्रियं मे, प्रियं मे। किन्तु अद्यैव शकुन्तला नीयत इति उत्कण्ठा- साधारणमिदानीं परितोषमनुभवामि।) [56]

---

1. काश्मीर-पाठे "स्निग्धहृदया सखी"ति पठ्यते।
2. काश्मीर-पाठे "लेखमात्रमपी"ति पठ्यते।
3. काश्मीर-पाठे पदद्वयमिदं नास्ति।, किन्तु भावावेशस्य प्रसंगेऽस्मिन् एतयोः पदयोरावश्यकता वर्तते।
4. काश्मीर-पाठे नास्तीयमुक्तिः।, किन्तु कौतुकप्रदर्शकानि वाक्यानि रंगकर्मणि नितरामावश्यकं प्रतिभाति।
5. काश्मीर-पाठे "प्रविष्टस्य किल शरीरं विना छन्दोवत्ये" ति पठ्यते।, मैथिल-पाठो न व्याकरणसम्मतः।
6. मैथिल-पाठे दुष्मन्तेति शब्दस्य प्रयोग एव स्थानिकरंगकर्मिणामुच्चारणजनितं दोषं ख्यापयति।
7. काश्मीर-पाठे वीर्यमिति पठ्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रियंवदा- उक्कण्ठं विणोदइस्सामो। सा दाणि तवस्सिणी णिव्वुत्ता भोदु। (उत्कण्ठां विनोदयिष्याव:। सेदानीं तपस्विनी निर्वृत्ता भवतु।) [57]

अनुसूया- तेण हि एदस्सिं चूअसाहावलम्बिदे णालिएरसमुग्गके तण्णिमित्तं जेव णिक्खित्ता कालन्तरक्खमा केसरचुण्णा चिट्ठन्ति। ते तुमं णलिणीपत्तगदे करेहि[1]। जाव से अहं पि गोरोअणं तित्थमट्टिअं दुव्वाकिसलआइं मङ्गलत्थं समालहणं विरएमि। (तेन हि, एतस्मिन् चूतशाखावलम्बिते नारिकेल- समुद्गके तन्निमित्तमेव निक्षिप्ता कालान्तरक्षमा केशरचूर्णाः तिष्ठति। तस्मात् त्वं नलिनीपत्रगतान् कुरु। यावद् अस्याः अहमपि गोरोचना[2] तीर्थमृत्तिकां दुर्वाकिसलयानि मङ्गलार्थं समालम्भनं विरचयामि।) [58] (प्रियंवदा तथा करोति। अनुसूया निष्क्रान्ता) [59]

(नेपथ्ये)

गौतमि, आदेशय शार्ङ्गरव-शारद्वतमिश्रान्, वत्सां शकुन्तलां नेतुं सज्जीभवन्तु भवन्तः[3] [60]

प्रियंवदा- (कर्णं दत्त्वा) अणुसूए, तुवर तुवर। एदे क्खु हत्थिणाउरगामिणो इसिओ सद्दावीअन्ति। (अनुसूये, त्वरस्व, त्वरस्व। एते खलु हस्तिनापुरगामिन ऋषयः शब्दापयन्ति[4]।) [61]

अनुसूया- (प्रविश्य समालभनहस्ता) पिअंवदे, एहि गच्छम्ह। (इति परिक्रामतः) (प्रियंवदे, एहि गच्छाव:।) [62] (इति परिक्रामतः।)

प्रियंवदा- (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) एसा सुज्जोदअ ज्जेव सुहमज्जिता पलिच्छिदणीवारभाअणाहिं तावसीहिं अहिणन्दीअमाणा सउन्तला चिट्ठदि। ता उअसप्पम्ह णं। (तथा कुरुतः) (एषा सूर्योदय एव सुखमज्जिता प्रतीष्टनीवारभाजनाभिस्तापसीभिरभिनन्द्यमाना शकुन्तला तिष्ठति। तस्माद् उपसर्पाव एनाम्।) [63]

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टपरिवारा शकुन्तला आसनस्था गौतमी च[5]) [64]

शकुन्तला- भअवदी पणमामि[6]। (भगवति, प्रणमामि।) [65]

गौतमी- जाद, भत्तुणो बहुमाणइत्तअं देवीसद्दं अधिगच्छ[7]। (जाते, भर्तुः बहुमानपूर्वकं देवीशब्दम् अधिगच्छ।) [66]

अपरे तापस्यौ[8] - वच्छे, वीरप्पसविणी होहि। (इत्याशिषं दत्वा निष्क्रान्ते गौतमीवर्जं तापस्यौ[9]।)

(वत्से, वीरप्रसविनी भव।) [67]

सख्यौ- (उपगम्य) सहि, सुहमज्जणं दे भोदु। (सखि, सुखमज्जनं ते भवतु।) [68]

शकुन्तला- साअदं पिअसहीणं। इदो णिसीदध। (स्वागतम् प्रियसख्योः। इतो निषीदतम्।) [69]

सख्यौ- (उपविश्य) हला, उज्जुआ दाव होहि जाव दे मङ्गलसमालहणं करेम्ह। (हला, ऋजुका भव। यावत् ते मङ्गलसमालम्भनं कुर्वः।) [70]

---

1. काश्मीर-पाठे "सकेसरगुणा। त्वं हस्तसंनिहितान् कुरु" इति।, आहार्य-सामग्रीभेदोऽत्र परिलक्ष्यते।
2. काश्मीर-पाठे मृगरोचनामिति पठ्यते।, अत्रापि दृश्यत आहार्य-सामग्रीभेदः।
3. काश्मीर-पाठे "आदिश्यन्तां शार्ङ्गरवमिश्राः शकुन्तलानयनाय सज्जीभवतेति" इति भिन्नैव शब्दावली।
4. काश्मीर-पाठे "सज्जीभवन्तीति" पठ्यते।
5. काश्मीर-पाठेऽस्या रंगसूचनाया भिन्नैव शब्दावली पठ्यते।
6. काश्मीर-पाठे शकुन्तलाया इयमुक्तिरेव नास्ति। रंगकर्मिणा सा निष्कासिता स्यादिति प्रतीयते।
7. काश्मीर-पाठ उक्तिरियं गौतम्या मुखे नास्ति। किन्तु सा त्वेकया तापस्योच्यते।
8 काश्मीर-पाठे तापस्य इति बहुवचनान्तः प्रयोगः क्रियते। येन रंगकर्मिभिः तत्र तिसृणां तापसीनां प्रवेशः प्रदर्श्यते।, मैथिल-पाठानुसारेणात्र द्वे तापस्यावेव रंगभूमौ स्तः।
9. अत्र तापस्योः प्रवेशः, तयोश्चोक्तिद्वयं रंगकर्मिभिः प्रक्षिप्तं स्यादिति प्रतीयते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला- उज्जुअम्हि। उइदं पि एदं अज्ज बहुदरं मण्णिदव्वं। दुल्लहं दाणि पुणो वि मे सहीमण्डणं भविस्सदि। (ऋजुकास्मि। उचितमपि एतद् अद्य बहुतरं मन्तव्यम्। दुर्लभमिदानीं पुनरपि मे सखीमण्डनं भविष्यति।) [71]

(इति बाष्पं विसृजति[1])

सख्यौ- सहि, ण जुत्तं मङ्गलकाले रोदिदुं। (सखि, न युक्तं मङ्गलकाले रोदितुम्।) [72]

(शकुन्तलाया अश्रूणि परिमृज्य नाट्येन प्रसाधयतः।) [73]

प्रियंवदा- अहो, आहरणारिहं से रूअं अस्समसुलहेहिं कुसुमपसाहणेहिं विप्पआरीअदि। (अहो, आभरणार्हम् अस्याः रूपम् आश्रमसुलभैः कुसुमप्रसाधनैः विप्रक्रियते।) [74]

(ततः प्रविशत आभरणहस्तौ मुनि[2]कुमारकौ) [75]

एकः- इदमिदमलङ्कारजातम्। अलङ्क्रियतामायुष्मती शकुन्तला। [76]

(सर्वा विलोक्य विस्मिताः) [77]

गौतमी- वच्छ हारीद, कुदो आसादिदं?। (वत्स हारीत, कुतः आसादितम्।) [78]

हारीतः- तातकण्वप्रभावात्। (तातकण्वस्य प्रभावात्[3]।) [79]

गौतमी- किं माणसी सिद्धी?। (किं मानसी सिद्धिः।) [80]

हारीतः- न खलु। श्रूयताम्। तत्रभवता कण्वेन वयमाज्ञापिताः शकुन्तलाहेतोर्वनस्पतिभ्यः कुसुमाभरणान्याहरतेति। ततः-

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं
निष्ठ्यूतश्चरणोपरागसुभगो लाक्षारसः केनचित्।
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै[4] -
र्दत्तान्याभरणानि नः किसलयच्छायाप्रतिस्पर्धिभिः॥ 4-7॥ [81]

प्रियंवदा- (शकुन्तलां विलोक्य) हला, कोडरसंभवा वि महुअरी पोक्खरमहुं जेव अहिलसदि। (हला, कोटरसम्भवापि मधुकरी पौष्करमधु एव अभिलषति।[5]) [82]

गौतमी- जाद इमाए अब्भुववत्तीए सूइदा दे भत्तुणो गेहे अणुभविदव्वा राअलच्छी। (जाते, अनयाभ्युपपत्या सूचिता ते भर्तुर्गेहे अनुभवितव्या राजलक्ष्मीः।[6]) [83] (शकुन्तला लज्जां रूपयति) [84]

अनुसूया- अणणुभूदभूसणो अअं जणो कधं तुमं अलंकरेदु?। (इति चिन्तयित्वा विलोक्य च) चित्तकम्मपरिचएण जाणिअ अङ्गेसुं आहरणविणिओअं करेम्ह। (अननुभूतभूषणोऽयं जनः कथं त्वाम् अलङ्करोतु[7]। चित्रकर्मपरिचयेन ज्ञात्वा अङ्गेषु आभरणविनियोगं कुर्वः।) [85]

---

1. काश्मीर-पाठे "रुदत्युत्तिष्ठती" ति पठ्यते।
2. काश्मीर-पाठ "उपायनहस्तौ ऋषि०" इति पठ्यते।
3. काश्मीर-पाठे "तातकाश्यपप्रसादाद्" इति।
4. काश्मीर-पाठे "०चरणोपभोग", "आपर्वमूलोत्थितै०" इति च पाठभेदौ दृश्येते।
5. काश्मीर-पाठे शकुन्तलाया मुख उक्तिरियं प्रियंवदामुद्दिश्य वर्तते। यथा- "सखि, कल्याणिनीदानीमसि। कोटरसम्भवेव मधुकरी पुष्करमुखमभिलषसि।" (चरित्रचित्रणे रंगकर्मिणाम् आशयभेदः स्यात्। येन, अत्र इवशब्दं परिवर्त्य, तस्य स्थानेऽपिशब्दं विनियुज्यते। अभिलषसीत्यस्य स्थानेऽभिलषतीति प्रयुक्तम्।)
6. काश्मीर-पाठ उक्तिरियं गौतम्या मुखे नास्ति, किन्तु प्रियंवदाया मुखे सा वर्तते।
7. काश्मीर-पाठे प्रियंवदाया मुख उक्तिरियं स्थापिता।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला- जाणामि वो णिउणत्तणं। (जानामि वां निपुणत्वम्।) [86]

(इति सख्यौ नाट्येनालङ्कारमायुञ्जाते[1]) [87]

प्रथम ऋषिकुमारकः- गौतम, एहि। अभिषेकावतीर्णाय तातकण्वाय वनस्पतिसेवां निवेदयावः। [88]

द्वितीयः- तथा। (इति निष्क्रान्तौ।) [89]

(ततः प्रविशति स्नानावत्तीर्णः कण्वः[2]) [90]

कण्वः -

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
अन्तर्बाष्पभरोपरोधि गदितं चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमहो स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः[3]॥ 4 - 8॥ [91]

(इति परिक्रामति)

सख्यौ- हला सउन्तले, अवसिदमण्डणा दाणिं सि तुमं। ता परिधेहि संपदं एदं पवित्तं खोमजुअलं। (हला शकुन्तले, अवसितमण्डना इदानीम् असि त्वम्। तस्मात् परिधेहि साम्प्रतम् इमं पवित्रं क्षौमयुगलम्[4]।) [92]

(शकुन्तला उत्थाय परिधाय च पुनस्तथैवास्ते[5]। कण्व उपसर्पति) [93]

गौतमी- जाद,एसो दे आणन्दबाहपरिवाहिणा चक्खुणा परिस्सअन्तो विअ गुरू उवत्थिदो। ता साअरं[6] पडिवज्जस्स। (जाते, एष ते आनन्दबाष्पपरिवाहिणा चक्षुषा परिष्वजन्निव गुरुरुपस्थितः। तस्मात् सादरं प्रतिपद्यस्व।) [94]

शकुन्तला- (सव्रीडा)तात वन्दामि। (तात वन्दे।) [95]

कण्वः- वत्से, वीरप्रसविनी भव[7]। [96]

ययातिरेव शर्मिष्ठा पत्युर्बहुमता भव।
पुत्रं त्वमपि सम्राजं सेव पूरुम् अवाप्नुहि[8]॥ 4 - 9॥ [97]

गौतमी- भअवं, वरो क्खु एसो, ण आसीसा। (भगवन्, वरः खल्वेषः, नाशीः।) [98]

कण्वः- वत्से, इतः सद्यो हुताग्नीन् प्रदक्षिणीकुरु। (इति सर्वे परिक्रामन्ति) [99]

कण्वः- वत्से,

---

1. काश्मीर-पाठ "उभे नाट्येनाभरणम् आमुञ्चतः" इति रंगसूचना प्रदत्ता दृश्यते।
2. काश्मीर-पाठे "सुप्तो (स्नानो)त्थितः काश्यपः" इति पठ्यते।, (लिपिकारस्य स्मृतिदोषात् सुप्तोत्थित इति।)
3. काश्मीर-पाठे "कण्ठस्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषम्", "इदम्", "न" इति च त्रयः पाठभेदाः सन्ति।
4. काश्मीर-पाठे "क्षौमनिर्मोकम्" इति पठ्यते।, मैथिल-पाठे रंगकर्मिभिराहार्य-सामग्रीभेदात् परिवर्तितम्।
5. काश्मीर-पाठे भिन्ना रंगसूचना प्राप्यते। यथा-"शकुन्तला लतागृहात् निर्गत्य, परिधाय पुनः प्रविश्योपविष्टा" इति। अत्र काश्मीर-पाठमनुसृत्य तु रंगभूमौ लतागृहस्य सज्जा करणीयेति प्रतिभाति।
6. काश्मीर-पाठ "आचारम्" इति पठ्यते।
7. काश्मीर-पाठे नास्ति वाक्यमिदम्।, आशीर्वचनमिदं पूर्वमेवोक्तम्। अतो मैथिल-पाठः पुनरुक्तियुक्तः।
8. काश्मीर-पाठे "समाप्नुही" ति पठ्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अमी वेदीं परितः क्षिप्तधूमाः[1], समिद्वन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः।
अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धैः, वैतानास्त्वां वह्नयः पालयन्तु॥ 4-10॥[2] [100]

वत्से, प्रतिष्ठस्वेदानीम्। (सदृष्टिविक्षेपम्) क्व ते शार्ङ्गरव-शारद्वत[3] मिश्राः?। [101]

(प्रविश्य) त्रयः शिष्याः- भगवन्, इमे स्मः। [102]

कण्वः- वत्स शार्ङ्गरव, भगिन्याः पन्थानमादेशय। [103]

शिष्यः- इत इतो भवती। (इति परिक्रामन्ति) [104]

कण्वः- भो भोः सन्निहितवनदेवतास्तपोवनतरवः शृण्वन्तु भवन्तः[4]। [105]

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वसिक्तेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्[5]।
आद्ये वः कुसुमप्रबोधसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥ 4-11॥ [106]

शार्ङ्गरवः- (कोकिलशब्दं सूचयित्वा[6]) भगवन्, आम्-[107]

अनुमतगमना शकुन्तला सा[7] तरुभिरियं वनवासबन्धुभिः।
परभृतविरुतं कलं यदद्य प्रतिवचनीकृतमेभिरात्मनः[8]॥ 4-12॥ [108]

(नेपथ्ये)

रम्यान्तरः कमलिनीहरितैः सरोभिश्छायाद्रुमैर्नियमितार्कमरीचितापः।
भूयात् कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्याः शान्तोऽनुकूलपवनश्च शिवश्च पन्थाः[9]॥ 4-13॥ [109]

(सर्वे सविस्मयमाकर्णयन्ति) [110]

गौतमी- जाद,णादिजणसिणिद्धं अब्भणुण्णादासि तवोवणदेवदाहिं गमणे। ता पणम भअवदीणं। (जाते, ज्ञातिजनस्निग्धम् अभ्यनुज्ञातासि तपोवनदेवताभिः गमने। तस्मात् प्रणम भगवतीः।) [111]

शकुन्तला- (सप्रणामं परिक्रम्य,जनान्तिकम्) हला पिअंवदे, अज्जउत्तदंसणूसुआए वि अस्समपदं परिच्चअन्तीए दुक्खदुक्खेण मे चरणा पुरोमुहा णिवडन्ति। (हला प्रियंवदे, आर्यपुत्रदर्शनोत्सुकाया अपि आश्रमपदं परित्यजन्त्याः दुःखदुःखेन मम चरणौ पुरोमुखौ निपततः।) [112]

प्रियंवदा- ण केवलं तवोवणविरहकादरा तुमं जेव। तए उवत्थिदविओअस्स तवोवणस्स वि दाव अवत्थं पेक्खदु बहिणिआ। (न केवलं तपोवनविरहकातरा त्वमेव। त्वया उपस्थितवियोगस्य तपोवनस्यापि तावद् अवस्थां प्रेक्षतां भगिनी।) [113]

---

1. काश्मीर-पाठे क्लृप्तधिष्ण्या इति पठ्यते।
2. काश्मीर-पाठ एतदनन्तरं "शकुन्तला प्रदक्षिणीकरोती" ति रंगसूचना वर्तते।
3. काश्मीर-पाठे शार्ङ्गरव इति नामास्ति। एवञ्च शारद्वतस्य नास्ति निर्देशः।
4. काश्मीर-पाठे "वत्से शकुन्तले, विज्ञाप्यन्तां सन्निहितदेवतास्तपोवनतरवः" इति।, रंगकर्मिणां भेदात्।
5. काश्मीर-पाठे "पल्लवान्" इति पठ्यते।
6. काश्मीर-पाठे रंगसूचनेयं नास्ति।, मैथिल-रंगभूमावेव ध्वनिरेषः पार्श्वतः प्रथमवारं प्रयुज्यते।
7. का.-पाठे "शकुन्तले" त्येव।, मै.-पाठे "शकुन्तला से" त्यधिकं पदम्। (अपरवक्त्र-छन्दसि श्लोकोऽयम्।)
8. काश्मीर-पाठेऽयं श्लोको "रम्यान्तर०" इत्यस्माच्छ्लोकाद् अनन्तरं प्रयुज्यते।, स च "अनुमतगमना" इति श्लोकस्य पूर्वभूमिकां रचयति। (तेन च नेपथ्योक्त्या तत्र कोकिलरवस्यावश्यकता न वर्तते।)
9. काश्मीर-पाठे "कमलकीर्णजलै०", "०मयूखतापः", "शान्तानुकूल0" इति च पाठभेदाः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

उग्गिण्णदब्भकवला मई परिच्चत्तणत्तणा मोरी।
ओसरिअपण्डुवत्ता मुअन्ति अङ्गाइं वणलदाओ[1]॥ 4 - 14॥
(उद्गीर्णदर्भकवला मृगी परित्यक्तनर्तना मयूरी।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यङ्गानि वनलताः[2]॥ 4 - 14॥) [114]

शकुन्तला- (स्मृत्वा) ताद, लदावहिणिअं आमन्तइस्सं। (तात, लताभगिनीम् आमन्त्रयिष्ये।) [115]

कण्वः- वत्से, अवैमि तेऽस्यां सौहार्दम्। इयं सा दक्षिणेन। पश्य। [116]

शकुन्तला- (उपसृत्य लतामालिङ्गति) माहवि, लदावहिणिए। पच्चालिङ्ग मं साहामईहिं वाहाहिं। अज्जप्पहुदि दूरवत्तिणी खु दे भविस्सं। ताद, अहं विअ इअं चिन्तणीआ। (माधवि, लताभगिनि, प्रत्यालिङ्ग मां शाखामयैर्बाहुभिः[3]। अद्य प्रभृति दूरवर्तिनी खलु ते भविष्यामि। तात, अहमिव इयं चिन्तनीया।) [117]

कण्वः- वत्से,

सङ्कल्पितं प्रथममेव मया त्वदर्थे भर्तारमात्मसदृशं सुकृतैर्गतासि।
अस्यास्तु सम्प्रति वरं त्वयि वीतचिन्तः कान्तं समीपसहकारमिमं[4] करिष्ये॥ 4-15॥ [118]

तदितः पन्थानं प्रतिपद्यस्व। [119]

शकुन्तला - (सख्यावुपेत्य) हला, एसा दोण्हं पि वो हत्थे णिक्खेवो। (सखि, एषा द्वयोरपि हस्ते निक्षेपः[5]।) [120]

सख्यौ- (सास्रम्) अअं जणो कस्स हत्थे समप्पिदव्वो?। (इति बाष्पं विसृजतः) (अयं जनः कस्य हस्ते समर्पयितव्यः।) [121]

कण्वः- अनुसूये प्रियंवदे, अलं रुदितेन। ननु भवतीभ्यामेव शकुन्तला स्थिरीकर्तव्या। [122]

(इति सर्वे परिक्रामन्ति) [123]

शकुन्तला- (विलोक्य) ताद, एसा उडअपज्जन्तचारिणी गब्भमन्थरा मिअवहू जदा सुहप्पसवा[6] भवे तदा मे कं पिअणिवेदइत्तकं विसज्जिस्सध?। मा एदं विसुमरिस्सध। (तात, एषा उटजपर्यन्तचारिणी गर्भमन्थरा मृगवधूर्यदा सुखप्रसवा भवेत्, तदा मे कमपि प्रियनिवेदयितृकं विसर्जयिष्यथ। मा एतद् विस्मरिष्यथ।) [124]

कण्वः- वत्से, नेदं विस्मरिष्यामि। [125]

शकुन्तला- (गतिभेदमभिनीय) अम्मो, को णु क्खु पदक्कन्तो विअ पुणो पुणो वि मे वसणन्तं गेह्लादि। (अम्मो, को नु खलु पदाक्रान्त इव पुनः पुनरपि मे वसनान्तं गृह्लाति।) [126] (इति विलोकयति)

कण्वः- वत्से,

यस्य त्वया व्रणविरोहणमिङ्गुदीनां तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे।
श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति सोऽयं न पुत्रकृतकः[7] पदवीं मृगस्ते॥ 4-16॥ [127]

---

1. अस्यां गाथायां गीति-लक्षणं न घटते, यतो हि 30+29 मात्राः नोचिताः। (द्वितीयदले मात्रा-पूर्तिः कर्तव्या)
2. काश्मीर-पाठे "परिश्रान्तनर्तना", "धुन्वन्त्यङ्गानीव लताः" इति च द्वौ पाठभेदौ स्तः।
3. काश्मीर-पाठ इतः परमेकमधिकं वाक्यमस्ति। यथा-"अद्यप्रभृति दूरवर्तिनी ते भविष्यामी" ति।
4. इदमेव प्रमाणं भवति माधवीलतासम्बन्धिनो निखिलस्यापि वार्तालापस्य प्रक्षिप्तत्वं साधनाय। यतो हि, सहकारेण सह तु नवमालिका स्वयंवरवधूत्वेन परिणीतैवेति पूर्वं निर्दिष्टमेव।
5. काश्मीर-पाठेऽपि न्यासस्यार्थे निक्षेप इति शब्दः प्रयुक्तः। तेनास्याङ्कस्यान्तिमे श्लोकेऽपि स एव भवितुमर्हति।
6. काश्मीर-पाठ "आसन्नप्रसविनी" ति पठ्यते।
7. काश्मीर-पाठे पुत्रककृतइति पठ्यते।, (लिपिकारस्य प्रमादः स्यादत्र काश्मीर-पाठे न वेति विचारणीयम्)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला- (विलोक्य) वच्छ, कीस मं सहवासपरिच्चाइणिं अणुबन्धेसि[1]?। अचिरप्पसूदोपरदाए जणणीए विणा जधा मए वड्डिदोसि तधा इदाणिं पि मए विरहिदं तादो तुमं चिन्तइस्सदि। ता णिअत्त वच्छ णिअत्त। (इति रुदती प्रस्थिता) (वत्स, किमर्थं मां सहवासपरित्यागिनीमनुबध्नासि। अचिर प्रसूतोपरतया जनन्या विना यथा मया वर्धितोऽसि, तथा इदानीमपि मया विरहितं तातः त्वां चिन्तयिष्यति। तस्मान् निवर्तस्व वत्स, निवर्तस्व।) [128]

कण्वः- वत्से, अलं रुदितेन। स्थिरीभव। इतः पन्थानमवलोकय[2]। [129]

उत्पक्ष्मणोर्नयनयोरुपरुद्धवृत्तिं बाष्पं कुरु स्थिरतया शिथिलानुबन्धम्[3]।
अस्मिन्नलक्षितनतोन्नतभूमिभागे मार्गे पदानि खलु ते विषमीभवन्ति॥ 4-17॥ [130]

शार्ङ्गरवः- भगवन्, उदकान्तात् स्निग्धोऽनुगन्तव्य इति श्रूयते। तदिदं सरस्तीरम्। अत्र नः सन्दिश्य प्रतिगन्तुमर्हसि। [131]

कण्वः- तेन हीमां क्षीरिवृक्षच्छायामाश्रयामः। (इति सर्वे तथा स्थिताः[4]।) [132]

कण्वः- (अपवार्य) किं नु खलु तत्रभवतो दुःष्मन्तस्य युक्तरूपं सन्देष्टव्यम्?। (इति चिन्तयति) [133]

अनुसूया- सहि, ण सो अस्समपदे अत्थि को वि चित्तवन्तो जो तए विरहिज्जन्तो ण ऊसुओ अज्ज किदो। ता पेक्ख दाव। (सखि, न स आश्रमपदेऽस्ति कोऽपि चित्तवान् यः त्वया विरहय्यमाणो न उत्सुक अद्य कृतः। तस्मात् प्रेक्षस्व तावत्।) [134]

पुडइणिवत्तन्तरिअं वाहरिओ वि णाणुवाहरेइ पिअं।
तह उव्वूढमुणालो तइ दिट्ठिं देइ चक्काओ॥ 4 - 18॥

(पुटकिनीपत्रान्तरितां व्याहृतोऽपि नानुव्याहरति प्रियाम्।
तथोद्व्यूढ[5]मृणालस्त्वयि दृष्टिं ददाति चक्रवाकः॥) [135]

शकुन्तला- सहि, सच्चं जेव णलिणीपत्तन्तरिअं पिअसहअरं अणवेक्खन्ती आउलं चक्कवाई आवसदि। (सत्रासम्) दुक्करं खु इअं करेदि। (सखि, सत्यमेव नलिनीपत्रान्तरितं प्रियसहचरम् अप्रेक्षमाणा आकुलं चक्रवाकी आरसति। दुष्करं खल्वियं करोति[6]।) [136]

प्रियंवदा-

अज्ज पिएण विणा जं गमेइ रत्तिं विसूरणादीह[7]।
हन्त गुरुअं पि दुक्खं आसाबन्धो सहावेइ॥ 4-19॥

(अद्य प्रियेण विना यां गमयति रात्रिं विसूरणादीर्घाम्॥
हन्त, गुरुकमपि दुःखम् आशाबन्धः साहयति॥ 4-19) [137]

कण्वः- वत्स शार्ङ्गरव, इति मद्वचनात्स राजा शकुन्तलां पुरस्कृत्याभिधातव्यः। [138]

शार्ङ्गरवः- आज्ञापयतु भवान्। [139]

---

1. काश्मीर-पाठे "कैतवस्नेहाम् अन्वेषसी" त्यधिकं भिन्नं च पठ्यते।
2. काश्मीर-पाठे केवलं "वत्से" इति सम्बोधनम्। नैतानि वाक्यानि तत्र पठ्यन्ते।
3. काश्मीर-पाठे "स्थिरतरं विहितानुबन्धम्" इति पठ्यते।
4. काश्मीर-पाठे "उपविश्ये" ति रंगसूचनया काश्यपो रंगभूमावुपविशति।, मैथिल-पाठे नास्ति सा रंगसूचना।
5. काश्मीर-पाठे "पद्मिनीपत्रान्तरितां व्याहृतां", "जायां", "मुखोद्व्यूढ०" इति च पाठभेदाः सन्ति।
6. काश्मीर-पाठे "खल्वहम् करोमी" ति पठ्यते।
7. हेमचन्द्राचार्येण "खिदेर्जूर-विसूरौ। (8-4-132)" इति सूत्रेण खिद्यत इत्यस्य स्थाने जूरइ, विसूरइ, खिज्जइ इत्येत आदेशा भवन्तीत्युक्तम्।, कालान्तरेण विषाददीर्घतरामिति संस्कृतच्छायानुवादः प्रचालितः। किन्तु देश्य-शब्दानामनुवादो नैव विधेयः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

कण्वः-

अस्मान्साधु विचिन्त्य संयमधनान् उच्चैः कुलं चात्मन-
स्त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां भावप्रवृत्तिं च ताम्।
सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया
भाग्याधीनमतः परं, न खलु तत् स्त्रीबन्धुभिर्याच्यते॥ 4 - 20॥ [140]

शिष्यः- भगवन् गृहीतोऽयं सन्देशः। [141]

कण्वः- (शकुन्तलामुपेत्य) वत्से, त्वमिदानीमनुशासनीया। वनौकसोऽपि वयं लौकिकज्ञा एव[1]। [142]

शिष्यः- भगवन्, न कश्चिद्धीमतामविषयो नाम। [143]

कण्वः- वत्से, सा त्वमितः पतिगृहं[2] प्राप्य-[144]

शुश्रूषस्व गुरुन्कुरु प्रियसखीवृत्तं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भोगेष्वनुत्सेकिनी[3]
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः॥ 4 - 21॥ [145]

कथं वा गौतमी मन्यते?। [146]

गौतमी- एत्तिको क्खु वहूअणे उवएसो। जाद, अवधारएहि एदं। (एतावान् खलु वधूजन उपदेशः। जाते, अवधारय एतम्।) [147]

कण्वः- वत्से, एहि। परिष्वजस्व मां सखीजनं च। [148]

शकुन्तला- ताद, किं इदो ज्जेव पिअसहीओ णिवत्तिस्सन्ति?। (तात, किमित एव प्रियसख्यौ निवर्तिष्येते।) [149]

कण्वः- वत्से, इमे अपि प्रदेये। तन्न युक्तमनयोस्तत्र गमनम्। त्वया सह गौतमी गमिष्यति। [150]

शकुन्तला- (पितुरङ्कमाश्लिष्य[4]) कधं तादस्स अङ्कादो परिब्भट्ठा मलअपव्वदुम्मूलिदा विअ चन्दणलदा[5] देसन्तरे जीविदं धारइस्सं?। (इति रोदिति) (कथं तातस्य अङ्कात् परिभ्रष्टा मलयपर्वताद् उन्मूलितेव चन्दनलता देशान्तरे जीवितं धारयिष्यामि।) [151]

कण्वः- वत्से, किमेवं कातरासि?। [152]

अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे,
विभवगुरुभिः कृत्यैरस्य प्रतिक्षणमाकुला।
तनयमचिरात्प्राचीवार्कम् प्रसूय च पावनं
मम विरहजां न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि॥ 4-22॥ [153]

अपि च, इदमवधारय। [154]

---

1. काश्मीर-पाठे 'लोकज्ञा वयमि'ति पठ्यते।
2. काश्मीर-पाठे "पतिकुलम्" इति पठ्यते।
3. काश्मीर-पाठे 'प्रियसखीवृत्तिम्', 'भाग्येष्वनुत्सेकिनी'ति पठ्यते।
4. काश्मीर-पाठ "उत्थाय पितरमालिङ्ग्ये"ति रंगसूचना।, मैथिल-रंगभूमौ कण्व उपविष्टः स्यादिति सूच्यते।
5. काश्मीर-पाठे करिसार्थपरिभ्रष्टा करेणुकेवेत्युपमा पठ्यते, सैव समीचीना। यतोहि, हिमगिरेरुपत्यकासु करिसार्थस्य संभवः, न तु चन्दनलतायाः।, मैथिलरंगकर्मिभिः कृतं परिवर्तनं भौगोलिकदृष्ट्या न संगच्छते। एवञ्च, चन्दनस्य वृक्षा भवन्ति, न लताः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

यदा शरीरस्य शरीरिणश्च पृथक्त्वम् एकान्तत एव भावि।
आहार्ययोगेन वियुज्यमान:[1] परेण को नाम भवेद्विषादी॥ 4-23॥ [155]

शकुन्तला- (पितु: पादयो: पतित्वा) ताद, वन्दामि। (तात, वन्दे।) [156]

कण्व:- वत्से, यदहमीहे तदस्तु ते[2]। [157]

शकुन्तला- (सख्यावुपेत्य) सहीओ एध। दुवे वि मं समं जेव परिस्सअध। (सख्यौ, एतम्। द्वेऽपि मां सममेव परिष्वजेथाम्।) [158]

सख्यौ- (तथा कृत्वा)सहि, जइ कदाइ सो राएसी पच्चभिण्णाणमन्थरो भवे तदो से इमं अत्तणो णामङ्किदं अङ्गुलीअअं दंसेसि। (सखि, यदि कदाचित् स राजर्षि: प्रत्यभिज्ञानमन्थरो भवेत् तदा तस्मै इमम् आत्मन: नामाङ्कितमङ्गुलीयकं दर्शयिष्यसि।)[3] [159]

शकुन्तला- सहि इमिणा संदेसेण आकम्पिदं मे हिअअं[4]। (सखि, अनेन सन्देशेनाकम्पितं मे हृदयम्।) [160]

सख्यौ- सहि, मा भाआहि। सिणेहो पावं सङ्कदि। (सखि, मा भैषी:। स्नेह: पापं शङ्कते[5]।) [161]

शिष्य:- भगवन्, दूरमारूढ:[6] सविता। त्वद् त्वर्यतां त्वर्यताम्। [162]

शकुन्तला- (भूय: पितुरङ्कमाश्लिष्य[7]) ताद, कदा क्खु तवोवणं पेक्खिस्सं?। (तात, कदा खलु तपोवनं प्रेक्षिष्ये।) [163]

कण्व:- वत्से, श्रूयताम्-

भूत्वा चिराय सदिगन्तमहीसपत्नी दौष्मन्तिम् अप्रतिरथं तनयं प्रसूय।
तत्संनिवेशितभरेण सहैव भर्त्रा शान्त्यै करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन्[8]॥ 4-24॥ [164]

गौतमी- जाद, परिहीअदि दे गमणवेला। ता णिअत्तावेहि पिदरं। (कण्वं प्रति) अधवा चिरेणापि एसा ण णिअत्तइस्सदि। ता णिअत्तदु भअवं। (जाते, परिहीयते ते गमनवेला। तस्मात् निवर्तय पितरम्। अथवा चिरेणापि एषा न निवर्तयिष्यति। तस्मात् निवर्तताम् भगवन्।) [165]

कण्व:- वत्से, उपरुध्यते मे तपोवनानुष्ठानम्। तत्परावर्तितुमि[9]च्छामि। [166]

शकुन्तला- (सासूयम्[10]) तवोवणवावारेण णिरुक्कण्ठो तादो भविस्सदि। अहं उण दाणि उक्कण्ठाभाइणी संवुत्ता। (तपोवनव्यापारेण निरुत्कण्ठ: तातो भविष्यति। अहं पुनरिदानीम् उत्कण्ठाभागिनी संवृत्ता।) [167]

कण्व:- अयि, किं मामेवं जडीकरोषि?। (नि:श्वस्य) [168]

अपयास्यति मे शोक: कथं नु वत्से त्वया रचितपूर्वम्।
उटजद्वारि विरुढं नीवारबलिं विलोकयत:[11]॥ 4 - 25॥ [169]

---

1. काश्मीर-पाठे "विभज्यमान" इति पठ्यते।
2. काश्मीर-पाठे "यदिच्छसि तत् तेऽस्त्वि" ति पठ्यते।
3. काश्मीर-पाठ इत: परम् "इत्यङ्गुलीयकं दत्त" इति रंगसूचना वर्तते।, सा मैथिल-पाठेऽपि भवितुमर्हति।
4. काश्मीर-पाठ "अनुकम्पितास्मी" ति पठ्यते।
5. काश्मीर-पाठे "वामम् आशङ्कत" इति पठ्यते।
6. काश्मीर-पाठ " (ऊर्ध्वमवलोक्य) युगान्तरमधिरूढ" इति पठ्यते।
7. काश्मीर-पाठे "भूय: पितरमाश्लिष्य सगद्गदम्" इति रंगसूचना।
8. काश्मीर-पाठे "चतुरन्त०", "दौष्यन्तिम्", "तस्मिन् निवेशितधुरेण", "शान्ते" इति च पाठभेदा:।
9. काश्मीर-पाठे "तपोऽनुष्ठानम्। प्रतिनिवर्तितुम्" इति पठ्यते।
10. काश्मीर-पाठे रंगसूचनेयं नास्ति।, मैथिल-रंगकर्मिणात्र सात्त्विकाभिनय: प्रदर्श्यते।
11. काश्मीर-पाठे "शममेष्यति मम वत्से कथमिव शोकस्त्वया", "उटजद्वार०" इति च पाठभेदौ स्त:।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

गच्छ। शिवास्ते पन्थानः सन्तु। [170]

(इति निष्क्रान्ता शकुन्तला सह गौतमीशार्ङ्गरवशारद्वतमिश्रैः[1]।) [171]

सख्यौ- (चिरमवलोक्य सकरुणम्) हद्धी हद्धी, अन्तरिदा सउन्तला वनराईहिं। (हा धिक् हा धिक्। अन्तरिता शकुन्तला वनराजिभिः।) [172]

कण्वः- प्रियंवदे, अनुसूये[2], गता वां सहधर्मचारिणी सखी। निगृह्य शोकं मामनुगच्छेतां भवत्यौ[3]। [173]

सख्यौ- (प्रस्थिते) ताद, सउन्तलाविरहिदं सुण्णं विअ तवोवणं पविसामो। (तात, शकुन्तलाविरहितं शून्यमिव तपोवनं प्रविशामः।) [174]

कण्वः- स्नेहवृत्तिरेवंदर्शिनी[4]। (सविमर्शं परिक्रम्य) हन्त भोः। शकुन्तलां विसृज्य लब्धमिदानीं स्वास्थ्यम्। [175]

कुतः-

अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य[5] संप्रेष्य परिग्रहीतुः।
जातोऽस्मि सद्यो विशदान्तरात्मा चिरस्य निक्षेपम् इवार्पयित्वा॥ 4-26॥ [176]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति शकुन्तला-प्रस्थानो[6] नाम चतुर्थोऽङ्कः॥

---

1. काश्मीर-पाठे "०अनुयायिभिः सह" इति पठ्यते।
2. काश्मीर-पाठे केवलम् अनुसूय इति सम्बोधनं वर्तते।
3. काश्मीर-पाठे "निगृह्यतां शोकावेगः। अनुगच्छतं मां प्रस्थितमि" ति पठ्यते।
4. काश्मीर-पाठे "स्नेहवृत्तिरिव दर्शनीये" ति पठ्यते।
5. काश्मीर-पाठे "ताम् एवे" ति।, बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमत्रानुसरति।
6. काश्मीर-पाठे न सन्ति नामानि प्रत्येकानामङ्कानाम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ पञ्चमोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशति कञ्चुकी[1])

कञ्चुकी- (निःश्वस्य[2]) अहो बत कीदृशीं वयोऽवस्थामापन्नोऽस्मि। [1]

आचार इत्यधिकृतेन मया गृहीता या वेत्रयष्टिरवरोधगृहेषु राज्ञः।
काले गते बहुतिथे मम सैव जाता प्रस्थानविक्लवगतेरवलम्बनाय[3]॥ 5 -1॥ [2]

यावदभ्यन्तरगताय देवाय स्वयमनुष्ठेयमकालक्षेपार्हम् आवेदयामि। किं पुनस्तत्?, आं ज्ञातम्। कण्वशिष्यास्तपस्विनो[4] देवं द्रष्टुमिच्छन्ति। भोः चित्रमेतत्। [3]

क्षणात्प्रबोधमायाति लङ्घ्यते तमसा पुनः।
निर्वास्यतः प्रदीपस्य शिखेव जरतो मतिः॥ 5 - 2॥ [4]

(दृष्ट्वा[5]) एष देवः,[6]

प्रजाः प्रजाः स्वा इव चिन्तयित्वा[7] निषेवते शान्तमना विविक्तम्।
यूथानि सञ्चार्य रविप्रतप्तः शीतं दिवा स्थानमिव द्विपेन्द्रः[8]॥ 5-3॥ [5]

यत्सत्यं शङ्कितोऽस्मि,इदानीमेव धर्मासनादुत्थिताय देवाय कण्वशिष्यागमनं निवेदयितुम्। अथवा कुतो वा विश्रामो लोकपालानाम्?। [6]

भानुः सकृद्युक्ततुरङ्ग एव रात्रिंदिवं गन्धवहः प्रयाति।
शेषः सदैवाहितभूमिभारः[9] षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः[10]॥ 5-4॥ [7]

(इति परिक्रामति)

(ततः प्रविशति राजा विदूषकः विभवतः परिवारः।[11]) [8]

राजा[12] - (अधिकारखेदं निरूप्य) सर्वः प्रार्थितार्थमधिगम्य सुखी सम्पद्यते। राज्ञस्तु चरितार्थता दुःखोत्तरैव। कुतः?। [9]

औत्सुक्यमात्रमवसादयति प्रतिष्ठां क्लिश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेवम्।
नातिश्रमापनयनाय यथा श्रमाय राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम्[13]॥ 5-5॥ [10]

---

1. काश्मीर-पाठेऽपि कञ्चुकी प्रविश्य दृश्यारम्भं करोति।
2. काश्मीर-पाठ "आत्मानं विलोक्ये"ति रंगसूचना वर्तते।
3. काश्मीर-पाठे "कालेन सैव परिहीननियोगशक्तेर्गन्तुं ममेयमवलम्बनवस्तु जाते"ति भिन्नमेव पादद्वयम्।
4. काश्मीर-पाठे "तपोधना"इति पठ्यते।
5. काश्मीर-पाठे "परिक्रम्याकाश"इति रंगसूचनयाकाशभाषितेन कञ्चुकी वक्ति।
6. काश्मीर-पाठे "मौद्गल्य, धर्मकार्यमनतिपात्यं, तद्देवस्य तदावेदयितुमिच्छामी" त्यादि वाक्यम्।
7. काश्मीर-पाठे "मनुः प्रजाः स्वा इव तन्त्रयित्वे"ति पठ्यते।
8. काश्मीर-पाठे श्लोकोऽयं चतुर्थ-क्रमांके स्थापितः।
9. काश्मीर-पाठे "ऽवेक्ष्य दाह्यं न शमोऽस्ति वह्नेरि"ति भिन्न एव पादः।
10. काश्मीर-पाठे श्लोकोऽयं तृतीय-क्रमांके वर्तते।
11. काश्मीर-पाठे "ततः प्रविशत्यासनस्थः परिमितपरिवारो राजा विदूषकश्चे"ति रंगसूचना।
12. काश्मीर-पाठे हंसवतिकाया गीतादनन्तरं समागच्छतीयमुक्तिः।, मैथिल-पाठे दृश्यक्रमः परिवर्तितोऽस्ति।
13. काश्मीर-पाठे श्लोकोऽयं सप्तमे क्रमांके वर्तते।, "प्रतिष्ठा", "वृत्तिरेव" इति च पठ्येते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(नेपथ्ये)

वैतालिकौ[1] - जयति जयति देवः[2]। [11]

एकः[3] -

स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः
प्रतिदिनमथवा ते सृष्टिरेवंविधैव।
अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीक्ष्णमंशुं[4]
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम्॥ 5-6॥ [12]

द्वितीयः -

नियमयसि विमार्गप्रस्थितानात्तदण्डः
प्रशमयसि विवादं कल्पसे रक्षणाय।
अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः संविभक्ता[5]-
स्त्वयि तु परिसमाप्तं बन्धुकृत्यं जनानाम्॥ 5-7॥ [13]

राजा- (आकर्ण्य) आश्चर्यं कार्यशासनपरिश्रान्ताः[6] पुनर्नवीभूताः स्मः। [14]

विदूषकः- गोविन्दारको त्ति किल भणिदस्स रिसभस्स परिस्समो णस्सदि। (गोवृन्दारक इति भणितस्य ऋषभस्य परिश्रमो नश्यति[7]।) [15]

राजा- क्रियताम् आसनपरिग्रहः। [16]

(उभावुपविष्टौ परिजनश्च यथास्थानं स्थितः[8]।) [17]

(नेपथ्ये वीणाशब्दः[9] **)** [18]

विदूषकः- (कर्णं दत्त्वा) भो वअस्स,सङ्गीदअसालब्भन्तरे अवधाणं देहि। ताललअसुद्धाए वीणाए सरसंजोओ सुणीअदि। जाणे तत्थभोदी हंसवदी वण्णपरिचअं करेदि त्ति। (भो वयस्य, सङ्गीतशालाभ्यन्तरेऽवधानं देहि। ताल-लयशुद्धाया वीणायाः स्वरसंयोगः श्रूयते। जाने तत्रभवती हंसवती[10] वर्णपरिचयं करोतीति।) [19]

राजा- तूष्णीं भव[11], यावदाकर्णयामि। [20]

कञ्चुकी- अये, व्यासक्तचित्तो देवः। तदवसरं तावत् प्रतिपालयामि। [21] (इत्येकान्ते स्थितः)

---

1. काश्मीर-पाठे वैतालिकेति शब्दो बहुवचने वर्तते। तत्र वैतालिकानां वृन्दगानं स्यादित्यनुमीयते।
2. काश्मीर-पाठे वैतालिकानां गानं हंसवतिकाया गीतादनन्तरं वर्तते।, मैथिल-पाठे तत्तु कञ्चुकीवाक्याद् अनन्तरं स्थापितम्। ततश्च हंसवत्याः समागमिष्यति गीतम्।
3. काश्मीर-पाठे सर्वे वैतालिकाः संमील्यैव श्लोकद्वयं प्रस्तुवन्ति।
4. काश्मीर-पाठे "तीव्रमुष्णमि" ति पठ्यते।
5. काश्मीर-पाठे "सन्तु नामे" ति पठ्यते।
6. काश्मीर-पाठ "एते क्लान्तमनस" इति।, मैथिल-पाठे वैतालिकगानस्य पृथगेव प्रयोजनं प्रदर्श्यते।
7. काश्मीर-पाठे नास्तीदं वाक्यम्। मैथिल-पाठे प्रथमवारमेव प्रक्षिप्तं स्यात्।
8. काश्मीर-पाठे नास्ति रंगसूचनेयम्।, राजा विदूषकश्चोपविष्टावेव प्रविष्टावास्ताम्।
9. काश्मीर-पाठे नास्तीयं रंगसूचना।
10. काश्मीर-पाठे "हंसवतिके" ति नाम।
11. काश्मीर-पाठ इतः पूर्वम् "माधव्ये" ति सम्बोधनं वर्तते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(नेपथ्ये गीयते।) [22]

अहिणवमहुलोहभाविअं तह परिचुम्बअ चूअमञ्जरिं।
कमलवसदिमेत्तणिव्वुदो महुअर विसुमरिदो सि णं कहं॥ 5 - 8॥

(अभिनवमधुलोभभाविता[1] तथा परिचुम्ब्य चूतमञ्जरीम्।
कमलवसतिमात्रनिर्वृतो मधुकर विस्मृतोऽसि एनां कथम्॥) [23]

राजा- अहो रागपरिवाहिणी गीतिः। [24]

विदूषकः- किं दाव से गीदिआए भवदा गहिदो अक्खरत्थो?। (किं तावद् अस्या गीतिकाया भवता[2] गृहीतो अक्षरार्थः।) [25]

राजा- (सस्मितम्) सकृत्कृतप्रणयो[3]ऽयं जनः। तदहं हंसवतीं देवीमन्तरेणो[4]पालम्भमुपगतोऽस्मि।
तद् सखे माधव्य, मद्वचनादुच्यतां देवी निपुणमुपालब्धोऽस्मि। [26]

विदूषकः- जं भवं आणवेदि त्ति। (उत्थाय) गहिदो तए परकीएहिं हत्थेहिं सिहण्डए अच्छभल्लो। अविगद राअस्स सुअणस्स वि णत्थि मे मोक्खो। (यद् भवान् आज्ञापयति। गृहीतस्तया[5] परकीयै-र्हस्तैः शिखण्डके अच्छभल्लः[6]। अविगतरागस्य सुजनस्य इव नास्ति मे मोक्षः।) [27]

राजा- सखे, गच्छ। नागरकवृत्त्या सान्त्वयैनाम्[7]। [28]

विदूषकः- का गदी?। (का गतिः।) (इति निष्क्रान्तः) [29]

राजा- (आत्मगतम्) किं नु खलु गीतमेवंविधमाकर्ण्य इष्टविरहाद् ऋतेऽपि बलवदुत्कण्ठितोऽस्मि।
अथवा- [30]

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुको भवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनम् अबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि[8]॥ 5-9॥ [31]

(अस्मृतिनिमित्तम् उन्मनस्कत्वं सूचयति[9]) [32]

कञ्चुकी- (उपसृत्य) जयति जयति देवः। देव, एते खलु हिमगिरेरुपत्यकारण्यवासिनः कण्वसन्देशमादाय सस्त्रीकास्तपस्विनः प्राप्ताः। श्रुत्वा देवः[10] प्रमाणम्। [33]

राजा- कथं कण्वसन्देशहारिणः?। [34]

---

1. काश्मीर-पाठे "०भावितमि" ति पठ्यते।
2. काश्मीर-पाठे "भगवते" ति पठ्यते।
3. काश्मीर-पाठे "सत्कृतप्रणयो०" इति पठ्यते।
4. काश्मीर-पाठे "तदस्याः कृते कुलप्रभामन्तरेणे" ति पठ्यते।
5. काश्मीर-पाठे "गृहीतस्त्वया" इति।, (बंगीय-पाठेऽपि तथैव), मै.-पाठेन वाक्यार्थभेदो भविष्यति।
6. सुअणस्सेति शब्दस्य छाया सुजनस्येति भवति। नास्त्यत्र श्रमणस्येति।, ऋक्षा-च्छभल्ल-भल्लूका इत्यमरः।
7. काश्मीर-पाठे "संज्ञापयैनामि" ति।
8. काश्मीर-पाठे "पर्युत्सुकीभवति", "अभोगपूर्वम्", "भाविस्थितानी" ति च पाठभेदाः।
9. काश्मीर-पाठे रंगसूचनेयं नास्ति।, मैथिल-पाठे किमर्थं हंसवत्या गीतं तृतीये क्रमांके स्थापितमिति स्फुटं भवत्यनया रंगसूचनया। शकुन्तला-प्रत्याख्यानस्य पूर्वावस्थायां राज्ञ उन्मनस्कता भवितुमर्हतीति तत्रत्यैः रंगकर्मिभिर्विचारितं स्यात्।
10. काश्मीर-पाठे "प्रभविष्णुरि" ति पठ्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

कञ्चुकी- अथ किम्। [35]

राजा- तेन हि मद्वचनाद् विज्ञाप्यतामुपाध्यायः सोमदत्तः[1]। अमून् आश्रमवासिनः श्रौतेन विधिना पुरकृत्य स्वयमेव प्रवेशयितुमर्हसीति। अहमप्येतांस्तपस्विन उचिते प्रदेशे प्रतिपालयामि। [36]

कञ्चुकी- यथाज्ञापयसि। (इति निष्क्रान्तः।) [37]

राजा- (उत्थाय) वेत्रवति, अग्निशरणमार्गमादेशय। [38]

प्रतीहारी- इदो इदो एदु देवो। (परिक्रम्य) एसो अहिणवसमज्जणरमणीओ संण्णिहिदहोमधेणू अग्गिसरणालिन्दओ। ता आरुहदु देओ। (इत इतो देवः। एषोऽभिनवसंमार्जनरमणीयो संनिहितहोमधेनूः अग्निशरणालिन्दकः।) [39]

राजा- (साभिनयमारुह्य[2] परिजनांसावलम्बी तिष्ठन्) वेत्रवति, किमुद्दिश्य तत्रभवता कण्वेन मत्सकाशम् ऋषयः प्रेषिताः स्युः?। [40]

किं तावत् व्रतिनामुपोढतपसां विघ्नैस्तपो दूषितं
धर्मारण्यचरेषु केनचिदुत प्राणिष्वसच्चेष्टितम्।
आहोस्वित् प्रसवो ममापचरितैर्विष्टम्भितो वीरुधा-
मित्यारूढबहुप्रतर्कमपरिच्छेदाकुलं मे मनः[3]॥ 5 - 10॥ [41]

प्रतीहारी- देवस्य भुअदण्डणिव्वुदे अस्समे कुदो एदं?। किं तु सुचरिदाभिणन्दिणो इसीओ देवं सभाजइदुं आगद त्ति तक्केमि। (देवस्य भुजदण्डनिर्वृते[4] आश्रमे कुत एतत्। किन्तु सुचरिताभिनन्दिन ऋषयो देवं सभाजयितुम् आगता इति तर्कयामि।) [42]

(ततः प्रविशन्ति गौतमीसहिता शकुन्तलामादाय कण्वशिष्याः पुरतश्चैषां पुरोहित-कञ्चुकिनौ) [43]

कञ्चुकी- इत इतो भवन्तः। [44]

शार्ङ्गरवः- सखे शारद्वत,

महाभागः कामं[5] नरपतिरभिन्नस्थितिरसौ
न कश्चिद् वर्णानाम् अपथमपकृष्टोऽपि भजते।
तथापीदं शश्वत्परिचितविविक्तेन मनसा
जनाकीर्णं मन्ये हुतवहपरीतं गृहमिव॥ 5-11॥ [45]

शारद्वतः- शार्ङ्गरव, स्थाने पुरप्रवेशात् तवेत्थंभूतः संवेगः। अहं हि, [46]

अभ्यक्तमिव स्नातः, शुचिरशुचिमिव प्रबुद्ध इव सुप्तम्।
बद्धमिव स्वैरगति, जंनमवशः सङ्गिनमवैमि॥ 5 - 12॥ [47]

पुरोहितः[6]- अत एव भवद्विधा महान्तः। [48]

शकुन्तला- (दुर्निमित्तमभिनीय) अम्मो, किं ति वामेदरं णअणं मे फुरदि?। (अम्मो, किमति वामेतरं नयनं मे स्फुरति[7]।) [49]

1. काश्मीर-पाठे "सोमरात" इति।
2. काश्मीर-पाठ "आरोहणं नाटयित्वे" ति पठ्यते।
3. काश्मीर-पाठे "०रण्यगतेषु", "०त्यालीढ०" इति च पाठभेदौ।
4. काश्मीर-पाठे "भुवनपरिष्वङ्गनिर्वृत"इति।
5. काश्मीर-पाठे "सत्यमि"ति पठ्यते।
6. काश्मीर-पाठे पुरोहितस्य मुख इयमुक्तिरेव नास्ति।, मैथिल-रंगकर्मिभिरेव सा प्रथमतः प्रक्षिप्ता दृश्यते।
7. काश्मीर-पाठे "विप्रकरोती"ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

गौतमी- जाद, पडिहदं अमङ्गलं। सुहाणि दे होन्तु। (जाते, प्रतिहतममङ्गलं, सुखानि ते भवन्तु[1]।) [50]

(इति परिक्रामन्ति)

पुरोहितः- (राजानमवलोक्य[2]) भोस्तपस्विनः। अयमसौ वर्णाश्रमाणां रक्षिता प्रागेव मुक्तासनः प्रतिपालयति वः। पश्यतैनम्। [51]

शार्ङ्गरवः[3]- काममेतदभिनन्दनीयम्। तथापि वयमत्र मध्यस्थाः।

कुतः?। [52]

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैर्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्॥ 5-13॥ [53]

प्रतीहारी- देव, पसण्णमुहराआ इसीओ सत्थीका दीसन्ति। (देव, प्रसन्नमुखरागा ऋषयः सस्त्रीका[4] दृश्यन्ते।) [54]

राजा - (शकुन्तलां निर्वर्ण्य) अथात्रभवती-

केयम् अवगुण्ठनवती नातिप्रस्फुटशरीरलावण्या।
मध्ये तपोधनानां किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम्[5]॥ 5-14॥ [55]

प्रतीहारी[6] - दंसणीआकिदि क्खु लक्खीअदि[7]। (दर्शनीयाकृतिः खलु लक्ष्यते।) [56]

राजा- भवतु, अनिर्वर्ण्यं परकलत्रम्[8]। [57]

शकुन्तला- (उरसि हस्तं दत्त्वा, आत्मगतम्) हिअअ, किं एवं वेवसि?। अज्जउत्तस्स भावाणुबन्धं सुमरिअ धीरत्तणं दाव अवलम्बेहि। (हृदय, किमेवं वेपसे। आर्यपुत्रस्य भावानुबन्धं[9] स्मृत्वा धीरत्वं तावद् अवलम्बस्व।) [58]

पुरोहितः- (पुरो गत्वा) स्वस्ति देवाय। देव, एते विधिवदर्चितास्तपस्विनः। कश्चिदेषाम् उपाध्यायसन्देशोऽस्ति। तं देवः श्रोतुमर्हति। [59]

राजा- अवहितोऽस्मि। [60]

शिष्याः- (हस्तमुद्यम्य[10]) भो भो राजन्! विजयतां विजयतां भवान्। [61]

राजा - सर्वान् अभिवादये। [62]

शिष्याः- स्वस्ति भवते। [63]

राजा- अपि निर्विघ्नं तपः?। [64]

---

1. काश्मीर-पाठे "सुखानि ते भर्तृकुलदेवता वितरन्त्वि"ति पठ्यते।
2. काश्मीर-पाठे "राजानं निर्दिशन्नि"ति।
3. काश्मीर-पाठ "ऋषय" इति वक्तारः।, ततो "महाब्राह्मण" इति सम्बोधनमपि वर्तते।
4. काश्मीर-पाठे "स्वस्थकार्या" इति।, बंगीय-पाठे "स्वस्थकल्पा" इति।, रंगकर्मिणामाशयभेदो लक्ष्यते।
5. काश्मीर-पाठे "कास्विदि" ति, "०परिस्फुट०" इति च।, मैथिल-पाठे सरलीकरणस्याशयः प्रतीयते।
6. काश्मीर-पाठे प्रतीहारी-मुखे "देव, कुतूहलतया विस्मितास्मि। न मे तर्कः प्रसीदती" ति।, मैथिल-पाठे सर्वथा परिवर्तनं जातमिति परिलक्ष्यते।
7. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं परिजन-वर्गेणोच्यते।, काश्मीर-रंगकर्मिणां सावधानतात्र परिलक्ष्यते।
8. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं नास्ति।, मैथिल-पाठे राज्ञश्चरित्रचित्रणे धर्मबुद्धिं प्रदर्शयितुं प्रक्षिप्तमिदं वाक्यम्। यस्य बीज-वपनं सस्त्रीकेति पदेन विहितमासीत्, तत्तु 54 उक्ति-क्रमांके दृश्यते।
9. काश्मीर-पाठे "भावस्थितिमि" ति पठ्यते।
10. काश्मीर-पाठे "हस्तान् उद्यम्ये" ति। (यतो हि, वक्तारः शिष्या बहवः सन्ति।)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शिष्याः-

धर्मविघ्नः कुतोऽस्माकं[1] सतां रक्षितरि त्वयि।
तमस्तपति घर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति॥ 5 - 15॥ [65]

राजा- सर्वथार्थवान् खलु मे राजशब्दः। अथ तत्रभवान् लोकानुग्रहाय कुशली कण्वः?। [66]

शार्ङ्गरवः- राजन्, स्वाधीनकुशलाः सिद्धिमन्तः। स भवन्तमनामयपूर्वकमिदमाह। [67]

राजा- किमाज्ञापयति?। [68]

शार्ङ्गरवः- [2]यन्मिथः समयादिमां मदीयां दुहितरं भवानुपयेमे, तन्मया प्रीतिमता युवयोरनुज्ञातम्। कुतः?, [69]

त्वमर्हतां प्राग्रहरः स्मृतोऽसि नः शकुन्तला मूर्तिमयी च[3] सत्क्रिया।
समानयंस्तुल्यगुणं वधूवरं चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः॥ 5-16॥ [70]

तदिदानीमापन्नसत्त्वा प्रतिगृह्यतां सहधर्मचरणाय[4]। [71]

गौतमी- भद्दमुह, वत्तुकामा वि अम्हे। ण मे वअणावआसो अत्थि कधिदुं ति। (भद्रमुख, वक्तुकामाप्यस्मि। न मे वचनावकाशोऽस्ति कथयितुम् इति।) [72]

राजा[5] - आर्ये, कथ्यताम्। [73]

गौतमी-

णावेक्खिदो गुरुअणो इमिए तुम्हे वि ण पुच्छिआ बन्धू।
एक्कक्कमस्स वि चरिदे किं भणउ एक्कमेक्कस्सिं॥ 5-17॥

(नावेक्षितो गुरुजनोऽनया, त्वयापि न पृष्टो बन्धुः।
एकैकस्य चरिते किं भणतु एक एकस्मिन्[6]॥) [74]

शकुन्तला- (स्वगतम्) किं णु क्खु अज्जउत्तो भणिस्सदि?। (किं नु खलु आर्यपुत्रो भणिष्यति[7]।) [75]

राजा- [8]अयि किमिदमुपन्यस्तम्। [76]

शकुन्तला- (स्वगतम्) हद्धी हद्धी पावो क्खु से वअणोवण्णासो। (हा धिक्, हा धिक्। पावकः खल्वस्य वचनोपन्यासः[9]।) [77]

---

1. काश्मीर-पाठे "कुतो धर्मक्रियाविघ्न" इति।
2. काश्मीर-पाठेऽत्र "शकुन्तलाम् उद्दिश्ये" ति रंगसूचना।, मैथिल-पाठेऽपि सा भवितुमर्हति।
3. काश्मीर-पाठे "मूर्तिमतीवे" ति।
4. काश्मीर-पाठे "सहधर्मचारणाये" ति।
5. काश्मीर-पाठे राज्ञो मुखे नास्तीयमुक्तिः।, मैथिल-रंगकर्मिभिः प्रक्षिप्ता सेति प्रतीयते।
6. काश्मीर-पाठे "नापेक्षितो गुरुजनोऽनया न चात्र पृष्टा बन्धवः। एकैकेन वरिते किं भण्यतामेकमेकस्मिन्।" एवञ्च "एकैकेन वरिते" (न तु चरिते) इति तृतीये चरणे।
7. काश्मीर-पाठे शकुन्तलाया उक्तिरेव नास्ति।, मैथिल-रंगकर्मिभिः सा प्रक्षिप्ता स्यान्नवेति प्रश्नः।
8. काश्मीर-पाठेऽत्र "साशङ्काकुलम् आकर्ण्ये" ति रंगसूचना वर्तते।
9. टीकाकारः शङ्करोऽत्र "हा धिक्, परोक्ष इवास्य वचनोपन्यास" इति छायानुवादं विदधाति। ततश्च, क्वचित् "परुषः खल्वस्य वचनोपन्यास इति पाठ" इत्यपि लिखति। (पृ. 258)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शार्ङ्गरवः- किं नाम किमिदमुपन्यस्तमिति[1]। ननु भवानेव सुतरां लोकवृत्तान्तनिष्णातः[2]। [78]

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां, जनोऽन्यथा भर्तृमतीं विशङ्कते।
अतः समीपे परिणेतुरिष्यते, प्रियाप्रिया वा[3] प्रमदा स्वबन्धुभिः॥ 5 - 18॥ [79]

राजा- किमत्रभवती परिणीतपूर्वा, मया[4]?। [80]

शकुन्तला- (सविषादमात्मगतम्) हिअअ, समुदिदा दे आसङ्का। (हृदय, समुदिता[5] ते आशङ्का।) [81]

शार्ङ्गरवः- राजन्!, **किं कृतकार्यद्वेषाद् धर्मं प्रति विमुखता कृता राज्ञा[6]?। [82]**

राजा- कृतोऽयमसत्कल्पः प्रश्नः[7]। [83]

शार्ङ्गरवः-

मूर्छन्त्यमी विकाराः प्रायेणैश्वर्यमत्तानाम्[8]॥ 5 - 19॥ [84]

राजा - विशेषेणाधिक्षिप्तोऽस्मि। [85]

गौतमी- जाद, मा लज्ज। अवणइस्सं दाव दे अवगुण्ठणं। तदो भत्ता तुमं अहिजाणइस्सदि। (जाते, मा लज्जस्व[9]। अपनेष्यामि तावत् तेऽवगुण्ठनम्। ततो भर्ता त्वाम् अभिज्ञास्यति।) [86]

(तथा करोति) [87]

राजा- (शकुन्तलां निर्वर्ण्य आत्मगतम्)

इदमुपनतमेवं रूपमक्लिष्टकान्ति
प्रथमपरिगृहीतं स्यान्न वेत्यध्यवस्यन्।
भ्रमर इव निशान्ते कुन्दमन्तस्तुषारं
न खलु सपदि भोक्तुं नापि शक्तोऽस्मि मोक्तुम्[10]॥ 5-20॥ [88]

प्रतिहारी- (स्वगतम्[11]) अहो, धम्मावेक्खिदा भट्टिणो। ईदिसं णाम सुहोवणदं इत्थीरअणं पेक्खिअ को अण्णो विआरएदि?। (अहो धर्मापेक्षिता भर्तुः। ईदृशं नाम सुखोपनतं स्त्रीरत्नं प्रेक्ष्य कोऽन्यो विचारयति।) [89]

शार्ङ्गरवः- भो राजन्, किमिदं जोषमास्यते?। [90]

राजा - भोस्तपस्विन्, चिन्तयन्नपि न खलु स्वीकरणमत्रभवत्याः स्मरामि। तत्कथम् इमामभिव्यक्तसत्त्वलक्षणां परस्त्रियमाशङ्कमानः[12] प्रतिपत्स्ये?। [91]

---

1. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं नास्ति।
2. काश्मीर-पाठे "कथं नाम अत्रभवन्त एव सुतरां लोकयात्रानिष्णाता" इति।
3. काश्मीर-पाठे "तद् अप्रियापी" ति पठ्यते।, (प्रसंगेऽस्मिन् काश्मीर-पाठ एव संगच्छते।)
4. काश्मीर-पाठे "मया परिणीतपूर्वे" ति पदक्रमोऽस्ति।, मैथिल-पाठेऽत्र पदक्रमभेदेन काकुभेदो व्यज्यते।
5. काश्मीर-पाठे "संवर्द्धिते"ति।
6. काश्मीर-पाठे "विमुखता राज्ञ" इति।, मैथिल-रंगकर्मिभिः पाठान्तर-प्रस्तावेन वाक्यमिदमार्या-छन्दसि परिवर्तितम्।
7. काश्मीर-पाठे "०कल्पनाप्रसंग" इति।
8. काश्मीर-पाठे "०नैश्वर्यमत्तेष्वि" ति।
9. काश्मीर-पाठे "मा मुहूर्तं लज्जस्वे" ति।
10. काश्मीर-पाठे "विभाते", "शक्नोमी" ति च पाठभेदौ स्तः।
11. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं जनान्तिकमित्युक्त्या परिजनो भणति। तदेव च प्रकृत-दृश्यानुरूपं प्रतिभाति।
12. काश्मीर-पाठे "ऽनभिव्यक्तसन्धिलक्षणम् आत्मानं क्षेत्रिणम् अनाशंसमान" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला- (स्वगतम्[1]) कधं एवं परिणए ज्जेव संदेहो। भग्गा दाणि दूरारोहिणी आसालदा। (कथमेवम् परिणये एव सन्देहः। भग्ना इदानीम् दूरारोहिणी आशालता[2]।) [92]

शार्ङ्गरवः- मा तावत्-

कृताभिमर्षाम् अनुमन्यमानः सुतां त्वया नाम मुनिर्विमान्यः।
दुष्टं प्रतिग्राहयता स्वमर्थं पात्रीकृतो दस्युरिवासि येन[3]॥ 5-21॥ [93]

शारद्वतः- शार्ङ्गरव, विरम त्वमिदानीम्। शकुन्तले, वक्तव्यमुक्तमस्माभिः। सोऽत्रभवानेवमाह। तद् दीयतामस्मै प्रत्ययवचनम्[4]। [94]

शकुन्तला- (स्वगतम्[5]) इमं अवत्थन्तरं गदे तादिसे अणुराए किं वा सुमराविदेण?। अधवा अत्ता दाणि मे सोअणीओ। भोदु, वदिस्सं एदं। (प्रकाशम्) अज्जउत्त...., (इत्यर्धोक्ते), अध वा संसइदे दाणि ण एस समुदाआरो। पोरव, जुत्तं णाम तव पुरा अस्समपदे सब्भावुत्ताणहिअअं इमं जणं समओपरुद्धं पआरिअ, सम्पदं ईदिसेहिं अक्खरेहिं पच्चाइक्खिदुं॥

(इदमवस्थान्तरं गते तादृशे अनुरागे[6] किं वा स्मारितेन। अथवा आत्मेदानीं मे शोचनीयः[7]। भवतु, वदिष्यामि एनम्॥ आर्यपुत्र....,। अथवा संशयित इदानीं न एष समुदाचारः। पौरव, युक्तं नाम तव पुरा आश्रमपदे सद्भावोत्तानहृदयमिमं जनं समयोपरुद्धं[8] प्रतार्य, साम्प्रतम् ईदृशैरक्षरैः प्रत्याख्यातुम्।) [95]

राजा- (कर्णौ पिधाय) शान्तम्।

व्यपदेशं मलिनयितुं समीहसे मां च पातयितुम्।
कूलङ्कषेव सिन्धुः प्रसन्नमोघं तटतरुं च[9]॥ 5 - 22॥ [96]

शकुन्तला- भोदु, जइ परमत्थदो परपरिग्गहसङ्किणा तए एदं पउत्तं, ता अहिण्णाणेण केणावि[10] तव सन्देहं अवणइस्सं। (भवतु, यदि परमार्थतो परपरिग्रहशङ्किना त्वया एतत्प्रवृत्तम्, तर्हि अभिज्ञानेन केनापि तव सन्देहं अपनेष्यामि।) [97]

राजा- प्रथमः कल्पः[11]। [98]

शकुन्तला- (मुद्रास्थानम् अवलोक्य[12]) हद्धी हद्धी अङ्गुलीअअसुण्णा मे अङ्गुली। (हा धिक् हा धिक्, अङ्गुलीयकशून्या मे अङ्गुली।) [99]

(सविषादं गौतमीम् ईक्षते[13]) [100]

---

1. काश्मीर-पाठे "ऽपवार्य" ति रंगसूचनास्ति।
2. काश्मीर-पाठ "आशे" त्येव।
3. काश्मीर-पाठे "ऽवमन्यमानः", "जुष्टम्" इति च।
4. काश्मीर-पाठे "प्रतिवचनमि" ति।
5. स्वगतमिति रंगसूचनया प्रदत्तमिदं प्रथमं वाक्यं प्रक्षिप्तं स्याद्। नाट्यशास्त्रे (25-88) आत्मगतमित्यस्य विधानात्।
6. काश्मीर-पाठे "मुहूर्तराग" इति।
7. काश्मीर-पाठे "शोधनीय" इति।
8. काश्मीर-पाठे "समयपूर्वमि" ति।
9. काश्मीर-पाठ "आविलयितुम्", "तटरुहम्" इति च।
10. काश्मीर-पाठे "गुरुणे" ति।
11. काश्मीर-पाठ "उदारमि" ति।
12. काश्मीर-पाठे "परामृश्ये" ति।
13. काश्मीर-पाठे "तापसीं पश्यती" ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

गौतमी- णं हु दे सक्कावदारब्भन्तरे सचीतित्थे उअअं वन्दमाणाए परिब्भट्ठं अङ्गुलीअअं?। (नूनं खलु ते शक्रावताराभ्यन्तरे शचीतीर्थे उदकं वन्दमानायाः परिभ्रष्टम्[1] अङ्गुलीयकम्।) [101]

राजा- (सस्मितम्) इदं तत्। अहो प्रत्युत्पन्नमतित्वं स्त्रीणाम्। [102]

शकुन्तला- एत्थ दाव विहिणा दंसिदं पहुत्तं। अवरं दे कधइस्सं। (एतत् तावत् विधिना दर्शितं प्रभुत्वम्। अपरं ते कथयिष्यामि।) [103]

राजा- श्रोतव्यमिदानीं संवृत्तम्। [104]

शकुन्तला- णं एक्कदिअसं वेदसलदामण्डवे[2] णलिणीवत्तभाअणकदं उअअं तव हत्थे संण्णिहिदं आसि। (ननु एकस्मिन् दिवसे वेतसलतामण्डपे नलिनीपत्रभाजनकृतमुदकं तव हस्ते संनिहितमासीत्।) [105]

राजा- शृणुमस्तावत्। [106]

शकुन्तला- तक्खणं सो मम पुत्तकिदहरिअणो उवत्थिदो। तदो तए अअं दाव पढुमं पिबदु त्ति अणुकम्पिणा उअच्छन्दिदो उअएण। ण उण दे अवरिचिदस्स हत्थे उअअं उवगदो पादुं। पच्छा तस्सिं जेव मए परिग्गहिदे किदो तेण पणओ। एत्थन्तरे उवहसिअ तए भणिदं-सच्चं सव्वो सगन्धे वीससदि। दुवे वि तुम्हे आरण्णकाओ त्ति। (तत्क्षणं स मम पुत्रकृतहरिणक[3] उपस्थितः। ततस्त्वया अयं तावत् प्रथमं पिबतु इति अनुकम्पिना उपच्छन्दित उदकेन। न पुनः ते अपरिचितस्य हस्ते उदकं उपगतः पातुम्। पश्चात् तस्मिन् एव मया परिगृहीते, कृतः तेन प्रणयः[4]। अत्रान्तरे उपहसितः[5] त्वया भणितम्, सत्यम्, सर्वः सगन्धे विश्वसिति। द्वौ अपि युवाम् आरण्यकाविति।) [107]

राजा- आभिस्तावदात्मकार्यनिर्वर्त्तिनीभि-र्मधुराभिरनृतवाग्भि[6]राकृष्यन्ते विषयिणः। [108]

गौतमी- महाराअ, णारिहसि एवं मन्तिदुं। तवोवणसंवड्ढिदो क्खु अअं जणो अणहिण्णो कइअवस्स।
(महाराज[7], नार्हसि एवं मन्त्रयितुम्। तपोवनसंवर्धितः खलु अयं जनः अनभिज्ञः कैतवस्य।) [109]

राजा- अयि तापसवृद्धे,

स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु
संदृश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्यः।
प्राग् अन्तरिक्षपतनात्[8] स्वमपत्यजातम्-
अन्यद्विजैः परभृताः किल पोषयन्ति॥ 5-23॥ [110]

शकुन्तला- (सकोपम्) अणज्ज, अत्तणो हिअआणुमाणेण सव्वं एदं पेक्खसि। को णाम अण्णो धम्मकञ्चुअववदेसिणो तिणच्छण्णकूवोवमस्स तव अणुआरी भविस्सदि?। (अनार्य[9], आत्मनः हृदयानुमानेन सर्वमेतत् प्रेक्षसे। को नामान्यो धर्मकञ्चुकव्यपदेशिनः[10] तृणच्छन्नकूपोपमस्य तवानुकारी भविष्यसि।) [111]

---

1. काश्मीर-पाठे "ऽवगाहमानायाः प्रभ्रष्ट" इति।
2. काश्मीर-पाठे "नवमालिकामण्डप" इति।
3. काश्मीर-पाठे "कृतकपुत्रक" इति।
4. काश्मीर-पाठे न सन्त्येतानि पदानि।
5. काश्मीर-पाठे "प्रणयप्रकाशपूर्वम् प्रहसित" इति।
6. काश्मीर-पाठे "ऽनृतवाङ्मधुभिरि" ति।
7. काश्मीर-पाठे "महाभागे" ति।
8. काश्मीर-पाठे "ऽन्तरिक्षगमनादि" ति।
9. काश्मीर-पाठे "ऽनार्ये" ति सम्बोधनं नास्ति।
10. काश्मीर-पाठे "०प्रवेशिन" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- (आत्मगतम्) वनवासादविभ्रमः पुनरत्रभवत्याः कोपो लक्ष्यते।

[<तथाहि-

न तिर्यग् अवलोकितं भवति चक्षुरालोहितं
वचोऽपि परुषाक्षरं न च पदेषु संशय्यते।
हिमार्त इव वेपते सकल एष बिम्बाधरः
प्रकामविनते भ्रुवौ युगपदेव भेदं गते[1]॥ 5 - 24॥ [112]

अपि च, सन्दिग्धबुद्धिं मां कुर्वन्त्या अकैतवच्छाय इवास्याः कोपोऽयम्। [113]

मय्येवमस्मरणदारुणचित्तवृत्तौ वृत्तं रहः प्रणयमप्रतिपद्यमाने।
भेदाद् भ्रूवोः कुटिलयोरतिलोहिताक्ष्या भग्नं शरासनमिवातिरुषा स्मरस्य॥[2] 5-25॥ [114]>][3]

(प्रकाशम्)

भद्रे, प्रथितं दुष्मन्तचरितं प्रजासु[4]। तवापीदं दृश्यते[5]। [115]

शकुन्तला-

[तुम्हेज्जेव पमाणं जाणध धम्मत्थिदं च लोअस्स।
लज्जा विणिज्जिदाओ जाणन्ति ण [हु] किंपि महिलाओ[6]॥ 5 - 26॥

(यूयमेव प्रमाणं जानीथ धर्मस्थितिं च लोकस्य।
लज्जाविनिर्जिता जानन्ति न खलु किमपि महिलाः॥[7])][116]

सुट्ठु दाणि सच्छन्दआरिणी संवुत्ता दाव अहं। [117]

गौतमी[8] **-** जाद, इमस्स पुरुवंसपच्चएण मुहमहुणो हिअअपत्थरस्स हत्थं उवगदासि। (जाते, अस्य पुरुवंशस्य प्रत्ययेन मुखमधुनो हृदयप्रस्तरस्य हस्तम् उपगतासि।) [118]

(शकुन्तला पटान्तेन मुखमावृत्य रोदिति।) [119]

शार्ङ्गरवः- इत्थमप्रतिहतं चापलं दहति। [120]

अतः समीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात्सङ्गतं रहः[9]।
अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम्॥ 5-27॥ [121]

राजा- अयि भोः, किमत्रभवतीसम्प्रत्ययादेवास्मान् अवलेपेन[10] क्षिण्वन्ति भवन्तः?। [122]

---

1. काश्मीर-पाठे "ऽवलोकि चक्षुरतिलोहितं केवलं" ,"संसज्जते", "स्वभावविनत" इति च।
2. काश्मीर-पाठे नास्त्यं श्लोकः।, मैथिल-पाठे प्रक्षिप्तोऽयं प्रतीयते, पुनरुक्तिदोषग्रस्तत्वाद्।
3. कोष्ठान्तर्गतोऽयं पाठ्यांशः प्रक्षिप्तः स्यादप्रासंगिकत्वात्। का.-बं.-पाठयोश्च स्वगतमिति रंगसूचनया-ऽवतारितत्वाच्च।
4. काश्मीर-पाठे "दुष्यन्तचरितं प्रजासु प्रथितमि" ति।
5. काश्मीर-पाठे "न चापीदं दृश्यत" इति।
6. अस्मान्मैथिल-पाठात् "हु" इति निपातस्य निष्कासनात् पथ्यार्या (गाथा) समीचीना भवति।
7. काश्मीर-पाठेऽपि वर्तमाना गाथेयं प्रक्षिप्ता स्यात् रंगकर्मिभिरिति प्रतीयते।
8. काश्मीरी-पाठे गौतम्या उक्तिरियं वस्तुतः शकुन्तलाया मुख आसीत्।
9. काश्मीर-पाठे "परीक्ष्य सर्वं कर्तव्यं विशेषात् संविदः क्रिया" इति।, तत्र च भागुरि-मुख उक्तिरियं वर्तते।
10. काश्मीर-पाठे "ऽतिबलेने" ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शार्ङ्गरवः- (सासूयम्) कृतं भवद्भिरुत्तरोत्तरम्[1]। [123]

आ जन्मनः शाठ्यम् अशिक्षितो[2] यस्तस्याप्रमाणं वचनं जनस्य।
पराभिसंधानमभिधीयते यैर्विद्येति ते सन्तु किलाप्तवाचः॥ 5-28॥ [124]

राजा- हं हो सत्यवादिन्, अभ्युपगतं तावद् युष्माभिरेवंविधा वयम्[3]। किं पुनरिमाम् अभिसन्धाय लभ्यते?। [125]

शार्ङ्गरवः- विनिपातः। [126]

राजा- विनिपातः पौरवैर्लभ्यत इत्यश्रद्धेयमेतत्[4]। [127]

शार्ङ्गरवः- भो राजन्, किमुत्तरोत्तरैः?। अनुष्ठितो गुरुसन्देशः। प्रतिनिवर्तामहे वयम्[5]। [128]

तदेषा भवतः पत्नी त्यज वैनां गृहाण वा।
उपयन्तुर्हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी॥ 5-29॥ [129]

गौतमि, गच्छाग्रतः। (इति प्रस्थिताः) [130]

शकुन्तला- हुँ अहं इमिणा दाव किदवेण विप्पलद्धा। तुम्हे वि मं परिच्चअध?। (हूँ, अहममुना तावत् कितवेन विप्रलब्धा। यूयमपि मां परित्यजथ।) [131] (इत्यनुप्रस्थिता) [132]

गौतमी- (स्थित्वा) सार्ङ्गरव, अणुगच्छदि णो करुणपरिदेविणी सउन्तला। पच्चादेसदारुणे भत्तरि किं करेदु तवस्सिणी?। (शार्ङ्गरव, अनुगच्छति नः करुणपरिदेविनी शकुन्तला। प्रत्यादेशदारुणे भर्तरि किं करोतु तपस्विनी[6]।) [133]

शार्ङ्गरवः- (सरोषं प्रतिनिवृत्य) आः पुरोभागिनि[7], किमिदमत्रापि स्वातन्त्र्यमवलम्बसे?। [134]

(शकुन्तला भीता वेपते) [135]

शार्ङ्गरवः- (सकरुणम्) शृणोतु भवती। [136]

यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा त्वमसि किं पितुरुत्कुलया त्वया[8]।
अथ तु वेत्सि शुचि व्रतमात्मनः पतिगृहे तव दास्यमपि क्षमम्॥ 5-30॥ [137]

तत् त्वमितस्तिष्ठ, यावद् यामो[9] वयम्। [138]

राजा- भोस्तपस्विनः किमत्रभवतीं विप्रलभ्य प्राप्यते[10]?। पश्यत-[139]

कुमुदान्येव शशाङ्कः, सविता बोधयति पङ्कजान्येव।
वशिनां हि परपरिग्रहसंश्लेषपराङ्मुखं चेतः[11]॥ 5-31॥ [140]

---

1. काश्मीर-पाठे "श्रुतं भवद्भिरधरोत्तरमि" ति।
2. काश्मीर-पाठे "ऽलक्षित" इति।
3. काश्मीर-पाठे "हन्त भोस्सत्यवादिन्", "अस्माभिः। एवं विधा वयमि"ति च।
4. काश्मीर-पाठे "तं नाहं प्रार्थय" इति।
5. काश्मीर-पाठे "सम्प्रति निर्गच्छामहे वयमि" ति।
6. काश्मीर-पाठे "०कलुषे", "पुत्रिका म" इति।
7. काश्मीर-पाठे "पुरोभाग" इति।
8. काश्मीर-पाठे "पितृशोकदया त्वये" ति।
9. काश्मीर-पाठे "साधयाम" इति।
10. काश्मीर-पाठे "विप्रलभस" इति।
11. काश्मीर-पाठे "०पराङ्मुखी वृत्तिरि" ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शार्ङ्गरवः- राजन्, अथ पुनः पूर्वपरिग्रहो व्यासङ्गाद् विस्मृतो भवेत् तदा कथमधर्मभीरोस्तव दारपरित्यागः[1]?। [141]

राजा- भवन्तमेवात्रपृच्छामि गुरुलाघवज्ञम्[2]। [142]

मूढः स्यामहमेषा वा वदेन्मिथ्येति संशये।
दारत्यागी भवाम्याहो परस्त्रीस्पर्शपांसुलः॥ 5 - 32॥ [143]

पुरोहितः- (विचार्य) देव एवं तावत् क्रियते। [144]

राजा- अनुशास्तु मां भवान्। [145]

पुरोहितः- अत्रभवती तावदा प्रसवादस्मद्गृहे तिष्ठतु। [146]

राजा- कुत इदमुच्यते[3]?। [147]

पुरोहितः- [4]त्वं साधुनैमित्तिकैरादिष्टः [5]पूर्वं प्रथममेव चक्रवर्तिनं पुत्रं जनयिष्यसीति। स चेन्मुनिदौहित्रस्तल्लक्षणोपपन्नो भविष्यति, ततोऽभिनन्द्य शुद्धान्तमेनां प्रवेशयिष्यसि। विपर्यये त्वस्याः पितुः समीपगमनं व्यवस्थितमेव। [148]

राजा- यथा गुरुभ्यो रोचते। [149]

पुरोहितः- (उत्थाय) वत्से, इत इतोऽनुगच्छ माम्। [150]

शकुन्तला- भअवदि वसुन्धरे। देहि मे अवआसं[6]। (भगवति, वसुन्धरे, देहि मे अवकाशम्।) [151]

(इति सह पुरोधसा तपस्विभिर्गौतम्या च रुदती निष्क्रान्ता।) [152]

(राजा शकुन्तलागमनमेव चिन्तयति[7]।) [153]

(नेपथ्ये) आश्चर्यमाश्चर्यम्............। [154]

राजा- (कर्णं दत्त्वा) किं नु खलु स्यात्। [155]

(प्रविश्य) **पुरोधाः-** (सविस्मयम्) देव, अद्भुतं खलु संवृत्तम्। [156]

राजा- किमिव?। [157]

पुरोधाः- परावृत्तेषु कण्वशिष्येषु। [158]

सा निन्दन्ती स्वानि भाग्यानि बाला
बाहूत्क्षेपं क्रन्दितुं च प्रवृत्ता।

राजा- किं ततः?। [159]

पुरोधाः -

---

1. का.-पाठे "पूर्वपरिग्रहोऽन्यासङ्गाद्", तथा "कथमधर्मभीरुरि" त्येव।, मै.-पाठे शब्दद्वयमधिकम्।
2. काश्मीर-पाठे "गुरुलाघवं प्रक्ष्यामी" ति।
3. काश्मीर-पाठे नास्तीदं वाक्यम्।
4. काश्मीर-पाठे "भूतमिदम् उच्यत" इत्यधिकम्।
5. काश्मीर-पाठे "त्वं साधुभिरादिष्ट" इति।
6. काश्मीर-पाठे "वसुधे, देहि मे विवरमि" ति।
7. काश्मीर-पाठे "राजा शापव्यवहितस्मृतिः शकुन्तलामेव चिन्तयती" ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

स्त्रीसंस्थानं चाप्सरस्तीर्थमारादाक्षिप्येव[1] ज्योतिरेनां तिरोऽभूत्॥ 5-33॥ [160]

(सर्वे विस्मयं रूपयन्ति) [161]

राजा- प्रथममेवास्माभिरेषोऽर्थः प्रत्यादिष्टः। किं मिथ्या तर्केणान्विष्यते[2]? विश्राम्यताम्। [162]

पुरोधाः- विजयस्व। (इति निष्क्रान्तः) [163]

राजा- वेत्रवति, पर्याकुल इवास्मि। शयनीयगृहमार्गं[3] मादेशय। [164]

प्रतीहारी- इदो इदो एदु देवो। (इति परिक्रामतः।) [165]

राजा-

कामं प्रत्यादिष्टां स्मरामि न परिग्रहं मुनेस्तनयाम्।
बलवत्तु दूयमानं प्रत्यायतीव मे[4] हृदयम्॥ 5-34॥ [166]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे) [167]

॥ इति शकुन्तलाप्रत्याख्यानं[5] नाम पञ्चमोऽङ्कः॥ [168]

1. काश्मीर-पाठ "आक्षिप्यैवे" ति।
2. काश्मीर-पाठे "किं वृथा तर्केणान्विष्टेने" ति। (वृथेति शब्दः समीचीनः प्रतिभाति।)
3. काश्मीर-पाठे "शयनभूमिमि" ति।
4. काश्मीर-पाठे "से" ति।
5. काश्मीर-पाठे न सन्ति प्रत्येकानामङ्कानां नामानि।, मैथिल-पाठ एव प्रथमतः प्रदीयन्ते तानि।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ षष्ठोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशति नागरकश्यालकः पश्चाद् बद्धं पुरुषमादाय रक्षिणौ च) [1]

रक्षिणौ- (पुरुषं ताडयित्वा) अले कुम्भीलआ, कधेहि कधेहि। तए कहिं महालअणभाशुले उक्किण्णनामक्खले लाअकीए अङ्गुलीअए शमाशादिदे?। (अरे कुम्भिलक, कथय कथय। त्वया कुत्र महारत्नभासुरम् उत्कीर्णनामाक्षर[1] राजकीयमङ्गुलीयकं समासादितम्।) [2]

पुरुषः[2] - (भीतिनाटितकेन[3]) पशीदन्तु पशीदन्तु भावमिश्शा। हगे ण ईदिशश्श कम्मश्श कालके। (प्रसीदन्तु प्रसीदन्तु भावमिश्राः। अहं न ईदृशस्य कर्मणः कारकः।) [3]

प्रथमः- किं णु क्खु शोहणबम्भणे त्ति कदुअ लञ्ञा[4] पलिग्गहे दिण्णे?। (किं नु खलु शोभनब्राह्मण इति कृत्वा, राज्ञा प्रतिग्रहो दत्तः।) [4]

पुरुषः- शुणाध दाव णं। हगे शक्कावदालवाशिके धीवले। (शृणुत तावदेनम्। अहं शक्रावतारवासी धीवरः।) [5]

द्वितीयः- हण्डे पाटच्चले, किं अस्मेहिं जादिं वशदिं च पुच्छिदे शि तुमं?। (नीच, पाटच्चर, किमस्माभिर्जातिं वसतिं च पृष्टोऽसि त्वम्।) [6]

श्यालकः- सूअअ, कधेदु सव्वं कमेण। मा णं पडिबन्धेध। (सूचक, कथयतु सर्वम् क्रमेण। मा एनं प्रतिबधान।) [7]

उभौ- जं लाउत्तो आणवेदि। लवेहि रे लवेहि। (यद् राउत्त[5] आज्ञापयति। लप, रे लप।) [8]

पुरुषः- हगे जालबलिशादीहिं मच्छबन्धणोवाएहिं कुटुम्बभलणं कलेमि। (अहं जालबडिशादिभिर्मत्स्यबन्धनोपायैः कुटुम्बभरणं करोमि।) [9]

श्यालकः- (प्रहस्य) विसुद्धो से दाणिं आजीओ। (विशुद्धोऽस्येदानीम् आजीवः।) [10]

पुरुषः- भट्टके, मा एवं भणेध। (भट्टारक! मा एवं भणतु।) [11]

शहजे किल जे विणिन्दिदे ण हु शे कम्म विवज्जणीअके।
पशुमालिं कलेइ कालणा छक्कमा विदुवे वि शोत्तिके॥1॥

(सहजं किल यद् विनिन्दितं न खलु तत् कर्म विवर्जनीयम्।
पशुमारणं करोति कारणात् षट्कर्मा विद्वान् अपि श्रोत्रियः[6]॥) [12]

श्यालकः- तदो तदो?। (ततस्ततः।) [13]

पुरुषः- ता एक्कदिअशे मए लोहिदमच्छके मुण्डके कप्पिदे। जाव तश्श उदलब्भन्तलगदं इमं महालअणभाशुलअं

---

1. काश्मीर-पाठे "महामणिप्रस्तरोत्कीर्णनामाक्षर०" इति पठ्यते।
2. काश्मीर-पाठे शब्दोऽयं धीवरस्य कृते प्रयुक्तः।
3. काश्मीर-पाठे "भयं नाटयित्वे" ति रंगसूचना।
4. सम्राज अशोकस्य ब्राह्मीलिपिलिखिते शिलालेखे राज्ञः कृते लञ्ञ इति प्राकृतरूपं वर्तते। तादृशं रूपं मैथिल-पाठे समुपलभ्यते, तदवधेयम्।
5. राउत्त इत्यस्य प्राकृतशब्दस्य छाया राजपुत्रेति भवितुमर्हति।, टीकाकारेण शङ्करेण राउत्त इत्येवानुवादो दीयते।, काश्मीर-पाठ "आउत्त" इति पठ्यते।, (आउत्त=लाउत्त=राउत्त=राजपुत्र इति पर्यायाः।)
6. काश्मीर-पाठे "पशुमारककर्मदारुणोऽनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रिय" इति पठ्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अङ्गुलीअअं पेच्छामि। पच्छा इह विक्कअं च दंशअन्त ज्जेव गहिदे भावमिश्शेहिं। एत्तिके दाव एतश्श आगमे। संपदं मालेध वा पिट्टेध वा। (तदेकदिवसे मया रोहितमत्स्यः मुण्डके कल्पितः (छिन्नः)। यावत् तस्य उदराभ्यन्तरगतमिमं महारत्नभासुरमङ्गुलीयकं पश्यामि, पश्चादिह विक्रयाय च दर्शयन्नेव गृहीतो भावमिश्रैः। एतावान् तावदेतस्यागमः। सम्प्रति मारय वा ताडय वा।) [14]

श्यालः- (अङ्गुरीयकमाघ्राय) जाणुअ, मच्छोदलब्भन्तलगदो त्ति ण संदेहो। तथा एदस्स आमिसगन्धो[1] वाअदि। अङ्गुलीअआगमो दाव विमरिसिदव्वो। ता एध। राउलं जेव गच्छम्ह। (जानुक, मत्स्योदराभ्यन्तरगत इति न सन्देहः। तथा एतस्य आमिषगन्धो वासते। अङ्गुरीयकागमस्तावद् विमर्षितव्यः। राजकुलमेव गच्छामः।) [15]

रक्षिणौ- (पुरुषं प्रति) आगच्छ ले गण्ठिच्छेदआ आगच्छ। (आगच्छ, रे ग्रन्थिभेदक आगच्छ।) [16]

श्यालः- (परिक्रम्य) सूचअ, इह गोउरदुआरए अप्पमत्ता पडिवालेध मं। जाव लाउलं पविशिअ णिक्कमामि।

(सूचक, इह गोपुरद्वारेऽप्रमत्तौ प्रतिपालयतां माम्। यावद् राजकुलं प्रविश्य निष्क्रामामि।) [17]

उभौ- पविसदु लाउत्ते सामिपसादत्थं। (प्रविशतु राउत्तः स्वामिप्रसादार्थम्।) [18]

श्यालः- तथा। (इति निष्क्रान्तः) (तथा) [19]

सूचकः- जानुअ, चिलाअदि लाउत्ते। (जानुक, चिरयति राउत्तः।) [20]

जानुकः- णं अवसलोपसप्पणीआ लाआणो होन्ति। (ननु अवसरोपर्सपणीया राजानो भवन्ति।) [21]

सूचअः- वअश्श, पफ्फुलन्ति मे हत्था इमं गण्ठिच्छेदअं घादिदुं। (वयस्य, प्रस्फुरतो मे हस्तौ, इमं ग्रन्थिभेदकं घातयितुम्[2]।) [22]

जानुकः- (विलोक्य पुरुषं निर्दिश्य[3]) एसे अम्हाणं ईशले गेण्हिअ लाअशाशणं आअदे। ता शंपदं सउणाणं मुहं पेच्छदु अध वा गिद्धीशिआलीणं बली भोदु। (एषोऽस्माकमीश्वरो गृहीत्वा राजशासनम् आगतः।

तस्मात् सम्प्रति सकुल्यानां[4] मुखं पश्यतु, अथवा गृध्रशृगालानां बलिर्भवतु।) [23]

(प्रविश्य) श्यालः- शिग्घं शिग्घं एदं- (इत्यर्धोक्तेन)। (शीघ्रम्, शीघ्रम् एतम् ...।) [24]

पुरुषः- हा हदम्हि। (इति विषादं नाटयति)। (हा हतोऽस्मि।) [25]

श्यालः- मुञ्चध ले मुञ्चध एणं जालोवजीविणं। उववण्णो किल अङ्गुलीअअस्स आगमो। अम्हं शामिणा ज्जेव कधिदं। (मुञ्चतं रे मुञ्चतमेनं जालोपजीविनम्। उपपन्नः किल अङ्गुरीयकस्य आगमः। अस्माकं स्वामिनैव कथितम्।) [26]

सूचकः- जमवसदिं खु गदुअ पलिणिउत्तो एसो। (पुरुषं बन्धनान्मोचयति) (यमवसतिं खलु गत्वा, प्रतिनिवृत्तः एषः[5]।) [27]

पुरुषः- (श्यालं प्रणम्य) भट्टके, तव केलके संपदं मम जीविदे। (भट्टारक, तव क्रीतं[6] / कृते साम्प्रतं मम जीवितम्।) [28]

---

1. काश्मीर-पाठे "मच्छोदरसण्ठिदं", "विसगन्धो" चेति वर्तते।, मैथिल-पाठे देश्यशब्दानां परिवर्तनं दृश्यते।
2. काश्मीर-पाठे "स्फुरतो मम हस्तावस्य व्यसनं पिनद्धुम्" इति। ततश्च पुरुषं निर्दिशतीति रंगसूचना। येन काश्मीर-पाठे धीवरस्य मुखाद् दयायाचना प्रकटीभवति, "नार्हति भ्रातृभ्रातृकोऽकालमारको भवितु" मिति।
3. मैथिल-पाठे दृश्यमानेयं रंगसूचना धीवरस्य कमपि मनोविकारं न जनयति। तन्नोचितं प्रतिभाति।
4. सकुल्यानां बान्धवानां, शकुलानां मत्स्यानां वेति टीकायां शङ्करः।, काश्मीर-पाठे शकुलानामिति पठ्यते।
5. काश्मीर-पाठे "यमवसतिं गत्वा गुडखण्डं च दत्वा प्रतिनिवृत्त" इति पठ्यते।
6. टीकाकारेण शङ्करेण क्रीतमिति (पृ. 269) संस्कृतच्छाया प्रदत्ता।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

श्यालः- एसो भट्टिणा अङ्गुलीअअमुल्लसम्मिदो पालिदोशिको दे पसादीकिदो। ता गेण्ह एदं। (इति पुरुषाय कटकं ददाति।) (एषो भर्त्रा अङ्गुरीयकमूल्यसम्मितः पारितोषिकः ते प्रसादीकृतः[1]। तर्हि गृहाणैतम्।) [29]

पुरुषः- (सहर्षं प्रतिगृह्य) अणुगहिद म्हि। (अनुगृहीतोऽस्मि।) [30]

जानुकः- एसो क्खु रञ्ञा अणुगाहिदो जो शूलादो ओआलिअ हत्थिकन्धे समालापिदो। (एषः खलु राज्ञा अनुग्राहीतः,यच्छूलादवतार्य हस्तिस्कन्धे समारोपितः।) [31]

सूचकः- जाणामि देण अङ्गुलीएण सामिणो बहुमदेण भविदव्वं। (जानामि तेन अङ्गुरीयकेण स्वामिनो बहुमतेन भवितव्यम्।) [32]

श्यालः- ण एतस्सिं भट्टिणो महालअण त्ति पलिओसो। एत्तिकं उण तक्केमि। तस्स दंसणेण को वि हिअअवट्टी भट्टिणा सुमरिदो त्ति। जदो मुहुत्तं पइदिगम्भीरो वि पज्जूसुअमणो आसि। (न एतस्मिन् भर्तुः महारत्नमिति पारितोषः। एतावत् पुनस्तर्कयामि। तस्य दर्शनेन कोऽपि हृदयवर्ती[1] भर्त्रा स्मृतोऽस्तीति। यतो मुहूर्तं प्रकृतिगम्भीरोऽपि पर्युत्सुकमना आसीत्।) [33]

सूचकः- तोशिदे दाणि भट्टा लाउत्तेण। (तोषित इदानीं भर्ता राउत्तेन।) [34]

जानुकः- णं भणेहि इमस्स मच्छलीशत्तुणो कदे त्ति। (पुरुषं सासूयं पश्यति) (ननु भण अस्य मत्स्यशत्रोः कृत इति।) [35]

पुरुषः- इदो तुम्हाणं पि अद्धं दाणि मुल्लअं भोदु। (इतो युष्माकमपि अर्धमिदानीं मूल्यकं भवतु[3]।) [36]

उभौ[4]- धीवले महत्तले, शंपदं उण पिअवअश्शके मे शंवुत्ते शि। कादम्बलीसोत्थिके पढुमसोहिच्चदे अम्हाणं इष्ठीअदि। ता सुण्डिकागालं जेव गच्छम्ह। (धीवर, महत्तर, साम्प्रतं पुनः प्रियवयस्यकः मे संवृत्तोऽसि। कादम्बरी-स्वस्तिक[5] प्रथमसौहृदमस्माकमिष्यते। तर्हि शुण्डिकागारमेव[6] गच्छामः।) [37]

पुरुषः- तथा। (इति निष्क्रान्ताः सर्वे) (तथा।) [38]

(प्रवेशकः) [39]

(ततः प्रविशत्याकाशयानेन मिश्रकेशी[7]) [40]

मिश्रकेशी- णिव्वत्तिदं मए पज्जाअणिव्वत्तणीअं कम्मं। अच्छरातित्थसणिज्झं साहुअणस्स अभिसेअकालो। ताव इमस्स राएसिणो संपदं वुत्तन्तं पच्चक्खीकरइस्सं। मेणआसंबन्धेण सरीरभूदा मे सउन्तला। ताए वि संदिष्ठम्ह[8]। (समन्तादवलोक्य) किं णु क्खु उवत्थिदच्छणे वि दिअसे णिरूच्छवारम्भं विअ राउलं दीसदि?। अह वा अत्थि मे विहवो पणिधाणेण जाणिदुं। किं तुसहीए मए आअरो माणइदव्वो। भोदु, इमीणं दाव उज्जाणवाडिआणं पासपरिवत्तिणी भविअ तिरक्खरिणीए विज्जाए पच्छण्णा उवलहिस्सं। (नाट्येनावतीर्य स्थिता[9]) (निर्वर्तितं मया पर्यायनिर्वर्तनीयं कर्म।

1. काश्मीर-पाठे "दापितः" इति पठ्यते।
2. काश्मीर-पाठे "कोऽपि अभिलषितो जन" इति पठ्यते।
3. काश्मीर-पाठे "भर्तः, इतोऽर्धम् युष्माकं सुमनोमूल्यं भवत्वि" ति पठ्यते।
4. काश्मीर-पाठे प्रस्तावोऽयं स्यालो भणति।, बंगीय-पाठे केवलं जानुक एव वदतीमं प्रस्तावम्।
5. क्वचित्कादम्बरीस्वस्तिकमिति पाठ इति शङ्करः। (पृ. 270), कादम्बरीस्वस्तिकं मदिरागृहम्।, काश्मीर-पाठे कादम्बिलिसक्खिअं (कादम्बरीसाक्षिकं) इति पठ्यते।, बंगीय-पाठे "कादम्बरीसग्धिके" इति।
6. काश्मीर-पाठे शुण्डिकाशालामिति।
7. काश्मीर-पाठेऽस्या "अक्षमाले" ति नाम वर्तते।, मैथिल-पाठे दृश्यमानं नामान्तरं भिन्नां वेशभूषां सूचयति।
8. काश्मीर-पाठे "सन्दिट्ठपूरवम्हि" इति।
9. काश्मीर-पाठे रंगसूचनेयं नास्ति। तेनानुमीयते यन्मैथिलरंगभूमौ हस्तमुद्रयाकाशादवतरणमभिनीयते स्म।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अप्सरातीर्थ- सांनिध्ये साधुजनस्याभिषेककालः। तावदमुष्य राजर्षेः साम्प्रतं वृत्तान्तं प्रत्यक्षीकरिष्ये। मेनका सम्बन्धेन शरीरभूता मे शकुन्तला। तयापि संदिष्टास्मि। किं नु खलु उपस्थितक्षणेऽपि दिवसे निरुत्सवारम्भमिव राजकुलं दृश्यते। अथवास्ति मे विभवः प्रणिधानेन ज्ञातुम्। किन्तु सख्याः मया आदरो मानयितव्यः। भवतु, आसाम् तावदुद्यानवाटिकानां पार्श्वपरिवर्तिनी भूत्वा तिरस्करिण्या विद्यया प्रच्छन्ना[1] उपलप्स्ये।) [41]

(नाट्येनावतीर्य स्थिता) [42]

(ततः प्रविशति चूताङ्कुरमवलोकयन्ती चेटी तस्याः पृष्ठतोऽपरा च।) [43]

प्रथमा- कधं उवत्थिदो मधुमासो[2]?। (कथमुपस्थितो मधुमासः।) [44]

आअम्बहरिअवेण्टं ऊससिअं विअ वसन्तमासस्स।
दिट्ठं चूअङ्कुरअं रइए छणमङ्गलअं णिअच्छामि।। 6-2।।

(आताम्रहरितवृन्तम् उच्छ्वसितमिव वसन्तमासस्य[3]।
दृष्टं चूताङ्कुरकं रत्यै क्षणमङ्गलं नियच्छामि[4]।।) [45]

द्वितीया- सहि परहुदिए। किं एदं एआइणी मन्तेसि। (सखि परभृतिके! किमेतदेकाकिनी मन्त्रयसि।) [46]

प्रथमा- सहि महुअरिए, चूदलदिअं पेक्खिअ उम्मदिआ क्खु परहुदिआ भोदि[5]। तव उण कालो एसो मदविब्भमुग्गीअदाणं। ता सहि अवलम्बस्स मं जाव अग्गपदोवत्थिदा भविअ इमिणा चूअप्पसवेण संपादेमि कामदेवस्स वाअणं। (सखि मधुकरिके! चूतलतिकां प्रेक्ष्य, उन्मत्ता खलु परभृतिका भवति। तव पुनः काल एषो मदविभ्रमोद्गीतकानाम्। तस्मात् सखि अवलम्बस्व मां यावद् अग्रपदोपस्थिता भूत्वा अनेन चूतप्रसवेन संपादयामि कामदेवस्य वायनम्[6]।) [47]

द्वितीया- जइ एवं ता हला ममावि अद्धं वाअणस्स फलं। (यदि एवं, तर्हि ममापि अर्धम् वायनस्य[7] फलम्।) [48]

प्रथमा- सहि, अभणिदं पि एदं संपज्जदि। जधा एक्कं जेव णो सरीरं दुधा विहत्तं पआवइणा। (सख्यवलम्बितकेन नाट्येन [8]चूतप्रसवं गृहीत्वा) अम्हहे। अप्पबुद्धो वि चूअप्पसवो एस बन्धणपब्भट्ठो सुरभी वाअदि। (कपोतहस्तं कृत्वा) णमो भअवदो मअरद्धअस्स। (सखि, अभणितमपि एतत् सम्पत्स्यते। यथा एकमेव नः शरीरं द्विधा विभक्तं प्रजापतिना। अम्महे! अप्रबुद्धोऽपि चूतप्रसव एषो बन्धनप्रभ्रष्टः सुरभिर्वाति। नमो भगवते मकरध्वजाय।) [49]

अरिहसि मए चूअङ्कुर दिण्णो कामस्स गहिदचावस्स।
संठविअजुअइलक्खो पञ्चब्भहिओ सरो भोदु[9]।। 6 - 3।।

---

1. काश्मीर-पाठे "तिरस्करिणीप्रच्छन्ने" ति पठ्यते।, मैथिल-पाठे "विद्यये" त्यधिकं पठ्यते।
2. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं नास्ति।, बंगीय-पाठे च नास्ति तत्।, किन्त्वत्र मैथिल-पाठ एव समीचीनो वर्तते।
3. काश्मीर-पाठे "सुरभिमासस्ये" ति।, किन्तु बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठे "दृष्टश्च चूतक्षारक क्षणमंगलकमिव प्रेक्ष" इति।, मैथिल-पाठे रइए इति पदमार्यां हिनस्ति।
5. काश्मीर-पाठ इतः परं, "द्वितीया- (सहर्षम्) कधं उवत्थिदो महुमासो" इत्यपि वाक्यं वर्तते।
6. वायनम् नैवेद्यमिति शङ्करः।, काश्मीर-पाठे "कामदेवस्यार्चनमि" ति पाठान्तरम्।, केवलं मैथिल-पाठ एव परभृतिका स्वकीयस्यावलम्बनं ग्रहीतुं मधुकरिकायै निवेदयति। तदेव च तर्कसंगतं भाति।
7. काश्मीर-पाठे "ऽर्चनस्ये" ति पठ्यते।, बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
8. काश्मीर-पाठे "सख्यावलम्बितं कृत्वे" ति।, बंगीय-पाठे "सख्यामि" ति सप्तमी। किन्तु तत्र मधुरिकास्ति।
9. काश्मीर-पाठे "सण्ठविअ-जुलइ-लक्खो पच्छपच्छाखदिदो सरो होदु" इति पठ्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(अर्हसि मया चूताङ्कुरो दत्तः कामस्य गृहीतचापस्य।
संस्थापितयुवतिलक्ष्यः पञ्चाभ्यधिकः शरो भवितुम्[1]॥) [50]

(इति चूताङ्कुरं क्षिपति) [51]

(प्रविश्य) **कञ्चुकी-** (रुषितः सक्रोधम्) मा तावदनात्मज्ञे। देवेनैवं निषिद्धेऽपि वसन्तोत्सवे त्वमग्रतश्चूतकलिकाभङ्गम्[2] आरभसे?। [52]

उभे- (भीते) पसीदद्दु पसीदद्दु अज्जो। अगहिदत्थाओ क्खु अम्हे। (प्रसीदतु प्रसीदतु आर्यः। अगृहीतार्थे खलु आवाम्।) [53]

कञ्चुकी- [<हुँ। न खलु श्रुतं भवतीभ्यां यत्तु देवशासनं वासन्तैस्तरुभिरपि प्रमाणीकृतं, तदाश्रयिभिश्च[3]। [54]
तथा हि-

चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका बध्नाति न स्वं रजः
सन्नद्धं यदपि स्थितं कुरबकं तत्कोरकावस्थया।
कण्ठेषु स्खलितं गतेऽपि शिशिरे पुंस्कोकिलानां रुतं
शङ्के संहरति स्मरोऽपि चकितस्तूणार्धकृष्टं शरम्॥ 6-4॥ [55]

मिश्रकेशी- ण एत्थ संदेहो। महप्पहावो क्खु एस राएसी। (नात्र सन्देहः। महाप्रभावो खलु एष राजर्षिः[4]।) [56]

प्रथमा- अज्ज, कदिचि दिवसाइं मित्तावसुणा रट्ठिएण भट्टिणो पादमूलं पेसिदाणं अम्हाणं इध पमदवणे कलागिहकम्मं समप्पिदं। ता अज्ज ण कदा वि सुदपुव्वो एस वुत्तन्तो अम्हेहिं। (आर्य, कतिचिद् दिवसानि मित्रावसुना राष्ट्रियेण भर्तुः पादमूलं(लात्) प्रेषितानाम् अस्माकम् इह प्रमदवने कलागृहकर्म[5] समर्पितम्। तस्माद् आर्य, न कदापि श्रुतपूर्व एष वृत्तान्तोऽस्माभिः।) >][6] [57]

कञ्चुकी- तेन हि न पुनरेवं प्रवर्तितव्यम्। [58]

उभे- अज्ज कोदूहलं णो। जइ इमिणा जणेण सोदव्वं, ता कधेदु अज्जो किं णिमित्तं भट्टिणा वसन्तूसवो[7] पडिसिद्धो त्ति। (आर्य, कौतूहलं नः। यदि अनेन जनेन श्रोतव्यम्, तर्हि कथयतु आर्यः, किं निमित्तं भर्त्रा वसन्तोत्सवः प्रतिषिद्ध इति।) [59]

मिश्रकेशी- (स्वगतम्) ऊसवपिआ राआणो होन्ति। ता एत्थ गुरुणा कारणेण होदव्वं। (उत्सवप्रिया राजानो भवन्ति। तस्माद् अत्र गुरुणा कारणेन भवितव्यम्।) [60]

कञ्चुकी- (स्वगतम्) बहुलीभूतमेतत् किं न कथ्यते। (प्रकाशम्) अस्ति भवत्योः कर्णपथमागतं शकुन्तला-प्रत्यादेश-कौलीनम्?। [61]

---

1. गाथामिमामुद्दिश्य शङ्करो लिखति यल् लास्यमिदमासीनपाठ्य-नामकम्। (पृ. 271), अभिनयविषये टीकेयम् अवधेया।, तृतीयपादस्य स्थाने "युवतिजनमोहनसह" इति पाठान्तरमपि लिखति सः॥
2. काश्मीर-पाठे मञ्जरीभङ्गमिति।, मैथिल-पाठे दृश्यमानं पाठान्तरमग्रिमश्लोकस्थेन कलिकाशब्देनायातम्।
3. अत्र "तथा हीति" निपातद्वयेन कञ्चुकिन इयं निखिलाप्युक्तिः प्रक्षिप्तैवेति संसूच्यते।
4. यदि पूर्वोक्तस्य श्लोकस्य प्रक्षिप्तत्वं सिध्यति, तर्हि मिश्रकेश्या उक्तिरपि संशयग्रस्ता। निष्कासनीया च भवति।
5. काश्मीर-पाठे "क्रीडागृहकर्मे" ति पठ्यते।, किन्तु राज्ञश्चित्रकर्मालेखनमग्रिमे प्रसंगे वर्तते, तदनुरोधान्मैथिल-पाठः प्रसंगानुकुलः परिवर्तितः प्रतिभाति।, शङ्करोऽत्र संपादितमिति पाठान्तरमपि वर्तत इति लिखति।
6. काश्मीर-पाठस्यारम्भात्पूर्वमेव प्रविष्टोऽयं प्रक्षिप्तांशः सर्वासु वाचनासु समुपलभ्यते, स च निष्कासनीय एव।
7. काश्मीर-पाठे "वसन्तकौमुदी" ति पठ्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

उभे- अज्ज, सुदं रट्टिअमुहादो सव्वं अङ्गुलीअअदंसणं जाव। (आर्य, श्रुतं राष्ट्रियमुखात् सर्वमङ्गुलीयकदर्शनं यावत्।) [62]

कञ्चुकी- तेन हि स्वल्पं कथयितव्यम्। यदैव हि अङ्गुरीयकदर्शनादनुस्मृतं देवेन, सत्यमूढपूर्वा मया रहसि तत्रभवती शकुन्तला, मोहात्प्रत्यादिष्टेति, तदैव पश्चात्तापमुपगतो देवः। [63]

तथाहि,

रम्यं द्वेष्टि यथा पुरा प्रकृतिभिर्न प्रत्यहं सेव्यते
शय्याप्रान्तविवर्तनैर्विगमयत्युन्निद्र एव क्षपाः।
दाक्षिण्येन ददाति वाचमुचितामन्तःपुरेभ्यो यदा
गोत्रेषु स्खलितस्तदा भवति च व्रीडाविलक्षश्चिरम्।। 6-5।। [64]

मिश्रकेशी- (स्वगतम्) पिअं मे पिअं मे। (प्रियं मे, प्रियं मे।) [65]

कञ्चुकी- अस्मात्प्रभवतो वैमनस्यात् प्रत्याख्यात उत्सवः। [66]

उभे- जुज्जदि। (युज्यते।) [67]

(नेपथ्ये)

एदु एदु भवं। (एतु एतु भवान्।) [68]

कञ्चुकी- (कर्णं दत्त्वा पुरोऽवलोक्य च) अये इत एवाभिवर्तते देवः। तद्गच्छतां भवत्यौ। स्वकर्मानुष्ठीयताम्। [69]

उभे- तथा। (इति निष्क्रान्ते।) [70]

(ततः प्रविशति पश्चात्तापगृहीतो राजा विदूषकः प्रतीहारी च।) [71]

कञ्चुकी- (राजानं विलोक्य) अहो, सर्वावस्थासु रामणीयकमाकृतिविशेषाणाम्। तथा ह्येष एवं वैमनस्य परीतोऽपि प्रियदर्शनो देवः। [72]

तथाहि,

प्रत्यादिष्टविशिष्टमण्डनविधिर्वामप्रकोष्ठे श्लथं
बिभ्रत् काञ्चनमेकमेव वलयं श्वासोपरक्ताधरः।
चिन्ताजागरणप्रताम्रनयनस्तेजोगुणैरात्मनः
संस्कारोल्लिखितो महामणिरिव क्षीणोऽपि नालक्ष्यते।। 6-6।। [73]

मिश्रकेशी- (राजानमवलोक्य) ठाणे क्खु पच्चादेसविमाणिदा वि इमस्स कारणादो सउन्तला किलिम्मदि। (स्थाने खलु प्रत्यादेशविमानितापि अस्य कारणात् शकुन्तला क्लाम्यति।) [74]

राजा- (सध्यान[1] परिक्रम्य)

प्रथमं सारङ्गाक्ष्या प्रियया प्रतिबोध्यमानमपि सुप्तम्।
अनुशयदुःखायेदं हतहृदयं संप्रति विबुद्धम्।। 6-7।। [75]

मिश्रकेशी- ईदिसाइं से तवस्सिणीए भाअधेआइं। (ईदृशानि तस्याः तपस्विन्याः भागधेयानि।) [76]

विदूषकः- (अपवार्य) हुं, भूए वि लङ्घिदो एसो सउन्तलावादेण। ण जाणे कधं चिकिच्छिदव्वो भविस्सदि। (हूँ, भूयोऽपि लङ्घित एषः शकुन्तलावातेन। न जाने कथं चिकित्सितव्यो भविष्यति।) [77]

---

1. काश्मीर-पाठे "ध्यानमन्दमि" ति पठ्यते।, आङ्गिकाभिनये भेदः परिलक्ष्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

कञ्चुकी- (उपसृत्य) जयति जयति महाराजः। देव! प्रत्यवेक्षिताः प्रमदवनभूमयः। यथाकाममध्यास्तां विनोदस्थानानि देवः। [78]

राजा- वेत्रवति[1] ,मद्वचनादमात्यपिशुनं ब्रूहि-चिरादप्रबोधान्[2] संभावितमस्माभी राजधर्मानुशासनम् अनुष्ठातुम्। यत्प्रत्यवेक्षितं पौरकार्यमार्येण, तत्पत्रे आरोप्य प्रस्थाप्यतामिति। [79]

प्रतीहारी- जं देवो आणवेदि। (इति निष्क्रान्तः) (यद् देव आज्ञापयति।) [80]

राजा- पार्वतायन, त्वमपि स्वनियोगमशून्यं कुरु। [81]

कञ्चुकी- तथा। (इति निष्क्रान्तः) [82]

विदूषकः- किदं भवदा णिम्मक्खिअं। संपदं सिसिरविच्छेदरमणीए इमस्सिं पमदवणे अत्ताणअं विणोदेहि।

(कृतं भवता निर्मक्षिकम्। साम्प्रतं शिशिरविच्छेदरमणीय एतस्मिन् प्रमदवन[3] आत्मानं विनोदय।) [83]

राजा- (निःश्वस्य) वयस्य, यदुच्यते रन्ध्रोपनिपातिनोऽनर्था इति तदव्यभिचारि। पश्य-[84]

> **मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना मम च मुक्तमिदं तमसा मनः।**
> **मनसिजेन सखे प्रहरिष्यता धनुषि चूतशरश्च निवेशितः[4]॥ 6-8॥ [85]**

अपि च-

> **उपहितस्मृतिरङ्गुलिमुद्रया प्रियतमामनिमित्तनिराकृताम्।**
> **अनुशयादनुरोदिमि चोत्सुकः सुरभिमाससुखं च पुरः स्थितम्[5]॥ 6-9॥ [86]**

विदूषकः- भो वअस्स, चिट्ठ दाव। इमिणा दण्डअट्ठेण कन्दप्पवाणं णासेमि। (भो वयस्य, तिष्ठ तावत्। अनेन दण्डकाष्ठेन कन्दर्पबाणं नाशयामि।) [87]

राजा- (सस्मितम्) दृष्टं भवतो ब्रह्मवर्चसम्। सखे, क्वेदानीमुपविष्टः प्रियायाः किं चिदनुकारिणीषु लतासु दृष्टिं विनोदयामि?। [88]

विदूषकः- णं भवदा आसण्णपरिचारिणी मेहाविणी लिविअरी आदिट्ठा-माहवीलदामण्डवे इमं वेलं अदिवाहइस्सं। तहिं से चित्तफलहए सहत्थलिखिदा तत्थभोदीए पडिकिदी आणिअदु त्ति। (ननु भवता आसन्नपरिचारिणी मेधाविनी लिपिकरी आदिष्टा - माधवीलतामण्डप इमां वेलाम् अतिवाहयिष्यामि। तर्हि तस्याः चित्रफलके स्वहस्तलिखिता तत्रभवत्याः प्रतिकृतिः आनीयतामिति।) [89]

राजा- सदृशं मे हृदयाश्वासनम्। तत्तदेवादेशय। [90]

विदूषकः- इदो इदो भवं। (इति परिक्रामतः।) [91]

(मिश्रकेशी अनुगच्छति।) [92]

विदूषकः- एस मणिसिलापट्टसणाहो माहवीलदामण्डवो उअआररमणीअदाए णीसद्दसाअदेण विअ पडिच्छदि तुमं। ता पविसिअ एत्थ उवविसम्ह। (एष मणिशिलापट्टसनाथो माधवीलतामण्डप उपचाररमणीयतया निःशब्दस्वागतेनेव प्रतीच्छति भवन्तम्। तस्मात् प्रविश्यात्रोपविशावः।) [93]

---

1. काश्मीर-पाठे वेत्रवत्या नाम "वसुमती" ति पठ्यते।
2. काश्मीर-पाठे "चिरप्रबोधान्ने" ति पठ्यते।
3. एतैः शब्दैरपि सिध्यति यत् "चूतानां चिरनिर्गतापि० (6-4)" इति श्लोकः, तत्सम्बन्धी च संवादः प्रक्षिप्त एव।
4. काश्मीर-पाठे श्लोकोऽयं नास्ति।, अनयोः श्लोकयोर्मध्ये विचारस्य पुनरुक्तिरस्त्येव, तथापि प्रथम एव श्लोकः श्रद्धेय इति प्रतीयते।
5. काश्मीर-पाठे श्लोकोऽयं प्रक्षिप्तः प्रतिभाति, यतो हि विदूषकस्यानुगामिन्युक्तिः पूर्वोक्तेन श्लोकेनैव संगच्छते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(इति उभौ प्रविश्योपविष्टौ।) [94]

मिश्रकेशी- लदासण्ठिधा भविअ पेक्खिस्सं दाव सहीए पडिकिदिं। तदो से भत्तुणो अणुराअं बहुमुहं णिवेदइस्सं[1]। (लतातिरोहिता भूत्वा प्रेक्षिष्ये तावत् सख्याः प्रतिकृतिम्। ततः तस्यै भर्तुरनुरागं बहुमुखं निवेदयिष्यामि।) (तथा कृत्वा स्थिता[2]।) [95]

राजा- (निःश्वस्य) सखे माधव्य, सर्वमिदानीं स्मरामि। प्रियायाः प्रथमदर्शनवृत्तान्तं कथितवानस्मि भवते सर्वम्। स भवान्प्रत्याख्यानकाले मत्समीपगो नासीत्। प्रथममपि न त्वया कदाचिद् संकथासु तत्रभवत्याः संकीर्तितं नाम। कच्चिदहमिव विस्मृतवांस्त्वमसि[3]?। [96]

विदूषकः- ण विसुमरामि। किं तु सव्वं कधिअ अवसाणे तए भणिदं परिहासविअप्पो एसो, ण भूदत्थो त्ति। मए मन्दबुद्धिणा तह ज्जेव गहिदं। अहवा भविदव्वदा एत्थ बलवदी। (न विस्मरामि। किन्तु सर्वं कथयित्वा, अवसाने त्वया भणितं परिहासविजल्प[4] एषो, न भूतार्थ इति। मया मन्दबुद्धिना[5] तथैव गृहीतम्। अथवा भवितव्यतात्र बलवती।) [97]

मिश्रकेशी- एवं णेदं। (एवं न्विदम्।) [98]

राजा- (क्षणं ध्यात्वा) सखे, परित्रायस्व माम्। [99]

विदूषकः- भो किं एदं?। अणुववण्णं तव। ण कदावि सप्पुरिसा सोअवरुद्धा होन्ति। णं पवादे वि णिक्कम्पा ज्जेव गिरिओ। (भोः, किमिदम्। अनुपपन्नं तव। न कदापि सत्पुरुषा शोकावरुद्धा भवन्ति[6]। ननु प्रवातेऽपि निष्कम्पा एव गिरयः।) [100]

राजा- वयस्य, निराकरणविक्लवायास्ते सख्यास्तामवस्थामनुस्मृत्य बलवदशरणोऽस्मि। [101]

सा हि,

इतः प्रत्याख्यानात्[7] स्वजनमनुगन्तुं व्यवसिता
स्थिता तिष्ठेत्युच्चैर्वदति गुरुशिष्ये गुरुसमे।
पुनर्दृष्टिं बाष्पप्रकरकलुषामर्पितवती
मयि क्रूरे यत्तत्सविषमिव शल्यं दहति माम्।। 6-10।। [102]

मिश्रकेशी- अम्हहे, इदिसी कज्जस्स परवसदा-इमस्स जणस्स संदावेणाधिअदरं अहं रमामि[8]। (अम्महे, ईदृशी कार्यस्य परवशता। अस्य जनस्य संतापेनाधिकतरम् अहं रमे[9]।) [103]

विदूषकः- भो एत्थ तक्केमि केणावि तत्थभोदी आआसचारिणा णीद त्ति। (भो अत्र तर्कयामि, केनापि तत्रभवती आकाशचारिणा नीतेति[10]।) [104]

---

1. काश्मीर-पाठे "लतामाश्रित्य स्थिते" त्येव रंगसूचना केवला पठ्यते। नास्ति तत्र निखिलापीयमुक्तिः।
2. लतासंसृष्टीभूयेत्यर्थ इति टीकाकारः शङ्करः। (रसचन्द्रिकायाम् - पृ. 274)
3. काश्मीर-पाठे "न खलु अहमिव मिथस्संविदं स्मृतोऽसी" ति पठ्यते।
4. काश्मीर-पाठे "परिहासविकल्प" इति पठ्यते।, किन्तु मै.पाठस्य द्वितीयांकस्यान्ते तु 0विकल्प इत्येव।
5. काश्मीर-पाठे "रहस्यभेदभीरुणा मयापि मृत्पिण्डमन्दबुद्धिने" ति पठ्यते।
6. काश्मीर-पाठे "किमेतद् ईदृशमुपनतम्। कदा पुनस्सत्पुरुषाः शोकबद्धधैर्या भवन्ती" ति पठ्यते।
7. काश्मीर-पाठे "ततः प्रत्यादिष्टे" ति पठ्यते।
8. धर्मानन्दकौशाम्बिनः मैथिलमातृकायाम् "इमस्स संदावेण अहं विआउलीभूदे त्ति" पठ्यते।, टीकाकारेण शङ्करेणापि या छाया प्रदत्ता, तत्र "संतापेनापि अहं वा (?) न उत्सहे" इति लिखितम्।
9. काश्मीर-पाठे "कष्टावस्था। अस्य सन्तापेनाहं रम" इति पठ्यते।
10. काश्मीर-पाठ "आकाशगामिनाऽपहृते" ति पठ्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- वयस्य, क इव देवताभ्योऽन्यः सम्भाव्यते। कः पतिव्रतां तामन्यः परामर्ष्टुमुत्सहते[1]?। मेनका किल सख्यास्ते जन्मभूमिप्रतिष्ठेतितत्सखीजनात् श्रुतवान्नस्मि। तत्सहचरीभिस्तया वा सा नीतेति मे हृदयमाशङ्कते। [105]

मिश्रकेशी- संमोहे वि विम्हअणीओ क्खु से पडिबोधो। (संमोहेऽपि विस्मयजनकः खल्वस्य प्रतिबोधः[2]।) [106]

विदूषकः- जइ एवं ता समस्ससदु भवं।अत्थि क्खु समागमो कालेणावि तत्थभोदीए। (यदि एवं तर्हि समाश्वसतु भवान्। अस्ति खलु समागमः कालेनापि तत्रभवत्याः।) [107]

राजा- कथमिव?। [108]

विदूषकः- भो ण हि मादापितरा भत्तिविरहिदं दुहितरं चिरं पेक्खिदुं पारेन्ति। (भो न हि मातापितरौ भर्तृविरहितां दुहितरं चिरं प्रेक्षितुं पारयन्ति।) [108]

राजा- वयस्य,

स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु क्लृप्तं नु तावत्फलमेव पुण्यैः।
सासन्निवृत्त्यै सुदती ममैव[3] मनोरथानाम् अतटप्रपातः॥ 6-11॥ [109]

विदूषकः- वअस्स, मा एवं भण। णं अङ्गुलीअअं एव एत्थ णिदंसणं। अवस्संभाविणो अचिन्तणीअसमागमा होन्ति। (वयस्य, मैवम् भण। ननु अङ्गुरीयकमेवात्र निदर्शनम्, अवश्यंभाविनोऽचिन्तनीय समागमा[4] भवन्ति।) [110]

राजा- (अङ्गुरीयकमवलोक्य) इदं तदसुलभस्थानभ्रंशशोचनीयं मे अङ्गुरीयकम्। [111]

तव सुचरितमङ्गुरीय नूनं गतममुनेव विभाव्यते फलेन[5]।
अरुणनखमनोहरासु तस्याश्च्युतमसि लब्धपदं यदङ्गुलीषु॥ 6-12॥ [112]

मिश्रकेशी- जइ अण्णहत्थं गदं भवे तदा सच्चं सोअणीअं भवे। सहि, दूरे वट्टसि। एआइणी ज्जेव अहं कण्णसुहाइं अणुभवामि। (यदि अन्यहस्तं गतं भवेत्, तदा सत्यं शोचनीयं भवेत्[6]। सखि, दूरे वर्तसे। एकाकिन्येव अहं कर्णसुखानि अनुभवामि।) [113]

विदूषकः- भो, इअं णाममुद्दा केण उण उवुग्घादेण तत्थभोदीए हत्थसंसग्गं पाविदा?। (भो, इयं नाममुद्रा[7] केन पुनःउपोद्घातेन तत्रभवत्या हस्तसंसर्गं प्रापिता।) [114]

मिश्रकेशी- ममावि कोदूहलेण वावारिदो एसो[8]। (ममापि कौतूहलेन व्यापारित एषः।) [115]

राजा- वयस्य, श्रूयताम्। तदा स्वनगराय प्रस्थितं मां प्रिया सबाष्पमाह, कियच्चिरेणार्यपुत्रः प्रतिवार्तां दास्यतीति[9]। [116]

विदूषकः- तदो तदो। (ततस्ततः।) [117]

राजा- अथेमां नाममुद्रामङ्गुल्यां निवेशयता मयाभिहिता-[118]

---

1. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं नोपलभ्यते।, मैथिल-रंगकर्मिभिः प्रक्षिप्तं स्यादिति प्रतीयते।
2. काश्मीर-पाठ "अहो मोहः खल्वेष रमणीयः, पुनः प्रतिबोध" ति पठ्यते।, बंगीय-पाठे च पृथगेव पाठः।
3. काश्मीर-पाठे "स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो वा, क्लिष्टं नु तावत् फलमेव पुण्यम्। आसन्नवृत्तेस्तदतीतम् एष" इति पठ्यते।
4. काश्मीर-पाठ "एवमेव संभाविनो चिन्तनीयास्समागमा" इति पठ्यते।
5. काश्मीर-पाठे "प्रतनु ममेव विभज्यते फलेने" ति पठ्यते।
6. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं नास्तीति।
7. काश्मीर-पाठे "ऽङ्गुलीयकमि" ति पठ्यते।
8. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं नास्ति।, मैथिल-रंगकर्मिभिस्तत्प्रक्षिप्तं स्यात्। यतो हि, रंगोपरि स्थिता मिश्रकेशी बहुकालपर्यन्तं निष्क्रिया मौना च यदि स्थीयेत, तर्हि तन्नोचितमिति तेषां चिन्तनं स्यात्।
9. काश्मीर-पाठे "कियच्चिरेणार्यपुत्रोऽस्माकं संस्मरिष्यती" ति पठ्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

विदूषकः- किं ति?। (किमिति।) [119]

राजा-

एकैकमत्र दिवसे दिवसे मदीयं नामाक्षरं गणय यासि न यावदन्तम्।
तावत्प्रिये मदवरोधनिदेशवर्ती[1] नेता जनस्तव समीपमुपैष्यतीति।। 6-13।। [120]

तच्च मोहाद्दारुणमनुष्ठितम्। [121]

मिश्रकेशी- रमणीओ क्खु अवधी विहिणा विसंवादिदो। (रमणीयः खल्ववधिर्विधिना विसंवादितः[2]।) [122]

विदूषकः- अध कधं पुण रोहिदमच्छस्स[3] बडिशं विअ मुहं पइट्ठं एदं आसि?। (अथ कथं पुनः रोहितमत्स्यस्य बडिशमिव मुखं प्रविष्टमेतद् आसीत्।) [123]

राजा- वयस्य, शचीतीर्थसलिलं वन्दमानायाः सख्यास्ते गङ्गास्रोतसि परिभ्रष्टम्[4]। [124]

विदूषकः- हुँ जुज्जदि। (हूँ, युज्यते।) [125]

मिश्रकेशी[5]- अदो क्खु तवस्सिणीए सउन्तलाए अधम्मभीरुणो इमस्स राएसिणो अवणीदो सन्देहो जादो। अहवा ण ईदिसो अणुराओ अहिण्णाणमवेक्खदि। ता किं पि एदं। (अतः खलु तपस्विन्याः शकुन्तलाया अधर्मभीरोरमुष्य राजर्षेरपनीतः सन्देहो जातः। अथवा न ईदृशोऽनुरागोऽभिज्ञानम् अपेक्षते[6]। तत् किमपीदम्।) [126]

राजा- भवतूपालप्स्ये तावदिदमङ्गुरीयकम्। [127]

विदूषकः- (सस्मितम्) अहं पि एदं दण्डअट्ठं उवालहिस्सं, कधं उज्जुअस्स मे कुडिलं सि त्ति तुमं?। (अहमपि एतद्-दण्डकाष्ठम् उपालप्स्ये। कथम् ऋजुकस्य मे कुटिलमसि त्वम्[7]।) [128]

राजा- (अनादृत्य)

कथं नु तं कोमलबन्धुराङ्गुलिं[8]
करं विहायासि निमग्नमम्भसि।

अथवा-

अचेतनं नाम गुणं न वीक्षते[9]
मयैव कस्मादवधीरिता प्रिया।। 6-14।। [129]

मिश्रकेशी- सअं जेव पडिवण्णो जं वत्तुकामा। (स्वयमेव प्रतिपन्नः, यद् वक्तुकामा[10]।) [130]

विदूषकः- भो अहं सव्वधा बुभुक्खाए मारिदव्वो। (भो अहं सर्वथा बुभुक्षया मारयितव्यः[11]।) [131]

---

1. काश्मीर-पाठे "नामाक्षरं गणय, गच्छसि यावदन्तम्। तावत् प्रिये, मदवरोधगृहप्रवेशी" ति पठ्यते।
2. काश्मीर-पाठे "रमणीयस्ते विधिना दर्शितो मार्ग" इति पठ्यते।
3. काश्मीर-पाठेऽस्य विशेषणत्वेन दासीए पुत्तस्स इत्यधिकम्।
4. काश्मीर-पाठ इतः परं, "भवतु, उपालप्स्ये तावदेतदि" ति वर्तते। तच्च मैथिल-पाठे पृथग्वाक्यत्वेन पश्चादुपस्थाप्यते।
5. काश्मीर-पाठे निखिलापीयमुक्तिरेव नास्ति।
6. मैथिल-रंगकर्मिभिः दुष्यन्तस्य प्रेमाणमधिकृत्येयं समालोचना प्रकटीक्रियते।
7. मैथिली-पाठे नवीनमिदं वाक्यं प्रक्षिप्तं प्रतिभाति।
8. काश्मीर-पाठे "बन्धुरकोमलाङ्गुलिमि" ति भिन्नः पदक्रमो लक्ष्यते।
9. काश्मीर-पाठे "ऽचेतनं नाम गुणान् न लक्षयेदि" ति पठ्यते।
10. काश्मीर-पाठे "पूर्वापरविरोध्येष वृत्तान्तो वर्तत" इति।
11. काश्मीर-पाठे विदूषकस्य मुखे नास्त्येवेदं वाक्यम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा - (अनादृत्य) प्रिये, अकारणपरित्यागाद् अनुशयदग्धहृदयस्तावद् अनुकम्प्यताम् अयं जनः पुनर्दर्शनेन[1]। [132]

(प्रविश्य चित्रफलकहस्ता) [133]

लिपिकरी- भट्टा, इअं चित्तगदा भट्टिणी। (भर्तः, इयं चित्रगता भट्टिनी।) [134]

(इति चित्रफलकं दर्शयति।)

राजा- (विलोक्य)अहो रूपमस्यालेख्यस्य। तथा हि-[135]

दीर्घापाङ्गविसारिनेत्रयुगलं लीलाञ्चितभ्रूलतं
दन्तान्तःपरिकीर्णहास्यकिरणज्योत्स्नाविलिप्ताधरम्।
कर्कन्धूद्युतिपाटलौष्ठरुचिरं तस्यास्तदेतन्मुखं
चित्रेऽप्यालपतीव विभ्रमलसत्प्रोद्भिन्नकान्तिद्रवम्[2]॥ 6-15॥ [136]

विदूषकः:- (विलोक्य) साहु वअस्य साहु, भावमहुरा रेखा। खलदि विअ मे दिट्ठी णिण्णुण्णदप्पदेसेसुं। सत्ताणुप्पवेससङ्काए आलवणकोदूहलं मे जणेदि। (साधु वयस्य साधु। भावमधुरा रेखा। स्खलतीव मे दृष्टिः निम्नोन्नतप्रदेशेषु[3]। सत्त्वानुप्रवेशशङ्कया आलपन-कौतूहलं मे जनयति[4]।) [137]

मिश्रकेशी- अहो राएसिणो वत्तिआरेहा णिउणदा। जाणे मे पिअसही अग्गदो वट्टदि त्ति। (अहो राजर्षेर्वर्तिकारेखा निपुणता। जाने मे प्रियसखी अग्रतो वर्तत इति।) [138]

राजा- वयस्य,

यद्यत्साधु न चित्रेऽस्मिन्, क्रियते तत्तदन्यथा।
तथापि तस्या लावण्यं रेखायां किंचिदन्वितम्[5]॥ 6 - 16॥ [139]

मिश्रकेशी- सरिसं पच्छात्तावगुरुणो सिणेहस्स। (सदृशं पश्चात्तापगुरोः स्नेहस्य[6]।) [140]

राजा- (निःश्वस्य)

साक्षात्प्रियामुपगतामपहाय पूर्वं चित्रार्पितामहमिमां बहु मन्यमानः।
स्त्रोतोवहां पथि निकामजलामतीत्य जातः सखे प्रणयवान्[7] **मृगतृष्णिकायाम्**॥ 6-17॥ [141]

मिश्रकेशी- सअं जेव पडिवण्णो जं अम्हे वत्तुकामा। (स्वयमेव प्रतिपन्नो यद्अस्मि वक्तुकामा।) [142]

विदूषकः:- भो तिण्णि एत्थ आइदीओ दीसन्ति। सव्वाओ दंसणीआओ। ता कदमा तत्थभोदी सउन्तला?।
(भोः तिस्र अत्र आलिखिता दृश्यन्ते। सर्वा दर्शनीयाः। तत्कतमा तत्रभवती शकुन्तला।) [143]

मिश्रकेशी- अणहिण्णो एस तवस्सी सहीरूवस्स मूढदिट्ठी। ण इमं(यं) खु से गदा पच्चक्खदं सही। (अनभिज्ञ एष तपस्वी सखीरूपस्य मूढदृष्टिः। न इयं खलु तस्मै गता प्रत्यक्षतां सखी[8]।) [144]

राजा- त्वं तावत्कतमां मन्यसे?। [145]

---

1. काश्मीर-पाठे "ऽकारणपरित्यक्ता कदा नु प्रेक्षणीया भविष्यती" ति।, उभयत्र रंगकर्मिणां पार्थक्यं दृश्यते।
2. श्लोकोऽयं प्रक्षिप्तः प्रतिभाति।, अस्माच्छ्लोकादनन्तरं "तस्याः तुङ्गमिव स्तनद्वयमिति" श्लोकः स्यादिति विदूषकस्योत्तरवर्तिनो वाक्यादनुमीयते।
3. मैथिल-पाठे वाक्यमिदं "तस्याः तुङ्गमिव स्तनद्वयमिति" श्लोकस्यापेक्षां सूचयति। स च बंगीय-पाठे वर्तते।
4. काश्मीर-पाठे विदूषकस्य मुखे नास्त्येतादृशं वाक्यम्।, मैथिलादिषु पाठेष्वेव तद् वर्तते।
5. काश्मीर-पाठे नास्त्ययं श्लोकः। स च मैथिल-रंगकर्मिभिः प्रक्षिप्तः स्यादिति प्रतीयते।
6. काश्मीर-पाठे नास्तीदं वाक्यम्।
7. काश्मीर-पाठे "बहुनिकामजलामतीत्य, जातोऽस्मि रे प्रणयवान्०" इति पठ्यते।
8. काश्मीर-पाठे "मोहदक्षस्तपस्वी। अवश्यं नास्य प्रत्यक्षा सखी।" इति पठ्यते। तच्चाधिकं समीचीनं भाति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

विदूषकः- (निर्वर्ण्य) तक्केमि जा एसा सिढिलिअकेसबन्धुव्वम्मन्तबहुलकुसुमेण बद्धसेअबिन्दुणा वअणेण विसेसदो दंसणीआ,एदस्स सिणिद्धदरपल्लवस्स बालचूअरुक्खस्स पासे आलिहिदा, सा तत्थभोदी सउन्तला। सेसाओ सहीओ त्ति। (तर्कयामि यैषा शिथिलकेशबन्धोद्वमन्तबहुलकुसुमेन बद्धस्वेदबिन्दुना वदनेन विशेषतो दर्शनीया। एतस्य स्निग्धतरपल्लवस्य बालचूतवृक्षस्य पार्श्वे आलिखिता[1] सा तत्रभवती[2] शकुन्तला। शेषे सख्यौ इति।) [146]

राजा- निपुणो भवान्। अस्त्यत्र भावलिङ्गं च। [147]

स्निग्धाङ्गुलि-विनिवेशाद्[3] रेखा प्रान्तेषु दृश्यते मलिना।
अश्रु च कपोलपतितं लक्ष्यमिदं वर्तिकोच्छ्वासात्।। 6 - 18।। [148]

मेधाविनि, अर्धलिखितमिदं विनोदस्थानमस्माभिः। तद् गच्छ वर्तिकास्तावदानय। [149]

मेधाविनी- अज्ज माधव्व, अवलम्ब चित्तफलअं। जाव गच्छामि। (आर्य माधव्य, अवलम्बस्व चित्रफलकम्। यावद् गच्छामि।) [150]

राजा - अहमेवैनमवलम्बे[4]। (इति यथोक्तं करोति। निष्क्रान्ता लिपिकरी) [151]

विदूषकः- भो एत्थ किं अवरं अहिलिहिदव्वं?। (भो अत्र किमवरम् अभिलिखितव्यम्।) [152]

मिश्रकेशी- जो जो पिअसहीए अहिमदो पदेसो तं तं आलिहिदुकामो राजा भविस्सदि त्ति तक्केमि। (यत् यत् प्रियसख्या अभिमतः प्रदेशस्तं तमालिखितुकामो राजा भविष्यतीति तर्कयामि।) [153]

राजा- सखे, श्रूयताम्। [154]

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी
पादस्तामभितो निषण्णचमरो गौरीगुरोः पावनः[5]।
शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः
शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम्।। 6-19।। [155]

विदूषकः- (अपवार्य[6]) जधा मन्तेदि तधा तक्केमि पूरिदो अणेण चित्तफलओ कुच्चणिकाणं तावसाणं समूहेहिं। (यथा मन्त्रयति तथा तर्कयामि, पूरितोऽनेन चित्रफलकः कुर्चानतानां तापसानां समूहैः।) [156]

राजा- अन्यच्च शकुन्तलाप्रसाधनमभिप्रेतमप्यत्र लिखितुं विस्मृतमस्माभिः। [157]

विदूषकः- किं विअ?। (किमिव।) [158]

मिश्रकेशी- वणवासस्स कण्णकाभावस्स सदिसं से भविस्सदि। (वनवासस्य कन्यकाभावस्य[7] सदृशं तस्या भविष्यति।) [159]

राजा-

कृतं न कर्णार्पितबन्धनं सखे शिरीषमागण्डविलम्बिकेसरम्।
न वा शरच्चन्द्रमरीचिकोमलं मृणालसूत्रं रचितं स्तनान्तरे।। 6-20।। [160]

विदूषकः- किं ण क्खु तत्थभोदी रत्तकुवलअसोहिणा अग्गहत्थेण मुहं ओवारिअ चकिदचकिदा विअ दीसदि? आं ही ही भोः,

---

1. काश्मीर-पाठे "ऽवसेकस्निग्धपल्लवाम् अशोकलतिकां संश्रितामि" ति पठ्यते।, बंगीय-पाठोऽपीदृश एव।
2. काश्मीर-पाठे शकुन्तलाया विशेषणमेकमधिकं दृश्यते। यथा-उच्छ्वसितनीविना वसनेनेषत् परिश्रान्तेवेति।
3. काश्मीर-पाठे "स्विन्नाङ्गुलिनिवेश" इति पठ्यते।, मैथिल-पाठेऽक्षराधिक्याच्छन्दोभङ्गो भवति।
4. काश्मीर-पाठ इदं वाक्यमेव नास्ति।, मैथिल-रंगकर्मिभिस्तदत्र नवीनां नाटकीयतां प्रवेशयितुं प्रक्षिप्तम्।
5. काश्मीर-पाठे "पादान्ते निभृतं निषण्णचमरो गौरीगुरोः पावने" इति पठ्यते।
6. काश्मीर-पाठे "आत्मगतमि" ति रंगसूचना।, मैथिल-पाठे नाटकीयताधिका वर्ततेऽपवार्योक्तित्वात्।
7. काश्मीर-पाठे "तस्याश्च सौकुमार्यस्ये" ति पठ्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

एसो दासीए पुत्तो कुसुमरसहरो महुअरो तत्थभोदीए वअणकमलं अहिलसदि। (किं न खलु तत्रभवती रक्तकुवलयशोभिना अग्रहस्तेन मुखम् आवृत्य चकितचकितेव दृश्यते। आं, ही ही भोः, एष दास्याः पुत्रः कुसुमरसहरो[1] मधुकरस्तत्रभवत्या वदनकमलम् अभिलषति।) [161]

राजा- ननु वार्यतामेष दुष्टः[2]। [162]

विदूषकः- भो तुमं जेव अविणीदाणुसासणे पहवसि। (भोः त्वमेवाविनीतानुशासने प्रभवसि।) [163]

राजा- युज्यते। अयि भोः कुसुमलताप्रियातिथे। किमतः परिपतनखेदमनुभवसि?। [164]

एषा कुसुमनिषण्णा तृषितापि सती भवन्तमनुरक्ता।
प्रतिपालयति भ्रमरी न खलु मधु त्वां[3] विना पिबति॥ 6-21॥ [165]

मिश्रकेशी- अइजुत्तं खु से वाहरिदं। (अभियुक्तं खलु अस्य व्याहृतम्[4]।) [166]

विदूषकः- भो पडिसिद्धवामा क्खु एसा जादी। (भोः प्रतिषिद्धवामा खलु एषा जातिः।) [167]

राजा- (सकोपम्) भोः। न मे शासने तिष्ठसि?। श्रूयतां- तर्हि संप्रति। [168]

अक्लिष्टबालतरुपल्लवलोभनीयं
पीतं मया सदयमेव रतोत्सवेषु।
बिम्बाधरं दशसि चेद् भ्रमर प्रियाया-
स्त्वां कारयामि कमलोदरबन्धनस्थम्॥ 6-22॥ [169]

विदूषकः- भो एवं तिक्खदण्डस्स कधं ण भाइस्सदि। (प्रहस्यात्मगतम्) एसो दाव उम्मत्तो। अहं पि एदस्स सङ्गेण ईदिसो ज्जेव संवुत्तो। (प्रकाशम्) भो चित्तं क्खु एदं। (भो एवं तीक्ष्णदण्डस्य कथं न भायिष्यति। एषस्तावद् उन्मत्तः। अहमप्येतस्य सङ्गेन ईदृश एव संवृत्तः।, (प्रकाशम्) भोः चित्रं खल्वेदम्[5]।) [170]

राजा- कथं चित्रम्?। मया पुनर्ज्ञातं स एव कालो वर्तत इति। [171]

मिश्रकेशी- ममावि दाव अप्पा अन्तरं ण गणेदि। जाव अहं पि इदाणिं पडिबुद्धा, किं उण जधा चिन्तिदाणुभावी एसो[6]। (ममापि तावद् आत्मा अन्तरं न गणयति। यावदहमपीदानीं प्रतिबुद्धा, किं पुनः यथा चिन्तितानुभावी एषः।) [172]

राजा- (सविषादम्) वयस्य, किमिदमनुष्ठितं पौरोभाग्यम्?। [173]

दर्शनसुखमनुभवतः साक्षादिव तन्मयेन हृदयेन।
स्मृतिकारिणा त्वया मे पुनरपि चित्रीकृता कान्ता॥ 6-23॥ [174]

(इति बाष्पं विसृजति[7]) [175]

विदूषकः- सव्वो पुव्वावरविरुद्धो विहिणो मग्गो। (सर्वः पूर्वापरविरुद्धो विधेर्मार्गः[8]।) [176]

---

1. काश्मीर-पाठे "कुसुमपाटच्चर" इति।
2. काश्मीर-पाठे "निवार्यतामेष धृष्ट" इति।
3. काश्मीर-पाठे "मधुकरी न खलु मधु त्वये" ति पठ्यते।
4. काश्मीर-पाठे "ऽभिजातं खलु वारित" इति।
5. काश्मीर-पाठे विदूषको नात्र चित्रमिदमिति स्पष्टीकरोति। काश्मीर-रंगकर्मिणां भिन्नैव पाठयोजना।
6. काश्मीर-पाठे मिश्रकेश्याः (=अक्षमालायाः) मुखे नास्त्येतादृशं वाक्यम्।, मैथिल-रंगकर्मिणां कर्तृत्वमिदम्।
7. काश्मीर-पाठे "रोदिती" ति पठ्यते।, ततश्चाक्षमाला वक्ति यद्, वयस्य, स्मृतं त्वया प्रत्यादेशविमाननं शकुन्तलायाः सख्याः, दृष्टं खलु प्रत्यक्षमस्माभिः।, तदनन्तरं लिपिकरी निवेदयति यद् पिङ्गलिकया तस्या हस्ताद् अवच्छिन्नो वर्तिका-करण्डकः। इत्यादि।।
8. काश्मीर-पाठे नास्त्येतादृशं विदूषकस्य वाक्यम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा - वयस्य, कथं विश्रामसुखमनुभवामि[1]?। [177]

प्रजागरात् खिलीभूतस्तस्या: स्वप्नसमागम:।
बाष्पोऽपि न ददात्येनां द्रष्टुं चित्रगतामपि॥ 6 - 24॥ [178]

मिश्रकेशी- सव्वधा वअस्स पमज्जिदं तए पच्चादेसदुक्खं पिअसहीए सउन्तलाए पच्चक्खं जेव सहीअणस्स। (सर्वथा वयस्य, प्रमार्जितं त्वया प्रत्यादेशदु:खं प्रियसख्या: शकुन्तलाया: प्रत्यक्षमेव[2] सखीजनस्य।) [179]

(प्रविश्य) **लिपिकरी-** भट्टा, वत्तिआकरण्डिअं गेण्हिअ इदोमुहं पत्थिदम्हि। (भर्त:, वर्तिकाकरण्डकं गृहीत्वा इतोमुखं प्रस्थितास्मि।) [180]

राजा- किं तत:?। [181]

लिपिकरी- जाव मे पिङ्गलिआदुदिआए देवीए वसुमदीए अहं जेव अज्जउत्तस्स उअणइस्सामि त्ति भणिअ सबल्लकारं गहिदो। (यावत् मे पिङ्गलिकाद्वितीयया देव्या वसुमत्या "अहमेवार्यपुत्रस्य उपनेष्यामी"[3] ति भणित्वा सबलात्कारं गृहीत:।) [182]

विदूषक:- तुमं कधं विमुक्का?। (त्वम् कथं विमुक्ता।) [183]

लिपिकरी- जाव लदाविडवलग्गं देवीए परिचारिआ अञ्चलं मोआवेदी दाव णिव्वाहिदो मए अप्पा। (यावत् लताविटपलग्नं देव्या: परिचारिका अञ्चलं मोचयति, तावत् निर्वाहितो मयात्मा।) [184]

(नेपथ्ये) एदु एदु भट्टिणी।

(एतु एतु भट्टिनी।) [185]

विदूषक:- (कर्णं दत्त्वा) भो अहिधावन्ती एसा अन्तेउरवग्घी मेहाविणिं मइं विअ कवलिदुं उवत्थिदा। (भो अभिधावन्ती एषा अन्त:पुरव्याघ्री[4] मेधाविनीं मृगीमिव कवलयितुमुपस्थिता।) [186]

राजा- वयस्य, उपस्थिता देवी बहुमानगर्विता च[5]। भवानिमां प्रियाप्रतिकृतिं रक्षतु। [187]

विदूषक:- अत्ताणअं पि भणेहि। (आत्मानमपि भण।) [188]

मिश्रकेशी- सहि एसा पडिकिदी वि दे पडिवक्खस्स अलंघणीआ करीअदि। (सखि, एषा प्रतिकृतिरपि ते प्रतिपक्षस्य अलंघनीया क्रियते।) [189]

विदूषक:- (चित्रफलकमादायोत्थाय च) जइ भवं अन्तेउरकूडवासादो मुञ्चिसदि, तदो मं मेहच्छन्दपासादे सद्दावेसि। इदं च तहिं गोवेमि जहिं पारावदं वज्जिअ ण को वि अण्णो पेक्खदि। (यदि भवान् अन्त:पुरकूटपाशात् मोक्ष्यते[6], ततो मे मेघच्छन्दप्रासादे शब्दापयिष्यसि। इदं च तत्र गोपयामि, यत्र पारावतं वर्जयित्वा न कोऽपि अन्य: प्रेक्ष्यते।) [190]

---

1. काश्मीर-पाठे "पश्य, कथम् अविश्रामदु:खम् अनुभवाम" इति।
2. काश्मीर-पाठे नास्त्येतादृशं वाक्यम्। मैथिल-रंगकर्मिणां प्रक्षेपोऽयम्।
3. काश्मीर-पाठे पिङ्गलिकया वर्तिका-करण्डक आच्छिन्न आसीत्। किन्तु मैथिल-रंगकर्मिभि: पूर्वपरिणीतानां पत्नीनां संघर्ष: प्रथमवारं प्रस्तावितम्, तच्च प्रक्षिप्तमेव। (यादृश: संघर्षो मालविकाग्निमित्र-विक्रमोर्वशीययोरपि निरूपित आसीत्। कालिदासस्य मनसि कदाचिदेतादृशं निरूपणमत्राभिज्ञानशाकुन्तले कर्तुम् नाभिप्रेतमासीत्। अत एव सूत्रधार: कथितवान् नवेन नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभिरिति। मै.-पाठात्तु नवेनेति पदं तु दूरीकृतम्।)
4. काश्मीर-पाठे राज्ञ्या: कुलप्रभाया: स्वरूपमेतादृशं नाकारीक्रियते।
5. काश्मीर-पाठे त्वीदृशं वाक्यमेव नास्ति।, दुष्यन्त: पूर्वपत्नीत: भीतिम् नानुभवति तत्र काश्मीर-पाठे।
6. मैथिल-पाठ एवान्त:पुरस्येर्ष्याजनित: संघर्ष: प्रदर्श्यते प्रथमवारम्।, काश्मीर-पाठे नास्त्येतादृशमन्त:पुरम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(इति द्रुतपदं निष्क्रान्तः) [191]

मिश्रकेशी- अम्मो, अण्णसंकन्तहिअओ वि पढुमं सम्भावणं रक्खदि। विरसो ण हु दाणि एसो। (अम्मो, अन्यसंक्रान्तहृदयोऽपि प्रथमं सम्भावनं रक्षति। विरस न हु इदानीमेषः[1]।) [192]

(प्रविश्य पत्रहस्ता) **प्रतीहारी-** जअदु जअदु भट्टा। (जयतु जयतु भर्ता।) [193]

राजा- वेत्रवति, न खल्वन्तरे दृष्टा त्वया देवी वसुमती?। (वेत्रवति, न खल्वन्तरे दृष्टा त्वया देवी वसुमती।) [194]

प्रतीहारी- दिट्ठा, पत्तहत्थं मं उण पेक्खिअ पडिणिअत्ता। (दिष्ट्या/दृष्टा, पत्रहस्तं मां पुनः प्रेक्ष्य प्रतिनिवृत्ता।) [195]

राजा- समयज्ञा[2] देवी कार्योपरोधं परिहरति। [196]

प्रतीहारी- देव, अमच्चो विण्णवेदि, अत्थिजणस्स बहुलदाए एक्कं मए पोरकज्जं पच्चवेक्खिदं। तं देवो पत्तारोविदं पच्चक्खीकरेदु त्ति। (देव, अमात्यो विज्ञापयति, अर्थिजनस्य बहुलतया एकमेव पौरकार्यं प्रत्यवेक्षितम्। तं देवः पत्रारोपितं प्रत्यक्षीकरोत्विति।) [197]

राजा- इतः पत्रं दर्शय। [198] (प्रतिहारी तथा करोति) [199]

राजा- (वाचयति)[3] विदितमस्तु भवताम्-धनवृद्धिनामा वणिग् वारिपथोपजीवी नौव्यसनेन विपन्नः।
स चानपत्यः। तस्य चानेककोटिसंख्यं वसु। तदिदानीं राजार्थतामापद्येत। श्रुत्वा देवः प्रमाणमिति। [200]

राजा- (सविषादमात्मगतम्) कष्टा खल्वनपत्यता। (चिन्तयित्वा) वेत्रवति, महाधनत्वाद् बहुपत्नीकेन तेन भवितव्यम्। तदन्विष्यतां यदि कदाचिदापन्नसत्त्वा कापि भार्या तस्य स्यात्। [201]

प्रतीहारी- देव दाणिं जेव साकेदस्स सेट्ठिणो दुहिदा णिव्वुत्तपुंसवणा तस्स जाआ सुणीअदि। (देव इदानीमेव साकेतस्य श्रेष्ठिनो[4] दुहिता निर्वृत्तपुंसवना तस्य जाया श्रूयते।) [202]

राजा- ननु स गर्भः पित्र्यमृक्थमर्हति[5]। ततो गत्वैवममात्यं ब्रूहि। [203]

प्रतीहारी- जं देवो आणवेदि। (इति प्रस्थिता।) (यद् देव आज्ञापयति।) [204]

राजा- एहि तावत्। [205]

प्रतीहारी- (प्रतिनिवृत्य) एस म्हि। (एष अस्मि[6]।) [206]

राजा- अथ किमनेन संततिरस्ति नास्ति वा?। [207]

येन येन वियुज्यन्ते प्रजाः स्निग्धेन बन्धुना।
स स पापादृते तासां दुष्मन्त[7] इति घुष्यताम्॥ 6-25॥ [208]

प्रतीहारी- एवं णाम घोसइदव्वं। (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविष्टा) देव, काले पवुट्ठं विअ सासणं अहिणन्दिदं महाजणेण देवस्स। (एवं नाम घोषयितव्यम्। देव, काले प्रवृष्टमिव[8] शासनम् अभिनन्दितं महाजनेन देवस्य।) [209]

---

1. काश्मीर-पाठे "बहुमान्याऽस्याः कुलप्रभा। अथवा, नैतत् किञ्चित्। विपञ्च्याः खलु असन्निधाने एकतन्तु-रप्यर्घती" ति साक्षमाला वदति। (6-21) श्लोकस्योपरि वर्तत उक्तिरियम्।।
2. काश्मीर-पाठे "कालज्ञे" ति पठ्यते।
3. काश्मीर-पाठे "मेधाविनि, वाच्यतामि" ति राजाज्ञापयति।, रंगकर्मिणां दृष्टिभेदः परिलक्ष्यते।
4. काश्मीर-पाठे "केशवश्रेष्ठिन" इति प्राप्यते।, मैथिल-पाठो मिथिलायाः साकेतेन सम्बन्धं द्योतयति।
5. काश्मीर-पाठे "पित्र्यं रिक्थमर्हती" ति पठ्यते।
6. काश्मीर-पाठ "इयमस्मी"ति।, उभयत्र प्रतीहारीव्यक्तौ स्त्री-पुरुषयोर्भेद आसीदिति सूच्यते।
7. काश्मीर-पाठे "दुष्यन्त"इति।, मैथिल- रंगभूमौ स्थानिकनटानामुच्चारणं विकृतमासीदिति सूच्यते।
8. काश्मीर-पाठे "घुष्टमि" ति।, मैथिल-पाठे पूर्ववाक्येन सह संगतिर्नैव सिध्यति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- (दीर्घं निःश्वस्य) एवं भोः संततिविच्छेदनिरवलम्बना मूलपुरुषावसाने संपदः परमुपतिष्ठन्ते। ममाप्यन्ते पुरुवंशश्रिय एषः वृत्तान्तः। [210]

प्रतीहारी- देव, पडिहदममङ्गलं। (देव, प्रतिहतम् अमङ्गलम्।) [211]

राजा- धिङ् मामुपस्थितश्रेयोविमानिनम्। [212]

मिश्रकेशी- असंसअं पिअसहिं जेव हिअए कदुअ णिन्दिदो अप्पा अणेण भविस्सदि। (असंशयं प्रियसखीमेव हृदये कृत्वा निन्दित आत्मानेन भविष्यति।) [213]

राजा-

संरोपितेऽप्यात्मनि धर्मपत्नी त्यक्ता मया नाम कुलप्रतिष्ठा।
कल्पिष्यमाणा महते फलाय वसुन्धरा काल इवोप्तबीजा।। 6 - 26।। [214]

मिश्रकेशी- अपरिच्चत्ता दाणि दे भविस्सदि। (अपरित्यक्तेदानीं ते भविष्यति[1]।) [215]

लिपिकरी- (जनान्तिकम्) अज्ज एदं पत्तं पेसअन्तेण दुउणाणुतावो कदो भट्टा अमच्चेण। ता मेहच्छन्दप्पासादावत्थिदं संतावणिवारइत्तकं अज्जमाधव्वं गेण्हिअ आअच्छ। (आर्य, एतत् पत्रं प्रेषयता द्विगुणाऽनुतापः कृतो भर्ताऽमात्येन। तन्मेघच्छन्दप्रासादावस्थितं संतापनिवारयितृकम् आर्यमाधव्यं गृहीत्वा आगच्छ[2]।) [216]

प्रतीहारी- सुट्ठु दे भणिदं। (इति निष्क्रान्ता) (सुष्ठु ते भणितम्[3]।) [217]

राजा- अहो, दुष्मन्तस्य संशयमारुढाः पिण्डभाजः। [218]

अस्मात्परं बत यथाश्रुति संभृतानि को नः कुले निवपवानि करिष्यतीति।
नूनं प्रसूतिविकलेन मया प्रसिक्तं धौताश्रुसेकम्[4] उदकं पितरः पिबन्ति।। 6-27।। [219]

मिश्रकेशी- सदि क्खु दीवे अणवधाणदोसेण अन्धआरं अणुभवदि राएसी। (सति खलु दीपे अनवधानदोषेण अन्धकारम् अनुभवति राजर्षिः[5]।) [220]

लिपिकरी- भट्टा, अलं संतावेण। णणु णववअत्थो ज्जेव पहू अवरासुं देवीसु अणुरूवपुत्तजम्मेण पुव्वपुरिसाणं अणिणो भविस्सदि। (स्वगतम्[6]) ण मे वअणं पडिगेण्हदि भट्टा।अधवा अणुरूवं जेव ओसहं आतङ्कं णिवत्तेदि। (भर्तः, अलं संतापेन। ननु नवावस्थ एव प्रभुरपरासु देवीषु अनुरूपपुत्रजन्मेन पूर्वपुरुषाणाम् अनृणो भविष्यति। न मे वचनं प्रतिगृह्णाति भर्ता। अथवा अनुरूपमेव ओषधम् आतङ्कं निवर्तयति[7]।) [221]

राजा- (शोकावेग-नाटितकेन) सर्वथा-

आमूलशुद्धसंतति कुलमेतत् पौरवं प्रजावन्ध्ये।
मय्यस्तमितमनार्ये देश इव सरस्वतीस्रोतः।। 6-28।। [222]

(इति मोहमुपगतः[8]) [223]

---

1. काश्मीर-पाठे नास्त्येतादृशं वाक्यम्।, मैथिल-पाठे प्रथमं दृश्यते, प्रक्षिप्तं प्रतीयते।
2. काश्मीर-पाठे नास्तीदं वाक्यम्।, मैथिल-रंगकर्मिणामियं योजनास्ति।
3. काश्मीर-पाठे नास्तीदं वाक्यम्। प्रतीहारी च रंगान्न निवर्तते।
4. काश्मीर-पाठे "प्रमुक्तं धौताश्रुशेषमि" ति पठ्यते।
5. काश्मीर-पाठे "सदृशं खलु ते, व्यवधानदोषेणान्धकारो भवती" ति पठ्यते।
6. स्वगतमिति रंगसूचनया प्रदत्तमिदं वाक्यं प्रक्षिप्तं स्यात्। नाट्यशास्त्रे (25-88) तस्याविधानात्।
7. काश्मीर-पाठे "वयःस्थः प्रभुरपरासु॰" इति पठ्यते।, एवं च वाक्यमिदं प्रतीहारी-मुखे वर्तते।
8. काश्मीर-पाठे "संमोहं गत" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

लिपिकरी[1] - (संसभ्रमम्) समस्ससदु समस्ससदु भट्टा। (समाश्वसतु समाश्वसतु भर्ता।) [224]

मिश्रकेशी- किं इदाणिं जेव एणं णिव्वुदं करइस्सं? अधवा सुदं मए सउन्तलं धारअन्तीए देवजणणीए मुहादो जण्णभाओसुआओ देवदाओ ज्जेव तधा करइस्सन्ति जधा भट्टा तुमं अइरेण धम्मवत्तिं अहिणन्दइस्सदि त्ति। ता ण जुत्तं इमं कालं मम लंघिदुं। जाव इमिणा वुत्तन्तेण पिअसहिं सउन्तलं समस्ससामि।[2]

(इत्युद्भ्रान्तकेन निष्क्रान्ता।)

(किमिदानीमेवैनं निवृत्तं करिष्ये। अथवा श्रुतं मया शकुन्तलां धारयन्त्या देवजनन्या मुखाद् यज्ञभागोत्सुका देवता एव तथा करिष्यन्ति, यथा भर्ता अचिरेण धर्मवृत्तिम् अभिनन्दिष्यतीति। तन्न युक्तमिमं कालं मम लङ्घितुम्[3]। यावत् अनेन वृत्तान्तेन प्रियसखीं शकुन्तलां समाश्वासयामि।) [225]

(नेपथ्ये)- अव्वम्भण्णं अव्वम्भण्णं।

(अब्रह्मण्यम् अब्रह्मण्यम्।) [226]

राजा- (प्रत्यागतप्राणः[4] कर्णं दत्त्वा) अये माधव्यस्येवार्तनादः। [227]

लिपिकरी- मा णाम माधव्व-तवस्सी पिङ्गलिआमिलिदाहिं देवीहि चित्तफलअहत्थो पाविदो भविस्सदि। (मा नाम माधव्य तपस्वी पिङ्गलिकामिलिताभिर्देवीभिः[5] चित्रफलकहस्तः प्रापितो भविष्यति।) [228]

राजा- मेधाविनि, गच्छ[6]। मद्वचनाद् अनिषिद्धपरिजनां देवीमुपालभस्व[7]। [229]

चेटी- जं देओ आणवेदि। (इति निष्क्रान्ता) (यद्देव आज्ञापयति।) [230]

(नेपथ्ये भूयः स एव शब्दः) [231]

राजा- परमार्थभीत इव भिन्नस्वरो ब्राह्मणः। कः कोऽत्र भोः?। [232]

(प्रविश्य) **कञ्चुकी-** आज्ञापयतु देवः। [233]

राजा- निरूप्यतां किमेवं माधव्यो माणवकः क्रन्दतीति। [234]

कञ्चुकी- यावदालोकयामि। (इति निष्क्रम्य पुनः ससंभ्रमं प्रविष्टः।) [235]

राजा- पार्वतायन, न खलु किंचिदत्याहितम्?। [236]

कञ्चुकी- भो राजन्, एवम्। [237]

राजा- तत्कुतोऽयं कम्पः[8]?। [238]

---

1. काश्मीर-पाठे परिजनस्य मुख इयमुक्तिर्वर्तते।
2. मैथिल-पाठे मिश्रकेशी मातलेरागमनं न सूचयति।, काश्मीर-पाठेऽक्षमाला मातलेरागमनं सूचयित्वैव गच्छति।
3. काश्मीर-पाठे वाक्यस्यास्य स्थाने "करिष्यन्ति कथमेव, तत्र प्रेक्षे" इति नभोवलोकनान्तरमक्षमाला भणति।
4. काश्मीर-पाठे "शनैः प्रत्याश्वस्ये" ति रंगसूचना।
5. काश्मीर-पाठे "पिङ्गलिकामिश्राणां मुखे पतितो भविष्यती" ति।, नास्ति तत्र देव्या ईर्ष्याग्रस्तं मनः।
6. काश्मीर-पाठे "वसुमति, गच्छे" ति प्रतीहारीमुद्दिश्य कथ्यते।
7. या मेधाविनी अन्तःपुरव्याघ्रीतः कथमप्यात्मानं मोचयित्वा समायाता, तामेव तत्रैव प्रेष्यत इति प्रथमा विसंगतिरवधेया। एवञ्चात्र देव्याः कृते प्रयुक्तं विशेषणमप्यसंगतम्। ततु काश्मीर-पाठस्यैव मौलिकतां दृढयति।
8. काश्मीर-पाठे "वेपथुरि" ति पाठभेदः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

कञ्चुकी- किं तु,

प्रागेव जरसा कम्पः सविशेषेण सम्प्रति।
आविष्करोति सर्वाङ्गमश्वत्थमिव मारुत:[1]॥ 6 - 29॥ [239]

तत् परित्रायतां प्रियसुहृदं महाराज:। [240]

राजा- कस्मात् परित्रातव्य:?। [241]

कञ्चुकी- महत: कृच्छ्रात्। [242]

राजा- भिन्नार्थमभिधीयताम्[2]। [243]

कञ्चुकी- देव,योऽसौ दिगवलोकक: प्रासादो[3] मेघच्छन्दो नाम। [244]

राजा- किं तत्र?। [245]

कञ्चुकी-

ततोऽग्रभूमेर्गृहनीलकण्ठैरनेकविश्रामविलङ्घ्यशृङ्गात्[4]।
सखा प्रकाशेतरमूर्तिना ते केनापि सत्त्वेन निगृह्य नीत:[5]॥ 6-30॥ [246]

राजा- (सहसोत्थाय) ममापि सत्त्वैरभिभूयन्ते गृहा:?। अथवा बहुप्रत्यवायं नृपत्वम्। [247]

अहन्यहन्यात्मन एव तावज्ज्ञातुं प्रमादात् स्खलितं न शक्यम्।
प्रजासु कः केन पथा प्रयातीत्यशेषत: कस्य पुन: प्रभुत्वम्[6]॥ 6 - 31॥ [248]

(नेपथ्ये)

विदूषक:- अहिधाव भो भो। (अभिधाव भो: भो:।) [249]

राजा- (आकर्ण्य गतिभेदं परिक्रामन्) सखे, न भेतव्यं न भेतव्यम्। [250]

विदूषक:- कधं ण भाइस्सं? एसो मं को वि पच्छापीडिअसिरोधरं उब्बन्धिअ अत्थिभङ्गं करेदि। (कथं न भायिष्यामि। एषो मां कोऽपि पश्चात् पीडितशिरोधरम् उद्बद्ध्वाऽस्थिभङ्गं करोति[7]।) [251]

राजा- (सदृष्टविक्षेपम्) धनुर्धनुस्तावत्। [252]

(प्रविश्य धनुर्हस्ता) **प्रतीहारी**[8]- भट्टा, एदं सरासणं बाणभाअणं च। (भर्ता, एतच्छरासनं बाणभाजनं च।) [253]

(राजा सशरं धनुरादत्ते) [254]

---

1. विदूषकस्य त्राणस्य प्रसंगे श्लोकगानमसह्यं प्रतिभाति। अत: श्लोकोऽयं प्रक्षिप्त: स्यात्।
2. काश्मीर-पाठे "ऽये, अनिर्भिन्नार्थमुच्यतामि" ति पठ्यते।
3. काश्मीर-पाठे "ऽभ्रंलिहो नाम प्रासाद" इति।, मेघच्छन्द इति नामापि मैथिल-पाठ एव दृश्यते।
4. काश्मीर-पाठे "तस्याग्रभूमेर्गृहनीलकण्ठैरनेकविश्रान्तिविलङ्घ्यशृङ्गमि" ति।
5. कञ्चुकिन: श्लोकगानं सर्वथा प्रक्षिप्तमेव प्रतिभाति। यतो हि- त्राणस्य प्रसंगे कालक्षय: नोचित:।
6. काश्मीर-पाठे "कस्य नु शक्तिरस्ती" ति।, किन्तु श्लोकस्यास्य कालक्षयकारकत्वं स्पष्टमेव। अत: प्रक्षिप्तत्वेन प्रदर्श्यते।
7. काश्मीर-पाठे "मोटितशिरोधरमिक्षुमिव स्थिरभङ्गमेव कर्तुमिच्छती" ति पठ्यते।
8 काश्मीर-पाठे "प्रविश्य शार्ङ्गहस्ता यवनी" ति पठ्यते।, मैथिल-पाठेऽत्र द्वितीया विसंगति: समागच्छति। यतो हि, प्रतीहारीयं विदूषकमानेतुं पूर्वं प्रेषिता मेधाविन्या!, अत: सा कथमत्र समागच्छेदिति प्रश्न:।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(नेपथ्ये) [255]

एष त्वामभिनवकण्ठशोणितार्थी शार्दूलः पशुमिव हन्मि चेष्टमानम्[1]।
आर्तानां भयमपनेतुमात्तधन्वा दुष्मन्तस्तव शरणं भवत्विदानीम्॥ 6 - 32॥ [256]

राजा- (सक्रोधम्) कथं मामेवोद्दिशति। आः तिष्ठ कुणपापसद[2]। अयमिदानीं न भवसि। [257]
(चापमारोप्य) पार्वतायन, सोपानमार्गमादेशय। [258]

कञ्चुकी- इत इतो देवः। (इति सर्वे सत्वरमुपसर्पन्ति) [259]

राजा- (समन्तादवलोक्य) शून्यं खल्विदम्। [260]

विदूषकः- अहिधाव भोः।[3] अहं भवन्तं पेक्खामि। तुमं ण मं पेक्खसि। मज्जारगहिदो विअ उन्दुरो अणीसोम्हि संवुत्तो[4]। (अभिधाव भोः। अहं भवन्तं पश्यामि। त्वं न माम् पश्यसि। मार्जारगृहीत इव उन्दुर अनीशोऽस्मि संवृत्तः।) [261]

राजा- भोः, तिरस्करिणीविद्यागर्वितं मदीयशस्त्रं त्वां न द्रक्ष्यति?[5] स्थिरो भव। मा च ते वयस्यसम्पर्काद् विश्वासो भूत्। एष त्वदर्थमिषुं संदधे-, [262]

यो हनिष्यति वध्यं त्वां रक्ष्यं रक्षिष्यति द्विजम्।
हंसो हि[6] क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः॥ 6 - 33॥ [263]

(इत्यस्त्रं संधत्ते) [264]

(प्रविश्य संभ्रान्तो विदूषकं समुत्सृज्य मातलिर्विदूषकश्च) [265]

मातलिः-

कृता शरव्या हरिणा तवासुराः शरासनं तेषु विकृष्यतामिदम्।
प्रसादसौम्यानि सतां सुहृज्जने पतन्ति चक्षूंषि न दारुणाः शराः॥ 6 - 34॥ [266]

राजा- (ससंभ्रमं शस्त्रमुपसंहरन्) अये, मातलिः। स्वागतं, देवराज-सारथे[7]। [267]

विदूषकः- भो, अहं अणेण[8] पसुमारं मारिदो। भवं उण साअदेण अहिणन्देदि। (भो, अहमनेन पशुमारं मारितः। भवान् पुनः सादरेण अभिनन्दयति।) [268]

मातलिः- (सस्मितम्) आयुष्मन्, श्रूयतां यदर्थमस्मि हरिणा त्वत्सकाशं प्रहितः। [269]

राजा- अवहितोऽस्मि। [270]

मातलिः- अस्ति कालनेमिप्रसूतिर्दुर्जयो नाम दानवगणः। [271]

राजा - श्रुतपूर्वो मया नारदात्। [272]

---

1. काश्मीर-पाठे "वेष्टमानमि"ति।
2. काश्मीर-पाठे "कुलपांसन" इति पठ्यते।
3. काश्मीर-पाठे नेपथ्योक्तिरूपेण विदूषकस्य वाक्यमिदं श्रूयते।
4. काश्मीर-पाठे "निराशोऽस्मि जीविते संवृत्त" इति।
5. काश्मीर-पाठे "भोः, तिरस्करिणीगर्वित, मदीयमस्त्रं त्वां पश्यती" ति पठ्यते।
6. काश्मीर-पाठे "हंसोऽपी" ति पठ्यते।
7. काश्मीर-पाठे "०सारथय" इति।
8. काश्मीर-पाठे "निकटमेत्ये" ति रंगसूचना प्रारम्भे प्राप्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

मातलिः-

सख्युस्ते स किल शतक्रतोरवध्यस्तस्य त्वं शरसख एव संनिहन्ता[1]।
उच्छेत्तुं प्रभवति यन्न सप्तसप्तिस्तन्नैशं तिमिरमपाकरोति चन्द्रः॥ 6 - 35॥ [273]

स भवान् आत्तचाप एवेदानीं देवरथमारुह्य[2] विजयाय प्रतिष्ठताम्। [274]

राजा- अनुगृहीतोऽहमनया मघवतः संभावनया। अथ भवद्भिर्माधव्यं प्रति किमेवं प्रयुक्तम्?। [275]

मातलिः- एतदपि कथ्यते।[3] किंचिन्निमित्तादपि मनस्तापादायुष्मान् मया विक्लवो दृष्टः। पश्चात् कोपयितुम् आयुष्यन्तं तथा कृतवानस्मि। [276]

कुतः-

ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निर्विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते।
तेजस्वी चाक्षेपात् प्रायः[4] प्रतिपद्यते तेजः॥ 6-36॥ [277]

राजा- (जनान्तिकम्) वयस्य, अनतिक्रमणीया दिवस्पतेराज्ञा। तदत्र परिगतार्थं कृत्वा मद्वचनाद् अमात्यपिशुनं ब्रूहि [278]

त्वन्मतिः केवला तावत्प्रतिपालयतु प्रजाः।
अधिज्यमिदमन्यस्मिन् कर्मणि व्यापृतं धनुः॥ 6 - 37॥ [279]

विदूषकः- जं भवं आणवेदि। (इति निष्क्रान्तः) (यद् भवान् आज्ञापयति।) [280]

मातलिः- रथमारोहत्वायुष्यमान्[5]। [281]

(राजा तथा करोति[6]) [282]

॥ इति निष्क्रान्ताः सर्वे॥ [283]

[शकुन्तलाविरहो[7] नाम षष्ठोऽङ्कः] [284]

---

1. काश्मीर-पाठे "तस्य त्वं रणशिरसि स्मृतो निहन्ते" ति पठ्यते।
2. काश्मीर-पाठे "ऐन्द्रं रथमि" ति पठ्यते।
3. काश्मीर-पाठे प्रारम्भे "सस्मितं विदूषकमवलोक्ये" ति रंगसूचना प्राप्यते।
4. काश्मीर-पाठे "प्रायस्त्वं महिमानं क्षोभादि" ति पठ्यते।
5. काश्मीर-पाठ "इत इत आयुष्मान्नि" ति पठ्यते।
6. काश्मीर-पाठे "परिक्रम्य निष्क्रान्ता सर्व" इति रंगसूचना।
7. काश्मीर-पाठे न सन्ति प्रत्येकानामङ्कानां नामानि।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ सप्तमोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशत्याकाशवर्त्मना[1] रथारूढो राजा मातलिश्च[2]) [1]

राजा - मातले, अनुष्ठितनिदेशोऽपि मघवतः सत्क्रियाविशेषादनुपयुक्तमिवात्मानं समर्थये। [2]

मातलिः- उभयत्राप्यसंतोषमवगच्छ। कुतः-[3]

प्रथमोपकृतं मरुत्वतः प्रतिपत्या लघु मन्यते भवान्[3]।
गणयत्यवदानसंमिता[4] भवतः सोऽपि न सत्क्रियामिमाम्॥ 7 - 1॥ [4]

राजा - मा मैवम्। स खलु मनोरथानामप्यतिदूरवर्ती यो विसर्जनावसरे सत्कारः। मम हि दिवौकसां समक्षमर्धासनोपवेशितस्य, [5]

अन्तर्गतप्रार्थनमन्तिकस्थं[5] जयन्तमुद्वीक्ष्य कृतस्मितेन।
प्रमृज्य वक्षो हरिचन्दनाक्तं मन्दारमाला हरिणा पिनद्धा॥ 7-2॥ [6]

मातलिः - किमिवायुष्मान्नाऽमरेश्वराद्[6] अर्हति। पश्य-[7]

सुखपरस्य हरेरुभयैः कृतं त्रिदिवमुद्धृतदानवकण्टकम्।
तव शरैरधुनाऽऽयतपर्वभिः[7] पुरुषकेसरिणश्च पुरा नखैः॥ 7-3॥ [8]

राजा- अत्र खलु शतक्रतोरेव महिमा।, [9] पश्य,

सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः
सम्भावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम्।
किं वाऽभविष्यद्[8] अरुणस्तमसां वधाय
तं चेत्सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत्॥ 7-4॥ [10]

मातलिः- सदृशं तवैतत्। (स्तोकमन्तरं गत्वा) आयुष्यन्, इतः पश्य नाकपृष्ठप्रतिष्ठितस्य सौभाग्यमात्मयशसः।-[11]

विच्छित्तिशेषैः सुरसुन्दरीणां वर्णैरमी कल्पलतांशुकेषु[9]।
संचिन्त्य गीतिक्षममर्थतत्त्वं दिवौकसस्त्वच्चरितं लिखन्ति॥ 7-5॥ [12]

राजा- मातले, असुरसंप्रहारोत्सुकेन पूर्वेद्युरारोहता न लक्षितोऽयं प्रदेशो मया[10]। अथ कस्मिन् पथि[11] वर्तामहे मरुताम्। [13]

---

1. काश्मीर-पाठे "रथयानेने" ति।
2. काश्मीर-पाठे सप्तमांकस्यारम्भे नाकलासिकयोः संवादात्मकः प्रवेशको वर्तते, स चात्र नास्ति।
3. काश्मीर-पाठ "उपकृत्य हरेस्तथा भवाल्लँघु सत्कारमवेक्ष्य मन्यत" इति।
4. काश्मीर-पाठे "गणयत्यपदानसम्मितामि" ति।
5. काश्मीर-पाठे "-ऽन्तरस्थमि" ति।
6. काश्मीर-पाठे "परमेश्वरादि" ति।
7. काश्मीर-पाठे "नतपर्वभिरि" ति।
8. काश्मीर-पाठे "प्राभविष्यदि" ति।, मैथिल-पाठः सन्दर्भेऽस्मिन् नोचितः।
9. काश्मीर-पाठे "कल्पलतान्तरेष्वि" ति।
10. काश्मीर-पाठे "पूर्वं दूरमधिरोहता न लक्षितो मया स्वर्गमार्ग" इति।
11. काश्मीर-पाठे "तत् कतमस्मिन् पथी" ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

मातलिः -

त्रिस्त्रोतसं वहति यो गगनप्रतिष्ठां ज्योतींषि वर्तयति चक्रविभक्तरश्मिः।
तस्य द्वितीयहरिविक्रमपूतमेनं वायोरधः परिवहस्य रहस्यमार्गम्[1]॥ 7-6॥ [14]

राजा- अतः खलु मे सबाह्यकरणोऽन्तरात्मा प्रसीदति। (रथमार्गम्[2] अवलोक्य) शङ्के मेघपदवीम् अवतीर्णा स्मः[3]। [15]

मातलिः- (सस्मितम्) आयुष्मन्, कथमवगम्यते। [16]

राजा-

अयम् अगविवरेभ्य[4] श्चातकैर्निष्पतद्भिर्हरिभिरचिरभासां तेजसा चानुलिप्तैः।
गतमुपरि घनानां वारिगर्भोदराणां पिशुनयति रथस्ते शीकरक्लिन्ननेमिः॥ 7-7॥ [17]

मातलिः- क्षणाद् ऊर्ध्वमायुष्मान्नात्माधिकारभूमौ वर्तिष्यसे। [18]

राजा- (अधोऽवलोक्य) मातले, वेगावतरणादाश्चर्यदर्शनः समर्थ्यते जीवलोकः[5]। तथाहि-[19]

शैलानामवरोहतीव शिखरादुन्मज्जतां मेदिनी
पर्णस्त्रस्तरलीनतां विजहति स्कन्धोदयात्पादपाः।
सन्धानं तनुभावनष्टसलिला व्यक्तं व्रजन्त्यापगाः
केनाप्युत्क्षिपतेव पश्य भुवनं मत्पार्श्वमानीयते॥ 7-8॥ [20]

मातलिः- आयुष्मन्, साधु दृष्टम्। (सबहुमानमालोक्य)अहो, उदग्र-रमणीया पृथिवी। [21]

राजा- मातले, कतरोऽयं पूर्वापरसमुद्रावगाहः कनकरसनिष्यन्दी[6] सान्ध्य इव मेघपरिघः सानुमान् अवलोक्यते। [22]

मातलिः- आयुष्मन्, एष खलु हेमकूटो नाम किंपुरुषपर्वतः। अतः परं तपस्विनां सिद्धिक्षेत्रम्। पश्य ,[23]

स्वायंभुवान्मरीचेर्यः प्रबभूव प्रजापतिः।
सुरासुरगुरुः सोऽस्मिन् सपत्नीकस्तपस्यति॥ 7-9॥ [24]

राजा- (सादरम्) तेन ह्यनतिक्रमणीयानि श्रेयांसि। तत् प्रदक्षिणीकृत्य भगवन्तं गन्तुमिच्छामि। [25]

मातलिः- प्रथमः कल्पः। अवतरत्वायुष्मान्। (इति रथावतारं नाटयति[7]) एतावavतीर्णौ स्वः। [26]

राजा- (सविस्मयम्) मातले, [27]

उपोढशब्दा न रथाङ्गनेमयः प्रवर्तमानं न च दृश्यते रजः।
अभूतलस्पर्शतया निरुद्धते, तवावतीर्णोऽपि न लक्ष्यते रथः॥ 7-10॥ [28]

मातलिः- आयुष्मन्, एतावानेव शतक्रतो[8]स्तावकस्य च रथस्य विशेषः। [29]

राजा- मातले, कतरस्मिन्[9] प्रदेशे मारीचाश्रमः। [30]

1. काश्मीर-पाठे "तस्य व्यपेतरजसः प्रवहस्य वायोर्मार्गो द्वितीयहरिविक्रमपूत एष" इति।
2. काश्मीर-पाठे "रथाङ्गे विलोक्ये" ति।
3. काश्मीर-पाठे "ऽवतीर्णौ स्व" इति।
4. काश्मीर-पाठे "ऽरिविवरेभ्य" इति।
5. काश्मीर-पाठे "सम्पद्यते मनुष्यलोक" इति।
6. काश्मीर-पाठे "कतमोऽयं पूर्वापरसमुद्रावगाढः कनकनिष्यन्दशोभी" ति।
7. काश्मीर-पाठे "ऽवतरणं नाटयित्वे" ति।, (आकाशाद् रथस्यावतरणं भिन्नेनाभिनयेन भवेत्)
8. काश्मीर-पाठे "शतमन्योरि" ति।
9. काश्मीर-पाठे "कतमस्मिन्नि" ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

मातलिः- (हस्तेन दर्शयन्) पश्य, [31]

वल्मीकार्धनिमग्नमूर्तिरुरग-त्वग्-ब्रह्मसूत्रान्तरः
कण्ठे जीर्णलताप्रतानवलयेनात्यन्तसंपीडितः[1]।
अंसव्यापि शकुन्तनीडनिचितं बिभ्रज्जटामण्डलं
यत्र स्थाणुरिवाचलो मुनिरसावभ्यर्कबिम्बं स्थितः॥ 7-11॥ [32]

राजा- (विलोक्य) नमोऽस्मै कष्टतपसे। [33]

मातलिः- (संयतप्रग्रहं रथं कृत्वा) एतत्परिवर्धि[2]मन्दारवृक्षकं प्रजापतेराश्रमपदं प्रविष्टौ स्वः। [34]

राजा- अहो स्वर्गादधिकतरं निर्वृतिस्थानम्[3]। अमृतह्रदमिवावगाढोऽस्मि संवृत्तः। [35]

मातलिः- (रथं स्थापयित्वा) अवतरत्वायुष्यमान्। [36]

राजा- (साभिनयमवतीर्य) भवान् कथमिदानीम्। [37]

मातलिः- समय-यन्त्रितोऽयमास्त[4] एव रथः। तद् वयमप्यवतरामः। (तथा कृत्वा) इत आयुष्मन्, दृश्यन्तां तत्रभवतां सिद्धमुनीनां तपोवनभूमयः। [38]

राजा- ननु विस्मयादुभयमप्यवलोकयामि। [39]

प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता सत्कल्पवृक्षे वने
तोये काञ्चनपद्मरेणुकपिशे धर्माभिषेकक्रिया[5]।
ध्यानं रत्नशिलागुहासु विबुधस्त्रीसन्निधौ संयमो
यद्वाञ्छन्ति[6] तपोभिरन्यमुनयस्तस्मिंस्तपस्यन्त्यमी॥ 7-12॥ [40]

मातलिः- उत्सर्पिणी खलु महतां प्रार्थना। (परिक्रम्याकाशे) वृद्धशाकल्य, किंव्यापारो भगवान् मारीचः। (आकर्ण्य) किं ब्रवीषि। एष दाक्षायण्या पतिव्रतया व्रतमधिकृत्य[7] पृष्टस्तस्यै महर्षिः पत्नीसहितः कथयतीति। [41]

मातलिः- प्रतिपाल्यावसरः खलु प्रस्तावः। (राजानमवलोक्य)अस्याम् अशोकच्छायायां तावद् आयुष्यमांस्तिष्ठतु, यावत्त्वाम् अहमिन्द्रगुरवे निवेदयामि। [42]

राजा- यथा भवान्मन्यते। [43] (मातलिर्निष्क्रान्तः) [44]

राजा- (निमित्तं सूचयित्वा)

मनोरथाय नाशंसे किं बाहो स्पन्दसे मुधा[8]।
पूर्वावधीरितं श्रेयो दुःखेन परिवर्तते[9]॥ 7 - 13॥ [45]

---

1. काश्मीर-पाठे "ऽत्यर्थसंपीडित" इति।
2. काश्मीर-पाठ "एतावदिति-परिवर्धित0" इति।
3. काश्मीर-पाठे "ऽहो विस्मयः। स्वर्गादधिकनिवृत्तिस्थानमि" ति।
4. स्वर्लोकस्य रथस्य वैशिष्ट्यं प्रदर्शनाय रंगकर्मिणां समीपे कापि युक्तिः स्यात्। तां ज्ञातुं नास्ति कोऽप्युपायः।
5. काश्मीर-पाठे "तोये हैमसहस्रपत्रसुभगे नक्तंदिवं सद्-व्रतमि" ति।
6. काश्मीर-पाठे "यत् काङ्क्षन्ती" ति।
7. काश्मीर-पाठे "पतिव्रतापुण्यमधिकृत्ये" ति।
8. काश्मीर-पाठे "बाहो स्फुरसि किं वृथे" ति।
9. काश्मीर-पाठे "दुःखं हि परिवर्तत" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(नेपथ्ये)

मा खु चवलत्तणं करेहि। कधं गदो ज्जेव अत्तणो पइदिं[1]।
(मा खलु चपलत्वं कुरु। कथं गत एवात्मनः प्रकृतिम्।) [46]

राजा- (आकर्ण्य) अभूमिरियमविनयस्य स्यात्। तत् को नु खलु निषिध्यते। (शब्दानुसारेणावलोक्य, सविस्मयम्) अये, अयमनुरुध्यमानस्तापसीभ्यामबालसत्त्वो बालः। [47]

अर्धपीतस्तनं मातुरामर्दक्लिष्टकेसरम्।
विलम्बिनं सिंहशिशुं बलात्कारेण[2] कर्षति।। 7-14।। [48]

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टकर्मा बालस्तापस्यौ च[3]।) [49]

बालः- जिम्भ ले सिंहसाव आजिम्भ[4]। दन्ताइं दे गणइस्सं। (जृम्भस्व रे सिंहशावक, आजृम्भस्व। दन्तांस्ते गणयिष्ये।) [50]

प्रथमा- अविणीद, किं ति सोदरसिणेहणिव्विसेसे इमस्सिं सिंहसावए अवरद्धो दे समारम्भो। ठाणे क्खु इसिजणेण सव्वदमणो त्ति किद णामधेओसि। (अविनीत, किमिति सोदरस्नेहनिर्विशेषे अस्मिन् सिंहशावके अपरुद्धस्ते समारम्भः[5]। स्थाने खलु ऋषिजनेन सर्वदमनेति कृतनामधेयोऽसि।) [51]

राजा- (स्वगतम्) किं नु खलु बालेऽस्मिन्नौरस इव स्निह्यते मे मनः। (विचिन्त्य) आं नूनमनपत्यता मे वत्सलयति। [52]

द्वितीया- एसा खु सिंही तुमं लङ्घेदि, जदि से पुत्तअं ण मुञ्चेसि। (एषा खलु केसरिणी त्वां लङ्घयति यदि तस्याः पुत्रकं न मुञ्चसि।) [53]

बालः- (सस्मितम्) अम्मो,बलिअं खु भीदो म्हि। (अहो, बलीयः खलु भीतोऽस्मि।) [54]

(इति अधरं दशति) [55]

राजा- (सविस्मयम्)

आहितं तेजसो बीजं बालोऽयं प्रतिभाति नः[6]।
स्फुलिङ्गावस्थया वह्निरेधःक्षय इव स्थितः।। 7-15।। [56]

प्रथमा- वच्छ, मुञ्च इमं बाल-मइन्दअं। अण्णं दे कीलणअं[7] देइस्सं। (वत्स, मुञ्च इमं बालमृगेन्द्रम्। अन्यं ते क्रीडनकं दास्यामि।) [57]

बालः- कहिं से। देहि मे। (कुत्र तद्, देहि मे।) (इति हस्तं[8] प्रसारयति) [58]

राजा- (हस्तं विलोक्य[9]) कथं चक्रवर्तिलक्षणमनेन शिशुना धार्यते। तथा हि-[59]

---

1. काश्मीर-पाठे "मा खु मा खु चवलदं करेहि। सिङ्घ...., कधं कधं अत्तणो पकिदिं दंसेसी" ति।, रंगकर्मिणामेवेमे पाठा इति दृढीकरोत्येते पाठभेदाः।
2. काश्मीर-पाठे "विलम्बिनं .... करेणाहत्ये" ति।
3. काश्मीर-पाठे "तापसीभ्यामनुरुध्यमानो बाल" इति।
4. काश्मीर-पाठे "जिम्भ जिम्भ, ले सिङ्घ" इति।
5. काश्मीर-पाठे "नोऽपत्य-निर्विशेषाणि सत्त्वानि विप्रकरोषि। प्रवर्तते तव संरम्भ" इति।
6. काश्मीर-पाठे "महतस् ..... म" इति।
7. काश्मीर-पाठे "कीलणकमि" ति।
8. काश्मीर-पाठे "दक्षिणहस्तमि" ति।
9. काश्मीर-पाठे रंगसूचनेयं नास्ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रलोभिवस्तु[1] प्रणयप्रसारितो विभाति जालग्रथिताङ्गुलिः करः।
अलक्ष्यपत्रान्तरमिद्धरागया नवोषसा भिन्नमिवैकपङ्कजम्॥ 7-16॥ [60]

द्वितीया[2]- सुव्वदे, ण एसो सक्को वाआमेत्तकेण समइदुं। ता गच्छ। मम केरए उडए साअंकाअणस्स इसिकुमारस्स केरको वण्णचित्तिदो मित्तिआमोरो चिट्ठदि। तं से उअहर। (सुव्रते, न एष शक्य वाचामात्रेण[3] शमयितुम्। तर्हि गच्छ। मदीये उटजे शालङ्कायनस्य[4] ऋषिकुमारस्य केरकः वर्णचित्रितो मृत्तिकामयूरस्तिष्ठति। तमस्योपहर।) [61]

प्रथमा- तह। (तथा) (निष्क्रान्ता) [62]

बालः- किं दाव तेण। इमिणा ज्जेव कीडइस्सं। (किं तावत् तेन। अनेनैव क्रीडिष्यामि।) [63]

तापसी- (सस्मितम्) मुञ्च णं। (मुञ्च एनम्।) [64]

राजा- स्पृहयामि खलु बालदुर्ललितेभ्यः[5]। (निःश्वस्य) [65]

आलक्ष्यदन्तमुकुलाननिमित्तहासैरव्यक्तवर्णरमणीयवचःप्रवृत्तीन्।
अङ्काश्रयप्रणयिनस्तनयान् वहन्तो धन्यास्तदङ्गरजसा परुषीभवन्ति॥ 7-17॥ [66]

तापसी- (साङ्गुलितर्जनम्) भोदु। मं ण गणेसि। (पार्श्वानमवलोकयन्ती।) को एत्थ मुनिकुमारआणं।

(राजानं दृष्ट्वा) भद्दमुह, एहि। मोआवेहि दाव इमिणा दुम्मोक्खहत्थगहिदेण डिम्भकेण बाधीअमाणं बालमइन्दअं। (भवतु। मां न गणयति। (पार्श्वानमवलोकयन्ती।) कोऽत्र मुनिकुमाराणाम्। भद्रमुख, एहि। मोचय तावदनेन दुर्मोचहस्तगृहीतेन डिम्भकेण[6] बाध्यमानं बालमृगेन्द्रम्।) [67]

राजा- तथा। (इति उपगम्य, सस्मितम्) भो महर्षिपुत्र, [68]

एवमाश्रमविरुद्धवृत्तिना संयतेन किमिवात्र जन्तुना[7]।
सत्त्वसंश्रयसुखोऽपि दूष्यते कृष्णसर्पशिशुनेव चन्दनम्॥ 7-18॥ [69]

तापसी- भद्दमुह, ण एसो मुनिकुमारओ। (भद्रमुख, न एष मुनिकुमारकः।) [70]

राजा- आकारसदृशं चेष्टितमेवास्य कथयति। स्थानप्रत्ययात्तु वयमेवं तर्किणः[8]। (यथाभ्यर्थितम[9]नुतिष्ठन् बालस्पर्शमुपलभ्यात्मगतम्।) [71]

अनेन कस्यापि कुलाङ्कुरेण स्पृष्टेषु गात्रेषु सुखं ममैवम्।
कां निर्वृत्तिं चेतसि तस्य कुर्याद् यस्यायमङ्गात्कृतिनः प्रसूतः॥ 7 - 19॥ [72]

तापसी- (विलोक्य) अच्छरीअं अच्छरीअं। (आश्चर्यमाश्चर्यम्।) [73]

राजा- (विलोक्य) किमाश्चर्यम्। [74]

---

1. काश्मीर-पाठे "प्रलोभ्यवस्त्वि" ति।
2. का.-पाठे "प्रथमे" ति।, तत्र द्वितीयायाः नाम सुव्रतेति पठ्यते।, (मैथिल-पाठेऽत्र प्रथमेति भवितुमर्हति)
3. काश्मीर-पाठ "आश्वासमात्रेणे" ति।
4. लिपिकाराणां, न तु रंगकर्मिणां, परम्परासु पदमिदं विक्षिप्तं स्यादिति प्रतीयते।, काश्मीर-पाठे मङ्कणअस्स मार्कण्डस्ये (?)ति प्राप्यते।
5. मैथिल-पाठे बहुवचनमत्रासमञ्जसं प्रतिभाति।
6. काश्मीर-पाठे "डिम्बकरिणे" ति।
7. काश्मीर-पाठे "संयमी किमिति जन्मदस्त्वये" ति।
8. काश्मीर-पाठे "ऽतर्किण" इति।
9. काश्मीर-पाठे "सिंहं मोचयित्वे" त्यधिकम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

तापसी- इमस्स बालअस्स असंबद्धेऽपि भद्दमुहे संवादिणी आकिदि त्ति विम्हाविदम्हि। अवि अ वामसीलो वि भविअ अवरिचिदस्स वि णाम दे वअणेण पइदित्थिदो अअं संवुत्तो त्ति। (अस्य बालकस्य असंबद्धेऽपि भद्रमुखे संवादिन्याकृतिरिति विस्मापितास्मि। अपि च, वामशीलोऽपि भूत्वा अपरिचितस्यापि नाम ते वचनेन प्रकृतिस्थितोऽयं संवृत्त इति[1]।) [75]

राजा- (बालमुपल्लापयन्[2]) आर्ये, न चेन्मुनिकुमारकोऽयम्, तत् कोऽस्य व्यपदेशः। [76]

तापसी- पोरवो। (पौरवः[3]।) [77]

राजा- (अपवार्य) कथमेकान्वयो मम। अतः खलु संबध्यते[4]। (प्रकाशम्) अस्त्येतत् पौरवाणाम् कुलव्रतम्। [78]

भवनेषु सुधासितेषु पूर्वं क्षितिरक्षार्थमुशन्ति ये निवासम्।
विहितैकमुनिव्रतानि[5] पश्चात् तरुमूलानि गृहीभवन्ति तेषाम्।। 7-20।। [79]

कथं पुनरात्मगत्या मानुषाणामेष विषयः। [80]

तापसी- जधा भद्दमुहो भणादि। अच्छरासम्बन्धेण इमस्स बालअस्स जणणी इध ज्जेव देवगुरुणो तवोवणे पसूदा। (यथा भद्रमुखो भणति। अप्सरःसंबन्धेनास्य बालस्य जनन्यत्रैव देवगुरोस्तपोवने प्रसूता।) [81]

राजा- (अपवार्य) हन्त, द्वितीयमिदमाश्वासजननम्। (प्रकाशम्) अथ तत्रभवती किमाख्यस्य राजर्षेः पत्नी। [82]

तापसी- को तस्स धम्मदारपरिच्चाइणो णामं कित्तइस्सदि। (कस्तस्य धर्मदारपरित्यागिनो नाम कीर्तयिष्यति।) [83]

राजा- (अपवार्य[6]) तत् किमियं मामेव लक्षीकरोति। यदि तावदस्य शिशोर्मातरं नामतः पृच्छेयम्।
(विचिन्त्य) अथवा न न्याय्यः परदारपृच्छात्मको व्यापारः। [84]

(प्रविश्य मृण्मयमयूरहस्ता) [85]

तापसी- सव्वदमण, पेक्ख सउन्तलावण्णं। (सर्वदमन, प्रेक्षस्व शकुन्तलावण्यम्[7]।) [86]

बालः- (सदृष्टिक्षेपम्) कहिं सा मे अज्जू। (कुत्र सा मे माता।) [87] (उभे प्रहसिते)

उभे- णामसादिस्सेण उवछन्दिदो मादिवच्छलो। (नामसादृश्येन उपछन्दितो[8] मातृवत्सलः।) [88]

द्वितीया- वच्छ, इमस्स मोरस्स रमणीअत्तणं पेक्ख त्ति भणिदो सि। (वत्स, अस्य मयूरस्य रमणीयत्वं पश्येति भणितोऽसि।) [89]

राजा- (स्वगतम्) कथं शकुन्तलेत्यस्य मातुराख्या। अथवा सन्ति पुनर्नामसादृश्यानि। अपि नाम मृगतृष्णिकेवायं नाम प्रस्तावो विषादाय कल्पेत। [90]

बालः- अत्तिके, लोचदि मे एसे चडुले मोरके। (भगिनि, रोचते मे एषः चतुरो[9] मयूरकः।) [91]

---

1. काश्मीर-पाठे "ऽत्यन्तपरिचितस्येवाप्रतिलोम एष ते संवृत्त" इति।
2. काश्मीर-पाठ "उपलालयन्" इति।
3. काश्मीर-पाठे "पुरुवंश" इति।
4. काश्मीर-पाठे "ऽतः खलु मदनुकारिणमत्रभवती मन्यत" इति।
5. काश्मीर-पाठे "नियतैकयति-व्रतानी" ति।
6. काश्मीर-पाठे "स्वगतमि" ति।
7. काश्मीर-पाठे नास्त्येतादृशं वाक्यम्। तत्र तु "सव्वदमण, सउन्दला.." इत्येव।
8. काश्मीर-पाठे "छलित" इति पठ्यते।
9. काश्मीर-पाठे "भद्रालक" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(क्रीडनकं समादत्ते) [92]

प्रथमा[1] - (अवलोक्य सावेगम्) अम्मो, रक्खागेण्ठकं से मणिबन्धे ण दीसदि। (अहो, रक्षागेण्ठक[2]मस्य मणिबन्धे न दृश्यते।) [93]

राजा- अलमावेगेन। नन्विदमस्य सिंहशावकस्य विमर्दात्परिभ्रष्टम्। (इत्यादातुमिच्छति।) [94]

उभे- अच्छरीअं आच्छरीअं[3]। मा क्खु आलम्भइस्सदि। (अवलोक्य) कधं गहिदं जेव अणेण। (आश्चर्यम् आश्चर्यम्। मा खलु आलभिष्यति। कथं गृहीतमेव अनेन।) [95]

(उभे विस्मयमापन्ने, उरसि निहितहस्ते परस्परमवलोकयतः।) [96]

राजा- किमर्थमस्मि प्रतिषिद्धो भवतीभ्याम्। [97]

प्रथमा- सुणोदु महाभाओ[4]। एसा अवराइआ णाम परममहोसधी[5] इमस्स णामकरणसमए भअवदा मारीएण दिण्णा। एदं किल मादापितरे अत्ताणअं च वज्जिअ अवरो भूमिपडिदं ण गेण्हदि। (शृणोतु महाभागः, एषा अपराजिता नाम परममहौषधिरस्य नामकरणसमये[6] भगवता मारीचेन दत्ता।

एतां किल मातापितरौ आत्मानं च वर्जयित्वा अपरो भूमिपतितां न गृह्णाति।) [98]

राजा- अथ गृह्णाति। [99]

द्वितीया- तदो सप्पो भविअ तं दंसेदि। (ततः सर्पो भूत्वा तं दसति।) [100]

राजा- अथ भवतीभ्यां कदाचिदेतत् प्रत्यक्षीकृतम्[7]। [101]

उभे- अणेअसो। (अनेकशः।) [102]

राजा- (सहर्षम्) तत् किं खल्विदानीमहं परिपूर्णमात्मनो मनोरथं नाभिनन्दामि। [103]

(बालं परिष्वजते) [104]

द्वितीया[8]**-** संजदे, एहि। इमं वुत्तन्तं णिअमवावारीए सउन्तलाए गदुअ णिवेदेम्ह। (संयते, एहि। इमं वृत्तान्तं नियमव्यावृतायै शकुन्तलायै गत्वा निवेदयावः।) [105] (इति निष्क्रान्ते) [106]

बालः- मुञ्च मुञ्च मं। जाव अज्जूसआसं गमिस्सं। (मुञ्च मुञ्च माम। यावन्मातुःसकाशं गमिष्यामि।) [107]

राजा- पुत्रक, मयैव सार्धं मातरमभिनन्दयिष्यसि। [108]

बालः- दुस्मन्तो मम तादो।[9] ण क्खु तुमं। (दुष्मन्तो मम तातो। न खलु त्वम्।) [109]

राजा- (सस्मितम्) एष विवाद एव मां प्रत्याययति। [110]

(ततः प्रविशत्येकवेणीधरा शकुन्तला) [111]

---

1. मै.-पाठेऽत्र द्वितीयेति भवितुमर्हति। यतो हि- तयैव क्रीडनकस्यादानसमये रक्षागेण्ठकस्याभावो दृष्टः स्यात्।
2. काश्मीर-पाठे "रक्षाकरण्डकमि" ति।, मै.-पाठे देशी-शब्दस्य प्रयोगो दृश्यते।
3. काश्मीर-पाठे पदद्वयमिदं नास्ति।
4. काश्मीर-पाठे "सुणादु अय्यो" इति।
5. काश्मीर-पाठे "महाप्पहावा" इति।
6. काश्मीर-पाठे "जातकर्मसमय" इति।
7. काश्मीर-पाठे "कदाचिदस्याः प्रत्यक्षीकृता विक्रिये" ति।
8. मै.-पाठेऽस्मात्स्थानाज्ज्ञायते यत्प्रथमायाः तापस्या नाम संयतेति। (मै.-पाठस्य द्वितीय-क्रमोऽपि सूच्यते)
9. "तादे दुशश्न्ते" इति एकारान्तं मागधीप्राकृतरूपं का.-बं. पाठयोरेव सुरक्षितं वर्तते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला- विआरकाले वि पइदिट्ठिदं सव्वदमण-ओसहिं सुणिअ ण मे आसङ्घो अत्तणो भाअधेएसुं। अहवा जधा मे मिस्सकेसीए[1] आअक्खिदं तधा सम्भावीअदि एदं। (इति परिक्रामति) (विकारकालेऽपि प्रकृतिस्थितां सर्वदमनौषधिं श्रुत्वा न म आशङ्का आत्मनो भागधेयेषु।अथवा यथा मे मिश्रकेश्याऽऽचक्षितं तथासम्भाव्यत एतत्।) [111]

राजा- (शकुन्तलां दृष्ट्वा) अये, कथमि[2]यमत्रभवती शकुन्तला। [112]

वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः[3]।
अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीला मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्ति।। 7 - 21।। [113]

शकुन्तला- (राजानमवलोक्य) ण क्खु अज्जउत्तो विअ, को एसो किदरक्खामङ्गलअं दारअं मे हत्थसंसग्गेण दूसेदि। (न खल्वार्यपुत्र इव, क एष कृतरक्षामङ्गलकं दारकं मे हस्तसंसर्गेण दूषयति) [114]

बालः- (तामुपसृत्य) अज्जुए, एसो को वि पलक्के मणुस्से मं पुत्तके त्ति आलवेदि। (मातः, एष कोऽपि परकीयो मनुष्यो मां पुत्रक इत्यालपति।) [115]

राजा- अनार्यमपि मे त्वयि प्रसक्त[4] अनुकूलपरिणामं संवृत्तम्, यतोऽहमिदानीं त्वया प्रत्यभिज्ञातमात्मानम् इच्छामि। [116]

शकुन्तला- (आत्मगतम्) हिअअ समस्सस समस्सस। परिहरिअणिव्वुत्तमच्छरेण अणुकम्पिद म्हि देव्वेण। अज्जउत्तो क्खु एसो। (हृदय, समाश्वसिहि समाश्वसिहि। परिहृत्य निवृत्तमत्सरेणा[5]ऽनुकम्पिताऽस्मि दैवेन[6]। (आर्यपुत्रः खल्वेषः।) [117]

राजा-

स्मृतिभिन्नमोहतमसो दिष्ट्या प्रमुखे स्थितासि मे सुमुखि।
उपरागान्ते शशिनः समुपगतो[7] रोहिणीयोगः।। 7-22।। [118]

शकुन्तला- जअदु त्ति[8]। (जयतु ...)

(इत्यर्धोक्तेन बाष्पं विसृजति[9]) [119]

राजा-

बाष्पेण प्रतिषिद्धेऽपि जयशब्दे जितं मया।
यत्ते दृष्टम् असंस्काराल्लोलालकमिदं[10] मुखम्।। (7 -23) [120]

बालः- अज्जुए, को एसो। (मातः, कः एषः।) [121]

शकुन्तला- वच्छ, भाअधेआइं मे पुच्छ। (वत्स, भागधेयानि मे पृच्छ।) (रोदिति) [122]

राजा- (प्रणिपत्य[11]) [123]

---

1. काश्मीर-पाठे "-ऽक्खमालया" इति।
2. काश्मीर-पाठे "कथमि" ति प्रश्नार्थकं पदं नास्ति।
3. काश्मीर-पाठे "कृतैकवेणिरि" ति।
4. काश्मीर-पाठे "प्रिये, क्रौर्यमपि मे त्वयि प्रयुक्तमि" ति।
5. काश्मीर-पाठे "प्रहृत्यनिर्वृत्तमत्सरेणे" ति।
6. का.-बं.-पाठयोः स्वगतमिति रंगसूचनया प्रदत्तमिदं वाक्यं प्रक्षिप्तं स्यात्।
7. काश्मीर-पाठे "समुपनत" इति।
8. काश्मीर-पाठे "जयतु जयतु आर्यपुत्र" इति।, किन्तु मैथिल-पाठोऽनुगामिना श्लोकेन सह संगच्छते।
9. काश्मीर-पाठ "इत्यर्धोक्ते बाष्पकण्ठी बाष्पं विहरती" ति।
10. काश्मीर-पाठे- "-ऽसंस्कारपाटलोष्ठमिदमि" ति।, प्रस्तुते सन्दर्भे मैथिल-पाठ एव श्रद्धेयः प्रतिभाति।
11. काश्मीर-पाठेऽपि राजा प्रणिपातपूर्वकं श्लोकोच्चारणं करोति।, बंगीय-पाठे तादृशं नास्ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

सुतनु हृदयात् प्रत्याख्यान-व्यलीकम् अपैतु[1] ते
किमपि मनसः संमोहो मे तदा बलवानभूत्।
चपलमनसाम्[2] एवं प्रायाः शुभेषु हि[3] वृत्तयः
स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया[4]॥ 7-24॥ [124]

शकुन्तला- उत्थेदु उत्थेदु अज्जउत्तो। णूणं मम सुहपडिबन्धकं पुराकिदं तेसु दिअसेसु परिणामविमुहं[5] आसि, जेण साणुक्कोसो वि अज्जउत्तो मयि तधा संवुत्तो। (उत्तिष्ठतूत्तिष्ठत्वार्यपुत्रः। नूनं मे सुखप्रतिबन्धकं पुराकृतं तेषु दिवसेसु परिणामविमुखमासीद्येन सानुक्रोशोऽप्यार्यपुत्रो मयि तथा संवृत्तः।) [125]

(राजोत्तिष्ठति) [127]

शकुन्तला- कधं अज्जउत्तेण सुमरिदो दुक्खभाइ जणो। (कथमार्यपुत्रेण स्मृतो दुःखभागी[6] जनः।) [128]

राजा- उद्धृतशल्यविषादः कथयामि[7]।

मोहान्मया सुतनु पूर्वमुपेक्षितस्ते
यो बाष्पबिन्दुरधरं परिबाधमानः।
तं तावद् आकुटिल-पक्ष्म-विलग्नम् अद्य
बाष्पं[8] विमृज्य विगतानुशयो भवामि॥ 7-25॥ [129]

(मुखमुन्नमयितुं हस्तं प्रसारयति[9]) [130]

शकुन्तला- (बाष्पं प्रमृज्य दृष्टिं दत्वा, ऽङ्गुरीयकं विलोक्य[10])
अज्जउत्त, णं तं इमं अङ्गुलीअअं। (आर्यपुत्र, एतत्तदङ्गुलीयकम्।) [131]

राजा- अथ किम्। अस्मादङ्गुरीयोपको[11]- पलम्भनात् मया स्मृतिरुपलब्धा। [132]

शकुन्तला- समीहिदं खु अणेण किदं, जं अज्जउत्तस्स पच्चअकरणे दुल्लहं मे आसि। (समीहितं खलु अनेन कृतं[12], यत् आर्यपुत्रस्य प्रत्ययकरणे दुर्लभं मे आसीत्।) [133]

राजा- तेन हि, ऋतुसमागम-समयाशंसि प्रतिपद्यतां लतास्विव कुसुमम्। [134]

शकुन्तला- ण से विस्ससं। अज्जउत्तो ज्जेव णं धारेदु। (नास्य विश्वसिमि। आर्यपुत्रः एवैतद्धारयतु।) [135]

(प्रविश्य) [136]

मातलिः- दिष्ट्या, धर्मपत्नीसमागमेन पुत्रमुखदर्शनेन चायुष्मान् वर्धते। [137]

---

1. काश्मीर-पाठे "प्रत्यादेश-व्यलीकम् उपैत्वि" ति, किन्तु हृदयादिति पञ्चम्यन्तेन सह तन्नोचितं प्रतिभाति।
2. काश्मीर-पाठे "प्रबलतमसामि" ति।
3. काश्मीर-पाठे "शुभेष्वपी" ति।
4. काश्मीर-पाठेऽस्य चतुर्थ-चरणस्योपस्थितिस्तृतीय-चरणत्वेन भवति।
5. काश्मीर-पाठे "परिणामाभिमुह०" इति।
6. काश्मीर-पाठे पदमिदं नास्ति।
7. काश्मीर-पाठ "उद्धृतशल्यविषादः करोमि, करिष्यामी" ति।
8. काश्मीर-पाठे "परिधावमानः", "आकुलितपक्ष्म०", "कान्ते" चेति त्रयः पाठभेदाः।
9. काश्मीर-पाठे "यथोक्तमनुतिष्ठती" ति।
10. काश्मीर-पाठे "प्रमृष्टबाष्पा, नाममुद्रां दृष्ट्वे" ति।
11. काश्मीर-पाठे "ऽद्भुतो०" इति।
12. काश्मीर-पाठे "सुमुखीकर्तुं क्षणेन यदि" ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- सुहृत्संपादितत्वात्साधुफलो मे मनोरथः। मातले, न खल्वविदितोऽयम्[1] आखण्डलस्यार्थः। [138]

मातलिः- आयुष्मन्, किमीश्वराणां परोक्षम्[2]। एहि, भगवान्मारीचस्ते दर्शनमिच्छति[3]। [139]

राजा- शकुन्तले, अवलम्ब्यतां पुत्रः। त्वामेव पुरस्कृत्य भगवन्तं द्रष्टुमिच्छामि। [140]

शकुन्तला- लज्जामि क्खु अज्जउत्तेण सह गुरुसमीवं गन्तुं[4]। (लज्जामि खलु आर्यपुत्रेण सह गुरुसमीपे गन्तुम्।) [141]

राजा- अवारितमेतद्[5] अभ्युदयकालेषु। एह्येहि। (इति परिक्रामति[6]।) [142]

(ततः प्रविशत्यदित्या सह मारीचः[7]) [143]

मारीचः- (राजानं विलोक्य) दाक्षायणि, [144]

पुत्रस्य ते रणशिरस्ययमग्रयायी
दुष्मन्त इत्यभिहितो भुवनस्य गोप्ता[8]।
चापेन यस्य विनिवर्तितकर्मजातं
तत्कोटिमत्कुलिशमाभरणं मघोनः॥ 7-26॥ [145]

अदितिः- सम्भावणीआ क्खु से आकिदी। (सम्भावनीया खलु अस्य आकृतिः।) [146]

मातलिः- एतौ पुत्रसमेन चक्षुषा[9] दिवौकसां पितरावायुष्मन्तमेवावलोकयतः। तदुपसर्प। [147]

राजा- मातले,

प्राहुर्द्वादशधा स्थितस्य मुनयो यत्तेजसः कारणं
भर्तारं भुवनत्रयस्य सुषुवे तद्यज्ञभागेश्वरम्।
यस्मिन्नात्मभुवः परोऽपि पुरुषश्चक्रे भवायास्पदं
द्वन्द्वं दक्षमरीचिसंभवमिदं तत्स्रष्टुरेकान्तरम्[10]॥ 7 - 27॥ [148]

मातलिः- अथ किम्। [149]

राजा- (उपसृत्य) उभाभ्यामपि[11] वासवनियोज्यो दुष्मन्तः प्रणमति। [150]

मारीचः- वत्स, चिरं पृथिवीं पालय। [151]

अदितिः- अप्पडिहदरधो होहि। (वत्स, अप्रतिहतरथो[12] भव।) [152]

शकुन्तला- भअवं दारअसहिदा पाअवन्दणं करेमि। (भगवन्, दारकसहिता पादवन्दनं करोमि।) [153]

---

1. काश्मीर-पाठे "न खलु विदितोऽयमि" ति।
2. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं नास्ति।
3. काश्मीर-पाठे "भगवांस्ते मारीचो दर्शनं वितरती" ति।
4. काश्मीर-पाठे "ऽर्हाम्यार्यपुत्रेण सह०" इति प्रश्नार्थकं वाक्यम्।
5. काश्मीर-पाठ "आचरितमेतदि" ति।
6. काश्मीर-पाठे "सर्वे परिक्रामन्ती" ति।
7. काश्मीर-पाठे "०प्रविशत्यदित्या सार्धम् अर्धासनस्थो मारीच" इति।
8. काश्मीर-पाठे "ऽग्रगामी", "भर्ते" ति पाठभेदौ।
9. काश्मीर-पाठे "भूतलपते, एतौ पुत्रप्रीतिपिशुनेन चक्षुषे" ति।
10. काश्मीर-पाठे "ब्रह्मानन्तरविश्वयोनिसहितं द्वन्द्वं तदेतद् वशी" ति।
11. काश्मीर-पाठे " (प्रणिपत्य) उभावपि वामि" ति।
12. काश्मीर-पाठे "ऽप्रतिरथ" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

मारीचः- वत्से,

आखण्डलसमो भर्ता जयन्तप्रतिमः सुतः।
आशीरन्या न ते योग्या[1] पौलोमीमङ्गला भव॥ 7-28॥ [154]

अदितिः- जाद, भत्तुणो बहुमदा होहि। अअं च दीहाऊ उहअकुलणन्दणो होदु। ता उअविसध।
(जाते, भर्तुः बहुमता भव। अयं च दीर्घायुः[2] उभयकुलनन्दनो भवतु। उपविशत।) [155]

(सर्वे उपविशन्ति।) [156]

मारीचः- (एकैकं निर्दिशन्) [157]

दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी, सदपत्यमिदं, भवान्।
श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति त्रितयं समुपागतम्[3]॥ 7 - 29॥ [158]

राजा- भगवन्, प्रागभिप्रेतसिद्धिः पश्चाद्दर्शनम् इत्यपूर्वः खलु वोऽनुग्रहः। पश्यतु हि भवान्, [159]

उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलं घनोदयः प्राक् तदनन्तरं पयः।
निमित्तनैमित्तिकयोरयं विधिस्तव प्रसादस्य पुरस्तु सम्पदः॥ 7 - 30॥ [160]

मातलिः- आयुष्मन्, एवंविधाचाराः (विधातारः?) प्रसीदन्ति महान्तः[4]। [161]

राजा- इमामाज्ञाकरीं वो गान्धर्वेण विधिनोपयम्य कस्यचित्कालस्य बन्धुभिरानीतां स्मृतिदौर्बल्यात् प्रत्यादिशन्नपराद्धोऽस्मि तत्रभवतो युष्मत्सगोत्रस्य कण्वस्य। पश्चादिमामङ्गुरीयकदर्शनाद् ऊढपूर्वाम्उपगतो[5]ऽस्मि। तच्चित्रमेव मे प्रतिभाति। [162]

यथा गजे साधुसमक्षरूपे[6] तस्मिन्नतिक्रामति संशयः स्यात्।
पदानि दृष्ट्वा तु भवेत्प्रतीतिस्तथाविधो मे मनसो विकारः॥ 7-31॥ [163]

मारीचः- वत्स, अलमात्मापराधशङ्कया[7]। संमोहोऽपि त्वय्युपपन्न एव। श्रूयताम्। [164]

राजा- अवहितोऽस्मि। [165]

मारीचः- यदैवाप्सरस्तीर्थात्[8] प्रत्यक्षवैक्लव्यां शकुन्तलामादाय दाक्षायणीमुपगता मेनका तदैव ध्यानादवगतवानस्मि दुर्वाससः शापादियं तपस्विनी धर्मचारिणी प्रत्यादिष्टा, नान्यथा।

स चाङ्गुरीयकदर्शनावसानः शापः[9]। [166]

राजा- (सोच्छ्वासम्) एष वचनीयान्मुक्तोऽस्मि। [167]

1. काश्मीर-पाठे "योज्ये" ति।
2. काश्मीर-पाठे "ऽयं च ते देहजो वत्सक" इति।
3. काश्मीर-पाठे "तत् समागतमि" ति।
4. काश्मीर-पाठ "एवं विश्वगुरवः प्रसीदन्ती" ति।
5. काश्मीर-पाठे "विवाहविधिनो०", "स्मृतिशैथिल्यात्", "युष्मत्सगोत्रस्ये" ति नास्ति, "आरूढस्मृति-रूढपूर्वाम्", "अनुगत" इति पाठभेदाः।
6. काश्मीर-पाठे "नेतरपक्षरूप" इति।
7. काश्मीर-पाठे "०आत्मापचारशङ्कये" ति।
8. काश्मीर-पाठे "यदैवाप्सरस्तीर्थावतरणादि" ति।
9. काश्मीर-पाठे "चाङ्गुलीयकदर्शनावसर" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला- (अपवार्य[1]) दिट्ठिआ। अकामपच्चादेसी अज्जउत्तो। ण उण सत्तं अत्ताणअं सुमरेमि। अहवा वुत्तो भवे सुण्णहिअआए[2] सावो, जदो सहीहिं अच्चादरेण संदिट्ठं, भत्तुणो अङ्गुलीअअं दंसेसि।

(दिष्ट्या, अकामप्रत्यादेशी आर्यपुत्रः। न पुनः शप्तमात्मानं स्मरामि। अथवा वृत्तो भवेद् शून्यहृदयायै शापः, यतः सखीभ्यामत्यादरेण सन्दिष्टम् - भर्तुरङ्गुलीयकं दर्शयिष्यसि। [168]

मारीचः- वत्से, विदितार्थासि। सहधर्मचारिणं प्रति त्वया मन्युर्न कर्तव्यः। पश्य -[169]

शापादसि प्रतिहता स्मृतिलोपरौक्ष्याद्
भर्तुर्यदैव चलितासि पुनः प्रभुत्वम्[3]।
छाया न मूर्च्छति मलोपहतप्रसादे
शुद्धे तु दर्पणतले विमलप्रकाशा[4]।। 7-32।। [170]

राजा- यथाह भगवान्। [171]

मारीचः- वत्स, कच्चिदभिनन्दितस्त्वया विधिवदनुष्ठितजातकर्मादिक्रियः पुत्र एष शाकुन्तलेयः। [171]

राजा- भगवन्, अत्र खलु मे वंशप्रतिष्ठा। [172]

मारीचः- तथा भाविनं चक्रवर्तिनमेनमवगच्छतु भवान्। पश्य -[173]

रथेनानुद्घातस्तिमितगतिनोत्तीर्णजलधिः
पुरा सप्तद्वीपाम् अवति[5] वसुधामप्रतिरथः।
इहायं सत्त्वानां प्रसभदमनात्सर्वदमनः
पुनर्यास्यत्याख्यां भरत इति लोकस्य भरणात्।। 7 - 33।। [174]

राजा- भगवत्कृतसंस्कारेऽस्मिन् सर्वमाशङ्के[6]। [175]

अदितिः- इमाए दुहिदाए मणोरहसंपत्तीए कण्णो वि दावविण्णादवित्थरो करीअदु। मेणआ उण इध ज्जेव दुहिदिवच्छला परिच्चअन्ती सण्णिहिदा चिट्ठदि ज्जेव। (अस्याः दुहितुः मनोरथसम्पत्तेः कण्वोऽपि तावत् विज्ञातविस्तरः[7] क्रियताम्। मेनका पुनः इहैव दुहितृवत्सला परिचरन्ती[8] संनिहिता तिष्ठति एव। [176]

शकुन्तला- (स्वगतम्) मम मणोगदं खु कधिदं भअवदीए। (मम मनोगतं खलु कथितं भगवत्या। [177]

मारीचः- तपःप्रभावात्सर्वमेवैतत् प्रत्यक्षं तत्रभवतः कण्वस्य। [178]

राजा- (स्वगतम्) हन्त, न ममातिक्रुद्धो गुरुः[9]। [179]

---

1. काश्मीर-पाठ "आत्मगतमि" ति।
2. काश्मीर-पाठे "ण सुदो धुवं अण्णहिअआए मए" इति।
3. काश्मीर-पाठे "शापादिति प्रतिहतस्मृतिलोपरूक्षे, भर्तर्यपेत-तमसि प्रभुता तथैवे" ति।
4. काश्मीर-पाठे "सुभगावकाशे" ति।, एवञ्च, निखिलाप्युक्तिरियं शकुन्तलामुद्दिश्य कथिता, किन्तु नास्ति तस्याः प्रतिवचनम्। अतोऽनुमीयते यदत्र शकुन्तलायाः किमपि वाक्यं विलुप्तं स्याद्।
5. काश्मीर-पाठे "जयती" ति।
6. काश्मीर-पाठे "सर्वमस्मिन् आशंसामह" इति।
7. काश्मीर-पाठे "श्रुतविस्तार" इति।
8. काश्मीर-पाठे न सन्ति पदान्येतानि।, मैथिल-पाठे कुत्रचित् प्रपंचः क्रियते।
9. काश्मीर-पाठे "न खलु समभिक्रुद्ध" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

मारीचः- (विचिन्त्य) तथापि दुहितुः सपुत्राया भर्त्रा परिग्रहः प्रियतमोऽस्माभिः कण्वः[1] श्रावयितव्यः।
कः कोऽत्र भोः। [180]

(प्रविश्य) **शिष्यः-** भगवन्, अहमस्मि। [181]

मारीचः- गालव, अस्मद्वचनादिदानीमेव विहायसा गत्वा तत्रभवते कण्वाय प्रियमावेदय- यथा तत्रभवती शकुन्तला तच्छापनिवृत्तौ स्मृतिमता[2] दुष्मन्तेन परिगृहीतेति। [182]

शिष्यः- यथाज्ञापयति भगवान्। (निष्क्रान्तः) [183]

मारीचः- वत्स, त्वमपि सापत्यदारः सख्युराखण्डलस्य रथमास्थाय स्वराजधानीं प्रतिष्ठस्व। [184]

राजा- यथाज्ञापयति भगवान्। (निष्क्रान्तः) [185]

मारीचः- अपि च, सम्प्रति हि[3] -

तव भवतु बिडौजाः प्राज्यवृष्टिः प्रजासु
त्वमपि विहितयज्ञो वज्रिणं प्रीणयालम्।
गुरुतरपरिवृत्तैरेवम् अन्योन्यकृत्यै-
र्नियतमुभयलोकानुग्रह-श्लाघनीयौ[4]॥ 7-34॥ [186]

अपि च,

क्रतुभिरुचितभागांस्त्वं सुरान् प्रीणयालं
सुरपतिरपि वृष्टिं त्वत्प्रजार्थं विधत्ताम्।
इति सममुपचारव्यञ्जितश्रीमहिम्नो-
र्व्रजतु बहुतिथोऽयं सौहृदेनैव[5] कालः॥ 7-35॥ [187]

राजा- भगवन्, यथाशक्ति श्रेयसि यतिष्ये। [188]

मारीचः- किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि[6]। [189]

राजा- भगवन्[7], अतः परमपि प्रियमस्ति। तथापि यदि भवान् परं कर्तुमिच्छति[8], तदेतदस्तु। [190

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः[9]
सरस्वती श्रुतमहतां[10] महीयसाम्।

---

1. काश्मीर-पाठे "तथाप्यसौ प्रियमस्माभिरि" ति।, मैथिल-पाठे प्रकृतार्थस्यैव प्रपंचः क्रियते।
2. काश्मीर-पाठे "शापविनिवृत्तिसमुपागतस्मृतिने" ति।
3. निपातसमूहेनावतारितो निम्नोक्तः श्लोकः प्रक्षिप्तः प्रतिभाति। प्राचीनतमे काश्मीर-पाठे तस्यानुपलम्भात्। चन्द्रगुप्तः- द्वितीयस्य शासनकाले (चतुर्थ-शताब्द्यां) नाटकस्यास्य पाठपरिवर्तनं जातम्, तदा शासनकर्तुराशी-र्वचनोच्चारणायायं श्लोकः प्रक्षिप्तः स्याद्॥
4. काश्मीर-पाठे श्लोकोऽयं नास्ति।
5. काश्मीर-पाठे "भावयालं", "वृष्ट्या", "सममुपकार", "व्रजति", "सौहृदय्येने" त्यादयः पाठभेदाः।
6. काश्मीर-पाठे "प्रियमुपहरामी" ति।
7. काश्मीर-पाठ इतः पूर्वम् "सहर्षं प्रणमन्" निति रंगसूचना वर्तते।
8. काश्मीर-पाठे "यदतः परं मे भगवान् प्रसादं कर्तुमर्हती" ति।
9. श्लोकस्यास्य भरतवाक्यत्वेन निर्देशो नास्ति।, काश्मीर-पाठेऽपि नास्ति तादृशो निर्देशः।
10. काश्मीर-पाठे "श्रुतिमहतामि" ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

ममापि च क्षपयतु नीललोहितः
पुनर्भवं परिगतभक्ति[1]-रात्मना॥ 7 - 36॥ [192]

मारीचः- एवमस्तु[2]॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे) [193]

॥ इति शकुन्तला-संवर्धनं[3] नाम सप्तमोऽङ्कः॥ [194]

।इति मिश्रश्रीकालिदासकृतौ अभिज्ञानशकुन्तलं[4] नाम नाटकं समाप्तम्॥ [195]

1. काश्मीर-पाठे "परिगतभक्तिरि" ति।
2. काश्मीर-पाठे नास्तीयमुक्तिः।, भरतवाक्यानन्तरम् एतादृशं वाक्यं कुत्रापि न दीयते।
3. काश्मीर-पाठे प्रत्येकानामङ्कानां नामानि न दीयन्ते।
4. काश्मीर-पाठे "ऽभिज्ञानशकुन्तलाऽऽख्य" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

बंगाली वाचनानुसारी

"अभिज्ञानशकुन्तलम्" नाटक की रंगावृत्ति का पाठ।।

डॉ. रिचार्ड पिशेल के द्वारा तैयार किया बंगाली वाचना का समीक्षित पाठ हार्वर्ड युनिवर्सिटी प्रेस ने ई. स.1876 में प्रकाशित किया था, (तत्पश्चात् 1922 में उसका द्वितीय संस्करण भी निकला है)। डॉ. कार्ल बुरखाड़ ने काश्मीरी वाचना की जानकारी 1884 में दी थी। तथा श्री रमानाथ झा ने ई. स. 1957 में मैथिली पाठ का प्रकाशन किया था। अत: स्वाभाविक है कि डॉ. रिचार्ड पिशेल ने बंगाली पाठ को काश्मीरी या मैथिली पाठ के सन्दर्भ में नहीं देखा होगा। किन्तु, जैसे हमने पहले कहा है, यह बंगाली पाठ तृतीय क्रम में आकारित हुआ है[1]। अत: प्रस्तुत ग्रन्थ में बंगाली पाठ को तीसरे क्रम में रखा गया है। एवमेव, यहाँ प्रस्तुत किया गया बंगाली वाचना का पाठ सर्वथाडॉ. रिचार्ड पिशेल की समीक्षितावृत्ति के अनुसार नहीं स्वीकारा है। किन्तु बंगाली वाचना पर टीका लिखनेवाले चन्द्रशेखर चक्रवर्ती ने अपनी "सन्दर्भ-दीपिका" टीका में जिस पाठ्यांश को बंगाली पाठपरम्परा का माना है, (किन्तु डॉ. रिचार्ड पिशेल ने उसे नहीं माना है) उस पाठ्यांश को भी हमने कुत्रचित् स्वीकारा है। तथा तदनुसार बंगाली वाचना के पाठ की मंचनलक्षिता सोचने का यहाँ उपक्रम किया है। क्योंकि यह टीकाकार बंगाल के श्रद्धेय पाठ को देनेवाले हैं, ऐसा रिचार्ड पिशेलने भी कहा है।।

काश्मीरी-पाठ शारदा पाण्डुलिपियों में उपलब्ध हो रहा है, वह शारदा लिपि का प्रचलन-काल सातवीं शती का तो निश्चित है ही। किन्तु वह पाठ शारदा-लिपि में अवतरित / रूपान्तरित होने से पहले ही दूसरी-तीसरी शताब्दी से आकारित होने लगा होगा ऐसा अनुमान करना युक्तिसंगत है। क्योंकि मैथिली-पाठ, जो श्रीविक्रमादित्य साहसाङ्क (अर्थात् चन्द्रगुप्त-2) के समय में तैयार किया गया है, उसका समय चौथी शताब्दी का सिद्ध होता है। तत्पश्चात् अनेक शताब्दियों तक इस नाटक का मंचन मैथिली रंगावृत्ति के पाठानुसार ही चलता रहा होगा। परंतु चन्द्रशेखर चक्रवर्ती ने ई. स. 1650 में जब इस नाटक के बंगाली पाठ पर टीका लिखी है, तब मिथिला से भिन्न पाठ बंगाल में आकारित हो चुका था ऐसा प्रतीत होता है। क्योंकि इस टीकाकार ने अपनी टीका में कहा है कि "इति तिरभुक्तीय-पाठ:"। यह तो सुविदित है कि तिरहुत नामका प्रदेश बिहार का ही है। अत: वर्तमान में "बंगाली पाठ" के नाम से उपलब्ध होनेवाला पाठ 15वीं या 16वीं शती का होने का हम अनुमान कर सकते हैं।।

[यद्यपि डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल, कोलकाता ने अपने पुनर्गठित अभिज्ञानशकुन्तल के सम्पादन में जिस बंगाली-पाठ को समीक्षित पुनर्गठित पाठ के रूप में प्रस्तुत किया है, उसकी विस्तृत प्रस्तावना में बंगाली-पाठ को ही मौलिक पाठ सिद्ध करने का प्रयास किया है। लेकिन, 1. उनका यह उपक्रम केवल बहिरंग प्रमाणों पर आधारित है।, 2. बंगाली-पाठ में सुनिहित प्रक्षिप्तांशों को वे नहीं पहचान पाये हैं। तथा बंगाली-पाठ की मौलिकता सिद्ध कर सके ऐसा कोई प्रमाण उन्होंने नहीं दिया है एवं बंगाली पाठ की व्यापक उच्चतर समीक्षा भी प्रस्तुत नहीं की है। (इस सन्दर्भ में चन्द्रशेखर चक्रवर्ती की सन्दर्भ-दीपिका टीका सहित हमने जो अभिज्ञानशकुन्तल का सम्पादन प्रकाशित करवाया है[2], उसकी प्रस्तावना द्रष्टव्य है।

---

1. डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल, कोलकाता ने 1980 में कहा है कि बंगाली वाचना का पाठ ही मौलिक हो सकता है, और उसमें से ही क्रमश: मैथिली, काश्मीरी, देवनागरी, दाक्षिणात्य वाचनाओं के पाठ निकले हैं। लेकिन हम इनके मत के साथ कथमपि सहमत नहीं होते हैं। द्रष्टव्य : अभिज्ञानशाकुन्तल के पाठविचलन की आनुक्रमिकता। नाट्यम्, (अंक: 76), सं. राधावल्लभ त्रिपाठी, सागर, 2014, पृ. 27 से 54.
2. अभिज्ञानशकुन्तलम्, सन्दर्भ-दीपिका सहितम्, सं. वसन्तकुमार म. भट्ट, राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन, नई दिल्ली, 2013

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

जिसमें बंगाली पाठानुसारी सातों अंकों के पाठ की पुनः परीक्षा करके अनेकत्र बिखरे प्रक्षेपों का निरूपण किया गया है। अस्तु।) डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल के मतानुसार बंगाली-पाठ में से मैथिली एवं काश्मीरी पाठों का अवतार हुआ है। लेकिन हमारा अभ्यास उनके मत से सर्वथा विरुद्ध जा रहा है। हमारे मत से प्राचीनतम पाठ काश्मीरी है, तत्पश्चात् द्वितीय क्रम पर मैथिली पाठ है, और तीसरे क्रम पर बंगाली पाठ तैयार किया गया है।तथा चौथे पाँचवें क्रमांक पर दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनाओं के संक्षिप्त तथा संमिश्रित पाठ आये हैं। यहाँ प्रस्तुत किये गये पाठ में जगह जगह पर जो जो पादटिप्पणियाँ दी गई हैं, उनका अवलोकन करने से हमारे अभिप्राय की पुष्टि हो जायेगी।।]

विशेष में, "बंगाली-वाचना का पाठ" इस नाम से प्रचलित पाठ भी कवि-प्रणीत पाठपरम्परा का नहीं है, लेकिन वह भी एक "रङ्गावृत्ति का ही पाठ" (stage-version) है, उसको प्रमाणित करने के लिए सातों अङ्कों के निम्नोक्त प्रमुख निर्देशों को क्रमशः देखना आवश्यक है। इस बंगाली रंगावृत्ति का एक मंचनलक्ष्यी मुख्य लक्षण बताना चाहेंगे कि इस प्रदेश के रंगकर्मियों ने अनावश्यक पात्रों को रंगमंच से कैसे दूर रखा जाय? इस बात पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया है। उदाहरणतया प्रथम, चतुर्थ एवं पञ्चमांक के अमुक दृश्य की प्रस्तुति में अनावश्यक पात्रों को जो निकाल दिया गया है वह ध्यानास्पद है।।

तीनों पाठों का तुलनात्मक अभ्यास करने से लगता है कि बंगाली पाठशोधकों ने (क) 60 प्रतिशत स्थानों पर मैथिली का अनुसरण किया है, तथा 40 प्रतिशत भाग में काश्मीरी पाठ का अनुसरण किया है। (ख) इसका मतलब ऐसा भी होगा कि पाठ-संमिश्रण करने का प्रघात बंगाली पाठ परम्परा ने शुरू किया है। (ग) तथा परम्परागत पाठ में कुत्रचित् संक्षेप करने का कार्य भी बंगाली विद्वानों ने ही शुरू किया था। क्योंकि तीसरे पायदान पर आये बंगाली पाठशोधकों के सामने दूसरे दो पाठ (काश्मीरी और मैथिली) आ चुके थे। (घ) बंगाली पाठशोधकों ने परम्परागत पाठ को (व्याकरण, छन्द, प्राकृतादि की दृष्टि से) अधिक परिष्कृत करने का पाण्डित्य भी दिखाया है। (ङ) किन्तु उन लोगों ने नाटक के पात्रों के नामादि परिवर्तित करते समय कुत्रचित् असावधानी भी बरती है। (च) कुत्रचित् ब्राह्मण-संस्कृति का प्रभाव बढ़ाने का प्रयास किया है, एवं (छ) नायक दुष्यन्त को वयस्य एवं प्रियवयस्य की स्वाभाविक भूमिका से उठा कर महाराज की भूमिका पर स्थापित भी कर दिया है। (इसी दिशा में आगे बढ़ कर दाक्षिणात्य पाठशोधकों ने शकुन्तला को मुनिकन्या (कण्व की पालक पुत्री) से राजर्षि-कन्या (विश्वामित्र की पुत्री) की श्रेणी भी प्रदान की है)।।

अब निम्नोक्त तुलनात्मक अभ्यास में, जब हम बंगाली पाठ को रंगावृत्ति के रूप में सिद्ध करने का उपक्रम करते हैं तब तीन विचार-बिन्दुओं को ध्यान में लेना आवश्यक होगा। जैसे कि 1. बंगाली पाठ ने काश्मीरी रंगावृत्ति के कितने अंशों का अनुसरण छोड़ कर, मैथिली-पाठ का अनुसरण किया है?, 2. बंगाली पाठ ने मैथिली-पाठ का अनुसरण छोड़ कर, कितने अंश में काश्मीरी-पाठ का अनुसरण किया है?।, तथा 3. बंगाल प्रदेश के रंगकर्मियों ने काश्मीरी एवं मैथिली पाठों का अनुसरण छोड़ कर, अपनी ओर से बंगाल की रंगभूमि पर कितना नावीन्य / परिवर्तन कर दिखाया है?। बंगाली-पाठ की उपस्थापना करते समय हमने जो पाद-टिप्पणियाँ दी हैं, उनको देखने से ये तीनों बिन्दु स्पष्ट हो जायेंगे।।

।। प्रथमोऽङ्कः।।

अभिज्ञानशकुन्तल शीर्षक से प्राप्त हो रहे बंगाली वाचना के पाठ में मैथिली रंगावृत्ति का ही प्रायः अनुसरण किया गया है। उदाहरणतया, (क) मैथिली रंगावृत्ति में जैसे राजा को चक्रवर्ती पुत्र के आशीर्वाद देते समय रंगभूमि पर एक तापस और दूसरा उनका शिष्य ही आता है, वैसे ही बंगाली रंगभूमि पर भी दो नट उपस्थित होते हैं। (ख) प्रथम अंक की रंगसज्जा के सन्दर्भ में बंगाली रंगभूमि पर भी एक सहकार वृक्ष और नवमालिका एवं माधवीलता नामक दो लताएँ हैं। यानी यहाँ भी इन तीन वनस्पतियों का ही नाम-निर्देश है। तथापि मैथिली रंगावृत्ति के पाठ की अपेक्षा से बंगाली पाठ में कुछ स्थान ऐसे उपलब्ध होते हैं कि जिनमें बंगाली रंगभूमि का वैशिष्ट्य / नावीन्य / या असावधानी के कारण पैदा हुई विसंगतियाँ हम देख सकते हैं। तद्यथा,

(1) मृगयाविहारी राजा जब रंगमंच पर आता है तब, "यह आश्रम का मृग है, उसका हनन नहीं किया जाता" कहते हुए दो तपस्वी उसके मार्ग में आ कर खड़े हो जाते हैं। उसी के सन्दर्भ में रंगसूचना भी दी गई है कि "ततः

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रविशति सशिष्यो वैखानसः"। लेकिन उस वैखानस के द्वारा "न खलु न खलु बाणः संनिपात्यो०" इत्यादि दो श्लोक और राजा को चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त होने के आशीर्वाद देने के बाद, अवशिष्ट सभी उक्तियाँ "तापसौ" (द्विवचनान्त प्रयोग) से रखी गई हैं। यहाँ इस तरह का (एवं रिचार्ड पिशेल द्वारा समीक्षित किया गया) पाठ चिन्त्य है। क्योंकि राजा को आशीर्वाद देने जैसी महत्त्वपूर्ण उक्ति केवल एक तापस ही बोलता है, और उस समय शिष्य मौन रहता है। तथा अनुगामी सामान्य बातचीत की अन्य उक्तियों में वही शिष्य बड़े तापस (वैखानस) के साथ संमिलित होकर बोलने लगता है!। मैथिली पाठ में रंगमंच पर आये शिष्य की उपस्थिति निष्क्रिय प्रतीत होती है, क्योंकि वह कुछ भी बोलता नहीं है। उसका होना केवल यह गुरु-शिष्यों से भरा आश्रम है- इतनी प्रतीति कराने के लिए उपयुक्त है। मैथिली पाठ में शिष्य की इस तरह की निष्क्रियता खटकती है। जिसको मिटाने के लिए, बंगाली पाठ-शोधकों ने बीच में से ही दूसरे तापस को भी बातचीत में शामिल कर दिया है। लेकिन ऐसा होने से गड़बड़ी पैदा होती है। जैसे कि, वैखानस के साथ बोलनेवाला अब "शिष्य" की कोटि में नहीं रहता है! दोनों को यहाँ उत्तरार्ध में "तापसौ" से प्रस्तुत किया गया है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक 26, 32, 34 एवं 36]

(2) मैथिली पाठ का अनुसरण करते हुए बंगाली पाठ में भी "इति कलशमावर्जयति" रंगसूचना दो बार आती है। शकुन्तला ने पहले नवमालिका को जलसिंचन किया तब प्रथम बार यह सूचना दी गई है। तत्पश्चात् वह माधवीलता को जलसिंचन करती है, तब भी वही रंगसूचना फिर से मिलती है। इस सन्दर्भ को देखते हुए लगता है कि रंगकर्मियों ने आवर्जयति क्रियापद का अर्थ कलश को अधोमुख करके जलसिंचन करना- ऐसा किया है। (जलकुम्भ को जमीन पर नीचे रख देने का अर्थ नहीं लिया है। क्योंकि आगे चल कर कहा जाता है कि "करं व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्व-मधरम्०" यानी शकुन्तला ने केवल एक हाथ से ही भ्रमर का अपसारण करने का अभिनय किया है, उसने दूसरे हाथ में से जलकुम्भ को छोड़ा नहीं था, वह तो पकड़ कर रखा ही है। अतः आवर्जयति क्रियापद का मतलब घट को अधोमुख करना- ऐसा ही लिया गया है।) किन्तु अब प्रश्न होता है कि भ्रमर जहाँ से उड़ना शुरू करता है उसका स्थान नवमालिका लता बताया गया है, जिस पर पहले जलसिंचन किया गया था, तत्पश्चात् माधवीलता पर कलश को आवर्जित किया गया है। तो यह कैसे सम्भव है कि माधवीलता-सम्बन्धी लम्बी संवादमाला के बाद जब उसको जल दिया जाता है, तब नवमालिका से भ्रमर उड़ना शुरू कर रहा है?। क्योंकि जैसे ही पहले नवमालिका लता पर जलसिंचन हुआ होगा, तो भ्रमर तो तुरंत ही बिना किसी विलंब से, झंकृत होकर उड़ेगा ही, वही स्वाभाविक कहलायेगा। माधवीलता पर जलसिंचन होने के बाद, नवमालिका से भ्रमर का उड़ना ठीक नहीं लगता। इस विसंगति से यह निश्चित हो जाता है कि मैथिली (और बंगाली) रंगकर्मियों ने माधवीलता-सम्बन्धी पाठ्यांश को प्रक्षिप्त किया है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक 80 एवं 94]

(3) बंगाल की रंगभूमि पर भ्रमर-बाधा प्रसंग के सन्दर्भ में एक विशेष नृत्य का दृश्य भी कदाचित् आकारित किया गया था। इसका प्रमाण श्री डमरुवल्लभ पन्त, नेपाल की ई. स. 1871 की आवृत्ति में सुनिहित है। वहाँ पर यतो यतः षट्चरणोऽभिवर्तते0 तथा चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीम्०। इन दो श्लोकों के बाद, "अपि च" अव्यय से तीसरा श्लोक भी अवतारित किया गया है। इसके शब्द अवलोकनीय हैं :- लोलां दृष्टिमितस्ततो वितनुते सभ्रूलताविभ्रमाम्, आभुग्नेन विवर्तिता वलिमता मध्येन कम्प्रस्तनी। हस्ताग्रं विधुनोति पल्लवनिभं शीत्कारभिन्नाधरा, जातेयं भ्रमराभिलङ्घनभिया वाद्यैर्विना नर्तकी।। (पृ.21) ई. स. 1258 में जल्हण ने इस श्लोक को कालिदास के नाम पर अपनी सूक्तिमुक्तावली में उद्धृत भी किया है। इससे सूचित होता है कि बंगाल के रंगकर्मियों ने शकुन्तला का पात्र अभिनीत करनेवाली नटी द्वारा कोई विशेष नृत्य भी कदाचित् प्रस्तुत करवाया होगा।।

(4) राजा ने अनुसूया से जानकारी प्राप्त की है कि यह शकुन्तला तो सर्वथा अप्सरा (मेनका) से ही सम्भूत है। तब

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा की स्वगतोक्ति है कि "हन्त, लब्धावकाशा मे मनोरथाः"। इसके बाद प्रियंवदा सस्मित शकुन्तला को देखती हुई, राजा को उद्देश्य करके बोलती है कि "पुणो वि वत्तुकामो विअ अज्जो।" यह बंगाली वाचना का पाठ है। लेकिन हम जब मैथिली पाठ के साथ इसकी तुलना करते हैं तो मालूम होता है कि बंगाली पाठ को कुछ संक्षिप्त करके दिया गया है। मैथिली पाठ के अनुसार राजा की स्वगतोक्ति में कुल दो वाक्य हैं। जैसे कि, "हन्त, लब्धावकाशो मे मनोरथः। किं तु परिहासोदारं वरप्रार्थनमस्याः श्रुत्वापि व्रतद्वैतकातरं मे मनः।" यहाँ द्वितीय वाक्य में रखा गया विचार राजा के मन में पैदा हुई आशंका को कहनेवाला है, (जिसको देख कर ही प्रियंवदा ने समझ लिया है कि राजा को पुनरपि कुछ बोलने की इच्छा हो रही है,) किन्तु इस दूसरे वाक्य को बंगाली पाठ में से हटाया गया है। अतः प्रतीत होता है कि काश्मीरी एवं मैथिली का पाठ ठीक है, परन्तु बंगाली पाठ में एक वाक्य की कटौती की गई है।। इसी सन्दर्भ में आगे देखा जाय तो बंगाली रंगावृत्ति बनानेवाले रंगकर्मियों ने, प्रियंवदा की उक्ति से पहले, मैथिली-पाठ में जो रंगसूचना दी है (सस्मितं शकुन्तलां विलोक्य, नायकाभिमुखी भूत्वा) उसमें से अन्तिम दो शब्दों की भी कटौती की है। (और शकुन्तला को सव्रीडा अधोमुखी बनाया है।) वस्तुतः इन दो शब्दों की अनिवार्य आवश्यकता है ही। मतलब कि तृतीय क्रमांक पर आये इन बंगाली रंगकर्मियों ने काश्मीरी पाठ एवं मैथिली पाठ की कुछ रंगसूचनाओं में भी कटौती करके, संक्षेपीकरण का कार्य किया है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 138 एवं 139]

(5) प्रियंवदा ने कहा कि राजन्, आपके वचन से ही मैं शकुन्तला को अनृणा करती हूँ। आपको इसके बदले में अंगूठी देने की आवश्यकता नहीं है। फिर वही प्रियंवदा शकुन्तला की ओर मुड़ कर, शकुन्तला को कहती है कि "तुझ को अनुकम्पावाले आर्य ने, अथवा महानुभाव ने मेरे ऋण से मुक्त करवाया है। तुम अब कृतज्ञ बनी हो।" यह काश्मीरी-पाठ है, जिसमें प्रियंवदा ने पहला वाक्य राजा को कहा है, और बाद में दूसरा वाक्य शकुन्तला को कहा है। लेकिन उत्तरवर्ती काल में मैथिली और बंगाली रंगकर्मियों ने प्रियंवदा की उक्ति को दो भागों में विभक्त करके, दूसरी उक्ति को अनुसूया के मुख में रख दिया है।। तथा काश्मीरी पाठ में शकुन्तला को "कृतज्ञा" कहा है, मैथिली पाठ में उसे "कृतार्था" कहा गया है। लेकिन बंगाली रंगकर्मियों ने इन दोनों ही शब्दों में से एक को भी नहीं स्वीकारा है। अनुसूया ने शकुन्तला से सीधा प्रश्न ही कर दिया है कि महाराज ने तुम्हें ऋण-मुक्त करवा दी है, फिर भी तुम यहाँ से क्यों नहीं जाती हो? तथा शकुन्तला के मुख में एक स्वगत उक्ति रखी कि, मैं इसको छोड़ कर नहीं जाऊँगी, यदि मैं अपने आप को बस में रख सकी तो। इत्यादि। यहाँ बंगाल के रंगकर्मियों ने प्रियंवदा की उक्ति में वक्तृभेद भी किया है और काकुभेद भी किया है। बंगाली पाठ के अनुसार शकुन्तला को कृतज्ञा या कृतार्था होने के कारण से वहाँ नहीं हटना है, ऐसा नहीं है। अब तो राजा के द्वारा वह जब ऋण-मुक्त हो चुकी है, तो फिर वह प्रियंवदा की अधीनता से बाहर ही है। चाहे तो जाय, या चाहे तो न भी जायेगी। उसके लिए दुःषन्त का सांनिध्य छोड़ना ही मुश्किल हो गया है ऐसा भाव व्यंजित किया गया है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 162 एवं 163-165]

(6) शकुन्तला रंगमंच से बिदाई लेती है, तब मैथिली पाठ के अनुसार बंगाली पाठ में भी कहा गया है कि "अभिनवकुशसूचिपरिक्षतं मे चरणं, कुरबकशाखापरिलग्नं च मे वल्कलम्।" जिसका सम्बन्ध द्वितीयांक के "दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे, तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा० (श्लोक-13)" के साथ है। सारांशतः, बंगाली पाठ में मैथिली पाठ जैसा ही निष्क्रमण-प्रसंग आकारित किया गया है। काश्मीरी पाठ के अनुसार उपर्युक्त वाक्य नहीं है, केवल सव्याजविलम्बितं कृत्वा परिक्रम्य सखीभ्याम् सह निष्क्रान्ता इतनी रंगसूचना ही है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 179 एवं 180]

(7) बंगाली रंगावृत्ति के प्रथमांक में एक नवीन श्लोक का प्रक्षेप हुआ है। जैसे कि, कठिनमपि मृगाक्ष्यावल्कलं० (1-20) इत्यादि। यद्यपि डॉ. रिचार्ड पिशेल ने इस श्लोक को ग्राह्य नहीं रखा है। किन्तु बंगाली पाठ के प्रमुख टीकाकार चन्द्रशेखर चक्रवर्ती ने इस श्लोक पर टीका लिखी है।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

।। द्वितीयोऽङ्कः।।

कालिदासने इस नाटक में विदूषक का विनियोग विशिष्टतया किया है। मालविकाग्निमित्र एवं विक्रमोर्वशीय में राजा के प्रणय-प्रसंग में विदूषक की जितनी सक्रियता दिखती है, उतनी इस नाटक में नहीं है। बल्कि, इस नाटक में तो उसकी अनुपस्थिति ही नाट्यकार्य में ज्यादा उपकारक सिद्ध होती है! अतः रंगकर्मियों के लिए विदूषकाश्रित रंगकर्मिता दिखाने का अवकाश बहुत कम है। विदूषक द्वितीय, पञ्चम एवं षष्ठांक में ही रंगमंच पर आता है। एवमेव, बंगाली पाठ ने प्रायः मैथिली पाठ का ही अनुसरण किया है, इस लिए भी बंगाल की रंगभूमि का कोई खास वैशिष्ट्य यहाँ देखने में नहीं आ रहा है। फिर भी, इस सन्दर्भ में जो दो-चार स्थान बताने योग्य हैं उसकी चर्चा निम्नोक्त है :-

(1) द्वितीयाङ्क में, विदूषक की उक्ति का आरम्भ तो मैथिली-पाठ के अनुसार ही है। किन्तु विदूषक ने राजा के आगमन-सम्बन्धी जो सूचना दी है, वह हमारे लिए महत्त्वपूर्ण है। मैथिली-पाठ की तरह इस बंगाली रंगभूमि पर भी यवनिकाओं का प्रवेश नहीं होता है। विदूषक ने कहा है कि, एषो बाणासनहस्तो हृदयनिहितप्रियजनो वनपुष्पमालाधारी इतः एवागच्छति प्रियवयस्यः।। (पृ. 17) इसमें आये हुए "हृदयनिहित-प्रियजन" जैसे शब्दों के अवतार के सन्दर्भ में, डॉ. एस. के. बेलवालकर जी ने जो अनुलेखनीय सम्भावना विषयक विचार किये हैं, वे हमने मैथिली-पाठ की प्रस्तावना में बताये हैं। लेकिन उन्होंने जो भी कहा है वह केवल एक सम्भावना रूप है। अतः यहाँ रंगकर्मिता की दृष्टि से सोचेंगे तो लगता है कि मैथिली एवं बंगाली रंगभूमियों पर राजा दुःषन्त का अभिनय करनेवाला जो नट होगा उसको "हृदयनिहितप्रियजन" शब्द को चरितार्थ (एक प्रेमाविष्ट व्यक्ति को साकार) करने के लिए उच्च कक्षा के सात्त्विक अभिनय को प्रदर्शित करना होगा। क्योंकि इन रंगभूमियों पर अब यवनिकाओं का, उनकी वेशभूषादि का स्थूल मंचनप्रपञ्च नहीं करना है।। इसके साथ यह भी स्मर्तव्य है कि बंगाल के पाठशोधकों ने जब यवनिकाओं को रंगमंच से हटाने का स्वीकार कर लिया है, तब उसके सन्दर्भ में आवश्यक पाठ-संमार्जन या परिष्कृति करने में पूर्ण सावधानी नहीं बरती है। जैसे कि, राजा ने जब सेनापति को रंगमंच से निवृत्त कर दिया, तब राजा ने परिजन को भी सूचना दी है कि आप लोग मृगयावेष को निकाल दें, और रैवतक को भी निवृत्त होने का कहा है। लेकिन यह उक्ति का होना विसंगत ही है, क्योंकि राजा ने जब रंगमंच पर प्रवेश किया था तब तो वह यवनिकाओं को तो साथ में लाया ही नहीं है- ऐसा पहले कहा गया है!। डॉ. रिचार्ड पिशल और डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल की समीक्षितावृत्तियों में भी यह विसंगति विद्यमान है।। [सन्दर्भः उक्ति-क्रमांक - 02, 04एवं 41]

(2) मैथिली-पाठ की तरह यहाँ बंगाली पाठ में भी, 1. राजा शकुन्तला को देखने के लिए किस बहाने पुनरपि आश्रम में जा सकता है? उसके उपाय को सोचने के लिए विदूषक रंगमंच पर समाधिमग्न होने का अभिनय नहीं करता है। यानी बंगाली रंगभूमि पर भी ब्राह्मणत्व का मजाक उड़ानेवाला समाधि का दृश्य त्याज्य बना है। 2. राजा ने जब सेनापति को कहा कि मृगयापवादी विदूषक ने मुझे भग्नोत्साह कर दिया है। तब मैथिली-पाठ में, सेनापति ने "जनान्तिक" प्रकार की उक्ति से विदूषक को कहा है :-"सखे माधव्य, स्थिरप्रतिज्ञो भव। अहं तावत् स्वामिनश्चित्तवृत्तिमनुवर्तिष्ये।" परन्तु बंगाली-पाठ में सेनापति ने "अपवार्य" प्रकार की उक्ति से कहा है कि, सखे माधव्य, दृढप्रतिज्ञो भव। अहं तावत् स्वामिनश्चित्तवृत्तिमनुवर्तिष्ये।। इस तरह से एक ही प्रसंग की प्रस्तुति दो प्रकार की उक्तियों से की जाती है, तो उसका नर्म-मर्म भी बदल जाता है। (इस विचार का विशदीकरण निम्नोक्त चर्चा में संमिलित किया गया है)। 3. अंक के अन्त भाग में, राजा ने विदूषक को नगर में वापस लौट कर राजमाताओं के लिए पुत्रकार्य करने की विज्ञप्ति की। उस समय विदूषक ने, काश्मीरी-पाठ में कहा है : (सगर्वम्) साधु, राक्षसभीरुकं मां गणयिष्यति। अर्थात् "तो ठीक, आप मुझे, राक्षसों से डरा हुआ मान लेते हैं!" इस गर्वोक्ति को, मैथिली-पाठ में और तदनुसारी बंगाली-पाठ में, "भो मा राक्षसभीरुकं माम् अवगच्छ।" (अरे जी, मुझे राक्षसों से डरा हुआ मत मानिए) इस तरह के निषेधात्मक रूप में परिवर्तित की गई है। मतलब कि

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

विदूषक यहाँ कहता है कि राजन्, मैं आपकी विज्ञप्ति के अनुसार नगर में वापस तो लौट जाऊँगा, किन्तु मुझे राक्षसों से ड़रा हुआ नहीं मान लेना। इस तरह के काकुभेद में भी रंगकर्मिता का ही भेद संनिहित होता है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 33 एवं 111]

(3) द्वितीयाङ्क में से एक-दो ऐसे सन्दर्भ भी दिखाना आवश्यक है कि जिनमें इस नाटक के मूल पाठ का विचलन होते होते तीसरे क्रम में ही बंगाली पाठ आकारित किया गया है, उसका अन्तःसाक्ष्य मिल रहा है। तद्यथा, राजा ने जैसे ही सेनापति को कहा कि इस विदूषक ने मुझे मृगया के लिए मन्दोत्साह कर दिया है, वैसे ही सेनापति विदूषक के पास जा कर उसके कान में कहता है कि विदूषक अपनी बात पर स्थिर (अविचलित) रहो। यहाँ कवि कालिदास ने दो निम्न वर्ग के पात्रों की आन्तरिक पहचान देने के आशय से जो संवादमाला बनाई है वह (प्राचीनतम काश्मीरी पाठ में कैसी सुरक्षित रही है, वह प्रथमतया) द्रष्टव्य हैः-

1. **राजा-** भद्र सेनापते, मन्दोत्साहः कृतोऽस्मि मृगयापवादिना माधव्येन।

2. **सेनापतिः-** (जनान्तिकम्) माधव्य, स्थिरप्रतिबन्धो भव। अहमपि तावत्स्वामिनश्चित्तमनुवर्तिष्ये।

(प्रकाशम्) देव, प्रलपत्वेष वैधेयः। ननु प्रभुरेव निदर्शनम् मृगया-गुणानाम्।

मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः,
सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः।
उत्कर्षस्स च धन्विनां यदिषवः सिद्ध्यन्ति लक्ष्ये चले,
मिथ्या हि व्यसनं वदन्ति मृगयाम् ईदृग्विनोदः कुतः॥

3. **विदूषकः** - (कृतकरोषम्) अत्थभवं दाव पइदिं आवण्णो। तुमं पुणो अडवीदो अडविं आहिण्ड जाव सीमासिआलो विअ जुण्णरिक्खस्स मुहे पडिस्ससि। (अत्रभवांस्तावत् प्रकृतिमापन्नः। त्वं पुनरटवीतोऽटविं भ्रम, यावत् सीमाशृगालस्येव जीर्णर्क्षस्य मुखे पतिष्यसि।)

इसमें दोनों पात्र इकठ्ठे हो कर जनान्तिक उक्ति से जो आपसी समझौता करते हैं उसमें राजाओं के आसपास रहनेवाले निम्न वर्ग के पात्रों की मानसिकता का एक अन्तरङ्ग चित्र कवि ने पेश किया है। विदूषक तो पहले से ही राजा की मृगया में सम्मिलित होना नहीं चाहता था, लेकिन सेनापति भी उसी दिशा में सोचता है, फिर भी बाहर से कुछ भिन्न ही वर्ताव करता है। प्रकृत में, सेनापति ने विदूषक को जैसा सिखाया वैसे ही उसने "कृतकरोष" के साथ दूसरा वाक्य कहा है। यहाँ उपरि निर्दिष्ट दोनों ही रंगसूचनायें परस्पर में सुसंगत हैं। किन्तु हम मैथिली वाचना के पाठ को देखते हैं तो पाठविचलन के प्रकट चिह्न मिलना शुरू हो जाते हैं। मैथिली में, किसी अज्ञात लिपिकार के प्रमाद से उपर्युक्त विदूषक की तीसरी उक्ति स्थानान्तरित हो जाती है, और वह दूसरे क्रम पर चली जाती है। तथा वहाँ से "कृतकरोषम्" जैसी रंगसूचना भी गायब हो जाती है। फिर सेनापति की उक्ति, जो काश्मीरी पाठ में द्वितीय क्रमांक पर थी वह मैथिली पाठ में तीसरे क्रम में रखी गई है। अब सेनापति की उक्ति के प्रस्ताव से पहले, "जनान्तिक" ऐसी रंगसूचना निरर्थक बन जाती है। डॉ. रमानाथ झा जी के द्वारा सम्पादित मैथिली पाठ में यह स्थान दूषित हुआ है ऐसा सिद्ध होता है[1]॥

अब बंगाली वाचना का पाठ परीक्षणीय है। जिसमें भी एक अशास्त्रीय रंगसूचना है एवं कुछ नये शब्दों का प्रक्षेप हुआ है। पहले डॉ. रिचार्ड पिशेल द्वारा सम्पादित पाठ्यांश देखना जरूरी हैः-

राजा- भद्रसेन, भग्नोत्साहः कृतोऽस्मि मृगयापवादिना माधव्येन।

सेनापतिः- (अपवार्य) सखे माधव्य, दृढप्रतिज्ञो भव। अहं तावत्स्वामिन-श्चित्तमनुवर्तिष्ये।

(प्रकाशम्) देव,

---

1. अभिज्ञानशकुन्तलम् (मैथिल-पाठानुगम्), (शंकर-नरहरिकृतव्याख्याद्वय-संयुतम्), सं. श्री रमानाथ झा, मिथिला विद्यापीठ, दरभङ्गा, 1957, पृ. 29.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रलपत्वेष वैधेयः। ननु प्रभुरेव निदर्शनम्। पश्यतु देवः,
मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः० ....॥ (1-5)

विदूषकः- (सरोषम्) अवेहि रे उच्छाहइत्तआ अवेहि। अत्थभवं पइदिं आवण्णो। तुमं दाव दासीए पुत्तो अडईदो अडइं आहिण्ड जाव सिआलमिअलोलुवस्स कस्स वि जुण्णरिच्छस्स मुहे णिवडिदो होसि॥

इस बंगाली पाठ में 1. "जनान्तिक" के स्थान में जो "अपवार्य" ऐसी रंगसूचना दी गई है, वह अशास्त्रीय प्रतीत हो रही है। क्योंकि जब कोई पात्र रंगभूमि के किनारे पर आकर प्रेक्षकों से सीधी बात करना चाहता है तब अपवार्य प्रकार की उक्ति से बोलता है। यहाँ तो सेनापति इस "अपवार्य" प्रकार की उक्ति से विदूषक के साथ बातचीत करता है ऐसा सन्दर्भ दिया है। अतः यहाँ बंगाली में दी गई "अपवार्य" प्रकार की उक्ति सुसंगत नहीं लगती है। तथा 2. काश्मीरी एवं मैथिली के "स्थिरप्रतिबन्धो भव" जैसे शब्दों के स्थान में, बंगाली वाचना ने "दृढप्रतिज्ञो भव" ऐसा परिष्कृत पाठान्तर दिया है। 3. काश्मीरी पाठ में सेनापति को "दास्याः पुत्रः" शब्द से गाली नहीं दी गई थी, जिसका प्रस्ताव पहली बार मैथिली में हुआ, और वह बंगाली में भी अनुसृत की गई। एवमेव, 4. काश्मीरी पाठ में सेनापति को सीमाशृगाल की उपमा दी गई थी, जिसमें परिवर्तन करके मैथिली वाचना में उसको जीर्ण ऋक्ष का विशेषण बनाते हुए "वृद्ध-शृगाल-लोलुपस्य कस्यापि जीर्णर्क्षस्य" शब्दों में ढ़ाल दिया है। इस तरह की विकृति लिपिकार के प्रमाद के कारण पैदा नहीं हो सकती है। यह शब्दावली बंगाली पाठ में संचरित हुई, लेकिन उसमें बूढ़े भालु के विशेषण में परिवर्तन हुआ हैः- "शृगालमृगलोलुपस्य"॥

अब देवनागरी और दाक्षिणात्य वाचनाओं में इस सन्दर्भ का पाठ देखते हैः-

सेनापतिः- (जनान्तिकम्) सखे, स्थिरप्रतिबन्धो भव। अहम् तावत् स्वामिन-श्चित्तवृत्तिम् अनुवर्तिष्ये। (प्रकाशम्) प्रलपत्वेष वैधवेयः। ननु प्रभुरेव निदर्शनम्। मेदश्छेदकृशोदर०॥ (2-5)

विदूषकः- अत्तभवं पकिदिं आपण्णो। तुमं दाव अडवीदो अडवीं आहिडंतो णरणासिकालोलुवस्य जिण्णरिच्छस्स कस्स वि मुहे पडिस्ससि। (अत्रभवान् प्रकृतिमापन्नः। त्वं तावदडवीतोऽटवीमाहिण्डमानो नरनासिकालोलुपस्य जीर्णऋक्षस्य कस्यापि मुखे पतिष्यसि।)

इसमें काश्मीरी पाठ का प्रायः अनुसरण दिख रहा है। जैसे कि, यहाँ जनान्तिक की रंगसूचना है, तथा उसके लिए "दास्याः पुत्रः" जैसी गाली का प्रयोग नहीं है। किन्तु कुछ स्थानों में मैथिली एवं बंगाली पाठ का भी अनुसरण किया गया है। जैसे कि, सेनापति के लिए कोई विशेषण नहीं है, किन्तु रीछ के लिए विशेषण रखा है। यद्यपि उसमें पहलेवाले सभी शब्दों को बदला गया है। और सन्दर्भोचित "नरनासिकालोलुप" शब्द से हास्य को नया रंग चढ़ाया गया है॥ यहाँ निदर्श के रूप में रखी गई चर्चा को देखने से मालूम होगा कि पाठविचलन के साथ साथ भारतीय रंगभूमि पर इस नाटक के मंचन में क्रमशः कैसा परिवर्तन आता रहा है॥

[सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 32 से 35]

(4) विविध वाचनाओं के पाठविचलन का क्रम दिखानेवाला एक दूसरास्थान भी यहाँ मिलता है। जैसे कि, विदूषक की विज्ञप्ति को बहाना बना कर राजा ने मृगया-कर्म से विरत होने का सोच लिया और अपने सेनापति को बुलाया। दुष्यन्त सूचना देना चाहता है कि मृगया के लिए एकत्र किये जंगली प्राणियों को मुक्त किया जाय। दौवारिक जा कर सेनापति को ले आता है। रंगमंच पर आकर सेनापति ने राजा के शरीर की ओर देखा। मृगया के कारण राजा को जो शारीरिक लाभ हुआ था उनका वह गुण-वर्णन शुरू करता है। जैसे कि, "अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरपूर्वम्" इत्यादि। काश्मीरी वाचना में यहाँ दौवारिक की एक उक्ति हैः-अय्य, एसो क्खु अणुवअण-दिण्णकण्णो इदो दिण्णदिठ् येव भट्टा तुमं पडिवालेदि। ता उवसप्पदु अय्यो। (आर्य, एष खल्वनुवचनदत्तकर्ण इतो दत्तदृष्टिरेव भर्ता त्वां प्रतिपालयति। तस्माद् उपसर्पत्वार्यः।) पूर्वापर सन्दर्भ में इस उक्ति को देखेंगे तो मालूम होगा कि राजा ने, सामने से आ रहे सेनापति के मृगया की प्रशंसा करते हुए शब्दों को ध्यान से सुना थे, और

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

वे उसकी प्रतीक्षा भी कर रहे थे। मतलब कि यहाँ राजा के लिए प्रयुक्त "अनु-वचन-दत्तकर्ण" एवं "इतो दत्तदृष्टि" ये दोनों विशेषण राजा के आङ्गिक अभिनय के साथ ही जुड़े हुए है। नाट्यप्रयोग के दौरान ही राजा के आङ्गिक अभिनय से समझ में आयेगा कि ये दोनों ही शब्द सर्वथा उपयोगी हैं।। [सन्दर्भः उक्ति-क्रमांक - 29] इसी उक्ति का मैथिली वाचना में जो स्वरूप है वह निम्नोक्त हैः-एदु एदु अज्जो। एसो अणुवअण-दिण्णकण्णो भट्टा तुमं जेव्व पडिवालेदि। ता उअसप्पदु अज्जो।। इसमें "इतो दत्तदृष्टिः" इतने शब्द नहीं है। अर्थात् नाट्यप्रयोग के दौरान राजा के आङ्गिक अभिनय से स्पष्ट होगा कि राजा केवल सेनापति के शब्दों को सुन रहे थे, किन्तु उनकी दृष्टि सेनापति के आने की दिशा में नहीं घुमाई गई थी।।

अब बंगाली वाचना में इस सन्दर्भ की उक्तियाँ परीक्षणीय हैं। जिसमें सब से पहले यह ज्ञातव्य है कि राजा की आज्ञा से दौवारिक जब सेनापति को लेकर रंगमंच पर आता है तो वहाँ किसी रंगकर्मी ने समय की बचत करने के लिए "निष्क्रम्य - प्रविश्य" की युक्ति का विनियोग किया है, और सेनापति की उक्ति को स्थानान्तरित करके पीछे ले ली है। अतः बंगाली पाठ का सन्दर्भ द्रष्टव्य हैः-

राजा- रैवतक, सेनापतिस्तावदाहूयताम्।

दौवारिकः- तधा। (इति निष्क्रम्य पुनः सेनापतिना सह प्रविश्य) एदु एदु अज्जो। एस आलावदिण्णकण्णो भट्टा इदो ज्जेव चिट्ठदि। उवसप्पदु णं अज्जो। (तथा। एतु एतु आर्यः। एष आलापदत्तकर्णो भर्ता इत एव तिष्ठति। उपसर्पतु एनम् आर्यः।।)

सेनापतिः- राजानमवलोक्य स्वगतम्। कथं दृष्टदोषापि मृगया स्वामिनि केवलं गुणायैव संवृत्ता। तथा हि देवः,

अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरकर्मा, रविकिरणसहिष्णुः स्वेदलेशैरभिन्नः।
अपचितमपि गात्रं व्यायतत्वादलक्ष्यं, गिरिचर इव नागः प्राणसारं बिभर्ति।। (2-4)

इसमें सेनापति के मुख में रखा गया जो श्लोक है, वह अन्य सभी वाचनाओं में, जब दौवारिक उसको बुला कर साथ में ला रहा है तब सेनापति के मुख से निकलता है। वह आते समय रास्ते में ही इस श्लोक के द्वारा राजा का शरीर, जो मृगया के व्यायाम से कसा गया है, उसका निरूपण करता है। इस श्लोक का उच्चारण (या गान) पूरा हो जाने पर ही दौवारिक उसको कहता है कि आपके कथन को राजा सुन ही रहे हैं, अतः आप उसके निकट में जा सकते हैं। लेकिन बंगाली पाठ में इस श्लोक को क्रम में पीछे कर देने से दौवारिक जब कहता है कि राजा, जो आलापदत्तकर्ण है, वह यहीं खड़े हैं और अब आप उनके निकट जा सकते हैं, तो वह वाक्य विसंगत बन जाता है। क्योंकि इस बंगाली पाठ में तो अभी तक सेनापति ने रास्ते में आते समय यह श्लोक बोला (या गाया) ही नहीं है! तो फिर दौवारिक कैसे कह सकेगा कि राजा आपके आलाप (= वार्तालाप या गान) की ओर ध्यान देकर सुन रहे है? बंगाली पाठ की इस तरह की नवीन पाठयोजना असम्बद्ध है उसमें कोई शक नहीं है[1]। एवञ्च, उपर्युक्त विसंगति के उपरान्त देखा जाय तो यह 2-4 श्लोक परम्परागत होते हुए भी, "स्वगतम्" रंगसूचना से अवतारित है, इसी लिए भी वह प्रक्षिप्त हो सकता है।।

काश्मीरी और मैथिली पाठों में इस तरह की विसंगति नहीं है। तथा देवनागरी वाचना ने यद्यपि बंगाली वाचना की नवीन पाठयोजना का अनुसरण किया है, किन्तु उपर्युक्त विसंगति से बचने के लिए दौवारिक की पूर्वोक्त उक्ति में "आलापदत्तकर्ण" शब्द को बदल कर, वहाँ उसके स्थान में ["एसो अण्णावअणुक्कंठो भट्टा इदो दिण्णदिट्ठी एव्व चिठ्ठदि। उवसप्पदु अज्जो। (एष आज्ञावचनो-त्कण्ठो भर्ता इतो दत्तदृष्टिरेव तिष्ठति। उपसर्पतु आर्यः।)"] "आज्ञावचनोत्कण्ठ" शब्द से एक नया ही (चौथा) पाठान्तर अवतारित किया है।।

---

1. डॉ. रिचार्ड पिशेल (पृ. 19) एवं डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल (पृ. 223) द्वारा सम्पादित बंगाली वाचना के पाठ में इस तरह की असम्बद्धता समान रूप से दृष्टिगोचर हो रही है।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

उपर्युक्त चर्चा में पाठविचलन की यात्रा स्पष्टतया उद्भासित हो रही है कि उपलब्ध प्राचीनतम काश्मीरी वाचना के शारदा पाठ में पहले "अनुवचनदत्तकर्णः, इतो दत्तदृष्टिः" ऐसे दो शब्द थे। द्वितीय क्रम में मैथिली वाचना ने काश्मीरी पाठ का अनुसरण जरूर किया, लेकिन एक शब्द को कम करके केवल "अनुवचन-दत्तकर्णः" शब्द बनाये रखा। तथा सेनापति के श्लोक को, राजा के सामने लाने से पहले, प्रस्तुत करवानेवाली मूल योजना को नहीं बदला। तीसरे क्रम में, बंगाली पाठ में सेनापति के मुख में रखे श्लोक को स्थानान्तरित कर दिया गया। तथा उसमें "आलापदत्तकर्णः" जैसे तीसरे पाठान्तर को प्रस्तुत किया। लेकिन उसमें पूर्वोक्त प्रकार की विसंगति आने के कारण दाक्षिणात्य तथा देवनागरी वाचनाओं में एक चौथे पाठान्तर ने जन्म लिया, जिसमें "आज्ञावचनोत्कण्ठः" शब्द आ गया।। ऐसी पाठ-विक्षिप्तताएँ ही जब प्रकट रूप से देखी जा सकती हैं, तब मानना पड़ता है कि ये रंगावृत्तियों के ही लक्षण हैं, इनको हम लिपिकार के प्रमाद या अनवधान का नाम नहीं दे सकते हैं।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 29 से 34]

।। तृतीयोऽङ्कः।।

(1) अब तृतीयांक के पाठ की समीक्षा करना अभीष्ट है। काश्मीरी रंगावृत्ति को जो सात श्लोकों का प्रक्षिप्तांश विरासत में मिले होंगे, और जिनका अनुरणन मैथिली-पाठ परम्परा में भी सुनाई पड़ता है, उनका जब बंगाली-पाठ में अनुप्रवेश होता है तो उनमें कुछ बदलाव या कम-ज्यादा होता है कि नहीं? यह परीक्षणीय बात बनती है। (क) काश्मीरी-पाठ का प्रथम प्रक्षिप्त श्लोक "अद्यापि नूनं हरकोप-वह्नि०" बंगाली-पाठ में भी अनुसृत है। (ख) काश्मीरी-पाठ में सागर-महानदी, सहकार-अतिमुक्तलता एवं चित्राविशाखे-शशाङ्कलेखा के तीन उपमानवाला जो पाठ्यांश प्रक्षिप्त है, उसमें से बंगाली रंगकर्मियों ने केवल पहला उपमान स्वीकारा है। यहाँ पर बंगाली-पाठ में मैथिली-पाठ का अनुसरण त्याज्य बना है। (ग) काश्मीरी-पाठ के तीसरे प्रक्षेप में जो मेघवाताहत मयूरी का उपमान आता है, उसका बंगाली-पाठ में स्थानान्तरण किया गया है। (शकुन्तला जब राजा के मुख से सुनती है कि राजा ने उसको अपने कुल की प्रतिष्ठा के रूप में घोषित किया है, (यानी शकुन्तला के पुत्र को ही राजगादी मिलेगी- ऐसा वचन दिया है) तब वह इस मेघनाद को सुन कर प्रसन्न हो रही मयूरी जैसी लगती है।) किन्तु यह ध्यातव्य है कि इस उपमान का विनियोग करने के साथ शकुन्तला को हर्षित होनेवाली जो कही है वह गम्भीर बात की ओर ईशारा कर रही है। मूल महाभारत में भी शकुन्तला ने अपने पुत्र को ही राजगादी मिलने की शर्त पर ही गान्धर्व-विवाह किया था। जिसका इस बंगाली पाठ में अनुसरण किया गया है! (घ) काश्मीरी-पाठ के चौथे प्रक्षिप्तांश का, जिसमें "अपराधमिमं ततः सहिष्ये" श्लोक आता है, उसका यथावत् स्वीकार किया गया है। (ङ) काश्मीरी-पाठ का पाँचवां प्रक्षेप, जिसमें "अप्यौत्सुक्ये महति०" श्लोक है, उसका भी बंगाली-पाठ में स्वीकार किया गया है। (च) काश्मीरी-पाठ के षष्ठ प्रक्षिप्तांश में, राजा ने शकुन्तला को "यदा सुरतरसज्ञो भविष्यामि" कहा है, उसका बंगाली-पाठ में त्याग किया गया है। वह मैथिली-पाठ में भी त्याज्य रहा है। तथा (छ) अंक के अन्त भाग में, काश्मीरी-पाठ में जो श्लोक "रहः प्रत्यासत्तिं यदि सुवदना०" प्रक्षिप्त है, वह मैथिली-पाठ की तरह बंगाली-पाठ में भी ग्राह्य बना है। यानी बहुत पुराने समय से कुसुमास्तरण पर लेटी हुई शकुन्तला का मंचन करते समय रंगकर्मियों ने जो अश्लील पाठ्यांश दाखिल किये थे, और जो काश्मीरी रंगावृत्ति को विरासत में मिले थे, वे अनुगामी काल में बृहत्पाठवाली तीनों रंगावृत्तियों में बहुशः यथावत् स्वीकार्य रहे हैं। (यद्यपि इनको न रिचार्ड पिशेल पकड़ पाये हैं, और न डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल, और इसी लिए ऐसे अंशों का "समीक्षित पाठ" के रूप में स्वीकार किया गया है।) निष्कर्षतः, दृढासन लगा कर बैठे इन पाठ्यांश के कारण ही ये तीनों बृहत्पाठों "रंगावृत्तियों के पाठ" हैं- ऐसा सिद्ध हो जाता है।। [सन्दर्भः उक्ति-क्रमांक - 6, 35, 84,]

(2) मैथिली-पाठ का अनुसरण करते हुए बंगाली-पाठ ने भी एक अश्लीलांश को हटाया जरूर है, लेकिन मैथिली रंगकर्मियों ने उसके स्थान में जो "गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्योऽथ मुनिकन्यकाः०" श्लोक का नवीन प्रक्षेप किया

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

था, उसको तो बंगाली रंगकर्मियों ने मान्य कर ही लिया है[1]। इसी श्लोक ने इस नाटक में जो सच्चे नैसर्गिक प्रेम का निरूपण हुआ था उसको हटा देने के कार्य में भारी सहायता प्रदान की है। तथा इसी श्लोक ने आगे चल कर इस नाटक के मूल / दीर्घ पाठ्यांश का संक्षेप करने का मार्ग प्रशस्त किया है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 111]

(3) बंगाली-पाठ में जो एक नवीन श्लोक ("शशिकरविशदान्यस्यास्तथा०। 3-11") का प्रक्षेप हुआ है, वह केवल काव्यसौन्दर्य बढ़ाने की लालसा से किसी कविंमन्यमान बुद्धिवाले ने किया है। श्लोक 3-10 में तो कहा है कि शकुन्तला ने एक ही मृणाल-वलय अपने हाथ में पहना है, जो शिथिल भी है। इसीसे सिद्ध होता है कि यह श्लोक प्रक्षिप्त ही है। इस 3-11 श्लोक का अवतार करने के लिए, उसकी पुरोगामिनी दो उक्तियों में आवश्यक परिवर्तन भी किया गया है, जो ध्यानाकर्षक है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक- 20, 21 एवं 22]

(4) काश्मीरी-पाठ के प्रक्षिप्तांशों की तुलना में बंगाली रंगावृत्ति के पाठ में जो परिवर्तन हुआ है, उसका निरूपण हमने उपर्युक्त दो-तीन बिन्दुओं में किया। किन्तु बंगाली पाठ की उल्लेखनीय एक हकीकत यह है कि बंगाली पाण्डुलिपियों में संचरित हुआ जो परम्परागत पाठ है उसमें शकुन्तला को मदनलेख लिखने के समय पर "उपविष्टा चिन्तयति" जैसी रंगसूचना से लेटी हुई स्थिति में से बैठी हुई स्थिति में परिवर्तित की गई है। (द्रष्टव्य है:- कलकत्ता से प्रकाशित श्री कृष्णनाथ न्यायपंचानन की अभि. शकु. की द्वितीयावृत्ति, 1888, पृ. 94, एवं श्रीडमरुवल्लभ पंत की आवृत्ति, 1871, पृ. 72) परन्तु डॉ. रिचार्ड पिशेल एवं डॉ. डी. के. कांजीलाल ने अपनी अपनी समीक्षितावृत्ति में से यह रंगसूचना निकाल दी है। वह किस तर्क पर या किस बंगाली पाण्डुलिपि के साक्ष्य पर ऐसा किया है- वह अज्ञात है।। एवमेव, शकुन्तला के द्वारा मदनलेख की पदावली सोच लेने के बाद, प्रियंवदा के सुझाव से नलिनीदल पर उसको नाखून से उत्कीर्ण करने का अभिनय "यथोक्तं रूपयित्वा" की रंगसूचना पूर्वोक्त दोनों परम्परागत संस्करणों में सुरक्षित है। किन्तु समीक्षित पाठ में वह रंगसूचना नहीं है। जिसके कारण जैसे मैथिली पाठ में एक महती विसंगति पैदा हुई है वैसी समीक्षित बंगाली दोनों पाठों में भी विसंगति पैदा हुई है। जैसे कि, प्रियंवदा ने जब कहा कि शुकोदरस्निग्ध नलिनीपत्र पर ही नाखून से मदनलेख को उत्कीर्ण कर दो, तब वहाँ शकुन्तला ने उसको नलिनीपत्र पर लिखा है या नहीं लिखा है- उसको प्रेक्षक लोग नहीं जान सकते हैं। यानी नलिनीपत्र पर मदनलेख लिखे बिना ही शकुन्तला ने कहा है कि- शृणुत तावद् एनां, संगतार्था न वा इति।। [सन्दर्भ: उक्ति-क्रमांक -55 एवं 59]

(5) बंगाली रंगावृत्ति का यह पाठ तीसरे क्रम में तैयार किया गया है, ऐसा हमने अन्यत्र प्रतिपादित किया है[2]। इस पूर्वोक्त मत के समर्थन में यहाँ एक अन्य स्थान भी बंगाली पाठ में मौजूद है। जब सहेलियाँ दुष्यन्त को विज्ञप्ति करती है कि आपके प्रति अनुराग होने के कारण हमारी सखी की यह अवस्था हुई है, तो अब आप उसको सम्भालिये, इस प्रसंग की उक्तियाँ समीक्षणीय हैं-

(पहले काश्मीरी-पाठ को देखिए)

अनसूया- इदो सिलादलेक्कदेसं अणुगेण्हदु **वअस्सो।**,

प्रियंवदा- लब्धोसधो संपदं उवसमं गमिस्सदि कालेण। (.... इत्यादि),

प्रियंवदा- महाभाअ, दोण्हं पि वो अम्णोण्णाणुराओ पच्चक्खो। सहीसिणेहो उण मं पुणरुत्तवादिणीं करेदि।

---

1. बंगाली रंगकर्मियों ने यह देखा ही नहीं कि शकुन्तला की चेतावनी के बाद, "(दिशोऽवलोक्य) कथं प्रकाशं निर्गतोऽस्मि। (शकुन्तलां हित्वा तैरेव पदै: प्रतिनिवर्तते।)" इस उक्ति का सन्धान ही, एकमात्र आन्तरिक सम्भावना की दृष्टि से, समुचित सिद्ध होता है।।
2. द्रष्टव्य: - अभिज्ञानशाकुन्तल के पाठविचलन की आनुक्रमिकता। नाट्यम् (अंक-76, पृ. 26 से 54), सं. श्री राधावल्लभ त्रिपाठी, सागर, 2014

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- उच्यताम्, विवक्षितं ह्यनुक्तमनुतापं जनयति।

प्रियंवदा- तेण हि सुणादु महाराओ।

राजा- अवहितोऽस्मि।

प्रियंवदा- इअं णो सही तुमं य्येव उद्देसिअ भअवदा मअणेण इमं ...।। इस काश्मीरी-पाठ में राजा के साथ प्रियंवदा एक वयस्य के साथ जैसे साहजिकता से बात हो सकती है, वैसे कर रही है।।

(अब, दूसरे क्रम में आये मैथिली पाठ को देखेंगे)

अनुसूया- इदो सिलातलेक्कदेसं अणुगेण्हदु **पिअवअस्सो।**

राजा- प्रियंवदे, कच्चित् न सखीं वो बाधते शरीरतापः। (...... इत्यादि)

प्रियंवदा- महाराअ, दोण्णं पि वो अण्णोण्णाणुराओ पचक्खो। सखीसिणेहो उण मं पुनरुत्तवादिणिं करेदि।,

अनुसूया- एस णं धम्मो।,

राजा- विवक्षितं ह्यनुक्तमनुतापं जनयति। अस्मात् परं किं तत्।,

प्रियंवदा- तेण हि इअं णो पिअसही तुमं जेव उद्दिसिअ... (इत्यादि)।। यहाँ मैथिली-पाठ में भी प्रियंवदा राजा को प्रियवयस्य कह कर सम्बोधन करती है। तथा सखीस्नेह से प्रेरित होकर वह कुछ कहने जा रही है, तब बीच में अनुसूया ने कहा कि "एस णं धम्मो"। (जिसका मतलब है कि आपको कुछ कहना वह हमारा सखीधर्म बनता है।) यहाँ अनुसूया कि उक्ति का सन्धान पूर्व-वाक्य के साथ है, किन्तु (अधस्तात् दिये गये बंगाली-रंगावृत्ति के पाठ में वह बिलकुल दूसरे ही सन्दर्भ में प्रयुक्त किया गया है।।

अब, बंगाली-पाठ को देखिए -

अनुसूया- इदो सिलादलेक्कदेसं अणुगेण्हदु **महाराओ।**

राजा- प्रियंवदे, कच्चित् सखीं वो नातिबाधते शरीरतापः।

प्रियंवदा- लद्धोसधो संपदं उवसमं गमिस्सदि। महाराअ, दोण्णं पि वो अण्णोण्णाणुराओ पच्चक्खो।
सहीसिणेहो उण पुणरुत्तवाइणिं करेदि मं।

राजा- भद्रे, न तत्परिहार्यं, यतो विवक्षितमनुक्तमनुतापं जनयति।

प्रियंवदा- तेण हि सुणादु अज्जो।

राजा- अवहितोऽस्मि।

प्रियंवदा- अस्समवासिणो जणस्स रण्णा अत्तिहरेण होदव्वं ति णं एसो धम्मो।

राजा- अस्मात् परं किं तत्।

प्रियंवदा- तेण हि इअं णो पिअसही तुमं उद्दिसिअ ... (इत्यादि)।।

इस बंगाली-पाठ में दुष्यन्त को वयस्य, एवं प्रियवयस्य की भूमिका से उठा कर महाराजा की भूमिका पर स्थापित कर दिया है। जिसके कारण प्रियंवदा अब, एक राजा का क्या धर्म बनता है? वह निरूपित करती है! यही परिवर्तन सूचित करता है कि बंगाली रंगकर्मियों ने इस नाटक को राजदरबारी नाटक बनाने की साजिश की है। जो नाटक मूल में नैसर्गिक प्रेम का नाटक था, उसको राजकीय रंग चढ़ाया है।। इस तरह के परिष्कार की चेष्टा ही उसको तीसरे क्रम में तैयार हुआ पाठ सिद्ध करती है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 67, 70, 74-75, एवं 80]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ चतुर्थोऽङ्कः॥

कालिदास ने चतुर्थ अंक में शकुन्तला की बिदाई का दृश्य प्रस्तुत किया है। भारतीय संस्कृति में इस प्रसंग का विशेष महत्त्व है। बंगाली रंगभूमि पर इस अंक का मंचन करनेवाले प्राचीन काल के रंगकर्मियों ने जहाँ जहाँ पर कुछ वैशिष्ट्य दिखाया है, उनका अब परामर्शन करना अभीष्ट है। यद्यपि बंगीय रंगावृत्ति के पाठ में तो बहुशः मैथिली रंगावृत्ति के पाठ का ही अनुसरण किया गया है, तथापि कुछ स्थान ऐसे जरूर हैं कि जिसमें बंगाली रंगकर्मियों की मंचनलक्ष्यी विशेष योजनाएं देखी जा सकती हैं।।

(1) इस अंक के प्रारम्भ में दुर्वासा-शाप प्रसंग आकारित होता है। काश्मीरी पाठ के अनुसार शाप-मोचन की याचना करने के लिए दुर्वासा के पास अनुसूया जाती है, और शाप को शकुन्तला से गुप्त रखने का प्रस्ताव प्रियंवदा ने किया है। ऐसी योजना इन दोनों सहेलियों के व्यक्तित्व को देखते हुए सुसंगत लगती है। लेकिन मैथिली रंगकर्मियों ने अनुसूया शाप-मोचन की अवधि जान कर जब वापस लौटती है तब प्रियंवदा को वह कहती है कि चलो हम (दोनों) देवताकार्य को सम्पन्न करें। इतना कह कर दोनों रंगमंच पर परिक्रमण करते हैं। (अनुसूया- एहि, देवदाकज्जं दाव णिव्वुत्तम्ह। (इति परिक्रामतः)) इस एक वाक्य का प्रक्षेप मैथिली रंगकर्मियों ने कर दिया, जिसके कारण शाप-वृत्तान्त को संगोपित रखने का प्रस्ताव जो प्रियंवदा के मुख में था, वह (मैथिली-पाठ में) अनुसूया के मुख में चला गया है। इस तरह की पाठ-विकृति का संचरण बंगाली पाठ में भी हुआ है ऐसा दिखता है।। कालान्तर में, इस प्रसंग में दूसरी भी पाठ-विकृति ने प्रवेश किया है। जैसे कि, दाक्षिणात्य और देवनागरी पाठों में शाप-मोचन की याचना के लिए अनुसूया नहीं जाती है, किन्तु वह कार्य प्रियंवदा करती है। एवञ्च, इन पाठों में पुष्पभाजन प्रियंवदा के हाथ से नहीं गिरता है, अनसूया के हाथ से गिरता है- इत्यादि परिवर्तन भी ध्यातव्य बनता है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 29 एवं 32, 21-22]

(2) इस चतुर्थांक के प्रवेशक में दुर्वासा-शाप प्रसंग आता है। उसमें मैथिली रंगकर्मियों ने जो (उपर्युक्त) परिवर्तन किया था, उनका बंगाल के रंगकर्मियों ने अनुसरण किया है। परन्तु उसके बाद कण्व मुनि का शिष्य रंगमंच पर आकर, प्रभात वेला का वर्णन प्रस्तुत करता है। यहाँ कुल मिला कर चार श्लोकों का गान होता है, जो परस्पर में "अपि च" निपातयुग्म से बांधे गये हैं।। उन चार श्लोकों में से दो श्लोक (क) कर्कन्धूनाम्० तथा (ख) पादन्यासम्० प्रासंगिक हैं, एवं उन दोनों में अपि च निपात के प्रयोग का स्वारस्य भी घटित होता है। अतः वे मौलिक सिद्ध होते हैं। अवशिष्ट अन्य दो श्लोक (यात्येकतोऽस्तशिखरम्० तथा अन्तर्हिते शशिनि सैव०) पुनरुक्ति दोषग्रस्त होने से प्रक्षिप्त सिद्ध होते हैं। परन्तु काश्मीरी रंगावृत्ति में भी वे दोनों हैं, और मैथिली रंगकर्मियों ने भी उनको यथावत् स्वीकार कर लिया है। लेकिन बंगाली रंगकर्मियों ने उन चारों श्लोकों का स्वीकार करते समय उनके उपस्थिति क्रमांक को परिवर्तित कर दिया है। जिसके कारण जो तीसरे चौथे क्रमांक पर खडे (प्रक्षिप्त) श्लोक थे, वे दोनों पहले दूसरे क्रमांक पर प्रस्तुत होते हैं। कालानुक्रम से जब इस नाटक की पाठयात्रा आगे बढ़ती है, तो दाक्षिणात्य एवं देवनागरी रंगावृत्ति में वही दो प्रक्षिप्त श्लोक बच जाते हैं, और उच्चतर समीक्षा से जो मौलिक प्रतीत हो रहे हैं, उन दोनों श्लोकों को अन्धेरे में धकेल दिये गये हैं!।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 38 से 41]

(3) प्रभात-वेला का वर्णन करके शिष्य चला जाता है। उसके बाद अनुसूया "अपटीक्षेपेण" रंगमंच पर प्रवेश करती है। वह मानसिक रूप से उद्विग्न है। विषयपराङ्मुख कण्व मुनि को कैसे यह बताया जाय कि राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला के साथ अनार्य व्यवहार किया है। (काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ के अनुसार) वह कहती है कि जागृत होने के बाद भी मैं क्या करुँ? प्रभातकाल के उचित कार्यों में भी मन नहीं लगता है। कामदेव ने अपनी कामना पूरी करली।। किन्तु मैथिली रंगकर्मियों ने इन तीन वाक्यों के पूर्व में, दो और नये वाक्यों का प्रक्षेप कर दिया है:- ननु प्रभातवेला। तां निद्रां परित्यजामि। बंगाली रंगकर्मियों ने उन्हीं दो प्रक्षिप्त वाक्यों को शब्दान्तर से प्रस्तुत किया है:- ननु प्रभाता रजनी। तत् लघु प्रतिबुद्धा अस्मि।। मैथिली-पाठ की तुलना में यह शब्दावली निश्चित

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

परिष्कृत है, किन्तु दोनों ही प्रदेशों के रंगकर्मियों ने यह ध्यान में नहीं लिया कि जिस पात्र को "अपटीक्षेपेण" से रंग पर भेजा गया है, (और जिसके द्वारा उसकी मानसिक उद्विग्न अवस्था सूचित की गई है,) उसके मुख में ऐसे दो अधिक वाक्यों का विनिवेश करना रसपोषक नहीं होगा। यहाँ काश्मीरी रंगावृत्ति में सुरक्षित रहा पाठ ही सन्दर्भोचित है।।

अनुसूया की इसी उक्ति में एक दूसरा पाठान्तर भी चर्चा के योग्य है:- अनुसूया बताती है कि वे राजर्षि ऐसे ऐसे वचन कह कर गये हैं, लेकिन अभी तक "लेखमात्र" भी नहीं भेजा है। इस तरह के काश्मीरी पाठ में परिवर्तन करके मैथिली रंगकर्मियों ने "वार्तामात्रकमपि" ऐसा पाठभेद किया। बंगाली रंगकर्मियों ने "वाचामात्रमपि" (डॉ. रिचार्ड के छायानुवाद में, वाङ्मात्रकमपि) ऐसा तीसरा पाठान्तर दिया। यहाँ मूलगामी शब्द कौन सा होगा? ऐसी चर्चा को कोई स्थान नहीं है। क्योंकि तीनों की सम्भावना एक समान है। जो निश्चित है वह यही है कि मंचन के हर मौके पर रंगकर्मी लोग अपने अपने स्थल-काल में जो शब्द प्रचलित होगा उसे ही वाचिकाभिनय में दाखिल कर देंगे।। इसी बात का समर्थन करने के लिए श्लोक-6 की ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है:- काश्मीरी-पाठ में "दुष्षन्तेनाहितं वीर्यम्०" है, मैथिली-पाठ में "दुष्मन्तेनाहितं तेजो०" ऐसा है, तथा जब बंगाली-पाठ में देखते है तो वहाँ "दुःषन्तेनाहितं तेजो०" ऐसा तीसरा ही शब्द स्वरूप रखा गया है। इन सब को हम "लिपिकार के प्रमाद से पैदा हुए पाठभेद" नहीं कह सकते हैं। इन में तो रंगकर्मियों का कर्तृत्व ही देखना चाहिए।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 45 एवं 55]

(4) डॉ. रिचार्ड पिशेल के अभिमत से जो "बंगाली वाचना" का पाठ है, उसको भी हमने "रंगावृत्ति का पाठ" कहा है। इस बिन्दु का समर्थन करनेवाले प्रमाण चतुर्थांक में भी उपलब्ध हो रहे हैं। जैसे कि, (क) शकुन्तला को आशीर्वाद देने के अवसर पर, (काश्मीरी-पाठ के अनुसार) रंगमंच पर तीन तापसियाँ आती हैं, जिनमें से एक तापसी शकुन्तला को बहुमानसूचक महादेवी पद प्राप्त होने का कहती है। दूसरी तापसी उसको वीरपुत्रवती होने का आशीर्वचन देती है। (किन्तु मैथिली-पाठ के अंनुसार गौतमी शकुन्तला को भर्ता की ओर से बहुमान सूचक देवी-शब्द प्राप्त होने का आशीर्वाद देती है। तथा दो तापसियाँ मिल कर संयुक्त रूप से वीरपुत्र प्राप्त होने का आशीर्वाद देती है।) बंगाली रंगभूमि पर तीन तापसियाँ मिल कर वीरपुत्र प्राप्त होने का आशीर्वाद देती हैं। यानी एक ही दृश्य को अलग अलग प्रदेशों के रंगकर्मियों ने अपनी अपनी सोच, सुविधा के अनुसार पेश किया है। परन्तु मौलिकता की दृष्टि से सोचा जाय तो वह पूरा दृश्य रंगकर्मियों का प्रक्षेप ही है। क्योंकि तापसियों के द्वारा दिये जा रहे आशीर्वाद तो आगे चल कर कण्व मुनि के मुख से निकलने वाले श्लोक में व्यक्त होने ही वाले हैं। जैसे कि, ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तुर्बहुमता भव० इत्यादि। (ख) वनस्पतियों से प्राप्त हुए अलंकार लेकर आनेवाले ऋषिकुमारों की संख्या में भी एकरूपता नहीं है। काश्मीरी-पाठ के अनुसार, हाथों में उपायन लेकर आनेवाले ऋषिकुमार हारीत एवं गौतम ये दो हैं, मैथिली-पाठ के अनुसार भी वे दोनों मंच पर आते हैं। लेकिन बंगाली रंगमंच पर केवल एक ही ऋषिकुमार हारीत को भेजा गया है।। (ग) शकुन्तला को हस्तिनापुर भेजते समय कितने ऋषि-कुमार थे?। काश्मीरी पाठ के अनुसार शार्ङ्गरव, शारद्वत तथा तीसरा भी एक व्यक्ति था, जिसका नाम भागुरि है। मैथिली पाठ के अनुसार भी तीन पुरुष थे, ऐसा श्लोक 4-10 के नीचेवाले वाक्य से सूचित होता है। लेकिन उनमें हारीत या गौतम- इन दोनों में से वह कौन था? उसका नाम-निर्देश नहीं मिलता है। (एवमेव, मैथिली पाठ में, आगे चल कर हम यह भी देखते हैं कि इन तीनों से एक भागुरि भी नहीं गया था।) किन्तु बंगाल के रंगकर्मियों ने यहाँ दो ही शिष्य उपस्थित किये हैं। क्योंकि पञ्चम अंक में, दुःषन्त के राजभवन में जब शकुन्तला प्रत्याख्यान-प्रसंग अभिनीत होता है, तब तो दो हीं (शार्ङ्गरव एवं शारद्वत) शिष्यों की उक्तियाँ मिलनेवाली हैं।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 68, 78, 104 एवं 105]

(5) उपर्युक्त चर्चा से ऐसा लगता है कि, बंगाली रंगकर्मियों ने अनावश्यक पात्रों को रंगभूमि पर से हटाने की प्रवृत्ति की है। किन्तु इस सन्दर्भ में एक जगह पर क्षति भी हुई है, वह कथनीय है:- शकुन्तला के लिए अलंकार लेकर हारीत नाम का एक ही शिष्य रंगभूमि पर आता है। काश्मीरी एवं मैथिली पाठों में हारीत के साथ गौतम

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

भी है। बंगाली पाठ में "इदमलंकारजातमलंक्रियताम् आयुष्मती" ऐसा "आभरणहस्तो मुनिकुमारकः" कहा गया है। तथापि, आगे चल कर वही शिष्य बोलता है कि "तत्रभवता कण्वेन वयम् आज्ञापिताः शकुन्तलाहेतोर्वनस्पतिभ्यः कुसुमान्याहरते-ति" इसमें वयम् शब्द में जो बहुवचन का प्रयोग है, वह इस बात की गवाह बनता हैं कि मूल में (काश्मीरी और मैथिली पाठों की तरह) दो शिष्य हारीत और गौतम थे ही, लेकिन बंगाली रंगकर्मियों ने उनमें से एक की निवृत्ति बाद में कर दी है। यह इस बात का भी समर्थक बनता है कि बंगाली रंगावृत्ति का आविष्कार तीसरे क्रम में ही हुआ होगा।। [सन्दर्भः उक्ति-क्रमांक - 78, 83 एवं 88]

(6) बंगाल के रंगकर्मियों ने आहार्याभिनय (वेशभूषा एवं रंगसज्जा) में भी कुछ वैशिष्ट्य आकारित किया होगा उसका अंदाजा शकुन्तला का सुशोभन हो जाने के बाद, उसको जब क्षौमवस्त्र परिधान करवाने की क्षण आती है तब मिलता है। काश्मीरी-पाठ में जो "पवित्र क्षौमनिर्मोक" था, उसके स्थान में मैथिली-रंगमंच पर "पवित्र क्षौमयुगल" आता है। कालान्तर में बंगाली रंगभूमि पर उसीमें नवीनता लाते हुए "विचित्र क्षौमयुगल" को प्रस्तुत किया गया है।। एवमेव, इस क्षौम-वस्त्र का परिधान करने के लिए, काश्मीरी रंगमंच पर एक लतागृह था, जिसमें से निकल कर शकुन्तला बाहर जा कर वस्त्र को पहनती है। मैथिली पाठ के अनुसार शकुन्तला रंगमंच पर ही खड़ी होकर उस क्षौम-वस्त्र को पहन लेती है और पुनः वहीं बैठ जाती है। यहाँ लतागृह की रंगसज्जा नहीं है। बंगाली-पाठ में भी "शकुन्तला उत्थाय नाट्येन परिधत्ते" इतनी ही रंगसूचना प्राप्त होती है। यहाँ बंगाली रंगसज्जा का अनुमान या कल्पना करने का एक सन्दर्भ मिल रहा है:- जब शार्ङ्गरव सूर्य की ओर ध्यान दिलवा कर कण्व मुनि को निवृत्त होने की विज्ञप्ति करता है, तब वहाँ उपलब्ध हो रहे तीन पाठान्तर समीक्षणीय हैं। काश्मीरी-पाठ कहता है कि (ऊर्ध्वमवलोक्य) युगान्तरमारूढः सविता। तत् त्वरतां भवती।, मैथिली-पाठ में कहा गया है कि दूरमधिरूढः सविता। तत् त्वर्यताम् त्वर्यताम्। किन्तु बंगाली-पाठ में लिखा है कि (विलोक्य) भगवन्! अगान्तरमधिरूढः सविता। त्वरतां भवती। इन तीन पाठान्तरों में से बंगाली-पाठ का पाठान्तर ध्यानार्ह है। पहले दो में केवल आङ्गिक अभिनय से काम चल सकता है। लेकिन बंगाली पाठ के अनुसार हो सकता है कि रंगमंच पर, पश्चाद्भाग में सचित्र पट के माध्यम से पर्वतमाला साकार की गई होगी। तभी अगान्तरम् अधिरूढ सविता का दृश्य प्रस्तुत किया जा सकता है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 95 से 96, तथा 160]

(7) इस नाटक का जो परम्परागत पाठ मैथिली परम्परा में बृहदाकार का था, उसका बहुशः अनुसरण करते हुए भी बंगाल के रंगकर्मियों ने, इस अंक के कुछ अंश में कटौती करके संक्षेप भी किया है! (क) जब कण्व मुनि क्षीरवृक्ष की छाया में बैठ कर, जामाता के अनुरूप सन्देश क्या हो सकता है? यह चिन्तन करते हैं, तब तक अनुसूया शकुन्तला को उद्देश्य करके कहती है कि "आश्रम में कोई भी ऐसा नहीं है कि जो तेरे विरह में पर्युत्सुक न हुआ हो। देख, मुख में मृणालदण्ड लेकर खड़ा चक्रवाक पक्षी,जो तुम को जाती हुई देख रहा है, उसकी प्रिया बुला रही है, फिर भी उसको प्रतिसाद नहीं दे रहा है।।" इस भाववाही उक्ति के पीछे, बंगाली रंगावृत्ति में शकुन्तला के मुख में निकलनेवाली प्रतिभावोक्ति गायब है! यहाँ पाण्डुलिपि बनानेवाले किसी प्रतिलिपि-कर्ता के अनवधान से शकुन्तला की उक्ति निकल गई होगी- ऐसा सोचने की अपेक्षा से, रंगकर्मियों ने उसको संक्षेप करने के आशय से हटाया होगा ऐसा अनुमान करना संगत लगता है।। (ख) क्योंकि, काश्मीरी एवं मैथिली में मिल रही एक गाथा "अद्यापि विना प्रियेण गमयति रात्रिं विसूरणादीर्घाम्" को भी बंगाली पाठ में से संक्षेपीकरण के आशय से निकाली गयी है। (ग) उसी तरह से, अन्त में जब शकुन्तला पूछती है कि पिताजी, मैं फिर से कब इस तपोवन को देख पाऊँगी? तब उसके प्रतिभाव में कण्व ने दो श्लोक कहे हैं। जैसे कि, 1. भूत्वा चिराय सदिगन्तमहीसपत्नी0। अपि चेदमवधारय, 2. यदा शरीरस्य शरीरिणश्च पृथक्त्वमेकान्त एव भावि। आहार्ययोगेन विभज्यमानः परेण को नाम भवेद् विषादी।। ये दोनों ही श्लोक काश्मीरी एवं मैथिली पाठपरम्परा में सुरक्षित रहे हैं, किन्तु बंगाली पाठ में उस दूसरे अतीवावश्यक एवं प्रासंगिक श्लोक को स्वीकार नहीं किया गया है।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

बंगाली पाठ के टीकाकार चन्द्रशेखर चक्रवर्ती ने भी इस महत्त्वपूर्ण दूसरे श्लोक पर टीका नहीं लिखी है। अतः यहाँ पर भी बंगाली रंगकर्मियों ने संक्षेप किया होगा ऐसा अनुमान करने की आवश्यकता पड़ती है। क्योंकि प्रथम श्लोक से कण्व ने शकुन्तला को कहा है कि ससुराल में तुझे अपार सुख मिलनेवाला है, जो तुझे पिता के विरह का दुःख महसूस नहीं होने देगा। किन्तु यह बात सर्वाङ्गीण रूप से सही नहीं है। ससुराल में कितना भी सुख मिले, परन्तु सभी कन्याओं को सुख के सागर में भी अपने पिता की चिन्ता तो सताती ही रहती है- यह सार्वभौम अनुभव है। इसी लिए मायके में स्थित पिता की चिन्ता से विरत होने की सलाह भी दूसरे श्लोक से प्रस्तुत की गई है। यहाँ द्वि-पार्श्वी कथनीय बिन्दुओं के सन्दर्भ में "अपि च" जैसे समुच्चयार्थक निपात का विनियोग चरितार्थ होने से दूसरे श्लोक की मौलिकता के विषय में शङ्का भी नहीं रहती है। लेकिन बंगाली रंगावृत्ति के पाठ में वह श्लोक नहीं है, इसलिए यह संक्षेपीकरण का परिणाम है ऐसा मानना होगा।। [सन्दर्भः उक्ति-क्रमांक - 116 एवं 117 तथा 162]

॥ पञ्चमोऽङ्कः॥

बंगाली रंगावृत्ति के पञ्चमाङ्क के पाठ में भी यद्यपि बहुशः मैथिली रंगावृत्ति के पाठ का ही अनुसरण दिख रहा है, तथापि कुत्रचित् काश्मीरी पाठ का अनुसरण भी दृष्टिगोचर होता है। (यद्यपि यहाँ एक भी ऐसा उदाहरण नहीं मिलता है कि जो हमें ऐसा सूचित करे कि बंगाली रंगावृत्ति के प्रणेताओं के सामने भी मूल कविप्रणीत पाठ की कोई प्रतिलिपि रही होगी। क्योंकि जहाँ काश्मीरी और मैथिली पाठपरम्परा के दोनों ही पाठान्तर अग्राह्य हों, और बंगाली पाठ में संचरित हुआ कोई तीसरा ही पाठान्तर ग्राह्य दिखता हो ऐसा स्थान अभी तक हमारे सामने नहीं आया है।) फिर भी बंगाली रंगावृत्ति में ऐसे कुछ स्थान जरूर हैं, जिनका वैशिष्ट्य तुलनात्मक दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। इस अंक के मंचन के दौरान बंगाली रंगकर्मियों की कहाँ क्या विशेषता दिखाई दे रही है? वह जानने के लिए निम्नोक्त बिन्दु अवलोकनीय हैं :-

(1) इस अंक का आरम्भिक दृश्य मैथिली पाठपरम्परा का अनुसरण करते हुए प्रस्तुत होता है। मतलब कि बंगाली पाठ में भी कंचुकी का प्रवेश होने के बाद, दूसरे क्रम में वैतालिकों का गान प्रस्तुत होता है और तीसरे क्रम में नेपथ्य से हंसवती का गीत सुनाई पडता है। जैसा कि पहले कहा है, 1. इसमें भी वैतालिकों के गान द्वारा राजा का राज्यधुरा सँभालने का परिश्रम दूर करने का प्रयोजन ही सिद्ध किया जाता है। एवञ्च, 2. मैथिली-पाठ का अनुगमन करते हुए बंगाली-पाठ में भी वैतालिकों के श्लोक-गान से नवीभूत राजा का मजाक उड़ाने का कार्य विदूषक के द्वारा किया जाता है। तथा 3. शकुन्तला-प्रत्याख्यान प्रसंग की पूर्वभूमिका बनाने के लिए हंसवती के गीत का विनियोग किया गया है। मधुर स्वरयुक्त शब्दों को सुन कर राजा के शाप-ग्रस्त मन में जननान्तर का अज्ञात सौहृद याद आ रहा है, और जिससे राजा उद्विग्न है - ऐसी मनोदशा में शकुन्तला का वह प्रत्याख्यान कर बैठता है। ऐसी विचारणा से प्रेरित हो कर रंगकर्मियों ने यहाँ दृश्य-क्रम में परिवर्तन किया है। संक्षेपतः, काश्मीरी-पाठ में परिवर्तन करके मैथिली-पाठ में जैसे दृश्य-क्रम आगे-पीछे किया गया है, उसी का ही बंगाली रंगकर्मियों ने भी सर्वथा अनुसरण किया है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 16, 17, 20 एवं 26]

(2) हंसवती का गीत सुन कर राजा "सम्यगुपालब्धोऽस्मि" ऐसा सन्देश देने के लिए विदूषक को उसी के पास भेजते हैं। इस सन्दर्भ में, विदूषक की एक उक्ति है तद् अवीतरागस्येव श्रमणस्य नास्तीदानीं मे मोक्षः। इसमें बंगाल के स्थानीय रंगकर्मियों ने श्रमण साधुओं पर जो व्यंग किया है वह ध्यानास्पद है। काश्मीर के पाठ में श्रमण साधुओं का प्रकट निर्देश नहीं था, तथा मैथिली पाठ में भी श्रमणों के प्रति उपहास नहीं दिखाया है। क्योंकि मैथिली पाठ के शब्दों में "अविगतरागस्य सुअण (अर्थात् सुजन)" का निर्देश है, श्रमण- शब्द का नहीं।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 31]

(3) रंगमंच पर राजा और विदूषक का प्रवेश जब होता है तब (मैथिली-पाठ का अनुसरण करते हुए) कहा जाता है कि राजा अपने वैभव के अनुरूप परिवार के साथ आता है। ऐसी रंगसूचना के कारण स्थानीय नटमण्डली अपनी अपनी रंगकर्मिता का प्रदर्शन रंगसज्जा एवं प्रविष्ट पात्रों की वेशभूषा के विषय में दिखायेगी। लेकिन इस

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

विशाल परिजन-वर्ग के साथ प्रविष्ट राजा के सामने जब सस्त्री तपस्वी जन उपस्थित होते हैं, तब काश्मीरी-पाठ में जैसे राजा के चरित्र को लेकर परिजन-वर्ग के लोगों की सोच वाचिक रूप धारण करती है वैसी बातचीत न मैथिली-पाठ में मिलती है, न बंगाली-पाठ में मिलती है। इस तरह के दृश्य में परिवार जनों की निष्क्रियता खटकती है, क्योंकि वे साद्यन्त मौन ही रहते हैं। राजा के साथ केवल वेत्रवती नामक प्रतीहारी ही बातचीत करती रहती है। इस स्थान में काश्मीरी पाठ अधिक उचित प्रतीत होता है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 46, 58, 60 एवं 61]

(4) यहाँ दो वैतालिकों का श्लोक-गान बारी बारी प्रस्तुत होता है। मतलब कि बंगाली रंगावृत्ति में भी मैथिली-पाठ की तरह दो अलग अलग व्यक्तियों के स्वरों में श्लोक-गान होता है। काश्मीरी-पाठ में तीन या उससे भी अधिक संख्या में एकत्र हुए वैतालिकों का संयुक्त रूप से श्लोक-गान सुनाई पड़ता है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 14 एवं 15]

(5) काश्मीरी-पाठ के अनुसार कण्वाश्रम से शार्ङ्गरव, शारद्वत और भागुरि नाम के तीन तपस्वी पुरुष, माता गौतमी और शकुन्तला हस्तिनापुर के राजदरबार में आये थे। लेकिन बंगाली रंगकर्मियों ने यहाँ मैथिली-पाठ की तरह भागुरि नामक पात्र को हटा दिया है।। (बंगाली रंगावृत्ति के पाठ में यह सर्वत्र देखा जाता है कि वे कम से कम पात्रों के द्वारा ही अमुक दृश्य का मंचन कैसे किया जाय? इस बात पर अवश्य ध्यान देते हैं। उदाहरणतया, प्रथमांक में एक ही शिष्य के साथ वैखानस रंगभूमि पर आता है। चतुर्थाङ्क में रंग पर अनेक तापसियाँ आती हैं, किन्तु वे सब मिल कर एक साथ में शकुन्तला को शुभकामना दे कर तुरंत निवृत्त हो जाती हैं। शकुन्तला के लिए अलंकार लेकर एक ही ऋषिकुमार (हारीत) मंच पर आता है। वैसे शकुन्तला को पतिगृह पहुँचाने के लिए शार्ङ्गरव और शारद्वत नामक दो ही शिष्य जाते हैं, (मैथिली एवं बंगाली पाठ में भागुरि नहीं है)। इस पञ्चमांक में श्लोकगान करनेवाले वैतालिक भी दो ही हैं।।) [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 125 एवं 126]

(6) राजा के मुख में शकुन्तला की भ्रूकुटि का वर्णन करनेवाले दो (24-25) श्लोक हैं, जिनमें पुनरुक्ति है और अप्रासंगिकता भी है। इससे लगता है कि ये दोनों ही श्लोक प्रक्षिप्त हो सकते हैं। यहाँ नाट्यतत्त्व को हानि पहुँचाते हुए रंगकर्मियों ने काव्य-तत्त्व को स्थान दिया है। यद्यपि यह प्रक्षेप करनेवाले मैथिली रंगकर्मी लोग थे, लेकिन बंगाली रंगकर्मियों ने बिना कुछ सोचे उसका अनुचित अनुसरण किया है। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 118, 119 एवं 120]

(7) शकुन्तला को जब परभृतिका कहा जाता है, तब उसका क्रोधाग्नि तेज हो उठता है। वह दुःषन्त को अनार्य शब्दसे सम्बोधित करती है। यहाँ पर कुछ स्थानीय रंगकर्मियों ने प्रक्षेप करने का मौका देख लिया है। यहाँ शकुन्तला के मुख में एक प्राकृत गाथा रखी गई है। जैसे कि, यूयमेव प्रमाणं जानीथ इत्यादि। डॉ. रिचार्ड पिशेल ने इस गाथा को ग्राह्य नहीं माना है। किन्तु यह गाथा तो काश्मीरी और मैथिली पाठों में भी संचरित हुई है। तथा परम्परागत बंगाली पाठ पर सन्दर्भदीपिका टीका लिखनेवाले चन्द्रशेखर चक्रवर्ती ने भी उस गाथा पर टीका लिखी है। मतलब कि बंगाल की रंगभूमि पर भी वह स्वीकार्य बन पायी थी। इसमें नारीवादी विचारधारा प्रतिबिम्बित होती है, जिसमें शकुन्तला अपना मुग्धत्व त्याग कर प्रौढत्व दिखाती है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 47 से 54]

(8) इस प्रत्याख्यान प्रसंग की प्रस्तुति में मैथिली रंगकर्मियों के द्वारा किये गये विकृत परिवर्तनों को बंगाली रंगकर्मियों ने स्वीकार नहीं किया है। (1) दुष्यन्त ने शकुन्तला की क्रोधाविष्ट मुखाकृति का वर्णन स्वगतोक्ति से किया। तत्पश्चात् प्रकाशोक्ति से वह कहता है: "भद्रे! प्रथितं दुःषन्तचरितं प्रजासु। नापीदं दृश्यते।" यहाँ दुष्यन्त केवल अपने लिए प्रयुक्त किये गये "तृणच्छन्नकूप" आदि आक्षेपों से बचने की कोशिश करता हुआ बोलता है। लेकिन, मैथिली रंगकर्मियों ने यहाँ पाठभेद करके "भद्रे, प्रथितं दुष्मन्तचरितं प्रजासु। तवापीदं दृश्यते" जैसे वाक्य से शकुन्तला को अपमानित करते हुए ताना भी मारा है। इस तरह की विकृति को बंगाली रंगकर्मियों ने नहीं

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अपनाया है।। (2) आगे चल कर, शकुन्तला हताशा की स्थिति में बोलती है कि, "सुष्ठु इदानीमात्मच्छन्दानुचारिणी संवृत्तास्मि, यत् अस्य पुरुवंशस्य प्रत्ययेन मुखमधुनो हृदयप्रस्तरस्य हस्ताभ्याशमुपगता।" यहाँ, मैथिली रंगकर्मियों ने इस वाक्य को विभक्त करके, उसका पूर्वार्ध शकुन्तला के मुख में रखा है और वाक्य का उत्तरार्ध गौतमी के मुख में ड़ाला है। लेकिन बंगाली रंगकर्मियों ने उस तरह का विभाजन नहीं किया है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 123]

॥ षष्ठोऽङ्कः॥

अब षष्ठांक का पाठ बंगाल की रंगभूमि पर कैसे कैसे परिवर्तन करके प्रस्तुत किया गया है? यह विवेचनीय है। इस अंक की इयत्ता बहुत लम्बी है- ऐसा कहा जाता है। इसके दो कारण हैं। 1. इसमें बहुविध दृश्यावली रखी गई है, एवं 2. इसमें दो स्थान पर कविंमन्यमान बुद्धिवालों ने (अनावश्यक वर्णनात्मक) श्लोकों का प्रक्षेप किया है। निम्नोक्त चर्चा में यह बिन्दु भी ध्यातव्य है कि बंगाली रंगावृत्ति के पाठ का अवतार तृतीय क्रमांक पर हुआ है, इसके समर्थक अनेक स्थान इस षष्ठांक में देखे जा सकते हैं।।

(1) कालिदास ने इस अंक के प्रवेशक में धीवर-प्रसंग रखा है। रंगकर्मी लोग समसामयिक जनमानस को ध्यान में लेकर परम्परागत पाठ में कुत्रचित् शाब्दिक परिवर्तन भी कर लेते हैं। जिसका उदाहरण इस प्रवेशक में है। धीवर अपनी आजीविका वृत्ति की निर्दोषता सिद्ध करने के लिए कहता है:-शहये किल ये विणिन्दिदे......। (6-1) अर्थात् "पशुमारणं करोति दारुणम् अनुकम्पा मृदुलोऽपि सौनिकः" इति। यहाँ काश्मीरी पाठ में "श्रोत्रिय" शब्द था, उसको बदल कर, बंगाली रंगभूमि पर "सौनिक" (कसाई) को रखा गया है। क्योंकि बंगाली समाज में श्रोत्रिय ब्राह्मणों के प्रति भारी सम्मान दिखाया जाता था। अतः नाट्य-प्रयोग के दौरान ऐसा पाठान्तर करके ही प्रस्तुति करना आवश्यक रहा होगा। डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल ने भले ही बंगाली पाठ को मौलिक मानने की राय दी हो, किन्तु वह उचित नहीं है। क्योंकि प्रकृत सन्दर्भ में ही देखा जाय तो सौनिक शब्द के विशेषण के रूप में "अनुकम्पामृदुलः" शब्द कथमपि सुसंगत नहीं है। यह विशेषण तो श्रोत्रिय के साथ ही सुसंगत प्रतीत होता है।। नाट्य-प्रयोग के दौरान समसामयिक जनमानस को ध्यान में लिया जाता है और आवश्यक पाठ-परिवर्तन होते रहते हैं उसका समर्थन इसी सन्दर्भ में जब मैथिली पाठ को देखते हैं, तब भी मिल जाता है। वहाँ पर "पशुमारणं करोति कारणात् षट्कर्मा विद्वान् अपि श्रोत्रियः" ऐसा पाठान्तर किया गया है। मिथिला के पाठशोधकों ने श्रोत्रिय शब्द के विशेषण के रूप में अनुकम्पामृदु शब्द ठीक नहीं है, ऐसा सोच कर उसके लिए षट्कर्मा विद्वान्- शब्द को रखा है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 12]

(2) इसी धीवर-प्रसंग में जो अन्य पाठान्तर हैं वे भी विवेचनीय हैं। जैसे कि, राजा ने धीवर को पारितोषिक भी भेजा था। वह उसमें से कुछ हिस्सा निकाल कर इन नगर-रक्षकों को देता है। तब यह हिस्सा किस के लिए दे रहा है वह कहने के लिए काश्मीरी पाठ में "सुमनोमूल्यं भवतु" ऐसे शब्द हैं, मैथिली पाठ में "अर्धमिदानीं मूल्यकं भवतु" ऐसे शब्द हैं, किन्तु बंगाली पाठ में "सुरा-मूल्यं भवतु" ऐसे शब्द हैं। यहाँ शब्दगत भेद होना महत्त्वयुक्त नहीं है, क्योंकि इससे अभिनयन में कोई भेद होनेवाला नहीं है। किन्तु इस प्रसंग में मैथिली और बंगाली पाठों में जो रंगसूचना मिलती है कि "इति पुरुषाय/धीवराय कटकं प्रयच्छति", तब प्रश्न होता है कि धीवर (स्वर्ण) कटक में से कैसे आधा या आंशिक हिस्सा निकाल कर स्याल अथवा नगर-रक्षकों को दे सकेगा?। इस सन्दर्भ में काश्मीरी पाठ में पारितोषिक किस स्वरूप में दिया जाता है- उसका स्पष्टीकरण नहीं है। मतलब कि यह बटवारा करने की क्रिया कैसे प्रस्तुत की जाय, वह प्रत्येक सूत्रधार की सोच-समझ पर छोड़ा जाता है। एवमेव, धीवर ने जब इतना औदार्य दिखाया तब मित्रता का हाथ पसारते हुए नगर-रक्षक और स्याल कहते हैं कि चलो, साथ में मिल कर सुरा-पान करते हैं। इस प्रस्ताव के सन्दर्भ में भी जो पाठान्तर मिलते हैं वे दर्शनीय हैं:- काश्मीरी पाठ में "कादम्बरी-साक्षिकं च अस्माकं प्रथम-सौहृदमिष्यते" ऐसे शब्द हैं।, मैथिली पाठ में

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

"कादम्बरीस्वस्तिकं प्रथमसौहृदमस्माकम् इष्यते" ऐसे शब्द हैं।, बंगाली पाठ में "कादम्बरीसग्धिके खलु प्रथममस्माकं सौहित्यम् इष्यते" ऐसे शब्द हैं। इन शाब्दिक भेदों के कारण अभिनयन में कोई भेद होनेवाला नहीं हैं। किन्तु शुण्डिका-शाला / शौण्डिकागार में जाने का प्रस्ताव रखने की बात आती है, तो काश्मीरी पाठ में वह प्रस्ताव नागरिक = स्याल रखता है, मैथिली पाठ के अनुसार वह प्रस्ताव जानुक और सूचक दोनों मिल कर करते हैं, तथा बंगाली पाठ में केवल जानुक अकेला ही वह प्रस्ताव रखता है। ऐसे वैविध्य से इस प्रसंग के अभिनयन में प्रकटतया भेद होगा ऐसा परिलक्षित होता है। जिससे इन सभी पाठों का रंगावृत्तित्व घोषित किया जाता है। इन तीन तरह के पाठान्तरों में से कौन सा पाठ कवि कालिदास ने अपने हाथ से लिखा होगा? यह निश्चित / निर्विवाद रूप से कहना असम्भव है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -34 एवं 45]

(3) प्रवेशक के बाद दो उद्यानपालिकाएँ एवं कञ्चुकी का दृश्य शुरू होता है। उसमें परभृतिका एवं मधुकरिका नामक दो उद्यानपालिकाएं रंगमंच पर आती हैं, और कामदेवार्चन का उपक्रम करती है। यहाँ पर, यानी बंगाली पाठ में, मधुकरिका नाम की उद्यानपालिका के लिए मधुरिका ऐसा नाम प्रयुक्त हुआ है, जो भी एक पाठभेद ही है। किन्तु काश्मीरी एवं मैथिली पाठों में वह मधुकरिका के नाम से ही अभिहित है। हो सकता है कि किसी अज्ञात लिपिकार के प्रमाद से, या किसी नटी के उच्चारणगत दोष के कारण मधुकरिका से मधुरिका बन गया होगा। यद्यपि ड़ॉ. रिचार्ड पिशेल एवं डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल जैसे दिग्गज विद्वानों ने अपनी अपनी समीक्षितावृत्तियों में (ई. स. 1898 एवं 1980 में) भी इस उद्यानपालिका का नाम मधुरिका ही मान्य रखा है। तथापि इस पाठभेद के द्वारा ही रंगभूमि पर जो मंचन विषयक विप्रतिपत्ति खड़ी होती है- वह ध्यातव्य है। यहाँ इन दोनों उद्यानपालिकाओं के नामार्थ से तो ऐसा सूचित होता है कि परभृतिका यानी कोकिला एवं मधुकरिका यानी मधुकरी = मधुमक्षिका को लक्षित करके कवि ने उन दोनों को उद्यानपालिकाएँ कही है। (ये दोनों कोई सामान्य तरह की दो चेटियाँ नहीं है।) कवि-संकल्पित योजना का यदि विचार किया जायेगा तो उन्होंने इस नाटक में (क) दुष्यन्त, सूत, सेनापति, विदूषक, रानियाँ, कञ्चुकी, धीवर आदि मनुष्य पात्र, (ख) कण्व मुनि, दुर्वासा मुनि, मारीच ऋषि, शार्ङ्गरव-शारद्वत, आश्रम-माता गौतमी आदि ऋषि-मुनियों का गण, (ग) मेनका, अक्षमाला-मिश्रकेशी-सानुमती, इन्द्र-सारथि मातलि जैसे दैवी पात्र एवं शकुन्तला जैसी अर्ध-दैवी आश्रमकन्या, (घ) भ्रमर, हरिणी, दीर्घापाङ्ग नामक मृगबाल, सिंहशावक, चक्रवाक, परभृतिका, गजादि जैसे पशु-पक्षी को, तथा (ङ) केसरवृक्ष, सहकारवृक्ष, नवमालिका लतादिवनस्पतियों को भी नाट्यसृष्टि के सक्रिय एवं अनिवार्य पात्र बनाये है। लेकिन इन सब के उपरान्त परभृतिका (कोकिला) एवं मधुकरिका (मधुमक्षिका) जैसे पक्षी-विशेष एवं जन्तु-विशेष को स्त्रीवेशभूषा के साथ मनुष्याकृति में प्रस्तुत करने का भी नाट्यकार कालिदास ने सोचा है। जैसे भास ने दूतवाक्यम् में भगवान् नारायण की कौमोदकी गदा, नन्दक असि, गरुड, पांचजन्य शङ्ख, सुदर्शन चक्रादि आयुधों को मनुष्याकार में, विविध वेशभूषा में, रंगमंच पर प्रस्तुत करने की मंचनविधा सोची है। उसी तरह की कवि-संकल्पित मंचनविधा की सर्वथा हत्या हो जाती है, जब बंगाली रंगभूमि पर मधुकरिका को मधुरिका बना कर पेश की जाती है। अब मनुष्याकृति में मधुमक्षिका का मंचन नहीं होगा, अब तो मधुरिका नामक चेटी (दासी) का पात्र ही रंगमंच पर आयेगा।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक-53, 54 एवं 56]

(4) बंगाली पाठ का रंगावृत्तित्व प्रकट करनेवाला तीसरा स्थान है काकुपरिवर्तन का स्थान। जिन उक्तियों का काश्मीर एवं मिथिला प्रदेश के रंगकर्मियों ने जिस तरह से उच्चारण करवाया है, उनमें काकु-परिवर्तन करके बंगाली रंगकर्मियों ने नयी प्रस्तुति उद्घाटित की है। उदाहरणतया, (क) राजा को शकुन्तला के साथ हुए प्रेम-प्रसंग की पूर्ण स्मृति हो जाती है तब वे विदूषक से पूछते हैं कि तुमने उसे क्यूं एक बार भी याद नहीं किया। विदूषक ने बताया कि वैसे तो मैं कुछ नहीं भूलता हूँ, लेकिन आप ही ने तो कहा था कि यह सब परिहास-विजल्पित है। इस लिए मृत्पिण्ड बुद्धि वाले मैंने उसे सच मान लिया! तब राजा को महसूस होता है कि वे अपनी ही बनाई साजिश का भोग स्वयं ही बन गये हैं। दुष्यन्त दुःखाक्रान्त होकर बोलते हैं कि, सखे परित्रायस्व माम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

इसको सुन कर विदूषक के मुख से जो वाक्य निकले हैं उनके पाठभेदों का अभ्यास करणीय है:-काश्मीरी पाठ में "किमेतत्? ईदृशमुपनतम्!" इति। (यह क्या हुआ? क्या ऐसी स्थिति आ गई!) इन शब्दों में आघातमिश्रित आश्चर्य का भाव है। मैथिल-पाठ में "भो: किमेतत्?। अनुपपन्नं तव।" (अरे, यह क्या? आपके लिए यह ठीक नहीं है।) इन शब्दों में मित्रसम्मित उपदेश का भाव है। तथा बंगाली पाठ के अनुसार "भो वयस्य, एतत् किं उपपन्नम् तव।" (अरे वयस्य, यह क्या तुम्हारे लिए योग्य है?) इन शब्दों में मित्र के द्वारा राजा को स्वरूपबोध का प्रयास, राजा की अस्मिता को पुनः जगाने की कोशिश दिखाई देती है। (ख) षष्ठांक के अन्त भाग में, मातलि के द्वारा अदृश्य रूप से पकडे गये विदूषक को छुड़ाने के लिए राजा ने धनुष-बाण उठाये हैं। तब उनके मुख से निकले हुए वाक्य हैं, उसमें भी पाठान्तर उपलब्ध होते हैं, जो काकु-परिवर्तन से मंचन-वैविध्य पैदा करनेवाले हैं :- काश्मीर-पाठ में "मदीयमस्त्रं त्वां पश्यति"। (मेरा अस्त्र तुझे देखेगा) ऐसा सीधा सरल वाक्य है।, किन्तु इसी वाक्य को मैथिल पाठ में साश्चर्य प्रश्न बनाया गया है। जैसे कि, "मदीयमस्त्रं त्वां न द्रक्ष्यति?"। (क्या मेरा अस्त्र तुम्हें, नहीं देख सकेगा!?)।, बंगीय पाठ में इसी वाक्य को "किम्" एवं "अपि" शब्दका संनिवेश करके रखा गया है।किं मदीयम् अस्त्रमपि त्वां न पश्यति। (क्या मेरा अस्त्र भी तुम्हें नहीं देख पायेगा-ऐसा समझता है?) यहाँ काकु-परिवर्तन से अस्त्र की शक्ति पर जोर दिया गया है।। इस तरह के पाठान्तर, जिनमें काकु-परिवर्तन दिखाई रहा है, वे सभी निर्विवाद रूप से मंचन के लिए ही होते हैं। जिससे इन तीनों पाठों का स्वरूप रंगावृत्ति का ही है- ऐसा प्रतीत होता है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 113 एवं 277]

(5) षष्ठांक में दो स्थानों पर कतिपय श्लोकों का प्रक्षेप हुआ है ऐसा सयुक्तिक सिद्ध होता है। जैसे कि, शकुन्तला की प्रतिकृति जिसमें बनाई है, उस चित्रफलक के निमित्त से प्रक्षिप्त श्लोक। तथा विदूषक को मातलि के ग्रहण से छुड़वाने के प्रसंग में प्रस्तुत हुए श्लोक। ऐसे प्रक्षिप्त श्लोकों की संख्या आठ है। (क) प्राचीनतम काश्मीरी रंगावृत्ति का संघटन होने से पहले ही, बहुत पुरातन काल में, जिन श्लोकों का प्रक्षेप हुआ है और जिनका बंगाली पाठ में भी अनुरणन हो रहा है, वे चार श्लोक इस तरह के हैं :- 1. चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका० (6-4), 2. उपहित-स्मृति-रङ्गुलि-मुद्रया० (6-9), 3. प्रागेव जरसा कम्पः सविशेषेण० (6-29), 4. तस्याग्रभागाद् गृहनीलकण्ठैः० (6-30), 5. अहन्यहन्यात्मन एव तावज्ज्ञातु० (6-31)।। (ख) ऐसे भी तीन श्लोक हैं कि जिनका प्रक्षेप मैथिली रंगकर्मियों ने किया है, और बंगाल के रंगकर्मियों ने उनको यथावत् अपना लिया है। वे है:-1. दीर्घापाङ्गविसारि-नेत्रयुगलं० (6-15), 2. अस्यास्तुङ्गमिव स्तनद्वयम्० (6-16), 3. यद्यत्साधु न चित्रेस्मिन् क्रियते० (6-16-ब)।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 65, 97, 238, 256, 263, 151, 152 एवं 155]

(6) मैथिली रंगकर्मियों ने मिश्रकेशी की उक्तियों में नवीन उक्तियों का प्रक्षेप किया है। बंगाली रंगकर्मियों ने उनका तो स्वीकार कर ही लिया, लेकिन साथ साथ कुत्रचित् नया परिवर्धन भी किया है। जैसे कि, दुष्यन्त विदूषक को बताते हैं कि शकुन्तला राजमहल में आयी तब तुम वहाँ पर उपस्थित नहीं थे। इस लिए शकुन्तला का अनजान में प्रत्याख्यान कर दिया। यहाँ पर मिश्रकेशी के मुख में एक नवीन उक्ति प्रक्षिप्त की गई है:-अत एव महीपतिभिः क्षणमपि सहृदयाः सहायाः न विरहितव्याः। यह उक्ति काश्मीरी या मैथिली पाठ में नहीं है।। यद्यपि मिश्रकेशी अप्सरा तिरस्करिणी विद्या से दुष्यन्त और विदूषक के लिए अदृश्यमान है, तथापि नाट्य-क्रिया में उसकी सक्रिय भागीदारी दिखाने के लिए बंगाली रंगकर्मियों ने ऐसे नवीन वाक्यों का प्रक्षेप यथाप्रसंग किया होगा।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 109]

(7) बंगाली पाठ के लिए डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल ने अहोभाव दिखाया है, और उसी को प्राचीनतम एवं मौलिक मानने की गुजारिश की है[1], उसके प्रतिपक्ष में हमारा अभिप्राय ऐसा है कि यह बंगाली पाठ एक रंगावृत्ति का

1. द्रष्टव्य है:- If evidences testify to the existence of the alleged enlarged version before the 10th century, it would be proper for us in the 20th century to accept the same as more authentic than any interpretative reconstruction- D. K. Kanjilal, introduction, page : 132-

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

ही पाठ है, और वह भी तृतीय क्रमांक पर आकारित हुआ है। इसके समर्थन में एक प्रमाण द्रष्टव्य है:-राजा की दासी का नाम लिपिकरी मेधाविनी है और रानी की दासी का नाम पिङ्गलिका है। ये दोनों नाम काश्मीरी एवं मैथिली पाठों में बिना किसी परिवर्तन के प्रयुक्त हैं। किन्तु बंगाली पाठ में मेधाविनी का नाम बदल करके उसे "चतुरिका" कहा गया है। (कालान्तर में दाक्षिणात्य वाचना के पाठशोधकों ने रानी की दासी पिङ्गलिका का नाम बदल कर, उसे तरलिका बनाया है।) किन्तु रिचार्ड पिशेल एवं डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल ने अपने अपने बंगाली वाचना के समीक्षित पाठों में भी नये चतुरिका नाम के साथ साथ पुराना मेधाविनी नाम भी उपयोग में लिया है! (जैसे कि, चतुरिके, अर्धलिखितमेतद् विनोदस्थानम् अस्माभिः। तद् गच्छ, वर्तिका-स्तावद् आनय। पृ. 83, उसके बाद, चतुरिका बताती है कि मैं वर्तिकाकरण्डक लेकर जब यहाँ आ रही थी, तो पिङ्गलिका-सहित की रानी वसुमती ने मेरे हाथ में से वह करण्डक छीन लिया। लेकिन जब तक रानी का पल्लू, जो विटप में संलग्न हो गया था उसे छुड़वा रही थी तब तक मैं भाग आयी हूँ। इतने में नेपथ्य से आवाज आती है कि भट्टिनी (-रानी-) आ रही है। इसको सुनते ही विदूषक के मुख से उक्ति निकलती है:-भोः, अभिधावन्ती एषा अन्तःपुरव्याघ्री मेधाविनीं मृगीमिव कवलयितुम् उपस्थिता। पृ. 86. अन्तःपुर की व्याघ्री (रानी वसुमती) मृगी समान मेधाविनी को खा जाने के लिए दौड़ कर आ रही है। इस वाक्य में मेधाविनीम् नहीं, लेकिन चतुरिकाम् ऐसा नया नाम होना चाहिए। अतः प्रश्न होगा ही कि मेधाविनीम् ऐसा पुराना नाम कहाँ से आ गया?। यह विसंगति हमारे लिए तो बहुत सूचक है। जैसे कि, एक ही पाठ में जब एक ही व्यक्ति का नया नाम एवं पुराना नाम मिल जाता है, तब सिद्ध हो जाता है कि काश्मीरी एवं मैथिली पाठ बंगाली पाठ के पुरोवर्ती है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 164, 198 से 204]

(8) उपर्युक्त प्रमाण से जब सिद्ध होता है कि बंगाली पाठ का संग्रथन तृतीय क्रमांक पर हुआ है, तब यह भी फलित होता है कि बंगाली पाठशोधकों ने अपना पाठ बनाते समय अपने सम्मुख काश्मीरी पाठ और मैथिली पाठ दोनों ही रखे होंगे, एवं उनमें उपलब्ध पाठान्तरों में से यथेच्छ आहरण भी किया होगा। (इस अनुमान के समर्थन के लिए हमने जो षष्ठांक का पाठ अनुगामी पृष्ठों में दिया है, उसकी पादटिप्पणी को देखने का हम अनुरोध करते हैं।) बंगाली पाठ में कौन सा पाठान्तर कहाँ से लिया गया है? यह देखते समय दो बिन्दु ध्यानास्पद बनते हैं :- (क) मैथिली पाठवालों ने जिन श्लोकों का एवं मिश्रकेशी की उक्तियाँ का प्रक्षेप किया है, उनका अनुसरण निरन्तर रूप से बंगाली पाठ में किया गया है। (ख) लेकिन मैथिली पाठ में जहाँ तर्क-विरुद्ध या विसंगत पाठ आया है, वहाँ बंगाली पाठ बनानेवालों ने काश्मीर पाठ का अनुगमन करना पसंद किया है। उदाहरणतया, 1. राजा कहते है:- वेत्रवति, मद् वचनाद् अमात्यपिशुनं ब्रूहि- चिराद् अप्रबोधान्न संभावितमस्माभी राजधर्मा-नुशासनम् अनुष्ठातुम्। (वेत्रवति, मेरे वचनों से अमात्य पिशुन को कहना कि आज हम बहुत देर तक सोते रहे थे, इस लिए (प्रातः काल में जल्दी से उठ नहीं पाये थे)। अतः हम राजधर्मानुष्ठान नहीं कर पाये हैं इत्यादि।) यह मैथिली पाठ है। लेकिन इसका अर्थ तो बहुत भद्दा है। क्योंकि उसमें तो ऐसा कहा गया है कि राजा आलसी है, या शकुन्तला का विरह होते हुए भी वह सो सकता हैं। अब बंगाली पाठशोधकों को यह मैथिल पाठ अनुसरणीय नहीं लगा होगा। उनके सामने जो दूसरा विकल्प रहा होगा वह था काश्मीरी पाठ। उस पाठ में लिखा है कि, वसुमति, मद् वचनाद् अमात्य-पिशूनं ब्रूहि। चिरप्रबोधान्न सम्भावितम् अस्माभिरद्य धर्मासनम् अध्यासितुम्। (वसुमती = प्रतीहारी, तुम अमात्य पिशुन के पास जाकर मेरे वचनों से कहो कि आज -रात्रि काल में- हम लम्बे समय तक जगते रहे हैं, यानी सो नहीं पाये हैं, इस लिए धर्मासन पर हम बैठ नहीं पा रहे थे। इत्यादि।)ऐसा पाठ दुष्यन्त जैसे विरही के लिए उचित लगता है। अतः बंगाली पाठशोधकों ने उस काश्मीरी पाठ को यहाँ स्वीकार लिया है।। 2. राजा प्रतीहारी को पूछते हैं कि रास्ते में आते हुए तुमने रानी वसुमती को देखा या नहीं? तब प्रतीहारी ने कहा कि मेरे हाथ में अमात्य का पत्र देख कर रानी वापस लौट गई। यहाँ काश्मीरी पाठ के

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अनुसार, राजा की उक्ति है- कालज्ञा देवी, कार्योपरोधं मे परिहरति। उससे विपरीत मैथिली पाठ में लिखा है कि, समयज्ञा देवी, कार्योपरोधं मे परिहरति। अब बंगाली पाठशोधकों के सामने पूर्वनिर्दिष्ट दो पाठान्तर उपलब्ध रहे होंगे। उनमें से जो मैथिली पाठ है उसमें "समयज्ञा" शब्द का शास्त्रीय अर्थ "सिद्धान्त को जाननेवाली" ऐसा भी हो सकता है। जो अर्थ अभीष्ट नहीं है। (यहाँ समय शब्द का रूढार्थ "काल" नहीं होता है।) इस लिए बंगाली पाठ में "कालज्ञा देवी, कार्योपरोधं मे परिहरति।" को स्वीकार किया है, इसमें काश्मीरी पाठ का अनुसरण दिखता है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 90 एवं 213]

॥ सप्तमोऽङ्कः॥

काश्मीरी पाठ के अनुसार सप्तमांक के आरम्भ में एक प्रवेशक आता है। किन्तु बंगाली पाठ में वह नहीं आता है। सप्तमांक के बंगाली पाठ में कहाँ कहाँ मंचनलक्ष्यी वैशिष्ट्य दिखता है? उसको हमें देखना है। एवञ्च, अन्य दो पाठों की तुलना में कहाँ बंगाली पाठ समुचित प्रतीत होता है या नहीं? तथा कितने अंश में वह काश्मीरी पाठ का अनुसरण करता है और कितने अंश में मैथिली पाठ का अनुसरण करता है? वह भी द्रष्टव्य है।।

(1) राजा दुष्यन्त ने जब यह सयुक्तिक जान लिया कि सर्वदमन उसका ही औरस पुत्र है, तब वह उस पुत्र के साथ ही उसकी माता शकुन्तला के पास चलता है। एकवेणीधरा शकुन्तला सामने से आ रही थी। तब उसके मन में प्रश्न होता है कि मेरे पुत्र को लेकर यह कौन आ रहा है?। यहाँ शकुन्तला के मुख में निम्नोक्त वाक्य है:-"ण क्खु अज्जउत्तो अअं। ता को णु क्खु एसो किदरक्खामङ्गलं मे दारअं गत्तसङ्गेण दूसेदि।" अर्थात् यह आर्यपुत्र जैसे तो नहीं लगते हैं। तो फिर यह कौन व्यक्ति होगा जो मेरे रक्षा-मंगल पहनाये हुए बालक को अपने गात्रसंग से दूषित कर रहा है?। यहाँ पुरोगामी दोनों काश्मीरी एवं मैथिली पाठों में हस्तसंसर्गेण ऐसा पाठभेद मिलता है। इन दोनों ही पाठभेदों का मंचन दृष्टि से विचार करने पर मालूम होता है कि बंगाल की रंगभूमि पर दुष्यन्त सर्वदमन को अपनी गोदी में उठा कर आ रहा है- ऐसा दृश्याङ्कन करना है। लेकिन अन्य दोनों रंगभूमियों पर इसी बालक की उमर कुछ ज्यादा रही होगी, इस लिए दुष्यन्त उसे अपने हाथों से पकड़कर चलता है। इस तरह का मंचनलक्ष्यी एक महत्त्वपूर्ण भेद बंगाली पाठ में परिलक्षित होता है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 118]

(2) बंगाली रंगकर्मियों ने परम्परागत पाठ में कुत्रचित् संक्षेप भी किया है। उदाहरणतया, शकुन्तला का दुष्यन्त के साथ संयोग हो जाने के बाद माता अदिति ऐसा प्रस्ताव रखती है कि इस खुशी के वृत्तान्त से महर्षि कण्व को विदित किया जाय। तब मारीच ऋषि कहते हैं कि तपःप्रभाव से यह हकीकत कण्व को मालूम हो ही गई होगी। यहाँ मारीच की उक्ति इस तरह की है:- "तपःप्रभावात् सर्वमिदं प्रत्यक्षं तत्रभवतः कण्वस्य। (विचिन्त्य) तथाप्यसौ दुहितुः सपुत्रायाः पत्या परिग्रहात् प्रियम् अस्माभिः श्रावयितव्यः। कः कोऽत्र भोः।" इस स्थान में मारीच के दोनों ही वाक्यों के बीच में, यानी विचिन्त्य ऐसी रंगसूचना के बाद, काश्मीरी एवं मैथिली दोनों ही पाठों में दुष्यन्त की एक स्वगतोक्ति आती है। जैसे कि, न ममाभिक्रुद्धो/ममातिक्रुद्धो गुरुः। (दुष्यन्त ने जैसे ही सुना कि कण्व मुनि को अपने तपःप्रभाव से सब कुछ मालूम हो सकता है, वैसे ही क्षणार्ध में उसके मन में विचार झलकता है कि अच्छा हुआ मेरे ऊपर गुरु कण्व मुनि ने (उनकी दुहिता का प्रत्याख्यान किया तब) क्रोध नहीं किया, कोई शाप-वचन नहीं दिया। इस तरह का विचार दुष्यन्त के दिमाग में आना अत्यन्त स्वाभाविक है। परंतु बंगाल के रंगकर्मियों ने इस पूरे वाक्य को निकाल दिया है, परिणमतः बंगाल के रंगमंच पर दुष्यन्त की निष्क्रियता खटकती है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 182]

(3) सप्तमांक के अन्त भाग में, भरत-वाक्य के ऊपर जिन दो मंगल-श्लोकों की प्राप्ति मैथिली पाठ में होती है, उनमें से केवल एक श्लोक, "तव भवतु बिडौजाः प्राज्यवृष्टिः प्रजासु०" ही बंगाली पाठ में प्राप्त होता है। लेकिन प्राचीनतम काश्मीरी पाठ में "क्रतुभिरुचितभागांस्त्वं सुरान् भावयालम्०" यही एक श्लोक संचरित हुआ है। अतः ऐसा लगता है कि मैथिली पाठ में जिस श्लोक का प्रक्षेप हुआ था, उसका बंगाली पाठ में स्वीकार किया गया

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

है। किन्तु जो श्लोक काश्मीरी पाठपरम्परा में संचरित हो कर आया था, और जिसका स्वीकार मैथिली पाठ में भी हुआ था उसका बंगाली पाठ में त्याग किया गया है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 188]

(4) जैसे काश्मीरी पाठ में कतिपय स्थानों में पाठक्षति हुई है ऐसा लगता है वैसे ही बंगाली पाठ में भी एक-दो स्थान प्रकट रूप से मिलते हैं कि जहाँ कवि-प्रणीत मूल पाठ को हानि पहुँची है- उस विचार का समर्थन हो रहा है। (1) शकुन्तला जब मारीच के मुख से सुनती है कि दुर्वासा के शाप के कारण दुष्यन्त ने शकुन्तला का प्रत्यादेश किया था, तब उसके मुख से ऐसा वाक्य निकलता है: "दिट्ठिआ। अकामपच्चादेसी अज्जउत्तो। ण उण सच्चं मं सुमरेदि। अधवा ण सुदो भवेअअं सुण्णहिअआए मए सावो, जदो सहीहिं अच्चादरेण संदिट्ठं भत्तुणो अङ्गुलीअअं दंसेसित्ति।" इसका संस्कृत छायानुवाद देते हुए डॉ. रिचार्ड पिशेल ने "दिष्ट्या, अकामप्रत्यादेशी आर्यपुत्रः। न पुनः सत्यं मां स्मरति। अथवा न श्रुतो भवेत् अयं शून्यहृदयया मया शापः, यतः सखीभिःअत्यादरेण संदिष्टं भर्तुः अंगुलीयकं दर्शय इति।" इनमें से जो दूसरा वाक्य है, (ण उण सच्चं मं सुमरेदि) उसमें कुछ क्षति हुई होगी। क्योंकि काश्मीरी पाठ में ण उण सत्तं अत्ताणअं सुमरामि। ऐसा मिलता है।। तथा मैथिली पाठ के अनुसार भी वैसा ही वाक्य है। यहाँ मूल में सच्चं (सत्यम्) होगा कि सत्तं (शप्तम्) होगा? उसका निर्णय करना मुश्किल है, क्योंकि नटमण्डलियों के उच्चारण का कोई दस्तावेजी (Documentary proofs) प्रमाण आज उपलब्ध नहीं है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक-171]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ अभिज्ञानशकुन्तलम्[1]॥

(बंगीय-वाचनानुसारी पाठः)

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति[2] विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रसन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः॥1- 1॥ [1]

[नान्द्यन्ते]

सूत्रधारः- अलमतिविस्तरेण[3]। (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य[4]) आर्ये, यदि नेपथ्यविधानम् अध्यवसितं तदिहागम्यताम्। [2]

नटी- (प्रविश्य) अज्ज, इअं म्हि। आणवेदु अज्जो, को णिओओ अणुचिट्ठीअदु त्ति।
(आर्य, इयम् अस्मि। आज्ञापयतु आर्यः, कः नियोगः अनुष्ठीयताम् इति।) [2]

सूत्रधारः- आर्ये, अभिरूपभूयिष्ठा[5] परिषत्। तस्यां च श्रीकालिदासग्रथितवस्तुना नवेनाभिज्ञानशकुन्तल[6]नाम्ना नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभिः। तत्प्रतिपात्रमाधीयतां यत्नः। [3]

नटी- सुविहिदप्पओअदाए अज्जस्स ण किं पि परिहाइस्सदि। (सुविहितप्रयोगतया आर्यस्य न किमपि परिहास्यते।) [4]

सूत्रधारः- (सस्मितम्) आर्ये, कथयामि ते भूतार्थम्।

आ परितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।
बलवदपि शिक्षितानाम् आत्मन्यप्रत्ययं चेतः॥ 1 -2॥ [5]

नटी- एवं णेदं। अणन्तरकरणीयं दाणिं आणवेदु अज्जो। (एवं नु एतत्। अनन्तरकरणीयम् इदानीम् आज्ञापयतु आर्यः।) [6]

सूत्रधारः- आर्ये, किमन्यदस्याः परिषदः श्रुतिप्रसादहेतोर्गीतादनन्तरकरणीयमस्ति। [6]

नटी[7] - अध कदरं उण उदुं[8] समस्सइअ गाइस्सं।
(अथ कतरम् पुनः ऋतुम् समाश्रित्य गास्यामि।) [7]

सूत्रधारः- आर्ये, नन्विममेव तावन्नातिचिरप्रवृत्तमुपभोगक्षमं ग्रीष्मसमयमाश्रित्य गीयताम्। सम्प्रति हि-

सुभगसलिलावगाहाः पाटलिसंसर्गसुरभिवनवाताः।
प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः॥ 1 -3॥ [8]

---

1. काश्मीर-पाठे "अभिज्ञानशकुन्तला नाटकम्" इति पठ्यते।, बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमत्रानुसरति।
2. काश्मीर-पाठे "या स्रष्टुस्सृष्टिराद्या पिबति०" इति, एवं मैथिल-पाठे "या स्रष्टुः सृष्टिराद्या वहति०" इति।
3. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं नास्ति।, मैथिल-पाठे तदस्ति। (द्रष्टव्यं ग्रन्थान्ते प्रदत्तं पञ्चमं परिशिष्टम्।)
4. काश्मीर-पाठे रंगसूचनेयमस्ति, किन्तु मैथिल-पाठे नास्ति।
5. मैथिल-पाठ "आर्ये, रसभावविशेषदीक्षागुरोः श्रीविक्रमादित्यस्य साहसांकस्याभिरूपभूयिष्ठा परिषदि"ति।
6. काश्मीर-पाठे नाटकस्य नामाभिधानमत्र नोपलभ्यते।
7. काश्मीर-पाठे नटी प्रश्नमेतादृशं न करोति।
8. मैथिल-पाठे "कदरं उण समअं" इति पठ्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

नटी- (गायति)

खणचुम्बिआइँ भमरेहिँ उअह[1] सुउमारकेसरसिहाइं।
अवअंसअन्ति सदअं सिरीसकुसुमाइँ पमआओ॥[2] 1 -4॥

(क्षणचुम्बितानि भ्रमरैः ऊहत सुकुमारकेसरशिखानि।
अवतंसयन्ति सदयं शिरीषकुसुमानि प्रमदाः॥) [9]

सूत्रधारः- आर्ये, साधु गीतम्। असौ हि रागापहृतचित्तवृत्तिरालिखित इव भाति सर्वतो रङ्गः। तत्कतमं प्रयोगम्[3] आश्रित्यैनमाराधयामः। [10]

नटी- णं पढमं जेव अज्जेण आणत्तं अहिण्णाणसउन्तलं णाम अउव्वं णाडअं अहिणीअदु त्ति[4]। (ननु प्रथममेव आर्येणाज्ञप्तम् अभिज्ञानशकुन्तलम् नाम अपूर्वं नाटकम् अभिनीयतामिति।) [11]

सूत्रधारः- आर्ये, सम्यगवबोधितोऽस्मि। अस्मिन्क्षणे विस्मृतं खलु मयैतत्। कुतः-

तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः।
एष राजेव दुःषन्तः[5] सारङ्गेणातिरंहसा॥ 1 -5॥ [12]

(इति निष्क्रान्तौ)

॥ प्रस्तावना॥ [13]

(ततः प्रविशति रथारूढः सशरचापहस्तो मृगमनुसरन् राजा सूतश्च[6]।) [14]

सूतः- (राजानं मृगं चावलोक्य[7]) आयुष्मन् -

कृष्णसारे ददच्चक्षुस्त्वयि चाधिज्यकार्मुके।
मृगानुसारिणं साक्षात्पश्यामीव पिनाकिनम्॥ 1 -6॥ [15]

राजा- सूत, दूरममुना सारङ्गेण वयमाकृष्टाः। सोऽयमिदानीं

ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने दत्तदृष्टिः
पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद्भूयसा पूर्वकायम्।
शष्पैरर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतत्वाद्[8] वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति॥ 1 -7॥ [16]

(सविस्मयम्) कथमनुपतत एव मे प्रयत्नप्रेक्षणीयः संवृत्तः। [71]

---

1. काश्मीर-पाठे "सुअअ", मैथिली-पाठे "उअह" इति पठ्यते।, डॉ. बेलवालकरैः प्राकृतव्याकरणमनुसृत्य "ऊअ" इति विचार्यते।
2. काश्मीर-पाठे गाथेयं गीति-स्वरूपा वर्तते।, मैथिल-बंगीय-पाठयोस्तु सा पथ्यार्या स्वरूपा वर्तते।
3. काश्मीर-पाठे "कतमत् प्रकरणम्" इति पठ्यते।
4. काश्मीर-पाठे "०अहिणाणसउन्तला नाम अपुरवं णाडअं पओएण अधिकरीअदु त्ति।" (पूर्वस्य पुरवमिति शौरसेन्यामिति हेमचन्द्रः), मैथिल-पाठे "अहिणाणसउन्तलं अहिरूअ-णालअं अहिणीअदु त्ति।"
5. काश्मीर-पाठे "दुष्यन्तः", मैथिल-पाठे "दुष्मन्तः", बंगीय-पाठे "दुःषन्तः"। (महाभारतस्य सम्भवपर्वणि शकुन्तलोपाख्याने च "दुःषन्तः" इति नामाभिधानं वर्तते।
6. काश्मीर-पाठे "ततः प्रविशतः रथयातकेन मृगानुसारी चापहस्तो राजा दुष्यन्तस्सूतश्च।", मैथिल-पाठे "ततः प्रविशति मृगमनुसरन् सशरचापहस्तो रथारूढो राजा सूतश्च"। (रंगसूचनासु वर्तमाना एते भेदा एव प्रमाणीकुर्वन्ति यदेता सर्वाः पञ्च रंगावृत्तय एव।)
7. रंगसूचनेयं काश्मीर-पाठानुसारिणी वर्तते।
8. काश्मीर-पाठे "०प्लुतित्वाद्" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

सूतः- आयुष्मन्, उद्घातिनी भूमिरिति रश्मिसंयमनाद्रथस्य मन्दीभूतो[1] वेगः। तेन मृग एष विप्रकृष्टः संवृत्तः। संप्रति समदेशवर्ती न ते दुरासदो भविष्यति। [18]

राजा- तेन हि विमुच्यन्तामभीषवः। [19]

सूतः- यथाज्ञापयत्यायुष्मान्। (रथवेगं रूपयित्वा) आयुष्मन्, पश्य, एते हि-

मुक्तेषु रश्मिषु निरायतपूर्वकायाः स्वेषामपि प्रसरतां रजसामलङ्घ्याः।
निष्कम्पचामरशिखाश्च्युतकर्णभङ्गा धावन्ति वर्त्मनि तरन्ति नु वाजिनस्ते[2]॥ 1 -8॥ [20]

राजा- (सहर्षम्) कथमतीत्य हरिणं हरयो वर्तन्ते। तथा हि-

यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद्विपुलतां
यदर्धे विच्छिन्नं भवति कृतसन्धानमिव तत्।
प्रकृत्या यद्वक्रं तदपि समरेखं नयनयो-
र्न मे दूरे किं चित्क्षणमपि न पार्श्वे रथजवात्॥ 1 -9॥ [21]

(नेपथ्ये)

भो भो राजन्, आश्रममृगोऽयं, न हन्तव्यो न हन्तव्यः। [22]

सूतः- (आकर्ण्यावलोक्य च) आयुष्मन्, अस्य खलु ते बाणपातपथवर्तिनः कृष्णसारस्या[3]न्तरायौ तपस्विनौ[4] संवृत्तौ। [23]

राजा- (ससंभ्रमम्) तेन हि निगृह्यन्तामभीशवः। [24]

सूतः- यथाज्ञापयत्यायुष्मान्। (इति तथा करोति) [25]

(ततः प्रविशति सशिष्यो वैखानसः) [26]

तापसः- (हस्तमुद्यम्य) भो भो राजन्, आश्रममृगः खल्वयम्।

न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मि-
न्मृदुनि मृगशरीरे पुष्पराशा[5]विवाग्निः।
क्व बत हरिणकानां जीवितं चातिलोलं
क्व च निशितनिपाताः सारपुङ्खाः शरास्ते[6]॥ 1-10॥ [27]

तदाशु कृतसन्धानं प्रतिसंहर सायकम्।
आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि॥ 1-11॥ [28]

राजा- (सप्रणामम्) एष प्रतिसंहृतः। (इति यथोक्तं करोति।) [29]

तापसः- (सहर्षम्) सदृशम् एवैतत्पुरुवंशप्रभवस्य नरेन्द्रप्रदीपस्य[7] भवतः। सर्वथोभयचक्रवर्तिनं पुत्रमाप्नुहि। [30]

---

1. काश्मीर-पाठे "मन्दीकृतः" इति।
2. प्रथमपादं वर्जयित्वा त्रयोऽप्यन्ये पादाः काश्मीर-पाठाद् भिन्नाः, बंगीय-पाठोऽत्र मैथिलपाठमनुसरति।
3. काश्मीर-पाठे "बाणपथवर्तिनः कृष्णसारङ्गस्ये"ति। मैथिलपाठे "बाणपातसमवर्तिनः कृष्णसारस्ये" ति।
4. काश्मीर-पाठे तपस्विन इति। मैथिलपाठे च तथैव। किन्तु तन्न युक्तम्, शिष्यतापसावेव रंगं प्रविशतः।
5. मैथिल-पाठे, बंगीयपाठे च "पुष्पराशौ०" इत्येव। उत्तरवर्तिनि काले "तुलराशौ0" इति पाठभेदः।
6. मैथिल-पाठमनुसृत्य बंगीय-पाठेऽपि प्रक्षिप्तोऽयं श्लोकः स्वीकृतः। काश्मीर-पाठे नास्त्ययं श्लोकः।
7. काश्मीर-पाठे "पुरुवंशजातस्य भवतः" इति।, मैथिल-पाठे "पुरुवंशजातस्य नरेन्द्रप्रदीपस्य"ति।, बंगीय पाठे तु संमिश्रीकृत्य नवीनपाठभेदः समुद्भावितः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- (सप्रणामम्) प्रतिगृहीतं ब्राह्मणवचः[1]। [31]

तापसौ[2]- राजन्, समिदाहरणाय प्रस्थितावावाम्। एष चास्मद्गुरोः कण्वस्य साधिदैवत इव शकुन्तलया[3]ऽनुमालिनीतीरमाश्रमो दृश्यते। न चेदन्यकार्यातिपातः प्रविश्यात्र गृह्यताम् अतिथिसत्कारः।

अपि च-

धर्म्यास्तपोधनानां[4] प्रतिहतविघ्नाः क्रियाः समभिवीक्ष्य।
ज्ञास्यसि कियद्भुजो मे रक्षति मौर्वीकिणाङ्क इति॥ 1-12॥ [32]

राजा- अथ सन्निहितस्तत्र कुलपतिः[5]। [33]

तापसौ- इदानीमेव दुहितरमतिथिसत्कारायादिश्य दैवमस्याः प्रतिकूलं शमयितुं सोमतीर्थं[6] गतः। [34]

राजा- यद्येवं तामेव द्रक्ष्यामि। सैव विदितभक्तिर्मां महर्षये निवेदयिष्यति। [35]

तापसौ- एवं साधयावस्तावत्। (इति सशिष्यो वैखानसो निष्क्रान्तः) [36]

राजा- सूत, प्रेरयाश्वान्। पुण्याश्रमदर्शनेनात्मानं पुनीमहे तावत्। [37]

सूतः- यथाज्ञापयत्यायुष्मान्। (इति भूयो रथवेगं निरूपयति) [38]

राजा- (समन्तादवलोक्य) अकथितोऽपि ज्ञायत एव यथायमाभोगस्तपोवनस्य। [39]

सूतः- कथमिव। [40]

राजा- किं न पश्यसि। इह हि-

नीवाराः शुककोटरार्भकमुख[7]भ्रष्टास्तरूणामधः
प्रस्निग्धाः क्वचिदिङ्गुदीफलभिदः सूच्यन्त एवोपलाः।
विश्वासोपगमादभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगा-
स्तोयाधारपथाश्च वल्कलशिखानिष्यन्दलेखाङ्किताः॥ 1-13॥ [41]

अपि च -

कुल्याम्भोभिः पवनचपलैः[8] शाखिनो धौतमूला
भिन्नो रागः किसलयरुचामाज्यधूमोद्गमेन।
एते चार्वागुपवनभुवि च्छिन्नदर्भाङ्कुरायां
नष्टाशङ्का हरिणशिशवो मन्दमन्दं चरन्ति॥ 1-14॥ [42]

सूतः- सर्वम् उपपन्नम्। [43]

---

1. काश्मीर-पाठे "प्रतिगृहीतं तपोधनवचन" मिति।, मैथिल-पाठे "गृहीतं ब्राह्मणवचन" मिति।
2. बंगीयपाठस्यानौचित्यमत्र प्रतीयते यच्छिष्यत्वेन प्रविष्टः सन् तापसो भूत्वा संवादे संमिलितो भवति।
3. मैथिलरंगकर्मिभिः समारब्धोऽयं प्रक्षेपः, बंगीय-पाठेऽपि स्वीक्रियते।
4. शब्दोऽयमन्तःसाक्ष्यं भवति "प्रतिगृहीतं तपोधनवचन" मिति काश्मीर-पाठस्य कृते।
5. मैथिल-बंगीयपाठयोस्तु पूर्वमेवोक्तं यद् "साधिदैवत इव शकुन्तलये" ति। एवंस्थिते प्रश्नोऽयं न युक्तं प्रतिभाति। अतः साधिदैवतेत्यादयः शब्दाः प्रक्षिप्ता एवेति निश्चीयते।
6. काश्मीर-पाठे सोमतीर्थं प्रभासमिति पठ्यते। (सोमतीर्थमित्येव पर्याप्तं स्यात्।)
7. पाठभेदोऽयं मैथिल-पाठमनुसृत्यैव।, काश्मीर-पाठे तु "शुकगर्भकोटरमुख0" इति।
8. काश्मीर-पाठे "प्रसृतचपलैः" इति। मैथिल-पाठे च "प्रसृतिचपलैः" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- (स्तोकमन्तरं गत्वा) सूत, आश्रमोपरोधो मा भूत्तदिहैव रथं स्थापय यावदवतरामि। [44]

सूतः- धृताः प्रग्रहाः। अवतरत्वायुष्मान्। [45]

राजा- (अवतीर्यात्मानमवलोक्य च) सूत, विनीतवेषप्रवेश्यानि तपोवनानि। तदिदं तावद् गृह्यतामाभरणं धनुश्च। (इति सूतस्यार्पयति[1]) यावदाश्रमवासिनः प्रत्यवेक्ष्य[2] निवर्तिष्ये तावदार्द्रपृष्ठाः क्रियन्तां वाजिनः। [46]

सूतः- यथाज्ञापयसि (इति निष्क्रान्तः) [47]

राजा- (परिक्रम्यावलोक्य च) इदमाश्रमपदम्, यावत्प्रविशामि।

(प्रविष्टकेन निमित्तं सूचयित्वा) अये-

शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहुः कुतः फलमिहास्य।
अथवा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र॥ 1 -15॥ [48]

(नेपथ्ये)

इदो इदो पियसहीओ। (इतः इतः प्रियसख्यौ[3]।) [49]

राजा- (कर्णं दत्त्वा) अये, दक्षिणेन वृक्षवाटिकायामालाप इव श्रूयते। भवतु अवगच्छामि।

(परिक्रम्यावलोक्य च) अये, एतास्तपस्विकन्यकाः स्वप्रमाणानुरूपैः सेचनघटैर्बालपादपेभ्यः पयो दातुमित एवाभिवर्तन्ते। अहो, चित्रमासां[4] दर्शनम्। [50]

शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपु-राश्रमवासिनो यदि जनस्य।
दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः॥ 1-16॥ [51]

यावदेताश्छायामाश्रितः प्रतिपालयामि। (इति विलोकयन् स्थितः) [52]

(ततः प्रविशति यथोक्तव्यापारा सह सखीभ्यां शकुन्तला) [53]

एका[5] - हला सउन्तले, तत्तो वि तावदकण्णस्स अस्समरुक्खआ पिअ त्ति तक्केमि जेण णोमालिआकुसुमपरिपेलवा वि तुमं एदेसुं आलवालपूरणेसुं णिउत्ता। (सखि शकुन्तले, त्वत्तः अपि तातकण्वस्याश्रमवृक्षकाः अतिप्रियाः इति तर्कयामि। येन नवमालिकाकुसुमपरिपेलवा अपि त्वम् एतेषु आलवालपूरणेषु नियुक्ता।) [54]

शकुन्तला- हला अणुसूए[6], ण केवलं तादस्स णिओओ ममावि सहोअरसिणेहो एदेसुं। (सखि अनुसूये, न केवलं तातस्य नियोगः, ममापि सहोदरस्नेहः एतेषु।) [55]

(इति वृक्षसेचनं नाटयति) [56]

प्रियंवदा- सहि सउन्तले, उदअं लम्भिदा एदे गिम्हआलकुसुमदाइणो अस्समरुक्खआ। इदाणिं अदिक्कन्तकुसुमसमए वि रुक्खए सिञ्चम्ह। तेण हि अणहिसंधिगरुओ धम्मो भविस्सदि। (सखि शकुन्तले, उदकम् लम्भिताः एते ग्रीष्मकालकुसुमदायिनः आश्रमवृक्षकाः इदानीम् अतिक्रान्त कुसुमसमयान् अपि वृक्षकान् सिञ्चामः। तेन हि

---

1. मैथिल-पाठे "इति सूतायोपनयती" ति। बंगीय-पाठे परिष्कृतः षष्ठ्यन्तः पाठः, स चोत्तरवर्ती वर्तते।
2. काश्मीर पाठे "यावदहमुपास्य महर्षीन् उपावर्ते", मैथिलपाठे "यावदाश्रमवासिनः प्रेक्ष्य निवर्तिष्ये" इति।
3. का.-पाठे "प्रियसखी" ति।, बं.-पाठो मै.-पाठमनुसरति। अत्र नेपथ्यतः शकुन्तलैव सखीद्वयं संबोधयति।
4. डॉ. रिचार्ड पिशेलेन "मधुरमासां दर्शन" मित्येव स्वीकृतः। किन्तु सन्दर्भदीपिकायां "चित्रमासां दर्शन" मिति बं.पाठत्वेन प्रदत्तः।, का-पाठे "माधुर्यकान्तं खलु दर्शनमासा" मिति।, मै.-पाठे "मधुरमासां दर्शन" मिति।
5. काश्मीर-पाठे द्वे सख्यौ वदतः। मैथिल-पाठे तयोः पार्थक्यं कृत्वैकैकशः शकुन्तलां सम्बोधयतः। तस्यात्र बंगीय-पाठेऽनुसरणं दृश्यते।
6. काश्मीर-पाठे "अनसूये" ति शब्दः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अनभिसन्धिगुरुःधर्मः भविष्यति।) [57]

शकुन्तला- सहि पिअंवदे, रमणीअं मन्तेसि[1]। (सखि प्रियंवदे, रमणीयं मन्त्रयसे।) [58]

(इति भूयो वृक्षसेचनं नाटयति[2]।) [59]

राजा- (आत्मगतम्) कथमियं सा कण्वदुहिता शकुन्तला। (सविस्मयम्)अहो असाधुदर्शी तत्रभवान् कण्वो य इमां वल्कलधारणे नियुङ्क्ते। [60]

इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तपःक्लमं साधयितुं य इच्छति[3]।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया शमीलतां[4] छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति॥ 1-17॥ [61]

भवतु, पादपान्तरितो विश्वस्तां तावदेनां पश्यामि। (इत्यपवार्य स्थितः) [62]

शकुन्तला- हला, अणुसूए, अदिपिणद्धेण एदिणा वक्कलेण पिअंवदाए दढं पीडिद म्हि। ता सिढिलेहि दाव णं। (अनुसूया शिथिलयति), (सखि अनुसूए, अतिपिनद्धेनैतेन वल्कलेन प्रियंवदया दृढं पीडिताऽस्मि[5]। तत् शिथिलय तावदेनम्।)[6] [63]

प्रियंवदा- (विहस्य) - एत्थ दाव पओहरवित्थारइत्तअं अत्तणो जोव्वणारम्भं उवालहसु।

(अत्र तावत् पयोधरविस्तारयितृकमात्मनो यौवनारम्भम्[7] उपालभस्व।) [64]

राजा- सम्यगियमाह -

इदमुपहितसूक्ष्मग्रन्थिना स्कन्धदेशे स्तनयुगपरिणाहाच्छादिना वल्कलेन।
वपुरभिनवमस्याः पुष्यति स्वां न शोभां कुसुममिव पिनद्धं पाण्डुपत्रोदरेण[8]॥ 1-18॥ [65]

अथवा, काममप्रतिरूपमस्य वयसो वल्कलं न पुनरलङ्कारश्रियं न पुष्णाति। कुतः,

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्॥ 1-19॥ [66]

[अपि च -

कठिनमपि मृगाक्ष्या वल्कलं कान्तरूपं
न मनसि रुचिभंगं स्वल्पमप्यादधाति।
विकचसरसिजायाः स्तोकनिर्मुक्तकण्ठं
निजमिव कमलिन्याः कर्कशं वृन्तजालम्॥ 1-20॥][9] [67]

---

1. काश्मीर-पाठे "अभिनन्दनीयं मन्त्रयथः" इति।
2. काश्मीर-पाठे "नाट्येन सिञ्चती" ति।
3. काश्मीर-पाठे "तपःक्षमं साधयितुं भविष्यती" ति। मैथिल-पाठे "तपःक्षमं साधयितुं य इच्छती"ति।
4. काश्मीर-पाठे "समिल्लताम्" इति।
5. काश्मीर-पाठे "नियन्त्रितास्मी" ति।, मैथिल-पाठे "पीडितास्मी"ति।
6. काश्मीर-पाठे यथा वल्कलशिथिलीकरणप्रसंगात् पूर्वम् शकुन्तला राज्ञः संनिकर्षमानीयते, तथा नास्ति मैथिल-बंगीयपाठयोः। (रंगमंचस्य वाम-दक्षिणभागयोर्नायकस्य नायिकायाश्चावस्थानं वर्तते।)
7. काश्मीर-पाठे "यौवनम्" इति।, मैथिल-बंगीय-पाठयोस्तु "यौवनारम्भम्" इति।
8. काश्मीर-पाठे श्लोकोऽयं निष्कासितो वर्तते।
9. श्लोकोऽयं रिचार्ड पिशेलेन सम्पादिते बंगदेशीयपाठे न स्वीकृतः। रंगकर्मिभिः प्रक्षिप्तोऽयं प्रतिभाति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला- (अग्रतोऽवलोक्य) सहीओ, एस वादेरिदपल्लवाङ्गुलीहिं किं पि वाहरेदि विअ मं चूदरुक्खओ[1]। ता जाव णं संभावेमि। (इति तथा करोति) (सख्यौ, एषः वातेरित पल्लवाङ्गुलीभिः किमपि व्याहरतीव मां चूतवृक्षकः। तद्यावदेनम् सम्भावयामि) [68]

प्रियंवदा- हला सउन्तले, इध ज्जेव मुहुत्तअं चिट्ठ। (सखि शकुन्तले, इहैव मुहूर्तकं तिष्ठ।) [69]

शकुन्तला- किं णिमित्तं। (किं निमित्तम्।) [70]

प्रियंवदा- तए समीवट्ठिदाए लदासणाधो विअ अअं चूदरुक्खओ पडिभादि।

(त्वया समीपस्थितया लतासनाथः इव अयं चूतवृक्षकः प्रतिभाति।) [71]

शकुन्तला- अदो ज्जेव पिअंवद त्ति तुमं वुच्चसि। (अतः एव प्रियंवदा इति त्वम् उच्यते।) [72]

राजा- अवितथम्[2] आह प्रियंवदा, तथा ह्यस्याः

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम्॥ 1 -21॥ [73]

अनुसूया- हला सउन्तले, इअं सअंवरवहू सहआरस्स तए किदणामहेआ वणदोसिणि त्ति णोमालिया।

(हला शकुन्तले, इयं स्वयंवरवधूः सहकारस्य त्वया कृतनामधेया वनतोषिणी[3] इति नवमालिका।) [74]

शकुन्तला- (उपगम्यावलोक्य च सहर्षम्) हला अणुसूए, रमणीओ क्खु इमस्स पादवमिधुणस्स वदिअरो संवुत्तो। इअं णवकुसुमजोव्वणा णोमालिआ, अअं पि बद्धफलदाए उवभोअक्खमो सहआरो त्ति। (इति पश्यन्ती तिष्ठति) (सखि अनुसूये, रमणीयः खल्वस्य पादपमिथुनस्य व्यतिकरः संवृत्तः। इयम् नवकुसुमयौवना नवमालिका, अयमपि बद्धफलतया उपभोगक्षमः सहकारः इति।) [75]

प्रियंवदा- (सस्मितम्) अणुसूए, जाणासि किं णिमित्तं सउन्तला वणदोसिणिं अदिमेत्तं पेक्खदि त्ति।

(अनुसूये, जानासि किन्निमित्तं शकुन्तला वनतोषिणीमतिमात्रं प्रेक्षते इति।) [76]

अनुसूया- ण क्खु विभावेमि। कधेहि। (न खलु विभावयामि। कथय।) [77]

प्रियंवदा- जधा वणदोसिणी सरिसेण पादवेण संगदा तधा अवि णाम अहं पि अत्तणो अणुरूवं वरं लहेअं ति। (यथा वनतोषिणी सदृशेन पादपेन सङ्गता, तथापि नामाहम् अप्यात्मनोऽनुरूपं वरं लभेयेति।) [78]

शकुन्तला- एस अत्तणो दे चित्तगदो मणोरधो। (एषः आत्मनः ते चित्तगतः मनोरथः।) [79]

(इति कलशमावर्जयति[4]।) [80]

अनुसूया[5]- हला सउन्तले, इअं तादकण्णेण तुमं विअ सहत्थसंवड्ढिदामाहवीलदा। इमं विसुमरिदा सि। (सखि शकुन्तले,इयम् तातकण्वेन त्वमिव स्वहस्तसंवर्धिता माधवीलता। इमां विस्मृतासि।) [81]

---

1. काश्मीर-पाठे "बउलरुक्खको" इति। मैथिल-बंगीयपाठानुसारेण वृक्षस्त्वेक एवास्ति रंगभूमौ।
2. काश्मीर-पाठे "प्रियमपि तथ्यमाह०" इति।
3. काश्मीर-पाठे "वनतोषिन्" इति विशेषणं सहकारस्य कृते प्रयुज्यते।, द्वितीयस्तरे तद्विशेषणं नवमालिकाया भवति।, (तृतीये स्तरे नवमालिकाया नामान्तरं "वनज्योत्स्ने" ति दीयते दाक्षिणात्यपाठे।)
4. बंगीय-पाठे रंगसूचनेयं द्विवारं प्रयुक्ता, (मैथिल-पाठवद्)। तथापि शकुन्तला घटं भूमौ न स्थापयति, न वर्जयति। अतो हस्तेनैकेन भ्रमरं दूरीकर्तुं यतते सा। (आवर्जतीति क्रियापदस्यार्थो नावबुद्धो रंगकर्मिभिः।)
5. इत (उक्ति-क्रमांकः 81) आरभ्य, उक्ति 90 क्रमांक-पर्यन्ता संवादमाला प्रक्षिप्ता सिध्यति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला- तदो अत्ताणअं पि विसुमरिस्सं। (लतामुपेत्यावलोक्य च सहर्षम्)अच्छरीअं अच्छरीअं। पिअंवदे, पिअं दे णिवेदेमि। (ततः आत्मानमपि विस्मरिष्यामि। आश्चर्यम् ......आश्चर्यम् .... प्रियंवदे, प्रियं ते निवेदयामि।) [82]

प्रियंवदा- सहि, किं मे पिअं। (सखि, किं मे प्रियम्।) [83]

शकुन्तला- असमए क्खु एसा आ मूलादो मउलिदा माहवीलदा। (असमये खल्वेषा आमूलात्मुकुलिता माधवीलता।) [84]

उभे- (सत्वरमुपगम्य) सहि, सच्चं सच्चं। (सखि, सत्यं सत्यम्।) [85]

शकुन्तला- सच्चं, किं ण पेक्खध। (सत्यम्। सखि, किं न प्रेक्षेथे।) [86]

प्रियंवदा- (सहर्षम् निरूप्य) तेण हि पडिप्पिअं दे णिवेदेमि। आसण्णपाणिग्गहणा सि तुमं। (तेन हि प्रतिप्रियं ते निवेदयामि। आसन्नपाणिग्रहणासि त्वम्।) [87]

शकुन्तला- (सासूयम्) णूणं एस दे अत्तगदो मणोरधो। (नूनम् एषः ते आत्मगतः मनोरथः।)

प्रियंवदा- ण क्खु परिहासेण भणामि। सुदं खु मए तादकण्णस्स मुहादो तुए कल्लाणसूअअं इदं णिमित्तं ति। (न खलु परिहासेण भणामि। श्रुतं खलु मया तातकण्वस्य मुखात्तव कल्याणसूचकम् इदं निमित्तम् इति।) [88]

अनुसूया- पिअंवदे, अदो ज्जेव सउन्तला ससिणेहा माहवीलदं सिञ्चदि। (प्रियंवदे, अतः एव शकुन्तला सस्नेहा माधवीलतां सिञ्चति।) [89]

शकुन्तला- जदो मे बहिणिआ भोदि तदो किं ति ण सिञ्चिस्सं। (यतः मे भगिनी भवति ततः किमिति न सेक्ष्यामि[1]। [90]

(इति कलशमावर्जयति[2]।) [91]

राजा- अपि नाम कुलपतेरियमसवर्णक्षेत्रसम्भवा भवेत्। अथवा कृतं सन्देहेन,

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः।
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः॥ 1-22॥ [92]

तथापि तत्त्वत एनाम् उपलप्स्ये[3]। [93]

शकुन्तला- (ससंभ्रमम्) अम्मो, णोमालिअं उज्झिअ वअणं मे महुअरो अहिलसदि। (अम्भो, नवमालिकामुज्झित्वा वदनं मे मधुकरः अभिलषति।) [94]

(इति भ्रमरबाधां रूपयति) [95]

राजा- (सस्पृहम्)

यतो यतः षट्चरणोऽभिवर्तते ततस्ततः प्रेरितवामलोचना।
विवर्तितभ्रूरियमद्य शिक्षते भयादकामापि हि दृष्टिविभ्रमम्[4]॥ 1-23॥ [96]

---

1. काश्मीर-पाठे केवलं वाक्यद्वयेन प्रविष्टो माधवीलता-सम्बन्धी वार्तालापो मैथिली-पाठे विस्तरतां गतः, स चानुसृतो बंगीय-पाठे। नवमालिकाया जलसेचनान्तरं यदि माधवीलताया अपि सेचनं भवति, तर्हि भ्रमरः कथं बहुकालानन्तरं नवमालिकातः उत्पतति?। अनयापि विसंगत्या माधवीलता-सम्बन्धिनी संवादमाला प्रक्षिप्ता सिध्यति। (आवर्जयतीति क्रियापदस्यार्थो यदि जलकुम्भं भूमौ स्थापयतीति स्यात्तर्हि, तस्य पदस्य द्विः प्रयोगोऽपि नोपपद्यते।)
2. काश्मीर-पाठेऽस्या रंगसूचनाया अर्थो, जलकुम्भं भूमौ स्थापयतीति दृश्यते। किन्तु मैथिल-बंगीय-पाठयोः कुम्भमधोमुखं करोतीति प्रतीयते। अतः तस्या हस्ते कुम्भो वर्तते, येन च सा हस्तेनैकेनैव भ्रमरं दूरीकरोति।
3. मैथिल-पाठानुसारि तिङन्तं पदमत्र वर्तते।
4. श्लोकोऽयं "सस्पृह" मिति रंगसूचनया सह मैथिली-बंगीय-पाठयोः दृश्यते। किन्तु काश्मीर-पाठेऽयं नास्ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अपि च (सासूयमिव)

चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचरः।
कर[1] व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं
वयं तत्त्वान्वेषान्[2] मधुकर हतास्त्वं खलु कृती॥ 1-24॥ [97]

शकुन्तला- हला, परित्ताअध मं इमिणा दुट्ठमहुअरेण[3] अहिभूअमाणं। (सख्यौ, परित्रायेथाम् मामनेन दुष्टमधुकरेणाभिभूयमानाम्। [98]

उभे- (सस्मितम्) काओ अम्हे परित्ताणे। एत्थ दाव दुस्सन्तं सुमर, जदो राअरक्खिदाइं तवोवणाइं।
(के आवाम् परित्राणे। अत्र तावत् दुःषन्तं स्मर, यतः राजरक्षितानि तपोवनानि।) [99]

राजा- अवसरः खल्वयम् आत्मानं दर्शयितुम्। न भेतव्यम् ....। (इत्यर्धोक्ते)
(अपवार्य) एवं राजाऽहमिति परिज्ञानं भवेत्।
भवतु, अतिथिसमाचारमवलम्बिष्ये[4]। [100]

शकुन्तला- ण एसो दुव्विणीदो[5] विरमदि। ता अण्णदो गमिस्सं। (पादान्तरे सदृष्टि-विक्षेपम्) हद्धी हद्धी। कधं इदो वि मं अणुसरदि। ता परित्ताअध मं। (नैषः दुर्विनीतः विरमति, तदन्यतः गमिष्यामि। हा धिक्, हा धिक्, इतोऽपि मामनुसरति। तत्परित्रायेथाम् माम्।) [101]

राजा- (सत्वरमुपगम्य) आः-

कः पौरवे वसुमतीं[6] शासति शासितरि दुर्विनीतानाम्।
अयमाचरत्यविनयं मुग्धासु तपस्विकन्यासु॥ 1 -25॥ [102]

(सर्वा राजानं दृष्ट्वा किंचिदिव सम्भ्रान्ताः।) [103]

अनुसूया[7]- अज्ज, ण किं पि अच्चाहिदं। किं तु इअं णो पिअसही महुअरेण आउलीअमाणा कादरीभूदा।
(आर्य, न किमप्यत्याहितम्। किन्तु, इयम् नौ प्रियसखी मधुकरेणाकुलीक्रियमाणा कातरीभूता।) (इति शकुन्तलां दर्शयति।) [104]

राजा- (शकुन्तलामुपेत्य) अयि तपो वर्धते[8]। [105]

(शकुन्तला ससाध्वसम् अवनतमुखी[9] तिष्ठति।) [106]

अनुसूया- इदाणिं अदिधिविसेसलम्भेण। (इदानीमतिथिविशेषलाभेन।) [107]

---

1. काश्मीर-पाठे "कर्णान्तिकगतः। करौ०" इति। किन्तु मैथिल-बंगीयपाठानुसारेण त्वेकेनैव हस्तेन भ्रमरस्याऽपसारणम् अभिनीयते।
2. काश्मीर-पाठे "वयं देवैर्मौग्ध्यान्" इति पठ्यते।, बंगीय-पाठेऽत्र "लोलां दृष्टिमि" त्यधिकः श्लोकोऽपि।
3. मैथिल-पाठमनुसृत्य पाठान्तरमिदं स्वीक्रियते।
4. काश्मीर-पाठे "ऽतिथिसमुचिताचारसत्कारम्०" इति।, मैथिल-पाठे "त्वतिथिसत्कारम्०" इति।
5. काश्मीर-पाठे "ऽतिधृष्टः" इति। बंगीय-पाठे तु मैथिल-पाठानुसरणं दृश्यते।
6. शब्दोऽयं काश्मीर-पाठे वर्तमानस्य राज्ञः पूर्वपरिणीताया "कुलप्रभे" ति नाम्नो मूलगामित्वं सूचयति।
7. काश्मीर-बंगीयपाठयोरियमुक्तिः केवलयाऽनसूययैवोच्चार्यते। रंगकर्मिणां भेदादेवाभिनयभेदो जायते।
8. प्रश्नोऽयं मैथिल-पाठमनुसृत्यैव।
9. मैथिल-पाठे "ससाध्वसाधोमुखी" ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रियंवदा- साअदं अज्जस्स। हला सउन्तले, गच्छ उडआदो फलमिस्सं अग्घं उवहर। इदं पि पादोदअं भविस्सदि। (स्वागतमार्यस्य, सखि शकुन्तले, गच्छ कुटजात्फलमिश्रम् अर्घमुपहर। इदमपि पादोदकं भविष्यति।) [108]

राजा- भवति, सूनृतयैव वाचा[1] कृतमातिथ्यम्। [109]

अनुसूया- तेण हि इमस्सिं सहावसीदलाए सत्तवण्णवेदिआए उववि‍सिअ परिस्समं अवणेदु अज्जो।
(तेन ह्यस्यां स्वभावशीतलायां सप्तपर्णवेदिकायामुपविश्य परिश्रममपनयतु आर्यः।) [110]

राजा- ननु यूयमप्यनेन धर्मकर्मणा[2] परिश्रान्ताः। तन्मुहूर्तमुपविशत। [111]

प्रियंवदा- (जनान्तिकम्) हला सउन्तले, उइदं णो अदिधिपज्जुवासणं। ता एहि उवविसम्ह। (सखि शकुन्तले, उचितं नः अतिथिपर्युपासनम्। तदेहि उपविशामः। (इति सर्वा उपविशन्ति) [112]

शकुन्तला- (आत्मगतम्) किं णु क्खु इमं जणं पेक्खिअ तवोवणविरोहिणो विआरस्स गमणीअ म्हि संवुत्ता।
(किन्नु खलु इमं जनं प्रेक्ष्य तपोवनविरोधिनः विकारस्य गमनीया अस्मि संवृत्ता।) [113]

राजा- (सर्वा अवलोक्य) अहो, समानवयोरूपरमणीयं[3] सौहार्दमत्रभवतीनाम्। [114]

प्रियंवदा- (जनान्तिकम्) हला अणुसूए, को णु क्खु एसो दुरवगाहगम्भीराकिदी महुरं आलवन्तो पहुत्तदक्खिण्णं वित्थारेदि। (सखि अणुसूये, को नु खल्वेषः दुरवगाहगम्भीराकृतिः[4] मधुरमालपन् प्रभुत्वदाक्षिण्यम् विस्तारयति[5]।) [115]

अनुसूया- हला, ममावि कोदूहलं। पुच्छिस्सं दाव णं। (प्रकाशम्) अज्जस्स महुरालावजणिदो विस्सम्भो मं आलावेदि। कदरो उण अज्जेण राएसिवंसो[6] अलंकरीअदि, कदरो वा देसो विरहपज्जुस्सुओ[7] करीअदि। किं णिमित्तं अज्जेण सुउमारेण[8] तवोवणागमणपरिस्समे अप्पा उवणीदोत्ति। (सखि, ममापि कौतुहलम्। प्रक्ष्यामि तावदेनम्। आर्यस्य मधुरालापजनितः विश्रम्भः मामालापयति। कतरः पुनरार्येण राजर्षिवंशः अलङ्क्रियते, कतरः वा देशः विरहपर्युत्सुकः क्रियते। किन्निमित्तम् आर्येण सुकुमारेण तपोवनागमनपरिश्रमे आत्मा उपनीतः इति।) [116]

शकुन्तला- (आत्मगतम्) हिअअ, मा उत्तम्म, जं तए चिन्तिदं तं अणुसूआ मन्तेदि। (हृदय, मा उत्ताम्य। यत्त्वया चिन्तितं तद् अनुसूया मन्त्रयते।) [117]

राजा- (स्वगतम्[9]) कथमिदानीमात्मानं निवेदयामि, कथं वात्मनः परिहारं करोमि। (विचिन्त्य) भवत्वेवं तावत्। (प्रकाशम्) भवति, वेदविदस्मि राज्ञः पौरवस्य नगरधर्माधिकारे नियुक्तः पुण्याश्रमदर्शनप्रसङ्गेन[10] धर्मारण्यमिदमायातः। [118]

अनुसूया- सणाधा धम्मआरिणो। (सनाथाः धर्मचारिणः।) [119]

(शकुन्तला शृङ्गारलज्जां नाटयति[11]) [120]

---

1. मैथिल-पाठे "सूनृतेन वचसे" ति।
2. शब्दोऽयं काश्मीर-पाठेन सह संगच्छते। मैथिल-पाठे तु केवलं "कर्मणा०" इत्येव।
3. अयमपि पाठः काश्मीर-पाठेन सह साम्यं भजते। मैथिल-पाठे "०रूप०" इति शब्दो नास्ति।
4. काश्मीर-पाठे "मधुरगम्भीराकृतिरि" ति।, मैथिल-पाठे "चतुरगम्भीराकृतिरि" ति।
5. काश्मीर-पाठे "प्रभवन्तं दाक्षिण्यमिव करोती" ति।, मैथिल-पाठे "प्रभूतदाक्षिण्यं विज्ञापयती" ति।
6. काश्मीर-पाठे "वण्णं अलंकरेदि" इति।, मैथिल-पाठे च "वण्णो अज्जेण अलंकरीअदि" इति।
7. काश्मीर-पाठे प्रश्नोऽयं नास्ति।, मैथिल-पाठे तु "कदमो वा पदेसो विरहपज्जुसुओ०" इति।
8. मैथिल-पाठे "कुसुमसुकुमारेणे" ति।
9. स्वगतमिति रंगसूचनया प्रदत्तमिदं वाक्यं प्रक्षिप्तं स्यात्। नाट्यशास्त्रे (25-88) केवलमात्मगतमित्यस्यैव विधानात्। (दशरूपककारेण 1-64 इत्यत्र स्वगतमिति शब्दः प्रयुक्तः, स च परवर्तिनि काले वर्तते।)
10. काश्मीर-पाठ "आश्रमिणामविघ्नक्रियोपलम्भाये" ति।, किन्तु बंगीय-पाठे मैथिलपाठानुसरणं दृश्यते।
11. काश्मीर-पाठे "निरूपयती" ति।, मैथिल-पाठे "रूपयती" ति। (रंगकर्मिणामेते पाठभेदाः स्युः।)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

सख्यौ- (उभयोराकारं विदित्वा जनान्तिकम्) हला सउन्तले, जइ अज्ज तादो इध संणिहिदो भवे। (सखि शकुन्तले, यद्यद्य तातः इह सन्निहितः भवेत्।) [121]

शकुन्तला- [1]तदो किं भवे। (ततः किं भवेत्।) [122]

उभे- तदो जीविदसव्वस्सेणावि इमं अदिधिविसेसं किदत्थं करेदि। (ततः जीवितसर्वस्वेनाऽपीमम् अतिथिविशेषं कृतार्थं करोति।) [123]

शकुन्तला- (सकृतक-कोपम्) अवेध, किं पि हिअए कदुअ मन्तेध। ण वो वअणं सुणिस्सं। (अपेतम्, किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रयेथे। न वां वचनं श्रोष्यामि[2]।) [124]

राजा- वयमपि तावद्भवत्यौ सखीगतं किं चित्पृच्छामः। [125]

उभे- अज्ज अणुग्गहे वि अब्भत्थणा। (आर्य, अनुग्रहे अप्यभ्यर्थना।) [126]

राजा- तत्रभवान् कण्वः शाश्वते ब्रह्मणि वर्तते, इयं च वः सखी तस्यात्मजेति कथमेतत्। [127]

अनुसूया- सुणादु अज्जो, अत्थि कोसिओ त्ति गोत्तणामहेओ महप्पहावो राएसी। (शृणोत्वार्यः, अस्ति कौशिकः इति गोत्रनामधेयः महाप्रभावो राजर्षिः।) [128]

राजा- तत्रभवान्[3] कौशिकः। [129]

अनुसूया- तं सहीए पहवं अवगच्छ। उज्झिदसरीरसंवड्ढणाए उण तादकण्णो से पिदा। (तं सख्याः प्रभवमवगच्छ। उज्झितशरीरसंवर्धनया पुनः तातकण्वः अस्याः पिता।) [130]

राजा- उज्झित शब्देन जनितं नः कुतूहलम्। तदा मूलाच्छ्रोतुमिच्छामः। [131]

अनुसूया- सुणादु अज्जो, पुरा किल तस्स राएसिणो उग्गे तवसि वट्टमाणस्स कधं पि[4] जादसङ्केहिं देवेहिं मेणआ णाम अच्छरा णिअमविग्घआरिणी पेसिदा। (शृणोत्वार्यः, पुरा किल तस्य राजर्षेः उग्रे तपसि वर्तमानस्य कथमपि जातशङ्कैः देवैः मेनका नामाप्सराः नियमविघ्नकारिणी प्रेषिता।) [132]

राजा- अस्त्येतदन्यसमाधिभीरुत्वं देवानाम्। ततस्ततः। [133]

अनुसूया- तदो वसन्तोदाररमणीए समए उन्मादइत्तअं ताए रूवं पेक्खिअ। (ततो वसन्तोदाररमणीये समये उन्मादयितृकं तस्याः रूपं प्रेक्ष्य।) (इत्योर्धोक्ते लज्जां नाटयति[5]) [134]

राजा- पुरस्तादवगम्यत एव। सर्वथाऽप्सरःसम्भवैषा। [135]

अनुसूया- अध इं। (अथ किम्।) [136]

राजा- उपपद्यते,

> **मानुषीभ्यः[6] कथं नु स्यादस्य रूपस्य संभवः।**
> **न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्॥** 1 -26॥ [137]

---

1. काश्मीर-पाठे "सभ्रूभेदमि" ति रंगसूचना वर्तते। नास्ति तादृशी कापि रंगसूचना मैथिल-पाठे।
2. काश्मीर-पाठे प्रारम्भे "सरोषम्" इति रंगसूचना, ततो वाक्यान्ते "परावृत्य तिष्ठती" त्यपि सूचना।
3. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "प्रकाशस्तत्रभवान्नि" ति पठ्यते।
4. काश्मीर-पाठे "किमपी" ति।, मैथिल-पाठे "कहिं कहिं पि" (कथं कथमपि) इति।
5. काश्मीर-पाठे "लज्जया विरमती" ति।, मैथिल-पाठे "लज्जां रूपयती" ति।
6. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "मानुषीष्वि" ति।, बंगीय-पाठे प्रयुक्ता पञ्चमी विभक्तिर्न व्याकरणसम्मता।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(शकुन्तला सव्रीडा[1]ऽधोमुखी तिष्ठति) [138]

राजा- (आत्मगतम्) हन्त, लब्धावकाशा मे मनोरथाः[2]। [139]

प्रियंवदा- (सस्मितं शकुन्तलां विलोक्य[3]) पुणो वि वत्तुकामो विअ अज्जो। (पुनः अपि वक्तुकामः इव आर्यः।) [140] (शकुन्तला सखीमङ्गुल्या तर्जयति।) [141]

राजा- सम्यगुपलक्षितं भवत्या। अस्ति नः सुचरित[4]श्रवणलोभादन्यदपि प्रष्टव्यम्। [142]

प्रियंवदा- तेण हि अलं विआरिदेण। अणिज्जन्तणणिओओ क्खु तवस्सिअणो। (तेन हि अलं विचारितेन। अनियन्त्रणनियोगः[5] खलु तपस्विजनः।) [143]

राजा- एतत्पृच्छामि-

वैखानसं किमनया व्रतमाप्रदानाद् व्यापाररोधि मदनस्य निषेवितव्यम्।
अत्यन्तमेव सदृशे[6]क्षणवल्लभाभिराहो निवत्स्यति समं हरिणाङ्गनाभिः।। 1-27।। [144]

प्रियंवदा- अज्ज, धम्माअरणपरव्वसो अअं जणो। गुरुणो उण से अणुरूववरप्पदाणे संकप्पो।
(आर्य, धर्माचरणपरवशोऽयं जनः। गुरोः पुनः अस्याः अनुरूपवरप्रदाने सङ्कल्पः।) [145]

राजा- [7](आत्मगतं सहर्षम्)

भव हृदय साभिलाषं सम्प्रति सन्देहनिर्णयो जातः।
आशङ्कसे यदग्निं तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नम्।। 1-28।। [146]

शकुन्तला- (सरोषमिव) अणुसूए, गमिस्सं अहं। (अनुसूये, गमिष्याम्यहम्।) [147]

अनुसूया- किं णिमित्तं। (किं निमित्तम्।) [148]

शकुन्तला- इमं असंबद्धप्पलाविणिं पिअंवदं अज्जाए गोदमीए गदुअ णिवेदइस्सं। (इमामसंबद्ध-प्रलापिनीम् प्रियंवदाम् आर्यायै गौतम्यै गत्वा निवेदयिष्यामि। (इत्युत्तिष्ठति) [149]

अनुसूया- सहि, ण जुत्तं अस्समवासिणो जणस्स अकिदसक्कारं अदिधिविसेसं उज्झिअ सच्छन्ददो गमणं।
(सखि, न युक्तं आश्रमवासिनः जनस्य अकृतसत्कारमतिथिविशेषम् उज्झित्वा स्वच्छन्दतः गमनम्।) [150]

(शकुन्तला उत्तरम् अदत्त्वैव प्रस्थिता[8]) [151]

राजा- (अपवार्य) कथं गच्छति ......। (उत्थाय जिघृक्षुरिवेच्छां निगृह्य)अहो, चेष्टाप्रतिरूपिका कामिजनमनोवृत्तिः[9]। अहं हि-

---

1. काश्मीर-पाठे नास्त्ययं शब्दः।
2. काश्मीर-मैथिल-पाठयोरेकवचनं पठ्यते। एवञ्च तयोर्वाक्यमेकमधिकम्। तद्यथा, "किन्तु परिहासोदाहृतां वरप्रार्थनां श्रुत्वापि, न श्रद्धते कातरं / व्रतद्वैतकातरं मे मनः।", बंगीय-पाठे निष्कासितमिदं वाक्यम्।
3. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "नायकाभिमुखी भूत्वे" त्यधिकम्।, बंगीय-पाठे संक्षेपीकरणं न समीचीनं भाति।
4. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "सच्चरित॰" इति।, बंगीय-पाठे सरलीकरणस्याशयः स्यात्।
5. काश्मीर-पाठे "नियन्त्रणायुक्त" इति।, मैथिल-पाठे "ऽविचारनियन्त्रणनियोग" इति।
6. काश्मीर-पाठे "ऽत्यन्तमात्मसदृशे॰" इति।, बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
7. काश्मीर-पाठे "न खलु दुर्लभैषा प्रार्थने" ति पठ्यते।
8. काश्मीर-पाठे "शकुन्तला न किञ्चिदुक्त्वा प्रस्थितैवे" ति पठ्यते।
9. केवलं मैथिल-पाठे "चेष्टाप्रतिरूपिणी कामिजनमनोवृत्तिरि" ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अनुयास्यन् मुनितनयां सहसा विनयेन वारितप्रसरः।
स्वस्थानादचलन्नपि गत्वेव[1] पुनः प्रतिनिवृत्तः॥ 1-29॥ [152]

प्रियंवदा- (शकुन्तलामुपसृत्य) हला चण्डि, ण लम्भदि गन्तुं। (सखि चण्डि, न लभ्यते गन्तुम्[2]) [153]

शकुन्तला- (परिवृत्य सभ्रूक्षेपम्) किं ति। (किमिति।) [154]

प्रियंवदा- दुवे मे रुक्खसेअणके धारेसि। तेहिं दाव अत्ताणअं मोओवेहि, तदो गमिस्ससि। (द्वे मे वृक्षसेचनके धारयसि। ताभ्यां तावदात्मानम् मोचय। ततः गमिष्यसि।) [155]

(इति बलान्निवर्तयति[3]) [156]

राजा- वृक्षसेचनाद् एवात्रभवतीं परिश्रान्तामवगच्छामि। तथा ह्यस्याः-

स्रस्तांसावतिमात्रलोहिततलौ बाहू घटोत्क्षेपणाद्
अद्यापि स्तनवेपथुं जनयति श्वासः प्रमाणाधिकः।
बद्धं कर्णशिरीषरोधि वदने घर्माम्भसां जालकं
बन्धे स्रंसिनि चैकहस्तयमिताः पर्याकुला मूर्धजाः[4]॥ 1-30॥ [157]

तदहमेनामनृणां करोमि। (इत्यङ्गुरीयकं ददाति)॥ [158]

(सख्यौ प्रतिगृह्य [5]नामाक्षराणि वाचयित्वा च परस्परमवलोकयतः।) [159]

राजा- अलम् अन्यथा संभावनया। राज्ञः प्रतिग्रहोऽयम्[6]। [160]

प्रियंवदा- तेण हि णारिहदि इमं अङ्गुरीअविओअं कादुं अज्जो। अज्जस्स वअणादो ज्जेव अरिणा एसा भोदु। (तेन हि, न अर्हति इमम् अङ्गुरीयवियोगं कर्तुमार्यः। आर्यस्य वचनादेवानृणा एषा भवतु।) [161]

अनुसूया[7]- हला सउन्तले, मोआविदा सि अणुकम्पिणा अज्जेव अध वा महाराएण।ता कहिं दाणिं गमिस्ससि। (सखि शकुन्तले, मोचिताऽसि अनुकम्पिनाऽऽर्येण, अथवा महाराजेन। तत्कुत्र इदानीं गमिष्यसि।) [162]

शकुन्तला- (आत्मगतम्) ण एदं परिहरिस्सं, जइ अत्तणो पहवे। (नैतम् परिहरिष्यामि, यदि आत्मनः प्रभवामि।) [163]

प्रियंवदा- संपदं किं ण गच्छीअदि। (साम्प्रतं किं न गम्यते।) [164]

शकुन्तला- इदाणिं पि किं तुह आअत्त म्हि। जदा मे रोअदि तदा गमिस्सं। (इदानीमपि किं तवायत्ताऽस्मि। यदा मे रोचते तदा गमिष्यामि[8]।) [165]

राजा- (शकुन्तलां विलोकयन्नात्मगतम्) किं नु खलु यथा वयमस्यामेवमियमप्यस्मान् प्रति स्यात्।
अथवा लब्धावकाशा मे मनोवृत्तिः। [166]

---

1. काश्मीर-पाठे "स्थानाद् अनुच्चलन्नपि गत्वैवे" ति।
2. काश्मीर-पाठे "न ते युक्तं गन्तुमि" ति।, मैथिल-पाठे तु "न लम्भसि गन्तुमि" ति।
3. काश्मीर-पाठे "०निवारयती" ति पठ्यते। (आङ्गिकाभिनये भेदो भविष्यति)
4. काश्मीर-पाठे "लोहितकरौ", मैथिल-पाठे "घर्माम्भसा", मैथिल-पाठे "कुन्तला" इति।
5. मैथिल-पाठ "उभे प्रतिगृह्ये" ति।
6. काश्मीर-पाठे "राज्ञः परिग्रहोऽयमि" ति।, मैथिल-पाठे "राजप्रतिग्रहोऽयमि" ति।
7. काश्मीर-पाठ इयमुक्तिः प्रियंवदयैवोच्यते। मैथिल-रंगकर्मिभिरियन्त्वनुसूयाया मुखे स्थापिता, शब्दान्तरिता च। बंगीय-रंगकर्मिभिरन्यथैव परिवर्तितोक्तिरियम्। अनेनाप्येतेषां रंगावृत्तित्वं सिध्यति।
8. बंगीय-पाठे वर्तमानाः 161 त आरभ्य 165 पर्यन्ता उक्तयोऽन्यैः काश्मीरादिपाठैः सह तुलनीयाः।
वक्तृभेदेन काकुभेदेन च सर्वत्र रंगकर्मिताया वैविध्यं परिलक्ष्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः
कर्णं ददात्यवहिता मयि भाषमाणे।
कामं न तिष्ठति मदाननसंमुखीयं
भूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्याः॥ 1-31॥ [167]

(नेपथ्ये)

[<भो भोस्तपस्विनः। तपोवनसन्निहितसत्त्वरक्षणाय सज्जीभवन्तु भवन्तः। प्रत्यासन्नः किल मृगयाविहारी पार्थिवो दुःषन्तः।

तुरगखुरहतस्तथा हि रेणुर्विटपनिषक्त[1] जलार्द्रवल्कलेषु।
पतति परिणतारुणप्रकाशः शलभसमूह इवाश्रमद्रुमेषु॥ 1-32॥ [168]

राजा[2]- (स्वगतम्) अहो धिक्, कथं मदन्वेषिणः सैनिकास्तपोवनमभिरुन्धन्ति। [169]>][3]

(पुनर्नेपथ्ये)

भो भोस्तपस्विनः। पर्याकुलीकुर्वन् वृद्धस्त्रीकुमारकानेष प्राप्तः।

तीव्राघातादभिमुखतरुस्कन्धभग्नैकदन्तः
प्रौढाकृष्टव्रततिवलयासज्जनाज्जातपाशः।
मूर्तो विघ्नस्तपस इव नो भिन्नसारङ्गयूथो
धर्मारण्यं विरुजति गजः स्यन्दनालोकभीतः[4]॥ 1-33॥ [170]

(सर्वाः श्रुत्वा ससंभ्रममुत्तिष्ठन्ति।) [171]

राजा- अहो धिक् , कथमपराद्धस्तपस्विनामस्मि। भवतु तावत्, प्रतिगच्छामि। [172]

सख्यौ- महाभाअ, इमिणा हत्थिसंभमेण पज्जाउलाओ म्ह। ता अणुजाणाहि णो उडअगमणे[5]।

(महाभाग, अनेन हस्तिसंभ्रमेण पर्याकुलाः स्मः। तदनुजानीहि नः उटजगमने।) [173]

अनुसूया- (शकुन्तलां प्रति) हला सउन्तले, आउला अज्जा गोदमी भविस्सदि। ता एहि। सिग्घं एक्कत्थाओ होम्ह। (सखि शकुन्तले, आकुला आर्या गौतमी भविष्यति। तदेहि शीघ्रम् एकस्थाः भवामः।) [174]

शकुन्तला- (गतिसंरोधं रूपयित्वा) हद्धी हद्धी, ऊरुत्थम्भविअल म्हि संवुत्ता। (हा धिक्, हा धिक्, ऊरुस्तम्भविह्वलास्मि संवृत्ता।) [175]

राजा- स्वैरं स्वैरं गच्छन्तु भवत्यः। वयमप्याश्रमबाधा यथा न भवति तथा प्रयतिष्यामहे। [176]

सख्यौ- महाभाअ, विदिदभूइट्ठो सि। णं सम्पदं जं उवआरमज्झत्थदाए अवरद्धाओ म्ह तं मरिसेसि।

असंभाविदसक्कारं भूओवि पच्चवेक्खणणिमित्तं सपरिहारं अज्जं विण्णवेमो।

---

1. काश्मीर-पाठे "०विषक्त०" इति।
2. काश्मीर-पाठे राज्ञ उक्तिस्तु "अहो धिक्, एष खलु तथा निभृतचारी भूत्वा, तीव्रापात०" इति वर्तते। अत्र लिपिकारस्यानवधानाद् "पुनर्नेपथ्य" इति रंगसूचना विलुप्ता स्यात्। यतोहि, 169 श्लोकानन्तरं प्राप्यत एव।
3. सत्त्वरक्षणाय तपस्विनः सज्जीभवन्त्विति वचनस्य नास्त्यावश्यकता। यतो हि- आश्रममृगोऽयमिति श्रुत्वा राजा बाणं प्रतिसंहृतवानिति पूर्वं निर्दिष्टमेव। अतः कोष्ठान्तर्गतः पाठ्यांशः प्रक्षिप्तः स्यात्।
4. काश्मीर-पाठे "तीव्रापातप्रतिहत०", द्वितीये च पादे "प्रौढासक्तव्रततिवलयासङ्गसञ्जातपाशः" इति।
5. काश्मीर-पाठे "अनसूया" भणति। एवं च तत्र "अक्कन्दिदेण" इति पाठभेदः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(महाभाग विदितभूयिष्ठः असि। ननु साम्प्रतं यत् उपचारमध्यस्थतया अपराद्धा स्मः, तत् मर्षिष्यसि। असम्भावितसत्कारं भूयोऽपि प्रत्यवेक्षणनिमित्तम्। सपरिहारम् आर्यम् विज्ञापयामः।) [177]

राजा- मा मैवम्। दर्शनेनैवात्रभवतीनां पुरस्कृतोऽस्मि[1]। [178]

शकुन्तल- अहिणवकुससूइपरिक्खदं मे चलणं, कुरुवअसाहापरिलग्गं च मे वक्कल[2]। ता पडिवालेध मं जाव णं मोआवेमि। (अभिनवकुशसूचिपरिक्षतं मे चरणं, कुरुबकशाखापरिलग्नम् च मे वल्कलम्। तत्प्रतिपालयतं मां यावत् एतन् मोचयामि।) [179]

(इति राजानमवलोकयन्ती सह सखीभ्यां निष्क्रान्ता।) [180]

राजा- (निःश्वस्य) गताः सर्वाः। भवतु, अहमपि गच्छामि। शकुन्तलादर्शनादेव मन्दौत्सुक्योऽस्मि नगरगमनं प्रति। यावदनुयात्रिकानतिदूरे तपोवनस्य निवेशयामि। न खलु शक्तोऽस्मि शकुन्तलाव्यापारादात्मानं निवर्तयितुम्।

कुतः -

गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चाद् असंस्थितं[3] चेतः।
चीनांशुकमिव[4] केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य॥ 1-34॥ [181]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे) [182]

॥ इत्याखेटको नाम[5] प्रथमोऽङ्कः॥ [183]

---

1. बंगीय-पाठे वर्तमानाः 174 तः 178 पर्यन्ता उक्तयः समुचिताः प्रतिभान्ति, किन्तु काश्मीर-पाठे ता विपर्यस्ताः सन्तीति प्रतीयते। रंगकर्मिभिर्लाघवार्थमेतादृशं कृतं स्यादित्यपि प्रतीयते।
2. यद्यपि काश्मीर-पाठेऽत्र शकुन्तलया विलम्बनाय द्वितीयं व्याजं नोपन्यस्तम्। संक्षेपीकरणस्याशयेन केनापि तद् दूरीकृतं स्यादिति प्रतीयते।
3. काश्मीर-पाठे "ऽसंवृतम्" इति।
4. काश्मीर-पाठे "चिह्नांशुकमिव" इति।
5. काश्मीर-पाठे प्रत्येकानाम् अङ्कानां नामानि न दीयन्ते।, मैथिल-पाठमनुसृत्यात्र बंगीय-पाठे नामकरणं कृतमिति दृश्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ द्वितीयोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशति विदूषकः) [1]

विदूषकः- (निःश्वस्य) ही माणहे[1] भो। हदो म्हि एदस्स मिअआसीलस्स रण्णो वअस्सभावेण णिव्विण्णो। अअं मिओ अअं वराहो त्ति मज्झंदिणे वि गिम्हे विरलपादवच्छाआसुं वणराईसुं आहिण्डिअ पत्तसंकरकसाअविरसाइं उण्हकडुआइं पिबीअन्ति गिरिणदी-सलिलाइं। अणिअदवेलं च उण्हुण्हं मंसं भुञ्जीअदि। तुरअगआणं च सद्देण रत्तिं पि णत्थि पकामसुइदव्वं। महन्ते ज्जेव पच्चूसे दासीएपुत्तेहिं साउणिअलुद्धेहिं कण्णोवघादिणा वणगमणकोलाहलेण पबोधीआमि। एत्तिकेणावि दाव पीडा ण वुत्ता जदो गण्डस्स उवरि विडआ संजाआ। जेण किल अम्हेसुं अवहीणेसुं तत्थभवदा मिआणुसारिणा अस्समपदं पविट्ठेण मम अधण्णदाए सउन्तला णाम का वि तावसकण्णआ दिट्ठा। तं पेक्खिअ संपदं णअरगमणस्स कधं पि ण करेदि। एदं जेव चिन्तअन्तस्स मम अच्छीसुं पहादा रअणी। ता का गदी। जाव णं किदाआर परिकम्मं पिअवअस्सं पेक्खामि। (परिक्रम्यावलोक्य च)एसो बाणासणहत्थो हिअअणिहिदपिअअणो वणपुप्फमालाधारी इदो ज्जेव आअच्छदि पिअवअस्सो। भोदु। अङ्गामद्दविअलो भविअ चिट्ठिस्सं। एवं पि णाम विस्सामं लहेअं।। [2]

(ही माणवे भोः। हतोऽस्मि एतस्य मृगयाशीलस्य राज्ञः वयस्यभावेन निर्विण्णः। अयं मृगः.., अयं वराहः.., इति मध्यन्दिने अपि ग्रीष्मे विरलपादपच्छायासु वनराजीषु आहिण्ड्य पत्रसंकरकषायविरसानि उष्णकटुकानि पीयन्ते गिरिनदीसलिलानि। अनियतवेलं च उष्णोष्णं मासं भुज्यते। तुरगगजानां च शब्देन रात्रिमपि नास्ति प्रकामस्वप्तव्यं, महति एव प्रत्यूषे दास्याःपुत्रैः शाकुनिकलुब्धैः कर्णोपघातिना वनगमनकोलाहलेन प्रबोध्ये। एतावतापि तावत्पीडा न वृत्ता, यतः गण्डस्योपरि विटकाः संजाताः। येन किल अस्मास्ववहीनेषु तत्रभवता मृगानुसारिणा आश्रमपदं प्रविष्टेन ममाधन्यतया शकुन्तला नाम कापि तापसकन्यका दृष्टा। तां प्रेक्ष्य साम्प्रतं नगरगमनस्य कथामपि न करोति। एतदेव चिन्तयतः मम[2] अक्ष्णोः प्रभाता रजनी। तत् का गतिः। यावदेनं कृताचारपरिकर्माणं प्रियवयस्यं प्रेक्षे। एषः बाणासनहस्तः हृदयनिहितप्रियजनः वनपुष्पमालाधारी[3] इतः एवागच्छति प्रियवयस्यः। भवतु, अङ्गामर्दविकलः भूत्वा स्थास्यामि। एवमपि नाम विश्रामं लभेय।) (इति दण्डकाष्ठम् अवलम्ब्य स्थितः) [3]

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो राजा[4]) [4]

राजा- (आत्मगतम्)

कामं प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भावदर्शनाश्वासि।
अकृतार्थेऽपि मनसिजे रतिम्[5] उभयप्रार्थना कुरुते॥ 2-1॥ [5] (स्मितं कृत्वा)

एवमात्माभिप्रायसंभावितेष्टजनचित्तवृत्तिः· प्रार्थयिता विप्रलभ्यते[6]। कुतः,

---

1. काश्मीर-पाठे "भोः दिढ म्हि०" इति पठ्यते।
2. मैथिल-पाठे "मम अधन्यायाः पुत्रस्ये" ति विशेषणमधिकं वर्तते।
3. मैथिल-पाठमनुसृत्यैवायं पाठः। (अत्र यवनीनां निर्देशो निष्कासितः।)
4. अनया रंगसूचनया ज्ञायते यद् रंगोपरि त्वेकाकिनो राज्ञः प्रवेशो भवति। यवनिका न सन्ति।
5. मैथिल-पाठे "रतिरि" ति प्रथमान्तं पदम्। बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीरी-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठे "विडम्ब्यत" इति पठ्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

स्निग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि नयने यत्प्रेरयन्त्या तया
यातं यच्च नितम्बयोर्गुरुतया मन्दं विलासादिव।
मा गा इत्युपरुद्धया[1] यदपि तत्सासूयमुक्ता सखी,
सर्वं तत्किल मत्परायणम् अहो कामः स्वतां पश्यति॥2 - 2॥ [6]

विदूषकः- (तथा स्थित एव) भो राअं। ण मे हत्थो पसरदि। वाआमेत्तकेण जआवीअसि[2]।
(भो राजन्, न मे हस्तः प्रसरति। वाङ्-मात्रेण एव जाप्यसे।) [7]

राजा- (विलाक्य सस्मितम्) कुतोऽयं गात्रोपघातः। [8]

विदूषकः- कधं कुदो त्ति। सअं जेव अच्छिं भञ्जिअ[3] अस्सुकारणं पुच्छसि।
(कथं.... कुतः इति। स्वयमेवाक्षिं भङ्क्त्वा अश्रुकारणं पृच्छसि।) [9]

राजा- न खल्ववगच्छामि। भिन्नार्थमभिधीयताम्[4]। ([10]

विदूषकः- जं वेदसो खुज्जस्स लीलं विडम्बेदि तं किं अत्तणो पहावेण अध णदीवेअस्स[5]। [10]
(यद्वेतसः कुब्जस्य लीलां विडम्बयति तत्किमात्मनः प्रभावेण अथवा नदीवेगस्य।)

राजा- नदीवेगस्तत्र कारणम्। [11]

विदूषकः- ममावि भवं। (ममापि भवान्।)[6] [12]

राजा- कथमिव। [13]

विदूषकः- जुत्तं णाम एदं जं तए रज्जकज्जाइं तादिसं च अक्खलिदपदं पदेसं उज्झिअ वणचर- वित्तिणा भविदव्वं ति। किं एत्थ मन्तीअदु। अहं उण वम्हणो पच्चहं सावदाणुसरणेहिं संखोहिदसंधि बन्धणाणं अत्तणो अङ्गाणं अणीसो म्हि। ता पसीद। एक्काहं दाव विस्समीअदु। (युक्तं नाम एतत् यत् त्वया राजकार्याणि तादृशं च अस्खलितपदं प्रदेशमुज्झित्वा[7] वनचरवृत्तिना भवितव्यमिति। किमत्र मन्त्रयतामहं पुनः ब्राह्मणः प्रत्यहं श्वापदानुसरणैः संक्षोभितसन्धिबन्धानामात्मनः अङ्गानामनीशोऽस्मि। तत्प्रसीद, एकाहं तावद्विश्रम्यताम्।) [14]

राजा- (स्वगतम्) अयमेवमाह। ममापि कण्वसुताम् अनुस्मृत्य मृगयां प्रति निरुत्सुकं चेतः। [15]

[<तथा हि-

न नमयितुमधिज्यमुत्सहिष्ये
धनुरिदमाहितसायकं मृगेषु।
सहवसतिमुपेत्य यैः प्रियायाः
कृत इव लोचनकान्तिसंविभागः॥ 2 -3॥ [16] >][8]

---

1. मैथिल-पाठे "मा मा इत्युपरुद्धये" ति।
2. काश्मीर-पाठ इतः परं "जयतु जयतु भवान्" इत्यधिकम्।
3. काश्मीर-मैथिल-पाठयो "राकुलीकृत्ये" ति पठ्यते।
4. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं नास्ति।
5. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं नास्ति। मैथिल-पाठे कुब्जस्सेति।
6. काश्मीर-पाठे 10, 11, 12 इत्येता उक्तयो न सन्ति। तास्तु मैथिल-पाठे प्रक्षिप्ताः स्युः।
7. काश्मीर-पाठे "तादृशां च क्रीडाप्रसादानाम्" इति।
8. कोष्ठान्तर्गतः श्लोकः प्रक्षिप्तः स्यात्। शकुन्तलाया अनुस्मरणमेव राजानं मृगयां प्रति निरुत्सुकं कर्तुमलम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

विदूषकः- (राजानमवलोक्य) अत्थभवं किं पि हिअए कदुअ मन्तेदि। अरण्णे क्खु मए रुदिदं। (अत्रभवान् किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रयते। अरण्ये खलु मया रुदितम्।) [17]

राजा- (सस्मितम्) किमन्यत्। अनतिक्रमणीयं सुहृद्वाक्यमिति स्थितोऽस्मि। [18]

विदूषकः- (सपरितोषम्) तेण हि चिरं मे जीव। (तेन हि, चिरं मे जीव।) (इत्युत्थातुमिच्छति।) [19]

राजा- तिष्ठ, शृणु मे सावशेषं वचः। [20]

विदूषकः- आणवेदु भवं। (आज्ञापयतु भवान्।) [21]

राजा- विश्रान्तेन भवता ममान्यस्मिन्ननायासे कर्मणि सहायेन भवितव्यम्। [22]

विदूषकः- किं मोदअखज्जिआए। (किं मोदकखादिकायाम्।) [23]

राजा- यद्वक्ष्यामि। [24]

विदूषकः- गहिदो खणो। (गृहीतः क्षणः[1]।) [25]

राजा- कः कोऽत्र भोः, [26]

(प्रविश्य) **दौवारिकः**- आणवेदु भट्टा। (आज्ञापयतु भर्ता।) [27]

राजा- रैवतक, सेनापतिस्तावदाहूयताम्। [28]

दौवारिकः- तथा। (इति निष्क्रम्य पुनः सेनापतिना सह प्रविश्य), एदु एदु अज्जो। एस आलावदिण्णकण्णो भट्टा इदो ज्जेव चिट्ठदि। उवसप्पदु णं अज्जो। (तथा एतु एतु आर्यः। एषः आलापदत्तकर्णः[2] भर्ता इतः एव तिष्ठति। उपसर्पत्वेनम् आर्यः। [29]

सेनापतिः- (राजानमवलोक्य स्वगतम्) कथं दृष्टदोषापि मृगया स्वामिनि केवलं गुणायैव संवृत्ता।

[< तथा हि देवः-

अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरकर्मा
रविकिरणसहिष्णुः स्वेदलेशैरभिन्नः।
अपचितमपि गात्रं व्यायतत्वादलक्ष्यं
गिरिचर इव नागः प्राणसारं बिभर्ति[3]।। 2 -4।। [30]>][4]

(उपगम्य) जयति जयति स्वामी। स्वामिन्। गृहीतमृगप्रचारसूचितश्वापदम् अरण्यम्। तत्किमन्यद् अनुष्ठीयताम्। [31]

राजा- भद्रसेन, भग्नोत्साहः[5] कृतोऽस्मि मृगयापवादिना माधव्येन। [32]

सेनापतिः- (अपवार्य[6]) सखे माधव्य, दृढप्रतिज्ञो भव[7]। अहं तावत्स्वामिनश्चित्तम् अनुवर्तिष्ये। [33]

---

1. मैथिल-पाठे "प्रणय" इति।
2. काश्मीर-पाठे "ऽनुवचनदत्तकर्ण इतो दत्तदृष्टिरि" ति। मैथिल-पाठे "ऽनुवचनदत्तकर्ण" इत्येव। बंगीय-पाठे सेनापतिना "ऽनवरतधनुर्ज्या०" (2-4) श्लोकस्योच्चारणात्प्राक् राज्ञः कृत "आलापदत्तकर्ण" इति विशेषणमयुक्तं प्रतिभाति।
3. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "०क्रूरपूर्वम्" इति। केवलं मैथिल-पाठे "क्लेशलेशैरभिन्नम्" इति।
4. कोष्ठान्तर्गतः श्लोकः प्रक्षिप्तः स्यात्। सूक्ष्मेक्षिकया विचार्यमाणेऽत्रानुगामिनः श्लोकार्थस्यैव कथनम्।
5. काश्मीर-पाठे "मन्दोत्साह" इति।
6. काश्मीर-मैथिल-पाठयो "जनान्तिकम्" इति। (अत्र रंगकर्मिताया भेदः परिलक्ष्यते।)
7. काश्मीर-पाठे "स्थिरप्रतिबन्धो भव" इति। मैथिल-पाठे "स्थिरप्रतिज्ञो भव" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(प्रकाशम्) देव, प्रलपत्वेष वैधेयः[1]। ननु प्रभुरेव निदर्शनम्[2]। पश्यतु देवः।

मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्साहयोग्यं वपुः
सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः।
उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले
मिथ्या हि व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग्विनोदः कुतः॥ 2 -5॥ [34]

विदूषकः:- (सरोषम्) अवेहि रे उच्छाहइत्तआ अवेहि[3]। अत्थभवं पइदिं आवण्णो। तुमं दाव दासीए पुत्तो अडईदो अडइं आहिण्ड जाव सिआलमिअलोलुवस्स कस्स वि जुण्ण-रिच्छस्स मुहे णिवडिदो होसि। (अपेहि रे उत्साहयितः, अपेहि। अत्रभवान् प्रकृतिमापन्नः, त्वं तावद् दास्याः पुत्रः अटवीतः अटवीम् आहिण्ड यावत् शृगालमृगलोलुपस्य[4] कस्यापि जीर्णर्क्षस्य मुखे निपतितः भवसि।) [35]

राजा- भद्रसेन, आश्रमसन्निकृष्टे स्थितोऽस्मीति वचस्ते नाभिनन्दामि। अद्य तावत्-

गाहन्तां महिषा निपानसलिलं शृङ्गैर्मुहुस्ताडितं
छायाबद्धकदम्बकं मृगकुलं रोमन्थमभ्यस्यतु।
विस्रब्धैः क्रियतां वराहपतिभिर्मुस्ताक्षतिः पल्वले
विश्रामं लभतामिदं च शिथिलज्याबन्धमस्मद्धनुः[5]॥ 2 -6॥ [36]

सेनापतिः:- यथा प्रभविष्णवे रोचते। [37]

राजा- तेन हि निवर्तय पूर्वगतान्धनुर्ग्राहिणः। यथा च सैनिकास्तपोवनं नाभिरुन्धन्ति दूरात् परिहरन्ति च तथा निषेद्धव्याः[6]। पश्य-

शमप्रधानेषु तपोवनेषु
गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः।
स्पर्शानुकूला अपि सूर्यकान्तास्ते
ह्यन्यतेजोऽभिभवाद् दहन्ति[7]॥ 2 -7॥ [38]

सेनापतिः:- यथाज्ञापयति स्वामी। [39]

विदूषकः:- भो उच्छाहइत्तआ। णिक्कम णिक्कम। (भोः उत्साहितः, निष्क्राम निष्क्राम[8]।) [40]

(सेनापतिर्निष्क्रान्तः)

राजा- (परिजनमवलोक्य) मृगयावेषमपनयन्तु भवन्तः[9]। रैवतक, त्वमपि स्वनियोगमशून्यं कुरु। [41]

रैवतकः:- जं महाराओ आणवेदि। (यत् महाराजः आज्ञापयति।) (इति निष्क्रान्तः) [42]

---

1. मैथिल-पाठे "माधव्य" इति। बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठ इतः परं "मृगया-गुणानामि" त्यधिकम्।
3. केवलं बंगीय-पाठ एवेदं वाक्यं प्राप्यते।
4. काश्मीर-पाठे "सीमाशृगालस्येवे" ति सेनापतेरुपमा। मैथिल-पाठे "वृद्धशृगाललोलुपस्ये" ति।
5. काश्मीर-पाठे "विश्वस्तैरि" ति, "विश्रान्तिमि" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिली-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठे "वनग्राहिण" इति। केवलं बंगीय-पाठे "नाभिरुन्धन्ती" ति पदं वर्तते।
7. काश्मीर-पाठे "तपोधनेष्वि" ति, "वमन्ती" ति।
8. काश्मीर-पाठे "गच्छ, साम्प्रतं दास्याः पुत्र" इति। मैथिल-पाठे "भो उत्साहयितः, निष्क्राम" इति।
9. मैथिल-पाठवदत्रापि बंगीय-पाठे राजा यवनीभिः परिवृत्तो नैव प्रविष्ट आसीत्। अतोऽसंगतमिदम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

विदूषकः- किदं भवदा णिम्मक्खिअं[1]। ता इमस्सिं पादवच्छाआविरइदविदाणसणाधे सिलादले उवबिसदु भवं, जाव अहं पि सुहासीणो होमि। (कृतं भवता निर्मक्षकम्। तदेतस्मिन्पादप-च्छाया-विरचितवितानसनाथे[2] शिलातले उपविशतु भवान्। यावदहमपि सुखासीनः भवामि।) [43]

राजा- गच्छाग्रतः। [44]

विदूषकः- एदु एदु भवं। (एतु एतु भवान्।) (उभौ परिक्रम्योपविष्टौ।) [45]

राजा- सखे माधव्य, अनवाप्तचक्षुःफलोऽसि, येन त्वया द्रष्टव्यानां परं न दृष्टम्[3]। [46]

विदूषकः- णं भवं जेव मे अग्गदो वट्टदि। (ननु भवानेव मे अग्रतः वर्तते।) [47]

राजा- सर्वः खलु कान्तमात्मानं पश्यति। अहं तु तामेवाश्रमललामभूतां शकुन्तलामधिकृत्य ब्रवीमि। [48]

विदूषकः- (स्वगतम्[4]) भोदु। ण से पसरं वड्ढाइस्सं। (प्रकाशम्) भो, जदो सा तावस-कण्णआ अणब्भत्थणीआ, तदो ताए किं दिट्ठाए। (भवतु, नास्य प्रसरं वर्धयिष्यामि। भोः यतः सा तापस-कन्यका अनभ्यर्थनीया[5], ततः तया किं दृष्टया।) [49]

राजा[6]- मूर्ख[7],

> **निराकृतनिमेषाभि[8] र्नेत्रपङ्क्तिभिरुन्मुखः।**
> **नवामिन्दुकलां लोकः केन भावेन पश्यति[9]॥ 2 -8॥ [50]**

न च परिहार्ये वस्तुनि दुःषन्तस्य मनः प्रवर्तते। [51]

विदूषकः- ता कधेहि। (तत्कथय।) [52]

राजा -

> **ललिताप्सरोभवं[10] किल मुनेरपत्यं तदुज्झिताधिगतम्।**
> **अर्कस्योपरि शिथिलं च्युतमिव नवमालिका[11] कुसुमम्॥ 2 -9॥ [53]**

विदूषकः- (विहस्य) भो, जधा कस्स वि पिण्डखजूरेहिं उव्वेइदस्स तिन्तिडिआए सद्धा[12] भोदि तधा अन्तेउर[13] इत्थीरदणपरिभोइणो[14] भवदो इअं पत्थणा। (भोः यथा कस्यापि पिण्डखर्जूरैः उद्वेजितस्य तिन्तिडिकायां श्रद्धा भवति, तथा अन्तःपुरस्त्री-रत्न-परिभोगिनः भवतः इयं प्रार्थना।) [54]

---

1. काश्मीर-पाठे "(सहासम्) कृतं भवता निर्धूमको दंशप्रतिकार" इति।
2. काश्मीर-पाठे "०पादपच्छायापरिवृत्ते वितानकसनाथ आसन" इति। (आहार्यत्वेन वितानकं वर्तते)
3. काश्मीर-पाठे "दर्शनीयं न दृष्टम्" इति।
4. काश्मीर-पाठे "ऽपवार्यो" क्तिरियम्।
5. काश्मीर-पाठे "ऽप्रार्थनीये" ति।
6. काश्मीर-पाठे राज्ञो मुखे स्थापितयोरनयोः श्लोकयोः क्रमवैपरीत्यम्। तच्चाधिकं संगतं प्रतिभाति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
7. काश्मीर-पाठे "ऽविशेषज्ञ" इति।
8. काश्मीर-पाठे "चिरं गतनिमेषाभिः०" इति।
9. काश्मीर-पाठे तृतीयचतुर्थौ पादावपि स्तः। यथा, "न च सा मादृशानामप्रार्थनीया, समासतः समिन्मध्य-कालागुरुखण्डवद्" इति।
10. काश्मीर-पाठे "ललितान्यसम्भवमि" ति। अत्र बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
11. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "नवमालती०" इति।
12. काश्मीर-पाठे "श्रद्धे" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
13. केवलं बंगीय-पाठे "अन्तेउर" इत्यधिकम्।
14. काश्मीर-पाठे "इत्थीरअणपरिभाविणो" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- सखे, न तावदेनां पश्यसि येन त्वम् एवंवादी[1]। [55]

विदूषकः- तं खु रमणीअं णाम, जं भवदो वि विम्हअं उप्पदेदि। (तत्खलु रमणीयं नाम, यत् भवतः अपि विस्मयम् उत्पादयति[2]।) [56]

राजा- वयस्य किं बहुना।

चित्ते[3] निवेश्य परिकल्पितसर्वयोगा-
द्रूपोच्चयेन महता मनसा कृता नु।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे
धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः॥ 2 -10॥ [57]

विदूषकः- सव्वधा पच्चादेसो क्खु सा रूववदीणं। (सर्वथा प्रत्यादेशः खलु सा रूपवतीनाम्।) [58]

राजा- इदं च मे मनसि वर्तते।

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररूहै-
रनामुक्तं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति भुवि॥ 2 -11॥ [59]

विदूषकः- तेण हि लहुं लहुं गच्छदु भवं मा दाव सा तवस्सिणी कस्स वि इङ्गुदीतेल्लचिक्कण-सीसस्स हत्थे णिवडिस्सदि। (तेन हि लघु लघु गच्छतु भवान्। मा तावत्सा तपस्विनी कस्यापि इङ्गुदीतैल चिक्कणशीर्षस्य हस्ते निपतिष्यति[4]।) [60]

राजा- परवती खलु तत्रभवती, न च सन्निहितगुरुजना। [61]

विदूषकः- अध तुह उवरि कीदिसो उण से चित्तराओ। (अथ तवोपरि कीदृशः पुनः अस्याः चित्तरागः[5]।) [62]

राजा- वयस्य, स्वभावादप्रगल्भास्तपस्विकन्यकाः। तथापि

अभिमुखे मयि संवृतमीक्षितं
हसितमन्यनिमित्तकथोदयम्।
विनयवारितवृत्तिरतस्तया
न मदनो विवृतो न च संवृतः[6]॥ 2 -12॥ [63]

विदूषकः- किं णु क्खु दिट्टमेत्तस्स ज्जेव भवदो अङ्कं आरोहदु। (किन्नु खलु दृष्टमात्रस्यैव भवतः अङ्कम् आरोहतु।) [64]

राजा- सखीभ्यां[7] मिथःप्रस्थाने पुनस्तत्रभवत्या मयि भूयिष्ठमाविष्कृतो भावः। तथा हि

---

1. केवलं मैथिल-पाठ "एवम् अवादीरि" ति।
2. काश्मीर-पाठे "जनयती" ति।
3. काश्मीर-पाठे "चित्रे०" इति।
4. काश्मीर-पाठे विदूषकस्येयं 57 उक्तिः, मैथिल-पाठस्य च 63 उक्तिरियं बंगीयपाठेन सह तुलनीया। बंगीयपाठः परिष्कृतः पाठोऽस्तीति प्रतीयते। अन्यौ च द्वावपि पाठौ रंगावृत्ती स्त इति स्पष्टीभवति।
5. काश्मीर-पाठे "चित्तानुराग" इति। मैथिल-पाठे "दृष्टिराग" इति।
6. काश्मीर-पाठे "ऽभिमुखमि" ति, "संहृत०" इति, "बाधित०" इति। मैथिल-पाठे "ऽभिमुखे", "संहृत", "वारित", "संवृत" इति।
7. मैथिल-पाठे शब्दोऽयं नास्ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे
तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा।
आसीद्विवृत्तवदना च विमोचयन्ती
शाखासु वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम्[1]॥ 2 -13॥ [65]

विदूषकः- गहिदपाधेओ किदो सि ताए। ता अणुरत्तं तवोवणे तुमं तक्केमि। (गृहीतपाथेयः कृतः असि तया। तदनुरक्तं तपोवने त्वां तर्कयामि[2]।) [66]

राजा- सखे, चिन्तय तावत्केनापदेशेन पुनराश्रमपदं गच्छामः। [67]

विदूषकः- को अवरो अवदेसो। णं भवं राआ[3]। (कः अपरः अपदेशः।ननु भवान् राजा।) [68]

राजा- ततः किम्। [69]

विदूषकः- णीवारछट्ठभाअं मे तावसा उवहरन्तु त्ति। (नीवारषष्ठभागं मे तापसाः उपहरन्तु इति।) [70]

राजा- मूर्ख, अन्यमेव भागमेते तपस्विनो[4] निर्वपन्ति यो रत्नराशीनपि विहायाभिनन्द्यते। पश्य,

यदुत्तिष्ठति वर्णेभ्यो नृपाणां क्षयि तद्धनम्।
तपःषड्भागम् अक्षय्यं[5] **ददत्यारण्यका हि नः**॥ 2 -14॥ [71]

(नेपथ्ये) हन्त, सिद्धार्थौ स्वः। [72]

राजा- (आकर्ण्य) अये, धीरप्रशान्तः स्वरः। तत्तपस्विभिर्भवितव्यम्। [73]

(प्रविश्य) दौवारिकः- जअदु जअदु भट्टा। एदे क्खु दुवे इसिकुमारआ पडिहारभूमिं उवट्ठिदा। (जयतु, जयतु भर्ता। एते खलु द्वौ ऋषिकुमारौ प्रतिहारभूमिमुपस्थितौ।) [74]

राजा- अविलम्बितं प्रवेशय। [75]

दौवारिकः- जं भट्टा आणवेदि। (इति निष्क्रम्य ऋषिकुमारकाभ्यां सह प्रविश्य च) इदो इदो एध।
(यद् भर्ता आज्ञापयति। इतः इतः एतम्।) [76]

एकः- (राजानमवलोक्य) अहो, दीप्तिमतोऽपि विश्वसनीयता वपुषः। अथवोपपन्नमेवैतद् ऋषिकल्पे राजनि। कुतः-

अध्याक्रान्ता वसतिरमुनाप्याश्रमे सर्वभोग्ये[6]
रक्षायोगादयमपि तपः प्रत्यहं सञ्चिनोति।
अस्यापि द्यां स्पृशति वशिनश्चारणद्वन्द्वगीतः
पुण्यः शब्दो मुनिरिति मुहुः केवलं राजपूर्वः॥ 2 -15॥ [77]

द्वितीयः- सखे, अयं स बलभित्सखो दुःषन्तः। [78]

प्रथमः- अथ किम्। [79]

---

1. मैथिल-पाठस्य प्रथमांके शकुन्तलया "ऽभिनवकुशसूचिपरिक्षतं मे चरण" मिति यदुक्तं तस्य मौलिकतां समर्थयितुमिदम् अन्तःसाक्ष्यं वचनम्।
2. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं नास्ति। मैथिल-पाठे "ऽनुरंजितं तपोवनमिति तर्कयामी" ति।
3. काश्मीर-पाठे विदूषको रंगभूमौ समाधिं नाटयति, तादृशं दृश्यमत्र नास्ति।
4. काश्मीर-पाठे "रक्षिण" इति पठ्यते। बंगीय-पाठ एव "तपस्विन" इति परिवर्तनं दृश्यते।
5. काश्मीर-पाठे "अक्षयमि" ति।
6. काश्मीर-पाठे "सर्वपूर्व" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

द्वितीयः- तेन हि

नैतच्चित्रं यदयमुदधिश्यामसीमां धरित्री-
मेकः कृत्स्नां नगरपरिघप्रांशुबाहुर्भुनक्ति।
आशंसन्ते समितिषु सुराः सक्तवैरा[1] हि दैत्यै-
रस्याधिज्ये धनुषि विजयं पौरुहूते च वज्रे॥ 2 -16॥ [80]

उभौ- (उपेत्य) विजयस्व राजन्। [81]

राजा- (आसनादुत्थाय) अभिवादये भवन्तौ। [82]

ऋषी- स्वस्ति भवते। (इति फलान्युपनयतः) [83]

राजा- (सप्रणामं प्रतिगृह्य) आगमनप्रयोजनं ज्ञातुमिच्छामि। [84]

ऋषी- विदितो भवानिह स्थितस्तपस्विभिस्ते च भवन्तमभ्यर्थयन्ते। [85]

राजा- किमाज्ञापयन्ति। [86]

ऋषी- तत्रभवतः कुलपतेरसांनिध्याद्रक्षांसि नस्तपोविघ्नमुत्पादयन्ति[2]। तत्कतिपयरात्रं सारथिद्वितीयेन भवता सनाथीक्रियतामाश्रम इति। [87]

राजा- अनुगृहीतोऽस्मि। [88]

विदूषकः- (अपवार्य) अअं दाणिं दे अणुऊलो गलहत्थो[3]। (अयम् इदानीं ते अनुकूलः गलहस्तः।) [89]

राजा- रैवतक, उच्यतामस्मत्सारथिः सबाणकार्मुकं रथमुपस्थापयेति। [90]

रैवतकः- जं देवो आणवेदि। (यद् देव आज्ञापयति।) (इति निष्क्रान्तः) [91]

ऋषी -

अनुकारिणि पूर्वेषां युक्तरूपमिदं त्वयि।
आपन्नाभयसत्त्वेषु दीक्षिताः खलु पौरवाः[4]॥ 2 -17॥ [92]

राजा- गच्छतां भवन्तौ। अहमप्यनुपदमागत एव। [93]

ऋषी- विजयस्व। (इति निष्क्रान्तौ) [94]

राजा- माधव्य, अप्यस्ति ते शकुन्तलादर्शनं प्रति कुतूहलम्। [95]

विदूषकः- पढमं अपरिबाधं आसि। संपदं रक्खसवुत्तन्तेण सपरिबाधं। (प्रथममपरिबाधमासीत्। साम्प्रतं राक्षसवृत्तान्तेन सपरिबाधम्।) [96]

राजा- मा भैषीः, ननु मत्समीप एव वर्तिष्यसे। [97]

विदूषकः- एसो क्खु तुह चक्करक्खी[5] भूदो म्हि। (एषः खलु तव चक्ररक्षी भूतोऽस्मि।) [98]

(प्रविश्य) **दौवारिकः-** सज्जो रधो भट्टिणो विजअपत्थाणं अवेक्खदि। एसो उण णअरादो देवीणं सआसादो करभओ आअदो। (सज्जः रथः भर्तुः विजयप्रस्थानमपेक्षते। एषः पुनः नगरात् देवीनां सकाशात् करभक आगतः।) [99]

---

1. काश्मीर-पाठे "सुरसमितयस्सक्तवैरा" इति पठ्यते।
2. काश्मीर-पाठे "काश्यपमुनेर०, रक्षांसि परापतिष्यन्ति, विघ्नमुत्पादयितुमिच्छती" ति।
3. काश्मीर-पाठे "गलत्था" इति प्रार्थनापरकः प्राकृतशब्दः। किन्तु दुर्बोधत्वादज्ञानात्परिवर्तितः।
4. मैथिल-पाठे"उपकारिणि सर्वेषामि"ति। "आपन्नानां भयत्राणे" इति। काश्मीर-पाठे "०सत्रेण" इति।
5. काश्मीर-पाठे "चक्काकी"ति। मैथिल-पाठे "रक्खीभूदम्हि" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- (सादरम्) किमार्याभिः प्रेषितः[1]। [100]

दौवारिकः:- अध इं। (अथ किम्।) [101]

राजा- तेन हि प्रवेश्यताम्। [102]

दौवारिकः:- (निष्क्रम्य पुनः करभकेण सह प्रविश्य) करभअ। एसो भट्टा उवसप्पदु भवं। (करभक, एषः भर्ता। उपसर्पतु भवान्।) [103]

करभकः:- (उपसृत्य प्रणम्य च) जअदु जअदु भट्टा। देवीओ विण्णवेन्ति। (जयतु जयतु भर्ता। देव्यः विज्ञापयन्ति।) [104]

राजा- किमाज्ञापयति। [105]

करभकः:- आगामिचदुत्थदिअसे पुत्तपिण्डपालणो[2] णाम उववासो भविस्सदि। तत्थ दीहाउणा अवस्सं अम्हे सम्भाविदव्वाओ त्ति[3]। (आगामिचतुर्थदिवसे पुत्रपिण्डपालनो नाम उपवासः भविष्यति। तत्र दीर्घायुषा अवश्यं वयं सम्भावितव्याः इति।) [106]

राजा- इतस्तपस्विकार्यमितो गुरुजनाज्ञा। उभयमप्यनतिक्रमणीयम्[4]। तत्किमत्र प्रतिविधेयम्। [107]

विदूषकः:- (विहस्य) भो, तिसङ्कू विअ अन्तरा चिट्ठ। (भोः त्रिशङ्कुः इव अन्तरा तिष्ठ।) [108]

राजा- सत्यमाकुलीकृतोऽस्मि।

कृत्ययोर्भिन्नदेशत्वाद् द्वैधीभवति मे मनः।
पुरः प्रतिहतं शैले स्त्रोतः स्त्रोतोवहं[5] यथा॥ 2 -18॥ [109]

(विचिन्त्य) सखे, त्वमार्याभिः पुत्र[6] इव गृहीतः। स भवान् इतः प्रतिनिवृत्य तपस्विकार्य- व्यग्रताम् अस्माकं निवेद्य, तत्रभवतीनां पुत्रकार्यमनुष्ठातुमर्हति[7]। [110]

विदूषकः:- भो, मा रक्खसभीरुअं मं अवगच्छ। (भोः मा राक्षसभीरुकं माम् अवगच्छ[8]।) [111]

राजा- (स्मितं कृत्वा) भो महाब्राह्मण, कथमिदं त्वयि सम्भाव्यते। [112]

विदूषकः:- तेण हि राआणुओ विअ गन्तुं इच्छामि। (तेन हि राजानुजः[9] इव गन्तुमिच्छामि।) [113]

राजा- ननु तपोवनोपरोधः परिहरणीय इति, सर्वानेवानुयात्रिकांस्त्वयैव सह प्रेषयामि। [114]

विदूषकः:- (सगर्वम्) ही ही, जुअरावो म्हि संवुत्तो। (ही ही, युवराजोऽस्मि संवृत्तः।) [115]

राजा- (आत्मगतम्) चपलोऽयं बटुः, कदाचिदिमामस्मत्प्रार्थनामन्तःपुरेभ्यो निवेदयेत्। भवत्वेवं तावत्। (विदूषकं हस्ते गृहीत्वा प्रकाशम्) सखे माधव्य, ऋषिगौरवाद् आश्रमपदं गच्छामि। न खलु सत्यमेव तापसकन्यायामभिलाषो मे। पश्य-

---

1. काश्मीर-पाठे "किमज्जुभिः प्रेषितः। मैथिल-पाठे सत्यमज्जुभिः प्रहित" इति।
2. काश्मीर-पाठे "पुत्तपिण्डओदाणओ" इति। मैथिल-पाठे "पुत्तपिण्डपज्जुपासणो" इति।
3. काश्मीर-पाठे "सण्णिहिदेण होदव्वम्" इति।
4. काश्मीर-पाठे "ऽनुल्लंघनीयमि" ति।
5. काश्मीर-पाठे "स्त्रोतोवह" इति। मैथिल-पाठे "स्त्रोतोवहामि" ति।
6. काश्मीर-मैथिल-पाठयो "रज्जुभिरि" ति।
7. काश्मीर-पाठेऽनयोर्वाक्ययोः क्रमो विपरितः। अत्र बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
8. काश्मीर-पाठे "साधु, राक्षसभीरुकं मां गणयिष्यती" ति काकुभेदेनोच्यते।
9. काश्मीर-पाठे "राजानुराजेने" ति। मैथिल-पाठे "युवराजानुरूपेणे" ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

क्व वयं, क्व परोक्षमन्मथो
मृगशावैः सह[1] वर्धितो जनः।
परिहासविकल्पितं सखे
परमार्थेन न गृह्यतां वचः॥ 2 -19॥ [116]

विदूषकः- एवं णेदं। (एवं नु एतत्।) [117]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति आख्यानगुप्तिर्[2]नाम द्वितीयोऽङ्कः॥ [118]

1. काश्मीर-पाठे "सममि" ति।
2. काश्मीर-पाठे प्रत्येकानामङ्कानां नामकरणं न वर्तते। मैथिल-पाठे "तपोवनानुगमनमि" ति नाम।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ अथ तृतीयोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशति कुशानादाय यजमानशिष्यः।) [1]

शिष्यः- (विचिन्त्य सविस्मयम्) अहो, महाप्रभावो राजा दुःषन्तः[1]। येन प्रविष्टमात्र एवात्रभवति निरुपप्लवानि नः कार्याणि संवृत्तानि।

का कथा बाणसन्धाने ज्याशब्देनैव दूरतः।
हुङ्कारेणेव धनुषः स हि विघ्नान् व्यपोहति॥ 3 -1॥ [2]

यावदिमान् वेदीसंस्तरणार्थं दर्भान् ऋत्विग्भ्य उपहरामि। (परिक्रम्यावलोक्य च आकाशे) प्रियंवदे, कस्येदमुशीरानुलेपनं मृणालवन्ति च नलिनीदलानि नीयन्ते। (आकर्ण्य) किं ब्रवीषि, आतपलङ्घनाद्बलवदसुस्थशरीरा शकुन्तला। तस्याः शरीरनिर्वापणाये[2]ति। प्रियंवदे, यत्नाद् उपचर्यताम्। सा हि तत्रभवतः कुलपतेरुच्छ्वसितम्। अहमपि वैतानं शान्त्युदकमस्या एव गौतमीहस्ते विसर्जयिष्यामि। (इति निष्क्रान्तः) [3]

(प्रवेशकः[3])

(ततः प्रविशति मदनावस्थो[4] राजा) [4]

राजा- (सचिन्तं निःश्वस्य)

जाने तपसो वीर्यं सा बाला परवतीति मे विदितम्।
न च निम्नादिव सलिलं निवर्तते मे ततो हृदयम्[5]॥ 3 -2॥ [5]

भगवन्मन्मथ! कुतस्ते कुसुमायुधस्य सतस्तैक्ष्ण्यमेतत्। (स्मृत्वा) आं.... ज्ञातम्।

अद्यापि नूनं हरकोपवह्नि-
स्त्वयि ज्वलत्यौर्व इवाम्बुराशौ।
त्वमन्यथा मन्मथ मद्विधानां
भस्मावशेषः कथमेवमुष्णः[6]॥ 3 -3॥ [6]

अपि च। त्वया चन्द्रमसा च विश्वसनीयाभ्यामभिसन्धीयते कामिसार्थः[7]। कुतः-

---

1. काश्मीर-पाठे "दुष्यन्तो", मैथिल-पाठे "दुष्मन्त" इति च। बंगीय-पाठे महाभारतानुसारं दुःषन्त इति नाम लिख्यते।
2. काश्मीर-पाठे "दाहे निर्वापणाये" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
3. का.-मै.-पाठयोरपि प्रवेशकेत्येव। नाट्यशास्त्रानुरोधात्। अनेन बृहत्पाठस्यैव प्राचीनतरता सिध्यति।
4. काश्मीर-पाठे "कामयानावस्थो॰" इति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
5. काश्मीर-पाठोऽत्र भिन्न एव। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठात्प्रागेव प्रवर्तितोऽयं प्रक्षेपो मैथिल-बंगीय-पाठयोरपि स्वीकृतः।
7. काश्मीर-पाठे "कामिजनसार्थ" इति। मैथिल-पाठे "कामिजन" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दो-
र्द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु।
विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखै-
स्त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारीकरोषि॥ 3 -4॥ [7]

अथवा-

अनिशमपि मकरकेतुर्मनसो रुजमावहन्नभिमतो मे।
यदि मदिरायत-नयनां तामधिकृत्य प्रहरतीति[1]॥ 3 -5॥ [8]

भगवन्, एवमुपालब्धस्य ते न मां प्रत्यनुक्रोशः।

वृथैव संकल्पशतैरजस्रमनङ्ग नीतोऽसि मयातिवृद्धिम्।
आकृष्य चापं श्रवणोपकण्ठे मय्येव युक्तस्तव बाणमोक्षः[2]॥ 3 -6॥ [9]

क्व नु खलु निरस्तविघ्नैस्तपस्विभिरनुज्ञातः खिन्नमात्मानं विनोदयामि। [10]

(निःश्वस्य) न च प्रियादर्शनादृते शरणमन्यत्। (ऊर्ध्वमवलोक्य) इमामुग्रातपां वेलां प्रायेण लतावलयवत्सु मालिनीतीरेषु ससखीजना तत्रभवती गमयति। भवतु, तत्रैवगच्छामि।

(परिक्रम्यावलोक्य च) अनया बालपादपवीथ्या सुतनुरचिरं गतेति तर्कयामि। [11]कुतः-

संमीलन्ति न तावद्बन्धनकोशास्तयाऽवचितपुष्पाः।
क्षीरस्निग्धाश्चामी दृश्यन्ते किसलयच्छेदाः[3]॥ 3 -7॥ [12]

(स्पर्शं रूपयित्वा) अहो, प्रवातसुभगोऽयं वनोद्देशः।

शक्योऽरविन्दसुरभिः कणवाही मालिनीतरङ्गाणाम्।
अङ्गैरनङ्गतप्तैर्निर्दयमा[4] **लिङ्गितुं पवनः॥** 3 -8॥ [13]

(विलोक्य) हन्त, अस्मिन्नेव वेतसलतामण्डपे भवितव्यं शकुन्तलया। तथा हि-

अभ्युन्नता[5] **पुरस्तादवगाढा जघनगौरवात्पश्चात्।**
द्वारेऽस्य पाण्डुसिक्ते पदपङ्क्तिर्दृश्यतेऽभिनवा॥ 3 -9॥ [14]

यावद्विटपान्तरेणावलोकयामि। (तथा कृत्वा सहर्षम्) अये, लब्धं नेत्रनिर्वाणम्[6]। एषा मनोरथ प्रिया मे कुसुमास्तरणशिलापट्टमधिशयाना सखीभ्यामुपास्यते[7]। भवतु। शृणोमि तावदासां विस्रम्भकथितानि। (इति विलोकयन्स्थितः) [15]

(ततः प्रविशति सह सखीभ्यां शकुन्तला)

सख्यौ- (उपजीव्य) हला सउन्तले, अवि सुहाअदि दे णलिणीवत्तवादो। (सखी शकुन्तले, अपि सुखायते ते नलिनीपत्रवातः।) [16]

---

1. काश्मीर-पाठे संक्षेपीकरणस्याशयात् केनापि निष्कासितोऽयं श्लोको नोपलभ्यते।
2. काश्मीर-पाठे श्लोकोऽयं नास्ति। मैथिल-पाठे प्रथमं वारं प्रक्षिप्तोऽयं बंगीय-पाठेऽपि स्वीकृतः।
3. काश्मीर-पाठे श्लोकोऽयं नास्ति। मैथिल-पाठे प्रथमं वारं प्रक्षिप्तोऽत्र च बंगीय-पाठेऽपि स्वीकृतः।
4. काश्मीर-पाठे "मदनग्लानैरङ्गैः पीडितमा॰" इति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
5. काश्मीर-पाठे "ऽल्पनिहिते" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठे "लब्धं खलु नेत्रनिर्वापणमि" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
7. काश्मीर-पाठे "ऽन्वास्यत" इति। मैथिल-पाठे च "पर्युपास्यत" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला- (सखेदम्[1]) किं विअअन्ति मं पिअसहीओ। (किं वीजयतः मां, प्रियसख्यौ?।[2]) [17]

(उभे सविषादं परस्परमवलोकयतः।) [18]

राजा- बलवदसुस्थशरीरा तत्रभवती दृश्यते। (सवितर्कम्) तत्किमयमातपदोषः स्याद्, उत यथा मे मनसि वर्तते। (विचिन्त्य[3]) अथवा कृतं सन्देहेन।

स्तनन्यस्तोशीरं प्रशिथिलमृणालैकवलयं
प्रियायाः साबाधं तदपि कमनीयं वपुरिदम्।
समस्तापः कामं मनसिजनिदाघप्रसरयो-
र्न तु ग्रीष्मस्यैवं सुभगमपराद्धं युवतिषु।। 3 -10।। [19]

प्रियंवदा- (जनान्तिकम्) अणुसूए, तस्स राएसिणो पढमदंसण्णादो आरम्भिअ पज्जुस्सुअमणा सउन्तला। ण क्खु से अण्णणिमित्तो आदङ्को भवे। (अनुसूये, तस्य राजर्षेः प्रथमदर्शनादारभ्य पर्युत्सुकमनाः शकुन्तला। न खल्वस्या अन्यनिमित्त आतङ्कः भवेत्[4]।) [20]

अनुसूया- ममावि एरिसी आसङ्का। भोदु। पुच्छस्सं। सहि पुच्छिदव्वा सि किं पि। बलीओ क्खु अङ्गसंतावो। (ममापि ईदृश्याशङ्का। भवतु। प्रक्ष्यामि। सखि, प्रष्टव्यासि किम् अपि। बलीयान् खल्वङ्गसन्तापः।) [21]

राजा- वक्तव्यमेव।

शशिकरविशदान्यस्यास्तथा हि दुःसहनिदाघशंसीनि।
भिन्नानि श्यामिकया मृणालनिर्माणवलयानि[5]।। 3 -11।। [22]

शकुन्तला- (पूर्वार्धेन शयनादुत्थाय) हला, भण जं वत्तुकामासि[6]। (सखि, भण यद्वक्तुकामासि।) [23]

अनुसूया- हला सउन्तले, अणब्भन्तराओ अम्हे मणोगदस्स दे वुत्तन्तस्स। किं तु जादिसी इदिहासकधाणुबन्धेसुं कामअमाणाणं अवत्था सुणीअदि तादिसी तुह त्ति तक्केमि। ता कधेहि, किं णिमित्तं दे अअं आआसो। विआरं परमत्थदो अआणिअ अणारम्भो किल पडीआरस्स। (सखि शकुन्तले, अनभ्यन्तरे आवां मनोगतस्य[7] ते वृतान्तस्य। किं तु यादृशी इतिहासकथानुबन्धेषु कामयमानानामवस्था श्रूयते। तादृशी तवेति तर्कयामि। तत्कथय किन्निमित्तं ते अयमायासः। विकारं परमार्थतः अज्ञात्वा अनारम्भः किल प्रतीकारस्य।) [24]

राजा- अनुसूययापि मदीयस्तर्कोऽनुगतः। [25]

शकुन्तला- बलीओ क्खु मे आआसो। ण सहसा सक्कणोमि णिवेदिदुं। (बलीयान्खलु मे आयासः। न सहसा शक्नोमि निवेदयितुम्।) [26]

प्रियंवदा- सहि, सुट्ठु क्खु एसा भणादि। किं एदं अत्तणो उवद्दवं णिगूहसि। अणुदिअसं च परिहीअसि अङ्गेसुं। केवलं लावण्णमई छाआ तुमं ण मुञ्चेदि। (सखि, सुष्ठु खल्वेषा भणति। किमेतमात्मनः उपद्रवं निगूहसि। अनुदिवसञ्च

---

1. काश्मीर-पाठे "वेदनां नाटयित्वे" ति रंगसूचना। मैथिल-पाठे "शून्याभिनयमि" ति। त्रिविधां रंगसूचनां दृष्ट्वा सर्वेषां पाठानां रंगावृत्तित्वं निश्चीयते।
2. काश्मीर-पाठे "किं वा वीजयतः, मां सख्यौ?"। मैथिल-पाठे "किं मां वीजयतः प्रियसख्यौ" इति।
3. काश्मीर-पाठे "साभिलाषं निर्वर्ण्ये" ति। मैथिल-पाठे "निरूप्ये" ति रंगसूचना।
4. बंगीय-पाठेऽत्र प्रियंवदानुसूययोर्वाक्यद्वयं (उक्ति-क्रमांकः 20-21) प्रक्षिप्तं वर्तते।
5. काश्मीर-पाठे मैथिल-पाठे च नास्त्ययं श्लोकः। बंगीय-पाठे प्रथमं वारं प्रक्षिप्तोऽयं प्रतिभाति।
6. बंगीय-पाठे प्रक्षिप्तेयमुक्तिः। काश्मीर-पाठे मैथिल-पाठे च नास्तीयमुक्तिः।
7. काश्मीर-पाठे मैथिल-पाठे च "मदनगतस्ये" ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

परिहीयसे अङ्गेषु। केवलं लावण्यमयी छाया त्वां न मुञ्चति।

राजा- अवितथमाह प्रियंवदा। तथा ह्यस्याः-[27]

क्षामक्षामकपोलमाननमुरः काठिन्यमुक्तस्तनं
मध्यः क्लान्ततरः प्रकामविनतावंसौ छविः पाण्डरा।
शोच्या च प्रियदर्शना च मदनग्लानेय[1] मालक्ष्यते
पत्राणामिव शोषणेन मरुता स्पृष्टा लता माधवी॥ 3 -12॥ [28]

शकुन्तला- (निःश्वस्य) कस्स वा अण्णस्स कधइस्सं। किं तु आआसइत्तिआ वो भविस्सं। (कस्य वा अन्यस्य कथयिष्यामि। किं तु आयासयित्री वां भविष्यामि।) [29]

उभे- सहि, अदो ज्जेव णो णिव्वन्धो। संविभत्तं खु दुक्खं सज्झवेअणं भोदि। (सखि, अत एव नौ निर्बन्धः। संविभक्तं खलु दुःखं सह्यवेदनं भवति।) [30]

राजा-

पृष्टा जनेन समदुःखसुखेन बाला
नेयं न वक्ष्यति मनोगतमाधिहेतुम्।
दृष्टो निवृत्य बहुशोऽप्यनया सतृष्णम्[2]
अत्रोत्तरश्रवणकातरतां गतोऽस्मि॥ 3 -13॥ [31]

शकुन्तला- जदो पहुदि सो तवोवणरक्खिदा राएसी मम दंसणपधं गदो। (यतः प्रभृति सः तपोवनरक्षिता राजर्षिः मम दर्शनपथं गतः।) (इत्यर्धोक्ते लज्जां नाटयति[3]।) [32]

उभे- कधेदु पिअसही। (कथयतु प्रियसखी।) [33]

शकुन्तला- तदो पहुदि तग्गदेण अहिलासेण एदावत्थ म्हि संवुत्ता। (ततः प्रभृति तद्गतेनाभिलाषेण एतद् अवस्थाऽस्मि संवृत्ता।) [34]

उभे[4] - दिट्ठिआ, इदाणिं दे अणुरूवे वरे अहिणिवेसो। अधवा। साअरं उज्झिअ कहिं वा महाणदीए पविसिदव्वं। (दिष्ट्या, इदानीं ते अनुरूपे वरे अभिनिवेशः। अथवा सागरमुज्झित्य कुत्र वा महानद्या प्रवेष्टव्यम्।) [35]

राजा- (सहर्षम्) श्रुतं यच्छ्रोतव्यम्। [36]

स्मर एव तापहेतुर्निर्वापयिता स एव मे जातः।
दिवस इवाभ्रश्यामस्तपात्यये जीवलोकस्य॥ 3 -14॥ [37]

शकुन्तला- ता जइ वो अणुमदं तदो तधा पअत्तध जधा तस्स राएसिणो अणुकम्पणीआ होमि। अण्णधा सुमरेध मं। (तद्यदि वां अनुमतं ततः तथा प्रयतेथां, यथा तस्य राजर्षेरनुकम्पनीया भवामि। अन्यथा स्मरतं माम्[5]।) [38]

राजा- विमर्शच्छेदि वचनम्[6]। [39]

---

1. काश्मीर-पाठे "मध्यं कान्ततरं", "पाण्डुरा", "क्लिष्टेय०" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठे "सतृष्णम्" इति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
3. काश्मीर-पाठे शकुन्तलैकेनैव वाक्येनात्मनिवेदनं करोति। बंगीय-पाठोऽत्र (उक्ति-क्रमांकः 32-34) मैथिल-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठ उक्तिरियम् अनुसूयाया मुखे वर्तते। बंगीय-पाठे मै.-पाठानुसरणं दृश्यते।
5. काश्मीर-पाठे "ऽन्यथा मां सिञ्चतमिदानीमुदकेने" ति। मैथिल-पाठोऽपि काश्मीर-पाठवदेव वर्तते।
6. काश्मीर-पाठ इतः परम् "एतावत्कामफलं, यत्फलमन्यदि" ति। मैथिली-पाठे चेतः पर "मेतदवस्थापि मां सुखयती" त्यधिकम्। बंगीयैः रंगकर्मिभिस्तत् तद्वाक्यं निष्कासितम्। द्रष्टव्यश्च-एतावान् कामिन इत्यारभ्येति शृङ्गारप्रकाशे 29.105

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रियंवदा- (जनान्तिकम्) अणुसूए, दूरगदमम्मधा अक्खमा खु इअं कालहरणस्स।[1] (अनुसूये, दूरगतमन्मथा अक्षमा खल्वियं कालहरणस्य।) [40]

अनुसूया- पिअंवदे, को उवाओ भवे जेण अविलम्बिदं णिहुदं[2] च सहीए मणोरधं सम्पादेमो। (प्रियंवदे, कः उपायः भवेत् येनाविलम्बितं निभृतं च सख्याः मनोरथं सम्पादयावः।) [41]

प्रियंवदा- सहि, णिहुदं ति पअत्तिदव्वं। सिग्घं ति ण दुक्करं। (सखि, निभृतमिति[3] प्रयतितव्यम्। शीघ्रमिति न दुष्करम्।) [42]

अनुसूया- कधं विअ। (कथमिव।) [43]

प्रियंवदा- णं सो वि राएसी इमस्सिं जणे सिणिद्धदिट्ठिसूइदाहिलासो इमेसुं दिअसेसुं पज्जाअरकिसो विअ लक्खीअदी। (ननु सोऽपि राजर्षिः अस्मिन् जने स्निग्धदृष्टिसूचिताभिलाषः एषु दिवसेषु प्रजागरकृशः इव लक्ष्यते।) [44]

राजा- सत्यमित्थंभूत एवास्मि। तथा हि-

अशिशिरतरैरन्तस्तापैर्विवर्णमणीकृतं[4]
निशि निशि भुजन्यस्तापाङ्गप्रवर्तिभि[5]रश्रुभिः।
अनतिलुलित[6]ज्याघाताङ्कान्मुहुर्मणिबन्धनात्
कनकवलयं स्रस्तं स्रस्तं मया प्रतिसार्यते॥ 3 -15॥ [45]

प्रियंवदा- (विचिन्त्य) हला अणुसूए, मअणलेहो दाणिं से करीअदु। तं अहं सुमणोगोविदं कदुअ देवदासेसावदेसेण तस्स रण्णो हत्थं पावइस्सं। (सखि अनुसूये, मदनलेखः इदानीम् अस्याः क्रियताम्।

तमहं सुमनोगोपितं कृत्वा देवताशेषापदेशेन[7] तस्य राज्ञः हस्तं प्रापयिष्यामि।) [46]

अनुसूया- सहि, रोअदि मे सुउमारो एसो पओओ। किं वा सउन्तला भणादि। (सखि, रोचते मे सुकुमारः एषः प्रयोगः। किं वा शकुन्तला भणति।) [47]

शकुन्तला- णिओओ वि विअप्पीअदि। (नियोगोऽपि विकल्प्यते।) [48]

प्रियंवदा- तेण हि अत्तणो उवण्णासाणुरूवं चिन्तेहि किं पि ललिदोवणिबन्धणं गीदअं।

(तेन हि आत्मनः उपन्यासानुरूपं[8] चिन्तय किमपि ललितोपनिबन्धनं गीतकम्[9]।) [49]

शकुन्तला- चिन्तइस्सं। किं तु अवहीरणाभीरुअं वेवदि मे हिअअं। (चिन्तयिष्यामि। किं तु अवधीरणाभीरुकं वेपते मे हृदयम्।) [50]

---

1. काश्मीर-पाठ इतः परं सहकारा-तिमुक्तलतयोः, शशाङ्कलेखा-चित्राविशाखा-नक्षत्रयोश्चोपमाद्वयं प्रक्षिप्य काव्यतत्त्वं विस्तार्यते। किन्तु प्रक्षेपोऽयं मैथिल-रंगावृत्तौ नैव स्वीक्रियते। तथैव बंगीय-पाठेऽपि न स्वीक्रियते।
2. काश्मीर-पाठे "णिगूढमि" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
3. काश्मीर-पाठे "निगूढमि" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
4. मैथिल-पाठे "०मलीमसमि" ति। बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठमनुसरति।
5. काश्मीर-पाठे "०प्रवृत्ति०" इति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठे "ऽनभिलुलित०" इति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
7. काश्मीर-पाठे "देवशेषापदेशेने" ति। मैथिल-पाठे च "देवतापदेशेने" ति।
8. काश्मीर-पाठ "उपन्यासपूर्वम् आत्मनः" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
9. काश्मीर-पाठे "सुललितं पदबन्धमि" ति। मैथिल-पाठे च "ललितपदनिबन्धनां गीतिकामि" ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा-

अयं स ते तिष्ठति संगमोत्सुको विशङ्कसे भीरु यतोऽवधीरणाम्।
लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं श्रियो दुरापः कथमीप्सितो भवेत्। 3 -16।। [51]

अपि च-

अयं स यस्मात्प्रणयावधीरणाम् अशङ्कनीयां करभोरु शङ्कसे।
उपस्थितस्त्वां प्रणयोत्सुको जनो न रत्नमन्विष्यति, मृग्यते हि तत्[1]।। 3 -17।। [52]

सख्यौ- अइ अत्तगुणावमाणिणि! को णाम संतावणिव्वावइत्तिअं सारदीअं जोण्हं आदवत्तेण वारइस्सदि। (अयि आत्मगुणावमानिनि, को नाम संतापनिर्वापयित्रीं शारदीयां ज्योत्स्नाम् आतपत्रेण वारयिष्यति।) [53]

शकुन्तला- (सस्मितम्) णिओइद म्हि। (नियोजितास्मि।) [54] (इति चिन्तयति[2]।) [55]

राजा- स्थाने खलु विस्मृतनिमेषेण चक्षुषा प्रियामवलोकयामि। तथा हि-

उन्नमितैकभ्रूलतमाननमस्याः पदानि रचयन्त्याः।
पुलकाचितेन कथयति [3]**मय्यनुरागं कपोलेन।।** 3 -18।। [56]

शकुन्तला- हला, चिन्तिदा मए गीदिया। असंणिहिदाइं उण लेहसाहणाइं। (सखि, चिन्तिता मया गीतिका। असन्निहितानि पुनः लेखसाधनानि।) [57]

प्रियंवदा- णं इमस्सिं सुओदरसिणिद्धे णलिणीवत्ते पत्तच्छेदभत्तीए णहेहिं आलिहीअदु।[4] (नन्वस्मिन् शुकोदरस्निग्धे नलिनीपत्रे पत्रच्छेदभक्त्या नखैः आलिख्यताम्।) [58]

शकुन्तला- सुणध दाव णं संगदत्था ण व त्ति[5]। (शृणुतं तावत् सङ्गतार्था न वा इति) [59]

उभे- अवहिदाओ म्ह। (अवहिते स्वः।) [60]

शकुन्तला- (पठति)

तुज्झ ण आणे हिअअं मम उण मअणो दिवा अ रत्तिं च।
णिक्किव दावइ वलिअं तुह हुत्तमणोरहाइ अङ्गाइं[6]।। 3 -19।। [61]

(तव न जाने हृदयं मम पुनः मदनः दिवा च रात्रिञ्च।
निष्कृप तापयति बलीयः तव अभिमुखमनोरथायाः अङ्गानि[7] **)**।। 3 -19।।

राजा- (सहसोपसृत्य)

तपति तनुगात्रि मदनस्त्वामनिशं मां पुनर्दहत्येव।
ग्लपयति यथा शशाङ्कं न तथा हि कुमुद्वतीं दिवसः।। 3 -20।। [62]

---

1. काश्मीर-पाठे श्लोकोऽयं नास्ति। मैथिल-पाठे प्रथमं वारं प्रक्षिप्तोऽयं बंगीय-पाठेऽपि स्वीकृतः।
2. बंगीय-समीक्षितपाठेऽत्र "उपविष्टा चिन्तयती" ति नास्ति। काश्मीर-पाठ इयमुक्तिरेव नास्ति।
3. काश्मीर-पाठे "कण्टकितेन प्रथयती" ति।
4. मैथिल-पाठेऽत्र प्रियंवदा मदनलेखस्य गीतिकाया अक्षराणि प्रथमं श्रावयितुं कथयति। तत्र युक्तम्।
5. बंगीय-समीक्षितपाठे शकुन्तला मदनलेखं लिखतीति रंगसूचना नास्ति। सा तु परम्परागते बंगीये पाठे वर्तते।
6. बंगीय-पाठेऽपि गाथेयं गीतिरेव। मध्यगुरुर्वतते षष्ठे गणे, 30+30 मात्रायुग्मेन रचितेयम्।
7. काश्मीर-पाठे "तपति बलीयस्तवाभिमुखमनोरथान्यङ्गानी" ति। मैथिल-पाठे "तपति बलिकं त्वयि युक्तमनोरथानि चाङ्गानी" ति। त्रिष्वपि प्रवर्तितः पाठभेदः रंगकर्मिणामिदं कर्तृत्वमिति सूचयति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

सख्यौ- (विलोक्य सहर्षमुत्थाय) साअदं जधासमीहिद[1]फलस्स अविलम्बिणो मणोरधस्स। (स्वागतम् यथासमीहित-फलस्याविलम्बिनः मनोरथस्य।) [63]

(शकुन्तला उत्थातुमिच्छति) [64]

राजा- सुन्दरि, अलमलमायासेन।

संदष्टकुसुमशयनान्याशुविमर्दितमृणालवलयानि।
गुरुपरितापानि न ते गात्राण्युपचारमर्हन्ति[2]॥ 3 -21॥ [65]

शकुन्तला- (ससाध्वसमात्मगतम्) हिअअ। तधा उत्तम्मिअ इदाणिं ण किं पि पडिवज्जसि। (हृदय, तथा उत्तम्य इदानीं न किमपि प्रतिपद्यसे।) [66]

अनुसूया- इदो सिलादलेक्कदेसं अणुगेण्हदु महाराओ[3]। (इतः शिलातलैकदेशमनुगृह्णातु महाराजः।) [67]

(शकुन्तला किंचिद् अपसरति[4]।) [68]

राजा- (उपविश्य) प्रियंवदे, कच्चित् सखीं वो नातिबाधते शरीरतापः। [69]

प्रियंवदा- (सस्मितम्) लद्धोसदो संपदं उवसमं गमिस्सदि[5]। महाराअ, दोण्णं पि वो अण्णोण्णाणुराओ पच्चक्खो। सहीसिणेहो उण पुणरुत्तवाइणिं करेदि मं। (लब्धौषधः साम्प्रतमुपशमनं गमिष्यति।

महाराज[6], द्वयोरपि वाम् अन्योऽन्यानुरागः प्रत्यक्षः। सखीस्नेहः पुनः पुनरुक्तवादिनीं करोति माम्।) [70]

राजा- भद्रे, न तत्परिहार्यं, यतो विवक्षितम् अनुक्तम् अनुतापं जनयति। [71]

प्रियंवदा- तेण हि सुणादु अज्जो। (तेन हि शृणोत्वार्यः।) [72]

राजा- अवहितोऽस्मि। [73]

प्रियंवदा- अस्समवासिणो जणस्स रण्णा अत्तिहरेण होदव्वं ति णं एसो धम्मो। (आश्रमवासिनः जनस्य राज्ञा आर्तिहरेण भवितव्यम् इति नन्वैषः धर्मः[7]।) [74]

राजा- अस्मात्परं किं तत्। [75]

प्रियंवदा- तेण हि इअं णो पिअसही तुमं उद्दिसिअ भअवदा मअणेण इमं अवत्थन्तरं पाविदा। ता अरिहसि अब्भुववत्तीए जीविदं से अवलम्बिदुं। (तेन हि इयं नौ प्रियसखी त्वामुद्दिश्य भगवता मदनेनेदम् अवस्थान्तरं प्रापिता। तदर्हसि अभ्युपपत्त्या जीवितमस्याः अवलम्बितुम्।) [76]

राजा- भद्रे, साधारण एष प्रणयः[8]। सर्वथानुगृहीतोऽस्मि। [77]

---

1. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "०चिन्तित०" इति।
2. काश्मीर-पाठे "संस्पृष्ट", "विवर्णित", "गुरुसंतापानी"ति।
3. काश्मीर-पाठे "वअस्सो" (वयस्यः), मैथिल-पाठे "पिअवअस्सो" (प्रियवयस्यः) इति।
4. मैथिल-पाठे "शकुन्तला किंचित् पादावपसारयती" ति।
5. काश्मीर-मैथिल-पाठयोर्मेघनादाहतमयूर्या उपमया शकुन्तलामुत्थापयितुमेकः प्रक्षिप्तांशः समायाति। ततश्च "शकुन्तला सलज्जा तिष्ठती" ति रंगसूचनापि दीयते। बंगीय-पाठे रंगसूचनेयं नास्ति। किन्तु मयूर्या उपमायाः स्थानान्तरणं क्रियते।
6. काश्मीर-पाठे "महाभागे" ति सम्बोधनम्। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
7. काश्मीर-पाठ एतादृशं वाक्यं नास्ति। मैथिल-पाठेऽनुसूयाया मुखे वर्तते, यस्यानुसन्धानं पुरोवर्तिना वाक्येन सह संयोजनीयम्। बंगीय-पाठे नायकं महाराजपदे स्थापयित्वाऽन्यथैव प्रयुक्तम्।
8. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं नास्ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला- (सप्रणयकोपस्मितम्[1]) हला, अलं वो अन्तेउर-विरह-[2]पज्जुस्सुएण राएसिणा उवरुद्धेण। (सखि, अलं वाम् अन्तःपुरविरहपर्युत्सुकेन राजर्षिणा उपरुद्धेन।) [78]

राजा-

इदमनन्यपरायणमन्यथा हृदयसन्निहिते हृदयं मम।
यदि समर्थयसे मदिरेक्षणे मदनबाणहतोऽस्मि हतः पुनः॥ 3 -22॥ [79]

अनुसूया- महाराअ[3], बहुवल्लहा खु राआणो सुणीअन्ति। ता जधा इअं णो पिअसही बन्धुअणसोअणीआ ण भोदि तधा करिस्ससि। (महाराज, बहुवल्लभाः खलु राजानः श्रूयन्ते। तद्यथा इयं नौ प्रियसखी बन्धुजनशोचनीया न भवति तथा करिष्यसि।) [80]

राजा- भद्रे, किं बहुना।

परिग्रहबहुत्वेऽपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य नः[4]।
समुद्ररसना चोर्वी[5] सखी च युवयोरियम्॥ 3 -23॥ [81]

उभे- णिव्वुदाओ म्ह[6]। (निर्वृते स्वः।) [82]

(शकुन्तला हर्षं सूचयति[7]) [83]

प्रियंवदा- (जनान्तिकम्) अणुसूए, पेक्ख पेक्ख, मेहवादाहदं विअ गिम्हे मोरिं खणे खणे पच्चाअदजीविदं पिअसहिं। (अनुसूये, प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व मेघवाताहतामिव ग्रीष्मे मयूरीं क्षणे क्षणे प्रत्यागतजीवितां प्रियसखीम्[8]।) [84]

शकुन्तला- हला, मरिसावेध लोअवालं जं अम्हेहिं बीसद्धपलाविणीहिं उवआरादिक्कमेण भणिदं। (सख्यौ, मर्षयतं लोकपालं यदस्माभिः विस्रब्धप्रलापिनीभिः उपचारातिक्रमेण भणितम्।) [85]

सख्यौ- (सस्मितम्) जेण तं मन्तिदं सो ज्जेव मरिसावेदु। अणस्स को अच्चओ। (येन तत् मन्त्रितं सः एव मर्षयतु। अन्यस्य कः अत्ययः।) [86]

शकुन्तला- अरिहदि क्खु महाराओ इमं पच्चक्खवअणं विसोढुं। परोक्खं वा किं ण मन्तीअदि। (अर्हति खलु महाराजः इदं प्रत्यक्षवचनं विषोढुं परोक्षं वा किं न मन्त्र्यते।) [87]

राजा- (सस्मितम्)

अपराधमिमं ततः सहिष्ये यदि रम्भोरु तवाङ्गसङ्गसृष्टे[9]।
कुसुमास्तरणे क्लमापहं मे सुजनत्वादनुमन्यसेऽवकाशम्॥ 3 -24॥ [88]

---

1. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "सस्मितमि" ति रंगसूचना।
2. काश्मीर-पाठे "०विहार०" इति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
3. काश्मीर-मैथिल-पाठयो "र्वयस्ये" ति सम्बोधनम्।
4. का.-मै.-पाठयोस्तु "म" इति। केवलं बं.-पाठे दुःषन्तस्य राजर्षित्वं द्योत्यतेऽनेन पाठभेदेन।
5. काश्मीर-पाठे "धर्मेणोल्लिखिता लक्ष्मीरि" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठे "ऽनुगृहीते स्वः" इति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिली-पाठमनुसरति।
7. काश्मीर-पाठे रंगसूचनेयं नास्ति।
8. काश्मीर-मैथिल-पाठयोर्लब्धौषधेदानीं शकुन्तलेत्युक्त्वा शकुन्तलायाः प्रत्यागतजीवितमुक्तम्। किन्तु तामुपमां स्थानान्तरेणात्र "युवयोरियं सखी मम कुलस्य प्रतिष्ठे" ति संश्राव्य, तस्या जीवनं प्रत्यागतमित्युक्तम्। तथापि तदप्यवधेयमत्र यद् बंगीयरंगकर्मिभिः शकुन्तलायाः शयनावस्था न परिवर्त्यते।
9. काश्मीर-पाठे "तवाङ्गरेचितार्द्ध" इति। मैथिल-पाठे "सलज्जा तिष्ठती" ति रंगसूचनानुसारं "तवाङ्गसङ्गसृष्ट" इति परिवर्त्यते। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रियंवदा- ण एत्तिकेण उण तुट्ठी भविस्सदि। (नैतावता तुष्टिः भविष्यति।) [89]

शकुन्तला- (सरोषमिव) विरम दुल्ललिदे। एदावत्थं गदाए वि मए कीळसि। (विरम दुर्ललिते। एतदवस्थां गतयापि मया क्रीडसि[1]।) [90]

अनुसूया- (बहिर्विलोक्य) पिअंवदे, एसो तवस्सिमिअपोदओ इदो तदो दिण्णदिट्ठी णूणं मादरं पब्भट्ठं अणुसरेदि। ता संजोएमि दाव णं। (प्रियंवदे, एषः तपस्विमृगपोतकः इतस्ततो दत्तदृष्टिः नूनं मातरं प्रभ्रष्टामनुसरति। तत्संयोजयामि तावदेनम्।) [91]

प्रियंवदा- हला चवलो क्खु एसो। णं णिवारिदुं एआइणी ण पारेसि। ता अहं पि सहाअत्तणं करइस्सं।

(सखि, चपलः खल्वेषः। एनं निवारयितुमेकाकिनी न पारयसि। तदहमपि सहायत्वं करिष्यामि।) (इत्युभे प्रस्थिते) [92]

शकुन्तला- इदो अण्णदो ण वो गन्तुं अणुमण्णे जदो असहाइणि म्हि[2]। (इतः अन्यतः न वां गन्तुमनुमन्ये यतः असहायिन्यस्मि।)[93]

उभे- (सस्मितम्) तुमं दाव असहाइणी जाए पुढवीणाधो[3] समीवे वट्टदि। (त्वं तावत् असहायिनी?, यस्याः पृथिवीनाथः समीपे वर्तते[4]।) [94]

(इति निष्क्रान्ते)

शकुन्तला- कधं गदाओ पिअसहीओ। (कथं गते प्रिसख्यौ।) [95]

राजा- (दिशोऽवलोक्य) सुन्दरि[5] अलमावेगेन। नन्वयमाराधयिता जनस्ते सखीभूमौ वर्तते। [96]

तदुच्यताम्।

किं शीकरैः क्लमविमर्दिभि[6]रार्द्रवातं
संचालयामि[7] नलिनीदलतालवृन्तम्।

अङ्के निधाय चरणावुत पद्मताम्रौ
संवाहयामि करभोरु यथासुखं ते।। 3 -25।। [97]

शकुन्तला- ण माणणीएसुं अत्ताणअं अवराहइस्सं। (न माननीयेषु[8] आत्मानमपराधयिष्यामि।) [98]

(अवस्थासदृशमुत्थाय प्रस्थिता[9]) [99]

राजा- (अवष्टभ्य[10]) सुन्दरि, अपरिनिर्वाणो दिवसः। इयं च ते शरीरावस्था।

---

1. काश्मीर-पाठात्प्रागेव प्रवर्तितोऽयं (उक्ति-क्रमांकः 85-90) प्रक्षेपो मैथिल-बंगीय-पाठयोरपि स्वीकृतः।
2. काश्मीर-पाठे "हले अन्यतरा वो गच्छतु। अन्यथाऽशरणास्मी" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठानुसारी।
3. काश्मीर-पाठे "जो पुहवीए सरणं" इति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठे "यः पृथिव्याः शरणं स तव समीप" इति।
5. काश्मीर-पाठे सम्बोधनमिदं नास्ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "क्लमविनोदिभि०" इति। बंगीय-पाठेन कृतमिदं परिवर्तनम्।
7. मैथिल-पाठे "संचारयामी" ति। बंगीय-पाठस्यात्र काश्मीर-पाठेन सह साम्यं विलसति।
8. काश्मीर-मैथिल-पाठयो "र्न माननीये जन" इति।
9. बंगीय-पाठे शकुन्तलायाः शयनावस्थैतावत्पर्यन्तं सातत्येन प्रचलति। रंगकर्मिभिः परिष्कृतः प्रतिभाति।
10. रंगसूचनेयं मैथिल-पाठे नास्ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

उत्सृज्य कुसुमशयनं नलिनीदलकल्पितस्तनावरणा[1]।
कथमातपे गमिष्यसि परिबाधाकोमलैरङ्गैः॥ 3 -26॥ [100]

(इति धारयति[2]) [101]

शकुन्तला- मुञ्च मुञ्च। ण क्खु अत्तणो पहवामि। अधवा सहीमेत्तसरणा किं दाणिं एत्थ करइस्सं। (मुञ्च मुञ्च न खल्वात्मनः प्रभवामि। अथवा सखीमात्रशरणा किमिदानीम् अत्र करिष्यामि।) [102]

राजा- धिक्। व्रीडितोऽस्मि। [103]

शकुन्तला- ण क्खु अहं महाराअं भणामि। देव्वं उवालहामि। (न खल्वहं महाराजं भणामि। दैवम् उपालभे।) [104]

राजा- अनुकूलकारि दैवं किमुपालभ्यते। [105]

शकुन्तला- कधं दाणिं ण उवालहिस्सं जं मं अत्तणो अणीसं परगुणेहिं लोहावेदी। (कथं इदानीं न उपालप्स्ये यत् मामात्मनः अनीशां परगुणैः लोभयति।) [106]

राजा- (स्वगतम्)

अप्यौत्सुक्ये महति दयितप्रार्थनासु प्रतीपाः
काङ्क्षन्त्योऽपि व्यतिकरसुखं कातराः स्वाङ्गदाने।
आबाध्यन्ते न खलु मदनेनैव लब्धान्तरत्वाद्[3]
आबाधन्ते मनसिजमपि क्षिप्तकालाः कुमार्यः[4]॥ 3 -27॥ [107]

(शकुन्तला गच्छत्येव) [108]

राजा- कथमात्मनः प्रियं न करिष्ये। (उपसृत्य पटान्तरमवलम्बते[5]) [109]

शकुन्तला- पोरव, रक्ख विणअं। इदो तदो इसीओ सञ्चरन्ति। (पौरव, रक्ष विनयम्। इतस्ततः ऋषयः सञ्चरन्ति।) [110]

राजा- सुन्दरि, अलं गुरुजनाद्भयेन। न ते विदितधर्मा तत्रभवान् कण्वः खेदमुपयास्यति।

गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्योऽथ मुनिकन्यकाः।
श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चानुमोदिताः[6]॥ 3 -28॥ [111]

(दिशोऽवलोक्य) कथं प्रकाशं निर्गतोऽस्मि[7]। [112]

(शकुन्तलां हित्वा पुनस्तैरेव पदैः प्रतिनिवर्तते) [113]

शकुन्तला- (पदान्तरे प्रतिनिवृत्य साङ्गभङ्गम्) पोरव, अणिच्छापूरओ वि संभासणमेत्तएण परिचिदो अअं जणो ण विसुमरिदव्वो। (पौरव, अनिच्छापूरकोऽपि संभाषणमात्रकेण[8] परिचितोऽयं जनः न विस्मर्तव्यः।) [114]

राजा- सुन्दरि,

1. काश्मीर-पाठे "कदलीदल०", "०स्तनावरणम्" इति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठे रंगसूचनेयं नास्ति। मैथिल-पाठे "बलान्निवर्तयति", बंगीय-पाठे च "धारयती" ति।
3. काश्मीर-पाठे "प्रतार्याः"। का.-मै.-पाठयो "र्मदनेनापि"। काश्मीर-पाठे "लब्धास्पदत्वादि" ति।
4. काश्मीर-पाठात्प्रागेव प्रवर्तितोऽयं (उक्ति-क्रमांक:102-107) प्रक्षेपो मैथिल-बंगीय-पाठयोरपि स्वीकृतः।
5. काश्मीर-पाठ इतः परमेकः प्रक्षिप्तः पाठ्यांशो वर्तते। स च मैथिल-बंगीय-पाठाभ्यां तिरस्कृतः।
6. काश्मीर-पाठे श्लोकोऽयं नास्ति। मैथिल-पाठे प्रथमं वारं प्रक्षिप्तोऽयं श्लोकः, बंगीय-पाठेऽपि स स्वीकृतः।
7. इयमेव रंगसूचना "ऋषयः संचरन्ती" ति शकुन्तलायाः पूर्ववर्तिन्योक्त्या सह संगच्छते।
8. काश्मीर-पाठे "दर्शनमात्रसुखदो०" इति। मैथिल-पाठे "क्षणमात्रपरिचितो०" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

त्वं दूरमपि गच्छन्ती हृदयं न जहासि मे।
दिनावसानच्छायेव पुरोमूलं वनस्पतेः॥ 3 -29॥ [115]

शकुन्तला- (स्तोकमन्तरं गत्वा आत्मगतम्) हद्धी हद्धी। इमं सुणिअ ण मे चलणा पुरोमुहा पसरन्ति। भोदु। इमेहिं पज्जन्तकुरुवएहिं ओवारिदसरीरा पेक्खिस्सं दाव से भावाणुबन्धं। (हा धिक्, हा धिक्। इदं श्रुत्वा न मे चरणौ पुरोमुखौ प्रसरतः[1]। भवतु एभिः पर्यन्तकुरबकैः अपवारितशरीरा प्रेक्षिष्ये तावदस्य भावानुबन्धनम्।) [116]

(तथा कृत्वा स्थिता)

राजा- कथमेवं प्रिये अनुरागैकरसं मामुत्सृज्य निरपेक्षैव गतासि[2]। [117]

अनिर्दयोपभोग्यस्य रूपस्य मृदुनः कथम्।
कठिनं[3] खलु ते चेतः शिरीषस्येव बन्धनम्॥ 3 -30॥ [118]

शकुन्तला- एदं सुणिअ णत्थि मे विहवो गच्छिदुं। (एतत् श्रुत्वा नास्ति मे विभवः गन्तुम्।) [119]

राजा- सम्प्रति प्रियाशून्ये किमस्मिन्करोमि। (अग्रतोऽवलोक्य) हन्त, व्याहतं गमनम्।

मणिबन्धनगलितमिदं[4] संक्रान्तोशीरपरिमलं तस्याः।
हृदयस्य निगडमिव मे मृणालवलयं स्थितं पुरतः॥ 3 -31॥ [120]

(सबहुमानमादत्ते) [121]

शकुन्तला- (हस्तं विलोक्य) अम्भो, दोव्वल्लसिढिलदाए परिब्भट्ठं पि मुणालवलअं मए ण परिण्णादं।

(अम्भो, दौर्बल्यशिथिलतया परिभ्रष्टमपि मृणालवलयं मया न परिज्ञातम्[5]।) [122]

राजा- (मृणालवलयमुरसि निक्षिप्य[6]) अहो स्पर्शः।

अनेन लीलाभरणेन ते प्रिये विहाय कान्तं भुजमत्र तिष्ठता।
जनः समाश्वासित एष दुःखभाग् अचेतनेनापि सता, न तु त्वया॥ 3 -32॥ [123]

शकुन्तला- अदो वरं असमत्थ म्हि विलम्बिदुं। भोदु। एदेण ज्जेव अवदेसेण अत्ताणअं दंसइस्सं। (अतः परमसमर्थास्मि विलम्बितुम्। भवतु। एतेन तव अपदेशेन आत्मानं दर्शयिष्यामि।)

(इत्युपसर्पति) [124]

राजा- (दृष्ट्वा सहर्षम्) अये, जीवितेश्वरी मे प्राप्ता। परिदेवितानन्तरं प्रसादेनोपकर्तव्योऽस्मि खलु दैवस्य।

पिपासाक्षामकण्ठेन याचितं चाम्बु पक्षिणा[7]।
नवमेघोज्झिता चास्य धारा निपतिता मुखे॥ 3 -33॥ [125]

---

1. काश्मीर-पाठे "इदं श्रुत्वे" ति नास्ति। "प्रभवत" इति च। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठे "प्रिये, मामेवमनुरागैकरसं समुत्सृज्य प्रस्थितैवासि निरपेक्षं गन्तुमि" ति। मै.-बं. साम्यम्।
3. काश्मीर-पाठे "दारुणम्" इति। शृंगारप्रकाशे (33-68, पृ. 1528) उद्घृतोऽयं श्लोकः। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठे "मणिबन्धगलितमिदमि" ति। मैथिल-पाठे च "मणिबन्धाद् गलितमिदमि" ति। आर्याछन्दसो मात्राः सर्वत्र न्यूनाधिकाः श्रूयन्ते। (गणरत्नमहोदधावुद्धृतोऽयं श्लोकः। पृ. 110)
5. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "न विज्ञातमि" ति।
6. काश्मीर-पाठे "वलयाभरणमुरसि विन्यस्ये" ति। रंगकर्मिणा रंगसूचनयानयाऽभिनयभेदः क्रियते।
7. काश्मीर-पाठे "चाल्पयाचिने" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला- (राज्ञः प्रमुखे स्थिता) अज्ज, अद्धपधे सुमरिअ एदस्स हत्थब्भंसिणो मुणालवलअस्स किदे पडिणिउत्त म्हि। आचक्खिदं विअ मे हिअएण तए गहिदं ति। ता णिक्खिव एदं, मा मं अत्ताणअं च मुणिअणेसुं पआसइस्ससि। (आर्य, अर्धपथे स्मृत्वा एतस्य हस्तभ्रंशिनः मृणालवलयस्य कृते प्रतिनिवृत्तास्मि। आख्यातमिव मे हृदयेन त्वया गृहीतमिति। तन्निक्षिप एतत्, मा मामात्मानं च मुनिजनेषु प्रकाशयिष्यसि[1]।) [126]

राजा- एकेनाभिसन्धिना प्रत्यर्पयामि। [127]

शकुन्तला- केण उण। (केन पुनः।) [128]

राजा- यदिदमहमेव यथास्थानं निवेशयामि। [129]

शकुन्तला- (आत्मगतम्) का गदी। (का गतिः।) (इत्युपसर्पति) [130]

राजा- इतः शिलापट्टकमेव संश्रयावः (इत्युभौ परिक्रम्योपविष्टौ) [131]

राजा- (शकुन्तलाया हस्तमादाय) अहो स्पर्शः।

हरकोपाग्निदग्धस्य, दैवेनामृतवर्षिणा।
प्ररोहः संभृतो भूयः, किं स्वित्कामतरोरयम्॥ 3 -34॥ [132][2]

शकुन्तला- (स्पर्शं रूपयित्वा[3]) तुवरदु तुवरदु अज्जउत्तो। (त्वरतां त्वरतामार्यपुत्रः।) [133]

राजा- (सहर्षमात्मगतम्) इदानीमस्मि विश्वस्तः। भर्तुराभाषणपदमेतत्। (प्रकाशम्) सुन्दरि, नातिश्लिष्टः सन्धिरस्य मृणालवलयस्य। यदि तेऽभिप्रेतम् अन्यथा घटयिष्यामि। [134]

शकुन्तला- (स्मितं कृत्वा) [4]जधा दे रोअदि। (यथा ते रोचते।) [135]

राजा- (सव्याजं विलम्ब्य प्रतिमुच्य[5]) सुन्दरि। दृश्यताम्।

अयं स ते श्यामलतामनोहरं विशेषशोभार्थमिवोज्झिताम्बरः।
मृणालरूपेण नवो निशाकरः करं समेत्योभयकोटिमाश्रितः॥ 3 -35॥ [136]

शकुन्तला- ण दाव णं पेक्खामि। पवणुक्कम्पिणा कण्णुप्पलरेणुणा कलुसीकिदा मे दिट्ठी। (न तावदेनं प्रेक्षे। पवनोत्कम्पिना कर्णोत्पलरेणुना कलुषीकृता मे दृष्टिः।) [137]

राजा- (सस्मितम्) यदि मन्यसे अहमेनां वदनमारुतेन[6] विशदां करिष्ये। [138]

शकुन्तला- तदो अणुकम्पिदा भवे। किं उण ण दे वीससामि। (ततः अनुकम्पिता भवेयम्। किं पुनः न ते[7] विश्वसिमि।) [139]

राजा- मा मैवम्। नवो हि परिजनः सेव्यानामा[8]देशात्परं न वर्तते। [140]

शकुन्तला- अअं जेव अच्चुवआरो अविस्सासजणओ। (अयमेव अत्युपचारः अविश्वासजनकः[9]।) [141]

---

1. काश्मीर-पाठे "सूचयिष्यसी" ति। मैथिल-पाठे चा "ऽसूययिष्यती" ति।
2. अयं श्लोकः प्रक्षिप्तः न स्यात्। प्रसंगेऽस्मिन् श्लोकोऽयमौचित्यं भजते।
3. काश्मीर-पाठे "हर्षरोमाञ्चं रूपयती" ति। सात्त्विकाभिनय भेदो भवेत्।
4. काश्मीर-पाठ इतः पूर्वं "कालक्षेपकुशलः" इत्यधिकम्।
5. काश्मीर-पाठे "ऽवमुच्यावलम्ब्ये" ति।
6. मैथिल-पाठे "मुखमारुतेने" ति। बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठमनुसरति।
7. काश्मीर-पाठे "नोपनत" इति।
8. मैथिल-पाठे "सेव्यानामि" ति नास्ति।
9. काश्मीर-पाठे "ऽविश्रम्भजनक" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- (स्वगतम्) नाहमेतं रमणीयं सेवावकाशमात्मनः[1] शिथिलयिष्ये। (इति मुखम् उन्नमयितुं प्रवृत्तः। शकुन्तला प्रतिषेधं रूपयन्ती विरमति[2]।) [142]

राजा- अयि मदिरेक्षणे[3], अलमस्मदविनयाशङ्कया।[4] (शकुन्तला किंचिद् दृष्ट्वाऽवनतमुखी तिष्ठति) [143]

राजा- (अङ्गुलीभ्यां मुखमुन्नमय्यात्मगतम्)

चारुणा स्फुरितेनायमपरिक्षतकोमलः।
पिपासतो ममानुज्ञां ददातीव[5] प्रियाधरः॥ 3 -36॥ [144]

शकुन्तला- पडिण्णादमन्थरो विअ अज्जउत्तो। (प्रतिज्ञातमन्थरः इव आर्यपुत्रः।) [145]

राजा- सुन्दरि, कर्णोत्पलसन्निकर्षाद् ईक्षणसादृश्यमूढोऽस्मि। [146]

(इति मुखमारुतेन चक्षुः सेवते[6]।) [147]

शकुन्तला- भोदु। पइदित्थदंसण म्हि संवुत्ता। लज्जामि उण अणुवआरिणी पिअआरिणो अज्जउत्तस्स।
(भवतु, प्रकृतिस्थदर्शनाऽस्मि संवृत्ता। लज्जे पुनः अनुपकारिणी प्रियकारिणः आर्यपुत्रस्य।) [148]

राजा- सुन्दरि, किमन्यत्।

इदमप्युपकृतिपक्षे सुरभि मुखं ते मया यदाघ्रातम्।
ननु[7] कमलस्य मधुकरः सन्तुष्यति गन्धमात्रेण॥ 3 -37॥ [149]

शकुन्तला- असंतोसे उण किं करेदि। (असंतोषे पुनः किं करोति।) [150]

राजा- इदमिदम्। (इति व्यवसितो वक्त्रं ढौकते[8]।) [151][9]

(नेपथ्ये)

चक्कवाअवहु। आमन्तेहि सहअरं। उवत्थिदा रअणी[10]। (चक्रवाकवधु, आमन्त्रय सहचरम्, उपस्थिता रजनी।) [152]

शकुन्तला- (कर्णं दत्त्वा ससंभ्रमम्) अज्जउत्त, एसा खु मम वुत्तन्तोवलम्भणणिमित्तं अज्जा गोदमी[11] आअदा। ता विडवन्तरिदो होहि। (आर्यपुत्र, एषा खलु मम वृत्तान्तोपलम्भननिमित्तम् आर्या गौतमी आगता। तत्विटपान्तरितः भव।) [153]

---

1. काश्मीर-पाठ "आत्मनः सेवाकालमि" ति। मैथिल-पाठ "आत्मनः सेवावकाशमि" ति।
2. काश्मीर-पाठे "ऽकामप्रतिषेधं रूपयन्ति विहरती" ति। मैथिल-पाठे "ऽकाम० .. विरमती" ति।
3. काश्मीर-पाठे सम्बोधनमिदं नास्ति। मैथिल-पाठे "पर्यश्रुताम्रेक्षण" इति सम्बोधनम्।
4. काश्मीर-पाठ इतः परम् "उन्नीयतामाननमि" त्यधिकम्।
5. काश्मीर-पाठे "करोत्येवे" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठे "नेत्रं सिञ्चती" ति।
7. काश्मीर-पाठ "इदमुपकृतमबल" इति। "न त्वि" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
8. काश्मीर-पाठ "इति व्यवसित" इति।, मैथिल-पाठ "इति व्यवसितः। शकुन्तला वक्त्रं ढौकते"।, किन्तु रिचार्ड पिशल-महोदयेन अल्पविरामचिह्नरहिता रंगसूचना लिखिता। येन चाभिनयभेदो भवेत्।
9. काश्मीर-पाठे "ऽत्र ढौकत" इति क्रियापदस्यार्थे विप्रतिपत्तिः। ढौकृ गतौ, पिधाने वेति शङ्का। तेन नायिका स्वकीयं मुखं परिहरति, परिवर्तयति, पिधत्ते वेति विनिश्चेतुं न शक्यते।
10. काश्मीर-पाठ "आर्या गौतमी" त्येव नेपथ्योक्तिः। (सरलीकरणस्याशयात्।)। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
11. काश्मीर-पाठे "पौरव, एषा मम शरीरवृत्तान्तोपालम्भाय तातस्य धर्मकनीयसी उपस्थिते" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- तथा। (इत्येकान्ते स्थितः) [154]

प्रविश्य पात्रहस्ता **गौतमी-** जाद, इदं सन्तिउदअं। (दृष्ट्वा समुत्थाप्य) असुत्था इध देवदा-सहाइणी चिट्ठसि[1]। (जात, इदं शान्त्युदकम्। अस्वस्था इह देवतासहायिनी तिष्ठसि।) [155]

शकुन्तला- इदाणिं जेव पिअंवदाअणुसूआओ[2] मालिणिं ओदिण्णाओ। (इदानीं एव प्रियंवदानुसूये मालिनीमवतीर्णे।) [156]

गौतमी- (शान्त्युदकेन[3] शकुन्तलामभ्युक्ष्य) जाद, णिराबाधा मे चिरं जीव। अवि लहुसंतावाइं दे अङ्गाइं। (जात, निराबाधा मे चिरंजीव। अपि लघुसन्तापानि ते अङ्गानि।)

(इति स्पृशति) [157]

शकुन्तला- अज्जे, अत्थि विसेसो। (आर्ये,अस्ति विशेषः।) [158]

गौतमी- परिणदो दिअसो। ता एहि। उडअं जेव गच्छम्ह। (परिणतः दिवसः। तदेहि। उटजमेव गच्छावः।) [159]

शकुन्तला- (कथं चिदुत्थायात्मगतम्) हिअअ, पढमं जेव सुहोवणदे मणोरधे कालहरणं करेसि। संपदं अणुभव दाव दे किदं[4]। (पदान्तरे प्रतिनिवृत्य, प्रकाशम्) लदाहरअ संतावहारअ[5]। आमन्तेमि तुमं पुणो वि परिभोअत्थं। (हृदय, प्रथममेव सुखोपनते मनोरथे कालहरणं करोषि। साम्प्रतमनुभव तावत्ते कृतम्। लतागृहक, सन्तापहारक। आमन्त्रयामि त्वां पुनः अपि परिभोगार्थम्।) [160]

(इति निष्क्रान्ते)

राजा- (पूर्वस्थानमुपेत्य सनिःश्वासम्) अहो, विघ्नवत्यः प्रार्थितसिद्धयः।

मुहुरङ्गुलिसंवृत्ताधरोष्ठं प्रतिषेधाक्षरविक्लवाभिरामम्।
मुखमंसविवर्ति पक्ष्मलाक्ष्याः कथमप्युन्नमितं, न चुम्बितं तत्[6]॥ 3 -38॥ [161]

क्व नु खलु सम्प्रति गच्छामि। अथवा इहैव प्रियापरिभुक्ते लतामण्डपे मुहूर्तं तिष्ठामि।

(सर्वतो विलोक्य)

तस्याः पुष्पमयी शरीरलुलिता शय्या शिलायामियं
कान्तो मन्मथलेख एष नलिनीपत्रे नखैरर्पितः।
हस्ताद्भ्रष्टमिदं बिसाभरणमित्यासज्यमानेक्षणो
निर्गन्तुं सहसा न वेतसगृहादीशोऽस्मि शून्यादपि।। 3 -39॥ [162]

(विचिन्त्य) अहो धिक्, असम्यक् चेष्टितं प्रियां समासाद्य कालहरणं कुर्वता मया। तददानीं

रहः प्रत्यासत्तिं यदि सुवदना यास्यति पुनः-
र्न कालं हास्यामि प्रकृतिदुरवापा[7] **हि विषयाः।**

---

1. काश्मीर-पाठे "ऽत्याहितम्। इत देवतासहाया तिष्ठसी" ति। मैथिल-पाठेऽपि का.-पाठवदेव।
2. काश्मीर-पाठे "पिअंवदामिस्साओ" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
3. काश्मीर-पाठे "दर्भोदकेने" ति। आहार्येऽभिनये भेदः स्यात्। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठे "ऽनुशयविघट्टितस्य कथं ते साम्प्रतमि" ति। मैथिल-पाठे "साम्प्रतमधन्यया वर्धितस्य किमपि प्रतिपद्यस" इति।
5. काश्मीर-पाठे सम्बोधनमिदं नास्ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठे "न चुम्बितं त्वि" ति। आनन्दवर्धनेनापि तदेव स्वीक्रियते। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठम् अनुसरति। तु-कारोच्चारणे नटस्याङ्गिकाभिनयेन चुम्बनस्याभिनयो जायेत। अतस्तुकारः साभिप्रायः।
7. काश्मीर-पाठे "प्रणयिदुरवापा" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

इति क्लिष्टं विघ्नैर्गणयति च मे मूढहृदयं
प्रियायाः प्रत्यक्षं किमपि च तथा कातरमिव[1]॥ 3 -40॥ [163]

(नेपथ्ये) भो भो राजन्।

सायन्तने सवनकर्मणि संप्रवृत्ते
वेदीं हुताशनवतीं परितः प्रकीर्णाः।
छायाश्चरन्ति बहुधा भयमादधानाः
सन्ध्याभ्रकूटकपिशाः पिशिताशनानाम्॥ 3 -41॥ [164]

राजा- (आकर्ण्य सावष्टम्भम्[2]) भो भोस्तपस्विनः। मा भैष्ट। अयमहमागतोऽस्मि। [165]

(इति निष्क्रान्तः)

॥ इति शृङ्गारभोगो[3] नाम तृतीयोऽङ्कः॥ [166]

---

1. काश्मीर-पाठात्प्रागेव प्रवर्तितोऽयं प्रक्षेपो मैथिल-बंगीय-पाठयोरपि स्वीकृतः।
2. काश्मीर-पाठे "ससम्भ्रममि" ति। मैथिल-पाठे नेयं रंगसूचना। तत्र साटोपं परिक्रामतीति वाक्यान्ते।
3. काश्मीर-पाठे नास्तीदं नाम। मैथिल-पाठमनुसरति बंगीय-पाठः॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ चतुर्थोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशतः कुसुमावचयनम् अभिनयन्त्यौ[1] सख्यौ[2])

अनुसूया- पिअंवदे,जइ वि गन्धव्वेण विवाहेण णिव्वुत्तकल्लाणा पिअसही सउन्तला अणुरूवभत्तुभाइणी संवुत्ता तधा वि ण मे णिव्वुदं हिअअं। (प्रियंवदे, यद्यपि गान्धर्वेण विवाहेन निर्वृत्तकल्याणा प्रियसखी शकुन्तला अनुरूपभर्तृभागिनी संवृत्ता, तथापि न मे निर्वृतं हृदयम्।) [1]

प्रियंवदा- कधं विअ। (कथमिव।) [2]

अनुसूया- अज्ज सो राएसी इट्ठिपरिसमत्तीए इसीहिं पेसिदो अत्तणो णअरं पविसिअ अन्तेउरिआसदसमागदो इमं जणं सुमरेदि ण व त्ति। (अद्य सः राजर्षिः इष्टिसमाप्तौ ऋषिभिः प्रेषितः आत्मनः नगरं प्रविश्या[3]न्तःपुरिकाशतसमागतः[4] इमं जनं स्मरति न वा इति।) [3]

प्रियंवदा- एत्थ दाव वीसत्था होहि। ण हि तादिसा आकिदिविसेसा गुणविरोहिणो होन्ति।

एत्तिकं उण चिन्तणीअं। तादो तित्थजत्तादो पडिणिउत्तो इमं वुत्तन्तं सुणिअ ण आणे किं पडिवज्जिस्सदि त्ति। (अत्र तावत् विश्वस्ता भव। न हि तादृशाः आकृतिविशेषाः गुणविरोधिनः भवन्ति। एतावत् पुनः चिन्तनीयम्। तातः तीर्थयात्रातः प्रतिनिवृत्तः[5] इमं वृत्तान्तं श्रुत्वा न जाने किं प्रतिपत्स्यते इति।) [4]

अनुसूया- जधा मं पुच्छसि तधा अहिमदं तादस्स। (यथा मां पृच्छसि तथा अभिमतं तातस्य।) [5]

प्रियंवदा- कधं विअ। (कथं इव।) [6]

अनुसूया- किं अण्णं। वरस्स अणुरुवस्स कण्णआ पडिवादणीअअ त्ति अअं दाव पढमो संकप्पो। तं जइ देव्वं जेव सम्पादेदि णं कदत्थो गुरुअणो। (किमन्यत्। वरस्य अनुरूपस्य[6] कन्यका प्रतिपादनीया इति अयं तावत् प्रथमः सङ्कल्पः। तं यदि दैवमेव सम्पादयति, ननु कृतार्थः गुरुजनः।) [7]

प्रियंवदा- एवं णेदं। (पुष्पभाजनं विलोक्य) सहि, अवचिदाइं बलिकम्मपज्जत्ताइं खु कुसुमाइं।

(एवं नु एतत्। सखि, अवचितानि बलिकर्मपर्याप्तानि खलु कुसुमानि।) [8]

अनुसूया- णं सउन्तलाए वि सोहग्गदेवदाओ अच्चिदव्वाओ। ता अवराइं पि अवचिणम्ह। (ननु शकुन्तलया अपि सौभाग्यदेवताः अर्चितव्याः। तत् अपराण्यपि अवचिनवाव[7]।) [9]

प्रियंवदा- जुज्जदि। (युज्यते।) (उभे तदेव कर्माभिनयतः।) [10]

---

1. काश्मीर-पाठे मैथिल-पाठे च "नाटयन्त्यौ०" इति पठ्यते।
2. काश्मीर-पाठे "तपस्विकन्यके०" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
3. बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठमनुसरति। मैथिल-पाठे "हस्तिनापुरं नगरं प्रविश्ये" ति पठ्यते।
4. मैथिल-पाठे0 "ऽन्तःपुरिकासमागत" इति।
5. काश्मीर-पाठ एतौ शब्दौ न स्तः। मैथिल-पाठे "तीर्थात् प्रतिनिवृत्त" इति।
6. काश्मीर-पाठे "गुणवते०" इति पठ्यते। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
7. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं नास्ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(नेपथ्ये) अहमहं भोः .....। [11]

अनुसूया- (कर्णं दत्त्वा) सहि, अदिधिणा विअ णिवेदिदं। (सखि, अतिथिना इव निवेदितम्।) [12]

प्रियंवदा- णं उडए संणिहिदा सउन्तला। (विचिन्त्य) आं अज्ज उण असंणिहिदा हिअएण। तेणहि भोदु एत्तिकेहिं कुसुमेहिं पओअणं[1]। (ननु उटजे सन्निहिता शकुन्तला। आमद्य पुनः असन्निहिता हृदयेन। तेन हि भवतु एतावद्भिः कुसुमैः प्रयोजनम्।)

(इति प्रस्थिते) [13]

(पुनर्नेपथ्ये) आः .... कथमतिथिं मां परिभवसि[2]। [14]

विचिन्तयन्ती यम् अनन्यमानसा तपोनिधिं[3] वेत्सि न मामुपस्थितम्।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन् कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव॥ 4 -1॥ [15]

(उभे श्रुत्वा विषण्णे) [16]

प्रियंवदा- हद्धी हद्धी। तं जेव संवुत्तं। कस्सिं पि पूआरिहे अवरद्धा सुण्णहिअआ पिअसही। (हा धिक् हा धिक्, तदेव संवृत्तम्। कस्मिन्नपि पूजार्हे अपराद्धा शून्यहृदया प्रियसखी।) [17]

अनुसूया- (पुरोऽवलोक्य) सहि, ण क्खु जस्सिं कस्सिं वा। एसो दुव्वासा सुलहकोवो महेसी। तधा अअं विरल[4] पादुद्धाराए गदीए पडिणिउत्तो। (सखि, न खलु यस्मिन् कस्मिन्वा। एषः दुर्वासा सुलभकोपो महर्षिः। तथा अयं विरलपादोद्धारया गत्या प्रतिनिवृत्तः।) [18]

प्रियंवदा- को अण्णो हुदवहादो दहिदुं पहवदि। ता गच्छ। पादेसुं पडिअ णिअत्तावेहि जाव से अहं पि अग्धोदअं उवकप्पेमि। (कोऽन्यः हुतवहाद् दग्धुम् प्रभवति। तद्गच्छ। पादयोः पतित्वा निवर्तय यावद् अस्याहमप्यर्घोदकं उपकल्पयामि।) [19]

अनुसूया- तधा। (तथा।) (इति निष्क्रान्ता) [20]

प्रियंवदा- (पदान्तरे स्खलितं रूपयन्ती) अम्मो, आवेअक्खलिदाए पब्भट्ठं मे अग्गहत्थादो पुप्फभाअणं। (अम्मो, आवेगस्खलितायाः प्रभ्रष्टं मे अग्रहस्तात् पुष्पभाजनम्।) [21]

(नाट्येन पुष्पावचयं विधत्ते[5]।) [22]

अनुसूया- (प्रविश्य) सहि, सरीरी विअ कोवो कस्स सो अणुणअं गेण्हदि। किं चि उण साणुकम्पो किदो। (सखि, शरीरी इव कोपः[6], कस्य सः अनुनयं गृह्णाति। किंचित्पुनः सानुकम्पः[7] कृतः।) [23]

प्रियंवदा- एदं जेव तस्सिं बहुदरं। ता कधेहि। (एतदेव तस्मिन् बहुतरम्। तत्कथय।) [24]

अनुसूया- जदो णिअत्तिदुं णेच्छदि तदो पादेसुं पणमिअ विण्णाविदो मए। भअवं। पढमभत्तिं अवेक्खिअ अज्ज तुह अविण्णादपहावपरमत्थस्स दुहिदाजणस्स भअवदा अअं अवराहो मरिसिदव्वो त्ति।

---

1. काश्मीर-पाठे प्रथमं वाक्यद्वयमुपलभ्यते। बंगीय-पाठे वर्तमानं तृतीयं वाक्यं मैथिल-पाठाद् गृहीतम्।
2. काश्मीर-पाठ "आः, अतिथिपरिभाविनी" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
3. काश्मीर-पाठे "यतोऽतिथिम्" इति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठे "हुताश इव त्वरित०" इति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
5. काश्मीर-पाठे रंगसूचना नास्ति। किन्तु "तत्पुनरप्यवचेष्यामी" ति वाक्यम्। मैथिल-पाठे च "पुष्पावचयमादत्त" इति रंगसूचना पठ्यते।
6. काश्मीर-पाठे "शरीरबद्धः कोप" इति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
7. काश्मीर-पाठे "सानुक्रोश" इति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(यतः निवर्तितुं नेच्छति ततः पादयोः प्रणम्य विज्ञापितः मया। भगवन्, प्रथमभक्तिमवेक्ष्य अद्य तव अविज्ञातप्रभावपरमार्थस्य दुहितृजनस्य भगवता अयमपराधः मर्षितव्यः इति।) [25]

प्रियंवदा- तदो तदो। (ततस्ततः।) [26]

अनुसूया- तदो सो ण मे वअणं अण्णधा भविदुं अरिहदि। किं तु अहिण्णाणाहरणदंसणादो से सावो णिअत्तिस्सदि त्ति मन्तअन्तो ज्जेव अन्तरिदो। (ततः सः न मे वचनमन्यथाभवितुमर्हति।

किं तु अभिज्ञानाभरणदर्शनाद[1]स्याः शापः निवर्तिष्यते इति मन्त्रयन् एवान्तरितः।) [27]

प्रियंवदा- सक्कं दाणिं अस्ससिदुं। अत्थि तेण राएसिणा संपत्थिदेण अत्तणो णामाङ्किदं अङ्गुलीअअं सुमरावणीअं ति सउन्तलाहत्थे सअं जेव पिणद्धाविदं। एसो ज्जेव तस्सिं साहीणो उवाओ भविस्सदि। (शक्यमिदानीमाश्वासितुम्। अस्ति तेन राजर्षिणा सम्प्रस्थितेनात्मनः नामाङ्कितमङ्गुरीयकं स्मरणीयमिति शकुन्तलाहस्ते स्वयमेव पिनद्धम्। तदेषःएव तस्मिन्स्वाधीनः उपायः भविष्यति।) [28]

अनुसूया- एहि। देवकज्जं दाव से णिव्वत्तम्ह[2]। (एहि, देवकार्यं तावदस्याः निवर्तयाव।) [29]

(इति परिक्रामतः) [30]

प्रियंवदा- (विलोक्य) अनुसूये, पेक्ख दाव वामहत्थविणिहिदवअणा आलिहिदा विअ पिअसही तग्गदाए चिन्ताए अत्ताणअं पि ण विभावेदि। किं उण अदिधिविसेसं[3]। (अनुसूये, प्रेक्षस्व तावत् वामहस्तविनिहितवदना आलिखिता इव प्रियसखी तद्गतया चिन्तया आत्मानमपि न विभावयति। किं पुनः अतिथिविशेषम्।) [31]

अनुसूया- पिअंवदे, दोण्णं जेव णो हिअए एसो वुत्तन्तो चिट्ठदु। रक्खणीआ खु पइदिपेलवा पिअसही।

(प्रियंवदे, द्वयोः एव नौ हृदये एषः वृत्तान्तः तिष्ठतु। रक्षणीया खलु प्रकृतिपेलवा प्रियसखी[4]।) [32]

प्रियंवदा- को दाव उण्होदएण णोमालिअं सिञ्चदि। (को तावदुष्णोदकेन[5] नवमालिकां सिञ्चति) [33]

(इत्युभे निष्क्रान्ते) [34]

(प्रवेशकः) [35]

(ततः प्रविशति सुप्तोत्थितः कण्वशिष्यः[6]) [36]

शिष्यः- वेलोपलक्षणायादिष्टोऽस्मि प्रभासात्प्रतिनिवृत्तेन[7] तत्रभवता कण्वेन। तत्प्रकाशं निर्गत्याऽवलोकयामि किमवशिष्टं रजन्या इति। (परिक्रम्यावलोक्य च) [37]

हन्त प्रभातम् ....। तथा हि[8] -

---

1. काश्मीर-पाठे "आभरणाभिज्ञानदर्शनेने" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
2. वाक्यमिदं मैथिल-पाठमनुसृत्य बंगीय-पाठेऽपि प्रक्षिप्तम्। येन च प्रियंवदाया उक्तिरनुसूयाया मुखे समागच्छति। काश्मीर-पाठे तु शापवृत्तान्तस्य संगोपनं कर्तव्यमिति प्रस्तावः प्रियंवदाया मुखे वर्तते।
3. काश्मीर-पाठे "किं पुनरागन्तुकमि" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं प्रियंवदाया मुखे वर्तते। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
5. काश्मीर-पाठे "तापोदकेने" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठे "काश्यपशिष्य" इति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
7. काश्मीर-पाठमनुसरत्ययं बंगीय-पाठः। मैथिल-पाठे "प्रवासादि" ति।
8. काश्मीर-पाठे पुराकालादेव श्लोकोऽयमनुगामी च श्लोकः प्रक्षिप्तावास्ताम्। एवञ्च, तयोरुपस्थितिक्रमांकौ तृतीय-चतुर्थौ स्तः। मैथिल-पाठे चापि तौ तृतीय-चतुर्थ-क्रमांक एव दृश्येते। किन्तु बंगीय-रंगकर्मिभि-रनयोः श्लोकयोः क्रमपरिवर्तनं कृत्वा, तावाद्य स्थाने (प्रथम-द्वितीय-क्रमांके) पुरस्कृतौ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनामाविष्कृतोऽरुण[1] पुरःसर एकतोऽर्कः।
तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां लोको नियम्यत इवैव दशान्तरेषु[2]॥ 4 -2॥ [38],

अपि च-

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा।
इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनेन[3] दुःखानि नूनम्[4] अतिमात्रदुरुद्वहानि॥ 4 -3॥ [39]

अपि च-

कर्कन्धूनामुपरि तुहिनं रञ्जयत्यग्रसन्ध्या
दार्भं मुञ्चत्युटजपटलं वीतनिद्रो मयूरः।
वेदिप्रान्तात्खुरविलिखितादुत्थितश्चैष सद्यः
पश्चादुच्चैर्भवति हरिणः स्वाङ्गमा[5]यच्छमानः॥ 4 -4॥ [40]

अपि च[6] -

पादन्यासं क्षितिधरगुरोर्मूर्ध्नि कृत्वा सुमेरोः
क्रान्तं येन क्षयिततमसा मध्यमं धाम विष्णोः।
सोऽयं चन्द्रः पतति गगनादल्पशेषैर्मयूखै-
रत्यारूढिर्भवति महतामप्यपभ्रंशनिष्ठा[7]॥ 4 -5॥ [41]

अनुसूया- (प्रविश्यापटीक्षेपेण स्वगतम्) एवं पि णाम विसअपरंमुहस्स जणस्स एदं णिवडिदं जधा तेण रण्णा सउन्तलाए अणज्जं आचरिदं ति। (एवमपि नाम विषयपराङ्मुखस्य जनस्य एतत् निपतितं यथा तेन राज्ञा शकुन्तलायाम-नार्यमाचरितमिति।) [42]

शिष्यः- यावदुपस्थितां होमवेलां गुरवे निवेदयामि। [43],

(इति निष्क्रान्तः) [44]

अनुसूया- णं पहादा रअणी। ता लहुं पडिबुद्ध म्हि। अधवा पडिबुद्धा वि किं करइस्सं। ण मे उइदेसुं पि पहादकरणीएसुं हत्था पसरन्ति। सकामो दाणिं कामो भोदु जेण सुद्धहिअआ पिअसही असच्चसन्धे जणे पदं कारिदा। अधवा ण तस्स राएसिणो अवराहो। दुव्वासासावो क्खु एसो पहवदि। अण्णधा कधं दाणिं सो राएसी तादिसाइं मन्तिअ एत्तिकस्स कालस्स वाआमेत्तकं पि ण विसज्जेदि। (विचिन्त्य) ता इदो अहिण्णाणङ्गुलीअअं से विसज्जामो त्ति। अधवा णिद्दुक्खसीदले तवस्सिअणे को णाम अब्भत्थीअदु। ण अ सहीगामी दोसो त्ति कदुअ ववसिदाओ वि पारेमो

---

1. काश्मीर-पाठ "आविष्कृतारुण०" इति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठ "इवात्मदशान्तरेष्वि" ति। मैथिल-पाठे च "०इव व्यसनोदयेष्वि" ति।
3. काश्मीर-पाठे "०अबलाजनस्ये" ति। मैथिल-पाठोऽपि तथैवास्ते।
4. काश्मीर-पाठे "दूरमि" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
5. काश्मीर-पाठे "गात्रमा०" इति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
6. अपि चेति समुच्चयार्थकस्य निपातस्यात्रैव यथार्थत्वं सिध्यति। यतो हि चतुर्थ-पञ्चम-क्रमांकयोः श्लोकयोः निरूप्यमाणौ विषयौ पृथगेव। एतयोरेव श्लोकयोरर्थस्य पुनरुक्तिः प्रथम-द्वितीय-श्लोकाभ्यां जायते। बंगीय-रंगकर्मिभिः श्लोकयोरुपस्थिति-क्रमांकः परिवर्तित इति प्रतीयते।
7. काश्मीर-पाठे "सोम", एवं "सूरारोहो" चेति पाठभेदौ। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

तादकण्णस्स दुस्सन्तपरिणीदं आवण्णसत्तं सउन्तलं णिवेदिदुं। ता एत्थ दाणिं किं णु क्खु अम्हेहिं करणीअं। (ननु प्रभाता रजनी। तत् लघु प्रतिबुद्धास्मि[1]। अथवा प्रतिबुद्धापि किं करिष्यामि। न मे उचितेष्वपि प्रभातकरणीयेषु हस्तौ प्रसरतः। सकामः इदानीं कामः भवतु येन शुद्धहृदया[2] प्रियसख्यसत्यसंधे जने पदं कारिता। अथवा न तस्य राजर्षेः अपराधः। दुर्वाससः शापः खल्वेषः प्रभवति। अन्यथा कथमिदानीं सः राजर्षिः तादृशानि मन्त्रयित्वा एतावतः कालस्य वाङ्मात्रकमपि[3] न विसर्जयति। तत् इतः अभिज्ञानाङ्गुरीयकम् अस्य विसर्जयामः इति। अथवा निर्दुःखशीतले तपस्विजने को नाम अभ्यर्थ्यताम्। न च सखीगामी दोषः इति कृत्वा व्यवसिताः अपि पारयामः तातकण्वस्य दुःषन्तपरिणीताम् आपन्नसत्त्वां शकुन्तलां निवेदयितुम्। तदत्र इदानीं किं नु खल्वस्माभिः करणीयम्।) [45]

प्रियंवदा- (प्रविश्य) अणुसूए, तुवर तुवर। सउन्तलाए पत्थाणकोदूहलाइं करीअन्ति।
(अनुसूये, त्वरस्व त्वरस्व[4]। शकुन्तलायाः प्रस्थानकौतूहलानि क्रियन्ते।) [46]

अनुसूया- (सविस्मयम्) सहि, कधं विअ। (सखि, कथं इव।) [47]

प्रियंवदा- सुणाहि। इदाणिं जेव सुहसुत्तिआपुच्छणणिमित्तं सउन्तलाए समीवं गद म्हि।
(शृणु, इदानीमेव सुखसुप्तिकाप्रश्ननिमित्तं शकुन्तलायाः समीपं गतास्मि।) [48]

अनुसूया- तदो तदो। (ततस्ततः।) [49]

प्रियंवदा- तदो जाव णं लज्जावणदमुहिं परिस्सइअ तादकण्णो एवं अहिणन्देदि। वच्छे, दिट्ठिआ धूमोवरुद्ध दिट्ठिणो वि जजमाणस्स पावअस्स मुहे ज्जेव णिवदिदा आहुदी। सुसिस्सपरिग्गहिदा विअ विज्जा असोअणीआ सि मे संवुत्ता। ता अज्ज ज्जेव तुमं इसिपरिग्गहिदं कदुअ भत्तुणो सकासं विसज्जेमि त्ति। (ततः यावदेनां लज्जावनतमुखीं परिष्वज्य तातकण्वः एवमभिनन्दति। वत्से, दिष्ट्या धूमोपरुद्धदृष्टेः अपि यजमानस्य पावकस्य मुख एव निपतिता आहुतिः। सुशिष्यपरिगृहीतेव विद्या अशोचनीयासि मे संवृत्ता। तदद्यैव त्वामृषिपरिगृहीतां कृत्वा भर्तुः सकाशं विसर्जयामीति।) [50]

अनुसूया- सहि, केण उण आचक्खिदो तादकण्णस्स अअं वुत्तन्तो। (सखि, केन पुनः आख्यातः तातकण्वस्यायं वृत्तान्तः।) [51]

प्रियंवदा- अग्गिसरणं पविट्ठस्स किल सरीरं विणा छन्दोवदीए वाआए। (अग्निशरणं प्रविष्टस्य किल शरीरं विना छन्दोवत्या वाचा।) [52]

अनुसूया- (सविस्मयम्) कधं विअ। (कथं इव।) [53]

प्रियंवदा- सुण। (शृणु।) (संस्कृतमाश्रित्य) [54]

> **दुःषन्तेनाहितं तेजो[5] दधानां भूतये भुवः।**
> **अवेहि तनयां ब्रह्मन्, अग्निगर्भां शमीमिव॥** 4 -6॥ [55]

---

1. काश्मीर-पाठे वाक्यद्वयमिदं नास्ति। मैथिल-पाठे "ननु प्रभातवेला। तर्हि निद्रां परित्यजामी" ति। किन्तु वाक्यद्वयमिदं प्रक्षिप्तमेव प्रतिभाति। यतो हि, अपटीक्षेपेणेति रंगसूचनया प्रविष्टाया अनुसूयाया मुखे तन्न संगच्छते।
2. काश्मीर-पाठे "स्निग्धहृदये" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
3. काश्मीर-पाठे "लेखमात्रमपी" ति। मैथिल-पाठे च "वार्तामात्रमपी" ति पठ्यते। त्रिष्वपि पाठेषु दृश्यमानं भिन्नत्वं तेषां रंगावृत्तित्वं विज्ञापयति। मूलं कदाचित् सर्वथा भिन्नमपि स्यात्।
4. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं नास्ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
5. काश्मीर-पाठे "दुष्यन्तेनाहितं वीर्यमि" ति। मैथिल-पाठे "दुष्मन्तेनाहितं तेज" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अनुसूया- (प्रियंवदामाशिलष्य) सहि, पिअं मे पिअं। किं तु अज्ज ज्जेव सउन्तला णीअदि त्ति उक्कण्ठासाहारणं दाणिं परिदोसं अणुभवामि। (सखि, प्रियं मे प्रियम्। किंतु अद्यैव शकुन्तला नीयतेति उत्कण्ठासाधारणमिदानीं परितोषमनुभवामि।) [56]

प्रियंवदा- अम्हे कधं पि उक्कण्ठं विणोदइस्सामो। सा दाणिं तवस्सिणी णिव्वुदा भोदु। (आवां कथमपि उत्कण्ठां विनोदयिष्याव:। सा इदानीं तपस्विनी निर्वृता भवतु।) [57]

अनुसूया- तेण हि एदस्सिं चूदसाहावलम्बिदे णारिएलसमुग्गए एदंणिमित्तं जेव मए कालहरणक्खमा केसरगुण्डा णिक्खित्ता चिट्ठन्ति। ते तुमं णलिणीवत्तसंगदे करेहि जाव से अहं पि गोरोअणं तित्थमट्टिअं दुव्वाकिसलआइं च मङ्गलसमालहणत्थं विरअआमि। (तेन हि एतस्मिन् चूतशाखावलम्बिते नारिकेलसमुद्गके एतन्निमित्तमेव मया कालहरणक्षमा: केसरगुण्डा:[1] निक्षिप्ता: तिष्ठन्ति। तान् त्वं नलिनीपत्रसङ्गतान् कुरु, यावदस्या: अहमपि गोरोचना[2] तीर्थमृत्तिकां दूर्वाकिसलयानि च मङ्गलसमालम्भनार्थं विरचयामि।) [58]

(प्रियंवदा तथा करोति। अनुसूया निष्क्रान्ता) [59]

(नेपथ्ये)

गौतमि, आदिश्यतां शार्ङ्गरव-शारद्वतमिश्रा:, वत्सां शकुन्तलां नेतुं सज्जीभवतेति[3]। [60]

प्रियंवदा- (कर्णं दत्त्वा) अनुसूये, तुवर तुवर। एदे क्खु हत्थिणाउरगामिणो इसीओ सद्दावीअन्ति।
(अनुसूये, त्वरस्व त्वरस्व। एते खलु हस्तिनापुरगामिन: ऋषय: शब्दाय्यन्ते।) [61]

(प्रविश्य समालभनहस्ता) **अनुसूया-** सहि, एहि गच्छम्ह। (सखि, एहि गच्छाव:।) [62]

(इति परिक्रामत:) [63]

प्रियंवदा- (विलोक्य) एसा सुज्जोदए ज्जेव किदमज्जणा पडिच्छिदणीवारवाअणाहिं तावसीहिं अहिणन्दीअमाणा सउन्तला चिट्ठदि। ता उवसप्पम्ह णं। (एषा सूर्योदये एव कृतमज्जना[4] प्रतीष्टनीवारवाचनाभि: तापसीभि: अभिनन्द्यमाना शकुन्तला तिष्ठति तदुपसर्पाव:।) (इति तथा कुरुत:) [64]

(तत: प्रविशति यथानिर्दिष्टपरिवारा शकुन्तला गौतमी च[5]) [65]

शकुन्तला- भअवदीओ वन्दामि। (भगवती वन्दे[6]।) [66]

गौतमी- जाद, भत्तुणो बहुमाणसुहइत्तअं देवीसद्दं अधिगच्छ। (जात,भर्तु: बहुमानसुखयितारं देवीशब्दम्[7] अधिगच्छ[8]।) [67]

तापस्य:[9]- वच्छे, वीरप्पसविणी होहि। (वत्से, वीरप्रसविनी भव।) [68]

(इति गौतमीवर्जं निष्क्रान्ता:[10]) [69]

---

1. काश्मीर-पाठे "केसरगुणा" इति। मैथिल-पाठे "केसरचूर्णा" इति।
2. काश्मीर-पाठे "मृगरोचनामि" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
3. काश्मीर-पाठे "गौतमी" ति नास्ति, "शारद्वते" ति च नास्ति। बंगीयपाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठे "विसर्जिते" ति। मैथिल-पाठे "सुखमज्जिते" ति।
5. काश्मीर-मैथिली-पाठयो "रासनस्था शकु०" इति। काश्मीर-पाठे "तापस्यश्चे" त्यधिकम्।
6. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं नास्ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
7. काश्मीर-पाठे "महादेवीशब्दमि" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
8. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं तापसी वक्ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
9. काश्मीर-पाठ एकैव तापसी वाक्यमिदं वक्ति। मैथिल-पाठे तापसीद्वयस्य मुखे वाक्यमिदम्।
10. अत्र तापसीनां प्रवेश:, तासामुक्तय[68]श्च रंगकर्मिभि: प्रक्षिप्ता: स्युरिति प्रतीयते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

सख्यौ- (उपगम्य) सहि, सुमज्जणं दे भूदं। (सखि, सुमज्जनं ते भूतम्।) [70]

शकुन्तला- साअदं पिअसहीणं। इदो णिसीदध। (स्वागतं प्रियसखीभ्याम्। इतः निषिदतम्।) [71]

सख्यौ- (उपविश्य) हला, उज्जुआ दाव होहि जाव दे मङ्गलसमालहणं करेमो। (सखि, ऋज्वी[1] तावद्भव यावद् ते मङ्गलसमालभनं कुर्वः।) [72]

शकुन्तला- उइदं पि एदं अज्ज बहुमण्णिदव्वं। जदो दुल्लहं दाव पुणो मे सहीमण्डणं भविस्सदि। (उचितम् अपि एतद् अद्य बहुमन्तव्यम्, यतः दुर्लभं तावत् पुनः मे सखीमण्डनं भविष्यति।) [73]

(इति बाष्पं विसृजति[2]।) [74]

सख्यौ- सहि, ण जुत्तं मङ्गलआले रोदिदुं। (सखि, न युक्तं मङ्गलकाले रोदितुम्।) [75]

(अश्रूणि परिमृज्य नाट्येन प्रसाधयतः) [76]

प्रियंवदा- अहो, आहरणारिहं दे रूवं अस्समसुलहेहिं पसाहणेणिं विप्पआरीअदि। (अहो, आभरणार्हं ते रूपमाश्रमसुलभैः प्रसाधनैः विप्रकार्यते।) [77]

मुनिकुमारकः[3]- (प्रविश्य आभरणहस्तो) इदमलङ्कारजातम् अलङ्क्रियतामायुष्मती। [78]

(सर्वा विलोक्य विस्मिताः) [79]

गौतमी- वच्छ हारीद, कुदो एदं। (वत्स हारीत, कुतः एतत्।) [80]

हारीतः- तातकण्व-प्रभावात्[4]। [81]

गौतमी- किं माणसी सिद्धी। (किं मानसी सिद्धिः।) [82]

हारीतः- न खलु। श्रूयताम्। तत्रभवता कण्वेन वयम्[5] आज्ञापिताः शकुन्तलाहेतोर्वनस्पतिभ्यः कुसुमान्याहरतेति[6]। [83] ततः-

क्षौमं केन चिदिन्दुपाण्डु तरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं
निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुलभो[7] लाक्षारसः केनचित्।
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै[8] -
र्दत्तान्याभरणानि नः किसलयच्छायाप्रतिस्पर्धिभिः॥ 4 -7॥ [84]

प्रियंवदा[9]- (शकुन्तलां विलोक्य) कोडरसंभवा वि महुअरी पोक्खरमहुं जेव अहिलसदि। (कोटरसम्भवाऽपि मधुकरी पुष्करमध्वेवाभिलषति।) [85]

---

1. काश्मीर- पाठे "ऋजुकगते" ति। मैथिल, पाठ "ऋजुके"ति।
2. काश्मीर-पाठे "रुदत्युत्तिष्ठती" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
3. काश्मीर-पाठ "ऋषिकुमारकावि" ति। मैथिल-पाठे च "मुनिकुमारकावि" ति। (हारीत-गौतमौ)
4. काश्मीर-पाठे "तातकाश्यपप्रसादादि" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
5. बंगीय-रंगभूमौ हारीत इत्येक एव प्रविष्ट आसीत्, तर्हि कथमत्र बहुवचनमिति प्रश्नो जायते। सूच्यतेऽनेन यन्मूलतस्तु द्वावेवास्ताम् मुनिकुमारौ, किन्तु रंगकर्मिभिरेकेनैव शिष्येण दृश्यमिदमभिनेतुमुपक्रम्यते।
6. मैथिल-पाठे "कुसुमाभरणान्याहरतेती" ति। बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठमनुसरति।
7. काश्मीर-पाठे "०पभोगसुभग" इति। मैथिल-पाठे "०परागसुभग" इति।
8. काश्मीर-पाठे "आपर्वमूलोत्थितैरि" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
9. काश्मीर-पाठ उक्तिरियं शकुन्तलाया मुखेऽन्यत्स्वरूपेण वर्तते। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिलमनुगच्छति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

गौतमी[1] - इमाए अब्भुववत्तीए सूइदा भत्तुणो गेहे अणुभविदव्वा राअलच्छी। (अनयाभ्युपपत्या सूचिता भर्तुः गेहे अनुभवितव्या राजलक्ष्मीः।) [86]

(शकुन्तला लज्जां नाटयति[2]) [87]

हारीतः- यावदिमां वनस्पतिसेवामभिषेकार्थं मालिनीतीरमवतीर्णाय भगवते[3] कण्वाय निवेदयामि।

(इति निष्क्रान्तः[4]) [88]

अनुसूया- सहि,अणणुभूदभूसणो अअं जणो कधं तुमं अलंकरेदु। (चिन्तयित्वा विलोक्य च) चित्तपरिचएण दाणिं दे अङ्गेसुं आहरणविणिओअं करेम्ह। (सखि, अननुभूतभूषणः अयं जनः कथं त्वाम् अलङ्करोतु। चित्रपरिचयेन[5] इदानीं ते अङ्गेषु आभरणविनियोगं कुर्वहे।) [89]

शकुन्तला- जाणामि वो णिउणत्तणं। (जानामि वां निपुणत्वम्।) [90]

(सख्यौ नाट्येनालङ्कारमायुञ्जाते।) [91]

(ततः प्रविशति स्नानोत्तीर्णः[6] कण्वः) [92]

कण्वः-

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं स्पृष्टं समुत्कण्ठया[7]
अन्तर्बाष्पभरोपरोधि गदितं[8] चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशम् अहो स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः[9]॥ 4 -8॥ [93]

(इति परिक्रामति) [94]

सख्यौ- हला सउन्तले, अवसिदमण्डणा दाणिं सि तुमं। संपदं परिधेहि एदं विचित्तं खोमजुअलं। (सखि शकुन्तले, अवसितमण्डना इदानीमसि त्वम्। साम्प्रतं परिधेहि एतद्विचित्रं क्षौमयुगलम्[10]।) [95]

(शकुन्तला उत्थाय नाट्येन परिधत्ते[11]।)[12] [96]

गौतमी- जाद, एसो दे आणन्दबाहपरिवाहिणा लोअणेण परिस्सअन्तो विअ गुरू उवत्थिदो। ता समुदाआरं पडिवज्जसु। (जात,

1. काश्मीर-पाठ उक्तिरियं प्रियंवदाया मुखे वर्तते। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठे "निरूपयती" ति। मैथिल-पाठे "रूपयती" ति।
3. काश्मीर-पाठे "ऽभिषेकाद् अवतीर्णाये" ति। मैथिल-पाठे "ऽभिषेकावतीर्णाये" ति।
4. का.-मै.-पाठयोः शिष्ययोः रंगान्निर्वर्तनमनुसूया-शकुन्तलयोर्वाक्ययोरनन्तरं (क्रमांक-89-90) भवति। किन्तु बंगीय-रंगकर्मिणां योजना समीचीना प्रतिभाति।
5. काश्मीर-मैथिल-पाठयो "श्चित्रकर्मपरिचयेने" ति।
6. काश्मीर-पाठे "सुप्तो(स्नानो)त्थित०" इति। मैथिल-पाठे "स्नानावतीर्ण" इति।
7. काश्मीर-पाठे "संस्पृष्टम् उत्कण्ठये" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
8. काश्मीर-पाठे "कण्ठस्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषमि" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
9. काश्मीर-पाठ "इदम्", "ने" ति च। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
10. काश्मीर-पाठे "पवित्रं क्षौमनिर्मोकमि" ति। मैथिल-पाठे "पवित्रं क्षौमयुगमि" ति।
11. काश्मीर-पाठे "शकुन्तला लतागृहान् निर्गत्य, परिधाय पुनःप्रविश्योपविष्टे" ति। मैथिल-पाठे "शकुन्तलोत्थाय परिधाय च पुनस्तथैवास्त" इति।
12. काश्मीर-पाठे "काश्यप उपसर्पती" ति। मैथिल-पाठे "कण्व उपसर्पती" ति। बंगीय-पाठे च नास्ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

एषः ते आनन्दबाष्पपरिवाहिणा लोचनेन परिष्वजमानः इव गुरुः उपस्थितः। तत् समुदाचारं[1] प्रतिपद्यस्व।) [97]

(शकुन्तला सव्रीडा वन्दनां करोति।) [98]

कण्वः- वत्से[2],

ययातिरेव शर्मिष्ठा पत्युर्बहुमता भव।
पुत्रं त्वमपि सम्राजं सेव पूरुम् अवाप्नुहि[3]॥ 4 -9॥ [99]

गौतमी- जाद, वरो क्खु एसो, ण उण आसिसा। (जाते[4], वरः खल्वेषः, न पुनः आशीः।) [100]

कण्वः- वत्से, इतः सद्यो हुताग्नीन् प्रदक्षिणीकुरुष्व। (सर्वे परिक्रामन्ति) [101]

कण्वः- वत्से,

अमी वेदीं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः[5] समिद्वन्तः प्रान्तविस्तीर्णदर्भाः[6]।
अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धै- र्वैतानास्त्वां वह्नयः पालयन्तु॥ 4 -10॥ [102]

(शकुन्तला प्रदक्षिणं करोति) [103]

कण्वः- वत्से, प्रतिष्ठस्वेदानीम्। (सदृष्टिविक्षेपम्) क्व नु ते शार्ङ्गरव-शारद्वतमिश्राः। [104]

शिष्यौ- (प्रविश्य) भगवन् इमौ स्वः[7]। [105]

कण्वः- वत्स शार्ङ्गरव, भगिन्याः पन्थानं[8]मादेशय। [106]

शिष्यः- इत इतो भवती। (सर्वे परिक्रामन्ति) [107]

कण्वः- भो भोः सन्निहितवनदेवतास्तपोवनतरवः[9]। [108]

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वसिक्तेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रवृत्ति[10] समये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥ 4 -11॥ [109]

शार्ङ्गरवः- (कोकिलशब्दं सूचयित्वा[11]) [110] भगवन्,

---

1. काश्मीर-पाठ "आचारमि" ति। मैथिल-पाठे "सादरमि" ति।
2. केवलं मैथिल-पाठ इतः परं "वीरप्रसविनी भवे" ति। तत्तु पुनरुक्तिदोषग्रस्तम्।
3. काश्मीर-पाठे "समाप्नुही" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "भगवन्नि" ति। बंगीय-पाठे वाक्यमिदं कण्वमुद्दिश्योच्यते।
5. मैथिल-पाठे "क्षिप्तधूमा" इति। बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "संस्तीर्णदर्भा" इति।
7. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "(प्रविश्य समं त्रयः) ०इमे वयमि" ति। बंगीय-पाठे द्वावेव समागच्छतः।
8. काश्मीर-पाठे "मार्गमि" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
9. काश्मीर-पाठे काश्यपः शकुन्तलामुद्दिश्य तपोवनतरुतोऽनुज्ञां याचयति। बं.-पाठोऽत्र मै.-पाठमनुसरति।
10. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "०प्रबोध०" इति।
11. काश्मीर-पाठे रंगसूचनेयं न प्रदत्ता। प्रथमवारं मैथिल-पाठ एव पार्श्वतो ध्वनिरेष श्राव्यते। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अनुमतगमना शकुन्तला सा[1] तरुभिरियं वनवासबन्धुभिः।
परभृतविरुतं कलं[2] यदासीत्[3] प्रतिवचनीकृतमेभिरात्मनः[4]॥ 4 -12॥ [111]

(नेपथ्ये)

रम्यान्तरः कमलिनीहरितैः[5] सरोभिश्छायाद्रुमैर्नियमितार्कमरीचितापः[6]।
भूयात् कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्याः शान्तानुकूल[7] पवनश्च शिवश्च पन्थाः॥ 4 -13॥ [112]

(सर्वे सविस्मयमाकर्णयन्ति) [113]

गौतमी- जाद, णादिकुलसिणिद्धं अब्भणुण्णादा सि तवोवणदेवदाहिं। ता पणम भअवदीणं। (जात, ज्ञातिकुलस्निग्धमभ्यनुज्ञाताऽसि तपोवनदेवताभिः। तत्प्रणम भगवतीः।) [114]

शकुन्तला- (सप्रणामं परिक्रम्य, जनान्तिकम्) पिअंवदे, अज्जउत्तदंसणुस्सुआए वि अस्समपदं परिच्चअन्तीए दुक्खदुक्खेण चलणा मे पुरोमुहा णिवडन्ति। (प्रियंवदे, आर्यपुत्रदर्शनोत्सुकायाः अपि आश्रमपदं परित्यजन्त्याः दुःखदुःखेन चरणौ मे पुरोमुखौ निपततः।) [115]

प्रियंवदा- ण केवलं तुमं जेव तवोवणविरहकादरा। तए उवत्थिदविओअस्स तवोवणस्स वि अवत्थं पेक्ख दाव। (न केवलं त्वमेव तपोवनविरहकातरा[8]। त्वया उपस्थितवियोगस्य तपोवनस्याप्यवस्थां प्रेक्षस्व तावत्।) [116]

उल्ललइ दब्भकवलं मई परिच्चत्तणच्चणा मोरी।
ओसरिअपण्डुवत्ता मुअन्ति अङ्गाइ व लआओ[9]॥ 4 -14॥

(उद्गलति दर्भकवलं मृगी, परित्यक्तनर्तना मयूरी।
अपसृतपाण्डुपत्राः मुञ्चन्त्यङ्गानि इव लताः[10])॥ 4 -14॥ [117]

शकुन्तला- (स्मृत्वा) ताद, लदावहिणिअं दाव माहविं आमन्तइस्सं। (तात, लताभगिनीं तावत् माधवीमामन्त्रयिष्यामि।) [118]

कण्वः- वत्से, अवैमि ते तस्यां सौहार्दम्। इयं सा दक्षिणे। पश्य। [119]

शकुन्तला- (उपेत्य लतामालिङ्ग्य) लदावहिणिए। पच्चालिङ्ग मं साहामईहिं बाहाहिं। अज्ज पहुदि दूरवत्तिणी खु दे भविस्सं। ताद, अहं विअ इअं तए चिन्तणीआ। (लताभगिनि, प्रत्यालिङ्ग मां शाखामयैः बाहुभिः। अद्यप्रभृति दूरवर्तिनी खलु ते भविष्यामि। तात, अहमिव इयं त्वया चिन्तनीया।) [120]

कण्वः- वत्से,

---

1. काश्मीर-पाठे "से" ति पदं नास्ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति। (अपरवक्त्र-छन्दसि श्लोकः)
2. काश्मीर-पाठे "परभृतरसितं प्रियमि" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
3. काश्मीर-पाठे "यदा प्रति०" इति। मैथिल-पाठे "यद्द्यै" ति।
4. काश्मीर-पाठे "रम्यान्तरकमलकीर्ण०" इति श्लोकादनन्तरमेवा "ऽनुमतगमने" ति श्लोकः समागच्छति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
5. काश्मीर-पाठे "कमलकीर्णजलैः०" इति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठे "०मयूखताप" इति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
7. काश्मीर-पाठे "शान्तोऽनुकूल०" इति। बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठमनुसरति।
8. काश्मीर-पाठे "न केवलं तव विरहपर्युत्सुकाः सख्य एवे" ति। उक्तिरियं शकुन्तलायाः पूर्वोक्तेन वाक्येन सह न संगच्छते। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
9. अस्यां गाथायां पथ्याऽऽर्याया लक्षणं (30+27 मात्राः) संगच्छते। (तथापि "अङ्गाइ" रूपं चिन्त्यम्)
10 काश्मीर-पाठे "परिश्रान्तनर्तना", "धुन्वन्ती" ति च। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

सङ्कल्पितं प्रथममेव मया त्वदर्थे भर्तारमात्मसदृशं स्वगुणैर्गतासि[1]।
अस्यास्तु सम्प्रति वरं त्वयि वीतचिन्तः कान्तं समीपसहकारमिमं करिष्ये॥ 4 -15॥ [121][2]

तदितः पन्थानं प्रतिपद्यस्व। [122]

शकुन्तला- (सख्यावुपेत्य) हला, एसा दोण्णं पि वो हत्थे णिक्खेवो। (सखि, एषा द्वयोः अपि वां हस्ते निक्षेपः।) [123]

सख्यौ- अअं जणो कस्सिं दाणिं समप्पिदो। (अयं जनः कस्मिन्निदानीं समर्पितः।) [124]

(इति बाष्पं विसृजतः) [125]

कण्वः- अनुसूये प्रियंवदे, अलं रुदितेन। ननु भवतीभ्यामेव शकुन्तला स्थिरीकर्तव्या[3]। [125]

(सर्वे परिक्रामन्ति) [126]

शकुन्तला- ताद, एसा उडअपज्जन्तआरिणी गब्भहारमन्थरा मिअवहू जदा सुहप्पसवा भवे तदा मे कं पि पिअणिवेअणइत्तअं विसज्जइस्सध। मा एदं विसुमरिस्सध। (तात, एषा उटजपर्यन्तचारिणी गर्भभारमन्थरा मृगवधूः यदा सुखप्रसवा[4] भवेत्तदा मे किमपि प्रियनिवेदयितारं विसर्जयिष्यथ। मा एतद् विस्मरिष्यथ।) [127]

कण्वः- वत्से, नेदं विस्मरिष्यामि। [128]

शकुन्तला- (गतिभेदं रूपयित्वा) अम्मो,को णु क्खु एसो पदक्कन्तो विअ मे पुणो पुणो वसणन्ते सज्जदि।
(अम्मो, कोऽनु खल्वेषः पदाक्रान्तः इव मे पुनः पुनः वसनान्ते सज्जति।) [129]

(परिवृत्यावलोकयति) [130]

कण्वः-

यस्य त्वया व्रणविरोहणमिङ्गुदीनां तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे।
श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति सोऽयं न पुत्रकृतकः[5] पदवीं मृगस्ते॥ 4 -16॥ [131]

शकुन्तला- वच्छ, किं मं सहवासपरिच्चाइणिं अणुबन्धसि[6]। णं अचिरप्पसूदोवरदाए जणणीए विणा जधा मए वड्ढिदो सि तधा इदाणिं पि मए विरहिदं तादो तुमं चिन्तइस्सदि। ता णिअत्तसु, वच्छ णिअत्तसु। (वत्स, किं मां सहवासपरित्यागिनी-मनुबध्नासि। ननु अचिरप्रसूतोपरतया जनन्या विना यथा मया वर्धितोऽसि तथा इदानीमपि मया विरहितं तातः त्वां चिन्तयिष्यति। तत् निवर्तस्व, वत्स निवर्तस्व।) [132] (इति रुदती प्रस्थिता)

कण्वः- वत्से, अलं रुदितेन। स्थिरा भव। इतः पन्थानमवलोकय[7]। [133]

उत्पक्ष्मणोर्नयनयोरुपरुद्धवृत्तिं बाष्पं कुरु स्थिरतया शिथिलानुबन्धम्[8]।
अस्मिन्नलक्षितनतोन्नतभूमिभागे मार्गे पदानि खलु ते विषमीभवन्ति॥ 4 -17॥ [134]

---

1. काश्मीर-पाठे "स्वगुणैर्गता त्वमि" ति। मैथिल-पाठे "सुकृतैर्गतासी" ति।
2. काश्मीर-पाठेऽपि दृश्यमानः प्रक्षिप्तोऽयं (उक्ति-क्रमांकः 118 तः आरभ्य 121 पर्यन्तो निखिलः) पाठ्यांशः मैथिल-बंगीय-पाठयोरपि संचरितः। किन्तु 4-15 श्लोकस्थः सहकारशब्द एव तस्य प्रक्षिप्तत्वं द्योतयति। यतो हि सहकारेण सह तु नवमालिका स्वयंवरवधूत्वेन परिणीतैवेति पूर्वं कथितमेव।
3. काश्मीर-पाठे "प्रियंवद" इति नास्ति, "स्थापयितव्ये" ति च। बंगीयपाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठ "आपन्नप्रसविणी" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
5. काश्मीर-पाठे "पुत्रककृत" इति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठे "कैतवस्नेहाम् अन्वेषसी" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
7. काश्मीर-पाठे न सन्त्येतानि वाक्यानि। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
8. काश्मीर-पाठे "स्थिरतरं विहितानुबन्धमि" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शारङ्गरव- भगवन्, उदकान्तं स्निग्धोऽनुगम्यत इति स्मर्यताम्। तदिदं सरसीतीरम्[1]। अत्र नः सन्दिश्य प्रतिगन्तुमर्हसि। [135]

कण्वः- तेन हीमां क्षीरवृक्षच्छायामाश्रयामः। (सर्वे तथा नाटयन्ति[2]) [136]

कण्वः- किं नु खलु तत्रभवतो दुःषन्तस्य युक्तरूपं सन्देष्टुम्। (इति चिन्तयति।) [137]

अनुसूया- सहि, ण णो अस्समपदे अत्थि को वि चित्तवन्तो जो तए विरहीअन्तो अज्ज ण ऊसुओ किदो। पेक्ख-

पुडइणिवत्तन्तरिअं वाहरिओ णाणुवाहरेइ पिअं।
मुहउव्वुढमुणालो तइ दिट्ठिं देइ चक्काओ।। 4 -18।।

(सखि, न नः आश्रमपदे अस्ति कोऽपि चित्तवान् यः त्वया विरह्यमाणः अद्य न उत्सुकः कृतः। प्रेक्षस्व-

(पुटकिनीपत्रान्तरिता[3] व्याहृतः नानुव्याहरति प्रियाम्।
मुखोद्व्यूढमृणालः त्वयि दृष्टिं ददाति चक्रवाकः)[4] ।। 4 -18।। [138]

कण्वः- वत्स शार्ङ्गरव, इति त्वया मद्वचनात्स राजा शकुन्तलां पुरस्कृत्याभिधातव्यः। [140]

अस्मान्साधु विचिन्त्य संयमधनान् उच्चैः कुलं चात्मन-
स्त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं च ताम्।

सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया
दैवाधीनमतः परं न खलु तत्स्त्रीबन्धुभिर्याच्यते[5]।। 4 -19।। [141]

शिष्यः- भगवन् गृहीतोऽयं सन्देशः। [142]

कण्वः- (शकुन्तलां विलोक्य)
वत्से त्वमिदानीमनुशासनीया। वनौकसोऽपि वयं लोकज्ञा[6] एव। [143]

शिष्यः- भगवन्, न खलु कश्चिद् अविषयो नाम धीमताम्। [144]

कण्वः- वत्से, सा त्वमितः पतिगृहं प्राप्य, -

शुश्रूषस्व गुरुन्कुरु प्रियसखीवृत्तं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।

भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भोगेष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः[7]।। 4 -20।। [145]

कथं वा गौतमी मन्यते। [146]

---

1. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "सरस्तीरम्" इति।
2. काश्मीर-पाठ "(उपविश्य), (सर्वे तथा कृत्वा तिष्ठन्ती)" ति। मैथिल-पाठे "सर्वे तथा स्थिते" ति।
3. काश्मीर-पाठे "पद्मिनीपत्रान्तरितामि" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठ इतः परं शकुन्तला-प्रियंवदयोरुक्तिद्वयं वर्तते। किन्तु बंगीय-पाठे रंगकर्मिभिस्तयोः संक्षेपः कृत इति स्पष्टं प्रतीयते। "अद्यापि विना प्रियेण गमयति रात्रिं विसूरणादीर्घामि" ति गाथा निष्कासिता।
5. काश्मीर-मैथिल-पाठयो "र्भावप्रवृत्तिमि" ति, "भाग्याधीनमत" इति च।
6. मैथिल-पाठे लौकिकज्ञेति पठ्यते। बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठमनुसरति।
7. काश्मीर-पाठे "प्रियसखीवृत्तिमि" ति, "भाग्येष्वनुत्सेकिनी" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

गौतमी- एत्तिकं खु बहूणं उवदेसो। (शकुन्तलां प्रति) जाद, मा विसुमरिस्ससि। (एतावत् खलु वधूनामुपदेशः। जाते, मा विस्मरिष्यसि[1]।) [147]

कण्वः- एहि वत्से, परिष्वजस्व मां सखीजनं च। [148]

शकुन्तला- ताद; इदो ज्जेव पिअसहीओ विणिअत्तिसन्ति। (तात, इतः एव प्रियसख्यौ विनिवर्तिष्येते।) [149]

कण्वः- वत्से, इमे अपि प्रदेये। तत्र युक्तमनयोस्तत्र गन्तुम्। त्वया सह गौतमी गमिष्यति। [150]

शकुन्तला- (पितुरङ्कमाश्लिष्य[2]) कधं दाणिं तादस्स अङ्कदो परिब्भट्ठा मलअपव्वदुम्मूलिदा विअ चन्दणलदा[3] देसन्तरे जीविदं धारइस्सं। (कथमिदानीं तातस्य अङ्कात् परिभ्रष्टा मलयपर्वतोन्मूलितेव चन्दनलता देशान्तरे जीवितं धारयिष्यामि।) [151]

(इति रोदिति)

कण्वः- वत्से, किमेव कातराऽसि। [152]

अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे
विभवगुरुभिः कृत्यैरस्य प्रतिक्षणमाकुला।
तनयमचिरात्प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनं
मम विरहजां न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि॥ 4 -21॥ [153]

शकुन्तला- (पादयोः पतित्वा) ताद, वन्दामि[4]। (तात, वन्दे।) [154]

कण्वः- वत्से, यदहमीहे तदस्तु ते[5]। [155]

शकुन्तला- (सख्यावुपेत्य) सहीओ, एध दुवे वि मं समं जेव परिस्सअध। (सख्यौ, एते द्वे अपि मां सममेव परिष्वजेथाम्।) [156]

सख्यौ- (तथा कृत्वा)सहि, जइ कदा वि सो राएसी पच्चहिण्णाणमन्थरो भवे तदो से अत्तणो णामधेअङ्किदं अङ्गुलीअअं दंसइस्ससि। (सखि, यदि कदा अपि सः राजर्षिः प्रत्यभिज्ञानमन्थरः भवेत् ततः अस्मै आत्मनः नामधेयाङ्कितम्[6] अङ्गुरीयकं दर्शयिष्यसि। [157]

शकुन्तला- इमिणा सन्देहेण वो कम्पिदं मे हिअअं। (अनेन सन्देहेन[7] वां कम्पितं मे हृदयम्।) [158]

सख्यौ- सहि, मा भाआहि। सिणेहो पावं आसङ्कदि। (सखि, मा बिभीहि। स्नेहः पापम्[8] आशङ्कते।) [159]

शार्ङ्गरवः- (विलोक्य) भगवन्, अगान्तरमधिरूढः[9] सविता। तत्त्वरतां भवती। [160]

---

1. काश्मीर-मैथिल-पाठयो "रवधारये" ति।
2. काश्मीर-पाठ "उत्थाय पितरमालिङ्ग्ये" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
3. काश्मीर-पाठे करिसार्थपरिभ्रष्टा करेणुकाया उपमानं प्रयुज्यते। तदेवान्तरिकी-सम्भावनायुक्तं सिध्यति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-मैथिल-पाठयोरितः पूर्वम् "यदा शरीरस्य शरीरिणश्च पृथक्त्वमि" ति श्लोकोऽप्यपि चेदम् अवधारयेति शब्देन प्रस्तूयते। बंगीय-पाठेऽस्य श्लोकस्य निष्कासनं कृतं रंगकर्मिभिरिति प्रतीयते।
5. काश्मीर-पाठे "यदिच्छसि तत् तेऽस्त्वि" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठे "तदीयनामधेयाङ्कितमि" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
7. का.-मै.-पाठयोः "सन्देशेने" ति। सप्तमांके "सखीभिः संदिष्टमि" ति वचनाद् बं.-पाठभेदो नोचितः।
8. काश्मीर-पाठे "स्नेहो वाममि" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
9. काश्मीर-पाठे "युगान्तरमधिरूढ" इति। मैथिल-पाठे "दूरमारूढ" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला- (भूयः पितुरङ्कमाश्लिष्य) ताद, कदा णु क्खु भूओ तवोवणं पेक्खिस्सं। (तात, कदा नु खलु भूयः तपोवनं प्रेक्षिष्ये।) [161]

कण्वः- वत्से,

भूत्वा चिराय सदिगन्तमहीसपत्नी दौःषन्तिमप्रतिरथं तनयं प्रसूय।
तत्सन्निवेशितधुरेण सहैव भर्त्रा शान्त्यै करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन्[1]॥ 4 -22॥ [162]

गौतमी- जाद, परिहीअदि दे गमणवेला। ता णिअत्तावेहि पिदरं, अधवा चिरेण वि एसा ण णिअत्तइस्सदि। ता णिअत्तदु भवं। (जात, परिहीयते ते गमनवेला। तत् निवर्तय पितरं। अथवा चिरेणापि एषा न निवर्तयिष्यति। तत् निवर्ततां भवान्।) [163]

कण्वः- वत्से, उपरुध्यते मे तपोवना[2]नुष्ठानम्[3]। [164]

शकुन्तला[4] - तवोवणवावारेण णिरुक्कण्ठो तादो। अहं उण उक्कण्ठाभाइणी संवृत्ता। (तपोवनव्यापारेण निरुत्कण्ठः तातः। अहं पुनः उत्कण्ठाभागिनी संवृत्ता।) [165]

कण्वः- अयि, किं मामेवं जडीकरोषि। (निःश्वस्य) [166]

अपयास्यति मे शोकः कथं नु वत्से त्वयावचितपूर्वम्[5]।
उटजद्वारि विरुढं नीवारबलिं विलोकयतः॥ 4 -23॥ [167]

गच्छ। शिवास्ते सन्तु पन्थानः। [168]

(इति निष्क्रान्ताः शकुन्तलया सह गौतमी-शार्ङ्गरव-शारद्वतमिश्राः।) [169]

सख्यौ- (चिरं विलोक्य सकरुणम्) हद्धी हद्धी, अन्तरिदा सउन्तला वणराईहिं। (हा धिक्, हा धिक्। अन्तरिता शकुन्तला वनराजिभिः।) [170]

कण्वः- अनुसूये प्रियंवदे, गता वां सहचरी[6]। निगृह्य शोकावेषं मामनुगच्छतम्। [171]

(सर्वे प्रस्थिताः) [172]

उभे- ताद, सउन्तलाविरहिदं सुण्णं विअ तवोवणं पविसामो। (तात, शकुन्तलाविरहितं शून्यमिव तपोवनं, प्रविशावः।) [173]

कण्वः- स्नेहवृत्तिरेवंदर्शिनी[7]। [174]

(सविमर्शं परिक्रम्य) [175]

---

1. काश्मीर-पाठे "चतुरन्त०", "दौष्यन्तिम०", "धुरेणे", "शान्ते" चेति। मैथिल-पाठे "सदिगन्त०", "दौष्मन्तिम०", "०भरेण", "शान्त्यै" चेति।
2. काश्मीर-पाठे "तपोऽनु०" इति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
3. काश्मीर-मैथिल-पाठयोरितः परं "प्रतिनिवर्तितुमिच्छामी" ति वाक्यमपि वर्तते।
4. केवलं मैथिल-पाठे "सासूयमि" ति रंगसूचनास्ति।
5. काश्मीर-पाठे "शममेष्यति मम वत्से कथमिव शोकस्त्वया रचितपूर्वमि" ति। मैथिल-पाठे "0त्वया रचितपूर्वमि" ति।
6. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "सहधर्मचारिणी" ति।
7. काश्मीर-पाठे "स्नेहवृत्तिरिव दर्शनीये" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

हन्त भोः। शकुन्तलां विसृज्य लब्धमिदानीं स्वास्थ्यम्। कुतः-[176]

अर्थो हि कन्या परकीय एव तामेव[1] संप्रेष्य परिग्रहीतुः।
जातोऽस्मि सद्यो विशदान्तरात्मा चिरस्य निक्षेपमिवार्पयित्वा॥ 4 -24॥ [177]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति शकुन्तला-प्रस्थानो[2] नाम चतुर्थोऽङ्कः॥

---

1. मैथिल-पाठे "ताम् अद्ये" ति। बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठे प्रत्येकानामङ्कानां नामानि नैव प्रदत्तानि। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ पञ्चमोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशति कञ्चुकी[1]) [1]

कञ्चुकी- (निःश्वस्य[2]) अहो बत कीदृशीं वयोऽवस्थामापन्नोऽस्मि। [2]

आचार इत्यधिकृतेन मया गृहीता या वेत्रयष्टिरवरोधगृहेषु राज्ञः।
काले गते बहुतिथे मम सैव जाता प्रस्थानविक्लवगतेरवलम्बनाय[3]॥ 5 - 1॥ [3]

यावदभ्यन्तरगताय देवाय स्वमनुष्ठेयमकालक्षेपार्हं निवेदयामि। (स्तोकमन्तरं गत्वा) किं किं पुनस्तत्। (विचिन्त्य) आम् ज्ञातम् कण्वशिष्यास्तपस्विनो[4] देवं द्रष्टुमिच्छन्ति। भोश्चित्रमेतत्। [4]

क्षणात्प्रबोधमायाति लङ्घ्यते तमसा पुनः।
निर्वास्यतः प्रदीपस्य शिखेव जरतो मतिः॥ 5 -2॥ [5]

(परिक्रम्य दृष्ट्वा[5]) एष देवः[6]

प्रजाः प्रजाः स्वा[7] इव तन्त्रयित्वा निषेवते शान्तमना विविक्तम्।
यूथानि सञ्चार्य रविप्रतप्तः शीतं दिवा स्थानमिव द्विपेन्द्रः[8]॥ 5 -3॥ [6]

यत्सत्यं शङ्कित इवास्मीदानीमेव धर्मासनादुत्थिताय देवाय कण्वशिष्यागमनं निवेदयितुम्। अथवा कुतो वा विश्रामो लोकपालानाम्। तथा हि-[7]

भानुः सकृद्युक्ततुरङ्ग एव, रात्रिंदिवं गन्धवहः प्रयाति।
शेषः सदैवाहितभूमिभारः[9], षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः[10]॥ 5 -4॥ [8]

(इति परिक्रामति) [9]

(ततः प्रविशति राजा विदूषको विभवतश्च[11] परिवारः।) [10]

---

1. काश्मीर-पाठेऽपि कञ्चुकी प्रथमं प्रविश्य दृश्यारम्भं करोति। तथैव मैथिल-पाठेऽपि वर्तते।
2. काश्मीर-पाठ "आत्मानं विलोक्ये" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
3. काश्मीर-पाठे "कालेन सैव परिहीननियोगशक्तेर्गन्तुं ममेयमवलम्बनवस्तु जाते" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठे "तपोधना" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
5. काश्मीर-पाठे "परिक्रम्याकाश" इति रंगसूचनयाकाशभाषितेन कञ्चुकी वक्ति।
6. काश्मीर-पाठे "मौद्गल्य, धर्मकार्यमनतिपात्यमि" त्यादीनि भिन्नान्येव वाक्यानि वर्तन्ते। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठेन कृतं यत्परिवर्तनं तदनुसरति।
7. काश्मीर-पाठे "मनुः प्रजास्वा०" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
8. काश्मीर-पाठे श्लोकोऽयं चतुर्थक्रमांके वर्तते। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
9. काश्मीर-पाठे "ऽवेक्ष्य दाह्यं न शमोऽस्ति वह्नेरि" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
10. काश्मीर-पाठे श्लोकोऽयं तृतीय-क्रमांके वर्तते। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
11. काश्मीर-पाठे "परिमितपरिवार" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति। रंगकर्मिणां भेदोऽत्र परिलक्ष्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा-[1] (अधिकारखेदं निरूप्य) सर्वः प्रार्थितमधिगम्य सुखी सम्पद्यते, राज्ञां तु चरितार्थतापि दुःखोत्तरैव। कुतः-[11]

औत्सुक्यमात्रमवसादयति प्रतिष्ठा क्लिश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेव[2]।
नातिश्रमापनयनाय यथा श्रमाय राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम्[3]॥5- 5॥ [12]

(नेपथ्ये)

वैतालिकौ[4]-जयति जयति देवः। [13]

एकः[5]-

स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः, प्रतिदिनमथ वा ते सृष्टिरेवंविधैव।
अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं[6], शमयति परितापं छायया संश्रितानाम्॥ 5 -6॥ [14]

द्वितीयः-

नियमयसि विमार्गप्रस्थितानात्तदण्डः प्रशमयसि विवादं कल्पसे रक्षणाय।
अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः सन्तु नाम[7] त्वयि तु परिसमाप्तं बन्धुकृत्यं जनानाम्॥ 7॥ [15]

राजा- (आकर्ण्य) आश्चर्यम्। एतेन कार्यानुशासनपरिश्रान्ताः[8] पुनर्नवीकृताः स्मः। [16]

विदूषकः- भो, गोविन्दारओ त्ति भणिदस्स रिसभस्स परिस्समो णस्सदि[9]। (भोः, गोवृन्दारकः इति भणितस्य ऋषभस्य परिश्रमः नश्यति।) [17]

राजा- (सस्मितम्) ननु क्रियतामासनपरिग्रहः। [18]

(उभावुपविष्टौ[10] परिजनश्च यथास्थानं स्थितः।) [19]

(नेपथ्ये वीणाशब्दः[11]) [20]

विदूषकः- (कर्णं दत्त्वा) भो वअस्स,संगीदसालन्तरे कण्णं देहि। लअसुद्धाए वीणाए सरसंजोओ सुणीअदि। जाणे तत्थभोदी हंसवदी वण्णपरिचअं करेदि त्ति। (भोः वयस्य, सङ्गीतशालान्तरे कर्णं देहि। लयशुद्धायाः वीणायाः स्वरसंयोगःश्रूयते। जाने तत्रभवती हंसवती[12] वर्णपरिचयं करोतीति।) [21]

राजा- तूष्णीं भव[13] यावदाकर्णयामि। [22]

---

1. काश्मीर-पाठ इतः पूर्वं हंसवतिकाया गीत-प्रसंगो वर्तते। मैथिल-रंगकर्मिभिस्तस्य क्रमं परिवर्त्य वैतालिकानां गानात्पश्चात् हंसवतिका-गीतं स्थापितम्। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
2. मैथिल-पाठे "प्रतिष्ठाम्", "0वृत्तिरेवम्" इति च पाठभेदौ। बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठमनुसरति।
3. काश्मीर-पाठे श्लोकोऽयं सप्तमे क्रमांके वर्तते। किन्तु बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठे "वैतालिका" इति बहुवचनम्। तत्र वृन्दगानं स्यात्। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
5. मैथिल-बंगीय-रंगभूमौ श्लोकगानमेकैकशः क्रियते। नास्ति वैतालिकानां वृन्दगानमत्र।
6. मैथिल-पाठे "तीक्ष्णमंशुमि" ति। बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठमनुसरति।
7. मैथिल-पाठे "संविभक्ता" इति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
8. काश्मीर-पाठे "क्लान्तमनस" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति। उभयत्र वैतालिकगानस्य प्रयोजनं परिवर्तितं दृश्यते।
9. बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति। मैथिल-रंगकर्मिभिः प्रक्षिप्तमिदं विदूषकवाक्यम्।
10. काश्मीर-पाठे नास्तीयं रंगसूचना। तत्र तावुभौ पूर्वत आसनस्थावित्युक्तम्।
11. काश्मीर-पाठे नास्तीयं रंगसूचना। बंगीय-पाठेन मैथिल-पाठाद् वीणा-गानं स्वीकृतं स्यात्।
12. काश्मीर-पाठे "हंसवतिके" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
13. काश्मीर-पाठे "माधव्य, तूष्णीमि" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

कञ्चुकी- (विलोक्य) अये, अन्यासक्तचित्तो देवः। तदवसरं प्रतिपालयामि। [23]

(इत्येकान्ते स्थितः) [24], (नेपथ्ये गीयते।) [25]

अहिणवमहुलोहभाविओ तह परिचुम्बिअ चूअमञ्जरिं।
कमलवसइमेत्तणिव्वुओ महुअर वीसरिओ सि णं कइं॥ 5 -8॥

(अभिनवमधुलोभभावितः तथा परिचुम्ब्य चूतमञ्जरीम्।
कमलवसतिमात्रनिर्वृतः मधुकर विस्मृतः असि एनां कथम्)॥ 5 -8॥ [26]

राजा- अहो रागपरिवाहिणी गीतिः। [27]

विदूषकः- भो वअस्स। किं दाव से गीदिआए, गहिदो भवदा अक्खरत्थो।
(भोः वयस्य, किं तावदस्याः गीतिकायाः, गृहीतः भवताक्षरार्थः।) [28]

राजा- (सस्मितम्) सकृत्कृतप्रणयो[1]ऽयं जनः। तदहं देवीं हंसवतीमन्तरेणो[2] पालम्भमागतोऽस्मि। सखे माधव्य,मद्वचनादुच्यतां देवी हंसवती सम्यगुपालब्धोऽस्मीति। [30]

विदूषकः- जं भवं आणवेदि। (उत्थाय) भो वअस्स। गहिदो तए परकेरएहिं हत्थेहिं सिहण्डए अच्छभल्लो। ता अवीदराअस्स विअ समणस्स णत्थि दाणिं मे मोक्खो। (यद्भवान् आज्ञापयति। भोः वयस्य, गृहीतस्त्वया[3] परकीयैः हस्तैः शिखण्डके अच्छभल्लः। तदवीतरागस्येव श्रमणस्य[4] नास्ति इदानीं मे मोक्षः।) [31]

राजा- गच्छ, नागरकवृत्त्या शान्तयैनाम्[5]। [32]

विदूषकः- का गदी। (का गतिः) (इति निष्क्रान्तः) [33]

राजा- (स्वगतम्) किं नु खलु गीतमेवंविधमाकर्ण्येष्टजनविराहाद् ऋतेऽपि बलवदुत्कण्ठितोऽस्मि।
अथवा- [34]

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुको भवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनम् अबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि[6]॥ 5 -9॥ [35]

(अस्मृतिनिमित्तम् उन्मनस्कत्वं रूपयति[7]) [36]

कञ्चुकी- (उपसृत्य) जयति जयति देवः। एते खलु हिमगिरेरुपत्यकारण्यवासिनः कण्वसन्देशमादाय सस्त्रीकास्तपस्विनः प्राप्ताः, इति श्रुत्वा देवः[8] प्रमाणम्। [37]

---

1. काश्मीर-पाठे "सत्कृतप्रणय" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठे "तदस्याः कृते कुलप्रभामन्तरेणो०" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
3. काश्मीर-पाठे "गृहीतस्त्वये" ति। मै.-पाठे "गृहीतस्तये" ति (शंकरकृतटीकायाम्)।
4. काश्मीर-पाठेऽयं शब्दो नास्ति। मैथिल-बंगीय-पाठान्तरेऽत्र स्थानिक-रंगकर्मिणां द्वेषबुद्धिः सूच्यते।
5. काश्मीर-पाठे "संज्ञापयैनामि" ति। मैथिल-पाठे "सान्त्वयैनामि" ति। त्रिष्वपि पाठभेदेषु हंसवतिकाया गीतस्य लक्ष्यार्थविषये रंगकर्मिणां मनःसु विप्रतिपत्तयः स्युरिति व्यज्यते।
6. काश्मीर-पाठे "पर्युत्सुकीभवति" ,"अभोगपूर्वम्", "भाविस्थितानी" ति च। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
7. काश्मीर-पाठे नास्तीयं रंगसूचना। मैथिल-रंगकर्मिभिर्विचारितैषा शकुन्तलाप्रत्याख्यानस्य पूर्वभूमिका। बंगीय-रंगकर्मिभिरपि सैवानुसृता।
8. काश्मीर-पाठे "प्रभविष्णुरि" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- (सविस्मयम्) किं कण्वसन्देशहारिणः सस्त्रीकास्तपस्विनः। [38]

कञ्चुकी- अथ किम्। [39]

राजा- तेन हि विज्ञाप्यतां मद्वचनादुपाध्यायः सोमरातः[1]। अमून् आश्रमवासिनः श्रौतेन विधिना सत्कृत्य स्वयमेव प्रवेशयितुमर्हसीति। अहमप्येतांस्तपस्विदर्शनोचिते देशे प्रतिपालयामि। [40]

कञ्चुकी- यथाज्ञापयसि। (इति निष्क्रान्तः।) [41]

राजा- (उत्थाय) वेत्रवति, अग्निशरणमार्गमादेशय। [42]

प्रतीहारी- इदो इदो एदु देवो। (परिक्रम्य) भट्टा, एसो अहिणवसंमज्जणरमणीओ संणिहिदहोमधेणू अग्गिसरणालिन्दओ। ता आरोहदु देवो। (इतो इतो एतु देवः। भर्तः, एषः अभिनवसम्मार्जनरमणीयः सन्निहितहोमधेनुः अग्निशरणालिन्दकः, तदारोहतु देवः।) [43]

राजा- (साभिनयमारुह्य परिजनांसावलम्बी तिष्ठन्) वेत्रवति, किमुद्दिश्य तत्रभवता कण्वेन मत्सकाशमृषयः प्रेषिताः। [44]

किं तावद् व्रतिनामुपोढतपसां विघ्नैस्तपो दूषितं
धर्मारण्यचरेषु केनचिदुत प्राणिष्वसच्चेष्टितम्।
आहोस्वित्प्रसवो ममापचरितैर्विष्टम्भितो वीरुधा-
मित्यारूढबहुप्रतर्क[2]मपरिच्छेदाकुलं मे मनः॥ 5 -10॥ [45]

प्रतीहारी- देवस्य भुअसद्दणिव्वुदे अस्समे कुदो एदं। किंतु सुचरिदाहिणन्दिणो इसीओ देवं सभाजइदुं आगद त्ति तक्केमि। (देवस्य भुजशब्दनिर्वृत्ते आश्रमे[3] कुतः एतत्। किंतु सुचरिताभिनन्दिनः ऋषयः देवं सभाजयितुमागताः इति तर्कयामि।) [46]

(ततः प्रविशतो गौतमीसहितौ शकुन्तलामादाय, कण्वशिष्यौ[4] पुरतश्चैषां पुरोहित-कञ्चुकिनौ) [47]

कञ्चुकी- इतो इतो भवन्तः। [48]

शार्ङ्गरवः- सखे शारद्वत,

महाभागः कामं[5] नरपतिरभिन्नस्थितिरसौ
न कश्चिद्वर्णानामपथमपकृष्टोऽपि भजते।
तथापीदं शश्वत्परिचितविविक्तेन मनसा
जनाकीर्णं मन्ये हुतवहपरीतं गृहमिव॥ 5 -11॥ [49]

शारद्वतः- शार्ङ्गरव, स्थाने खलु पुरप्रवेशात् तवेदृशः संवेगः। अहमपि, [50]

अभ्यक्तमिव स्नातः शुचिरशुचिमिव प्रबुद्ध इव सुप्तम्।
बद्धमिव स्वैरगतिर्जनमवशः सङ्गिनमवैमि॥ 5 -12॥ [51]

पुरोधाः[6]- अत एव भवद्विधा महान्तः। [52]

---

1. मैथिल-पाठे "सोमदत्त" इति। बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठमनुसरति।
2. का.-पाठे "धर्मारण्यगतेष्वि", "०त्यालीढबहुप्रतर्क०" इति च। बं.-पाठो मै.-पाठानुसारी।
3. काश्मीर-पाठे "भुवनपरिष्वङ्गनिर्वृते चतुराश्रम" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठे "मुनय" इति। मैथिल-पाठे "कण्वशिष्या" इति बहुवचनम्।
5. काश्मीर-पाठे "सत्यमि" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठे पुरोहितस्य मुख इयमुक्तिरेव नास्ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला- (दुर्निमित्तमभिनीय) अम्मो,किं ति वामेदरं णअणं मे विप्फुरदि। (अम्मो, किमिति वामेतरं नयनं मे विस्फुरति[1]।) [53]

गौतमी- जाद, पडिहदं अमङ्गलं। सुहाइं दे होन्तु। (जात, प्रतिहतममङ्गलम्। शुभानि / सुखानि ते भवन्तु[2]।) (इति परिक्रामन्ति) [54]

पुरोधाः[3]- (राजानं निर्दिश्य[4]) भोस्तपस्विनः, असावत्र वर्णाश्रमाणां रक्षिता प्रागेव मुक्तासनः प्रतिपालयति वः। पश्यतैनम्। [55]

शार्ङ्गरव- [5]काममेतदभिनन्दनीयम्। तथापि वयमत्र मध्यस्थाः। कुतः-[56]

> **भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैर्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।**
> **अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्।।** 5 -13।। [57]

प्रतीहारी- देव, पसण्णमुहा सुत्थकप्पा विअ इसीओ दीसन्ति। (देव, प्रसन्नमुखाः स्वस्थकल्पाः[6] इव ऋषयः दृश्यन्ते।) [58]

राजा- (शकुन्तलां निर्वर्ण्य) अये-

> **केयम्[7] अवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुट[8] शरीरलावण्या।**
> **मध्ये तपोधनानां किसलय- मिव पाण्डुपत्राणाम्।।** 5 - 14।। [59]

प्रतीहारी- भट्टा, दंसणीआकिदी खु लक्खीअदि। (भर्तः, दर्शनीयाकृतिः खलु लक्ष्यते[9]।) [60]

राजा[10]- भवतु, अनिर्वर्ण्यं खलु परकलत्रम्[11]। [61]

शकुन्तला- (उरसि हस्तं दत्त्वा, आत्मगतम्) हिअअ, किं एवं वेवसि। अज्जउत्तस्स भावाणुबन्धं सुमरिअ धीरत्तणं दाव अवलम्बसु। (हृदय, किमेवं वेपसे। आर्यपुत्रस्य भावानुबन्ध[12] स्मृत्वा धीरत्वं तावदवलम्बस्व।) [62]

पुरोधाः- (पुरो गत्वा) स्वस्ति देवाय। देव, एते खलु विधिवदर्चितास्तपस्विनः। कश्चिद् उपाध्यायसन्देशः। तं देवः श्रोतुमर्हति। [63]

राजा- (सादरम्) अवहितोऽस्मि। [64]

शिष्यौ[13]- (हस्तमुद्यम्य) भो राजन्, विजयतां भवान्। [65]

राजा- (सप्रणामम्) सर्वानभिवादये वः। [66]

---

1. काश्मीर-पाठे "विप्रकरोती" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठे "सुखानि ते भर्तृकुलदेवता वितरन्त्वि" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
3. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "पुरोहित" इति शब्दः प्रयुज्यते।
4. मैथिल-पाठे "राजानमवलोक्ये" ति। बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठमनुसरति।
5. मै.-पाठमनुसृत्यात्र "महाब्राह्मणे" ति वक्रतापूर्णं संबोधनं परित्यक्तम्। का.-पाठे तत्पदमस्त्येव।
6. काश्मीर-पाठे "स्वस्थकार्या" इति। मैथिल-पाठे "सस्त्रीका" इति। रंगकर्मिणामाशयभेदो लक्ष्यते।
7. काश्मीर-पाठे "कास्विदि" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति। मैथिल-पाठे सरलीकरणस्याशयः स्यादिति प्रतीयते।
8. मैथिल-पाठे "०प्रस्फुट०" इति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
9. का.-पाठे "देव, कुतूहलतया विस्मितास्मि। न मे तर्कः प्रसीदती" ति। बं.-पाठोऽत्र मै.-पाठानुसारी।
10. काश्मीर-पाठ इतः पूर्वम् परिजनस्य मुखे "भर्तः, दर्शनीया खलु अस्या आकृतिर्लक्ष्यत" इति वाक्यम्। यच्च मैथिल-रंगकर्मिभिर्निष्कासितम्। तस्यानुकरणं बंगीय-पाठेऽपि दृश्यते।
11. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं नास्ति। बंगीय-पाठेन मैथिल-पाठस्य प्रक्षेपोऽयं स्वीकृत इति।
12. काश्मीर-पाठे "भावस्थितमि" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
13. काश्मीर-पाठे "ऋषय" इति। मैथिल-पाठे "शिष्या" इति। उभयत्र बहुवचनान्तम्। बंगीय-रंगभूमौ केवलं द्वावेव शिष्यौ स्तः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शिष्यौ- स्वस्ति भवते। [67]

राजा- अपि निर्विघ्नं तपः। [68]

शिष्यौ-

कुतो धर्मक्रियाविघ्नः[1] सतां रक्षितरि त्वयि।
तमस्तपति घर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति॥ 5 -15॥ [69]

राजा- (आत्मगतम्) सर्वथार्थवान्खलु मे राजशब्दः। (प्रकाशम्) अथ भगवान्कुशली कण्वः[2]। [70]

शार्ङ्गरवः- राजन्, स्वाधीनकुशलाः खलु सिद्धिमन्तः। स भवन्तम् अनामयप्रश्नपूर्वकम् इदमाह। [71]

राजा- किमाज्ञापयति। [72]

शार्ङ्गरवः- यन्मिथः समवायादि[3]मां मदीयां दुहितरं भवान् उपयेमे तन्मया प्रीतिमता युवयोरनुज्ञातम्। [73], कुतः-

त्वमर्हतां प्राग्रहरः स्मृतोऽसि नः शकुन्तला मूर्तिमतीव[4] सत्क्रिया।
समानयंस्तुल्यगुणं वधूवरं चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः॥ 5 -16॥ [74]

तदिदानीमापन्नसत्त्वेयं गृह्यतां सहधर्मचरणायेति। [75]

गौतमी- भद्दमुह, वत्तुकाम म्हि। ण मे वअणावकासो त्थि कधिदु ति। (भद्रमुख, वक्तुकामाऽस्मि। न मे वचनावकाशोऽस्ति कथयितुमिति।) [76]

राजा[5]- आर्ये, कथ्यताम्। [77]

गौतमी-

णावेक्खिओ गुरुअणो इमीअ, ण तुमे वि पुच्छिआ[6] बन्धू।

एक्कक्कमेण वरिए किं भणणउ एक्कमेक्कस्स॥ 5 -17॥

(नापेक्षितः गुरुजनः अनया, न त्वया अपि पृष्टाः बन्धवः।
एकक्रमेण वृते किं भण्यताम् एकम् एकस्य)॥ 5 -17॥ [78]

शकुन्तला- किं णु क्खु अज्जउत्तो भणिस्सदि। (किं नु खलु आर्यपुत्रः भणिष्यति[7]।) [79]

राजा- (साशङ्कमाकुलमाकर्ण्य[8]) अये, किमिदमुपन्यस्तम्। [80]

शकुन्तला- (स्वगतम्) हुं सावलेवो से वअणावक्खेवो। (हूं, सावलेपः अस्य वचनावक्षेपः[9]।) [81]

---

1. मैथिल-पाठे "धर्मविघ्नः कुतोऽस्माकमि" ति। बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठे "तत्रभवान् लोकानुग्रहाय०" इत्यधिकम्। मैथिल-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
3. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "समयादि" ति।
4. मैथिल-पाठे "मूर्तिमयी चे" ति। बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठमनुसरति।
5. काश्मीर-पाठे राज्ञो नास्तीयमुक्तिः। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठे इणा इह पुच्छिदा बन्धू (न चात्र पृष्टा बन्धवः) इति। बं.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
7. काश्मीर-पाठे शकुन्तलाया उक्तिरेव नास्ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
8. मैथिल-पाठे रंगसूचनेयं नास्ति। बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठमनुसरति।
9. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "हुँ, पावकोऽस्य वचनोपक्षेपः / वचनोपन्यास" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शार्ङ्गरवः- किं नाम किमिदमुपन्यस्तमिति। ननु भवानेव सुतरां लोकवृत्तान्तनिष्णातः[1]। [82]

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां जनोऽन्यथा भर्तृमतीं विशङ्कते।
अतः समीपे परिणेतुरिष्यते प्रियाप्रिया वा[2] प्रमदा स्वबन्धुभिः॥ 5 -18॥ [83]

राजा- किमत्रभवती मया परिणीतपूर्वा[3]। [84]

शकुन्तला- (आत्मगतं सविषादम्) हिअअ, संवुत्ता[4] दे आसङ्का। (हृदय, संवृत्ता ते आशङ्का।) [85]

शार्ङ्गरवः- राजन्, **किं कृतकार्यद्वेषाद् धर्मं प्रति विमुखतोचिता राज्ञः[5]। [86]**

राजा- कुतोऽयम् असत्कल्पनाप्रसङ्गः[6]। [87]

शार्ङ्गरवः- (सक्रोधम्) **मूर्छन्त्यमी विकाराः प्रायेणैश्वर्यमत्तानाम्[7]॥** 5 - 19॥ [88]

राजा- विशेषेणाधिक्षिप्तोऽस्मि। [89]

गौतमी- (शकुन्तलां प्रति) जाद, मा लज्ज। अवणइस्सं दाव दे अवगुण्ठणं। तदो भट्टा तुमं अहिजाणिस्सदि।) (जात, मा लज्जस्व[8], अपनेष्यामि तावत्तेऽवगुण्ठनम्। ततः भर्ता त्वाम् अभिज्ञास्यति।) (इति तथा करोति) [90]

राजा- (शकुन्तलां निर्वर्ण्य) (आत्मगतम्)

इदमुपनतमेवं रूपमक्लिष्टकान्ति
प्रथमपरिगृहीतं स्यान्न वेत्यध्यवस्यन्।
भ्रमर इव निशान्ते कुन्दमन्तस्तुषारं
न खलु सपदि भोक्तुं नापि शक्नोमि मोक्तुम्[9]॥ 5 - 20॥ [91]

प्रतिहारी[10]- (स्वगतम्) अहो, धम्मावेक्खिदा भट्टिणो। ईदिसं णाम सुहोवणदं इत्थीरदणं पेक्खिअ को अण्णो विआरेदि। (अहो, धर्मापेक्षिता भर्तुः, ईदृशं नाम सुखोपनतं स्त्रीरत्नं प्रेक्ष्य कः अन्यः विचारयति।) [92]

शार्ङ्गरवः- भो राजन्, किमिदं जोषमास्यते। [93]

राजा- भोस्तपस्विन्, चिन्तयन्नपि न खलु स्वीकरणमत्रभवत्याः स्मरामि। तत्कथमिमामभिव्यक्त- सत्त्वलक्षणामात्मानं क्षेत्रियमिव मन्यमानः[11] प्रतिपत्स्ये। [94]

शकुन्तला- (स्वगतम्) हद्धी हद्धी कधं परिणए ज्जेव सन्देहो। भग्गा दाणिं मे दूरारोहिणी आसालदा।
(हा धिक् हा धिक्, कथं परिणये एव सन्देहः। भग्नेदानीं मे दूरारोहिणी आशालता[12]।) [95]

---

1. का.-पाठे "कथं नाम अत्रभवन्त एव सुतरां लोकयात्रानिष्णाता" इति। बं.-पाठो मै.-पाठानुसारी।
2. काश्मीर-पाठे "तदप्रियापी" ति।
3. मै.-रंगकर्मिभिः "परिणीतपूर्वा, मये" ति पदक्रमभेदेन काकुभेदः क्रियते। बं.-पाठोऽत्र का.-पाठानुसारी।
4. काश्मीर-पाठे "संवर्द्धिते" ति। मैथिल-पाठे" समुदिते" ति। त्रिषु पाठेषु भिन्नमेव पाठान्तरम्।
5. काश्मीर-पाठे "विमुखता राज्ञ" इति। मैथिल-पाठे "विमुखता कृता राज्ञे" ति। त्रिष्वपि पाठेषु पाठान्तरं दृश्यते। तेन च सूच्यते का.-पाठे गद्यवाक्यम्। उत्तरवर्तिनि काले तदेवार्याछन्दसि स्थितम्।
6. मैथिल-पाठे "ऽसत्कल्पः प्रश्न" इति। बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठमनुसरति।
7. काश्मीर-पाठे "०श्वर्यमत्तेष्वि" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
8. काश्मीर-पाठे "मा मुहूर्तं लज्जस्वे" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
9. का.-पाठे "विभाते", "न च खलु परिभोक्तुं नापि शक्नोमि हातुमि" ति। बं.-पाठो मै.-पाठानुसारी।
10. काश्मीर-पाठे परिजनस्येयमुक्तिः, जनान्तिकत्वेन चोच्यते। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
11. काश्मीर-पाठे "ऽनभिव्यक्तसन्धिलक्षणमात्मानं क्षेत्रिणमनाशंसमान" इति। मैथिल-पाठे "परस्त्रियम् आशङ्कमान" इति।
12. काश्मीर-पाठ "आशे" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शार्ङ्गरवः- मा तावत्-

कृतावमर्शाम् अनुमन्यमानः सुतां त्वया नाम मुनिर्विमान्यः।
दुष्टं प्रतिग्राहयता स्वमर्थं पात्रीकृतो दस्युरिवासि येन[1]।। 5 -21।। [96]

शारद्वतः- शार्ङ्गरव, विरम त्वमिदानीम्। शकुन्तले, वक्तव्यमुक्तमस्माभिः। सोऽयमत्रभवान् एवमाह। दीयतामस्मै प्रतिवचनम्। [97]

शकुन्तला- (स्वगतम्[2]) इमं अवत्थन्तरं गदे तादिसे अणुराए[3] किं वा सुमराविदेण। अधवा अप्पा दाणिं मे सोधणीओ[4]। भोदु। ववसिस्सं[5]। (प्रकाशम्)अज्जउत्त ....। (इत्यर्धोक्ते) अधवा संसइदो दाणिं एसो समुदाआरो। पोरव,जुत्तं णाम तुह पुरा अस्समपदे सब्भावुत्ताणहिअअं इमं जणं तधा समअपुव्वं सम्भाविअ[6] सम्पदं ईदिसेहिं अक्खरेहिं पच्चाचक्खिदुं। (इदं अवस्थान्तरं गते तादृशे अनुरागे किं वा स्मारितेन। अथवा आत्मेदानीं मे शोधनीयः। भवतु। व्यवसिष्यामि। आर्यपुत्र ..अथवा संशयितः इदानीमेषः समुदाचारः। पौरव, युक्तं नाम तव पुराश्रमपदे सद्भावोत्तानहृदयमिमं जनं तथा समयपूर्वं सम्भाव्य साम्प्रतमीदृशैः अक्षरैः प्रत्याख्यातुम्।) [98]

राजा- (कर्णौ पिधाय) शान्तं शान्तम्। [99]

व्यपदेशमाविलयितुं[7] **समीहसे मां च नाम**[8] **पातयितुम्।**
कूलङ्कषेव सिन्धुः प्रसन्नमोघं तटतरुं[9] **च**।। 5 -22।। [100]

शकुन्तला- भोदु, परमत्थदो जइ परपरिग्गहसङ्किणा तए एदं पउत्तं ता अहिण्णाणेण केणावि तुह सन्देहं अवणइस्सं। (भवतु, परमार्थतः यदि परपरिग्रहशङ्किना त्वया इदं प्रत्युक्तं, तद् अभिज्ञानेन केनापि[10] तव सन्देहम् अपनेष्यामि।) [101]

राजा- प्रथमः कल्पः[11]। [102]

शकुन्तला- (मुद्रास्थानं परामृश्य[12]) हद्धी हद्धी। अङ्गुलीअअसुण्णा मे अङ्गुली। (हा धिक् हा धिक्। अङ्गुरीयकशून्या मे अङ्गुली।) [103]

(इति सविषादं गौतमीमीक्षते[13]) [104]

गौतमी- जाद, णं दे सक्कावदारे सचीतित्थे उदअं वन्दमाणाए पब्भट्टं अङ्गुलीअअं। (जात, ननु ते शक्रावतारे शचीतीर्थे

---

1. काश्मीर-पाठे "कृताभिमर्शाम् अवमन्यमानः", "जुष्टमि" ति च। मैथिल-पाठे "कृताभिमर्शाम् अनुमन्यमानः", "दुष्ट" इति। बंगीय-पाठे प्रथमः शब्दः काश्मीर-पाठानुसारेण स्वीकृतः, ततश्च तेन मैथिल-पाठानुगमनं कृतम्।
2. स्वगतोक्तिरूपमिदं वाक्यं प्रक्षिप्तं स्यात्। नाट्यशास्त्रे (25-88) केवलमात्मगतमित्यस्यैव विधानात्।
3. काश्मीर-पाठे "मुहुत्तराग" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
4. मैथिल-पाठे "सोअणीओ (शोचनीयः)" इति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
5. काश्मीर-पाठे "विवदिस्सामी" ति। मैथिल-पाठे "वदिस्सं (वदिष्यामि)" इति। बंगीय-पाठे तृतीयं पाठान्तरं प्रस्तावितं रंगकर्मिभिरिति।
6. काश्मीर-पाठे "समयपुरवं पदारिअ" इति। मैथिल-पाठे "समओपरुद्धं पआरिअ" इति। बंगीय-पाठे "समअपुव्वमि" ति महाराष्ट्री-प्राकृतम्। तच्चोत्तरवर्ति-कालिकं रूपम्। काश्मीर-पाठ एव शौरसेनीरूपं सुरक्षितं दृश्यते।
7. काश्मीर-पाठे "आविलयितुमि" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति। मैथिल-पाठे "मलिनयितुम्" इति। तच्च सरलीकरणस्याशयेन परिवर्तितं स्यात्।
8. काश्मीर-पाठे "किमीहसे मामि" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
9. काश्मीर-पाठे "तटरुहमि" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
10. काश्मीर-पाठे "गुरुणे" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
11. काश्मीर-पाठ "उदारमि" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
12. मैथिल-पाठे "मुद्रास्थानमवलोक्ये" ति रंगसूचना। बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठमनुसरति।
13. काश्मीर-पाठे "तापसीं पश्यती" ति रंगसूचना। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

उदकं वन्दमानायाः[1] प्रभ्रष्टमङ्गुरीयकम्।) [105]

राजा- इदं तत् प्रत्युत्पन्नमतित्वं स्त्रीणाम्[2]। [106]

शकुन्तला- एत्थ दाव विहिणा दंसिदं पहुत्तणं। अवरं दे कधइस्सं। (अत्र तावद्विधिना दर्शितं प्रभुत्वम्। अपरं ते कथयिष्यामि।) [107]

राजा- श्रोतव्यमिदानीं संवृत्तम्। [108]

शकुन्तला- णं एक्कदिअसं वेदसलदामण्डवे णलिणीवत्तभाअणगदं उदअं तुह हत्थे संणिहिदं आसि।

(नन्वेकदिवसं वेतसलतामण्डपे[3] नलिनीपत्रभाजनगतमुदकं तव हस्ते सन्निहितम् आसीत्।) [109]

राजा- शृणुमस्तावत्। [110]

शकुन्तला- तक्खणं सो मम पुत्तकिदओ मिअसावओ[4] उवत्थिदो। तदो तए अअं दाव पढमं पिवदु त्ति अणुकम्पिणा उवच्छन्दिदो। ण उण दे अवरिचिदस्स हत्थादो उदअं उवगदो पादुं। पच्छा तस्सिं जेव उदए मए गहिदे किदो तेण पणओ। एत्थन्तरे विहसिअ भणिदं तए। सच्चं सव्वो सगन्धे वीससदि जदो दुवे वि तुम्हे आरण्णकाओ त्ति। (तत्क्षणं सः मम पुत्रकृतकः मृगशावकः उपस्थितः। ततः त्वया अयं तावत् प्रथमं पिबतु इति अनुकम्पिना उपच्छन्दितः। न पुनः ते अपरिचितस्य हस्ताद् उदकमुपगतःपातुम्। पश्चात्तस्मिन्नेव उदके मया गृहीते कृतः तेन प्रणयः[5]। अत्रान्तरे विहस्य भणितं त्वया-सत्यं, सर्वः सगन्धे विश्वसिति, यतः द्वावपि युवामारण्यकौ इति।) [111]

राजा- आभिस्ताभिरात्मकार्यनिर्वर्त्तिनीभि-र्मधुराभि-रनृतवाग्भि[6]-राकृष्यन्ते विषयिणः। [112]

गौतमी- महाराअ[7], णारिहसि एवं मन्तिदुं। तवोवणसंवड्ढिदो क्खु अअं जणो अणहिण्णो केदवस्स।

(महाराज, नार्हसि एवं मन्त्रयितुम्। तपोवनसंवर्धितः खल्वयं जनः अनभिज्ञः कैतवस्य।) [113]

राजा- तापसवृद्धे,

स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु संदृश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्यः।
प्रागन्तरीक्षगमनात् स्वमपत्यजातम्, अन्यद्विजैः परभृताः किल पोषयन्ति[8]॥ 5 -23॥ [114]

शकुन्तला- (सरोषम्) अणज्ज, अत्तणो हिअआणुमाणेण किल सव्वं एदं पेक्खसि। को णाम अण्णो धम्मकञ्चुअववदेसिणो तणच्छण्णकूवोवमस्स तुह अणुकारी भविस्सदि। (अनार्य[9], आत्मनः हृदयानुमानेन किल सर्वमेतत्प्रेक्षसे। कः नामान्यः धर्मकञ्चुकव्यपदेशिनः[10] तृणच्छन्नकूपोपमस्य तवानुकारी भविष्यति।) [115]

राजा- [< (स्वगतम्) वनवासादविभ्रमः पुनरत्रभवत्याः कोपो लक्ष्यते। तथा हि-

---

1. काश्मीर-पाठे "ऽवगाहमानाया" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठ "इदं तद्यौतुकं प्रत्युत्पन्नं स्त्रीणामिति यदुच्यत" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
3. काश्मीर-पाठे "नवमालिकामण्डप" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठे "किदअपुत्तओ हरिणओ" इति। मैथिल-पाठे "पुत्तकिदहरिणओ" इति। बंगीय-पाठे भिन्नमेव पाठान्तरम्।
5. काश्मीर-पाठे न सन्त्येतानि पदानि। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठे "ऽनृतवाङ्मधुभि०" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
7. काश्मीर-मैथिल-पाठयोस्तु "महाभाअ" इति।
8. काश्मीर-पाठे "परिबोधवत्यः", "अन्तरिक्षगमनात्", "परभृत" इति। मैथिल-पाठे "प्रतिबोधवत्यः", "अन्तरीक्षपतनात्", "परभृता" इति। बंगीय-पाठो बहुशो मैथिल-पाठमनुसरति।
9. काश्मीर-पाठे नास्तीदं सम्बोधनम्। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
10. काश्मीर-पाठे "०प्रवेशिन" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

न तिर्यगवलोकितं भवति चक्षुरालोहितं[1]
वचोऽपि परुषाक्षरं न च पदेसु संसज्जते।
हिमार्त इव वेपते सकल एष बिम्बाधरः
स्वभाववनिते भ्रूवौ युगपदेव भेदं गते॥ 5 -24॥ [118]

अथवा[2], सन्दिग्धबुद्धिं मामधिगत्याकैतवच्छायया कोपोऽस्याः। तथा ह्यनया-[119]

मय्येव विस्मरणदारुणचित्तवृत्तौ वृत्तं रहः प्रणयमप्रतिपद्यमाने।
भेदाद्भ्रूवोः कुटिलयोरतिलोहिताक्ष्या भग्नं शरासनमिवातिरुषा स्मरस्य[3]॥ 5 -25॥ [120]>][4]

(प्रकाशम्) भद्रे, प्रथितं दुःषन्तचरितं प्रजासु। नापीदं दृश्यते[5]। [121]

शकुन्तला-

[तुह्मे ज्जेव पमाणं जाणध धम्मत्थिदिञ्च लोअस्स।
लज्जाविणिज्जिदाओ जाणन्ति ण किम्पि महिलाओ॥ 5 - 26॥

(यूयमेव प्रमाणं जानीथ धर्मस्थितिञ्च लोकस्य।
लज्जाविनिर्जिता जानन्ति न किमपि महिलाः)॥ 5 -26॥][6] [122]

सुट्ठु। इदाणिं अत्तच्छन्दाणुआरिणी संवुत्त म्हि जा इमस्स पुरुवंसस्स पच्चएणमुहमहुणो हिअअपत्थरस्स हत्थब्मासं उवगदा। (सुष्ठु, इदानीमात्मच्छन्दानुकारिणी संवृत्तास्मि, या अस्य पुरुवंशस्य प्रत्ययेन मुखमधोः हृदयप्रस्तरस्य[7] हस्ताभ्यासमुपगता[8]।) [123]

(इति पटान्तेन[9] मुखमावृत्य रोदिति।) [124]

शार्ङ्गरवः[10]- इत्थमप्रतिहतं चापलं दहति। [125]

अतः समीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात्सङ्गतं रहः[11]।
अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम्॥ 5 -27॥ [126]

राजा- अयि भोः। किमत्रभवतीवचनसम्प्रत्ययाद्[12] एवास्मान् सम्भृतदोषैरधिक्षिपथ[13]। [127]

---

1. काश्मीर-पाठे "न तिर्यग् अवलोकि चक्षुरतिलोहितं केवलमि" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
2. मैथिल-पाठे "ऽपि चे" ति। काश्मीर-पाठे नास्तीदं वाक्यम्।
3. काश्मीर-पाठे नास्त्ययं श्लोकः। मैथिल-रंगकर्मिभिः प्रक्षिप्तोऽयं स्यादित्यनुमीयते, पुनरुक्तिदोषत्वात्।
4. कोष्ठान्तर्गतौ श्लोकौ प्रक्षिप्तौ स्याताम्। स्वगतमिति रंगसूचनया प्रस्तावितावेतौ रंगकर्मिभिरिति स्पष्टम्।
5. काश्मीर-पाठे "न चापीदं दृश्यत" इति। मैथिल-पाठे "तवापीदं दृश्यत" इति।
6. अंशोऽयं रिचार्ड पिशेलेन सम्पादिते पाठे न स्वीकृतः। किन्तु टीकाकारेण चन्द्रशेखरेण स्वीकृतः। काश्मीर-मैथिल-पाठयोरपि दृश्यते गाथेयम्। स्थानिक-रंगकर्मिणां प्रक्षेपः स्यात्।
7. काश्मीर-पाठे "हृदयशस्त्रधरस्ये" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
8. मै.-पाठे "या अस्य पुरुवंशस्य०" इति गौतमीमुखे स्थापितं वर्तते। बं.-पाठः का.-पाठमत्रानुसरति।
9. काश्मीर-पाठे पदमिदं नास्ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
10. काश्मीर-पाठे "भागुरिरि" ति नाम प्राप्यते। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
11. काश्मीर-पाठे "परीक्ष्य सर्वं कर्तव्यं विशेषात् संविदः क्रिया" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
12. काश्मीर-पाठे "ऽत्रभवतीप्रत्ययादि" ति। मैथिल-पाठे "ऽत्रभवतीसंप्रत्ययादेवे" ति।
13. काश्मीर-पाठे "ऽतिबलेन क्षिण्वन्ति भवन्त" इति। मैथिल-पाठे "ऽवलेपेन क्षिण्वन्ति भवन्त" इति। त्रिषु पाठेषु भिन्नानि पाठान्तराणि।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शार्ङ्गरव:- (सासूयम्) श्रुतं भवद्भिरधरोत्तरम्[1]। [128]

आ जन्मन: शाठ्यम् अशिक्षितो[2] यस्तस्याप्रमाणं वचनं जनस्य।
पराभिसंधानमधीयते यै र्विद्येति ते सन्ति किलाप्तवाच:॥ 5 -28॥ [129]

राजा- हंहो सत्यवादिन्[3], अभ्युपगतं तावदस्माभिरेवंविधा एव वयम्[4]। किं पुनरिमाम् अभिसन्धाय लभ्यते। [130]

शार्ङ्गरव:- विनिपात:। [131]

राजा- विनिपात: पौरवैर्लभ्यत इत्यश्रद्धेयमेतत्[5]। [132]

शार्ङ्गरव:- भो राजन्, किमत्रोत्तरोत्तरै:। अनुष्ठितो गुरुनियोग:[6]। सम्प्रति निवर्तामहे वयम्। [133]

तदेषा भवत: पत्नी त्यज वैनां गृहाण वा।
उपयन्तुर्हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी॥ 5 -29॥ [134]

गौतमि, गच्छाग्रत:।

(इति प्रस्थिता:) [135]

शकुन्तला- अहं इमिणा दाव किदवेण विप्पलद्धा। तुम्हे वि मं परिच्चअध। (अहं अनेन तावत्कितवेन विप्रलब्धा। यूयमपि मां परित्यजय।) [135]

(इत्यनुप्रतिष्ठते[7]) [136]

गौतमी- (परिवृत्यावलोक्य च) वच्छ साङ्गरव, अणुगच्छदि णो करुणपरिदेविणी सउन्तला।
पच्चादेसपिसुणे भत्तारे किं करेदु तवस्सिणी। (वत्स शार्ङ्गरव, अनुगच्छति न: करुणपरिदेविनी शकुन्तला। प्रत्यादेशपिशुने भर्तरि किं करोतु तपस्विनी[8]।) [137]

शार्ङ्गरव:- (सरोषं निवृत्य[9]) आ: पुरोभागिनि। किमिदं स्वातन्त्र्यमवलम्बसे। [138]

(शकुन्तला भीता वेपते) [139]

शार्ङ्गरव:- शृणोतु भवती। [140]

यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा त्वमसि किं पितुरुत्कुलया[10]त्वया।
अथ तु वेत्सि शुचि व्रतमात्मन: पतिगृहे तव दास्यमपि क्षमम्॥ 5 - 30॥ [141]

---

1. मैथिल-पाठ "उत्तरोत्तरमि" ति। बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठे "ऽलक्षित" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति। काश्मीर-पाठो मौलिक: स्यात्।
3. काश्मीर-पाठे "हन्त भोस्सत्यवादिन्नि" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
4. मैथिल-पाठे "तावद् युष्माभिरेवंविधा वयमि" ति। बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठमनुसरति।
5. काश्मीर-पाठे "तं नाहं प्रार्थये" ति। (हन्तेति निपातानुरूपमिदम्), बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठ "अनुष्ठितगुरुनिदेशा: स्म" इति। मैथिल-पाठे "ऽनुष्ठितो गुरुसंदेश" इति। भिन्नानि पाठान्तराणि त्रयाणां पाठानां रंगावृत्तित्वं सूचयति।
7. काश्मीर-पाठ "इति गौतमीमनुगच्छती" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
8. काश्मीर-पाठे "प्रत्यादेशकलुषे भर्तरि किं वा पुत्रिका मे करोत्वि" ति। मैथिल-पाठ "प्रत्यादेशदारुणे भर्तरि किं करोतु तपस्विनी" ति। त्रिषु पाठेषु रंगावृत्तित्वं प्रकटीभवति।
9. काश्मीर-पाठे "पुरोधसा संज्ञित: प्रतिनिवृत्ये" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
10. काश्मीर-पाठे "किं पितृशोकदये" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

तिष्ठ। साधयामो वयम्[1]। [142]

राजा- भोस्तपस्विन्, किमत्रभवती विप्रलभ्यते[2]। पश्य-[143]

कुमुदान्येव शशाङ्कः, सविता बोधयति पङ्कजान्येव।
वशिनां हि परपरिग्रह- संश्लेषपराङ्मुखी वृत्तिः[3]॥ 5 - 31॥ [144]

शार्ङ्गरवः- राजन्, अथ पुनः पूर्ववृत्तं व्यासङ्गाद् विस्मृतं भवेत् तदा कथम् अधर्मभीरोर्दारपरित्यागः[4]। [145]

राजा- भवन्तमेव गुरुलाघवं[5] पृच्छामि। [146]

मूढः स्यामहमेषा वा वदेन्मिथ्येति संशये।
दारत्यागी भवाम्याहो परस्त्रीस्पर्शपांसुलः[6]॥ 5 -32॥ [147]

पुरोधाः- (विचार्य) यदि तावदेवं क्रियते। [148]

राजा- अनुशास्तु गुरुः। [149]

पुरोधाः- अत्रभवती तावद् आप्रसवादस्मद्गृहे तिष्ठतु। [150]

राजा- कुत इदम्[7]। [151]

पुरोधाः- त्वं साधुनैमित्तिकैरादिष्टपूर्वः प्रथममेवोभयचक्रवर्तिनं पुत्रं जनयिष्यसीति। स चेन्मुनिदौहित्रस्तल्लक्षणोपपन्नो भवति, ततः प्रतिनन्द्य शुद्धान्तमेनां प्रवेशयिष्यसि। विपर्यये त्वस्याः पितुः समीपगमनं स्थितमेव। [152]

राजा- यथा गुरुभ्यो रोचते। [153]

पुरोधाः- (उत्थाय) वत्से, इतो इतोऽनुगच्छ माम्। [154]

शकुन्तला- भअवदि वसुंधरे। देहि मे अन्तरं। (भगवति वसुन्धरे, देहि मे अन्तरम्[8]।) [155]

(इति सह पुरोधसा तपस्विभिर्गौतम्या च रुदती प्रस्थिता[9]।
राजा शापव्यवहितस्मृतिः शकुन्तलामेव चिन्तयति[10]।) [156]

(नेपथ्ये) आश्चर्यम् आश्चर्यम् ....। [157]

राजा- (कर्णं दत्त्वा) किं नु खलु स्यात्। [158]

पुरोधाः- (प्रविश्य, सविस्मयम्) देव, अद्भुतं खलु वृत्तम्। [159]

राजा- किमिव। [160]

पुरोधाः- परावृतेषु कण्वशिष्येषु, -

---

1. मैथिल-पाठे "तत् त्वमितस्तिष्ठ, यावद् यामो वयमि" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठे "किमत्रभवतीम् विप्रलभस" इति। मैथिल-पाठे "किमत्रभवतीम् विप्रलभ्य प्राप्यत" इति। त्रिषु पाठेषु रंगावृत्तित्वं दृश्यते।
3. मैथिल-पाठे "पराङ्मुखं चेतसि" ति। बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठमनुसरति।
4. का.-पाठे पूर्वपरिग्रहोऽन्यासंगाद् विस्मृतो भवेत्, तदा कथमधर्मभीरुरिति। बं.-पाठो मै.-पाठानुसारी
5. मैथिल-पाठे "गुरुलाघवञ्जमि" ति। बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठमनुसरति।
6. मैथिल-पाठे "०पांशुल" इति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
7. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं नास्ति। मैथिल-पाठे "कुत इदमुच्यत" इति वाक्यमस्ति।
8. काश्मीर-पाठे "वसुधे, देहि मे विवरमि" ति। मैथिल-पाठे "वसुन्धरे, देहि मेऽवकाशमि" ति।
9. काश्मीर-पाठ "इति निष्क्रान्ता सह सकलैः पुरोधसा चे" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
10. मैथिल-पाठे "राजा शकुन्तलागमनमेव चिन्तयती" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

सा निन्दन्ती स्वानि भाग्यानि बाला
बाहूत्क्षेपं रोदितुं[1] च प्रवृत्ता। [161]

राजा- किं तदानीम्। [162]

पुरोधाः-

स्त्रीसंस्थानं चाप्सरस्तीर्थमारात्।
क्षिप्त्वैवाशु[2] ज्योतिरेनां तिरोऽभूत्।। 5 -33।। [163]

(सर्वे विस्मयं रूपयन्ति[3]) [164]

राजा- गुरो, प्रथममेवास्माभिरेषोऽर्थः प्रत्यादिष्टः। किं मृषा[4] तर्केणान्विष्यते। विश्राम्यताम्। [165]

पुरोधाः- विजयस्व। (इति निष्क्रान्तः) [166]

राजा- वेत्रवति, पर्याकुल इवास्मि[5]। शयनीयगृहमादेशय। [167]

प्रतीहारी- इदो इदो एदु देवो। (इतो इतो एतु देव।) [168]

राजा- (परिक्रामन् स्वगतम्)

कामं प्रत्यादिष्टां स्मरामि न परिग्रहं मुनेस्तनयाम्।
बलवत्तु दूयमानं प्रत्यायतीव मां[6] हृदयम्।। 5 -34।। [169]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे) [170]

।। अभिज्ञानशकुन्तलाख्ये नाटके
शकुन्तला-प्रत्याख्यानो[7] नाम पञ्चमोऽङ्कः।। [171]

---

1. काश्मीर-पाठे "क्रन्दितुमि" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठ "आक्षिप्यैवे" ति। मैथिल-पाठ "आक्षिप्येवे" ति। त्रिषु पाठेषु भिन्नत्वम्।
3. काश्मीर-पाठे "सर्वे विस्मिता" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठे "वृथे" ति। मैथिल-पाठे "मिथ्ये" ति।
5. काश्मीर-पाठे "वसुमति, पर्याकुलोऽस्मि। शयनभूमिमादेशये" ति। मैथिल-पाठे "वेत्रवति, पर्याकुल एवास्मि। शयनीयगृहमार्गमादेशये" ति। बंगीय-पाठे "०पर्याकुल इवास्मि०" इति।
6. काश्मीर-पाठे "से" ति। मैथिल-पाठे" म "इति। त्रिषु पाठेषु भिन्नत्वं वर्तते।
7. काश्मीर-पाठे न सन्ति प्रत्येकानामङ्कानां नामानि। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति। केवलं "प्रत्याख्यानं नामे" ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ षष्ठोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशति नागरकः पश्चाद्बाहुबन्ध[1] पुरुषमादाय रक्षिणौ च) [1]

रक्षिणौ- (पुरुषं ताडयित्वा) हण्डे कुम्भिलआ। कधेहि कहिं तए एशे महालदणभाशुले उक्किण्णणामकले[2] लाअकीए अङ्गुलीअए शमाशादिदे। (हण्डे कुम्भीलक, कथय कुत्र त्वया एतन्महारत्नभासुरम् उत्कीर्णनामाक्षरं राजकीयमङ्गुरीयकं समासादितम्।) [2]

धीवरकः- (भीतिनाटितकेन) पशीदन्तु भावमिश्शा। ण हगे ईदिशश्श अकय्यश्श कालके। (प्रसीदन्तु भावमिश्राः, नाहम् ईदृशस्याकार्यस्य कारकः।) [3]

एकः- किं णु क्खु शोहणे बम्हणे शि त्ति कदुअ लञ्ञा[3] दे पलिग्गहे दिण्णे। (किं नु खलु शोभनः ब्राह्मणोऽसि इति कृत्वा राज्ञा ते परिग्रहः दत्तः।) [4]

धीवरकः- शुणध दाव। हगे क्खु शक्कावदालवाशी धीवले। (शृणुत तावदहं खलु शक्रावतारवासी धीवरः।) [5]

द्वितीयः- हण्डे पाडच्चला, किं तुमं अस्मेहिं यादिं वशदिं च पुश्चिदे। (हण्डे पाटच्चरः, किं त्वम् अस्माभिः जातिं वसतिं च पृष्टः।) [6]

नागरकः[4] - सूअअ, कधेदु सव्वं कमेण। मा णं पडिबन्धेध। (सूचक, कथयतु सर्वं क्रमेण। मैनं प्रतिबध्नीतम्।) [7]

उभौ- यं लाउत्ते आणवेदि। लवेहि ले लवेहि। (यदीश्वरः आज्ञापयति। लप रे लप।) [8]

धीवरकः- शे हगे यालवडिशप्पहुदीहिं मश्चबन्धणोवाएहिं कुडुम्बभलणं कलेमि। सोऽहं जालबडिश प्रभृतिभिः मत्स्यबन्धनोपायैः कुटुम्बभरणं करोमि।) [9]

नागरकः- (प्रहस्य) विसुद्धो दाणिं दे आजीवो। (विशुद्धः इदानीं ते आजीवः।) [10]

धीवरकः- भस्टके, मा एवं भण। (भर्तः, मैवं भण।) [11]

शहये किल ये वि णिन्दिदे ण हु शे कम्म विवय्यणीअके।
पशुमालिं कलेदि दालुणं अणुकम्पामिदुले[5] वि शोणिके[6]॥ 6 -1॥ [12]

(सहजं किल यद्यपि निन्दितं न खलु तत् कर्म विवर्जनीयम्।
पशुमारणं करोति दारुणम् अनुकम्पामृदुलोऽपि सौनिकः)॥ 6 -1॥ [12]

नागरकः- तदो तदो। (ततस्ततः।) [13]

धीवरकः- अध एक्कदिअशं मए लोहिदमश्चके खण्डशो[7] कप्पिदे। यावतश्श उदलब्भन्तले एदं महालदण-भाशुलं अङ्गुलीअअं

---

1. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः पश्चाद् बद्धमित्येवास्ति।
2. डॉ. रिचार्ड पिशेलेन प्रदत्तोऽयं पाठः। काश्मीर-पाठे "महामणिपत्थलुक्किण्ण-णामक्खले" इति पठ्यते। मैथिल-पाठे "उक्किण्णनामक्खले" इति।
3. अशोकस्य शिलालेखेषूपलभ्यते रूपमिदम्। (राज्ञा=लञ्ञा)
4. काश्मीर-पाठे "स्याल" इति। मैथिल-पाठे च "श्यालक" इति।
5. मैथिल-पाठे "कारणात् षट्कर्मा विद्वान्नि" ति।
6. काश्मीर-पाठे "सोत्तिए" वर्तते, मैथिल-पाठे च "शोत्तिके" इति। अर्थाद् उभयत्र श्रोत्रिय इत्येव। बंगीय-समाजे श्रोत्रियब्राह्मणानुद्दिश्य कालुष्यं न प्रकटीभवेदित्याशयेन पाठभेदः क्रियते।
7. मैथिल-पाठे "मुण्डके०" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

पेस्कामि[1]। पश्चा इध विक्कअस्तं णं दंशअन्ते य्येव गहिदे भावमिश्शेहिं। एत्तिके दाव एदश्श आगमे। अधुणा मालेध वा कुस्टेध वा[2]। (अथैकदिवसं मया रोहितमत्स्यः खण्डशः कल्पितः। यावत्तस्य उदराभ्यन्तरे एतत्महारत्न-भासुरमङ्गुरीयकं प्रेक्षे। पश्चादिह विक्रयार्थमेतद्दर्शयन्नेव गृहीतः भावमिश्रैः। एषः तावदेतस्यागमः। अधुना मारयत वा कुट्टयत वा।) [14]

नागरकः- (अङ्गुरीयकमाघ्राय) जाणुअ, मच्छोदरसंठिदं ति णत्थि संदेहो। तधा अअं से विस्सगन्धो। आगमो दाणिं एदस्स विमरिसिदव्वो। ता एध, राअउलं जेव गच्छम्ह। (जानुक, मत्स्योदर- संस्थितमिति नास्ति सन्देहः। तथायमस्य विस्रगन्धः आगमः इदानीमेतस्य विमर्ष्टव्यः। तदितः राजकुलमेव गच्छामः।) [15]

रक्षिणौ- (धीवरं प्रति) गश्च ले गण्ठिश्चेदआ गश्च। (गच्छ रे ग्रन्थिच्छेदक गच्छ।) [16]

(इति परिक्रामन्ति) [17]

नागरकः- सूअअ, इध गोउरदुआरे अप्पमत्ता पडिवालेध मं, जाव राअउलं पविसिअ णिक्कमामि। (सूचक, इह गोपुरद्वारेऽप्रमत्तौ प्रतिपालयतं मां, यावद् राजकुलं प्रविश्य निष्क्रामामि।) [18]

उभौ- पविशदु लाउत्ते शामिप्पशादस्तं। (प्रविशतु ईश्वरः स्वामिप्रसादार्थम्।) [19]

नागरकः- तधा। (तथा) (इति निष्क्रान्तः) [20]

सूचकः- याणुअ, चिलाअदि लाउत्ते। (जानुक, चिरायति ईश्वरः।) [21]

जानुकः- णं अवशलोवशप्पणीआ खु लाआणो होन्ति। (ननु अवसरोपसर्पिणीयाः खलु राजानः भवन्ति।) [22]

सूचकः- याणुअ, स्फुलन्ति मे अग्गहस्ता। (धीवरं निर्दिश्य) इमं गण्ठिश्चेदअं वावादेदुं। (जानुक, स्फुरतः मे अग्रहस्तौ। इमं ग्रन्थिच्छेदकं व्यापादयितुम्।) [23]

धीवरकः- णालिहदि भावे अकालणमालके भविदुं। (नार्हति भावोऽकारणमारको भवितुम्।) [24]

जानुकः- (विलोक्य) एशे अस्माणं ईशले पत्ते गेण्हिअ लाअशाशणं। (धीवरं प्रति) ता शउलाणं मुहं पेस्कशि अधवा गिद्धशिआलाणं बली भविश्शशि। (एषः अस्माकम् ईश्वरः प्राप्तः गृहीत्वा राजशासनम्। तत् स्वकुलानां[3] मुखं प्रेक्षसे अथवा गृध्रशृगालानां बलिः भविष्यसि।) [25]

प्रविश्य नागरकः- सिग्धं सिग्धं एदं। (शीघ्रं शीघ्रं एतम् ....।) (इत्यर्धोक्ते) [26]

धीवरकः- हा हदे स्मि। (हा हतोऽस्मि।) (इति विषादं नाटयति) [27]

नागरकः- मुञ्चेध रे मुञ्चेध जालोवजीविणं। उववण्णो से किल अङ्गुलीअअस्स आगमो। अम्हसामिणा जेव मे कधिदं। (मुञ्चतं रे मुञ्चतम् जालोपजीविनम्। उपपन्नः अस्य किल अङ्गुरीयकस्यागमः। अस्मत्स्वामिना एव मे कथितम्।)[28]

सूचकः- यधा आणवेदि लाउत्ते। यमवशदिं गदुअ पडिणिउत्ते क्खु एशे। (यथा आज्ञापयति ईश्वरः। यमवसतिं गत्वा प्रतिनिवृत्तः खल्वेषः।) [29] (इति धीवरं बन्धनान्मोचयति) [30]

धीवरकः- (नागरकं प्रणम्य) भस्टके, तव केलके मम यीविदे[4]। (भर्तः, त्वदीयं मम जीवितम्।) [31]

(इति पादयोः पतति[5]।) [32]

---

1. काश्मीर-पाठे "पेक्खामी" ति। मैथिल-पाठे च "पेच्छामी" ति। कालान्तरे प्रदेशान्तरे वा परिवर्तनम्।
2. काश्मीर-पाठे "कुट्टेध वे" ति। मैथिल-पाठे "पिट्टेध वे" ति पठ्यते।
3. डॉ. रिचार्ड पिशेलेन प्रदत्तेयं संस्कृतच्छाया। शङ्करेण "सकुल्यानां बान्धवानां, शकुलानां मत्स्यानां वे" त्यर्थो विहितः।
4. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "जीविते०" इति। (ज-कारस्य स्थाने य-कारस्य प्रयोगः।)
5. काश्मीर-मैथिल-पाठयोरियं रंगसूचना नास्ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

नागरकः:- उत्थेहि उत्थेहि, एसो भट्टिणा अङ्गुलीअअमुल्लसंमिदो पारिदोसिओ[1] दे पसादीकिदो[2]। ता गेण्ह एदं। (उत्तिष्ठ उत्तिष्ठ, एतद्भर्त्रा अङ्गुरीयकमूल्यसंमितं पारितोषिकं ते प्रसादीकृतम्। तत् गृहाण एतत्।) [33] (इति धीवराय कटकं प्रयच्छति[3]) [34]

धीवरकः:- (सहर्षं प्रतिगृह्य) अणुग्गहिदे स्मि। (अनुगृहीतोऽस्मि।) [35]

जानुकः:- एशे क्खु लञ्ञा तधा णाम अणुग्गहिदे[4] यं शूलादो ओदालिअ हस्तिस्कन्धं शमालोविदे। (एषः खलु राज्ञा तथा नाम अनुगृहीतः यत् शूलादवतार्य हस्तिस्कन्धं समारोपितः।) [36]

सूचकः:- लाउत्ते, पालिदोशिए कधेदि महालिहलदणेण तेण अङ्गुलीअएण[5] शामिणो बहुमदेण होदव्वं त्ति। (ईश्वर, पारितोषिकं कथयति महार्हरत्नेन तेन अङ्गुरीयकेन स्वामिनः बहुमतेन भवितव्यमिति।) [37]

नागरकः:- णं तस्सिं भट्टिणो महारिहरदणं ति ण परिदोसो। एत्तिकं उण ....। (ननु तस्मिन् भर्तुः महार्हरत्नमिति न परितोषः। एतावत् पुनः .....।) [38]

उभौ- किं णाम। (किं नाम।)[6] [39]

नागरकः:- तक्केमि तस्स दंसणेण को वि हिअअट्ठिदो[7] जणो भट्टिणा सुमरिदो त्ति जदो तं पेक्खिअ मुहुत्तअं पइदिगम्भीरो वि पज्जुस्सुअमणो आसि। (तर्कयामि तस्य दर्शनेन कोऽपि हृदयस्थितः जनः भर्त्रा स्मृतः इति, यतः तत् प्रेक्ष्य मुहूर्तकं प्रकृतिगम्भीरोऽपि पर्युत्सुकमनाऽसीत्।) [40]

सूचकः:- तोशिदे दाणिं भस्टा लाउत्तेण[8]। (तोषितः इदानीं भर्ता ईश्वरेण।) [41]

जानुकः:- णं भणामि इमश्श मश्चलीशत्तुणो किदे त्ति। (ननु भणाम्यस्य मत्स्यशत्रोः कृते इति।) [42]

(इति धीवरमसूयया पश्यति) [43]

धीवरकः:- भस्टका, इदो अद्धं तुस्माणं पि शुलामुल्लं भोदु[9]। (भर्तारौ, इतः अर्धं युष्माकमपि सुरामूल्यं भवतु।) [44]

जानुक[10]:- धीवल, महत्तले शंपदं मे पिअवअश्शके शंवुत्ते शि। कादम्बलीशद्धिके क्खु पढमं अस्माणं शोहिदे इश्चीअदि। ता शुण्डकागालं येव गश्चस्म। (धीवर, महत्तरं साम्प्रतं मे प्रियवयस्यः संवृत्तोऽसि। कादम्बरीसग्धिके खलु प्रथममस्माकं सौहित्यम् इष्यते[11]। तत् शौण्डिकागारमेव गच्छामः।) [45]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे) [46]

---

1. काश्मीर-पाठे "पारितोसको" इति। मैथिल-पाठे "पालिदोशिको" इति।
2. काश्मीर-पाठे "दाविदो" (दापितः) इति।
3. काश्मीर-पाठे रंगसूचनेयं नास्ति। मैथिल-पाठ "इति पुरुषाय कटकं ददाती" ति। पाठान्तरेणानेन सर्वेषां पाठानां रंगावृत्तित्वमेव सिध्यति।
4. काश्मीर-पाठे "तं णाम अणुगिहिदो" इति। मैथिल-पाठे "एसो क्खु रञ्ञा अणुगाहिदो" इति।
5. मैथिल-पाठे शब्दा एते न सन्ति।
6. काश्मीर-पाठ "उभौ - किं खु" इति। मैथिल-पाठे तु नास्ति कौतुक-प्रदर्शनमेतादृशम्।
7. काश्मीर-पाठे "ऽभिलषितो जन" इति। मैथिल-पाठे "हृदयवर्ती" इति।
8. काश्मीर-पाठे "साधु मन्त्रितं नामावुत्तेने" ति। मैथिल-पाठे "तोषित इदानीं भर्ता आवुत्तेने" ति।
9. काश्मीर-पाठे "शुमणोमुल्लं होदु" इति। मैथिल-पाठे "मुल्लअं भोदु" इति। एतदनन्तरं काश्मीर-पाठ "उभौ - एतावद् युज्यते" इत्येकोक्तिरधिका।
10. काश्मीर-पाठे शुण्डिकाशालां प्रति गमनाय यः प्रस्तावः क्रियते, स स्यालो भणति। मैथिल-पाठे तु स उभौ जानुक-सूचकौ वदतः। बंगीय-पाठे केवलं जानुक एव वक्ति।। रंगावृत्तित्वं सर्वेषां दरीदृश्यते।
11. काश्मीर-पाठे "कादम्बरीसाक्षिकं चास्माकं प्रथमसौहृदमिष्यते"। मैथिल-पाठे कादम्बरीस्वस्तिकमिति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ प्रवेशकः॥[1] [47]

(ततः प्रविशत्याकाशयानेन मिश्रकेशी) [48]

मिश्रकेशी- णिव्वत्तिदं मए पज्जाअणिव्वत्तणीअं अच्छरातित्थसंणिज्झं। ता जाव इमस्स राएसिणो वुत्तन्तं पच्चक्खीकरइस्सं। मेणआसंबन्धेण सरीरभूदा मे सउन्तला। ताए वि सन्दिट्ठ म्हि। (समन्ताद् अवलोक्य) किं णु क्खु उवत्थिदक्खणे वि दिअसे णिरूसवारम्भं विअ राअउलं दीसदि। अत्थि मे विहवो पणिधाणेण सव्वं जाणिदुं। किं तु सहीए आदरो मए माणइदव्वो। भोदु। इमाणं जेव उज्जाणवालिआणं पासपरिवत्तिणी भविअ तिरक्करिणीए पच्छण्णा उवलहिस्सं। (निर्वर्तितं मया पर्यायनिर्वर्तनीयम् अप्सरस्तीर्थसान्निध्यम्। तद्यावदस्य राजर्षेः वृत्तान्तं प्रत्यक्षीकरिष्यामि। मेनकासम्बन्धेन शरीरभूता मे शकुन्तला। तयापि सन्दिष्टास्मि। किन्नु खल्वुपस्थितक्षणेऽपि दिवसे निरुत्सवारम्भमिव राजकुलं दृश्यते। अस्ति मे विभवः प्रणिधानेन सर्वं ज्ञातुम्। किं तु सख्याः आदरः मया मानयितव्यः। भवतु। आसामेव उद्यानपालिकानां पार्श्वपरिवर्तिनी भूत्वा तिरस्करिण्या प्रच्छन्ना उपलप्स्ये।) [49]

(इति नाट्येनावतीर्य स्थिता) [50]

(ततः प्रविशति चूताङ्कुरमवलोकयन्ती चेटी तस्याश्च पृष्ठतोऽपरा) [51]

प्रथमा[2] -

आअम्बहरिअवेण्टं ऊससिअं विअ वसन्तमासस्स।
दिट्ठं चूअङ्कुरअं छणमङ्गलअं णिअच्छामि॥ 6 -2॥ [52]

(आताम्रहरितवृन्तम् उच्छ्वसितमिव वसन्तमासस्य।
दृष्टं चूताङ्कुरं क्षणमङ्गलं पश्यामि॥)॥ 6 -2॥ [52]

द्वितीया- परहुदिए। किं एदं एक्काइणी मन्तेसि। (परभृतिके, किमेतत् एकाकिनी मन्त्रयसे) [53]

प्रथमा- सहि महुरिए। चूदलदिअं पेक्खिअ उम्मत्तिआ खु परहुदिआ भोदि। (सखि मधुरिके[3], चूतलतिकाम् प्रेक्ष्य उन्मत्ता खलु परभृतिका भवति।) [54]

द्वितीया- (सहर्षम्) कधं उवत्थिदो महुमासो[4]। (कथमुपस्थितः मधुमासः।) [55]

प्रथमा- महुरिए, तुहावि दाणिं एस कालो मदविब्भमुग्गीदाणं। (मधुरिके, तवापि इदानीमेषः कालः मदविभ्रमोद्गीतानाम्[5]।) [56]

द्वितीया- सहि, अवलम्बसु मं जाव अग्गपदे परिट्ठिदा भविअ इमिणा पसवेण सम्पादेमि कामदेवस्स वाअणं। (सखि, अवलम्बस्व मां यावदग्रपदोपरि स्थिता भूत्वा अनेन प्रसवेन सम्पादयामि कामदेवस्य वाचनम्।) [57]

प्रथमा- जइ एवं ता ममावि अद्धं वाअणफलस्स। (यद्येवं तत् ममाप्यर्धं वाचन[6]फलस्य।) [58]

---

1. साहित्यदर्पणकारेण विश्वनाथेनास्य प्रवेशकस्य अङ्कावतार इति नामाभिधानं क्रियते। धीवरप्रसंगेनानेन विरहाङ्कस्यावतारो भवति।
2. काश्मीर-पाठेऽपि प्रथमा नाम्नी नटी रंगोपरि समागम्यैव गाथामिमां गायति। किन्तु केवलं मैथिल-पाठे "कथम् उपस्थितो मधुमास" इति प्रारम्भ एव गद्यवाक्यमेकं वदति। तच्चाधिकं संगच्छते सन्दर्भेऽस्मिन्।
3. काश्मीर-मैथिल-पाठयो "र्मधुकरिके" ति पठ्यते। बंगीय-पाठे पठ्यमानं नामान्तरं न सन्दर्भोचितम्। परभृतिका शब्दसाहचर्याच्च।
4. काश्मीर-पाठानुक्रममनुसृत्य प्रस्तुतैषोक्तिः, किन्तु न समुचितः क्रमः। मैथिल-पाठे तस्याः स्थानं गाथायाः प्राक् वर्तते, तदेव समीचीनम्।
5. मधुरिकायाः स्थाने यदि मधुकरिका स्यात्, तर्ह्येव वाक्यार्थोऽयं संगच्छते, नान्यथा। वसन्तमासस्य ते द्वे प्रतिनिधिभूते वर्तेते- परभृतिका मधुकरिका च।
6. डॉ. रिचार्ड पिशेलेन प्रदत्तेयं संस्कृतच्छाया। तस्याः कः समाधिः सो न ज्ञायते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

द्वितीया- सहि, अभणिदे वि एवं संपज्जदि ज्जेव, जदो एक्कं जेव णो एदं सरीरं। (सख्याम् अवलम्बन[1] कृत्वा नाट्येन चूतप्रसवं गृहीत्वा) अम्हहे। अप्पबुद्धो वि चूदप्पसवो बन्धणभङ्गसुरही एस वाअदि। (कपोतहस्तं कृत्वा) णमो भअवदो मअरद्धअस्स। (सखि, अभणितेऽप्येवं संपद्यते एव यतः एकमेव नौ एतत् शरीरम्। अम्महे। अप्रबुद्धोऽपि चूतप्रसवः बन्धनभङ्गसुरभिः एषः वाति। नमः भगवते मकरध्वजाय।) [59]

अरिहसि मे चूअङ्कुर दिण्णो कामस्स गहिअचावस्स।
सच्चविअजुअइलक्खो पञ्चब्भहिओ सरो होउं॥ 6 -3॥

(अर्हसि मे चूताङ्कुरदत्तः कामस्य गृहीतचापस्य।
सत्याकृत[2]युवतिलक्षः पञ्चाभ्यधिकः शरः भवितुम्)॥ 6 -3॥ [60]

(इति चूताङ्कुरं क्षिपति) [61]

प्रविश्य **कञ्चुकी-** (सक्रोधम्) मा तावदनात्मज्ञे, देवेनैवं निषिद्धेऽपि मधूत्सवे[3] चूतकलिकाभङ्गम् आरभसे। [62]

उभे- (भीते) पसीददु पसीददु अज्जो। अगदित्थाओ अम्हे। (प्रसीदतु प्रसीदतु आर्यः। अगृहीतार्थे आवाम्।) [63]

कञ्चुकी- [<हुम्। न खलु श्रुतं भवतीभ्यां तावद्वासन्तैस्तरुभिरपि प्रमाणीकृतं देवस्य शासनं तदाश्रयिभिश्च। [64]तथा हि-

चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका बध्नाति न स्वं रजः
संनद्धं यदपि स्थितं कुरुबकं तत्कोरकावस्थया।

कण्ठेषु स्खलितं गतेऽपि शिशिरे पुंस्कोकिलानां रुतं
शङ्के संहरति स्मरोऽपि चकितस्तूणार्धकृष्टं शरम्॥ 6 -4॥ [65]

मिश्रकेशी- णत्थि एत्थ संदेहो। महप्पहावो क्खु एसो राएसी। (नास्त्यत्र सन्देहः। महाप्रभावः खल्वेषः राजर्षिः।) [66]

प्रथमा- अज्ज,कदि चि दिअसा मित्तावसुणा रट्ठिएण भट्टिणो पादमूलं पेसिदाणं अम्हाणं इध पमदवणे चित्तकम्मं अप्पिदुं। अदो ण सुदपुव्वो अम्हेहिं एसो वुत्तन्तो। (आर्य, कतिचिद्दिवसाः मित्रावसुना राष्ट्रियेण भर्तुः पादमूलं प्रेषितयोः आवयोः इह प्रमदवने चित्रकर्म अर्पयितुम्। अतः न श्रुतपूर्वः आवाभ्यामेषः वृत्तान्तः।)>][4] [67]

कञ्चुकी- तेन हि न पुनरेवं प्रवर्तितव्यम्[5]। [68]

उभे- कोदूहलं णो। जइ इमिणा जणेण सोदव्वं ता कधेदु अज्जो किं णिमित्तं भट्टिणा वसन्तूसवो[6] णिसिद्धो। (कौतूहलं नौ। यद्यनेन जनेन श्रोतव्यं तत्कथयत्वार्यः किन्निमित्तं भर्त्रा वसन्तोत्सवः निषिद्धः।) [69]

मिश्रकेशी- ऊसवप्पिआ राआणो होन्ति। ता गुरुणा कारणेण एत्थ होदव्वं। (उत्सवप्रिया राजानः भवन्ति। तत् गुरुणा कारणेन अत्र भवितव्यम्।) [70]

कञ्चुकी- (स्वगतम्) बहुलीभूतोऽयमर्थः किं न कथ्यते। (प्रकाशम्) अस्ति भवत्योः कर्णपथमागतं शकुन्तलाप्रत्यादेशकौलीनम्। [71]

---

1. काश्मीर-पाठे "सख्यावलम्बितं कृत्वे" ति पठ्यते। मैथिल-पाठे "सख्यवलम्बितकेन नाट्येने" ति। सख्यामिति बंगीय-पाठानुसारेण परभृतिकाया उपरि मधुरिका, (न तु मधुकरिका), आरोहति।
2. डॉ. रिचार्ड पिशेलोऽत्र "सत्यापित०" इति मूले स्यादिति पादटिप्पण्यां निवेदयति।
3. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "देवेनाप्रमुखत एव प्रतिषिद्धे वसन्तोत्सव" इति। बंगीय-पाठे मधूत्सव इति।
4. काश्मीर-पाठस्यारम्भात्पूर्वमेव प्रविष्टोऽयं प्रक्षिप्तांशः सर्वासु वाचनासु समुपलभ्यते, स च निष्कासनीयः।
5. कञ्चुकिनोऽस्या (68) उक्तेः सम्बन्ध उपरि स्थिताया उभयोः (63) उक्त्या सह समीचीनं प्रतीयते।
6. कञ्चुकिनो (उक्तिः 62) मुखे मधूत्सव इति नामासीत्, किन्तूद्यानपालिकयोर्मुखयोर्वसन्तोत्सव इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

उभे- अज्ज, सुदं रट्टिअमुहादो अङ्गुलीअअदंसणं जाव। (आर्य, श्रुतं राष्ट्रियमुखाद् अङ्गुरीयकदर्शनं यावत्।) [72]

कञ्चुकी- तेन हि स्वल्पं कथयितव्यम्। यदैवाङ्गुरीयकदर्शनादनुस्मृतं देवेन सत्यमूढपूर्वा रहसि मया तत्रभवती शकुन्तला मोहात्प्रत्यादिष्टेति तदैव पश्चात्तापमनुगतो देवः। [73]

रम्यं द्वेष्टि यथा पुरा प्रकृतिभिर्न प्रत्यहं सेव्यते
शय्योपान्तविवर्तनै[1] विंगमयत्युन्निद्र एव क्षपाः।

दाक्षिण्येन ददाति वाचमुचितामन्तःपुरेभ्यो यदा
गोत्रेषु स्खलितस्तदा च भवति व्रीडाविलक्षश्चिरम्॥ 6 -5॥ [74]

मिश्रकेशी- पिअं मे पिअं। (प्रियं मे प्रियम्।) [75]

कञ्चुकी- अस्मात्प्रभवतो वैमनस्यादुत्सवः प्रत्याख्यातः। [76]

उभे- जुज्जदि। (युज्यते।) [77]

(नेपथ्ये) एदु एदु भवं। (एत्वेतु भवान्।) [78]

कञ्चुकी- (कर्णं दत्त्वा[2]) अये। इत एवाभिवर्तते देवः। तद्गच्छतम्। स्वकर्मानुष्ठीयताम्। [79]

(इत्युभे निष्क्रान्ते) [80]

(ततः प्रविशति पश्चात्ताप-सदृशवेषो[3] राजा विदूषकः प्रतीहारी च।) [81]

कञ्चुकी- (राजानं विलोक्य) अहो, सर्वास्ववस्थासु रामणीयकमाकृतिविशेषाणाम्। तथा ह्येवं वैमनस्यपरीतोऽपि प्रियदर्शनो देवः। [82]य एषः-

प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनविधिर्वामप्रकोष्ठे श्लथं
बिभ्रत्काञ्चनमेकमेव वलयं श्वासोपरक्ताधरः।

चिन्ताजागरणप्रताम्रनयनस्तेजोगुणैरात्मनः
संस्कारोल्लिखितो महामणिरिव क्षीणोऽपि नालक्ष्यते॥ 6 -6॥ [83]

मिश्रकेशी- (राजानमवलोक्य) ठाणे क्खु पच्चादेसविमाणिदा वि इमस्स कारणादो सउन्तला किलम्मदि।
(स्थाने खलु प्रत्यादेशविमानिताप्यस्य कारणात् शकुन्तला क्लाम्यति। [84]

राजा- (ध्यानमन्द[4] परिक्रम्य) [85]

प्रथमं साराङ्गाक्ष्या प्रियया प्रतिबोध्यमानमपि सुप्तम्।
अनुशयदुःखायेदं हतहृदयं संप्रति विबुद्धम्॥ 6 -7॥ [86]

मिश्रकेशी- ईदिसाइं से तवस्सिणीए भाअधेआइं। (ईदृशान्यस्याः तपस्विन्याः भागधेयानि।) [87]

विदूषकः- (स्वगतम्[5]) भूओ वि लङ्घिदो एसो सउन्तलावादेण। ण आणे कधं चिकिच्छिदव्वो भविस्सदित्ति। (भूयोऽपि लङ्घितः एषः शकुन्तलावातेन। न जाने कथं चिकित्सितव्यः भविष्यतीति।) [88]

---

1. मैथिल-पाठे "शय्याप्रान्तविवर्तनैरि" ति पठ्यते। बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठेन सह साम्यं भजते।
2. मैथिल-पाठ इतः परं "पुरोवलोक्य चे" त्यधिकम्।
3. मैथिल-पाठे "पश्चात्तापगृहीत" इति। बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठेन सह साम्यं भजते।
4. मैथिल-पाठे "सध्यानमि" ति पठ्यते। बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठेन सह साम्यं भजते।
5. काश्मीर-मैथिल-पाठयो "रपवार्ये" ति रंगसूचना पठ्यते। स्वगतापवार्ययोर्मध्ये प्रस्तुतिभेदो वर्तते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

कञ्चुकी- (उपगम्य) जयति जयति महाराजः। प्रत्यवेक्षिताः प्रमदवनभूमयः। यथाकामम् अध्यास्तां विनोदस्थानानि देवः। [89]

राजा- वेत्रवति, मद्वचनादमात्यपिशुनं ब्रूहि। अद्य चिरप्रबोधान्न[1] संभावितमस्माभिर्धर्मासनमध्यासितुम्। यत्प्रत्यवेक्षितमार्येण पौरकार्यं तत्पत्रमारोप्य प्रस्थाप्यतामिति। [90]

प्रतीहारी- जं देवो आणवेदि। (यद्देव आज्ञापयति।) (इति निष्क्रान्ता) [91]

राजा- पार्वतायन, त्वमपि स्वनियोगमशून्यं कुरु। [92]

कञ्चुकी- तथा। (इति निष्क्रान्तः) [93]

विदूषकः- किदं भवदा णिम्मक्खिअं। संपदं सिसिरविच्छेदरमणीए इमस्सिं उज्जाणे[2] अत्ताणअं विणोदेहि। (कृतं भवता निर्मक्षिकम्। साम्प्रतं शिशिरविच्छेदरमणीये अस्मिन् उद्याने आत्मानं विनोदय।) [94]

राजा- (निःश्वस्य) वयस्य, रन्ध्रोपनिपातिनोऽनर्था इति यदुच्यते तदव्यभिचारि। [95] पश्य-

मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना मम च मुक्तमिदं तमसा मनः।
मनसिजेन सखे प्रहरिष्यता धनुषि चूतशरश्च निवेशितः[3]॥ 6 -8॥ [96]

अपि च-

उपहितस्मृतिरङ्गुलिमुद्रया प्रियतमामनिमित्तनिराकृताम्।
अनुशयादनुरोदिमि चोत्सुकः सुरभिमाससुखं समुपस्थितम्[4]॥ 6 -9॥ [97]

विदूषकः- भो वअस्स, चिठ दाव जाव इमिणा दण्डअट्ठेण कन्दप्पवाणं णासेमि[5]। (भोः वयस्य, तिष्ठ तावद्यावदनेन दण्डकाष्ठेन कन्दर्पबाणं नाशयामि।) [98]

(इति दण्डकाष्ठमुद्यम्य चूताङ्कुरं पातयितुमिच्छति[6]।) [99]

राजा- (सस्मितम्) भवतु, दृष्टं ब्रह्मवर्चसम्। सखे, कुत्रेदानीमुपविष्टः प्रियायाः किंचिद् अनुकारिणीषु लतासु दृष्टिं विनोदयामि। [100]

विदूषकः- णं भवदा आसण्णपरिचारिआ लिविअरी मेधाविणी आदिट्ठा। माहवीलदाघरए इमं वेलं अदिवाहइस्सं, तहिं च मे चित्तफलए सहत्थालिहिदं तत्थभोदीए सउन्तलाए पडिकिदिं आणेसु त्ति। (ननु भवतासन्नपरिचारिका लिपिकरी मेधाविनी आदिष्टा। माधवीलतागृहके इमां वेलाम् अतिवाहयिष्यामि, तत्र च मे चित्रफलके स्वहस्तालिखितां तत्रभवत्याः शकुन्तलायाः प्रतिकृतिमानय इति।) [101]

राजा- ईदृशमेव मे हृदयप्रत्याश्वासनम्। तत्तदेवादेशय माधवीलतागृहम्[7]। [102]

विदूषकः- इदो इदो एदु भवं। (इतो इतो एतु भवान्।) [103]

---

1. मैथिल-पाठे "चिराद् अप्रबोधान्ने" ति पठ्यते। बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठेन सह साम्यं भजते।
2. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "प्रमदवन" इति।
3. श्लोकोऽयं काश्मीर-पाठान्निष्कासितो वर्तते। किन्तु मूलपाठत्वेन श्रद्धेयो दृश्यते। विदूषकस्योक्तिरेव समर्थयति श्लोकमिमम्। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
4. मैथिल-पाठे "0च पुरः स्थितमि" ति। श्लोकोऽयं प्रक्षिप्त इति प्रतीयते, पुनरुक्तिदोषग्रस्तत्वाद्। किन्तु काश्मीर-पाठस्य प्रारम्भात्पूर्वमेव प्रक्षिप्तः स्यात्, येन सर्वेष्वपि पाठेषु समुपलभ्यतेऽयं श्लोकः।
5. मैथिल-पाठमनुसरत्यत्र बंगीय-पाठः। यतो हि, काश्मीर-पाठ "इमं दण्डकं चूतमन्मथके पातय" इति।
6. मैथिल-पाठे रंगसूचनेयं न वर्तते। काश्मीर-पाठे चापि नास्ति।
7. काश्मीर-पाठे "माधवीमण्डपमि" ति। मैथिल-पाठेऽत्र न विद्यते स शब्दः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(इति परिक्रामतः। मिश्रकेशी[1] अनुगच्छति।) [104]

विदूषकः- एस मणिसिलापट्टसणाधो माहवीलदामण्डवो विवित्तदाए णीसद्दसाअदेण विअ पडिच्छदि तुमं। ता पविसिअ उवविसम्ह। (एषः मणिशिलापट्टसनाथः माधवीलतामण्डपः[2] विविक्ततया[3] निःशब्दस्वागतेनेव प्रतीच्छति त्वाम्। तत् प्रविश्योपविशावः।) [105]

(उभौ तथा कुरुतः) [106]

मिश्रकेशी- लदाए अन्तरिदा पेक्खिस्सं दाव पिअसहीपडिकिदिं[4]। तदो से भत्तुणो अणुराअं बहुमदं[5] णिवेदइस्सं। (लतयान्तरिता प्रेक्षिष्ये तावत् प्रियसखीप्रतिकृतिम्। ततः अस्याः (तस्यै) भर्तुः अनुरागं बहुमतं निवेदयिष्यामि।) (तथा स्थिता) [107]

राजा- (निःश्वस्य) सखे, सर्वमिदानीं स्मरामि। शकुन्तलायाः प्रथमदर्शनवृत्तान्तं कथितवान् अस्मि भवते। स भवान्प्रत्याख्यानकाले मत्समीपगत एव नासीत्। प्रथममपि तत्रभवत्याः कीर्तितं नाम मया[6]। कच्चिद् अहमिव विस्मृतवांस्त्वमपि[7]। [108]

मिश्रकेशी- अदो ज्जेव महीवदीहिं खणं पि सहिअआ सहाआ ण विरहिदव्वा। (अतः एव महीपतिभिः क्षणमपि सहृदयाः सहायाः न विरहितव्याः[8]।) [109]

विदूषकः- भो। ण विसुमरामि। किं तु सव्वं कधिअ तए ज्जेव अवसाणे कधिदं। परिहास-विअप्पो एसो, ण भूदत्थो त्ति। मए मन्दबुद्धिणा[9] तधा जेव गहिदं। अधवा भविदव्वदा एत्थ बलवदी। (भोः न विस्मरामि। किं तु सर्वं कथयित्वा त्वयैवावसाने कथितं परिहासविकल्पः एषः, न भूतार्थः इति। मया मन्दबुद्धिना तथैव गृहीतम्। अथवा भवितव्यतात्र बलवती।) [110]

मिश्रकेशी- एवं णेदं। (एवं नु एतत्।) [111]

राजा- (क्षणं ध्यात्वा) सखे, परित्रायस्व माम्[10]। [112]

विदूषकः- भो वअस्स, एदं किं उववण्णं तुह। ण कदा वि सप्पुरिसा सोअवत्तव्वा होन्ति। णं पवादे वि णिक्कम्पा जेव गिरीओ। (भोः वयस्य, एतत्किमुपपन्नं तव[11]। न कदापि सत्पुरुषाः शोकवर्तव्याः[12] भवन्ति। ननु प्रवाते अपि निष्कम्पा एव गिरयः।) [113]

राजा- वयस्य, निराकरणविक्लवायास्ते सख्यास्तामवस्थामनुस्मृत्य बलवदशरणोऽस्मि। [114]

---

1. काश्मीर-पाठे "ऽक्षमाले" ति नामान्तरं वर्तते।
2. बंगीय-पाठेऽत्र "माधवीलतागृहक" इति शब्दः परित्यक्तः।
3. मैथिल-पाठ "उपचाररमणीयतये" ति पठ्यते। बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठेन सह प्रायः साम्यं भजते।
4. मैथिल-पाठे "लदासण्ठिधा भविअ पेक्खिस्समि" ति। काश्मीर-पाठे तूक्तिरियं नास्ति। तत्र केवलं "लतामाश्रित्य स्थिते" ति रंगसूचनैव प्रदीयते।
5. मैथिल-पाठे "बहुमुखमि" ति पठ्यते। काश्मीर-पाठे तु नास्त्येवोक्तिरियम्।
6. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "प्रथममपि न त्वया कदाचित् संकथासु तत्रभवत्याः कीर्तितं नामे" ति। बंगीय-पाठे विदूषकस्य स्मृतिः शापग्रस्ता नासीत्तथापि शकुन्तला-प्रत्याख्यानादूर्ध्वमेव कथं स नोक्तवान्निति प्रश्नः।
7. मैथिल-पाठे "०विस्मृतवान् त्वमसी" ति। काश्मीरपाठे "न खलु अहमिव मिथस्संविदं स्मृतोऽसी" ति।
8. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः सर्वथा नास्तीयमुक्तिः। बंगीय-पाठे सा प्रथमं वारं प्रक्षिप्ता प्रतिभाति।
9. काश्मीर-पाठे "रहस्यभेदभीरुणा मयापि मृत्पिण्डबुद्धिने" ति पठ्यते।
10. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं द्विरुच्यते। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
11. काश्मीर-पाठे "किमेतत्? ईदृशमुपनतम्!" इति। मैथिल-पाठे "भोः किमेतत्?। अनुपपन्नं तव।" इति चोभयत्र काकु-परिवर्तनं श्रूयते।
12 काश्मीर-पाठे "कदा पुनः सत्पुरुषाः शोकबद्धधैर्याः०" इति। मैथिल-पाठे "न कदापि सत्पुरुषा शोका-वरुद्धाः०" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

सा हि-

इतः प्रत्यादिष्टा स्वजनमनुगन्तुं व्यवसिता
स्थिता तिष्ठेत्युच्चैर्वदति गुरुशिष्ये गुरुसमे।
पुनर्दृष्टिं बाष्पप्रसर[1]- कलुषामर्पितवती
मयि क्रूरे यत्तत्सविषमिव शल्यं दहति माम्॥ 6 -10॥ [115]

मिश्रकेशी- अम्हहे, इमस्स ईदिसी अकज्जपरदा संतावेदि। (अम्महे, अस्य ईदृशी अकार्यता संतापयति[2]।) [116]

विदूषकः- भो। अत्थि मे तक्को। केण वि तत्थभोदी आआससंचारिणा णीद त्ति। (भोः अस्ति मे तर्कः। केनापि तत्रभवत्याऽऽकाश- सञ्चारिणा नीतेति[3]।) [117]

राजा[4]- वयस्य, कः पतिव्रतां तामन्यः परामर्ष्टुमुत्सहते[5]। मेनका किल सख्यास्ते जन्मप्रतिष्ठेति सखीजनाद् अस्मि श्रुतवान्। तत्सहचरीभिस्तया वा नीतेति मे हृदयमाशङ्कते। [118]

मिश्रकेशी- संमोहो क्खु विम्हअणीओ, ण उण पडिबोधो। (संमोहः खलु विस्मयनीयः, न पुनः प्रतिबोधः[6]।) [119]

विदूषकः- भो। जइ एवं ता समस्ससदु भवं। अत्थि क्खु समागमो तत्थभोदीए। (भोः, यद्येवं तत् समाश्वसितु भवान्। अस्ति खलु समागमः तत्रभवत्याः[7]।) [120]

राजा- कथमिव। [121]

विदूषकः- भो। ण हि मादा पिदा वा भत्तुविरहिदं चिरं दुहिदरं पेक्खिदुं पारेदि। (भोः, न हि माता पिता वा[8] भर्तृविरहितां चिरं दुहितरं प्रेक्षितुं पारयति।) [122]

राजा- वयस्य,

स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु क्लृप्तं नु तावत्फलमेव पुण्यैः।
असंनिवृत्त्यै तदतीव मन्ये मनोरथानाम् अतटप्रपातम्[9]॥ 6 -11॥ [123]

विदूषकः- भो, मा एवं भण। णं अङ्गुरीअअं जेव एत्थ णिदंसणं, अवस्संभाविणो अचिन्तणीया समागमा होन्ति त्ति। (भोः मैवं भण। नन्वङ्गुरीयकमेवात्र निदर्शनम्, अवश्यंभाविनः अचिन्तनीयास्समागमाः भवन्तीति।) [124]

राजा- (अङ्गुरीयकमालोक्य) इदं तदसुलभस्थानभ्रंशि[10] शोचनीयमङ्गुरीयकम्। [125]

---

1. मैथिल-पाठे "प्रत्याख्यानात्", "बाष्पप्रकर0" इति च। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठ "ईदृशी कष्टावस्था। अस्य संतापेनाहं रम" इति। मैथिल-पाठ "ईदृशी कार्यस्य परवशता। अस्य जनस्य संतापेनाधिकतरमहं रम" इति।
3. काश्मीर-पाठ "आकाशगामिनाऽपहृते" ति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठेऽत्रैकमधिकं वाक्यम्, "क इव देवताभ्योऽन्यः सम्भाव्यते" इति। मैथिल-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठमनुसरति। बंगीय-पाठात् तन्निष्कासितं स्यादिति प्रतीयते।
5. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं नास्ति। इदं तु मैथिल-पाठे प्रक्षिप्तं स्यात्। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठे "ऽहो मोहः खल्वेषो रमणीयः, पुनः प्रतिबोध" इति। मैथिल-पाठे "संमोहेऽपि विस्मयजनकः खल्वस्य प्रतिबोध" इति। पाठत्रयीषु दृश्यमानं पार्थक्यमेव तेषां रंगावृत्तित्वं दृढीकरोति।
7. काश्मीर-पाठे "समागमोऽपि कालेन तत्रभवत्ये" ति। मैथिल-पाठे समागमः कालेनापि तत्रभवत्येति।
8. काश्मीर-मैथिल-पाठयो "र्मातापितरावि" ति।
9. काश्मीर-पाठ "आसन्नवृत्तेस्तदतीतमेष, मनोरथानामतटप्रपातः" इति। मैथिल-पाठे "सासन्निवृत्यै सुदती ममैव, मनोरथानामतटप्रपात" इति।
10. मैथिल-पाठे "तदसुलभस्थानभ्रंशशोचनीयमि" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

तव सुचरितमङ्गुरीय नूनं प्रतनु ममेव[1] विभाव्यते[2] फलेन।
अरुणनखमनोहरासु तस्याश्च्युतमसि लब्धपदं यदङ्गुलीषु॥ 6 –12॥ [126]

मिश्रकेशी- जइ अण्णहत्थगदं भवे तदा सच्चं सोअणीअं भवे। सहि, दूरे वट्टसि। एआइणी जेव कण्णसुहाइं अणुभवामि। (यद्यन्यहस्तगतं भवेत् तदा सत्यं शोचनीयं भवेत्[3]। सखि, दूरे वर्तसे। एकाकिन्येव कर्णसुखान्यनुभवामि।) [127]

विदूषकः- भो, इअं णाममुद्दा केण उण उवुग्घादेण भवदा तत्थभोदीए हत्थसंसग्गं पाविदा। (भोः इयं नाममुद्रा केन पुनः उपोद्घातेन भवता तत्रभवत्याः हस्तसंसर्गं प्रापिता।) [128]

मिश्रकेशी[4]- मम विअ कोदूहलेण आलाविदो[5] एसो। (ममैव कौतूहलेनालापितः एषः।) [129]

राजा- वयस्य, श्रूयताम्। यदा तपोवनात्स्वनगराय[6] प्रस्थितं मां प्रिया सबाष्पमिदमाह कियच्चिरेणार्यपुत्रः पुनरस्माकं स्मरिष्यतीति[7]। [130]

विदूषकः- तदो तदो। (ततस्ततः।) [131]

राजा- अथेमां नाममुद्रामङ्गुल्यां निवेशयता मया प्रत्यभिहिता। [132]

विदूषकः- किं ति। (किमिति।) [133]

राजा-

एकैकमत्र दिवसे दिवसे मदीयं नामाक्षरं गणय यासि न यावदन्तम्[8]।
तावत्प्रिये मदवरोधनिदेशवर्ती[9] नेता जनस्तव समीपमुपैष्यतीति॥ 6 –13॥ [134]

तच्च मोहाद् दारुणमनुष्ठितम्। [135]

मिश्रकेशी- रमणीओ क्खु अवही विहिणा विसंवादिदो। (रमणीयः खल्ववधिः विधिना विसंवादितः[10]।) [136]

विदूषकः- अध कधं रोहिदमच्छस्स मुहं बडिसं विअ एदं पविट्ठं आसि। (अथ कथं रोहितमत्स्यस्य[11] मुखं बडिशमिवैतत् प्रविष्टमासीत्।) [137]

राजा- शचीतीर्थे सलिलं वन्दमानायास्तव सख्याः परिभ्रष्टम्[12]। [138]

विदूषकः- जुज्जदि। (युज्यते।) [139]

मिश्रकेशी[13]- अदो क्खु तवस्सिणीए सउन्तलाए अधम्मभीरुणो राएसिणो परिणए सन्देहो। अधवा ण ईदिसो अणुराओ

---

1. मैथिल-पाठे "गतममुनेव०" इति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठे "विभज्यत" इति। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
3. काश्मीर-पाठेऽक्षमालाया मुखे न वर्तत एतादृशं वाक्यम्। बंगीय-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठे नास्तीयमुक्तिः। मैथिल-पाठे प्रक्षिप्तेयमुक्तिः, सा बंगीय-पाठेऽप्यनुक्रियते।
5. मैथिल-पाठे "व्यापारित" इति। (काश्मीर-पाठे तु वाक्यमिदं नास्त्येव।)
6. मैथिल-पाठे "तदा स्वनगराये" ति। बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठमनुसरति।
7. मैथिल-पाठे "प्रतिवार्तां दास्यतीती" ति। बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठमनुसरति।
8. काश्मीर-पाठे "गच्छसि यावदन्तमि" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
9. काश्मीर-पाठे "मदवरोधगृहप्रवेशी" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
10. काश्मीर-पाठे "रमणीयस्ते विधिना दर्शितो मार्ग" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
11. काश्मीर-पाठ इतः पूर्वम् "दास्याः पुत्रस्ये" त्यधिकम्। अस्माद् वाक्यादनन्तरं काश्मीर-पाठे "भवतु, उपालप्स्ये तावदेतदि" त्यधिकम्। ततश्च, कथं नु तं बन्धुरकोमल० इति श्लोकः समायाति। किन्तु बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
12. काश्मीर-मैथिल-पाठयोरनयोः शब्दयोर्मध्ये "गङ्गास्रोतसी" त्यधिकम्।
13. काश्मीर-पाठे मिश्रकेश्याः=अक्षमालाया उक्तिरियं नास्ति। मैथिल-पाठमनुसृत्यैव बंगीय-पाठे प्रदत्तेयम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अहिण्णाणं अवेक्खदि। ता कधं विअ एदं। (अतः खलु तपस्विन्याः शकुन्तलायाः अधर्मभीरोः राजर्षेः परिणये सन्देहः। अथवा न ईदृशः अनुरागः अभिज्ञानम् अपेक्षते। तद् कथमिवैतद्।) [140]

राजा- भवतु, उपालप्स्ये तावदिदमङ्गुरीयकम्। [141]

विदूषकः[1]- (सस्मितम्) अहं पि एदं दण्डअट्ठं उवालहिस्सं। कधं उज्जुअस्स मे कुडिलं तुमं सि त्ति। (अहमपि एतद्दण्डकाष्ठमुपालप्स्ये। कथम् ऋजोः मे कुटिलम् त्वमसीति।) [142]

राजा- (अनाकर्णितनाटितकेन[2]) [143]

कथं नु तं कोमलबन्धुराङ्गुलिं करं विहायासि निमग्नमम्भसि।

अथवा-

अचेतनं नाम गुणं न वीक्षते[3] मयैव कस्मादवधीरिता प्रिया॥ 6 -14॥ [144]

मिश्रकेशी- सअं जेव पडिवण्णो जं म्हि वत्तुकामा। (स्वयमेव प्रतिपन्नः यदस्मि वक्तुकामा[4]।) [145]

विदूषकः- भो, सव्वधा अहं खु बुभुक्खाए मारिदव्वा। (भोः सर्वथा अहं खलु बुभुक्षया मारयितव्यः[5]।) [146]

राजा- (अनादृत्य) प्रिये, अकारणपरित्यागानुशयदग्धहृदयस्तावद् अनुकम्प्यतामयं जनः पुनर्दर्शनेन[6]। [147]

चेटी- (प्रविश्य चित्रफलकहस्ता) भट्टा, इअं चित्तगदा भट्टिणी। (भर्तः, इयं चित्रगता भर्त्री।) [148]

(इति चित्रफलकं दर्शयति) [149]

[<राजा[7] -(विलोक्य)अहो रूपमालेख्यस्य। [150] तथा हि-

दीर्घापाङ्गविसारिनेत्रयुगलं लीलाञ्चितभ्रूलतं
दन्तान्तःपरिकीर्णहासकिरणज्योत्स्नाभिषिक्ताधरम्।
कर्कन्धूद्युतिपाटलोष्ठरुचिरं तस्यास्तदेतन्मुखं
चित्रेऽप्यालपतीव विभ्रमलसत्प्रोद्भिन्नकान्तिद्रवम्॥ 6 -15॥ [151]

तथा हि -

अस्यास्तुङ्गमिव स्तनद्वयमिदं, निम्नेव नाभिः स्थिता
दृश्यन्ते विषमोन्नताश्च वलयो भित्तौ समायामपि।
अङ्गे च प्रतिभाति मार्दवमिदं स्निग्धप्रभावाच्चिरं
प्रेम्णा मन्मुखमीषदीक्षत इव स्मेरा च वक्तीव माम्॥ 6 - 16॥>][8] [152]

विदूषकः- (विलोक्य) भो, भावमहुरा रेहा। [खलदि विअ मे दिट्ठी णिण्णुण्णदप्पदेसेसुं। किं बहुणा।

---

1. काश्मीर-पाठे विदूषकस्योक्तिरियं नास्ति। मैथिल-पाठमनुसृत्यैव बंगीय-पाठे प्रदत्ता सा।
2. काश्मीर-पाठे रंगसूचनेयं नास्ति। मैथिल-पाठे "ऽनादृत्ये" ति।
3. काश्मीर-पाठे "बन्धुरकोमलाङ्गुलिम्", "गुणान् न लक्षयेदि" ति च पाठान्तरौ वर्तेते। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठे "पूर्वापरविरोध्येष वृत्तान्तो वर्तते" इत्यक्षमाला भणति।
5. काश्मीर-पाठे विदूषकस्य नास्त्येतादृशं वाक्यम्। मैथिल-पाठमनुसृत्यैव बंगीय-पाठे संनिविष्टेयमुक्तिः।
6. काश्मीर-पाठे "ऽकारणपरित्यक्ता कदा नु प्रेक्षणीया भविष्यती" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति
7. काश्मीर-पाठे राज्ञो निखिलाप्युक्तिर्न वर्तते। स्वकीयस्यैव चित्रकर्मणः प्रशंसा स्वमुखेन कथं क्रियेत राज्ञेति तर्केणैव सिद्ध्यति यदियमुक्तिः प्रक्षिप्तैव।
8. अंशोऽयं रिचार्ड पिशेलेन बंगदेशीयपाठे न स्वीकृतः। किन्तु टीकाकारेण चन्द्रशेखरचक्रवर्तिना सन्दर्भदीपिकायां निर्दिष्टोऽयं श्लोकः, बंगीय-पाठस्यांशो वर्तते। प्रक्षिप्तत्वेन कोष्ठान्तर्भागे स्थाप्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

सत्ताणुप्पवेससङ्काए आलवणकोदूहलं मे जणेदि।] (भोः भावमधुरा रेखा। [स्खलति इव मे दृष्टिः निम्नोन्नतप्रदेशेषु[1]।>] किं बहुना, सत्त्वानुप्रवेशशङ्कया आलपनकौतूहलं मे जनयति।) [153]

मिश्रकेशी- अहो राएसिणो वत्तिआरेहा-णिउणदा। जाणे पिअसही मे अग्गदो वट्टदि त्ति। (अहो राजर्षेः वर्तिकारेखानिपुणता। जाने प्रियसखी मे अग्रतः वर्तते इति।) [154]

[राजा[2]- वयस्य,

यद्यत्साधु न चित्रेऽस्मिन्क्रियते तत्तदन्यथा।
तथापि तस्या लावण्यं रेखया किंचिद् अन्वितम्॥ 6 -17॥ [155]

मिश्रकेशी[3]- सरिसं पच्छादावगुरुणो सिणेहस्स। (सदृशं पश्चात्तापगुरोः स्नेहस्य।)] [156]

राजा- (निःश्वस्य[4])

साक्षात्प्रियामुपगतामपहाय पूर्वं चित्रार्पितामहमिमां बहु मन्यमानः।
स्रोतोवहां पथि निकामजलामतीत्य जातः सखे प्रणयवान्मृगतृष्णिकायाम्॥ 6 -18॥ [157]

विदूषकः[5]- तिण्णि आइदीओ दीसन्ति। सव्वाओ ज्जेव दंसणीआओ। ता कदमा तत्थभोदी सउन्तला। (तिस्रः आकृतयः दृश्यन्ते। सर्वा एव दर्शनीयाः। तत् कतमा तत्रभवती शकुन्तला।) [158]

मिश्रकेशी- अणहिण्णो एस तवस्सी सहीए रूवस्स। मोहचक्खुणो इअं ण गदा से पच्चक्खदं। (अनभिज्ञः एषः तपस्वी सख्याः रूपस्य। मोघचक्षुषः इयं न गतास्य प्रत्यक्षताम्[6]।) [159]

राजा- त्वं तावत्कतमां तर्कयसि। [160]

विदूषकः- (निर्वर्ण्य[7]) तक्केमि जा एसा अवसेअसिणिद्धपल्लवं असोअलदिअं संसिदा सिढिलकेस बन्धुव्वम्मन्तकुसुमेण बद्धसेदबिन्दुणा वअणेण विसेसणमिदसाहाहिं बाहालदिआहिं ऊससिदणीविणा वसणेण ईसिपरिस्सन्ता विअ आलिहिदा सा तत्थभोदी सउन्तला, सेसाओ सहीओ त्ति। (तर्कयामि या एषा अवसेकस्निग्धपल्लवाम् अशोकलतिकां संश्रिता[8] शिथिलकेशबन्धोद्वमत्कुसुमेन बद्धस्वेदबिन्दुना वदनेन विशेषनमितशाखाभ्यां बाहुलतिकाभ्याम् उच्छ्वसितनीविना वसनेन ईषत्परिश्रान्तेवालिखिता सा तत्रभवती शकुन्तला, शेषे सख्यौ इति।) [161]

राजा- निपुणो भवान्। अस्त्यत्र ममापि भावचिह्नम्[9]। [162]

स्विन्नाङ्गुलीनिवेशात्[10] रेखा प्रान्तेषु दृश्यते मलिना।
अश्रु च कपोलपतितं लक्ष्यमिदं वर्णकोच्छ्वासात्॥ 6 -19॥ [163]

---

1. विदूषकस्येदं वाक्यं दृष्ट्वैव पूर्वोक्तस्य (16) श्लोकस्यास्तित्वं सिद्ध्यति। किन्तु वाक्यमिदं प्रक्षिप्तम्, यतो हि काश्मीर-पाठेऽनुपलब्धत्वात्।
2. काश्मीर-पाठे नास्तीयमुक्तिः। मैथिल-पाठस्यायं प्रक्षिप्तांऽशो बंगीय-पाठे स्वीकृतः।
3. काश्मीर-पाठे नास्तीयमुक्तिः। मैथिल-पाठस्यायं प्रक्षिप्तांऽशो बंगीय-पाठे स्वीकृतः।
4. अस्योक्तेः सन्धानं तु लिपिकर्याः चित्रफलकेन सहैव संगच्छते, तदवधेयम्।
5. काश्मीर-पाठे विदूषकस्यास्माद् वाक्यात्पूर्वम् अक्षमालाया वाक्यं वर्तते, तच्च मैथिल-पाठेऽपि वर्तते। किन्तु बंगीय-पाठे नैव स्वीकृतं तद्वाक्यम्।
6. काश्मीर-पाठे "मोहदक्षस्तपस्वी। अवश्यं नास्य प्रत्यक्षा सखी" ति। मैथिल-पाठे "०सखीरूपस्य मूढदृष्टिः।०" इति। काश्मीर-पाठस्यैव विशदीकरणं दृश्यते मैथिल-बंगीय-पाठयोः।
7. काश्मीर-पाठे "चिरं विलोक्ये" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
8. मै.-पाठे "स्निग्धतरपल्लवस्य बालचूतवृक्षस्य पार्श्वे आलिखिते" ति। बं.-पाठः का.-पाठमनुसरत्यत्र।
9. मैथिल-पाठे "भावलिङ्गमि" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
10. मैथिल-पाठे "स्निग्धाङ्गुलिविनिवेशादि" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

चतुरिके[1], अर्धलिखितमेतद्विनोदस्थानमस्माभिः। तद्गच्छ। वर्तिकास्तावद् आनय। [164]

चेटी- अज्ज माधव्व। अवलम्बसु चित्तफलअं जाव गच्छामि। (आर्य माधव्य, अवलम्बस्व चित्रफलकं यावत् गच्छामि।) [165]

राजा- अहमेवैनमवलम्बे[2]। (इति यथोक्तं करोति, चेटी निष्क्रान्ता) [166]

विदूषकः- भो। किं एत्थ अवरं आलिहिदव्वं। (भोः किमत्रापरमालिखितव्यम्।) [167]

मिश्रकेशी- जो जो पिअसहीए अहिमदो पदेसो तं तं आलिहिदुकामो त्ति तक्केमि। (यः यः प्रियसख्याः अभिमतः प्रदेशः तं तमालिखितुकाम इति तर्कयामि।) [168]

राजा- सखे, श्रूयताम्। [169]

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी
पादस्तामभितो निषण्णचमरो गौरीगुरोः पावनः[3]।
शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः
शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम्॥ 6 - 20॥ [170]

विदूषकः- (अपवार्य) जधा मन्तेदि तधा तक्केमि पूरिदो अणेण चित्तफलओ आइदीहिं[4] कुच्चाणदाणं तावसाणं ति। (यथा मन्त्रयते तथा तर्कयामि पूरितः अनेन चित्रफलकः आकृतिभिः कूर्चानतानां तापसानाम् इति।) [171]

राजा- अन्यच्च शकुन्तलायाः प्रसाधनमभिप्रेतमत्रालिखितुं विस्मृतमस्माभिः। [172]

विदूषकः- किं विअ। (किमिव।) [173]

मिश्रकेशी- वणवासस्स कण्णआभावस्स च सरिसं भविस्सदि। (वनवासस्य कन्यकाभावस्य[5] च सदृशं भविष्यति।) [174]

राजा-

कृतं न कर्णार्पितबन्धनं सखे शिरीषमागण्डविलम्बिकेसरम्।
न वा शरच्चन्द्रमरीचिकोमलं मृणालसूत्रं रचितं स्तनान्तरे॥ 6 -21॥ [175]

विदूषकः- किं णु क्खु तत्थभोदी रत्तकुवलअसोहिणा अग्गहत्थेण मुहं ओवारिअ चकिदचकिदा विअ ठिदा। (दृष्ट्वा) आं, एसो[6] दासीएपुत्तो कुसुमरसपाडच्चरो धिट्ठमहुअरो[7] तत्थभोदीए वअणकमलं अहिलसदि। (किन्नु खलु तत्रभवती रक्तकुवलयशोभिना अग्रहस्तेन मुखमपवार्य चकितचकितेव स्थिता। आम्। एषः दास्याःपुत्र कुसुमरसपाटच्चरः धृष्टमधुकरः तत्रभवत्याः वदनकमलम् अभिलषति।) [176]

राजा- ननु वार्यतामेष धृष्टः[8]। [177]

विदूषकः- तुमं जेव अविणीदसासणे पहवसि। (त्वमेवाविनीतशासने[9] प्रभवसि।) [178]

राजा- युज्यते। अयि भोः कुसुमलताप्रियातिथे। किमितः परिपतनखेदमनुभवसि। [179]

---

1. काश्मीर-मैथिल-पाठयोर्या मेधाविनी=लिपिकरी, सा बंगीय-पाठे "चतुरिके" ति नामान्तरेणोच्यते।
2. काश्मीर-पाठे शकुन्तलायाः प्रतिकृतिस्तु विदूषकस्यैव हस्ते स्थाप्यते।
3. का.-पाठे "पादान्ते निभृतं निषण्णचमरो गौरीगुरोः पावन" इति। बं.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
4. मैथिल-पाठे "समूहेहिं=समूहैरि" ति।
5. काश्मीर-पाठे "सौकुमार्यस्ये" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठे "हे हे भोः" इति। मैथिल-पाठे "आं, ही ही भोः!" इति। उभयत्र मंचनकर्मणि भेदः।
7. काश्मीर-पाठे "कुसुमपाटच्चरो मधुकर" इति। मैथिल-पाठे "कुसुमरसहरो मधुकर" इति।
8. मैथिल-पाठे "दुष्ट" इति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
9. काश्मीर-पाठे "भवानेवाविनीतानुशासी वारणे" इति। मैथिल-पाठे "त्वमेवाविनीतानुशासन" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

एषा कुसुमनिषण्णा तृषिताऽपि सती भवन्तमनुरक्ता।
प्रतिपालयति भ्रमरी न खलु मधु त्वां[1] विना पिबति॥ 6 -22॥ [180]

मिश्रकेशी- अहिजादं खु वारिदो। (अभिजातं खलु वारितः[2]।) [181]

विदूषकः- पडिसिद्धवामा खु एसा जादी। (प्रतिषिद्धवामा खल्वैषा जातिः।) [182]

राजा- (सकोपम्) भोः। न मे शासने तिष्ठसि।
श्रूयतां तर्हि संप्रति-[183]

अक्लिष्टबालतरुपल्लवलोभनीयं पीतं मया सदयमेव रतोत्सवेषु।
बिम्बाधरं दशसि चेद् भ्रमर प्रियायास्त्वां कारयामि कमलोदरबन्धनस्थम्॥ 6 -23॥ [184]

विदूषकः- भो। एवं तिक्खदण्डस्स दे कधं ण भाइस्सदि। (प्रहस्यात्मगतम्) एसो दाव उम्मत्तओ, अहं पि एदस्स सङ्गेण ईदिसो ज्जेव संवुत्तो[3]। (भोः एवं तीक्ष्णदण्डस्य ते कथं न भेष्यति। एषः तावद् उन्मत्तोऽहमप्येतस्य सङ्गेन ईदृशः एव संवृत्तः।) [185]

राजा- कथं निवार्यमाणोऽपि स्थित एव[4]। [186]

मिश्रकेशी- धीरं पि जणं रसो विआरेदि। (धीरमपि जनं रसः विकारयति[5]।) [187]

विदूषकः- (प्रकाशम्) भो चित्तं खु एदं। (भोः चित्रं खल्वैतत्।) [188]

राजा- कथं चित्रम्[6]। [189]

मिश्रकेशी- अहं पि दाणिं जेव अवगदत्था, किं उण जधाचिन्तिदाणुभावी एसो। (अहमपीदानीम् एवावगतार्था, किं पुनः यथाचिन्तितानुभावी एषः[7]।) [190]

राजा- किमिदिमनुष्ठितं[8] पौरोभाग्यम्। [191]

दर्शनसुखमनुभवतः साक्षादिव तन्मयेन हृदयेन।
स्मृतिकारिणा त्वया मे पुनरपि चित्रीकृता कान्ता॥ 6 -24॥ [192]

(इति बाष्पं विसृजति[9]) [193]

मिश्रकेशी- अम्मो, पुव्वावरविरुद्धो एसो विहिणो मग्गो। (अम्मो, पूर्वापरविरूद्धः एषः विधेः मार्गः[10]।) [194]

---

1. काश्मीर-पाठे "मधुकरी न खलु मधु त्वये" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति। (आर्या छन्दः)
2. मैथिल-पाठे "ऽभियुक्तं खल्वस्य व्याहरितम्" इति। बंगीय-पाठो काश्मीर-पाठमनुसरति।
3. काश्मीर-पाठ "ईदिसस्स संसग्गेण ईदिसवण्णो विअ संवुत्तो" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-मैथिल-पाठयोर्नास्तीदं वाक्यम्। त्रिष्वपि पाठेषु प्रसंगस्यास्य भिन्नैव संवादमाला, सा च सर्वेषां पाठानां रंगावृत्तित्वं सुतरां प्रकटीकरोति।
5. काश्मीर-पाठे "ऽहो धीरेऽपि जने रसः पदं करोती" ति। काश्मीर-पाठ इतः पूर्वम् राज्ञोऽक्षमालायाश्च वाक्यद्वयं प्राप्यते। किन्तु प्रसंगेऽस्मिन् बंगीय-पाठो बहुशः काश्मीर-पाठानुसारीति निश्चीयते।
6. मैथिल-पाठ इतः परं "मया पुनर्ज्ञातं स एव कालो वर्तत इती" त्यधिकम्।
7. काश्मीर-पाठे "ममाप्यात्मनोऽनन्तरं गणय, याऽहमपीदानीं प्रतिबुद्धे" ति। मैथिल-पाठे "ममापि तावदात्मा अन्तरं न गणयति। यावदहमपीदानीं प्रतिबुद्धा, किं पुनः यथाचिन्तितानुभावी एष" इति। बंगीय-पाठे तूभयोः पाठयोः संमिश्रणं दृश्यते।
8. काश्मीर-मैथिल-पाठयोरितः पूर्वम्, "(सविषादम्) वयस्य!" इत्यधिकम्। बंगीय-पाठे नास्तीदम्।
9. काश्मीर-पाठे "रोदिती" ति रंगसूचना।
10. मैथिल-पाठे तु विदूषकस्येयमुक्तिः। काश्मीर-पाठेऽक्षमालाया मुखे "वयस्य, स्मृतं त्वया प्रत्यादेश-विमाननं शकुन्तलायाः सख्याः, दृष्टं खलु प्रत्यक्षमस्माभिरि" ति भिन्नैवोक्तिः। अनेन पार्थक्येन त्रयाणामपि पाठानां रंगावृत्तित्वमेव सिध्यति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- वयस्य, कथमविश्रामं दुःखमनुभवामि[1]। [195]

प्रजागरात् खिलीभूतस्तस्याः स्वप्नसमागमः।
बाष्पस्तु[2] न ददात्येनां द्रष्टुं चित्रगतामपि॥ 6 -25॥ [196]

मिश्रकेशी- सव्वधा वअस्स संमज्जिदं तए पच्चादेसदुक्खं पिअसहीए सउन्तलाए पच्चक्खं जेव सहीअणस्स। (सर्वथा वयस्य संमार्जितं त्वया प्रत्यादेशदुःखं प्रियसख्याः शकुन्तलायाः प्रत्यक्षमेव सखीजनस्य[3]।) [197]

प्रविश्य **चतुरिका-** भट्टा, वत्तिआकरण्डअं गेण्हिअ इदो अहं पत्थिद म्हि। (भर्तः, वर्तिकाकरण्डकं गृहीत्वा इतः अहं प्रस्थिताऽस्मि।) [198]

राजा- किं ततः। [199]

चेटी[4]- सो मे पिङ्गलिआदुदिआए देवीए वसुमदीए अहं जेव अज्जउत्तस्स उवणइस्सं ति भणिअ सबलक्कारं गहिदो। (सः मे पिङ्गलिकाद्वितीयया देव्या वसुमत्या अहम् एवार्यपुत्रस्य उपनेष्यामिति[5] भणित्वा सबलात्कारं गृहीतः।) [200]

विदूषकः- तुमं कधं विमुक्का। (त्वं कथं विमुक्ता।) [201]

चेटी- जाव लदाविडवलग्गं देवीए परिचारिआ अञ्चलं मोआवेदी ताव णिण्हुविदो मए अप्पा। (यावत् लताविटपलग्नं देव्याः परिचारिका अञ्चलं मोचयति तावत् निह्नुतः[6] मया आत्मा।) [202]

(नेपथ्ये) एदु एदु भट्टिणी। (एत्वेतु भर्त्री।) [203]

विदूषकः- (कर्णं दत्त्वा) भो अहिधावन्ती एसा अन्तेउरवग्घी मेधाविणिं मइं विअ कवलिदुं उवत्थिदा। (भोः अभिधावन्ती एषा अन्तःपुरव्याघ्री[7] मेधाविनी[8] मृगीमिव कवलयितुम् उपस्थिता।) [204]

राजा- वयस्य, उपस्थिता देवी बहुमानगर्विता[9]। तद्भवानिमां प्रतिकृतिं रक्षतु। [205]

विदूषकः- अत्ताणअं पि किं ति ण भणसि[10]। (चित्रफलकमादाय उत्थाय च) [206], जइ भवं अन्तेउर वाउरादो मुच्चिस्सदि तदो मं मेहच्छण्णप्पासादे सद्दावेसि। एदं च तहिं गोवेमि जहिं पारावदं उज्झिअ ण को वि अण्णो पेक्खदि। (आत्मानमपि किं न भणसि। यदि भवानन्तःपुर-वागुरातः[11] मोक्ष्यते ततः मां मेघछन्नप्रासादे शब्दयसि[12]। एतत् च तत्र गोपयामि यत्र पारावतम् उज्झित्वा(उज्झित्य)न कोऽप्यन्यः प्रेक्षते।) [207]

(इति द्रुतपदं निष्क्रान्तः) [208]

---

1. मैथिल-पाठे "कथं विश्रामसुखमनुभवामि?" इति प्रश्नेन काकुपरिवर्तनं क्रियते। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरत्यत्र।
2. काश्मीर-मैथिल-पाठयोस्तु "बाष्पोऽपी" ति।
3. काश्मीर-पाठे नास्त्येतादृशं वाक्यम्। तत्र तु भिन्नैव योजना। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठे "लिपिकरी-भर्तः, देव्याः कुलप्रभायाः परिजनेनान्तरावच्छिन्नस्ते वर्तिका-करण्डक" इति पठ्यते। इत आरभ्यमैथिल-बंगीय-पाठयोः परिवर्तनं प्रारभ्यते।
5. मैथिल-बंगीय-पाठयोरितः प्रारभ्य पूर्वपरिणीतायाः पत्न्याः संघर्षः प्रक्षिप्यते। विषयेऽस्मिन् बंगीय-पाठो मैथिल-पाठम् अनुसरति।
6. मैथिल-पाठे "निर्वाहित" इति।
7. काश्मीर-पाठे "ऽन्तःपुरव्याघ्री पिङ्गलिका" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
8. काश्मीर-पाठे मैथिल-पाठे च या मेधाविनी नाम्नी लिपिकरी वर्तते, बंगीय-पाठे तस्याः नामान्तरं चतुरिका प्रयुक्तमस्ति। किन्तु सैवात्र मेधाविनी नाम्नोल्लिख्यते। एतदेव बंगीय-पाठस्यावतारस्तृतीये क्रमांके वर्तत इत्यस्यान्तरिकं प्रमाणं भवति।
9. काश्मीर-पाठे देव्याः नास्तीदं विशेषणम्, वाक्यं वा।
10. काश्मीर-मैथिल-पाठयोरितः परमक्षमालायाः / मिश्रकेश्या उक्तिः-"सखि, एषा प्रतिकृतिरपि ते प्रतिपक्षस्यालंघनीया क्रियत" इति। बंगीय-पाठेऽत्र तादृश्युक्तिर्नास्ति।
11. काश्मीर-पाठे नास्तीदृशं वाक्यम्। मैथिल-पाठे "ऽन्तःपुरकुटपाशाद्" इति।
12. काश्मीर-पाठे नास्तीदं वाक्यम्। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

मिश्रकेशी- अम्मो, अण्णसंकन्तहिअओ वि पढमसंभावणं रक्खदि। थिरसोहिदो दाव एसो। (अम्मो अन्यसंक्रान्तहृदयः अपि प्रथमसम्भावनाम् रक्षति। स्थिरसौहृदः तावदेषः[1]।) [209]

प्रविश्य पत्रहस्ता **प्रतीहारी-** जअदु जअदु देवो। (जयतु जयतु देवः।) [210]

राजा- वेत्रवति, न खल्वन्तरे दृष्टा त्वया देवी वसुमती। [211]

प्रतीहारी- देव, दिट्ठा पत्तहत्थं मं पेक्खिअ पडिणिउत्ता।
(देव, दृष्टा, पत्रहस्तां मां प्रेक्ष्य प्रतिनिवृत्ता।) [212]

राजा- कालज्ञा[2] देवी कार्योपरोधं मे परिहरति। [213]

प्रतीहारी- देव, अमच्चो विण्णवेदि। अत्थजादस्स बहुलदाए एक्कं मए पोरकज्जं पच्चवेक्खिदं। तं देवो पत्तारोविदं पच्चक्खीकरेदु त्ति। (देव, अमात्यः विज्ञापयति। अर्थजातस्य[3] बहुलतया एकं मया पौरकार्यं प्रत्यवेक्षितम्। तद्देवः पत्रारोपितं प्रत्यक्षीकरोतु इति[4]।) [214]

राजा- इतः पत्रं दर्शय[5]। (प्रतीहारी तथा करोति) [215]

राजा- (वाचयति[6]) विदितमस्तु देवपादानाम्[7]। धनवृद्धिनामा वणिग्वारिपथोपजीवी नौ-व्यसने विपन्नः। स चानपत्यस्तस्यानेक-कोटिसंख्यं वसु। तदिदानीं राजार्थताम् आपद्यते। इति श्रुत्वा देवः प्रमाणमिति। [216]

राजा- (सविषादम्) कष्टं खल्वनपत्यता। वेत्रवति[8], महाधनत्वाद्बहुपत्नीकेनानेन भवितव्यम्।
तदन्विष्यतां यदि काचिद् आपन्नसत्त्वा तस्य भार्या स्यात्। [217]

प्रतीहारी- इदाणिं जेव साकेदअपुरस्स सेट्ठिणो दुहिदा णिव्वुत्तपुंसवणा तस्स जाआ सुणीअदि।
(इदानीमेव साकेतकपुरस्य श्रेष्ठिनः दुहिता निर्वृत्तपुंसवना तस्य जाया श्रूयते।) [218]

राजा- ननु स गर्भः पित्र्यम् ऋक्थमर्हति। गत्वैवममात्यं ब्रूहि। [219]

प्रतीहारी- जं देवो आणवेदि। (यद्देवो आज्ञापयति।) (इति प्रस्थिता।) [220]

राजा- एहि तावत्। [221]

प्रतीहारी- (निवृत्य) एस म्हि। (एषाऽस्मि[9]।) [222]

राजा- अथवा किमनेन संततिरस्ति नास्ति वा। [223]

येन येन वियुज्यन्ते प्रजाः स्निग्धेन बन्धुना।
स स पापादृते तासां दुःषन्त[10] इति घुष्यताम्।। 6 -26।। [224]

---

1. काश्मीर-पाठे "बहुमान्याऽस्याः कुलप्रभा। अथवा, नैतत् किञ्चित्। विपञ्च्याः खल्वसन्निधान एकतन्तु-रप्यर्घती" ति। मैथिल-पाठे "विरसो न खलु इदानीमेष" इति। त्रिष्वपि पाठेषु वैविध्यम्।
2. मैथिल-पाठे "समयज्ञे" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
3. काश्मीर-पाठे "ऽर्थिजनस्ये" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठे "तद् देवः सोढुमर्हती" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
5. काश्मीर-पाठे "मेधाविनि, वाच्यतामि" ति। मैथिल-पाठे राजा स्वयं वाचयति। तथैव बंगीय-पाठे।
6. काश्मीर-पाठे राजा पत्रं न वाचयति। अत्र मेधाविनी संस्कृतमाश्रित्य पत्रं पठति। रंगकर्मणि भेदः।
7. मैथिल-पाठे "भवतामि" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
8. मैथिल-पाठेऽस्माच्छब्दात् प्राक् "चिन्तयित्वे" ति रंगसूचना।
9. काश्मीर-पाठ "इयमस्मी" ति। मैथिल-पाठ "एषोऽस्मी" ति पुंसि प्रयोगः। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
10. काश्मीर-पाठे "दुष्यन्त" इति। मैथिल-पाठे "दुष्मन्त" इति। नटानामुच्चारणे विकृतिः स्यादेव।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रतीहारी- इदं णाम घोसइदव्वं। (निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य) देव, काले पवुट्ठं विअ सासणं अहिणन्दिदं महाजणेण देवस्स। (इदं नाम घोषयितव्यम्। देव, काले प्रवृष्टमिव शासनम् अभिनन्दितं महाजनेन देवस्य।) [225]

राजा- (दीर्घं निःश्वस्य) एवं भोः संततिविच्छेदनिरवलम्बना मूलपुरुषावसाने संपदः परमुपतिष्ठन्ते। ममाप्यन्ते पुरुवंशश्रिय एष वृत्तान्तः। [226]

प्रतीहारी- पडिहदं अमङ्गलं। (प्रतिहतम् अमङ्गलम्[1]।) [227]

राजा- धिङ् मामुपनतश्रेयोऽवमानिनम्। [228]

मिश्रकेशी- असंसअं पिअसहिं जेव हिअए कदुअ णिन्दिदो अणेण अप्पा भविस्सदि। (असंशयं प्रियसखीमेव हृदये कृत्वा निन्दितः अनेनात्मा भविष्यति।) [229]

राजा -

> **संरोपितेऽप्यात्मनि धर्मपत्नी त्यक्ता मया नाम कुलप्रतिष्ठा।**
> **कल्पिष्यमाणा महते फलाय वसुन्धरा काल इवोप्तबीजा॥** 6 -27॥ [230]

मिश्रकेशी- अपरिच्चत्ता दाणिं दे भविस्सदि। (अपरित्यक्ता इदानीं ते भविष्यति[2]।) [231]

चेटी- (जनान्तिकम्) अज्जे, एदं पत्तं पेसअन्तेण दिउणाणुदावो किदो भट्टा अमच्चेण। ता मेहच्छण्णावट्ठिदं संतावणिव्वावइत्तअं अज्जमाधव्वं गेण्हिअ आअच्छ। (आर्ये, एतत्पत्रं प्रेषयता द्विगुणानुतापः कृतः भर्ता अमात्येन[3]। तत्मेघच्छन्नावस्थितं संतापनिर्वापयितारम् आर्यमाधव्यं गृहीत्वा आगच्छ[4]।) [232]

प्रतीहारी- सुट्ठु दे भणिदं। (सुष्ठु ते भणितम्।) (इति निष्क्रान्ता[5]) [233]

राजा- अहो, दुःषन्तस्य संशयमारुढाः पिण्डभाजः। [234]

> **अस्मात्परं बत यथास्मृति[6] संभृतानि को नः कुले निवपनानि करिष्यतीति।**
> **नूनं प्रसूतिविकलेन मया प्रसिक्तं धौताश्रुसेकमुदकं पितरः पिबन्ति॥** 6 -28॥ [235]

मिश्रकेशी- सदि क्खु दीवे ववधाणदोसेण अन्धआरं अणुभवदि राएसी। (सति खलु दीपे व्यवधानदोषेणान्धकारमनुभवति राजर्षिः[7]।) [236]

चेटी[8]- भट्टा, अलं संताविदेण। वअत्थो ज्जेव पहू अवरासु देवीसु अणुरूवपुत्तजम्मेण पुव्वपुरिसाणं अरिणो भविस्सदि। (आत्मगतम्) ण मे वअणं पडिच्छदि भट्टा। अधवा अणुरूवं जेव ओसधं आदङ्कं णिअत्तेदि। (भर्तः, अलं संतापितेन। वयःस्थः[9] एव प्रभुः अपरासु देवीषु अनुरूपपुत्रजन्मना पूर्वपुरुषाणामनृणः भविष्यति। न मे वचनं प्रतीच्छति भर्ता। अथवा -अनुरूपमेवौषधम् आतङ्कं निवर्तयति[10]।) [237]

---

1. काश्मीर-पाठ "आशङ्कितमि" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठे नास्तीयमुक्तिः। मैथिल-पाठे प्रक्षिप्तेयमुक्तिः। बंगीय-पाठे च स्वीकृतेयम्।
3. काश्मीर-पाठ "इमं पत्रकं प्रेषयता किं स्मारितेन अमात्येन, यत् प्रेक्ष्य तावत् भर्तुरजलावसेकः संवृत्तः। अथवा, न सोऽबुद्धिपूर्वकं प्रवर्तत" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठे नास्त्येतादृशी योजना। मैथिल-पाठे लिपिकरी प्रतीहारीं प्रेषयति माधव्यमानेतुम्। तादृशं पाठमनुसरत्यत्र बंगीय-पाठः।
5. काश्मीर-पाठे नास्तीदं वाक्यम्, प्रतीहारी च रंगान्न निवर्तते। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठे "यथाश्रुत०" इति। मैथिल-पाठे "यथाश्रुती" ति।
7. काश्मीर-पाठे "सदृशं खलु ते, व्यवधानदोषेणान्धकारो भवती" ति। मैथिल-पाठे "सति खलु दीपेऽनवधानदोषेणान्धकारमनुभवति राजर्षिरि" ति।
8. काश्मीर-पाठे निखिलाप्युक्तिरियं प्रतीहारी वक्ति, यतो हि सा तु रंगभूमावेव वर्तते।
9. मैथिल-पाठे "नववयःस्थ" इति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
10. स्वगतोक्तिरूपमिदं वाक्यं प्रक्षिप्तं स्यात्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- (शोकनाटितकेन) सर्वथा-

आमूलशुद्धसंतति कुलमेतत्पौरवं प्रजावन्ध्ये।
मय्यस्तमितमनार्ये देश इव सरस्वतीस्त्रोतः॥ 6 -29॥ [238]

(इति मोहमुपागतः[1]) [239]

चेटी- (संसभ्रमम्) समस्ससदु समस्ससदु भट्टा। (समाश्वसितु समाश्वसितु भर्ता।) [240]

मिश्रकेशी- किं इदाणिं जेव णं णिव्वुदं करइस्सं। अधवा सुदं मए सउन्तलं संभावअन्तीए देवजणणीए मुहादो जण्णभाअसमूसुआओ देवदाओ ज्जेव तधा करइस्सन्ति जधा सो भत्ता तुमं अइरेण धम्मवत्तिं अहिणन्दिस्सदि त्ति। ता ण जुत्तं मम एत्थ विलम्बिदुं। जाव इमिणा वुत्तन्तेण पिअसहिं सउन्तलं समस्ससेमि। (किमिदानीमेवेनं निर्वृत्तं करिष्यामि। अथवा श्रुतं मया शकुन्तलां संभावयन्त्याः देवजनन्याः मुखात् यज्ञभागसमुत्सुकाः देवताः एव तथा करिष्यन्ति।

यथा सः भर्ता त्वामचिरेण धर्मपत्नीम् अभिनन्दिष्यतीति। तन्न युक्तं ममात्र विलम्बितुम्[2]। यावदनेन वृत्तान्तेन प्रियसखीं शकुन्तलां समाश्वासयामि। [241]

(इत्युद्भ्रान्तकेन निष्क्रान्ता।) [242]

नेपथ्ये

भो, अव्बम्हण्णं अव्बम्हण्णं। (भोः अब्रह्मण्यम् .....। अब्रह्मण्यम्।) [243]

राजा- (प्रत्यागतचेतनः कर्णं दत्वा[3]) अये माधव्यस्येवार्तनादः। [244]

चेटी- भट्टा, मा णाम सो माधव्वतवस्सी पिङ्गलिआमिस्सिआहिं चित्तफलअहत्थो पाविदो भविस्सदि।
(भर्तः, मा नाम सः माधव्यतपस्वी पिङ्गलिकामिश्राभिः[4] चित्रफलकहस्तः प्राप्तः भविष्यति।) [245]

राजा- चतुरिके, [5]गच्छ। मद्वचनादनिषिद्धपरिजनां देवीमुपालभस्व। [246]

चेटी- जं देवो आणवेदि। (यद्देवो आज्ञापयति।) (इति निष्क्रान्ता) [247]

नेपथ्ये

भो, अव्बम्हण्णं अव्बम्हण्णं। (भोः अब्रह्मण्यं अब्रह्मण्यम्।) [248]

राजा- परमार्थतो भीतिभिन्नस्वरो ब्राह्मणः[6]। कः कोऽत्र भोः। [249]

प्रविश्य **कञ्चुकी-** आज्ञापयतु देवः। [250]

राजा- निरूप्यतां किमेवं माधव्यमाणवकः[7] क्रन्दतीति। [251]

कञ्चुकी- यावदालोकयामि। (इति निष्क्रम्य ससंभ्रमं पुनः प्रविष्टः) [252]

---

1. काश्मीर-पाठे "संमोहं गत" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
2. मैथिल-पाठे "तस्मात् न युक्तं इमं कालं मम लंघितुमि" ति। काश्मीर-पाठे तु भिन्नैव योजना।
3. काश्मीर-पाठे "शनैः प्रत्याश्वस्ये" ति। मैथिल-पाठे "प्रत्यागतप्राणः, कर्णं दत्वे" ति।
4. काश्मीर-पाठे "तपस्वीपिङ्गलिकामिश्राणां मुखे पतितो भविष्यती" ति। मैथिल-पाठे "०पिङ्गलिका-मिलिताभिः देवीभिः०" इति। बंगीय-पाठे "देवीभिरि" ति शब्दस्याभावः काश्मीर-पाठस्य मौलिकतां व्यनक्ति।
5. काश्मीर-पाठे "वसुमति!" इति प्रतीहारीं संबुध्योच्यते। मैथिल-पाठे "चतुरिके!" इति।
6. काश्मीर-पाठे "परमार्थभीत एव भिन्नस्वरो ब्राह्मण" इति। मैथिल-पाठे "०इव०" इति।
7. काश्मीर-मैथिल-पाठयो "र्माधव्यो माणवक" इति। (कस्याश्चिन्मातृकायाः पार्श्वान्तरे शब्दार्थत्वेन प्रदत्तो माणवक इति शब्दोऽत्र मूलपाठत्वेन प्रविष्टः स्यादिति प्रतीयते।)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- पार्वतायन। न खलु किं चिदत्याहितम्। [253]

कञ्चुकी- एवम्। [254]

राजा- तत्कुतोऽयं वेपथुः। [255]

तथा हि[1],

प्रागेव जरसा कम्पः सविशेषेण सम्प्रति।
आविष्करोति सर्वाङ्गमश्वत्थमिव मारुतः[2]॥ 6 - 30॥ [256]

कञ्चुकी- परित्रायतां सुहृदं महाराजः। [257]

राजा- कस्मात्परित्रातव्यः। [258]

कञ्चुकी- महतः कृच्छ्रात्। [259]

राजा- अयि, भिन्नार्थमभिधीयताम्। [260]

कञ्चुकी- योऽसौ दिगवलोकनप्रासादो[3] मेघच्छन्नो नाम। [261]

राजा- किं तत्र। [262]

कञ्चुकी-

तस्याग्रभागाद् गृहनीलकण्ठैरनेकविश्रामविलङ्घ्यशृङ्गात्।
सखा प्रकाशेतरमूर्तिना ते केनापि सत्त्वेन निगृह्य नीतः[4]॥ 6 -31॥ [263]

राजा- (सहसोत्थाय) आः ममापि सत्त्वैरभिभूयन्ते गृहाः। अथवा बहुप्रत्यवायं नृपत्वम्। [264]

अहन्यहन्यात्मनः एव तावज्ज्ञातुं प्रमादस्खलितं न शक्यम्।
प्रजासु कः केन पथा प्रयातीत्यशेषतः कस्य पुनः प्रभुत्वम्[5]॥ 6 -32॥ [265]

नेपथ्ये

अविद अविद भो। (अविद अविद भोः।) [266]

राजा- (आकर्ण्य गतिभेदं रूपयन्) सखे, न भेतव्यं न भेतव्यम्। [267]

नेपथ्ये- भो। कधं ण भाइस्सं। एसो मं को वि पच्छामोडिअ सिरोधरं इक्खुं विअ भग्गगण्ठिं करिदुं इच्छदि। (भोः कथं न भेष्यामि। एषः मां कोऽपि पश्चान्मोट्य शिरोधरम् इक्षुमिव भग्नग्रन्थिं कर्तुमिच्छति[6]।) [268]

राजा- (सदृष्टविक्षेपम्) धनुर्धनुस्तावत्। [269]

प्रविश्य धनुर्हस्ता **यवनी[7]**- भट्टा, एदं ससरं सरासणं हत्थावाओ अ। (भर्ता, एतत् सशरं शरासनं हस्तावापः च।) [270]

(राजा सशरं धनुरादत्ते) [271]

---

1. का.-मै.-पाठयोः श्लोकोऽयं कञ्चुकिनो मुखे वर्तते। उभयथापि तस्य प्रक्षिप्तत्वमेव सिध्यति।
2. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः श्लोकोऽयं कञ्चुकिनो मुखे वर्तते। किन्तु विदूषकस्य त्राणस्य प्रसंगेऽस्मिन् प्रक्षिप्तः प्रतिभाति, कालक्षयकारकत्वात्।
3. काश्मीर-पाठे नास्त्येतादृशः प्रासादः। मैथिल-पाठे "दिगवलोककः प्रासाद" इति।
4. कञ्चुकिनः श्लोकगानमत्र कालक्षयकारकत्वात् प्रक्षिप्तं प्रतिभाति।
5. पूर्वोक्तेनैव तर्केणायमपि श्लोकः प्रक्षिप्तः प्रतिभाति।
6. काश्मीर-पाठे "पश्चान्मोटितशिरोधरम् इक्षुमिवास्थिभङ्गमेव कर्तुमिच्छती" ति। मैथिल-पाठे "पश्चात् पीडितशिरोधरम् उद्बध्वाऽस्थिभङ्गं करोती" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
7. मैथिल-पाठे "प्रतीहारी" ति। किन्तु तन्नोचितम्। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसृत्य यवनीं प्रेषयति, तत्तूचितं प्रतिभाति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

नेपथ्ये-

एष त्वामभिनवकण्ठशोणितार्थी शार्दूलः पशुमिव हन्मि चेष्टमानम्[1]।
आर्तानां भयमपनेतुमात्तधन्वा दुःषन्तस्तव[2] शरणं भवत्विदानीम्॥ 6 -33॥ [272]

राजा- (सक्रोधम्) कथं मामेवोद्दिशति। आः। तिष्ठ तिष्ठ कौणपापसद। अयमिदानीं न भवसि। (चापमारोप्य) पार्वतायन, सोपानमार्गमादेशय। [273]

कञ्चुकी- इत इतो देवः। (सर्वे सत्वरमुपसर्पन्ति) [274]

राजा- (समन्तादवलोक्य) अये, शून्यमिदम्। [275]

नेपथ्ये

परित्ताहि परित्ताहि। अहं भवन्तं पेक्खामि, तुमं ण मं पेक्खसि। मज्जारगहिदो विअ उन्दुरो णिरासो म्हि जीविदे। (परित्राहि परित्राहि[3]। अहं भवन्तं प्रेक्षे, त्वं न मां प्रेक्षसे। मार्जारगृहीतः इव उन्दुरः निराशः अस्मि[4] जीविते।) [276]

राजा- भोस्तिरस्करिणीगर्वित[5], किं मदीयमस्त्रमपि त्वां न पश्यति[6]। स्थिरो भव। मा च ते वयस्यसम्पर्काद् विश्वासोऽभूत्। एष तमिषुं संदधे-[277]

यो हनिष्यति वध्यं त्वां रक्ष्यं रक्षिष्यति द्विजम्।
हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः॥ 6 -34॥ [278]

(इति शस्त्रं[7] संधत्ते) [279]

(ततः प्रविशति मातलिर्विदूषकश्च[8]) [280]

मातलिः- आयुष्मन्,

कृताः शरव्यं[9] हरिणा तवासुराः शरासनं तेषु विकृष्यतामिदम्।
प्रसादसौम्यानि सतां सुहृज्जने पतन्ति चक्षूंषि, न दारुणाः शराः॥ 6 -35॥ [281]

राजा- (ससंभ्रमम् अस्त्रम्[10] उपसंहरन्) अये, कथं मातलिः। स्वागतं देवराजसारथे। [282]

विदूषकः- भो, मणं म्हि इमिणा अहं पसुमारणेण मारिदुं ण पारिदो। भवं उण इमं साअदेण अहिणन्ददि। (भोः मनाक् अस्मि अनेन अहं पशुमारणेन मारयितुं न पारितः[11]। भवान् पुनः इमं स्वागतेन अभिनन्दति।) [283]

---

1. काश्मीर-पाठे "वेष्टमानमि" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठे "दुष्यन्तस्तवे" ति। मैथिल-पाठे "दुष्मन्तस्तवे" ति।
3. काश्मीर-पाठेऽ-"-भिधाव भोः3" इति।
4. मैथिल-पाठेऽ-"-नीशोऽस्मी" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
5. मैथिल-पाठे "तिरस्करिणीविद्यागर्वितमि" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठे "मदीयमस्त्रं त्वां पश्यती" ति। काकु-परिवतर्नं कृत्वा प्रश्नः क्रियते मैथिल-पाठे। तद्यथा-"मदीयमस्त्रं त्वां न द्रक्ष्यती?" ति। बंगीय-पाठे प्रश्नवाचकः "किमि" ति शब्दः संनिविश्यते।
7. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः क्षेपणार्थकोऽ-"-स्त्रमि" ति शब्दः। बंगीय-पाठे शस्त्रमित्यसमीचीनः शब्दः।
8. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "प्रविश्य सम्भ्रान्तो विदूषकमुत्सृज्य मातलिर्विदूषकश्चे" ति।
9. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "शरव्या" इति।
10. काश्मीर-पाठे "अस्त्रमि" ति। मैथिल-पाठे "शस्त्रमि" ति।
11. काश्मीर-मैथिल-पाठयोस्तु "भोः, अहमनेन पशुमारेण मारितोऽस्मी" ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

मातलिः- (सस्मितम्) आयुष्मन्, श्रूयतां यदर्थमस्मि हरिणा त्वत्सकाशं प्रेषितः। [284]

राजा- अवहितोऽस्मि। [285]

मातलिः- अस्ति कालनेमिप्रसूतो दुर्जयो नाम दानवगणः। [286]

राजा- श्रुतपूर्वो मया नारदात्। [287]

मातलिः-

सख्युस्ते स किल शतक्रतोरवध्यस्तस्य त्वं रणशिरसि स्मृतो निहन्ता[1]।
उच्छेत्तुं प्रभवति यन्न सप्तसप्तिस्तन्नैशं तिमिरमपाकरोति चन्द्रः॥ 6 -36॥ [288]

स भवान् आत्तचाप एवेदानीं देवरथमारुह्य[2] विजयाय प्रतिष्ठताम्। [289]

राजा- अनुगृहीतोऽस्म्यनया मघवतः संभावनया। अथ भवद्भिर्माधव्यं प्रति किमेवं प्रयुक्तम्। [290]

मातलिः- एतदपि कथ्यते[3]। किंनिमित्तादपि मनस्तापादायुष्मान्विक्लवो दृष्टः। पश्चात्कोपयितुम् आयुष्मन्तं तथा कृतवानस्मि। [291] कुतः-

ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निर्विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते।
तेजस्वी संक्षोभात्प्रायः प्रतिपद्यते तेजः[4]॥ 6 -37॥ [292]

राजा- वयस्य[5], अनतिक्रमणीया दिवस्पतेराज्ञा। तद्गच्छ। परिगतार्थं कृत्वा मद्वचनाद् अमात्यपिशुनं ब्रूहि। [293]

त्वन्मतिः केवला तावत्प्रतिपालयतु प्रजाः।
अधिज्यमिदमन्यस्मिन्कर्मणि व्यापृतं धनुः॥ 6 -38॥ [294]

विदूषकः- जं भवं आणवेदि। (यद्भवानाज्ञापयति।) (इति निष्क्रान्तः) [295]

मातलिः- रथमारोहत्वायुष्यमान्। (राजा तथा करोति) [296]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे) [297]

॥ शकुन्तला-विरहो[6] नाम षष्ठोऽङ्कः॥

---

1. मैथिल-पाठे "शरसख एव संनिहन्ते" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठे "गृहीतचाप एवेदानीमैन्द्रं रथमि" ति।
3. काश्मीर-पाठे "सस्मितम् विदूषकमवलोक्ये" ति। मैथिल-बंगीय-पाठयोर्नास्तीयं रंगसूचना।
4. काश्मीर-पाठे "प्रायस्स्वं महिमानं क्षोभात् प्रतिपद्यते जन्तुरि" ति। मैथिल-पाठे "0चाक्षेपात् प्रायः0" इति।
5. काश्मीर-पाठ इतः पूर्वं "जनान्तिकमि" ति रंगसूचना। सा च बंगीय-पाठे नास्ति।
6. काश्मीर-पाठे न सन्ति प्रत्येकानामङ्कानां नामानि। किन्तु तत्र "इत्यभिज्ञानशकुन्तला नाटके षष्ठोऽङ्क इति"। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ सप्तमोऽङ्कः[1]॥

(ततः प्रविशत्याकाशवर्त्मना रथारूढो राजा मातलिश्च) [1]

राजा- मातले, अनुष्ठितनिदेशोऽपि मघवतः सत्क्रियाविशेषादनुपयुक्तमिवात्मानं समर्थये। [2]

मातलिः- आयुष्मन्[2], उभयत्राप्यसंतोषमवगच्छ। कुतः-[3]

उपकृत्य हरेस्तथा भवाल्लँघु सत्कारमवेक्ष्य मन्यते[3]।
गणयत्यवदानसंमितां भवतः सोऽपि न सत्क्रियामिमाम्॥ 7 -1॥ [4]

राजा- मा मैवम्। स खलु मनोरथानामप्यतिदूरवर्ती विसर्जनावसरे सत्कारः। मम हि दिवौकसां समक्षमर्धासनोपविष्टस्य, [5]

अन्तर्गतप्रार्थनमन्तिकस्थं जयन्तमुद्वीक्ष्य कृतस्मितेन।
प्रमृज्य वक्षो हरिचन्दनाङ्क[4] मन्दारमाला हरिणा पिनद्धा॥ 7 -2॥ [6]

मातलिः- किमिव सुरेशादायुष्मान्नार्हति[5]। पश्य-[7]

सुखपरस्य हरेरुभयैः कृतं त्रिदिवमुद्धृत-दानवकण्टकम्।
तव शरैरधुना नतपर्वभिः[6] पुरुषकेसरिणश्च पुरा नखैः॥ 7 -3॥ [8]

राजा- अत्र खलु शतक्रतोरेव महिमा। पश्य-[9]

सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः
सम्भावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम्।
किं प्राभविष्यद्[7] अरुणस्तमसां वधाय
तं चेत्सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत्॥ 7 -4॥ [10]

मातलिः- सदृशं तवैतत्। (स्तोकमन्तरं गत्वा) आयुष्यन्। इतः पश्य नाकपृष्ठप्रस्थितस्य सौभाग्यमात्मयशसः। [11]

विच्छित्तिशेषैः सुरसुन्दरीणां वर्णैरमी कल्पलतान्तरेषु[8]।
संचिन्त्य गीतिक्षममर्थतत्त्वं दिवौकसस्त्वच्चरितं लिखन्ति॥ 7 -5॥ [12]

---

1. काश्मीर-पाठेऽङ्कारम्भे प्रवेशकः प्राप्यते, यत्र नाकलासिका-दृश्यं वर्तते। किन्तु मैथिल-बंगीय-पाठयोस्तु तादृशः प्रवेशको नास्ति।
2. मैथिल-पाठे सम्बोधनमिदं नास्ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
3. मैथिल-पाठे "प्रथमोपकृतं मरुत्वतः प्रतिपत्त्या लघु मन्यते भवान्" निति। बंगीय-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "०चन्दनाक्तमि" ति।
5. काश्मीर-पाठे "नायुष्मान् परमेश्वराद् अर्हती" ति। मैथिल-पाठ "आयुष्मान् नामरेश्वरादर्हती" ति।
6. मैथिल-पाठ "आयतपर्वभिरि" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
7. मैथिल-पाठे "वाभविष्यदि" ति नोचितम्। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति, स च सन्दर्भानुसारी।
8. मैथिल-पाठे "कल्पलतांशुकेष्वि" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- मातले, असुरसंप्रहारोत्सुकेन पूर्वेद्युरधिरोहता न लक्षितोऽयं प्रदेशो मया[1]। तत्कतमस्मिन्पथि[2] वर्तामहे मरुताम्। [13]

मातलिः-

त्रिस्रोतसं वहति यो गगनप्रतिष्ठां ज्योतींषि वर्तयति चक्रविभक्तरश्मिः।
तस्य व्यपेतरजसः प्रवहस्य वायोर्मार्गो द्वितीयहरिविक्रमपूत एषः[3]॥ 7 -6॥ [14]

राजा- अतः खलु मे सबाह्यकरणोऽन्तरात्मा प्रसीदति। (रथाङ्गम[4] वलोक्य) शङ्के मेघपदवीम् अवतीर्णाः स्मः। [15]

मातलिः- आयुष्मन्[5], कथमवगम्यते। [16]

राजा-

अयम् अगविवरेभ्य[6] श्चातकैर्निष्पतद्भि-
र्हरिभिरचिरभासां तेजसा चानुलिप्तैः।
गतमुपरि घनानां वारिगर्भोदराणां
पिशुनयति रथस्ते शीकरक्लिन्ननेमिः॥ 7 -7॥ [17]

मातलिः- अथ किम्। अन्यच्च[7]। क्षणादूर्ध्वमायुष्मानात्माधिकारभूमौ वर्तिष्यते। [18]

राजा- (अधोऽवलोक्य) मातले, वेगावतरणादाश्चर्यदर्शनः संपद्यते मनुष्यलोक[8]ः।

तथाहि-[19]

शैलानामवरोहतीव शिखरादुन्मज्जतां मेदिनी
पर्णाभ्यन्तर[9]लीनतां विजहति स्कन्धोदयात्पादपाः।
सन्धानं तनुभागनष्टसलिलव्यक्त्या व्रजन्त्यापगाः
केनाप्युत्क्षिपतेव पश्य भुवनं मत्पार्श्वमानीयते॥ 7 -8॥ [20]

मातलिः- आयुष्मन्, साधु दृष्टम्। (सबहुमानमवलोक्य) अहो, उदग्ररमणीया पृथ्वी। [21]

राजा- मातले, कतमोऽयं पूर्वापरसमुद्रावगाढः[10] कनकरसनिष्यन्दी[11] सांध्य इव मेघः सानुमान् अवलोक्यते। [22]

मातलिः- आयुष्मन्, एष खलु हेमकूटो नाम किंपुरुषपर्वतः, परं तपस्विनां सिद्धिक्षेत्रम्। [23]

पश्य-

स्वायंभुवान्मरीचेर्यः प्रबभूव प्रजापतिः।
सुरासुरगुरुः सोऽस्मिन् सपत्नीकस्तपस्यति॥ 7 -9॥ [24]

---

1. काश्मीर-पाठे "न लक्षितो मया स्वर्गमार्ग"इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
2. मैथिल-पाठे "-ऽथ कस्मिन् पथी"ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
3. मैथिल-पाठे "तस्य द्वितीयहरिविक्रमपूतमेनं वायोरधः परिवहस्य रहस्यमार्गमि" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
4. मैथिल-पाठे "रथमार्गमि"ति। काश्मीर-पाठे "रथाङ्गे विलोक्ये"ति।
5. काश्मीर-मैथिल-पाठयोरितः पूर्वं "सस्मितमि"ति रंगसूचना।
6. काश्मीर-पाठे "-ऽरिविवरेभ्य०" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
7. काश्मीर-मैथिल-पाठयोरेतेषां निपातानां प्रयोगो नास्ति।
8. मैथिल-पाठे "समर्थ्यते जीवलोक" इति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
9. काश्मीर-पाठे "पर्णेष्वन्तर" इति। मैथिल-पाठे "पर्णस्त्रस्तर०" इति।
10. मैथिल-पाठे "कतरोऽयं पूर्वापरसमुद्रावगाह"इति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
11. काश्मीर-पाठे"कनकनिष्यन्दशोभी"ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- (सादरम्) तेन ह्यनतिक्रमणीयानि श्रेयांसि। प्रदक्षिणीकृत्य भगवन्तं गन्तुमिच्छामि। [25]

मातलिः- आयुष्मन्[1], प्रथमः कल्पः। (रथावतरणं[2] नाटयित्वा) एतावववतीर्णौ स्वः। [26]

राजा- (सविस्मयम्) मातले, [27]

उपोढशब्दा न रथाङ्गनेमयः प्रवर्तमानं न च दृश्यते रजः।
अभूतलस्पर्शतया निरुद्धति[3]स्तवावतीर्णोऽपि न लक्ष्यते रथः॥ 7 -10॥ [28]

मातलिः- एतावानेवायुष्मतः शतक्रतोश्च[4] रथस्य विशेषः। [29]

राजा- कतमस्मिन्प्रदेशे[5] मारीचाश्रमः। [30]

मातलिः- (हस्तेन दर्शयन्) पश्य,

वल्मीकार्धनिमग्नमूर्तिरुरगत्वग्-ब्रह्मसूत्रान्तरः
कण्ठे जीर्णलताप्रतानवलयेनात्यन्तसंपीडितः[6]।
अंसव्यापि शकुन्तनीडनिचितं बिभ्रज्जटामण्डलं
यत्र स्थाणुरिवाचलो मुनिरसावभ्यर्कबिम्बं स्थितः॥ 7 -11॥ [31]

राजा- (विलोक्य) नमोऽस्मै कष्टतपसे। [32]

मातलिः- (संयतप्रग्रहं रथं कृत्वा) एतावदिति-परिवर्धित[7] मन्दारवृक्षकं प्रजापतेराश्रमपदं प्रविष्टौ स्वः। [33]

राजा- अहो, स्वर्गादिदमधिकतरं निर्वृतिस्थानम्। अमृतह्रदमिवावगाढोऽस्मि। [34]

मातलिः- (रथं स्थापयित्वा) अवतरत्वायुष्यमान्। [35]

राजा- (साभिनयमवतीर्य) भवान् कथमिदानीम्। [36]

मातलिः- समययन्त्रित एवायमास्ते रथः। तद्वयमप्यवतरामः। (तथा कृत्वा) आयुष्मन्, इतो दृश्यन्तामत्रभवतां सिद्धमुनीनां[8] तपोवनभूमयः। [37]

राजा- ननु विस्मयादुभयमप्यवलोकयामि। [38]

प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता सत्कल्पवृक्षे वने
तोये काञ्चनपद्मरेणुकपिशे पुण्याभिषेकक्रिया।
ध्यानं रत्नशिलागृहेषु[9] विबुधस्त्रीसन्निधौ संयमो
यद्वाञ्छन्ति[10] तपोभिरन्यमुनयस्तस्मिंस्तपस्यन्त्यमी॥7 -12॥ [39]

---

1. काश्मीर-मैथिल-पाठयोर्नास्तीदं पदम्।
2. काश्मीर-पाठे "ऽवतरणमि" ति। मैथिल-पाठे "रथावतारमि" ति।
3. मैथिल-पाठे "निरुध्यत" इति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
4. मैथिल-पाठ "आयुष्मन्, एतावानेव शतक्रतोस्तावकस्य चे" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
5. मैथिल-पाठे "मातले, कतरस्मिन् प्रदेश" इति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठे "०नात्यर्थसंपीडित" इति।
7. मैथिल-पाठ "एतत्परिवर्धि०" इति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
8. काश्मीर-पाठे "सिद्धर्षीणामि" ति।
9. मैथिल-पाठे "रत्नशिलागुहास्वि" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
10. काश्मीर-पाठे "यत्काङ्क्षन्ती" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

मातलिः- उत्सर्पिणी खलु महतां प्रार्थना। (परिक्रम्याकाशे) वृद्धशाकल्य, किंव्यापारो भगवान् मारीचः। (आकर्ण्य) किं ब्रवीषि। एष दाक्षायण्या पतिव्रतापुण्यमधिकृत्य[1] पृष्टस्तदस्यै कथयतीति। प्रतिपाल्यावसरः खलु प्रस्तावः। [40] (राजानमवलोक्य) [41]अस्यामशोकच्छायायाम् आस्ताम् आयुष्मान् यावत्त्वामहमिन्द्रगुरवे निवेदयामि। [42]

राजा- यथा भवान्मन्यते। (इति निष्क्रान्तो मातलिः[2]।) [43]

राजा- (निमित्तं सूचयित्वा) [44]

मनोरथाय नाशंसे किं बाहो स्पन्दसे मुधा।
पूर्वावधीरितं श्रेयो दुःखं हि परिवर्तते[3]॥ 7 -13॥ [45]

(नेपथ्ये)

मा खु मा खु चवलत्तणं करेहि।
जहिं तहिं जेव अत्तणो पइदिं दंसेसि।

(मा खलु मा खलु चपलत्वं कुरु। यत्र तत्रैव आत्मनः प्रकृतिं दर्शयसि[4]।) [46]

राजा- (कर्णं दत्त्वा) अभूमिरियमविनयस्य। तत्को नु खल्वेवं निषिध्यते। [47]

(शब्दानुसारेणावलोक्य सविस्मयम्) अये, अयम् अनुरुध्यमानस्तापसीभ्याम् अबालसत्त्वो बालः। [48]

अर्धपीतस्तनं मातुरामर्दक्लिष्टकेसरम्।
विलम्बिनं सिंहशिशुं करेणाहत्य[5] कर्षति॥ 7 -14॥ [49]

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो बालस्तापस्यौ च[6]) [50]

बालः- यिम्भ ले सिंहशावआ यिम्भ[7]। दन्ताइं दे गणइश्शं[8]। (जृम्भस्व रे सिंहशावक, जृम्भस्व। दन्तान् ते गणयिष्यामि।) [51]

प्रथमा- अविणीद, किं ति णो अपच्चणिव्विसेसाइं सत्ताइं विप्पकरेसि। संपहरदि विअ दे संरम्भो।

ठाणे क्खु मुणिअणेण सव्वदमणो त्ति किदणामधेओ सि। (अविनीत, किं इति नः अपत्यनिर्विशेषाणि[9] सत्त्वानि विप्रकरोषि। सम्प्रहरति इव ते संरम्भः[10]। स्थाने खलु मुनिजनेन सर्वदमन इति कृतनामधेयः असि।) [52]

राजा- किं नु खलु बालेऽस्मिन्नौरस इव पुत्रे स्निह्यति मे हृदयम्। (विचिन्त्य)आम्। नूनमनपत्यता मां वत्सलयति। [53]

द्वितीया- एसा तुमं केसरिणी लङ्घेदि जइ से पुत्तअं ण मुञ्चेसि। (एषा त्वां केसरिणी लङ्घयति यद्यस्याः पुत्रकं न मुञ्चसि।) [54]

---

1. मैथिल-पाठे "पतिव्रतया व्रतमधिकृत्ये" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
2. मैथिल-पाठे "मातलिर्निष्क्रान्त" इति। काश्मीर-पाठे "स्थितः, निष्क्रान्तो मातलिः" इति द्वे रंगसूचने।
3. मैथिल-पाठे "दुःखेन परिवर्तते।" इति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठे "कथं कथमेवात्मनः प्रकृतिं दर्शयसि"। मैथिल-पाठे "कथं गत एव आत्मनः प्रकृतिमि" ति।
5. मैथिल-पाठे "बलात्कारेणे" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति। किन्तु का.-पाठे विलम्बितमिति।
6. काश्मीर-पाठे "यथानिर्दिष्टकर्मा तापसीभ्यामनुरुध्यमानो बाल" इति। मैथिल-पाठे "यथानिर्दिष्टकर्मा बालस्तापस्यौ चे" ति।
7. काश्मीर-पाठे "जिम्भ जिम्भ ले सिङ्घ" इति। मैथिल-पाठे "जिम्भ ले सिंहसाव, जिम्भे" ति।
8. काश्मीर-मैथिल-पाठयोर् "गणइस्समि" ति।
9. मैथिल-पाठे "सोदरसिणेहणिव्विसेसे (सोदरस्नेहनिर्विशेषे)" इति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
10. काश्मीर-पाठे "प्रवर्तते ते संरम्भ" इति। मैथिल-पाठे "ऽपरुद्धो ते समारम्भ" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

बालः- (सस्मितम्) अम्मो, बलिअं खु भीदे स्मि। (अम्मो, बलीयः खलु भीतोऽस्मि।) (इत्यधरं दशति) [55]

राजा- (सविस्मयम्)

महत[1]स्तेजसो बीजं बालोऽयं प्रतिभाति मे।
स्फुलिङ्गावस्थया वह्निरेधःक्षय[2] इव स्थितः॥ 7 -15॥ [56]

प्रथमा- वच्छ, मुञ्च इमं बालमइन्दअं। अण्णं दे कीळणअं दाइस्सं। (वत्स, मुञ्चेमं बालमृगेन्द्रम्, अन्यं ते क्रीडनकं दास्यामि।) [57]

बालः- कहिं शे। देहि मे। (कुत्र एषः, देहि मे।) (इति हस्त[3] प्रसारयति) [58]

राजा- (हस्तं विलोक्य) कथं चक्रवर्तिलक्षणमनेन[4] धार्यते। तथा हि-[59]

प्रलोभ्यवस्तुप्रणयप्रसारितो
विभाति जालग्रथिताङ्गुलिः करः।
अलक्ष्यपत्रान्तरमिद्धरागया
नवोषसा भिन्नमिवैकपङ्कजम्॥ 7 -16॥ [60]

द्वितीया[5]- सुव्वदे, ण एसो सक्को वाआमेत्तकेण समइदुं। ता गच्छ, मम केरए[6] उडए मङ्कणअस्स इसिकुमारअस्स केरओ वण्णअचित्तिदो मट्टिआमोरो चिट्ठदि। तं से उवहर। (सुव्रते, नैषः शक्यः वाङ्मात्रकेण शमयितुम्। तद्गच्छ। मदीये उटजे मङ्कणकस्य[7] ऋषिकुमारकस्य वर्णकचित्रितः मृत्तिकामयूरः तिष्ठति। तमस्मै उपहर।) [61]

प्रथमा[8]- तधा। (तथा) (इति निष्क्रान्ता) [62]

बालः- ताव इमिणा येव कीळिश्शं। (तावत् अनेनैव क्रीडिष्यामि।) [63]

तापसी- (विलोक्य हसन्ती) मुच्च णं। (मुञ्चैनम्।) [64]

राजा- स्पृहयामि खलु दुर्ललितायास्मै[9]। (निःश्वस्य) [65]

आलक्ष्यदन्तमुकुलाननिमित्तहासै-
रव्यक्तवर्णरमणीयवचःप्रवृत्तीन्।
अङ्काश्रयप्रणयिनस्तनयान्वहन्तो
धन्यास्तदङ्गरजसा परुषीभवन्ति॥ 7 -17॥ [66]

तापसी- (साङ्गुलितर्जनम्) भो, ण मं गणेसि। (पार्श्वमवलोकयन्ती) को एत्थ इसिकुमारआणं मज्झे। (राजानं दृष्ट्वा) भद्दमुह, एहि। मोआवेहि दाव इमिणा दुम्मोअहत्थगहेण डिम्भएण बाधीअमाणं बालमइन्दं। (भोः न मां गणयसि।

---

1. काश्मीर-पाठ "आहितमि" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठे "०रेधोपेक्ष" इति।
3. काश्मीर-पाठे "दक्षिणहस्तमि" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
4. मैथिल-पाठे "-ऽनेन शिशुने" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
5. बं.-पाठेऽत्र "प्रथमे" ति भवितुमर्हति।
6. डॉ. रिचार्ड पिशेल-मतेन केरए=केरके=आत्मीये, मदीये।
7. मैथिल-पाठे "शालंकायनस्ये" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
8. बं.-पाठेऽत्र द्वितीयेति भवितुमर्हति।
9. मैथिल-पाठे "बालदुर्ललितेभ्य" इति बहुवचनम्। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

कोऽत्र ऋषिकुमारकाणां मध्ये। भद्रमुख, एहि मोचय तावदनेन दुर्मोचहस्तग्रहेण डिम्भकेन[1] बाध्यमानं बालमृगेन्द्रम्।) [67]

राजा- तथा। (इत्युपगम्य सस्मितम्) अयि भो महर्षिपुत्रक। [68]

एवमाश्रमविरुद्धवृत्तिना
संयमी किमिति जन्मदस्त्वया[2]।
सत्त्वसंश्रयसुखोऽपि दूष्यते
कृष्णसर्पशिशुनेव चन्दनः॥ 7 -18॥ [69]

तापसी- भद्दमुह, ण क्खु एसो इसिकुमारओ। (भद्रमुख, न खल्वेषः ऋषिकुमारकः।) [70]

राजा- आकारसदृशं चेष्टितमेवास्य कथयति। स्थानप्रत्ययात्तु वयम् अतर्किणः[3]। [71]

(यथाभ्यर्थितम्[4] अनुतिष्ठन्बालकस्य स्पर्शमनुभूयात्मगतम्) [72]

अनेन कस्यापि कुलाङ्कुरेण स्पृष्टेषु गात्रेषु सुखं ममैवम्।
कां निर्वृत्तिं चेतसि तस्य कुर्याद् यस्यायमङ्गात्कृतिनः प्रसूतः॥ 7 -19॥ [73]

तापसी- (उभौ विलोक्य) अच्छरीयं अच्छरीयं। (आश्चर्यम् आश्चर्यम्।) [74]

राजा- आर्ये, किमिव। [75]

तापसी- इमस्स बालअस्स असंबद्धे वि भद्दमुहे संवादिणी आकिदि त्ति विम्हिद म्हि। अवि अ वामसीलो वि भविअ अवरिचिदस्स ण दे पडिलोमो संवुत्तो। (अस्य बालकस्य असंबद्धे अपि भद्रमुखे संवादिनी आकृतिः इति विस्मितास्मि। अपि च वामशीलः अपि भूत्वा अपरिचितस्य न ते प्रतिलोमः संवृत्तः[5]।) [76]

राजा- (बालकमुल्लापयन्[6]) आर्ये, न चेन्मुनिकुमारकोऽयं तत्कोऽस्य व्यपदेशः। [77]

तापसी- पोरवो त्ति। (पौरवः इति[7]) [78]

राजा- (स्वगतम्) कथमेकान्वयोऽयमस्माकम्। अतः खलु सम्भाव्यते[8]। [79]

(प्रकाशम्) अस्त्येतत्कुलव्रतं[9] पौरवाणाम्। [80]

भवनेषु सुधासितेषु पूर्वं क्षितिरक्षार्थमुशन्ति ये निवासम्।
विहितैक-यति-व्रतानि[10] पश्चात्तरुमूलानि गृहीभवन्ति तेषाम्॥ 7 -20॥ [81]

कथं पुनरात्मगत्या[11] मानुषाणामेष विषयः। [82]

---

1. काश्मीर-पाठे "डिम्बकरिणे" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
2. मैथिल-पाठे "संयतेन किमिवात्र जन्तुने" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
3. मैथिल-पाठे "वयमेवं तर्किण" इति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठे "सिंहं मोचयित्वे" त्यधिकम्। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
5. मैथिल-पाठे "ते वचनेन प्रकृतिस्थितोऽयं संवृत्त०" इति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठ "उपलालयन्नि" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
7. काश्मीर-पाठे "पुरुवंश" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
8. काश्मीर-पाठे "०मदनुकारिणमत्रभवती मन्यत" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
9. काश्मीर-पाठे "ऽन्त्यं कुलव्रतमि" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
10. मैथिल-पाठे "०मुनिव्रतानी" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
11. काश्मीर-पाठे "न पुनरात्मगत्या०" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

तापसी- जधा भद्दमुहो भणादि। अच्छरासम्बन्धेण उण इमस्स बालअस्स जणणी देवगुरुणो तवोवणे पसूदा। (यथा भद्रमुखः भणति। अप्सरःसंबन्धेन पुनः अस्य बालकस्य जननी देवगुरोः तपोवने प्रसूता।) [83]

राजा- (आत्मगतम्) हन्त, द्वितीयमिदम् आश्वास[1]जननम्। (प्रकाशम्) अथ सा तत्रभवती किमाख्यस्य राजर्षेः पत्नी। [84]

तापसी- को तस्स धम्मदारपरिच्चाइणो णामं कित्तइस्सदि। (को तस्य धर्मदारपरित्यागिनः नाम कीर्तयिष्यति[2]।) [85]

राजा- (स्वगतम्) कथमियं कथा मामेव लक्षीकरोति। यदि तावदस्य शिशोर्नामतो मातरं पृच्छेयम्।

(विचिन्त्य) अथवा अनार्यः[3] परदारव्यवहारः। [86]

(प्रविश्य मृन्मय-मयूरहस्ता तापसी) [87]

सव्वदमण, पेक्ख सउन्तलावण्णं। (सर्वदमन, प्रेक्षस्व शकुन्तलावण्यम्[4]।) [88]

बालः- (सदृष्टिविक्षेपम्) कहिं शा मे अय्युआ। (कुत्र सा मे अज्जुका) (उभे प्रहसिते) [89]

प्रथमा- णामसारिस्सेण उवच्छन्दिदो मादिवच्छलो। (नामसादृश्येन उपच्छन्दितः[5] मातृवत्सलः।) [90]

द्वितीया- इमस्स मोरस्स रमणीअत्तणं पेक्ख त्ति भणिदो सि। (अस्य मयूरस्य रमणीयत्वं प्रेक्षस्व इति भणितोऽसि।) [91]

राजा- (स्वगतम्) कथं शकुन्तलेत्यस्य मातुराख्या। अथवा सन्ति पुनर्नामसादृश्यानि। अपि नाम मृगतृष्णिकेव नायमन्ते प्रस्तावो विषादाय कल्पेत। [92]

बालः- अन्तिके, [6]लोअदि मे चडुलके[7] एशे मऊलके। (अन्तिके, रोचते मे चटुल एषो मयूरकः।) [93]

(इति क्रीडनकमादत्ते) [94]

प्रथमा- (विलोक्य सावेगम्) अम्मो, रक्खागण्डओ[8] से मणिबन्धे ण दीसदि। (अम्मो, रक्षागण्डकः अस्य मणिबन्धे न दृश्यते।) [95]

राजा- आर्ये, अलमावेगेन। नन्वयमस्य सिंहशावकविमर्दात्परिभ्रष्टः। (इत्यादातुमिच्छति) [96]

उभे- मा खु मा खु। (विलोक्य) कधं गहिदं जेव। (मा खलु मा खलु। कथं गृहीतमेव।) [97]

(उभे विस्मयादुरसि निहितहस्ते परस्परमालोकयतः) [98]

राजा- किमर्थं भवतीभ्यां प्रतिषिद्धोऽस्मि। [99]

प्रथमा- सुणादु महाभाओ। महप्पहावा एसा अवराइदा णाम सुरमहोसही इमस्स दारअस्स जादकम्मसमए भअवदा मारीचेण दिण्णा। एदं किल मादापिदरे अत्ताणअं च वज्जिअ अवरो भूमिपडिदं ण गेण्हदि। (शृणोतु महाभागः। महाप्रभावैषाऽपराजिता नाम सुरमहौषधिः[9] अस्य दारकस्य जातकर्मसमये भगवता मारीचेन दत्ता। एतां किल मातापितरौ आत्मानञ्च वर्जयित्वा अपरः भूमिपतितां न गृह्णाति।) [100]

---

1. काश्मीर-पाठ "आशङ्का०" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठे "ग्रहीष्यती" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
3. काश्मीर-मैथिल-पाठयोर् "अन्याय्य" इति।
4. काश्मीर-पाठे "सर्वदमन, शकुन्तला..." इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
5. काश्मीर-पाठे "छलित" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठे "ऽत्ताके" इति। मैथिल-पाठे "ऽत्तिके" इति।
7. काश्मीर-पाठे "भद्दालके" इति। मैथिल-पाठे "चडुले" इति।
8. काश्मीर-पाठे "रक्खाकरण्डकमि" ति। मैथिल-पाठे "रक्खागेण्ठकमि" ति।
9. काश्मीर-पाठे "महौषधिरि" ति। मैथिल-पाठे "परममहौषधिरि" ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- अथ गृह्णाति। [101]

प्रथमा- तदा सप्पो भविअ तं दंसदि। (तदा सर्पः भूत्वा तं दंसति।) [102]

राजा- अथात्रभवतीभ्यां कदाचिद् अन्यत्र प्रत्यक्षीकृतमिदम्[1]। [103]

उभे- अणेअसो। (अनेकशः) [104]

राजा- (सहर्षम्) तत्किं खल्विदानीं पूर्णमात्मनो मनोरथं नाभिनन्दामि। [105]

(इति बालकं परिष्वजते) [106]

द्वितीया- सुव्वदे[2], एहि। इमं वुत्तन्तं णिअमवाउलाए सउन्तलाए गदुअ णिवेदेम्ह। (सुव्रते, एहि इमं वृत्तान्तं नियमव्याकुलायै[3] शकुन्तलायै गत्वा निवेदयाव।) (इति निष्क्रान्ते) [107]

बालः- मुञ्च मं। अय्युआशआशं गमिश्शं। (मुञ्च माम्। अज्जुकासकाशं गमिष्यामि।) [109]

राजा- पुत्रक, मयैव सह मातरमभिनन्दयिष्यसि। [110]

बालः- दुश्शन्ते मम तादे, ण क्खु तुमं। (दुःषन्तः मम तातः, न खलु त्वम्।) [111]

राजा- (सस्मितम्) एष विवाद एव मां प्रत्याययति। [112]

(ततः प्रविशत्येकवेणीधरा शकुन्तला) [113]

शकुन्तला- (सवितर्कम्) विआरकाले वि पइदित्थं सव्वदमणस्स ओसहिं सुणिअ ण मे आसङ्घो अत्तणो भाअधेएसुं। अधवा जधा मिस्सकेसीए[4] मे आचक्खिदं तधा सम्भावीअदि एदं। (विकारकाले अपि प्रकृतिस्थां सर्वदमनस्योषधिं श्रुत्वा न मे आसङ्घः[5] आत्मनः भागधेयेषु। अथवा यथा मिश्रकेश्या मे आख्यातं तथा सम्भाव्यते एतत्।) [114]

(इति परिक्रामति) [115]

राजा- (शकुन्तलां दृष्ट्वा सहर्षखेदम्[6]) अये, इयमत्रभवती शकुन्तला -[116]

वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः[7]।
अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीला मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्ति॥ 7 -21॥ [117]

शकुन्तला- (पश्चात्तापविवर्णं राजानमवलोक्य सवितर्कम्) ण क्खु अज्जउत्तो अअं। ता को णु क्खु एसो किदरक्खामङ्गलं मे दारअं गत्तसङ्गेण दूसेदि। (न खल्वार्यपुत्रोऽयम् । तत् कोऽनु खल्वेषः कृतरक्षामङ्गलं मे दारकं गात्रसङ्गेन दूषयति[8]।) [118]

बालः- (मातरमुपगम्य) अय्युए, एशे के वि पलकेलए मं पुत्तके त्ति आलवेदि। (अज्जुके, एषः कोऽपि परकीयः मां पुत्रकः इति आलपति।) [119]

राजा- प्रिये, क्रौर्यमपि[9] मे त्वयि प्रयुक्तमनुकूलपरिणामं संवृत्तम्। तदहमिदानीं त्वया प्रत्यभिज्ञातम् आत्मानमिच्छामि।

---

1. काश्मीर-पाठे "प्रत्यक्षीकृता विक्रिये" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
2. बं.-पाठेऽत्र "संजदे (संयते)" इति संबोधनं भवितुमर्हति।
3. काश्मीर-पाठे "नियमनिर्वृतायै शकुन्तलायै", मैथिल-पाठे "नियमव्यावृतायै" चेति।
4. काश्मीर-पाठे-"ऽक्खमालाए" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
5. काश्मीर-पाठ "आश्वास" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "शकुन्तलां दृष्ट्वे" त्येव। बंगीय-रंगकर्मिणां वैशिष्ट्यम्।
7. काश्मीर-पाठे "कृतैकवेणिरि" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
8. काश्मीर-मैथिल-पाठयोर् "हस्तसंसर्गेणे" ति।
9. मैथिल-पाठे "ऽनार्यमपी" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

[120]

शकुन्तला- (स्वगतम्[1]) हिअअ, समस्सस समस्सस। पहरिअ णिव्वुत्तमच्छरेण अणुकम्पिद म्हि देव्वेण। अज्जउत्तो ज्जेव एसो। (हृदय, समाश्वसिहि समाश्वसिहि। प्रहार्य निर्वृत्तमात्सर्येणानुकम्पिताऽस्मि दैवेन। आर्यपुत्रः एवैषः।) [121]

राजा-

स्मृतिभिन्नमोहतमसो दिष्ट्या प्रमुखे स्थितासि मे सुमुखि।
उपरागान्ते शशिनः समुपगता रोहिणी योगम्[2]॥ 7 -22॥ [122]

शकुन्तला- जअदु जअदु[3]। (जयतु जयतु।) (इत्यर्धोक्ते बाष्पकण्ठी विरमति[4]) [123]

राजा- प्रिये।

बाष्पेन प्रतिषिद्धेऽपि जयशब्दे जितं मया।
यत्ते दृष्टमसंस्कारपाटलौष्टमिदं मुखम्[5]॥ 7 -23॥ [124]

बालः- अय्युए, के एशे[6]। (अज्जुके, कः एषः।) [125]

शकुन्तला- वच्छ, भाअधेआइं पुच्छ। (वत्स, भागधेयानि पृच्छ[7]।) (इति रोदिति) [126]

राजा[8] -

सुतनु हृदयात्प्रत्यादेशव्यलीकमपैतु ते
किमपि मनसः संमोहो मे तदा बलवानभूत्।
प्रबलतमसामेवंप्रायाः शुभेष्वपि वृत्तयः[9]
स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया[10]॥ 7 -24॥ [127]

(इति पादयोः पतति[11]) [128]

शकुन्तला- उत्थेदु उत्थेदु अज्जउत्तो। णूणं मम सुहप्पडिबन्धअं पुराकिदं तेसुं दिअसेसुं परिणामसुहं आसि जेण साणुक्कोसो वि अज्जउत्तो तधा संवुत्तो। (उत्तिष्ठतु उत्तिष्ठतु आर्यपुत्रः। नूनं मम सुखप्रतिबन्धकं पुराकृतं तेषु दिवसेषु परिणामसुखम् (?)[12] आसीत्, येन सानुक्रोशोऽप्यार्यपुत्रः तथा संवृत्तः।) [129]

---

1. स्वगतोक्तिरूपमिदं वाक्यं प्रक्षिप्तं स्यात्। नाट्यशास्त्रे (25-88) त्वात्मगतमित्येव शब्दप्रयोगः।
2. काश्मीर-पाठे "समुपनतो रोहिणीयोग" इति। मैथिल-पाठे "समुपगतो रोहिणीयोग" इति।
3. काश्मीर-पाठे "जअदु जअदु अय्यउत्तो" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठे "बाष्पकण्ठी बाष्पं विहरती" ति। मैथिल-पाठे "बाष्पं विसृजती" ति। त्रिष्वपि पाठेष्वाङ्गिक-सात्त्विकाभिनयस्य भेदः परिलक्ष्यते।
5. मैथिल-पाठे "यत्ते दृष्टमसंस्काराल्लोलालकमिदं मुखमि" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-मैथिल-पाठयो-"रज्जुए, को एसो" इति।
7. काश्मीर-मैथिल-पाठयोर् "भागधेयानि मे पृच्छे" ति।
8. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "प्रणिपत्ये" ति रंगसूचनापुरस्सरं श्लोकगानं वर्तते।
9. मैथिल-पाठे "चपलमनसामेवंप्रायाः शुभेषु हि वृत्तय" इति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
10. काश्मीर-पाठे तृतीय-चरणत्वेनागच्छति पङ्क्तिरियम्। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
11. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः राजा प्रणिपातपूर्वकं श्लोकोच्चारणं करोति। बंगीय-पाठे राजा पश्चात्प्रणमति।
12. काश्मीर-पाठे "परिणामाभिमुखमि" ति। मैथिल-पाठे "परिणामविमुखमि" ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(राजा उत्तिष्ठति) [130]

शकुन्तला- अध कधं अज्जउत्तेण सुमरिदो अअं दुक्खभाई जणो। (अथ कथमार्यपुत्रेण स्मृतः अयं दुःखभागी[1] जनः।) [131]

राजा- उद्धृतविषादशल्यः कथयामि[2]। [132]

मोहान्मया सुतनु पूर्वमुपेक्षितस्ते यो बाष्पबिन्दुरधरं परिबाधमानः[3]।
तं तावद् आकुटिल[4] पक्ष्मविलग्नमद्य कान्ते प्रमृज्य[5] विगतानुशयो भवामि॥ 7 -25॥ [133]

(इति यथोक्तमनुतिष्ठति[6]) [134]

शकुन्तला- (प्रमृष्टबाष्पा-ऽङ्गुलीयकं विलोक्य[7]) अज्जउत्त। तं इदं अङ्गुलीअअं। (आर्यपुत्र, तदिदम् अङ्गुरीयकम्।) [135]

राजा- अथ किम्। अस्माद् अद्भुतोपलम्भा[8]न्मया स्मृतिरुपलब्धा। [136]

शकुन्तला- संपादिदं खु अणेण जं तधा अज्जउत्तस्स पच्चअकारणं दुल्लहं मे आसि। (सम्पादितं खल्वनेन[9] यत् तथा आर्यपुत्रस्य प्रत्ययकारणम्[10] दुर्लभं मे आसीत्।) [137]

राजा- तेन हि, ऋतुसमागमाशंसि प्रतिपद्यतां लता कुसुमम्। [138]

शकुन्तला- ण से विस्ससामि। अज्जउत्तो ज्जेव णं धारेदु। (न अस्य विश्वसिमि। आर्यपुत्रः एव एतत् धारयतु।) [139]

प्रविश्य **मातलिः-** दिष्ट्या, धर्मपत्नीसमागमेन पुत्रमुखसन्दर्शनेन चायुष्मान्वर्धते। [140]

राजा- सुहृत्संपादितत्वात्साधुतरफलो[11] मे मनोरथः। मातले, न खलु विदितोऽयम्[12] आखण्डलस्यार्थः। [141]

मातलिः- (सस्मितम्) किमीश्वराणां परोक्षम्[13]। एहि। भगवान्मारीचस्ते दर्शनमिच्छति[14]। [142]

राजा- प्रिये, अवलम्ब्यतां पुत्रः। त्वामेव पुरस्कृत्य भगवन्तं द्रष्टुमिच्छामि। [143]

शकुन्तला- लज्जामि क्खु अज्जउत्तेण सद्धं गुरुअणसमीवं गन्तुं। (लज्जे खलु आर्यपुत्रेण सार्धं गुरुजनसमीपं[15] गन्तुम्। [144]

राजा- आचरितमे[16]तदभ्युदयकालेषु। तदेहि तावत्। (इति परिक्रामन्ति) [145]

---

1. काश्मीर-पाठे पदमिदं नास्ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठ "उद्धृतशल्यविषादः करोमि, करिष्यामी" ति। मैथिल-पाठ "उद्धृतशल्यविषादः कथयामी" ति।
3. काश्मीर-पाठे "परिधावमान" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठ "आकुलित0" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
5. मैथिल-पाठे "बाष्पं प्रमृज्ये" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
6. मैथिल-पाठे "मुखमुन्नमयितुं हस्तं प्रसारयती" ति। बंगीय-पाठो काश्मीर-पाठमनुसरति।
7. काश्मीर-पाठे "प्रमृष्टबाष्पा, नाममुद्रां दृष्ट्वे" ति। मैथिल-पाठे "बाष्पं प्रमृज्य दृष्टिं दत्वाऽङ्गुरीयकं विलोक्ये" ति।
8. मैथिल-पाठे "ऽङ्गुरीयकोपालम्भनात्रि" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
9. काश्मीर-पाठे "सुमुखीकर्तुं क्षणेने" ति। मैथिल-पाठे "समीहितं खल्वनेने" ति।
10. काश्मीर-पाठे "प्रत्यक्षेण करेणे" ति। मैथिल-पाठे "प्रत्ययकरण" इति।
11. काश्मीर-पाठ "उत्तरफल" इति। मैथिल-पाठे "साधुफल" इति।
12. मैथिल-पाठे "न खल्वविदितोऽयमि" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
13. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं नास्ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
14. काश्मीर-पाठे "दर्शनं वितरती" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
15. काश्मीर-पाठे "ऽर्हामि", "गुरुजनसमीपे" ति शब्दो नास्ति। मैथिल-पाठे "लज्जे", एवं "गुरुसमीप" इति।
16. मैथिल-पाठे "-ऽवारितमि" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(ततः प्रविशत्यदित्या सहासनोपविष्टो[1] मारीचः) [146]

मारीचः- (राजानमवलोक्य) दाक्षायणि। [147]

पुत्रस्य ते रणशिरस्ययम् अग्रयायी
दुःषन्त इत्यभिहितो भुवनस्य भर्ता[2]।
चापेन यस्य विनिवर्तितकर्म जातं
तत्कोटिमत्कुलिशमाभरणं मघोनः॥ 7 -26॥ [148]

अदितिः- सम्भावणीअप्पहावा खु से आकिदी। (सम्भावनीयप्रभावा[3] खल्वस्य आकृतिः।) [149]

मातलिः- भूपते, एतौ पुत्रप्रीतिपिशुनेन[4] चक्षुषा दिवौकसां पितरावायुष्मन्तमेवावलोकयतः। तदुपसर्प। [150]

राजा- मातले,

प्राहुर्द्वादशधा स्थितस्य मुनयो यत्तेजसः कारणं
भर्तारं भुवनत्रयस्य सुषुवे यद्यज्ञभागेश्वरम्।
यस्मिन्नात्मभुवः परोऽपि पुरुषश्चक्रे भवायास्पदं
द्वन्द्वं दक्षमरीचिसंभवमिदं तत्स्रष्टुरेकान्तरम्[5]॥ 7 -27॥ [151]

मातलिः- अथ किम्। [152]

राजा- (प्रणिपत्य) उभाभ्यामपि वां[6] वासवनियोज्यो दुःषन्तः प्रणमति। [153]

मारीचः- वत्स, चिरं पृथिवीं पालय। [154]

अदितिः- जाद, अप्पदिरधो होहि। (जात, अप्रतिरथः[7] भव।) [155]

(शकुन्तला पुत्रसहिता पादयोः पतति[8]) [156]

मारीचः- वत्से[9],

आखण्डलसमो भर्ता जयन्तप्रतिमः सुतः।
आशीरन्या न ते योज्या[10] पौलोमीमङ्गला भव॥ 7 -28॥ [157]

अदितिः- जाद, भत्तुणो बहुमदा होहि। अअं च दीहाऊ उहअपक्खं अलंकरेदु। ता एध उवविसध।
(जात, भर्तुः बहुमता भव। अयं च दीर्घायुः[11] उभयपक्षं अलङ्करोतु। तत् एत उपविशत।) [158] (सर्वे उपविशन्ति[12]) [159]

---

1. काश्मीर-पाठे "०दित्या सार्धमर्धासनस्थो०" इति। मैथिल-पाठे "०दित्या सह०" इति।
2. काश्मीर-पाठे-"ऽग्रगामी, दुष्यन्त, भर्ता" चेति। मैथिल-पाठे-"ऽग्रयायी, दुष्मन्त, गोप्ता" चेति।
3. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "सम्भावनीये" त्येव।
4. मैथिल-पाठे "पुत्रसमेने" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
5. काश्मीर-पाठे "ब्रह्मानन्तरविश्वयोनिसहितं द्वन्द्वं तदेतद्वशी" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठ "उभावपि वामि" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
7. मैथिल-पाठे- "ऽप्रतिहतरथ" इति। बंगीय-पाठःकाश्मीर-पाठमनुसरति।
8. काश्मीर-पाठे "दारकेण सहिता पादवन्दनं करोमी" ति। मैथिल-पाठेऽप्येतादृशं वाक्यमुच्चार्यते।
9. काश्मीर-पाठ इतः परं "चिरमविधवा भवे" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
10. मैथिल-पाठे "योग्ये" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
11. काश्मीर-पाठे "देहजो वत्सक" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
12. काश्मीर-पाठे "सर्वे प्रजापतिना बिहितम् आसनमुपविशन्ती" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

मारीचः- (एकैकं निर्दिशन्।) [160]

दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी, सदपत्यमिदं, भवान्।
श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति त्रितयं तत्समागतम्।। 7 -29।। [161]

राजा- भगवन्, प्रागभिप्रेतसिद्धिः पश्चाद्दर्शनमित्यपूर्वः खलु वोऽनुग्रहः। पश्यतु भगवान्। [162]

उदेति पूर्वं कुसुमं, ततः फलं
घनोदयः प्राक्, तदनन्तरं पयः।
निमित्तनैमित्तिकयोरयं विधि-
स्तव प्रसादस्य पुरस्तु सम्पदः।। 7 -30।। [163]

मातलिः- आयुष्मन्, एवं विश्वगुरवः प्रसीदन्ति[1]। [164]

राजा- भगवन्, इमामाज्ञाकरीं वो गान्धर्वेण विधिनोपयम्य कस्य चित्कालस्य बन्धुभिरानीतां स्मृतिशैथिल्यात्[2] प्रत्यादिशन्नपराद्धोऽस्मि तत्रभवतो युष्मद्गोत्रस्य कण्वस्य।

पश्चादेनामङ्गुरीयकदर्शनादूढपूर्वामवगतोऽस्मि। तच्चित्रमिव मे प्रतिभाति। [165]

यथा गजे साधुसमक्षरूपे[3] कस्मिन्नपि क्रामति संशयः[4] स्यात्।
पदानि दृष्ट्वाथ भवेत्प्रतीति स्तथाविधो मे मनसो विकारः।। 7 -31।। [166]

मारीचः- वत्स, अलमात्मापराधशङ्कया। संमोहोऽपि त्वय्युपपन्न एव। श्रूयताम्। [167]

राजा- अवहितोऽस्मि। [168]

मारीचः- यदैवाप्सरस्तीर्थावतरणात्[5] प्रत्याख्यानविक्लवां[6] शकुन्तलामादाय दाक्षायणीमुपगता मेनका तदैव ध्यानादवगतवृत्तान्तोऽस्मि दुर्वाससः शापादियं तपस्विनी सहधर्मचारिणा प्रत्यादिष्टेति। स चाङ्गुरीयकदर्शनावसानः शापः। [169]

राजा- (सोच्छ्वासमात्मगतम्) एष वचनीयान्मुक्तोऽस्मि। [170]

शकुन्तला- (स्वगतम्[7]) दिट्ठिआ। अकामपच्चादेसी अज्जउत्तो। ण उण सच्चं मं सुमरेदि। अधवा ण सुदो भवे अअं सुण्णहिअआए मए सावो, जदो सहीहिं अच्चादरेण संदिट्ठं भत्तुणो अङ्गुलीअअं दंसेसि त्ति। (दिष्ट्या, अकामप्रत्यादेशी आर्यपुत्रः। न पुनः सत्यं[8] मां स्मरति। अथवा न श्रुतः भवेत् अयं शून्यहृदयया मया शापः, यतः सखीभिः अत्यादरेण संदिष्टं भर्तुः अङ्गुरीयकं दर्शयसि इति।) [171]

मारीचः- वत्से, विदितार्थासि। तदिदानीं सहधर्मचारिणं प्रति न त्वया मन्युः करणीयः। [172]

---

1. मैथिल-पाठ "एवंविधाचाराः प्रसीदन्ति महान्त" इति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
2. मैथिल-पाठे "स्मृतिदौर्बल्यादि" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
3. काश्मीर-पाठे "नेतरपक्षरूप" इति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "तस्मिन्नतिक्रामती" ति।
5. मैथिल-पाठे "०वाप्सरतीर्थादि" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "प्रत्यक्षवैक्लव्यामि" ति।
7. काश्मीर-पाठ "आत्मगतमि" ति। मैथिल-पाठे-"ऽपवार्य" इति।
8. काश्मीर-पाठे "शप्तमि" ति। मैथिल-पाठे "वृत्त" इति। मैथिल-बंगीय-पाठयोः कापि क्षतिः स्याद्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

पश्य –

शापादसि प्रतिहता स्मृतिलोपरूक्षे[1] भर्तर्यपेततमसि प्रभुता तवैव[2]।
छाया न मूर्च्छति मलोपहतप्रसादे शुद्धे तु दर्पणतले सुलभावकाशा[3]॥ 7 –32॥ [173]

राजा– यथाह भगवान्। [174]

मारीचः– वत्स, कच्चिदभिनन्दितस्त्वया विधिवदस्माभिरनुष्ठितजातकर्मादिक्रियः पुत्र एष शाकुन्तलेयः। [175]

राजा– भगवन्, अत्र खलु मे वंशप्रतिष्ठा। [176]

मारीचः– तथा शौर्यस्वभावेन [4]चक्रवर्तिनमेनमवगच्छतु भवान्। पश्य –[177]

रथेनानुद्धातस्तिमितगतिनोत्तीर्णजलधिः
पुरा सप्तद्वीपाम् अवति[5] वसुधामप्रतिरथः।
इहायं सत्त्वानां प्रसभदमनात्सर्वदमनः
पुनर्यास्यत्याख्यां भरत इति लोकस्य भरणात्॥ 7 –33॥ [178]

राजा– भगवत्कृतसंस्कारेऽस्मिन्सर्वमाशंसे[6]। [179]

अदितिः– इमाए दुहिदिआए मणोरधसम्पत्तीए कण्णो वि दाव विण्णादत्थो करीअदु। मेणआ उण इध मं परिअरन्ती संणिहिदा जेव चिट्ठदि। (अनया दुहितुः मनोरथसम्पत्त्या[7] कण्वः अपि तावत् विज्ञातार्थः[8] क्रियताम्। मेनका पुनः इह मां परिचरन्ती सन्निहिता एव तिष्ठति[9]।) [180]

शकुन्तला– (स्वगतम्) मम मणोरधो वाहरिदो भअवदीए। (मम मनोरथः व्याहृतः[10] भगवत्या।) [181]

मारीचः– तपः प्रभावात्सर्वमिदं प्रत्यक्षं तत्रभवतः कण्वस्य[11]। (विचिन्त्य) तथाप्यसौ दुहितुः सपुत्रायाः पत्या परिग्रहात्प्रियमस्माभिः श्रावयितव्यः। कः कोऽत्र भोः। [182]

प्रविश्य शिष्यः– भगवन्, अयमस्मि। [183]

मारीचः– गालव, मद्वचनादिदानीमेव विहायसा गत्वा तत्रभवते कण्वाय प्रियमावेदय यथा पुत्रवती शकुन्तला दुर्वाससः शापनिवृत्तौ स्मृतिमता दुःषन्तेन गृहीतेति। [184]

शिष्यः– यथाज्ञापयति भगवान्। (इति निष्क्रान्तः) [185]

---

1. काश्मीर-पाठे "शापादिति प्रतिहतस्मृतिलोपरुक्ष" इति। मैथिल-पाठे "शापादसि प्रतिहता स्मृतिलोपरौक्ष्यादि" ति।
2. का.-पाठे "भर्तर्यपेततमसि प्रभुता तथैवे" ति। मै.-पाठे "भर्तुर्यदैव चलितासि पुनः प्रभुत्वमि" ति।
3. काश्मीर-पाठे "सुभगावकाशे" ति। मैथिल-पाठे "विमलप्रकाशे" ति।
4. काश्मीर-मैथिल-पाठयो-"स्तद् भाविनं चक्रवर्तिनमेनमवगच्छत्वि" ति।
5. काश्मीर-पाठे "जयती" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठ "आशंसामह" इति। मैथिल-पाठ "आशङ्क" इति।
7. काश्मीर-पाठ "आनन्दमनोरथसम्पत्ये" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
8. काश्मीर-पाठे "श्रुतविस्तार" इति। मैथिल-पाठे "विज्ञातविस्तर" इति।
9. काश्मीर-पाठे "मेनकेहैव संनिहिते" ति। मैथिल-पाठे "मेनका पुनरिहैव दुहितृवत्सला परिचरन्ती संनिहिता तिष्ठत्येवे" ति। (काश्मीर-पाठस्यैव प्रपञ्चो विहितो रंगकर्मिभिः।)
10. काश्मीर-पाठे "मनोगतं मन्त्रितमि" ति। मैथिल-पाठे "मनोगतं कथितमि" ति।
11. काश्मीर-मैथिल-पाठयोरितः परं "हन्त, न ममाभि/तिक्रुद्धो गुरुरि" त्यधिकोक्ती राज्ञो मुखे वर्तते। सा च भवितुमर्हत्येव। यतो हि, आन्तरिक-सम्भावनायुक्ता सा प्रतीयते। बंगीय-पाठे संक्षेपीकरणस्य प्रमाणमिदं।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

मारीचः- (राजानं प्रति) वत्स, त्वमपि सापत्यदारः सख्युराखण्डलस्य रथमास्थाय स्वां राजधानीं प्रतिष्ठस्व। [186]

राजा- यथाज्ञापयति भगवान्। [187]

मारीचः- सम्प्रति हि -

तव भवतु बिडौजाः प्राज्यवृष्टिः प्रजासु
त्वमपि विततयज्ञो वज्रिणं प्रीणयालम्।
युगशतपरिवृत्तैरेवमन्योन्यकृत्यै -
र्नयतम्[1] उभयलोकानुग्रहश्लाघनीयौ[2]॥ 7 -34॥ [188]

राजा- भगवन्, यथाशक्ति श्रेयसि प्रयतिष्ये। [189]

मारीचः- वत्स, किं ते भूयः प्रियम् उपकरोमि[3]। [190]

राजा- भगवन्, अतः परमपि प्रियमस्ति। तथाप्येतदस्तु। [191]

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः सरस्वती श्रुतिमहतां महीयताम्[4]।
ममापि च क्षपयतु नीललोहितः पुनर्भवं परिगतभक्तिरात्मभूः[5]॥ 7 -35॥ [192]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे) [193]

॥ इति सप्तमोऽङ्कः[6]॥ [194]

---

1. मैथिल-पाठे "बिडौजाः, विहितयज्ञो, गुरुतर०, नियतमि" ति पाठभेदा वर्तन्ते।
2. काश्मीर-पाठे "तव भवतु बिडौजारि" ति श्लोको नास्ति। मैथिल-पाठे प्रथमवारं प्रक्षिप्तं स्यात्। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति। एवञ्चात्र काश्मीर-मैथिल-पाठयोः समुपलभ्यमानः "क्रतुभिरुचितभागांस्त्वं सुरान् भावयालमि/प्रीणयालमि" ति श्लोको बंगीय-पाठे नैव स्वीकृतः।
3. काश्मीर-पाठ "उपहरामी" ति। बंगीय-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
4. मैथिल-पाठे "महीयसामि" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
5. मैथिल-पाठे "०भक्तिरात्मने" ति। बंगीय-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति। इतः परं मैथिल-पाठे मारीचस्योक्तिर्वर्तते, सात्र बंगीय-पाठे नास्ति।
6. मैथिल-पाठे "शकुन्तला-संवर्धनं नाम सप्तमोऽङ्क" इति। बंगीय-पाठे सप्तमाङ्कस्य नाम न प्राप्यते। काश्मीर-पाठे तु प्रत्येकानामङ्कानां नामानि न प्रदीयन्ते॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

दाक्षिणात्य वाचनानुसारी

"अभिज्ञानशाकुन्तलम्" नाटक की रंगावृत्ति का पाठ।।

इस नाटक का पाठ दो कलेवरों में उपलब्ध हो रहा है। जिनको हम बृहत्पाठ एवं लघुपाठ के नाम से पहचानते हैं। बृहत्पाठवाली तीन रंगावृत्तियाँ काश्मीर, मिथिला एवं बंगाल जैसे प्रदेशों की लिपियों में लिखी गई पाण्डुलिपियों में उपलब्ध हो रही हैं। किन्तु लघुपाठवाली अन्य दो में से जो दाक्षिणात्य रंगावृत्ति है, वह ग्रन्थ, मलयाळम, तेलुगु, नन्दी-नागरी जैसी दक्षिण भारतीय लिपियों में लिखी गई पाण्डुलिपियों में सुरक्षित रही है। यह शोचनीय हकीकत है कि अद्यावधि किसी भी विद्वान् ने इस नाटक की "दाक्षिणात्य वाचना का समीक्षित पाठ" सम्पादित नहीं किया है। (ऐसा कार्य करने के लिए उक्त लिपियों का ज्ञान अपेक्षित है, तथा शताधिक पाण्डुलिपियों का विनियोग करना है[1]।।) अतः, 15वीं शती के काटयवेम भूप की कुमारगिरिराजीया टीका में समादृत हुआ जो पाठ है, उसे हमने दाक्षिणात्य रंगावृत्ति के पाठ के रूप में स्वीकार किया है।।

दाक्षिणात्य पाठ का प्रथम प्रकाशन ई. स. 1876 में तेलुगु लिपि में मद्रास से हुआ था, जिसमें काटयवेम की टीका भी रखी गई थी। (लेकिन आज हमें वह उपलब्ध नहीं है।) इस के बाद, 1982 में आन्ध्र प्रदेश संस्कृत अकादेमी, हैदराबाद से काटयवेम की टीका के साथ फिर से इस नाटक का दाक्षिणात्य पाठ प्रकाशित हुआ है। इस आवृत्ति का पाठ हमने स्वीकारा है, इसके लिए हम उनके ऋणी हैं। तथा इस नाटक की दाक्षिणात्य वाचना का पाठ सुनिश्चित करने के लिए, "चर्चा" नामक अज्ञात-कर्तृक टीका का भी कुत्रचित् अवलोकन किया है। (दक्षिण भारतीय पाण्डुलिपियों में शकुन्तळा, अंगुळीयक इत्यादि शब्दावली में जो ल-कार के स्थान में ळ-कार का ही प्रचलन दिखता है, उसका हमने सर्वत्र अनुपालन नहीं किया है।) एवञ्च, प्रासंगिकतया अन्यान्य टीकाएँ, जैसे कि-अभिराम, श्रीनिवास, घनश्याम, नीलकण्ठ, रामपिषारकरादि की टीकाएँ भी देखी हैं। यानी इस नाटक की दाक्षिणात्य वाचना का समीक्षित पाठसम्पादन जब उपलब्ध ही नहीं हैं, तब तक इन दक्षिण भारतीय टीकाकारों के द्वारा समर्थित पाठ को (ही) दाक्षिणात्य वाचना का पाठ मानने में कोई बड़ा दोष नहीं होगा।।

प्रासंगिक रूप से यहाँ, दाक्षिणात्य पाठ का निर्धारण करने के लिए एक विशेष प्रयास, जो 1904 में हुआ था, उसका निर्देश करना आवश्यक है:-T- Foulkes नाम के विद्वान् ने Kalidasa Complete collection of various readings in Madras Manuscripts (vol-1-4) ग्रन्थ में दक्षिण भारत की पाण्डुलिपियाँ, जो अंग्रेज सरकार ने मद्रास की गवर्नमेंट ओरिएन्टल मेन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी (युनिवर्सिटी ऑफ मद्रास, चेन्नै के केम्पस में थी, अब अण्णा सेन्टेनरी लाइब्रेरी अड्यार में है) में संगृहीत की थी, उन सब का विनियोग करके, कालिदास की सभी कृतियों के विविध पाठान्तरों का प्रकाशन किया था[2]। इसमें से जो अभिज्ञान-शाकुन्तल के विविध पाठान्तरों का तृतीय एवं चतुर्थ भाग में समावेश हुआ है, उनमें कुत्रचित् ऐसे पाठान्तर मिल रहे हैं कि जो बृहत्पाठवाली काश्मीरी, मैथिली या बंगाली वाचनाओं में भी प्रचलित थे! इसका मतलब यह है कि मलयाळम, तेलुगु एवं ग्रन्थादि-लिपि-निबद्ध इन ताडपत्रीय पाण्डुलिपियों में भी कदाचित् इस नाटक का बृहत्पाठ संचरित हुआ था। और इसी के कारण काटयवेम के द्वारा स्वीकृत दक्षिण भारतीय लघुपाठ में भी कुत्रचित् काश्मीरी पाठान्तर

---

1. इस तरह के समीक्षित पाठसम्पादन का कार्य करने का हमने शिव-संकल्प कर लिया है। जिसकी पूर्व तैयारी के रूप में हमने ग्रन्थ, मलयाळम, तेलुगु, नन्दी-नागरी आदि लिपियों में लिखी गई 85 पाण्डुलिपियों की सोफ्ट कॉपी दक्षिण भारत से एकत्र कर ली है। तथा आठ टीकाएँ भी प्राप्त कर ली हैं।।
2. किन्तु T. Foulkes के उपर्युक्त ग्रन्थ का विनियोग करनेवालों के लिए यह कहना जरूरी है कि उसमें दिये गये GOML, मद्रास की पाण्डुलिपियों के सांकेतिक नामों के द्वारा उन ताडपत्रीय पाण्डुलिपियों का अभिज्ञान करना मुश्किल है। क्योंकि वर्तमान में GOML की उन पाण्डुलिपियों पर वह सांकेतिक नाम नहीं हैं। बल्कि अब उनको नये सांख्यिक क्रमांक दिये गये हैं। अतः पहले उसका स्पष्टीकरण होना नितान्त आवश्यक है।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

का अनुसरण मिलता है, तो कुत्रचित् मैथिली, या बंगाली वाचना में प्रचलित पाठान्तर भी ग्राह्य रखा गया हो ऐसा दिखता है। हमने यहाँ जो तुलनात्मक अभ्यास पेश किया है, उसमें पादटिप्पणयों में सर्वत्र ऐसा दिखाया है कि कौन सा पाठान्तर कहाँ से लिया गया है। सारांशतः इस हकीकत को जान कर सावधान होना चाहिए कि, दक्षिण भारत में भी इस नाटक का बृहत्पाठ पहुँचा था और उनमें उपलब्ध हो ऐसे विविध पाठान्तरों का यथेच्छ आहरण करके ही दाक्षिणात्य वाचना का लघुपाठ बनाया गया है। (इस नाटक के देवनागरी लघुपाठ की स्थिति भी सर्वथा ऐसी ही है– यह भी प्रासंगिक रूपसे जान लेना चाहिए।) परिणामतः अब इस नाटक के लघुपाठ को मौलिक पाठ मानने से विरत हो जाना अनिवार्य बन गया है। क्योंकि दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने किये संक्षेप के कारण इस लघुपाठ में न केवल विसंगतियाँ पैदा हुई हैं, बल्कि क्षतियाँ भी प्रकटतया दिखती हैं। (जिसमें दुष्यन्त ने शकुन्तला को *"जीवितेश्वरी"* कही है और पुष्परज से कलुषित हुए शकुन्तला के नेत्र को अपने वदनमारुत से प्रमार्जित कर दिया था– ऐसे तृतीयांक के दो दृश्यों को हटाने के कारण, 1. षष्ठांक में विरही दुष्यन्त से अन्तःपुर में क्यूँ कदाचित् गोत्रस्खलन हो जाता है, एवं 2. कृष्णमृग के शृङ्ग पर अपना वामनेत्र खुजलाती मृगी का चित्र बनाने की चाहत के बीज कहाँ है? इन प्रश्नों का उत्तर लघुपाठ में कहीं से नहीं मिलता है)।।

इस नाटक के दाक्षिणात्य पाठ के विषय में भूतकाल के सम्मान्य विद्वानों ने क्या क्या मत-मतान्तर प्रकट किये हैं, उसकी जानकारी भी स्मृतिपथ पर लानी चाहिए। देवनागरी वाचना के शुद्धतर पाठ को सम्पादित करने का दावा करने वाले प्रॉफे. पी. एन. पाटणकर जी ने (1889 में) कहा है कि डॉ. रिचार्ड पिशेल के मतानुसार "दक्षिण भारत में संस्कृत नाटकों का संक्षेपीकरण एवं (पाठभेदों के सन्दर्भ में) संमिश्रीकरण भी किया गया है"। तथापि पी. एन. पाटणकर जी उनके विचार के साथ सहमत नहीं हैं। वे कहते हैं कि दक्षिण भारत की पाण्डुलिपियों में ही इस नाटक का पाठ अपरिवर्तित एवं बिना प्रक्षेप किये हुए संचरित हुआ है[1]। किन्तु पी. एन. पाटणकर जी के सामने जितनी सामग्री थी, उससे कहीं अधिक नवीन सामग्री एवं अभ्यास बाहर निकल आये हैं। जिससे प्रस्तुत अभ्यास के दौरान डॉ. रिचार्ड पिशेल का विचार ही तथ्ययुक्त प्रतीत हुआ है। यद्यपि रिचार्ड पिशेल का मत सामान्य रूप से सभी संस्कृत नाटकों के लिए व्यक्त किया गया था। इस लिए अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक के सन्दर्भ में उनके क्या विशेष विचार एवं प्रमाण थे, वे हम नहीं जानते हैं।इस विषय में हमने जो विमर्श किया है, वह स्वतन्त्र रूप से ही किया है, जो किसी भी तरह से पुरोगामियों के विचार से प्रभावित नहीं है।।

अब दाक्षिणात्यवाचना के रूप में उपलब्ध होनेवाला पाठ "रङ्गावृत्ति का पाठ" (stage-version) है, उसको सिद्ध करने से पहले, दाक्षिणात्य रंगावृत्ति के पाठ में जिन बिन्दुओं को हमें सविशेष देखना है, उनका परिगणन कर लेना चाहिए:-

दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने नाटक के मूल (कवि-प्रणीत) पाठ में से ही सीधी अपनी रंगावृत्ति का पाठ नहीं बनाया है। किन्तु जैसे काश्मीरी रंगावृत्ति की वंशज-रंगावृत्तियों के रूप में मैथिली एवं बंगाली रंगावृत्तियों का आविष्कार हुआ है, वैसे (क) इस दाक्षिणात्य रंगावृत्ति का जन्म भी बहुशः काश्मीरी रंगावृत्ति से ही हुआ है। ऐसा मानने का कारण यह है कि काश्मीरी रंगावृत्ति में नाटक के जिन अंशों का संक्षेप किया गया है, उनका अनुकरण एवं अनुसरण इस दाक्षिणात्य पाठ में भी यथावत् रूप से हुआ है ऐसा साफ दिखता है। तदुपरान्त, (ख) दाक्षिणात्य रंगावृत्ति को तैयार करनेवालों ने मैथिली एवं बंगाली रंगावृत्तियों के कतिपय पाठान्तरों का भी यथेच्छ स्वीकार किया है। (ग) किन्तु पुरोगामी तीनों रंगावृत्तियों के पाठ तो बृहत्पाठवाले थे, अतः उनमें से बहुत कुछ भाग को निकालना आवश्यक था। क्योंकि, यदि अल्प समयावधि में ही इस नाटक को खेलना हो तो, उसके लिए बृहत्पाठ में से अमुक दृश्यों की कटौती करनी भी जरूरी थी। अतः दाक्षिणात्य रंगावृत्ति बनानेवालों का अपना योगदान क्या है?– वह निश्चित करना हो तो शृङ्गारातिरेक से भरी तृतीयांक की दृश्यावली में देखना होगा। बृहत्पाठवाले तृतीयांक में कहाँ कैसी कटौती करके, उसका संक्षिप्त पाठ्यांश कैसा बनाया गया है? यह परीक्षणीय है। (घ) इस तृतीयांक की दृश्यावली में जहाँ से कटौती की है, वहाँ पूर्वापर में संगति बिठाने के लिए दाक्षिणात्य रंगकर्मियों

1. Dr. Richard Pischel's view is "that it is in South India that Sanskrit dramas have been adulterated and abridged". We are not in a position to appreciate the force of this conclusion, as our manuscripts seems to point exactly the opposite way - that it is the Southern copies that have preserved the text generally unadulterated and unamplified. -Abhijnana-shakuntalam, the purer Devanagari text, Ed. P. N. Patankar, Pune,1889-1902, preface p. 17.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

ने कैसा कौशल दिखाया है? वह भी देखना होगा। (ङ) दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने न केवल संक्षेप ही किया होगा, कुत्रचित् नया प्रक्षेप भी किया हो सकता है- तो उसकी भी समीक्षा करनी होगी। (च) नाटक की पात्रसृष्टि के नवीन नामान्तरों को प्रचलित करने की प्रवृत्ति भी यहाँ देखी जा सकती है। (छ) कुत्रचित् अमुक प्रसंगों की अभिनय-क्षमता बढ़ाने की एवं रस-निष्पत्ति के लिए आवश्यक दृश्यक्रम में परिवर्तनादि करने में संनिहित दक्षिण भारतीय कलादृष्टि भी देखनी होगी। निष्कर्षतः प्रस्तुत दाक्षिणात्य वाचना के पाठ को "रंगावृत्तियों की रंगावृत्ति" के रूप में देखने के साथ साथ, उसका निजी योगदान भी हमें पहचानना चाहिए।।

* *

जिन विद्वान् पाठसम्पादकों ने देवनागरी वाचना के पाठ को मौलिक मान कर, उसका प्रामाणिक या शुद्धतर पाठ तैयार करने की कोशिश की है, उन सभी ने प्रायः यह देखा है कि देवनागरी पाण्डुलिपियों में संचरित हुआ पाठ दाक्षिणात्य वाचना के पाठ के साथ बहुशः साम्य रखता है[1]। ऐसे साम्य की ओर अंगुली निर्देश करने के पीछे ऐसी सोच रही होगी कि देवनागरी वाचना के पाठ को यदि दाक्षिणात्य वाचना का भी समर्थन मिलता है, तो देवनागरी वाचना का पाठ सर्वथा ग्राह्य होना चाहिए। लेकिन केवल विहंगमदृष्टि से ऐसे साम्य को देखनेवाले पाठसम्पादकों ने मुख्य दो बातों पर विचार ही नहीं किया है:- (1) देवनागरी और दाक्षिणात्य वाचनाओं में प्रायः या बहुधा (90 %) साम्य है, तो कहाँ कहाँ पर उन दोनों पाठों में वैषम्य है?। इस तरह के वैषम्यवाले स्थानों पर, किस पाठ में आन्तरिक सम्भावना-युक्त पाठ सुरक्षित मिलता है?- यह किसी ने कहा ही नहीं है। (2) तथा पौर्वापर्य की दृष्टि से कौन सा पाठ पहले आकारित हुआ होगा?"। वह भी सोचा नहीं है। परन्तु तुलनात्मक अभ्यास में यदि "यह काला है और दूसरा धवल है"- इतना ही कहा जाता है, तो उसका कोई विशेष महत्त्व नहीं होता है। उन दोनों में, कालानुक्रम की दृष्टि से पूर्वापरभाव निश्चित किया जायेगा तब ही कुछ नयी मार्मिक बातों का उद्घाटन हो सकेगा।।

देवनागरी एवं दाक्षिणात्य वाचनाओं के पाठों का तुलनात्मक अध्ययन करके हमने ऐसे निष्कर्ष निकाले हैं कि 1. देवनागरी वाचना की अपेक्षा से दाक्षिणात्य वाचना के पाठ में ही सर्वाधिक स्थानों पर आन्तरिक सम्भावना युक्त पाठ सुरक्षित रहा है। तथा जिस पाठ में आन्तरिक सम्भावना दिखती है, वही पाठ मौलिकता के निकट होता है, और ऐसा पाठ ही प्राचीनतर होता है। 2. दाक्षिणात्य पाठ संक्षिप्त किया गया है, एवं उसकी अपेक्षा में देवनागरी पाठ संक्षिप्ततर किया गया है। 3. एवञ्च, इन दोनों वाचनाओं के पाठशोधकों ने (पुरोगामिनी) बृहत्पाठ वाली तीनों वाचनाओं में से पाठान्तरों का यथेच्छ आहरण करके, संमिश्रित किया हुआ पाठ प्रस्तुत किया है।। (इस तुलनात्मक अभ्यास के लिए हमारा आलेख द्रष्टव्य है:-अभिज्ञानशाकुन्तल की देवनागरी तथा दाक्षिणात्य वाचनाओं की पाठालोचना। नाट्यम् (अंक-77), सं. श्रीराधावल्लभ त्रिपाठी, सागर, पृ.33 से 58, वर्ष 2015) अतः लघुपाठ वाली दोनों रंगावृत्तियों में से यहाँ पहले दाक्षिणात्य पाठ को स्थापित किया है। तत्पश्चात्, अन्तिम स्तर पर, देवनागरी पाठ को रखा है।।

।। प्रथमोऽङ्कः ।।

(1) दाक्षिणात्य पाठशोधकों की दृष्टि में इस नाटक में केवल शकुन्तला केन्द्र में नहीं है। शकुन्तला के साथ साथ शकुन्तला के पुत्र का अभिज्ञान महत्त्वपूर्ण है। (क्योंकि इसी लिए सप्तमांक का प्रवर्तन किया गया है।) अतः उन लोगों ने सब से पहले तो इस नाटक का शीर्षक ही बदल दिया। जैसे कि, अभिज्ञानशाकुन्तलम्। (शकुन्तला एवं शकुन्तला के पुत्र, शाकुन्तलेय का अभिज्ञान-जिस नाटक के केन्द्र में है, वैसा नाटक। यानी दक्षिण भारत में नाटक के प्रतिपाद्य विषय को नवीन दृष्टि से देखा गया है।।

(2) कालिदास के नाटक के जो नये नये संस्करण होते रहे हैं, वे रंगावृत्ति के रूप में ही हुए हैं। दक्षिण भारत की रंगभूमि पर जब इसका नया अवतार सोचा गया है, तब उन प्रदेश के रंगकर्मियों के सामने बृहत्पाठवाली तीन

1. I have adopted the first one (Deva-nagari) which corresponds with the fourth = Dakshinatya up to 90%. Kalidasa Granthavali. Ed. Dr. Rewaprasad Dwivedi, Second edition, B.H.U. 1986, Varanasi, (Preface, p. 16)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

रंगावृत्तियाँ मौजूद थी। एवं अल्प समयावधि में इस नाटक की प्रस्तुति करने का लक्ष्य था। अतः किस स्वरूप की यह दाक्षिणात्य रंगावृत्ति बनी है? वह प्रत्येक अंक की दृश्यावली का विश्लेषण करके देखना होगा। (क) सब से पहले दाक्षिणात्य रंगावृत्ति के कतिपय नवीन पाठान्तरों का अभ्यास करते हैं :-1. बृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं के नान्दी-पद्य में "सर्वबीज-प्रकृति" के स्थान में "सर्वभूतप्रकृति" ऐसा पाठभेद किया गया है। 2. "प्रसन्नः" के स्थान में "प्रपन्नः" शब्द रखा गया है। 3. प्रस्तावना में "सुविहितप्रयोगतया आर्यस्य न किमपि" के स्थान में "सुविहितप्रयोगतया नाट्यस्य०" ऐसा प्रसंगानुरूप शब्द रखा गया है। 4. नटी के गीत में "खणचुम्बिआइं" के स्थान में "इसि चुम्बिआइं" शब्द आता है। 5. न खलु न खलु बाणः संनिपात्य० श्लोक में "सारपुङ्खाः शरास्ते" के स्थान में "वज्रसाराः शरास्ते" ऐसा शब्द है। 6. आश्रम के परिसर में आये हुए "बकुलवृक्ष" के स्थान में "केसरवृक्ष" का निर्देश है।। (ख) कुछ स्थान ऐसे भी हैं कि जहाँ दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने काश्मीरी से, मैथिली से एवं बंगाली रंगावृत्ति के पाठों में से भी पाठान्तर चुने हैं। जैसे कि, 1. काश्मीरी वाचना की प्रस्तावना में "कतमत् प्रकरणम् आश्रित्यैनमाराधयामः" है, किन्तु मैथिली एवं बंगाली वाचना में के स्थान में "कतमं प्रयोगम् आश्रित्य०" है। इन दोनों पाठभेदों में से जो काश्मीरी वाचना का व्यञ्जनायुक्त पाठ है, उसका दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने स्वीकार किया है। 2. वैखानस के मुख में जो "न खलु न खलु बाणः संनिपात्यो०" श्लोक रखा है, वह मूलतः मैथिली वाचना ने प्रक्षिप्त किया श्लोक है। दाक्षिणात्य पाठ ने उस मैथिली पाठ का स्वीकार किया है। 3. दाक्षिणात्य पाठ में नान्दी-पद्य के प्रथम चरण में "या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति०" ऐसा जो पदक्रम है, वह बंगाली पाठ के अनुसार है। तथा अनसूया ने दुष्यन्त का परिचय प्राप्त करने के लिए जो प्रश्न किया था कि "कतमो वर्णः आर्येण अलंक्रियते" वहाँ पर दाक्षिणात्य पाठ में "कतमो राजर्षिवंश आर्येणालंक्रियते" ऐसे शब्द हैं। यहाँ दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने बंगाली पाठ का स्वीकार किया है। क्योंकि पुरोगामी काश्मीरी एवं मैथिली पाठों में तो वर्ण शब्द था।। इन सन्दर्भों से मालूम होता है कि दाक्षिणात्य रंगावृत्ति में विभिन्न वाचनाओं के पाठान्तरों का संमिश्रण किया गया है।। (ग) विभिन्न रंगावृत्तियों के पाठान्तरों का तुलनात्मक अभ्यास करने से भाषा-सम्बन्धी विकास या परिवर्तन होता रहता है, उसका भी दर्शन होता है। जैसे कि, 1. अनसूया ने दुष्यन्त को विश्वामित्र-मेनका की पुरा कथा कहने का आरम्भ किया। तब "तस्या उन्मादयितृकं रूपं दृष्ट्वा..." इतना बोलते हुए लज्जा का अनुभव करती है। यहाँ दुष्यन्त तुरंत बोलता है कि "पुरस्ताद् अवगम्यते। सर्वथा अप्सरःसम्भवैषा।" यहाँ दाक्षिणात्य पाठान्तर "परस्ताद् अवगम्यते" ऐसा है। पुरोगामी तीनों पाठों के पुरस्ताद् शब्द को बदल कर, जब परस्ताद् शब्द रखा जाता है - तो वह विचारणीय है। भाषकों के दिमाग में शब्दार्थावगति में आ रहा परिवर्तन इन पाठान्तरों में झलक रहा है। 2. दुष्यन्त के मुख में "मानुषीषु कथं वा स्याद् अस्य रूपस्य सम्भवः०" इसमें बंगाली पाठशोधकों ने मानुषीभ्यः ऐसा पञ्चम्यन्त प्रयोग पाठान्तर के रूप में रखा है। किन्तु प्राचीनतम संस्कृत भाषा में (कुन्त्यां कर्णः जातः, किन्तु राधेय इति विश्रुतः। ऐसे सन्दर्भों में) सप्तमी विभक्ति ही साधु है, मान्य है। तथापि उत्तरवर्ती काल में अपादान अर्थ में पञ्चमी का प्रचलन दिखता है। जिसके कारण बंगाली विद्वान् पाठशोधकों ने मानुषीभ्यः ऐसा पाठान्तर कर दिया है।। [सन्दर्भ : उक्ति- क्रमांक - 1, 7, 16, 17, 42, 87, 129, 147, 151]

(3) दाक्षिणात्य रंगावृत्ति का प्रमुख परिचय यही है किं उसमें इस नाटक का लघुपाठ (=संक्षिप्त किया हुआ पाठ) उपलब्ध होता है। (क) श्लोक-संख्या की दृष्टि से देखा जाय तो काश्मीरी रंगावृत्ति में 213 श्लोकवाला पाठ है, मैथिली और बंगाली में अनुक्रम से 225 एवं 230/ 232 श्लोक उपलब्ध होते हैं। इन तीन बृहत्पाठवाली रंगावृत्तियों की अपेक्षा से दाक्षिणात्य (और देवनागरी) पाठ में देखा जाय तो 193 (तथा 191) श्लोकवाला लघुपाठ ही मिल रहा है। अतः प्रत्येक अंक का विश्लेषण करते समय हमें यह देखना होगा कि कौन कौन से श्लोक दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने निकाल दिये हैं?। 1. कुल्याम्भोभिः प्रसृतचपलैः०, 2. इदमुपहितसूक्ष्मग्रन्थिना०, एवं 3. यतो यतः षट्चरणोऽभिवर्तते०। इन तीन श्लोकों का दाक्षिणात्य पाठ में अस्वीकार हुआ है।। (ख) मैथिली

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

एवं बंगाली रंगावृत्तियों के पाठ में, तीन आश्रम-कन्याओं के बीच माधवीलता सम्बन्धी एक दीर्घ संवाद रखा गया है। जिसका लघु-अंश प्राचीनतम काश्मीरी रंगावृत्ति में उपलब्ध है। परन्तु दाक्षिणात्य रंगावृत्ति बनाते समय तो उन लोगों के सामने वह (मैथिली और बंगाली का दीर्घ पाठ) उपलब्ध था। तथापि अल्प समयावधि में प्रस्तुत हो सके ऐसा रंगावृत्ति का पाठ बनाने के लिए, दाक्षिणात्यों ने उस माधवीलता सम्बन्धी प्रक्षेप स्वीकारा नहीं है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 47 से 54]

(4) दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने केवल संक्षेपीकरण एवं पाठान्तरों के संमिश्रण का कार्य किया है, इतना कहना अपर्याप्त है। उन्होंने मंचनलक्षिता के सन्दर्भ में जो परिवर्तन किये हैं, उनकी विशेषता एवं मर्यादाएं भी कथनीय हैं:- (क) मृगयाविहारी राजा ने जब वैखानस के द्वारा दी गई सूचना का परिपालन करते हुए आश्रम के मृग पर बाण नहीं चलाया। जिसके लिए उनको चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त होने का आशीर्वाद दिया जाता है। इस प्रसंग में काश्मीर के रंगमंच पर वैखानस के साथ दो शिष्य आये हैं। मैथिली एवं बंगाली पाठ के अनुसार एक तापस के साथ एक ही शिष्य मंच पर आता है। लेकिन इन तीनों रंगभूमियों पर वैखानस के साथ आये हुए शिष्य (शिष्यों) की निष्क्रियता खटकती है। अतः दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने वैखानस के मुख में आशीर्वादार्थक एक नये श्लोक (जन्म यस्य पुरोर्वंशे युक्तरूपमिदं तव। पुत्रमेवं गुणोपेतं चक्रवर्तिनमाप्नुहि।।) का प्रक्षेप किया और साथ में आये दोनों शिष्यों से हाथ उठा कर उसी आशीर्वाद का गद्य-वाक्य में पुनरुच्चार करवाया है। ऐसा करने से आशीर्वाद-प्रदान करनेवाले दृश्य में गान सम्मिलित होता है, और रंगमंच पर आये सभी पात्रों की भागीदारी भी निखर आती है। (ख) काश्मीरादि तीनों रंगावृत्तियों में, भ्रमरबाधा प्रसंग का निरूपण करनेवाले दृश्य में दुष्यन्त "न भेतव्यम्, न भेतव्यम्..... (इत्यर्धोक्ते)" बोल कर, तुरंत रुकता है। क्योंकि वह अपना नृपत्व संगोपित रखना चाहता है। परन्तु दाक्षिणात्य रंगावृत्ति में, पूर्वोक्त वाक्य के स्थान में "कः कोऽत्र भोः" ऐसा वाक्य है। इस अभिव्यक्ति के सन्दर्भ में अज्ञात-कर्तृक चर्चा टीका में लिखा है:- "क इति। अत्र परमार्थं जानन्नपि अजानन्निव नायक-स्तदन्तिकगमनार्थं शत्रु-परिभवबुद्ध्या व्यवहरति, क इति। कोऽयमित्यन्वयः। अविनयम् अनिष्टम्, मुग्धासु प्रागल्भ्यरहितासु, तपस्विकन्यासु, मदेकशरणास्विति भावः।।" (अभिज्ञान-शकुन्तलचर्चा, प्रकाशक- डॉ. के. राघवन् पिल्लई, केरल युनिवर्सिटी, तिरुवनन्तपुरम्, 1977, पृ. 57) यानी दाक्षिणात्य सहृदयों की दृष्टि में यहाँ दुष्यन्त का नृपत्व प्रकट करने के लिए यह "कः कोऽत्र भोः" ऐसी अभिव्यक्ति समुचित है। किन्तु प्रकृत भ्रमरबाधा प्रसंग में तो दुष्यन्त शकुन्तला को सहसा साहाय्य करने के लिए तत्पर हो जाय, तो ही उसी में उसका सच्चा नायकत्व प्रकट होगा। ऐसे क्षणों में, कः कोऽत्र भोः?- इन शब्दों से वह भ्रमर को शत्रु मान कर, उस भ्रमर को सम्बोधन करेगा तो वह राजा है ऐसा जरूर लगेगा। लेकिन ऐसे वाचिकाभिनय से दुष्यन्त का नृपत्व आविष्कृत करना यहाँ अनुचित/अप्रासंगिक लगता है। (ग) प्रथम अंक की रंगसज्जा के सन्दर्भ में भी एक छोटी सी हकीकत की ओर ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक है:- दाक्षिणात्य रंगमंच पर खड़े किये गये कण्वाश्रम में केसरवृक्ष है, सहकारवृक्ष है और नवमालिका (वनज्योत्स्नी) नामक लता है। (यानी मंच पर माधवीलता का निर्देश नहीं है।) किन्तु यहाँ सहकार वृक्ष के लिए जो "बालसहकार" शब्द रखा है, वह अनुचित लगता है। क्योंकि कवि ने तो, शकुन्तला के मुख से नवमालिका लता को नवकुसुमयौवना कहा है, और सहकार को उपभोगक्षम कहा है। अब सहकार को "बालसहकार" कहने का क्या प्रयोजन होगा?। दक्षिण की रंगभूमि पर क्या वास्तव में आम्रवृक्ष का छोटा पौधा ला कर खड़ा किया जाता होगा?। सारांशतः एक छोटा सा पाठान्तर भी रंगसज्जा को बदल सकता है और उससे कदाचित् कवि की रसपोषक भाषा को हानि भी पहुँच सकती है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 40 से 47, 112 एवं 95]

।। द्वितीयोऽङ्कः।।

(1) इस द्वितीय अंक के प्रारम्भिक दृश्य में विदूषक राजा के मृगया-कर्म से विषण्ण अवस्था में है। वह दैनंदिन खाने-पीने का सुख विनष्ट हो जाने से भारी संतप्त दशा का अनुभव कर रहा है। इस विदूषक की दीर्घ-एकोक्ति

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

वाले अंश को दाक्षिणात्य वाचना में सब से पहली बार "प्रवेशक" नाम का अर्थोपक्षेपक जाहिर किया गया है। (लघुपाठवाली देवनागरी वाचना में भी इसको प्रवेशक नहीं कहा गया है।)।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक-1 से 3]

(2) इस अंक के प्रथम दृश्य में राजा का प्रवेश होता है। इस समय की दृश्य-विधा ध्यानास्पद है। जैसा कि विदूषक द्वारा प्रेक्षकों को सूचित किया गया है:- एष बाणासनहस्ताभिः वनपुष्पमाला-धारिणीभिः यवनीभिः परिवृत्तः इत एवागच्छति वयस्यः।। यानी रंगमंच पर यवनियों का समूह हाथ में धनुष आदि उठा कर आया है, और उन सब ने अपने गले में वनपुष्पों की माला पहनी हैं। राजा इस तरह के परिजन के साथ आया है। यहाँ स्मर्तव्य है कि काश्मीर के रंगमंच पर भी राजा यवनियों के साथ आता है, परन्तु वहाँ यवनियों ने वनपुष्पों की माला नहीं पहनी थी। राजा के गले में वनपुष्प की माला है- ऐसा वहाँ कहा गया है। लेकिन प्रस्तुत दृश्य की नयनरम्यता को बढ़ाने के लिए वनपुष्पों की मालाओं को यवनियों के गले में स्थानान्तरित किया गया है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक-2]

(3) दाक्षिणात्य वाचना में विभिन्न वाचनाओं के पाठान्तरों का यथेच्छ आहरण करके एक संमिश्रित पाठ प्रस्तुत किया गया है। इस हकीकत का समर्थन करने के लिए कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं :- (क) 1. स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्तास्तदन्यतेजोऽभिभवाद् वमन्ति। (2-7) इसमें वमन्ति क्रियापद का स्वीकार काश्मीरी वाचना के पाठ का अनुसरण करते हुए किया गया है। क्योंकि मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में दहन्ति क्रियापद का प्रयोग हुआ है। 2. विदूषक जानता है कि राजा का मन एक तापसकन्या में अनुरक्त हुआ है, तब वह कहता है कि- पिण्डखर्जुरैरुद्वेजितस्य तिन्त्रिणीफले अभिलाषो भवेत्, तथा स्त्रीरत्नपरिभाविनो भवत इयम् अभ्यर्थना। यहाँ पर मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में स्त्रीरत्नपरिभोगिनः ऐसा पाठ दिया गया है। किन्तु दाक्षिणात्य वाचना ने जो पूर्वोक्त पाठ स्वीकारा है, वह मूलतः काश्मीरी पाठ है। (ख) कुछ पाठान्तर ऐसे भी है कि जिनको मैथिली वाचना के पाठ में से यहाँ स्वीकारा गया है। 1. विदूषक ने अपनी परेशानी का कारण स्वयं राजा ही है ऐसा सूचित करने के लिए, जो उपमान दिया है (यद् वेतसः कुब्जलीलां विडम्बयति, तत् किमात्मनः प्रभावेण, उत नदीवेगस्य।) वह काश्मीरी वाचना में था ही नहीं। उसको मैथिली वाचना के पाठशोधकों ने सर्वप्रथम प्रक्षिप्त किया है। तथा बंगाली तथा दाक्षिणात्य वाचना में उसका अनुसरण किया गया है। 2. राजा सेनापति को कहते हैं कि सेनापते, भग्नोत्साहः कृतोऽस्मि मृगयापवादिना माढव्येन। यहाँ, काश्मीरी पाठ को देखा जाय तो, उसमें तो मन्दोत्साहः कृतोऽस्मि- ऐसा शब्द है। लेकिन दाक्षिणात्य पाठशोधकों ने यह भग्नोत्साह शब्द मैथिली वाचना से लिया है।। (ग) 1. राजा ने शकुन्तला के लिए कहा है कि- अर्कस्योपरि पतितं च्युतमिव नवमालिकाकुसुमम्। (2-8), यहाँ पर काश्मरी पाठ में नवमालती-कुसुमम् ऐसा शब्द मिलता है। दाक्षिणात्य वाचना ने नवमालिका-कुसुमम् शब्दों को बंगाली पाठ में से लिया है। इन उदाहरणों से निश्चित होता है कि दाक्षिणात्य पाठशोधकों ने अपने पुरोगामी तीनों पाठों में से विविध पाठान्तरों का यथेच्छ स्वीकार करते हुए एक संमिश्रित प्रकार का पाठ बनाया है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 32, 41, 55, 56, 11]

(4) दाक्षिणात्य पाठशोधकों ने अनेक स्थानों पर नवीन पाठान्तरों को उद्भावित भी किया है। जैसे कि, 1. सर्वं तत्किल मत्परायणमहो कामी स्वतां पश्यति। (2-2) यहाँ पर काश्मीरादि तीनों पाठों में कामः स्वतां पश्यति- ऐसा पाठ है। 2. काश्मीरादि तीनों वाचनाओं में राजा ने जब भी विदूषक को नाम से सम्बोधित किया है, तब माधव्य[1] शब्द

1. मधु-बभ्रवो-र्ब्राह्मण-कौशिकयोः। पा. सू. 4-1-106 के अनुसार "मधु नाम के ब्राह्मण का पुत्र माधव्य कहलाता है", किन्तु मधु मास में पैदा हुए को माधव कहा जाता है। कालिदास ने ब्राह्मण विदूषक के लिए माधव्य शब्द का प्रयोग किया है।। डॉ. गोविन्द केशव भट्ट ने विदूषक के माढव्य नाम को लेकर जो लिखा है-Kalidasa's Maad.havya indicates an idiot. वह अयथार्थ सिद्ध होता है। (द्रष्टव्य- ध विदूषक, पृ.-83)श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी ने भी लिखा है कि माढव्य of other editions is taken here as Maadhavya=माधव्य to suggest his वैशाखनन्दनत्व foolishness. (द्रष्टव्य - कालिदास ग्रन्थावली, 1986 की अंग्रेजी प्रस्तावना, पृ. 31) लेकिन यह भी पाणिनीय सूत्र के विरुद्ध है।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

का प्रयोग किया है। लेकिन प्रथम बार दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने संस्कृतभाषी राजा के मुख में भी माढव्य (कुत्रचित् मांडव्य) जैसा प्राकृतशब्द रूप रखा है! 3. राजा विदूषक को बताना चाहते हैं कि शकुन्तला तापसकन्या (ब्राह्मणकन्या) नहीं है, किन्तु वह तो एक अप्सरा की कन्या है। सुरयुवतिसम्भवं किल मुनेरपत्यं तदुज्झिताधिगतम्। (2-8) इस श्लोक के पहले शब्द का पाठ दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने दिया है, क्योंकि उससे आगे जो काश्मीरादि तीनों वाचनाओं के पाठ हैं उनमें तो, ललितान्यसम्भवम्, ललिताप्सरोभवम् जैसे शब्द मिलते हैं। 4. दाक्षिणात्य पाठ में, दुष्यन्त की राजमाताओं ने जिस निमित्त से उपवास किया था, उसका नाम निर्वृत्तपारणः दिया गया है। किन्तु पुरोगामी तीनों वाचनाओं में उसको पुत्रपिण्ड-पालन, या पुत्रपिण्डपारण ऐसा नाम दिया गया है। (इस नाटक का चरम लक्ष्य चक्रवर्ती पुत्र की प्राप्ति है, वह प्रथम अंक के आरम्भ में ही कहा गया है। अतः कवि ने सभी अंकों में पुत्र सम्बन्धी कुछ निर्देश रखा ही है। इस बात को यदि याद करेंगे तो, दाक्षिणात्य पाठ कवि की योजना से दूर चला जा रहा है ऐसा लगता है।) 5. करभक के सन्देश को सुन कर राजा आकुल हो जाते है। क्योंकि दोनों ही करणीय कृत्य भिन्न देश में थे। एक ओर आश्रमरक्षा थी, दूसरी ओर राजमाताओं के पास पहुँचना था। अब क्या किया जाय? तब विदूषक कहता है कि त्रिशंकुरिव अन्तराले तिष्ठ। यह दाक्षिणात्य पाठ है। उससे पहले काश्मीरादि पाठों में अन्तराल शब्द के स्थान में अन्तरा या अन्तरे जैसे निपातों का प्रयोग हुआ था। इन निपातों का अर्थ मध्ये होता है, जो प्रकृत सन्दर्भ में समीचीन है। किन्तु अन्तराल शब्द का अर्थ तो "दिशयोर्मध्ये" (=दो दिशाओं के मध्य का भाग, कोण) ऐसा होता है, जो प्रकृत सन्दर्भ में सर्वथा अनुकूल नहीं है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 6, 32, 55, 115 एवं 116]

(5) दाक्षिणात्य रंगकर्मियों का वैशिष्ट्य देखने के लिए इस अंक में विदूषक की जो उक्तियाँ हैं, उनका अभ्यास करना चाहिए। उदाहरण के रूप में, 1. विदूषक कहता है कि अयं मृगः, अयं वराहः, अयं शार्दूलः इति मध्यन्दिने ग्रीष्मविरलपादपच्छायासु ... वनराजिषु आहिण्ड्यते। इस उक्ति में जो शार्दूल शब्द का सन्निवेश किया गया है, वह दाक्षिणात्य रंगकर्मियों का प्रदान है। विदूषक जब इन विभिन्न वन्य प्राणियों का नामोच्चारण करेगा तो उसके साथ साथ वह उनका आङ्गिक अभिनय भी कर सकता है। जिससे उस दृश्य की आस्वाद्यता बढ जायेगी। 2. विदूषक राजा के प्रेमालाप पर अंकुश डालने के लिए कटिबद्ध होता है। काश्मीरादि वाचनाओं में विदूषक के मुख में "यदा तावत् सा तापसकन्या अप्रार्थनीया, तत् किं तया दृष्टया।" (जब वह तापस-कन्या वांछनीय ही नहीं है, तो उसे देखने से क्या लाभ है?) इसके सामने दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने जो परिवर्तन किया है, वह "भो वयस्य, अद्य तापसकन्या किम् अभ्यर्थनीया दृश्यते।" (अरे मित्र, आज क्या तापसकन्या भी वाञ्छनीय लगने लगी है?!) दोनों में काकुभेद से पृथक्-तया चमत्कृति का अनुभव होता है। लेकिन पूर्वापर सन्दर्भ की संगति पर विचार किया जाय तो, विदूषक ने पहले कहा है कि नास्य प्रसरं/अवसरं वर्धयिष्यामि/दास्यामि। तो काश्मीरी पाठ सन्दर्भोचित सिद्ध होता है। किन्तु आगे चल कर, जब पिण्डखर्जूर तथा इमली के उपमान को देखते हैं तो दाक्षिणात्य पाठ संगति साध लेता है। (अन्यत्र मैथिलादि पाठों में "परिहार्येऽपि वस्तुनि" शब्दों की संगति ठीक लगती नहीं है। इस सन्दर्भ का काश्मीरी-पाठ ही समीचीन लगता है।) [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 2, 53 से 56]

॥ तृतीयोऽङ्कः॥

दाक्षिणात्य वाचना के पाठ में रंगावृत्ति का दर्शन अतीव प्रकट रूप से हो रहा है। कवि-प्रणीत मूल पाठ तो बृहदाकार था ही, किन्तु तृतीयांक में लेटी हुई शकुन्तला के दृश्य की प्रस्तुति करने का मौका मिलते ही अतीत के अज्ञात रंगकर्मियों ने सुरुचि का भङ्ग करने वाले कतिपय अश्लील श्लोकों का प्रक्षेप किया, जो काश्मीरी पाठ परम्परा को विरासत में मिले थे। काश्मीरी रंगकर्मियों ने इस नाटक के मौलिक पाठ में कुत्रचित् कटौती करने का कार्य भी किया था। किन्तु कालान्तर में मैथिली वाचना के पाठशोधकों ने नवीन श्लोकों का प्रक्षेप एवं नवीन संघर्ष-तत्त्व का भी प्रक्षेप करने की

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अवाञ्छनीय प्रवृत्ति की। इन प्रक्षेपों के कारण (काश्मीरी पाठ की अपेक्षा से) मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं के पाठ बृहत्तर एवं बृहत्तम बने। किन्तु इतिहास में निरन्तर यह देखा जाता है कि एक क्रिया होते ही, उसके सामने प्रतिक्रिया भी शुरू होती है। दाक्षिणात्य वाचना का पाठ भी उसीका उदाहरण है। यद्यपि मूलगामी पाठ में कुछ कुछ स्थानों पर संक्षेप करने की प्रवृत्ति काश्मीरी एवं तत्पश्चात् बंगाली पाठ में भी देखी जाती है, ऐसा हमने पहले कहा है। किन्तु बृहदाकारवाले इस नाटक के परम्परागत पाठ में व्यापकतया संक्षेपीकरण का चरमोत्कर्ष तो दाक्षिणात्य पाठ में ही विकसित हुआ है। दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने संक्षेप की आवश्यकता विशेष रूप से तृतीयांक के पाठ में देखी है। बंगाली वाचना के तृतीयांक में 41 श्लोक तक का विस्तार हुआ था, उसको घटा कर दक्षिण भारतीय पाठ में 24 श्लोक पर्यन्त कलेवरवाला पाठ बनाया गया है[1]। इस तरह के संक्षेपीकरण के प्रयास में तृतीयांक के प्रक्षिप्त एवं अश्लीलांशों को हटाने का आशय देखा जाता है, जो समुचित भी था। दूसरा प्रयोजन यह भी हो सकता है कि कैसे अल्प समयावधि में अमुक अंक को रंगमंच पर पेश किया जाय। लेकिन इन प्रक्षिप्तादि अनावश्यक भाग को हटाने के साथ साथ उन्होंने अन्य दो मूलगामी दृश्यों को भी हटा दिया है। तथा कुछ स्थान में नवीन पाठान्तर भी दाखिल किया है। अतः दाक्षिणात्य पाठपरम्परा के प्रवर्तकों ने पुरोगामी प्रचलित तीनों वाचनाओं में से किन पाठान्तरों का आहरण किया गया है, एवं किन किन नवीन पाठान्तरों को प्रस्तावित किया है?, तथा कहाँ पर दृश्य-योजना बदल कर अपना वैशिष्ट्य दिखाया है?- ये सब बिन्दु विवेचनीय हैं।।

(1) दाक्षिणात्यपाठ की पहली पहचान उसका संक्षिप्त पाठ है। इस लिए सब से पहले यही देखना है कि दक्षिण के रंगकर्मियों ने कहाँ कहाँ पर परम्परागत पाठ में कटौती की है। (क) जिन श्लोकों की कटौती की गई है, वे 1. अद्यापि नूनं हरकोपवह्नि०, 2. अनिशमपि मकरकेतुर्मनसो०, 3. वृथैव संकल्पशतैरजस्रमनङ्ग०, 4. संमीलन्ति न तावद्बन्धनकोशाः०, 5. शशिकरविशदान्यस्यास्तथा०, 6. अयं स यस्मात्प्रणयावधीरणाम्०, 7. अपराधमिमं ततः सहिष्ये यदि रम्भोरु०, 8. अप्यौत्सुक्ये महति दयितप्रार्थनासु प्रतीपाः०, 9. त्वं दूरमपि गच्छन्ती हृदयम्०, 10. अनिर्दयोपभोग्यस्य रूप०, 11. मणिबन्धनगलितमिदं०, 12. अनेन लीलाभरणेन ते प्रिये०, 13. पिपासाक्षामकण्ठेन याचितं०, 14. हरकोपाग्निदग्धस्य दैवेनामृतवर्षिणा०, 15. अयं स ते श्यामलतामनोहरं०, 16. चारुणा स्फुरितेनायम-परिक्षतकोमलः०, 17. रहः प्रत्यासत्तिं यदि सुवदना यास्यति पुनः०। हैं।। (ख) यहाँ "इदमप्युपकृतिपक्षे सुरभि मुखं ते मयाघ्रातम्०" इस एक श्लोक को विस्थापित करके, उसके स्थान में नयी शब्दावली वाले दूसरे श्लोक को बिठाया है। (क्योंकि जब भी मूलपाठ में आंशिक भी कटौती या परिवर्तन किये जाते हैं, तो अनुगामी पाठ के साथ संगति बिठाने के लिए ऐसा करना अनिवार्य हो जाता है।)। पूर्वोक्त श्लोकों में क्रमांक1, 7, 8, 17 से निर्दिष्ट है, वे ऐसे हैं कि जो काश्मीरी रंगावृत्ति को विरासत में मिले लगते हैं। पाँचवें क्रमांक का श्लोक बंगाली पाठ ने प्रक्षिप्त किया था, तदितर अन्य सभी श्लोक मैथिली रंगकर्मियों ने प्रक्षिप्त किये होंगे। (ग) तदुपरान्त, दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने जिन दो दृश्यों की कटौती की है, वे हैं :- 1. दुष्यन्त ने शकुन्तला के हाथ में मृणाल-वलय पहनाया है, तथा 2. पुष्परज से कलुषित हुए शकुन्तला के नेत्र को दुष्यन्त अपने वदन-मारुत से प्रमार्जित कर देता है। इन दृश्यों में ही सही नैसर्गिक प्रेमसहचार का दर्शन होता था, जिसको गलत प्रक्षेपों का ग्रहण लग गया था। उन अमौलिक एवं अश्लीलता भरे श्लोकों की संनिधि के कारण, कवि ने जो मौलिक प्रेमसहचार आलिखित किया था, उसको भी (समूल) हटाया गया है।। इतना सारा भाग निकालने के बाद, जो बच गया है, उसको संक्षिप्त किया गया पाठ कहना है।।

(2) तृतीयांक के आरम्भ में कण्वाश्रम के शिष्य की एकोक्ति से बना जो अर्थोपक्षेपक है, उसको काश्मीरी -आदि तीनों वाचनाओं में "प्रवेशक" नाम दिया गया है। उसको दाक्षिणात्य वाचना में परिवर्तित करके "शुद्धविष्कम्भक" ऐसा दशरूपकाद्यनुसारी नाम दिया गया है। किन्तु शिष्य की एकोक्ति संस्कृत में होते हुए भी उसे, बृहत्पाठवाली

1. दाक्षिणात्य पाठ के प्रथम टीकाकार काटयवेम ने पंदरहवीं शती में 24 श्लोकवाले पाठ पर टीका लिखी है। तथा देवनागरी पाठ के प्रमुख टीकाकार राघवभट्ट ने भी इस 24 श्लोकवाले पाठ पर ही टीका लिखी है।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

काश्मीरी-आदि तीनों रंगावृत्तियों में, प्रवेशक कहा गया है, वह समुचित है। क्योंकि नाट्यशास्त्र में नाटक प्रकार के रूपक के लिए अर्थोपक्षेपक के नाम से केवल प्रवेशक का ही विधान मिलता है। (द्रष्टव्य:- ना. शा. अध्याय-18, श्लोक 26, 28 एवं 44, तत्रैव चाभिनवभारती) जिससे भी लघुपाठवाली परम्परा उत्तरवर्ती काल में आकारित हुई है (और बृहत्पाठवाली परम्परा प्राचीनतर है) ऐसा पुनरपि सिद्ध होता है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 5]

(3) दाक्षिणात्य रंगकर्मियों के द्वारा किये गये संक्षेप के कारण इस प्रणयकथा में कवि द्वारा निरूपित नैसर्गिक प्रेम सहचार हमेशा के लिए तिरोहित होगा ही। लेकिन कला की दृष्टि से यह भी ज्ञातव्य है कि जिस अज्ञात पाठशोधक ने पूर्वोक्त कटौती की है, उसने इन दो दृश्यों की कटौती करने के बाद कहाँ, कैसे कुशलता से प्रक्षेप लगाया है कि जिसके कारण अङ्क की दृश्यावली में कुछ विक्षेप हो रहा है, वह किसी के ध्यान में ही नहीं आता है?! दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने नैसर्गिक प्रेमसहचार को हटा कर उसके विकल्प में, 1. मैथिली रंगकर्मियों ने जो "गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो हि मुनिकन्यका:। श्रूयन्ते परिणीतास्ता: पितृभिश्चाभिनन्दिता:।। (मै. 3-27)" श्लोक का प्रक्षेप किया था, उसका पाठभेद के साथ विनियोग किया है। जिसको शिंगभूपाल (1330 ई.स. में) ने रसार्णवसुधाकरमें छत्तीस प्रकार के वस्तुभूषण में से "उपदिष्ट" नामका भूषण कहा है:- शाकुन्तले, गान्धर्वेण इत्यत्र शास्त्राऽनुरोधेन प्रवृत्तत्वाद् इदमुपदिष्टम्।।[1] (लेकिन इस तरह से स्मृतिशास्त्र के वचन को अग्रेसारि करके किये गये विवाह का महिमा कोई अधिक नहीं गा सकता है। जैसे किसी भोली कन्या को वशीभूत कर लिया (पटा लिया) हो, या किसी नादान कन्या को गान्धर्वविवाह के लिए उकसाया हो, ऐसा भाव होता है। एवञ्च, अलं भीरु, गुरुजनभयेन। इत्यादि बोलता हुआ दुष्यन्त भी किसी को निर्लज्ज या असंस्कारी लग सकता है।। दाक्षिणात्यों के द्वारा किये गये इस तरह के संक्षेपीकरण से सहज प्रेम के मौलिक निरूपण को महती हानि हुई है।) 2. तथा दूसरी ओर, "इदमप्युपकृतिपक्षे सुरभि मुखं ते मया यदाघ्रातम्। न तु कमलस्य मधुकर: सन्तुष्यति गन्धमात्रेण।। (मै.3-36)" जिसमें नायक-नायिका के लिए मधुकर एवं कमल के प्रतीकों का विनियोग हुआ है, इस मूल श्लोक के स्थान पर, दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने मालभारिणी[2] छन्द में एक नया श्लोक स्थापित कर दिया है। जैसे कि, अपरिक्षतकोमलस्य यावत् कुसुमस्येव नवस्य षट्पदेन। अधरस्य पिपासया मया ते सदयं सुन्दरि गृह्यते रसोऽस्य।। (दाक्षि. 3-21)।। इन दोनों श्लोकों में क्या अन्तर है? वह ज्ञातव्य है:- बृहत्पाठानुसारी श्लोक में दुष्यन्त के द्वारा काकू से पूछ गये प्रश्न को सुनकर, शकुन्तला दुष्यन्त को रति के लिए प्रेरित करती है। किन्तु दाक्षिणात्यवाचना के नवीन श्लोक में नायक शकुन्तला के अधरामृत की याचना करता है! दोनों पाठान्तरों में इतना भारी अन्तर है। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 101 एवं 105]

(4) उपर्युक्त संक्षेपीकरण के कारण (=प्रेम-सहचार के दो दृश्य हटाये जाने के कारण) रंगसूचनाओं में विसंगति पैदा हुई है। तथा कुत्रचित् कवि की मूल दृश्य-योजना में परिवर्तन किये जाने से नये पाठान्तर पैदा करने की आवश्यकता खड़ी हुई है। प्रासंगिकतया इनकी भी चर्चा करनी आवश्यक है:-जब दोनों सहेलियाँ रंगमंच से मृगबाल को लेकर चली जाती हैं, तब मध्याह्न का समय था। अब नायक-नायिका एकान्त में है, वहाँ पर (संक्षेपीकरण के कारण) इनके बीच में केवल छह उक्तियों का संवाद ही अवशिष्ट रह जाता है। और, तुरंत गौतमी का आगमन हो जाता है, तथा चक्रवाकवधू के बहाने से दोनों को कहा जाता है कि उपस्थिता रजनी।। यहाँ पर, 1. समय-निर्देशक सूचनाओं में विसंगति आ रही है। तथा 2. इस अंक के उपान्त्य श्लोक में दुष्यन्त कहता है कि इस लतावलय में अब शकुन्तला नहीं है। लेकिन उसकी याद दिलानेवाली तीन चीजें छूटी हुई (गिरी) हुई हैं, उनको छोड़ कर मैं कैसे बाहर निकल सकता हूँ?। वे तीन चीजें हैं :- 1. पुष्पमयी शय्या, 2.

1. रसार्णवसुधाकर (3-292), (त्रावणकोर संस्कृत सिरीझ- 50), त्रिवेन्द्रम्, 1916, (पृ. 263), यहाँ पर मुनिकन्यका: ऐसा मैथिल-पाठ नहीं हैं। किन्तु राजर्षिकन्यका: ऐसा दाक्षिणात्य-पाठान्तर उद्धृत किया है।
2. डॉ. मन:सुखभाई मोलिया (राजकोट) के मतानुसार यह नामकरण पहलीबार हेमचन्द्राचार्य ने किया है।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला ने अपने नाखून से लिखा मदनलेख एवं 3. उसके हाथ से गिरा बिसाभरण (मृणाल-वलय)। यहाँ प्रश्न होता है कि इस तीसरी चीज से जुड़ा हो ऐसा कोई प्रसंग तो इस (संक्षिप्त किये गये) अंक में मिलता नहीं है। (यह दूसरी विसंगति संक्षिप्त किये गये पाठ में प्रविष्ट हुई है।) नाटक का एक वैश्विक नियम होता है कि नाट्यकार्य में,जिस चीज का कहीं पर भी विनियोग न हो, ऐसी कोई अनावश्यक चीज का निर्देश नहीं होना चाहिए। इस दृष्टि से उपान्त्य श्लोक में आया हुआ बिसाभरण का निर्देश इस बात की गवाह बन कर रह जाता है कि मूल में तो इससे जुड़ा हुआ कोई प्रसंग होगा ही। हम जानते हैं कि बृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं के पाठ में दुष्यन्त शकुन्तला को अपने पास में बिठा कर, उसके हाथ में मृणाल-वलय पहनाता हो ऐसा दृश्य विद्यमान है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 91 से 97, 108 तथा121]

(5) अब संक्षेपीकरण के कारण पैदा हुई तीसरी विसंगति की चर्चा करना अभीष्ट है:- कवि कालिदास ने तीसरे अंक का आरम्भ करते हुए, शकुन्तला की भारी मदनसंतप्त दशा दिखाने के लिए उसको कुसुमास्तरण वाले एक शिलातल पर लेटी हुई स्थिति में प्रवेश करवाया है। उसके पास में बैठ कर दो सहेलियाँ उसको पवन झल रही हैं। अब रंगमंच पर लेटी हुई नायिका को कब खड़े होना है, कब चलना है- इस विषय में कवि की निर्धारित योजना क्या है? उसको सोचा जाय तो मालूम होता है कि मृगबाल को लेकर जब दोनों सहेलियाँ रंगमंच से चली जायँ, और नायक शकुन्तला को कहे कि संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ, अङ्के निधाय करभोरु यथासुखं ते। तब तक शकुन्तला को रंगमंच पर सतत लेटे रहना है। यानी मदनलेख लिखते समय भी, और मदनलेख के अक्षरों को सुन कर जब राजा सहसा रंगमंच पर प्रवेश करके, उसी शिलातल पर उसी के पास में आकर बैठे तब भी नायिका को लेटे रहना है। कवि की इस तरह की योजना में दुष्यन्त को लेटी हुई शकुन्तला के पद्मताम्रवर्णी पाद को अपनी गोदी में लेकर, उनका पाद-संवाहन करने का प्रस्ताव करना है।। किन्तु दाक्षिणात्य रंगकर्मियों को दुर्भाग्य से विरासत में कुछ परिवर्तित किया पाठ मिला होगा, जिसमें शकुन्तला को मदनलेख लिखते समय बिठाया गया था (उपविष्टा चिन्तयति)। तथा मदनलेख के शब्दों को सुन कर रंगमंच पर प्रकट हुए राजा को, अनसूया ने उसी शिलातल पर बिठाया, जिस पर शकुन्तला पहले से बैठी हुई है। तब शकुन्तला तुरंत लज्जा के साथ खड़ी हो जाती है (सलज्जा तिष्ठति)। तत्पश्चात्, दोनों सहेलियाँ मृगबाल को लेकर चली जाती हैं, और शिलातल पर बैठे हुए राजा अपने पास में **खड़ी हुई** शकुन्तला को जब उनके पाँव अपनी गोदी में लेकर, उनका संवाहन करने का प्रस्ताव रखता है, तब दाक्षिणात्य पाठ में रंगसूचना दी जाती है कि "इत्युत्थाय प्रस्थिता"। यानी जहाँ बैठी थी, वहाँ से (उत्थाय=) उठ कर शकुन्तला चली जाती है। लेकिन यह रंगसूचना अयोग्य सिद्ध होती है। क्यूंकि शकुन्तला तो पहले से सलज्जा पास में खड़ी ही है, उसके लिए यह रंगसूचना देना अनुचित है।। यहाँ पर जो दूसरी विसंगति आकारित हो रही थी, जैसी कि- पास में खड़ी हुई नायिका को कैसे कहा जाय कि मैं तुम्हारें पाँव मेरी गोदी में लेकर, उनका संवाहन करने को तैयार हूँ?। इस विसंगति को दूर करने के लिए 15वीं शती के दाक्षिणात्य पाठशोधकों ने, बृहत्पाठ के परम्परागत "किं शीतलैः क्लम-विनोदिभिः०" श्लोक के तीसरे-चौथे चरणों के अमुक शब्दों को आगे पीछे कर दिये हैं! अर्थात्

किं शीकरैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातं,
संचालयामि नलिनीदलतालवृन्तम्।
अङ्के निधाय चरणावुत पद्मताम्रौ,
संवाहयामि करभोरु यथासुखं ते।। (काश्मीरादि-पाठ)

इसको-

किं शीकरैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातं,
संचालयामि नलिनीदलतालवृन्तम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अङ्के निधाय करभोरु, यथासुखं ते
संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ।। (दाक्षिणात्य-पाठ)

इस तरह के परिवर्तित किये गये नये पदक्रम से इस श्लोक को पेश किया है। यानी दाक्षिणात्य पाठशोधकों ने उपस्थित होनेवाली विसंगति को कुछ हद तक सम्भालने की कोशिश की है। फिर भी, प्रश्न तो उठेगा ही कि इस परिवर्तन से क्या कोई नया शब्दचित्र सामने आ रहा है?। तो कवि की योजना के अनुसार तो लेटी हुई शकुन्तला के चरणों को गोदी में लेकर, उनका संवाहन करने का प्रस्ताव था। (इसी सन्दर्भ में ही, करभोरु शब्द का विनियोग सुसंगत बनता है, क्योंकि उससे ऊरु-संवाहन ही अभिप्रेत था- ऐसा व्यंजित हो रहा था[1]।) अब दाक्षिणात्य पाठ के अनुसार वह योजना बदल जाती है। जैसे कि, इस नवीन पदक्रम के कारण, शिलातल पर बैठा हुआ दुष्यन्त अपने पास में खड़ी हुई शकुन्तला को कहता है कि मैं तुम्हें मेरी गोदी में लेकर, (पहले गोदी में बिठा कर), तुम्हारे पद्मताम्र चरणों का संवाहन करने को तत्पर हूँ!।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 93]

(6) दाक्षिणात्य पाठ में एक अन्य स्थान भी है कि जहाँ बृहत्पाठ की दृश्य-योजना बदल गई हो। इस अंक के अन्त भाग में गौतमी आ कर शकुन्तला को उटज पर ले जाती है। बृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं में रंगमंच पर अकेली गौतमी ही आती है, और साश्चर्य आघात का भी अनुभव करती है :- "क्या तुम (शकुन्तला) अकेली ही हो? तुम्हें केवल देवताओं के सहारे छोड़ कर वे दोनों सहेलियाँ कहाँ चली गई है?।" तब शकुन्तला कहती है कि वे दोनों तो अभी अभी ही मालिनी नदी में अवतीर्ण हुई है।। इसको बदल कर, दाक्षिणात्य पाठ में ऐसा कहा जाता है कि गौतमी का रंगमंच पर जब प्रवेश होता है, तब प्रियंवदा और अनसूया भी गौतमी के साथ में है। वे दोनों गौतमी को मार्ग दिखाती हुई आती हैं। इसका मतलब ऐसा है कि दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने ऐसा सूचित करना चाहा है कि दुष्यन्त-शकुन्तला के एकान्त मिलन की क्षणों में वे दोनों सहेलियाँ आस-पास में ही थी, और वहाँ पहरा दे रही थी।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 111 से 115]

(7) दाक्षिणात्य रंगावृत्ति में कुछ पाठान्तर सर्वथा नवीन है और प्रथमबार ही उन्हें प्रस्तुत किया जा रहा है। जैसे कि, 1. बृहत्पाठ की तीनों वाचनाओं में, मदनलेख में लिखी गई (तव न जाने हृदयम्०) आर्या में, शकुन्तला ने दुष्यन्त को निष्कृप (कृपा नहीं करने वाला) कहा है। किन्तु दाक्षिणात्यों ने उसे बदल करके, निर्घृण (दया-विहीन) ऐसा पाठभेद किया है। केवल इस एक सम्बोधन से ही शकुन्तला की व्यक्तिरेखा बदल जाती है। बृहत्पाठ में वह मुनिकन्या (=कण्व की पुत्री) के रूप में स्थित है, और राजा की कृपाकाङ्क्षी बन कर खड़ी है। किन्तु दाक्षिणात्य पाठ में शकुन्तला राजर्षिकन्या (विश्वामित्र की पुत्री) के रूप में पेश की जा रही है, अतः वह निर्घृण शब्द का प्रयोग करके, आक्षेपात्मक एक सम्बोधन से, सामने उपस्थित राजा की संवेदना को झंकृत करने का उपक्रम करती है। एक राजकुमारी की भाषा यही हो सकती है।। 2. दुष्यन्त ने शकुन्तला को गान्धर्व-विवाह के लिए उकसाने के लिए, राजर्षिकन्या शब्द से उल्लिखित किया है। दाक्षिणात्य पाठशोधकों ने गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो राजर्षिकन्यकाः। श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चाभिनन्दिताः।। इस श्लोक में जो परम्परागत (बृहत्पाठवाली वाचनाओं में) मुनिकन्यकाः शब्द था, उसको राजर्षिकन्यकाः में परिवर्तित करके रखा है।। 3. गौतमी शकुन्तला को लेकर जब रंगमंच से निकल रही है, तब (दाक्षिणात्य पाठ में) शकुन्तला अन्योक्ति से बोलती है कि "लतावलय, सन्तापहर, आमन्त्रये त्वां भूयोऽपि प्रत्यवेक्षणाय।" यहाँ बृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं में "... आमन्त्रये त्वां भूयोऽपि परिभोगाय।" ऐसा पाठ था, जिसमें शकुन्तला मुग्धा नहीं रहती थी। दाक्षिणात्य पाठशोधकों ने सुरुचिपूर्ण नया पाठान्तर प्रस्तुत किया है।। 4. कुत्रचित् नये पाठान्तर प्रस्तुत करने के पीछे दाक्षिणात्य पाठशोधकों का आशय सरलीकरण है- ऐसा भी दिख रहा है। जैसे कि, तृतीयांक के अन्तिम

---

1. द्रष्टव्य है चर्चा टीका के शब्दः- करभोरु, अनेन तावद् ऊरुसंवाहनमेवास्याभिप्रेतमिति द्योत्यते। (पृ.130), अभिज्ञानशकुन्तलचर्चा, सं. के. राघवन् पिल्लाई, मेन्युस्क्रिप्ट लाईब्रेरी, केरळ विश्वविद्यालय, त्रिवेन्द्रम्, 1977

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

श्लोक में "सन्ध्यापयोदकपिशाः पिशिताशनानाम्। "ऐसा जो शब्द है, वह काश्मीरी-आदि तीनों वाचनाओं में "सन्ध्याभ्रकूट-कपिशाः पिशिताशनानाम्" ऐसा शब्द मिलता है, जिसको दाक्षिणात्यों ने सुबोध बनाया है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 66, 101, 116 एवं 123]

(8) दाक्षिणात्य रंगावृत्ति चतुर्थ क्रमांक पर आकारित हुई है, इस लिए उसका पाठ बनानेवाले अज्ञात रंगकर्मियों के सामने बृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं के पाठ थे ही। अतः उन्होंने बृहत्पाठ का संक्षेप करने के साथ साथ उपलब्ध विविध पाठभेदों में से यथेच्छ आहरण करके, संमिश्रित पाठ तैयार किया है। यह लक्षण तृतीयांक के पाठभेदों में भी देखा जा सकता है। उदाहरण के रूप में, (क) 1. शकुन्तला अपनी मदनबाधा के सन्दर्भ में सहेलियों को कहती है कि- ".. तथा वर्तेथां यथा तस्य राजर्षेरनुकम्पनीया भवामि। अन्यथा प्रसिञ्चतं मे उदकम्।" यहाँ काश्मीरी (एवं मैथिली) पाठ का अनुसरण करते हुए दाक्षिणात्य पाठ बनाया है। क्योंकि बंगाली पाठ में "अन्यथा स्मरतं माम्" ऐसा वाक्य है। 2. शकुन्तला का प्रेम दुष्यन्ताश्रित है, ऐसा सुन कर दोनों सहेलियों ने प्रतिक्रिया दी है। अनसूया ने सागर और महानदी की उपमा दी है, तथा प्रियंवदा ने सहकार और अतिमुक्तलता की उपमा दी है। को वेदानीं सहकारमन्तरेणातिमुक्तलतां पल्लवितामर्हति। यहाँ दाक्षिणात्य पाठशोधकों ने काश्मीरी पाठ का अनुसरण करते हुए प्रियंवदा की उपमा का स्वीकार किया है। इस सन्दर्भ में मैथिली में कुछ भिन्न ही योजना है, तथा बंगाली पाठ में इन उपमाओं का सर्वथा अस्वीकार है।। 3. गौतमी शकुन्तला को ले जाती है, तब प्रियामिलन से वंचित रह गया नायक बोलता है कि- "...कथमप्युन्नमितं न चुम्बितं तु।" यह पाठान्तर भी काश्मीरी पाठ में से लिया गया है। क्योंकि मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में तो "....कथमप्युन्नमितं न चुम्बितं तत्"। ऐसा पाठान्तर उपलब्ध है।। (ख) कुछ उदाहरण ऐसे हैं कि जिनमें दाक्षिणात्यों ने मैथिली पाठान्तरों का आहरण किया है। 1. जब प्रियंवदा ने शकुन्तला के प्रेम का स्वीकार करके, उसके जीवन को अवलम्बन देने की विज्ञप्ति की तब राजा के मुख से "भद्रे, साधारणोऽयं प्रणयः। सर्वथानुगृहीतो-ऽस्मि" ऐसा कहता है। इनमें से पहला वाक्य काश्मीरी वाचना में नहीं था, वह प्रथमबार मैथिली पाठ में उपलब्ध होता है। अतः दाक्षिणात्यों ने यहाँ पर मैथिली पाठान्तर का स्वीकार किया है। 2. इसके बाद तुरंत शकुन्तला ने प्रियंवदा को रोकते हुए कहा है कि सखि, अलमन्तःपुरविरह-पर्युत्सुकस्य राजर्षेरुपरोधेन। दाक्षिणात्यों ने यहाँ भी "अन्तःपुरविरह०" ऐसे पाठान्तर का ग्रहण मैथिली पाठ में से किया है। क्योंकि काश्मीरी पाठ में तो "अन्तःपुर-विहार०" ऐसा पाठभेद चल रहा है। (यद्यपि टीकाकार चर्चाकार ने अन्तःपुरविहारपर्युत्सुकस्येति- जैसा ही पाठ लेकर उस पर व्याख्या लिखी है[1]। उसका मतलब कि दक्षिण-भारत में भी यह काश्मीरी पाठान्तर कुत्रचित् चल रहा था।) 3. जब शकुन्तला दुष्यन्त के पास से उठ कर चली जा रही है, तब दुष्यन्त के मुख में एक श्लोक है:- "उत्सृज्य कुसुमशयनं नलिनीदलकल्पितस्तनावरणम्।" यह पाठ भी दाक्षिणात्यों ने मैथिली पाठपरम्परा में से लिया है। क्योंकि काश्मीरी पाठ में तो "०कदलीदलकल्पितस्तना-वरणम्" ऐसा पाठान्तर मिलता है। 4. जब गौतमी शकुन्तला के लिए शान्त्युदक लेकर लतावलय के पास में आ जाती है तो, दोनों सहेलियों ने अन्योक्ति से "चक्रवाकवधूके, आमन्त्रयस्व सहचरम्। उपस्थिता रजनी।" नायक-नायिका को सावधान किये है। यह पाठ भी काश्मीरी में नहीं है। वहाँ पर नेपथ्य से (शायद सहेलियों के द्वारा) "आर्या गौतमी..." ऐसी आवाज दी जाती है। अतः यहाँ दाक्षिणात्य पाठ में चक्रवाक पक्षी को उद्देश्य करके जो अन्योक्ति मिलती है, वह मैथिली पाठ में से ली गई है। (ग) दाक्षिणात्यों ने कुत्रचित् बंगाली पाठान्तरों का भी स्वीकार किया है। जैसे कि, 1. तृतीयांक के आरम्भ में मदनसंतप्ता शकुन्तला कुसुमास्तरण पर लेटी हुई है, और पास में बैठी हुई दोनों सहेलियाँ उसको पवन झल रही हैं। तब दाक्षिणात्य पाठ में, शकुन्तला "किं वीजयतो मां, सख्यौ?" ऐसा वाक्य बोलती है। इसके सामने काश्मीर-पाठ देखा जाय तो, उसमें "किं वा वीजयतः, मां सख्याावि" ति। ऐसा काकुभेद से बोला गया

1. द्रष्टव्यः- अभिज्ञानशकुन्तलचर्चा। सं. राघवन् पिल्लाई, प्रका. केरल विश्वविद्यालय, त्रिवेन्द्रम्, पृ. 127

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

वाक्य मिलता है। एवञ्च, मैथिली पाठ में "किं मां, वीजयत: प्रियसख्यौ" । ऐसा दूसरे तरह का काकुवाक्य है। किन्तु बंगाली पाठ में "किं वीजयत: मां, प्रियसख्यौ" ऐसा जो पाठान्तर मिलता है, उसका दाक्षिणात्यों ने ग्रहण किया है। 2. दाक्षिणात्य पाठ में 3-6 श्लोक के नीचे जो तीन उक्तियाँ रखी गई हैं, वे काश्मीरी या मैथिली पाठों में समाविष्ट नहीं है। वे केवल बंगाली पाठ में उपलब्ध हो रही हैं। अत: उन तीन उक्तियाँ का स्वीकार बंगाली पाठ में से किया गया है। 3. दोनों सहेलियाँ अपनी सखी शकुन्तला के लिए राजा से बात कर रही है। मैथिली पाठ में पहले प्रियंवदा कहती है कि सखीस्नेह से प्रेरित होकर मुझे कुछ कहना है, तब अनुसूया बीच में इतना जोड़ती है कि यह हमारा (सखियों का) धर्म है कि हम शकुन्तला के लिए आपको कुछ निवेदन करें। किन्तु बंगाली पाठ में वही "एषो नो धर्म" ऐसा वाक्य प्रियंवदा के मुख से निकलता है। वह कहती है कि आश्रमवासी व्यक्तियों का दु:ख दूर करना- यह राजा का धर्म होता है। दाक्षिणात्य पाठ में यहाँ बंगाली पाठ का अनुसरण किया गया है।। इन त्रिविध उदाहरणों से सिद्ध होता है कि दाक्षिणात्य पाठ न केवल संक्षिप्त किया गया पाठ है, उसमें बृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं (रंगावृत्तियों) के पाठान्तरों का यथेच्छ आहरण भी किया गया है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 39, 42 से 44, 139, 80, 97, 108, 19, 23 से 26, 76]

(9) **निष्कर्षत:** कहा जाय तो, इस तृतीयांक के पाठ में एवं दृश्य-योजना में क्रमिकतया षट् परिवर्तन हुए हैं। जैसे कि, 1. बृहत्पाठ परम्परावालों ने (क) मूल कविप्रणीत कुसुमशयना शकुन्तला का दृश्य अभिनीत करते समय (सुदूर अतीत काल में ही) अश्लील पाठ्यांश का प्रक्षेप किया। (ख) रंगमंच पर लेटी हुई नायिका को सलज्जा खडी की गई, फिर उसीको रंगमंच पर बिठा कर मदनलेख के अक्षरों का चिन्तन करती हुई भी दिखाई। यानी कुसुमशयना शकुन्तला का दृश्य दो बार बदल दिया है। (ग) इतना होने के बाद मैथिली रंगकर्मियों ने, कुछ नवीन श्लोकों का प्रक्षेप किया, जिनमें से एक है:- गान्धर्वेण विवाहेन० वाला श्लोक। तत्पश्चात्, लघुपाठ परम्परावालों ने (घ) शिलातल पर बैठे दुष्यन्त के द्वारा, पास में सलज्जा खडी हुई शकुन्तला को अपनी गोदी में बिठा कर उसका पादसंवाहन करने का प्रस्ताव करवाया! (ङ) शकुन्तला को मुनिकन्या (कण्व की कन्या) में से राजर्षिकन्या (विश्वामित्र की कन्या) का दरजा भी पहनाया। एवं (च) 1. जीवितेश्वरी शकुन्तला को मृणालवलय पहनाने का दृश्य एवं 2. पुष्परज से कलुषित हुए शकुन्तला के नेत्र को वदनमारुत से प्रमार्जित कर देने का प्रसंग- इस तरह के, नैसर्गिक प्रेमोपचार को प्रदर्शित करनेवाले दो दृश्यों को हटा देने का समावेश होता है। (छ) अन्तिम दृश्य में गौतमी के साथ दोनों सखियों का भी प्रवेश करवाया है।। हिमालय की चोटियों से निकला परिशुद्ध गङ्गाजल जब कोलकता के पास समुद्र में पहुँचता है तब भयावह हद तक प्रदूषित हो जाता है। वैसे कुसुमशयना शकुन्तला का दृश्य मूल में कैसा था, और वही दृश्य कालक्रम से कैसे कैसे परिवर्तन होकर हम तक पहुँचा है? उसका बोध होते ही साहित्यरसिकों के लिए भूकम्प का (क्वास्ता: क्व निपतिता:। इको झल्। 1-2-9 इति सूत्रभाष्ये पतञ्जलि:) यानी, हम कहाँ थे, और कहाँ आ पहुँचे?- जैसा अनुभव होने लगेगा।।

॥ चतुर्थोऽङ्कः॥

कालिदास के इस नाटक में चतुर्थ अंक को श्रेष्ठ कहा गया है। किन्तु बृहत्पाठ वाले नाटक में से जब कटौती करके लघुपाठवाला नाटक बनाया गया, तब उसके सौन्दर्य में क्या कोई हानि हुई है कि नहीं? वह परीक्षणीय है। एवञ्च, पुरोगामी तीन पाठों में से कौन से पाठान्तर लिये गये, तथा कौन से नये पाठान्तर पैदा किये गये हैं? वह भी समीक्ष्य है। इस जिज्ञासा का शमन निम्नोक्त चर्चा देखने से हो सकेगा।।

(1) इस अंक में मुख्य रूप से शकुन्तला की बिदाई आलिखित की गई है। किन्तु उसकी पूर्वभूमिका के रूप में कवि ने दुर्वासा का शाप-प्रसंग रखा है। इस प्रथम प्रसंग को लेकर, पाठ-परिवर्तन का सिलसिला दाक्षिणात्य रंगावृत्ति में कैसे आगे बढ़ता है? यह देखें तो, काश्मीरी पाठ में दुर्वासा के शाप-मोचन की याचना करने के लिए अनसूया जाती है, और इस शाप-वृत्तान्त को शकुन्तला से संगोपित रखने का प्रस्ताव प्रियंवदा ने किया है। द्वितीय स्तर पर मैथिली पाठ में, शाप-मोचन की याचना करने के लिए अनसूया जाती है। किन्तु शाप-संगोपन

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

का प्रस्ताव भी उसी के मुख से निकलता है। बंगाली पाठ में भी मैथिली पाठानुसारिणी प्रस्तुति दिखाई रही है। जब दाक्षिणात्य पाठ देखते हैं तो उसमें परिवर्तन की तीसरी कड़ी जुड़ जाती है:- यहाँ पर दुर्वासा से शाप-मोचन मांगने के लिए अनसूया नहीं जाती है, बल्कि अनसूया ही प्रियंवदा को दुर्वासा के पास जाने को कहती है! (तथा शाप-वृत्तान्त को संगोपित रखने का प्रस्ताव अनसूया करती है।) ऐसा क्यूं हो गया? उस प्रश्न का उत्तर यह नहीं है कि दाक्षिणात्यों की दृष्टि में अनसूया की अपेक्षा से प्रियंवदा में शाप-मोचन की याचना लेकर जाने का कौशल अधिक था। इसका उत्तर संक्षेपीकरण की प्रवृत्ति में सुनिहित है। दाक्षिणात्य पाठ में, दुर्वासा का श्लोकात्मक शापवचन निकलने के बाद, अनसूया की जो लम्बी उक्ति है उसमें तीन चार हकीकतों के विभिन्न भावों को आरोह-अवरोह के साथ एकत्र निरूपित किया गया है। जिनको बृहत्पाठवाली वाचनाओं में दोनों सहेलियों में पृथक् पृथक् रूप से व्यक्त किया गया था।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक 21]

(2) अल्प समयावधि में इस नाटक को प्रस्तुत करने के लिए दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने परम्परागत पाठ में अनेक स्थान पर कटौती की है। इस सन्दर्भ में इस अंक के श्लोकों में कहाँ, कितनी कटौती की गई है? वह जानना रसप्रद होगा। 1. अंक के आरम्भ में शिष्य प्रभात-काल का वर्णन करते हुए दो श्लोक प्रस्तुत करता है। जिसमें यात्येकतोऽस्तशिखरम्०, तथा अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती० का स्थान है। किन्तु बृहत्पाठ परम्परा में उपलब्ध होनेवाले दो मौलिक श्लोकों (कर्कन्धूनां तुहिनमुपरि० तथा पादन्यासं क्षितिधरगुरो०) को ही निष्कासित कर दिया गया है। यह संक्षेपीकरण के आशय से हुई हानि है। 2. शकुन्तला-बिदाई के प्रसंग में चक्रवाक-पक्षी सम्बन्धी एक गाथा को भी, बंगाली पाठ का अनुसरण करने के कारण, हटाई गई है। जैसे कि, पद्मिनीपत्रान्तरितां व्याहृतां नानुव्याहरति जायाम्०। प्राचीनतम एवं प्राचीनतर काश्मीरी एवं मैथिली वाचनाओं में वह सुरक्षित है। तथा वह मूल पाठ में भी रही होगी। क्यूंकि, इसमें शकुन्तला की जो उक्ति है कि- "नलिनीपत्रान्तरितमपि सहचरम् अप्रेक्षन्ती आतुरा चक्रवाकी आरटति, दुष्करं खल्वहं करोमि" वही उस गाथा का अस्तित्व सूचित कर रही है। संक्षेपीकरण के आशय से हुई यह दूसरी हानि है। 3. शकुन्तला पतिगृह के घर जाते हुए पिता कण्व से पूछती है कि मैं वहाँ आपके बिना कैसे प्राण धारण कर सकूँगी? तब कण्व ने बताया है कि- अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे० इत्यादि। (पतिगृह में शकुन्तला को बहुत सुख मिलनेवाला है, अतः मेरा विरह तुम्हें ध्यान में ही नहीं आयेगा।)यहाँ पर रंगसूचना दी गई है कि- इति पितुः पादयोः पतति। किन्तु बृहत्पाठवाली काश्मीरी एवं मैथिली वाचनाओं में "अपि चेदमवधारय" ऐसे कण्व के शब्दों के साथ, एक दूसरा श्लोक भी मिलता है:-यदा शरीरस्य शरीरिणश्च पृथक्त्वमेकान्तत एव भावि। आहार्ययोगेन वियुज्यमानः परेण को नाम भवेद्विषादी।। दाक्षिणात्य पाठशोधकों ने इस श्लोक को भी, संक्षेपीकरण के आशय से हटा दिया है। कवि ने अन्यत्र भी "अपि च" ऐसे निपातयुग्म का विनियोग करके द्विपार्श्वी परिस्थितियाँ वर्णित की हैं। जिसमें एक ओर शकुन्तला को सुख मिलेगा, तो दूसरी ओर शायद कदाचित् ऐसी सूचना मिले कि अब पिता जी नहीं रहे- तब शकुन्तला को "शरीर और शरीरी का वियोग अवश्यंभावी है" इसको ध्यान में लेकर, विषाद-ग्रस्त नहीं होना है, ऐसा उपदेश दिया गया है।। संक्षेपीकरण करने के उत्साह में यह चौथा मौलिक श्लोक भी दाक्षिणात्य रंगावृत्ति में से हटाया गया है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक 21, 148 एवं 166-167]

(3) परम्परागत काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली पाठों के प्रक्षिप्त पाठ्यांशों के स्वीकार-अस्वीकार विषय में दाक्षिणात्यों का क्या रवैया है, यह भी देखना होगा। 1. इस अंकमें शकुन्तला और पिता कण्व के मुख में माधवीलता से सम्बद्ध एक संवाद प्रक्षिप्त किया गया है, जिसको दाक्षिणात्य रंगावृत्ति ने त्याग दिया है। यहाँ तो केवल वनज्योत्स्नी से बिदाई ले रही शकुन्तला और कण्व की उक्तियाँ रखी गई हैं।। 2. शकुन्तला ने सूर्योदय होते ही शिखामज्जन कर लिया, तब उसको लेकर कतिपय तापसियाँ और गौतमी रंगमंच पर आते हैं। यहाँ तीन तापसिओं के द्वारा शकुन्तला को पति को बहुमता होने, महादेवी शब्द प्राप्त करने और वीरप्रसविनी होने के आशीर्वाद दिये जाते हैं। यद्यपि यह प्रसंग भी बृहत्पाठवाली तीनों परम्पराओं में मिलता है, तथापि ये (69 से 74 क्रमांकवाली)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

उक्तियाँ प्रक्षिप्त हो सकती हैं। क्योंकि इन उक्तियों से शकुन्तला को दिये गये आशीर्वचन बाद में पिता कण्व के मुख से भी कहे जाते हैं, तब पुनरुक्ति जैसा लगता है। एवं पिता के मुख से ही ऐसे आशीर्वाद दिया जाना चाहिए। उसी में उनका औचित्य है। एवञ्च, दाक्षिणात्य पाठ में यहाँ गौतमी की उपस्थिति भी नहीं दिखाई है। अतिप्राचीन काल के रंगकर्मियों ने कन्या-विदाई के "दृश्य" की दर्शन-योग्यता (नयनरम्यता) को बढ़ावा देने के लिए, सम्भवतः उन तापसियों की उक्तियों का प्रक्षेप किया होगा- ऐसी सम्भावना है। यह दृश्य दाक्षिणात्य पाठ में भी स्वीकार्य बना है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक 128-129, 64 से 70]

(4) दाक्षिणात्य रंगावृत्ति में जिन नवीन पाठान्तरों का प्रथमबार प्रवेश किया गया है, उनके भी कुछ उदाहरण देना चाहिएः-1. प्रियंवदा अनसूया को बताती है कि, पिता कण्व ने स्वयं शकुन्तला को बताया है कि सुशिष्यप्रतिपादितेव विद्याऽशोचनीयासि मे संवृत्ता। तद् अद्यैव ऋषिपरिगृहीतां त्वां भर्तुः सकाशं विसर्जयिष्यामि। (यह काश्मीरी-आदि तीनों बृहत्पाठों में उपलब्ध होता है।) उसमें दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने "ऋषिपरिगृहीताम्" शब्द को बदल करके, "राजर्षिपरिगृहीताम्" ऐसा नया विशेषण रखा है। (जैसे तीसरे अंक में शकुन्तला के लिए प्रयुक्त मुनिकन्या शब्द को बदल कर, उसके स्थान में राजर्षिकन्या (=विश्वामित्र की कन्या) विशेषण दिया था।) यानी दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने इस नाटक को राजदरबारी नाटक बनाने का उपक्रम किया है।। 2. तपोवन की वनस्पतियों में निवास कर रहे वनदेवताओं ने शकुन्तला के सुशोभन के लिए प्रदान किए अलंकरण को देख कर गौतमी ने प्रश्न किया है कि- "किं मानसी सृष्टिः"। यह दाक्षिणात्य पाठ द्वारा प्रस्तावित किया नया पाठान्तर है। क्योंकि अन्यत्र तो "किं मानसी सिद्धिः?" ऐसे शब्द मिलते हैं। दाक्षिणात्यों ने कण्व मुनि को मायावी सृष्टि पैदा करनेवाले जादुगर के रूप में सोचा है! 3. इस अंक के अन्तिम श्लोक में कण्व बोलते हैं कि "जातोऽस्मि सद्यो विशदान्तरात्मा चिरस्य निक्षेपम् इवार्पयित्वा।" यह काश्मीरी पाठ है, जिसमें कन्या के लिए "निक्षेप" शब्द का प्रयोग हुआ है। यहाँ दाक्षिणात्य पाठ में प्रथमबार, उसके स्थान में "न्यास" ऐसा नया प्रचलित शब्द रखा गया है। किन्तु इसी अंक में शकुन्तला ने जब अपनी प्रिय लता (माधवीलता/वनज्योत्स्ना)को अमानत के रूप में सहेलियों के हाथ में सौंपा है, तब "एषा द्वयोरपि हस्ते निक्षेपः" कहा है। यानी कृतिनिष्ठ आन्तरिक प्रमाण के अनुसार तो मूल कवि ने "निक्षेप" शब्द ही रखा होगा, जिसको सरलीकरण के आशय से दाक्षिणात्यों ने प्रथमबार बदल दिया है। 4. कण्व मुनि अग्नि की प्रदक्षिणा करवाते हुए "अमीं वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः" श्लोक का गान करते हैं, यहाँ पर दाक्षिणात्य पाठ में सर्व प्रथमबार "ऋक्छन्दसाशास्ते" ऐसी रंगसूचना दी जाती है। ऐसी कोई रंगसूचना पुरोगामी बृहत्पाठ-वाली रंगावृत्तियों में नहीं थी। 5. आश्रम का चिरपरिचित परिसर छोड़ते हुए शकुन्तला कहती है:- आश्रमं परित्यजन्त्याः दुःखदुःखेन मे चरणौ पुरतोमुखौ प्रभवतः। इस तरह के बृहत्पाठ के प्रतिपक्ष में दाक्षिणात्य पाठ में लिखा है कि, आर्यपुत्रदर्शनोत्सुकाया अपि, आश्रमपदं परित्यजन्त्या दुःखेन मे चरणौ विमुखौ वर्तेते। यह भी नया ही पाठान्तर है। किन्तु इस तरह के नये पाठान्तर को प्रस्तावित करते समय, उसी वाक्य के पूर्वार्ध में कहे गये आर्यपुत्र के दर्शन की उत्सुकता का क्या होगा? वह सोचा नहीं गया है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक 21, 84, 53, 131,186, 107, 123]

(5) दाक्षिणात्य पाठ का ग्रथन चतुर्थ क्रमांक पर हुआ है, इस लिए उनके सामने रही बृहत्पाठवाली तीन रंगावृत्तियों के पाठान्तरों में से चयन करने का अवकाश था। अतः, अब कतिपय ऐसे उदाहरण हम देखेंगे कि जिससे सिद्ध होगा कि दाक्षिणात्य पाठ न केवल संक्षिप्त किया गया पाठ है, बल्कि वह संमिश्रित किया गया पाठ भी है। 1. पिता कण्व ने पुत्री को अनुशासन देते हुए कहा है कि- भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी०। यहाँ मैथिली एवं बंगाली पाठों के अनुसार भोगेष्वनु-त्सेकिनी ऐसी शब्दावली थी। दूसरी ओर, काश्मीरी पाठ में भाग्येष्वनुत्सेकिनी शब्द प्रयुक्त हुआ है, जिसका स्वीकार दाक्षिणात्यों ने किया है। 2. शकुन्तला ने पिता का गृह छोडकर, पतिगृह की ओर प्रस्थान शुरू किया तो उसके मन में प्रश्न उठता है कि- कथमिदानीं तातस्याङ्कात् परिभ्रष्टा मलयपर्वतोन्मूलितेव चन्दनलता देशान्तरे कथं जीवितं धारयिष्यामि। इसमें शकुन्तला ने अपने आप को

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

चन्दनलता के साथ उपमित किया है। दाक्षिणात्यों ने यह पाठ मैथिल पाठ में से लिया है। क्योंकि मैथिली पाठ से भी पहले, काश्मीरी पाठ में तो "कथमिदानीं तातेन विरहिता करिसार्थपरिभ्रष्टा करेणुकेव प्राणान् धारयिष्ये।" ऐसा करेणुका का उपमान था। तो इस उदाहरण में दाक्षिणात्यों ने मैथिली पाठ के पाठान्तर का स्वीकार किया है।।

3. ऋषिकुमार नारद और गौतम वनस्पतियों से प्राप्त हुए अलंकार लेकर आते हैं। वे दोनों सहेलियों को अलंकार देकर कुछ ही क्षणों में रंगभूमि से निवृत्त हो जाते हैं। तत्पश्चात् अनसूया और शकुन्तला की दो उक्तियाँ प्रस्तुत होती हैं। उनके बाद ही रंगमंच पर स्नानोत्थित कण्व का प्रवेश होता है। इस तरह की प्रस्तुति बंगाली पाठ का अनुसरण करते हुए दाक्षिणात्य पाठ में रखी गई है। क्योंकि काश्मीर और मैथिली में ऐसा नहीं था। इन त्रिविध उदाहरणों से सिद्ध होता है कि चतुर्थांक में भी दाक्षिणात्य रंगकर्मियों के द्वारा बृहत्पाठवाली रंगावृत्तियों के पाठान्तरों का यथेच्छ आहरण करके, एक संमिश्रित पाठ बनाया गया है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक 158, 164, 93-94]

(6) दाक्षिणात्य रंगावृत्ति में एक-दो नयी रंगसूचनाएँ ऐसी मिल रही हैं जो कि प्रसंगविशेष के मंचन विषयक एवं रंगसज्जा के विषय में नया प्रकाश डाल रही हैं। जैसे कि, (क) शकुन्तला के मङ्गल-प्रस्थान के लिए उपस्थित हुई तापसियों के लिए विशेषण है: साक्षतहस्ताभिः स्वस्ति-वाचनिकाभिः। इसमें से रंगमंच पर जो प्रवृत्तियाँ की जा सकती हैं, वे कल्पनागम्य हैं। तथा, तापसियों के चले जाने के बाद, प्रियंवदा और अनसूया आती हैं। इनके लिए रंगसूचना है: मंगलपात्राणि आदाय उपविश्य। यानी रंगसज्जा के लिए धातु-कुम्भ, घण्टी, दीपक-पात्र एवं शंखादि को वहाँ लाया जा सकता है।। इस तरह की सूचना से प्रतिप्रदेश की भिन्न भिन्न रीति-नीतियाँ आकारित की जा सकती हैं। प्राचीन काल के रिवाजों के स्थान में आधुनिक रिवाजों का स्वागत या संनिवेश करने का यह तरीका रंगकर्मियों की प्रतिभा का परिचय देता है। इति दिक्।। (ख) अंक के आरम्भ में प्रभात-वेला का आकलन करने के लिए रंगमंच पर कण्वशिष्य का आगमन होता है। तत्पश्चात् रंगमंच पर उद्विग्नमना अनसूया का सहसा प्रवेश होता है। यहाँ पर "प्रविश्य पटाक्षेपेण" ऐसी रंगसूचना दी गई है। [इस दाक्षिणात्य पाठ में अन्यत्र षष्ठांक में भी ऐसी ही रंगसूचना दोबार आती है। जैसे कि, परभृतिका और मधुकरिका चूतमञ्जरी तोड़ती है तब उसको रोकने के लिए कुपित कंचुकी का प्रवेश, तथा शकुन्तला का चित्र लेकर चतुरिका जब रंगमंच पर प्रवेश करती है तब "पटाक्षेपेण प्रविशति" की रंगसूचना देखी जाती है।] सामान्यतः किसी भी पात्र का रंगमंच पर सहसा प्रवेश करवाने के लिए संस्कृत नाटकों में "ततः प्रविशति अपटीक्षेपेण" ऐसे शब्दों वाली रंगसूचना दी जाती है। परन्तु यहाँ दाक्षिणात्य पाठ में "पटाक्षेपेण प्रवेश" की जो रंगसूचना है, वह विचारणीय है। टीकाकार राघवभट्ट ने चतुर्थांक में अनसूया का अपटीक्षेप से जो प्रवेश होता है उस पर लिखा है कि- "प्रबुद्धसख्या अनसूयाया अपटीक्षेपेण प्रवेशः। नासूचितस्य पात्रस्य प्रवेशो निर्गमोऽपि चेत्युक्तेः। अपटी जवनिका। अपटी काण्डपटिका प्रतिसीरा जवनिका तिरस्करिणीति हलायुधः। (पृ. 123)"। यहाँ अपटी शब्द का अर्थ ही जनविका बताया गया है। उसका मतलब ऐसा होगा कि नेपथ्य और रंगशीर्ष के बीच का परदा उठा कर अनसूया रंगमंच पर प्रविष्ट होती है। दूसरी ओर, दाक्षिणात्य पाठ पर टीका लिखनेवाले काटयवेम ने लिखा है कि- "पटाक्षेपेण यवनिकापनोदनेन। हर्षशोकादिसंभ्रमयुक्तस्य पात्रस्य प्रवेशः पटाक्षेपेण क्रियत इति कवि-व्यवहारः। (पृ. 78)" यहाँ पर भी पटाक्षेप का वही अर्थ बताया है कि जो राघवभट्ट ने कहा है। किन्तु "अपटी" का कोशगत-अर्थ जवनिका न लेकर, यदि अ-पटी शब्द को निषेधार्थक लिया जाय तो, जवनिकाच्छादन किये बिना किसी पात्र का प्रवेश कहने के लिए "अपटीक्षेपेण" शब्द का प्रयोग हुआ है - ऐसा समझा जा सकता है। दाक्षिणात्य रंगमंच पर "पटाक्षेपेण" प्रवेश का जो अर्थ काटयवेम ने दिया है वह चिन्त्य लगता है। क्योंकि मैथिल पाठ के टीकाकार शंकर ने इस प्रसंग में लिखा है कि- "अपटीक्षेपेणाकस्मादित्यर्थः। पटीक्षेपो न कर्तव्यः आर्त्तराजप्रवेशयोरिति भरतः। (पृ.-235)"। इससे स्पष्ट होता है कि हो सकता है कि अपटीक्षेपेण शब्द का अर्थ "जवनिकाच्छादन

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

किये बिना" ही करना है। इस सन्दर्भ में, दाक्षिणात्य पाठ पर अज्ञात-कर्तृक चर्चा टीका भी अवलोकनीय है:- "प्रविश्येति। अपटाक्षेपेण सम्भ्रमाद् यवनिकां विनेत्यर्थः। (पृ.-141)"। यहाँ पर "अपटाक्षेप" ऐसा पाठान्तर मिल रहा है, और पट का अर्थ यवनिका ही लिया गया है। टीकाकारों के इतने सारे मंथन से और भरत मुनि की पूर्वोक्त सूचना से लगता है कि-

(1) मंचन के प्राचीनतम प्रसंगों में किसी छोटे वस्त्र को फैला कर उसको दो बाजुओं से पकड़ कर मंच पर ले आया जाता होगा, तथा उसके पीछे खड़े रहे पात्र का प्रवेश करवाया जाता होगा। जिसके लिए "अ-पटीक्षेपेण" अथवा "अ-पटाक्षेपेण" शब्द का (यवनिका = पटाच्छादन किये बिना) प्रयोग होता होगा।

(2) किन्तु पश्चाद्वर्ती समय में नेपथ्य और रंगशीर्ष के बीच वाली यवनिका (परदा) हटा कर किसी पात्र का सहसा प्रवेश करवाने की रीति शुरू हुई होगी, जिसके लिए "अपटी-क्षेपेण" शब्द का (यवनिका-अपनोदन) प्रयोग शुरू हुआ होगा। संस्कृत रंगभूमि पर ऐसे सहसा प्रवेश की रीति कहने वाले "अपटीक्षेपेण प्रवेशः" एवं "पटाक्षेपेण/अपटाक्षेपेण प्रवेशः" शब्दों का सम्बन्ध मंचनविधा के परिवर्तनों के साथ जुड़ा हुआ लगता है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक 44, 69 एवं 77]

॥ पञ्चमोऽङ्कः॥

इस पञ्चमाङ्क में शकुन्तला-प्रत्याख्यान का नाट्यकार्य मुख्य रूप से होने वाला है। किन्तु उसके लिए जो दृश्यावली प्रस्तुत करनी है, उसका क्रम रंगकर्मियों के द्वारा कम से कम तीन बार बदला गया है। जैसे कि, (क) काश्मीरी पाठ में, 1. प्रथम दृश्य में कञ्चुकी का प्रवेश होता है, उसने अपने वार्धक्य के सन्दर्भ में विस्मृति का प्रदर्शन किया, जिसमें दुष्यन्त की स्मृति भी (दुर्वासा के शाप के कारण) विलुप्त हुई है- उसकी ध्वनि छिपी हुई है। 2. दूसरे दृश्य में हंसपदिका-गीत प्रस्तुत किया जाता है। राजा की स्मृति यद्यपि शापग्रस्त हो चुकी है, तथापि वे उस गीत के आलाप एवं अक्षरों से जननान्तर-सौहृद को याद करने की विफल कोशिश करते हैं, और पर्याकुलित हो जाते हैं। 3. तीसरे क्रम में वैतालिकों का गान प्रस्तुत किया जाता है, जिसके कारण राजा की धर्मबुद्धि जागृत की जाती है। 4. तत्पश्चात् ही, चतुर्थ क्रमांक पर शकुन्तला-प्रत्याख्यान का मुख्य दृश्य प्रस्तुत किया जाता है। यानी काश्मीरी पाठ की दृश्यावली में कञ्चुकी के श्लोक-गान का भी प्रयोजन है और वैतालिकों के श्लोक-गान का भी कोई प्रयोजन मिलता है। शकुन्तला-प्रत्याख्यान की पूर्व-भूमिका के रूप में, इस तरह के मनोवैज्ञानिक प्रयोजनों वाली दृश्यावली सटीक सिद्ध होती है।। (ख) कालान्तर में मैथिली रंगकर्मियों ने उस तरह की दृश्यावली का क्रम बदल दिया, जिसका अनुसरण बंगाली रंगकर्मियों ने भी किया। 1. प्रथम दृश्य में, कञ्चुकी के वक्तव्य से राजा की विस्मृति का ध्वनन होता है। 2. किन्तु काश्मीरी पाठ में जो तीसरे क्रमांक पर वैतालिकों का गान था, उसको मैथिली पाठ में दूसरे क्रमांक पर रखा गया। जिसको सुन कर राजा ने ऐसा कहा है कि वे राजकार्यशासन से परिश्रान्त हुए थे, लेकिन वैतालिकों के शब्दों से वे नवीकृत हो गये हैं। 3. तत्पश्चात् हंसवतिका का गीत आता है। एवं 4. उसके पीछे, शकुन्तला का प्रत्याख्यान अभिनीत होता है। मतलब कि हंसवतिका के गीत से पर्याकुल हुए दुष्यन्त की धर्मबुद्धि को जगाने का प्रयोजन हट जाता है। ऐसा होने से, मैथिली पाठ में, शकुन्तला-प्रत्याख्यान की पूर्वभूमिका सर्वथा बदल जाती है।। (ग) तीसरा परिवर्तन दाक्षिणात्य पाठ में मिलता है:- 1. यहाँ सब से पहले हंसपदिका के गीत से ही सम्बद्ध दृश्य प्रस्तुत किया गया है। इस गीत का प्रयोजन विदूषक को रंगभूमि से निवृत्त करने में और राजा को पर्याकुलित करने के लिए होता है। 2. तत्पश्चात् दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने कञ्चुकी की तीन श्लोकों वाली एकोक्ति रखी है। जिस के दौरान, लम्बे समय के लिए, राजा को पर्याकुलित स्थिति का अभिनय करते रहना है। 3. वैतालिकों का श्लोक-गान रखा गया है, जिससे राजा की धर्मबुद्धि जागृत की गई है। 4. इसके पीछे, चतुर्थ दृश्य में शकुन्तला-प्रत्याख्यान रखा गया है। इस तरह की परिवर्तित की गई दृश्य-योजना में कञ्चुकी की उक्ति का होना बाधाजनक लगता है, किन्तु यह भी स्पष्ट है कि दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने हंसपदिका के गीत को जो प्राथम्य दिया है, उसके पीछे ऐसी कलादृष्टि दिखती है कि- "तथा परिचुम्ब्य चूतमञ्जरीं कथमेनां विस्मृतोऽसि" शब्दों से वे दर्शकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं कि अब दुर्वासा का शाप दुष्यन्त के मन पर सम्पूर्णतया

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रभावी हो चुका है। जिससे दर्शकगण शकुन्तला-प्रत्याख्यान के आगामी दृश्य के लिए मानसिक रूप से तैयार हो जाय।। इतनी प्रमुख समीक्षा के उपरान्त, दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने इस नाटक को अल्प समयावधि में प्रस्तुत करने के लिए जो अपना संक्षिप्त और संमिश्रित पाठ तैयार किया है, उसका वैशिष्ट्य निम्नोक्त बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट करेंगे:-

(1) इस अंक के काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ में 33 श्लोक हैं, और मैथिली एवं बंगाली रंगावृत्तियों में 34 श्लोक है। उनके सामने संक्षिप्त किये गये दाक्षिणात्य रंगावृत्ति के पाठ में 31 श्लोक हैं। बृहत्पाठ की रंगावृत्तियों में 1. क्षणात् प्रबोधमायाति लंघ्यते०, 2. न तिर्यगवलोकितं चक्षुः०। तथा 3. मय्येवम् अस्मरणदारुणचित्तवृत्तौ० एवं 4. तुम्हे ज्जेव पमाणं जाणध धम्मत्थिदिं० - ये चारों श्लोक अधिक थे, उनका अस्वीकार किया गया है। इनमें से प्रथम श्लोक कञ्चुकी का है। इसके नहीं होने से, यानी उसको हटाने से राजा का स्मृतिलोप व्यंजित नहीं होता है। दूसरा-तीसरा श्लोक दुष्यन्त के द्वारा उच्चरित है, (वह पुनरुक्तिदोषग्रस्त है, तथा मैथिली पाठ का प्रक्षेप है)। जो चौथा श्लोक है, उसमें शकुन्तला ने आधुनिक नारीवादी विचारणा को उजागर करनेवाला श्लोकोच्चार किया है।। तदुपरान्त दाक्षिणात्य पाठ के गद्य भाग में जहाँ संक्षेपी-करण का कार्य दिखता है, वह बहुत कम है।।

(2) दाक्षिणात्य पाठ का दूसरा लक्षण है: विविध वाचनाओं के पाठभेदों का यथेच्छ चयन, एवं बहुविध पाठान्तरों का संमिश्रण करना। (क) काश्मीरी वाचना में से शकुन्तला की उक्ति है कि, ननु एकस्मिन् दिवसे नवमालिकामण्डपे नलिनीपत्रभाजनगतमुदकं तव हस्ते संनिहितमासीत्। इस उक्ति का पाठ मैथिली एवं बंगाली पाठ के "वेतसलतामण्डपे" शब्द से युक्त है। किन्तु इन दोनों तरह के पाठभेदों में से दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने "नवमालिकामण्डपे" शब्द ही पसंद किया है। मैथिली वाचना में प्रतिहारी की उक्ति है: एष अभिनवमार्जनरमणीयः संनिहितहोमधेनुः अग्निशरणालिन्दः। तस्माद् आरोहतु देवः। किन्तु काश्मीरी पाठ में "कपिलाधेनुः" का निर्देश है। यहाँ पर, इन दो पाठान्तरों में से दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने मैथिली पाठ को अपनाया है। बंगाली पाठ में राजा की उक्ति है: किमत्रभवतीवचनसंप्रत्ययादेवास्मान् संभृतदोषैरधिक्षिपथ। इसके प्रतिपक्ष में, काश्मीरी पाठ में "अतिबलेन क्षिण्वन्ति भवन्तः" ऐसा शब्द है, तथा मैथिली पाठ में "अवलेपेन क्षिण्वन्ति भवन्तः" ऐसा कहा है। अतः स्पष्ट होता है कि दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने बंगाली पाठ का अनुसरण करते हुए अपना पाठ बनाया है।। यह एक प्रकार का संमिश्रण है।। (ख) शारद्वत ने शकुन्तला को कहा कि हमने राजा को जो कहना था, वह कह दिया है, और उसने भी उसका उत्तर दे दिया है। अब तुम ही उसे कुछ प्रत्ययवचन कहोः "दीयतामस्मै प्रत्ययप्रतिवचनम्।" यह है दाक्षिणात्य रंगावृत्ति का पाठ। उससे पहले काश्मीरी पाठ में "प्रत्ययवचनम्" ऐसा शब्द था, मैथिली पाठ में "प्रतिवचनम्" और तीसरे बंगाली पाठ में भी "प्रतिवचनम्" ऐसा पाठान्तर चलता था। इन सब पाठभेदों का संमिश्रण करके दाक्षिणात्यों ने अपना पाठ बनाया है। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक 108, 39, 122 एवं 96]

(3) दाक्षिणात्य रंगावृत्ति में ऐसे अनेक स्थान मिलते हैं कि जहाँ सर्वथा नवीन पाठान्तर को प्रस्तावित किया हो। जैसे कि, 1. तदस्या देवीं वसुमतीमन्तरेण मदुपालम्भमवगतोऽस्मि। इसके सामने, यानी काश्मीरी पाठ में "कुलप्रभाम्" ऐसा पाठभेद है, और मैथिली तथा बंगाली में "हंसवतीम्" ऐसे शब्द को रखा गया है। (इस नये पाठान्तर के कारण हंसपदिका-गीत का अन्यापदेश दुर्बोध या विवादास्पद तो बना ही है। किन्तु इस नवीन पाठभेद की ग्राह्यता भी शङ्कास्पद बनी रहती है। क्योंकि प्रथम अंक के भ्रमरबाधा-प्रसंग में राजा के मुख में "कः पौरवे वसुमतीं शासति शासितरि०" श्लोक है, उसमें वसुमती (धरती) शब्द का प्रयोग है, जिससे सूचित होता है कि राजा की पूर्वपरिणीता रानी का नाम वसुमती नहीं हो सकता है!) 2. ननु भवन्त एव लोकतन्त्रनिष्णाताः। इस दाक्षिणात्य पाठ के सामने काश्मीरी पाठ में "लोकयात्रानिष्णाताः" था, मैथिली एवं बंगाली पाठों में "लोक-वृत्तान्त-निष्णाताः" ऐसा चलता था। मतलब कि दाक्षिणात्य पाठ ने एक तीसरा ही पाठान्तर प्रचलन में ला दिया है। 3. शकुन्तला ने जिस मृगबाल को संवर्धित किया था, उसका निर्देश करते हुए दाक्षिणात्य पाठ में उसका नाम "दीर्घापाङ्ग" प्रस्तुत किया है। किन्तु उससे पहले काश्मीरी में उसको "कृतकपुत्रको हरिणक" कहा गया है, मैथिली पाठ में

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

उसे "पुत्रकृत-हरिणक" कहा है, और बंगाली पाठ में उसी को "पुत्रकृतकः मृगशावक" कहा है। इससे सिद्ध होता है कि दाक्षिणात्य पाठ में ही उसको प्रथमबार नामविशेष से उल्लिखित किया गया है। 4. शकुन्तला राजा को प्रत्ययवचन कहते हुए बता रही है कि मेरे मृगबाल ने आपके हाथ से पानी नहीं पिया, लेकिन मेरे हाथ में रहे उसी उदक-पात्र से पानी पिया था। वहाँ राजा ने कहा था कि, सर्वः सगन्धे विश्वसिति। काश्मीरी-आदि तीनों वाचनाओं में उपलब्ध हो रहे इस वाक्य के सामने, दाक्षिणात्यों ने "सर्वः सवर्गेषु बहु विश्वसिति"। ऐसा नया परिष्कृत पाठान्तर प्रस्तुत किया है। 5. गौतमी ऋषिकुमारों को पूछती है कि "प्रत्यादेशपरुषे भर्तरि किं वा मे पुत्रिका करोति"। इस तरह के दाक्षिणात्य पाठ से पहले काश्मीरी में "प्रत्यादेश-कलुषे" ऐसा था, मैथिली पाठ में "प्रत्यादेश-दारुणे" ऐसा था, तथा बंगाली पाठ में "प्रत्यादेश-पिशुने" ऐसा तीसरा ही पाठान्तर चलता था। इससे भी दिखता है कि दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने अनेक स्थान पर नये पाठान्तर दिये हैं। प्रेक्षकों की संवित्ति को झंकृत करने के लिए (अनुभाव= अनु पश्चात् भवन्ति, भावयन्ति च ये भावाः, ते) ऐसे नवीन पाठान्तर बहुत कामयाब सिद्ध होते हैं। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक 8,110, 110, 132]

॥ षष्ठोऽङ्कः॥

कालिदास ने नायक-नायिका का स्थूल-मिलन करवाने से पहले उन दोनों का सूक्ष्म मिलन करवाने के लिए षष्ठांक का प्रणयन किया है। दुष्यन्त की शापग्रस्त स्मृति को मुक्त करवाने के लिए सब से पहले अंगूठी की प्राप्ति होना आवश्यक था। वहाँ से अंक का आरम्भ होता है। शकुन्तला की स्मृति जागृत होने के बाद विप्रलम्भ शृङ्गार का दृश्य होना स्वाभाविक था। जिसके लिए नायक परम्परागत रीति से नायिका का चित्र बनावे, पार्श्व में स्थित नर्मसचिव विदूषक उसकी हास्यजनक प्रतिक्रिया प्रदर्शित करता रहे, इत्यादि दृश्यों को प्रस्तुत किया जाता है। यहाँ पर कवि ने मुख्य रूप से जो नाट्यक्रिया व्यक्त करने का मुनासिब माना है वह ऐसा है कि हरिणी स्वरूपा नायिका को कोई शिकारी प्राप्त नहीं कर सकता है। उसके लिए तो दुष्यन्त को ही अनागस एवं विश्वसनीय हरिणस्वरूप (सगन्ध मृग) हो कर खड़ा रहना होगा। यह सूक्ष्म विचार शकुन्तला के चित्र-प्रसंग निमित्त से अभिव्यक्त किया जाता है। तथा च, भ्रमर का प्रतिस्पर्धी बना दुष्यन्त अन्ततो गत्वा भ्रमर का उपदेष्टा बन कर खड़ा रहता है।। किन्तु कालिदास ने यहाँ कुछ अन्य बातें भी रखी हैं। जैसे कि, दुष्यन्त की विरहावस्था का बयान नायिका शकुन्तला तक कैसे पहुँचाया जाय, प्रत्याख्यान-प्रसंग से शकुन्तला के दिल को जो चोट लगी होगी, जो मनोवेदना हुई होगी, उसका प्रमार्जन कैसे होता है? एवञ्च, शकुन्तला को उठा कर कोई ज्योति अन्तरिक्ष में ले गयी थी, तो अब पृथिवी-स्थानीय नायक का उसके साथ मिलन कैसे होगा? इत्यादि। इस तरह से इस अंक का बहु-आयामी व्याप मूल में ही लम्बा रहा होगा। किन्तु बृहत्पाठ परम्परावाली तीनों वाचनाओं में प्रक्षेपादि से जो अतिशय विस्तीर्ण हो गया था, उसका दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने कैसा संक्षिप्त रूप बनाया है- वह हमारी जिज्ञासा का विषय है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक 21]

(1) दाक्षिणात्य पाठ की संक्षेपीकरण की मुख्य प्रवृत्ति को रेखाङ्कित करने के लिए सब से पहले इस अंक की श्लोक-संख्या का लेखा-जोखा करना चाहिए। काश्मीरी पाठ के इस अंक में 34 श्लोक हैं, मैथिली पाठ में 37 श्लोक है, तथा बंगाली पाठ में 38 श्लोक आये हुए हैं। बृहत्पाठ परम्परा में प्राप्त इन श्लोकों में से दाक्षिणात्य पाठशोधकों/रंगकर्मियों ने 32 श्लोकों को स्वीकारा है। इन 32 श्लोकों में से एक प्राकृत गाथा ऐसी है कि जिसका प्रणयन आर्या-छन्द की परिमिति का परिपालन करने के लिए सर्वथा नवीन शब्दों से किया गया है। जैसे कि, चूतं हर्षितपिककमिति। (6-2) जो आताम्रहरितवृन्तमिति० ऐसी परम्परागत आर्या (गाथा) थी, उसमें छन्दोभङ्ग हो रहा था, इस लिए दाक्षिणात्यों ने यहाँ नवीन रचना प्रस्तुत की है। जिन छह श्लोकों का स्वीकार नहीं किया गया है, वे हैं :-1. उपहितस्मृति०, 2. दीर्घापाङ्गविसारि०, 3. अस्या-स्तुङ्गमिव स्तनद्वयम्०, 4. आमूल-शुद्धसंतति0, 5. प्रागेव जरसा कम्पः, 6. तस्याग्रभागाद् गृहनील०। इनमें से बहुशः श्लोक शकुन्तला के चित्रफलक प्रसंग से जुड़े थे, और जिनका प्रक्षेप मैथिली पाठ में प्रथमबार हुआ था। दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने संक्षिप्त पाठ तैयार करने के

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

लिए जिन श्लोकों को हटाया है, यानी कटौती के लिए जिनको पसंद किया है, वे उचित ही लगते हैं।। [सन्दर्भः उक्ति-क्रमांक 52]

(2) दाक्षिणात्य रंगावृत्ति के पाठ का प्रथम वैशिष्ट्य संक्षेपीकरण है, तो दूसरा वैशिष्ट्य पाठान्तरों का संमिश्रण। जैसा कि पुरोगामी अंकों के विश्लेषण में हमने देखा है, वैसे ही इस षष्ठांक में भी काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली रंगावृत्तियों के पाठान्तरों में से यथेच्छ आहरण करके इस पाठ को आकारित किया गया है। उदाहरण रूप से (क) काश्मीरी पाठ में से, 1. धीवर-प्रसंग में जो प्रथम गाथा में "पशुमारणकर्मदारुणोऽनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रियः" पाठ है, वही पाठ दाक्षिणात्य पाठ में लिया गया है। इस स्थान में मैथिली (षट्कर्मा विद्वान् अपि) और बंगाली (सौनिकः) पाठान्तरों का स्वीकार नहीं किया गया है। 2. दुष्यन्त ने शकुन्तला को अंगूठी पहनाते हुए जिन शब्दों को कहा था, उसका पाठ भी दाक्षिणात्यों ने काश्मीरी रंगावृत्ति से लिया है:-"एकैकमत्र दिवसे दिवसे मदीयं नामाक्षरं गणय, गच्छसि यावदन्तम्"। यहाँ पर मैथिली एवं बंगाली पाठान्तर भिन्न है:-"०नामाक्षरं गणय, यासि न यावदन्तम्"। 3. मातलि ने विदूषक को क्यूं पकडा था, परेशान किया था, इसका उत्तर देते हुए उसने कहा है कि "प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात् प्रतिपद्यते जन्तुः"। दाक्षिणात्य रंगावृत्ति का यह पाठ काश्मीरी रंगावृत्ति में से लिया गया है। क्योंकि मैथिली में "तेजस्वी चाक्षेपात् प्रायः प्रतिपद्यते तेजः" ऐसा पाठ है, तथा बंगाली में "तेजस्वी संक्षोभात् प्रायः प्रतिपद्यते तेजः" ऐसा तीसरा ही पाठान्तर मिलता है। (ख) मैथिली पाठ में से,1. राजा ने अंगुलीयक को उद्देश्य करके "उपालप्स्ये तावदि-दमेवाङ्गुलीयकमिति" ऐसा जो कहा है, वह वाक्य काश्मीरी रंगावृत्ति में कहीं पर है ही नहीं। वह तो मैथिली पाठ में प्रथम बार प्रक्षिप्त किया गया है। अतः कहना होगा कि दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने यह पाठ मैथिली परम्परा में से लिया है। 2. काश्मीरी रंगावृत्ति में रानी कुलप्रभा को स्पर्धालु या ईर्ष्यालु होते हुए नहीं दिखाया है। किन्तु पूर्वपरिणीता रानी वसुमती के ईर्ष्या-कषायिता स्वरूप को मैथिली रंगकर्मियों ने प्रथमबार दाखिल किया है। अतः दाक्षिणात्य पाठ में, जो "देव्या वसुमत्या, अहमेवार्यपुत्रस्य उपनेष्यामीति भणित्वा सबलात्कारं गृहीतः" ऐसा वाक्य चतुरिका बोलती है, वह मैथिली पाठ में से लिया गया है। (ग) बंगाली पाठ में से,1. विदूषक ने जब ऐसी शंका व्यक्त की कि शकुन्तला का किसी आकाशचारी व्यक्ति ने अपहरण किया होगा, तब दुष्यन्त ने कहा है कि "कः पतिदेवतामन्यः परामर्ष्टुमुत्सहते"। दाक्षिणात्य रंगावृत्ति के इस पाठ में बंगाली पाठ का अनुरणन सुनाई पड़ता है। क्योंकि बंगाली पाठ में लिखा है कि "वयस्य, कः पतिव्रतां तामन्यः परामर्ष्टुमुत्सहते"। इत्यादि समाहरणों का ज्ञान पादटिप्पणियों से भी होगा।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक 14, 134, 275, 141,195, 119]

(3) दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने विविध पाठान्तरों का यथेच्छ आहरण तीनों पुरोगामी बृहत्पाठों में से किया है, इतना कहने के बाद यह भी बताना आवश्यक है कि इन रंगकर्मियों ने सर्वथा नवीन पाठान्तरों की भी उद्भावना की है। जैसे कि, 1. नागरिक स्याल ने जब बताया कि राजा ने जब अंगूठी को देखा तो, वे "यतस्तद् प्रेक्ष्य मुहूर्तं प्रकृतिगम्भीरोऽपि पर्युत्सुकमनाः संवृत्तः"। ऐसे बन गये थे। ऐसा पाठ काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली में एक समान है। किन्तु दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने यहाँ "पर्युत्सुकमनाः" शब्द के स्थान में, "पर्यश्रुनयनः" ऐसा पाठभेद दिया है। शकुन्तला की याद दिलानेवाली अंगूठी को देखते ही, राजा की आँखों में आँसू आना- ऐसे सात्त्विकाभिनय को बहुत प्रौढ-कुशल नट ही दिखा सकता है, जिसको अवकाश देनेवाला यह नवीन पाठान्तर है। 2. राजा दुष्यन्त बताते हैं कि मैंने अंगूठी को शकुन्तला के हाथ में पहनाते हुए वादा किया था कि तीन-चार दिनों में ही तुझे मेरा बुलावा मिल जायेगा। लेकिन मैंने, दारुण व्यक्ति ने, किसी मोह में उसका पालन नहीं किया। दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने उसके लिए "तच्च दारुणेन मया मोहात् नानुष्ठितम्।" ऐसा वाक्य लिखा है। किन्तु काश्मीरी, मैथिली और बंगाली रंगावृत्तियों में इसका पाठ भिन्न है:-"तच्च मोहाद् दारुणमनुष्ठितम्"। इस तरह से दक्षिण भारत में कुत्रचित् नवीन पाठान्तरों की उद्भावना की गई है। 3. रानी वसुमती रंगमंच पर आ रही है, ऐसा सुनते ही शकुन्तला का चित्र लेकर विदूषक वहाँ से पलायन करता है। जाते समय राजा से कहता है कि "यदि भवान्

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अन्तः पुरकलहान्मुच्यते, ततो माम् मेघप्रतिछन्दे प्रासादे शब्दापय।" यह दाक्षिणात्य पाठ है। किन्तु काश्मीरी रंगावृत्ति में ऐसा वाक्य नहीं है, मैथिली में "अन्तःपुरकूटपाशात्" ऐसा पाठान्तर है। तथा बंगाली में "अन्तःपुरवागुरातः" ऐसा तीसरा पाठभेद भी चलता था। लेकिन दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने एक चौथे ही पाठान्तर को प्रस्तुत किया है। 4. मातलि के द्वारा प्रताडित विदूषक रोता-धोता हुआ राजा दुष्यन्त को कहता है कि जिसने मुझे पशु की तरह मारा है, पीटा है, उसीका ही तुम स्वागत करते हुए अभिवादन करते हो? यहाँ काश्मीरादि तीनों पाठों में "भोः अहमनेन पशुमारेण मारितः अस्मि। स्वागतेन अभिनन्दसि"। किन्तु दाक्षिणात्य पाठ में "पशुमारेण मारितः" के स्थान में "येन इष्टिपशुमारेण मारितः" ऐसा नवीन पाठान्तर दिया है। बहुत छोटा दिखता यह पाठ-परिवर्तन वक्रोक्ति (सेटायरिक) से परिपूर्ण है। देवराज इन्द्र को रणयज्ञ में राजा दुष्यन्त की सहायता लेनी थी, इस लिए मातलि ने विदूषक को इष्टिपशु बना कर मारा, पीटा! ऐसे नवीन पाठान्तरों में दाक्षिणात्यों की अस्मिता छिपी हुई है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक 39, 135, 199, 266]

(4) दाक्षिणात्य पाठ में कतिपय ऐसे स्थान हैं कि जिसमें मंचनलक्षिता की दृष्टि से नवीन योजनाएँ भी देखी जा सकती हैं। जैसे कि, 1. आरम्भ में धीवर का निरूपण करते हुए दो विशेषण "विस्रगन्धी एवं घोराकृति" दिये गये हैं। ऐसे कोई विशेषण काश्मीरी, मैथिली तथा बंगाली पाठ में नहीं मिलते हैं। जिससे सूचित होता है कि दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने माछीमार की वेशभूषा पर ध्यान केन्द्रित किया है। इसके प्रतिपक्ष में, यानी काश्मीर, मैथिल तथा बंगाली रंगकर्मियों ने ऐसा दिखाया है कि स्याल मछलीमार से प्राप्त की गई अंगूठी को अपनी नासिका से लगा कर सूंघने का अभिनय करता है। 2. स्याल जब राजकुल में जा कर वापस आता है, तब काश्मीरी-आदि तीनों रंगावृत्तियों में, "शीघ्रम् शीघ्रम्" की आवांज देता हुआ रंगमंच पर प्रवेश करता है। जिसको सुनते ही धीवर "हा हतोऽस्मि २" की चीत्कार करता है। यद्यपि स्याल तो यही कहना चाहता था कि शीघ्र ही इस धीवर को बन्धन से मुक्त कर दो- ऐसी राजाज्ञा है। इस तरह की प्रस्तुति में नाटकीयता है। किन्तु दाक्षिणात्य पाठ में ऐसी नाटकीयता हटा दी गई है। 3. मातलि से मारे-पीटेजा रहे विदूषक को लेकर जो प्रसंग काश्मीरादि तीनों रंगावृत्तियों में विस्तार से दिया गया है, उस प्रसंग को दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने संक्षेप के साथ ही प्रस्तुत किया है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक 17, 28-29, 235 से 240]

(5) विदूषक की उक्तियों के विषय में भी परामर्श करना आवश्यक है। 1. दुष्यन्त जब शकुन्तला के विरह में डूबता है तब विदूषक के मुख से "लङ्घित एष भूयोऽपि शकुन्तलावातेन। न जाने कथं चिकित्सितव्यो भविष्यति" ऐसा वाक्य निकलता है। इस तरह की उक्ति काश्मीरादि तीनों रंगावृत्तियों में मिलती है। किन्तु दाक्षिणात्य पाठ में "शकुन्तलाव्याधिना" ऐसा पाठान्तर प्रस्तुत किया है, जो हास्यजनक है। 2. जब दुष्यन्त कहता है कि इस मधुमास में कामदेव ने चूतशर का संधान किया है। तो विदूषक राजा की सहायता करने के लिए कहता है कि "तिष्ठ तावत्। अनेन दण्डकाष्ठेन कन्दर्पव्याधं नाशयिष्यामि"। इस तरह के दाक्षिणात्य पाठ के सामने काश्मीरी में कहा है कि "इमं दण्डकं चूतमन्मथके पातये"। मैथिली एवं बंगाली पाठों में "अनेन दण्डकाष्ठेन कन्दर्पबाणं नाशयामि" ऐसा पाठान्तर है। 3. राजा अफसोस करते हुए सोचते हैं कि जब जलपूर्ण नदी घर पर आई थी, तब मैंने उसकी उपेक्षा कर दी। अब मैं मृगतृष्णिका स्वरूप उसके चित्र को लेकर प्रणयवान् बना हूँ। यहाँ पर दाक्षिणात्य पाठ में, विदूषक की आत्मगत उक्ति है:-"एषोऽत्रभवान् नदीमतिक्रम्य मृगतृष्णिकां संक्रान्तः" जो राजा की संतप्तावस्था का उपहास करते हुए वह बोल रहा है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक 91, 100, 163 एवं 164]

(6) दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने कुछ पात्रों के नवीन नामान्तर प्रस्तुत किये हैं। जैसे कि, 1. अप्सरा का नाम काश्मीरी पाठ में अक्षमाला था, उसको मैथिली एवं बंगाली में मिश्रकेशी किया गया। किन्तु दाक्षिणात्य रंगावृत्ति में उसे सानुमती नाम दिया गया है। इस नवीन नाम का सम्बन्ध अप्सरा की वेशभूषा के साथ हो सकता है। 2. काश्मीरी पाठ में राजा की दासी मेधाविनी का नाम बंगाली पाठ में चतुरिका रखा गया है, उसके साथ में रानी वसुमती की दासी जो पिङ्गलिका थी, उसका अब दाक्षिणात्य पाठ में, नया नाम तरलिका रखा गया है। 3. वारिपथोपजीवी

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(समुद्रव्यवहारी) का नाम धनवृद्ध (द्धि) से धनमित्र किया गया है।।

(7) दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने षष्ठांक के पाठ में एक परम्परागत आर्या (प्राकृत गाथा) का त्याग करके, उसके स्थान में नवीन आर्या को प्रस्तुत किया है,

चूअं हरिसिअपिअअं जीविदसरिसं वसन्दमासस्स।
सच्चरणचरणभग्गं उदुमंगलं विअ पेक्खामि।।

(चूतं हर्षितपिककं जीवितसदृशं वसन्तमासस्य।
षट्चरणचरणभग्नम् ऋतुमङ्गलमिव पश्यामि।।)

इस नवीन प्राकृत गाथा पर काटयवेम एवं घनश्याम पण्डित ने व्याख्या लिखी है। किन्तु अभिराम, श्रीनिवास एवं चर्चा टीकाकार ने तो परम्परागत आर्या को ही स्वीकार्य माना है। ये सभी दक्षिण भारत के ही टीकाकार होते हुए भी ऐसा मतभेद क्यों हो रहा है? यह सोचना आवश्यक है। क्योंकि उपर्युक्त नवीन आर्या का वाक्यार्थ एवं परम्परागत आर्या के वाक्यार्थ में कोई विशेष अन्तर नहीं है। परम्परागत आर्या निम्नोक्त शब्दों में है:-

आतम्महरिअपंडुर जीविदसत्तं वसंतमासस्स।
दिट्ठो सि चूदकोरअ उदुमंगल तुमं पसाएमि।।

(आताम्रहरितपाण्डुर जीवितसत्यं वसन्तमासस्य।
दृष्टोऽसि चूतकोरक ऋतुमंगल त्वां प्रसादयामि।।)

इन दोनों आर्याओं का वाक्यार्थ बहुशः समान ही है। केवल इतना अन्तर है कि काटयवेम के द्वारा स्वीकृत नवीन आर्या सुबोध लगती है। अतः इन दोनों का छन्दःशास्त्रीय विश्लेषण करना जरूरी है। आर्या छन्द का प्राचीन लक्षण ऐसा है कि पूर्वार्ध में 30 मात्रा होनी चाहिए। तथा उत्तरार्ध में 27 मात्राएं होनी चाहिए। तथा पूर्वार्ध में छठा चतुर्मात्रा गण "ज" होना चाहिए, एवं विषम संख्याक गणों में ज-गण नहीं होना चाहिए। उत्तरार्ध में छठा गण केवल एकलघु अक्षरवाला ही होना चाहिए। इस तरह का प्राचीन लक्षण नवीन आर्या में घटित हो रहा है! जैसे कि,

चूअं। हरिसिअ। पिअअं। जीविद। सरिसं। वसन्द। मास। स्स।

2-2, 1-1-1-1, 1-1-2, 2-1-1, 1-1-2, 1-2-1, 2-2, 2 =योग 30

सच्चर। णचरण। भग्गं। उदुमं। गलं वि। अ। पेक्खा। मि।।

2-1-1, 1-1-1-1, 2-2, 1-1-2, 1-2-1, लघु, 2-2, 2 =योग 27

किन्तु परम्परागत आर्या में उपर्युक्त प्राचीन लक्षण घटित नहीं होता है। जैसे कि,

आत। म्महरिअ। पंडुर। जीविद। सत्तं। वसंत। मास। स्स।

2-2, 1-1-1-1, 2-1-1, 2-1-1, 2-2, 1-2-1, 2-2, 2=योग 30

दिट्ठो। सि चूद। कोरअ। उदुमं। गल तु। मं। पसाए। मि।।

2-2, 1-2-1, 2-1-1, 1-1-2, 1-1-1, 2, 1-2-2, 1 =योग 27

इसमें पूर्वार्ध की मात्रा-संख्याएँ लक्षणानुसारी हैं, उसमें छठा गण ज-गण भी चरितार्थ हो रहा है। किन्तु उत्तरार्ध में 27 मात्राओं का योग होते हुए भी, उसके छठे गण में जो केवल एक लघु होना चाहिए- वह लक्षण घटित नहीं होता है। अतः सम्भव है कि प्रकृत गाथा में पिङ्गल मुनि प्रोक्त आर्या का लक्षण घटित नहीं होता है, ऐसा देख कर ही काटयवेम ने नवीन आर्या का ग्रहण किया होगा।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ सप्तमोऽङ्कः॥

अब दाक्षिणात्य पाठ के सप्तमांक की विशेषताएँ बताने का अवसर है। जैसा कि पहले कहा गया है इस पाठ में संक्षिप्त एवं संमिश्रित किया गया पाठ संग्रथित किया गया है। अतः इस अंक की श्लोक-संख्या के सन्दर्भ में तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो, (1) काश्मीरी पाठ के सप्तमांक में 36 श्लोक है, (2) मैथिल पाठ में 36 श्लोक हैं, (3) बंगाली पाठ में 35 श्लोक हैं, एवं (4) इस दाक्षिणात्य पाठ में भी 35 श्लोकों का समावेश किया गया है। यानी श्लोक-संख्या की दृष्टि से, दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने सप्तमांक के पाठ में कोई विशेष कटौती नहीं की है। केवल काश्मीरी पाठ में प्रारम्भ में नाकलासिकाओं का नृत्य पेश करनेवाला जो प्रवेशक आता है, उसमें एक गाथा होने से काश्मीरी पाठ में एक अधिक श्लोक दिख रहा है। तथा मैथिली पाठ में भरतवाक्य से पूर्व में राजा की मंगल-कामना करते हुए दो श्लोक होने से वहाँ पर भी 36 श्लोक मिलते हैं। बंगाली और दाक्षिणात्य पाठ में नाकलासिका-सम्बद्ध गाथा नहीं है, और भरतवाक्य से पूर्व में दो नहीं, केवल एक ही श्लोक से राजा की मंगल-कामना की गई है। अतः उन दोनों पाठों में 35-35 श्लोक उपलब्ध हो रहे हैं।। इसके अलावा जो जो बिन्दु ध्यानास्पद हैं उनका निरूपण अधो भाग में किया जा रहा है।।

(1) कालिदास ने इस अंक में सर्वदमन भरत से जुड़ा जो दृश्य रखा है, वह सर्वोत्कृष्ट है। उसके मंचन के सन्दर्भ में दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने जो एक छोटा सा परिवर्तन किया है वह उल्लेखनीय है। मारीच ऋषि के आश्रम की दो कन्याएँ सर्वदमन के हाथों में से सिंहशावक को मुक्त करवाने के लिए प्रयास करती है। तब द्वितीया कन्या ने बालक को डरावनी भाषा का प्रयोग करते हुए कहा कि तू यदि इस सिंहबाल को नहीं छोड़ेगा तो केसरिणी तुझ पर आक्रमण करेगी। लेकिन सर्वदमन ऐसी भयजनक वाणी के वश में नहीं आता है। बल्कि, उस द्वितीया आश्रम-कन्या का उपहास करता हुआ कहता है कि, अरे! मैं तो बहुत ड़र गया तेरी बात से। इतना कह कर, वह अपने अधरोष्ठ को दिखाता है। यहाँ इत्यधरं दर्शयति- ऐसी रंगसूचना दाक्षिणात्य पाठ में दी गई है।। किन्तु काश्मीर, मैथिली एवं बंगाली पाठों में यहाँ पर, इत्यधरं दशति- ऐसी रंगसूचना है। जिसका मतलब होगा कि इस प्रसंग में बालक सर्वदमन अपने दांतों से अधरोष्ठ को दबाता है। यानी वह बालक उस कन्या को वहाँ से भागने का इङ्गित देता है। इस तरह से इन दोनों रंगसूचनाओं से आङ्गिकाभिनय में बड़ा अन्तर खड़ा होता है।।

(2) दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने जो अपनी रंगावृत्ति का पाठ बनाया है, उसमें काश्मीरादि तीनों बृहत्पाठों में से विविध पाठान्तरों का यथेच्छ समाहरण किया है। जिनके कुछ निदर्श इस तरह के है:- (क) काश्मीरी रंगावृत्ति में से, 1. शकुन्तला के पुत्र सर्वदमन भरत की अंगुलि पर जो अपराजिता औषधि मारीच ने पहनाई थी, उसके सन्दर्भ में कहा गया है कि, "शृणोतु महाराजः, एषा अपराजिता नामौषधिरस्य जातकर्मसमये भगवता मारीचेन दत्ता। एतां किल मातापितरावात्मानं च वर्जयित्वा अपरो भूमिपतितां न गृह्णाति।" यहाँ पर, "जातकर्मसमये" के स्थान में, मैथिल पाठ में "नाम-करणसमये" ऐसा पाठान्तर था। लेकिन दाक्षिणात्यों ने यहाँ काश्मीरी पाठ-परम्परा का शब्द ही रखा है। 2. दुष्यन्त क्षमा-याचना करता हुआ शकुन्तला के पाँव पड़ता है और "सुतनु हृदयात् प्रत्यादेश-व्यलीकमपैतु ते०" (7-24) बोलता है। तब शकुन्तला कहती है कि आर्यपुत्र, आपका उसमें कोई दोष नहीं है। मेरे ही किन्हीं पुराकृत कर्मों का यह फल था- इत्यादि। तदनन्तर ही, दुष्यन्त शकुन्तला के पाँव से खड़ा होता है। यानी राजा उपर्युक्त दोनों उक्तियों के बाद ही खड़ा होता है। किन्तु बंगाली पाठ में राजा पहले सुतनु० वाला श्लोक बोलता है, तत्पश्चात् पादवन्दन करता है। तो, दाक्षिणात्य पाठ तैयार करनेवालों के सामने बंगाली पाठ होते हुए भी, उन्होंने राजा के पादवन्दन की योजना काश्मीरी पाठ से ली है।। (ख) मैथिली रंगावृत्ति में से लिए गये पाठान्तर के कुछ निदर्श ऐसे हैं :- 1. जब आश्रम-कन्या मृत्तिकामयूर ला कर सर्वदमन के हाथ में रखते हुए कहती है कि- सर्वदमन, शकुन्तलावण्यं पश्य। (वक्त्री को इस वाक्य में शकुन्त-लावण्यम् का बोध करना अभीष्ट था। लेकिन श्रोता भरत को शकुन्तला-वण्ण जैसे पदच्छेद से अपनी माता का ही बोध होता है।) जिसके कारण, पास में खड़े दुष्यन्त को मालूम हो जाता है कि इस बालक की माता का नाम शकुन्तला है। इस तरह से द्विधा

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अर्थावगति करनेवाला संवाद काश्मीरी पाठ में नहीं था। अतः दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने इस उक्ति का पाठान्तर मैथिल परम्परा में से लिया होगा। 2. दुष्यन्त ने अदिति और मारीच ऋषि के द्वन्द्व का वर्णन करते हुए श्लोक 7-27 प्रस्तुत किया है। जिसके चतुर्थ चरण में "द्वन्द्वं दक्षमरीचसंभवमिदं तत् स्रष्टुरेकान्तरम्" ऐसे शब्द हैं। यह पाठ भी दाक्षिणात्यों ने मैथिल पाठ-परम्परा में से लिया है। क्योंकि काश्मीरी पाठ में तो, इस प्रसंग में "ब्रह्मानन्तर-विश्वयोनि-सहितं द्वन्द्वं तदेतद् वशी" ऐसा भिन्न पाठ था। (ग) बंगाली पाठ में से जो पाठान्तर लिये गये हैं, उनमें से एक निदर्श देखते हैं :- शकुन्तला पूछती है कि मैं आपको कैसे याद आयी? तब दुष्यन्त कहता है कि "उद्धृतविषादशल्यः कथयिष्यामि"। दाक्षिणात्यों ने यह पाठ बंगाली पाठ में से लिया है। क्योंकि बंगाली पाठ के दोनों पुरोगामी पाठों में, यानी काश्मीरी एवं मैथिली में, "उद्धृतशल्यविषादः कथयिष्यामि" ऐसा भिन्न पदक्रमवाला पाठ चलता था।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक 100, 126 से 129, 88, 151 एवं131]

(3) दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने काश्मीरादि तीनों रंगावृत्तियों के पाठों में से पाठान्तरोंका यथेच्छ आहरण करने के साथ साथ, अपनी निजी दृष्टि से कुछ नवीन पाठान्तरों को भी दाखिल किये है। जैसे कि, 1. दुष्यन्त सर्वदमन जैसे दुर्ललित पुत्र की स्पृहा करता है और कहता है कि, "धन्यास्तदङ्गरजसा मलिनीभवन्ति।" (7-17) यहाँ पर काश्मीरी, मैथिली और बंगाली पाठों में जो पङ्क्ति है, वह "धान्यास्तद् अङ्गरजसा परुषीभवन्ति।" ऐसी थी।। 2. जब आश्रम-कन्याने कहा कि अप्सराओं के साथ सम्बन्ध होने से इस बालक की माता ने इसको देवगुरु की इस तपोवन भूमि में ही जन्म दिया है। तो इसको सुन कर, दुष्यन्त बोलता है:- हन्त, द्वितीयमिदम् आशाजननम्। किन्तु यहाँ पर जो काश्मीरी पाठ है उसमें तो, हन्त, द्वितीयमिदमाशङ्काजननम्। ऐसा पाठान्तर है। तथा मैथिली और बंगाली पाठों में, हन्त द्वितीयमाश्वासजननम्। ऐसा पाठभेद था।। 3. मारीच ऋषि ने आशीर्वाद देते हुए कहा है कि- "आखण्डलसमो भर्ता, जयन्तप्रतिमः सुतः। आशीरन्या न ते योग्या, पौलोम्याः सदृशी भव।।" (7-28) यहाँ पर भी काश्मीरादि पाठों में "पौलोमीमङ्गला भव।" ऐसे शब्द हैं।। 4. अंक के अन्त भाग में, दाक्षिणात्य पाठ में, जो तव भवतु बिडौजाः० (7-34) वाला श्लोक है, उसकी दूसरी पङ्क्ति में "त्वमपि विततयज्ञः स्वर्गिणो भावयालम्" ऐसे शब्द हैं। किन्तु मैथिली और बंगाली पाठों में उसी पङ्क्ति के शब्द बहुत भिन्न हैं :-"त्वमपि विहितयज्ञो वज्रिणं प्रीणयालमि" ति। (तथा काश्मीरी पाठ में तो यह श्लोक ही नहीं है।) [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक 68, 84, 157 एवं 188]

❖ ❖ ❖

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ अभिज्ञानशाकुन्तलम्[1]॥

॥ प्रथमोऽङ्कः॥

(दाक्षिणात्य- वाचनानुसारी पाठः)

या सृष्टिः स्त्रष्टुराद्या वहति[2] विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वभूत[3]-प्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्न[4]-स्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः॥ 1 - 1॥ [1]

(नान्द्यन्ते) [2]

सूत्रधारः- [5](नेपथ्याभिमुखमवलोक्य[6]) आर्ये, यदि नैपथ्य[7]-विधानमवसितं, तर्हीतस्तावदागम्यताम्। [3]

(प्रविश्य) [4]

नटी- अय्य[8], इयं मि। आणवेदु अज्जो, को णिओओ अणुचिट्ठीअदु त्ति। (आर्य, इयमस्मि। आज्ञापयत्वार्यः, को नियोगोऽनुष्ठीयतामिति।) [5]

सूत्रधारः- आर्ये, अभिरूपभूयिष्ठा परिषदियम्। अद्य खलु कालिदासग्रथितवस्तुना नवेन[9] नाटकेनोपस्थातव्यम् अस्माभिः। तत्प्रतिपात्रमाधीयतां यत्नः। [6]

नटी- सुविहिदप्पओअदाए णट्टस्स[10] ण किं वि परिहीआद। (सुविहितप्रयोगतया नाट्यस्य न किमपि परिहास्यते।) [7]

सूत्रधारः- आर्ये, कथयामि ते भूतार्थम्। [8]

आ परितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः॥1 - 2॥ [9]

---

1. काश्मीर-पाठे "ऽभिज्ञानशकुन्तले" ति शीर्षकम्। मैथिल-बंगीय-पाठयो- "रभिज्ञानशकुन्तलमि" ति। दाक्षिणात्यैः रंगकर्मिभिः शकुन्तलाया अभिज्ञानेन सह शाकुन्तलेयस्याप्यभिज्ञानं नाटकस्यास्य विषयोऽभीष्ट इति सूचनाय तृतीयमिदं शीर्षकं प्रस्तावितं स्याद्।
2. काश्मीर-पाठे "या स्त्रष्टुस्सृष्टिराद्या पिबती" ति। मैथिल-पाठे "या स्त्रष्टुः सृष्टिराद्या वहती" ति। बंगीय-पाठे "या सृष्टिः स्त्रष्टुराद्या वहती" ति। दाक्षिणात्य-पाठो बंगीय-पाठमनुसरति।
3. काश्मीरादिषु त्रिषु पाठेषु "सर्वबीजे" ति। प्रथमतो दाक्षिणात्यैरत्र पाठभेदो विहितः।
4. काश्मीरादि-पाठेषु "प्रसन्न" इति। प्रथमतो दाक्षिणात्यैरत्र पाठभेदो विहितः।
5. मैथिली-बंगीय-पाठयोरत्रा- "लमतिविस्तरेणे" ति वाक्यमस्ति। दाक्षिणात्य-पाठो काश्मीर-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठे "ऽलमतिविस्तरेणे" ति नास्ति। किन्तु मैथिल-बंगीय-पाठयोस्तु तदस्ति। दाक्षिणात्य-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठमनुसरति।
7. काश्मीरादिषु नेपथ्यमित्येव। काटयवेमः - नैपथ्यं नाम भूषाङ्गरचनासंजीवरूपं चतुर्विधमाहार्यमुच्यत इति।
8. काश्मीर-पाठे "ऽय्ये" ति। मैथिल-बंगीय-पाठयो-"रज्जे" ति।
9. काश्मीर-पाठे नास्ति नाटकस्यास्य नामाभिधानम्। बंगीय-पाठे तच्चोपलभ्यते। दाक्षिणात्य-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति। नवेन नाटकेनेति सर्वेषु पाठेषु पठ्यते, मैथिल-पाठे नवेनेति, (अपूर्वमित्यपि) विशेषणं नास्ति।
10. काश्मीरादि-पाठे-"ण्वार्यस्ये" ति। दाक्षिणात्यैरत्र प्रथमतः पाठभेदो विहितः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

नटी- अज्ज, एवं णेदं। अनन्तरकरणिज्जं दाव अज्जो आणवेदु। (आर्य, एवमेतत्। अनन्तरकरणीयं तावदार्य आज्ञापयतु।) [10]

सूत्रधारः- किमन्यदस्याः श्रुतिप्रसादनतः। [11]

नटी[1] - अज्ज कदमं उण उदुं अहिकरिअ गाइस्सं। (आर्य, कतमं पुनर्ऋतुमधिकृत्य गास्यामि।) [12]

सूत्रधारः- नन्विममेव नातिचिरप्रवृत्तमुपभोगक्षमं ग्रीष्मसमयमधिकृत्य गीयतां तावत्। संप्रति हि -[13]

सुभगसलिलावगाहाः पाटलसंसर्ग[2] सुरभिवनवाताः।
प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः।। 1 - 3।। [14]

नटी- तह। (तथा) (गायति) [15]

[इसि]इसि[3] चुम्बिआइ भमरेहिं[4] सुउमारकेसरसिहाइं।
ओदंसअन्ति पमदाओ दअमाणा सिरि (री)सकुसुमाइं[5]।। 1 -4।।

ईषच्चुम्बितानि भ्रमरैः सुकुमारकेसरशिखानि।
अवतंसयन्ति प्रमदा दयमानाः शिरीषकुसुमानि।। 1 -4।। [16]

सूत्रधारः- आर्ये, सुष्ठु गीतम्। अहो गीतानुबद्ध[6]-चित्तवृत्तिरालिखित इव सर्वतो रङ्गः। तददानीं कतमत् प्रकरणम्[7] आश्रित्यैन-माराधयामः। [17]

नटी- णं अज्जमिस्सेहिं पढमं एव्व आणत्त अहिण्णाणसाउन्दलं णाम अपुव्वं[8] णाडअं पओए अधिकरीअदुत्ति।
(नन्वार्यमिश्रैः प्रथममेवाज्ञप्तम् अभिज्ञानशाकुन्तलं नामापूर्वं नाटकं प्रयोगेऽधिक्रियतामिति।) [18]

सूत्रधारः- आर्ये, सम्यगनुबोधितोऽस्मि। अस्मिन्क्षणे विस्मृतं खलु मया। कुतः-[19]

तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः।
एष राजेव दुष्यन्तः[9] सारङ्गेणातिरंहसा।। 1 -5।। (इति निष्क्रान्तौ) [20]

।। प्रस्तावना।। [21]

---

1. काश्मीर-पाठे नट्या मुखे नास्तीयमुक्तिः। सूत्रधारेण पूर्वस्मिन् वाक्य एव ग्रीष्मकालमधिकृत्य गीतगानाय सूचितम्। दाक्षिणात्य-पाठो मैथिल-पाठमत्रानुसरति। बंगीय-पाठो मैथिलानुगो दृश्यते।
2. काश्मीरादि-पाठेषु "पाटलिसंसर्ग" इति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं दृश्यते।
3. काश्मीरादिषु त्रिषु पाठेषु "खण" इति। दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं नवीनः पाठभेदो विहितः। किन्तु प्राकृत-गाथाया (आर्यायाः) पूर्वार्धे 28 मात्रा भवन्ति, तेन छन्दोभङ्गो भवति।
4. काश्मीर-पाठ इतः परं "सुअअ (सुभग)" इति। मैथिल-पाठे "उअह (ऊहत)" इति। बंगीय-पाठे "उअह (ऊहत)" इति। [उअह - उअ अर्थात् पश्यत - पश्येति, प्राकृत-प्रकाशः (1-14 इत्यत्र भामहवृत्तिः), हैम-व्याकरणे च उअ पश्य। 8-2-211 इति]
5. मैथिल-बंगीय-पाठयोः "अवअंसअन्ति सदअं सिरीसकुसुमाइँ पमदाओ" इति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठम् अनुसरति। किन्तु अवदंसअन्तीत्यस्य स्थाने ओदंसअन्तीति रूपं परिवर्त्यते। [अस्या गाथाया दलद्वये 30+30 मात्रासमूहं साधयितुं "इसि" इत्यत्र स्थाने "इसि इसि" इति करणीयम्, "सिरिस" इत्यत्र "सिरीस" इति च। तेन कथमपि गीतिः सिध्यति।]
6. काश्मीर-पाठे "गीतरागावबद्ध०" इति। मैथिल-बंगीय-पाठयोः "रागापहृत०" इति।
7. मैथिल-बंगीय-पाठयोः "प्रयोगमि" ति। दाक्षिणात्य-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
8. काश्मीर-पाठे "अहिणाणसउन्तला नाम अपुरवं" इति। मैथिल-पाठे "अहिण्णाणसउन्तलं अहिरूअ" इति। बंगीय-पाठे "अहिण्णाणसउन्तलं णाम अउव्वं" इति।
9 काश्मीर-पाठे "दुष्ष्यन्त" इति। मैथिल-पाठे "दुष्मन्त" इति। बंगीय-पाठे "दुःषन्त" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(ततः प्रविशति मृगानुसारी सशरचापहस्तो राजा रथेन[1] सूतश्च।) [22]

सूतः- (राजानं मृगं चावलोक्य[2]) आयुष्मन्, [23]

कृष्णसारे ददच्चक्षुस्त्वयि चाधिज्यकार्मुके।
मृगानुसारिणं साक्षात्पश्यामीव पिनाकिनम्॥ 1 - 6॥ [24]

राजा- सूत, दूरममुना सारङ्गेण वयम् आकृष्टाः। अयं पुनरिदानीमपि -[25]

ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने बद्धदृष्टिः
पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभिया भूयसा पूर्वकायम्।
दर्भैरर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतत्वाद्वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति[3]॥ 1 - 7॥ [26]

(सविस्मयम्) कथमनुपतत एव मे यत्नप्रेक्षणीयः संवृत्तः। [27]

सूतः- आयुष्मन्, उत्खातिनी भूमिरिति मया रश्मिसंयमनाद्रथस्य मन्दीकृतो वेगः। तेन मृग एष विप्रकृष्टान्तरः संवृत्तः। सम्प्रति समदेशवर्तिनस्ते न दुरासदो भविष्यति। [28]

राजा- तेन हि विमुच्यन्तामभीशवः[4]। [29]

सूतः- यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (रथवेगं निरूप्य) आयुष्मन्, पश्य, पश्य -[30]

मुक्तेषु रश्मिषु निरायतपूर्वकाया
निष्कम्पचामरशिखा निभृतोर्ध्वकर्णाः।
आत्मोत्थितैरपि रजोभिरलङ्घनीया
धावन्त्यमी मृगजवाक्षमयेव रथ्याः[5]॥ 1 - 8॥ [31]

राजा- सत्यम्। अतीत्य हरितो हरीन् वर्तन्ते वाजिनः[6]। तथा हि -[32]

यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद्विपुलतां
यदर्धे विच्छिन्नं भवति कृतसन्धानमिव तत्।
प्रकृत्या यद्वक्रं तदपि समरेखं नयनयो
र्न मे दूरे किञ्चित्क्षणमपि न पार्श्वे रथजवात्[7]॥ 1 - 9॥ [33]

सूत, पश्यैनं व्यापाद्यमानम्। [32] (शरसन्धानं नाटयति[8])। [34]

---

1. काश्मीर-पाठे "०रथयातकेन मृगानुसारी चापहस्तो राजा दुष्यन्तस्सूतश्चे" ति। मैथिल-पाठे "०मृगम् अनुसरन् सशरचापहस्तो रथारूढो राजा सूतश्चे" ति। बंगीय-पाठे "०रथारूढः सशरचापहस्तो मृगम् अनुसरन् राजा सूतश्चे" ति।
2. मैथिल-पाठे "समन्तादवलोक्ये" ति। दाक्षिणात्य-पाठः काश्मीर-बंगीय-पाठावनुसरति।
3. काश्मीर-पाठे "दत्तदृष्टिः, भयाद्, शष्पैः, वितत, प्लुतित्वादि" ति पाठभेदाः। मैथिल-बंगीय-पाठयोः "दत्तदृष्टिः, भयाद्, शष्पैः, विवृत, प्लुतत्वादि" ति। दाक्षिणात्य-पाठे प्रथमवारं पाठभेदः कृतः।
4. काश्मीरादि-पाठेषु "०भीषव" इति। दाक्षि.-पाठे शब्दवर्तनी-भेदः क्रियते।
5. काश्मीर-पाठे "निभृतोच्च, द्धतैः, धावन्ति त" इति। मै.-बं.-पाठयोः प्रथमपादं विहायान्येषु पादेषु परिवर्तनं दृश्यते। दाक्षिणात्य-पाठः काश्मीर-पाठं बहुधानुसरति।
6. का.-पाठे "ऽतीत्य हरिहरीनपि हरयो वर्तन्त" इति। मै.-बं.-पाठयोः "सूत, कथमतीत्य हरिणं हरयो०" इति।
7. काश्मीर-पाठे "किञ्चिन्न च भवती" ति। दाक्षिणात्य-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति, बंगीय-पाठवद्।
8. काश्मीरादि-पाठेषु नास्त्येतादृशं वाक्यं, रंगसूचना चेति। दाक्षिणात्यैः रंगकर्मिभिरत्र नाटकीयता प्रदर्शिता।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

[नेपथ्ये] [35]

भो भो राजन्, आश्रममृगोऽयं, न हन्तव्यो न हन्तव्यः[1]। [36]

सूतः- (आकर्ण्य विलोक्य) आयुष्मन्, अस्य खलु ते बाणपातवर्तिनः कृष्णसारस्यान्तरे तपस्विनः संप्राप्ताः। [37]

राजा- (ससंभ्रमम्) तेन हि निगृह्यन्तां वाजिनः। [38]

सूतः- तथा (इति रथं स्थापयति) [39]

(ततः प्रविशत्यात्मना तृतीयो वैखानसः[2]) [40]

वैखानसः- (हस्तमुद्यम्य) राजन्, आश्रममृगोऽयं, न हन्तव्यो न हन्तव्यः। [41]

न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्
मृदुनि मृगशरीरे तूल[3]-राशाविवाग्निः।
क्व बत हरिणकानां जीवितं चातिलोलं
क्व च निशितनिपाता वज्रसाराः[4] शरास्ते[5]॥ 1 -10॥ [42]

तत्साधुकृतसन्धानं प्रतिसंहर सायकम्।
आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि॥ 1 - 11॥ [43]

राजा- एष प्रतिसंहृतः। (इति यथोक्तं करोति) [44]

वैखानसः- सदृशमेतत् पुरुवंशप्रदीपस्य भवतः। [45]

जन्म यस्य पुरोर्वंशे युक्तरूपमिदं तव।
पुत्रमेवंगुणोपेतं चक्रवर्तिनमाप्नुहि[6]॥ 1 - 12॥ [46]

इतरौ[7] - (बाहू उद्यम्य) सर्वथा चक्रवर्तिनं पुत्रमाप्नुहि। [47]

राजा- (सप्रणामम्) प्रतिगृहीतं ब्राह्मणवचनम्[8]। [48]

वैखानसः- राजन्, समिदाहरणाय प्रस्थिता वयम्। एष खलु कण्वस्य कुलपतेरनुमालिनीतीरमाश्रमो दृश्यते। न चेदन्यकार्यातिपातः, प्रविश्यात्र प्रतिगृह्यतामतिथिसत्कारः। अपि च -[49]

धर्म्यास्तपोधनानां प्रतिहतविघ्नाः क्रियाः समवलोक्य।
ज्ञास्यसि कियद्भुजो मे रक्षति मौर्वीकिणाङ्क इति॥ 1 -13॥ [50]

राजा- अपि सन्निहितोऽत्र कुलपतिः। [51]

---

1. काश्मीर-पाठे नास्त्येतादृशी नेपथ्योक्तिः। मै.-बं.-पाठावनुसृत्य दाक्षिणात्यैरत्र नेपथ्योक्तिः प्रयुक्ता।
2. काश्मीर-पाठे "०तृतीयस्तापस" इति। मै.-पाठे "०द्वितीयस्तापस" इति। बं.-पाठे "सशिष्यो वैखानस" इति। दाक्षिणात्य-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
3. मै.-पाठे, बं.-पाठे च "पुष्प०" इति। दाक्षिणात्यैः पाठशोधकैः परिवर्तनं कृतम्।
4. मै.-पाठे, बं.-पाठे च "सारपुङ्खा" इति। दाक्षिणात्यैः पाठशोधकैः परिवर्तनं कृतम्।
5. काश्मीर-पाठे नास्त्ययं श्लोकः। मै.-पाठे प्रथमं प्रक्षिप्तश्चायं श्लोकः। बं.-पाठेऽपि स्वीकृतः। किन्तु दाक्षि.-पाठे काटयवेमेन, चर्चाकारेणाभिरामेण च नैव व्याख्यातोऽयं श्लोकः। किन्तु श्रीनिवासेन घनश्यामेन च व्याख्यातः।
6. काश्मीरादि-पाठेषु नास्त्ययं श्लोकः। दाक्षिणात्यैः प्रथमतया प्रक्षिप्तं प्रतिभाति।
7. काश्मीरादि-पाठेषु वैखानसेन सहागतस्य शिष्यस्य, तापसद्वयस्य वा निष्प्रयोजनता रंगोपरि दृश्यते। अतो दाक्षिणात्य-रंगकर्मिभिरत्र वैखानसस्य श्लोकबद्धमाशीवर्चनं शिष्यद्वयस्य मुखयोर्गद्यवाक्यरूपेणापि संस्थाप्यते।
8. काश्मीर-पाठे "तपोधनवचनमि" ति। दाक्षिणात्य-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति, बंगीय-पाठवद्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

वैखानसः- इदानीमेव दुहितरम्[1] अतिथिसत्काराय नियुज्य दैवमस्याः प्रतिकूलं शमयितुं सोमतीर्थं गतः। [52]

राजा- भवतु तां द्रक्ष्यामि। सैव विदितभक्तिं[2] मां महर्षेः कथयिष्यति[3]। [53]

वैखानसः- साधयामस्तावत्। [54]

(इति सशिष्यो निष्क्रान्तः) [55]

राजा- सूत, चोदयाश्वान्। पुण्याश्रमदर्शनेन तावदात्मानं पुनीमहे। [56]

सूतः- यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (भूयो रथवेगं निरूपयति) [57]

राजा- (समन्तादवलोक्य) सूत, अकथितोऽपि ज्ञायत एव यथायमाभोगस्तपोवनस्येति। [58]

सूतः- कथमिव। [59]

राजा- किं न पश्यति भवान्। इह हि, [60]

नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरूणामधः
प्रस्निग्धाः क्वचिदिङ्गुदीफलभिदः सूच्यन्त एवोपलाः।
विश्वासोपगमादभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगा-
स्तोयाधारपथाश्च वल्कलशिखानिष्यन्दरेखाङ्किताः[4]॥ 1-14॥ [61]

सूतः- सर्वमुपपन्नम्। [62]

राजा- (स्तोकमन्तरं गत्वा) सूत, तपोवनवासिनामुपरोधो मा भूत्। एतावत्येव रथं स्थापय, यावद् अवतरामि। [63]

सूतः- धृताः प्रग्रहाः। अवतरत्वायुष्यमान्। [64]

राजा- (अवतीर्य) विनीतवेष-प्रवेश्यानि तपोवनानि नाम। इदं तावद् गृह्यताम्। (इति सूतहस्ते धनुश्चाऽभरणानि चोपनीय) यावदाश्रमवासिनः प्रत्यवेक्ष्योपावर्ते तावदार्द्रपृष्ठाः क्रियन्तां वाजिनः। [65]

सूतः- यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (इति निष्क्रान्तः) [66]

राजा- (परिक्रम्यावलोक्य च) इदमाश्रमपदम्। यावत् प्रविशामि। (प्रविश्य। निमित्तं सूचयन्) [67]

शान्तमिदमाश्रमपदं, स्फुरति च बाहुः, कुतः फलमिहास्य।
अथवा, भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र॥ 1-15॥ [68]

[नेपथ्ये] [69]

इदो इदो सहीओ। (इतः इतः सख्यौ[5]।) [70]

राजा- (कर्णं दत्त्वा) अये, दक्षिणेन वृक्षवाटिकामालाप[6] इव श्रूयते। यावदत्र गच्छामि। (परिक्रम्यावलोक्य च) अये,

---

1. काश्मीर-पाठे "ऽनवद्यां दुहितरं शकुन्तलामि" ति। मै.-पाठे "कण्वस्य साधिदैवत इव शकुन्तलया०" इति।
2. का.-पाठे "विहितभक्तिमि" ति। मै.-बं.-पाठयो "र्विदितभक्तिरि" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
3. का.-पाठे "महर्षेः करिष्यती" ति। मै.-पाठे "मुनये निवेदयिष्यती" ति। बं.-पाठे "महर्षये निवेदयिष्यती" ति। दाक्षि.-पाठश्चिन्त्यः। यतो हि- कथ्-धातुना सह महर्षय इति चतुर्थी प्रयोक्तव्या।
4. काश्मीरादि-पाठेष्वितः परं "कुल्याम्भोभिः प्रसृतचपलैः०" इति श्लोकोऽपि वर्तते। दाक्षिणात्य-पाठात्स श्लोको निष्कासितः स्यात्, संक्षेपीकरणस्याशयात्। काटयवेमेन राघवभट्टेन च नैव व्याख्यातोऽयं श्लोकः।
5. का.-पाठे "प्रियसखी" ति। मै.-बं.-पाठयोः "प्रियसख्यावि" ति द्विवचनम्। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति। अनेन पाठभेदेन सूच्यते यन्मैथिलादिषु नेपथ्यतः शकुन्तलैव सखीद्वयमावह्वयति।
6. काश्मीर-पाठे "कुसुमपादपवीथीमि" ति। दाक्षिणात्य-पाठो मै.-पाठमनुसरति। रंगसज्जायां भेदो लक्ष्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

एतास्तपस्विकन्याः स्वप्रमाणानुरूपैः सेचनघटैर्बालपादपेभ्यः पयो दातुमित एवाभिवर्तन्ते। [71]

(निपुणं निरूप्य) अहो, मधुरमासां दर्शनम्[1]। [72]

शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनो यतिजनस्य[2]।
दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः[3]॥ 1 -16॥ [73]

यावदिमां तरुच्छायामाश्रित्य[4] प्रतिपालयामि। (इति विलोकयन्स्थितः) [74]

(ततः प्रविशति यथोक्तव्यापारा सह सखीभ्यां शकुन्तला) [75]

शकुन्तला- इदो इदो सहीओ। (इतः इतः सख्यौ।) [76]

अनसूया- हला सउन्दले, तुवत्तो बि तादकस्सवस्स अस्समरुक्खआ पिअदरत्ति तक्केमि। जं णोमालिआकुमुमपेसला वि तुमं एव्व दाणं आलवालसेअणे णिउत्ता। (सखि शकुन्तले, त्वत्तोऽपि तातकाश्यपस्याश्रमवृक्षकाः प्रियतरा इति तर्कयामि। यन्नवमालिकाकुसुमपेशलापि त्वमेव तेषामालवालसेचने नियुक्ता।) [77]

शकुन्तला- ण केअलं तादणिओओ। मम वि क्खु सोदरसिणेहो एदेसु। (न केवलं तातनियोगः। ममापि खलु सोदरस्नेह एतेषु। (वृक्षसेचनं रूपयति[5]) [78]

राजा- कथमियं सा कण्वदुहिता। असाधुदर्शी खलु तत्रभवान् काश्यपः[6], य इमामाश्रमधर्मे नियुङ्क्ते। [79]

इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया समिल्लतां[7] छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति॥ 1 -17॥ [80]

भवतु। पादपान्तरित[8] एव विस्रब्धं तावदेनां पश्यामि। (तथा करोति।) [81]

शकुन्तला- सहि अणसूए, अदय-पिणद्धेणथणवक्कलेण पिअंवदाए दिढं णिअंदिदम्मि। सिढिलेहि दाव इमं।
(सखि अनसूये, अदयपिनद्धेन स्तनवल्कलेन प्रियंवदया दृढं नियन्त्रितास्मि। शिथिलय तावदिमम्।) [82]

अनसूया- तह। (तथा।) (इति शिथिलयति[9]।) [83]

प्रियंवदा- (सस्मितम्) एत्थ दाव पओहरवित्थारइत्तअं अत्तणो जोव्वणं उवाळह। (अत्र तावत् पयोधर-विस्तारयितृकमात्मनो यौवनमुपालभस्व।) [84]

राजा- काममननुरूपमस्या वपुषो वल्कलम्। न पुनरलंकारश्रियं न पुष्णाति। कुतः, [85]

---

1. काश्मीर-पाठे "माधुर्यकान्तं खलु दर्शनमासामि" ति। बं.-पाठे "चित्रमासां दर्शनमि" ति। दाक्षिणात्य-पाठो मैथिल-पाठमनुसरत्यत्र।
2. काश्मीरादि-पाठेषु "यदि जनस्ये" ति। केवलं दाक्षिणात्य-पाठे काटयवेमेन च प्रदत्तोऽयं पाठभेदः।
3. काश्मीर-पाठे श्लोकस्यास्य स्थानान्तरणं कृतम्। येन तत्रास्माच्छ्लोकात्पूर्वं सखीनां वार्तालापः प्रस्तावितः। किन्तु दाक्षिणात्य-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठे "पादपान्तरित एवे" ति। मै.-बं.-पाठयो "श्छायामाश्रित" इति। नायकस्याङ्गिकाभिनयो भिद्यते, काश्मीर-पाठेन।
5. काश्मीर-पाठे "वृक्षसेकं निरूपयती" ति। मै.-बं.-पाठयोस्तु "वृक्षसेचनं नाटयती" ति।
6. मै.-बं.-पाठयोः "कण्व" इति। दाक्षि.-पाठः का.-पाठमनुसरति। (एकस्यामेवोक्तौ कण्व-काश्यपेति नामद्वयस्य विनियोगः पाठप्रदूषणमत्र जातमिति सूचयति। यस्य च मूलं काश्मीर-पाठे वर्तते।)
7. मै.-बं.-पाठयोः "शमीलतामि" ति। दाक्षि.-पाठः का.-पाठमनुसरति।
8. दाक्षिणात्य-पाठे नायकः प्रथमं तरुच्छायामाश्रयते, शकुन्तलां दृष्ट्वा स पादपान्तरितो भवतीति विशेषः।
9. काश्मीर-पाठे शकुन्तलां प्रथमं राज्ञः संनिकर्षमानीयते, ततश्च वल्कलशिथिलीकरणमभिनीयते। अत्र दाक्षि.-पाठे प्रियंवदायाः परिचय एव प्रसंगेनानेन भवतीति विशेषः। दाक्षिणात्य-पाठे लाघवेन सह कलादृष्टी राजते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं[1]
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।। 1 -18।। [86]

शकुन्तला- (अग्रतोऽवलोक्य) एसो वादेरिदपल्लवंगुलीहिं तुवरावेदि मं केसररुक्खो। जाव णं संभावेदि। (एष वातेरितपल्लवाङ्गुलीभिस्त्वरयतीव मां केसरवृक्षकः[2]। यावदेनं सम्भावयामि।) [87]

(परिक्रामति) [88]

प्रियंवदा- हला सउन्दले, एत्थ एव्व दाव मुहुत्तं चिट्ठ। (हला शकुन्तले, अत्रैव तावन्मुहूर्तं तिष्ठ।)

शकुन्तला- किं णिमित्तं। (किं निमित्तम्।) [89]

प्रियंवदा- जाव तुए उवगदाए लदासणाहो विअ अअं केसररुक्खो मे प़डिभादि। (यावत्त्वयोपगतया लतासनाथ इवायं केसरवृक्षो मे प्रतिभाति।) [90]

शकुन्तला- अदो क्खु सि पिअंवदा। (अतः खलु असि प्रियंवदा।) [91]

राजा- प्रियंवदा प्रियमपि तथ्यमाह। अस्याः खलु, [92]

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम्।। 1 -19।। [93]

अनसूया- सहि सउन्दले, इअं सअंवरवहू सहआरस्स तुए किदणामहेआ वणजोसिणित्ति णोमालिआ। विसुमरिदा सि इमां। (हला शकुन्तले, इयं स्वयंवरवधूः सहकारस्य त्वया कृतनामधेया वनज्योत्स्नीति[3] नवमालिका। विस्मृतासीमाम्।) [94]

शकुन्तला- तह जइ अत्ताणं विसुमरिस्सं। (लतामुपेत्यावलोक्य च) सहि, रमणीए क्खु काले इमस्स लदापाअवमिहुणस्स वइअरो संवुत्तो। जं णवकुसुमजोव्वणा वणजोसिणी, बद्धपल्लवदाए उवभोअक्खमो बालसहआरो। (तथा यद्यात्मानं विस्मरिष्यामि। सखि, रमणीये खलु कालेऽस्य लतापादपमिथुनस्य व्यतिकरः संवृत्तः, यतो नवकुसुमयौवना वनज्योत्स्नी, बद्धपल्लवतयोपभोगक्षमः बालसहकारः[4]।) [95]

(पश्यन्ती तिष्ठति) [96]

प्रियंवदा- अणसूए, जाणासि किं णिमित्तं सउन्दला वणजोसिणिं अदिमत्तं पेक्खदित्ति। (अनसूये,जानासि किं निमित्तं शकुन्तला वनज्योत्स्नीमतिमात्रं पश्यतीति।) [97]

अनसूया- ण क्खु विभावेमि। कहेहि। (न खलु विभावयामि। कथय।) [98]

प्रियंवदा- जह वणजोसिणी अणुरूवेण पाअवेण संगदा, एव्वं णाम अहं वि अत्तणो अणुरूवं वरं लहेअंत्ति। (यथा वनज्योत्स्नी अनुरूपेण पादपेन संगता एवं नामाहमप्यात्मनोऽनुरूपं वरं लभेयेति[5]।) [99]

---

1. मैथिल-पाठ इतः पूर्वम् "इदमुपहितसूक्ष्मग्रन्थिना स्कन्धदेशे०" इति श्लोको वर्तते। काश्मीर-पाठे संक्षेपी-करणस्याशयेन निष्कासितः। दाक्षिणात्य-पाठोऽपि काश्मीर-पाठमनुसृत्य श्लोकमिमं दूरीकरोति।
2. काश्मीर-पाठे "बकुलवृक्ष" इति। मै.-बं.-पाठयोः "चूतवृक्ष" इति। दाक्षि.-पाठः केसरवृक्ष इति पाठभेदं ददाति।
3. काश्मीर-पाठे "वनतोषिण" इति सहकारस्य विशेषणम्। मै.-पाठे वनतोषिणीति नवमालिकाया विशेषणम्, दाक्षि.-पाठे नवमालिकाया विशेषणत्वेन वनज्योत्स्नीति पदम्।
4. दाक्षि.-पाठे प्रथमवारमिदं परिवर्तनं दृश्यते। अन्यत्र सहकार इत्येव। दक्षिण-रंगभूमौ रंगसज्जा परिवर्तिता।
5. काश्मीर-पाठे "वनतोषिणानुसदृशेन पादपेन संगता नवमालिके" ति। तच्चाधिकं समीचीनं प्रतिभाति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला- एसो णूणं तुह अत्तगदो मणोरहो। (एष नूनं तवात्मगतो मनोरथः[1]।) [100]

(कलशमावर्जयति[2]।)

राजा- अपि नाम कुलपतेरियमसवर्णक्षेत्रसम्भवा स्यात्। अथवा कृतं सन्देहेन, [102]

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः।
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः॥ 1 -20॥ [103]

तथापि तत्त्वत एनामुपलप्स्ये। [104]

शकुन्तला- (ससंभ्रमम्) अम्हो, सलिलसेअणसंभंतो णोमालिअं उज्झिअ वअणं मे महुअरो अहिवट्टइ। (अहो, सलिलसेचनसंभ्रान्तो नवमालिकामुज्झित्य वदनं मे मधुकरोऽभिवर्तते। [105]

(भ्रमरबाधां निरूपयति) [106]

राजा- (विलोक्य-सस्पृहम्[3]) [107]

चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचरः[4]।
करौ[5] व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं
वयं तत्त्वान्वेषान्[6] मधुकर हतास्त्वं खलु कृती[7]॥ 1 -21॥ [108]

शकुन्तला- सहीओ, परित्ताअह परित्ताअह इमं इमिणा दुव्विणीदेण महुअरेण परिभूअमाणाम्। (सख्यौ, परित्रायेथां परित्रायेथां इमामनेन दुर्विनीतेन मधुकरेणाभिभूयमानां माम्। [109]

उभे - (सस्मितम्) का वअं परित्तादुं। दुस्सन्दं अक्कन्दं। राअरक्खणिज्जाइ तवोवणाइ णाम। (के आवां परित्रातुम्। दुष्यन्तमाक्रन्द। राजरक्षणीयानि तपोवनानि नाम।) [110]

राजा- अवसरोऽयमात्मानं दर्शयितुम्। कः कोऽत्र भोः[8]। ... (इत्यर्धोक्ते। विचार्य) राजभावस्त्वभिज्ञातो भवेत्। भवतु। एवमभिधास्ये[9]। [112]

शकुन्तला- ण एसो दुट्ठो विरमदि। ता अण्णदो गच्छम्हि। (अपदान्तरे स्थित्वा। सदृष्टिक्षेपम्।) कहं इदो वि मं अणुसरदि। (नैषो दुष्टो विरमति। तावदन्यतो गच्छामि। कथमितोऽपि मामनुसरति।) [113]

---

1. मैथिल-पाठ इतः परं माधवीलता-सम्बन्धी संवादः प्रक्षिप्यते। दाक्षि.-पाठे स च नाङ्गीक्रियते।
2. काश्मीर-पाठवदत्राप्यनया रंगसूचनया नायिका घटं भूमौ स्थापयति। येन च हस्तद्वयेन भ्रमरस्यापसारणं कर्तुं शक्यते, तेन च "करौ व्याधुन्वत्याः पिबसि०" इति शब्दाः संगच्छन्ते। मै.-पाठे, बं.-पाठे च नायिका हस्तेनैकेन भ्रमरस्यापसारणां करोति। तत्र कलशमावर्जयतीत्यस्य कलशमधोमुखीकरोतीत्यर्थः स्यात्।
3. मैथिल-पाठेऽनया रंगसूचनया "यतो यतः षट्चरणोऽभिवर्तते०" इति श्लोकः प्रदीयते। किन्तु काश्मीर-पाठे संक्षेपीकरणस्याशयेन श्लोकोऽयं निष्कासितः। दाक्षिणात्य-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठे "कर्णान्तिकगत" इति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
5. मै.-बं.-पाठयोः "करमि" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठे "वयं देवैर्मौग्ध्यादि" ति। दाक्षि.-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
7. वस्तुतोऽस्य श्लोकस्यावतारणा तु "सासूयमि" ति रंगसूचनया भवितुमर्हतीति चतुर्थेन चरणेन सिध्यति।
8. काश्मीरादि-पाठेषु "न भेतव्यं, न भेतव्यमि" ति। तादृशं वाक्यमत्र दाक्षिणात्य-पाठे नास्ति। दाक्षि.-पाठे दुष्यन्तस्य नृपत्वमेवाविष्क्रियतेऽत्र, न नायकत्वम्।
9. काश्मीरादि-पाठेषु "भवत्वतिथिसमुचिताचारसत्कारमवलम्बिष्य" इति। दाक्षि.-पाठे संक्षेपो दृश्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- (सत्वरमुपसृत्य) [114]

कः पौरवे वसुमतीं शासति शासितरि दुर्विनीतानाम्।
अयमाचरत्यविनयं मुग्धासु तपस्विकन्यासु।। 1 -22।। [115]

(सर्वा राजानं दृष्ट्वा किञ्चिदिव सम्भ्रान्ताः) [116]

अनसूया[1]- अज्ज, ण क्खु किंचिद् अच्चाहिदं। इअं णो पिअसही महुअरेण आउलीकिअमाणा कादरीभूता। (आर्य, न खलु किमप्यत्याहितम्। इयं नौ प्रियसखी मधुकरेणाकुलीक्रियमाणा कातरीभूता।) [117]

(इति शकुन्तलां दर्शयति) [118]

राजा- (शकुन्तलाभिमुखो भूत्वा[2]) भवति, अपि तपो वर्धते। [119]

अनसूया- दाणिं अदिहिविसेसलाहेण। साअदं अज्जस्स। सहि सउन्दले, गच्छ उडअं। फलमिस्सं अग्धं उवहर। इदं पादोदअं भविस्सदि। (इदानीमतिथिविशेषलाभेन। स्वागतम् आर्यस्य। हला शकुन्तले, गच्छ उटजम्। फलमिश्रम् अर्घमुपहर। इदं पादोदकं भविष्यति।) [120]

राजा- भवतीनां सूनृतयैव गिरा कृतमातिथ्यम्। [121]

प्रियंवदा- तेण हि, इमस्सिं पच्छाअसीअलाए सत्तवण्णवेदिआए उवविसिअ परिस्समविणोदं करेदु अज्जो। (तेन ह्यस्यां प्रच्छायशीतलायां सप्तवर्णवेदिकायां उपविश्य परिश्रमविनोदं करोत्वार्यः।) [122]

राजा- नूनं यूयमप्यनेन कर्मणा[3] परिश्रान्ताः। [123]

अनसूया- सहि सउन्दले, उइदं णो पज्जुवासणं अदिहीणं। ततो एत्थ उवविसम्ह। (सखि शकुन्तले, उचितं नः पर्युपासनमतिथीनाम्। तस्मादत्रोपविशामः।) [124] (सर्वे यथोचितमुपविशन्ति[4]) [125]

शकुन्तला- (सविमर्शमात्मगतम्) किं णु क्खु इमं पेक्खिअ तवोवणविरोहिणो विआरस्स गमणीअम्हि संवुत्ता। (किं नु खल्विमं प्रेक्ष्य तपोवनविरोधिनो विकारस्य गमनीयास्मि संवृत्ता।) [126]

राजा- (सर्वा विलोक्य) अहो, समवयोरूपरमणीयं सौहार्दम् भवतीनाम्। [127]

प्रियंवदा- (जनान्तिकम्) अणसूए, को णु क्खु एसो चदुरगम्भीराकिदी महुरं पिअं आलवन्तो पहाववन्दो विअ दीसइ। (अनसूये, को नु खल्वेष चतुरगम्भीराकृतिर्मधुरमालपन् प्रभवन्निव दृश्यते।) [128]

अनसूया- (जनान्तिकम्) सहि, मम वि अत्थि कोदूहलं। पुच्छिस्सं दाव णं। (प्रकाशम्) अज्जस महुरालावजणिदो वीसासो मं मन्तावेदि, कदमो अज्जेण राएसिवंसो अलंकरीअदि। कदमो वा विरहपज्जूसुअजणो किदो देसो। किं णिमित्तं वा सुउमारो वि तवोवणपरिस्समस्स अत्ता पत्तदं उवणीदो। (सखि, ममाप्यस्ति कौतूहलम्। प्रक्ष्यामि तावदेनम्। (प्रकाशम्) आर्यस्य मधुरालापजनितः विश्रम्भः मां मन्त्रयते। कतम आर्येण राजर्षिवंशः[5] अलङ्क्रियते, कतमो वा विरहपर्युत्सुकजनः कृतो देशः[6]। किम् निमित्तं वा सुकुमारोऽपि तपोवनपरिश्रमस्यात्मा पात्रतामुपनीतः।) [129]

शकुन्तला- (आत्मगतम्) हिअह, मा उत्तम्म। जं एसा तुए चिन्तिदं अणसूया मन्तेदि। (हृदय, मा उत्ताम्य। एषा त्वया

---

1. उक्तिरियं मैथिल-पाठे सखीद्वयेन सम्मिल्यैवोच्यते। दाक्षि.-पाठो काश्मीर-पाठमत्रानुसरति।
2. काश्मीरादि-पाठेषु "शकुन्तलामुपेत्ये" ति। आङ्गिकाभिनये भेदो भविष्यति।
3. काश्मीर-पाठे बंगीय-पाठे च "धर्मकर्मणे" ति। दाक्षि.-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठे नास्त्येतादृशी रंगसूचना। मै.-पाठे, बं.-पाठे च "सर्वा उपविशन्ती" ति।
5. का.-मै.-पाठयोः "वर्ण" इति। दाक्षि.-पाठो बंगीय-पाठमत्रानुसरति।
6. काश्मीर-पाठे द्वितीयोऽयं प्रश्नो न वर्तते। दाक्षि.-पाठोऽत्र मै.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

चिन्तितमनसूया मन्त्रयते।) [130]

राजा- (आत्मगतम्) कथमिदानीमात्मानं निवेदयामि, कथं वात्मापहारं करोमि। भवतु। एवं तावदेनां वक्ष्ये[1]। (प्रकाशम्) भवति[2], यः पौरवेण राज्ञा धर्माधिकारे नियुक्तः सोऽहमाश्रमिणाम् अविघ्नक्रियोपलम्भाय[3] धर्मारण्यम् आयातः। [131]

अनसूया- सणाहा दाणिं धम्मआरिणो। (सनाथा इदानीं धर्मचारिणः।) [132]

(शकुन्तला शृङ्गारलज्जां नाटयति।) [133]

सख्यौ- (उभयोराकारं विदित्वा जनान्तिकम्।) सहि सउन्दले, जइ अज्ज तादो संणिहिदो भवे......।
(सखि शकुन्तले, यद्यद्य तातः सन्निहितो भवेत्...।) [134]

शकुन्तला- (सरोषम्)...... किं भवे। (किं भवेत्।) [135]

सख्यौ- इमं जीविदसव्वस्सेण अदिहिविसेसं किदत्थीकरिस्सदि। (...इमं जीवितसर्वस्वेन अतिथिविशेषं कृतार्थीकरिष्यति।) [136]

शकुन्तला- हला अवेमि[4]। किं वि हिअए करिअ मन्तेध। ण वो वअणं सुणिस्सं। (हला, अवैमि। किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रयेथे। न वां वचनं श्रोष्यामि।) [137]

राजा- वयमपि तावद्भवत्योः सखीगतं किञ्चित् पृच्छामः। [138]

सख्यौ- अनुग्गहो खु[5] अब्भत्थणा। (अनुग्रहः खल्वभ्यर्थना।) [139]

राजा- भगवान्काश्यपः शाश्वते ब्रह्मणि स्थित इति प्रकाशः[6]। इयं च वां सखी तदात्मजेति कथमेतत्। [140]

अनसूया- सुणादु अज्जो। अत्थि कोसिओत्ति किदगोत्तणामहेओ महप्पहाओ राएसी। (शृणोत्वार्यः। अस्ति कौशिक इति कृतगोत्रनामधेयो महाप्रभावो राजर्षिः।) [141]

राजा- अस्ति, श्रूयते[7]। [142]

अनसूया- तं णो पिअसहिए पहवं अवगच्छ। तेण उज्झिआए सरीरसंवड्ढणादिहिं तादकस्सवो से पिदा।
(तं नौ प्रियसख्याः प्रभवम् अवगच्छ। तेन उज्झितायाः शरीरसंवर्धनादिभिस्तातकाश्यपोऽस्याः पिता।) [143]

राजा- उज्झितशब्देन जनितं मे कुतूहलम्। आ मूलाच्छ्रोतुमिच्छामि। [144]

अनसूया- सुणादु अज्जो। पुरा किल तस्स राएसिणो उग्गे तवसि वट्टमाणस्स किं वि जादसङ्केहिं देवेहिं मेणआ णाम अच्छरा णिअमविग्घकारिणी पेसिदा। (शृणोत्वार्यः। पुरा किल तस्य राजर्षेरुग्रे तपसि वर्तमानस्य किमपि जातशङ्कैः देवैः मेनका नामाप्सराः नियमविघ्नकारिणी प्रेषिता।) [145]

राजा- अस्त्येतदन्यसमाधिभीरुत्वं देवानाम्। ततस्ततः। [146]

---

1. वाक्यमिदं प्रक्षिप्तं स्यात्, अन्येषु काश्मीरादि-पाठेषु स्वगतमिति रंगसूचनया प्रस्तावितत्वात्।
2. काश्मीरादि-पाठेष्वितः परं "वेदविदस्मी" त्यधिकम्।
3. मै.-पाठे, बं.-पाठे च "पुण्याश्रमदर्शनप्रसंगेने" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठे "सरोषमि ति रंगसूचना। ततः "इं अवेध (युवामपेतम्)"। मै.-पाठे च "अवेधे" ति। बं.-पाठे "सकृतक-कोपमि" ति, बं.-पाठे "सकृतक-कोपमि" ति, "अवेधे" ति च। दाक्षि.' -पाठे रोषाभावः, अवैमीत्यस्यार्थान्तरश्च।
5. काश्मीरादि-पाठेषु "वि (अपि)" इति प्रश्नार्थकता। दाक्षि.-पाठे काकुभेदः परिलक्ष्यते।
6. काश्मीरादि-पाठेषु शब्दावेतौ न स्तः। दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं प्रविष्टौ।
7. का.-पाठे, मै.-पाठे च "प्रकाशस्तत्रभवान्नि" ति। बं.-पाठे "प्रकाश" इति नास्ति। दाक्षि.-पाठे शब्दोऽयं स्थानान्तरितः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अनसूया- तदो वसन्तोदारसमए ताए उम्मादइत्तअं रूवं दिट्ठीण........। (इत्योर्धोक्ते लज्जया विरमति[1]।)
(ततो वसन्तोदारसमये[2] तस्या उन्मादयितृकं रूपं दृष्ट्वा... ...।) [147]

राजा- परस्ताद्[3] अवगम्यत एव। सर्वथाप्सरःसम्भवैषा। [148]

अनसूया- अह इं। (अथ किम्) [149]

राजा- उपपद्यते-[150]

मानुषीषु[4] कथं वा स्यादस्य रूपस्य सम्भवः।
न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्॥ 1 -23॥ [151]

(शकुन्तलाऽधोमुखी तिष्ठति) [152]

राजा- (आत्मगतम्) लब्धावकाशो मे मनोरथः। किन्तु सख्याः परिहासोदाहृतां वरप्रार्थनां श्रुत्वा धृतद्वैधीभावकातरं मे मनः[5]। [153]

प्रियंवदा- (सस्मितम् शकुन्तलां विलोक्य, नायकाभिमुखी भूत्वा) किं वि वत्तुकामो विअ अज्जो। (किमपि वक्तुकाम इवार्यः।) [154] (शकुन्तला सखीमङ्गुल्या तर्जयति।) [155]

राजा- सम्यगुपलक्षितं भवत्या। अस्ति नः सच्चरितश्रवणलोभादन्यदपि प्रष्टव्यम्। [156]

प्रियंवदा- अलं विआरिअ। अणिअन्तणाणुओओ तवस्सिअणो नाम। (अलं विचार्य। अनियन्त्रणानुयोगस्तपस्विजनो नाम।) [157]

राजा- सखीं ते ज्ञातुमिच्छामि -[158]

वैखानसं किमनया व्रतमाप्रदानाद्-
व्यापाररोधि मदनस्य निषेवितव्यम्।
अत्यन्तमेव मदिरेक्षणवल्लभाभि[6] -
राहो निवत्स्यति समं हरिणाङ्गनाभिः॥ 1 -24॥ [159]

प्रियंवदा- अज्ज, धम्माचरणे वि परवसो अअं जणो। गुरुणो उण से अणुरूववरप्पदाणे संकप्पो। (आर्य, धर्माचरणेऽपि परवशोऽयं जनः। गुरोः पुनरस्या अनुरूपवरप्रदाने संकल्पः।) [160]

राजा- (आत्मगतम्) न खलु दुरवापेयं प्रार्थना[7]। [161]

भव हृदय साभिलाषं सम्प्रति सन्देहनिर्णयो जातः।
आशङ्कसे यदग्निं तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नम्॥ 1 -25॥ [162]

---

1. मै.-पाठे "रूपयती" ति। बं.-पाठे "नाटयती" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठे "वसन्तोदयसमय" इति। मै.-पाठे, बं.-पाठे च "वसन्तोदाररमणीय" इति।
3. काश्मीरादि-पाठेषु "पुरस्तादि" ति। कालान्तेषु कथं शब्दार्थावगतिः परिवर्त्यते, तदत्र विचारणीयम्।
4. बं.-पाठे "मानुषीभ्य" इति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति। सप्तमीप्रयोग एव प्राचीनतमः।
5. काश्मीर-पाठे "श्रुत्वापि न श्रद्-दधते कातरं मे मन" इति। मै.-पाठे "०पि व्रतद्वैतकातरं०" इति। बं.-पाठे न सन्ति शब्दा एते। दाक्षि. -पाठे मैथिल-पाठस्य परिष्कारो दृश्यते।
6. काश्मीरादि-पाठे-"ष्वात्मसदृशेक्षण0" इति। दाक्षिणात्य-पाठे प्रथमवारं परिवर्तनं कृतम्। यद्यपि टीकाकारेण काटयवेमेन (राघवभट्टेन च) प्रदत्तोऽयं पाठः, तथापि सोऽयुक्तम्, उपमानेन सह न संगच्छते।
7. का.-पाठे "न खलु दुर्लभैषा प्रार्थने" ति। मै.-बं.-पाठयोर्नास्तीदम्। दाक्षि.-पाठः का.- पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला- (सरोषमिव) अणसूए, अहं गमिस्सं। (अनसूये, अहम् गमिष्यामि।) [163]

अनसूया- किं णिमित्तं। (किं निमित्तम्।) [164]

शकुन्तला- इमं असंबद्धप्पलाविणिं पिअंवदं अज्जाए गोदमिए णिवेदेदुं। (इमामसंबद्धप्रलापिनीं प्रियंवदाम् आर्यायै गौतम्यै निवेदयितुम्।) [165]

अनसूया - सहि, ण जुत्तं अकिदसक्कारं अदिहिविसेसं उज्झिअ आस्समवासिणो जणस्स सच्छन्ददो गन्दुं। (सखि, न युक्तम् अकृतसत्कारमतिथिविशेषं उज्झित्य आश्रमवासिनः जनस्य स्वच्छन्दतो गन्तुम्।) [166]

(शकुन्तला न किञ्चिदुक्त्वा प्रस्थिता।) [167]

राजा- (आत्मगतम्[1]) आः कथं गच्छति। (ग्रहीतुमिच्छन्निगृह्यात्मानम्[2]) अहो, चेष्टाप्रतिरूपिका कामिनां मनोवृत्तिः। [168], अहं हि-

अनुयास्यन् मुनितनयां सहसा विनयेन वारितप्रसरः।
स्थानादनुच्चलन्नपि गत्वेव[3] पुनः प्रतिनिवृत्तः॥ 1 -26॥ [169]

प्रियंवदा- (शकुन्तलां निरूप्य) सहि, ण दे जुत्तं गन्दुं। (सखि, न ते युक्तं गन्तुम्[4]।) [170]

शकुन्तला- (सभ्रूभङ्गम्) किंणिमित्तं। (किंनिमित्तम्।) [171]

प्रियंवदा- रुक्खसेअणाइ दुवे मे धारेसि। एहि दाव। इदो अत्ताणं मोइअ गमिस्ससि। (वृक्षसेचने द्वे मे धारयसि। एहि तावत्। इतः आत्मानं मोचयित्वा गमिष्यसि।) [172]

(इति बलादेनां निवर्तयति।) [173]

राजा- भद्रे, वृक्षसेचनादेव परिश्रान्तामत्रभवतीं लक्षये। तथा ह्यस्याः-[174]

स्रस्तांसावतिमात्रलोहिततलौ[5] बाहू घटोत्क्षेपणा-
दद्यापि स्तनवेपथुं जनयति श्वासः प्रमाणाधिकः।
बद्धं कर्णशिरीषरोधि वदने घर्माम्भसां जालकं
बन्धे स्रंसिनि चैकहस्तयमिताः पर्याकुला मूर्धजाः[6]॥ 1 -27॥ [175]

तदहमेनामनृणां करोमि। (इत्यङ्गुलीयं दातुमिच्छति[7]।) [176]

(उभे नाममुद्राक्षराण्यनुवाच्य[8] परस्परम् अवलोकयतः।) [177]

राजा- अलमन्यथासंभाव्य। राज्ञः परिग्रहोऽयम्[9]। [178]

प्रियंवदा- ण हि एदं अङ्गुळीअअं अंगुळीविओअं अज्जस्स अरुहदि। तुह वअणेणेव्व अणिणा णाम एसा। (किंचिद्विहस्य) सहि सउन्दले, मोइदा सि अणुअम्पिणा अज्जेण, अहवा महाराएण। गच्छ दाणिं।

1. काश्मीरादि-पाठे- "ष्वपवार्ये" ति।
2. मै.-पाठे, बं.-पाठे "चेत्युत्थाय जिघृक्षुरिवेच्छां निगृह्य" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
3. काश्मीर-पाठे "गत्वैवे" ति। दाक्षि.-पाठोऽत्र मै.-पाठम्, बं.-पाठञ्चानुसरति।
4. काश्मीरादि-पाठेषु "हला चण्डि! न ते युक्तं गन्तुमि" ति। दाक्षि.-पाठे चण्डीति सम्बोधनं त्यक्तम्।
5. का.-पाठे "लोहितकरा" विति। बं.-दाक्षि.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः।
6. मै.-पाठे "कुन्तला" इति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
7. का.-पाठे "प्रयच्छती" ति। मै.-पाठे, बं.-पाठे च "ददाती" ति। दाक्षि.-पाठे सख्योरभिनयभेदः स्यात्।
8. मै.-पाठे, बं.-पाठे "चोभे प्रतिगृह्य नामाक्षरा०" इति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
9. मै.-पाठे "राजप्रतिग्रहोऽयमि" ति। दाक्षि.-पाठः का.-पाठं बं.-पाठं चानुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(न ह्येतद् अङ्गुलीयकम् अङ्गुलीवियोगम् आर्यस्य अर्हति। तव वचनेनैवानृणा नामैषा। सखि शकुन्तले, मोचितास्यनुकम्पिनार्येण, अथवा महाराजेन[1]। गच्छेदानीम्[2]।) [179]

शकुन्तला- (आत्मगतम्) जइ अत्तणो पहविस्सं। (प्रकाशम्) का तुमं विसज्जिदव्वस्स रुधिदव्वस्स वा।

(यद्यात्मनः प्रभविष्यामि। (प्रकाशम्) का त्वं विसर्जितव्यस्य रोद्धव्यस्य वा[3]।) [180]

राजा- (शकुन्तलां विलोक्य, आत्मगतम्) किं नु खलु यथा वयमस्याम् एवमियमप्यस्मान्प्रति स्यात्।

अथवा, लब्धावकाशा मे प्रार्थना[4]। कुतः - [181]

वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः कर्णं ददात्यभिमुखं[5] मयि भाषमाणे।
कामं न तिष्ठति मदाननसम्मुखी सा भूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्याः॥ 1 –28।। [182]

(नेपथ्ये) [183]

[<भो भोस्तपस्विनः। सन्निहिता[6] स्तपोवनसत्त्वरक्षायै भवत। प्रत्यासन्नः किल मृगयाविहारी पार्थिवो दुष्यन्तः। [184]

तुरगखुरहतस्तथा हि रेणुर्विटपनिषक्तजलार्द्रवल्कलेषु।
पतति परिणतारुणप्रकाशः शलभसमूह इवाश्रमद्रुमेषु॥ 1 – 29।। [185]>][7]

अपि च[8],

तीव्राघातप्रतिहततरुस्कन्धलग्नैकदन्तः
पादाकृष्टव्रततिवलयासङ्गसंजातपाशः।
मूर्तो विघ्नस्तपस इव नो भिन्नसारङ्गयूथो
धर्मारण्यं व्रजति च गजः स्यन्दनालोकभीतः॥ 1 –30।। [186]

(सर्वाः कर्णं दत्त्वा किंचिदिव सम्भ्रान्ताः।) [187]

राजा- (आत्मगतम्) अहो धिक्, सैनिका मदन्वेषिणस्तपोवनमुपरुन्धन्ति। भवतु, गमिष्यामि तावत्[9]। [188]

---

1. काश्मीर-पाठे "महानुभावेने" ति। मै.-पाठे "महाराजेने" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठे "कृतज्ञेदानीं भविष्यसी" ति। मै.-पाठे "0कृतार्थेदानीमसी" ति। बं.-पाठे "तत्र कुत्रेदानीं गमिष्यसी" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं क्रियते। (इतः परं सर्वेषां पाठानां वैविध्यमवलोकनीयम्।)
3. काश्मीरादि-पाठेष्वत्र सखीनामुक्तित्रयं प्राप्यते। दाक्षि.-पाठ उक्तित्रयाणां समाहारोऽत्रैकस्मिन् वाक्ये क्रियते।
4. काश्मीर-पाठे "लब्धगाधा मे प्रार्थने" ति। मै.-पाठे, बं.-पाठे च "लब्धावकाशा मे मनोवृत्तिरि" ति। दाक्षि.-पाठे संमिश्रितः पाठः प्रदीयते।
5. काश्मीरादि-पाठे-"प्यवहिते" ति। दाक्षि.-पाठः परिवर्तितोऽस्ति।
6. काश्मीर-पाठे- "ऽवहिता ... भवन्तु भवन्त" ति। मै.-पाठे "तपोवनसन्निहिताः ... सज्जीभवन्तु भवन्त" इति, बं.-पाठे "तपोवनसन्निहितसत्त्वरक्षणाय ... सज्जीभवन्तु भवन्त" इति। सर्वेषां पाठानां रंगावृत्तित्वं सिध्यति।
7. कोष्ठान्तर्गतः पाठ्यांशः प्रक्षिप्तः स्यात्। यतो हि- आश्रममृगोऽयमिति वैखानसवचनं श्रुत्वा राजा स्वकीयं बाणं प्रतिसंहृतवान्निति पूर्वमेवोक्तम्। अतो नास्त्यावश्यकता तपोवनसत्त्वरक्षायै।
8. काश्मीर-पाठे राज्ञ उक्तिरूपेण "तीव्राघातप्रतिहत०" इति श्लोकः प्रस्तूयते। मै.-पाठे, बं.-पाठे च श्लोकद्वयं नेपथ्योक्तिरूपेणैव प्रदत्तः। दाक्षि.-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
9. काश्मीर-पाठे राज्ञोऽस्या उक्तेरनन्तरं "सर्वाः कर्णं दत्त्वा ससंभ्रममुत्तिष्ठन्ती" ति रंगसूचना। मै.-पाठे, बं.-पाठे च नेपथ्योक्तिं श्रुत्वा सर्वा उत्तिष्ठन्ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

सख्यौ- अज्ज, इमिणा अरण्णगअउत्तन्देन पज्जाउलम्ह। अणुजाणाहि णो उडअगमणस्स। (आर्य, अनेनारण्यगजवृत्तान्तेन[1] पर्याकुलाः स्मः। अनुजानीहि न उटज-गमनाय।) [189]

राजा- गच्छन्तु भवत्यः। वयमप्याश्रमपीडा यथा न भविष्यति तथा प्रयतिष्यामहे। [190]

(सर्वा उत्तिष्ठन्ति।) [191]

सख्यौ- अज्ज, असम्भावितसक्कारं भूओ वि पेक्खणनिमित्तं लज्जेमो विण्णविदुं। (आर्य, असम्भावितसत्कारं भूयोऽपि प्रेक्षणनिमित्तं लज्जावहे विज्ञापयितुम्[2]। [192]

राजा- मा मैवम्। दर्शनेनैव भवतीनां सत्कृतोऽस्मि[3]। [193] (शकुन्तला राजानमवलोकयन्ती सव्याजं विलम्ब्य[4] सह सखीभ्यां निष्क्रान्ता।) [194]

राजा- मन्दौत्सुक्योऽस्मि नगरगमनं प्रति। यावदनुयात्रिकान् प्रत्यवेक्ष्य नातिदूरे तपोवनस्य निवेशयामि। न खलु शक्नोमि शकुन्तलाव्यापारादात्मानं निवर्तयितुम्। [195]

मम हि,

गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चाद् असंस्तुतं[5] चेतः।
चीनांशुकमिव[6] केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य॥ 1 -31॥ [196]

(निष्क्रान्ताः सर्वे) [197]

॥ इति प्रथमोऽङ्कः[7]॥ [198]

---

1. काश्मीर-पाठे "ऽनाक्रन्दितेने" ति। मै.-पाठे, बं.-पाठे चा "नेन हस्तिसम्भ्रमेणे" ति। दाक्षि.-पाठे विशदीकृतः पाठः।
2. काश्मीर-पाठे "विदितभूयिष्ठोऽसि .... तन्मर्षयसी" त्यधिकम्।
3. का.-पाठे "पुरस्कृतोऽस्मी" ति, सखीद्वयस्य शकुन्तलायाश्चोक्तिद्वयमधिकं वर्तते। दाक्षि.-पाठे संक्षेपीकरणं दृश्यते। तथैव मै.-पाठे, बं. -पाठे च सखीनामुक्तयः सन्ति, ताः सर्वाः संक्षेपीकरणस्याशयेन निष्कासिता अत्र।
4. का.-पाठे "सव्याजविलम्बितं कृत्वात्मगतं शकुन्तला वक्ति" "हद्धी ऊरुत्थम्भेण विअलम्हि संवुत्ते" ति। दाक्षि.-पाठे सोक्तिर्निष्कासिता। शकुन्तलानुक्त्वैव निष्क्रामति, केवलेनाङ्गिकाभिनयेनानुरागं प्रदर्श्य।
5. का.-पाठे "ऽसंवृतमि" ति। मै.-पाठे, बं.-पाठे "चार्संस्थितमि" ति।
6. का.-पाठे "चिह्नांशुकमिवे" ति। मै.-पाठे, बं.-पाठे च "चीनांशुकमिवे" ति। दाक्षि.-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
7. मै.-पाठे बं.-पाठे "चाखेटको नामे" ति प्रथमोऽङ्कः। दाक्षि.-पाठे काश्मीर-पाठवन्नामानि न सन्ति प्रत्येकानामङ्कानाम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ द्वितीयोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशति विषण्णो[1] विदूषकः) [1]

विदूषकः- (निःश्वस्य) भो हदो ह्मि[2]। एदस्य मिअआसीलस्स रण्णो वअस्सभावेण। अअं मिओ अअं वराहो अअं सद्दूलो त्ति मज्झं दिणे गिम्ह-विरलपाअवच्छाआसु वणराईसु आहिण्डीअदि। पत्तसंकरकसाआइ कदुण्हाइं गिरिणईजलाइं पिज्जन्दि। अणिअदवेलं सुल्लमंसभूइट्ठं आहारं अण्हीदि। तुरआणुधावण संखुहिदसंधिणो मे रत्तिं वि णिआमं सइदव्वं णत्थि। तदो महन्ते एव्व पच्चूसे दासीए उत्तेहिं सगणलुद्धएहिं वणग्गहणकोलाहलेण पडिबोधिदो म्हि।

एदावन्तेण वि पीडा ण णिक्कमइ। तदो गण्डस्स उवरि पिडओ संवुत्तो। हिओ किल अम्हेसु ओहीणेसु तत्तहोदो मिआणुसारिण अस्समपदं पविट्ठस्स तावसकण्णआ सउन्दला णाम मह अधण्णदाए दंसिदा। संपदं णअरगमणस्स कहं वि ण करेदि। अज्ज सविसेसं तं एव्व चिन्तअन्तस्स मे पहादं आसी अच्छीणं। का गदी। जाव इमं किदोवचारपरिकम्माणं पेक्खामि।

(परिक्रम्यावलोक्य च)

एसो बाणासणहत्थाहिं वण्णपुप्फमालाधारिणीहिं जवणीहिं पडिउदो इदो एव्व आअच्छदि वअस्सो। होदु। अङ्गभङ्गविअलो विअ भविअ चिट्ठिस्सं। जइ एव्वं वि णाम विस्समं लहेअं।।

(इति दण्डकाष्ठम् अवलम्ब्य स्थितः।)

(भोः हतोऽस्मि। एतस्य मृगयाशीलस्य राज्ञो वयस्यभावेन। अयं मृगोऽयं वराहोऽयं शार्दूल इति[3] मध्यन्दिने ग्रीष्मविरलपादपच्छायासु वनराजिष्वाहिण्ड्यते। पत्रसंकरकषायाणि कदुष्णानि गिरिनिर्झरजलानि पीयन्ते। अनियतवेलं शूल्य- मांसभूयिष्ठम् आहारोऽश्यते। तुरगानुधावनसंक्षुभित सन्धेर्मे रात्रिमपि निकामं शयितव्यं नास्ति। ततो महत्येव प्रत्यूषे दास्याःपुत्रैः श्वगणलुब्धैर्वन्यग्रहण कोलाहलेन प्रतिबोधितोऽस्मि।।

एतावतापि पीडा न निष्क्रामति। ततो गण्डस्योपरि पिटकः संवृत्तः। ह्यः किलास्मास्ववहीनेषु तत्रभवतो मृगानुसारिण आश्रमपदं प्रविष्टस्य तापसकन्यका शकुन्तला नाम ममाधन्यतया दर्शिता। साम्प्रतं नगरगमनस्य कथामपि न करोति। अद्य सविशेषं तदेव चिन्तयतो मे प्रभातमासीदक्ष्णोः। का गतिः। यावदिमं कृताचारपरिकर्माणं पश्यामि।।

एष बाणासनहस्ताभि-र्वनपुष्पमालाधारिणीभिः यवनीभिः[4] परिवृत्त इत एवागच्छति वयस्यः। अङ्गभङ्गविकल इव भूत्वा स्थास्यामि। यद्येवमपि नाम विश्रामं लभेय।।) [2]

॥ इति प्रवेशकः[5]॥ [3]

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टपरिवारो राजा[6]) [4]

---

1. काश्मीर-पाठे "परिश्रान्त" इति। मै.-पाठे, बं.-पाठे च नास्त्ययं शब्दः।
2. काश्मीर-पाठे "भो दृढोऽस्मी" ति। बं.-पाठे "हीमाणहे" इति। दाक्षि.-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
3. काश्मीरादि-पाठेषु नास्त्यं शब्दः। दाक्षि.-पाठेनाङ्गिकाभिनये भेदो भविष्यति।
4. काश्मीर-पाठे "वनपुष्पमालाधारी" इति राज्ञो विशेषणम्। मै.-पाठे, बं.-पाठे च "यवनीभिरि" ति शब्दो नास्ति। एवञ्च राज्ञो विशेषणत्वेन "हृदयनिहितप्रियजन" इत्यधिकः शब्दोऽपि वर्तते। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति। तथापि दृश्यविधाञ्च परिवर्तयति।
5. काश्मीरादि-पाठेषु "प्रवेशक" इति नास्ति। दाक्षि.-पाठे सोऽस्ति प्रवेशकः। काटयवेमेन स्वीकृतः, किन्तु न चर्चाकारेण।
6. मै.-पाठे, बं.-पाठे च केवलो वनपुष्पमालाधारी राजा प्रविशति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा-

कामं प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भावदर्शनाश्वासि।
अकृतार्थेऽपि मनसिजे रतिम्[1] उभयप्रार्थना कुरुते॥ 2 -1॥ [5]

(स्मितं कृत्वा) एवमात्माभिप्रायसम्भावितेष्टजनचित्तवृत्तिः प्रार्थयिता जनो विडम्ब्यते[2]।

स्निग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि नयने यत्प्रेरयन्त्या तया
यातं यच्च नितम्बयोर्गुरुतया मन्दं विलासादिव।
मा गा इत्युपरुद्धया यदपि सा सासूयमुक्ता सखी
सर्वं तत्किल मत्परायणमहो कामी[3] स्वतां पश्यति॥ 2 -2॥ [6]

विदूषकः- (तथा स्थित एव) भो वअस्स, हत्थे ण मे पसरन्दि। वाआमत्तेण विअई होहि। (भो वयस्य, हस्तौ न मे प्रसरतः[4]। वाङ्-मात्रेण विजयी भव[5]। [7]

राजा- (सस्मितम्) कुतोऽयं गात्रोपघातः। [8]

विदूषकः- कुदो किल सअं अच्छी आउलीकरिअ अस्सुकारणं पुच्छसि। (कुतः किल स्वयमक्ष्याकुलीकृत्याऽश्रुकारणं पृच्छसि।) [9]

राजा- न खल्ववगच्छामि[6]। [10]

विदूषकः- भो वअस्स, जं वेदसो कुज्जलीलं विडम्बेदि, तं किं अत्तणो पहावेण, उद णईवेअस्स। (भो वयस्य, यद्वेतसः कुब्जलीलां विडम्बयति, तत्किमात्मनः प्रभावेण, उत नदीवेगस्य[7]।) [11]

राजा- नदीवेगस्तत्र कारणम्[8]। [12]

विदूषकः- मह वि भवं। (ममापि भवान्) [13]

राजा- कथमिव। [14]

विदूषकः- एव्वं णाम तुए राअकज्जाइ उज्झिअ एआरिसेसु एव्व आउलप्पदेसेसु वणअरउत्तिणा होदव्वं। अहं उण सच्चं पच्चहं सावदसमुस्सा रणेहिं संखुहिदसंधिबन्धाणं मम गत्ताणं अणीसो म्हि संवुत्तो। ता पसीददु विसज्जेहि मं एक्काहं वि विस्समिदुं। (एवं नाम त्वया राजकार्याण्युज्झित्वैतादृशेष्वेवाकुलप्रदेशेषु वनचरवृत्तिना भवितव्यम्। अहं पुनः सत्यं प्रत्यहं श्वापदसमुत्सारणैः संक्षोभितसन्धिबन्धानां मे गात्राणामनीशोऽस्मि संवृत्तः। तस्मात्प्रसीदतु। विसर्जय मामेकाहमपि विश्रमितुम्।) [15]

राजा- (आत्मगतम्) वयस्यश्चैवमाह। ममापि काश्यपसुतामनुस्मृत्य मृगयाविक्लवं चेतः।

कुतः-, [16]

---

1. मैथिल-पाठे "रतिरि" ति प्रथमान्तम्। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति, बंगीय-पाठवद्।
2. केवले बंगीय-पाठे "विप्रलभ्यत" इति।
3. काश्मीरादि-पाठेषु "काम" इति प्रथमान्तम्। दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं परिवर्त्यते शब्दोऽयम्।
4. काश्मीरादि-पाठेषु हस्तस्यैकस्यैवोल्लेखः। दाक्षि.-पाठेन सूच्यते यद् हस्तद्वयेनाशीरुच्यते।
5. काश्मीर-पाठे "जाप्यसे, जयतु भवान्नि" ति। मै.-पाठे, बं.-पाठे च "जाप्यस" इति।
6. मै.-पाठे, बं.-पाठे च "भिन्नार्थमभिधीयतामि" त्यधिकम्। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
7. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं नास्ति। दाक्षि.-पाठोऽत्र मैथिल-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
8. काश्मीर-पाठे नास्तीदं वाक्यम्। दाक्षि.-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

[< न नमयितुमधिज्यम् अस्मि शक्तो[1], धनुरिदमाहितसायकं मृगेषु।
सहवसतिमुपेत्य यैः प्रियायाः कृत इव मुग्धविलोकितोपदेशः[2]॥ 2 -3॥ [17]>][3]

विदूषकः:- (राज्ञो मुखं विलोक्य) अत्तभवं किं वि हिअए करिअ मन्देदि। अरण्णे रुदिअं मए। (अत्रभवान् किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रयते। अरण्ये रुदितं मया।) [18]

राजा- (सस्मितम्) किमन्यत्। अनतिक्रमणीयं मे सुहृद्वचनमिति स्थितोऽस्मि। [19]

विदूषकः:- चिरं जीअ। (चिरं जीव।) (गन्तुमिच्छति[4]) [20]

राजा- वयस्य, तिष्ठ। सावशेषं मम वचः। [21]

विदूषकः:- आणवेदु भवं। (आज्ञापयतु भवान्।) [22]

राजा- विश्रान्तेन भवता ममान्यस्मिन्ननायासे कर्मणि सहायेन भवितव्यम्। [23]

विदूषकः:- किं मोदअखण्डणेसु। (किं मोदकखण्डनेषु[5]।) [24]

राजा- यत्र वक्ष्यामि। [25]

विदूषकः:- गहीदो खणो। (गृहीतः क्षणः[6]।)

राजा- कः कोऽत्र भोः।

दौवारिकः:- (प्रविश्य) (प्रणम्य) आणवेदु भट्टा। (आज्ञापयतु भर्ता।) [26]

राजा- रैवतक, सेनापतिस्तावदाहूयताम्। [27]

दौवारिकः:- तह। (इति निष्क्रम्य सेनापतिना सह प्रविश्य) एसो अण्णावअणुक्कण्ठो भट्टा इदो दिण्णदिट्ठी चिट्ठइ। उवसप्पदु अज्जो। (तथा। एष आज्ञावचनोत्कण्ठो भर्तेतो दत्तदृष्टिस्तिष्ठति[7]। उपसर्पत्वार्यः।) [28]

सेनापतिः:- (राजानमवलोक्य) अदृष्टदोषे स्वामिनि मृगया[8] केवलं सगुण एव संवृत्तः। [29]

[< तथा हि देवः:-

अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरपूर्वं रविकिरणसहिष्णु-स्वेदलेशैरभिन्नम्।
अपचितमपि गात्रं व्यायतत्वादलक्ष्यं गिरिचर इव नागः प्राणसारं बिभर्ति॥ 2 -4॥ [30]>][9]

(उपेत्य) जयतु स्वामी। निगृहीतश्वापदप्रचारमरण्यम्। किमद्यापि स्थीयते। [31]

राजा- सेनापते, भग्नोत्साहः[10] कृतोऽस्मि मृगयापवादिना माढव्येन[11]। [32]

---

1. काश्मीरादि-पाठे-"ष्वुत्सहिष्य" इति। दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं परिवर्तनं क्रियते।
2. काश्मीरादि-पाठेषु "लोचनकान्तिसंविभाग" इति। दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं परिवर्तनं दृश्यते।
3. कोष्ठान्तर्गतः श्लोकः प्रक्षिप्तः स्यात्। शकुन्तलाया अनुस्मरणमेव मृगयां प्रति निरुत्सुकं करोति राजानम्।
4. का.-पाठे रंगसूचनेयं नास्ति। मै.-बं.-पाठयोश्चो- "त्थातुमिच्छती" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठम् अनुसरति।
5. का.- पाठे, बं.-पाठे च "०खादिकायामि" ति, मै.-पाठे "०खादन" इति। दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं परिवर्तनं क्रियते।
6. मै.-पाठे "प्रणय" इति। अन्यत्र सर्वत्र क्षण इति।
7. का.-पाठे मै.-पाठे च वाक्यमिदम् "अनवरतधनुर्ज्या०" इति श्लोकानन्तरं प्राप्यते। दाक्षि.-पाठो बंगीय-पाठमनुसरति। एवञ्च- दाक्षि. -पाठे प्रथमवारम् "आज्ञावचनोत्कण्ठ" इति परिवर्तनं कृतमत्र।
8. काश्मीरादि-पाठेषु "दृष्टदोषापि मृगये" ति। दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं परिवर्तनं क्रियते।
9. कोष्ठान्तर्गतः श्लोकः प्रक्षिप्तः। अनुगामिनः श्लोकस्यार्थ एव शब्दान्तरेणोच्यत इति पुनरुक्तिदोषग्रस्तत्वात्।
10. काश्मीर-पाठे "मन्दोत्साह" इति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
11. काश्मीरादि-पाठेषु "माधव्येने" ति। दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं संस्कृतभाषिणो राज्ञो मुखे प्राकृतरूपं स्थाप्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

सेनापतिः- (जनान्तिकम्[1]) सखे, स्थिरप्रतिज्ञो भव[2]। अहं तावत्स्वामिनश्चित्तवृत्तिम् अनुवर्तिष्ये। [33]

(प्रकाशम्) प्रलपत्वेष वैधेयः[3]। ननु प्रभुरेव निदर्शनम्। [34]

मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थान[4]योग्यं वपुः
सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः।
उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले
मिथ्या हि व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग्विनोदः कुतः॥ 2 -5॥ [35]

विदूषकः[5]- अत्त भवं पकिदिं आवण्णो। तुमं दाव अडवीदो अडविं भमण्णरमांसलोलुवस्स कस्स वि जुण्णरुक्खस्स मुहे णिपडिस्ससि। (अत्रभवान् प्रकृतिमापन्नः। त्वं तावत् अटवीतोऽटवीम् भ्रमन् नरमांसलोलुपस्य कस्यापि जीर्ण-ऋक्षस्य मुखे निपतिष्यति[6]। [36]

राजा- भद्र सेनापते, किं बहुना। आश्रमसन्निकृष्टे स्थिताः स्मः। अतस्तव वचो नाभिनन्दामि। अद्य तावत्, [37]

गाहन्तां महिषा निपानसलिलं शृङ्गैर्मुहुस्ताडितं
छायाबद्धकदम्बकं मृगकुलं रोमन्थमभ्यस्यतु।
विस्रब्धं क्रियतां वराह-ततिभि[7]-र्मुस्ताक्षतिः पल्वले
विश्रान्तिं लभतामिदं च शिथिलज्याबन्धमस्मद्धनुः॥ 2 -6॥ [38]

सेनापतिः- यत्प्रभविष्णवे रोचते। [39]

राजा- तेन हि निवर्तय पूर्वगतान्वनग्राहिणः। यथा च मे सैनिकास्तपोवनं दूरात् परिहरिष्यन्ति तथा निषेद्धव्याः। पश्य-[40]

शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः।
स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्ता-स्तदन्यतेजोऽभिभवाद् वमन्ति[8]॥ 2 -7॥ [41]

सेनापतिः- यथाज्ञापयति स्वामी। [42]

विदूषकः- धंसिदो दे उस्साहउत्तन्दो। गच्छ दासीए उत्त। (ध्वंसितस्त उत्साहवृत्तान्तः[9]। गच्छ दास्याः पुत्र।) [43]

(निष्क्रान्तः सेनापतिः।) [44]

राजा- (परिजनं विलोक्य) अपनयन्तु भवत्यो मृगयावेषम्[10]। रैवतक, त्वमपि नियोगमशून्यं कुरु। [45]

परिजनः- जं देवो आणवेदि। (यद्देव आज्ञापयति।) (निष्क्रान्तः) [46]

---

1. केवलं बं.-पाठेऽ-"पवार्ये" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठे "स्थिरप्रतिबन्ध" इति। बं.-पाठे "दृढप्रतिज्ञ" इति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
3. मै.-पाठे "माधव्य" इति। दाक्षि.-पाठः का.-पाठम् बं.-पाठञ्चानुसरति।
4. मै.-पाठे "उत्साह०" इति। दाक्षि.-पाठः का.-पाठम् बं.-पाठञ्चानुसरति।
5. काश्मीर-पाठे "कृतकरोषमि" ति रंगसूचना दीयते। मै.बं.-पाठयोः "सरोषमि" ति। दाक्षि.-पाठे सा रंगसूचना निष्कासिता। एवञ्च बं.-पाठे "ऽपेहि रे उत्साहितः, अपेही" त्यधिकं वाक्यम्।
6. विदूषकस्योक्तिरियं तुलनात्मकदृष्ट्या परीक्ष्यमाणे सर्वेषां पाठानां रंगावृत्तित्वं दृढीकरोति।।
7. काश्मीरादि-पाठेषु "विश्वस्तैः/विश्रब्धैः क्रियतां वराहपतिभिरि" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं दृश्यते।
8. मै.-बं.-पाठयो-"र्दहन्ती" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
9. का.-पाठे वाक्यमिदं नास्ति। मै.-बं.-पाठे च "भो उत्साहयितः, निष्क्रामे" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनमस्ति।
10. अत्र परिजनशब्देन यवनीकानां निष्क्रमणं कथ्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

विदूषकः- किदं भवदा दाणिं णिम्मक्खिअं। संपदं एदस्सिं पाअवच्छाआए अविरललदाविदाणसणाहे आसणे णिसीददु, जाव अहं वि सुहासीणो होम्मि। (कृतं भवतेदानीं निर्मक्षिकम्[1]। साम्प्रतमेतस्मिन् पादपच्छायायाम् अविरललतासनाथे आसने निषीदतु भवान्, यावदहमपि सुखासीनो भवामि।) [47]

राजा- गच्छाग्रतः। [48]

विदूषकः- इदो इदो भवं। (इत इतः भवान्।) (उभौ परिक्रम्योपविष्टौ) [49]

राजा- सखे, अनवाप्तचक्षुःफलोऽसि। येन त्वया दर्शनीयं न दृष्टम्। [50]

विदूषकः- णं भवं अग्गदो मे वट्टइ। (ननु भवानग्रतो मे वर्तते।) [51]

राजा- सर्वः कान्तमात्मीयं पश्यति। अहं तु तामेवाश्रमललामां शकुन्तलामधिकृत्य ब्रवीमि। [52]

विदूषकः- (स्वगतम्[2]) होदु। णास्स अवसरं दाइस्सं। (प्रकाशम्) भो वअस्य, अज्ज तावसकण्णआ किं अब्भत्थणीआ दीसइ[3]। (भवतु। नास्मै अवसरं दास्यामि। (प्रकाशम्) भो वयस्य, अद्य तापसकन्यका किमभ्यर्थनीया दृश्यते[4]।) [53]

राजा- सखे, न परिहार्ये वस्तुनि पौरवाणां मनः प्रवर्तते[5]। [54]

विदूषकः- तत् कहं एदं। (तत् कथमेतत्।)

राजा-

> **सुरयुवतिसम्भवं[6] किल मुनेरपत्यं तदुज्झिताधिगतम्।**
> **अर्कस्योपरि पतितं च्युतमिव नवमालिका[7]-कुसुमम्॥** 2 -8॥ [55]

विदूषकः- (विहस्य)भो वअस्स, जह कस्स वि पिण्डखजूरेहिं उव्वेजिदस्स तिन्तिणीफलम्मि अहिलासो भवे, तह इत्थिआरअणपरिभाविणो भवदो इअं अब्भत्थणा। (भो वयस्य, यथा कस्यापि पिण्डखजूरैः उद्वेजितस्य तिन्तिणीफलेऽभिलाषो भवेत्, तथा स्त्रीरत्नपरिभाविनो[8] भवत इयमभ्यर्थना।) [56]

राजा- न तावदेनां पश्यसि येन त्वमेवम् अवादीः। [57]

विदूषकः- तं खु रमणिज्जं एव्व। जं भवदो वि विम्हअं उप्पादेदि। (तत्खलु रमणीयमेव यद्भवतोऽपि विस्मयम् उत्पादयति।) [58]

राजा- वयस्य, किंबहुना। [59]

---

1. काश्मीर-पाठे "कृतो भवता निर्धूमको दंशप्रतिकार" इति। दाक्षि.-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठे "अपवार्ये" ति। दाक्षि.-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
3. काश्मीरादि-पाठेषु "यदा तावत्सा तापसकन्यकाऽप्रार्थनीया, तदा किं तया दृष्टये" ति काकुभेदेनोच्यते।
4. मै.-पाठ इतः परं "निराकृतनिमेषाभिरि" ति श्लोकः प्राप्यते। स च काश्मीर-पाठान् निष्कासितः। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
5. काश्मीर-पाठे "मूर्ख, परिहार्येऽपि वस्तुनि दुष्यन्तस्य मनः प्रवर्तत" इति प्रश्नार्थकं वाक्यम्। दाक्षि.-पाठे दुष्यन्तस्येति शब्दस्य स्थाने "पौरवाणामि" ति शब्दः प्रयुज्यते।
6. का.-पाठे "ललितान्य०" इति। मै.-पाठे, बं.-पाठे च "ललिताप्सरोभवमि" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं क्रियते। का.-पाठं विहाय नान्येषु पाठभेदेषु दृश्यतेऽहैतुकी प्रीतिः।
7. काश्मीर-पाठे "नवमालती०" इति। मै.-पाठेऽपि तथैव। दाक्षि.-पाठो बंगीय-पाठमनुसरति।
8. मै.-पाठे, बं.-पाठे च "स्त्रीरत्नपरिभोगिन" इति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति। स चोपमानवाक्येन सह संगच्छते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा
रूपोच्चयेन विधिना मनसा कृता नु[1]।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे
धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः॥ 2 -9॥ [60]

विदूषकः- जइ एव्वं पच्चादेसो खु रूववदीणं। (यद्येवं प्रत्यादेश खलु रूपवतीनाम्।) [61]

राजा- इदं च मे मनसि वर्तते। [62]

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै-
रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः[2]॥ 2 -10॥ [63]

विदूषकः- तेण हि लहु परित्ताअदु णं भवं। जह मा कस्य वि इङ्गुदीतेल्लचिक्कणसीसस्स हत्थे पडिस्सदि। (तेन हि लघुपरित्रायताम्[3] एनां भवान्। यथा मा कस्यापि इङ्गुदीतैलचिक्कणशीर्षस्य हस्ते पतिष्यति।) [64]

राजा- परवती खलु तत्रभवती। न च सन्निहितो गुरुजनः। [65]

विदूषकः- अह अत्तभवं अन्दरेण कीरिसो से दिट्ठिराओ। (अथात्रभवन्तमन्तरेण कीदृशस्तस्या दृष्टिरागः[4]।) [66]

राजा- निसर्गादेवाप्रगल्भस्तपस्विकन्याजनः। तथापि तु-[67]

अभिमुखे मयि संहृतमीक्षितं हसितमन्यनिमित्त-कृतोदयम्[5]।
विनयवारितवृत्तिरतस्तया न विवृतो मदनो न च संवृतः॥ 2 -11॥ [68]

विदूषकः- किं णु खु सा दिट्टमेत्तस्स एव्व तुह अक्कं आरोहदि। (किं नु खलु सा दृष्टमात्रस्यैव तवाङ्कमारोहति।) [69]

राजा- मिथः सखीभ्यां प्रस्थाने शालीनतयापि भूयिष्ठमाविष्कृतो भावः। तथा हि-[70]

दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे
तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा।
आसीद्विवृत्तवदना च विमोचयन्ती
शाखासु वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम्॥ 2 -12॥ [71]

विदूषकः- जइ एव्वं गहीदपाहेओ होहि। किदं तुए उववणं तवोवणं त्ति पेक्खामि। (यद्येवं गृहीतपाथेयो भव[6]। कृतं त्वयोपवनं तपोवनमिति पश्यामि[7]।)। [72]

---

1. काश्मीर-पाठे "चित्रे, योगात्, विहिता०" इति। मै.-पाठे "चित्ते, योगा, महता०" इति। बं.-पाठे "चित्ते, योगान्, महता०" इति। दाक्षि.-पाठे संमिश्रीयन्ते पाठाः।
2. काश्मीर-पाठे "ऽनामुक्तम्, कमिव, भुवी" ति। मै.-पाठे, बं.-पाठे च "अनामुक्तम्, कमिह, भुवी" ति। दाक्षि.-पाठे शब्दद्वये परिवर्तनं क्रियते। किन्तु, "न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलादि" (1-23) ति वचनाद् भुवीत्येव पाठ संगच्छते।
3. काश्मीर-पाठे "परिणयत्वि" ति। मै.-पाठे "लघु लघु गत्वा परिणयत्वि" ति। बं.-पाठे "लघु लघु गच्छत्वि" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तन क्रियते।
4. का.-पाठे, बं.-पाठे च "चित्तानुराग" इति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
5. काश्मीरादि-पाठेषु "०कथोदयमि" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं दृश्यते।
6. काश्मीर-पाठे "भोः गृहीतपाथेयो भवसी" ति। मै.-बं.-पाठयो "गृहीतपाथेयो भवान् कृतः तये" ति।
7. काश्मीर-पाठे "कथं पुनः पुनस्तपोवनगमनमिति प्रेक्ष" इति। मै.-पाठेऽ "-नुरञ्जितं तपोवनमिति तर्कयामी" ति। बं.-पाठे "तदनुरक्तं तपोवने त्वां तर्कयामी" ति। दाक्षि.-पाठे नवीनं परिवर्तनं क्रियते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- सखे, तपस्विभिः कैश्चिदिहस्थैः परिज्ञातोऽस्मि। चिन्तय तावत्केनापदेशेन सकृदप्याश्रमपदं प्रविशामः[1]। [73]

विदूषकः- को अवरो अवदेसो। णं भवं राआ। (कः अपरः अपदेशः। ननु भवान् राजा।) [74]

राजा- ततः किम्। [75]

विदूषकः- णीवारसट्ठाभाअं तावसा अम्हाणं उवअरदु त्ति। (नीवारषड्भागं तापसास्माकम् उपहरन्त्विति।) [76]

राजा- अन्यद् भागधेयमेतेषां रक्षणे निपतति[2], यद् रत्नराशीनपि विहायाभिनन्द्यम्। पश्य, [77]

यदुत्तिष्ठति वर्णेभ्यो नृपाणां क्षयि तत्फलम्।
तपष्षड्भागम् अक्षय्यं ददात्या[3]रण्यको जनः॥ 2 -13॥ [78]

(नेपथ्ये) [79]

हन्त, सिद्धार्थौ स्वः। [80]

राजा- (कर्णं दत्त्वा) अये, धीरप्रशान्तः स्वरः[4]। तपस्विभिर्भवितव्यम्। [81]

(प्रविश्य दौवारिकः) [82]

दौवारिकः- जेदु भट्टा। एदे खु दुवे इसिकुमारा पडिहारभूमिं उवट्ठिदा। (जयतु भर्ता। एतौ खलु द्वौ ऋषिकुमारौ प्रतिहारभूमिमुपस्थितौ।) [83]

राजा- तेन ह्यविलम्बितं प्रवेशय तौ। [84]

दौवारिकः- अअं पवेसेमि। (इति निष्क्रम्य, ऋषिकुमाराभ्यां सह प्रविश्य[5]) इदो इदो भवंदौ।
(अयं प्रवेशयामि। (इत इतो भवन्तौ।) (उभौ राजानं विलोकयतः।) [85]

प्रथमः- अहो, दीप्तिमतोऽपि विश्वसनीयता वपुषः। अथवोपपन्नमेतदृषिभ्यो नातिभिन्ने राजनि[6]।
कुतः [86]

अध्याक्रान्ता वसतिरमुनाप्याश्रमे सर्वभोग्ये[7]
रक्षायोगादयमपि तपः प्रत्यहं सञ्चिनोति।
अस्यापि द्यां स्पृशति वशिनश्चारणद्वन्द्वगीतः
पुण्यः शब्दो मुनिरिति मुहुः केवलं राजपूर्वः॥ 2 -14॥ [87]

द्वितीयः- गौतम, अयं स बलभित्सखः पार्थिवो दुष्यन्तः[8]। [88]

प्रथमः- अथ किम्। [89]

---

1. काश्मीर-पाठेऽत्र विदूषकस्योक्तिः-एष चिन्तयामि। मा खल्वस्यालीकपरिदेवितैः समाधिं भाङ्क्षीरिति।
2. काश्मीर-पाठे मूर्ख, अन्यं भागमेते रक्षिणे निर्वपन्तीति। मै.-पाठे "मूर्ख, पुण्यभाग०" इति। बं.-पाठे मूर्ख, अन्यमेव भागमेते तपस्विनो निर्वपन्ती" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
3. काश्मीर-पाठेऽक्षयं ददात्या० इति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
4. काश्मीर-पाठे धीरप्रशान्तस्वरैरिति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
5. का.-पाठे ततः प्रविशतस्तापसौ, दौवारिकश्चेति। मै.-पाठे "इति निष्क्रम्य ऋषिभ्यां सह प्रविशती" ति। दाक्षि.-पाठो बं.-पाठमनुसरति।
6. काश्मीरादि-पाठेषु "०ऋषिकल्पे०" इति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं दृश्यते।
7. काश्मीर-पाठे "सर्वपूर्वे" इति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
8. काश्मीर-पाठे "दुष्यन्त" इति। मै.-पाठे "दुष्मन्त" इति। बं.-पाठे "दुःषन्त" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

द्वितीयः- तेन हि,

नैतच्चित्रं यदयमुदधिश्यामसीमां धरित्री-
मेकः कृत्स्नां नगरपरिघप्रांशुबाहुर्भुनक्ति।
आशंसन्ते सुरयुवतयः त्यक्तभोगा हि दैत्यै[1]-
रस्याधिज्ये धनुषि विजयं पौरुहूते च वज्रे॥ 2-15॥ [90]

उभौ- (उपगम्य) विजयस्व राजन्। [91]

राजा- (आसनादुत्थाय) अभिवादये भगवन्तौ। [92]

उभौ- स्वस्ति भवते। (इति फलान्युपहरतः।) [93]

राजा- (सप्रणामं प्रतिगृह्य) आज्ञापयितुमिच्छामि[2]। [94]

उभौ- विदितो भवानाश्रमवासिनामिहस्थः। तेन भवन्तं प्रार्थयन्ते। [95]

राजा- किमाज्ञापयन्ति। [96]

उभौ- तत्रभवतः कण्वस्य महर्षेरसान्निध्याद्रक्षांसि न इष्टिविघ्नमुत्पादयन्ति[3]। तत्कतिपयरात्रं सारथीद्वितीयेन भवता सनाथीक्रियतामाश्रम इति। [97]

राजा- अनुगृहीतोऽस्मि। [98]

विदूषकः- (अपवार्य) इअं दाणिं अणुऊला अब्भत्थणा। (इयमिदानीमनुकूला अभ्यर्थना[4]।) [99]

राजा- (स्मितं कृत्वा) रैवतक, मद्वचनादुच्यतां सारथिः। सबाणकार्मुकं रथमुपस्थापयेति। [100]

दौवारिकः- जेदु भट्टा। जं देवो आणवेदि। (जयतु भर्ता। यद्देव आज्ञापयति) (इति निष्क्रान्तः) [101]

उभौ- (सहर्षम्)

अनुकारिणि पूर्वेषां युक्तरूप[5]मिदं त्वयि।
आपन्नाभयसत्रेषु[6] दीक्षिताः खलु पौरवाः॥ 2-16॥ [102]

राजा- (सप्रणामम्) गच्छतां पुरो भवन्तौ। अहमप्यनुपदमागत एव। [103]

उभौ- विजयस्व। (निष्क्रान्तौ) [104]

राजा- माढव्य[7], अप्यस्ति शकुन्तलादर्शने कुतूहलम्। [105]

विदूषकः- पढमं सपरिवाहं आसी। दाणिं रक्खसउत्तन्देण बिन्दु वि णावसेसिदो। (प्रथमं सपरिवाहमासीत्[8]। इदानीं राक्षसवृत्तान्तेन

---

1. का.-पाठे "सुरसमितयः सक्तवैरा हि दैत्यै०" । मै.-बं.-पाठयोः "समितिषु सुराः सक्तवैरा हि दैत्यै0" इति।
2. काश्मीर-पाठे "किमाज्ञापयतो भवन्तावि" ति। मै.-पाठ "आज्ञापयेतां0" इति। बं.-पाठ "आगमन-प्रयोजनं ज्ञातुमिच्छामी" ति।
3. काश्मीर-पाठे "रक्षांसि परापतिष्यन्ति, विघ्नमुत्पादयितुमिच्छन्ती" ति। मै.-बं.-पाठयोः "रक्षांसि नस्तपोविघ्नमुत्पादयन्ती" ति। दाक्षि. -पाठे परिवर्तनं क्रियते।
4. काश्मीर-पाठे "ऽनुकूल-गलत्थे" ति देशीशब्दः। मै.-बं.-पाठयो-"रनुकूलः गलहस्त" इति। दाक्षि.-पाठे प्राकृत (देशी)शब्दरूपस्य परिवर्तनं क्रियते।
5. मैथिल-पाठ "उपकारिणि सर्वेषामनुरूप०" इति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
6. काश्मीर-पाठ "आपन्नाभयसत्रेणे" ति। मै.-पाठ "आपन्नानां भयत्राण" इति। बं.-पाठे "0भयसत्त्वेष्वि" ति। दाक्षि.-पाठे दीक्षितशब्दानुरोधात् 0सत्रेष्विति सप्तमीप्रयोगः स्यात्।
7. काश्मीरादि-पाठेषु "माधव्ये" ति। दाक्षि.-पाठे सर्वत्र "माढव्ये" ति प्राकृततरूपमेवोच्चार्यते।
8. काश्मीरादि-पाठेषु "प्रथमम् अपरिबाधमासीदि" ति। दाक्षि.-पाठे शब्दान्तरेण हास्योत्पत्तिः क्रियते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

बिन्दुरपि नावशेषितः[1]।) [106]

राजा- मा भैषीः। ननु मत्समीपे एव वर्तिष्यसे। [107]

विदूषकः- एव्वं जइ एसो रच्छेहिंतो रक्खिदो म्हि। (एवं यदि एष राक्षसाद्रक्षितोऽस्मि[2]।) [108]

(प्रविश्य दौवारिकः) [109]

दौवारिकः- जेदु भट्टा। सज्जिओ रहो भट्टिणो विजअपत्थाणं अवेक्खदि। एसो उण णअरादो देवीणं आणत्तिहरो करभओ उवट्ठिदो। (जयतु भर्ता। सज्जितो रथो भर्तुः विजयप्रस्थानमपेक्षते। एषः पुनः नगराद्देवीनामाज्ञप्तिहरः करभक आगतः।) [110]

राजा- (सादरम्) किमम्बाभिः प्रेषितः[3]। [111]

दौवारिकः- अह इं। (अथ किम्।) [112]

राजा- ननु प्रवेश्यताम्। [113]

दौवारिकः- तह (इति निष्क्रम्य करभकेन सह प्रविश्य[4]) एसो भट्टा, उवसप्प। (तथा, एष भर्ता। उपसर्प।) [114]

करभकः- (उपसृत्य) जेदु भट्ट। देवी आणवेदि। आआमिणि चउत्थे दिअहे णिव्वुत्तपालणो[5] उववासो मह भविस्सदि। तहिं दिअहे दीहाउणा अवस्सं संणिहिदेण होदव्वं त्ति। (जयतु भर्ता। देव्याज्ञापयति। आगामिनि चतुर्थे दिवसे निर्वृत्तपारण उपवासो मे भविष्यति। तत्र दिवसे दीर्घायुषावश्यं संनिहितेन भवितव्यमिति।) [115]

राजा- इतस्तपस्विकार्यम्। इतो गुरुजनाज्ञा। द्वयमप्यनतिक्रमणीयम्[6]। किमत्र प्रतिविधातव्यम्। [116]

विदूषकः- तिसंकू विअ अंतराले[7] चिट्ठ। (त्रिशङ्कुरिवान्तराले तिष्ठ।) [116]

राजा- अलं परिहासेन[8]। सत्यमाकुलीभूतोऽस्मि। [117]

कृत्ययोर्भिन्नदेशत्वाद् द्वैधीभवति मे मनः।
पुरः प्रतिहतं शैले स्त्रोतः स्त्रोतोवहो यथा।। 2 -17।। [118]

(विचिन्त्य) सखे, त्वमम्बाभिः[9] पुत्र इति प्रतिगृहीतः। स भवानितः प्रतिनिवृत्य तपस्विकार्यव्यग्रतां निवेद्य तत्रभवतीनां पुत्रकृत्यमनुष्ठातुमर्हति। [119]

---

1. काश्मीर-पाठे "साम्प्रतं विषाददर्शिना विशेषितमि" ति। मै.-बं.-पाठयोः "साम्प्रतं ... सपरिबाधमि" ति।
2. काश्मीर-पाठ "एष चक्राकी भूतोऽस्मी" ति। मै.-पाठ "एष तव रक्षीभूतोऽस्मी" ति। बं.-पाठ "एष तव चक्ररक्षी भूतोऽस्मी" ति। दाक्षि. -पाठे सरलीकरणस्याशयेन परिवर्तनं क्रियते।
3. का.-मै.-पाठयोः "किमज्जूभिरि" ति। बं.-पाठे "किमार्याभिरि" ति।
4. काश्मीर-पाठे "ततः प्रविशति दौवारिकेण सह करभक" इति। मै.-पाठे "निष्क्रम्य करभकेण सह प्रविश्ये" ति। बं.-पाठे "निष्क्रम्य पुनः करभकेण सह प्रविश्ये" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
5. काश्मीर-पाठे "पुत्तपिण्डओदाणओ (पुत्रपिण्डकदानकः)" इति। मै.-पाठे "पुत्तपिण्डपज्जुपासणो (पुत्रपिण्ड -पर्युपासनः)" इति। बं. -पाठे "पुत्तपिण्डपारणो (पुत्रपिण्डपारणः)" इति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
6. काश्मीर-पाठ "उभयमप्यनुल्लङ्घनीयमि" ति। मै.-बं.-पाठयोरु-"भयमप्यनतिक्रमणीयमि" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
7. काश्मीर-पाठेऽ-"न्तरे" इति। मै.-बं.-पाठेयोर-"न्तरा" इति। दाक्षि.-पाठे शब्दान्तरेणाभिव्यक्तिः, किन्तु भिन्नैव शब्दार्थावगतिरन्तरालेति शब्देन।
8. काश्मीरादि-पाठेषु नास्तीदं वाक्यम्। दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं प्रक्षिप्यते।
9. का.-मै.-पाठयो-"स्त्वमज्जुभिरि" ति। बं.-पाठ "आर्याभिरि" ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

विदूषकः- मा खु मं रक्खोभीरुअं गणेसु। (मा खलु मां रक्षोभीरुं गणयसि[1]।) [120]

राजा- (सस्मितं) भो महाब्राह्मण, कथमेतद्भवति सम्भाव्यते। [121]

विदूषकः- तेण हि राआणुएण गंदव्वं तह गच्छामि। (तेन हि राजानुजेन[2] गन्तव्यं तथा गमिष्यामि।) [122]

राजा- तपोवनोपरोधः परिहरणीय इति सर्वाननुयात्रिकांस्त्वया सह प्रस्थापयामि। [123]

विदूषकः- तेण हिं जुवराओ म्हि दाणिं संवुत्तो। (तेन हि युवराजोऽस्मीदानीं संवृत्तः।) [124]

राजा- (आत्मगतम्) चपलोऽयं बटुः। कदाचिदस्मत्प्रार्थनामन्तःपुरेभ्यः कथयेत्। भवतु। एनमेवं वक्ष्ये।
(विदूषकं हस्ते गृहीत्वा प्रकाशम्) वयस्य, महर्षिगौरवादा[3]श्रमं गच्छामि। न खलु सत्यमेव तापसकन्यकायां शकुन्तलायां ममाभिलाषः। पश्य-[125]

क्व वयं क्व परोक्षमन्मथो मृगशावैः सममेधितो जनः।
परिहास-विजल्पितं[4] सखे परमार्थेन न गृह्यतां वचः॥ 2 -18॥ [126]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे) [128]

॥ इति द्वितीयोऽङ्कः[5]॥ [129]

---

1. काश्मीर-पाठे "साधु, राक्षसभीरुकं मां गणयिष्यती" ति काकुभेदः। मै.-बं.-पाठयोस्तु "भोः, मा रक्षोभीरुकं माम् अवगच्छे" ति। दाक्षि. -पाठो मै.-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठे "राजानुराजेने" ति। मै.-पाठे "युवराजानुरूपेणे" ति। बं.-पाठे "राजानुज इवे" ति। दाक्षि.-पाठो बं.-पाठमनुसरति।
3. काश्मीरादि-पाठे-"ष्वृषिगौरवादि" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
4. काश्मीरादि-पाठेषु "विकल्पितमि" ति। दाक्षि.-पाठे राज्ञ उदात्तचरितानुरूपं परिवर्तनं नैव क्रियते।
5. काश्मीर-पाठे प्रत्येकानामङ्कानां पृथङ्-नामानि न दीयन्तो। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ तृतीयोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशति यजमानशिष्यः कुशानादाय) [1]

शिष्यः- अहो, महानुभावः पार्थिवो दुष्यन्तः। यत् प्रविष्टमात्र एवास्मिन्नाश्रमपदं तत्रभवति निरुपप्लवानि नः कर्माणि संवृत्तानि। [2]

का कथा बाणसन्धाने ज्याशब्देनैव दूरतः।
हुङ्कारेणैव धनुषः स हि विघ्नानपोहति॥ 3 - 1॥ [3]

यावदिमान्वेदिसंस्तरणार्थान् दर्भानृत्विग्भ्य उपहरामि। (परिक्रम्यावलोक्य च, आकाशे) प्रियंवदे, कस्येदमुशीरानुलेपनं मृणालवन्ति च नलिनीपत्राणि नीयन्ते। (श्रुतिमभिनीय) किं ब्रवीषि। आतपलङ्घनाद्बलवदस्वस्था शकुन्तला। तस्याः शरीरनिर्वापणायेति[1]। तर्हि, यत्नादुपक्रम्यताम्। सा हि कुलपतेः कण्वस्योच्छ्वसितम्। अहमपि वैतानिकं शान्त्युदकमस्यै गौतमीहस्ते विसर्जयिष्यामि। (निष्क्रान्तः) [4]

(इति शुद्धविष्कम्भकः[2]) [5]

(ततः प्रविशति कामयमानावस्थो[3] राजा) [6]

राजा- (निःश्वस्य[4])

जाने तपसो वीर्यं सा बाला परवतीति मे विदितम्।
अलमस्मि ततो हृदयं तथापि नेदं निवर्तयितुम्[5]॥ 3 -2॥ [7]

(मदनबाधां निरूपयन्) भगवन् कुसुमायुध, त्वया चन्द्रमसा च विश्वसनीयाभ्यामतिसन्धीयते कामिजनसार्थः। कुतः, [8]

तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दो-
र्द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु।
विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखैः
त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारीकरोषि[6]॥ 3 -3॥ [9]

(सखेदं परिक्रम्य) क्व नु खलु संस्थिते सवनकर्मणि सदस्यैरनुज्ञातविश्रमः क्लान्तमा[7]त्मानं विनोदयामि।

---

1. काश्मीर-पाठे "दाहे निर्वापणाये" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति। अनेन शब्देन "नेत्रनिर्वापणमि" त्यस्यैव पाठस्य मौलिकता सिध्यति।
2. काश्मीरादि-पाठेषु प्रवेशक इत्येव। दाक्षि.-पाठे दशरूपकानुरोधाच्छुद्धविष्कम्भक इत्युत्तरवर्तिकालिकः पाठभेदः
3. काश्मीर-पाठे "कामयानावस्थ" इति। (कामयानशब्दः सिद्धोऽनादिश्चेत्। वामनः, 5-2-83)। मै.-बं-पाठयो- "मदनावस्थ" इति। दाक्षि.-पाठे सरलीकरणस्याशयो दृश्यते।, रघुवंशे (19-50) च कामयान इति शब्दप्रयोगः।
4. काश्मीर-पाठे "सवितर्कमि" ति। मै.-पाठे, बं.-पाठे च "निःश्वस्य सचिन्त" इति।
5. काश्मीरादि-पाठेष्वितः परम् "अद्यापि नूनं हरकोपवह्नि०" इति प्रक्षिप्तांशः प्राप्यते। दाक्षि.-पाठे स च नैव स्वीकृतः।
6. मै.-पाठेऽत्र (पक्षान्तरवाचकेन) अथवेति निपातेन सहा "ऽनिशमपि मकरकेतुर्मनसो०, वृथैवसंकल्पशतै०" इति श्लोकौ प्राप्येते। दाक्षि. -पाठः काश्मीर-पाठमनुसृत्य तौ श्लोकौ नैव स्वीकरोति।
7. काश्मीरादि-पाठेषु "श्रान्तम्/खिन्नमि" ति। दाक्षि.-पाठे शब्दान्तरेण नायकस्यानुरक्तता सूच्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(निःश्वस्य) किं नु खलु मे प्रियादर्शनादृते शरणमन्यत्। यावदेनामन्विष्यामि। [10]

(सूर्यमवलोक्य) [11]

इमामुग्रातपां वेलां प्रायेण लतावलयवत्सु मालिनीतीरेषु ससखीजना शकुन्तला गमयति। तत्रैव तावद् गच्छामि। (परिक्रम्य स्पर्शसुखं रूपयित्वा) अहो, प्रवातसुभगोऽयम् उद्देशः। [12]

शक्यमरविन्दसुरभिः कणवाही मालिनीतरङ्गाणाम्।
अङ्गैरनङ्गतप्तैरविरलम्[1] आलिङ्गितुं पवनः॥ 3 - 4॥ [13]

(परिक्रम्यावलोक्य) सत्यमेतस्मिन् वेतसपरिक्षिप्ते लतामण्डपे सन्निहितया शकुन्तलया भवितव्यम्।

तथाहि। [14]

अभ्युन्नता[2] पुरस्तादवगाढा जघनगौरवात्पश्चात्।
द्वारेऽस्य पाण्डुसिकते पदपङ्क्तिर्दृश्यतेऽभिनवा॥ 3 - 5॥ [15]

यावद्विटपान्तरित एवावलोकयामि। (परिक्रम्य तथा कृत्वा) अये, लब्धं नेत्रनिर्वाणम्। यदेषा मे मनोरथप्रियतमा सकुसुमास्तरणं शिलापट्टमधिशयाना सखीभ्यामन्वास्यते। भवतु। श्रोष्यामि तावद् आसां विस्रम्भकथितानि। (विलोकयन्स्थितः) [16]

(ततः प्रविशति यथोक्तव्यापारा सह सखीभ्यां शकुन्तला) [17]

सख्यौ- (उपजीव्य) सहि सउन्दले, अवि सुहाअदे णलिणीपत्तवादो। (सखि शकुन्तले, अपि सुखयति ते नलिनीपत्रवातः।) [18]

शकुन्तला- [3]किं विजअदि मं सहीओ। (किं वीजयतो, मां सख्यौ[4]) [19]

(सख्यौ विषादं नाटयित्वा परस्परमवलोकयतः।) [20]

राजा- बलवदस्वस्था तत्रभवती शकुन्तला दृश्यते। तत्किमातपदोषः स्यात्, उत यथा मे मनसि वर्तते।

अथवा कृतं सन्देहेन। [21]

स्तनन्यस्तोशीरं प्रशिथिलमृणालैकवलयं
प्रियायाः साबाधं तदपि कमनीयं वपुरिदम्।
समस्तापः कामं मनसिजनिदाघप्रसरयो-
र्न तु ग्रीष्मस्यैवं सुभगमपराद्धं युवतिषु॥ 3 - 6॥ [22]

प्रियंवदा[5] -(जनान्तिकम्) अणसूए तस्स राएसिणो पढमदंसणादो आरहिअ पज्जूसिआ आपण्णा विअ सउंदला। किं णु खु तण्णिमित्तो एव्व अअं आतङ्को भवे। (अनसूये, तस्य राजर्षेः प्रथमदर्शनाद् आरभ्य पर्युत्सुका आपन्नापि शकुन्तला। किमस्यास्तन्निमित्त एवायमातङ्को भवेत्।) [23]

---

1. काश्मीर-पाठे "मदनग्लानैरङ्गैरि" ति। मै.-पाठे, बं.-पाठे चा "ऽङ्गैरनङ्गतप्तैर्निर्दयमि" ति। दाक्षि.-पाठो मैथिल-पाठमांशिकतयानुसरति।
2. काश्मीर-पाठे "ऽल्पनिहिते" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
3. काश्मीर-पाठे "वेदनां नाटयित्वे" ति रंगसूचना। मै.-पाठे "शून्याभिनयमि" ति। बं.-पाठे "सखेदमि" ति। दाक्षि.-पाठान्निष्कासिता सा।
4. काश्मीर-पाठे "किं वा वीजयतः, मां सख्यावि" ति। मै.-पाठै "किं मां वीजयतः प्रियसख्यौ"। बं.-पाठे "किं वीजयतः मां, प्रियसखौ"। दाक्षि.-पाठो बं.-पाठमनुसरति। काकुभेदेन प्रस्तुतयः क्रियन्ते रंगकर्मिभिः।
5. इत आरभ्य (23 तः 26 पर्यन्ताः) चतस्र उक्तयः का.-पाठे, मै.-पाठे च न सन्ति। दाक्षि.-पाठोऽत्र बं.-पाठम् अनुसरति। तथापि बं.-पाठे दृश्यमानं "शशिकरविशदान्य०" इति श्लोको दाक्षिणात्यैर्न स्वीक्रियते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अनसूया- सहि, मम वि खु ईरिसी आसङ्का हिअअस्स। होदु। पुच्छिस्सं दाव णं। (सखि, ममापि ईदृश्याशङ्का हृदयस्य। भवतु, प्रक्ष्यामि तावदेनाम्। [24]

प्रियंवदा- (प्रकाशम्) सहि, पुच्छिदव्वा सि किं वि। बलिअं खु दे सन्दावो। (सखि, प्रष्टव्यासि किमपि। बलवान् खलु ते सन्तापः।) [25]

शकुन्तला- (पूर्वार्धेन पुष्पशयनादुत्थाय) हला, किं वत्तुकामा सि। (हला, किं वक्तुकामासि।) [26]

अनसूया- हला सउंदले, अणब्भन्तरा खु वअं मदणगदस्स उत्तन्दस्स। किंदु जारिसी इदिहासणिबन्धणेसु कामअमाणाणं समवत्था सुणिअदि तारिसिं दे पेक्खामि। कहेहि किंणिमित्तो दे संदावो। विआरं परमत्थदो अजाणिअ अणारम्भो खु पडिआरस्स। (हला शकुन्तले, अनभ्यन्तरे खल्वावां मदनगतस्य वृत्तान्तस्य। किन्तु यादृशीतिहासनिबन्धनेषु कामयमानानां समवस्था श्रूयते तादृशीं तव पश्यामि। कथय किन्निमित्तं ते सन्तापः। विकारं परमार्थतोऽज्ञात्वाऽनारम्भः खलु प्रतीकारस्य। [27]

राजा- अनसूयामप्यनुगतो मदीयस्तर्कः। [28]

शकुन्तला- (आत्मगतम्) बलिअं खु मे अहिणिवेसो। सहसा एदाणं वि ण सक्कुणोमि णिवेदेदुं।

(बलवान्खलु मेऽभिनिवेशः। सहसा एतयोरपि न शक्नोमि निवेदयितुम्।) [29]

प्रियंवदा- सहि, सुट्ठु एसा भणादि। किं अत्तणो आदङ्कं उवेक्खसि। अणुदिअहं खु परिहीअसि अङ्गेहिं।

केवलं लावण्णमई छाआ तुमं ण मुञ्चदि। (सखि, सुष्ठ्वेषा भणति। किमात्मन आतङ्कम् उपेक्षसे[1]। अनुदिवसं खलु परिहीयसेऽङ्गैः। केवलं लावण्यमयी छाया त्वां न मुञ्चति। [30]

राजा- अवितथमाह प्रियंवदा। तथा हि-[31]

क्षामक्षामकपोलमाननमुरः काठिन्यमुक्तस्तनं
मध्यः क्लान्ततरः[2] प्रकामविनतावंसौ छविः पाण्डुरा।
शोच्या च प्रियदर्शना च मदनक्लिष्टेयमालक्ष्यते
पत्राणामिव शोषणेन मरुता स्पृष्टा लता माधवी।। 3 - 7।। [32]

शकुन्तला- (सलज्जम्) सहि, कस्स वा अण्णस्स कहइस्सं। किंदु आआसइत्तआ दाणिं वो भविस्सं। (सखि, कस्य वान्यस्य कथयिष्यामि। किन्त्वायासयित्रीकेदानीं वां भविष्यामि।) [33]

उभे- अदो एव्व णिब्बन्धो। संविभत्तं दुक्खं सज्झवेअणं होदि। (अत एव खलु निर्बन्धः। संविभक्तं दुःखं सह्यवेदनं भवति।) [34]

राजा-

पृष्टा जनेन समदुःखसुखेन बाला नेयं न वक्ष्यति मनोगतमाधिहेतुम्।
दृष्टो विवृत्य बहुशोऽप्यनया सतृष्णम् अत्रान्तरे श्रवणकातरतां गतोऽस्मि।। 3 - 8।। [35]

शकुन्तला- सहि, जदो पहुदि मम दंसणपहं आअदो तवोवणरक्खिदा राएसी तदो आरहिअ तग्गदेण अहिलासेण एतदवत्थम्हि संवुत्ता। (सखि, यतः प्रभृति मम दर्शनपथमागतः तपोवनरक्षिता राजर्षिः[3], तत आरभ्य तद्गतेन अभिलाषेण एतदवस्थास्मि संवृत्ता।) [36]

---

1. का.-पाठे, बं.-पाठे "चोपद्रवं निगूहसी" ति। मै.-पाठे "०उपेक्षस" इति। दाक्षि.-पाठे संमिश्रणं क्रियते।
2. काश्मीर-पाठे "मध्यं कान्ततरमि" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
3. मै.-पाठे शकुन्तलाया उक्तिरियं भागद्वये विभज्य प्रस्तूयते। शकुन्तला लज्जयार्धोक्त्या विरम्य निवेदनं करोति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- (सहर्षम्) श्रुतं श्रोतव्यम्। [37]

स्मर एव तापहेतुर्निर्वापयिता[1] स एव मे जातः।
दिवस इवाभ्रश्यामस्तपात्यये जीवलोकस्य॥ 3-9॥ [38]

शकुन्तला- ता जइ वो अणुमदं तह वट्टेह जह तस्स राएसिणो अणुकम्पणिज्जा होमि। अहवा पसिञ्च ह मे उदअं। (तद्यदि वामनुमतं तथा वर्तेथां, यथा तस्य राजर्षेः अनुकम्पनीया भवामि। अथवा प्रसिञ्चत मे उदकम्[2]।) [39]

राजा- विमर्शच्छेदि वचनम्[3]। [40]

प्रियंवदा- (जनान्तिकम्) अणसूए, दूरगअमम्महा अक्खमा इअं कालहरणस्स। जस्सिं बद्धहावा एसा सो ललामहूदो पोरवाणं। ता जुत्तं से अहिलासो अहिणंदिदुं। (अनसूये, दूरगतमन्मथा, अक्षमेयं कालहरणस्य। यस्मिन् बद्धभावैषा स ललामभूतः पौरवाणाम्। तद्युक्तमस्या अभिलाषोऽभिनन्दितुम्[4]।) [41]

अनसूया- (जनान्तिकम्) सहि, जह भणासि। (प्रकाशम्) सहि, दिट्ठिआ अणुरूवो दे अहिणिवेसो। साअरं उज्झिअ कहिं वा महाणई ओदरइ। (सखि, यथा भणसि। सखि, दिष्ट्या अनुरूपस्तेऽभिनिवेशः। सागरम् उज्झित्वा कस्मिन् वा महानदी अवतरति।) [42]

प्रियंवदा- को वा दाणिं सहआरं अंदरेण अदिमुत्तलदं पल्लविदं अरुहदि। (को वा इदानीं सहकारमन्तरेण अतिमुक्तलतां पल्लवितां अर्हति[5]।) [43]

राजा- किमत्र चित्रं यदि विशाखे शशाङ्कलेखाम् अनुवर्तेते[6]। [44][7]

अनसूया- को उण उवाओ भवे, जेण अविलम्बिअं णिहुअं अ सहीमणोरहं संपादेम्ह। (कः पुनरुपायो भवेद्, येन अविलम्बितं निभृतं च सखीमनोरथं संपादयावः।) [45]

प्रियंवदा- णिहुअं ति चिन्ता हवे। सिग्घं त्ति सुअरं। (निभृतमिति चिन्ता भवेत्। शीघ्रमिति सुकरम्[8]।) [46]

अनसूया- कहं विअ। (कथमिव।) [47]

प्रियंवदा- णं सो राएसी इमस्सि सिणिद्धदिट्ठीए सूइदाहिनिवेसो इमाइं दिअहाइं पआअरकिसो लक्खिअदि।
(ननु स राजर्षिरस्यां स्निग्धदृष्ट्या सूचिताभिलाषः, एतान् दिवसान् प्रजागरकृशो लक्ष्यते।) [48]

राजा- सत्यमित्थंभूतोऽस्मि। तथाहि-[49]

इदमशिशिरैरन्तस्तापाद्विवर्णमणीकृतं
निशि निशि भुजन्यस्तापाङ्गप्रसर्पिभिरश्रुभिः।

---

1. अयमपि शब्दो "लब्धं मया नेत्रनिर्वापणमि" ति काश्मीर-पाठस्यैव साधुतां मौलिकतां च साधयति।
2. बं.-पाठे "अन्यथा स्मरतं मामि" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति। (देव.-पाठे तिलोदकमिति।)
3. दाक्षि.-पाठः का.-पाठमनुसरति। किन्तु का.-पाठ "एतावत्कामफलं, यत्फलमन्यदि" त्यधिकमस्ति। मै.-पाठ "एतदवस्थापि मां सुखयती" त्यधिकम्। (देव.-पाठे संशयच्छेदि वचनमिति।)
4. काश्मीर-पाठे "तत् त्वरितव्यमेवास्या अभिलाषमनुवर्तितुमि" ति।
5. काश्मीर-पाठे प्रक्षिप्तमिदमुपमानवाक्यमिति प्रतिभाति। दाक्षि.-पाठेन तस्यानुसरणं क्रियते। मै.-बं.-पाठयो-र्नास्तीदमुपमानवाक्यम्।
6. का.-पाठ इदमप्युपमानं प्रक्षिप्तं प्रतिभाति। दाक्षि.-पाठः का.-पाठमनुसरति। मै.-बं.-पाठयोर्नास्तीदं वाक्यम्।
7. उपमानद्वयं (43-44) का.-पाठात्स्वीकृत्यात्र स्थापितम्, किन्तु तदुपमानद्वयं प्रक्षिप्तमेव स्यात्।
8. काश्मीर-पाठे "निगूढं प्रयतितव्यमिति चिन्तनीयं भवेद्, शीघ्रमिति न दुष्करमि" ति। मै.-पाठे "निभृतमिति प्रवर्तितव्यम्, शीघ्रमिति न दुष्करमि" ति। बं.-पाठो मै.-पाठानुसारी। दाक्षि.-पाठे संक्षेपेण सह सरलीकरणम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अनतिलुलितज्याघाताङ्कं मुहुर्मणिबन्धनात्
कनकवलयं स्रस्तं स्रस्तं मया प्रतिसार्यते।। 3 - 10।। [50]

प्रियंवदा- (विचिन्त्य) हला, मअनलेहो से करीअदु। तं सुमणोगोविदं करिअ देवपसादव्वदेसेण तस्स रण्णो हत्थं पावइस्सं। (सखि, मदनलेखोऽस्य क्रियताम्। तं सुमनोगोपितं कृत्वा देवप्रसादव्यपदेशेन[1]तस्य राज्ञः हस्तं प्रापयिष्यामि।) [51]

अनसूया- रोअदि मे सुउमारो पओओ। किं वा सउन्दला भणादि। (रोचते मे सुकुमारः प्रयोगः। किं वा शकुन्तला भणति।) [52]

शकुन्तला- किं णिओओ विकप्पिअदि। (किं नियोगो विकल्प्यते।) [53]

प्रियंवदा- तेण हि अत्तणो उवण्णासपुव्वं चिन्तेहि किं वि ललितपदबन्धणं। (तेन ह्यात्मन उपन्यासपूर्वकं चिन्तय किमपि ललितपदबन्धनम्।) [54]

शकुन्तला- हला, चिंदेमि। किं दु अवहीरणाभीरुअं उण वेवइ मे हिअअं। (सखि, चिन्तयामि। किन्तु, अवधीरणाभीरुकं पुनर्वेपते मे हृदयम्।) [55]

राजा-

अयं स ते तिष्ठति संगमोत्सुको
विशङ्कसे भीरु यतोऽवधीरणाम्।
लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं
श्रिया दुरापः कथमीप्सितो जनः[2]।। 3 - 11।। [56]

प्रियंवदा[3]**-** अयि अत्तगुणावमाणिणि, को दाणिं सरीरणिव्वावइअं सारदिअं जोह्लं पडंतेण णिवारइस्सदि। (अयि आत्मगुणावमानिनि, क इदानीं शरीरनिर्वापयितृकां शारदीं ज्योत्स्नां पटान्तेन[4] निवारयिष्यति।) [57]

शकुन्तला- णिओइदा दाणिं म्हि। (नियोजितेदानीमस्मि।) [58]

(उपविष्टा चिन्तयति[5]।) [59]

राजा- स्थाने खलु विस्मृतनिमेषेण चक्षुषा प्रियामवलोकयामि। तथाहि, [60]

उन्नमितैकभ्रूलतमाननमस्याः पदानि रचयन्त्याः।
कण्टकितेन प्रथयति मय्यनुरागं कपोलेन।। 3 - 12।। [61]

शकुन्तला- हला, चिन्तिदा मए गीदी। ण क्खु संणिहिदाइ उण लेहणसाहणाइ। (हला, चिन्तिता मया गीतिः। न खलु सन्निहितानि पुनर्लेखन-साधनानि।) [62]

प्रियंवदा- इमस्सिं सुओदरसुउमारे णलिणीपत्ते णहेहिं णिक्खित्तवण्णं करेहि। (अस्मिन् शुकोदरसुकुमारे नलिनीपत्रे नखैर्निक्षिप्तवर्णां कुरु।) [63]

शकुन्तला- (यथोद्दिष्टं रूपयित्वा[6]) हला, सुणुह दाणिं संगदत्था ण वेत्ति। (सख्यौ, शृणुतमिदानीं सङ्गतार्थं न वेत्ति[7]।) [64]

---

1. काश्मीर-पाठे "देवशेषापदेशेने" ति। मै.-पाठे "देवतापदेशेने" ति। बं.-पाठे "देवताशेषापदेशेने" ति। दाक्षि.-पाठे सरलीकृतं परिवर्तनं दृश्यते।
2. काश्मीरादि-पाठेषु "श्रियो ... भवेदि" ति। दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं परिवर्तनं दृश्यते।
3. देवनागरी-पाठ इयमुक्तिः सखीद्वयेनोच्यते।
4. काश्मीर-पाठे "शारदीयां ज्योत्स्नामातपत्रेणे" ति। मै.-बं.-पाठयोः "संतापनिर्वापयित्रीमि" ति। दाक्षि.-पाठे सरलीकृतं पाठान्तरं दृश्यते।
5. शकुन्तलायाः शयनावस्था परिवर्तिता।, कवि-योजनानुसारेण मदनलेख-लेखनार्थं नायिका नोपविष्टा भवतुमर्हति।
6. मै.-पाठे लेखनात्पूर्वमेव प्रियंवदा गीताक्षराणि श्रावयितुं कथयति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
7. दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति। मै.-पाठे "विशदार्था न वेती" ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

उभे- अवहिद म्ह। (अवहिते स्वः।) [65]

शकुन्तला- (वाचयति)

तुज्झ ण आणे हिअअं मम उण कामो दिवा वि रत्तिं म्मि।
णिग्घिण तवई वलिअं तुइ जुत्तमणोरहाइ अङ्गाइं[1]॥ 3 - 13॥ [66]
(तव न जाने हृदयं, मम पुनः कामो[2] दिवापि रात्रिमपि।
निर्घृण[3] तपति बलीयस्त्वयि युक्तमनोरथान्यङ्गानि॥ 3 - 13॥)

राजा- (सहसोपसृत्य)

तपति तनुगात्रि मदनस्त्वामनिशं मां पुनर्दहत्येव।
ग्लपयति यथा शशाङ्कं न तथा हि कुमुद्वतीं दिवसः॥ 3 - 14॥ [67]

उभे- (विलोक्य सहर्षम्) साअदं अविलम्बिणो मणोरहस्स। (स्वागतमविलम्बिनो मनोरथस्य[4]।) [68]

(शकुन्तलाऽभ्युत्थातुमिच्छति[5]) [69]

राजा- अलमलमायासेन। [70]

संदष्टकुसुमशयनान्याशु क्लान्त-बिसभङ्गसुरभीणि[6]।
गुरुपरितापानि न ते गात्राण्युपचारमर्हन्ति॥ 3 - 15॥ [71]

अनसूया- इदो सिलातलेक्कदेसं अणुगेण्हादु वअस्सो। (इतः शिलातलैकदेशमनुगृह्णातु वयस्यः।) [72]

(राजोपविष्टः। शकुन्तला सलज्जा तिष्ठति[7]।) [73]

प्रियंवदा- वअस्स, दुवेण वो अण्णोण्णाणुराओ पच्चक्खो। तहवि सहीसिणेहो मं पुनरुत्तवादिणीं करेदि। (वयस्य, द्वयोर्वामन्योन्यानुरागः प्रत्यक्षः। तथापि सखीस्नेहो मां पुनरुक्तवादिनीं करोति।) [74]

राजा- भद्रे, नैतत्परिहार्यम्। विवक्षितं ह्यनुक्तमनुतापं जनयति। [75]

प्रियंवदा- आवण्णस्स विसअवासिणो जणस्स अत्तिहरेण रण्णा होदव्वं त्ति, णं एसो वो धम्मो। (आपन्नस्य विषयवासिनो जनस्यार्तिहरेण राज्ञा भवितव्यमिति, नन्वेष वो धर्मः[8]।) [76]

राजा- नास्मात्परम्। [77]

---

1. दाक्षि.-पाठ इयं प्राकृत-गाथा गीतिरस्ति। मध्यगुरुरस्ति षष्ठे गणे, 30+30 मात्राः सन्ति पूर्वार्धोत्तरार्धयोः।
2. दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति। मै.-बं.-पाठयोः "मदन" इति।
3. काश्मीरादि-पाठेषु "निष्कृप" इति। यथा तस्य राजर्षेरनुकम्पनीया भवामीति शकुन्तलायाः पूर्वोक्तेन वाक्येन सहेदमेव सम्बोधनं संगच्छते। दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं परिवर्तनं क्रियते। नवीने सम्बोधनेऽस्मिन् शकुन्तलाया अपि राजर्षिकन्यात्वं प्रकटीकरणाशयो दृश्यते।
4. का.-मै.-पाठयोः "०चिन्तितफलस्याविलम्बिनो मनोरथस्ये" ति। बं.-पाठे "०यथासमीहितफलस्ये" ति। दाक्षि.-पाठे वाक्यस्य संक्षेपीकरणं दृश्यते।
5. काश्मीर-पाठेऽस्या रंगसूचनायाः प्राक् शकुन्तलात्मगतं भणति- "हृदय, तथोत्ताम्येदानीं न किञ्चित्प्रतिपद्यसे" इति। तथैव मै.-पाठे बं.-पाठे च प्राप्यते। स्वाभाविकीयमुक्तिर्दाक्षि.-पाठान्निष्कासिता।
6. काश्मीरादि-पाठेषु "मृणालवलयानी" ति। दाक्षि.-पाठेन रंगसज्जा परिवर्त्यते।
7. रंगसूचनेयं प्रक्षिप्तास्ति, यतो हि "संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रावि" त्यादिभिः शब्दैरेव तया स्वकीया शयनावस्था त्यक्तव्येति कवि-योजना दृश्यते।
8. का.पाठे नास्तीदं वाक्यम्। मै.-पाठेऽनुसूयाया मुखे सखीधर्मविषये वर्तत "एषो नो धर्म" इति वाक्यम्। दाक्षि.-पाठो बं.-पाठमनुसृत्य राज्ञो धर्मविषये प्रियंवदाया मुखे स्थापयतीदं वाक्यम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रियंवदा- तेण हि इअं णो पिअसही तुमं एव्व उद्दिसिअ इमं अवत्थंदरं भवअदा मअणेण आरोविदा। ता अरुहसि अब्भुवत्तीए जीविदं से ओलंबिदुं। (तेन हीयं नौ प्रियसखी त्वामेवोद्दिश्य इदमवस्थान्तरं भगवता मदनेनारोपिता, तस्मादर्हस्यभ्युपपत्त्या जीवितमस्या अवलम्बितुम्।) [78]

राजा- भद्रे, साधारणोऽयं प्रणयः[1]। सर्वथानुगृहीतोऽस्मि। [79]

शकुन्तला- (प्रियंवदामवलोक्य) हला, अलं अंदेउरविरह-पज्जुसुअस्स राएसिणो उवरोहेण। (सखि, अलम् अन्तःपुरविरह[2] पर्युत्सुकस्य राजर्षेरुपरोधेन।) [80]

राजा- सुन्दरि,

इदमनन्यपरायणमन्यथा हृदयसन्निहिते हृदयं मम।
यदि समर्थयसे मदिरेक्षणे मदनबाणहतोऽस्मि हतः पुनः॥ 3 - 16॥ [81]

अनसूया- वअस्स, बहुवल्लहा राआणो सुणीअंदि। जह णो पिअसही बन्धुजण-सोअणीआ ण होदि, तह णिव्वहेहि। (वयस्य, बहुवल्लभाः राजानः श्रूयन्ते। यथा नौ प्रियसखी बन्धुजनशोचनीया न भवति, तथा निर्वाहय।) [82]

राजा- भद्रे, किं बहुना। [83]

परिग्रहबहुत्वेऽपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य मे।
समुद्ररशना चोर्वी[3] सखी च युवयोरियम्॥ 3 - 17॥ [84]

उभे- णिव्वुते म्ह। (निर्वृते स्वः[4]।)[5] [85]

प्रियंवदा- (सदृष्टिक्षेपम्) अणसूए, एसो इदो तदो दिण्णदिट्ठी पज्जूसुओ मिअपोदओ मादरं अण्णेसदि। एहि, संजोएम। (अनसूये, एष इतस्ततः दृष्टदृष्टिः पर्युत्सुको मृगपोतको मातरमन्वेषते। एहि। संयोजयाव एनम्[6]।) [86]

(उभे प्रस्थिते।) [87]

शकुन्तला- हला, असरण म्हि। अण्णदरा वो आअच्छदु। (हला, अशरणाऽस्मि, अन्यतरा वाम् आगच्छतु[7]।) [88]

उभे- जो पुडवीए सरणं, सो तुह समीवे वट्टइ। (यः पृथिव्या शरणं, स तव समीपे वर्तते।) [89]

(निष्क्रान्ते[8]) [90]

शकुन्तला- कहं गदा एव्व। (कथं गते एव।) [91]

---

1. काश्मीर-पाठे "ऽनुगृहीतोऽस्मी" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
2. काश्मीर-पाठे "०विहार०" इति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्। बहुवल्लभा राजानः श्रूयन्त इति वक्ष्यमाणेन वाक्येन तु विहारेति काश्मीर-पाठस्यैव समर्थनं भवति।
3. का.-पाठे "धर्मेणोल्लिखिता लक्ष्मीरि" ति। मै.-बं.-पाठयोः "समुद्ररसना चोर्वी" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तितम्।
4. का.-पाठे "ऽनुगृहीते स्व" इति सखीद्वयेनोच्यते। बं.-दाक्षि.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः।
5. का.-पाठेष्वितः परम् "अपराधमिमं ततः सहिष्ये०" इत्यादिना श्लोकेनाश्लीलांशः प्रक्षिप्तः। दाक्षि.-पाठाच्च सो निष्कासितः।
6. काश्मीरादि-पाठेष्वियमुक्तिरनसूयाया उक्तिरूपेणोच्यते। ततश्च प्रियंवदापि भिन्नमेकं वाक्यं भणति। दाक्षि.-पाठे प्रियंवदायाः सोक्तिर्निष्कास्यते, संक्षेपीकरणस्याशयेन।
7. घनश्यामेनात्र "अन्यतरा वाम् आगच्छतु"। "अन्यतरा वाम् गच्छत्वि" ति द्विविधो वाचिकाभिनयः सूचितः।
8. काश्मीरादि-पाठेष्वितः परं 1. दुष्यन्तः शकुन्तलाया हस्ते मृणालवलयं स्थापयति, 2. शकुन्तलायाश्च नेत्रं पुष्प-रजसा कलुषितं भवति, नायकश्च स्वकीयेन वदनमारुतेन तत्परिमार्जयतीति दृश्यद्वयं वर्तते। दाक्षि.-पाठे दृश्य-द्वयमिदम् रंगकर्मिभिर्निष्कासितम्, संक्षेपीकरणस्याशयेन। दाक्षिणात्य-रंगकर्मिणामिदमेवावदानं महत्त्वपूर्णम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- अलमलमावेगेन। नन्वाराधयिता जनस्तव समीपे वर्तते। [92]

किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्र-वातान्
संचारयामि[1] नलिनीदलतालवृन्तैः[2]।
अङ्के निधाय करभोरु यथासुखं ते
संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ[3]॥ 3 - 18॥ [93]

शकुन्तला- ण माणणीएसु[4] अत्ताणं अवराहइस्सं। (न माननीयेष्वात्मानमपराधयिष्ये।) [94]

(इत्युत्थाय प्रस्थिता[5]।) [95]

राजा- सुन्दरि, अपरिनिर्वाणोऽयं दिवसः। इयं च तेऽसमवस्था। [96]

उत्सृज्य कुसुमशयनं नलिनीदलकल्पित[6]स्तनावरणम्।
कथमातपे गमिष्यसि परिबाधापेलवैरङ्गैः॥ 3 - 19॥ [97]

(इति बलादेनां निवर्तयति[7]।) [98]

शकुन्तला- पोरव, रक्ख विणअं। मअणसंतत्ता वि ण हु अत्तणो पहवामि। (पौरव, रक्ष विनयम्। मदनसन्तप्ताऽपि न खल्वात्मनः प्रभवामि।) [99]

राजा- अलं भीरु, गुरुजनभयेन। दृष्ट्वाऽपि ते विदितधर्मा तत्रभवानत्र दोषं न ग्रहीष्यति कुलपतिः।

पश्य। [100]

गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो राजर्षिकन्यकाः[8]।
श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चाभि[9]नन्दिताः[10]॥ 3 - 20॥ [101]

शकुन्तला- होदु, मुञ्च दाव, भूयो वि सहीअणं पेक्खिस्सं। (भवतु, मुञ्च तावत् माम्। भूयोऽपि सखीजनं द्रक्ष्यामि।) [102]

राजा- भवतु मोक्ष्यामि। [103]

शकुन्तला- कदा। (कदा।) [104]

राजा-

---

1. का.-बं.-पाठयोः "संचालयामी" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
2. मै.-बं.-पाठयोः "०तालवृन्तमि" त्येकवचनम्। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति। आहार्याभिनये भेदः।
3. काश्मीरादि-पाठेषु "चरणावुत पद्मताम्रौ, संवाहयामि करभोरु यथासुखं त" इति। दाक्षि.-पाठे पदक्रमभेदः। तेन दृश्य-योजनापि भिन्नैव भविष्यति। तद्यथा-नायिकामङ्के स्थापयित्वा, ततस्तस्याः पादसंवाहनं करणीयमिति ध्वन्यते।
4. का.-मै.-पाठयोरत्रैकवचनान्तं पदं वर्तते। बंगीय-पाठे प्रथमबारं बहुवचनान्तं कृतम्। तस्यानुसरणमत्र दृश्यते।
5. काश्मीरादि-पाठेष्वि- "त्यवस्थासदृशमुत्थाय प्रस्थिते" ति। दाक्षि.-पाठे विसंगतिर्जायते, यतो हि, पूर्वं या सलज्जा तिष्ठतीति कथयित्वा तिष्ठन्ती (उक्ति-क्रमांकः 73) निरूपिता, सा कथमत्रोत्थाय प्रस्थानं करोतीति प्रश्नः।
6. काश्मीर-पाठे "कदलीदलकल्पित०" इति शब्देनाहार्याभिनये भेदो भवति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
7. का.-पाठेष्वितः परम् "अप्यौत्सुक्ये महति न वर प्रार्थनासु प्रतार्याः०" इत्यादिभिरश्लीलांशः प्रक्षिप्यते। दाक्षि.-पाठान्निष्कास्यते सः।
8. मै.-बं.-पाठयोर्मुनिकन्यका इति। दाक्षिणात्य-पाठे प्रथमवारं सा राजर्षिकन्यात्वेन निरूप्यते।
9. मै.-बं.-पाठयोरनुमोदिता इति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं क्रियते, तच्च देव.-पाठेनापि स्वीक्रियते।
10. का.-पाठे नास्त्ययं श्लोकः। मै.-पाठे प्रक्षिप्तः सः प्रथमवारम्। बं.-दाक्षि.-देव.-पाठास्तं श्लोकं स्वीकुर्वन्ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अपरिक्षतकोमलस्य यावत् कुसुमस्येव नवस्य षट्पदेन।
अधरस्य पिपासता मया ते सदयं सुन्दरि गृह्यते रसोऽस्य[1]॥ 3 - 21॥ [105]

(इति मुखमस्याः समुन्नमयितुमिच्छति। शकुन्तला नाट्येन परिहरति[2]) [106]

(नेपथ्ये) [107]

चक्कवाअवहुए, आमन्तेहि सहचरं। उवट्ठिया रअणी। (चक्रवाकवधुके, आमन्त्रयस्व सहचरम्[3]। उपस्थिता रजनी[4]।) [108]

शकुन्तला- (कर्णं दत्त्वा ससम्भ्रमम्) पोरव, सअं मह सरीरवुत्तंदोवलंबाअ अज्जा गोदमी इदो एव्व आअच्छइ। ता विडवान्दरिदो होहि। (पौरव, स्वयं मम शरीरवृत्तान्तोपलम्भाय आर्या गौतमी इत एवागच्छति। तस्माद्विटपान्तरितो भव। [109]

राजा- तथा। (इति आत्मानमावृत्य स्थितः।) [110]

(ततः प्रविशति पात्रहस्ता तापसी सख्यौ च[5]।) [111]

सख्यौ- इदो इदो अज्जा गोदमी। (इत इत आर्या गौतमी[6]।) [112]

गौतमी- (शकुन्तलामुपेत्य) जादे,अवि लहुसंदावाइ दे अङ्गाइ। (जाते, अपि लघु संतापानि तेऽङ्गानि।) [113]

शकुन्तला- अज्ज, अत्थि मे विसेसो। (अद्य अस्ति मे विशेषः।) [114]

गौतमी- इमिणा सन्तिदब्भोदएण णिराबाधं एव्व दे भविस्सदि। (शिरसि शकुन्तलामभ्युक्ष्य) वच्छे, परिणदो दिअहो। एहि। उडअं एव्व गच्छम्ह। (अनेन शान्तिदर्भोदकेन निराबाधमेव ते भविष्यति।

वत्से, परिणतो दिवसः। एहि। उटजमेव गच्छामः। (इति प्रस्थिताः) [115]

शकुन्तला- (आत्मगतम्) हिअअ, पढमं एव्व सुहोवणदे मणोरहे कादरभावं ण मुञ्चसि। साणुसअं विअंपिदस्स कहि दे संपदं संदावो। (पदान्तरे स्थित्वा, प्रकाशम्) लदावलअ संदावहर, आमन्तेमि तुमं भूओ वि प्रत्यवेक्खणाअस्स। (हृदय, प्रथममेव सुखोपनते मनोरथे कातरभावं न मुञ्चसि। सानुशयं विकम्पितस्य कुत्र ते साम्प्रतं सन्तापः॥ लतावलय संतापहर, आमन्त्रये त्वां भूयोऽपि प्रत्यवेक्षणाय[7]। [116]

(दुःखेन निष्क्रान्ता शकुन्तला सहेतराभिः।) [117]

राजा- (पूर्वस्थानमुपेत्य सनिःश्वासम्) अहो विघ्नवत्यः प्रार्थितार्थसिद्धयः। मया हि-[118]

मुहुरङ्गुलिसंवृत्ताधरोष्ठं प्रतिषेधाक्षरविक्लवाभिरामम्।
मुखमंसविवर्ति पक्ष्मलाक्ष्याः कथमप्युन्नमितं न चुम्बितं तु[8]॥ 3 - 22॥ [119]

---

1. दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं श्लोकोऽयं प्रक्षिप्तः। अत्र दुष्यन्तः अधरामृतस्य याचनां करोति। त्रिषु बृहत्पाठेषु नास्त्ययं श्लोकः, तस्य स्थान "इदमुप्युपकृतम् अबले सुरभि मुखमिति (3-31)" तत्र प्राप्यते॥ अत्र का. पाठेषु शकुन्तला दुष्यन्तं प्रेरयति रतये।
2. काश्मीर-पाठ "इति व्यवसितः" , मै.-बं.-पाठयोरि "ति व्यवसितः, शकुन्तला वक्त्रं ढौकत" इति।
3. काश्मीर-पाठ "आर्या गौतमी" त्येव। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
4. दाक्षि.-पाठे "कथमातपे गमिष्यसी (3-19)" त्युक्तम्, ततोऽचिरेणैव कथं रजनी समागच्छेदिति कालनिर्देशे विसंगतिः।
5. काश्मीरादि-पाठेषु केवला गौतम्येव रंगभूमिं प्रविशति। दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं सखीद्वयस्यापि प्रवेशः कथ्यते।
6. काश्मीरादि-पाठेषु नास्तीयमुक्ति,र्यतो हि- ते सख्यौ रङ्गं न प्रविशतः। दाक्षि.-पाठे संक्षेपीकरणस्याशयः स्यादिति प्रतीयते।
7. काश्मीरादि-पाठेषु "परिभोगाय/परिभोगार्थमि" ति। दाक्षि.-पाठः सुरुचिपूर्णं पाठपरिवर्तनं करोति। अत्र टीकाकारेण काटयवेमेन प्रत्यवेक्षणायेति पाठः स्वीकृतः, किन्तु चर्चाकारेण परिभोगायेति पाठः स्वीकृतः।
8. मै.-बं.-पाठयो- "र्न चुम्बितं तदि" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति। ध्वन्यालोके च काश्मीर-पाठ एव स्वीकृतः। (दक्षिणभारते चर्चा-टीकायां चुम्बितं तदिति पाठान्तरमपि (पृ. 135) निर्दिष्टम्।)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

क्व न खलु गच्छामि। अथवा इहैव प्रियापरिभुक्तमुक्ते लतामण्डपे मुहूर्तं स्थास्यामि। [120]

तस्याः पुष्पमयी शरीरलुलिता शय्या शिलायामियं
क्लान्ते[1] मन्मथलेख एष नलिनीपत्रे नखैरर्पितः।
हस्तस्त्रस्तमिदं बिसाभरणम्[2] इत्यासज्यमानेक्षणो
निर्गन्तुं सहसा न वेतसगृहाच्छक्नोमि शून्यादपि[3]॥ 3 - 23॥ [121]

(नेपथ्ये) [122]

सायंतने सवनकर्मणि संप्रवृत्ते वेदीं हुताशनवतीं परितः प्रकीर्णाः।
छायाश्चरन्ति बहुधा भयमादधानाः सन्ध्यापयोदकपिशाः[4] पिशिताशनानाम्॥ 3 - 24॥ [123]

राजा- (श्रुत्वा) अयम् अहम् आगच्छामि। (निष्क्रान्तः) [124]

॥ इति तृतीयोऽङ्कः[5]॥ [125]

---

1. काश्मीरादि-पाठेषु "कान्त" इति मदनलेखस्य विशेषणत्वेन पदम्। दाक्षि.-पाठः परिवर्तनं करोति।
2. काश्मीरादि-पाठेषु दुष्यन्तेन शकुन्तलाया हस्ते मृणालवलयं पिनद्धमासीदिति दृश्यं वर्तते, तस्यात्र दाक्षि.-पाठे निष्कासनं कृतम्। किन्तु तस्य दृश्यस्य मूलपाठे समावेश आसीदिति संसूचयतीदं पदमित्यवधेयम्।
3. काश्मीरादि-पाठेष्वितः परं दुष्यन्तस्य मुखे "हा धिक्, न सम्यग् आचेष्टितं मया... कालहरणं कुर्वता। इदानीम् -रहः प्रत्यासत्तिं यदि सुवदना यास्यति पुनः०" इति श्लोकः प्राप्यते। दाक्षि.-पाठे सः प्रक्षिप्तांशो न गृहीतः।
4. काश्मीरादि-पाठेषु "सन्ध्याभ्रकूट०" इति। दाक्षि.-पाठे शब्दपरिवर्तनं क्रियते।
5. मै.-बं.-पाठयोः "शृङ्गारभोगो नाम तृतीयोऽङ्क" इति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ चतुर्थोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशतः कुसुमावचयम् अभिनयन्त्यौ सख्यौ[1]) [1]

अनसूया- हला पिअंवदे, जइ वि गन्धव्वेण विवाहविहिणा णिव्वुत्तकल्लाणा सउंदला अणुरुवभत्तुगामिणी संवुत्तेति णिव्वुदं मे हिअअं। तह वि एदं चिन्तणिज्जं। (हला प्रियंवदे, यद्यपि गान्धर्वेण विवाहविधिना निर्वृत्तकल्याणा शकुन्तला अनुरूपभर्तृगामिनी संवृत्तेति निर्वृतं मे हृदयं, तथाप्येतत् चिन्तनीयम्।) [2]

प्रियंवदा- कहं विअ। (कथमिव।) [3]

अनसूया- अज्ज सो राएसी इट्ठिं परिसमाविअ इसिहिं विसज्जिदो अत्तणो णअरं पविसिअ अंदेउरसमाअदो इदोगदं उत्तत्तं सुमरेदि वा ण वेत्ति। (अद्य स राजर्षिरिष्टिं परिसमाप्य ऋषिभिर्विसर्जित आत्मनो नगरं प्रविश्यान्तःपुरसमागत इतोगतं वृत्तान्त[2] स्मरति वा न वेति।) [4]

प्रियंवदा- विस्सद्धा होहि। ण तारिसी गुणविरोहिणी आकिदी। किन्तु तादो दाणिं इमं उत्तन्दं सुणिअ ण आणे किं पडिवज्जिस्सदि त्ति। (विस्रब्धा भव। न तादृशी गुणविरोधिनी आकृतिः[3]। किन्तु तात इदानी[4] मिमं वृत्तान्तं श्रुत्वा न जाने किं प्रतिपत्स्यत इति।) [5]

अनसूया- जह अहं पेक्खामि, तह तस्स अणुमदं। (यथाहं पश्यामि, तथा तस्यानुमतम्।) [6]

प्रियंवदा- कहं विअ। (कथं इव।) [7]

अनसूया- गुणवदे कण्णआ पडिवाअणिज्जे त्ति, अअं दाव पढमो संकप्पो। तं जह देव्वं एव्व संवादेदि, णं अप्पआसेण किदत्थो गुरुअणो। (गुणवते कन्यका प्रतिपादनीयेत्ययं तावत्प्रथमः सङ्कल्पः। तं यदि दैवमेव सम्पादयति, नन्वप्रयासेन कृतार्थो गुरुजनः।) [8]

प्रियंवदा- (पुष्पभाजनं विलोक्य) सहि, अवइदाइं खु बलिपज्जत्ताइं कुसुमाइं। (सखी, अवचितानि खलु बलिपर्याप्तानि कुसुमानि।) [9]

अनसूया- णं सउन्दलाए सोहग्गदेवदा समवच्चणीआ। (ननु शकुन्तलायाः सौभाग्यदेवता समर्चनीया[5]।) [10]

प्रियंवदा- जुज्जइ। (युज्यते।) (तदेव कर्मारभते[6]) [11]

(नेपथ्ये) [12]

अहमहं भोः ....। [13]

अनसूया- (आकर्ण्य) अदिहीणं विअ णिवेदिदं। (अतिथीनामिव[7] निवेदितम्।) [14]

---

1. काश्मीर-पाठे "नाटयन्त्यौ तपस्विकन्यक" इति। मै.-पाठे "नाटयन्त्यौ सख्यावि" ति। बं.-पाठे "ऽभिनयन्त्यौ सख्यावि" ति। दाक्षि.-पाठो बंगीय-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर पाठ "इतो गतमि" ति। मै.-पाठे बं.-पाठे च "इमं जनमि" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठम् विशदीकरोति।
3. काश्मीरादि-पाठे-"ष्वाकृतिविशेषा गुणविरोधिन" इति। दाक्षि.-पाठे संक्षेपीकरणं दृश्यते।
4. मै.-पाठे "तात इदानीं तीर्थात्प्रतिनिवृत्त" इति। बं.-पाठे "तातः तीर्थयात्रातः प्रतिनिवृत्त" इति। दाक्षि.-पाठः का.-पाठमनुसरति।
5. मै.-बं.-पाठयोरितः परं "तस्मादपराण्यप्यवचिनुव" इत्यधिकम्। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठे "कर्म नाटयत" इति। मै.-बं.-पाठयोः "कर्माभिनयत" इति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं दृश्यते।
7. काश्मीरादि-पाठेष्व- "तिथिनेव" इत्येकवचनान्तम्। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रियंवदा- णं उडअसंण्णिहिदा सउंदला। (ननु उटजसन्निहिता शकुन्तला।) [15]

अनसूया- ण उण हिअएण सण्णिहिदा। (न पुनः हृदयेनासन्निहिता[1]।) [16]

प्रियंवदा - होदु। अलं एत्तिएहिं कुसुमेहिं। (भवतु। अलमेतावद्भिः कुसुमैः।) (इति प्रस्थिते) [17

(नेपथ्ये) [18]

आः अतिथिपरिभाविनि, [19]

विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा तपोनिधिं[2] वेत्सि न मामुपस्थितम्।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन् कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव[3]॥ 4 - 1॥ [20]

अनसूया- हद्धि हद्धि। तं एव्व संवुत्तं। कस्सिं पि पूआरूहे अवरद्धा सुण्णहिअआ सउंदला। (पुनर्विलोक्य) ण खु जस्सिं कस्सिं वि। एसो दुव्वासा सुलहकोवो महेसी। तह सविअ चडुलपद्दुव्वाराए गइए णिउत्तो। को अण्णो वा हुदवहादो दहिहुं पहविस्सदि। गच्छ, पादेसु पणमिअ णिवट्टेदि णं। जाव अहं अग्घोदअं गेह्णिअ उवसप्पामि। (हा धिक् हा धिक्। तदेव संवृत्तम्। कस्मिन्नपि पूजार्हे अपराद्धा शून्यहृदया शकुन्तला[4]॥ न खलु यस्मिन् कस्मिन्नपि। एष दुर्वासा सुलभकोपो महर्षिः। तथा शप्त्वा चटुलपद्दुर्वारया गत्या निवृत्तः। कोऽन्यो वा हुतवहाद् दग्धुं प्रभविष्यति। गच्छ, पादयोः प्रणम्य निवर्तयैनम्। यावद् अहम् अर्घ्योदकं गृहीत्वा उपसर्पामि।) [21]

प्रियंवदा- तह। (तथा) (इति निष्क्रान्ता।) [22]

अनसूया- (पदान्तरे स्खलितं निरूप्य[5]) अहो, आवेअक्खलिआए मह पब्भट्टं अग्गहत्थादो पुप्फभाअणं। (अहो, आवेगस्खलितायाः मम प्रभ्रष्टम् अग्रहस्तात्पुष्पभाजनम्।) [23]

(इति पुष्पोच्चयं निरूपयति[6]।) [24]

प्रियंवदा- सहि, पकिदिवक्को कस्स वा सो अणुणअं पडिगेण्हदि। किं चि उण साणुक्कोसो किदो। (सखि, प्रकृतिवक्रः कस्य[7] वा स अनुनयं प्रतिगृह्णाति। किञ्चित् पुनः सानुक्रोशः[8] कृतः।) [25]

अनसूया- (सस्मितम्[9]) तस्सिं बहु तदो वि। कहेहि कहेहि। (तस्मिन्बहु तदपि। कथय कथय।) [26]

प्रियंवदा- जदा अणुणीदो वि णिवत्तिदुं ण इच्छदि, तदा विण्णाविदो मए। (यदा अनुनीतोऽपि निवर्तितुं नेच्छति, तदा विज्ञापितो मया।) [27]

अनसूया- कहं विअ। (कथमिव।) [28]

---

1. काश्मीर-पाठे, बं.-पाठे च प्रियंवदैव "शकुन्तला हृदयेनासंनिहिते" ति ज्ञापयति। मै.-पाठेऽनुसूया वक्ति "आमद्य पुनः असंनिहिता हृदयेने" ति। बं.-पाठे त्रीणि वाक्यानि प्रियंवदैव भणतीति। दाक्षि.-पाठो निखिलमपि संवादमुक्तित्रयेन प्रस्तौति। तच्च नाटकीयतां चावहति।
2. काश्मीर-पाठे "यतोऽतिथिमि" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
3. काश्मीरादि-पाठेषू-"भे श्रुत्वा विषण्ण" इति रंगसूचना। दाक्षि.-पाठे सा नोपलभ्यते।
4. काश्मीर-पाठे प्रथममिदं वाक्यम् "उभे" इति भणतः। मै.-पाठे, बं.-पाठे च तदेव वाक्यं प्रियंवदा वक्ति। दाक्षि.-पाठे सखीद्वयस्य वाक्यत्रयं केवला प्रियंवदैव प्रस्तौति।
5. काश्मीरादि-पाठेषु प्रियंवदाया हस्तात् पुष्पभाजनं पतति। दाक्षि.-पाठेऽनसूयाया हस्तात् पतति।
6. काश्मीर-पाठे "तथा करोती" ति। मै.-पाठे "पुष्पावचयमादत्त" इति। बं.-पाठे "नाट्येन पुष्पावचयं विधत्त" इति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं क्रियते। एते पाठभेदाः सर्वेषां पाठानां रंगावृत्तित्वं प्रकटीकुर्वन्ति।
7. का.-पाठे शरीरबद्धः कोप इवेति, मै.-बं.-पाठयोः "शरीरीव कोप" इति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
8. मै.-बं.-पाठयोः "सानुकम्प" इति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
9. काश्मीरादि-पाठेषु नास्त्येतादृशी रंगसूचना। दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं प्रदत्तेयं रंगसूचना।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रियंवदा- भअवं, पढमभत्तिं अवेक्खिअ अण्णादतवप्पहावस्स दुहिदुअणस्स भअवदा एक्को अवराहो मरिसिदव्वोत्ति। (भगवन् प्रथमभक्तिम् अवेक्ष्य अज्ञाततपःप्रभावस्य दुहितृजनस्य भगवतैकोऽपराधो मर्षितव्यः इति।) [29]

अनसूया- तदो तदो। (ततस्ततः।) [30]

प्रियंवदा- सो तदो ण मे वअणं अण्णहा होदुं अरुहदि। किंदु अहिण्णाणाहरणदंसणेण सावो णिवत्तिस्सदि त्ति मन्दअन्दो एव्व अंदरिहिदो। (स ततो न मे वचनमन्यथा भवितुमर्हति, किन्त्वभिज्ञानाभरणदर्शनेन शापो निवर्तिष्यत इति मन्त्रयमाणः एवान्तर्हितः।) [31]

अनसूया[1]- सक्कं दाणिं अस्सासइदुं। अत्थि देण राएसिणा संपत्थिदेण सणामहेअंकिदं अङ्गुलीअअं सुमरणीज्ज त्ति सअं देण पिणद्धं। तेण साहीणोवाआ सउंदला भविस्सदि। (शक्यमिदानीमाश्वासितुम्। अस्ति तेन राजर्षिणा सम्प्रस्थितेन स्वनामधेयाङ्कितमङ्गुलीयकं स्मरणीयमिति स्वयं तेन पिनद्धम्। तेन स्वाधीनोपाया शकुन्तला भविष्यति।) [32]

प्रियंवदा- एहि। देवकज्जं दाव से णिव्वट्टेमो। (एहि, देवकार्यं तावदस्याः निर्वर्तयावः[2]।) [33]

(इति परिक्रामतः) [34]

प्रियंवदा - (अनसूयां विलोक्य) अणसूये, पेक्ख दाव णं वामहत्थोवहिदवअणा आलिहिदां विअ पिअसहिं। भत्तुगदाए चिंदाए अत्ताणं वि एसा ण विभावेदि। किं उण आअंदुअं। (अनसूये, पश्य तावदेनां वामहस्तोपहितवदनामालिखितामिव प्रियसखीम्। भर्तृगतया चिन्तया। आत्मानमप्येषा न विभावयति। किं पुनरागन्तुकम्।) [35]

अनसूया[3]- पिअंवदे, दुवेण एव्व णो मुहे एसो उत्तंदो चिट्ठदु। रक्खणीआ खु पकिदिपेसला सही।
(प्रियंवदे, द्वयोरेव नौ मुख एष वृत्तान्तस्तिष्ठतु। रक्षणीया खलु प्रकृतिपेशला सखी।) [36]

प्रियंवदा- को दाणिं उण्होदएण केअरमालिअं सिञ्चइ। (कः इदानीमुष्णोदकेन केसरमालिका[4] सिञ्चति।) [37]

(इति निष्क्रान्ते) [38]

(विष्कम्भ[5]:) [39]

(ततः प्रविशति सुप्तोत्थितः कण्वशिष्यः[6]) [40]

शिष्यः- वेलोपलक्षणार्थमादिष्टोऽस्मि तत्रभवता प्रवासाद्[7] उपावृत्तेन काश्यपेन। तत्प्रकाशं निर्गतस्तावद् अवलोकयामि कियद् अवशिष्टं रजन्या इति। (परिक्रम्यावलोक्य) हन्त प्रभातम्। तथा हि -[41]

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना-
माविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः।
तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु[8]॥ 4 - 2॥ [42]

---

1. काश्मीरादि-पाठेषूक्तिरियं प्रियंवदाया मुखे वर्तते। यतो हि शापमोचनस्य याचनां कर्तुमनसूया गतवती। दाक्षि.-पाठे प्रियंवदा शापमोचनस्य याचनां कर्तुं गतवतीति नूतनं परिवर्तनं दृश्यते।
2. काश्मीर-पाठे नास्तीदं वाक्यम्। तत्तु मैथिल-पाठे प्रथमवारं प्रक्षिप्तमिति दृश्यते। बं.-पाठे दाक्षि.-पाठे च तस्य मैथिल-पाठस्यानुसरणं क्रियते। येन शाप-संगोपनस्य प्रस्तावोऽनसूयाया मुखे समागच्छति।
3. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं प्रियंवदाया मुखे वर्तते। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
4. काश्मीरादि-पाठेषु "नवमालिकामि" ति। दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं परिवर्तनं क्रियते।
5. काटयवेमेनात्रेति प्रवेशक इति स्वीकृतम्। काश्मीरादि-पाठेषु "प्रवेशक" इत्येव। (मातृकासु दशरूपकानुसारि परिवर्तनं क्रियते।)
6. काश्मीर-पाठे "काश्यपशिष्य" इति। दाक्षि.पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
7. काश्मीर-पाठे, बं.-पाठे च "प्रभासादि" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
8. मै.-पाठ "इव व्यसनोदयेष्वि" ति। बं.-पाठ "इवैव दशान्तरेष्वि" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अपि च-

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे
दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा।
इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य
दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि[1]॥ 4 -3॥ [43]

(प्रविश्य पटाक्षेपेण[2]) [44]

अनसूया- एव्वं णाम विसअपरम्मुहस्स वि जणस्स ण एदं ण विदिदं जं तेण रण्णा सउंदलाए अणज्जं[3] आअरिदं। (एवं नाम विषयपराङ्मुखस्यापि जनस्य नैतन्न विदितं यत् तेन राज्ञा शकुन्तलायाम् अन्याय्यम्[4] आचरितमिति।) [45]

शिष्यः- यावदुपस्थितां होमवेलां गुरवे निवेदयामि। (इति निष्क्रान्तः) [46]

अनसूया- अहवा पडिबुद्धा वि किं करिस्सं। ण मे उइदेसु वि करणिज्जेसु हत्थपादं पसरदि। सकामो दाणिं कामो होदु। जेण असच्चसंधे जणे सुण्णहिअआ सही पदं कारिदा। अहवा दुव्वासकोवो एव्वं विअरेदि। अण्णहा कहं सो राएसी तारिसइ मंदिअ एत्तिअस्स आलस्स लेहमत्तं[5] वि ण विसज्जेदि। ता इदो अहिण्णाणं अङ्गुलीअअं से विसज्जइस्सम्मि। दुक्खसीले तवस्सिजणे को वा अब्बत्थिअदि। णं सहीगामी दोसो त्ति ण पारेमि पवासप्पडिणिउत्तस्स तादकस्सवस्स दुस्संदपरिणीदं आवण्णसत्तं सउंदलं णिवेदिदुं। इत्थंगदे किं णु खु अम्हेहिं करणिज्जं। (अथवा प्रतिबुद्धापि किं करिष्यामि। न मे उचितेष्वपि करणीयेषु हस्तपादं प्रसरति। सकाम इदानीं कामो भवतु, येनासत्यसंधे जने शून्यहृदया सखी पदं कारिता। अथवा दुर्वासःकोप एवं विकारयति। अन्यथा कथं स राजर्षिस्तादृशानि मन्त्रयित्वैतावतः कालस्य लेखमात्रमपि न विसर्जयति। तस्मादितोऽभिज्ञानाङ्गुलीयकमस्य विसर्जयिष्यामि। अथवा दुखःशीलान् तपस्विजनान् को वाऽभ्यर्थयते। सखीगामी दोषः इति न पारयामि प्रवासप्रतिनिवृत्ताय तातकाश्यपाय दुष्यन्तपरिणीतामापन्नसत्त्वां शकुन्तलां निवेदयितुम्। इत्थंगते किं नु खल्वस्माभिः करणीयम्।) [47]

(प्रविश्य) [48]

प्रियंवदा- (सहर्षम्) हला, तुवर तुवर। सउंदलाए पत्थाणकोदुअं णिव्वत्तेदुं। (सखि, त्वरस्व त्वरस्व। शकुन्तलायाः प्रस्थानकौतुकं निर्वर्तयितुम्।) [49]

अनसूया- सहिं, कहं एदं। (सखि, कथमेतत्।) [50]

प्रियंवदा- सुणाहि। दाणिं सुहसइदपुच्छिआ सउंदलाए सआसं गदम्हि...। (शृणु, इदानीं सुखशयितपृच्छिका शकुन्तलायाः सकाशं गतास्मि।) [51]

अनसूया- तदो तदो। (ततस्ततः।) [52]

प्रियंवदा- दाव णं लज्जावणदवअणं परिस्सइअ तादकस्सवेण एव्वं अहिणंदिदं। दिट्ठिआ धूमावरुत्थदिट्ठिणो वि अजमाणस्स पावए एव्व आहुदी पडिदा। वच्छे, सुसिस्सपरिदिण्णा विअ विज्जा असोअणिज्जसि मे संउत्ता। अज्ज एव्व राएसिपरिग्गहीदं तुमं भत्तुणो सआसं विसज्जेमि त्ति।

---

1. काश्मीरादि-पाठेषु "कर्कन्धूनामुपरि तुहिन०, पादन्यासं क्षितिधरगुरोः" इति श्लोकद्वयमधिकं प्राप्यते। तौ च मौलिकौ स्याताम्। दाक्षि.-पाठे संक्षेपस्याशयेन प्रथमवारं तयोर्निष्कासनं क्रियते, प्रक्षिप्तौ चाङ्गीक्रियेते।
2. का.-पाठेषु सर्वत्र "प्रविशत्यपटीक्षेपेणे" ति। देव.-पाठेऽपि तथैव। केवलं दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं दृश्यते। (अत्र चर्चा-टीकायाम्-अपटाक्षेपेण सम्भ्रमाद् यवनिकां विनेत्यर्थः। पृ.-141)
3. काटयवेमेन "अणज्जं=अन्याय्यमि" ति संस्कृतच्छाया प्रदत्ता।
4. काश्मीरादि-पाठे "ष्वनार्यता", "अनार्यमि"ति।
5. मै.-पाठे "वार्तामात्रकमि" ति। बं.-पाठे "वाङ्मात्रकमि" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(तावदेनां लज्जावनतवदनां परिष्वज्य तातकाश्यपेनैवमभिनन्दितम्। दिष्ट्या धूमावरुद्धदृष्टेरपि यजमानस्य पावक एवाहुतिः पतिता। वत्से, सुशिष्यपरिदत्तेव विद्याऽशोचनीयासि मे संवृत्ता। अद्यैव राजर्षिपरिगृहीतां[1] त्वां भर्तुः सकाशं विसर्जयामीति।) [53]

अनसूया- अह केण सूइदो अअं तादस्स उत्तंदो। (अथ केन सूचितोऽयं तातस्य वृत्तान्तः।) [54]

प्रियंवदा- अग्गिसरणं पविट्ठस्स सरीरं विणा छन्दोमेइए वण्आए। (अग्निशरणं प्रविष्टस्य शरीरं विना छन्दोमय्या वाण्या।) [55]

अनसूया- (सविस्मयम्) कहेहि कहेहि। (कथय कथय।) [56]

प्रियंवदा- (संस्कृतमाश्रित्य) [57]

दुष्यन्तेना[2] हितं तेजो दधानां भूतये भुवः।
अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्निगर्भां शमीमिव॥ 4 -4॥ [58]

अनसूया- (प्रियंवदामाश्लिष्य) सहि, पिअं मे। किंदु अज्ज एव्व सउंदला णीअदित्ति उक्कण्ठासाहारणं परिदोसं अणुहोमि। (सखि, प्रियं मे। किंत्वद्यैव शकुन्तला नीयत इत्युत्कण्ठासाधारणं परितोषम् अनुभवामि।) [59]

प्रियंवदा- सखि, वअं दाव उक्कण्ठं विणोदइस्सामो। सा तवस्सिणी णिव्वुदा होदु। (सखि, आवां तावदुत्कण्ठां विनोदयिष्यावः। सा तपस्विनी निर्वृता भवतु।) [60]

अनसूया- तेण हि एदस्सिं चूदसाहावलम्बिदे णालिएरसमुग्गए तण्णिमित्तं एव्व कालन्दरक्खमा णिक्खित्ता मए केसरमालिआ। तं तुमं हत्थसंणिहिदं करेहि। जाव अहं वि से गोरोअणं तित्थमित्तिअं दुव्वाकिसलआइत्ति मङ्गलसमालम्भणाइ विरएमि। (तेन ह्येतस्मिंश्चूतशाखावलम्बिते नालिकेर समुद्गके तन्निमित्तमेव कालान्तरक्षमा निक्षिप्ता मया केसरमालिका। तां त्वं हस्तसन्निहितां कुरु। यावदहमप्यस्याः गोरोचनां[3] तीर्थमृत्तिकां दूर्वाकिसलयानीति मङ्गलसमालम्भनानि विरचयामि।) [61]

प्रियंवदा- तह करीयदु। (तथा क्रियताम्।) [62]

(अनसूया निष्क्रान्ता। प्रियंवदा नाट्येन सुमनोभाजनं गृह्णाति।) [63]

(नेपथ्ये) [64]

गौतमि, आदिश्यतां शार्ङ्गरवमिश्राः शकुन्तला-नयनाय[4]। [65]

प्रियंवदा- (कर्णं दत्त्वा) अनसूये, पेक्ख। एदे खु हत्थिणणअरगामिणो इसिणो सद्दाअंति। (अनुसूये, एते खलु हस्तिनानगरगामिनः ऋषयः शब्दाय्यन्ते।) [66]

(प्रविश्य समालम्भन[5] हस्ता) [67]

अनसूया- सहि, एहि गच्छम्ह। (सखि, एहि गच्छावः।) (इति परिक्रामतः) [68]

---

1. काश्मीरादि-पाठे-"ष्वृषिपरिगृहीताम्, ०प्रतिगृहीतामि" ति। दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं परिवर्तनं दृश्यते। (किन्तु चर्चा-टीकायामृषिपरिगृहीतां शार्ङ्गरवादिमुनिसहायामित्यपि विद्यते, पृ. 144)
2. काश्मीर-पाठे "दुष्यन्तेने" ति। मै.-पाठे "दुष्मन्तेन", बं.-पाठे "दुःषन्तेने" ति।
3. काश्मीर-पाठे "सकेसरगुणा, मृगरोचने" ति। मै.-पाठे "केशरचूर्णा, गोरोचनामि" ति, बं.-पाठे "केसर-गुण्डाः, गोरोचनामि" ति। आहार्य-सामग्रीविषये शब्दभेदो लक्ष्यते।
4. मै.-बं.-पाठयोः "वत्सां शकुन्तलां नेतुं सज्जीभवन्तु भवन्त" इति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
5. समालम्भनमालेपे तिलकेऽलंकृतावपीति यादवप्रकाशः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रियंवदा- (विलोक्य) एसा सुज्जोदए सिहामज्जिदा अब्भत्थसिणातैव णीवारक्खदहत्थाहि सोत्थिवाअणि आहिं तावसीहिं अहिणंदिज्जमाणा सउंदला चिट्ठइ। उवसप्पम्ह णं। (इत्युपसर्पतः) (एषा सूर्योदये शिखामज्जिता अभ्यक्तस्नातैव नीवाराक्षतहस्ताभिः स्वस्तिवाचनिकाभिः[1] तापसीभिरभिनन्द्यमाना शकुन्तला तिष्ठति। उपसर्पाव एनाम्।) [69]

(ततः प्रविशति तथोद्दिष्टव्यापाराऽऽसनस्था शकुन्तला[2]) [70]

तापसीनामन्यतमा- (शकुन्तलां प्रति) जादे, भत्तुणो बहुमाणसुअअं महादेवीसद्दं अहिअच्छ। (जाते, भर्तुर्बहुमानसूचकं महादेवीशब्दम् अधिगच्छ।) [71]

अपरा- वच्छे, वीरप्पसविणी होहि। (वत्से, वीरप्रसविनी भव।) [72]

अन्या - वच्छे, भत्तुणो बहुमदा होहि। (जाते, भर्तुर्बहुमता भव[3]।) [73]

(इत्याशिषो दत्त्वा गौतमीवर्जं निष्क्रान्ताः।) [74]

सख्यौ- (उपसृत्य) सहि, सुहमज्जणं दे जादम्। (सखि, सुखमज्जनं ते जातम्।) [75]

शकुन्तला- साअदं मे पिअसहीणं। इदो णिसीदह। (स्वागतं मे प्रियसखीभ्याम्। इतो निषीदतम्। [76]

उभे- (मङ्गलपात्राण्यादाय उपविश्य[4]) हला, सउंदले सज्जा होहि। जाव दे वअं मङ्गलसमालम्भणं विरएमो। (हला शकुन्तले, सज्जा भव। यावत्ते आवां मङ्गलसमालम्भनं विरचयावः। [77]

शकुन्तला- इदं खु बहुमन्तव्वं। दुल्लहं दाव मे सहीमण्डणं भविस्सदि। (इदं खलु बहु मन्तव्यं। दुर्लभं तावन्मे सखीमण्डनं भविष्यति।) [78]

(इति बाष्पं विकिरति[5]) [79]

सख्यौ- सहि, ण दे उइदं मङ्गलकाले रोइदुं। (सखि, न ते उचितं मङ्गलकाले रोदितुम्।) [80]

(इत्यश्रूणि प्रमृज्य नाट्येन प्रसाधयतः) [81]

प्रियंवदा- सहि, आहरणोइदं रूवं अस्समसुलहेहिं पसाहणेहिं विआरिअदि। (सखि, आभरणोचितं रूपमाश्रम- सुलभैः प्रसाधनैर्विकार्यते।) [82]

(ततः प्रविष्टावुपायनहस्तौ[6]वृषिकुमारौ) [83]

ऋषिकुमारकौ- इदमलङ्करणम्। अलङ्क्रियतामत्रभवती। [84]

(सर्वा विलोक्य विस्मिताः) [85]

गौतमी- वच्छ णारद, कुदो एदं। (वत्स नारद[7], कुत एतत्।) [86]

प्रथमः- तातकाश्यपप्रभावात्। [87]

गौतमी- किं माणसी सिट्ठी। (किं मानसी सृष्टिः[8]।) [88]

---

1. काश्मीरादि-पाठेषु विशेषणमिदं नास्ति। दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं प्रविशति शब्दोऽयम्।
2. रंगसूचनायां गौतम्याः प्रवेशस्योल्लेखो नास्ति। प्रसंगेऽस्मिन् 69-74 सर्वा उक्तयः प्रक्षिप्ताः स्यू रंगकर्मिभिः।
3. का.-पाठेषु वाक्यमिदं नास्ति। दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं प्रक्षिप्तमिदम्।
4. काश्मीरादि-पाठेषु नास्त्येतादृशी रंगसूचना। आहार्याभिनयेन सह सम्बद्धेयं दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं दृश्यते।
5. काश्मीर-पाठे "रुदत्युत्तिष्ठती" ति। मै.-बं.-पाठयो "बाष्पं विसृजती" ति। दाक्षि.-पाठे शब्दान्तरेणोच्यते।
6. मै.-पाठ "आभरणहस्ताविं" ति। बं.-पाठ "आभरणहस्त" इति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
7. काश्मीरादि-पाठेषु "हारीत" इति नाम। दाक्षि.-पाठे नाम-परिवर्तनं क्रियते।
8. का.-पाठेषु "सिद्धिरि" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं क्रियते। (देव.-पाठेऽपि सिद्धिरिति।)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

द्वितीयः- न खलु, श्रूयताम्। तत्रभवता काश्यपेन वयमाज्ञापिताः शकुन्तलाहेतोर्वनस्पतिभ्यः कुसुमान्याहरतेति। तत इदानीं-[89]

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा मङ्गल्यमाविष्कृतं
निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुलभो लाक्षारसः केनचित्।
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै-
र्दत्तान्याभरणानि तत्किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः[1]॥ 4 -5॥ [90]

प्रियंवदा- (शकुन्तलां विलोक्य) हला, इमाए अब्भुववत्तीए सूइआ दे भत्तुणो गेहे अणुहोदव्वा राअलच्छी। (सखि, अनयाभ्युपपत्त्या[2] सूचिता ते भर्तुर्गेहेऽनुभवितव्या राजलक्ष्मीः[3]।) [91]

(शकुन्तला व्रीडां निरूपयति[4]) [92]

प्रथमः- गौतम[5], एहि एहि। अभिषेकावतीर्णाय काश्यपाय वनस्पतिसेवां निवेदयावः[6]। [93]

द्वितीयः- तथा। (निष्क्रान्तौ।) [94]

अनसूया- सहि, अणुवजुत्तभूसणो अअं जणो। तह वि चित्तकम्मपरिअएण दाणिं दे अंगेसु आहरणविणिओअं करेमो। (सखि, अनुपयुक्तभूषणोऽयं जनः। तथापि चित्रकर्मपरिचयेनेदानीं तेऽङ्गेष्वाभरण- विनियोगं कुर्वः।) [95]

शकुन्तला- जाणे वो णेवुणं। (जाने वां नैपुण्यम्।) (उभे नाट्येनालङ्कुरुतः।) [96]

(ततः प्रविशति स्नानोत्थितः काश्यपः) [97]

काश्यपः-

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुष[7] श्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लब्यं मम तावदीदृशमहो स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु[8] तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः॥ 4 -6॥ [98]

(परिक्रामति) [99]

सख्यौ- हला सउन्दले, अवसिदमण्डणासि। परिधेहि संपदं खोमजुअलं। (हला शकुन्तले, अवसितमण्डनासि। परिधत्स्व साम्प्रतं क्षौमयुगलम्।) [100]

(शकुन्तलोत्थाय परिधत्ते[9]) [101]

---

1. काश्मीरादि-पाठेषु "माङ्गल्य, सुभगो, आपर्वमूलोत्थितैः, छायाप्रतिस्पर्धिभिरि" ति।
2. का.-पाठे "हले, अद्भुतसम्पत्तिस्सूचिते" ति। बं.-दाक्षि.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः।
3. काश्मीर-पाठे प्रियंवदाया वाक्यमिदं श्रुत्वा शकुन्तला भणति- कोटरसम्भवेव मधुकरी पुष्करमुखमभिलषसि। मै.-बं.-पाठयोर्वाक्यमिदं "हला कोटरसम्भवापि मधुकरी पौष्करमधु एवाभिलषती" ति। (ततश्च गौतमी वक्ति- जाते, अनयाभ्युपपत्या0 इति), दाक्षि.-पाठे तस्य वाक्यस्य निष्कासनं क्रियते, संक्षेपीकरणस्याशयेन।
4. काश्मीर-पाठे लज्जां निरूपयतीति। मै.-पाठे लज्जां रूपयतीति। बं.-पाठे लज्जां नाटयति इति। दाक्षि.-पाठे पर्यायशब्दप्रयोगः क्रियते।
5. बं.-पाठे हारीतस्येयमुक्तिः। यतो हि तत्र स एकाकी रंगभूमिं समायातः।
6. का.-मै.-पाठयोर्द्वौ शिष्यावत्र न निवर्तेते। तौ त्वितः परमनसूया-शकुन्तलयोर्वाक्ययोरनन्तरं रंगान्निवर्तेते। बं.-पाठे शिष्यस्य हारीतस्य निवृत्तिरत्रैव प्रदर्श्यते। दाक्षि.-पाठो बंगीय-पाठमनुसरति।
7. मै.-बं.-पाठयो "-रन्तर्बाष्पभरोपरोधि गदितमि" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
8. का.-पाठे "कथं ने" ति। बं.-दाक्षि.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः। (देव.-पाठः का.-पाठमनुसरति।)
9. का.-पाठे "शकुन्तला लतागृहान् निर्गत्य परिधाय, पुनः प्रविश्योपविष्टे" ति। दाक्षि.-पाठो मै.पाठानुसारी।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

गौतमी- जादे, एसो दे आणंदपरिवाहिणा चक्खुणा परिस्सअंदो विअ गुरू उवट्ठिदो। आआरं दाव पडिवज्ज। (जाते, एषः ते आनन्दपरिवाहिणा चक्षुषा परिष्वजमानः इव गुरुरुपस्थितः। आचारं तावद् प्रतिपद्यस्व।) [102]

शकुन्तला- (सव्रीडम्) ताद, वन्दामि। (तात वन्दे।) [103]

काश्यपः- वत्से,

> **ययातिरेव शर्मिष्ठा भर्तु[1]र्बहुमता भव।**
> **सुतं त्वमपि सम्राजं सेव पूरुमवाप्नुहि॥** 4 -7॥ [104]

गौतमी- भवअं, वरा खु एदे, ण आसिसा। (भगवन्, वरौ खल्वेतौ[2], नाशिषौ।) [105]

काश्यपः- वत्से, एहि इतः सद्योहुतानग्नीन् प्रदक्षिणीकुरुष्व। (सर्वे परिक्रामन्ति) [106]

काश्यपः- (ऋक्छन्दसा आशास्ते[3]) [107]

> **अमीं वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः[4] समिद्वन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः[5]।**
> **अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धै- र्वैतानास्त्वां वह्नयः पालयन्तु॥** 4 -8॥ [108]

प्रतिष्ठस्वेदानीम्। (सदृष्टिक्षेपम्) क्व ते शार्ङ्गरवमिश्राः। [109] (प्रविश्य) [110]

शिष्यः- भगवन्, इमे स्मः[6]। [111]

काश्यपः- शार्ङ्गरव, भगिन्यास्ते मार्गमादेशय। [112]

शार्ङ्गरवः- इत इतो भवती। [113]

(शकुन्तला परिक्रामति) [114]

काश्यपः- अहो! सन्निहितदेवता[7]स्तपोवनतरवः, [115]

> **पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या[8]**
> **नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।**
> **आद्ये वः प्रसव(प्रसून)प्रसूतिसमये[9]यस्या भवत्युत्सवः**
> **सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥** 4 -9॥ [116]

(कोकिलस्वनं सूचयित्वा[10]) [117]

---

1. काश्मीरादि-पाठेषु "पत्युरि" ति। दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं परिवर्तनं क्रियते।
2. काश्मीरीदि-पाठेषु "वरः खल्वेषः, नाशीरि" ति। दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं द्विवचनं प्रयुज्यते।
3. का.-पाठेषु नास्त्येतादृशी रंगसूचना। दाक्षि.-पाठे प्रक्षिप्यते सा। रंगकर्मणि वाचिकाभिनये भेदो भविष्यति। (छन्दः - वातोर्मी-शालिन्योर्मिश्रणनाद् उपजातिभेद इति किशोरकेलिकारः।)
4. मै.-पाठे "क्षिप्तधूमा" इति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
5. बं-पाठे "प्रान्तविस्तीर्णदर्भा" इति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
6. का.-मै.-पाठयोः शिष्यत्रयाः प्रविशन्ति। बं.-पाठे शिष्यद्वयं प्रविशतः। दाक्षि.-पाठो बं.-पाठमनुसरति।
7. मै.-बं.-पाठयोः "सन्निहितवनदेवता" इति। दाक्षि.-पाठः का.-पाठमनुसरति।
8. काश्मीरादि-पाठेषु "०स्वसिक्तेषु ये" ति।
9. का.-पाठे, मै.-पाठे च "कुसुमप्रबोधसमय" इति। बं.-पाठे "कुसुमप्रवृत्तिसमय" इति। दाक्षि.-पाठे नवीनं परिवर्तनं दृश्यते।
10. काश्मीर-पाठे नास्तीयं रंगसूचना। मै.-पाठे प्रथमवारं प्रक्षिप्ता स्यात्। बं-पाठो दाक्षि.-पाठश्च तमनुसरतः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अनुमतगमना शकुन्तला[1] तरुभिरियं वनवासबन्धुभि:।
परभृतविरुतं कलं यथा प्रतिवचनीकृतम् एभिरीदृशम्[2]॥ 4 -10॥ [118]

(आकाशे) [119]

रम्यान्तर: कमलिनीहरितै: सरोभिश्छायाद्रुमैर्नियमितार्कमयूखताप:।
भूयात्कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्या: शान्तानुकूलपवनश्च शिवश्च पन्था:॥ 4 -11॥ [120]

(सर्वे सविस्मयमाकर्णयन्ति) [121]

गौतमी- जादे, दाणिं णादिजणसिणिद्धाहिं अणुण्णादगमणासि तवोवणदेवदाहिं। पणम भअवदीणं। (जाते, इदानीं ज्ञातिजनस्निग्धाभिरनुज्ञातगमनासि तपोवनदेवताभि:। प्रणम भगवतीनाम्।) [122]

शकुन्तला- (सप्रणामं परिक्रम्य, जनान्तिकम्) हला पिअंवदे, अज्जउत्तदंसणोस्सुआए वि अस्समपदं परिच्चअन्तीए दुक्खेण मे चलणा विमुहा वहंदि। (हला प्रियंवदे, आर्यपुत्रदर्शनोत्सुकाया अपि आश्रमपदं परित्यजन्त्या: दु:खेन मे चरणौ विमुखौ वर्तेते[3]।) [123]

प्रियंवदा- ण केवलं तवोवणविरहकादरा सही एव्व। तुए उवहिदविओअस्स तवोवणस्स वि दाव समवत्थं पेक्ख। (न केवलं तपोवनविरहकातरा सख्येव[4]। एवं त्वयोपहितनि(वि)योगस्य तपोवनस्यापि तावत् समवस्थां पश्य।) [124]

उग्गलिअदब्भकवला मिआ परिच्चच्चणच्चणा मोरा।
णिपतत् पण्डुपत्ता मुअन्ति अस्सूणि विअ लदाओ[5]॥ 4 -12॥ [125]

उद्गलितदर्भकवला मृगा: परित्यक्तनर्तना मयूरा:।
निपतत् पाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लता:[6]॥ 4 -12॥ [125]

शकुन्तला- (स्मृत्वा) ताद, लदाभइणिं वणजोसिणिं दाव आमंतइस्सं। (तात, लताभगिनीं वनज्योत्स्नीं[7] तावदामन्त्रयिष्ये।) [126]

काश्यप:- अवैमि ते तस्यां सोदर्यस्नेहम्। इयं तावद्दक्षिणेन। [127]

शकुन्तला- (लतामुपेत्य) वणजोसिणि, चूदसंगदा वि पच्चालिङ्ग मं इतोगदाहिं साहाबाहहिं। अज्ज पहुदि दूरवट्टिणी खु अहं दे भविस्सं। (वनज्योत्स्नि, चूतसङ्गतापि प्रत्यालिङ्ग मामितो गताभि: शाखाबाहुभि:। अद्य प्रभृति दूरवर्तिनी खल्वहं ते भविष्यामि।) [128]

काश्यप:-

सङ्कल्पितं प्रथममेव मया तवार्थे भर्तारमात्मसदृशं सुकृतैर्गता त्वम्।
चूतेन संगतवती नवमालिकेयम् अस्यामहं त्वयि च सम्प्रति वीतचिन्त:[8]॥ 4 -13॥ [129]

---

1. मै.-बं.-पाठयो: "शकुन्तला से" ति। दाक्षि.-पाठ: का.-पाठमनुसरति। (अपरवक्त्र-छन्दसि श्लोक:)
2. काश्मीर-पाठे श्लोकोऽयं "रम्यान्तर: कमलिनी०" इत्यस्मात् पश्चात् वर्तते। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, यथा बं.-पाठश्चानुसरति। किन्तु दाक्षि.-पाठे शार्ङ्गरवस्य मुखे नास्त्ययं श्लोक:, स तु काश्यपमुखादेवोच्चार्यते।
3. काश्मीरादि-पाठेषु "०दु:खदु:खेन मे चरणौ पुरतो मुखं प्रभवत" इति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं दृश्यते।
4. का.-पाठे "विरहपर्युत्सुकास्सख्य एवे" ति। मै.-बं.-पाठयो: "तपोवनविरहकातरा त्वमेवे" ति। दाक्षि.-पाठे शकुन्तलां लक्ष्यीकृत्य पाठ: परिवर्त्यते।
5. अस्यां गाथायां 30+27 मात्रा: सन्ति, तथापि द्वितीयदले पथ्याऽऽर्याया लक्षणं न घटते।
6. काश्मीर-पाठे "परिशान्तनर्तना, अपसृतपाण्डुपत्रा धुन्वन्त्यङ्गानीव लता" इति। मै.-पाठे "०मुञ्चन्त्य-ङ्गानि वनलता" इति। बं.-पाठे "०अङ्गानि इव लता" इति।
7. काश्मीरादि-पाठेषु माधवीलतामुद्दिश्येयमुक्तिर्वर्तते। दाक्षि.-पाठे तस्या लताया उल्लेख एव नास्ति।
8. काश्मीरादि-पाठेषु श्लोकस्योत्तरार्धो भिन्न एव। यतो हि तत्र माधवीलतां लक्ष्यीकृत्य वार्ता प्रवर्तते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

इतः पन्थानं प्रतिपद्यस्व। [130]

शकुन्तला- हला, एसा दुवेणं वो हत्थणिक्खेवो। (सख्यौ, एषा द्वयोरपि वां हस्तनिक्षेपः।) [131]

उभे- अअं जणो दाणिं तुए कस्स हत्थे समप्पिदो। (अयं जनः इदानीं त्वया कस्य हस्ते समर्पितः।) [132]

(इति बाष्पं विकिरतः।) [133]

काश्यपः- अनसूये, अलं रुदित्वा। ननु भवतीभ्यामेव स्थिरीकर्तव्या शकुन्तला। [134]

(सर्वे परिक्रामन्ति) [135]

शकुन्तला- ताद, एसा उडअपज्जंदआरिणी गब्भमन्थरा मिअवहू जदा अणहप्पसवा होइ तदा मे किं पि पिअणिवेदइत्तअं विसज्जेहि।। (तात, एषोटजपर्यन्तचारिणी गर्भमन्थरा मृगवधूर्यदा अनघप्रसवा भवति, तदा मह्यं किमपि प्रियनिवेदयितृकं विसर्जय।) [136]

काश्यपः- भवतु, नेदं विस्मरिष्यामः। [137]

शकुन्तला- (गतिभङ्गं रूपयित्वा) को णु खु एसो पुणो पुणो वि णिवसणपटे मे सजइ। (को नु खल्वेषः पुनः पुनरपि निवसनपटे मे सज्जति।) [138]

(परावर्तते) [139]

काश्यपः- वत्से,

यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां
तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे।
श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति
सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते।। 4 -14।। [140]

शकुन्तला- वच्छ, किं सहवासपरिच्चाइणिं मं अणुसरसि। अइरप्पसूदाए जणणीए विणा वड्ढिदो एव्व। दाणिं वि तुमं मए विरहिदं तादो चिंदिस्सदि। णिवट्टेहि दाव। (वत्स, किं सहवासपरित्यागिनीं मामनुसरसि[1]। अचिरप्रसूतया जनन्या विनापि वर्धित एव। इदानीमपि त्वां मया विरहितं तातश्चिन्तयिष्यति। निवर्तस्व तावत्।) [141]

(इति रुदती प्रस्थिता) [142]

काश्यपः[2] -

उत्पक्ष्मणोर्नयनयोरुपरुद्धवृत्तिं बाष्पं कुरु स्थिरतया विरतानुबन्धम्[3]।
अस्मिन्नलक्षितनतोन्नतभूमिभागे मार्गे पदानि खलु ते विषमीभवन्ति।। 4 -15।। [143]

शार्ङ्गरवः- भगवन्, उदकान्तं स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्य इति श्रूयते[4]। तदिदं सरस्तीरम्। अत्र सन्दिश्य नः प्रतिगन्तुमर्हसि। [144]

काश्यपः- तेन हीमां क्षीरवृक्षच्छायामाश्रयामः। [145]

(सर्वे परिक्रम्य स्थिताः) [146]

काश्यपः- (आत्मगतम्) किं नु खलु तत्रभवतो दुष्यन्तस्य युक्तरूपमस्माभिः सन्देष्टव्यम्। (चिन्तयति) [147]

1. काश्मीर-पाठे "कैतवस्नेहाम् अन्वेषसी" ति। मै.-पाठे "०त्यागिनीम् अनुबध्नासी" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
2. मै.-बं.-पाठयो "र्वत्से, अलं रुदितेन। स्थिरीभव, इतः पन्थानमवलोकये" त्यधिकं पठ्यते। का.-पाठे नास्तीदं वाक्यम्। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
3. का.-पाठे "विहितानुबन्धमि" ति। मै.-बं.-पाठयोः "शिथिलानुबन्धमि" ति। दाक्षि.-पाठे सरलीकरणमस्ति।
4. काश्मीरादि-पाठे- "ख्वा उदकान्तात् स्निग्धोऽनुगम्यत इति स्मर्यतामि" ति। दाक्षि.-पाठे शब्दान्तरेणोच्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला[1]- (जनान्तिकम्) हला, पेक्ख। दक्खिणदो णलिणीपत्तंदरिद वि सहअरं अदेक्खंती आदुरा चक्कवाई आरसइ। दुक्करं खु अहं तक्कयामि। (हला, पश्य। दक्षिणतो नलिनीपत्रान्तरितमपि सहचरम् अपश्यन्ती आतुरा चक्रवाकी[2] आरसति। दुष्करं खलु अहं तर्कयामि।) [148]

अनसूया- सहि, मां एव्वं मन्तेहि। (सखि, मैवं मन्त्रयस्व।) [149]

एसा वि पिएण विणा रअणि गमेइ दीहअरं।
गरुअं वि विरहदुक्खं आसाबन्धो सहावेदि॥ 4 -16॥ [150]

(एषापि प्रियेण विना रजनीं गमयति दीर्घतराम्[3]।
गुरुकमपि विरहदुःखम् आशाबन्धः साहयति॥ 4 -16॥) [150]

काश्यपः- शार्ङ्गरव, इति त्वया मद्वचनात्स राजा शकुन्तलां पुरस्कृत्य वक्तव्यः। [151]

शार्ङ्गरवः- आज्ञापयतु भगवान्। [152]

काश्यपः -

अस्मान्साधु विचिन्त्य संयमधनान् उच्चैः कुलं चात्मन-
स्त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्ति[4] च ताम्।
सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया
भाग्यायत्तम्[5] अतः परं न खलु तद्वाच्यं वधूबन्धुभिः[6]॥ 4 -17॥ [153]

शार्ङ्गरवः- गृहीतः सन्देशः। [154]

काश्यपः- वत्से, त्वमिदानीमनुशासनीयासि। वनौकसोऽपि सन्तो लोकज्ञा[7] वयम्। [155]

शार्ङ्गरवः- न खलु धीमताम् अविषयो नाम। [156]

काश्यपः- सा त्वमितः पतिकुलं प्राप्य। [157]

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी[8]
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः॥ 4 -18॥ [158]

कथं वा गौतमी मन्यते। [159]

गौतमी- एत्तिओ एव्व वहूअणस्स उवएसो। वच्छे, एदं खु सव्वं ओधारेहि।
(एतावानेव वधूजनस्योपदेशः। वत्से, एतत्खलु सर्वमवधारय।) [160]

---

1. काश्मीरादि-पाठेषु शकुन्तलाया उक्तेः प्रागेका गाथास्ति। तद्यथा- पद्मिनीपत्रान्तरितामिति। दाक्षि.-पाठात् तस्या गाथाया निष्कासनं कृतम्।
2. उक्तिरियं पूर्वनिर्दिष्टाया गाथाया अस्तित्वं द्योतयति।
3. का.-मै.-पाठयोः "विसूरणादीर्घामि" ति। दाक्षि.पाठे बंगीय-पाठमनुसृत्यास्या गाथाया निष्कासनं कृतम्, संक्षेपीकरणाय।
4. का.-मै.-पाठयो "र्भावप्रवृत्तिमि" ति। बं.-पाठे "स्नेहप्रवृत्तिमि" ति। दाक्षि.-पाठो बंगीय-पाठमनुसरति।
5. का.-मै.-पाठयो "र्भाग्याधीनमि" ति। बं.-पाठ "दैवाधीनमि" ति। दाक्षि.-पाठे शब्दान्तरं प्रयुज्यते।
6. काश्मीरादि-पाठेषु "तत्स्त्रीबन्धुभिर्याच्यत" इति। दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं कृतं परिवर्तनमिदम्।
7. मै.-पाठे "लौकिकज्ञा" इति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
8. मै.-बं.-पाठयो "र्भोगेष्वनुत्सेकिनी" ति। दाक्षि.-पाठोऽत्र काश्मीर-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

काश्यपः- वत्से, परिष्वजस्व मां सखीजनं च। [161]

शकुन्तला- ताद, इदो एव्व किं पिअंवदाअणसूये णिवत्तिस्संदि। (तात, इत एव किं प्रियंवदानसूये निवर्तिष्येते।) [162]

काश्यपः- वत्से, इमे अपि प्रदेये। न युक्तमनयोस्तत्र गन्तुम्। त्वया सह गौतमी यास्यति। [163]

शकुन्तला- (पितरमाश्लिष्य) कहं दाणिं तादस्स अङ्कादो परिब्भट्ठा मलअतडुंमूलिदा विअ चंदणलदा देसंदरे जीविदं धारइस्सं। (कथमिदानीं तातस्याङ्कात्परिभ्रष्टा मलयतटोन्मूलितेव चन्दनलता देशान्तरे जीवितं धारयिष्यामि[1]।) [164]

काश्यपः- वत्से, किमेवं कातरासि-[165]

अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे
विभवगुरुभिः कृत्यैस्तस्य प्रतिक्षणमाकुला।
तनयमचिरात्प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनं
मम विरहजां न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि[2]॥ 4 -19॥ [166]

(शकुन्तला पितुः पादयोः पतति) [167]

काश्यपः- यदिच्छसि ते तदस्तु[3]। [168]

शकुन्तला- (सख्यावुपेत्य) हला, दुवे वि मं समं एव्व परिस्सजह। (सख्यौ, द्वे अपि मां सममेव परिष्वजेथाम्।) [169]

उभे- (तथा कृत्वा) सहि, जइ सो राआ पच्चहिण्णाणमंथरो भवे तदो से इदं सणामहेअङ्किदं अङ्गुलीअअं दंसेहि। (सखि, यदि स राजा प्रत्यभिज्ञानमन्थरो भवेत्तदाऽस्मै स्वनामधेयाङ्कितम् अङ्गुलीयकं दर्शय[4]।) [170]

शकुन्तला- हला, इमिणा सन्देहेण वो आअंपिदम्हि। (सख्यौ, अनेन सन्देहेन[5] वामाकम्पितास्मि।) [171]

उभे- मा भाआहि। अदिसिणेहो पावसङ्की। (मा भैषीः। अतिस्नेहः पापशङ्की[6]।) [172]

शार्ङ्गरवः- युगान्तरमधिरूढः[7] सविता। त्वरतां भवती। [173]

शकुन्तला- (आश्रमाभिमुखी स्थित्वा) ताद, कदा णु खु भूओ वि तवोवणं पेक्खिस्सं। (तात, कदा नु खलु भूयः अपि तपोवनं प्रेक्षिष्ये।) [174]

काश्यपः- श्रूयताम्,

भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी दौष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं निवेश्य।

---

1. काश्मीर-पाठे "०करिसार्थपरिभ्रष्टा करेणुकेव प्राणान् धारयिष्य" इति। दाक्षि.-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति, बंगीय-पाठवद्।
2. का.-मै.-पाठयोरत्रा "पि चेदमवधारय- यथा शरीरस्य शरीरिणश्च पृथक्त्वमि" ति श्लोकाधिक्यम्। दाक्षि.-पाठो बंगीय-पाठमनुसृत्य तं निष्कासयति।
3. मै.-बं.-पाठयो "र्वत्से, यदहमीहे तदस्त्वि" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठ इतः परम् "इत्यङ्गुलीयकं दत्त" इति रंगसूचना। मै.-बं.-पाठयोः सा न प्राप्यते।
5. का.-मै.-पाठयोः सन्देशेनेति। सप्तमांके "सखीभिः संदिष्टमि" ति वचनाद् बं-पाठानुसारीदं परिवर्तनं नोचितम्।
6. काश्मीर-पाठे "स्नेहो वाममाशङ्कत" ति। मै.-पाठे "स्नेहः पापं शङ्कत" इति। बं.-पाठे "स्नेहः पापम् आशङ्कत" इति। दाक्षि.-पाठे शब्दान्तरेणोच्यते।
7. मै.-पाठे "दूरमधिरूढ" इति। बं.-पाठे- "ऽगान्तरमधिरूढ" इति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

भर्त्रा तदर्पितकुटुम्बभरेण सार्धम्[1] शान्ते[2] करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन्।। 4 -20।। [175]

गौतमी- जादे, परिहीअदि दे गमणवेला। णिवत्तेहि पिदरं। अहवा चिरेण वि पुणो पुणो एसा एव्वं आमंतिस्सदि। णिवट्टदु भअवं। (जाते, परिहीयते ते गमनवेला। निवर्तय पितरमथवा चिरेणापि पुनःपुनरेषैवं आमन्त्रयते। निवर्ततां भगवान्।) [176]

काश्यपः- वत्से, उपरुध्यते मे तपोऽनुष्ठानम्। [177]

शकुन्तला- (भूयः पितरमाश्लिष्य) भूओ वि तवच्चरणपीडिदं तादस्स सरीरं अदिमेत्तं मह किदे उक्कंठिदं भविस्सदि।। (भूयोपि तपश्चरणपीडितं तातस्य शरीरमतिमात्रं मम कृते उत्कण्ठितं भविष्यति[3]।) [178]

काश्यपः- (सनिःश्वासम्)

शममेष्यति मे शोकः कथं नु वत्से [4]त्वया रचितपूर्वम्।
उटजद्वारविरुढं नीवारबलिं विलोकयतः।। 4 -21।। [179]

गच्छ। शिवास्ते पन्थानः सन्तु। [180]

(इति निष्क्रान्ताः शकुन्तला सहयायिनश्च।) [181]

सख्यौ- (शकुन्तलां विलोक्य) हद्धि हद्धि। अंदरिदा पिअसही सउंदला वणराइए। (हा धिक्, हा धिक्। अन्तरिता प्रियसखी शकुन्तला वनराज्या।) [182]

काश्यपः- (सनिःश्वासम्) अनसूये, गतवती वां सहचरिणी। निगृह्य शोकमनुगच्छत मां प्रस्थितम्। [183]

उभे- ताद, सउंदलाविरहिदं सुण्णं विअ तवोवणं कहं पविसावो। (तात, शकुन्तलाविरहितं शून्यमिव तपोवनं कथं प्रविशावः।) [184]

काश्यपः- स्नेहवृत्तिरेवंदर्शिनी[5]। (सविमर्शं परिक्रम्य) हन्त भोः। शकुन्तलां प्रतिविसृज्य लब्धमिदानीं स्वास्थ्यम्। कुतः-[185]

अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः।
जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा[6]।। 4 -22।। [186]

(निष्क्रान्ताः सर्वे) [187]

।। चतुर्थोऽङ्कः[7]।। [188]

---

1. का.-पाठे "चतुरन्त, प्रसूय, तस्मिन् निवेशितधुरेण सहैव भर्त्रे" ति। मै.-पाठे "सदिगन्त, प्रसूय, तत्संनिवेशितभरेण सहैव भर्त्रे" ति। दाक्षि. -पाठे शब्दान्तरेणोच्यते।
2. मै.-बं.-पाठयोः "शान्त्यै"।, दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
3. काश्मीरादि-पाठेषु "तपोव्यापारेण तातो निरुत्कण्ठो भविष्यति। अहमिदानीमुत्कण्ठाभागिनी संवृत्ते" ति। दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं परिवर्तनं क्रियते।
4. का.-पाठे "शममेष्यति मम वत्से कथमिव शोक" इति। मै.-पाठे "ऽपयास्यति मे शोकः कथं नु वत्स" इति। बं.-पाठे "ऽपयास्यति मे शोकः कथं नु वत्से त्वयावचितपूर्वमि" ति।
5. काश्मीर-पाठे "स्नेहवृत्तिरिव दर्शनीये" ति। दाक्षि.-पाठे मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
6. काश्मीरादि-पाठेषु "जातोऽस्मि सद्यो विशदान्तरात्मा, चिरस्य निक्षेपमिवार्पयित्वे" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं कृतम्। किन्तु निक्षेपशब्दस्य स्थाने न्यासेति शब्दो न मौलिकतां धत्ते, 131 क्रमांके स्थितामुक्तिमवलोक्य। (विक्रमोर्वशीयेऽपि (2-13 इत्यस्याधस्ताद्) निक्षेपशब्दस्यैव प्रयोगाच्च।)
7. मै.-बं.-पाठयोः "शकुन्तला-प्रस्थान-नाम चतुर्थोऽङ्क" इति। दाक्षि.-पाठे का.-पाठवन्नामानि न दीयन्ते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ पञ्चमोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशत्यासनस्थो राजा[1] विदूषकश्च) [1]

विदूषकः[2]- (कर्णं दत्त्वा) भो वअस्स। संगीदसालंदरे अवहाणं देहि। कलविसुद्धाए संगीदीए सरसंजोओ विअ सुणीअदि। जाणे तत्तहोदी हंसपदिआ वण्णपरिअअं करोदि त्ति। (भो वयस्य, संगीतशालान्तरेऽवधानं देहि। कलविशुद्धाया संगीत्याः स्वरसंयोग इव श्रूयते[3]। जाने तत्रभवती हंसपदिका[4] वर्णपरिचयं करोतीति।) [2]

राजा- तूष्णीं भव यावदाकर्णयामि। [3]

(आकाशे गीयते) [4]

अहिणवमहुलोलुवो तुमं तह परिचुम्बिअ चूअमञ्जरिं।
कमलवसइमंत्तणिव्वुदो महुअर विरहरिओ सि णं कहं॥ 5 -1॥

(अभिनवमधुलोलुपस्त्वं[5] तथा परिचुम्ब्य चूतमञ्जरीम्।
कमलवसतिमात्रनिर्वृतो मधुकर विस्मृतोऽस्येनां कथम्)॥ 5 -1॥ [5]

राजा- अहो रागपरिवाहिणी गीतिः। [6]

विदूषकः- किं दाव गीदीए भवदा अवगदो अक्खरत्थो। (किं तावद् गीत्या भवताऽवगतोऽक्षरार्थः।) [7]

राजा- (स्मितं कृत्वा) सकृत्कृतप्रणयो[6]ऽयं जनः। तदस्या देवीं वसुमतीम[7]न्तरेण मदुपालम्भमवगतोऽस्मि। सखे माढव्य[8], मद्वचनादुच्यतां हंसपदिका। निपुणमुपालब्धोऽस्मीति। [8]

विदूषकः- जं भवं आणवेदि। (इत्युत्थाय) भो वअस्स, गहीदस्स ताए परकीएहिं हत्थेहिं सिहण्डए अच्छराए विअ वीदराअस्स णत्थि मे मोक्खो। (यद्भवानाज्ञापयति। भो वयस्य, गृहीतस्य तया[9] परकीयैः हस्तैः शिखण्डके अप्सरसेव वीतरागस्य नास्ति मे मोक्षः[10]।) [9]

---

1. काश्मीरादि-पाठेषु राजा विदूषकेन परिजनेन च सह प्रविशति। दाक्षि.-पाठे परिजनस्यानुपस्थितिः।
2. काश्मीरादि-पाठेषु प्रथमं कञ्चुकिनः प्रवेशो भवति। दाक्षि.-देव.-पाठयोस्तु दृश्य-क्रमांकं परिवर्त्यते। तेनापि सिध्यति रंगावृत्तित्वमेतेषां पञ्च पाठानाम्।
3. काश्मीरादि-पाठेषु "तालविशुद्धायाः खलु वीणायाः स्वरसंयोगाः श्रूयन्त" इति। दाक्षि.-पाठे वीणाया निर्देशो नास्ति। आहार्य-भेदेनोद्दीपनविभावभेदोऽपि भवेद्। रंगकर्मिभिरिदं परिवर्तनं कृतं स्यादिति लक्ष्यते।
4. काश्मीरादि-पाठेषु "हंसवतिका, हंसवती चे" ति नामान्तरं प्राप्यते।
5. काश्मीर-पाठे, बं.-पाठे चा- "ऽभिनवमधुलोभभावितस्तथे".ति। मै.-पाठे "0लोभभावितामि" ति।
6. काश्मीर-पाठे "सत्कृतप्रणय" इति। मै.-बं.-पाठयोः "सकृत्कृतप्रणय" इति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति
7. काश्मीर-पाठे "कुलप्रभामि" ति। मै.-बं.-पाठयोः "हंसवतीमि" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं क्रियते। किन्तु "कः पौरवे वसुमतीं शासतीति" भ्रमरबाधा-प्रसंगे भणितेन शब्देन ज्ञायते यद्वसुमतीति नामात्र न संगच्छते।
8. काश्मीरादि-पाठेषु "माधव्ये" ति। दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं प्राकृतशब्दरूपं प्रयुज्यते।
9. का.-बं.-पाठयोः "गृहीतस्त्वये" ति। मै.-पाठे (शंकरकृतटीकायां) "गृहीतः तये " ति।
10. काश्मीरादि-पाठेषु "०शिखण्डके भल्लूकः, अवीतरागस्येव नास्ति मे मोक्ष" इति। मै.-पाठे "०अच्छभल्लः। अविगतरागस्य सुजनस्येव नास्ति०" इति। बं.-पाठे "०अच्छभल्लः। तदवीतरागस्येव श्रमणस्य नास्ति०" इति। दाक्षि.-पाठे विशदीकरणस्याशयो दृश्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- गच्छ, नागरिकवृत्त्या संज्ञापयैनाम्। [10]

विदूषकः- का गई। (का गतिः) (इति निष्क्रान्तः) [11]

राजा- किं नु खलु गीतमेवंविधार्थमाकर्ण्य, इष्टजनविरहादृतेऽपि बलवदुत्कण्ठितोऽस्मि। अथवा -[12]

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुको भवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनम् अबोधपूर्वं
भावस्थिराणि[1] जननान्तरसौहृदानि॥ 5 -2॥ [13]

(इति पर्याकुलस्तिष्ठति[2]) [14]

(ततः प्रविशति कञ्चुकी[3]) [15]

कञ्चुकी- (निःश्वस्य) अहो खल्वीदृशीमवस्थां प्रतिपन्नोऽस्मि। [16]

आचार इत्यवहितेन मया गृहीता
या वेत्रयष्टिरवरोधगृहेषु राज्ञः।
काले गते बहुतिथे मम सैव जाता
प्रस्थानविक्लवगतेरवलम्बनार्था[4]॥ 5 -3॥ [17]

भो, कामं खलु[5] धर्मकार्यमनतिपात्यं देवस्य, तथापीदानीमेव धर्मासनादुत्थिताय पुनरुपरोधकारि कण्वशिष्यागमनमस्मै नोत्सहे निवेदयितुम्। अथवाऽविश्रामो लोकतन्त्राधिकारः। कुतः, [18]

भानुः सकृद् युक्ततुरङ्ग एव रात्रिंदिवं गन्धवहः प्रयाति।
शेषः सदैवाहितभूमिभारः[6] षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः॥ 5 -4॥ [19]

यावन्नियोगमनुतिष्ठामि। (परिक्रम्यावलोक्य) एष देवः- [20]

प्रजाः प्रजाः स्वा इव तन्त्रयित्वा निषेवते शान्तमना विविक्तम्।
यूथानि सञ्चार्य रविप्रतप्तः शीतं दिवा स्थानमिव द्विपेन्द्रः॥ 5 -5॥ [21]

(उपगम्य) जयतु देवः। एते खलु हिमवदुपत्यकारण्यवासिनः काश्यपसन्देशमादाय सस्त्रीकाः तपस्विनः संप्राप्ताः। श्रुत्वा देवः प्रमाणम्। [22]

राजा- (सादरम्) किं काश्यपसन्देशहारिणः। [23]

कञ्चुकी- अथ किम्। [24]

राजा- तेन हि मद्वचनाद् उच्यतामुपाध्यायः सोमरातः। अमूनाश्रमवासिनः श्रौतेन विधिना सत्कृत्य स्वयमेव प्रवेशयितुमर्हसीति।

---

1. काश्मीरादि-पाठेषु "पर्युत्सुकीभवति, अभोगपूर्वम्, भाविस्थितानी" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठे नास्तीयं रंगसूचना। मै.-बं.-पाठयो- "रस्मृतिनिमित्तमुन्मनस्कत्वं सूचयती" ति।
3. काश्मीरादि-पाठेषु कञ्चुकिनः प्रवेशस्तु प्रथममेव संजातः। दाक्षि.-पाठे कञ्चुकिनः श्लोकत्रयस्य गानपर्यन्तं राज्ञा पर्याकुलावस्था निर्वहणीयेति नाट्य-योजना चिन्त्या। एवञ्च राज्ञो विस्मृतिरपि कञ्चुकिना न व्यज्यते।
4. काश्मीरादि-पाठेषु "कालेन सैव परिहीननियोगशक्तेर्गन्तुं ममेयमवलम्बनवस्तु जाते" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
5. काश्मीरादि-पाठेष्वितः पूर्वं कञ्चुकिनः विस्मरणशीलता, क्षणात्प्रबोधमायातीति श्लोकश्च प्रस्तूयते। तेन राज्ञः स्मृतिभ्रंशो व्यज्यते। तत्सर्वमत्र दाक्षि.-पाठे निष्कासितम्, संक्षेपीकरणाय।
6. काश्मीर-पाठे-"ऽवेक्ष्य दाह्यं न शमोऽस्ति वह्नेरि" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति बं.-पाठवद्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अहमप्येतांस्तपस्विजनसन्दर्शनयोग्ये देशे प्रतिपालयामि। [25]

कञ्चुकी- यदाज्ञापयतिदेवः। [26]

(इति निष्क्रान्तः।) [27]

राजा- (उत्थाय) कः कोऽत्र भोः। [28]

(प्रविश्य प्रतिहारी)

प्रतिहारी- आणवेदु देवो। (आज्ञापयतु देवः।) [29]

राजा- वेत्रवति, अग्निशरणमार्गमादेशय। [30]

प्रतीहारी- इदो इदो देवो। (इत इतो देवः।) [31]

राजा- (परिक्रामति। अधिकारखेदं निरूप्य।) सर्वः प्रार्थितमर्थमधिगम्य सुखी संपद्यते जन्तुः। राज्ञां तु चरितार्थता दुःखोत्तरैव। [32]

औत्सुक्यमात्रमवसादयति प्रतिष्ठा क्लिश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेव।
नातिश्रमापनयनाय न च श्रमाय राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम्॥ 5 -6॥ [33]

(नेपथ्ये) [34]

वैतालिकौ[1]- विजयतां देवः। [35]

प्रथमः-

स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः
प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव।
अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम्॥ 5 -7॥ [36]

द्वितीयः-

नियमयसि विमार्गप्रस्थितानात्तदण्डः
प्रशमयसि विवादं कल्पसे रक्षणाय।
अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः सन्तु नाम
त्वयि तु परिसमाप्तं बन्धुकृत्यं प्रजानाम्॥ 5 -8॥ [37]

राजा- एते वयं क्लान्तमनसः पुनर्नवीकृताः स्मः। (इति परिक्रामति) [38]

प्रतिहारी- एसो अहिणवसम्मजणससिरीओ सण्णिहिदहोमधेणू अग्गिसरणालिन्दो। आरुहदु देवो।
(एषोऽभिनवसंमार्जनसश्रीकः सन्निहितहोमधेनु[2] रयमग्निशरणालिन्दः। आरोहतु देवः।) [39]

राजा- (आरुह्य परिजनांसावलम्बी स्थित्वा।) वेत्रवति, किमुद्दिश्य भगवता काश्यपेन मत्सकाशम् ऋषयः प्रेषिताः स्युः। [40]

---

1. काश्मीर-पाठे वैतालिका इति बहुवचनान्तम्। ते सर्वे मिलित्वैव श्लोकद्वयं प्रस्तुवन्ति। मै.-बं.-पाठयोः द्वौ वैतालिकौ स्तः। प्रत्येकं श्लोकमेकैकशो गायतः। दाक्षि.-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठे "०कपिलधेनु०" इति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

किं तावद् व्रतिनामुपोढतपसां विघ्नैस्तपो दूषितं
धर्मारण्यचरेषु केनचिदुत प्राणिष्वसच्चेष्टितम्।
आहोस्वित्प्रसवो ममापचरितैर्विष्टंभितो वीरुधा-
मित्यारूढबहुप्रतर्कमपरिच्छेदाकुलं मे मनः॥ 5 -9॥ [41]

प्रतिहारी- सुअरिदाहिणन्दिणो इसीओ देवं संभावेदुं आअदत्ति तक्केमि। (सुचरिताभिनन्दिन ऋषयो देवं सम्भावयितुमागता इति तर्कयामि।) [42]

(ततः प्रविशन्ति गौतमीसहिताः शकुन्तलां पुरस्कृत्य मुनयः, पुरश्चैषां पुरोहितः कञ्चुकी च।) [43]

कञ्चुकी- इतो इतो भगवन्तः। [45]

शार्ङ्गरवः- शारद्वत,

महाभागः कामं नरपतिरभिन्नस्थितिरसौ
न कश्चिद्वर्णानामपथमपकृष्टोऽपि भजते।
तथापीदं शश्वत्परिचितविविक्तेन मनसा
जनाकीर्णं मन्ये हुतवहपरीतं वनमिव[1]॥ 5 -10॥ [46]

शारद्वतः- स्थाने भवान्पुरप्रवेशादित्थंभूतः संवृत्तः। अहमपि-[47]

अभ्यक्तमिव स्नातः, शुचिरशुचिमिव, प्रबुद्ध इव सुप्तम्।
बद्धमिव स्वैरगति-र्जनमिहसुख-[2]सङ्गिनमवैमि॥ 5 -11॥ [48]

शकुन्तला- (निमित्तं सूचयित्वा) अम्महे, किं वामेदरं मे णअणं विअरोदि। (अहो, किं वामेतरन्मे नयनं विकरोति।) [49]

गौतमी- जादे, पडिहदं अमङ्गलं। सुहाइं दे भत्तुकुलदेवदाओ विदरंदु। (जाते, प्रतिहतममङ्गलम्। शुभानि ते भर्तृकुलदेवता वितरन्तु।) (इति परिक्रामन्ति।) [50]

पुरोहितः- (राजानं निर्दिश्य) भोस्तपस्विनः, असावत्रभवान् वर्णाश्रमाणां रक्षिता प्रागेव मुक्तासनो वः प्रतिपालयति। पश्यतैनम्। [51]

शार्ङ्गरवः- भो महाब्राह्मण, काममेतदभिनन्दनीयम्। तथापि वयमत्र मध्यस्थाः। कुतः, [52]

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैर्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धता सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्॥ 5 -12॥ [53]

प्रतिहारी- देव, पसण्णमुहराआ इसीणो दीसंदि। ता जाणामि विस्सद्धकज्जत्ति। (देव, प्रसन्नमुखरागा ऋषयो दृश्यन्ते। तज्जानामि विश्रब्धकार्या इति।) [54]

राजा- (शकुन्तलां दृष्ट्वा) अथात्रभवती-[55]

का स्विद्[3] अवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या।
मध्ये तपोधनानां किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम्॥ 5 -13॥ [56]

प्रतिहारी- देव, कुदूहलगब्भो मे तक्को पसीददि। दंसणिज्जा उण से आकिदी लक्खीअदि। (देव, कुतूहलगर्भो मे तर्कः

---

1. काश्मीरादि-पाठेषु "गृहमिवे" ति। दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं परिवर्तनं क्रियते।
2. काश्मीरादि-पाठेषु "जनमवश" इति। दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं परिवर्तनं क्रियते।
3. मै.-बं.-पाठयोः "केयमि" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रसीदति। दर्शनीया पुनरस्या आकृतिर्लक्ष्यते[1]।) [57]

राजा- भवतु, अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम्। [58]

शकुन्तला- (हस्तम् उरसि कृत्वा, आत्मगतम्) हिअअ, किं एव्वं वेवसि। अज्जउत्तस्स भावं अणवहरिअ?। धीरं दाव होहि। (हृदय, किमेवं वेपसे आर्यपुत्रस्य भावमनवधार्य। धीरं तावद् भव[2]।) [59]

पुरोहितः- (पुरो गत्वा) देव, एते विधिवदर्चितास्तपस्विनः। कश्चिदेषामुपाध्यायसन्देशः। तं देवः श्रोतुमर्हति। [60]

राजा- अवहितोऽस्मि। [61]

ऋषयः- (हस्तमुद्यम्य) विजयस्व राजन्। [62]

राजा- अखिलान् अभिवादये वः। [63]

ऋषयः- स्वस्ति भवते। इष्टेन युज्यस्व। [64]

राजा- अपि निर्विघ्नतपसो मुनयः। [65]

ऋषयः-

कुतो धर्मक्रियाविघ्नः[3] सतां रक्षितरि त्वयि।
तमस्तपति घर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति॥ 5 -14॥ [66]

राजा- अर्थवान् खलु मे राजशब्दः। अथ भगवांल्लोकानुग्रहाय कुशली काश्यपः। [67]

शार्ङ्गरवः- स्वाधीनकुशलाः सिद्धिमन्तः। स भवन्तमनामयप्रश्नपूर्वमिदमाह। [68]

राजा- किमाज्ञापयति भगवान्। [69]

शार्ङ्गरवः- यन्मिथः समयादिमां मदीयां दुहितरं भवानुपायंस्तन्मया प्रीतिमता युवयोरनुज्ञातम्। कुतः-[70]

त्वमर्हतां प्राग्रसरः स्मृतोऽसि नः
शकुन्तला मूर्तिमती च[4] सत्क्रिया।
समानयंस्तुल्यगुणं वधूवरं
चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः॥ 5 -15॥ [71]

तदिदानीमापन्नसत्त्वा प्रतिगृह्यतां सहधर्मचरणायेति। [72]

गौतमी- अज्ज, किं वि वत्तुकामम्हि। ण खु मे वअणावआसो अत्थि। कहंत्ति। (आर्य, किमपि वक्तुकामास्मि। न खलु मे वचनावकाशोऽस्ति। कथमिति।) [73]

णावेक्खिओ गुरुअणो तुए इमाए ण पुच्छिओ बन्धू[5]।
एक्केक्कं एव्व चरिए किं भणामि किं एक्क-एक्कस्स॥ 5 -16॥

1. काश्मीर-पाठे न प्रतिहारीमामुक्तिं भणति, सा तु परिजनस्य मुखे वर्तते। दाक्षि.-पाठे परिजनाभावे केवलः प्रतिहारी भणति सर्वाणि वाक्यानि।
2. काश्मीरादि-पाठेषु "किमेवं वेपसि। आर्यपुत्रस्य भावस्थितं स्मृत्वा धीरं तावद्भवे" ति। दाक्षि.-पाठे काकु-परिवर्तनं क्रियते।
3. केवलं मै.-पाठे "धर्मविघ्नः कुतोऽस्माकमि" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
4. का.-बं.-पाठयोः "मूर्तिमतीवे" ति। मै.-पाठे "मूर्तिमयी चे" ति।
5. काश्मीर-पाठे "नापेक्षितो गुरुजनोऽनया, न चात्र पृष्टा बन्धव" इति। मै.-पाठे "नावेक्षितो गुरुजनोऽनया, त्वयापि न पृष्टो बन्धुरि" ति। बं.-पाठे "नापेक्षितो गुरुजनोऽनया, न त्वयापि पृष्टा बन्धव" इति। दाक्षि.-पाठे दुष्यन्तचरिते प्रथमं दोष-प्रदर्शनं, ततः शकुन्तलाया दोषकथनम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(नापेक्षितो गुरुजनस्त्वया, ऽनया न पृष्टो बन्धुः।
एकैकमेव चरिते[1] किं भणाम्येकैकस्य॥ 5 -16॥) [74]

शकुन्तला- (आत्मगतम्) किं णु खु अज्जउत्तो भणादि। (किं नु खलु आर्यपुत्रो भणति[2]।) [75]

राजा- किमिदमुपन्यस्तम्। [76]

शकुन्तला- (आत्मगतम्) पावओ खु वअणोवण्णासो। (पावकः खलु वचनोपन्यासः[3]।) [77]

शार्ङ्गरवः- तत् कथं किमिदं नाम। ननु भवन्त एव सुतरां लोकतन्त्रनिष्णाताः[4]। [78]

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां जनोऽन्यथा भर्तुमतीं विशङ्कते।
अतः समीपे परिणेतुरिष्यते तदप्रियापि[5] प्रमदा स्वबन्धुभिः॥ 5 -17॥ [79]

राजा- किं चात्रभवती मया परिणीतपूर्वा। [80]

शकुन्तला- (सविषादमात्मगतम्) हिअअ, संपदं दे आदङ्को। (हृदय, साम्प्रतं ते आतङ्क आसीत्[6]।) [81]

शार्ङ्गरवः- **किं कृतकार्यद्वेषो, धर्मं प्रति विमुखता, कृतावज्ञा[7]। [82]**

राजा- कुतोऽयमसत्कल्पनाप्रश्नः[8]। [83]

शार्ङ्गरवः-

मूर्छन्त्यमी विकाराः प्रायेणैश्वर्यमत्तेषु[9]॥ 6 - 18॥ [84]

राजा- विशेषेणाधिक्षिप्तोऽस्मि। [85]

गौतमी- जादे, मुहुत्तं मा लज्जेसु। अवणइस्सं दाव दे अवगुण्ठणं। तदो तुमं भट्टा अहिजाणिस्सदि।)

(जाते, मुहूर्तं मा लज्जस्व। अपनेष्यामि तावत्तेऽवगुण्ठनम्। ततः त्वां भर्ताऽभिज्ञास्यति।) [86]

(यथोक्तं करोति) [87]

राजा- (शकुन्तलां निर्वर्ण्य आत्मगतम्) [88]

---

1. काश्मीर-पाठे "वरिते"। बं.-पाठे "वृते" इति। मै.-पाठे "चरिते"। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठे शकुन्तलाया वाक्यमिदं नास्ति। मै.-पाठे प्रथमत उपन्यस्तं तत्। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
3. काश्मीर-पाठे "०वचनोपक्षेप" इति। बं.-पाठे "हुं, सावलेपोऽस्य वचनावक्षेप" इति। दाक्षि.-पाठोऽत्र मै.-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठे "लोकयात्रानिष्णाता" इति। मै.-बं.-पाठयोः "लोकवृत्तान्तनिष्णाता" इति। दाक्षि.-पाठेन तृतीयः पाठभेदः प्रस्तूयते।
5. मै.-बं.-पाठयोः "प्रियाप्रिया वे" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठे "संवर्धिता खलु ते आशङ्के" ति। मै.-पाठे "समुदिता ते आशङ्के" ति। बं.-पाठे "संवृत्ता ते आशङ्के" ति। दाक्षि.-पाठे चतुर्थः पाठभेदः प्रस्तूयते।
7. काश्मीर-पाठे "किं कृतकार्यद्वेषाद् धर्मं प्रति विमुखता राज्ञ" इति। मै.-पाठे "0विमुखता कृता राज्ञे" ति। बं.-पाठे "०विमुखतोचिता राज्ञ" इति। दाक्षि.-पाठे चतुर्थेन पाठभेदेन प्रश्नत्रयं प्रस्तूयते।
8. का.-बं.-पाठयो- "रसत्कल्पनाप्रसंग" इति। मै.-पाठे "ऽसत्कल्पः प्रश्न" इति। दाक्षि.-पाठे संमिश्रणं क्रियते।
9. मै.-बं.-पाठयोः "०श्वर्यमत्तानामि" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

इदमुपनतमेवं रूपमक्लिष्टकान्ति
प्रथमपरिगृहीतं स्यान्न वेत्यव्यवस्यन्।
भ्रमर इव विभाते कुन्दमन्तस्तुषारं
न च खलु परिभोक्तुं नापि शक्नोमि हातुम्[1]॥ 5 -19॥ [89]

(इति विचारयन् स्थितः[2]।) [90]

परिजनः[3]- (जनान्तिकम्) अम्हो, धम्मावेक्खिदा भट्टिणो। ईरिसं णाम सुहोवणदं रूवं देक्खिअ को अण्णो विआरेदि। (अहो, धर्मापेक्षिता भर्तुः। ईदृशं नाम सुखोपनतं रूपं दृष्ट्वा कोऽन्यो विचारयति।) [91]

शार्ङ्गरवः- किमिदं जोषमास्यते। [92]

राजा- भोस्तपोधन, चिन्तयन्नपि न खलु स्वीकरणमत्रभवत्याः स्मरामि। तत्कथमिमामभिव्यक्तसत्त्वलक्षणां प्रत्यात्मानं क्षेत्रिणमाशङ्कमानः प्रतिपत्स्ये[4]। [93]

शकुन्तला- (सविषादम्, आत्मगतम्) णं परिणए एव्व सन्देहो। कुदो मे दाणिं दूराहिरोहिणी आसा। (ननु परिणय एव सन्देहः। कुत मे इदानीं दूराधिरोहिण्याशा[5]।) [94]

शार्ङ्गरवः- मा तावत्-

कृताभिमर्शामनुमन्यमानः सुतां त्वया नाम मुनिर्विमान्यः।
मुष्टं[6] प्रतिग्राहयता स्वमर्थं पात्रीकृतो दस्युरिवासि येन॥ 5 -20॥ [95]

शारद्वतः- शार्ङ्गरव, विरम त्वमिदानीम्। शकुन्तले, वक्तव्यमुक्तमस्माभिः। सोऽयमत्रभवानेवमाह।
दीयतामस्मै प्रत्ययप्रतिवचनम्[7]। [96]

शकुन्तला- (आत्मगतम्) एव्वं अवत्थंदरं गदे तारिसे अणुराए किं वा सुमरिदेण। अत्ता दाणिं मे सोअणिज्जो त्ति ववसिदं एदं। (प्रकाशम्) अज्जउत्त, ... (अर्धोक्ते-) दाणिं ण एसो समुदाआरो। पोरव, ण जुत्तं णाम दे पुरा अस्समपदे सहावुत्ताणहिअअं इमं जणं समअपुव्वं पदारिअ संपदं ईरिसेहिं अरुन्दुदेहि अक्खरेहिं पच्चाचक्खिदुं। (एवम् अवस्थान्तरं गते तादृशेऽनुरागे किं वा स्मारितेन। आत्मेदानीं मे शोचनीय इति व्यवसितमेतत्[8]। आर्यपुत्र...।

---

1. काश्मीर-पाठे "वेत्यध्यवस्यन्,०" इति। मै.-बं.-पाठयो-"वेत्यध्यवस्यन्, निशान्ते, न खलु सपदि भोक्तुं नापि शक्तोऽस्मि/शक्नोमि मोक्तुमि" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
2. काश्मीरादि-पाठेषु नास्त्येतादृशी रंगसूचना।
3. दाक्षि.-पाठे पूर्वं न कुत्रापि परिजनस्य प्रवेशः कथितः। तथापि तस्योक्तिरत्र वर्तते, संक्षेपीकरणेन समुद्भूतेयं विसंगतिः। किन्तु दाक्षि. -पाठः काश्मीर-पाठमनुसरत्यत्र। मै.-बं.-पाठयोः वाक्यमिदं प्रतिहारी भणति, तदपि विसंगतिमावहति।
4. काश्मीर-पाठे "तत्कथमनभिव्यक्तसन्धिलक्षणमात्मानं क्षेत्रिणम् अनाशंसमानः प्रतिपत्स्य" इति। मै.-पाठे "तत्कथमिमामभिव्यक्तसत्त्वलक्षणां परस्त्रियमाशंकमानः प्रतिपत्स्य" इति। बं.-पाठे "तत्कथमिमामभिव्यक्त-सत्त्वलक्षणामात्मानं क्षेत्रियमिव मन्यमानः प्रतिपत्स्य" इति। दाक्षि.-पाठे पूर्वनिर्दिष्टानां पाठभेदानां संमिश्रणं क्रियते।
5. काश्मीर-पाठे "भग्नेदानीं मे दूरारोहिण्याशे" ति। मै.-बं.-पाठयोः "भग्नेदानीं दूरारोहिणी आशालते" ति। दाक्षि.-पाठे विविधानां पाठभेदानां संमिश्रणं दृश्यते।
6. काश्मीर-पाठे "जुष्टमि" ति। मै.-बं.-पाठयो-"र्दुष्टमि" ति। दाक्षि.-पाठे तृतीयः पाठभेदः प्रस्तूयते।
7. का.-बं.-पाठयोः "प्रतिवचनमि" ति। मै.-पाठे "प्रत्ययवचनमि" ति। दाक्षि.-पाठे पाठभेदयोः संमिश्रणं दृश्यते।
8. का.-पाठे "मुहूर्तरागे, शोधनीयः, विवदिष्याम्येतदि" ति। मै.-पाठे "तादृशेऽनुरागे, शोचनीयः, वदिष्यामी" ति। बं.-पाठे "तादृशेऽनुरागे, शोधनीयः, व्यवसिष्यामी" ति। दाक्षि.-पाठे संमिश्रणं क्रियते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(अर्धोक्ते..) इदानीं नैष समुदाचारः। पौरव, न युक्तं नाम ते पुराश्रमपदे स्वभावोत्तानहृदयम्[1] इमं जनं समयपूर्वं प्रतार्य साम्प्रतमीदृशैररुन्तुदै[2] रक्षरैः प्रत्याख्यातुम्।) [97]

राजा- (कर्णौ पिधाय) शान्तं पापम्। [98]

व्यपदेशमाविलयितुं किमीहसे जनमिमं [3]च पातयितुम्।
कूलङ्कषेव सिन्धुः प्रसन्नमम्भस्तटरुहं च[4]।। 5 –21।। [99]

शकुन्तला- होदु, जइ परमत्थदो परिग्गहसङ्किणा तुए एव्वं पउत्तं, अहिण्णाणेण इमिणा तुह संदेहं अवणइस्सं। (भवतु, यदि परमार्थतः परिग्रहशङ्किना त्वयैवं प्रवृत्तं, अभिज्ञानेनानेन[5] तव सन्देहम् अपनेष्यामि।) [100]

राजा- उदारः कल्पः[6]। [101]

शकुन्तला- (मुद्रास्थानं परामृश्य) हद्धि हद्धि। अङ्गुलीअअसुण्णा मे अङ्गुली। (हा धिक् हा धिक्। अङ्गुलीयकशून्या मे अङ्गुली।) [102]

(इति सविषादं गौतमीमवेक्षते।) [103]

गौतमी- णूणं दे सक्कावदारब्भन्तरे सईतित्थं वन्दमाणाए तुह अग्गहत्थादो पब्भट्ठं अङ्गुलीअअं। (नूनं शक्रावताराभ्यन्तरे शचीतीर्थम् वन्दमानायाः तव अग्रहस्तात् प्रभ्रष्टमङ्गुलीयकम्।) [104]

राजा- (सस्मितम्) इदं तत्प्रत्युत्पन्नमति स्त्रैणमिति यदुच्यते[7]। [105]

शकुन्तला- एत्थं एव्व दाव विहिणा दंसिदं पहुत्तणं। अवरं दे कहइस्सं। (अत्रैव तावद्विधिना दर्शितं प्रभुत्वम्। अपरं ते कथयिष्यामि।) [106]

राजा- श्रोतव्यमिदानीं संवृत्तम्। [107]

शकुन्तला- णं एक्कास्सिं दिअहे णोमलिआमण्डवे णलिणीपत्तभाअणगदं उदअं तुह हत्थे संणिहिदं आसी। (ननु एकस्मिन् दिवसे नवमालिकामण्डपे[8] नलिनीपत्रभाजनगतमुदकं तव हस्ते सन्निहितम् आसीत्।) [108]

राजा- शृणुमस्तावत्। [109]

शकुन्तला- तक्खणं मह पुत्तकिदओ दीहापङ्गो णाम हरिणपोदओ उवट्ठिदो। तदो तुए दाव पुढमं पिबदु त्ति अणुअम्पिणा उवच्छन्दिदो उअएण। ण उण सो दे अपरिअआदो हत्थब्भासं उवगदो। पच्छा तस्सिं एव्व मए गहीदे सलिले किदो देण पणओ। तदो इत्थं पहसिदो सि। सव्वो सगन्धेसु बहु विस्ससदि। दुवे वि खु अरण्णआ त्ति।

(तत्क्षणं मम पुत्रकृतको दीर्घापाङ्गो[9] नाम हरिणपोतक उपस्थितः। ततः त्वया तावत्प्रथममेष पिबत्वित्यनुकम्पिनोपच्छन्दित

---

1. काश्मीरादि-पाठेषु "सद्भावोत्तानहृदयमि" ति। दाक्षि.-पाठे नवीनं पाठान्तरमाकार्यते।
2. काश्मीरादि-पाठेषु नास्त्येतादृशः शब्दः। दाक्षि.-पाठेन नवीनं विशेषणं प्रक्षिप्तम्।
3. मै.-पाठे "मलिनयितुं समीहसे मां चे" ति।
4. का.-पाठे "प्रसन्नमोघं तटरुहं चे" ति। मै.-बं.-पाठे "प्रसन्नमोघं तटतरुं चे" ति।
5. काश्मीर-पाठे "गुरुणे" ति। मै.-बं.-पाठयोः "केनापी" ति। दाक्षि.-पाठे सरलीकरणं दृश्यते।
6. काश्मीर-पाठ "उदारमि" ति। मै.-बं.-पाठयोः "प्रथमः कल्प" इति।
7. काश्मीर-पाठे "इदं तद् यौतुकं, प्रत्युत्पन्नं स्त्रीणामिति यदुच्यत" इति। मै.-पाठे "इदं तद्, अहो प्रत्युत्पन्न-मतित्वं स्त्रीणामि" ति। दाक्षि.-पाठेन सरलीकृतः पाठभेदः प्रस्तुतः।
8. मै.-बं.-पाठयोः "वेतसलतामण्डप" इति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
9. काश्मीर-पाठे "कृतकपुत्रको हरिणक" इति। मै.-पाठे "पुत्रकृतहरिणक" इति। बं.-पाठे "पुत्रकृतकः मृगशावक" इति। दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं नवीनं नाम प्रस्तूयते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

उदकेन। न पुनस्स ते अपरिचयात् हस्ताभ्याशम् उपगतः। पश्चात्तस्मिन्नेव मया गृहीते सलिले, कृतस्तेन प्रणयः[1]। तत इत्थं प्रहसितास्मि[2]। सर्वः सवर्गेषु बहु विश्वसिति[3]। द्वावपि खल्वारण्यकाविति।) [110]

राजा- एवमादिभिरात्मकार्यनिर्वर्त्तिनीनां योषितामनृतवाङ्मधुभिराकृष्यन्ते विषयिणः। [111]

गौतमी- महाभाग, ण अरुहसि एव्वं मंतेदुं। तवोवणसंवड्ढिदो अणहिण्णो अअं जणो कइअवस्स। (महाभाग, नार्हस्येवं मन्त्रयितुम्। तपोवनसंवर्धितोऽनभिज्ञोऽयं जनः कैतवस्य।) [112]

राजा-

स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु संदृश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्यः।
प्रागन्तरिक्षगमनात्[4] स्वमपत्यजातमन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु[5] पोषयन्ति॥ 5 -22॥ [113]

शकुन्तला- (सरोषम्) अणज्ज, अत्तणो हिअआणुमाणेण पेक्खसि। को दाणिं अण्णो धम्मकञ्चुअप्पवेसिणो तिणच्छण्णकूवोवमस्स तुह अणुकिदिं पडिवज्जिस्सदि। (अनार्य[6], आत्मनः हृदयानुमानेन पश्यसि। क इदानीमन्यो धर्मकञ्चुकप्रवेशिनस्तृणच्छन्न-कूपोपमस्य तवानुकृतिं प्रतिपत्स्यते।) [114]

राजा[7]- (आत्मगतम्) सन्दिग्धबुद्धिं मां कुर्वन्नकैतव इवास्याः कोपो लक्ष्यते। तथा ह्यनया-[115]

मय्येव विस्मरणदारुणचित्तवृत्तो वृत्तं रहः प्रणयमप्रतिपद्यमाने[8]।
भेदाद्भ्रूवोः कुटिलयोरतिलोहिताक्ष्या भग्नं शरासनमिवातिरुषा स्मरस्य॥ 5 -23॥ [116]

(प्रकाशम्) भद्रे, प्रथितं दुष्यन्तचरितम्। तथापीदं न लक्षये[9]। [117]

शकुन्तला[10]- सुट्ठु दाव अत्त सछन्दआरिणी किदम्हि जा अहं इमस्स पच्चएण मुहमहुणो हिअअविसस्स हत्थब्भासं उवगदा। (सुष्ठु तावत् स्वच्छन्दचारिणी कृतास्मि। याहमस्य प्रत्ययेन मुखमधोः हृदयविषस्य[11] हस्ताभ्याशमुपगता[12]।) [118]

(इति पटान्तेन मुखमावृत्य रोदिति।) [119]

---

1. काश्मीर-पाठे न सन्त्येतानि पदानि। मै.-पाठे प्रथमवारं प्राप्यन्त एतानि पदानि। दाक्षि.-पाठो मैथिल-पाठ-मनुसरति, बंगीय-पाठवद्।
2. काश्मीर-पाठे "प्रणयप्रकाशपूर्वं प्रहसितोऽसी" ति। मै.-पाठे "अत्रान्तरे उपहसितः त्वये" ति। बं.-पाठे "अत्रान्तरे विहस्य भणितं त्वये" ति।
3. काश्मीरादि-पाठेषु "सर्वः सगन्धे विश्वसिती" ति। दाक्षि.-पाठे परिष्कृतः पाठभेदः प्रस्तूयते।
4. मै.-पाठे "अन्तरिक्षपतनादि" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
5. काश्मीरादि-पाठेषु "अन्यद्विजैः, किले" ति। दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं परिवर्तनं क्रियते।
6. काश्मीर-पाठे नास्त्येतादृशं सम्बोधनम्। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
7. काश्मीरादि-पाठेष्वितः पूर्वम् "वनवासाद् अविभ्रमः पुनरत्रभवत्याः कोपो लक्ष्यत" इत्यधिकं वाक्यम्।
8. का.-पाठोऽत्र "न तिर्यगवलोकितं भवति चक्षुरालोहितं०" इत्येकमेव श्लोकं स्वीकरोति। दाक्षि.-पाठः तं न स्वीकरोति। मै.-बं.-पाठयोर्द्वयोरपि श्लोकयोः स्वीकरणं दृश्यते। किन्तु "मय्येवमस्मरणदारुणचित्त0" इति श्लोकः पुनरुक्तिदोषग्रस्तत्वात् प्रक्षिप्तः प्रतिभाति, तं प्रक्षिप्तं श्लोकं दाक्षि.-पाठः स्वीकरोति। किन्तूभौ प्रक्षिप्तौ।
9. काश्मीर-पाठे "न चापीदं दृश्यत" इति। मै.-पाठे "तवापीदं दृश्यत" इति। बं.-पाठे "नापीदं दृश्यत" इति। दाक्षि.-पाठे नायकः स्वनिरीक्षणं कुर्वन्निव तदेव वक्ति।
10. काश्मीरादि-पाठेष्वत्र शकुन्तलाया मुखे "युवामेव प्रमाणं जानीथो धर्मस्थितिं च लोकस्य0" इति गाथापि वर्तते। (रिचार्ड पिशेलेन न स्वीकृता, किन्तु सन्दर्भ-दीपिकायां सास्ति।), दाक्षि.-पाठे सा नास्ति।
11. का.-पाठे "०पुरुवंशप्रत्ययेन हृदयशस्त्रधरस्य०" इति। मै.-बं.-पाठयोः "पुरुवंशप्रत्ययेन हृदयप्रस्तरस्य0" इति। दाक्षि.-पाठे संक्षेपीकरणं दृश्यते।
12. मै.-पाठे निखिलाप्युक्तिरियं गौतम्या मुखे स्थाप्यते। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शार्ङ्गरवः[1]- इत्थमात्मकृतमप्रतिहतं चापलं दहति। [120]

अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात्सङ्गतं रहः।
अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम्॥ 5 -24॥ [121]

राजा- अयि भोः। किमत्रभवतीप्रत्ययादेवास्मान् संभृतरोषाक्षरैरधिक्षिपसि[2]। [122]

शार्ङ्गरवः- (सासूयम्[3]) श्रुतं भवद्भिरधरोत्तरम्। [123]

आ जन्मनः शाठ्यमशिक्षितो यस्तस्याप्रमाणं वचनं जनस्य।
परातिसन्धान[4]मधीयते यैर्विद्येति ते सन्तु किलाप्तवाचः॥ 5 -25॥ [124]

राजा- भो सत्यवादिन्, अभ्युपगतं तावदस्माभिरेवम्। किं पुनरिमाम् अतिसन्धाय[5] लभ्यते। [125]

शार्ङ्गरवः- विनिपातः। [126]

राजा- विनिपातः पौरवैः प्रार्थ्यत इति न श्रद्धेयमेतत्[6]। [127]

शारद्वतः- भोः राजन्, किमुत्तरोत्तरेण। अनुष्ठितो गुरुनिदेशः। प्रतिनिवर्तामहे वयम्। [128]

तदेषा भवतः कान्ता, त्यज वैनां गृहाण वा।
उपपन्ना[7] हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी॥ 5 -26॥ [129]

गौतमि, गच्छाग्रतः। (इति प्रस्थिताः) [130]

शकुन्तला- कहं दाव इमिणा किदवेण विप्पलद्ध म्हि। तुम्हे वि मं परिदेविणिं परिच्चअह। (कथं तावत् अनेन कितवेन विप्रलब्धास्मि। यूयमपि मां परिदेविनीं परित्यजथ[8]।) (इत्यनुप्रतिष्ठते।) [131]

गौतमी- (स्थित्वा) वच्छ सङ्गरव, अणुगच्छइ इअं णो करुणपरिदेविणी सउंदला। पच्चादेसपरुसे भत्तुम्मि किं वा मे पुत्तिआ करेदि। (वत्स शार्ङ्गरव, अनुगच्छतीयं नः करुणपरिदेविनी शकुन्तला। प्रत्यादेशपरुषे[9] भर्तरि किं वा मे पुत्रिका[10] करोतु।) [132]

शार्ङ्गरवः- (सरोषं संनिवृत्य) आः पुरोभागिनि, किमिदं स्वातन्त्र्यमवलम्बसे। [133]

(शकुन्तला भीता वेपते) [134]

---

1. काश्मीर-पाठे भागुरेरियमुक्तिः। किन्तु मै.-बं.-पाठयोरियमुक्तिस्तु शार्ङ्गरवस्यास्ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठं स्वीकरोति।
2. काश्मीर-पाठे "-ऽतिबलेन क्षिण्वन्ति भवन्त" इति। मै.-पाठे "-ऽवलेपेन क्षिण्वन्ति भवन्त" इति। बं.-पाठे "सम्भृतदोषैरधिक्षिपथ" इति। दाक्षि.-पाठो बं.-पाठमांशिकतयानुसरति।
3. काश्मीर-पाठे नास्त्येतादृशी रंगसूचना। मै.-बं.-पाठयोः सा वर्तते। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
4. काश्मीरादि-पाठेषु "पराभिसन्धानमि" ति। दाक्षि.-पाठ उपसर्गपरिवर्तनं क्रियते।
5. काश्मीरादि-पाठेष्व "-भिसन्धाये" ति।
6. काश्मीर-पाठे "तं नाहं प्रार्थय" इति। मै.-बं.-पाठयोः "विनिपातः पौरवैर्लभ्यत इत्यश्रद्धेयमेतदि" ति। दाक्षि.-पाठे लभ्यत इति क्रियापदं परिवर्त्य प्रार्थ्यत इति क्रियते।
7. काश्मीरादि-पाठेषु "पत्नी, उपयन्तुरि" ति। दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं परिवर्तनं क्रियते।
8. काश्मीर-पाठे "परित्यक्तुमिच्छथ, तत्का गतिरि" ति। मै.-बं.-पाठयो "माँ परित्यजथे" ति। दाक्षि.-पाठे विशेषणमेकं प्रक्षिप्यते।
9. का.-पाठे "प्रत्यादेशकलुष" इति। मै.-पाठे "प्रत्यादेशदारुण" इति। बं.-पाठे "प्रत्यादेशपिशून" इति। दाक्षि.-पाठे चतुर्थं पाठान्तरं प्रस्तूयते। एतदेव दृढीकरोति सर्वेषां पाठानां रंगावृत्तित्वम्।
10. मै.-बं.-पाठयो-"स्तपस्विनी" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तले,

यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा त्वमसि किं पितुरुत्कुलया[1] त्वया।
अथ तु वेत्सि शुचि व्रतमात्मनः पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम्॥ 5 -27॥ [135]

तिष्ठ तिष्ठ। साधयामो वयम्। [136]

राजा- भोस्तपस्विन्, किमत्रभवतीं विप्रलभसे। [137]

कुमुदान्येव शशाङ्कः, सविता बोधयति पङ्कजान्येव।
वशिनां हि परपरिग्रहसंश्लेष पराङ्मुखी वृत्तिः[2]॥ 5 -28॥ [138]

शार्ङ्गरवः- यदि पूर्ववृत्तम् अन्यासङ्गाद् विस्मृतो भवान्, तत्कथमधर्मभीरुः?[3]। [139]

राजा- भवन्तम्[4] एवात्र गुरुलाघवं[5] पृच्छामि। [140]

मूढः स्यामहमेषा वा वदेन्मिथ्येति संशये।
दारत्यागी भवाम्याहो परस्त्रीस्पर्शपांसुलः॥ 5 -29॥ [141]

पुरोहितः- (विचार्य) यदि तावदेवं क्रियताम्। [142]

राजा- अनुशास्तु मां भवान्। [143]

पुरोहितः- अत्रभवती तावदाप्रसवान् मम गृहे तिष्ठतु। कुत इदमुच्यत इति चेत्[6], त्वं साधुभिरादिष्टः प्रथममेव चक्रवर्तिनं पुत्रं जनयिष्यसीति। स चेन्मुनिदौहित्रस्तल्लक्षणोपपन्नो भविष्यति, तत् प्रतिनन्द्य[7], शुद्धान्तमेनां प्रवेशयिष्यसि। विपर्यये पितुरस्याः समीपगमनमवस्थितमेव। [144]

राजा- यथा गुरुभ्यो रोचते। [145]

पुरोहितः- वत्स, अनुगच्छ माम्। [146]

शकुन्तला- भअवदि वसुहे, देहि मे विवरं। (भगवति वसुधे, देहि मे विवरम्[8]।) [147]

(इति रुदती निष्क्रान्ता सह पुरोधसा तपस्विजनैश्च।) [148]

(राजा शापव्यवहितस्मृतिः शकुन्तलागतमेव चिन्तयति[9]।) [149]

(नेपथ्ये) [150]

आश्चर्यमाश्चर्यम्। [151]

---

1. काश्मीर-पाठे "पितृशोकदये" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
2. मै.-पाठे "०पराङ्मुखं चेतसि" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
3. काश्मीर-पाठे "राजन्, अथ पूर्वपरिग्रहोऽन्यासङ्गाद् विस्मृतो भवेत्, तदा कथमधर्मभीरुरि" ति। मै.-पाठे "०पूर्वपरिग्रहो व्यासङ्गाद् .... कथमधर्मभीरोस्तव दारपरित्याग" इति। बं.-पाठे "०पूर्ववृत्तं व्यासङ्गाद् विस्मृतं भवेत्..... दारपरित्याग" इति। दाक्षि.-पाठे संमिश्रणं क्रियते।
4. पुरोहितमुद्दिश्य राजा पृच्छतीत्यवधेयम्।
5. मै.-पाठे "गुरुलाघवज्ञमि" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति, बंगीय-पाठवद्।
6. मै.-बं.-पाठयोरुक्तिरियं राजा भणति। का.-पाठे पुरोधा एव वक्ति "भूतमिदमुच्यत" इति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
7. मै.-पाठे- "ऽभिनन्द्ये" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
8. मै.-पाठे "भगवति वसुन्धरे, देहि मेऽवकाशमि" ति। बं.-पाठे "०देहि मेऽन्तरमि" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
9. मै.-पाठे "राजा शकुन्तलागमनमेव चिन्तयती" ति रंगसूचना। दाक्षि.-पाठः का.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- (आकर्ण्य) किं नु खलु स्यात्। [152]

(प्रविश्य)

पुरोहितः- (सविस्मयम्) देव, अद्भुतं खलु संवृत्तम्। [153]

राजा- किमिव। [154]

पुरोहितः- देव, परावृत्तेषु कण्वशिष्येषु, [155]

सा निन्दन्ती स्वानि भाग्यानि बाला
बाहूत्क्षेपं क्रन्दितुं च प्रवृत्ता।.... [156]

राजा- किं च। [157]

पुरोहितः-

.....स्त्रीसंस्थानं चाप्सरस्तीर्थमाराद्
आक्षिप्यैनां ज्योतिरेकं[1] तिरोऽभूद्।। 5 -30।। [158]

(सर्वे विस्मयं रूपयन्ति) [159]

राजा- भगवन्, प्रागपि सोऽस्माभिरर्थः प्रत्यादिष्टः एव। किं वृथा तर्केणाकृष्यते। विश्राम्यतु भवान्[2]। [160]

पुरोहितः- (विलोक्य) विजयस्व। (इति निष्क्रान्तः) [161]

राजा- वेत्रवति, पर्याकुलोऽस्मि। शयनभूमिमार्गमादेशय। [162]

प्रतिहारी- इदो इदो देवो। (इतो इतो देवः।) (परिक्रामति) [163]

राजा- (आत्मगतम्)

कामं प्रत्यादिष्टां स्मरामि न परिग्रहं मुनेस्तनयाम्।
बलवत्तु दूयमानं प्रत्यायतीव मां [3]हृदयम्।। 5 -31।। [164]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे) [165]

।। पञ्चमोऽङ्कः[4]।। [166]

---

1. का.-पाठ "आक्षिप्यैव ज्योतिरेनामि" ति। मै.-पाठ "आक्षिप्येव०" इति। बं.-पाठे "क्षिप्त्वैवाशु०" इति।
2. का.-पाठे "०अन्विष्टेन, विश्रमामी" ति। मै.-पाठे "किं मिथ्या तर्केणान्विष्यते, विश्राम्यतामि" ति। बं.-पाठे "किं मुधा .... विश्राम्यतामि" ति।
3. काश्मीर-पाठे "से" ति। मै.-पाठे "म" इति। दाक्षि.-पाठो बं.-पाठमनुसरति।
4. मै.-पाठे "शकुन्तलाप्रत्याख्यानं नाम०" इति। बं.-पाठे "शकुन्तला-प्रत्याख्यानो नाम पञ्चमोऽङ्क" इति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसृत्य प्रत्येकानामङ्कानां नामानि न ददाति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ षष्ठोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशति नागरिकः स्यालः, पश्चाद्-बद्धं पुरुषमादाय रक्षिणौ च) [1]

रक्षिणौ- (ताडयित्वा)अले कुम्भीलअ, कहेहि कहेहि कहिं तुए एशे मणिबन्धणुक्किण्णणामहेए लाअकीए अङ्गुलीअए शमाशाइदे। (अरे कुम्भीलक[1], कथय कथय कुत्र त्वयैतन्मणिबन्धनोत्कीर्णनामधेयं[2] राजकीयम् अङ्गुलीयकं समासादितम्।) [2]

पुरुषः- (भीतिनाटितकेन) पशीदन्तु भावमिश्शा। अहके णेलिसकम्मकालिए। (प्रसीदन्तु भावमिश्राः। अहं नेदृशकर्मकारी।) [3]

प्रथमः- किं खु शोभणे बम्हणेत्ति कलिअ रण्णा पडिग्गहे दिण्णे। (किं खलु शोभनो ब्राह्मण इति कृत्वा राज्ञा परिग्रहो दत्तः।) [4]

पुरुषः- शुणह दाणिं। हगे शक्कावदालतित्थवाशी धीवले। (शृणुतेदानीम्। अहं शक्रावतारतीर्थवासी[3] धीवरः।) [5]

द्वितीयः- पाडच्चल, किं अस्मेहिं जादी दे पुच्छिदा। (पाटच्चर, किमस्माभिर्जातिस्ते पृष्टा[4]।) [6]

स्यालः- सूअअ, कहेदु सव्वं अणुक्कमेण। मा णं अन्तला पडिबदेह। (सूचक, कथयतु सर्वमनुक्रमेण। मैनम् अन्तरा प्रतिबध्नीतम्।) [7]

उभौ- जं आवुत्ते आणवेदि। (यदावुत्त आज्ञापयति।) (इति तूष्णीं तिष्ठतः[5]।) [8]

स्यालः- कहेहि कहेहि। (कथय कथय।) [9]

पुरुषः- हगे जालुग्गालादीहिं मच्छबन्धणोवाएहिं कुडुम्बभलणं कलेमि। (अहं जालोद्गालादिभिर्मत्स्यबन्धनोपायैः कुटुम्बभरणं करोमि।) [10]

स्यालः- (विहस्य) विसुद्धो दाव दे आजीवो। (विशुद्धस्तावत् ते आजीवः।) [11]

पुरुषः- भट्टा, सुणोदु। (भर्ता शृणोतु।) [12]

शहये किल जे विणिन्दिए ण खु दे कम्म विवज्जणीअए।
पशुमारणकम्मदाळुणे अणुकम्पामिदु एव्व शोत्तिए॥ 6 - 1॥ [13]

(सहजं किल यद्विनिन्दितं न खलु तत्कर्म विवर्जनीयम्।
पशुमारणकर्मदारुणोऽनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रियः[6]॥ 6 - 1॥) [14]

---

1. का.-मै.-पाठयोः "कुम्भिलक"इति। दाक्षि.-पाठो बं.-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठे "महामणिप्रस्तरोत्कीर्णनामाक्षर" इति। मै.-बं.-पाठयो-"र्महारत्नभासुरमुत्कीर्णनामाक्षरमि" ति। दाक्षि.-पाठे पर्यायवाची शब्दः प्रयुज्यते।
3. काश्मीर-पाठे "शक्रावतारवासिक" इति। मै.-बं.-पाठयोः"शक्रावतारवासी" ति।
4. मै.-बं.-पाठयोः "किमस्माभिर्जातिं वसतिं च पृष्टोऽसि त्वमि" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
5. काश्मीर-पाठे नास्तीयं रंगसूचना। देव.-पाठे च नास्ति। का.-पाठे "(पुरुषं प्रति) भण भणे" ति। मै.-बं.-पाठयोः "यद् राउत्त आज्ञापयति। लप रे लपे" ति। दाक्षि.-पाठे रंगकर्मिभिः भिन्नैव योजना विहिता।
6. मै.-पाठे "पशुमारणं करोति कारणात् षट्कर्मा विद्वान् अपि श्रोत्रियः" इति। बं.-पाठे "पशुमारणं करोति दारुणमनुकम्पामृदुलोपि सौनिक" इति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

स्यालः- तदो तदो। (ततस्ततः।) [15]

पुरुषः- अह एक्कशिंश दिअशे खण्डशो लोहिअमच्छे मए कप्पिदे, तश्श उदलब्भन्तले एदं लदणभाशुलं अंगुळीअअं देक्खिअं। पश्चा शे विक्कअस्स दंशअन्ते हगे गहीदे भावमिश्शेहिं। मालेह वा मुञ्चेह वा।

अअं शे आअमो। (अथैकस्मिन् दिवसे खण्डशो लोहितमत्स्यो मया कल्पितः। तस्योदराभ्यन्तरे इदं रत्नभासुरमङ्गुलीयकं दृष्टम्। पश्चादस्य विक्रयाय दर्शयन् अहं गृहीतो भावमिश्रैः[1]। मारयत वा मुञ्चत वा[2]। अयमस्यागमः।) [16]

स्यालः- जाणुअ[3], विस्सगन्धी घोलाकिदी मच्छबन्धो एव्व णिस्संसअं। अङ्गुलीअअदंसणं से विमरिसिदव्वं। ता लाअकुळं एव्व गच्छह्मो। (जानुक, विस्रगन्धिर्घोराकृतिर्मत्स्यबन्ध एव निःसंशयम्[4]।

अङ्गुलीयकदर्शनमस्य विमर्शयितव्यम्। तद् राजकुलमेव गच्छामः।) [17]

रक्षिणौ- तह। गच्छ अळे गण्ठिभेअअ। (तथा। गच्छ, अरे ग्रन्थिभेदक।) [18]

(इति सर्वे परिक्रामन्ति) [19]

स्यालः- सूअअ, इमं गोउरदुआरे अप्पमत्ता पडिवाळेह णाम। जाव इदं अङ्गुलीअअं जहागमणं भट्टिणो णिवेदिअ तदो से सासणं पडिच्छिअ णिक्कमामि। (सूचक,इमं गोपुरद्वारेऽप्रमत्तौ प्रतिपालयतं नाम। यावदिदमङ्गुलीयकं यथागमनं भर्त्रे निवेद्य ततोऽस्य शासनं प्रतीक्ष्य निष्क्रमामि।) [20]

उभौ- पविशदु आवुत्तो शामिप्पशादाहा। (प्रविशत्वावुत्तः स्वामिप्रसादाय।) [21]

(निष्क्रान्तस्स्यालः।) [22]

प्रथमः- जाणुअ, चिराअदि खु आवुत्तो। (जानुक, चिरायति खल्वावुत्तः।) [23]

द्वितीयः- णं अवशळोवशप्पणीआ लाआणो। (नन्ववसरोपसर्पणीयाः राजानः।) [24]

प्रथमः- जाणुअ, फुळन्ति मे हत्था इमश्श वज्झश्श शुमणशो पिणद्धुं। (जानुक, स्फुरतो मे हस्तावस्य वधस्य सुमनसः पिनद्धुम्[5]।) (इति पुरुषं निर्दिशति।) [25]

पुरुषः- णालुहदि भावो अकालणमालणो होदुं। (नार्हति भावः अकारण-मारणो[6] भवितुम्।) [26]

द्वितीयः- (विलोक्य) एशे अह्माणं शामी गह्णिअ लाअशाशणं इदोमुहं देक्खदि। तदो तुमं गिद्धबळी भविश्शशि। (एषोऽस्माकं स्वामी गृहीत्वा राजशासनमितोमुखं दृश्यते। ततस्त्वं गृध्रबलिर्भविष्यसि[7]।) [27]

---

1. का.-मै.-पाठयोरितः परम् "एतावान् तावदेतस्यागम" इति। बं.-पाठ "एषस्तावदेतस्यागम" इति। दाक्षि.-पाठे तादृशं वाक्यमन्तिमे भागे स्थापितम्।
2. का.-पाठे "अधुणा मालेध कुट्टेध वे" ति। मै.-पाठे "संपदं मालेध वा पिट्टेध वे" ति। बं.-पाठे "अधुणा मालेध वा कुस्टेध वे" ति। दाक्षि.-पाठे क्रियान्तरं पठ्यते। अनेनैव रंगावृत्तित्वं सिध्यति सर्वेषां पाठानाम्।
3. काश्मीरादि-पाठेषु वाक्यारम्भे रंगसूचना वर्तते, तद्यथा-अङ्गुलीयकमाघ्रायेति। दाक्षि.-पाठे नास्ति सा।
4. काश्मीरादि-पाठेषु धीवरस्यैतानि विशेषणानि न सन्ति। प्रत्युत का.-बं.-पाठयोः "मत्स्योदरसंस्थितमिति नास्ति संदेह" इति वाक्यम्। मै.-पाठे "तथैतस्यामिषगन्धो वासत" इति। दाक्षि.-पाठेन धीवरस्य वेशभूषा संसूच्यते। अङ्गुलीयकस्याघ्राणाभिनयो न स्याद् दाक्षि. रंगभूमाविति विशेषः।
5. का.-पाठे-"ऽस्य व्यसनं पिनद्धुमि" ति। मै.-पाठ "इमं ग्रन्थिभेदकं घातयितुमि" ति। बं.-पाठ "इमं ग्रन्थिच्छेकं व्यापादयितुमि" ति। दाक्षि.-पाठे स्थानिकाचारमनुसृत्य नवीनं पाठान्तरं प्रस्तूयते।
6. का.-पाठे "भ्रातृभ्रातृकोऽकालमारक" इति। मै.-पाठे नास्तीदं दया-याचि वाक्यम्। बं.-पाठे "नार्हति भावोऽकारणमारको भवितुमि" ति। दाक्षि.-पाठो बं.-पाठमनुसरति।
7. काश्मीर-पाठे "शकुलानां मुखं प्रेक्षसेऽथवा गृध्रशृगालानां बलिर्भविष्यसी" ति। मै.-पाठे "सकुल्यानां मुखं पश्यतु, अथवा गृध्रशृगालानां बलिर्भवत्वि" ति। बं.-पाठे "स्वकुलानां०" इति। दाक्षि.-पाठे संक्षेपः कृतः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(प्रविश्य स्यालः) [28]

स्यालः:- सूअअ, मुच्चिअदु एसो जालोवजीवी। उववण्णो किल से अङ्गुलीआअमो (सूचक, मुच्यतामेष[1] जालोपजीवी। उपपन्नः किलास्य अङ्गुलीयकस्यागमः।) [29]

सूचकः:- जह आवुत्तो भणादि। (यथा आवुत्तो भणति।) [30]

द्वितीयः:- एशे जमसदणं पविशिअ पडिणिवुत्तो। (एष यमसदनं प्रविश्य प्रतिनिवृत्तः[2]।) [31]

(इति पुरुषम् उन्मुक्तबन्धनं करोति[3]।) [32]

पुरुषः:- (स्यालं प्रणम्य) भट्टा, तुम्हकेलए मे जीविदे। (भर्तः, युष्मदीयं मे जीवितम्[4]।) [33]

स्यालः:- एसो भट्टिणा अङ्गुलीअअ मुल्लसम्मिदो अत्थो पारिदोसिओ पदाविदो। (एष भर्त्राऽङ्गुलीयकमूल्यसम्मितः अर्थः पारितोषिकः प्रदापितः[5]।) [34]

(इति पुरुषायार्थं प्रयच्छति[6]।) [35]

पुरुषः:- (सप्रणामं प्रतिगृह्य) भट्टा अणुग्गहीद म्हि। (भर्तः,अनुगृहीतोऽस्मि।) [36]

सूचकः:- एशे णाम अणुग्गहीदे, जे शूलादो ओदालिअ हत्थिकन्धे पडिट्ठाविदे। (एष नामानुगृहीतः, यः शूलाद् अवतार्य हस्तिस्कन्धे प्रतिष्ठापितः।) [37]

जानुकः:- आवुत्त, पारिदोशिअं एव्व कहेदि, तेण अङ्गुलीअअएण भट्टिणो सम्मदेण होदव्वत्ति।

(आवुत्त, पारितोषिक एव कथयति, तेन अङ्गुलीयकेन भर्तुः सम्मतेन[7] भवितव्यमिति।) [38]

स्यालः[8] - ण तस्सिं महारुहं रदणं भट्टिणो बहुमदं त्ति तक्केमि। तस्स दंसणेण को वि अभिमदो जणो सुमरिदो।

जं मुहुत्तअं पकिदिगम्भीरो वि पज्जसुणअणो आसी। (न तस्मिन्महार्हं रत्नं भर्तुर्बहुमतमिति तर्कयामि। तस्य दर्शनेन कोऽप्यभिमतो जनः[9] भर्त्रा स्मृतः। यन्मुहूर्तं प्रकृतिगम्भीरोऽपि पर्यश्रुनयन[10] आसीत्।) [39]

सूचकः:- शेविदं णाम आवुत्तेन। (सेवितं नामावुत्तेन[11]।) [40]

जानुकः:- णं भणाहि इमश्श किशे मच्छशत्तुणो त्ति। (ननु भण अस्य कृते मत्स्यशत्रोरिति।) [41]

---

1. काश्मीरादि-पाठेषु "शीघ्रं शीघ्रमेतमि" ति वचनेन स्यालस्य प्रवेशः, धीवरस्य च हा हतोऽस्मीति चित्कारः श्रूयते। नाटकीयतापूर्णः पाठः प्राप्यते। दाक्षि.-पाठे तादृशी नाटकीयता नास्ति।
2. काश्मीर-पाठे "यमवसतिं गत्वा, गुडखण्डं च दत्त्वा०" इति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
3. का.-पाठे "पुरुषं मुञ्चती" ति। मै.-बं.-पाठयोः "पुरुषं बन्धनान्मोचयती" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं कृतम्।
4. काश्मीर-पाठे "त्वदीयो मे जीवित" इति। मै.-पाठे "तव कृते मम साम्प्रतं जीवितमि" ति। बं.-पाठे "त्वदीयं मम जीवितमि" ति, ततश्च पादयोः पततीति। (देव.-पाठेऽत्र सर्वथा परिवर्तनं क्रियते।)
5. मै.-बं.-पाठयोः "प्रसादीकृत" इति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
6. का.-मै.-पाठयोः रंगसूचनेयं नास्ति। बं.-पाठे "धीवराय कटकं प्रयच्छती" ति।
7. का.-पाठे "महार्घरत्नेन तेनाङ्गुलीयकेन भर्तुः बहुमतेने" ति। मै.-पाठेऽ "ङ्गुरीयकेण स्वामिनो बहुमतेने" ति। बं.-पाठे "महार्हरत्नेन तेनांगुरीयकेण स्वामिनः बहुमतेने" ति।
8. का.-बं.-पाठयोः स्यालस्येयमुक्तिर्द्विधा विभज्योच्चार्यते। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
9. का.-पाठे-"ऽभिलषितो जन" इति। मै.-पाठे "कोपि हृदयवर्ती" ति। बं.-पाठे "हृदयस्थितो जन" इति।
10. काश्मीरादि-पाठेषु "पर्युत्सुकमना" इति। दाक्षि.-पाठे सात्त्विकाभिनयमभिलक्ष्य नवीनं पाठान्तरं प्रस्तूयते।
11. काश्मीर-पाठे "साधु मन्त्रितं नामावुत्तेने" ति। मै.-बं.-पाठयोः "तोषित इदानीं भर्ता राउत्तेने" ति। दाक्षि.-पाठे सरलीकृतः पाठो दृश्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(पुरुषमसूयया पश्यति।) [42]

पुरुषः- भट्टा, इदो अद्धं तुम्हाणं शुमणोमुल्लं होदु। (भर्तः, इतोऽर्धं युष्माकं सुमनोमूल्य[1] भवतु।) [43]

जानुकः- एदं जुज्जइ। (एतद् युज्यते।) [44]

स्यालः- धीवर, महत्तरो तुमं पिअवअस्सो दाणिं मे संवुत्तो। कादम्बरीसक्खिअं अम्हाणं पुडमसोहिदं इच्छीअदु। ता सोण्डिआपणं पडिशावो। (धीवर, महत्तरः प्रियवयस्य इदानीं मे संवृत्तः। कादम्बरीसाक्षिकमस्माकं प्रथमसौहृदमिष्यताम्[2]। तच्छौण्डिकापणं[3] प्रविशामः।) [45]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे) [46]

(प्रवेशकः) [47]

(ततः प्रविशत्याकाशयानेन सानुमती[4] नामाप्सराः।) [48]

सानुमती- णिव्वत्तिदं मए पज्जाअणिवत्तणिज्जं अच्छरातित्थसंमज्जणं जाव साहुजणस्स अभिसेअकालो त्ति। संपदं इमस्स राएसिणो उत्ततं पच्चक्खीकरिस्सं। णं मेणआसम्बन्धेण सरीरभूदा मे सउन्दला। ताए अ दुहिदुणिमित्तं आदिट्ठ पुव्वाम्हि। (समन्तादवलोक्य) किं णु खु उदुच्छवकाले वि णिरुच्छवारम्भं विअ राअउलं दीसइ। अत्थि मे विहवो पणिधाणेण सव्वं परिण्णादुं। किंदु सहीए आअरो मए माणइदव्वो। होदु। इमाणं एव्व उज्जाणपालिआणं तिरक्खरिणीपडिच्छण्णा पस्सपरिवट्टिणी भविअ उवलंभिस्सं। (निवर्तितं मया पर्यायनिर्वर्तनीयमप्सरस्तीर्थसंमज्जनं यावत्साधुजनस्याभिषेककाल इति। साम्प्रतमस्य राजर्षेर्वृत्तान्तं प्रत्यक्षीकरिष्यामि। ननु मेनकासम्बन्धेन शरीरभूता मे शकुन्तला। तया च दुहितृनिमित्तमादिष्टपूर्वास्मि[5]। किं नु खलु ऋतूत्सवकालेऽपि निरुत्सवारम्भमिव राजकुलं दृश्यते। अस्ति मे विभवः प्रणिधानेन सर्वं परिज्ञातुम्। किं तु सख्याः आदरो मया मानयितव्यः। भवतु। अनयोस्तावदुद्यानपालिकयोस्तिरस्करिणीप्रतिच्छन्ना पार्श्ववर्तिनी भूत्वोपलप्स्ये।) [49]

(इति नाट्येनावतीर्य स्थिता) [50]

(ततः प्रविशति चूताङ्कुरमवलोकयन्ती चेटी। अपरा च पृष्ठतस्तस्याः।) [51]

प्रथमा-

चूअं हरिसिअपिअअं जीविदसरिसं वसन्दमासस्स।
सच्चरणचरणभग्गं उदुमङ्गलं विअ पेक्खामि॥ 6 -2॥ [52]

(चूतं हर्षितपिकक[6] जीवितसदृशं वसन्तमासस्य।
षट्चरणचरणभग्नम् ऋतुमङ्गलमिव पश्यामि॥ 6 - 2॥) [52]

द्वितीया- परहुदिए, किं एआइणी मन्तेसि। (परभृतिके, किमेकाकिनी मन्त्रयसे।) [53]

---

1. मै.-पाठे-"ऽर्धमिदानीं मूल्यकमि" ति। बं.-पाठे "सुरामूल्यमि" ति। दाक्षि.-पाठे पूर्वापरसंगतिः क्रियते।
2. मै.-पाठे "कादम्बरीस्वस्तिकमि" ति। बं.-पाठे "कादम्बरीसग्धिके ... सौहित्यमि" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
3. काश्मीर-पाठे "शुण्डिकाशालामि" ति। मै.-बं.-पाठयोः "शुण्डिकागारमि" ति।
4. काश्मीर-पाठे-"ऽक्षमाले" ति। मै.बं.-पाठयो-"र्मिश्रकेशी" ति। दाक्षि.-पाठे नवीनं नामान्तरं दीयते। त्रिषु नामसु वेशभूषावैविध्यं सूच्यते। अप्सरसामाहार्यं लक्ष्यीकृत्यैते पाठभेदाः स्युः।
5. काश्मीरादि-पाठेषु शकुन्तलया सानुमती संदिष्टेति वाक्यार्थः प्राप्यते। दाक्षि.-पाठे मेनकया सा संदिष्टेति।
6. काश्मीर-पाठे "आताम्रहरितपाण्डुर०" इति। दाक्षि.-पाठे नवीनार्या रंगकर्मिभिर्विरचिता। नवीनामार्याम् स्वीकृत्य काटयवेमेन घनश्यामेन च सा व्याख्याता। किन्तु चर्चाकारेणाऽभिरामेण, श्रीनिवासेन च काश्मीर-पाठानुसारिणीमार्यां स्वीकृत्यैव व्याख्या विहिता। (दाक्षि.-पाठे या नवीनार्या, सा प्राचीनलक्षणानुसारिणी प्रतीयते। या च परम्परागतार्या वर्तते, तत्र श्रुतबोधोक्तं लक्षणं संगच्छते।)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रथमा- महुअरिए, चूतकलिअं देक्खिअ उम्मत्तिआ खु परहुदिआ होदि। (मधुकरिके[1], चूतकलिकां दृष्ट्वा उन्मत्ता खलु परभृतिका भवति।) [54]

द्वितीया- (सहर्षं त्वरयोपगम्य) कहं उवट्ठिदो महुमासो। (कथमुपस्थितो मधुमासः।) [55]

प्रथमा- महुअरिए, तुह दाणिं कालो एसो मदविब्भमगीदाणं। (मधुकरिके, तवेदानीं काल एष मदविभ्रम गीतानाम्।) [56]

द्वितीया[2]- सहि, ओलम्बेसु मं जाव अग्गपादट्ठिया भविअ कामदेवच्चणस्स चूअंकुरावअअं करोमि। (सखि, अवलम्बस्व मां यावदग्रपादस्थिता भूत्वा कामदेवार्चनाय चूताङ्कुरापचयं करोमि।) [57]

प्रथमा[3]- जइ ममवि अद्धं अच्चणफलस्स। (यदि ममाप्यर्धमर्चनफलस्य।) [58]

द्वितीया[4]- अभणिदे वि एदं संपज्जइ। जदो एक्कं एव्व णो जीविदं दुहा ट्ठिदं सरीरं। (अभणितेऽप्येतत् संपद्यते। यत एकमेव नौ जीवितं द्विधा स्थितं शरीरम्।) (सख्यावलम्बिता चूताङ्कुरं गृह्णाति।) अह्महे, अप्पडिबुद्धो वि चूदप्पसवो एत्थ बन्धणभङ्गसुरभी होदि। (अये, अप्रतिबुद्धोऽपि चूतप्रसवोऽत्र बन्धनभङ्गसुरभि-र्भवति।) [59]

(इति कपोतकं कृत्वा) [60]

तुं सि मए चूअंकुर दिण्णो कामस्स गहिदधणुअस्स।
परिकुविदयुवइलक्खो पच्चाब्भहिओ सरो होहि॥6 - 3॥ [61]

त्वमसि मया [5]चूताङ्कुर दत्तः कामाय गृहीतधनुषे।
परिकुपितयुवतिलक्ष्यः[6] पञ्चाभ्यधिकः शरो भव[7]॥ 6 -3॥) [61]

(इति चूताङ्कुरं क्षिपति) [62]

(प्रविश्य पटाक्षेपेण कुपितः कञ्चुकी[8]) [63]

कञ्चुकी- मा तावत् अनात्मज्ञे, प्रतिषिद्धे वसन्तोत्सवे[9] त्वमाम्रकलिका[10] भङ्गमारभसे। [64]

उभे- (भीते) पसीदद्दु अज्जो। अगहीदत्था वअं। (प्रसीदत्वार्यः। अगृहीतार्थे आवाम्।) [65]

[<कञ्चुकी- न किल श्रुतं युवाभ्यां यथा वासन्तिकैस्तरुभिरपि देवस्य शासनं प्रमाणीकृतं तदाश्रयिभिः पत्रिभिश्च। तथा हि-[66]

---

1. उद्यानपालिकयोः परभृतिका-मधुकरिकेति नामद्वयं सूचयति यत्रेदं चेट्योः नाम। दाक्षिणात्यरंगकर्मिणामत्र दृष्टिः तमसावृत्ता प्रतीयते।
2. मैथिल-पाठ उक्तिरियं प्रथमाया मुखे वर्तते, तादृशी योजना समीचीना। यतो हि, मधुकरिका परभृतिकायै कथमवलम्बनं दातुं प्रभवेदिति प्रश्नः।
3. मैथिल-पाठ उक्तिरियं द्वितीयाया मुखे वर्तते, तादृशी योजना समीचीना प्रतिभाति।
4. मैथिल-पाठ उक्तिरियं प्रथमाया मुखे वर्तते, तत्तु युक्तियुक्तं स्यात्।
5. का.-बं.-पाठयोरत्रा-"ऽर्हसि मे "इति। मै.-पाठे-" ऽर्हसि मये" ति।
6. काटयवेमटीकायामत्र "पथिकजनयुवतिलक्ष्य" इति (पृ.126) छाययानुमीयते यत्तेन भिन्न एव पाठो गृहीतः।
7. काश्मीर-पाठे "संस्थापितयुवतिलक्षः पश्चात् प्रतिस्खलितस्सरो भवितुमि" ति। मै.-पाठे "संस्थापितयुवति-लक्ष्यः पञ्चाभ्यधिकः शरो भवितुमि" ति। बं.-पाठे "सत्याकृतयुवतिलक्षः०" इति। दाक्षि.-पाठे पूर्वांशे परिवर्तनं क्रियत, उत्तरांशे मै.-पाठानुसरणं क्रियते।
8. काश्मीर-पाठे "रुषितः कञ्चुकी" ति। मै.-पाठे "रुषितः सक्रोधमि" ति। बं.-पाठे "सक्रोधमि" ति। दाक्षि.-पाठे प्रवेशस्य नवीना योजना विचारिता। (दाक्षि.-पाठे पटाक्षेपेणेति शब्दो वर्तते, न त्वपटीक्षेपेणेति।)
9. बं.-पाठे "मधूत्सव" इति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
10. काश्मीर-पाठे "मञ्जरी०" इति। मै.-बं.-पाठयो "श्चूतकलिका०" इति। दाक्षि.-पाठे पर्यायशब्दः प्रयुज्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका बध्नाति न स्वं रजः
संनद्धं यदपि स्थितं कुरुबकं तत्कोरकावस्थया।
कण्ठेषु स्खलितं गतेऽपि शिशिरे पुंस्कोकिलानां रुतं
शङ्के संहरति स्मरोऽपि चकितस्तूणार्धकृष्टं शरम्।। 6 -4।। [67]

उभे- णत्थि संदेहो। महापहाओ खु राएसी। (नास्ति सन्देहः। महाप्रभावः खलु राजर्षिः। [68]

प्रथमा- अज्ज, कति दिअहाइं अम्हाणं मित्तावसुणा रट्ठिएण भट्टिणो पाअमूलं पेसिदाणं। इदं अ णो पमदवणस्स पालणकम्म समप्पिदं। ता आअन्तुअदाइ अस्सुदपुव्वो अम्हेहिं एसो वुत्तन्तो। (आर्य, कति दिवसान्यावयोर्मित्रावसुना राष्ट्रियेण भर्तुः पादमूलं प्रेषितायोः। इदं च नौ प्रमदवनस्य पालनकर्म समर्पितम्। तदश्रुतपूर्व आवाभ्यामेष वृत्तान्तः।)>][1] [69]

कञ्चुकी- भवतु। न पुनरेवं प्रवर्तितव्यम्। [70]

उभे- अज्ज, कोदूहलं णो होइ। जह इमिणा जणेण सोदव्वं, कहेदु अज्जो। किंणिमित्तं भट्टिणा वसन्तुस्सवो पडिसिद्धो। (आर्य, कौतुहलं नौ भवति। यद्यनेन जनेन श्रोतव्यं, कथयतु आर्यः। किन्निमित्तं भर्त्रा वसन्तोत्सवः[2] प्रतिषिद्धः।) [71]

सातुमती- उत्सवप्पिआ क्खु माणुसा। गुरुणा कारणेन होदव्वं। (उत्सवप्रियाः खलु मानुषाः[3]। गुरुणा कारणेन भवितव्यम्।) [72]

कञ्चुकी- बहुलीभूतमेतत्किं न कथ्यते। किमत्रभवत्योः कर्णपथं नायातं शकुन्तलाप्रत्यादेशकौलीनम्। [73]

उभे- सुदं रट्ठिअमुहादो जाव अङ्गुलीअअदंसणं। (श्रुतं राष्ट्रियमुखाद्यावदङ्गुलीयकदर्शनम्।) [74]

कञ्चुकी- तेन ह्यल्पं कथयितव्यम्। यदैव खलु स्वाङ्गुलीयकदर्शनादनुस्मृतं देवेन सत्यमूढपूर्वा मया[4] तत्रभवती शकुन्तला मोहात्प्रत्यादिष्टेति, तदाप्रभृत्येव पश्चात्तापमुपगतो देवः। तथा-हि-[75]

रम्यं द्वेष्टि यथा पुरा प्रकृतिभिर्न प्रत्यहं सेव्यते
शय्याप्रान्तविवर्तनैर्विगमयत्युन्निद्र एव क्षपाः।
दाक्षिण्येन ददाति वाचमुचितामन्तःपुरेभ्यो यदा
गोत्रेषु स्खलितस्तदा भवति च व्रीडाविलक्षश्चिरम्।। 6 -5।। [76]

सानुमती- पिअं मे। (प्रियं मे।) [77]

कञ्चुकी- अस्मात्प्रभवतो वैमनस्यादुत्सवः प्रत्याख्यातः। [78]

उभे- जुज्जइ जुज्जइ। (युज्यते युज्यते।) [79]

(नेपत्ये) [80]

इदो इदो भवं। (इत इतो भवान्।) [81]

कञ्चुकी- (कर्णं दत्त्वा) अये, इत इवाभिवर्तते देवः। स्वकर्मानुष्ठीयताम्। [82]

उभे- तह। (तथा) (निष्क्रान्ते) [83]

---

1. कोष्ठान्तर्गतोऽयं पाठ्यांशः प्रक्षिप्तः प्रतिभाति। चूताङ्कुरणं तस्य क्षेपणं च परभृतिकया पूर्वं विहितमेव। तर्हि कथं पद्यमिदं संगच्छते तत्तु विचारणीयम्।
2. काश्मीर-पाठे "वसन्तकौमुदी" ति। मै.-पाठे "वसन्तोत्सव" इति। बं-पाठे "मधूत्सव" इति। दाक्ष.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
3. काश्मीरादि-पाठेषु "राजान" इति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं, सानुमत्या (अप्सरसः) उक्त्या सह संगच्छते।
4. काश्मीरादि-पाठेष्वनयोः शब्दयोर्मध्ये "रहसी" त्यधिकम्। दाक्षि.-पाठे कृतः संक्षेपोऽसमीचीनः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(ततः प्रविशति पश्चात्तापसदृश[1]वेषो राजा विदूषकः प्रतिहारी च।) [84]

कञ्चुकी- (राजानं अवलोक्य) अहो सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम्। एवमुत्सुकोऽपि हि[2] प्रियदर्शनो देवः। [85] तथा हि-

प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनविधिर्वामप्रकोष्ठार्पितं[3]
बिभ्रत् काञ्चनमेकमेव वलयं श्वासोपरक्ताधरः।
चिन्ताजागरणप्रतान्तनयनस्तेजोगुणादात्मनः
संस्कारोल्लिखितो महामणिरिव क्षीणोऽपि नालक्ष्यते॥ 6 -6॥ [86]

सानुमती- (राजानं दृष्ट्वा) ठाणे खु पच्चादेसविमाणिदा वि इमस्स किदे सउन्दला किलम्मदि। (स्थाने खलु प्रत्यादेशविमानिताप्यस्य कृते शकुन्तला क्लाम्यति[4]।) [87]

राजा- (ध्यानमन्दं परिक्रम्य) [88]

प्रथमं सारङ्गाक्ष्या प्रियया प्रतिबोध्यमानमपि सुप्तम्।
अनुशयदुःखायेदं हतहृदयं संप्रति विबुद्धम्॥ 6 -7॥ [89]

सानुमती- णं ईरिसाइ तवस्सिणीभाअहेआइ। (नन्वीदृशानि तपस्विनीभागधेयानि।) [90]

विदूषकः- (स्वगतम्[5]) लङ्घिदो एसो भूवो वि सउन्दलावाहिणा। ण आणे कहं चिकिच्छिदव्वो भविस्सदि त्ति। (लङ्घित एष भूयोऽपि शकुन्तलाव्याधिना[6]। न जाने कथं चिकित्सितव्यो भविष्यतीति।) [91]

कञ्चुकी- (उपगम्य) जयतु जयतु देवः। महाराज, प्रत्यवेक्षिताः प्रमदवनभूमयः। यथाकाममध्यास्तां विनोदस्थानानि महाराजः। [92]

राजा- वेत्रवति, मद्वचनादमात्यमार्यपिशुनं ब्रूहि। चिरप्रबोधनान्न[7] संभावितमस्माभिरद्य धर्मासनम् अध्यासितुम्। यत्प्रत्यवेक्षितं पौरकार्यमार्येण, तत्पत्रमारोप्य दीयतामिति। [93]

प्रतीहारी- जं देवो आणवेदि। (यद्देव आज्ञापयति।) (निष्क्रान्ता) [94]

राजा- वातायन[8], त्वमपि नियोगमशून्यं कुरु। [95]

कञ्चुकी- यदाज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रान्तः।) [96]

विदूषकः- किदं भवदा णिम्मक्खिअं। संपदं सिसिरे आतवच्छेदिणि सत्तअण्णरमणिज्जे इमस्सिं पमदवण्णुदेसे सुहं अत्ताणं रमइस्ससि। (कृतं भवता निर्मक्षिकम्। साम्प्रतं शिशिरे आतपच्छेदिनि- सप्तपर्ण रमणीयेऽस्मिन्प्रमदवनोद्देशे[9] सुखम् आत्मानं रमयिष्यसि।) [97]

---

1. मै.-पाठे "पश्चात्तापगृहीत" इति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
2. मै.-पाठे "वैमनस्य परीतोऽपी" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
3. काश्मीरादि-पाठेषु "वामप्रकोष्ठे श्लथमि" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
4. काश्मीर-पाठे "ताम्यती" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
5. का.-मै.-पाठयो- "रपवार्य" ति। दाक्षि.-पाठो बंगीय-पाठमनुसरति। अपवार्य-स्वगतोक्त्योर्मध्ये भेदः।
6. काश्मीरादि-पाठेषु "शकुन्तलावातेने" ति। दाक्षि.-पाठे विदूषकस्योक्त्या हास्यं प्रकटीक्रियते।
7. मै.-पाठे "चिरादप्रबोधान्ने" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
8. काश्मीरादि-पाठेषु "पार्वतायने" ति नाम। दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं परिवर्तनं क्रियते।
9. अङ्कस्यारम्भे वसन्तस्योल्लेखो वर्तते, अत्र च शिशिरस्य निर्देशो वर्तते। तदसंगतम्, अतः पाठशुद्धिः कर्तव्या।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- वयस्य, रन्ध्रोपनिपातिनोऽनर्था इति यदुच्यते तदव्यभिचारि वचः। कुतः-[98]

मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना मम च मुक्तमिदं तमसा मनः।
मनसिजेन सखे प्रहरिष्यता धनुषि चूतशरश्च निवेशितः[1]॥ 6 -8॥ [99]

विदूषकः- चिट्ठ दाव। इमिणा दण्डकट्ठेण कन्दप्पविआधं णासइस्सं। (तिष्ठ तावत्। अनेन दण्डकाष्ठेन कन्दर्पव्याधं नाशयिष्यामि[2]।) [100]

(दण्डकाष्ठमुद्यम्य चूताङ्कुरं पातयितुमिच्छति।) [101]

राजा- (सस्मितम्) भवतु, दृष्टं ब्रह्मवर्चसम्। सखे, यथोपविष्टः प्रियायाः किंचिदनुकारिणीषु लतासु दृष्टिं विलोभयामि। [102]

विदूषकः- णं आसण्णपरिआरिया चदुरिआ भवदा संदिट्ठा। माहवीमण्डपे इमं वेलं अदिवाहिस्सं। तहिं मे चित्तफलए सहत्थलिहिदं तत्तहोदीए सउन्दलाए पडिकिदिं आणेहि त्ति। (नन्वासन्नपरिचारिका चतुरिका[3] भवता सन्दिष्टा। माधवीमण्डपे इमां वेलामतिवाहयिष्यामि। तत्र मे चित्रफलके स्वहस्तलिखितां तत्रभवत्याः शकुन्तलायाः प्रतिकृतिमानयेति।) [103]

राजा- ईदृशं हृदयविनोदनस्थानम्। तमेव मार्गमादेशय। [104]

विदूषकः- इदो इदो भवं। (इतो इतो भवान्।) [105]

(उभौ परिक्रामतः। सानुमत्यनुगच्छति।) [106]

विदूषकः- एसो मणिसिलापट्टअसणाहो माहवीमण्डवो उवहाररमणिज्जदाए णिस्संसअं साअदेण विअ णो पडिच्छदि। ता पविसिअ णिसीदद्दु भवं। (एषः मणिशिलापट्टकसनाथो माधवीमण्डप उपहार रमणीयतया निःसंशयं स्वागतेनेव नौ प्रतीच्छति। तत् प्रविश्य निषीदतु भवान्।) [107]

(उभौ प्रवेशं रूपयित्वोपविष्टौ।) [108]

सानुमती- लदासंणिहिदा देक्खिस्सं दाव सहीए पडिकिदिं। तदो से भट्टिणो बहुमुहं अणुराअं णिवेदइस्सं।

(इति तथा कृत्वा स्थिता।) (लतासंनिहिता द्रक्ष्यामि तावत्सख्याः प्रतिकृतिम्। ततोऽस्याः भर्तुर्बहुमुखमनुरागं निवेदयिष्यामि[4]।) [109]

राजा- सखे, सर्वमिदानीं स्मरामि शकुन्तलायाः प्रथमवृत्तान्तम्। कथितवानस्मि भवते। स भवान् प्रत्यादेश वेलायां मत्समीपगतो नासीत्। पूर्वमपि न त्वया कदाचित् संकीर्तितं तत्रभवत्या नाम। कच्चिद् अहमिव विस्मृतवानसि त्वम्[5]। [110]

---

1. काश्मीर-पाठे श्लोकोऽयं न प्राप्यते। स च मै.-पाठे वर्तते। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्। का.-पाठेऽत्रैको भिन्नः श्लोकः प्राप्यते, यथा- "उपहितस्मृतिरंगुली०" इति। मै.-बं.-पाठयोः प्रसंगेऽस्मिन् श्लोकद्वयं प्रस्तूयते। दाक्षि.-पाठेन मै.-पाठादेक एव श्लोकः स्वीक्रियते।
2. का.-पाठे "०इमं दण्डकं चूतमन्मथके पातय" इति। मै.-बं.-पाठयोः "0अनेन दण्डकाष्ठेन कन्दर्पबाणं नाशयामी" इति। दाक्षि.-पाठे शब्दपरिवर्तनं क्रियते। तेन विदूषकस्याङ्गिकाभिनये भेदो भवेद्।
3. काश्मीरादि-पाठेषु "मेधाविनी लिपिकरी" ति। बं.-पाठे मेधाविनी तु वर्तते, तस्याश्च नूतनं नामापि चतुरिकेत्यपि प्राप्यते। दाक्षि.-पाठे सा मेधाविन्येव सर्वत्र चतुरिका नाम्नैव निर्दिश्यते।
4. काश्मीर-पाठे नास्त्येतादृशं वाक्यम्। मै.-पाठे मिलत्येतादृशं वाक्यम्, येन च सानुमत्या आगमन-प्रयोजनं प्रेक्षकेभ्यो निवेद्यते। बं.-पाठे चास्त्येतादृशं वाक्यम्।
5. काश्मीर-पाठे "न खल्वहमिव मिथस्संवादे स्मृतोऽसी" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

विदूषकः- ण विसुमरामि। किन्तु सव्वं कहिअ अवसाणे उणं तुए परिहासविअप्पओ एसो, ण भूदत्थो त्ति आचक्खिदं। मए वि मिप्पिण्डबुद्धिणा तह एव्व गहीदं। अहवा भविदव्वदा बलवदी। (न विस्मरामि। किन्तु सर्वं कथयित्वाऽवसाने पुनस्त्वया परिहासविजल्प एव, न भूतार्थ इत्याख्यातम्। मयापि मृत्पिण्डबुद्धिना[1] तथैव गृहीतम्। अथवा भवितव्यता बलवती।) [111]

सानुमती- एव्वं एदं। (एवमेतत्।) [112]

राजा- (ध्यात्वा) सखि, परित्रायस्व माम्। [113]

विदूषकः- भो, किं एदं। अणुववण्णं खु ईरिसं तुइ। कदा वि सप्पुरिसा सोअपत्तपाणो ण होन्ति। णं पवादे वि णिक्कम्पा गिरीओ। (भोः किमेतत्। अनुपपन्नं खल्वीदृशं त्वयि[2]। कदापि सत् पुरुषाः शोकपात्रात्मानो न भवन्ति। ननु प्रवातेऽपि निष्कम्पा गिरयः।) [114]

राजा- वयस्य, निराकरणविक्लवायाः प्रियायाः समवस्थामनुस्मृत्य बलवदशरणोऽस्मि। सा हि-[115]

इतः प्रत्यादेशात्[3] स्वजनमनुगन्तुं व्यवसिता
स्थिता तिष्ठेत्युच्चैर्वदति गुरुशिष्ये गुरुसमे।
पुनर्दृष्टिं बाष्पप्रसरकलुषामर्पितवती
मयि क्रूरे यत्तत् सविषमिव शल्यं दहति माम्॥ 6 -9॥ [116]

सानुमती- अम्महे, ईरिसी सकज्जपरदा णाम। इमस्स संदावेण अहं रमामि। (अहो ईदृशी स्वकार्यपरता[4]। अस्य संतापेनाहं रमे[5]।) [117]

विदूषकः- भो। अत्थि मे तक्को। केण वि तत्तहोदी आआसचारिणा णीदे[6] त्ति। (भोः अस्ति मे तर्कः। केनापि तत्रभवत्याकाशचारिणा नीतेति।) [118]

राजा- कः पतिदेवतामन्यः परामर्ष्टुमुत्सहते[7]। मेनका किल सख्यास्ते जन्मप्रतिष्ठेति श्रुतवानस्मि। तत्सहचरिणीभिः तां हृतां मे हृदयमाशङ्कते। [119]

सानुमती- संमोहो खु विम्हअणिज्जो, ण पडिबोहो। (संमोहः खलु विस्मयनीयो, न प्रतिबोधः[8]।) [120]

विदूषकः- जइ एव्वं अत्थि समाअमो कालेण तत्तहोदीए। (यद्येवमस्ति समागमः कालेन तत्रभवत्या।) [121]

---

1. काश्मीर-पाठे "मृत्पिण्डमन्दबुद्धिने" ति। मै.-बं.-पाठयो-"र्मन्दबुद्धिने" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठम् अनुसरति।
2. काश्मीर-पाठे "किमेतत्। ईदृशमुपनतमि" ति। मै.-पाठे "भोः, किमिदम्। अनुपपन्नं तवे" ति। बं.-पाठे "भोः वयस्य, एतत्किमुपपन्नं तवे" ति। सर्वत्रात्र काकुभेदः परिलक्ष्यते। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
3. काश्मीर-पाठे "ततः प्रत्यादिष्टे" ति। मै.-पाठ "इतः प्रत्याख्यानादि" ति। बं.-पाठ "इतः प्रत्यादिष्टे" ति। दाक्षि.-पाठे स्वल्पं परिवर्तनं कृतम्।
4. काश्मीर-पाठे "कष्टावस्थे" ति। मै.-पाठे "कार्यस्य परवशते" ति। बं.-पाठे "ऽकार्यता संतापयती" ति। दाक्षि.-पाठे मै.-पाठस्यानुसरणं दृश्यते।
5. मै.-पाठे "ऽस्य संतापेनाधिकतरमहं रम" इति। बं.-पाठे नास्तीदम्। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठे "अवहित त्ती" ति। मै.-बं.-पाठयोः"नीद त्ती" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
7. का.-मै.-पाठयोः"क इव देवताभ्योऽन्यः सम्भाव्यत" इति। दाक्षि.-पाठो बं.-पाठमनुसरति। अत्रावधेयम्- काश्मीर-पाठस्या "-पह्नते" ति विदूषकशब्देन सहैव राज्ञ उक्तिरियं संगच्छते।
8. का.-पाठे "ऽहो मोहः खल्वेष रमणीयः, पुनः प्रतिबोध" इति। मै.-पाठे "संमोहेऽपि विस्मयजनकः खल्वस्य प्रतिबोध" इति। दाक्षि. -पाठो बं.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- कथमिव। [122]

विदूषकः- ण खु मादापिदरा भत्तुविओअदुक्खिअं दुहिदरं देक्खिदुं पारेन्ति। (न खलु मातापितरौ भर्तृवियोगदुःखितां दुहितरं द्रष्टुं पारयतः।) [123]

राजा- वयस्य,

स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु
क्लिष्टं[1] नु तावत्फलमेव पुण्यम्।
असंनिवृत्त्यै तदतीतमेव[2]
मनोरथानाम् अतटाः प्रपाताः[3]॥ 6 -10॥ [124]

विदूषकः- मा एव्वं। णं अङ्गुलीअअं एव्व णिदंसणं, अवस्सं भाविणो अत्थस्स, अचिन्तणिज्जो समाअओ होदि त्ति। (मैवं, नन्वङ्गुलीयकमेव निदर्शनमवश्यंभाविनोऽर्थस्य अचिन्तनीयः समागमो भवतीति।) [125]

राजा- (अङ्गुलीयकं विलोक्य) अये, इदं तावदसुलभस्थानभ्रंशि शोचनीयम्। [126]

तव सुचरितमङ्गुलीय नूनं प्रतनु ममेव विभाव्यते फलेन[4]।
अरुणनखमनोहरासु तस्याश्च्युतमसि लब्धपदं यदङ्गुलीषु॥ 6 -11॥ [127]

सानुमती- जइ अण्णहत्थगदं भवे सच्चं एव्व सोअणिज्जं भवे। (यद्यन्यहस्तगतं भवेत्सत्यमेव शोचनीयं भवेत्।[5]) [128]

विदूषकः- भो, इअं णाममुद्दा केण उग्घादेण तत्तहोदीए हत्थसंसग्गं पाविदा। (भोः इयं नाममुद्रा केनोद्घातेन तत्रभवत्या हस्तसंसर्गं प्रापिता।) [129]

सानुमती- मम वि कोदूहलेण आकारिदो एसो। (ममापि कौतूहलेनाकारित एषः।) [130]

राजा- श्रूयताम्, स्वनगराय प्रस्थितं मां प्रिया सबाष्पमाह, कियच्चिरेणार्यपुत्रः प्रतिपत्तिं दास्यतीति[6]। [131]

विदूषकः- तदो तदो। (ततस्ततः।) [132]

राजा- पश्चादिमां मुद्रां तदङ्गुलौ निवेशयता मया प्रत्यभिहिता-[133]

एकैकमत्र दिवसे दिवसे मदीयं
नामाक्षरं गणय गच्छसि यावदन्तम्[7]।
तावत्प्रिये मदवरोधगृहप्रवेशं[8]
नेता जनस्तव समीपमुपैष्यतीति॥ 6 -12॥ [134]

---

1. मै.-बं.- पाठयोः "क्लृप्तमि" ति। , दाक्षि.- पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठे "आसन्नवृत्तेस्तद् अतीतमेष" इति। मै.-पाठे "सासन्निवृत्यै सुदती ममैवे" ति। बं.-पाठे "ऽसंनिवृत्त्यै तदतीवे" ति। दाक्षि. -पाठे परिवर्तनं क्रियते।
3. काटयवेमोऽत्र "प्रवाहा" इति पठति। का.-मै.-पाठयो "रतटप्रपात" इति। बं.-पाठे "०प्रपातमि" ति।
4. का.-पाठे "०विभज्यते०" इति। मै.-पाठे "गतममुनेव विभाव्यते०" इति। दाक्षि.-पाठो बं.-पाठमनुसरति।
5. का.-पाठे वाक्यमिदं नास्ति, तत्र तु "सखि, दूरे वर्तसे, एकाकिनी तावत् कर्णसुखमनुभवामी" ति। मै.-बं.-पाठयोरुभयं वाक्यं वर्तते। दाक्षि.-पाठे संक्षेपीकृतमेकमेव वाक्यं प्राप्यते।
6. का.-बं-पाठयो "रस्माकं संस्मरिष्यती" ति। मै.-पाठे "प्रतिवार्तां दास्यती" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनम्।
7. मै.-बं.-पाठयो "र्यासि न यावदन्तमि" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
8. का.-पाठे "मदवरोधगृहप्रवेशी" ति। मै.-बं.-पाठयो-"र्मदवरोधनिदेशवर्ती" ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

तच्च दारुणेन मया मोहान् नानुष्ठितम्[1]। [135]

सानुमती- रमणिओ खु अवही विहिणा विसंवादिदो। (रमणीयः खल्ववधिर्विधिना विसंवादितः[2]।) [136]

विदूषकः- कहं धीवलकप्पिअस्स लोहिअमच्छस्स उदलब्भन्तले आसी। (कथं धीवरकल्पितस्य रोहित मत्स्योदराभ्यन्तर आसीत्[3]।) [137]

राजा- शचीतीर्थम् वन्दमानायाः सख्यास्ते हस्ताद् गङ्गास्रोतसि[4] परिभ्रष्टम्। [138]

विदूषकः- जुज्जइ। (युज्यते।) [139]

सानुमती[5]- अदो एव्व तवस्सिणीए सउन्दलाए अधम्मभीरुणो इमस्स राएसिणो परिणए एव्व सन्देहो आसि।

कुदो ईरिसो अणुराओ अहिण्णाणं अवेक्खदि। कहं विअ एदं। (अत एव तपस्विन्याः शकुन्तलाया अधर्मभीरोरस्य राजर्षेः परिणय एव सन्देह आसीत्। कुत ईदृशोऽनुरागोऽभिज्ञानमपेक्षते[6]। कथमिवैतत्।) [140]

राजा[7]- उपालप्स्ये तावदिदमङ्गुलीयकम्। [141]

विदूषकः[8]- (आत्मगतम्) गहीदो णेण पन्था उम्मत्ताणं। (गृहीतोऽनेन पन्था उन्मत्तानाम्।) [142]

राजा-

कथं नु तं बन्धुरकोमलाङ्गुलिं[9] करं विहायासि निमग्नमम्भसि।

अथवा-

अचेतनं नाम गुणं न लक्ष्येन् मयैव कस्मादवधीरिता प्रिया[10]॥ 6 -13॥ [143]

विदूषकः[11]- (आत्मगतम्) आम, कहं बुभुक्खाए खादिदव्वोम्हि। (अहो कथं बुभुक्षया खादितव्योऽस्मि।) [144]

राजा- अकारणपरित्यागानुशयतप्तहृदयस्तावद् अनुकम्प्यताम् अयं जनः पुनर्दर्शनेन[12]। [145]

(प्रविश्य चतुरिका पटाक्षेपेण[13] चित्रफलकहस्ता) [146]

---

1. काश्मीरादि-पाठेषु "तच्च मोहात् दारुणनुष्ठितमि" ति। दाक्षि.-पाठे नवीनं परिवर्तनं क्रियते।
2. काश्मीर-पाठे "रमणीयस्ते विधिना दर्शितो मार्ग" इति। दाक्षि.-पाठो मैथिल-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
3. काश्मीर-पाठे "कथं दास्याः पुत्रस्य रोहितमत्स्यस्य बडीशमिवैतदङ्गुलीयकं मुखे प्रविष्टमि" ति। मै.-बं.-पाठयोः "दास्याः पुत्रस्ये" ति शब्दद्वयं नास्ति। दाक्षि.-पाठे सरलीकरणं दृश्यते।
4. बं.-पाठे शब्दोऽयं नास्ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
5. का.-पाठेऽक्षमालाया मुखे नास्ति वाक्यमिदम्। तत्तु मै.-पाठे प्रक्षिप्तं प्रतिभाति। दाक्षि.-पाठस्तमनुसरति।
6. मै.-बं.-पाठयो-"रथवा न ईदृशोऽनुरागोऽभिज्ञानमपेक्षत" इति। दाक्षि.-पाठे काकुभेदेनोच्यते वाक्यमिदम्।
7. का.-पाठे राज्ञो मुखे नास्त्येतादृशं वाक्यम्। तत्तु मै.-पाठे प्रथमवारं प्रक्षिप्तमासीत्। दाक्षि.-पाठस्तमनुसरति।
8. का.-पाठे नास्तीदं वाक्यम्। मै.-बं.-पाठयोः पृथगेव हास्यदं वाक्यम्। दाक्षि.-पाठे तत्तु परिवर्तितम्।
9. मै.-बं.-पाठयोः "कोमलबन्धुराङ्गुलिमि" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
10. का.-पाठ इतः परमक्षमालाया उक्तिर्वर्तते, यथा-पूर्वापरविरोध्येष वृत्तान्त इति। मै.-बं.-पाठयोः "स्वयमेव प्रतिपन्नः, यद्वक्तुकामे" ति। दाक्षि.-पाठे तूभयविधा सोक्तिर्नाङ्गीकृता।
11. का.-पाठे नास्तीदं वाक्यम्। मै.-बं.-पाठयोः प्रक्षिप्तं वाक्यमिदं प्राप्यते। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
12. का.-पाठे "ऽकारणपरित्यक्ता कदा नु प्रेक्षणीया भविष्यती" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
13. काश्मीरादि-पाठेषु लिपिकरी रंगभूमिं सामान्यरूपेणैव प्रविशति, न तु पटाक्षेपेण। दाक्षि.-पाठे नवीना योजना।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

चतुरिका- इअं चित्तगदा भट्टिणी। (इयं चित्रगता भट्टिनी।) [147]

(इति चित्रफलकं दर्शयति) [148]

विदूषकः- साहु वअस्स साहु, महुरावत्थाणदंसणिज्जो भावाणुप्पवेसो। खलदि विअ मे दिट्ठी णिण्णुण्णअप्पदेसेसु। (साधु वयस्य साधु, मधुरावस्थानदर्शनीयो भावानुप्रवेशः। स्खलतीव मे दृष्टिनिम्नोन्नत प्रदेशेषु[1]।) [149]

सानुमती- अम्हो राएसिणो वट्टिआणिउणदा। जाणे सही अग्गदो मे वट्टदि त्ति। (अहो एषा राजर्षेर्वर्तिका निपुणता। जाने सख्यग्रतो मे वर्तत इति। [150]

राजा-

> **यद्यत्साधु न चित्रे स्यात्क्रियते तत्तदन्यथा।**
> **तथापि तस्या लावण्यं लेखया किञ्चिदन्वितम्**[2]॥ 6 -14॥ [151]

सानुमती- सरिसं एदं पच्छादावगुरुणो सिणेहस्स अणवलेवस्स अ। (सदृशमेतत्पश्चात्तापगुरोः स्नेहस्यानवलेपस्य च।) [152]

विदूषकः- भो, दाणिं तिण्णि तत्तहोदीओ दीसन्ति। सव्वा दंसणीआओ। कदमा एत्थ तत्तहोदी सउन्दला।

(भोः, इदानीं तिस्रस्तत्रभवत्यो दृश्यन्ते। सर्वाः दर्शनीयाः। कतमात्र तत्रभवती शकुन्तला।) [153]

सानुमती- अणभिण्णो क्खु सही रूवस्स मोहदिट्ठी अअं जणो। (अनभिज्ञः खलु सखीरूपस्य मोघदृष्टिरयं जनः[3]।) [154]

राजा- त्वं तावत्कतमां तर्कयसि। [155]

विदूषकः- तक्केमि जा एसा सिढिलकेसबन्धणुव्वन्तकुसुमेण केसन्तेण उब्भिण्णस्सेअबिन्दुणा वअणेण विसेसदो ओसरिआहिं बाहाहिं अवसेअसिणिद्धतरुणपल्लवस्स चूअपाअवस्स पासे ईसिपरिस्सन्ता विअ आलिहिदा एसा तत्तहोदी सउन्दला। इदराओ सहीओ त्ति। (तर्कयामि यैषा शिथिलकेशबन्धनोद्वान्तकुसुमेन केशान्तेनोद्भिन्नस्वेदबिन्दुना वदनेन विशेषतोऽपसृताभ्यां बाहुभ्यामवसेकस्निग्धतरुणपल्लवस्य चूतपादपस्य पार्श्वे ईषत्परिश्रान्तेवा[4] लिखिता एषा तत्रभवती शकुन्तला, इतरे सख्याविति।) [156]

राजा- निपुणो भवान्। कुतः। अस्त्यत्र मे भावचिह्नम्। [157]

> **स्विन्नाङ्गुलीविनिवेशो रेखाप्रान्तेषु दृश्यते मलिनः।**
> **अश्रु च कपोलपतितं दृश्यमिदं वर्णिकोच्छ्वासात्**॥ 6 -15॥ [158]

चतुरिके[5], अर्धलिखितमेतद्विनोदस्थानम्। गच्छ। वर्तिकास्तावदानय। [159]

चतुरिका- अज्ज माढव्य, ओलम्ब चित्तफलअं जाव आअच्छम्मि। (आर्य माढव्य, अवलम्बस्व चित्रफलकं यावदागच्छामि।) [160]

राजा- अहमेवैतदवलम्बे[6]। (यथोक्तं करोति) [161]

---

1. काश्मीर-पाठे नैतादृशं वाक्यम्। दाक्षि.-पाठोऽत्र मै.-पाठमनुसरति। किन्तु मै.-पाठे राजापि स्वकीयस्यैव चित्रांकनस्य प्रशंसां करोति, तस्यानुसरणं तु दाक्षि.-पाठेन नैव कृतम्।
2. काश्मीर-पाठेऽयं श्लोकः, ततश्च सानुमत्या उक्तिरपि नास्ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
3. का.-पाठे "मोहदक्षस्तपस्वी। अवश्यं नास्य प्रत्यक्षा सखी" ति। मै.-बं.-पाठयोरप्येतादृशमेव वाक्यम्।
4. का.-बं.-पाठयो- "रशोकलतिकां संश्रितामि" ति। मै.-पाठे "बालचूतवृक्षस्य पार्श्वे आलिखिते" ति।
5. का.-मै.- पाठयो "र्मेधाविनी"ति।, दाक्षि.-पाठो वं.- पाठमनुसरति।
6. का.-पाठे नास्तीदृशी योजना। तत्र तु विदूषकश्चित्रफलकं धारयति।, दाक्षि.- पाठो मै.- पाठानुसारी।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(निष्क्रान्ता चेटी) [162]

राजा - (निःश्वस्य)

साक्षात्प्रियामुपगतामपहाय पूर्वं चित्रार्पिताम् अहमिमां बहुमन्यमानः।
स्रोतोवहः पथि निकामजलामतीत्य जातः सखे प्रणयवान् मृगतृष्णिकायाम्॥ 6 -16॥ [163]

विदूषकः- (आत्मगतम्) एसो अत्तभवं णदि अतिक्कमिअ मिअतिण्हिआए सकन्तो। (प्रकाशम्) भो, अवरं किं एत्थ लिहिदव्वं। (एषोऽत्रभवान्नदीमतिक्रम्य मृगतृष्णिकां संक्रान्त[1]ः। भोः अपरं किमत्र लिखितव्यम्।) [164]

सानुमती- जो जो पदेसो सहीए मे अहिरूइदो तं तं आलिहिदुकामो भवे। (यो यः प्रदेशः सख्या मेऽभिरुचितस्तं तमालिखितुकामो भवेत्।) [165]

राजा- श्रूयताम्। [166]

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी
पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावना[2]ः।

शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः
शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम्॥ 6 -17॥ [167]

विदूषकः- (आत्मगतम्) जहअहं देक्खामि पूरिदव्वं णेन चित्तफलअं लम्बकुच्चाणं तावसाणं कदम्बेहिं।

(यथाहं पश्यामि पूरयितव्यमनेन चित्रफलकं लम्बकूर्चानां कदम्बैः[3]।) [168]

राजा- वयस्य, अन्यच्च शकुन्तलायाः प्रसाधनमभिप्रेतमत्र विस्मृतमस्माभिः। [169]

विदूषकः- किं विअ। (किमिव।) [170]

सानुमती- वणवासस्स सोउमारस्स अ जं सरसिं भविस्सदि। (वनवासस्य सौकुमार्यस्य[4] च यत्सदृशं भविष्यति।) [171]

राजा-

कृतं न कर्णार्पितबन्धनं सखे शिरीषमागण्डविलम्बिकेसरम्।
न वा शरच्चन्द्रमरीचिकोमलं मृणालसूत्रं रचितं स्तनान्तरे॥ 6 -18॥ [172]

विदूषकः- भो, किं णु तत्तहोदी रत्तकुवलअसोहिणा अग्गहत्थेण मुहं आवारिअ चइदचइदा विअ ट्ठिआ।

(सावधानं निरूप्य, दृष्ट्वा) आ, एसो दासीए उत्तो कुसुमरसपाडच्चरो तत्तहोदीए वअणं अहिलङ्घेदि महुअरो। (भोः किं नु तत्रभवती रक्तकुवलयशोभिना अग्रहस्तेन मुखमावार्य चकितचकितेव स्थिता। आः, एषः दास्याः पुत्रः[5] कुसुमरसपाटच्चरस्तत्रभवत्या वदनकमलमभिलङ्घते[6] मधुकरः।) [173]

---

1. काश्मीरादि-पाठेषु नैतादृशं वाक्यम्। दाक्षि-पाठे विदूषकस्य मुखे प्रथमवारं प्रक्षिप्तेयमुक्तिः।
2. काश्मीर-पाठे "पादान्ते निभृतं निषण्णचमरो गौरीगुरोः पावन" इति। मै.-बं.- पाठयोरेकवचनान्तं "पादः, पावनः" इति। दाक्षि-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
3. काश्मीर-पाठे "तापसानामि" ति। मै.-पाठे "तापसानां समूहैरि" ति। दाक्षि.-पाठे शब्दान्तरं प्रयुज्यते।
4. मै.-बं.-पाठयोः "कन्यकाभावस्ये" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
5. काश्मीर-पाठे "हे हे भो" इति। मै.-पाठे "आं, ही ही भो" इति। बं.-पाठे "आमि" ति। दाक्षि.-पाठे वाचिकाभिनये भेदः क्रियते।
6. काश्मीरादि-पाठेष्व "-भिलषती" ति। दाक्षि.-पाठे क्रियापदे परिवर्तनं क्रियते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- ननु वार्यतामेष धृष्टः[1]। [174]

विदूषकः- भवं एव्व अविणीदाणं सासिदा। इमस्स वारणे पहविस्सदि। (भवानेवाविनीतानां शासिताऽस्य वारणे प्रभविष्यति।) [175]

राजा- युज्यते। अयि भोः कुसुमलताप्रियातिथे, किमत्र परिपतनखेदमनुभवसि। [176]

एषा कुसुमनिषण्णा तृषितापि सती भवन्तमनुरक्ता।
प्रतिपालयति मधुकरी न खलु मधु विना त्वया[2] पिबति॥ 6 -19॥ [177]

सानुमती- अज्ज अभिजादं खु एसो वारिदो। (अद्याभिजातं खल्वेष वारितः।) [178]

विदूषकः- पडिसिद्धा वि वामा एषा जादी। (प्रतिषिद्धापि वामैषा जातिः।) [179]

राजा- एवं भोः,न मे शासने तिष्ठसि। श्रूयतां तर्हि सम्प्रति। [180]

अक्लिष्टबालतरुपल्लवलोभनीयं
पीतं मया सदयमेव रतोत्सवेषु।
बिम्बाधरं स्पृशसि[3] चेद्भ्रमर प्रियाया-
स्त्वां कारयामि कमलोदरबन्धनस्थम्॥ 6 -20॥ [181]

विदूषकः- एव्वं तिक्खदण्डस्स किं ण बिभेइस्सदि। (प्रहस्य, आत्मगतम्) एदो दाव उम्मत्तो। अहं वि एदस्स संसग्गेण ईरिसो ह्मि संवुत्तो। (प्रकाशम्) भो, चित्तं क्खु एदं। (एवं तीक्ष्णदण्डस्य किं न भेष्यति। एष तावदुन्मत्तः। अहमप्येतस्य संसर्गेणेदृशोऽस्मि संवृत्तः। भो, चित्रं खल्वेतत्[4]।) [182]

राजा- कथं चित्रम्। [183]

सानुमती- अहं पि दाणिं दाव अणगदत्था, किं उण जहालिहिदाणुभावी एसो। (अहमपीदानीं तावदनवगतार्था, किं पुनर्यथालिखितानुभाव्येषः।) [184]

राजा- वयस्य, किमिदिमनुष्ठितं पौरोभाग्यम्। [185]

दर्शनसुखमनुभवतः साक्षादिव तन्मयेन हृदयेन।
स्मृतिकारिणा त्वया मे पुनरपि चित्रीकृता कान्ता॥ 6 -21॥ [186]

(इति बाष्पं विकिरति) [187]

सानुमती- पुव्वावरविरोही अपुव्वो एसो विहाणमग्गो। (पूर्वापरविरोध्यपूर्व एषो विधानमार्गः।) [188]

राजा- वयस्य, कथमविश्रान्तं दुःखमनुभवामि। [189]

प्रजागरात् खिलीभूतस्तस्याः स्वप्ने समागमः।
बाष्पस्तु न ददात्येनां द्रष्टुं चित्रगतामपि॥ 6 -22॥ [190]

सानुमती- सव्वहा मज्जिदं तुए पच्चादेसदुःक्खं सउन्दलाए। (सर्वथा मार्जितं त्वया प्रत्यादेशदुःखं शकुन्तलायाः।) [191]
(प्रविश्य) [192]

---

1. मै.- पाठे "दुष्ट" इति। दाक्षि.- पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्
2. मै.-बं.-पाठयोः "०भ्रमरी न खलु मधु त्वां विने"ति। दाक्षि.- पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
3. काश्मीरादि-पाठेषु "दशसी" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
4. का.-बं.-पाठयोरत्र द्वयोर्वाक्ययोर्मध्ये स्वल्पं दृश्यं वर्तते। दाक्षि.-पाठे तन्निष्कासितम्। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठम् अनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

चतुरिका- जेदु जेदु भट्टा, वट्टिआकरण्डअं गेण्हिअ इदोमुहं पत्थिद म्हि....। (जयतु जयतु भर्ता। वर्तिका- करण्डकं गृहीत्वेतोमुखं प्रस्थिताऽस्मि।) [193]

राजा- किं च। [194]

चतुरिका- सो मे हत्थादो अंतरा तरलिआदुईआए देवीए वसुमदीए अहं एव्व अज्जउत्तस्स उवणइस्सं त्ति सबल्लक्कारं गहीदो। (स मे हस्तादन्तरा तरलिका[1]- द्वितीयया देव्या वसुमत्याऽहमेवार्यपुत्रस्योपनेष्यामीति[2] सबलात्कारं गृहीतः।) [195]

विदूषकः- दिट्ठिआ तुमं मुत्ता। (दिष्ट्या त्वं मुक्ता।) [196]

चतुरिका- जाव देविए विडवलग्गं उत्तरीअं तरलिआ मोएदि ताव मए णिव्वाहिदो अत्ता। (यावद्देव्या विटपलग्नमुत्तरीयं तरलिका मोचयति तावन्मया निर्वाहित आत्मा।) [197]

राजा[3] - वयस्य, उपस्थिता देवी बहुमानगर्विता च। भवानिमां प्रतिकृतिं रक्षतु। [198]

विदूषकः- अत्ताणं त्ति भणाहि। (चित्रफलकमादायोत्थाय) जइ भवं अन्तेउरकलहादो मुच्चीअदि तदो मं मेहप्पडिच्छन्दे पासादे सद्दावेहि। (आत्मानमिति भण। यदि भवानन्तःपुरकलहान्मु[4]च्यते, ततो मां मेघप्रतिच्छन्दे प्रासादे शब्दापय[5]।) (इति द्रुतपदं निष्क्रान्तः) [199]

सानुमती- अण्णसंकन्तहिअओ वि पढमसंभावणं अवेक्खदि। थिरसोहिदो दाणिं एसो। (अन्यसंक्रान्तहृदयोऽपि प्रथमसम्भावनामवेक्षते। स्थिरसौहृद इदानीमेषः[6]।) [200]

(प्रविश्य पत्रहस्ता) [201]

प्रतीहारी- जेदु देवो। (जयतु देवः।) [202]

राजा- वेत्रवति, न खल्वन्तरा दृष्टा त्वया देवी। [203]

प्रतीहारी- अह इं। पत्तहत्थं मं पेक्खिअ पडिणिउत्ता। (अथ किम्। पत्रहस्तां मां प्रेक्ष्य प्रतिनिवृत्ता।) [204]

राजा- कार्यज्ञा[7] कार्योपरोधं मे परिहरति। [205]

प्रतीहारी- देव, अमच्चो विण्णवेदि। अत्थजादस्स गणणाबहुलदाए एक्कं एव्व पोरकज्जं अवेक्खिदं। तं देवो पत्तारूढं पच्चक्खीकरेदु त्ति। (देव, अमात्यो विज्ञापयति। अर्थजातस्य गणनाबहुलतयैकमेव पौरकार्यमवेक्षितम्। तद्देवः पत्रारूढं प्रत्यक्षीकरोतु इति।) [206]

राजा- इतः पत्रिकां दर्शय। [207]

(प्रतीहार्युपनयति।) [208]

---

1. काश्मीरादि-पाठेषु दास्या नाम पिङ्गलिका वर्तते। तच्च दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं परिवर्त्यते।
2. काश्मीर-पाठे नैतादृशं वाक्यम्। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
3. काश्मीरादि-पाठेष्वितः पूर्वं नेपथ्योक्त्या देव्या आगमनं सूच्यते, ततश्च विदूषकेन तस्या अन्तःपुरव्याघ्रीरूपेण निर्देशः क्रियते। उक्तिद्वयमत्र दाक्षि.-पाठे निष्कासितम्।
4. का.-पाठे नास्तीदृशं वाक्यम्। मै.-पाठे "ऽन्तःपुरकूटपाशादि" ति। बं.-पाठे "ऽन्तःपुरवागुरात" इति।
5. काश्मीरादि-पाठेष्वितः परम् "एतच्च तत्र गोपयामि यत्र पारावतमुज्झित्वा न कोऽप्यन्यः प्रेक्षत" इत्यधिकं वाक्यमपि प्राप्यते। दाक्षि.-पाठे तन्निष्कासितम्।
6. काश्मीर-पाठे "बहुमान्याऽस्याः कुलप्रभा। अथवा नैतत् किंचित्। विपञ्च्याः खलु असंनिधाने एकतन्तु-रप्यर्षती" ति। मै.-पाठे "ऽन्यसंक्रान्त ...। विरस न हु इदानीमेष" इति। दाक्षि.-पाठो बं.-पाठमनुसरति।
7. का.-बं.-पाठयोः" कालज्ञे" ति। मै.-पाठे "समयज्ञे" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- (अनुवाच्य) कथं, समुद्रव्यवहारी[1] सार्थवाहो धनमित्रो[2] नाम नौव्यसनेन विपन्नः। अनपत्यश्च किल तपस्वी। राजगामी तस्यार्थसञ्चय इत्येतदमात्येन लिखितम्। कष्टं खल्वनपत्यता। वेत्रवति, महाधनत्वाद्बहुपत्नीकेन तत्रभवता भवितव्यम्। विचार्यतां यदि काचिदापन्नसत्त्वा तस्य भार्या स्यात्। [209]

प्रतीहारी- देव, दाणिं एव्व साकेतसेट्ठिणो दुहिदा णिव्वुत्तपुंसवणा जाआ से सुणीअदी। (देव, इदानीमेव साकेतश्रेष्ठिनो[3] दुहिता निर्वृत्तपुंसवना जायाऽस्य श्रूयते।) [210]

राजा- ननु गर्भः पित्र्यं रिक्थमर्हति। गच्छ। एवममात्यं ब्रूहि। [211]

प्रतिहारी- जं देवो आणवेदि। (यद्देव आज्ञापयति।) [212]

(इति प्रस्थिता।) [213]

राजा- एहि तावत्। [214]

प्रतीहारी- इयम्हि। (इयमस्मि।) [215]

राजा- किमनेन संततिरस्ति नास्तीति। [216]

येन येन वियुज्यन्ते प्रजाः स्निग्धेन बन्धुना।
स स पापादृते तासां दुष्यन्त[4] इति घुष्यताम्॥ 6 -23॥ [217]

प्रतीहारी- एव्वं णाम घोसइदव्वं। (निष्क्रम्य, पुनः प्रविश्य) काले पवुट्ठं विअ अहिणन्दिदं देवस्स सासणम्। (एवं नाम घोषयितव्यम्। काले प्रवृष्टमिवाभिनन्दितं देवस्य शासनम्।) [218]

राजा- (दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य) एवं भोः संततिविच्छेदनिरवलम्बानां कुलानां मूलपुरुषावसाने संपदः परमुपतिष्ठन्ति। ममाप्यन्ते पुरुवंशश्रिय एष एव वृत्तान्तः। [219]

प्रतीहारी- पडिहदं अमङ्गलम्। (प्रतिहतम् अमङ्गलम्।) [220]

राजा- धिङ् मामुपस्थितश्रेयोऽवमानिनम्। [221]

सानुमती- असंसअं सहि एव्व हिअए करिअ णिन्दिदो णेण अप्पा। (असंशयं सखीमेव हृदये कृत्वा निन्दितोऽनेनात्मा।) [222]

राजा-

संरोपितेऽप्यात्मनि धर्मपत्नी
त्यक्ता मया नाम कुलप्रतिष्ठा।
कल्पिष्यमाणा महते फलाय
वसुन्धरा काल इवोप्तबीजा॥ 6 -24॥ [223]

सानुमती- अपरिच्छिण्णा दाणिं दे संददी भविस्सदि। (अपरिच्छिन्नेदानीं[5] ते सन्ततिर्भविष्यति।) [224]

चतुरिका- (जनान्तिकम्) अए, इमिणा सत्थवाहउत्तन्तेण विमणाअंदि भट्टा। णं अस्सासेदुं मेहप्पडिच्छन्दादो अज्जमाढव्वं गेण्हिअ आअच्छेहि। (अये, अनेन सार्थवाहवृत्तान्तेन विमनायते भर्ता। एनमाश्वासयितुं मेघप्रतिच्छन्दादार्यमाढव्यं

---

1. काश्मीरादि-पाठेषु "वारिपथोपजीवी" ति। दाक्षि.-पाठे सरलीकरणं दृश्यते।
2. काश्मीर-पाठे "धनवृद्ध" इति। मै.-बं.-पाठयो-"र्धनवृद्धिरि" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
3. का.-पाठे "केशवश्रेष्ठिन" इति। बं.-पाठे "साकेतकपुरस्य श्रेष्ठिन" इति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठे "दुष्यन्त" इति। मै.-पाठे "दुष्मन्त" इति। बं.-पाठे "दुःषन्त" इति।
5. काश्मीर-पाठे नास्तीदं वाक्यम्। मै.-बं.-पाठयोर "-परित्यक्तेदानीमि" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

गृहीत्वाऽऽगच्छ[1]।) [225]

प्रतीहारी- सुट्ठु भणसि। (सुष्ठु भणसि) (इति निष्क्रान्ता) [226]

राजा- अहो, दुष्यन्तस्य संशयमारुढाः पिण्डभाजः। कुतः, [227]

अस्मात्परं बत यथाश्रुति संभृतानि
को नः कुले निवपवानि करिष्यतीति।
नूनं प्रसूतिविकलेन मया प्रसिक्तं[2]
धौताश्रुशेषमुदकं पितरः पिबन्ति॥ 6 -25॥ [228]

(इति मोहम् उपगतः[3]) [229]

चतुरिका- (ससंभ्रममवलोक्य) समस्सदतु समस्सदतु भट्टा। (समाश्वसितु समाश्वसितु भर्ता।) [230]

सानुमती- हद्धी हद्धी, विद्दमाने दीवे ववधाणदोसेण एसो अन्धआरं अणुहोदि। अहं दाणिं एव्व णिव्वुदं करेमि। अहवा सुदं मए सउन्दलं समास्सासअन्तीए महेन्द्रजणणीए मुहादो। जण्णभाओ सुआ देवा एव्व तह अणुचिट्ठिस्संति जह अइरेण धम्मपइणिं भट्टा अहिणंदिस्सदि त्ति। ता जुत्तं एदं कालं पडिपालेदुं। जाव इमिणा उत्तन्तेण पिअसहिं समस्सासेमि। (हा धिक्, हा दिक्, विद्यमाने दीपे व्यवधानदोषेणैषोऽन्धकारमनुभवति। अहमिदानीमेव निर्वृत्तं करोमि। अथवा श्रुतं मया शकुन्तलां समाश्वासयन्त्या महेन्द्रजनन्या मुखात् यज्ञभागोत्सुका देवा एव तथानुष्ठास्यन्ति यथाचिरेण धर्मपत्नीं भर्ताऽभिनन्दिष्यतीति। तस्माद् युक्तमेतं कालं प्रतिपालयितुम्[4]। यावदनेन वृत्तान्तेन प्रियसखीं समाश्वासयामि। [231]

(इत्युद्भ्रान्तकेन सानुमती निष्क्रान्ता) [232]

(नेपथ्ये) [233]

भो, अव्बम्हण्णं। अव्बम्हण्णं। (अब्रह्मण्यम् अब्रह्मण्यम्।) [234]

राजा- (प्रत्याश्वास्तः, कर्णं दत्त्वा) अये, माढव्यस्येवार्तस्वरः। कः कोऽत्र भोः। [235]

(प्रविश्य) [236]

प्रतीहारी- (ससंभ्रमम्) परित्ताअदु देवो संसअगदं वअस्सं। (परित्रायतां देवः संशयगतं वयस्यम्[5]।) [237]

राजा- केनात्तगन्धो माणवकः। [238]

प्रतीहारी- अदिट्ठरूवेण केण वि सत्तेण अदिक्कमिअ मेहप्पडिच्छन्दस्स पासादस्स अग्गभूमिं आरोविदो। (अदृष्टरूपेण केनापि सत्त्वेनातिक्रम्य मेघप्रतिच्छन्दस्य प्रासादस्याग्रभूमिमारोपितः।) [239]

राजा- (उत्थाय) मा तावत्। ममापि सत्त्वैरभिभूयन्ते गृहाः। अथवा-[240]

अहन्यहन्यात्मन एव ताव-
ज्ज्ञातुं प्रमादस्खलितं न शक्यम्।

---

1. काश्मीर-पाठे विदूषकस्यानयनाय नास्त्येतादृशी योजना। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठे "प्रमुक्तमि" ति। दाक्षि. पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
3. काश्मीरादि-पाठे ध्वस्या रंगसूचनायाः प्राक् राज्ञो मुखे "आमूलशुद्धसन्तति0" इति श्लोकोऽपि वर्तते। दाक्षि.-पाठे संक्षेपीकरणस्याशयेन स निष्कासितः।
4. काश्मीर-पाठेऽक्षमाला मातलेरागमनं सूचयित्वैव रंगान्निर्वर्तते। तादृशी योजना नान्यत्र कुत्रापि दृश्यते। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
5. काश्मीरादि-पाठेषु बहु विस्तरेण प्रसंगोऽयं निरूप्यते। पिङ्गलिकाया वसुमत्या वा मुखे विदूषकः पतितः स्यादित्याशंकापि तत्र प्रकटीक्रियते। दाक्षि.-पाठः संक्षेपीकरणाय प्रवृत्तः। अतो नैतादृशी वार्तात्र पठ्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- (अनुवाच्य) कथं, समुद्रव्यवहारी[1] सार्थवाहो धनमित्रो[2] नाम नौव्यसनेन विपन्न:। अनपत्यश्च किल तपस्वी। राजगामी तस्यार्थसञ्चय इत्येतदमात्येन लिखितम्। कष्टं खल्वनपत्यता। वेत्रवति, महाधनत्वाद्बहुपत्नीकेन तत्रभवता भवितव्यम्। विचार्यतां यदि काचिदापन्नसत्त्वा तस्य भार्या स्यात्। [209]

प्रतीहारी- देव, दाणिं एव्व साकेतसेट्ठिणो दुहिदा णिव्वुत्तपुंसवणा जाआ से सुणीअदी। (देव, इदानीमेव साकेतश्रेष्ठिनो[3] दुहिता निर्वृत्तपुंसवना जायाऽस्य श्रूयते।) [210]

राजा- ननु गर्भ: पित्र्यं रिक्थमर्हति। गच्छ। एवममात्यं ब्रूहि। [211]

प्रतिहारी- जं देवो आणवेदि। (यद्देव आज्ञापयति।) [212]

(इति प्रस्थिता।) [213]

राजा- एहि तावत्। [214]

प्रतीहारी- इयम्हि। (इयमस्मि।) [215]

राजा- किमनेन संततिरस्ति नास्तीति। [216]

येन येन वियुज्यन्ते प्रजा: स्निग्धेन बन्धुना।
स स पापादृते तासां दुष्यन्त[4] इति घुष्यताम्।। 6 -23।। [217]

प्रतीहारी- एव्वं णाम घोसइदव्वं। (निष्क्रम्य, पुन: प्रविश्य) काले पवुट्टं विअ अहिणन्दिदं देवस्स सासणम्। (एवं नाम घोषयितव्यम्। काले प्रवृष्टमिवाभिनन्दितं देवस्य शासणम्।) [218]

राजा- (दीर्घमुष्णं च नि:श्वस्य) एवं भो: संततिविच्छेदनिरवलम्बानां कुलानां मूलपुरुषावसाने संपद: परमुपतिष्ठन्ति। ममाप्यन्ते पुरुवंशश्रिय एष एव वृत्तान्त:। [219]

प्रतीहारी- पडिहदं अमङ्गलम्। (प्रतिहतम् अमङ्गलम्।) [220]

राजा- धिङ् मामुपस्थितश्रेयोऽवमानिनम्। [221]

सानुमती- असंसअं सहि एव्व हिअए करिअ णिन्दिदो णेण अप्पा। (असंशयं सखीमेव हृदये कृत्वा निन्दितोऽनेनात्मा।) [222]

राजा-

संरोपितेऽप्यात्मनि धर्मपत्नी
त्यक्ता मया नाम कुलप्रतिष्ठा।
कल्पिष्यमाणा महते फलाय
वसुन्धरा काल इवोप्तबीजा।। 6 -24।। [223]

सानुमती- अपरिच्छिण्णा दाणिं दे संददी भविस्सदि। (अपरिच्छिन्नेदानीं[5] ते सन्ततिर्भविष्यति।) [224]

चतुरिका- (जनान्तिकम्) अए, इमिणा सत्थवाहउत्तन्तेण विमणाअंदि भट्टा। णं अस्सासेदुं मेहप्पडिच्छन्दादो अज्जमाढव्वं गेण्हिअ आअच्छेहि। (अये, अनेन सार्थवाहवृत्तान्तेन विमनायते भर्ता। एनमाश्वासयितुं मेघप्रतिच्छन्दादार्यमाढव्यं

---

1. काश्मीरादि-पाठेषु "वारिपथोपजीवी" ति। दाक्षि.-पाठे सरलीकरणं दृश्यते।
2. काश्मीर-पाठे "धनवृद्ध" इति। मै.-बं.-पाठयो-"र्धनवृद्धिरि" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
3. का.-पाठे "केशवश्रेष्ठिन" इति। बं.-पाठे "साकेतकपुरस्य श्रेष्ठिन" इति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठे "दुष्यन्त" इति। मै.-पाठे "दुष्मन्त" इति। बं.-पाठे "दु:षन्त" इति।
5. काश्मीर-पाठे नास्तीदं वाक्यम्। मै.-बं.-पाठयोर "-परित्यक्तेदानीमि" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

गृहीत्वाऽऽगच्छ[1]।) [225]

प्रतीहारी- सुद्ध भणसि। (सुष्ठु भणसि) (इति निष्क्रान्ता) [226]

राजा- अहो, दुष्यन्तस्य संशयमारुढाः पिण्डभाजः। कुतः, [227]

> **अस्मात्परं बत यथाश्रुति संभृतानि**
> **को नः कुले निवपवानि करिष्यतीति।**
> **नूनं प्रसूतिविकलेन मया प्रसिक्तं[2]**
> **धौताश्रुशेषमुदकं पितरः पिबन्ति॥ 6 -25॥** [228]

(इति मोहम् उपगतः[3]) [229]

चतुरिका- (ससंभ्रममवलोक्य) समस्सदतु समस्सदतु भट्टा। (समाश्वसितु समाश्वसितु भर्ता।) [230]

सानुमती- हद्धी हद्धी, विद्दमाने दीवे ववधाणदोसेण एसो अन्धआरं अणुहोदि। अहं दाणिं एव्व णिव्वुदं करेमि। अहवा सुदं मए सउन्दलं समास्सासअन्तीए महेन्द्रजणणीए मुहादो। जण्णभाओ सुआ देवा एव्व तह अणुचिट्ठिस्संति जह अइरेण धम्मपइणिं भट्टा अहिणंदिस्सदि त्ति। ता जुत्तं एदं कालं पडिपालेदुं। जाव इमिणा उत्तन्तेण पिअसहिं समस्सासेमि। (हा धिक्, हा दिक्, विद्यमाने दीपे व्यवधानदोषेणैषोऽन्धकारमनुभवति। अहमिदानीमेव निर्वृत्तं करोमि। अथवा श्रुतं मया शकुन्तलां समाश्वासयन्त्या महेन्द्रजनन्या मुखात् यज्ञभागोत्सुका देवा एव तथानुष्ठास्यन्ति यथाचिरेण धर्मपत्नीं भर्ताऽभिनन्दिष्यतीति। तस्माद् युक्तमेतं कालं प्रतिपालयितुम्[4]। यावदनेन वृत्तान्तेन प्रियसखीं समाश्वासयामि। [231]

(इत्युद्भ्रान्तकेन सानुमती निष्क्रान्ता) [232]

(नेपथ्ये) [233]

भो, अव्बम्हण्णं। अव्बम्हण्णं। (अब्रह्मण्यम् अब्रह्मण्यम्।) [234]

राजा- (प्रत्याश्वास्तः, कर्णं दत्त्वा) अये, माढव्यस्येवार्तस्वरः। कः कोऽत्र भोः। [235]

(प्रविश्य) [236]

प्रतीहारी- (ससंभ्रमम्) परित्ताअदु देवो संसअगदं वअस्सं। (परित्रायतां देवः संशयगतं वयस्यम्[5]।) [237]

राजा- केनात्तगन्धो माणवकः। [238]

प्रतीहारी- अदिट्ठरूवेण केण वि सत्तेण अदिक्कमिअ मेहप्पडिच्छन्दस्स पासादस्स अग्गभूमिं आरोविदो। (अदृष्टरूपेण केनापि सत्त्वेनातिक्रम्य मेघप्रतिच्छन्दस्य प्रासादस्याग्रभूमिमारोपितः।) [239]

राजा- (उत्थाय) मा तावत्। ममापि सत्त्वैरभिभूयन्ते गृहाः। अथवा-[240]

> **अहन्यहन्यात्मन एव ताव-**
> **ज्ज्ञातुं प्रमादस्खलितं न शक्यम्।**

---

1. काश्मीर-पाठे विदूषकस्यानयनाय नास्त्येतादृशी योजना। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
2. काश्मीर-पाठे "प्रमुक्तमि" ति। दाक्षि. पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
3. काश्मीरादि-पाठे ष्वस्या रंगसूचनायाः प्राक् राज्ञो मुखे "आमूलशुद्धसन्तति0" इति श्लोकोऽपि वर्तते। दाक्षि.-पाठे संक्षेपीकरणस्याशयेन स निष्कासितः।
4. काश्मीर-पाठेऽक्षमाला मातलेरागमनं सूचयित्वैव रंगान्निवर्तते। तादृशी योजना नान्यत्र कुत्रापि दृश्यते। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
5. काश्मीरादि-पाठेषु बहु विस्तरेण प्रसंगोऽयं निरूप्यते। पिङ्गलिकाया वसुमत्या वा मुखे विदूषकः पतितः स्यादित्याशंकापि तत्र प्रकटीक्रियते। दाक्षि.-पाठः संक्षेपीकरणाय प्रवृत्तः। अतो नैतादृशी वार्तात्र पठ्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रजासु कः केन पथा प्रयाती-
त्यशेषतो वेदितुमस्ति शक्तिः[1]॥ 6 -26॥ [241]

(नेपथ्ये) [242]

भो वअस्स, अविहा अविहा। (भो वयस्य, अविध अविध) [243]

राजा- (गतिभेदेन परिक्रामन्) सखे, न भेतव्यं न भेतव्यम्। [244]

(नेपथ्ये) [245]

(पुनस्तदेव पठित्वा) अत्तभवं, कहं ण भाइस्सं। एस मं को वि पच्चा अवणदसिरोहरं इक्खुं विअ तिक्खभङ्गं करेदि। (अत्रभवन्, कथं न भेष्यामि। एषः मां कोऽपि पश्चादवनतशिरोधरमिक्षुमिव तीक्ष्णभङ्गं करोति[2]।) [246]

राजा- (सदृष्टिक्षेपम्) धनुस्तावत्। [247]

(प्रविश्य शार्ङ्गहस्ता) [248]

यवनिका[3]- भट्टा, एदं हत्थावावसहिदं सरासणं। (भर्त, एतद्धस्तावापसहितं शरासनं।) [249]

(राजा सशरं धनुरादत्ते) [250]

(नेपथ्ये) [251]

एष त्वामभिनवकण्ठशोणितार्थी शार्दूलः पशुमिव हन्मि चेष्टमानम्।
आर्तानां भयमपनेतुमात्तधन्वा दुष्यन्तस्तव शरणं भवत्विदानीम्॥ 6 -27॥ [252]

राजा- (सरोषम्) कथं मामेवोद्दिशति। तिष्ठ कोणपापसद, त्वमिदानीं न भविष्यसि। (शार्ङ्गमारोप्य) वेत्रवति, सोपानमार्गमादेशय। [253]

प्रतीहारी- इदो इदो देवो। (इत इतो देवः।) [254]

राजा- (समन्ताद्विलोक्य) शून्यं खल्विदम्। [255]

(नेपथ्ये) [256]

अविहा अविहा। अहं अत्तभवन्तं पेक्खामि। तुमं मं ण पेक्खसि। बिडालगहीदो मूसओ विअ णिरासो म्हि जीविदे संवुत्तो। (अविध अविध अहमत्रभवन्तं पश्यामि। त्वं मां न पश्यसि। बिडालगृहीतो मूषक इव[4] निराशोऽस्मि जीविते संवृत्तः।) [258]

राजा- भोस्तिरस्करिणीगर्वित। मदीयमस्त्रं त्वां द्रक्ष्यति। एष तमिषुं संदधे, [259]

यो हनिष्यति वध्यं त्वां रक्ष्यं रक्षति च द्विजम्।
हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः॥ 6 -28॥ [260]

(अस्त्रं संधत्ते) [261]

(ततः प्रविशति विदूषकमुत्सृज्य मातलिः।) [262]

---

1. काश्मीरादि-पाठेषु दृश्यमानोऽयं श्लोकः प्रक्षिप्तः प्रतिभाति, कालक्षयकारकत्वात्।
2. का.-पाठे "स्थिरभंगमिवे" ति। मै.-पाठे "ऽस्थिभंगमि" ति। बं.पाठे "भग्नग्रन्थिमि" ति।
3. मै.-पाठे "प्रतीहारी" ति। तदसंगतम्। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
4. काश्मीरादि-पाठेषु "मार्जारगृहीत इव उन्दुर" इति। दाक्षि.-पाठे पर्यायशब्दः प्रयुज्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

मातलिः- **कृताः शरव्यं[1] हरिणा तवासुराः शरासनं तेषु विकृष्यतामिदम्।**
प्रमादसौम्यानि सतां सुहृज्जने पतन्ति चक्षूंषि न दारुणाः शराः॥ 6 -29॥ [263]

राजा- (अस्त्रमुपसंहरन्) अये, मातलिः। स्वागतं महेन्द्रसारथे। [264]

(प्रविश्य) [265]

विदूषकः- अहं जेण इट्ठिपसुमारं मारिदो सो इमिणा साअदेण अहिणन्दीअदि। (अहं येनेष्टिपशुमारं[2] मारितः सोऽनेन स्वागतेनाभिनन्द्यते।) [266]

मातलिः- (सस्मितम्) आयुष्मन्, श्रूयतां यदस्मि हरिणा भवत्सकाशं प्रेषितः। [267]

राजा- अवहितोऽस्मि। [268]

मातलिः- अस्ति कालनेमिप्रसूतिर्दुर्जयो नाम दानवगणः। [269]

राजा- अस्ति। श्रुतपूर्वो मया नारदात्। [270]

मातलिः- **सख्युस्ते स किल शतक्रतोरजय्य[3] -**
स्तस्य त्वं रणशिरसि स्मृतो निहन्ता[4]।
उच्छेत्तुं प्रभवति यन्न सप्तसप्ति-
स्तन्नैशं तिमिरमपाकरोति चन्द्रः॥ 6 -30॥ [271]

स भवानात्तशस्त्र एवेदानीमैन्द्रं रथमारुह्य विजयाय प्रतिष्ठताम्। [272]

राजा - अनुगृहीतोऽहमनया मघवतः संभावनया। अथ माढव्यं प्रति भवता किमेवं प्रयुक्तम्। [273]

मातलिः- तदपि कथ्यते। किंन्निमित्तादपि मनःसंतापादायुष्मान् मया विक्लवो दृष्टः। पश्चात्कोपयितुम् आयुष्यन्तं तथा कृतवानस्मि। कुतः- [274]

ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निर्विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते।
प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात् प्रतिपद्यते हि जन्तुः[5]॥ 6 -31॥ [275]

राजा- (जनान्तिकम्) वयस्य, अनतिक्रमणीया दिवस्पतेराज्ञा। तदत्र परिगतार्थं कृत्वा मद्वचनाद् अमात्यपिशुनं ब्रूहि-[276]

त्वन्मतिः केवला तावत्प्रतिपालयितुं प्रजाः।
अधिज्यमिदमन्यस्मिन्कर्मणि व्यापृतं धनुः॥ 6 -32॥ [277]

विदूषकः- जं भवं आणवेदि। (यद्भवानाज्ञापयति।) (निष्क्रान्तः) [278]

मातलिः- आयुष्मान् रथमारोहतु। [279]

(राजा रथारोहणं नाटयति) [280]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे) [281]

॥ षष्ठोऽङ्कः[6]॥ [282]

---

1. काश्मीर-मैथिल-पाठयोः "शरव्या" इति। दाक्षि.-पाठो बं.-पाठमनुसरति।
2. का.-बं-पाठयोः "पशुमारेणे" ति। मै.-पाठे "पशुमारमि" ति। दाक्षि.-पाठे नवीनं पाठान्तरं प्रस्तूयते।
3. काश्मीरादि-पाठेष्व "-वध्य" इति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
4. मै.-पाठे "तस्य त्वं शरसख एव संनिहन्ते" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
5. मै.-पाठे "तेजस्वी चाक्षेपात् प्रायः०" इति। बं.-पाठे "तेजस्वी संक्षोभात् प्रायः०" इति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठे प्रत्येकानामङ्कानां नामानि न दीयन्ते। मै.-बं.-पाठयोः "शकुन्तलाविरहो नाम0" इति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ सप्तमोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशत्याकाशयानेन रथाधिरूढो राजा मातलिश्च[1]।) [1]

राजा- मातले, अनुष्ठितनिदेशोऽपि मघवतः सत्क्रियाविशेषादनुपयुक्तमिवात्मानं समर्थये। [2]

मातलिः - (सस्मितम्) आयुष्मन्, उभयोरप्यपरितोषः। [3] यतः-

प्रथमोपकृतं मरुत्वतः प्रतिपत्या लघु मन्यते भवान्[2]।
गणयत्यवदानतोषितो भवतः सोऽपि न सत्क्रियागुणान्[3]॥ 7-1॥ [4]

राजा- मातले, मा मैवम्। स खलु मनोरथानामप्यभूमिर्विसर्जनावसरसत्कारः। मम हि दिवौकसां समक्षमर्धासनोपवेशितस्य[5],

अन्तर्गतप्रार्थनम् अन्तिकस्थं[4] जयन्तमुद्वीक्ष्य कृतस्मितेन।
आमृष्टवक्षो हरिचन्दनाङ्का मन्दारमाला हरिणा पिनद्धा॥ 7-2॥ [6]

मातलिः- किमिव नामायुष्मान्नमरेश्वरान्नार्हति। [7] पश्य-

सुखपरस्य हरेरुभयैः कृतं त्रिदिवमुद्धतदानवकण्टकम्।
तव शरैरधुना नतपर्वभिः[5] पुरुषकेसरिणश्च पुरा नखैः॥ 7-3॥ [8]

राजा- अत्र खलु शतक्रतोरेव महिमा स्तुत्यः। [10]

सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः सम्भावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम्।
किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां बिभेत्ता[6] तं चेत्सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत्॥ 7-4॥ [11]

मातलिः- सदृशमेवैतत्। (स्तोकमन्तरतीत्य) आयुष्यन्, इतः पश्य नाकपृष्ठप्रतिष्ठितस्य सौभाग्यम् आत्मयशसः। [12]-

विच्छित्तिशेषैः सुरसुन्दरीणां वर्णैरमी कल्पलतांशुकेषु[7]।
संचिन्त्य गीतिक्षममर्थबन्धं दिवौकसस्त्वच्चरितं लिखन्ति॥ 7-5॥ [13]

राजा- मातले, असुरसंप्रहारोत्सुकेन पूर्वेद्युर्दिवमधिरोहता न लक्षितः स्वर्गमार्गः। कतमस्मिन्मरुतां पथि वर्तामहे। [14]

मातलिः -

त्रिस्रोतसं वहति यो गगनप्रतिष्ठां ज्योतींषि वर्तयति प्रविभक्तरश्मिः।
तस्य द्वितीयपरिविक्रमनिस्तमस्कं वायोरिमं परिवहस्य वदन्ति मार्गम्[8]॥ 7-6॥ [15]

---

1. काश्मीर-पाठस्य प्रवेशके नाकलासिकयोर्नृत्यं प्रस्तूयते। दाक्षि.-पाठे तन्नास्ति, मै.-बं.-पाठयोरपि न प्राप्यते।
2. का.-बं.-पाठयो- "रुपकृत्य हरेस्तथा भवाल्लँघु सत्कारमवेक्ष्य मन्यत" इति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
3. का.-मै.-बं.-पाठेषु "सत्क्रियामिमामि" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तितं पाठान्तरम्।
4. काश्मीर-पाठे "ऽन्तरस्थमि" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
5. मै.-पाठे "ऽऽयतपर्वभिरि" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
6. काश्मीरादि-पाठेषु "वधाये" ति। दाक्षि.-पाठे शब्दपरिवर्तनं क्रियते।
7. का.-बं.-पाठयोः "कल्पलतान्तरेष्वि" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
8. का.-बं.-पाठयोः "तस्य व्यपेतरजसः प्रवहस्य वायोर्मार्गो द्वितीयहरिविक्रमपूत एष" इति। मै.-पाठे "तस्य द्वितीयहरिविक्रमपूतमेनं वायोरधः परिवहस्य रहस्यमार्गमि" ति। दाक्षि.-पाठे तृतीयं पाठान्तरं प्राप्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- मातले, अतः खलु सबाह्यान्तःकरणो ममान्तरात्मा प्रसीदति। (रथाङ्गं विलोक्य) मेघपदवीम्[1] अवतीर्णौ स्वः। [16]

मातलिः- कथमवगम्यते। [17]

राजा -

अयम् अविवरेभ्य[2] श्चातकैर्निष्पतद्भि-
हीरिभिरचिरभासां तेजसा चानुलिप्तैः।
गतमुपरि घनानां वारिगर्भोदराणां
पिशुनयति रथस्ते शीकरक्लिन्ननेमिः॥ 7-7॥ [18]

मातलिः- क्षणादायुष्मान् स्वाधिकारभूमौ वर्तिष्यते। [19]

राजा- (अधो विलोक्य) वेगावतरणादाश्चर्यदर्शनः संलक्ष्यते मनुष्यलोकः। [20] तथाहि-

शैलानामवरोहतीव शिखरादुन्मज्जतां मेदिनी
पर्णाभ्यन्तरलीनतां विजहति स्कन्धोदयात्पादपाः।
सन्तानैस्तनुभावनष्टसलिला व्यक्तिं व्रजन्त्यापगाः
केनाप्युत्क्षिपतेव मर्त्यभुवनं मत्पार्श्वमानीयते॥ 7-8॥ [21]

मातलिः- साधु दृष्टम्। (सबहुमानमवलोक्य) अहो, उदग्ररमणीया पृथिवी। [22]

राजा- मातले, कतमोऽय[3] पूर्वापरसमुद्रावगाढः कनकरसनिस्यन्दी सांध्य इव मेघः सानुमान् आलोक्यते। [23]

मातलिः- आयुष्मन्, एष खलु हेमकूटो नाम किंपुरुषपर्वतस्तपस्विनां सिद्धिक्षेत्रम्, [24] पश्य-

स्वायंभुवान्मरीचेर्यः प्रबभूव प्रजापतिः।
सुरासुरगुरुः सोऽस्मिन् सपत्नीकस्तपस्यति॥ 7-9॥ [25]

राजा- तेन ह्यनतिक्रमणीयानि श्रेयांसि। प्रदक्षिणीकृत्य भगवन्तं गन्तुमिच्छामि। [26]

मातलिः- प्रथमः कल्पः। (अवतरणं नाटयित्वा[4]।) [27]

राजा- (सविस्मयम्)

उपोढशब्दा न रथाङ्गनेमयः प्रवर्तमानं न च दृश्यते रजः।
अभूतलस्पर्शतया निरुद्धत[5]- स्तवावतीर्णोऽपि रथो न लक्ष्यते॥ 7 -10॥ [28]

मातलिः- एतावानेव शतक्रतौ[6] रायुष्मतश्च विशेषः[7]। [29]

राजा- मातले, कतमस्मिन्[8] प्रदेशे मारीचाश्रमः। [30]

मातलिः- (हस्तेन दर्शयन्)

---

1. काश्मीरादि-पाठेष्वस्मात्पूर्वम् "शङ्क" इति पदमधिकम्। दाक्षि.-पाठे तन्निष्कासितम्।
2. काश्मीर-पाठे "ऽयम् अरिविवरेभ्य" इति। मै.-बं.-पाठयोर "-यम् अविवरेभ्य" इति।
3. मै.-पाठे "कतरोऽयमि" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
4. मै.-बं.-पाठयोः "रथावतारं नाटयती" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
5. का.-बं.-पाठयोः "निरुद्धतिरि" ति। मै.-पाठे "निरुद्धत" इति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं कृतम्।
6. काश्मीर-पाठे "शतमन्योरि" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
7. मै.-बं.-पाठयोः "रथस्य विशेष" इति। दाक्षि.-पाठः का.-पाठमनुसरति।
8. मै.-पाठे "कतरस्मिन्" निति। दाक्षि.-पाठः का.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

वल्मीकार्धनिमग्नमूर्तिरुरसा संदष्टसर्पत्वचा[1]
कण्ठे जीर्णलताप्रतानवलयेनात्यर्थसंपीडितः।
अंसव्यापि शकुन्तनीडनिचितं बिभ्रज्जटामण्डलं
यत्र स्थाणुरिवाचलो मुनिरसावभ्यर्कबिम्बं स्थितः॥ 7-11॥ [31]

राजा- नमस्ते कष्टतपसे। [32]

मातलिः- (संयतप्रग्रहं रथं कृत्वा) महाराज, एतावददिति-परिवर्धितमन्दारवृक्षं प्रजापतेराश्रमं[2] प्रविष्टौ स्वः। [33]

राजा- स्वर्गादधिकतरं निर्वृतिस्थानम्। अमृतह्रदमिवावगाढोऽस्मि। [34]

मातलिः- (रथं स्थापयित्वा) अवतरत्वायुष्यमान्। [35]

राजा- (अवतीर्य) भवान्कथमिदानीम्। [36]

मातलिः- संयन्त्रितो[3] मया रथः। वयमप्यवतरामः। (तथा कृत्वा) इत आयुष्मान्, (परिक्रम्य) दृश्यन्ताम् अत्रभवताम् ऋषीणां[4] तपोवनभूमयः। [37]

राजा- ननु विस्मयादवलोकयामि। [38]

प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता सत्कल्पवृक्षे वने
तोये काञ्चनपद्मरेणुकपिशे धर्माभिषेकक्रिया[5]।
ध्यानं रत्नशिलातलेषु[6] विबुधस्त्रीसन्निधौ संयमो
यत्काङ्क्षन्ति तपोभिरन्यमुनयस्तस्मिंस्तपस्यन्त्यमी॥ 7-12॥ [39]

मातलिः- उत्सर्पिणी[7] खलु महतां प्रार्थना। (परिक्रम्याकाशे) अये वृद्धशाकल्य, किमनुतिष्ठति भगवान् मारीचः[8]। किं ब्रवीषि। दाक्षायण्या पतिव्रताधर्ममधिकृत्य पृष्टस्तस्यै महर्षिपत्नीसहितायै कथयतीति। [40]

राजा- (कर्णं दत्त्वा) अये, प्रतिपाल्यावसरः खलु प्रस्तावः[9]। [41]

मातलिः- (राजानमवलोक्य) अस्मिन् अशोकवृक्षमूले तावदास्तामायुष्यमान् यावत्त्वामिन्द्रगुरवे निवेदयितुमन्तरान्वेषी भवामि[10]। [42]

राजा- यथा भवान्मन्यते। (इति स्थितः) [43]

मातलिः- आयुष्मन्, साधयाम्यहम्।

(इति निष्क्रान्तः) [44]

---

1. काश्मीरादि-पाठेषु "-रगत्वग्-ब्रह्मसूत्रान्तर" इति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं दृश्यते।
2. काश्मीर-पाठे "तपोवनमि" ति। मै.-बं.-पाठयो "राश्रमपदमि" ति।
3. काश्मीरादि-पाठेषु "समय-यन्त्रित" इति।
4. काश्मीर-पाठे "सिद्धर्षीणामि" ति। मै.-बं.-पाठयोः "सिद्धमुनीनामि" ति।
5. काश्मीर-पाठे "हैमसहस्रपत्रसुभगे नक्तंदिवं सद्-व्रतमि" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति। बं.-पाठे "० पुण्याभिषेकक्रिये" ति।
6. का.-बं.-पाठयोः "रत्नशिलागृहेष्वि" ति। मै.-पाठे "रत्नशिलागुहास्वि" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनम्।
7. काश्मीर-पाठ "उत्कर्षिणी" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं-पाठवद्।
8. काश्मीर-पाठे "किं व्यापारो भवान्नि" ति। मै.-बं.-पाठयोः "किं व्यापारो भगवान् मारीचः" इति।
9. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं वृद्धशाकल्यस्य वर्तते। मै.-बं.-पाठयोर्वाक्यमिदं मातलेर्मुखे वर्तते।
10. काश्मीर-पाठे "यावत् त्वां प्रजापतय आवेदयामी" ति। मै.-बं.-पाठयोः "यावत्त्वामहमिन्द्रगुरवे निवेदयामी" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- (निमित्तं सूचयित्वा) [45]

मनोरथाय नाशंसे किं बाहो स्पन्दसे वृथा[1]।
पूर्वावधीरितं श्रेयो दुःखं हि परिवर्तते[2]॥ 7-13॥ [46]

(नेपथ्ये) [47]

मा खु चापलं करेहि। कहं गदो एव्व अत्तणो पकिदिं[3]।

(मा खलु चापलं कुरु। कथं गत एवात्मनः प्रकृतिम्।) [48]

राजा- (कर्णं दत्त्वा) अभूमिरियमविनयस्य। को नु खल्वेष शिक्ष्यते[4]।

(शब्दानुसारेणावलोक्य, सविस्मयम्[5])

अये, को नु खल्वयमनुबध्यमानस्तपस्विनीभ्यामबालसत्त्वो बालः। [49]

अर्धपीतस्तनं मातुरामर्दक्लिष्टकेसरम्।
प्रक्रीडितुं[6] सिंहशिशुं बलात्कारेण[7] कर्षति॥ 7-14॥ [50]

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टकर्मा तपस्विनीभ्यां बालः।) [51]

बालः- जिम्भ सिङ्घ, दन्ताइं दे गणइश्शं। (जृम्भस्व सिंह, दन्तांस्ते गणयिष्यामि।) [52]

प्रथमा- अविणीद, किं णो अपच्चणिव्विसेसाइ सत्ताइ विप्पआरेसि। हंत, वड्ढइ दे संरम्भो। ठाणे खु इसिजणेण सव्वदमणो त्ति किदणामहेओ सि। (अविनीत, किं नः अपत्यनिर्विशेषाणि सत्त्वानि विप्रकरोषि[8]। हन्त, वर्धते[9] ते संरम्भः। स्थाने खलु ऋषिजनेन सर्वदमन इति कृतनामधेयोऽसि।) [53]

राजा- किं नु खलु बालेऽस्मिन्नौरस इव पुत्रे स्निह्यति मे मनः। नूनमनपत्यता मां वत्सलयति। [54]

द्वितीया- एसा खु केसरिणी तुमं लङ्घेदि, जइ से पुत्तअं ण मुञ्चेसि। (एषा खलु केसरिणी त्वां लङ्घयति यद्यस्याः पुत्रकं न मुञ्चसि।) [55]

बालः- (सस्मितम्) अम्हे, बलिअं खु भीदो म्हि। (अहो, बलवत् खलु भीतोऽस्मि।) [56]

(इत्यधरं दर्शयति[10]) [57]

राजा-

---

1. मै.-बं.-पाठयोर् "मुधे" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
2. मै.-पाठे "दुःखेन परिवर्तत" इति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
3. काश्मीर-पाठे "सिंघ...कधं कधं य्येव अत्तणो पकिदिं दंसेसी" ति। मै.-पाठे "कधं गदो ज्जेव अत्तणो पइदिं" इति। बं.-पाठे "जहिं तहिं जेव अत्तणो पइदिं दंसेसी" ति। रंगकर्मिभिः कृतं वैविध्यं सर्वत्र विलसति।
4. काश्मीरादि-पाठेषु "निषिध्यत" इति।
5. काश्मीर-पाठे "विस्मयाभिनयपूर्वकमि" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं-पाठवद्।
6. काश्मीर-पाठे "विलम्बितमि" ति। मै.-बं.-पाठयो "र्विलम्बिनमि" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनम्।
7. का.-बं.-पाठयोः "करेणाहत्ये" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
8. मै.-पाठे "किमिति सोदरस्नेहनिर्विशेषे सिंहशावके०" इति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
9. काश्मीर-पाठे "प्रवर्तत" इति। मै.-पाठे "सिंहशावके अपरुद्धस्ते समारम्भ" इति। बं.-पाठे "सम्प्रहरतीव ते संरम्भ" इति।
10. काश्मीरादि-पाठेषु "इत्यधरं दशती" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं दृश्यते। उभयत्राभिनये भेदो भवेत्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

महत[1] स्तेजसो बीजं बालोऽयं प्रतिभाति मे।
स्फुलिङ्गावस्थया वह्निरेधापेक्ष[2] इव स्थितः।। 7-15।। [58]

प्रथमा- वच्छ, एदं बालमिएंदअं मुञ्च। अवरं दे कीलणाअं दइस्सं। (वत्स, एतं बालमृगेन्द्रं मुञ्च। अपरं ते क्रीडनकं दास्यामि।) [59]

बालः- कहिं। देहि णं। (इति हस्त[3] प्रसारयति) (कुत्र, देह्येतत्।) [60]

राजा- कथं चक्रवर्तिलक्षणमप्यनेन धार्यते। तथा ह्यस्य-[61]

प्रलोभ्यवस्तुप्रणयप्रसारितो विभाति जालग्रथिताङ्गुलिः करः।
अलक्ष्यपत्रान्तरमिद्धरागया नवोषसा भिन्नमिवैकपङ्कजम्।। 7-16।। [62]

द्वितीया[4]- सुव्वदे, ण सक्को एसो वाआमेत्तेण विरमावेदु[5]। गच्छ तुमं। मम केरए उडए मक्कण्डेअस्स[6] इसिकुमारअस्स वण्णचित्तिदो मित्तिआमोरओ चिट्ठदि। तं से उवहर। (सुव्रते, न शक्य एष वाङ्मात्रेण विरमयितुम्। गच्छ त्वम्। मदीये उटजे मार्कण्डेयस्य ऋषिकुमारस्य वर्णचित्रितो मृत्तिकामयूरस्तिष्ठति। तमस्योपहर।) [63]

प्रथमा- तह। (तथा) (निष्क्रान्ता) [64]

बालः- इमिणा एव्व दाव कीलिस्सं। (अनेनैव तावत्क्रीडिष्यामि) [65]

(इति तापसीं विलोक्य हसति) [66]

राजा- स्पृहयामि खलु दुर्ललितायास्मै। [67]

आलक्ष्यदन्तमुकुलाननिमित्तहासै-
रव्यक्तवर्णरमणीयवचःप्रवृत्तीन्।
अङ्काश्रयप्रणयिनस्तनयान् वहन्तो
धन्यास्तदङ्गरजसा मलिनीभवन्ति[7]।। 7-17।। [68]

तापसी- होदु। ण मं अअं गणेदि। (पार्श्वमवलोकयति।) को एत्थ इसिकुमाराणं। (राजानमवलोक्य) भद्दमुह, एहि दाव। मोएहि इमिणा दुम्मोअहत्थग्गहेण डिम्भलीलाए बाहीअमाणं बालमिएदअं।

(भवतु। न मामयं गणयति। कोऽत्र ऋषिकुमाराणाम्। भद्रमुख, एहि मोचय तावदनेन। दुर्मोचहस्तग्रहेण डिम्भलीलया बाध्यमानं बालमृगेन्द्रम्।) [69]

राजा- (उपगम्य, सस्मितम्) अयि भो महर्षिपुत्र,

एवमाश्रमविरुद्धवृत्तिना संयमः किमिति जन्मनस्त्वया[8]।
सत्त्वसंश्रयगुणोऽपि[9] दूष्यते कृष्णसर्पशिशुनेव चन्दनः।। 7-18।। [70]

तापसी- भद्दमुह, ण खु अअं इसिकुमारओ। (भद्रमुख, न खल्वयमृषिकुमारः।) [71]

---

1. काश्मीर-पाठमनुसरति दाक्षि.-पाठः। मै.-पाठ "आहितमि" ति।
2. दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति। मै.-बं.-पाठयो "र्वह्निरेधःक्षय" इति।
3. काश्मीर-पाठे "दक्षिणहस्तमि" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
4. बं.-पाठवदत्रापि प्रथमेति भवितुमर्हति।
5. काश्मीर-पाठ "आआसमित्तेण सअमिदुमि" ति। मै.-बं.-पाठयोः "वाआमेत्तकेण समइदुमि" ति।
6. काश्मीर-पाठे "मङ्कणअस्स" इति। मै.-पाठे "शालङ्कायनस्ये" ति।
7. काश्मीरादि-पाठेषु "परुषीभवन्ती" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
8. मै.-पाठे द्वितीयः पादः "संयतेन किमिवात्र जन्तुने" ति पठ्यते। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
9. का.-बं.-पाठयोः "संयमी, जन्मदः, सत्त्वसंश्रयसुखोऽपी" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- आकारसदृशं चेष्टितमेवास्य कथयति। स्थानप्रत्ययात्तु वयमेवं तर्किणः[1]। (यथाभ्यर्थितमनुतिष्ठन् बालस्पर्शमुपलभ्य, आत्मगतम्।) [72]

> **अनेन कस्यापि कुलाङ्कुरेण स्पृष्टस्य गात्रेषु सुखं ममैवम्।**
> **कां निर्वृत्तिं तस्य जनस्य कुर्याद्यस्यायमङ्गात् कृतिनः प्ररूढः[2]॥** 7-19॥ [73]

तापसी- (उभौ निर्वर्ण्य) अच्छरिअं अच्छरिअं। (आश्चर्यमाश्चर्यम्) [74]

राजा- आर्ये, किमिव। [75]

तापसी- इमस्स बालअस्स रूवसंवादिणी दे आकिदि त्ति विम्हाविद म्हि। अपरिइदस्स वि दे अप्पडिलोमो संवुत्तो त्ति अ। (अस्य बालस्य रूपसंवादिनी ते आकृतिरिति विस्मापितास्मि। अपरिचितस्यापि तेऽप्रतिलोमः संवृत्त इति च।[3]) [76]

राजा- (बालमुपलालयन्) न चेन्मुनिकुमारोऽयम्, अथ कोऽस्य व्यपदेशः। [77]

तापसी- पुरुवंसो। (पुरुवंशः[4]।) [79]

राजा- (आत्मगतम्) कथमेकान्वयो मम। अतः खलु मदनुकारिणमेनमत्रभवती मन्यते। अस्त्येतत् पौरवाणाम् अन्त्यं कुलव्रतम्। [80]

> **भवनेषु सुधासितेषु पूर्वं क्षितिरक्षार्थमुशन्ति ये निवासम्।**
> **नियतैकपतिव्रतानि[5] पश्चात् तरुमूलानि गृहीभवन्ति तेषाम्॥** 7-20॥ [81]

(प्रकाशम्) न पुनरात्मगत्या मानुषाणामेव विषयः। [82]

तापसी- जह भद्दमुहो भणादि। अच्छरासम्बन्धेण इमस्स बालस्स जणणी एत्थ देवगुरुणो तवोवणे पसूदा।

(यथा भद्रमुखो भणति। अप्सरःसंबन्धेनास्य बालस्य जनन्यत्र देवगुरोस्तपोवने प्रसूता।) [83]

राजा- (आत्मगतम्) हन्त, द्वितीयमिदमाशाजननम्[6]। (प्रकाशम्) अथ सा तत्रभवती किमाख्यस्य राजर्षेः पत्नी। [84]

तापसी- को तस्स धम्मदारपरिच्चाइणो णाम संकित्तइ। (कस्तस्य धर्मदारपरित्यागिनो नाम संकीर्तयिष्यति[7]।) [85]

राजा- (स्वगतम्) इयं खलु कथा मामेव लक्षीकरोति। यदि तावदस्य शिशोर्मातरं नामतः पृच्छामि। अथवा, अन्याय्यः परदाराणां व्यवहारः[8]। [86]

(प्रविश्य मृण्मयूरहस्ता) [87]

तापसी- सव्वदमण, सउंदलावण्णं पेक्ख। (सर्वदमन, शकुन्तलावण्यं पश्य[9]।) [88]

---

1. का.-बं.-पाठयो "रतर्किण" इति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
2. काश्मीरादि-पाठेषु "चेतसि तस्य, प्रसूत" इति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं दृश्यते।
3. काश्मीर-पाठे "बालस्यासम्बद्धेपि भद्रमुखे, अत्यन्तपरिचितस्येवाप्रतिलोम0" इति। मै.-पाठे "वामशीलो-ऽपि भूत्वाऽपरिचितस्यापि नाम ते वचनेन प्रकृतिस्थितोऽयं संवृत्त" इति। बं.-पाठे "बालस्यासम्बद्धेऽपि, वामशीलोऽपि भूत्वाऽपरिचितस्य न ते प्रतिलोमः संवृत्त" इति। सर्वेषां पाठानां रंगावृत्तित्वं सिध्यति।
4. मै.-बं.-पाठयोः "पौरव" इति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
5. मै.-पाठे "विहितैकमुनिव्रतानी" ति। बं.-पाठः का.-पाठमनुसरति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
6. का.-पाठे "०माशङ्काजननमि" ति। मै.-बं.-पाठयोः "०माश्वासजननमि" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनम्।
7. काश्मीर-पाठे "नामधेयं ग्रहीष्यती" ति। मै.-बं.-पाठयोः "कीर्तयिष्यती" ति।
8. का.-पाठे "०परदारव्यवहार" इति। मै.-पाठे "न न्याय्यः परदारपृच्छात्मको व्यापार" इति। बं.-पाठे "ऽनार्यः परदारव्यवहार" इति।
9. का.-पाठे "सर्वदमन, शकुन्तला..." इत्येव। मै.-बं.-पाठयोः "०प्रेक्षस्व शकुन्तलावण्यमि" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

बालः- (सदृष्टिक्षेपम्) कहिं मे अज्जू। (कुत्र मे माता।) [89]

उभे- णामसारिस्सेण वंचिदो माउवच्छलो। (नामसादृश्येन वञ्चितो[1] मातृवत्सलः।) [90]

द्वितीया- वच्छ, इमस्स मित्तिआमोरस्स रम्मत्तणं पेक्ख त्ति भणिदो सि। (वत्स, अस्य मृत्तिकामयूरस्य रम्यत्वं पश्येति भणितोऽसि[2]।) [91]

राजा- (आत्मगतम्) किं वा शकुन्तलेत्यस्य मातुराख्या। सन्ति पुनर्नामधेयसादृश्यानि। अपि नाम मृगतृष्णिकेव नाममात्रप्रस्तावो मे[3] विषादाय कल्पते। [92]

बालः- अज्जूए, रोअदि मे एसो भद्दमोओ। (मातः, रोचते मे एषः भद्रमयूरः[4]।) [93]

(क्रीडनकमादत्ते) [94]

प्रथमा- (विलोक्य सोद्वेगम्) अम्महे, रक्खाकरंडअं से मणिबन्धे ण दीसदि। (अहो, रक्षाकरण्डकमस्य[5] मणिबन्धे न दृश्यते।) [95]

राजा- अलमावेगेन। नन्विदमस्य सिंहशावविमर्दात् परिभ्रष्टम्। (आदातुमिच्छति।) [96]

उभे- मा क्खु एदं ओलंबअ। कहं गहीदं णेण। (मा खलु इदमालम्ब्य। कथं गृहीतमनेन।) [97]

(विस्मयादुरोनिहितहस्ते परस्परमवलोकयतः।) [98]

राजा- किमर्थं प्रतिषिद्धाः स्मः। [99]

प्रथमा- सुणादु महाराओ। एसा अवराजिदा णाम ओसही इमस्स जातकम्मसमए भअवदा मारीएण दिण्णा। एदं किल मादापिदरो अप्पाणं वज्जिअ अ अवरो भूमिपडिदं ण गेण्हदि। (शृणोतु महाराजः। एषाऽपराजिता नामौषधि[6]- रस्य जातकर्मसमये[7] भगवता मारीचेन दत्ता। एतां किल मातापितरावात्मानं च वर्जयित्वाऽपरो भूमिपतितां न गृह्णाति।) [100]

राजा- अथ गृह्णाति। [101]

प्रथमा- तदो तं सप्पो भविअ दंसइ। (ततस्तं सर्पो भूत्वा दशति।) [102]

राजा- भवतीभ्यां कदाचिदस्याः प्रत्यक्षीकृता विक्रिया[8]। [103]

उभे- अणेअसो। (अनेकशः) [104]

राजा- (सहर्षम्, आत्मगतम्) कथमिव सम्पूर्णमपि मनोरथं नाभिनन्दामि। [105]

(बालं परिष्वजते) [106]

---

1. का.-पाठे "छलित" इति। मै.-बं.-पाठयो- "रुपच्छन्दित" इति। दाक्षि.-पाठे पर्यायप्रयोगः क्रियते।
2. का.-पाठे "वत्स, शकुन्तला भणति- अस्य कृत्रिममयूरस्य रमणीयतां प्रेक्षस्वेती" ति। मै.-बं.-पाठयोः "वत्स, अस्य मयूरस्य रमणीयत्वं पश्येति भणितोऽसी" ति।
3. का.-बं.-पाठयोः "नायमन्तेन प्रस्ताव" इति। मै.-पाठे "ऽयं नाम प्रस्ताव" इति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनम्।
4. का.-पाठे "ऽत्ताके, रोचते मे भद्रालक एषो मयूर" इति। मै.-पाठे "ऽत्तिके (=भगिनि), रोचते मे एष चतुरो मयूरक" इति। बं.-पाठे "ऽन्तिके, रोचते मे चटुल एषो मयूरक" इति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनम्। (मागध्याञ्च प्रथमान्तं पदमेकारान्तं भवितुमर्हति।)
5. मै.-पाठे "रक्षागेण्ठकमि" ति। बं.-पाठे "रक्षागण्डकमि" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
6. का.-पाठे "महौषधिरि" ति। मै.-पाठे "परममहौषधिरि" ति। बं.-पाठे "सुरमहौषधिरि" ति।
7. मै.-पाठे "नामकरणसमय" इति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
8. मै.-बं.-पाठयोः "प्रत्यक्षीकृतमिदमि" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

द्वितीया- सुव्वदे[1], एहि। इमं उत्ततं णिअमव्वावुदाए सउंदलाए णिवेदेम्ह। (सुव्रते, एहि। इमं वृत्तान्तं नियमव्यापृतायै[2] शकुन्तलायै निवेदयावः।) [107]

(इति निष्क्रान्ते) [108]

बालः- मुञ्च मं। जाव अम्माए सआसं गच्छामि। (मुञ्च माम। यावदम्बासकाशं गच्छामि।) [109]

राजा- पुत्रक, मया सहैव मातरमभिनन्दयिष्यसि। [110]

बालः- मम खु तादो दुस्संदो। को तुमं। (मम खलु तातो दुष्यन्तः। कस्त्वम्[3]।) [111]

राजा- (सस्मितम्) एष विवाद एव प्रत्याययति। [112]

(ततः प्रविशत्येकवेणीधरा शकुन्तला) [113]

शकुन्तला- विआरकाले वि पकिदित्थं सव्वदमणस्स ओसहिं सुणिअ ण मे आसा आसी अत्तणो भाअहेएसु। अहवा जह साणुमदीए[4] आचक्खिदं तह सम्भावीअदि एदं। (विकारकालेऽपि प्रकृतिस्थां सर्वदमनस्यौषधिं श्रुत्वा न म आशासीदात्मनो भागधेयेषु। अथवा यथा सानुमत्याख्यात[5] तथा सम्भाव्यत एतत्।) [114]

राजा- (शकुन्तलां विलोक्य) अये, सेयमत्रभवती[6] शकुन्तला। [115] यैषा-

वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः।
अपि निष्करुणस्य [7]शुद्धशीला मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्ति॥ 7 -21॥ [116]

शकुन्तला- (पश्चात्तापविवर्णं राजानं दृष्ट्वा) ण खु अज्जउत्तो विअ। तदो को एसो दाणिं किदरक्खामङ्गलं दारअं मे गत्तसंसग्गेण दूसेदि। (न खल्वार्यपुत्र इव। ततः क एष इदानीं कृतरक्षामङ्गलं दारकं मे गात्रसंसर्गेण[8] दूषयति।) [117]

बालः- (मातरमुपेत्य) अम्माए, एसो को वि परकेरओ मं पुत्तत्ति आलिङ्गदि। (अम्ब, एष कोऽपि परकीयो मां पुत्र इत्यालिङ्गति[9]।) [118]

राजा- प्रिये, क्रौर्यमपि मे त्वयि प्रयुक्त[10]मनुकूलपरिणामं संवृत्तम्, यदहमिदानीं त्वया प्रत्यभिज्ञातमात्मानं पश्यामि। [119]

शकुन्तला- (आत्मगतम्) हिअअ, समस्सस। परिच्चत्तमच्छरेण अणुअम्पिअ म्हि देव्वेण। अज्जउत्तो एव्व। (हृदय, समाश्वसिहि। परित्यक्तमत्सरेणानुकम्पितास्मि[11] दैवेन। आर्यपुत्र एव।) [120]

---

1. बं.-पाठवदत्रापि संजदे (संयते) इति संबोधनं भवितुमर्हति।
2. का.-पाठे "नियमनिर्वृताया" यिति। बं.-पाठे "नियमव्याकुलाया" यिति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
3. काश्मीर-पाठे "न त्वमि" ति। मै.-बं.-पाठयो-"र्न खलु त्वमि" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं दृश्यते।
4. काश्मीर-पाठे "अक्खमालाए" इति। मै.-बं.-पाठयोः "मिस्सकेसीए" इति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तितं नाम।
5. काश्मीरादि-पाठेषु शकुन्तलयैव सानुमती राज्ञो वृत्तान्तं ज्ञातुं संदिष्टासीदिति पूर्वं षष्ठांके कथितम्। तस्यानुसन्धानमत्र कर्तव्यम्। दाक्षि. -पाठेन मेनकया सानुमती संदिष्टेति तत्र यदुक्तं, तन्नोचितमिति सिध्यत्यत्र।
6. का.-बं.-पाठयो- "रियमत्रभवती" ति साश्चर्यमुच्यते। मै.-पाठे "कथमियमत्रभवती" ति दुःखयुक्तं वचः।
7. काश्मीर-पाठे "कृतैकवेणिः, अतिनिष्करुणस्ये" ति। मै.-बं.-पाठयोः "धृतैकवेणिः, अतिनिष्करुणस्ये" ति।
8. का.-मै.-पाठयोः "हस्तसंसर्गेणे" ति। बं.-पाठे "गात्रसङ्गेने" ति।
9. काश्मीरादि-पाठेष्वि "-त्यालपती" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं दृश्यते।
10. मै.-पाठे "ऽनार्यमपि मे त्वयि प्रसक्तमि" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
11. काश्मीर-पाठे "प्रहृत्य निर्वृतमत्सरेण०" इति। मै.-पाठे "परिहृत्य निवृत्तमत्सरेण०" इति। बं.-पाठे "प्रहार्य निर्वृत्तमत्सरेण०" इति। दाक्षि. -पाठे दैवस्योपकृतत्वं प्रकटीक्रियते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- प्रिये,

स्मृतिभिन्नमोहतमसो दिष्ट्या प्रमुखे स्थितासि मे सुमुखि।
उपरागान्ते शशिनः समुपगता रोहिणीयोगम्[1]॥ 7 -22॥ [121]

शकुन्तला- जेदु जेदु अज्जउत्तो। (इत्यर्धोक्ते बाष्पकण्ठी विरमति।) (जयतु जयतु आर्यपुत्रः[2]।) [122]

राजा- सुन्दरि[3],

बाष्पेण प्रतिषिद्धेऽपि जयशब्दे जितं मया।
यत्ते दृष्टमसंस्कारपाटलोष्ठपुटं मुखम्[4]॥ 7 -23॥ [123]

बालः- अज्जूए, को एसो। (मातः, कः एषः।) [124]

शकुन्तला- वच्छ, दे भाअहेआइं पुच्छ। (वत्स, ते भागधेयानि [5]पृच्छ।)[6] [125]

राजा- (शकुन्तलायाः पादयोः प्रणिपत्य।) [126]

सुतनु हृदयात् प्रत्यादेशव्यलीकमपैतु ते
किमपि मनसः संमोहो मे तदा बलवानभूत्।
प्रबलतमसाम्[7] एवंप्रायाः शुभेषु हि[8] वृत्तयः।
स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया[9]॥ 7 -24॥ [127]

शकुन्तला- उट्ठेदु अज्जउत्तो। णूणं मम सुअरिअप्पडिबन्धअं पुराकिदं तेसु दिअहेसु परिणामाहिमुहं आसी। जेण साणुक्कोसो वि अज्जउत्तो मइ विरसो संवुत्तो। (उत्तिष्ठत्वार्यपुत्रः। नूनं मे सुचरितप्रतिबन्धक[10] पुराकृतं तेषु दिवसेषु परिणामाभिमुखमासीद्, येन सानुक्रोशोऽप्यार्यपुत्रो मयि विरसः संवृत्तः।) [128]

(राजोत्तिष्ठति[11]) [129]

शकुन्तला- अह कहं अज्जउत्तेण सुमरिदो दुक्खभाई अअं जणो। (अथ कथमार्यपुत्रेण स्मृतो दुःखभागी अयं जनः।) [130]

राजा- उद्धृतविषादशल्यः[12] कथयिष्यामि। [131]

मोहान्मया सुतनु पूर्वमुपेक्षितस्ते यो बाष्पबिन्दुरधरं परिबाधमानः[13]।
तं तावदाकुटिलपक्ष्मविलग्नमद्य कान्ते प्रमृज्य विगतानुशयो भवामि॥ 7 - 25॥ [132]

---

1. दाक्षि.-पाठो बं.-पाठमनुसरति। का.-मै.-पाठयोः "उपनतः/उपगतो रोहिणीयोग" इति।
2. दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति। किन्तूत्तरवर्तिनि श्लोके जयेत्येव शब्दः। मै.-बं.-पाठयोर्नास्त्ययं शब्दः।
3. का.-बं.-पाठयोः "प्रिय" इति। मै.-पाठे नास्ति सम्बोधनम्। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं दृश्यते।
4. का.-पाठे "यत्ते दृष्टमसंस्कारपाटलोष्ठमिदं मुखमि" ति। मै.-पाठे "यत्ते दृष्टमसंस्काराल्लोलालकमिदं मुखमि" ति।
5. का.-मै.-पाठयोः "मे भागधेयानी" ति। बं.-पाठे केवलं "भागधेयानी" त्येव।
6. काश्मीरादि-पाठेष्वितः परं रोदितीति रंगसूचना। म इति पदेन सा संगच्छते। दाक्षि.-पाठे न सा विद्यते।
7. मै.-पाठे "चपलमनसामि" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
8. का.-बं.-पाठयोः "शुभेष्वपी" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
9. काश्मीर-पाठे पङ्क्तिरियं तृतीयचरणत्वेन प्रस्तूयते। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
10. काश्मीर-पाठे "सुखप्रतिबन्धकमि" ति।
11. बं.-पाठे नास्त्येतादृशी योजना। तत्र तु पूर्वनिर्दिष्टश्लोकानन्तरं राजा शकुन्तलां प्रणमति। दाक्षि.-पाठः का.-पाठमनुसृत्य राज्ञः प्रणामाभिनयं प्रस्तौति, मै.-पाठवद्।
12. का.-मै.-पाठयो- "रुद्धृतशल्यविषाद" इति। दाक्षि.-पाठो बं.-पाठमनुसरति।
13. काश्मीर-पाठे "परिधावमान" इति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(इति यथोक्तमनुतिष्ठति[1]) [133]

शकुन्तला- (नाममुद्रां दृष्ट्वा) अज्जउत्त, एदं तं अंगुलीअअं। (आर्यपुत्र, एतत्तदङ्गुलीयकम्।) [134]

राजा- अस्मादङ्गुलीयोपलम्भात् खलु स्मृतिरुपलब्धा। [135]

शकुन्तला- विसमं किदं णेण, जं तदा अज्जउत्तस्स पच्चाअणकाले दुल्लहं आसी। (विषमं कृतमनेन यत्तदार्यपुत्रस्य प्रत्यायनकाले[2] दुर्लभमासीत्।) [136]

राजा- तेन ह्यृतुसमवायचिह्नं[3] प्रतिपद्यतां लता कुसुमम्। [137]

शकुन्तला- ण मे एत्थ विस्सासो, अज्जउत्तो एव्व णं धारेदु। (न मेऽत्र विश्वासः, आर्यपुत्रः एवैतद्धारयतु।) [138]

(ततः प्रविशति मातलिः।) [139]

मातलिः- दिष्ट्या, धर्मपत्नीसमागमेन पुत्रमुखदर्शनेन चायुष्मान्वर्धते। [140]

राजा- सुहृत्सम्पादितस्वादुफलो मे मनोरथः। मातले, न खलु विदितोऽयमाखण्डलेन वृत्तान्तः स्यात्। [141]

मातलिः- (सस्मितम्) किमीश्वराणां परोक्षम्[4]। एह्यायुष्मन्। भगवान्मारीचस्ते दर्शनं वितरति। [142]

राजा- शकुन्तले, अवलम्ब्यतां पुत्रः। त्वां पुरस्कृत्य भगवन्तं द्रष्टुमिच्छामि। [143]

शकुन्तला- हिरिआमि अज्जउत्तेण सह गुरुसमीवं गन्तुं। (जिह्रेम्यार्यपुत्रेण सह गुरोस्समीपं गन्तुम्[5]।) [144]

राजा- अयि, एवमाचरितव्यम[6]भ्युदयकालेषु। एह्येहि।

(सर्वे परिक्रामन्ति।) [145]

(ततः प्रविशत्यदित्या सार्धमासनस्थो मारीचः) [146]

मारीचः- (राजानमवलोक्य) दाक्षायणि, [147]

पुत्रस्य ते रणशिरस्ययमग्रयायी[7] दुष्यन्त[8] इत्यभिहितो भुवनस्य गोप्ता[9]।
चापेन यस्य विनिवर्तितकर्म जातं तत्कोटिमत् कुलिशमाभरणं मघोनः।। 7 -26।। [148]

अदितिः- सम्भावणीआणुभावा से आकिदी। (सम्भावनीयानुभावा[10]ऽस्याकृतिः।) [149]

मातलिः- आयुष्मन्, एतौ पुत्रप्रीतिपिशुनेन[11] चक्षुषा दिवौकसां पितरावायुष्मन्तमवलोकयतः। तावुपसर्प। [150]

राजा- मातले,

प्राहुर्द्वादशधा स्थितस्य मुनयो यत्तेजसः कारणं
भर्तारं भुवनत्रयस्य सुषुवे यद्यज्ञभागेश्वरम्।

---

1. मै.-पाठे "मुखमुन्नमयितुं हस्तं प्रसारयती" ति रंगसूचना। दाक्षि.-पाठः का.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
2. का.-मै.-पाठयोः "प्रत्ययकरण" इति। बं.-पाठे "प्रत्ययकारणमि" ति।
3. काश्मीरादि-पाठेषु "ऋतुसमागमाशंसी" ति। दाक्षि.-पाठे पर्यायप्रयोगः क्रियते।
4. केवलं काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं नास्ति।
5. का.-पाठे शकुन्तला पृच्छति "अर्हाम्यार्यपुत्रेण सह, समीपं गन्तुमि" ति। मै.-बं.-पाठयो-"र्लज्जामी" ति।
6. मै.-पाठे "ऽवारिदमि" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
7. काश्मीर-पाठे "ऽग्रगामी" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
8. काश्मीर-पाठे "दुष्यन्त" इति। मै.-पाठे "दुष्मन्त" इति। बं.-पाठे "दुःषन्त" इति।
9. का.-बं.-पाठयो- "भर्ते" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
10. का.-मै.-पाठयो "रनुभावे" ति शब्दो नास्ति। बं.-पाठे "संभावनीयप्रभावे" ति।
11. मै.-पाठे "पुत्रसमेने" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

यस्मिन्नात्मभुवः परोऽपि पुरुषश्चक्रे भवायास्पदं
द्वन्द्वं दक्षमरीचिसंभवमिदं तत् स्त्रष्टुरेकान्तरम्[1]॥ 7-27॥ [151]

मातलिः- अथ किम्। [152]

राजा- (उपगम्य) उभाभ्याम्[2] अपि वासवनियोज्यो दुष्यन्तः[3] प्रणमति। [153]

मारीचः- वत्स, चिरं पृथिवीं पालय। [154]

अदितिः- वच्छ, अप्पडिरहो होहि। (वत्स, अप्रतिरथो भव।) [155]

शकुन्तला- दारअसहिदा वो पादवन्दणं करेमि। (दारकसहिता वां पादवन्दनं करोमि।) [156]

मारीचः- वत्से[4],

आखण्डलसमो भर्ता जयन्तप्रतिमः सुतः।
आशीरन्या न ते योग्या पौलोम्याः सदृशी[5] भव॥ 7 -28॥ [157]

अदितिः- जादे, भत्तुणो बहुमदा होहि। अवस्सं दीहाऊवच्छओ उहअकुलणंदणो होदु। उवविसद।

(जाते, भर्तुर्बहुमता भव। अवश्यं दीर्घायुर्वत्स उभयकुलनन्दनो भवतु। उपविशत। [158]

(सर्वे प्रजापतिमभित उपविशन्ति।) [159]

मारीचः- (एकैकं निर्दिशन्) [160]

दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी, सदपत्यमिदं, भवान्।
श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति त्रितयं वः समागतम्॥ 7 -29॥ [161]

राजा- भगवन्, प्रागभिप्रेतसिद्धिः पश्चाद्दर्शनम्। अतोऽपूर्वः खलु वोऽनुग्रहः। [162] कुतः-

उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलं घनोदयः प्राक् तदनन्तरं पयः।
निमित्तनैमित्तिकयोरयं क्रमस्तव प्रसादस्य पुरस्तु सम्पदः॥ 7-30॥ [163]

मातलिः- एवं विधातारः[6] प्रसीदन्ति। [164]

राजा- भगवन्, इमामाज्ञाकरीं वो गान्धर्वेण विवाहविधिनोपयम्य कस्यचित्कालस्य बन्धुभिरानीतां स्मृतिवैकल्यात्प्रत्यादिशन्नपराद्धोऽस्मि, तत्रभवतो युष्मत्सगोत्रस्य कण्वस्य। पश्चादङ्गुलीयकदर्शनादूढपूर्वां तद्दुहितरमवगतोऽहम्। तच्चित्रमिव मे प्रतिभाति। [165]

यथा गजो नेति समक्षरूपे[7] तस्मिन्नतिक्रामति[8] संशयः स्यात्।
पदानि दृष्ट्वा तु भवेत्प्रतीतिस्तथाविधो मे मनसो विकारः॥ 7 -31॥ [166]

---

1. काश्मीर-पाठे "ब्रह्मानन्तरविश्वयोनिसहितं द्वन्द्वं तदेतद् वशी" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
2. काश्मीर-पाठ "उभावि" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्। किन्तूभाभ्यामिति चतुर्थी नोचिता, यतो हि- प्रणमतीति तिङन्तेन सह कारकविभक्तिरेव साधुत्वं भजते।
3. काश्मीर-पाठे "दुष्यन्त" इति। मै.-पाठे "दुष्मन्त" इति। बं.-पाठे "दुःषन्त" इति।
4. केवलं काश्मीर-पाठ इतः परं "चिरम् अविधवा भवे" ति वाक्यमधिकम्।
5. काश्मीरादि-पाठेषु "०मीमङ्गले" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं दृश्यते।
6. का.-बं.-पाठयो "र्विश्वगुरव" इति। मै.-पाठ "एवंविधाचारः प्रसीदन्ति महान्त" इति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं दृश्यते।
7. काश्मीर-पाठे "नेतरपक्षरूप" इति। मै.-बं.-पाठयोः "साधुसमक्षरूप" इति।
8. बं.-पाठे "कस्मिन्नपि क्रामती" ति। दाक्षि.-पाठो का.-पाठमनुसरति, मै.-पाठवद्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

मारीचः- वत्स, अलमात्मापचारशङ्कया। संमोहोऽपि त्वय्युपपन्नः। श्रूयताम्। [167]

राजा- अवहितोऽस्मि। [168]

मारीचः- यदैवाप्सरस्तीर्थावतरणात् प्रत्यादेशविक्लवा[1] शकुन्तलामादाय मेनका दाक्षायणीमुपगता तदैव ध्यानाद् अवगतोऽस्मि दुर्वाससः शापादियं तपस्विनी सहधर्मचारिणी त्वया प्रत्यादिष्टा, नान्यथेति। स चायमङ्गुलीयकदर्शनावसानः। [169]

राजा- (सोच्छ्वासम्) एष वचनीयान्मुक्तोऽस्मि। [170]

शकुन्तला- (स्वगतम्) दिट्ठिआ। अकारणपच्चादेसी ण अज्जउत्तो। ण खु सत्तं अत्ताणं सुमरेमि। अहवा पत्तो मए स हि सावो विरहसुण्णहिअआएण विदिदो। अदो सहीहिं संदिट्ठम्हि भत्तुणो अङ्गुलीअअं दंसइदव्वं त्ति। (दिष्ट्याऽकारणप्रत्यादेशी नार्यपुत्रः[2]। न खलु शप्तमात्मानं स्मरामि। अथवा प्राप्तो मया स हि शापो विरहशून्यहृदयया न विदितः। अतः सखीभ्यां सन्दिष्टास्मि, भर्तुरङ्गुलीयकं दर्शयितव्यमिति।) [171]

मारीचः- वत्से, विदितार्थासि। सहधर्मचारिणं प्रति न त्वया मन्युः कार्यः। [172] पश्य -

> **शापादसि प्रतिहता स्मृतिरोधरूक्षे**
> **भर्तर्यपेततमसि प्रभुता तवैव[3]।**
> **छाया न मूर्च्छति मलोपहतप्रसादे**
> **शुद्धे तु दर्पणतले सुलभावकाशा[4]॥ 7-32॥ [173]**

राजा- यथा भगवान् आह। अत्र खलु मे वंशप्रतिष्ठा[5]। [175]

मारीचः- तथा भाविनमेनं चक्रवर्तिनमवगच्छतु भवान्।

पश्य- [175]

> **रथेनानुत्खातस्तिमितगतिना तीर्णजलधिः**
> **पुरा सप्तद्वीपां जयति[6] वसुधामप्रतिरथः।**
> **इहायं सत्त्वानां प्रसभदमनात् सर्वदमनः**
> **पुनर्यास्यत्याख्यां भरत इति लोकस्य भरणात्॥ 7-33॥ [176]**

राजा- भगवता कृतसंस्कारे सर्वमस्मिन् वयमाशंसामहे। [177]

अदितिः- भअवं, इमाए दुहिदुमणोरहसंपत्तीए कण्णो वि दाव सुदवित्थारो करीअदु। दुहिदुवच्छला मेणआ इह एव्व मं परिचरन्ती चिट्ठदि। (भगवन्, अस्या दुहितृमनोरथसम्पत्तेः कण्वोऽपि तावच्छ्रुतविस्तारः क्रियताम्। दुहितृवत्सला मेनकेहैव मां परिचरन्ती तिष्ठति[7]।) [178]

शकुन्तला- (आत्मगतम्) मणोरहो खु मे भणिदो भअवदीए। (मनोरथः[8] खलु मे भणितो भगवत्या।) [179]

---

1. का.-मै.-पाठयोः "प्रत्यक्षविक्लवामि" ति। बं.-पाठे "प्रत्याख्यानविक्लवामि" ति।
2. काश्मीरादि-पाठेष्व "-कामप्रत्यादेश्यार्यपुत्र" इति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
3. मै.-पाठे "भर्तुर्यदैव चलितासि पुनः प्रभुत्वमि" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
4. दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति। मै.-पाठे "विमलप्रकाशे" ति।
5. काश्मीरादि-पाठेष्वनयोर्वाक्ययोर्मध्ये "मारीचस्योक्तिः- वत्स, कच्चिदभिनन्दितस्त्वया विधिवदस्माभि-रनुष्ठित-जातकर्मा पुत्र एष शाकुन्तलेय" इत्यधिकम्। दाक्षि.-पाठे संक्षेपीकरणस्याशयेन सा निष्कासिता।
6. बं.-पाठे "ऽवती" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति।
7. का.-पाठे "मेनकेहैव सन्निहिते" त्येव। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठम् अनुसरति, बं.-पाठवद्।
8. का.-मै.-पाठयो "र्मनोगतमि" ति। दाक्षि.-पाठो बं.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

मारीचः:- तपःप्रभावात् प्रत्यक्षं सर्वमेतत्तत्रभवतः कण्वस्य। [180]

राजा- अतः खलु मामनभिक्रुद्धो मुनिः। [181]

मारीचः:- तथाप्यसौ प्रियमस्माभिः प्रष्टव्यः। कः कोऽत्र भोः। [182]

(प्रविश्य) शिष्यः:- भगवन्, अयमस्मि। [183]

मारीचः:- गालव, इदानीमेव विहायसा गत्वा मम वचनात्तत्रभवते कण्वाय प्रियमावेदय, यथा पुत्रवती शकुन्तला तत्छापनिवृत्तौ स्मृतिमता दुष्यन्तेन प्रतिगृहीतेति। [184]

शिष्यः:- यथाज्ञापयति भगवान्। (निष्क्रान्तः) [185]

मारीचः:- वत्स, त्वमपि स्वापत्यदारसहितः सख्युराखण्डलस्य रथमारुह्य राजधानीं प्रतिष्ठस्व। [186]

राजा- यथाज्ञापयति भगवान्। [187]

मारीचः:- अपि च,

तव भवतु[1] बिडौजाः प्राज्यवृष्टिः प्रजासु
त्वमपि विततयज्ञः स्वर्गिणो भावयालम्[2]।

युगशतपरिवर्तान्[3] एवमन्योन्यकृत्यै -
र्नयतमुभयलोकानुग्रहश्लाघनीयैः॥ 7 -34॥ [188]

राजा- भगवन्, यथाशक्ति श्रेयसे यतिष्ये। [189]

मारीचः:- वत्स, किं ते भूयः प्रियमुपहरामि। [190]

राजा- अतः परमपि प्रियमस्ति। यदीह भगवान् प्रियं[4] कर्तुमिच्छति तर्हीदमस्तु। [191]

(भरतवाक्यम्)

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः सरस्वती श्रुतिमहतां[5] महीयताम्[6]।
ममापि च क्षपयतु नीललोहितः पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः[7]॥ 7 -35॥[8] [192]

(निष्क्रान्ताः सर्वे) [193]

॥ सप्तमोऽङ्कः[9]॥ [194]

। अभिज्ञानशाकुन्तलं[10] समाप्तम्॥

---

1. काश्मीर-पाठे श्लोकोऽयं नास्ति। किन्तु "क्रतुभिरुचित०" इति भिन्नः श्लोको वर्तते। मै.-पाठे द्वयोरपि श्लोकयोरुपस्थापना क्रियते। बं.-पाठे "क्रतुभिरुचित०" इति नास्ति।
2. मै.-बं.-पाठयो-"स्त्वमपि विहितयज्ञो वज्रिणं प्रीणयालमि" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं दृश्यते।
3. मै.-पाठे "गुरुतरपरिवृतै०" इति। दाक्षि.-पाठो बं.-पाठमनुसरति।
4. काश्मीर-पाठे "प्रसादमि" ति। मै.-पाठे "परमि" ति। दाक्षि.-पाठो बं.-पाठमनुसरति।
5. मै.-पाठे "श्रुतमहतामि" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
6. मै.-पाठे "महीयसामि" ति। दाक्षि.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
7. का.-बं.-पाठयोः "परिगतभक्तिरात्मभूरि" ति। मै.-पाठे "०भक्तिरात्मने" ति। दाक्षि.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
8. मै.-पाठे भरतवाक्यानन्तरमपि मारीचस्यैकोक्तिर्वर्तते- "मारीचः- एवमस्त्वि" ति। सान्यत्र नास्ति।
9. काश्मीर-पाठे प्रत्येकस्याङ्कस्य नामानि न दीयन्ते। मै.-पाठे "शकुन्तला-संवर्धनं नाम सप्तमोऽङ्क" इति। बं.-पाठे सप्तमाङ्कस्य नाम न प्राप्यते। दाक्षि.-पाठेऽपि का.-पाठवद् प्रत्येकस्याङ्कस्य नामानि न दीयन्ते।
10. काश्मीर-पाठे "ऽभिज्ञानशकुन्तले" ति। मै.-बं.पाठयो "रभिज्ञानशकुन्तलमि" ति। दाक्षि.-पाठे तृतीयं परिवर्तनं दृश्यते।। इति शिवमस्तु॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

देवनागरी वाचनानुसारी

"अभिज्ञानशाकुन्तलम्" नाटक की रंगावृत्ति का पाठ।।

कालिदास-प्रणीत अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक का जो पाठ (Text) सुप्रचलित है, वह देवनागरी वाचना का पाठ है। इसकी पाठालोचना करने से मालूम होता है कि वह अपने प्रवर्तमान / प्रचलित रूप में मौलिक नहीं है। यह तो एक मामूली रंगावृत्ति का पाठ है, जो रंगकर्मियों के द्वारा भारी कटौती करने के बाद तैयार किया गया संक्षिप्ततर पाठ है। एवमेव, पाँचरंगावृत्तियों के आनुक्रमिक आविष्कार में भी अन्तिम / पञ्चम चरण पर (काश्मीरी, मैथिली, बंगाली, दाक्षिणात्य एवं देवनागरी) आकारित हुआ पाठ है। इस नाटक की अल्पसमयावधि में रंगमंच पर प्रस्तुति करने के लिए यह देवनागरी पाठ बहुत अनुकूल या उपयुक्त हो सकता है। लेकिन इस पाठ की बारीकी से परीक्षा करने से मालूम होता है कि यह बहुविध विसंगतियों एवं क्षतियों से भरा पाठ है। तथा पाठान्तरों की दृष्टि से उसका मूल्यांकन किया जाय तो, वह किसी एक परिशुद्ध या स्वतन्त्र वाचना के पाठ का संरक्षण करनेवाला पाठ भी नहीं है। उसमें तो प्रायः काश्मीरी वाचना के पाठ का चयन किया गया है, कुत्रचित् मैथिली एवं बंगाली पाठान्तरों का भी स्वीकार किया गया है तथा उसने बहुशः दाक्षिणात्य वाचना का अनुगमन किया है। अर्थात् वर्तमान में सुप्रचलित देवनागरी वाचना का जो पाठ है, जिसको हम सो-दोसो साल से बिना कोई सही स्वरूप की पाठालोचना किये, और बिना सर्वाङ्गीण तुलनात्मक अभ्यास किये (केवल श्रीईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे एक समाज-सुधारक के कहने से, एवं डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी जी पर्यन्त के सभी सम्माननीय विद्वानों के द्वारा स्वीकृत हुए उस पाठ को) "श्रद्धेय पाठ" समझ कर ढ़ो रहे हैं। किन्तु इस देवनागरी पाठ को अब सर्वथा त्याज्य मानना उचित होगा।। क्योंकि पाठालोचना की दृष्टि से, देवनागरी वाचना का वर्तमान पाठ अनेक स्थान पर विसंगतियुक्त तथा क्षतिग्रस्त तो है ही, लेकिन रंगकर्मियों के द्वारा वह संक्षिप्ततर एवं संमिश्रित भी किया गया पाठ है! डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल ने भी इस देवनागरी वाचना का पाठ, जो राघवभट्ट (ई.स. 1475-1500) ने दिया है, उसको संक्षिप्ततर किया गया पाठ ही कहा है। जिसको एक कदम आगे बढ़ कर, अब "रंगावृत्ति का पाठ" भी कहना चाहिए।।

इस के साथ साथ यह भी कहना आवश्यक है कि "देवनागरी वाचना का समीक्षित पाठ" ऐसा नाम देकर आधुनिक पाठसम्पादकों ने अद्यावधि जितने भी तथाकथित समीक्षित पाठ-सम्पादन प्रकाशित किये हैं, वे सभी संदोहन पद्धति से (यानी साधारणतया सर्वत्र उपलब्ध होनेवाले पाठ का दोहन), अथवा मधुकर-वृत्ति (यानी जहाँ से जो अच्छे अच्छे पाठान्तर मिले उनका चयन करके) (Eclectic Principles) से बनाये शालेय संस्करण मात्र ही हैं।। देवनागरी लघुपाठ का प्रथम प्रकाशन ओटो बोटलींग ने ई. स.1842 में किया था। तत्पश्चात् प्रो. मोनियर विलियम्स (1855), श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर (1871), श्री एम. आर. काळे (1898), प्रॉफे.पी. एन. पाटणकर (1898-1902), श्री शारदा रंजन राय (1908), श्री गौरीनाथ शास्त्री (1983), श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी (1976-86) आदि आदि सब के संस्करण में निरपवादतया मधुकर-वृत्ति से संचित किया पाठ ही दिख रहा है। यानि देवनागरी वाचना का समीक्षित पाठ-सम्पादन सही अर्थ में अभी तक हुआ ही नहीं है। **क्योंकि (क)** आरम्भ काल में जिन्होंने भी प्रयास किए हैं, उन सभी विद्वानों ने शंकर एवं काटयवेम की टीकाओं का विनियोग करके पाठनिर्धारण किया है। किन्तु, शंकर ने जो रसचन्द्रिका टीका लिखी है वह तो मैथिली पाठ पर है। तथा काटयवेम ने जो टीका लिखी है वह दाक्षिणात्य वाचना के पाठ पर लिखी है। परिणामतः उन दोनों की पाठ परम्पराओं का प्रभाव देवनागरी के पाठ-निर्धारण पर पड़ा है। एवं **(ख)** श्री पी. एन. पाटणकर जी ने देवनागरी वाचना का "शुद्धतर समीक्षित" पाठ सम्पादित करने का दावा किया है। किन्तु उनके द्वारा निर्धारित किये गये पाठ में काश्मीरी पाठान्तरों का प्रवेश हो गया है। क्योंकि, कार्ल बुरखाड ने

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

जिन शारदा भूर्जपत्र (क्रमांक 192) के पाठ का रोमन लिप्यन्तरण किया था, उसकी प्रत्यक्ष साहाय्य ली है। प्रॉ. गौरीनाथ शास्त्री जी ने तो एक भी देवनागरी पाण्डुलिपि का विनियोग ही नहीं किया है। (केवल पूर्व-प्रकाशित संस्करणों के आधार पर ही अपना (संचित) पाठ प्रस्तुत किया है। जिसका सम्पादन / चयन भी उनकी किसी सुशिष्या ने ही किया था। तथा साहित्य अकादमी, दिल्ली ने उसका प्रकाशन किया है।) श्री रेवाप्रसाद जी ने कालिदास-ग्रन्थावली (1986) में एक ही पाण्डुलिपि का (जी. 340) क्रमांक दिया है, तथा जिन "भूयसी मातृकाओं" का उल्लेख किया है, उनमें से किसी का भी क्रमांक नहीं दिया है। इन सामग्री के उपरान्त, उन्होंने बंगाली आदि अनेक अन्य संस्करणों का भी उपयोग किया है। जिसके कारण उनके देवनागरी पाठ में भी अन्य वाचनाओं के पाठान्तरों का संकर हो गया है। उन्होंने एकाधिक स्थानों पर, ऐसे ऐसे पाठ दिये हैं जिनको एक भी पाण्डुलिपि का दस्तावेजीय समर्थन नहीं है। कुत्रचित् कल्पित पाठान्तरों का संनिवेश भी उन्होंने स्वत: प्रामाण्य से किया है। तथा चार बार जिस कालिदास ग्रन्थावली के पाठ का प्रकाशन किया, उसके हर मौके पर, वे बार बार पाठ-परिवर्तन भी करते रहे हैं! **(ग) एवञ्च**, डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल को छोड़ कर, अन्य किसी भी विद्वान् को यह जानकारी भी नहीं है कि देवनागरी लिपि में लिखी गई कतिपय पाण्डुलिपियों में इस नाटक का बृहत्पाठ भी संचरित हुआ है[1]! मतलब कि अभी तक, सभी तरह की देवनागरी पाण्डुलिपियों को एकत्र करके, सही स्वरूप की समीक्षित आवृत्ति बनाने का सर्वाश्लेषी प्रयास हुआ ही नहीं है।।

डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल के मतानुसार देवनागरी वाचना जिनमें संचरित हुई है, उन देवनागरी पाण्डुलिपियों को तीन भाग में विभक्त किया जा सकता है:- (क) इस नाटक का 224 श्लोकोंवाला बृहत्पाठ जिनमें संचरित हुआ है ऐसी पाण्डुलिपियाँ। (ख) जिनमें 200 से लेकर 210 श्लोकोंवाला पाठ उपलब्ध होता है, ऐसी पाण्डुलिपियाँ। (डॉ. काञ्जीलाल के मतानुसार जिनमें 200 से 210 श्लोकोंवाला पाठ मिलता है, वह "मिश्र देवनागरी वाचना" का पाठवाली पाण्डुलिपियाँ हैं।) (ग) तथा केवल 190 श्लोकोंवाला अतिसंक्षिप्त पाठ जिनमें मिलता है, ऐसी पाण्डुलिपियों का तीसरा वर्ग।। इस तरह से, देवनागरी पाठ की रक्षा करनेवाली पाण्डुलिपियों को, पाठ की इयत्ता के आधार पर तीन यूथ में बाँटा जा सकता है। डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल ने सही बताया है कि सम्भवत: देवनागरी वाचना का संक्षिप्ततर रूप बनानेवाले टीकाकार राघवभट्ट हैं[2]। उन्होंने 190 श्लोकवाला पाठ दिया है, एवं गद्यांश में भी संक्षेप कर दिया है।। अत: हमने प्रस्तुत ग्रन्थ में अभिज्ञानशाकुन्तल के जिस "देवनागरी पाठ" को स्वीकारा है वह राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली के द्वारा 2006 में प्रकाशित किया गया पाठ है। इसका सम्पादन श्री नारायण राम ने किया है, तथा उसमें राघव भट्ट की "अर्थद्योतनिका" टीका सम्मिलित है। राघवभट्ट (15वी शती) ने जिस पाठ को टीका के लिए अपनाया है उसको हम "बहुमान्य" (vulgate text) पाठ के रूप में स्वीकार सकते हैं।।

यह देवनागरी पाठ किसी अज्ञात नटमण्डली द्वारा अल्प समयावधि में इस नाटक को रंगमंच पर प्रस्तुत करने के लिए बनाया हुआ "रङ्गावृत्ति का पाठ" (stage-version) है, इस अभिप्राय को प्रमाणित करने के लिए क्रमश: सातों अङ्कों के प्रमुख निर्देशों को देखना आवश्यक है। किन्तु जैसा कि पहले कहा गया है, यह पाठ पाँचवें पायदान पर खड़ा पाठ है। अत: उस रंगावृत्ति के पाठ की परीक्षा करने के लिए मुख्य रूप से तीन बिन्दु हमारे समक्ष होने चाहिएँ :- (1) काश्मीरी-मैथिली-बंगाली वाचनाओं के बृहत्पाठ में संक्षेप करके दाक्षिणात्य वाचना का पाठ बनाया गया है। लेकिन दाक्षिणात्य वाचना के संक्षिप्त पाठ का कितने अंश में अनुसरण करते हुए देवनागरी पाठ तैयार किया गया है? (2) देवनागरी वाचना के पाठ को बनाने वालों ने दाक्षिणात्य वाचना के पाठ से हट कर, कितने पाठान्तर काश्मीरी -मैथिली-बंगाली पाठों में से अपनी मरजी से / पसंदगी से स्वीकार किये हैं?। (3) तथा देवनागरी पाठ में स्वतन्त्र रूप से (पुरोगामी चारों पाठों से पृथक्

---

1. द्रष्टव्य:- पाटण में संगृहीत शाकुन्तल की प्राचीनतर पाण्डुलिपि। हैमप्रपा (अंक-3), हेमचन्द्र उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी, पाटण, 2012 (पृ. 200-213), (ISSN2250-3064)
2. The final touch to this process was possibly given by Raghavabhatta whose well-known text contained 190 verses with relevant prose portions highlighting the maximum limit of retrenchment of the immortal drama-introduction, p- 15, D. K. Kanjilal (1980)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

हो कर) (क) कितने नवीन पाठान्तर पैदा किये हैं, (ख) कितने नवीन प्रक्षेप किये हैं, (ग) कितने नवीन संक्षेप किये हैं, तथा (घ) कितने मंचनलक्षी परिवर्तन किये हैं?।। इन बिन्दुओं के सहारे ही दाक्षिणात्य और देवनागरी पाठ का पार्थक्य कितने प्रतिशत दिखता है? वह कहा जा सकता है। श्री रेवाप्रसाद जी जैसे विद्वानों ने इन दोनों लघुपाठों में 90 प्रतिशत साम्य है- ऐसा विहंगम-दृष्टि से कहा है। लेकिन किसी ने उन दोनों में रहे वैषम्य का व्यवस्थित विश्लेषण भी अभी तक प्रस्तुत नहीं किया है।।

।। प्रथमोऽङ्कः।।

(1) देवनागरी वाचना के पाठ ने दाक्षिणात्य पाठ का निम्नोक्त स्थानों पर सीधा अनुसरण किया है:- प्रथमांक में श्लोक-संख्या की दृष्टि से दाक्षिणात्य पाठ में 31 श्लोक ग्राह्य रहे हैं। तो देवनागरी पाठ में 30 श्लोक मान्य किये गये हैं। "न खलु न खलु बाणः संनिपात्योऽयम्०" श्लोक को लेकर दाक्षिणात्य पाठ में द्विधा मनःस्थिति दिख रही है, किन्तु देवनागरी पाठ में राघवभट्ट ने उसे अमान्य ही कर दिया है। इन दोनों के प्रतिपक्ष में बृहत्पाठ वाली मैथिली में 33 श्लोक दिखते हैं, एवं बंगाली में 34 श्लोक संगृहीत किये गये हैं। इससे मालूम होता है कि दाक्षिणात्य एवं तदनुगामिनी देवनागरी वाचना ने काश्मीरी वाचना के पाठ का अनुसरण किया है। क्योंकि काश्मीरी वाचना में भी संक्षेपपूर्वक 30 श्लोकों को ही ग्राह्य किया गया था। यद्यपि दाक्षिणात्य एवं देवनागरी के पाठ में भी 1. यतो यतः षट्चरणो०, 2. इदमुपहितसूक्ष्मग्रन्थिना स्कन्धदेशे०। श्लोकों को भी काश्मीरी की तरह अग्राह्य रखा है, तथापि काश्मीरी ने जिसको मान्य किया-3. कुल्याम्भोभिः चपलपवनैः०। इस श्लोक को उन दोनों ने अमान्य किया है। तथा इन संक्षेपों के साथ 4. जन्म यस्य पुरोर्वंशे युक्तरूपमिदम्०। श्लोक को प्रक्षिप्त भी किया है। तथा मैथिली पाठ द्वारा प्रथम बार प्रक्षिप्त किये "न खलु न खलु बाणः संनिपात्य०" श्लोक को केवल बंगाली और दाक्षिणात्यों ने स्वीकारा है। किन्तु राघवभट्ट द्वारा इस श्लोक पर टीका नहीं लिखी गयी है। मतलब कि देवनागरी पाठ में उसको अमान्य घोषित किया है। सारांशतः, प्रथम अंक के श्लोकों के सन्दर्भ में कहा जाय तो देवनागरी पाठ के रंगकर्मियों के हाथ में (काश्मीरी वाचना के पाठ में जिस स्थान पर संक्षेप किये गये हैं), उससे भिन्न/नवीन स्थान संक्षेप के लिए आया नहीं है।।

(2) अब देवनागरी वाचना के पाठ को बनाने वालों ने दाक्षिणात्य वाचना के संक्षिप्त पाठ का अनुसरण करते हुए अमुक अमुक पाठान्तर अपनी मरजी से काश्मीरी-मैथिली-बंगाली पाठों में से भी स्वीकारे हैं या नहीं? यह देखना जरूरी है:- 1. नान्दी-पद्य में दाक्षिणात्यों ने "यामाहुः सर्वभूत-प्रकृति-रिति०" ऐसा पाठान्तर दिया है। किन्तु देवनागरी वाचना के पाठशोधकों ने काश्मीरी पाठ का अनुगमन करके "यामाहुः सर्वबीजप्रकृति-रिति०" ऐसा पाठान्तर ग्राह्य रखा है। 2. दाक्षिणात्य पाठ के अनुसार सूत्रधार के मुख में इस नाटक का शीर्षक नहीं रखा है। यहाँ पर दाक्षिणात्य पाठशोधकों ने काश्मीरी पाठ का अनुसरण किया है। किन्तु देवनागरी पाठ में सूत्रधार के मुख से "अद्य खलु कालिदासग्रथितवस्तुना-ऽभिज्ञानशाकुन्तल-नामधेयेन नवेन नाटकेनोपस्थातव्यम् अस्माभिः।" ऐसे शीर्षक का स्पष्ट नामोल्लेख निकलता है। इसमें हम देखते हैं कि देवनागरी पाठशोधकों ने मैथिल पाठ का अनुसरण किया है। 3. प्रस्तावना भाग में सूत्रधार की एक उक्ति है:- किमन्यदस्याः परिषदः श्रुतिप्रसादनतः। तदिदमेव तावदचिर-प्रवृत्तमुपभोगक्षमं ग्रीष्मसमयमधिकृत्य गीयताम्। इस तरह के काश्मीरी पाठ का अनुसरण करते हुए देवनागरी पाठ बनाया गया है। किन्तु इसी स्थान पर दाक्षिणात्य पाठशोधकों ने मैथिली पाठ का अनुसरण करते हुए, पूर्वोक्त दोनों वाक्यों के बीच में, नटी की एक स्वतन्त्र उक्ति भी दी है:- "नटी - आर्य, कतमं पुनः ऋतुमधिकृत्य गास्यामि।" 4. दुष्यन्त जब कण्वाश्रम में प्रवेश करता है, तब देवनागरी पाठ में "इति सूतस्या-भरणानि धनु-श्चोपनीयार्पयति" ऐसी रंगसूचना दी गई है। इस तरह की रंगसूचना में देवनागरी पाठवालों ने बंगाली पाठपरम्परा का अनुसरण किया है। क्योंकि काश्मीरी एवं मैथिली पाठों में तो "सूताय" ऐसी चतुर्थी विभक्ति का ही प्रयोग मिलता है। पाणिनीय व्याकरण के अनुसार गौण सम्प्रदान में भी चतुर्थी ही होती है। किन्तु उत्तरवर्ती काल में गौण सम्प्रदान में षष्ठी होने लगी है। जैसे कि, रजकस्य वस्त्राणि ददाति। तो देवनागरी पाठ

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

में प्राप्त हो रही "सूतस्य" ऐसी षष्ठी में बंगाली पाठ का अनुसरण देखना चाहिए।। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि देवनागरी पाठ को बनाने वाले पाठशोधकों (यानी रंगकर्मियों) ने केवल दाक्षिणात्य पाठ को ही सार्वत्रिक रूप से अनुसरणीय नहीं माना है। उन लोगों ने कुत्रचित् दाक्षिणात्य पाठ-परम्परा से हट कर, काश्मीरी का अनुसरण किया है, तो कदाचित् मैथिल एवं बंगाल की पाठ परम्परा को भी ग्राह्य माना है।। सारांशत:,यद्यपि दाक्षिणात्य एवं देवनागरी के संक्षिप्त पाठों को "संमिश्रित" पाठ ही कहा जायेगा। तथापि उन दोनों द्वारा पुरोगामी बृहत्पाठों के पाठान्तरों का अनुसरण करते समय दोनों की पसंद एक समान नहीं है, दोनों ने पुरोगामी उपलब्ध पाठान्तरों में से यथेच्छ आहरण किया है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 1, 5, 10 एवं 63]

(3) देवनागरी वाचना के पाठ को अन्तिम स्वरूप देनेवालों ने पुरोगामी चारों पाठों से हट कर सर्वथा नवीन पाठान्तरादि भी प्रस्तुत किये हैं। जैसे कि, (क) देवनागरी के नवीन पाठान्तरों में, 1. वैखानस कण्वाश्रम का परिचय देता हुआ कहता है कि, "रम्यास्तपोधनानां प्रतिहतविघ्ना: क्रिया:०" (1-12)। इसके सामने काश्मीरी पाठ में "धन्यास्तपोधनानाम्०" था, तथा मैथिली, बंगाली एवं दाक्षिणात्य में "धर्म्या-स्तपोधनानाम्" ऐसे पाठान्तर चलते थे। किन्तु देवनागरी पाठ में तीसरा ही पाठान्तर दृश्यमान होने लगता है। 2. दुष्यन्त ने "कथमियं सा कण्वदुहिता" शब्दों से शकुन्तला को पहचान कर सोचा कि, "भवतु, पादपान्तर्हित एव विस्रब्धं तावदेनां पश्यामि"। इस तरह के देवनागरी पाठ के सामने काश्मीरी-आदि चारों पाठों में "पादपान्तरित एव०" ऐसा पाठान्तर चल रहा था। 3. भ्रमरबाधा के निमित्त से सामने आये नायक दुष्यन्त को अनसूया कहती है कि, "इयं नो प्रियसखी मधुकरेणाभिभूयमाना कातरीभूता"। इसके प्रतिपक्ष में काश्मीरादि चारों पाठों में "मधुकरेणाकुलीक्रियमाणा0" ऐसा प्रासंगिक पाठ चलता था। लेकिन देवनागरी पाठ में युद्ध की भाषा का प्रयोग (अभिभूयमाना) किया गया है।। 4. अनसूया आगन्तुक दुष्यन्त का परिचय प्राप्त करने के लिए पूछती है:- "किं निमित्तं वा सुकुमारतरोऽपि तपोवनगमनपरिश्रमस्यात्मा पदमुपनीत:" यहाँ पर तुलनात्मक दृष्टि से काश्मीरी, बंगाली एवं दाक्षिणात्य पाठ देखें तो उनमें "आर्येण सुकुमारेण" ऐसा शब्द है, तथा मैथिली पाठ में "आर्येण कुसुमसुकुमारेण" ऐसा पाठभेद मिलता है। किन्तु देवनागरी पाठ में उसी मृगया-विहारी राजा को "सुकुमारतर" बनाया है। 5. अंक के अन्त भाग में, राजा की उक्ति है:- "अहो धिक्, पौरा अस्मदन्वेषिणस्तपोवनमुपरुन्धन्ति।" इसके सामने काश्मीरादि चारों पाठों में "अस्मदन्वेषिण: सैनिका:" ऐसा पाठान्तर चलता था। (मृगयाविहारी राजा को उनके साथ में आये सैनिक ढूँढ़ेगे कि पुरवासी लोग ढूँढेंगे? यह बात देवनागरी पाठशोधकों ने सोची ही नहीं!) इस तरह तुलनात्मक दृष्टि से इन देवनागरी नवीन पाठान्तरों को देख कर एक जानकारी ऐसी मिलती है कि दाक्षिणात्य पाठ भले ही संक्षिप्त किया गया, किन्तु संगृहीत पाठान्तरों के सन्दर्भ में उसने भी देवनागरी पाठ की अपेक्षा से परम्परागत पाठ की अधिकतर सुरक्षा की है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 48, 81, 115, 128 एवं 188]

(4) देवनागरी वाचना के पाठ का संग्रथन करते समय (ख) उसमें नवीन स्थानों पर छोटे छोटे संक्षेप भी किये गये हैं। जैसे कि, 1. सूत्रधार ने आरम्भ में ही नटी को रंगमंच पर बुलाया। तब काश्मीरादि चारों पाठों में "(प्रविश्य) आर्य, इयमस्मि।" के बाद, "आज्ञापयतु को नियोगोऽनुष्ठीयताम्" ऐसा एक वाक्य भी प्राप्त होता है। किन्तु देवनागरी पाठ में से उसे हटा दिया गया है। इसमें तो केवल "आर्यपुत्र, इयमस्मि" इतना ही अवशिष्ट रखा है। 2. आश्रम के तापस ने राजा को चक्रवर्ती पुत्र-प्राप्ति होने का आशीर्वाद दिया। उसके प्रतिभाव में काश्मीरी वाचना में "प्रतिगृहीतं तपोधन-वचनम्" ऐसा वाक्य है। मैथिली वाचना में "गृहीतं ब्राह्मणवचनम् अस्माभि:" ऐसा वाक्य है। बंगाली और दाक्षिणात्य पाठों में भी "प्रतिगृहीतं ब्राह्मणवच:" एवं "प्रतिगृहीतं ब्राह्मणवचनम्" ऐसे वाक्य हैं। किन्तु देवनागरी पाठ में "(सप्रणामम्) प्रतिगृहीतम्" केवल इतना ही है। जो एक विशेष रूप से संक्षिप्त किया गया पाठभेद है। 3. भ्रमरबाधा का निरूपण करने वाले दृश्य में "चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीम्०" श्लोक के नीचे, काश्मीरादि चारों पाठों में, शकुन्तला की उक्ति दो भागों में इस तरह से विभक्त की गई है:- "शकुन्तला-परित्रायध्वम् माम् अनेन कुसुमपाटच्चरेणाभिभूयमानाम्", उसके बाद दोनों सहेलियों की

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

संयुक्त उक्ति है कि, "उभे - (विहस्य) केवलं परित्राणे दुष्यन्तम् आक्रन्द। राजरक्षितानि खलु तपोवनानि भवन्ति।", तत्पश्चात् पुनरपि शकुन्तला की उक्ति है कि, "नैष मे पुरतोऽतिधृष्टो विरमति तदन्यतो गमिष्यामि। हा धिक्, कथमितोऽपि मामनुसरति।" यहाँ शकुन्तला की आकुलता को दो उक्तियों में विभक्त किया गया है एवं उन दोनों के बीच में सहेलियों की उक्ति रखी गई है। किन्तु देवनागरी पाठ को संक्षिप्ततर बनाने के लिए कृतसंकल्प रंगकर्मियों ने शकुन्तला की पूर्वोक्त दोनों उक्तियों को एक ही उक्ति में संलग्न कर दिया है, जिसमें शकुन्तला पहले अपनी सहेलियों से साहाय्य नहीं मांगती है। जैसे कि- "न एष दुष्टो विरमति। अन्यतो गमिष्यामि। कथमितोऽप्यागच्छति। हला, परित्रायेथां मामनेन दुर्विनीतेन दुष्टमधुकरेण परिभूयमानाम्।" पाठ को संक्षिप्ततर करने का ऐसा उत्साह इस प्रसंग की नाटकीयता तो नष्ट करता है। तथा उसके साथ जो "धृष्ट" के स्थान में, शाब्दिक परिवर्तन करके "दुष्ट" शब्द रखा है, (वह भी दो बार!) यह शब्द-प्रयोग भी शकुन्तला के मुख में अनुचित प्रतीत हो रहा है। 4. काश्मीरादि चारों पाठों में अनसूया कहती है:- इदानीमतिथिविशेषलाभेन। तत्पश्चात् प्रियंवदा बोलती है:- "स्वागतम् आर्यस्य"। यह वाक्य दाक्षिणात्य पाठ तक सुरक्षित रह पाया है। परन्तु देवनागरी पाठ में इसे हटाया गया है एवं केवल अनसूया के मुख में ही सब कुछ रख दिया है:- "इदानीमतिथि-विशेषलाभेन। हला शकुन्तले, गच्छोटजम्। फलमिश्रमर्घमुपहर। इदं पादोदकं भविष्यति।" 5. असम्बद्ध-प्रलापिनी प्रियंवदा के बारे में गौतमी को निवेदन करने के लिए शकुन्तला रंगभूमि से चली जाना चाहती है। तब अनसूया की उक्ति है:- "सखि, न युक्तम् आश्रमवासिनो जनस्य अकृत-सत्कारमतिथिविशेषमुज्झित्वा स्वच्छन्दतो गमनम्"। ऐसा पाठ मैथिली-बंगाली-दाक्षिणात्य में उपलब्ध होता है। किन्तु केवल देवनागरी पाठ में से "आश्रमवासिनो जनस्य" इतने शब्द निकाल दिये हैं।। ऐसे छोटे छोटे संक्षेपों के कारण देवनागरी वाचना का पाठ (दाक्षिणात्य पाठ की अपेक्षा से) संक्षिप्ततर बनता गया है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक- 4, 46,108, 119 एवं 166]

(5) रंगकर्मियों (या पाठशोधकों) के द्वारा देवनागरी पाठ को नवीकृत करने के लिए (ग) जो नये पाठभेद किये गये हैं, उनसे दृश्य का मंचन बदल जाता है, या अभिनयभेद हो जाता है। जैसे कि, 1. वल्कलशिथिलीकरण के प्रसंग में, काश्मीरी पाठ के अनुसार, प्रियंवदा की उक्ति है:- "(सस्मितम्) पयोधरविस्तारयितृकम् आत्मनो यौवनमुपालभस्व।" ऐसे ही दाक्षिणात्य पाठ में भी प्रियंवदा इस उक्ति को सस्मित ही प्रस्तुत करती है। मैथिली एवं बंगाली पाठों में यह उक्ति "विहस्य" ऐसी रंगसूचना के साथ दी गई है। किन्तु देवनागरी पाठ के रंगकर्मियों ने उसी को "सहासम्" ऐसे हास्यभेद से प्रस्तुत करने की सूचना दी है। (नाट्यशास्त्र में हास्य के स्मित, हास, परिहास, अट्टहासादि अनेक भेद बताये हैं)। 2. अंक के अन्त भाग में, हस्तिसंभ्रम के प्रसंग से दो सहेलियों के साथ शकुन्तला का रंगमंच से निष्क्रमण दिखाया जाता है। इस सन्दर्भ में काश्मीरादि तीनों बृहत्पाठों में, दो निमित्तों से अपना गमन विलम्बित करती है। जैसे कि, वह ऊरुस्तम्भन के कारण विह्वल होने का बहाना पहले बनाती है। तत्पश्चात् कुरबकशाखा में अपना वल्कल संलग्न हो जाने का बहाना बना कर दुष्यन्त को पुनः एक बार झाँकती है। लेकिन देवनागरी पाठ में, (दाक्षिणात्य पाठ का अनुसरण करते हुए) केवल एक रंगसूचना से शकुन्तला का निष्क्रमण प्रस्तुत किया है। जैसे कि, "शकुन्तला राजानमवलोकयन्ती सव्याजं विलम्ब्य सह सखीभ्यां निष्क्रान्ता"। यहाँ शकुन्तला की वाचिक-उक्तियों का संक्षेप करके, उसके स्थान पर नटी के आङ्गिक अभिनय पर सकल भार को ड़ाल दिया है। ऐसे स्थानों से ही प्रमाणित हो जाता है कि यह देवनागरी पाठ भी "रंगावृत्ति का पाठ" है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 84 एवं 194]

(6) इस देवनागरी पाठ में केवल पाठ-परिवर्तन एवं संक्षेप ही किये गये हैं- इतना कहना अपर्याप्त होगा। क्योंकि इसमें कुत्रचित् छोटे छोटे प्रक्षेप भी किये गये हैं! जैसे कि, 1. अनसूया जब शकुन्तला के जन्म की कहानी सुनाती है, तब उसके मुख में "शृणोत्वार्यः, गौतमीतीरे पुरा किल तस्य राजर्षेरुग्रे तपसि वर्तमानस्य किमपि जातशङ्कैर्देवैर्मेनका नामाप्सराः प्रेषिता नियमविघ्नकारिणी" ऐसा जो वाक्य है, उसमें गौतमीतीर का निर्देश अपूर्व

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

है। अर्थात् विश्वामित्र ने कहाँ उग्र तपश्चर्या की थी? उसका कोई निर्देश काश्मीरी-मैथिली-बंगाली-दाक्षिणात्य पाठों में नहीं दिया है। यह देवनागरी का प्रक्षेप है। 2. राजा ने शकुन्तला को प्रियंवदा के ऋण से मुक्त करवाने के लिए अपनी अंगूठी दी। उस पर उत्कीर्ण किये नामाक्षर दोनों सहेलियाँ पढ़ती है। तब दुष्यन्त ने तुरंत कहा है कि, "अलम् अन्यथा संभाव्य। राज्ञः परिग्रहोऽयमिति, राजपुरुषं मामवगच्छथ।" इस देवनागरी वाचना के पाठ में जो तीसरा अंश है वह केवल देवनागरी पाठ में ही दिया गया है। अतः वह भी एक प्रक्षेप ही सिद्ध होता है, जिसके द्वारा राजा पुनरुक्ति के साथ दोनों सहेलियों को गुमराह करने का प्रयास कर रहा है। (अलबत्ता, नाटक प्रकार के रूपक में, ऐसे प्रक्षेपों से उदात्त नायक का चरित्रचित्रण भी धुँधला या मलिन हो जाता है, जिसकी और रंगकर्मियों का ध्यान नहीं होता है।) [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 144 एवं 178]

॥ द्वितीयोऽङ्कः॥

(1) इस अंक की पाठालोचना के सन्दर्भ में सर्व प्रथम विदूषक की उक्तियाँ परीक्षणीय हैं। 1. विदूषक के प्रवेश के साथ ही अंक का आरम्भ होता है। काश्मीरी पाठ में विदूषक परिश्रान्त व्यक्ति के रूप में थकावट का आङ्गिक अभिनय करता हुआ आता है। वह मृगयाविहारी राजा की दोस्ती का दुःख गिना रहा है। मृगया के दौरान राजा के मनोगत आवेगों का निरूपण (मीमीक्री) करता हुआ बोलता है कि- "अयं मृगः, अयं वराहः इति मध्याह्नेऽपि ग्रीष्मविरलपादपच्छायासु वनराजिषु आहिण्ड्यते" इत्यादि। लेकिन कालक्रम से जब दाक्षिणात्य एवं तदनुगामी देवनागरी पाठ तैयार होते है, तब उसमें "अयं शार्दूलः" ऐसा एक तीसरे वन्य प्राणी का निर्देश प्रक्षिप्त किया जाता है। जिससे ऐसा अनुमान हो सकता है कि इन प्राणियों के नामोच्चारण के साथ साथ विदूषक उनके हाव-भाव, हलन-चलन इत्यादि का आङ्गिक अभिनय भी करता होगा। देखने में तो केवल एक छोटा सा नया शब्द दाखिल हुआ है, किन्तु मंचनलक्षिता की दृष्टि से देखेंगे तो उसकी प्रस्तुति में बहुत परिवर्तन-परिवर्धन होता है। 2. विदूषक चाहता है कि दुष्यन्त एक दिवस के लिए मृगया-कर्म से छुट्टी दे दे। किन्तु सेनापति राजा दुष्यन्त को मृगया-विहार के लिए सज्ज होने का कहने आया है। वह राजा को कहता है कि- "प्रलपत्वेषो वैधवेयः। ननु प्रभुरेव निदर्शनम्।" यह पाठ देवनागरी वाचना का है। अन्य सभी वाचनाओं में "वैधेय" ऐसा शब्द आता है। अमरकोश कहता है कि वैधेय शब्द "मूर्ख" अर्थ का वाचक है। किन्तु वैधवेय जैसे तद्धितान्त शब्द का अर्थ "विधवा का पुत्र" होता है। लगता है कि देवनागरी पाठ की संग्रथन-कर्ता नटमण्डली ने विदूषक के लिए प्रयुक्त एवं प्रचलित कतिपय निन्दापरक शब्दों में एक नवीन शब्द का यहाँ संनिवेश किया है। संस्कृत नाटकों में विदूषक को सामान्यतया मूर्ख, दास्याः पुत्रः, महाब्राह्मण जैसे शब्दों से सम्बोधित किया जाता है। लेकिन, जिस तरह से "दास्याः पुत्रः" में षष्ठी अलुक्-समास होने से गर्भित निन्दा का अर्थबोध होता है, वैसे यहाँ पर (देवनागरी पाठ में) उसी तरह की गर्भित निन्दा का शायद बोध कराने के लिए "वैधवेय" तद्धितान्त शब्द का प्रयोग किया गया है। सामाजिक जीवन में गिरावट आने पर भाषाकीय प्रयोगों में भी ऐसी नवीन अपशब्दों का प्रवेश होता है, जिनका प्रतिबिम्ब नाट्यकृतियों के पाठ में होना स्वाभाविक है। (टीकाकार राघवभट्ट दोनों तरह के पाठभेदों से परिचित थे। तथापि उन्होंने "वैधेय" पाठ को श्रेयान् कहा है। क्योंकि सामाजिक परिवर्तन की पूर्वोक्त बात को वे शायद नहीं समझे हैं।) 3. राजमाताओं के पुत्रपिण्डपालन-व्रत में, पारणा के दिन उपस्थित रहने के लिए विदूषक को भेजने का निर्णय होता है। तब विदूषक राजा को तुरंत कहता है कि- मैं राक्षसों से ड़र गया हूँ ऐसा नहीं मानना। यहाँ, काश्मीरादि सभी पाठों में राजा के मुख से "महाब्राह्मण, कथमेतद् सम्भाव्यते?" ऐसा प्रतिभाव निकलता है[1]। विदूषक के लिए इस शब्द का प्रयोग स्वप्न-वासवदत्त एवं मालविकाग्निमित्र में भी देखा जाता है। किन्तु यहाँ संक्षेपीकरण के आशय से "महाब्राह्मण" शब्द को देवनागरी पाठ में से हटाया गया होगा। क्योंकि काश्मीरी पाठ के पञ्चमांक में राजपुरोहित के लिए भी इसी "महाब्राह्मण"

1. काश्मीरी पाठ के पंचमांक में भी राजपुरोहित सोमरात को महाब्राह्मण कहा गया है।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शब्द का वक्रतायुक्त (sarcasm) प्रयोग हुआ है। जिसको नहीं समझने के कारण मैथिल एवं बंगीय पाठों में से उस शब्द को निकाल दिया है। संस्कृत साहित्य में इस शब्द का कटाक्ष में "अल्पज्ञ" या "श्मशान में शव-पूजा करवानेवाला पण्डित" ऐसे अर्थ में होता होगा[1]। विदूषक के लिए इसका प्रयोग समुचित है, किन्तु राजपुरोहित के लिए वह उचित नहीं होगा ऐसा सोच कर मैथिली एवं बंगाली पाठों में से उसे दूर किया गया होगा।। दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों ने अमुक विशिष्ट स्थानों में काश्मीरी पाठ का ही अनुगमन करना उचित समझा है, जिसका प्रमाण इस महाब्राह्मण शब्द के प्रयोग की रक्षा में मिल रहा है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -2, 38 एवं 125]

(2) भरतमुनि (24 /20) के अनुसार धीरललित नृप के लिए विदूषक ब्राह्मण होना अपेक्षित है। अतः कालिदास ने इस नाटक में विदूषक का नाम "माधव्य" रखा है। पाणिनि ने मधु-बभ्र्वो-र्ब्राह्मण-कौशिकयोः। पा. सू. 4-1-106 सूत्र से कहा है कि मधु नामके ब्राह्मण का पुत्र माधव्य कहलाता है। यदि मधु मास में पैदा हुआ हो या ब्राह्मणेतर मधु से उत्पन्न हो, तो "माधव" शब्द का विनियोग होता है। किन्तु जैसा कि पहले बताया है, दाक्षिणात्य पाठ का अनुसरण करते हुए देवनागरी पाठ में भी माधव्य नाम को संस्कृत-भाषी राजा दुष्यन्त के मुख से "माढव्य" ऐसे प्राकृत शब्द से ही सम्बोधित करवाया है। कालिदास ने विदूषक का नाम माधव्य क्यूँ रखा है? इस विषय में दुर्भाग्य से, अनेक विद्वानों को उपर्युक्त पाणिनि-सूत्र ध्यान में आया ही नहीं है। राघवभट्ट के द्वारा स्वीकृत देवनागरी पाठ में माढव्य शब्द दुष्यन्त के मुख में रखा है। फिर भी उसमें पाठसुधारणा करते हुए काशी के मूर्धन्यपण्डित प्रॉफे. श्री रेवाप्रसाद द्विवेदी जी ने लिखा है कि उन्होंने माढव्य शब्द को बदल कर "माधव्य" ही रखा है। इसका तर्क देते हुए उन्हों ने लिखा है कि- माढव्य of other editions is taken here as Maadhavya=माधव्य to suggest his वैशाखनन्दनत्व or foolishness- (द्रष्टव्य :- कालिदास ग्रन्थावली, 1986 की अंग्रेजी प्रस्तावना, पृ. 31) किन्तु यह कहना पाणिनीय सूत्र के विरुद्ध में है।। पुणें के विद्वान् श्री गोविन्द केशव भट ने विदूषक के "माढव्य" ऐसे प्राकृत नाम के लिए लिखा था कि इस नाम से उसकी मूर्खता व्यक्त होती है। (द्रष्टव्य- ध विदूषक, पृ. 83) किन्तु पाणिनीय अनुशासन की ओर उनका भी ध्यान नहीं गया है।। एवञ्च, यह भी हकीकत है कि इस नाटक के पाठ परिवर्तन का सिलसिला सोचने की या खोज ने की दिशा में किसी के द्वारा प्रयास ही नहीं हुआ है। (विदूषक के नाम को लेकर इसी विषय पर हमने कालिदास समारोह, उज्जयिनी में 1982 में एक शोध-आलेख भी प्रस्तुत किया था।)।।

(3) बृहत्पाठ-परम्परा-वाले (क) 1. काश्मीरी पाठ में राजा के मुख से विदूषक के लिए दो बार "मूर्ख", एक एक बार "अविशेषज्ञ" और "महाब्राह्मण" शब्द का प्रयोग हुआ है। अवशिष्ट संबोधनों में सखा, वयस्य एवं माधव्य नाम का प्रयोग भी हुआ है। 2. मैथिली पाठ में, राजा ने विदूषक को दो बार मूर्ख और एक बार महाब्राह्मण कहा है। तथा अन्य सन्दर्भों में वयस्य एवं सखा, या माधव्य शब्द से संबोधन किया है। 3. बंगाली पाठ में, राजा ने उसे दो बार मूर्ख, एक बार महाब्राह्मण कहा है। अन्यत्र वयस्य, सखा एवं माधव्य ऐसे शब्दों से संबोधित किया है। 4. किन्तु दाक्षिणात्य लघुपाठ में वही राजा ने विदूषक को सखा एवं वयस्य जैसे शब्दों से संबोधित किया है, किन्तु एक भी बार मूर्ख नहीं कहा है। हाँ, एक बार महाब्राह्मण जरूर कहा है। तथा माधव्य जैसे संस्कृत शब्द का माढव्य ऐसा प्राकृत ध्वनि-रूप ही उच्चारा है। 5. देवनागरी लघुपाठ में, विदूषक को एक ही बार मूर्ख कहा है, परन्तु महाब्राह्मण नहीं कहा है। उसके लिए सखा एवं वयस्य संबोधनों का प्रयोग भी किया है।। देवनागरी पाठ में से महाब्राह्मण ऐसा संबोधन निकाल देने की वजह क्या होगी? उस प्रश्न पर पहले विचार हो चुका है। इस लिए पुनरुक्ति नहीं करेंगे। (ख) तथा बृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं में विदूषक ने स्वयं "दास्याः पुत्रैः" (= "दासी का पुत्र" यानी गैर-कानूनी संतान) जैसी गाली का दो बार प्रयोग किया है। (एक बार शकुन-लब्धकों

---

1. महाब्राह्मण शब्द में विपरीत लक्षणा से (या रूढि से) निन्दित, निकृष्ट ब्राह्मण ऐसा अर्थबोध होता है। जैसे कि कहा है:- शङ्खे तैले तथा मांसे वैद्ये ज्यौतिषिके द्विजे। यात्रायां पथि निद्रायां महच्छब्दो न दीयते।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

के लिए और दूसरी बार सेनापति के लिए।) इसी तरह से दाक्षिणात्य पाठ में भी विदूषक ने इस गाली का दो बार उच्चारण किया है। किन्तु देवनागरी पाठ में विदूषक ने केवल एक बार ही उस अपशब्द का प्रयोग किया है, जिसमें सेनापति को दासी का पुत्र नहीं कहा है। ऐसा करने से पाठ में संक्षेप भी हुआ है और औचित्य का परिपालन भी हुआ है।। नाट्यकृति के पाठ में जब इस तरह से अपशब्दों (गालियों) का प्रयोग कम-ज्यादा होता दिखता है, एवं नये अपशब्दों का प्रवेश भी प्राप्त होता है, तो उनको रंगावृत्ति का ही लक्षण मानना तर्कसंगत होगा।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 89]

(4) देवनागरी पाठ के रचयिताओं ने विदूषक की उक्तियों में कुत्रचित् काकु-परिवर्तन भी किये हैं, जिसके कारण उसके वाचिकाभिनय में परिवर्तन हो जाता है। उदाहरणतया, 1. राजा विदूषक के पास शकुन्तला के रूप-सौन्दर्य की बात करना चाहता है। लेकिन विदूषक राजा के शकुन्तला-विषयक प्रेमालाप को सुनना नहीं चाहता है। इस लिए, काश्मीरी आदि तीनों पाठों में, वह कहता है कि- "यदा तावत् सा तापसकन्यकाऽप्रार्थनीया, तत् किं तया दृष्टया?"। यही उक्ति दाक्षिणात्य पाठ में प्रश्नार्थक स्वरूप में प्रस्तुत होती है:- "भो वयस्य, अद्य तापसकन्यका किम् अभ्यर्थनीया दृश्यते?"। किन्तु देवनागरी पाठ में यही उक्ति को साश्चर्य प्रस्तुत की जाती है:- "भो वयस्य, ते तापसकन्याऽभ्यर्थनीया दृश्यते!" (अरे वयस्य, लगता है कि आपको एक तापस की कन्या (भी) अभ्यर्थनीय दिख रही है!)। 2. मैथिली एवं बंगाली पाठों में, पूर्वोक्त सन्दर्भ के बाद, राजा विदूषक को मूर्ख कहते हुए पूछते हैं कि नई इन्दुकला (शुक्लपक्ष की द्वितीया का चन्द्रमा) भी अनभ्यर्थनीय (यानी अप्राप्तव्य=प्राप्तुम् अशक्या) होती है, फिर भी लोग उसको किस भाव से देखते हैं?। यानी, क्या लोग उसको नहीं देखते हैं? (श्लोकः 2-8)। विशेष में राजा यह भी बोलते हैं कि- "न च परिहार्ये वस्तुनि दुष्मन्तस्य / दुःषन्तस्य मनः प्रवर्तते।" (और दुष्यन्त का मन कभी भी परिहरणीय वस्तु की ओर मुड़ता नहीं है।) लेकिन काश्मीरी पाठ में से निराकृतनिमेषाभिः० वाला श्लोक (2-8) हटाया गया है। इस लिए वहाँ पर राजा ने उसी वाक्य को प्रश्न के रूप में परिवर्तित करके कहा है:- "मूर्ख, परिहार्येऽपि वस्तुनि दुष्यन्तस्य मनः प्रवर्तते?"। (मूर्ख, क्या परिहार्य वस्तु के लिए भी दुष्यन्त का मन प्रवृत्त होता है?।) किन्तु दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों में यही उक्ति राजा के द्वारा बहुत प्यार से विदूषक को कही जाती है:- सखे, न परिहार्ये वस्तुनि पौरवाणां मनः प्रवर्तते। यहाँ राजा ने विदूषक को "सखा" शब्द से संबोधित किया है, और अपने आप को "पौरव" के रूप में उल्लिखित किया है यह भी ध्यानास्पद है। 3. विदूषक ने राजा को पूछा कि उस शकुन्तला का आपके प्रति कैसा चित्तानुराग है?। दुष्यन्त बताता है कि- "अभिमुखं मयि संहृतमीक्षितं हसितमन्यनिमित्तकथोदयमि" ति (2-12) इत्यादि। तब (काश्मीरी पाठ में) विदूषक कहता है कि- "किं खलु सा भवतो दृष्टमात्रस्यैवाङ्कमारोहतु?"। (अर्थात्- क्या वह, **आपने** उसको देखा है- इतने मात्र से ही आपकी गोदी में बैठ जायेगी?)। इसी सन्दर्भ में, मैथिली पाठ में, विदूषक ने शकुन्तला के "दृष्टिराग" के विषय में प्रश्न पूछ कर कहा है कि- "किं खलु दृष्टिमात्रेणैवाङ्कम् आरोहतु?"। (अर्थात्- क्या **उसके देखने** मात्र से आप मानते हैं कि वह आपकी गोदी में आकर बैठ जायेगी?।) बंगाली पाठ के अनुसार विदूषक कहता है कि- "किन्नु खलु दृष्टमात्रस्यैव भवत अङ्कम् आरोहतु?"। (अर्थात्- क्या **जिसको आपने केवल देखा** ही है वह आपकी गोदी में बैठ जायेगी?)। अब चतुर्थ सोपान पर दाक्षिणात्य पाठ में, विदूषक की उक्ति है:- "किं नु खलु सा दृष्टमात्रस्यैव तवाङ्कम् आरोहति?"। (अर्थात्- क्या वह, **आपने** उसको देखा है- इतने मात्र से ही आपकी गोदी में बैठेगी?) यहाँ काश्मीरी पाठ का अनुगमन दिखता है। परन्तु देवनागरी पाठ में काकु-परिवर्तन करके, प्रश्न के स्थान में सीधा विधान वाक्य ही आ जाता है:-"न खलु दृष्टमात्रस्य तवाङ्कं समारोहति"। (अर्थात्- उसने **जिसको केवल देखा** ही है वैसे आपकी गोदी में आकर, वह बैठने वाली नहीं है।) [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 57,58 एवं 73]

(5) विदूषक की एक उक्ति ध्यान में आ रही है कि जिसमें बार बार परिवर्तन किया गया है। इसी एक उक्ति के पाठान्तरों को देख कर भी निश्चित हो सकता है कि उपलब्ध सभी वाचनाओं के पाठ में रंगकर्मियों का ही सीधा

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

हस्तक्षेप है। जैसे कि, विदूषक ने राजा से पूछा कि आपके लिए शकुन्तला का चित्तानुराग कैसा है, तब राजा ने "अभिमुखं मयि संहृतमीक्षितं० (2-12)" एवं "दर्भाङ्कुरेण चरणः० (2-13)" इन दो श्लोकों से "शकुन्तला भी दुष्यन्त के प्रति प्रेमाविष्ट हुई है" उसके कुछ प्रमाण दिये हैं। जिसको सुन कर विदूषक ने ठीक तरह से जान लिया कि दोनों ही परस्पर में समान रूप से अनुरक्त हो गये हैं। तब वह तुरंत कहता है कि, "भो गहीदपाधेयो होसि। कधं पुणो उण तवोवणगमणं ति पेक्खामि। (भोः गृहीतपाथेयो भवसि। कथं पुनः पुनस्तपोवन-गमन-मिति प्रेक्षे।)" मतलब कि शकुन्तला और दुष्यन्त यदि परस्परानुरक्त हुए है तो फिर दुष्यन्त को बारबार कण्वाश्रम में जाना होगा। और उसके लिए वह पहली सलाह यही देता है कि राजा तुम पाथेय (पथि भोजनम्) साथ में लेलो। तत्पश्चात् (काश्मीरी पाठ के अनुसार) वह स्वयं भी एक मित्र होने के नाते सोचना शुरू करता है कि आप कैसे पुनः पुनः तपोवन में जा पायेंगे?। विदूषक की प्रसंगोचित बात सुन कर राजा ने भी तुरंत कहा कि, हे सखा, तो फिर तुम ही कोई उपाय ढूँढ़ निकालो कि कैसे मैं आश्रम में जा पाऊँगा। विदूषक ने उपाय खोजने की तत्परता दिखाते हुए समाधि लगाने की चेष्टा शुरू की, व राजा से विज्ञप्ति भी की कि तुम निरर्थक रोना-धोना शूरू करके, मेरी समाधि में विक्षेप नहीं ड़ालना। यहाँ रंगमंच पर विदूषक समाधि-मग्न होने का अभिनय पेश करता है। इस सन्दर्भ की संवादमाला इन शब्दों में (काश्मीरी पाठ में) उपलब्ध होती है:- **राजा-** सखे, चिन्तय तावत् केनोपायेन पुनराश्रमपदं गच्छामः। **विदूषकः-** एसो चिन्तेमि। मा खु से अलीअपरिदेविदेहिं समाधिं भञ्जिहिसि। (एष चिन्तयामि, मा खलु अस्यालीक-परिदेवितैः समाधिं भाङ्क्षीः।) उपर्युक्त सन्दर्भ का काश्मीरी-पाठ मैथिली वाचना में बहुत कुछ परिवर्तित किया गया है। जिसमें विदूषक के द्वारा रंगमंच पर समाधि लगाने की चेष्टा का न कोई अभिनय है, और उसका कोई नाम- निर्देश नहीं है। तथा यहाँ विदूषक राजा को पाथेय भर लेने की सलाह नहीं देता है। किन्तु उसको ऐसा लगता है कि शकुन्तला ने राजा के प्रति अनुराग दिखा कर उसका पाथेय भर दिया है! जैसे कि, **विदूषकः** - गहिदपाधेओ भवं किदो तए। अणुरञ्जिदं तवोवणं ति तक्केमि। (गृहीतपाथेयो भवान् कृतस्तया। अनुरञ्जितं तपोवनम् इति तर्कयामि।) राजा- सखे, चिन्तय तावत्। केनापदेशेन पुनराश्रमपदं गच्छामः। **विदूषकः-** को अवरो अवदेसो। णं भवं राआ। (क अपरोऽपदेशः। ननु भवान् राजा।) इस मैथिल पाठ में चित्ताकर्षकता को बढ़ावा जरूर दिया गया है, लेकिन उसमें कुछ विसंगति अन्तर्निहित है। तद्यथा "अनुरञ्जितं तपोवनम्" इस वाक्य में विधेय पद को प्राथम्य दिया गया है, और उद्देश्य वाचक पद को द्वितीय क्रम पर रखा गया है। यह पाठ का शास्त्रीय दृष्टि से दोषपूर्ण है। इस दोष को दूर करने के लिए बंगाली पाठशोधकों ने "गहिद-पाधेओ किदो सि ताए। ता अणुरत्तं तवोवणे तुमं तक्केमि। (गृहीतपाथेयो कृतोऽसि तया। तदनुरक्तं तपोवने त्वां तर्कयामि।)" ऐसा पाठान्तर प्रस्तुत किया है। इसमें विदूषक राजा को कहता है कि इस तपोवन में तुम अनुरक्त हुए हो, यानी तपोवन में तुम प्रेमासक्त हुए हो ऐसा मुझे लगता है। इस तरह के पाठान्तर से अब, यहाँ जो उद्देश्य-विधेय वाचक पदों में क्रमभङ्ग हो रहा था वह ठीक हो जाता है। किन्तु वर्तमान में प्रचलित दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों में भी ऐसे ही दोषपूर्ण नवीन पाठान्तर ने जन्म ले लिया है। "तेण हि गहीदपाहेओ होहि। किदं तुए उववणं तवोवणं ति पेक्खामि। (तेन हि गृहीतपाथेयो भव। कृतं त्वया उपवनं तपोवनमिति पश्यामि।)" [= तभी तो आप अपने साथ में पाथेय को रख लो। क्योंकि आपने तो कर दिया है उपवन को तपोवन।] इस वाक्य पर राघवभट्ट ने टीका लिखी है कि, कृतं त्वयोपवनं तपोवनमिति पश्यामि। उद्देश्य- विधेयभावे व्यत्ययो ज्ञेयः[1]।। [मतलब कि यहाँ "कृतं त्वया तपोवनम् उपवनम्।" अर्थात् आपने तपोवन को उपवन बना लिया है, (इस लिए पाथेय रख लो) ऐसा पदक्रम होना चाहिए।] महिमभट्ट द्वारा दी हुई दृष्टि से राघवभट्ट ने यहाँ जो काव्यशास्त्रीय दोष देखा है, वह इस उक्ति के वाचिकाभिनय के दौरान, हो सकता है कि नटों के किसी तरह के ध्वनिगत आरोहावरोह से, दोष रूप प्रतीत न भी होता हो।। यहाँ द्रष्टव्य है कि

1. राघवभट्टकृतार्थद्योतनिकाव्याख्यया सनाथीकृतम् अभिज्ञानशाकुन्तलम्। सं. नारायण राम, प्रकाशकः राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नव देहली, 2006, (पृ. 76)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

काश्मीर की रंगावृत्ति का यह प्राचीनतम पाठ अनुगामी काल में बारबार बदलता रहा है, और फिर भी वह आज तक बैचेन भी रहा है! रंगकर्मियों के लिए विदूषक की उक्तियाँ ही तोड़-जोड़ के लिए ज्यादा उपयुक्त सिद्ध होती हैं।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 76]

(6) केवल देवनागरी पाठ में ही उपलब्ध होनेवाले विशेष पाठान्तरों का भी विवरण देना प्रासंगिक है। 1. अंक के आरम्भ में विदूषक की उक्ति है। उसको मृगयाविहारी राजा के साथ आने पर उसको पर्वत की नदियाँ का जल पीना पड़ता है, जो वृक्षों के पर्णों के सांकर्य से कषायित है। ऐसा जल कटु एवं उष्ण भी होता है। इस उक्ति का काश्मीरी पाठ है:- "पत्रसंकरकषायाणि पीयन्ते कटुकान्युष्णानि गिरिनदीजलानि"। इसमें कषाय के अलावा कटु और उष्ण दो अन्य विशेषण है। मैथिली पाठ में, "पत्रसंकरकषायविरसानि पीयन्ते गिरिनद्या जलानि" इन शब्दों में कटु एवं उष्णता की शिकायत नहीं है। बंगाली पाठ के अनुसार "पत्रसंकरकषायविरसानि उष्णकटुकानि पीयन्ते गिरिनदीसलिनानि" ऐसे शब्द हैं। दाक्षिणात्य पाठ में "पत्रसंकरकषायाणि कदुष्णानि गिरिनिर्झर-जलानि पीयन्ते" मिलता है। देवनागरी पाठ को संक्षिप्त बनाने की प्रवृत्ति सक्रिय होने के कारण "कटु तथा उष्ण" और "कदुष्ण" जैसे पुरोगामी पाठों के विशेषणों का त्याग कर दिया गया है। जिसके कारण देवनागरी पाठ वास्तव-कथन से दूर हट जाता है। 2. काश्मीरी-आदि तीनों बृहत्पाठों में, विदूषक बोलता है कि, भो राजन्, न मे हस्तः प्रसरति। दाक्षिणात्य पाठ में, "भो वयस्य, हस्तौ न मे प्रसरतः" ऐसा द्विवचनान्त प्रयोग मिलता है। किन्तु देवनागरी पाठ में "भो वयस्य, न मे हस्तपादं प्रसरति" ऐसा समाहारद्वन्द्व का प्रयोग किया जाता है। इस परिवर्तन में विदूषक की भारी बेहाली दिखाने के साथ साथ व्याकरण की विद्वत्ता भी झलकती है। 3. दौवारिक सेनापति को राजा के पास ले जाते हुए कहता है:- (काश्मीरी पाठ में,) आर्य, एष खल्वनुवचनदत्तकर्णः इतो दत्तदृष्टिरेव भर्ता त्वां प्रतिपालयति। उसके सामने मैथिली पाठ में से "इतो दत्तदृष्टिः" शब्द को हटाया गया है। बंगाली पाठ में, "एतु एतु आर्यः। एष आलापदत्तकर्णः भर्ता इत एव तिष्ठति।" यद्यपि बंगाली पाठ का यह परिवर्तन सन्दर्भोचित नहीं है। क्योंकि सेनापति ने रंगमंच पर प्रवेश करते हुए कुछ बात-चीत नहीं की है, तथा अभी तक अनवरतधनुर्ज्या०-वाला श्लोक भी नहीं गाया है। (दाक्षिणात्य पाठ में भी बंगाली पाठ का अनुसरण करते हुए, अनवरतधनुर्ज्या० वाले श्लोक का उपस्थिति-क्रम बदल दिया है। इस लिए) इस दोष से बचने के लिए दाक्षिणात्य पाठ में तीसरा परिवर्तन दाखिल होता है:- "एष आज्ञापनोत्कण्ठो भर्ता इतो दत्तदृष्टिस्तिष्ठति।" एवमेव, देवनागरी पाठ में भी, "एष आज्ञावचनोत्कण्ठः भर्ता इतो दत्तदृष्टिरेव तिष्ठति।" ऐसा चौथा पाठान्तर प्रविष्ट हुआ है। यद्यपि यह नया पाठान्तर सरलीकरण के आशय से प्रस्तावित हुआ है। 4. शकुन्तला में अनुरक्त हुआ दुष्यन्त विदूषक से पूछता है कि किस उपाय से मैं आश्रम में जा सकता हूँ?। इस सन्दर्भ का संवाद काश्मीरी-आदि चारों पाठों में एक समान रीति से तीन अलग अलग उक्तियों में प्रस्तुत होता है। किन्तु देवनागरी पाठ में संक्षेपीकरण के आशय से केवल एक ही में सब रख दिया है। ऐसा करने से प्रस्तुत सन्दर्भ की नाटकीयता को हानि पहुँचती है। 5. कण्वाश्रम के दो ऋषिकुमार राजा की साहाय्य की अभ्यर्थना करने के लिए आये हैं। उनमें से दूसरा ऋषिकुमार नैतच्चित्रं यदयमुदधि-श्याम-सीमां० श्लोक का गान करता है। इस श्लोक के उत्तरार्ध में दो तरह के पाठभेद ध्यानास्पद हैं :- (क) काश्मीरादि तीनों बृहत्पाठों में "सुरसमिति" का उल्लेख है, किन्तु लघुपाठवाली दोनों वाचनाओं में "सुरयुवतयः" का निर्देश आता है। यहाँ प्रथम पाठ में प्रासंगिकता स्पष्ट है, किन्तु दूसरे पाठभेद में अस्थान में शृङ्गारिक पाश चढ़ाया जा रहा है- ऐसा प्रतीत होता है। (ख) दाक्षिणात्य पाठ में "आशंसन्ते सुरयुवतयः त्यक्तभोगा हि दैत्यैः" (सुरयुवतियाँ इन्द्र के विजय की कामना कर रही है। क्योंकि दैत्यों के हेतु से उन देवियों को सुख-भोग का त्याग करना पड़ा है।) ऐसा परिवर्तन किया है। उनके प्रतिपक्ष में देवनागरी पाठ में "०बद्धवैराः हि दैत्यैः" (अर्थात्- सुरयुवतियाँ इन्द्र के विजय की कामना कर रही है। क्योंकि उन देवियों ने दैत्यों के साथ वैर बाँध लिया है।) ऐसा एक विशेष पाठभेद किया जाता है। जो वर्ण्य-विषय में बेढंगा प्रतीत हो रहा है। बृहत्पाठ की अपेक्षा से जो नया पाठान्तर लघुपाठ परम्पराओं में दाखिल किये गये हैं

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

वे अनतिरमणीय अथवा अनुचित ही लगते हैं। 7. द्वितीयांक के अन्तभाग में राजमाताओं द्वारा प्रेषित करभक राजा के पास आया है। काश्मीरादि बृहत्पाठों में उसकी उक्ति है कि- "आगामिनि चतुर्थदिवसे पुत्रपिण्डकदानको / पुत्रपिण्डपर्युपासनो / पुत्रपिण्डपालनो नामोपवासो भविष्यति।" इन सब में राजमाताओं के उपवास का निमित्त नामशः कहा गया है। किन्तु दाक्षिणात्य पाठ में उस उपवास का नाम "निवृत्त-पारणो" ऐसा दिया है। तथा देवनागरी पाठ में "प्रवृत्तपारणो" ऐसा पाठभेद मिलता है। अर्थसंगति के हिसाब से सब पाठ लग सकते हैं। किन्तु नाटक के आरम्भ में दुष्यन्त को चक्रवर्ती पुत्रप्राप्ति का जो आशीर्वाद दिया गया है और जिसके कुछ कुछ संकेत सातों अंकों में बिखेरे गये हैं। इस बिन्दु को ध्यान में लेकर सोचेंगे तो लघुपाठों के पाठान्तर दूराकृष्ट प्रतीत होते हैं। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 2, 11, 32, 78, 93 एवं118]

(7) अब रही बात इन दोनों लघुपाठों के "संक्षिप्त एवं संमिश्रित पाठ" होने की। तो जैसा प्रथम अंक का विश्लेषण करते हुए बताया था, वैसे इस अंक में भी वे बिन्दु सर्वथा दिखाये जा सकते हैं। जैसे कि, 1. दाक्षिणात्य पाठ की अपेक्षा से देवनागरी पाठ संक्षिप्ततर बनाया गया है। और 2. पुरोगामी तीनों बृहत्पाठों के पाठान्तरों का चयन भी यथेच्छतया किया गया है। यद्यपि देवनागरी पाठ में बहुशः तो दाक्षिणात्य पाठान्तरों का अनुसरण ही किया गया है, तथापि काश्मीरादि के पाठान्तरों का भी स्वीकार किया गया है। किन्तु विस्तार होने के भय से हम उसका विवरण नहीं दे रहे हैं। सुज्ञ पाठकों को, इसके लिए द्वितीयांक का पाठ जहाँ दिया गया है, वहाँ पादटिप्पणियाँ देखने का अनुरोध करते हैं।।

॥ तृतीयोऽङ्कः॥

इस तृतीयांक में नायक-नायिका का गान्धर्व-विवाह निर्दिष्ट किया जाता है। किन्तु कालिदास ने जिसका निरूपण समुचित विस्तार के साथ किया था (और जिसका स्वरूप बृहत्पाठ परम्परावाली तीनों वाचनाओं के पाठ में प्रायः सुरक्षित रहा दिख रहा है,) उसकी कटौती करके दाक्षिणात्य रंगकर्मियों ने एक संक्षिप्त स्वरूप हमारे सामने पेश किया है। तत्पश्चात् देवनागरी पाठ का संग्रथन करनेवाले अन्य रंगकर्मियों ने उसीका बहुशः अनुसरण करते हुए, कुछ और स्थानों में छोटे छोटे संक्षेप करके, उसी संक्षिप्त पाठ को संक्षिप्ततर पाठ बना कर हमारे सामने रखा है। अतः देवनागरी पाठ की कुछ विशेषताएँ प्रस्तुत विवरण में देखना जरूरी हैं :-

(1) सब से पहले, देवनागरी पाठ के संग्रथन-कर्ताओं ने परम्परागत दाक्षिणात्य पाठ में जो जो परिवर्तन किये हैं, और कुछ नवीन पाठान्तरों को प्रवर्तित किये हैं, उनको देखते हैं :- (क) अंक के आरम्भ में आये अर्थोपक्षेपक को, दाक्षिणात्य पाठ में "शुद्धविष्कम्भक" कहा गया था। देवनागरी पाठ के रचयिताओं ने उसे केवल "विष्कम्भक" ऐसा नाम दिया है। किन्तु ये दोनों ही नाम दशरूपकादि-अनुसार परवर्ती काल के है। (क्योंकि भरत ने नाट्यशास्त्र में तो नाटक प्रकार के रूपक के लिए अर्थोपक्षेपक का नाम "प्रवेशक" ही दिया था, जो काश्मीरादि तीनों पाठों में सुरक्षित भी रहा है।) (ख) दोनों सखियों ने शकुन्तला को कहा है कि, "स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवति"। यह देवनागरी पाठ में है। किन्तु काश्मीरी-मैथिली-बंगाली पाठों में "संविभक्तं खलु दुःखं सह्यवेदनं भवति" इतना ही कहा गया है। तथा दाक्षिणात्य पाठ ने भी काश्मीरी पाठ का अनुसरण किया है। केवल देवनागरी पाठ में स्निग्ध जनों में बाँटा गया दुःख ही सहनीय बनता है- ऐसा विशेष रूप से कहा गया है। (ग) शकुन्तला अपनी सहेलियों से कहती है कि उस तपोवन-रक्षिता राजर्षि के साथ मेरा संगम करवाओ। नहीं तो मेरा जीना सम्भव नहीं होगा। यह बात बताने के लिए तीन पाठान्तर उपलब्ध हो रहे हैं। जैसे कि, काश्मीरी एवं मैथिली पाठ में- "अन्यथा मां सिञ्चतमिदानीमुदकेन"। मतलब कि मेरे पर पानी छिड़क देना। बंगाली पाठ कहता है कि "अन्यथा स्मरतं माम्" यानी मैं, शकुन्तला स्मृतिशेष बन जाऊँगी। इस सन्दर्भ में, दाक्षिणात्य पाठ ने काश्मीरी पाठ का अनुसरण किया है। किन्तु देवनागरी पाठ में लिखा है कि, "अन्यथा सिञ्चतं मे तिलोदकम्"। यानी मेरे शव पर तिल और पानी छिड़क देना। लगता है कि किसी व्यक्ति के मर जाने के

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

बाद, तिलोदक छिड़कने का विधि प्रदेश-विशेष में, एवं उत्तरवर्ती काल में प्रचलन में आया होगा, उसके अनुसार इस तीसरे पाठभेद ने देवनागरी वाचना में प्रवेश किया है। (घ) शकुन्तला की उपर्युक्त उक्ति को सुनते ही, (काश्मीरादि सभी पाठों में) राजा दुष्यन्त के मुख से "विमर्शच्छेदि वचनम्" ऐसा वाक्य निकलता है। किन्तु केवल देवनागरी पाठ में "संशयच्छेदि वचनम्" ऐसा नवीन पाठान्तर देखने को मिलता है। विमर्श के स्थान में संशय शब्द आने से नायक दुष्यन्त की मानसिकता में बहुत बड़ा बदलाव आ जाता है। भ्रमरबाधा-प्रसंग में हमें कहा गया है कि दुष्यन्त तो यह असवर्णक्षेत्रसम्भवा / क्षत्रियसम्भवा होगी कि नहीं? उसके परामर्शन में लगे थे। लेकिन देवनागरी पाठ जब कहता है कि संशयच्छेदि वचन है- तब नायक की संदिग्धता कही जाती है। देवनागरी पाठ पूर्वोक्त कथन के साथ संगत नहीं है। (ङ) शकुन्तला ने जो मदनलेख लिखा है उसके शब्द तो इस तरह के हैं :- निर्घृण, तपति बलीयस्त्वयि वृत्तमनोरथान्यङ्गानि। यह देवनागरी पाठ है। जिसके प्राकृतशब्द "वुत्त-मणोरहाइं" है। परन्तु जब अन्य काश्मीरादि वाचनाओं के पाठ साथ तुलनात्मक दृष्टि से देखते हैं, तब वहाँ "हुत्तमणोरहाइ" शब्द मिलता है। हेमचन्द्राचार्य ने प्राकृत व्याकरण (8-2-158) में बताया है कि अभिमुख अर्थ में भी हुत्त शब्द मिलता है। इस प्राकृत-देशी शब्द को नहीं समझने के कारण, कालान्तर में यानी दाक्षिणात्य पाठ के अज्ञात संग्रथन-कर्ताओं ने "जुत्तमणोरहाइ" के रूप में परिवर्तित कर दिया। लेकिन देवनागरी पाठ में उसे ही "वुत्तमणोरहाइ" (वृत्तमनोरथानि) के रूप में बदल दिया। इन तीनों पाठभेदों में क्रमशः सरलीकरण का आशय देखा जा सकता है। तथा रंगावृत्तियों में इस तरह के परिवर्तन होना अवश्यंभावी है, अनिवार्य है। (च) राजा शकुन्तला के मदनलेख के शब्दों को सुनते ही रंगमंच पर प्रकट होते हैं। तब अनसूया राजा दुष्यन्त को कहती है कि, "इतः शिलातलैकदेशम् अनुगृह्णातु वयस्यः"। काश्मीरी पाठ से लेकर दाक्षिणात्य पाठ पर्यन्त यही पाठ चलता रहा है। किन्तु देवनागरी पाठवालों ने उसे परिष्कृत करने के लिए "०अलंकरोतु वयस्यः" में परिवर्तित कर दिया है। (छ) राजा दुष्यन्त ने प्रतिज्ञा-वचन सुनाते हुए कहा कि- "०समुद्रवसना चोर्वी सखी च युवयोरियम्"। इस देवनागरी के आविष्कार से पहले, काश्मीरी पाठ में "धर्मेणोल्लिखिता लक्ष्मीः" ऐसे शब्द थे। तत्पश्चात् मैथिली और बंगाली पाठों में "समुद्ररसना चोर्वी सखी च युवयोरियम्" ऐसा पाठभेद मिलता है। दाक्षिणात्य पाठपरम्परा में "स़मुद्ररशना चोर्वी०" ऐसा तीसरा विशदीकृत पाठभेद प्रस्तुत किया गया। मैथिली टीकाकार शंकर और देवनागरी पाठ के टीकाकार राघव भट्ट ने "समुद्ररसना / समुद्रवसना चोर्वी सखी च युवयोरियम्" पङ्क्ति में रहे पृथिवी के विशेषण को शकुन्तला के लिए भी कैसे घटित किया जा सकता है? वह दिखाने के लिए पाण्डित्य प्रकट किया है[1]। किन्तु राजाओं के लिए पहली पत्नी पृथिवी होती है, और द्वितीय पत्नी के रूप में रानी होती है- ऐसा प्रघात कब से शुरू हुआ होगा? यह भी गवेषणीय बिन्दु है। क्योंकि काश्मीरी पाठान्तर को केवल प्रादेशिक पाठ समझ कर उसकी उपेक्षा कर देने से प्राचीन भारतीय संस्कृति की विकास-यात्रा अन्धेरे में छिप कर रह जायेगी। (ज) देवनागरी पाठ में जहाँ पर नवीन पाठान्तर मिलते हैं, वे प्रायः उत्तम या आकर्षक नहीं होते हैं। जैसे कि, इस अंक के उपान्त्य श्लोक में द्वितीय चरण है:- "क्लान्तो मन्मथलेख एष नलिनीपत्रे नखैरर्पितः"। यह है देवनागरी पाठ। किन्तु उसके प्रतिपक्ष में काश्मीर-मैथिली-बंगाली

---

1. समुद्र एव रसना मेखला यस्याः सा समुद्रावच्छिन्ना उर्वी मही, युवयोरियं सखी शकुन्तला। तत्पक्षे समुद्ररसना सचिह्नमेखला। यद्वा समुद्ररसना साङ्गुरीयमेखला। यद्वा मुदं हर्षं राति ददाति मुद्रं हर्षदं यद्रसनं भाषणं, तेन सह वर्तते, समुद्ररसना प्रियभाषिणीत्यर्थः।। क्वचित् समुद्रवसनेति पाठस्तत्र समुद्रवसना सचिह्नवस्त्रा। यद्वा समुद्रे वसनं वसतिर्यस्याः सा लक्ष्मीरूपैवेयमित्यर्थः। रा दाने धातुः। उर्वीपक्षे, समुद्रा एव वसनानि वस्त्राणि यस्यास्तादृशी।। -शंकरकृता रसचन्द्रिका, पृ. 218-219। (किन्तु शंकर के ध्यान से यह बात निकल गई है कि राजा ने अभी अपनी अंगूठी शकुन्तला को नहीं पहनाई है!) राघवभट्ट लिखते हैं कि- समुद्र एव वसनमाच्छादनमवधित्वेन यस्याः सोर्वी मही। मुदं प्रीतिं राति ददातीति मुद्रम्। मुद्रं च तद्वसनं च मुद्रवसनम्। तेन सह वर्तमानेति सखीविशेषणम्। -अर्थद्योतनिका, पृ. 105। शकुन्तला के लिए यह समुद्रवसना या समुद्ररसना जैसे विशेषण को चरितार्थ करने की चेष्टा, या खींचातानी ही काश्मीरी पाठ को स्पृहणीय एवं श्रद्धेय होने की प्रतीति करवा रहा है।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

पाठों में "कान्ते" ऐसा सप्तम्यन्त पाठ है। तथा दाक्षिणात्य पाठ में "क्लान्ते" ऐसा पाठान्तर भी सप्तम्यन्त है। ये दोनों ही सप्तम्यन्त पाठान्तर "नलिनीपत्रे" पद का विशेषण बनते हैं। किन्तु देवनागरी परम्परा ने जो "क्लान्तः" ऐसा प्रथमान्त पद तीसरे पाठभेद के रूप में दिया है, तब वह मन्मथलेख का विशेषण बनता है। जिसके कारण, अब दुष्यन्त प्रियतमा शकुन्तला की तीन चीजों (पुष्पशय्या, मन्मथलेख और बिसाभरण) पर, जिनका उद्देश्य-वाचिका प्रथमा विभक्ति में निर्देश है, "आसज्यमानेक्षण" कैसे, क्यूं बनेगा? ऐसा प्रश्न होता है! क्योंकि नलिनीपत्र कान्त हो या क्लान्त हो, वह महत्त्व का है ही नहीं। जो महत्त्व रखता है वह तो मन्मथलेख है। प्रिया का मदनलेख कदापि क्लान्त नहीं होता है! आधुनिक सम्पादकों में से जिन्हों ने भी (राघवभट्ट के द्वारा पुरस्कृत) इस पाठ को स्वीकारा होगा, उनकी दृष्टि में शायद ही यह विसंगति आयी होगी।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 5, 34, 39, 40, 66, 72, 84 एवं 121]

(2) देवनागरी पाठ ने कुत्रचित् नया प्रक्षेप भी किया है। जैसे कि, अनसूया ने इतिहास में विदित कथाओं के आधार पर अनुमान तो किया है कि शकुन्तला की दशा एक कामयमान व्यक्ति की है। लेकिन वह शकुन्तला से सुनना चाहती है कि शकुन्तला के विकार का क्या कारण है? तब राजा के मुख से भी एक प्रतिभाव व्यक्त होता है:- "अनसूयया / अनसूयाम् अपि अनुगतो मदीयस्तर्कः"। यह वाक्य सर्वत्र एकसमान उपलब्ध होता है। लेकिन देवनागरी पाठ में इस वाक्य के बाद तुरंत दूसरा वाक्य भी दुष्यन्त के मुख से निकलता है:- "नहि स्वाभिप्रायेण मे दर्शनम्"। जो पूर्वोक्त कथन का ही विशदीकरण है। अतः प्रक्षिप्त वाक्य कहना चाहिए।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 28]

(3) संक्षेपीकरण के सन्दर्भ में देवनागरी पाठ ने दाक्षिणात्य पाठ का सीधा अनुसरण किया है। अतः उस सन्दर्भ में कुछ नया जोड़ने की जरूरत नहीं है। किन्तु अन्य सन्दर्भों में देवनागरी पाठ ने कितना किसका अनुसरण किया है वह बताना होगा:- (क) दाक्षिणात्य पाठ का 40 स्थानों पर देवनागरी पाठ ने अनुसरण किया है। (ख) दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों ने काश्मीरी पाठ का 11 स्थानों पर अनुसरण किया है। तथा (ग) मैथिली पाठ का अनुसरण भी 11 स्थानों पर किया है। (घ) कहीं पर भी देवनागरी पाठ में बंगाली पाठान्तरों का अनुसरण नहीं दिखता है।।

।। चतुर्थोऽङ्कः।।

कालिदास के इस नाटक में चतुर्थाङ्क को ही श्रेष्ठ माना गया है। पहले तीन अंकों में संभोग-शृङ्गार का निरूपण है, तो अन्तिम तीन अंकों में विप्रलम्भ-पूर्वक पूर्ण-मिलन का आलेखन है। यहाँ स्त्री-पुरुष के सहज सार्वभौम प्रेम को रखा गया है। इन दोनों के बीच में, मध्ये मणि-न्याय से (नवीन संघर्ष (दुर्वासा का शाप) तत्त्व का बीज-निक्षेप करने के बाद) पिता-पुत्री का निर्व्याज प्रेम, वात्सल्य साकार किया है। इस तरह से इस नाटक में आलिखित पिता-पुत्री के प्रेम का विषय अपूर्व भी है और अद्वितीय भी है। इतना ही नहीं, महाकवि ने इसमें शकुन्तला को निसर्ग-कन्या के रूप में प्रस्तुत किया है। अतः माता वनदेवताओं के स्नेह से संसिक्त होती हुई एक बेटी भी यहाँ द्रष्टव्य बनती है। जो, इस अंक को, समग्र नाट्य-साहित्य में श्रेष्ठता प्रदान कर रहा है। अतः हमें देखना होगा कि देवनागरी पाठ को बनानेवाले पाठशोधकों ने इस अंक के पाठ में जहाँ जो परिवर्तन एवं काँट-छाँट की है, वह कितनी रमणीय या अरमणीय है?।

सब से पहले इन स्थानों की गिनती करना आवश्यक है जिनमें परिवर्तन हुए हैं :- 1. प्रभात-वर्णन के श्लोक, 2. शाप-मोचन की याचना करने के लिए कौन दुर्वासा के पास जाता है, और किसने शाप-वृत्तान्त शकुन्तला से संगोपित रखने का प्रस्ताव किया था, 3. वनदेवता की अनुज्ञा एवं कोकिलरव, 4. कोटर-सम्भवा मधुकरी का उपमान कहाँ गया, 5. तापसीवृन्द की उपस्थिति, 6. अमी वेदिं परितः० श्लोक का छन्द, 7. अनुमतगमना शकुन्तला० श्लोक का छन्द, 8. रंगमंच पर कितने शिष्यों की उपस्थिति, 9. शकुन्तला के लिए प्रयुक्त मलयपर्वतोन्मूलित चन्दनलता का, या करिसार्थ-परिभ्रष्टा करेणुका का उपमान, 10. आरण्यक पिता का औपनिषदिक उपदेश, 11. माधवी-लता / नवमालिका से बिदाई, 12.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

चक्रवाक-पक्षी सम्बन्धिनी गाथा की कटौती तथा 13. पिता-पुत्री का अन्तिम संवाद। इन सन्दर्भों में परम्परागत परिवर्तनों के उपरान्त, जब देवनागरी पाठ का संग्रथन किया गया होगा तब कैसे नवीन विकार दाखिल हुए हैं? यह समीक्षणीय है।।

(1) श्लोक-संख्या का तुलनात्मक अभ्यास करना चाहिए। काश्मीरी पाठ के अनुसार इस अंक में 26 श्लोक है, मैथिली में भी इतने ही श्लोक हैं। किन्तु बंगाली पाठ में 24 श्लोक हैं। मतलब कि उन्होंने दो श्लोक निकाल दिये हैं। जैसे कि- 1. यथा शरीरस्य शरीरिणश्च० एवं 2. अद्यापि विना प्रियेण गमयति रात्रिं विसूरणादीर्घाम्० (गाथा)। लेकिन दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों में 22 श्लोकों का स्वीकार किया गया है। इस अंक के सन्दर्भ में संक्षेपीकरण की प्रक्रिया बंगाली पाठ से शुरू होकर क्रमशः किस तरह से आगे बढ़ती है? यह जानना रसप्रद है:- लघुपाठवाली इन दोनों वाचनाओं में, 1. यथा शरीरस्य शरीरिणश्च०, 2. पुटकिनीपत्रान्तरितम् व्याहरति० (गाथा), 3. (प्राभातिक वर्णन से जुड़े चार श्लोकों में से,) कर्कन्धूनां तुहिनमुपरि० तथा 4. पादन्यासं क्षितिधर-गुरोः०। इन चार श्लोकों को हटाया गया हैं। यहाँ दो बिन्दु ध्यातव्य हैं: क. बंगाली पाठ में जिस गाथा को हटाया है, उससे भिन्न गाथा लघुपाठ में से हटाई गई है। तथा ख. बंगाली पाठशोधकों ने प्रभातवर्णन करनेवाले चार श्लोकों में से जिन दो श्लोकों को प्राथम्य दिया है, वे दोनों ही प्रक्षिप्त होते हुए भी, लघुपाठवालों ने उन दोनों को ही मान्य रखा है। तथा जो दो श्लोक मौलिक थे, वे हटा दिये हैं। मतलब कि इस सन्दर्भ में लघुपाठवालों ने बंगाली पाठ का जो आंशिक अनुसरण किया है, वह समुचित नहीं है।। एवञ्च, ग. शकुन्तला की विदाई के समय एक आरण्यक पिता ने तपोवन में पली कन्या को जो औपनिषदिक दर्शन "यथा शरीरस्य शरीरिणश्च पृथक्त्वमेकान्तत एव भावि०" उपदेश के रूप में भेंट किया है- उसको भी निकाला है, (जिसमें भी बंगाली पाठ का अनुसरण किया है)। यह एक ऐसा संक्षेप है कि जो इस श्रेष्ठ माने गये चतुर्थाङ्क की अनुपम सुन्दरता को निश्चित रूप से हानि पहुँचाने वाला कार्य है।।

(2) दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों में (क) अनुमतगमना शकुन्तला० (4-10) श्लोक को अपरवक्त्र छन्द में दिया गया है। लेकिन उनसे पहले, यानी बृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं में, इस श्लोक के प्रथम एवं तृतीय पादों में एकादश अक्षरों के स्थान में द्वादश अक्षर प्राप्त होते हैं। (अनुमतगमना शकुन्तला सा० इति) मतलब कि, डॉ. रिचार्ड पिशेल के मत से, इस श्लोक में पुष्पिताग्रा एवं अपरवक्त्र छन्द के पादों का मिश्रण किया गया है- ऐसा कहना होगा। लगता है कि लघुपाठ परम्परा के दाक्षिणात्य पाठ का ग्रथन करने के मौके पर ही इस तरह के मिश्रण को हटा कर, एक नियमित छन्द का प्रयोग प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई होगी, जिसका देवनागरी पाठ में अनुसरण किया गया है। (ख) काश्यप मुनि ने वैतानिक अग्नि की प्रदक्षिणा करवाते समय "अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः०" श्लोक का उच्चारण किया है। लघुपाठवाली दोनों वाचनाओं में "ऋक्छन्दसाशास्ते" ऐसी रंगसूचना प्रथम बार देखी जाती है। उनसे पहले बृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं में ऐसी कोई रंगसूचना नहीं थी। डॉ. रिचार्ड पिशेल के मत से इस श्लोक में वैदिक त्रिष्टुप्-छन्द का विनियोग हुआ है। किन्तु किशोरकेलि-टीकाकार ने लिखा है कि इसमें "वातोर्मी-शालिन्योर्मिश्रणनाद् उपजातिभेद इति केचिद्"। (पृ. 277)।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 116, 105 एवं 106]

(3) कण्व मुनि के आश्रम में कितनी लताएँ थीं? यह उपलब्ध पाठान्तरों के सन्दर्भ में विवादास्पद है। किन्तु बृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं में, उच्चतर समीक्षा के मानदण्ड से माधवीलता का होना प्रक्षिप्त सिद्ध होता है। किन्तु लघुपाठ वाली दोनों वाचनाओं में शायद संक्षेपीकरण के आशय से उस माधवीलता से सम्बद्ध संवाद हटा दिया है, तथा उसी को नवमालिका से सम्बद्ध किया गया है। जिसके कारण यह पाठ-परिवर्तन सुसंगत लगता है।।

(4) दाक्षिणात्य संक्षिप्त पाठ की अपेक्षा से देवनागरी पाठ को संक्षिप्ततर बनाया गया है- ऐसा निरीक्षण प्रस्तुत किया गया है। किन्तु ऐसे संक्षेपों से इस अंक की आत्मा को कितनी गम्भीर हानि पहुँचाई है, वह भी कहना आवश्यक

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

है:- (क) पिता कण्व "पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलम्०" श्लोक बोल कर, निसर्ग से अभ्यर्थना करते हैं कि "सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्"। लेकिन उससे पहले वे वनस्पतियों से सम्बोधन करते हुए (देवनागरी पाठ के अनुसार) कहते हैं कि, "भो भो: संनिहिता-स्तपोवन-तरव:" इति। इसके सामने बृहत्पाठवाली 1. काश्मीरी वाचना में "वत्से शकुन्तले, विज्ञाप्यन्ताम् सन्निहितदेवतास्तपोवनतरव:" इति। 2. मैथिली वाचना में "भो भो: सन्निहितवन-देवतास्तपोवनतरव:, शृणवन्तु भवन्त:" इति। 3. अब बंगाली वाचना में संक्षेपीकरण की प्रक्रिया शुरू होती है, तो "भो भो: सन्निहितवनदेवतास्तपोवनतरव:" इति। ऐसा पाठ मिलता है। मतलब कि जिनमें वनदेवताएँ सन्निहित है ऐसे हे तपोवन के तरुओं! (आप सुनिये कि यह शकुन्तला आज पतिगृह जा रही है। जो आपको जल पिलाये बिना स्वयं जल नहीं पीती थी) इत्यादि। कण्व मुनि के इस सम्बोधन में यह भावना प्रकट रूप से व्यक्त होती है कि इन वनस्पतियों में वनदेवताओं का आवास है। जब दाक्षिणात्य पाठ तैयार किया जाता है तब भी इस भावना की रक्षा करते हुए संक्षेपपूर्वक का पाठ रखा गया है:- "अहो सन्निहितदेवतास्तपोवनतरव:" इति। किन्तु जब देवनागरी वाचना के पाठ को संक्षिप्ततर बनाने का कार्य शुरू होता है, तब "भो भो: संनिहितास्तपोवनतरव:" इति। इस पाठभेद में "वनदेवता:" या "देवता:" शब्द को हटाया गया है। परिणामत:, कण्व मुनि के चित्त में वनस्पतियों की प्रति वे "वनदेवताओं का निवासस्थान" होने की जो दैवीभावना थी, उसका उन्मूलन हो जाता है। इस अंक में "निसर्ग-कन्या शकुन्तला" की बिदाई का आलेखन हो रहा है, तब (संक्षेपीकरण के व्यामोह में) निसर्ग के देवताओं को ही मूल पाठ में से हटा देने की चेष्टा इस अंक की आत्मा का ही हनन कर देती है।। एवञ्च ऐसी भावना का मौलिक (कवि-प्रणीत) पाठ में सहज संनिवेश हुआ ही था ऐसा सिद्ध करनेवाले पाठ्यांश अभी भी हमारे सामने मौजूद हैं। जैसे कि, 1. क्षौमं केनचिद्० वाले श्लोक में कहा गया है कि "अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै:०"। 2. रम्यान्तर:० श्लोक के नीचे गौतमी की उक्ति भी है कि, "जाते, ज्ञातिजनस्निग्धाभिरनुज्ञातगमनासि तपोवनदेवताभि:। प्रणम भगवती:।" इन कृतिनिष्ठ अन्त:साक्ष्यों से सिद्ध होता है कि कण्व के मुख में "सन्निहितवनदेवता: / सन्निहितदेवतास्तपोवनतरव:" ऐसे शब्द ही कालिदास ने रखे होंगे, जो इस अंक की आत्मा के परिचायक हैं। लेकिन नाटक के पाठ को संक्षिप्ततर करने की धुन में अज्ञात रंगकर्मियों ने कुत्रचित् मूले कुठाराघात भी कर दिया है। (हम दुर्भाग्य से ऐसे निकृष्ट पाठ को सौ-डेढ़ सौ वर्षों से पठन-पाठन में ढो रहे हैं।) [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -113]

(5) शकुन्तला की बिदाई के सन्दर्भ में कवि ने पशु, पक्षियों (मृगी, मयूरी, कोकिला एवं चक्रवाक) का प्रतीकात्मक विनियोग किया है। तथा उनसे जुड़ी तीन गाथाओं का संनिवेश इस अंक के पाठ में किया था- ऐसा काश्मीरी एवं मैथिली पाठों से मालूम होता है। किन्तु बंगाली पाठशोधकों ने परम्परागतपाठ को संक्षिप्त करने के लिए इन में से एक गाथा (एषापि प्रियेण विना गमयति रात्रिं विसूरणादीर्घाम्०) की कटौती कर दी। तथा दूसरी गाथा को सुरक्षित रखा है (पुटकिनीपत्रान्त -रिताम्०)। लेकिन उस गाथा के अनुसन्धान में शकुन्तला की प्रतिक्रिया दिखाने वाली कोई उक्ति जो होनी चाहिए, उसको भी हटा दिया है। यानी (डॉ. रिचार्ड पिशेल के द्वारा स्वीकृत) बंगाली पाठ में इस स्थान में किया गया संक्षेप बहुत बेढंगा दिखाई रहा है। उसकी अपेक्षा से जो एक गाथा का संक्षेप लघुपाठवाली वाचनाओं में हुआ है वह बेढंगा नहीं दिखता है। तद्यथा- उन दोनों ने "पुटकिनी -पत्रान्तरिताम्०" गाथा को हटाया है, लेकिन "एषापि प्रियेण विना गमयति रात्रिम्०"- गाथा को सुरक्षित रखा है! दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों में से पुटकिनीपत्रान्तरिताम्० गाथा को हटाई है, किन्तु उसके अनुसन्धान में आनेवाली शकुन्तला की प्रतिक्रिया को सुरक्षित रखा है। परिणामत: जिसको हटाई है उस गाथा का अस्तित्व अनुमानगम्य बनता है। इस अर्थ में दाक्षि. एवं देवनागरी पाठों में भी जिस एक गाथा का संक्षेप किया गया है, वह बेढंगा नहीं लगता है।। इस अंक की इन तीन गाथाओं के सन्दर्भ में डॉ. एस. के. बेलवालकर जी ने जो "निसर्ग-कन्या शकुन्तला" शीर्षक से शोधालेख लिखा है, वह पठनीय है। कालिदास ग्रन्थावली, हिन्दी अनु. श्रीसीताराम चतुर्वेदी, अलीगढ़, 1965 के परिशिष्ट भाग में जो प्रकाशित है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -146]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(6) देवनागरी पाठशोधकों ने अपना पाठ बनाने के लिए पुरोगामी चारों पाठों का कैसा विनियोग किया है? उसकी भी समीक्षा करनी आवश्यक है:- 1. विविध पाठान्तरों के चयन के सन्दर्भ में कुल 42 स्थान ऐसे हैं कि जहाँ पर दाक्षिणात्य पाठान्तरों का स्वीकार देवनागरी पाठ में किया गया है। (जिनको चतुर्थांक के पाठ के नीचे दी गई पादटिप्पणियों में दिखाया है।) 2. दाक्षिणात्य पाठान्तरों की उपेक्षा करके देवनागरी पाठशोधकों ने कुत्रचित् काश्मीरी-आदि स्रोतों का अपनी दृष्टि से सीधा उपयोग भी किया है। उदाहरणतया- (क) (जिनमें काश्मीरी पाठान्तरों को ग्राह्य रखा है:-) (1) अद्यैव ऋषिरक्षितां त्वां भर्तुः सकाशं विसर्जयामि। यहाँ पर दाक्षिणात्य पाठ में "राजर्षि-परिगृहीताम्" ऐसा नवीन पाठान्तर दाखिल किया गया था, लेकिन देवनागरी पाठशोधकों ने यहाँ पर काश्मीरी पाठपरम्परा के पाठान्तर का ही आदर किया है। (2) तपोवन की वनस्पतियों द्वारा भेंट किये अलंकारों को देख कर गौतमी पूछती है कि- क्या यह काश्यप मुनि की मानसी सिद्धि है। "किं मानसी सिद्धिः?"। तो इस जगह पर दाक्षिणात्यों ने "किं मानसी सृष्टिः?" ऐसा नया पाठान्तर दाखिल किया था। लेकिन देवनागरी पाठ में यहाँ काश्मीरी पाठ का ही अनुगमन किया गया है। (ख) (जिसमें मैथिली पाठान्तरको ग्राह्य रखा है:-) (3) पिता काश्यप पुत्री शकुन्तला को कहते हैं कि अब, तुम्हें अनुशासित करना है। यद्यपि हम वन में निवास करनेवाले हैं, फिर भी लौकिक बातों को जानने वाले भी हैं। "वनौकसोऽपि सन्तो लौकिकज्ञा वयम्"। इस स्थान में दाक्षिणात्य पाठ में काश्मीरी पाठ का अनुगमन करके "लोकज्ञाः" ऐसा पाठान्तर स्वीकारा है। किन्तु देवनागरी के पाठशोधकों ने यहाँ मैथिली पाठ में से "लौकिकज्ञाः" पाठान्तर को चुना है।। इस तरह से देवनागरी पाठ भी संमिश्रित पाठ सिद्ध होता है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 50, 84, 153 एवं 127]

(7) कुछ स्थान ऐसे भी दिखाना चाहिए कि जहाँ पर देवनागरी पाठ के द्वारा किये गये नवीन पाठभेद मिलते हों। जैसे कि, 1. अंक के आरम्भ में दुर्वासा-शाप वृत्तान्त का प्रसंग आकारित होता है। जिसमें दुर्वासा के श्लोक को छोड़ कर, प्रियंवदा एवं अनसूया की सभी उक्तियाँ केवल प्राकृत भाषा में निबद्ध हैं। अतः काश्मीरी, मैथिली, बंगाली तथा दाक्षिणात्य चारों पाठों में उस अर्थोपक्षेपक को "प्रवेशक" नाम दिया गया है। किन्तु राघवभट्ट ने देवनागरी पाठ में उसका नाम "विष्कम्भः" दिया है, जो अनुचित है। क्योंकि भरतमुनि के अनुसार तो नाटक प्रकार के रूपक में अर्थोपक्षेपक के रूप में केवल प्रवेशक ही होते हैं। परवर्ती काल में धनिक-धनंजय ने नाटक में विष्कम्भक की व्यवस्था कही है। (राघव भट्ट ने टीका में लिखा है कि, अयमपि शुद्धविष्कम्भः। केवलं प्राकृतेन कृतत्वात्। पृ. 121, इसको भी अनवधान-प्रयुक्त दोष कहेंगे या अज्ञान प्रयुक्त!।) 2. अनसूया सोचती है कि अभी तक दुष्यन्त ने लेखमात्र भी भेजा नहीं है। तो क्या उसको अभिज्ञान के रूप में अंगुलीयक भेजें?। लेकिन दुःखशील तपस्वी जन से क्या याचना की जाय?। यहाँ देवनागरी पाठ के अनुसार "दुःखशीले तपस्विजने कोऽभ्यर्थताम्" ऐसे शब्द हैं। किन्तु काश्मीरी-आदि चारों पाठों में "अथवा दुःखशीले तपस्विजने कोऽभ्यर्थताम्" ऐसा पाठ है, जिसका आरम्भ "अथवा" शब्द से होता है। देवनागरी पाठ को संक्षिप्ततर बनानेवालों ने यहाँ उसी "अथवा" निपात को हटा दिया है। छोटा सा एक निपात भी कितना महत्त्वपूर्ण है? वह जल्दी से समझ में नहीं आता है। कालिदास अपनी तमाम रचनाओं में "अथवा" का विनियोग पक्षान्तर को प्रस्तुत करने के लिए करते हैं। जैसे कि, क्व सूर्यप्रभवो वंशः, क्व चाल्पविषया मतिः० इत्यादि। किन्तु उसके बाद तुरंत कहते हैं कि- "अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन् सूत्रस्येवास्ति मे गतिः"। प्रकृत में भी अनसूया चिन्ताग्रस्त होकर सोच रही थी कि शकुन्तला के साथ गान्धर्व-विवाह करके हस्तिनापुर वापस चले गये राजा ने लेखमात्र भी अभी तक भेजा नहीं है। तब किसी भी प्रेक्षक के दिमाग में ऐसा प्रश्न उठ सकता है कि भले ही दुष्यन्त ने अभी तक लेखमात्र (पत्र) न भेजा हो, लेकिन अनसूया, जो दुर्वासा शाप वृत्तान्त जानती है, वह तो उस शाप का शमन करनेवाली अंगूठी को, अभिज्ञानाभरण के रूप में राजा के पास भेज सकती है। इस लिए उस विकल्प को निरस्त करने के लिए, यहाँ "अथवा" निपातपूर्वक का "दुःखशीले तपस्विजने कोऽभ्यर्थताम्" ऐसे शब्द होना अनिवार्य है। किन्तु दुर्भाग्य से देवनागरी पाठ का संग्रथन करनेवाले अज्ञात पाठशोधकों ने उस "अथवा" निपात को ही हटा

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

दिया है। 3. अग्नि की प्रदक्षिणा करते समय काश्यप ऋषि जो "अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्या०" श्लोक बोलते हैं, उसके अन्तिम चरण में (देवनागरी पाठ के अनुसार) "वैतानास्त्वां वह्नयः पावयन्तु" ऐसे शब्द हैं। काश्मीरी-आदि चारों पुरोगामी पाठों में "पालयन्तु" ऐसा क्रियापद चलता था। किन्तु देवनागरी पाठ में "पावयन्तु" कर दिया गया है। इस पाठान्तर को हम अनुलेखनीय सम्भावना से आकारित हुआ पाठान्तर नहीं कह सकते। यह किसी ज्ञानी लिपिकार द्वारा किया हुआ परिवर्तन है। अतः इन दो पाठान्तरों की ग्राह्याग्राह्यता के विषय में पूर्वापर सन्दर्भ की परीक्षा करनी होगी। पिता अपनी पुत्री को ससुराल भेज रहे हों, तब उसके पालन की प्रार्थना ही अग्रेसर हो सकती है। अतः लगता है कि देवनागरी पाठशोधकों द्वारा दिया नवीन पाठान्तर सन्दर्भोचित नहीं है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -38, 46 एवं 106]

॥ पञ्चमोऽङ्कः॥

देवनागरी पाठ के पंचमांक के पाठ में प्राधान्येन दाक्षिणात्य पाठ का अनुसरण दिखता है। इसके साथ में दूसरा बिन्दु यह कथनीय है कि इन दोनों ने प्रायः काश्मीरी पाठपरम्परा के पाठान्तरों का अनेकत्र स्वीकार भी किया है। तदुपरान्त कुछ अन्य विशेष बिन्दु भी ध्यानार्ह हैं जिनकी चर्चा करनी आवश्यक है:-

(1) दाक्षिणात्य पाठशोधकों ने अपने रंगमंच के लिए इस नाटक का जो संक्षिप्त पाठ बनाया था, उसमें कुल मिला कर 31 श्लोकोंवाला पाठ बनाया था। देवनागरी पाठ को बनानेवालों ने भी उसीका अनुसरण करके 31 श्लोकवाला ही पाठ बनाया है। उसके प्रतिपक्ष में, जो बृहत्पाठपरम्परा का कलेवर है, वह 34 श्लोकों से बना है। काश्मीरी पाठ में एक श्लोक कम है, यानी 33 श्लोक मिलते हैं। जैसे कि, (क) कंचुकी वार्धक्य के कारण कथनीय बात भूल जाता है, उसका वर्णन करते हुए "क्षणात् प्रबोधमायाति०" श्लोक बोलता है। इसको दाक्षिणात्य और देवनागरी पाठों से निकाल दिया है। (ख) शकुन्तला ने कोपाविष्ट होकर दुष्यन्त को "अनार्य" शब्द से सम्बोधित किया, जिसको देख कर दुष्यन्त ने शकुन्तला की भ्रूकुटियों का वर्णन करनेवाले दो श्लोक प्रस्तुत किये हैं। लेकिन काश्मीरी पाठ में तो उनमें से केवल एक ही श्लोक बोला जाता है। जैसे कि, "न तिर्यग् अवलोकि चक्षुरति-लोहितम्०"। मैथिली एवं बंगाली पाठ-परम्पराओं में इस श्लोक का स्वीकार करने के साथ एक नया श्लोक "मय्येव विस्मरणदारुण-चित्तवृत्तौ०" भी दिया गया है। ये दोनों ही श्लोक प्रक्षिप्त लगते हैं। किन्तु दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों में मय्येव विस्मरण दारुण० श्लोक का स्वीकार हुआ है। (ग) प्रत्याख्यान के क्षणों में शकुन्तला के मुख में एक गाथा, "युवामेव प्रमाणं जानीथ, धर्मस्थितिं च लोकस्य0", रखी गई है, जिसका काश्मीरादि पाठों में ही समावेश होता है। इसके कारण मैथिली एवं बंगाली पाठों में, इस अंक के, 34 श्लोक है और काश्मीर में 33 श्लोक है।। किन्तु लघुपाठवाली दाक्षिणात्य एवं देवनागरी में 31 श्लोकवाला कलेवर दिखता है। जिन 3 श्लोकों का संक्षेप हुआ है वे मूल पाठ को कम हानि पहुँचानेवाले हैं। तथापि काश्मीरी पाठ के "न तिर्यग् अवलोकि चक्षुरतिलोहितम्०" श्लोक का अस्वीकार करके लघुपाठवालों ने निश्चित रूप से मूल पाठ को हानि पहुँचाई है।।

(2) पंचम अंक के आरम्भिक दृश्य में एकरूपता नहीं है। लघुपाठवाले दोनों पाठों में हंसपदिका-गीत से प्रथम दृश्य का आरम्भ होता है। किन्तु बृहत्पाठवाले तीनों ही पाठों में कंचुकी की उक्ति से प्रारम्भ होता है। इन तीनों पाठों की पूरी दृश्यावली का क्रम तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो इनमें भी अन्तर है। जैसे कि,

दृश्य- क्रमांक	काश्मीरी	मैथिली	बंगाली	दाक्षिणात्य	देवनागरी
1	कंचुकी की उक्ति	कंचुकी की उक्ति	कंचुकी की उक्ति	हंसपदिका गीत	हंसपदिका गीत

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

2	हंसपदिका-गीत	वैतालिकों का श्लोक-गान	वैतालिकों का श्लोक-गान	कंचुकी की संक्षिप्त उक्ति	कंचुकी की संक्षिप्त उक्ति
3	वैतालिकों का श्लोक- गान	हंसपदिका गीत	हंसपदिका गान	वैतालिकों का श्लोक- गान	वैतालिकों का श्लोक-गान
4	शकुन्तला का आगमन	शकुन्तला का आगमन	शकुन्तला का आगमन	शकुन्तला का आगमन	शकुन्तला का आगमन

हंसपदिका-गीत का शब्दार्थ उपालम्भ से भरा है, लेकिन उसके गीत के राग की माधुरी चित्ताकर्षक थी। (अहो रागपरिवाहिनी गीतिः) जिसके कारण नायक दुष्यन्त को किसी अज्ञेय जननान्तर के सौहृद का स्मरण हो आता है। ऐसी उद्विग्न मानसिक स्थिति में यदि शकुन्तला सामने आ जायेगी, तो उसका प्रत्याख्यान करना मुश्किल था। ऐसा सोच कर तीन प्रदेश के (काश्मीरी-दाक्षिणात्य -देवनागरी पाठवाले) रंगकर्मियों ने हंसपदिका-गीत के बाद वैतालिकों का श्लोक-गान रखा है। क्योंकि वैतालिकों के श्लोक-गान से राजा की धर्मबुद्धि को जागृत की जा सकती है, ताकि वह शकुन्तला का प्रत्याख्यान दृढ़ता के साथ कर सके। अतः वह क्रम उचित प्रतीत होता है। किन्तु मैथिली और बंगाली रंगकर्मियों ने हंसपदिका-गीत से पूर्व में वैतालिकों का श्लोक-गान रख दिया है, वह प्रसंगोचित नहीं सिद्ध होता है। क्योंकि इन दोनों में वैतालिकों के श्लोक-गान को सुन कर राजा केवल अपने राजकार्यों के परिश्रम की निवृत्ति हुई है- इतना ही कहते हैं। यानी वैतालिकों के गान से एक मामूली प्रयोजन सिद्ध किया जाता है। इस दृष्टि से हम कहते हैं कि लघुपाठ परम्परा के दोनों ही पाठों में, तात्त्विक रूप में काश्मीरी पाठ का अनुसरण करके दृश्य-क्रमांक रखा गया है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -5 से 15, 33 से 36]

(3) देवनागरी पाठ को तैयार करनेवालों ने बहुशः दाक्षिणात्य पाठ का अनुसरण किया है, लेकिन कुछ स्थान ऐसे भी हैं कि जिससे पता चलता है कि इस पाठ को बनानेवालों के सामने (दाक्षिणात्य पाठ के अलावा) स्वतन्त्र पाठपरम्परा का कोई अन्य आदर्श भी नहीं था। परिणामतः, हंसपदिका-गीत के सन्दर्भ में राजा दुष्यन्त की उक्ति हैः- "सकृत्कृतप्रणयोऽयं जनः। तस्या देवीवसुमतीमन्तरेण मदुपालम्भम् अवगतोऽस्मि।" इस देवनागरी पाठ में दाक्षिणात्य पाठ का साफ अन्धानुकरण दिखाई देता है। क्योंकि यहाँ काश्मीरी पाठ के मुताबिक राजा की पूर्व-परिणीता रानी का नाम कुलप्रभा है, तथा दूसरी रानी (?) का नाम हंसपदिका है। (काश्मीरी पाठ में वसुमती ऐसा नाम किसी रानी का नहीं है, वह तो एक वेत्रवती दासी का नाम है।) तथा मैथिली एवं बंगाली पाठानुसार यहाँ राजा ने हंसवतिका के विषय में उपालम्भ प्राप्त होने का कहा है। इन दोनों में रानी वसुमती का नाम-निर्देश नहीं है। (मैथिली एवं बंगाली पाठों में, पंचमांक में, वसुमती के नाम का निर्देश ही नहीं है। केवल षष्ठांक में ही पूर्वपरिणीता रानी वसुमती का नामोल्लेख आता है।) परन्तु दाक्षिणात्य पाठ का अन्धानुकरण करने के कारण देवनागरी पाठ में, पंचमांक में भी, हंसपदिका-गीत के सन्दर्भ में वसुमती नाम को दाखिल किया है। जिसके कारण, अब हंसपदिका गीत का अर्थबोध विवादास्पद एवं अन्ततो गत्वा दुर्ज्ञेय बन जाता है। हंसपदिका ने जो शिकायत की है वह अन्यापदेश से की है। अतः प्रेक्षकों के लिए चूतमञ्जरी के स्थान में यदि हंसपदिका ली जायेगी, तो भ्रमर के स्थान में दुष्यन्त लिया जायेगा। किन्तु वह भ्रमर जिस कमल में निवास करने मात्र से निर्वृत हुआ है, वह कमल कौन हो सकता है?- ऐसा प्रश्न खड़ा होता है। (क्योंकि दुष्यन्त के मुख में "वसुमतीम् अन्तरेण०" ऐसा तीसरा पाठभेद भी अब प्रविष्ट हो गया है।) क्या कमल शब्द से रानी वसुमती का अर्थबोध होगा, या फिर मैथिली-बंगाली पाठों के हिसाब से अब कमल शब्द से शकुन्तला को लेना होगा?। यहाँ कुलप्रभाम् / हंसवतीम् / वसुमतीम् अन्तरेण0 वाक्य का वक्तृ-बोधव्य (बोलनेवाले दुष्यन्त को अभीष्ट हो) एवं श्रोतृबोधव्य (=प्रेक्षकों को समझ में आनेवाला) अर्थ कैसा होगा? यह भी विचारणीय बनता है। इस तरह से यहाँ

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्राप्त हो रहे तीन पाठान्तरों के कारण यह स्थान विवाद का घर बन गया है[1]। जब तक (काश्मीरी पाठ में) दुष्यन्त के मुख में "कुलप्रभाम् अन्तरेण०" ऐसे शब्द थे, या (मैथिली-बंगाली पाठों में) दुष्यन्त के मुख में "हंसवतीम् अन्तरेण०" ऐसे शब्द थे, तब तक इस गीति में प्रयुक्त अन्यापदेश का शाब्दबोध दुःसाध्य नहीं था। किन्तु जैसे ही (दाक्षिणात्य पाठ ने, और उसका अनुसरण करते हुए) देवनागरी पाठ में दुष्यन्त के मुख में "वसुमतीम् अन्तरेण०" ऐसा तीसरा पाठान्तर दाखिल करवाया जाता है, तब शाब्दबोध विवादाग्रस्त वन जाता है।। इस विवाद का समाधान करने की कोशिश करने से पहले, उच्चतर समीक्षा के रूप में एक बिन्दु अनिवार्यतया हमें ध्यान में लेना होगा:- प्रथमांक में जब भ्रमरबाधा प्रसंग आकारित होता है तब, दुष्यन्त के मुख से निकले शब्द "कः पौरवे वसुमतीं शासति शासितरि दुर्विनीतानाम्। अयमाचर-त्यविनयं मुग्धासु तपस्विकन्यासु।।" इस श्लोक के शब्दों में जो वसुमती शब्द का विनियोग[2] हुआ है, वह ऐसा सूचित करता है कि दुष्यन्त के अन्तःपुर में पूर्वपरिणीता रानी के रूप में वसुमती नामक किसी भी रानी का होना सम्भावित नहीं है!। (क्योंकि यदि उसकी रानी का नाम भी वसुमती ही रहा होता, तो प्रकृत श्लोक में पृथिवी वाचक कोई दूसरे शब्द का विनियोग होना चाहिए ऐसी तार्किक अपेक्षा है, Ur-text की अपेक्षा है[3]।) सारांशतः, अभिज्ञानशकुन्तला नाटक का कविप्रणीत मूलपाठ प्राप्त करने में यानी अनुमित करने में दाक्षिणात्य एवं देवनागरी का यह पाठान्तर बाधक बन कर खड़ा है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -8]

(4) हंसपदिका-गीत में भी क्रमशः कैसे पाठपरिवर्तन होता रहा है- वह भी देखने से मालूम होता है कि देवनागरी पाठ ने नाटक के मूल पाठ को कितनी हद तक धक्का दिया है?। काश्मीरी एवं बंगाली पाठों में "अभिनव-मधुलोभभावितस्तथा परिचुम्ब्य चूतमञ्जरीम्" ऐसे शब्द थे। इनमें से प्रथम शब्द मधुकर का विशेषण बनता है। किन्तु मैथिली पाठ में उसी शब्द को चूतमञ्जरी का विशेषण बनाने के लिए परिवर्तन करके, "अभिनवमधुलोभभाविताम् तथा०" इस तरह से, उस शब्द को चूतमञ्जरी का विशेषण बनाया जाता है। यहाँ तक अन्योक्ति (अन्यापदेश) का स्वरूप अव्याहत रहा था। लेकिन लघुपाठ की परम्परा में प्रथम सोपान पर दाक्षिणात्य पाठ में, "अभिनवमधुलोलुपः त्वम्०" ऐसा परिवर्तन करके, अभिधा का मार्ग प्रशस्त किया जाता है। परन्तु उसीको और नीचे ले जाते हुए देवनागरी पाठ में "अभिनवमधुलोलुपो भवान्" ऐसा पाठ-परिवर्तन करके, निसर्ग के पशु-पक्षी, पुष्पों की भाषा में ही पलनेवाले इस नाटक को राजदरबारी नाटक का मुखौटा पहनाने में साथी बनता है। (यहाँ याद दिला दें कि- इससे पहले दाक्षिणात्य पाठ ने ही (क) तीसरे अंक में, "गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो मुनिकन्यकाः०" शब्दों में परिवर्तन करके "गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो राजर्षिकन्यकाः०" ऐसा पाठान्तर दिया था। तथा (ख) चतुर्थ अंक में, "ऋषिरक्षिताम् / ऋषि-परिगृहीताम्" शब्दों के स्थान में परिवर्तन करके "राजर्षिगृहीताम्०" ऐसा पाठान्तर दिया था।) ऐसे पाठान्तरों से इस नाटक को पूरा राज-दरबारी नाटक बना कर कालिदास के साथ भारी अन्याय किया जा रहा है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक-5]

(5) देवनागरी पाठ को बनानेवालों ने अन्यत्र भी पाठपरिवर्तन किये हैं। लेकिन उन में से अनेक स्थान ऐसे हैं, जो नाट्यक्षमता को हानि पहुँचाने वाले हैं, या फिर भाषागत सौष्ठव को चिन्त्य बनानेवाले हैं। जैसे कि, (क) कण्वाश्रम से तपस्वी लोग राजा दुष्यन्त से मिलने आ रहे हैं- ऐसा सुनते ही राजा ने कंचुकी को राजपुरोहित सोमरात को बुलाने के लिए भेज दिया। तत्पश्चात् वह प्रतीहारी को आज्ञा करता है कि वेत्रवति, मुझे अग्निशरण

---

1. "अभिज्ञानशकुन्तला नाटक" शीर्षक से मैंने जो काश्मीरी वाचना का समीक्षित पाठसम्पादन किया है, उसके पृ. 256 से 271 पर "हंसपदिका गीत एवं भ्रमर का प्रतीक : पुनः परामर्श" भी दिया है। उसको देखने का साग्रह अनुरोध है। (प्रकाशक- राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, 2018)
2. इस स्थान पर पाठान्तर के रूप में कोई दूसरा शब्द भी नहीं मिलता है- वह भी ध्यातव्य है।
3. Ur-text शब्दसे ऐसे मूलगामी पाठ की अपेक्षा है कि जिसमें न कोई विषयान्तर हो, न कोई पूर्वापर में विरोध आता हो और जिसमें कहीं पर भी निष्प्रयोजन की पुनरुक्ति न हो।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

मार्ग की ओर ले चलो। किन्तु देवनागरी पाठ के अनुसार रंगमंच पर प्रतीहारी तो पहले से राजा के साथ आयी ही नहीं थी। राजा के साथ तो केवल विदूषक ही रंगमंच पर आया था, जिसको हंसपदिका के पास भेज दिया गया है। बाद में कंचुकी ने आ कर, तपस्वियों के आगमन की सूचना दी है। मतलब कि यहाँ देवनागरी पाठ क्षतिग्रस्त हुआ है। वह कैसे?। यह स्पष्ट करने के लिए दाक्षिणात्य पाठ को देखना पड़ेगा। वहाँ पर, कंचुकी को राजपुरोहित के पास भेजने के बाद, राजा आसन से खड़े होकर "कः कोऽत्र?" बोलते है, यानी वे किसी प्रतीहारी को अपने पास बुलाते हैं। दाक्षिणात्य पाठ में स्पष्टतया "प्रविश्य प्रतीहारी" ऐसी रंगसूचनापूर्वक प्रतीहारी का प्रवेश करवाया जाता है। किन्तु देवनागरी पाठ को संक्षिप्ततर बनाने की धुन में राजा का उपर्युक्त प्रश्न और प्रतीहारी का प्रवेश- इन दोनों अंशों को हटा दिया गया है। जिसके कारण इस स्थान पर परम्परागत पाठ क्षतिग्रस्त बन जाता है। (ख) अंक के अन्त भाग में, राजपुरोहित यह निवेदन करने के लिए वापस आता है कि शकुन्तला को कोई अज्ञात ज्योति अन्तरिक्ष में उठा कर ले गया। "स्त्रीसंस्थानं चाप्सरस्तीर्थमारादुत्क्षिप्यैनां ज्योतिरेकं जगाम" इति। इस देवनागरी पाठ के सामने काश्मीरी-मैथिली-बंगाली, एवं दाक्षिणात्य में भी जो पाठ है, वह इस तरह का है:- "स्त्रीसंस्थानं चाप्सरस्तीर्थमाराद् आक्षिप्यैव ज्योतिरेनाम् तिरोऽभूत्"।। इन दोनों में जो अन्तर है वह क्रियापदों का है। अतः प्रश्न होता है कि- प्रस्तुत सन्दर्भ में "जगाम" ऐसे लिट्-प्रयोग का औचित्य सिद्ध होगा, या फिर "तिरोऽभूत्" जैसे लुङ्-लकार का?। तो साफ है कि अद्यतन भूतकाल का वाचक लुङ्-लकार ही उचित कहना होगा। तथा लिट्-लकार का प्रयोग प्रयत्न-साध्य होगा, चिन्त्य होगा। जैसे कि, लकारार्थ-प्रक्रिया में वार्तिक दिया गया है कि अत्यन्तापह्नवे लिड् वक्तव्यः (वा.-2084)। (अर्थात् किसी बात को आत्यन्तिक रूप से छिपा कर रखनी हो, या हकीकत का निषेध कर देना हो तो, उसकी अभिव्यक्ति के लिए क्रियापद में लिट् लकार का प्रयोग करना चाहिए।) इस वार्तिक से "जगाम" जैसे परोक्षभूत की सिद्धि करनी होगी।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -25 से 29, एवं 155]

।। षष्ठोऽङ्कः।।

षष्ठांक में अनेक घटनाएँ घटित होती हैं और उसमें निर्वहण-सन्धि का उपक्रम भी रचा गया है- इस लिए स्वाभाविक रूप से यह अंक इयत्ता में सब से बड़ा अंक लगता है। समीक्षकों ने इसी विस्तार को ही इस अंक की मर्यादा बताई है। किन्तु हकीकत में मूल पाठ्यांश में विस्तार था या नहीं?- वह निश्चित किये बिना इस विस्तार की आलोचना नहीं करनी चाहिए। हमने पहले यह बताया है कि मैथिली पाठपरम्परा ने कुछ (उदा. शकुन्तला-चित्र प्रसंग में) नवीन प्रक्षेप किये हैं, जिसके कारण यह अनुपकारक विस्तार मर्यादा बन कर सामने आता है।। इस सन्दर्भ के अलावा भी अन्य बिन्दु हैं, जिनकी समालोचना करणीय है। क्योंकि दाक्षिणात्य लघुपाठ का अनुसरण करते हुए, देवनागरी पाठ ने भी क्या नवीन परिवर्तनादि किये हैं- उनकी पडले जानकारी होनी चाहिए:-

(1) इस अंक के प्रवेशक में कालिदास ने धीवर-प्रसंग रखा है। उसमें देवनागरी पाठ के वैशिष्ट्य को उजागर करनेवाला पाठभेद प्रथम विवेचनीय है:- धीवर ने दुष्यन्त-नामधेयांकित अंगुलीयक कहाँ से मिला था उसका जो विवरण दिया था, वह प्रामाणिक सिद्ध होता है। परिणामतः दुष्यन्त की राजाज्ञा से उसे बन्धन में से मुक्त किया जाता है। इस प्रसंग में, काश्मीरी-आदि से लेकर दाक्षिणात्य वाचना पर्यन्त के सभी पाठ निम्नोक्त हैं :-

द्वितीयः- एष यमसदनं प्रविश्य प्रतिनिवृत्तः। (इति पुरुषमुन्मुक्तबन्धनं करोति)

पुरुषः- (स्यालं प्रणम्य) भट्टा तुम्ह-केलए मे जीविदे। (भर्तः, युष्मदीयं मे जीवितम्।)

स्यालः- एष भर्त्रा अङ्गुलीयक-मूल्य-सम्मितोऽर्थः पारितोषिकः प्रदापितः।

(इति पुरुषायार्थं प्रयच्छति)

यहाँ पर धीवर से प्राप्त हुई अंगूठी को देख कर राजा को शकुन्तला का स्मरण होता है और वे प्रसन्न हो जाते हैं।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा ने धीवर को बन्धन से मुक्त कर देने की आज्ञा की है। नगर-रक्षकों की दृष्टि में धीवर बडा भाग्यवान् है, क्योंकि वह आज यमसदन जा कर भी वापस आया है! इसको सुन कर धीवर राजस्यालक को नमस्कार करता हुआ कहता है कि यह तो आपकी ही कृपा है कि मैं जीवित रह पाया हूँ। अब स्याल राजा के द्वारा प्रेषित धनराशि पारितोपिक के रूप में धीवर को देता है। आगे बातचीत करते हुए स्याल ने यह भी कहा कि इस अंगुलीयक को देख कर राजा के नेत्र अश्रुपूर्ण हुए थे। लगता है कि राजा को किसी अपने अभिमत व्यक्ति की याद आई थी। तब सूचक नामका नगररक्षक कहता है कि तभी तो आपने (स्याल ने) राजा की सेवा ही की है। स्याल स्पष्ट करता है कि सच कहे तो यह सेवा तो इस मछलीमार ने ही की है। इतना बोल कर स्याल तुरंत धीवर की ओर असूया से देखने लगता है। तब धीवर सद्यः ही अपने पारितोषक की राशि में से आधा भाग निकाल कर स्याल के हाथों में दे देता है, तथा कहता है कि मेरी वध्यमाला बनाने के लिए आपके संकल्पित पुष्पों का जो मूल्य हो सकता था, उसे लीजिए। यहाँ स्याल ने मछलीमार की ओर असूया करते हुए जो दृष्टिपात किया था, उसका तात्पर्य समझ कर ही धीवर ने घबराहट में पारितोषिक का आधा भाग दे दिया है।। इस प्रसंग से धीवर की दयनीय दशा का ही अंदाजा हो रहा है। राजा ने ही उसको बन्धन से मुक्त करने का आदेश दिया था, फिर भी वह ड़र का मारा हुआ स्याल के प्रति अपनी कृतज्ञता कृतक रूप से प्रकट करता हुआ, "आपके कारण मैं जिन्दा रहा हूँ" ऐसा कहता है। तथा आगे चल कर, राजा के द्वारा ही दिये गये पारितोषिक में से आधा स्याल को भेंट कर देता है, क्यूंकि स्याल ने ईर्ष्याग्रस्त हो कर उसकी ओर देखा था। और देखने मात्र से वह घबरा गया था।।

ऐसी दयनीय दशा के वर्णन के विरुद्ध, कुछ और ही चित्र केवल देवनागरी वाचना के पाठ में से मिलता है। जैसे कि, पुरुष (यानी धीवर) की उक्ति में सर्वथा नवीन पाठान्तर उपलब्ध होता है:- "**पुरुषः**- भट्टा, अह कीलिशे मे आजीवे। (भर्तः, अथ कीदृशो मे आजीवः।") मतलब कि जब राजाज्ञा से धीवर (मछलीमार) को बन्धन से मुक्ति मिलती है तब वह नगर-रक्षकों से ताना देता (taunting) हुआ पूछता है कि अब आपको मेरी आजीविका कैसी लगती है?। यानी देवनागरी वाचना का मछलीमार स्याल को एवं नगर-रक्षकों को मौका मिलने पर ताना भी मार सके इतना हिम्मतवाला है। यहाँ पर उसे दयनीय या किसी भी तरह की घबराहट वाला नहीं दिखाया है।। किन्तु इस तरह का देवनागरी वाचना का नवीन पाठ पूर्वापर में सुसंगत सिद्ध नहीं होता है। क्योंकि मछलीमार ने जब जान ही लिया है कि मेरे पर अब राजा जी का अनुग्रह, उनका वरदहस्त आ गया है, जिसके कारण वह स्याल को ताना भी मार सकता है। तो ऐसी हिम्मत दिखानेवाला मछलीमार आगे चल कर अपने पारितोषिक का आधा भाग स्याल के हाथों में थमा दे यह नामुमकिन है।। अतः देवनागरी की अपेक्षा से काश्मीरी-आदि चारों वाचनाओं के पाठ में ही आन्तरिक सम्भावना दिखती है। ऐसा पाठ ही प्रामाणिक एवं मौलिक सिद्ध होता है।। देवनागरी वाचना के पाठशोधकों ने यह नया पाठान्तर सर्व प्रथम दाखिल किया है, अतः उसका अन्यान्य वाचनाओं में कहीं पर भी दर्शन नहीं होता है। मतलब कि इस दूषित पाठान्तर को जन्म देने में उत्तरवर्ती काल की देवनागरी वाचना के पाठशोधकों का ही कर्तृत्व सिद्ध होता है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 30]

(2) धीवर-प्रसंग में मागधी प्राकृत का विनियोग हुआ है उसके दाक्षिणात्य पाठ में और देवनागरी के पाठ में भी अन्तर है। जिसके कारण हम दाक्षिणात्य पाठ में स्थल-विशेष का प्रभाव देख सकते हैं, और देवनागरी पाठ में उत्तरवर्ती काल में किये गये परिष्कार को देख सकते हैं। जैसे कि, 1. "णाहलदि भावो" के लिए देवनागरी में "ण अलहदि भावे" ऐसा एकारान्त रूप का विनियोग हुआ है। उसका मतलब यह है कि देवनागरी पाठ के संग्रथन-कर्ताओं ने प्रथमान्त शब्द रूपों में अकारान्त रूप के स्थान में एकारान्त शब्द रूप को रखा है। मागधी प्राकृत का यह विशेष आग्रह होता है कि उसमें प्रथमान्त रूप को एकारान्त में प्रयुक्त किया जाय। तथा 2. अंगुळीयकं के लिए देवनागरी में "अंगुलीयकम्" ऐसा परिष्कार किया गया है। स्थल-विशेष के प्रभाव से दाक्षिणात्यों ने जो लकार के स्थान में ळकार का प्रयोग किया था, उसको भी बदल कर, देवनागरी पाठ में, उसको लकार में परिवर्तित किया गया है। क्योंकि मागधी भाषा में लकार ही वरणीय ध्वनिरूप है।।

3. ध्वनि-परिवर्तनों के साथ कालिक-सम्बन्ध भी जुड़े रहते हैं। जिनसे भी देवनागरी पाठ उत्तरवर्ती काल का सिद्ध होता है। जैसे कि, दाक्षिणात्य पाठ में "किदं भवदा णिम्मक्खिअं" है। किन्तु देवनागरी पाठ में उसके स्थान

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

में "किदं भवदा णिम्मच्छिअं" ऐसा ध्वनिपरिवर्तन दृष्टि-गोचर होता है। क्ष के लिए क्ख या च्छ इन दोनों का प्रयोग उपलब्ध होता है। किन्तु इन दोनों में ऐतिहासिक दृष्टि से क्ष-कार का प्रथम ध्वनिपरिवर्तन तो क्ख-कार में ही होता है। जिससे देवनागरी की अपेक्षा से दाक्षिणात्य पाठ का पुरोगामित्व सिद्ध होता है। (हेमचन्द्राचार्य ने इसका निर्देश छोऽक्ष्यादौ। सि. हेम. 8-2-17 सूत्र की वृत्ति में दिया है। जैसे कि, सामान्यतः क्षीरं का महाराष्ट्री प्राकृत में छीरम् होता है। किन्तु आर्ष यानी जैनागम ग्रन्थों, जो कि शौरसेनी से पुरोवर्ती अतिप्राचीन काल की अर्धमागधी में लिखे गये थे, उनमें तो क्खीरम् ही होता है।) 4. ईदृशी शब्द का दाक्षिणात्य पाठ में ईरिसी होता है, किन्तु देवनागरी में ईदिसी ऐसा ध्वनिपरिवर्तन होता है। यहाँ पर भी ऋ-कार का रि-कार में परिवर्तन पहले होता है, तत्पश्चात् रि-ध्वनि में से रेफ का लोप होने पर, इ-कार में परिवर्तन होता है।।

(3) देवनागरी पाठ में कुछ नवीन पाठान्तरों ने प्रवेश किया है- उनकी आलोचना उदाहरण-मुख से करणीय है। 1. धीवर ने अंगुलीयक कहाँ से, कैसे प्राप्त हुआ उसका बयान किया। इस बात की सच्चाई प्रमाणित करने के लिए, काश्मीरी-आदि पाठों में स्याल उस अंगुलीयक को सूंघता है और फिर बताता है कि जानुक, यह अंगुलीयक मत्स्योदर में रहा था- उसमें तो कोई संदेह नहीं लगता है। किन्तु दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों में स्याल उस धीवर का पूरा शरीर ही विस्रगन्धी यानी आमगन्धी है- ऐसा महसूस करके ही कहता है कि यह मत्स्यबन्धन (मछलीमारी) करनेवाला होगा ऐसा लगता है। अर्थात् लघुपाठ में अंगुलीयक को सूंघने की तो चेष्टा रंगमंच पर नहीं होती है। लेकिन इन दोनों में अन्य भेद यह है कि दाक्षिणात्य पाठ में धीवर को "घोराकृति" कहा है, और देवनागरी पाठ में उसको "गोधादी" कहा है। दाक्षिणात्य पाठ का सम्बन्ध वेशभूषा के साथ था, देवनागरी पाठभेद का सम्बन्ध धीवर के दुर्गन्धी शरीर के साथ बताया जा रहा है। 2. मातलि ने विदूषक को पकड़ कर मारना शुरू किया, तब वह (काश्मीर के शारदा पाठ में) कहता है कि- कोऽपि पश्चान्मोटितशिरोधरमिक्षुमिव स्थिरभङ्गमेव कर्तुमिच्छति। मैथिल पाठ में इक्षुदण्ड का उपमान निकाल दिया जाता है। उसमें "कोऽपि पश्चात् पीडितशिरोधरम् उद्बध्वाऽस्थिभङ्गं करोति" इन शब्दों से हड्डी तोड़ने का निर्देश किया जाता है। बंगाली पाठ ने काश्मीरी पाठ का अनुमोदन करते हुए, "कोऽपि पश्चातन्मोट्य शिरोधरमिक्षुमिव भग्नग्रन्थिं कर्तुमिच्छति।" ऐसा कहा है। मतलब कि इक्षुदण्ड की गाँठ को तोड़ने का कथन है। दाक्षिणात्य पाठ में "0इक्षुमिव तीक्ष्णभङ्गं करोति" इन शब्दों से तीक्ष्ण-आयुध से, या निर्दयता पूर्वक तोड़ने की बात रखी जाती है। किन्तु देवनागरी पाठ में सर्वथा नवीन पाठान्तर प्रस्तुत करके कहा है कि- "कोऽपि प्रत्यवनतशिरोधरम् इक्षुमिव त्रिभङ्गं करोति"। ईख दण्ड के तीन टूकड़े कर देने की बात ज्यादा हास्यजनक हो सकती है। 3. धीवर-प्रसंग में द्वितीय रक्षापुरुष दूर से आ रहे श्यालक को देख कर बोलता है:- "शकुलानां मुखं प्रेक्षसेऽथवा गृध्र-शृगालानां बलि-र्भविष्यसीति" यह काश्मीरी पाठ है। मैथिली एवं बंगाली पाठ भी प्रायः ऐसे ही हैं। दाक्षिणात्य पाठ ने संक्षेप करके "०त्वं गृध्रबलिर्भविष्यसि" ऐसा कहा है। किन्तु देवनागरी पाठ ने विस्तार करके दूसरा नया वाक्य भी दाखिल किया:- "गृध्रबलि-र्भविष्यसि, शुनो मुखं वा द्रक्ष्यसि"। एवञ्च, अन्य चार पाठों में केवल "राजशासनं गृहीत्वा" इतना ही था, उसको परिवर्तित करके देवनागरी में "पत्रहस्तो राजशासनम्०" ऐसा कहा है। देवनागरी पाठ के संस्कर्ताओं ने यहाँ आहार्याभिनय में तो परिवर्तन कर ही दिया, लेकिन अनौचित्य का विचार नहीं किया। राजा ने जैसे ही अपनी अंगूठी देखी होगी वैसे ही शाप-निवृत्ति हुई होगी, तथा शकुन्तला की स्मृति जागृत हुई होगी। ऐसे क्षणों में वे क्या पत्र पर कोई राजाज्ञा लिख कर या लिखवा कर भिजवा सकते हैं? ऐसा प्रश्न होता है।। ऐसे नवीन पाठान्तर देवनागरी पाठ की गुणवत्ता में किसी भी तरह से संवर्धन नहीं करते हैं।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 14, 244, एवं 24]

(4) इस अंक की इयत्ता में कितनी कटौती की गई है- यह देखना उपकारक सिद्ध होगा। (क) काश्मीरी पाठ में इस अंक के 34 श्लोक आये हुए हैं। मैथिली और बंगाली पाठों में अनुक्रम से 37 एवं 38 श्लोक मिलते हैं। किन्तु दाक्षिणात्य तथा देवनागरी पाठों में 32-32 श्लोक को स्थान मिला है। यानी लघुपाठ परम्परा में दो से लेकर

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

छह श्लोकों की कटौती की गई है। काश्मीरी पाठ में आये हुए "आमूलशुद्धसंतति कुलमेतत् पौरवं प्रजावन्ध्ये। मध्यस्तमितमनार्ये देश इव सरस्वतीस्रोत:।। (6-25)" तथा "प्रागेव जरसा कम्पस्सविशेषं तु साम्प्रतम्। आविष्करोति सर्वाङ्गम् अश्वत्थमिव मारुत:।। (6-26)" इन दोनों श्लोकों को देवनागरी में स्थान नहीं दिया गया है। एवञ्च, "तस्याग्रभूमेर्गृहनीलकण्ठै:०। (6-27)" श्लोक का कथयितव्य एक गद्य वाक्य (अदृष्टरूपेण केनापि सत्त्वेनातिक्रम्य मेघप्रतिच्छन्दस्य प्रासादस्याग्रभूमि-मारोपित:।) में परिवर्तित किया गया है।। मैथिली पाठपरम्परा में प्रक्षिप्त किया गया "दीर्घापाङ्गविसारि नेत्रयुगलं लीलाञ्चितभ्रूलतम्०। (6-15)" श्लोक भी दाक्षिणात्य एवं देवनागरी परम्पराओं में अग्राह्य रहा है। इसी तरह से, मैथिली एवं बंगाली पाठों में उपलब्ध होनेवाले का "उपहितस्मृतिरङ्गुलिमुद्रया०। (6-9)" तथा "अस्यास्तुङ्गमिव स्तनद्वयमिदं निम्नेव नाभि: स्थितम्०। (6-16)" इन श्लोकों को भी हटाया गया है।। इन कटौतियों को देखते हुए लगता है कि कञ्चुकी के द्वारा बोले गये श्लोक तथा शकुन्तला के चित्र को निमित्त बना कर जो श्लोक रखे गये थे/ प्रक्षिप्त किये गये थे- उनको ही कटौती के लिए पसंद किया गया है। फिर भी कुछ अन्य प्रक्षिप्त श्लोक अभी भी इस लघुपाठ परम्परा में स्थिर आसन लगाये बैठे हैं। जिसके कारण यह अंक इयत्ता में लम्बा प्रतीत होता है।। (ख) इसी तरह से अप्सरा (अक्षमाला, मिश्रकेशी एवं सानुमती) की उक्तियों की संख्याओं का तौलनिक लेखा-जोखा किया जाय तो, काश्मीरी पाठ में अक्षमाला की 27 उक्तियाँ हैं, मैथिली एवं बंगाली पाठों में मिश्रकेशी की उक्तियाँ अनुक्रम से 30 एवं 31 हैं। दाक्षिणात्य तथा देवनागरी पाठों में 27 एवं 26 उक्तियाँ मिलती हैं। इस तरह के यानी सांख्यिक दृष्टि से हुए संक्षेपों का अभ्यास करना रोचक नहीं होता है, और उपकारक भी नहीं होता है। किन्तु जब यह कहा जाता है कि देवनागरी पाठ में सानुमती की एक उक्ति कम क्यूं है? और कम होने से क्या लाभ अथवा हानि है? तब देवनागरी पाठ का मूल्यांकन करने का मार्ग प्रशस्त होता है। प्रथम दृश्य में कञ्चुकी ने कहा कि वासन्तिक तरुओं ने भी राजा दुष्यन्त का शासन मान लिया है। जिसके कारण आम्र-मञ्जरी पर रजकण नहीं बैठे हैं, कुरबक भी कोरकावस्था में ही रह गया है। कोकिल के कण्ठ से आवाज भी नहीं निकलती है- इत्यादि। तब इसको सुन कर सानुमती के मुख से (दाक्षिणात्य सहित के सभी पुरोगामी पाठों में) "नास्ति सन्देह:। महाप्रभाव: खलु राजर्षि:" ऐसा वाक्य निकलता है। किन्तु केवल देवनागरी पाठ में ही इस वाक्य को परभृतिका एवं मधुकरिका नामक दो चेटियों के मुख में रखा गया है। (परिणामत: दाक्षिणात्य पाठ की अपेक्षा से देवनागरी पाठ में सानुमती की उक्तियों में एक उक्ति कम हो जाती है।) किन्तु, अब औचित्य की दृष्टि से देखें तो "राजर्षि दुष्यन्त कितना महान् प्रभावशाली है!" यह बताने की योग्यता चेटियों की अपेक्षा से अप्सरा सानुमती में ही ज्यादा है- यह निर्विवाद है। एवञ्च, तिरस्करणी-विद्या से परोक्ष में खड़ी अप्सरा की रंगमंच पर बीच बीच में सक्रियता दिखाने के लिए भी यह उक्ति सानुमती के मुख में होना अधिक संगत होगा। अत: दाक्षिणात्य पाठ की अपेक्षा से यहाँ देवनागरी पाठ वरणीय नहीं लगता है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -65]

(5) सामान्यतया दाक्षिणात्य और देवनागरी पाठों में अनेक स्रोतों से विविध पाठान्तरों का आहरण करके संमिश्रित पाठ बनाने की चेष्टा देखी जाती है। जिसमें, एक दो शब्द पर्यन्त के पाठान्तरों के स्वीकार करने के अवसर पर मैथिली एवं बंगाली पाठान्तरों की अपेक्षा से काश्मीरी पाठान्तर को पहले पसंद करने का अभिगम दिखता है। किन्तु पूर्वपरिणीता रानी का संघर्ष, जो काश्मीरी वाचना में था ही नहीं और मैथिल पाठपरम्परा ने उसको प्रथमबार प्रक्षिप्त किया था, उसको स्वीकारने की तत्परता बंगाली और दाक्षिणात्य वाचनाओं के साथ साथ देवनागरी पाठ ने भी दिखाई है। इस मामले में दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों ने काश्मीर की शारदा पाठ-परम्परा का अनुगमन नहीं किया है। प्राचीनतम/मूल शारदा पाठ में राजा की परिचारिका मेधाविनी और रानी की परिचारिका पिङ्गलिका के बीच में संघर्ष होता है। जैसे कि, राजा ने शकुन्तला के अधूरे चित्र को पूरा करने के लिए वर्तिका-करण्डक मंगवाया, और मेधाविनी उसको लेकर आ रही थी, तब पिङ्गलिका ने उसके हाथों से उसको छीन लिया। तत्पश्चात् मेधाविनी ने कहा कि पिङ्गलिका यहाँ आकर शकुन्तला के चित्र को बिगाड देगी, तब विदूषक उस

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

चित्र को संगोपित करने के लिए उसे उठा कर ले जाता है। इस तरह से काश्मीरी पाठ में तो दो दासियों के बीच में संघर्ष था। किन्तु प्रथम बार मैथिली पाठशोधकों ने "पिङ्गलिका-द्वितीयया वसुमत्या" (पिङ्गलिका जिसके साथ में है वैसी वसुमती ने) मेधाविनी के हाथों में से वर्तिका-करण्डक छीन लिया, ऐसा पाठभेद कर दिया। जिसका बाद में सब ने अनुसरण किया है। हाँ, इतना जरूर कहना होगा कि इस प्रसंगालेखन में कुछ शाब्दिक परिवर्तनों से संघर्ष का रंग अंशतः बदलता रहा है। जैसे कि, 1. (काश्मीरी पाठ में-) "अपेत भोः, मेधाविनीं मृगीम् इवानुसरन्त्युपस्थिताऽन्तःपुर-व्याघ्री पिङ्गलिका"। (मैथिली एवं बंगाली पाठों में-) "**(नेपथ्ये)** एतु, एतु भट्टिनी। **विदूषकः**- भोः, अभिधावन्ती एषाऽन्तःपुरव्याघ्री मेधाविनीं मृगीमिव कवलयितुम् उपस्थिता"। किन्तु दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों में से इन दोनों उक्तियों को निकाल दी गई है। 2. शकुन्तला के चित्र को उठाकर ले जाते समय विदूषक की उक्ति में जो पाठभेद होते रहे है, वे इस तरह के हैं :- (काश्मीरी पाठ में) "एष एनं तत्र गोपयामि यत्र पारावतीं वर्जयित्वाऽपरो न प्रेक्षते"। (मैथिली में-) "यदि भवान् अन्तःपुर-कूटपाशात् मोक्ष्यते, ततो मे मेघच्छन्नप्रासादे शब्दापयिष्यसि। इदं च तत्र गोपयामि, यत्र पारावतं वर्जयित्वा न कोऽपि अन्यः प्रेक्ष्यते"। यहाँ मैथिली पाठशोधकों ने अन्तःपुर यानी रानीवास के कूटपाश की नयी बात प्रक्षिप्त कर दी है। (बंगाली पाठ में-) "यदि भवान् अन्तःपुरवागुरातः मोक्ष्यते, ततः मां मेघछन्नप्रासादे शब्दयसि। एतत् च तत्र गोपयामि, यत्र पारावतम् उज्झित्य न कोऽप्यन्तः प्रेक्षते"। (दाक्षिणात्य पाठ में विदूषक के मुख में संक्षेपपूर्वक उक्ति है-) "यदि भवानन्तःपुरकलहान्मुच्यते, ततो मां मेघप्रतिच्छन्दे प्रासादे शब्दापय"। ऐसा पाठ है। (देवनागरी पाठ में, यहाँ-) "यदि भवानन्तःपुरकालकूटान्मोक्ष्यते तदा मां मेघप्रति-च्छन्दे प्रासादे शब्दापय"। ऐसा आंशिक पाठभेद किया जाता है। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -196]

॥ सप्तमोऽङ्कः॥

सप्तम अंक में निर्वहण सन्धि का संग्रथन किया गया है। जिसमें मुख्य रूप से पुत्र सर्वदमन (भरत)का दौष्यन्ति एवं शाकुन्तलेय के रूप में एकाधिक अभिज्ञान प्रस्तुत करने का उपक्रम किया गया है। इस प्रसंग की मंचनलक्ष्यी कवि-योजना अतीव आकर्षक होते हुए भी, पाण्डुलिपियों में संचरित हुए एवं प्रकाशित हुए विविध वाचनाओं के पाठ में कुत्रचित् विसंगतियाँ भी दिखती हैं। जिनका परिचय होते ही दो मुख्य विचार उभर कर सामने आ जाते हैं :-1. हमारे सामने जितने भी पाठ/ संस्करण प्रकाशित हो कर आये हैं, वे निर्विवाद रूप से रंगावृत्तियों के ही पाठ हो सकते हैं। 2. इस प्रसंग का आलेखन करने वाला काश्मीरी पाठ्यांश ही सुसंगत एवं श्रद्धेय है।। तद्यथा- महर्षि मारीच के आश्रम में पहुँचते ही मातलि मारीच के पास जाता है, और दुष्यन्त आश्रम के दूसरे भाग में जाता है। वहाँ पर दो तापसियाँ सर्वदमन के हाथों में से सिंहशावक को छुड़वाने के लिए कोशिश कर रही थीं। इन दोनों तापसियों की उक्ति का अवतार करते समय वे दोनों "प्रथमा" एवं "द्वितीया" के रूप में प्रस्तुत की जाती हैं। यहाँ पर कुछ त्रुटियाँ सार्वत्रिक रूप से देखी जाती हैं :-काश्मीरी वाचना के पाठ में प्रथमा का नाम "संयता" दिया है, और द्वितीया का नाम "सुव्रता" बताया गया है। मैथिली पाठ में इससे विपरीत हो गया है। पाठसंचरण के तृतीय क्रम पर, यानी बंगाली वाचना के पाठ में से यह वैपरीत्य संक्रान्त भी हुआ। एवमेव, उस बंगाली पाठ में से प्रथमा का संयता ऐसा नाम हमेशा के लिए निकाल दिया गया है। जिसके कारण लघुपाठ परम्परा की दाक्षिणात्य तथा देवनागरी वाचनाओं में भी (एवं काटयवेम और राघवभट्ट की टीकाओं में) प्रथमा तापसी का (संयता) नाम कहीं से प्राप्त नहीं होता है। परिणामतः द्वितीया तापसी के मुख में प्रथमा के लिए "सुव्रता" ऐसा गलत नाम ही सार्वत्रिक रूप से प्रयुक्त हुआ मिलता है।।

[इस प्रसंग की उपर्युक्त विसंगति का विशद विवरण देना अतीव आवश्यक लगता है। क्योंकि किसी भी पाठसम्पादक के ध्यान में यह विसंगति आयी ही नहीं है। काश्मीरी वाचना, जिसको प्राचीनतम पाठ प्रस्तुत करने का गौरव प्राप्त हुआ है, उसमें प्रथमा तापसी का नाम संयता दिया है और द्वितीया तापसी का नाम सुव्रता मिलता है। वहाँ पर प्रथमा तापसी ने ही सर्वदमन को दूसरा खिलौना देने का प्रस्ताव रखा। उसीने ही सुव्रता नामकी दूसरी तापसी को अपने उटज पर भेज कर,

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

मंकणक (शालंकायन या मार्कण्डेय) ऋषि के द्वारा बनाया गया मृत्तिका-मयूर मंगवाया है। इस सुव्रता के चले जाने के बाद, अब रंगमंच पर राजा दुष्यन्त के साथ जो बातचीत करनेवाली अकेली तापसी अवशिष्ट रहती है, वह प्रथमा (संयता) तापसी है। इन दोनों तापसियों में से वही वयोवस्था में बड़ी है, और जिसको मृत्तिकामयूर लेने के लिए भेजा है, वह छोटी बहन जैसी है। जब सुव्रता मृत्तिका-मयूर लेकर वापस आती है और बालक को देती है, तब उसको देते समय उस सुव्रता (द्वितीया तापसी) के ही ध्यान में आता है कि बालक के हाथ पर रक्षा-करण्डक नहीं है। अत: उसके मुख से- "(आलोक्य ससंभ्रमम्) अहो रक्षाकरण्डकमस्य मणिबन्धे न दृश्यते" ऐसी उक्ति निकलती है। तत्पश्चात् दुष्यन्त को यह मालूम हो जाता है कि इस रक्षाकरण्डक को उसने छुआ है, जमीन से ऊपर उठा लिया है, फिर भी उसने सर्प बन कर दंश नहीं दिया है। उसका मतलब अब यही है कि उस बालक का पिता वह स्वयं है। तब वह बालक को आलिङ्गन देता है। इसी क्षण पर द्वितीया (सुव्रता) के मुख में उक्ति रखी गई है कि- "द्वितीया -संयते, एहि इमं वृत्तान्तं नियमव्यापृतायै शकुन्तलायै निवेदयाव:" इति।। ऐसी पाठ-योजना काश्मीरी वाचना के पाठ में देखी जाती है।।

किन्तु मैथिली पाठ से आरम्भ करके, सभी परवर्ती काल की पाठ-परम्पराओं में बदलाव आता रहा है एवं कुछ विसंगति ने प्रवेश कर लिया है। जैसे कि- मैथिली पाठ में, प्रलोभ्यवस्तुप्रणयप्रसारितो० (7-16) श्लोक के नीचे प्रथमा तापसी के स्थान में द्वितीया तापसी आ जाती है। तथा उसने "सुव्रते" ऐसे संबोधन से प्रथमा से बात की है। मतलब कि मैथिली पाठ में प्रथमा तापसी का नाम सुव्रता हो जाता है। तत्पश्चात् उसी दृश्य के अन्तिम चरण पर, ("बालं परिष्वजते।" की रंगसूचना के बाद) फिर से द्वितीया तापसी की उक्ति आती है, किन्तु वहाँ पर उसी द्वितीया तापसी ने प्रथमा तापसी को "संयते" शब्द से संबोधित की है। यह हुई विसंगति।। मैथिली पाठ की इस विसंगति को मिटाने के लिए, तृतीय चरण पर बंगाली पाठ में, द्वितीया के मुख में "संजदे" के स्थान में "सुव्वदे" ऐसा संबोधन परिवर्तित किया जाता है। परंतु ऐसा करने के कारण अब बंगाली पाठ में से द्वितीया तापसी का क्या नाम दिया गया है? वह कहीं से नहीं जान सकते हैं। बंगाली पाठ की यह विसंगति डॉ. रिचार्ड पिशेल के सम्पादन में पृ. 101, तथा डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल के सम्पादन में पृ. 345 पर विद्यमान है।।

काश्मीरी पाठयोजना के अनुसार 1. प्रथमा (संयता) तापसी को "अत्तिका" (यानी ज्येष्ठा भगिनी) से संबोधित की गई है। 2. मृत्तिकामयूर लेने के लिये द्वितीया तापसी रंगमंच से निष्क्रमण करती है। तब प्रथमा तापसी ने ही राजा दुष्यन्त के साथ लम्बे समय तक रंगमंच पर बातचीत की है। 3. इसके अनुसन्धान में बालक जब द्वितीया तापसी के हाथ से मृत्तिकामयूर को ग्रहण करता है, तब उसी द्वितीया तापसी के ध्यान में यह बात आती है कि बालक के हाथ पर रक्षाकरण्डक नहीं है। इन तीनों परिस्थितियों में बहुत कुछ आगे पीछे हो गया है और प्रथमा तापसी के नाम पर अन्धेरा छा गया है। केवल काश्मीरी पाठ ही सही ढंग में अद्यावधि सुरक्षित उपलब्ध हो रहा है। दुर्भाग्य से अभी तक के किसी भी पाठसम्पादक ने उपर्युक्त विसंगतियों को नहीं पहचाना है।।]

(ख) स्वर्ग के प्रधान देवता इन्द्र को साहाय्य करके राजा दुष्यन्त पृथिवी लोक में वापस लौट रहा था, तब बीच में (अन्तरिक्ष लोक में स्थित) मारीच ऋषि के आश्रम में जाता है। जिसमें शकुन्तला भी अपने पुत्र सर्वदमन के साथ रहती है। कण्वाश्रम के समान मारीच के आश्रम में भी तापस-तापसियों का समूह है। उनमें से दो तापसियाँ सर्वदमन के साथ रंगमंच पर आती हैं। किन्तु वे दोनों ही राजा दुष्यन्त को पहचानती नहीं थीं। अत: काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं के पाठों में इन तापसियों के मुख से दुष्यन्त के लिए क्रमश: "भद्रमुख" , "आर्य" एवं "महाभाग" जैसे संबोधनों का प्रयोग किया गया है। किन्तु दाक्षिणात्य तथा देवनागरी वाचनाओं के पाठों में "भद्रमुख" शब्द के साथ "महाराज" जैसे संबोधन का भी विनियोग हुआ है। अन्तरिक्ष लोक में रहनेवाली तापसियाँ जब दुष्यन्त को राजा के रूप में पहचानती ही नहीं है, तब उनके मुख में दुष्यन्त के लिए "महाराज" शब्द का प्रयोग करवाना ठीक नहीं लगता है।। इन मुख्य बिन्दुओं के अलावा भी कुछ अन्य बिन्दु हैं कि जिनके सहारे देवनागरी पाठ का मूल्यांकन करने में साहाय्य मिलेगी। उनकी चर्चा अधोभाग में रखी जाती है:-

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(1) देवनागरी पाठ संक्षिप्ततर है- ऐसा पहले कहा गया है। अतः किन श्लोकों को इस वाचना में स्थान नहीं मिला है? उसका परिचय करना चाहिए। काश्मीरी पाठ में 36 श्लोक हैं, मैथिली पाठ में 35 श्लोक हैं, बंगाली एवं दाक्षिणात्य में भी 35 श्लोक हैं। किन्तु देवनागरी पाठ में 34 ही श्लोकों को स्थान मिला है। यहाँ काश्मीरी वाचना में 36 श्लोक प्राप्त होने का कारण यही है कि उसके प्रारम्भ में जो एक विशेष प्रवेशक है, उसमें नाकलासिकाओं के द्वारा एक गाथा प्रस्तुत की गई है। अन्यथा सामान्यतः सर्वत्र 35 श्लोक मिलते हैं। मैथिली पाठ में, भरत-वाक्य के पूर्व में जो शुभाशंसार्थक दो श्लोक (1. क्रतुभिरुचितभागांस्त्वं सुरान्०। एवं 2. तव भवतु बिडौजाः प्राज्यवृष्टिः०) रखे गये हैं, उनको देवनागरी पाठशोधकों ने हटा दिये है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -192 के पूर्व में]

(2) देवनागरी में (एवं दाक्षिणात्य में भी) कुत्रचित् आन्तरिक सम्भावना से विरुद्ध जानेवाले पाठान्तरों का संनिवेश हो गया है- उनका परिचय करना चाहिए:- (क) मारीच के आश्रम में, सिंहबाल के साथ खेल रहे सर्वदमन के लिए राजा दुष्यन्त ने तापसी को पूछा है कि यह बालक यदि मुनिकुमार नहीं है तो उसका व्यपदेश (कुल) क्या है?। तो उत्तर दिया जाता है कि- पुरुवंशः। लेकिन काश्मीरी-आदि तीनों बृहत्पाठों में यहाँ पर "पौरवः" ऐसा उत्तर दिया गया है। अब हमें सोचना है कि इन दोनों पाठान्तरों में से किस पाठान्तर में आन्तरिक सम्भावना स्पष्टतया दिखती है। तो, तीसरे अंक में शकुन्तला ने दुष्यन्त को "पोरव, रक्ख विणअं" ऐसा कहा है। प्रथमांक में स्वयं दुष्यन्त ने भ्रमरबाधा प्रसंग में "कः पौरवे वसुमतीं शासति शासितरि दुर्विनीतानाम्०" शब्दों से अपना परिचय पौरव के रूप में घोषित किया है। तथा सप्तमांक में, इसी स्थान पर, तापसी के उत्तर के ठीक नीचे ही दुष्यन्त का वाक्य है कि- अस्त्येतत् पौरवाणाम् अन्त्यं कुलव्रतम्। इन आन्तरिक प्रमाणों से निश्चित हो जाता है "पुरुवंशः" के सामने जो "पौरवः" ऐसा पाठान्तर मिलता है, वही मौलिकता से युक्त है। (ख) दुष्यन्त शकुन्तला से मिलन होने पर बोलता है कि ग्रहणकाल पूरा होने पर जैसे चन्द्रमा के साथ रोहिणी का योग होता है, वैसे आज तुम्हारा मेरे साथ योग हो रहा है। यहाँ पर शकुन्तला की उक्ति है:- "जयतु जयतु आर्यपुत्रः। (इत्यर्धोक्ते बाष्पकण्ठी विरमति)"। यहाँ पर मैथिली एवं बंगाली पाठों के अनुसार शकुन्तला के मुख से "आर्यपुत्रः" ऐसा शब्द निकलता नहीं है। दूसरी ओर काश्मीरी तथा दाक्षिणात्य पाठों में "आर्यपुत्रः" ऐसा शब्द बोला जाता है। इस तरह के दो पाठभेदों में से कौन सा पाठान्तर मान्य रखना चाहिए?- यह प्रश्न है। तो यहाँ पर भी आन्तरिक प्रमाण के रूप में उत्तरवर्ती श्लोक के शब्दों को ही देखना उपकारक सिद्ध होगा। 7-23 श्लोक में कहा है कि- "बाष्पेण प्रतिषिद्धेऽपि जयशब्दे जितं मया। यत्ते दृष्टमसंस्कारपाटलोष्ठपुटं मुखम्।।" इसमें स्पष्ट कहा गया है कि शकुन्तला के मुख में से "आर्यपुत्रः" शब्द तो क्या, "जयतु" ऐसा शब्द भी पूरा निकला नहीं है। एवञ्च, रंगसूचना में भी शकुन्तला को "बाष्पकण्ठी" कहा गया है। (ग) दोनों तापसियों को नायक दुष्यन्त की राजा के रूप में पहचान होने से पहले ही, उसके लिए "महाराज" संबोधन का प्रयोग किया गया है, जो उचित नहीं है। जैसे कि- "शृणोतु महाराजः। एषाऽपराजिता नामौषधिरस्य जातकर्मसमये भगवता मारीचेन दत्ता०" इत्यादि। अन्यत्र, यानी काश्मीरी-आदि पाठों में यहाँ दुष्यन्त को "महाभाग" शब्द से संबोधित किया है, जो सन्दर्भोचित लगता है। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -78, 121 एवं 99]

(3) देवनागरी पाठशोधकों ने कुछ स्थानों पर परम्परागत अपपाठों की सुधारणा करने का जो कार्य किया है, उसकी भी आलोचना करणीय है:- (क) द्वितीया तापसी ने बताया कि- "मदीय उटजे मार्कण्डेयस्य ऋषिकुमारस्य वर्णचित्रितो मृत्तिकामयूरः तिष्ठति। तमस्योपहर।" यहाँ मार्कण्डेय शब्द का प्राकृत शब्दरूप "मक्कंडेअस्स दिया है। किन्तु उसके पुरोवर्ती काश्मीरी एवं बंगाली पाठों में देखा जाय तो वहाँ पर "मंकणअस्स" ऐसा शब्द मिलता है। वह दुर्बोध होने के कारण मैथिली पाठ में एक नये (सालंकायणस्स) शब्द को स्थानापन्न किया गया है। कालान्तर में दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों में सुधारणा करने का सोचा गया। जिसके फल स्वरूप आज हमें "मार्कण्डेयस्य" शब्द की प्राप्ति हो रही है। (ख) दुष्यन्त के हाथ में अंगूठी को देखते ही शकुन्तला ने कहा

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

कि- "विषमं कृतमनेन यत्तदार्यपुत्रस्य प्रत्ययकाले दुर्लभमासीत्"। यहाँ पर काश्मीरी पाठ में "प्रत्यक्षेण करेण (प्रत्यक्षकरणे?)" ऐसा पाठान्तर है, जो थोड़ा सा संदिग्ध है। मैथिली में "प्रत्ययकरणे" ऐसा पाठभेद मिलता है। बंगाली पाठ में "प्रत्ययकारणम्" शब्द को रखा है, और उसको अंगूठी का विशेषण बनाया गया है। दाक्षिणात्य पाठ में "प्रत्यायनकाले दुर्लभम्" शब्द मिलता है, जिसमें विशदीकरण का आशय दिखता है। इस तरह से सर्वत्र अलग अलग पाठान्तरों के दर्शन होते हैं। जिसमें मूल पाठ का निश्चय करना विवादास्पद प्रतीत होता है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक - 63 एवं 135]

(4) सर्वदमन की मागधी प्राकृतभाषा का स्वरूप भी देवनागरी पाठ में बहुशः बदल दिया गया है। जैसे कि- अ-कारान्त शब्द मागधी में ए-कारान्त में परिवर्तित होता है। तथा र्य- संयुक्ताक्षर य्य- में परिवर्तित होता है। (यदि महाराष्ट्री प्राकृत होगा तो अ-कारान्त शब्द ओ-कारान्त बन जाता है। तथा यकार का जकार हो जाता है।) उदाहरणतया, 1. "मम तादे दुश्शन्ते, ण क्खु तुमं"। ऐसे मागधी ध्वनिस्वरूप के स्थान में, "मम खु तादो दुस्संदो। ण तुमं।" ऐसा देवनागरी पाठ में मागधी के स्थान में महाराष्ट्री प्राकृत का विनियोग किया गया है। 2. मृत्तिका-मयूर देते समय द्वितीया तापसी ने "शकुन्तलावण्यं पश्य" ऐसा कहा है। जिसको सुनते हि सर्वदमन पूछता है कि कहाँ है मेरी माता?। मागधी भाषा में "कहिं शे मे अय्युए।" ऐसा वाक्य होता है। लेकिन उसके स्थान में देवनागरी पाठ में "कहिं मे अज्जु" ऐसा वाक्य मिलता है, जो भी महाराष्ट्री प्राकृत का स्वरूप ही है। (द्रष्टव्यः परिशिष्ट-2) इस तरह के भाषा-परिवर्तन से भी मालूम होता है कि वर्तमान में उपलब्ध हो रहा देवनागरी वाचना का पाठ निश्चित रूप से बहुत परवर्ती काल का है।। [सन्दर्भ : उक्ति-क्रमांक -110 एवं 88]

❖ ❖ ❖

देवनागरी वाचना के तीन रूपान्तरण- एक नयी गवेषणा

हमने इस नाटक की देवनागरीलिपिनिबद्ध प्रायः 100 पाण्डुलिपियाँ एकत्र करके, उनका विश्लेषण किया है। इस अनुसन्धान-कार्य से ऐसी अपूर्व जानकारियाँ मिली है कि- (क) देवनागरी पाण्डुलिपियों में भी इस नाटक का **बृहत्पाठ** संचरित हुआ है। जिनका विनियोग इस देवनागरी वाचना के पाठ सम्पादन में अद्यावधि हुआ ही नहीं है। ऐसे बृहत्पाठवाली 15 पाण्डुलिपियाँ मिली हैं। इनमें उपलब्ध हो रहा पाठ काश्मीरी पाठ के साथ साम्य रखनेवाला है, तथा कुत्रचित् नावीन्यपूर्ण पाठान्तर एवं एक अधिक दृश्यवाला पाठ सुरक्षित है। इनमें से कतिपय उद्धरण 'शृंगारप्रकाश' में भी उपलब्ध होते हैं। मतलब कि-देवनागरी वाचना का यह बृहत्पाठ 11 शती में प्रचलित था। (ख) इस बृहत्पाठ के तृतीयांक में से दो दृश्य को हटा कर, एक **संक्षिप्त पाठ** बनाया गया था, जो देवनागरीवाचना का द्वितीय रूपान्तरण है। इनमें, तीसरे अंक के आरंभ में दुष्यन्त की मदनावस्था का वर्णन करने वाले श्लोंकों का आधिक्य है। (ग) जो तीसरा रूपान्तरण है, उस में इस नाटका का **संक्षिप्ततर** पाठ सुरक्षित है। इस पाठ पर राघवभट्ट ने 16वी शती में अर्थद्योतनिका टीका लिखी है॥ म.म.श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने मान्य किया यह संक्षिप्ततर पाठ आज सर्वत्र प्रचलन में है। लेकिन, इस संक्षिप्ततर पाठ को "कालिदास-प्रणीत मौलिक पाठ" मान लेने की बहुत बड़ी गलती संस्कृतज्ञों ने की है॥ द्रष्टव्य है- मेरे यू-ट्युब पर अपलोड किये दो विडियोः- Three Versions of Shakuntalam (7) (a) & 7 (b); https://youtu.be/CttrEG-y2fc and https://youtu.be/Ervy_pXC6_E.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ अभिज्ञानशाकुन्तलम्[1]॥

(देवनागरी-वाचनानुसारी संक्षिप्ततरः पाठः)

॥ प्रथमोऽङ्कः॥

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति[2] विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीज[3]प्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्न[4]स्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः॥ 1 - 1॥ [1]

(नान्द्यन्ते) [2]

सूत्रधारः- [5](नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) आर्ये, यदि नेपथ्य[6]-विधानमवसितं, इतस्तावदागम्यताम्। [3]

नटी- अज्जउत्त, इयं म्हि[7]। (आर्यपुत्र, इयमस्मि[8]।) [4]

सूत्रधारः- आर्ये, अभिरूपभूयिष्ठा परिषदियम्[9]। अद्य खलु कालिदासग्रथितवस्तुनाभिज्ञानशाकुन्तलनामधेयेन[10] नवेन[11] नाटकेनोपस्थातव्यम् अस्माभिः। तत्प्रतिपात्रमाधीयतां यत्नः। [5]

नटी- सुविहिदप्पओअदाए अज्जस्स[12] ण किं वि परिहाइस्सदि। (सुविहितप्रयोगतया आर्यस्य न किमपि परिहास्यते।) [6]

सूत्रधारः- आर्ये, कथयामि ते भूतार्थम्। [7]

---

1. काश्मीर-पाठे "ऽभिज्ञानशकुन्तले" ति शीर्षकम्। मै.-बं.-पाठयो "रभिज्ञानशकुन्तलमि" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति। अस्य नाटकस्य विभिन्नेषु प्रदेशेषु त्रिविधं शीर्षकं प्रचलत्यवधेयम्।
2. काश्मीर-पाठे "या स्रष्टुः सृष्टिराद्या पिबती" ति। मै.-पाठे "या स्रष्टुः सृष्टिराद्या वहती" ति। बं.-पाठे तु "या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहती" ति। दाक्षि.-देव.-पाठौ बं.-पाठमनुसरतः।
3. काश्मीरादि-पाठेषु "सर्वबीजे" ति। केवलं दाक्षि.-पाठे "सर्वभूते" ति। देव.-पाठः का.-पाठमनुसरति।
4. काश्मीरादि-पाठेषु "प्रसन्न०" इति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
5. मै.-बं.-पाठयोर "-लमतिविस्तरेणे" ति। दाक्षि.-देव.-पाठौ काश्मीर-पाठमनुसरतः।
6. काश्मीरादि-पाठेषु "नेपथ्य०" मित्येव। दाक्षि.-पाठे "नैपथ्य०" इति।
7. का.-दाक्षि.-पाठयोः "अय्य, इअम्ही" ति। मै.-बं.-पाठयोः "अज्ज, इअं म्ही" ति। देव.-पाठे परिवर्तनम्।
8. काश्मीरादि-पाठेष्वितः परम् "आज्ञापयत्वार्यः को नियोगोऽनुष्ठीयतामि" त्यधिकम्। दाक्षि.-पाठेऽपि तादृशं वाक्यमस्ति। देव.-पाठे संक्षेपीकरणस्याशयेन तन्निष्कासितं स्यात्।
9. मै.-पाठे "रसभावविशेषदीक्षागुरोः श्रीविक्रमादित्यस्य साहसाङ्कस्याभिरूपभूयिष्ठा परिषदि" ति। का.-बं.-दाक्षि.-पाठेषु नास्त्येतादृशं वाक्यम्। देव.-पाठः काश्मीर-पाठमनुसरत्यत्र।
10. का.-पाठे सूत्रधारस्य मुखे नाटकस्य नामोल्लेखो नास्ति। मै.-बं.-पाठयो "रभिज्ञानशकुन्तलमि" ति वर्तते। दाक्षि.-पाठेऽपि सूत्रधारस्य मुखे तन्नाम नास्ति। देव.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
11. केवलं मै.-पाठे नास्तीदं विशेषणम्।
12. काश्मीर-पाठे "अय्यस्से" ति (आर्यस्य)। मै.-बं.-पाठयोः "अज्जस्से" ति। दाक्षि.-पाठे "णट्टस्से" ति। देव.-पाठः का.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

आ परितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः॥1- 2॥ [8]

नटी- अज्ज, एवं णेदं। अणंतरकरणिज्जं अज्जो आणवेदु। (आर्य, एवमेव तत्। अनन्तरकरणीयमार्य आज्ञापयतु।) [9]

सूत्रधारः- किमन्यदस्याः परिषदः श्रुतिप्रसादनतः। तदिदममेव तावदचिरप्रवृत्तमुपभोगक्षमं ग्रीष्मसमयम् अधिकृत्य गीयताम्[1]। सम्प्रति हि, [10]

सुभगसलिलावगाहाः पाटलसंसर्गि[2] सुरभिवनवाताः।
प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः॥ 1 - 3॥ [11]

नटी- तह। (तथा) (इति गायति) [12]

ईसीसि चुम्बिआइं भमरेहिं[3] सुउमारकेसरसिहाइं।
ओदंसयंति दअमाणा पमदाओ सिरीसकुसुमाइं[4]॥ 1-4॥

ईषदीषच्चुम्बितानि भ्रमरैः सुकुमारकेसरशिखानि।
अवतंसयन्ति दयमानाः प्रमदाः शिरीषकुसुमानि[5]॥ 1 -4॥ [13]

सूत्रधारः- आर्ये, साधु गीतम्। अहो रागबद्ध[6]चित्तवृत्तिरालिखित इव सर्वतो रङ्गः। तदिदानीं कतमत् प्रकरणम्[7] आश्रित्यैनमाराधयामः। [14]

नटी- णं अज्जमिस्सेहिं पढमं एव्व आणत्तं अहिण्णाणसाउंदलं णाम अपुव्वं[8] णाडअं पओए अधिकरीअदुत्ति।
(नन्वार्यमिश्रैः प्रथममेवाज्ञप्तम् अभिज्ञानशाकुन्तलं[9] नामापूर्वं नाटकं प्रयोगेऽधिक्रियतामिति।) [15]

सूत्रधारः- आर्ये, सम्यगनुबोधितोऽस्मि। अस्मिन्क्षणे विस्मृतं खलु मया। कुतः-[16]

तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः।
एष राजेव दुष्यन्तः[10] सारङ्गेणातिरंहसा॥ 1 -5॥ [17]

(इति निष्क्रान्तौ) [18]

॥ प्रस्तावना॥ [19]

---

1. मै.-बं.-पाठयोरनयोर्वाक्ययोर्मध्ये नटी-वाक्यमपि प्राप्यते, तद्यथा- "अथ कतरं पुनः ऋतुं समाश्रित्य गास्यामी" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति। देव.-पाठे नास्ति नटी-वाक्यम्। देव.-पाठः संक्षेपीकरणाय का.-पाठमनुसरति।
2. काश्मीरादि-पाठेषु "पाटलिसंसर्ग" इति। दाक्षि.-पाठे "पाटलसंसर्ग०" इति। देव.-पाठे परिवर्तनं दृश्यते।
3. काश्मीरादि-पाठेषु "खणचुम्बिआइ भमरेहिं सुअअ / उअह / ऊहत" इति। दाक्षि.-पाठे इसि चुम्बिआइ भमरेहि० इति। देव.-पाठे "ईसीसि०" इति परिवर्तनं क्रियते। देव.-पाठे गाथायां 32 + 29 मात्राः सन्ति।
4. गाथेयं गीति-स्वरूपा। किन्तु 30+30 मात्रासमूहो न साध्यते, "चुम्बिआइं भमरेहिं" इत्यत्रानुस्वारेण मात्राधिक्यं जायते, तच्च दोषावहं भवति।
5. का.-पाठे "ऽवतंसयन्ति प्रमदा दयमानाः शिरीषकुसुमानी" ति। मै.-बं.-पाठयो- "रवतंसयन्ति सदयं शिरीष-कुसुमानि प्रमदा" इति। दाक्षि.-देव.-पाठाभ्यां का.-पाठो भिन्नेन पदक्रमेण अनुसृतः।
6. का.-पाठे "गीतरागावबद्ध०" इति। मै.-पाठे "गीतरागापहृत०" इति। बं.-पाठे "रागापहृत०" इति। दाक्षि.-पाठे "गीतानुबद्ध" इति। देव.-पाठो बंगीय-पाठेन प्रभावितः।
7. मै.-बं.-पाठयोः "कतमं प्रयोगमि" ति। दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
8. काश्मीर-पाठे "अपुरवं" इति। मै.-पाठे "अहिरूअ" इति। बं.-पाठे "अउव्वं" इति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
9. काश्मीर-पाठे "अहिणाणसउन्तला" इति। मै.-बं.-पाठयोः "अहिण्णाणसउन्तलं" इति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
10. काश्मीर-पाठे "दुष्यन्त" इति। मै.-पाठे "दुष्मन्त" इति। बं.-पाठे "दुःषन्त" इति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(ततः प्रविशति मृगानुसारी[1] सशरचापहस्तो राजा रथेन[2] सूतश्च।) [20]

सूतः- (राजानं मृगं चावलोक्य) आयुष्मन्, [21]

कृष्णसारे ददच्चक्षुस्त्वयि चाधिज्यकार्मुके।
मृगानुसारिणं साक्षात्पश्यामीव पिनाकिनम्॥ 1 - 6॥ [22]

राजा- सूत, दूरममुना सारङ्गेण वयम् आकृष्टाः। अयं पुनरिदानीमपि -[23]

ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने बद्धदृष्टिः[3]
पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद्[4] भूयसा पूर्वकायम्।
दर्भै[5] रर्धावलीढैः श्रमविवृत[6] मुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतत्वाद्[7] वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति॥ 1 - 7॥ [24]

तदेष कथमनुपतत[8] एव मे प्रयत्नप्रेक्षणीयः संवृत्तः। [25]

सूतः- आयुष्मन्, उद्घातिनी[9] भूमिरिति मया रश्मिसंयमनाद्रथस्य मन्दीकृतो[10] वेगः। तेन मृग एष विप्रकृष्टान्तरः। सम्प्रति समदेशवर्तिनस्ते न दुरासदो भविष्यति। [26]

राजा- तेन हि मुच्यन्तामभीषवः[11]। [27]

सूतः- यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (रथवेगं निरूप्य) आयुष्मन्, पश्य,पश्य -[28]

मुक्तेषु रश्मिषु निरायतपूर्वकाया
निष्कम्पचामरशिखा निभृतोर्ध्वकर्णाः।
आत्मोद्धतैरपि रजोभिरलङ्घनीया
धावन्त्यमी मृगजवाक्षमयेव रथ्याः[12]॥ 1 - 8॥ [29]

राजा- सत्यम्। अतीत्य हरितो हरींश्च वर्तन्ते वाजिनः[13]। [30]

तथा हि -

---

1. मै.-बं.-पाठयो-"मृगमनुसरन्नि" ति। दाक्षि.-देव.-पाठौ काश्मीर-पाठमनुसरतः।
2. काश्मीर-पाठे "रथयातकेने" ति। मै.-बं.-पाठयोः "रथारूढ" इति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
3. काश्मीरादि-पाठेषु "दत्तदृष्टिरि" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
4. काश्मीरादि-पाठेषु "०भिये" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
5. काश्मीरादि-पाठेषु "शष्पैरि" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
6. काश्मीर-पाठे "श्रमवितत०" इति। बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
7. काश्मीर-पाठे "प्लुतित्वादि" ति। बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
8. काश्मीर-पाठे "कथमनुपातिन" इति। बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
9. का.-बं.-पाठयो-"रुद्घातिनी" ति। दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः।
10. मै.-बं.-पाठयो-"मन्दीभूत" इति। दाक्षि.-देव.-पाठौ काश्मीर-पाठमनुसरतः।
11. काश्मीरादि-पाठेषु "०मभीषव" इति। दाक्षि.-पाठे "०भीशव" इति। देव.-पाठो का.-पाठमनुसरति।
12. का.-पाठे "०निभृतोच्चकर्णाः, ०आत्मोद्धतैः, ०धावन्ति त" इति। मै.-बं.-पाठयोः"0स्वेषामपि प्रसरतां रजसामलङ्घ्याः, निष्कम्पचामर-शिखाश्च्युतकर्णभङ्गा, धावन्ति वर्त्मनि तरन्ति नु वाजिनस्ते" इति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति। तौ च बहुशः का.-पाठमनुसरतः।
13. का.-पाठे "ऽतीत्य हरिहरीनपि हरयो वर्तन्त" इति। मै.-बं.-पाठयोः "सूत, कथमतीत्य हरिणं हरयो वर्तन्त" इति। नाट्यानुकूला प्रासंगिकीयमुक्तिः। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति। सदपि काव्यत्त्वयुक्तमिदं वाक्यमप्रासंगिकं प्रतिभाति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद्विपुलतां
यदर्धे विच्छिन्नं भवति कृतसन्धानमिव तत्।
प्रकृत्या यद्वक्रं तदपि समरेखं नयनयो -
र्न मे दूरे किञ्चित् क्षणमपि न[1] पार्श्वे रथजवात्॥ 1 -9॥ [31]

सूत, पश्यैनं व्यापाद्यमानम्[2]। [32] (शरसन्धानं नाटयति[3])। [33]

(नेपथ्ये) [34]

भो भो राजन्, आश्रममृगोऽयं, न हन्तव्यो न हन्तव्यः[4]। [35]

सूतः- (आकर्ण्यावलोक्य च) आयुष्मन्, अस्य खलु ते बाणपातवर्तिनः कृष्णसारस्या[5]न्तरे तपस्विनः उपस्थिताः। [36]

राजा- (ससंभ्रमम्) तेन हि प्रगृह्यन्तां वाजिनः। [37]

सूतः- तथा (इति रथं स्थापयति) [38]

(ततः प्रविशत्यात्मना तृतीयो वैखानसः[6]) [39]

वैखानसः- (हस्तमुद्यम्य) राजन्, आश्रममृगोऽयं, न हन्तव्यो न हन्तव्यः[7]। [40]

तत्साधुकृतसन्धानं प्रतिसंहर सायकम्।
आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि॥ 1 - 10॥ [41]

राजा- एष प्रतिसंहृतः। (इति यथोक्तं करोति) [42]

वैखानसः- सदृशमेतत् पुरुवंशप्रदीपस्य भवतः[8]। [43]

जन्म यस्य पुरोर्वंशे युक्तरूपमिदं तव।
पुत्रमेवंगुणोपेतं चक्रवर्तिनमाप्नुहि[9]॥ 1 - 11॥ [44]

इतरौ[10]- (बाहू उद्यम्य) सर्वथा चक्रवर्तिनं पुत्रमाप्नुहि। [45]

---

1. काश्मीर-पाठे "न मे दूरे किञ्चित्, न च भवती" ति। मै.-पाठे "न मे दूरे किञ्चित् क्षणमपि न पार्श्वे रथ-रयादि" ति। दाक्षि.-देव. -पाठौ बं.-पाठमनुसरतः।
2. काश्मीरादि-पाठेषु नास्तीदं वाक्यम्। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
3. काश्मीरादि-पाठेषु नास्तीयं रंगसूचना। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरत्यत्र। उभयविधः प्रक्षेपोऽयं नाटकीयतामावहति।
4. का.-पाठे नास्तीयं नेपथ्योक्तिः। अत्र बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति। योजनेयं रंगकर्मिणां स्यात्।
5. काश्मीर-पाठे "कृष्णसारङ्गस्ये" ति। बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
6. का.-पाठे "तृतीयस्तापस" इति। मै.-पाठे "द्वितीयस्तापस" इति। बं.-पाठे "सशिष्यो वैखानस" इति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
7. मै.-पाठ इतः परं "न खलु न खलु" इति श्लोकः प्रक्षिप्तः। बं.-पाठेऽपि स श्लोकोऽस्ति। दाक्षि.-पाठे कैश्चिट्टीकाकारैः स्वीक्रियते, न सर्वैः। देव.-पाठे टीकाकारेण राघवभट्टेन सो न व्याख्यातः।
8. का.-पाठे "०पुरुवंशजातस्य भवत" इति। मै.-बं.-पाठयोः "०पुरुवंशप्रभवस्य नरेन्द्रप्रदीपस्य०" इति। दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठमनुसृत्य संमिश्रीकृतस्य पाठस्य निर्माणं कुरुतः।
9. काश्मीरादि-पाठेषु नास्त्ययं श्लोकः। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठस्य प्रक्षिप्तमिमं श्लोकं स्वीकरोति।
10. काश्मीरादि-पाठेषु तापसस्योक्तिरियम्। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- (सप्रणामम्) प्रतिगृहीतम्[1]। [46]

वैखानसः- राजन्, समिदाहरणाय प्रस्थिता वयम्। एष खलु कण्वस्य कुलपते[2] रनुमालिनीतीरमाश्रमो दृश्यते। न चेदन्यकार्यातिपातः,प्रविश्य प्रतिगृह्यतामातिथेयः सत्कारः[3]। अपि च -[47]

रम्या[4] स्तपोधनानां प्रतिहतविघ्नाः क्रियाः समवलोक्य[5]।
ज्ञास्यसि कियद्भुजो मे रक्षति मौर्वीकिणाङ्क इति॥ 1 -12॥ [48]

राजा- अपि सन्निहितोऽत्र कुलपतिः। [49]

वैखानसः- इदानीमेव दुहितरम्[6] शकुन्तलाम् अतिथिसत्काराय नियुज्य[7] दैवमस्याः प्रतिकूलं शमयितुं सोमतीर्थं[8] गतः। [50]

राजा- भवतु तामेव द्रक्ष्यामि। सा खलु विदितभक्तिं[9] मां महर्षेः कथयिष्यति[10]। [51]

वैखानसः- साधयामस्तावत्। [52]

(इति सशिष्यो निष्क्रान्तः) [53]

राजा- सूत, चोदयाश्वान्। पुण्याश्रमदर्शनेन तावदात्मानं पुनीमहे। [54]

सूतः- यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (इति भूयो रथवेगं[11] निरूपयति) [55]

राजा- (समन्तादवलोक्य) सूत, अकथितोऽपि ज्ञायत एव यथायमाभोगस्तपोवनस्येति। [56]

सूतः- कथमिव। [57]

राजा- किं न पश्यति भवान्। इह हि, [58]

नीवाराः शुकगर्भकोटरमुख[12] भ्रष्टास्तरूणामधः
प्रस्निग्धाः क्वचिदिङ्गुदीफलभिदः सूच्यन्त एवोपलाः।
विश्वासोपगमादभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगा-
स्तोयाधारपथाश्च वल्कलशिखानिष्यन्दरेखाङ्किताः[13]॥ 1 -13॥ [59]

---

1. का.-पाठे "0तपोधनवचनमि" ति। मै.-पाठे "गृहीतं ब्राह्मणवचनमस्माभिरि" ति। बं.-पाठे "प्रतिगृहीतं ब्राह्मणवच" इति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति। देव.-पाठे ब्राह्मण-तपोधनेति द्वयोरपि निष्कासनम्।
2. का.-पाठे "अस्मद्गुरोः काश्यपस्य संसक्तहिमवत्सानुरि" ति। मै.-बं.-पाठयो "रस्मद्गुरोः कण्वस्य साधिदैवत इव शकुन्तलये" ति। देव. -पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
3. काश्मीरादि-पाठे-"ष्वतिथिसत्कार" इति। दाक्षि.-पाठोऽपि तथैव। देव.-पाठे परिवर्तनम्।
4. काश्मीर-पाठे "धन्या" इति। मै.-बं.-दाक्षि.-पाठेषु "धर्म्या" इति। देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
5. दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः। मै.-बं.-पाठयोः"समभिवीक्ष्ये" ति।
6. का.-मै.-पाठयोरितः प्राग् "अनवद्यामि" ति विशेषणमधिकम्। दाक्षि.-देव.-पाठौ बं.-पाठमनुसरतः।
7. का.-पाठे "संदिश्ये" ति। मै.-बं.-पाठयो "रादिश्ये" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
8. का.-पाठ इतः पश्चात् "प्रभासमि" त्यधिकम्। मै.-पाठ इतः पश्चात् "प्रत्य" धिकम्। दाक्षि.-देव.-पाठौ बं.-पाठमनुसरतः।
9. का.-पाठे "विहितभक्तिमि" ति। मै.-बं.-पाठयोः "विदितभक्तिरि" ति। दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः।
10. का.-पाठे "महर्षेः करिष्यती" ति। मै.-बं.-पाठयोस्तु "मुनये निवेदयिष्यती" ति। दाक्षि.-देव.पाठयोर् "महर्षेः कथयिष्यती" ति। किन्तु कथ्-धातुना सह महर्षय इति चतुर्थी भवितुमर्हति। अतः दाक्षि.-देव-पाठौ न साधू।
11. का.-पाठे "रथयातकमि" ति। (अनया रंगसूचनयाङ्गिकाभिनयं सूच्यते।), मै.-बं.-पाठयोः "रथवेगमि" ति। दाक्षि.-देव.-पाठौ मै. -पाठमनुसरतः।
12. मै.-बं.-पाठयोः "शुककोटरार्भकमुख०" इति। दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
13. काश्मीरादि-पाठेष्वितः परं "कुल्याम्भोभिः प्रसृतचपलै" रिति श्लोकः, "अपि चे" ति निपातयुग्मेनावतार्यते। किन्तु दाक्षिणात्य-पाठवदत्रापि देव.-पाठे सो निष्कासितः। (काटयवेमेन राघवभट्टेन च न व्याख्यातः।)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

सूतः- सर्वमुपपन्नम्। [60]

राजा- (स्तोकमन्तरं गत्वा) सूत, तपोवननिवासिनामुपरोधो मा भूत्। एतावत्येव रथं स्थापय, यावद् अवतरामि। [61]

सूतः- धृताः प्रग्रहाः। अवतरत्वायुष्मान्। [62]

राजा- (अवतीर्य) सूत, विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम। इदं तावद् गृह्यताम्। (इति सूतस्याभरणानि धनुश्चोपनीयार्पयति[1]) सूत, यावदाश्रमवासिनः प्रत्यवेक्ष्याहमुपावर्ते[2], तावदार्द्रपृष्ठाः क्रियन्तां वाजिनः। [63]

सूतः- तथा। (इति निष्क्रान्तः) [64]

राजा- (परिक्रम्यावलोक्य च) इदमाश्रमपदम्। यावत्प्रविशामि। [65]

(प्रविश्य। निमित्तं सूचयन्) [66]

शान्तमिदमाश्रमपदं, स्फुरति च बाहुः, कुतः फलमिहास्य।
अथवा, भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र॥ 1 -14॥ [67]

[नेपथ्ये] [68]

इदो इदो सहिओ। (इतः इतः सख्यौ[3]।) [69]

राजा- (कर्णं दत्त्वा) अये, दक्षिणेन वृक्षवाटिकामालाप[4] इव श्रूयते। यावदत्र गच्छामि। (परिक्रम्यावलोक्य च)अये, एतास्तपस्विकन्यकाः स्वप्रमाणानुरूपैः सेचनघटैर्बालपादपेभ्यः पयो दातुमित एवाभिवर्तन्ते। [70]

(निपुणं निरूप्य) [71]

अहो, मधुरमासां दर्शनम्[5]। [72]

शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनो यदि जनस्य[6]।
दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः॥ 1-15॥ [73]

यावदिमां छायामाश्रित्य[7] प्रतिपालयामि। (इति विलोकयन् स्थितः) [74]

(ततः प्रविशति यथोक्तव्यापारा सह सखीभ्यां शकुन्तला) [75]

---

1. का.-पाठे "सूतायाभरणं दत्त्वा धनुश्चोत्सृज्ये" ति। मै.-पाठे "इति सूतायोपनयती" ति। बं.-पाठे "सूतस्यार्पयती" ति। दाक्षि.-पाठे "सूतहस्त" इति। देव.-पाठे सूतस्येति षष्ठीविभक्तिरसाधुः। गौणे सम्प्रदानेऽपि चतुर्थी।
2. का.-पाठे "यावदहमुपास्य महर्षीन् उपावर्त" इति। मै.-पाठे "यावदाश्रमवासिनः प्रेक्ष्य निवर्तिष्ये" इति। बं.-पाठे "यावदाश्रमवासिनः प्रत्यवेक्ष्य निवर्तिष्ये" इति। दाक्षि.-देव.-पाठयोः बं.-का.-पाठयोः संमिश्रणं क्रियते।
3. का.-पाठ "इत इतः प्रियसखी" ति। मै.-बं.-पाठयो-"रित इतः प्रियसख्यावि" ति। देव.-पाठो दाक्षि.पाठम् अनुसरति। तौ च मै. -पाठमनुसरतः। का.-पाठेनेदं सूच्यते यन्नेपथ्यतः सखीद्वयेन शकुन्तला संबोध्यते। अन्यत्र सर्वत्र शकुन्तलैव सखीद्वयमाह्वयति। एतादृशं पाठान्तरमेव सर्वेषां पाठानां रंगावृत्तित्वं प्रकटीकरोति।
4. का.-पाठे "कुसुमपादपवीथीमालापमि" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
5. का.-पाठे "माधुर्यकान्तं खलु दर्शनमासामि" ति। बं.-पाठे "चित्रमासां दर्शनमि" ति।दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः। त्रिविधेन पाठभेदेनैतेषां पाठानां रंगावृत्तित्वं सिध्यति।
6. देव.-पाठः काश्मीरादि-पाठान्नुसरति। दाक्षि.-पाठे "यति-जनस्ये" ति। तादृशः पाठभेदः काटयवेमेन प्रदत्तः।
7. का.-पाठे "पादपान्तरित एव विश्वस्तभावामेनामि" ति। मै.-पाठ "एनां छायामाश्रित" इति। बं.-पाठ "एताश्छायामाश्रित" इति। दाक्षि. -देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला- इदो इदो सहीओ। (इतः इतः सख्यौ[1]।) [76]

अनसूया[2]- हला सउंदले, तुवत्तो वि तादकस्सवस्स अस्समरुक्खआ पिअदरेत्ति तक्केमि। जेण णोमालिआकुमुमपेलवा तुमं वि एदाणं आलवालपूरणे णिउत्ता। (हला शकुन्तले, त्वत्तोऽपि तातकाश्यपस्याश्रमवृक्षकाः प्रियतरा[3] इति तर्कयामि। येन नवमालिकाकुसुमपेलवा त्वमप्येतेषामालवालपूरणे नियुक्ता।) [77]

शकुन्तला- ण केअलं तादणिओओ एव। अत्थि मे सोदरसणेहो एदेसु। (न केवलं तातनियोग एव। अस्ति मे सोदरस्नेह एतेषु। (इति वृक्षसेचनं रूपयति) [78]

राजा- (आत्मगतम्) कथमियं सा कण्वदुहिता। असाधुदर्शी खलु तत्रभवान् काश्यपः[4], य इमामाश्रमधर्मे नियुङ्क्ते। [79]

इदं किलाव्याजमनोहरं वपु-
स्तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया
समिल्लतां[5] छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति।। 1-16।। [80]

भवतु। पादपान्तर्हित[6] एव विस्रब्धं तावदेनां पश्यामि। (इति तथा करोति।) [81]

शकुन्तला- सहि अणसूए, अदिपिणद्धेण वक्कलेण पिअंवदाए णिअंतिद म्हि। सिढिलेहि दाव णं। (सखि, अनसूये, अतिपिनद्धेन वल्कलेन[7] प्रियंवदया नियन्त्रितास्मि[8]। शिथिलय तावदेतत्।) [82]

अनसूया- तह। (तथा।)

(इति शिथिलयति[9]।) [83]

प्रियंवदा- (सहासम्[10]) एत्थ पओहरवित्थारइत्तअं अत्तणो जोव्वणं उवालह। (अत्र पयोधरविस्तारयितृ आत्मनो यौवनमुपालभस्व।) [84]

---

1. मै.-बं.-पाठानुसारेण नेपथ्ये स्थिता शकुन्तलेमामुक्तिंभणति। का.-पाठे रंगभूमिं प्रविश्य प्रथमं तु द्वे सख्यौ शकुन्तलामुद्दिश्य भणतरुक्तिमिमाम्। दाक्षि.-देव.-पाठयोः शकुन्तला रंगभूमिं प्रविश्य सखीद्वयमाह्वयति।
2. का.-पाठ उक्तिरियं सखीद्वयेनोच्यते। मै.-बं.-पाठयोरुक्तिमिमामनसूया भणति। दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठम् अनुसरतः। (नाट्यप्रयोगावसरे वक्तृ-पक्षे स्थितो भेदः परिलक्ष्यते।)
3. का.-पाठे "तातकाश्यपेन०, प्रिया०" इति। मै.-पाठे "तातकण्वस्य०, प्रिया०" इति। बं.-पाठे "तातकण्वस्य०, अतिप्रिया०" इति। दाक्षि. -पाठे "तातकाश्यपस्य०, प्रियतरा०" इति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
4. का.-पाठे "काश्यप" इति। मै.-बं.-पाठयोः "कण्व" इति। दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः। (एवञ्चात्र कण्व-काश्यपेति नामद्वयस्यैकस्यामुक्तौ संनिवेशः पाठप्रदूषणं द्योतयति। तस्य च मूलं वर्तते काश्मीर-पाठे।)
5. मै.-बं.-पाठयोः "शमीलतामि" ति। दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
6. काश्मीरादि-पाठेषु "पादपान्तरित" इति। दाक्षि.-पाठोऽपि तथैव। देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
7. का.-पाठे "ऽतिपिनद्धेन प्रियंवदया वल्कलेने" ति। मै.-बं.-पाठयो- "रतिपिनद्धेनैतेन वल्कलेने" ति। दाक्षि.-पाठे "ऽदयपिनद्धेन स्तनवल्कलेने" ति। देव.-पाठः का.-पाठमनुसरति। विशेष्य-विशेषणयोरुभयोः पाठभेदौ ध्यानार्हौ।
8. मै.-बं.-पाठयोः "पीडितास्मी" ति। दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
9. का.-पाठे शकुन्तलां राज्ञः संनिकर्षमानीय वल्कलशिथिलीकरणमभिनीयते, नान्यत्रेति पूर्वमुक्तम्।
10. का.पाठे "सस्मितमि" ति, दाक्षि.-पाठस्तमनुसरति। मै.-बं.-पाठयोः "विहस्ये" ति। देव.-पाठे हास्यविधा परिवर्त्यते। (हास-परिहास-स्मितादिषु भेदः प्रसिद्ध एव।)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- काममननुरूपमस्या वयसो वल्कलम्[1]। न पुनरलंकारश्रियं न पुष्यति। कुतः, [85]

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं[2] मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्[3]॥ 1 -17॥ [86]

शकुन्तला- (अग्रतोऽवलोक्य) एसो वादेरिदपल्लवंगुलीहिं तुवरेदि विअ मं केसररुक्खओ। जाव णं संभावेमि। (एष वातेरितपल्लवाङ्गुलीभिस्त्वरयतीव मां केसरवृक्षकः[4]। यावदेनं सम्भावयामि।) [87]

(इति परिक्रामति) [88]

प्रियंवदा- हला सउंदले, एत्थ एव्व दाव मुहुत्तं चिट्ठ। जाव तुए उवगदाए लदासणाहो विअ अअं केसररुक्खओ पडिभादि। (हला शकुन्तले, अत्रैव तावन्मुहूर्तं तिष्ठ। यावत्त्वयोपगतया लतासनाथ इवायं केसरवृक्षकः प्रतिभाति।) [89]

शकुन्तला- अदो खु पिअंवदासि तुमं। (अतः खलु प्रियंवदा असि त्वम्।) [90]

राजा- प्रियमपि तथ्यमाह शकुन्तलां प्रियंवदा। अस्याः खलु, [91]

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम्॥ 1-18॥ [92]

अनसूया- हला सउंदले, इअं सअंवरवहू सहआरस्स तुए किदणामहेआ वणजोसिणित्ति णोमालिआ। णं विसुमरिदासि। (हला शकुन्तले, इयं स्वयंवरवधूः सहकारस्य त्वया कृतनामधेया वनज्योत्स्नेति नवमालिका[5]। एनां विस्मृतवत्यसि।) [93]

शकुन्तला- तदा अत्ताणं वि विसुमरिस्सं। (लतामुपेत्यावलोक्य च) हला, रमणीए खु काले इमस्स लदापाअवमिहुणस्स वइअरो संवुत्तो। णवकुसुमजोवणा वणजोसिणी, सिणिद्धपल्लवदाए उवभोअक्खमो सहआरो। (तदात्मानमपि विस्मरिष्यामि। हला, रमणीये खलु काल एतस्य लतापादपमिथुनस्य व्यतिकरः संवृत्तः। नवकुसुमयौवना वनज्योत्स्ना, स्निग्धपल्लवतयोपभोगक्षमः सहकारः।) [94]

(इति पश्यन्ती तिष्ठति) [95]

प्रियंवदा- अणसूए, जाणासि किं सउंदला वणजोसिणीं अदिमेत्तं पेक्खदित्ति। (अनसूये, जानासि किं शकुन्तला वनज्योत्स्नामतिमात्रं पश्यतीति।) [96]

अनसूया- ण खु विभावेमि। कहेहि। (न खलु विभावयामि। कथय।) [97]

प्रियंवदा- जह वणजोसिणी अणुरूवेण पाअवेण संगदा, अवि णाम एव्वं अहं वि अत्तणो अणुरूवं वरं लहेअत्ति। (यथा वनज्योत्स्नानुरूपेण पादपेन संगता, अपि नामैवमहमप्यात्मनोऽनुरूपं वरं लभेयेति।) [98]

शकुन्तला- एसो णूणं तुह अत्तगदो मणोरहो। (एष नूनं तवात्मगतो मनोरथः[6]।) [99]

---

1. का.-पाठे "कामम् अप्रतिरूपमस्य वयसो वल्कलमि" ति। मै.-बं.-पाठयोरथवेति निपातप्रयोगपूर्वं वाक्यमिदमायाति। दाक्षि.-पाठे "काममननुरूपम् अस्या वपुषो वल्कलमि" ति। देव.-पाठः का.-पाठमनुसरति।
2. मै.-बं.-पाठयोरस्माच्छ्लोकात् प्राक् "इदमुपहितसूक्ष्मग्रन्थिना स्कन्धदेशे०" इत्यधिकः श्लोकः प्राप्यते। स च संक्षेपीकरणस्याशयेन काश्मीर-पाठाद् दूरीकृतः स्यात्। तं का.-पाठमनुसृत्य दाक्षि.-देव-पाठाभ्यामपि स श्लोको निष्कासितः। वस्तुतः सो भवितुमर्हति।
3. काश्मीर-पाठ इतः परं माधवीलता-विषयकः वार्तालापो वर्तते। स च दाक्षि.-देव.-पाठतो निष्कासितः।
4. काश्मीर-पाठे बकुलवृक्षो वर्तते। मै.-बं.-पाठयोश्चूतवृक्षोऽस्ति। दाक्षि.-पाठमनुसरति देव.-पाठः। (प्रदेश-भेदाद् वृक्षभेद एतेषां पाठानां रंगावृत्तित्वं दृढयति। कालिदासेन किं नाम लिखितं स्यादिति निर्णेतुं न शक्यते।)
5. काश्मीर-पाठे सहकारस्य नाम वनतोषिन्निति वर्तते। तच्च मै.-पाठे नवमालिकाया लताया विशेषणत्वेन "वनतोषिणी" ति भूत्वा, कालान्तरेण दाक्षि.-पाठे वनज्योत्स्नी-रूपेण परिवर्त्यते। देव.-पाठे तदेव "वनज्योत्स्ना" जायते।
6. काश्मीरादि-पाठेषु "चित्तगत" इति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(इति कलशम् आवर्जयति[1]।) [100]

राजा- अपि नाम कुलपतेरियमसवर्णक्षेत्रसम्भवा स्यात्। अथवा कृतं सन्देहेन, [101]

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यम्[2] अस्यामभिलाषि मे मनः।
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः॥ 1-19॥ [102]

तथापि तत्त्वत एनामुपलप्स्ये। [103]

शकुन्तला- (ससंभ्रमम्) अम्मो, सलिलसेअसंभममुग्गदो णोमालिअं उज्झिअ वअणं मे महुअरो अहिवट्टइ।

(अम्मो, सलिलसेकसंभ्रमोद्गतो नवमालिकामुज्झित्य वदनं मे मधुकरोऽभिवर्तते। [104]

(इति भ्रमरबाधां रूपयति) [105]

राजा- (सस्पृहम्[3]) [106]

चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचरः[4]।
करौ[5] व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं
वयं तत्त्वान्वेषान्[6] मधुकर हतास्त्वं खलु कृती॥ 1-20॥ [107]

शकुन्तला- ण एसो दुट्ठो विरमदि। अण्णदो गमिस्सं। (पदान्तरे स्थित्वा, सदृष्टिक्षेपम्) कहं इदो वि आअच्छदि। हला, परित्ताअह मं इमिणा दुव्विणीदेण दुट्ठमहुअरेण पडिहूअमाणं। (न एष दुष्टो विरमति। अन्यतो गमिष्यामि। कथमितोऽप्यागच्छति। हला, परित्रायेथां मामनेन दुर्विनीतेन दुष्टमधुकरेण परिभूयमानाम्[7]।) [108]

उभे - (सस्मितम्) का वअं परित्तादुं। दुस्संदं अक्कंदं। राअरक्खिदव्वाइ तवोवणाइं णाम। (के आवां परित्रातुम्। दुष्यन्तमाक्रन्द। राजरक्षितव्यानि तपोवनानि नाम।) [109]

राजा- अवसरोऽयमात्मानं प्रकाशयितुम्। न भेतव्यम्, न भेतव्यम्[8] ...। (इत्यर्धोक्ते। स्वगतम्)

राजभावस्त्वभिज्ञातो भवेत्। भवतु। एवं तावदभिधास्ये[9]। [110]

---

1. अत्रावर्जयतीति शब्दस्य (कलशं रंगभूमौ) स्थापयतीत्यर्थः। तेन "करौ व्याधुन्वत्याः०" इति संगच्छते। मै.-बं.-पाठयोर्द्विवारं रंगसूचनेयं प्रदीयते। तथापि तत्र "करं व्याधुन्वत्याः०" इति एकवचनान्तं श्रूयते। तेनैकेनैव हस्तेन शकुन्तला भ्रमरस्यापसारणं करोति।
2. काश्मीर-पाठे "यदेवमि" ति। मै.-बं.-पाठयो "रार्यमि" ति। दाक्षि.-देव.पाठौ मै.-पाठमनुसरतः।
3. काश्मीर-पाठे संक्षेपीकरणस्याशयेन यतो यतःषट्चरणोऽभिवर्तते० इति श्लोको निष्कासितः स्यात्। तादृशं का.-पाठमनुसृत्य दाक्षि.-देव. -पाठाभ्यामपि स श्लोको निष्कासितः। किन्तु सस्पृहमिति रंगसूचनया तस्य श्लोकस्य मूलपाठेऽस्तित्वं संसूच्यते। यतो हि, चलापाङ्गामिति श्लोकस्तु सासूयमुच्यत इत्यवधेयम्। मै.-बं.-पाठयोः सस्पृहमिति रंगसूचनया यतो यतः षट्चरणोऽभिवर्तत इति श्लोकोऽवतार्यते। तत्तु सर्वथा समीचीनम्।
4. काश्मीर-पाठे "कर्णान्तिकगत" इति। मै.-बं.-पाठयोः "कर्णान्तिकचर" इति। दाक्षि.-देव.पाठौ मै.-पाठम् अनुसरतः।
5. मै.-बं.-पाठयोः "करमि" ति। दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः। (हस्ताभिनये भेदो भविष्यति।)
6. काश्मीर-पाठे "वयं देवैर्मौग्ध्यान्" निति। मै.-बं.-पाठयो "र्वयं तत्त्वान्वेषादि" ति। दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठम् अनुसरतः।
7. काश्मीरादि-पाठेषु शकुन्तलाया उक्तिरियं भागद्वयेन विभक्ता वर्तते। एवञ्च सा प्रथमं सखीत एव साहाय्यं याचते। तत एव स्वतो भ्रमरं दूरीकर्तु यतते। दाक्षि.-पाठेऽपि तथैव। किन्तु देव.-पाठे दृश्यमानं परिवर्तनं न समीचीनं प्रतिभाति। भागद्वये विभक्तेयमुक्तिरेकत्रैव संमिल्य प्रस्तूयते। इत्थं देव.-पाठः संक्षिप्ततरः क्रियते।
8. काश्मीरादि-पाठेषु "न भेतव्यमि" ति समानम्। दाक्षि.-पाठे "कः कोऽत्र भोः" इति परिवर्तनम्। देव.-पाठः का.-पाठमनुसरति।
9. काश्मीरादि-पाठेष्वे "-वं राजाहमिति प्रतिज्ञातं भवति। भवत्वतिथिसमुचिताचारसत्कारमवलम्बिष्य" इति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला- (पदान्तरे स्थित्वा। सदृष्टिक्षेपम्।) कहं इदो वि मं अणुसरदि। (कथमितोऽपि माम् अनुसरति।) [111]

राजा- (सत्वरमुपसृत्य) [112]

कः पौरवे वसुमतीं[1] शासति शासितरि दुर्विनीतानाम्।
अयमाचरत्यविनयं मुग्धासु तपस्विकन्यासु॥ 1 -21॥ [113]

(सर्वा राजानं दृष्ट्वा किञ्चिदिव सम्भ्रान्ताः) [114]

अनसूया[2]- अज्ज, ण खु किंवि अच्चाहिदं। इअं णो पिअसही महुअरेण अहिहूअमाणा कादरीभूता। (आर्य, न खलु किमप्यत्याहितम्। इयं नो प्रियसखी मधुकरेणाभिभूयमाना[3] कातरीभूता।) [115]

(इति शकुन्तलां दर्शयति) [116]

राजा- (शकुन्तलाभिमुखो भूत्वा[4]) अपि तपो वर्धते। [117]

(शकुन्तला साध्वसाद् अवचना[5] तिष्ठति।) [118]

अनसूया- दाणिं अदिहिविसेसलाहेण। हला सउंदले, गच्छ उडअं। फलमिस्सं अग्घं उवहर। इदं पादोदअं भविस्सदि। (इदानीमतिथिविशेषलाभेन[6]। हला शकुन्तले, गच्छ उटजम्[7]। फलमिश्रमर्घमुपहर। इदं पादोदकं भविष्यति।) [119]

राजा- भवतीनां सूनृतयैव गिरा[8] कृतमातिथ्यम्। [120]

प्रियंवदा- तेण हि, इमस्सिं पच्छाअसीअलाए सत्तवण्णवेदिआए मुहुत्तअं उवविसिअ परिस्समविणोदं करेदु अज्जो। (तेन ह्यस्यां प्रच्छायशीतलायां[9] सप्तपर्णवेदिकायां मुहूर्तम् उपविश्य परिश्रमविनोदं करोत्वार्यः।) [121]

राजा- नूनं यूयमप्यनेन कर्मणा[10] परिश्रान्ताः। [122]

अनसूया- हला सउंदले, उइदं णो पज्जुवासणं अदिहीणं। एत्थ उवविसम्ह। (हला शकुन्तले, उचितं नः पर्युपासनमतिथीनाम्। अत्रोपविशामः।) [123]

(इति सर्वा उपविशन्ति[11]) [124]

शकुन्तला- (आत्मगतम्) किं णु खु इमं पेक्खिअ तवोवणविरोहिणो विआरस्स गमणीअ म्हि संवुत्ता।

---

1. अत्र वसुमती-शब्देन पृथिव्युच्यते। अतः मै.-बं.-दाक्षि.-देव.-पाठेषु दुष्यन्तस्य पत्न्याः श्रूयमाणं वसुमतीति नाम मूलतो नैव भवेदिति सूच्यते। काश्मीर-पाठे श्रूयमाणं कुलप्रभेति नामैव मूले स्यादिति दृढीभवति।
2. केवलं मै.-पाठे "सख्यावि" ति। उक्तिरियं सखीद्वयेनोच्यते। अतस्तत्रे "ति शकुन्तलां दर्शयत" इति रंगसूचना।
3. काश्मीरादि-पाठेषु "०आकुलीक्रियमाणे" ति। दाक्षि.-पाठेऽपि तथैव। देव.-पाठे परिवर्तनम्। यच्चायुक्तम्।
4. का.-बं.-पाठयोः "शकुन्तलामुपेत्ये" ति। मै.-पाठे "शकुन्तलामुपगम्ये" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
5. का.-पाठे "ऽवनतमुखी, अवचने" ति। मै.-पाठे "ऽधोमुखी" ति। बं.-पाठे "ऽवचने" ति नास्ति, "अवनतमुखी" ति। दाक्षि.-पाठे "ऽवनतमुखी" ति।
6. का.-पाठ इतः परं प्रियंवदाया मुखे "स्वागतमार्यस्ये" ति स्वतन्त्रं वाक्यम्। मै.-बं.-पाठयोरपि तथैव। दाक्षि.-पाठ इतः परं "स्वागतम् आर्यस्ये" ति। देव.-पाठात् तद्वाक्यं निष्कास्यते। (देव.-पाठः संक्षिप्ततरः क्रियते)
7. का.-पाठेऽनसूयाया मुख एवोक्तिरियम्। किन्तु मै.-बं.-पाठयोः "हला शकुन्तले, गच्छोटजमि" त्यादिरुक्तिरियं प्रियंवदाया मुखे स्थापिता।
8. का.-बं.-पाठयोः "सुनृतयैव वाचे" ति। मै.-पाठे "सुनृतेनैव वचसे" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
9. का.-पाठे "पादपच्छायाशीतलायामि" ति। बं.-पाठे "स्वभावशीतलायामि" ति। दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठम् अनुसरतः।
10. का.-बं.-पाठयो-"धर्मकर्मणे" ति। दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः।
11. केवलं दाक्षि.-पाठे "सर्वे यथोचितमुपविशन्ती" ति। काश्मीरादि-पाठेषु "सर्वा उपविशन्ती" ति। अर्थात् तत्र प्रथमं राजोपविष्टः, तदनन्तरं तिस्रः सख्य उपविशन्ति। देव.-पाठः का.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(किं नु खल्विमं प्रेक्ष्य तपोवनविरोधिनो विकारस्य गमनीयास्मि संवृत्ता।) [125]

राजा- (सर्वा विलोक्य) अहो, समवयोरूपरमणीयं भवतीनां सौहार्दम्। [126]

प्रियंवदा- (जनान्तिकम्) अणसूए, को णु खु एसो चउरगम्भीराकिदी चउरं पिअं आलवन्तो पहाववन्दो विअ लक्खीअदि। (अनसूये, को नु खल्वेष चतुरगम्भीराकृतिश्चतुरं[1] प्रियमालपन् प्रभाववान्निव लक्ष्यते।) [127]

अनसूया- (जनान्तिकम्) सहि, मम वि अत्थि कोदूहलं। पुच्छिस्सं दाव णं। (प्रकाशम्) अज्जस महुरालावजणिदो वीसंभो मं मन्तावेदि, कदमो अज्जेण राएसिणो वंसो अलंकरीअदि। कदमो वा विरह पज्जूस्सुअजणो किदो देसो। किं णिमित्तं वा सुउमारदरो वि तवोवणगमणपरिस्समस्स अत्ता पदं उवणीदो। (सखि, ममाप्यस्ति कौतूहलम्। पृच्छामि तावदेनम्। आर्यस्य मधुरालापजनितो विश्रम्भो मां मन्त्रयते। कतम आर्येण राजर्षेर्वंशोऽलङ्क्रियते[2], कतमो वा विरहपर्युत्सुकजनः कृतो देशः[3]। किं निमित्तं वा सुकुमारतरो[4]ऽपि तपोवनगमनपरिश्रमस्यात्मा पदमुपनीतः।) [128]

शकुन्तला- (आत्मगतम्) हिअह, मा उत्तम्म। एसा तुए चिन्तिदाइं अणसूया मन्तेदि। (हृदय, मोत्ताम्य। एषा त्वया चिन्तितान्यनसूया मन्त्रयते।) [129]

राजा- (आत्मगतम्) कथमिदानीमात्मानं निवेदयामि, कथं वात्मापहारं करोमि। भवतु। एवं तावदेनां वक्ष्ये[5]। (प्रकाशम्)भवति,यः पौरवेण राज्ञा धर्माधिकारे नियुक्तः[6] सोऽहमविघ्नक्रियोलम्भाय[7] धर्मारण्यमिदम् आयातः। [130]

अनसूया- सणाहा दाणिं धम्मआरिणो। (सनाथा इदानीं धर्मचारिणः।) [131]

(शकुन्तला शृङ्गारलज्जां नाटयति।) [132]

सख्यौ- (उभयोराकारं विदित्वा जनान्तिकम्।) हला सउंदले, जइ एत्थ अज्ज तादो संणिहिदो भवे। (हला शकुन्तले, यद्यत्राद्य तातः सन्निहितो भवेत्...।) [133]

शकुन्तला- तदो किं भवे। (ततः किं भवेत्।) [134]

सख्यौ- इमं जीविदसव्वस्सेण वि अदिहिविसेसं किदत्थं करिस्सदि। (इमं जीवितसर्वस्वेनाप्यतिथिविशेषं कृतार्थं करिष्यति।) [135]

शकुन्तला- तुम्हे अवेध। किं वि हिअए करिअ मन्तेध। ण वो वअणं सुणिस्सं। (युवामपेतम्। किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रयेथे। न युवयोर्वचनं श्रोष्यामि।) [136]

राजा- वयमपि तावद्भवत्योः सखीगतं किञ्चित् पृच्छामः। [137]

---

1. का.-पाठे "मधुरगम्भीराकृतिर्मधुरमि" ति। मै.-पाठे "चतुरगम्भीराकृतिः मधुरमि" ति। बं.-पाठे "दुरवगाहगम्भीराकृतिर्मधुरमि" ति। दाक्षि.-पाठे "चतुरगम्भीराकृतिर्मधुरमि" ति। देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
2. का.-पाठे "कतमं पुनरार्यो वर्णमलंकरोती" ति। मै.-पाठे "कतरः पुनर्वर्ण आर्येणालंक्रियत" इति। बं.-पाठे "कतरः पुनरार्येण राजर्षिवंशोऽलंक्रियत" इति। दाक्षि.-देव.-पाठौ बं.-पाठमनुसरतः।
3. का.-पाठे द्वितीयोऽयं प्रश्नो नास्त्येव। मै.-बं.-पाठयोः "कतरो वा प्रदेशो विरहपर्युत्सुकः क्रियत" इति। दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः।
4. का.-पाठे "सुकुमारेणार्येणे" ति। मै.-पाठ "आर्येण कुसुमसुकुमारेणे" ति। बं.-पाठ "आर्येण सुकुमारेणे" ति। दाक्षि.-पाठे "सुकुमार" इति। देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
5. का.-आदिषु पाठेषु स्वगतोक्तिरूपेण प्रस्तुतमिदं वाक्यं प्रक्षिप्तं स्यात्।
6. का.-पाठे "वेदविदस्मि पौरवेण राज्ञा धर्माधिकारे नियुक्त" इति। मै.-बं.-पाठयो "वेंदविदस्मि राज्ञः पौरवस्य नगराद् धर्माधिकारे नियुक्त" इति। दाक्षि.-पाठे वेदविदस्मीति नास्ति। देव.-पाठस्तमनुसरति।
7. का.-पाठे "ऽविघ्नक्रियोपलम्भाये" ति। मै.-बं.-पाठयोः "पुण्याश्रमदर्शनप्रसंगेने" ति। दाक्षि.-पाठ "आश्रमिणाम् अविघ्नक्रियोपलम्भाये" ति। देव.-पाठ "आश्रमिणामि" ति पदं दूरीकृतं दृश्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

सख्यौ- अज्ज, अणुग्गहो विअ इअं अब्भत्थणा। (आर्य, अनुग्रह इवेयमभ्यर्थना[1]।) [138]

राजा- भगवान् काश्यपः[2] शाश्वते ब्रह्मणि स्थित इति प्रकाशः[3]। इयं च वां सखी तदात्मजेति कथमेतत्। [139]

अनसूया- सुणादु अज्जो। अत्थि को वि कोसिओत्ति गोत्तणामहेओ महाप्पहाओ राएसी। (शृणोत्वार्यः। अस्ति कोऽपि कौशिक इति गोत्रनामधेयो महाप्रभावो राजर्षिः।) [140]

राजा- अस्ति, श्रूयते[4]। [141]

अनसूया- तं णो पिअसहीए पहवं अवगच्छ। उज्झिआए सरीरसंवड्ढणादिहिं तादकस्सवो से पिदा। (तम् आवयोः प्रियसख्याः प्रभवम् अवगच्छ। उज्झितायाः शरीरसंवर्धनादिभिस्तातकाश्यपो[5]ऽस्याः पिता।) [142]

राजा- उज्झित-शब्देन जनितं मे कौतूहलम्। आ मूलाच्छ्रोतुमिच्छामि। [143]

अनसूया- सुणादु अज्जो। गोदमीतीरे पुरा किल तस्स राएसिणो उग्गे तवसि वट्टमाणस्स किं वि जादसङ्केहिं देवेहिं मेणआ णाम अच्छरा पेसिदा णिअमविग्घकालिणी। (शृणोत्वार्यः। गौतमीतीरे[6]पुरा किल तस्य राजर्षेरुग्रे तपसि वर्तमानस्य किमपि जातशङ्कैः देवैः मेनका नामाप्सराः प्रेषिता नियमविघ्नकारिणी।) [144]

राजा- अस्त्येतदन्यसमाधिभीरुत्वं देवानाम्। [145]

अनसूया- तदो वसन्तोदाररमणीए समए से उम्मादइत्तअं रूवं पेक्खिअ, ...। (इत्योर्धोक्ते लज्जया विरमति[8]।) (ततो वसन्तोदाररमणीये[7] समये तस्या उन्मादयितृकं रूपं प्रेक्ष्य ...।) [146]

राजा- परस्ताद् ज्ञायत[9] एव। सर्वथाप्सरःसम्भवैषा। [147]

अनसूया- अह इं। (अथ किम्) [149]

राजा- उपपद्यते-[150]

मानुषीषु[10] कथं वा स्यादस्य रूपस्य सम्भवः।
न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्॥ 1 -22॥ [151]

(शकुन्तलाऽधोमुखी तिष्ठति) [152]

राजा- (आत्मगतम्) लब्धावकाशो मे मनोरथः। किन्तु सख्याः परिहासोदाहृतां वरप्रार्थनां श्रुत्वा धृतद्वैधीभावकातर[11] मे मनः। [153]

---

1. काश्मीरादि-पाठेष्व "नुग्रहेऽप्यभ्यर्थने" ति।दाक्षि.-पाठे "ऽनुग्रहः खल्वभ्यर्थने" ति। देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
2. मै.-बं.-पाठयोः "तत्रभवान् कण्व" इति। दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
3. काश्मीरादि-पाठेषु न स्तः शब्दावेतौ। दाक्षि.-पाठे प्रथमवारं प्रविष्टावेतौ शब्दौ। देव.-पाठस्तमनुसरति।
4. का.-मै.-पाठयोः "प्रकाशस्तत्रभवान्त्रि" ति। बं.-पाठे "तत्रभवान्त्रि" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
5. मै.-बं.-पाठयो-"स्तातकण्व" इति। दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
6. का.-पाठेषु नास्त्ययं शब्दः। दाक्षि.-पाठेऽपि नास्ति। देव.-पाठेन प्रक्षिप्तोऽयं शब्द इति प्रतिभाति।
7. मै.-पाठे "लज्जां रूपयती" ति। बं.-पाठे "लज्जां नाटयती" ति। दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
8. का.-पाठेषु "वसन्तोदयसमय" इति। दाक्षि.-पाठे "वसन्तोदारसमय" इति। देव.-पाठो मै.-पाठमनुसरति, बं.-पाठवद्।
9. का.-पाठेषु "पुरस्तादवगम्यत" इति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
10. केवलं बं.-पाठे "मानुषीभ्य" इति पञ्चमी विभक्तिः प्रयुक्ता, किन्तु सा न साधुः। अन्यत्र सर्वत्र सप्तम्येव।
11. का.-पाठे "श्रुत्वापि न श्रद्-दधते कातरमि" ति। मै.-पाठे "श्रुत्वापि व्रतद्वैतकातरमि" ति। बं.-पाठे वाक्यमिदं सर्वथा निष्कासितम्। देव. -पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रियंवदा- (सस्मितम् शकुन्तलां विलोक्य, नायकाभिमुखी भूत्वा) पुणो वि वत्तुकामो विअ अज्जो। (पुनरपि वक्तुकाम इवार्यः।) [154]

(शकुन्तला सखीमङ्गुल्या तर्जयति।) [155]

राजा- सम्यगुपलक्षितं भवत्या। अस्ति नः सच्चरितश्रवणलोभादन्यदपि प्रष्टव्यम्। [156]

प्रियंवदा- अलं विआरिअ। अणिअन्तणाणुओओ तवस्सिअणो णाम। (अलं विचार्य। अनियन्त्रणानुयोगस्तपस्विजनो नाम।) [157]

राजा- इति सखीं ते ज्ञातुमिच्छामि -[158]

वैखानसं किमनया व्रतमाप्रदानाद्-
व्यापाररोधि मदनस्य निषेवितव्यम्।
अत्यन्तमेव मदिरेक्षणवल्लभाभि[1] -
राहो निवत्स्यति समं हरिणाङ्गनाभिः॥ 1 -23॥ [159]

प्रियंवदा- अज्ज, धम्मचरणे वि परवसो अअं जणो। गुरुणो उण से अणुरूववरप्पदाणे संकप्पो। (आर्य, धर्मचरणेऽपि परवशोऽयं जनः। गुरोः पुनरस्या अनुरूपवरप्रदाने संकल्पः। [160]

राजा- (आत्मगतम्) न दुरवापेयं[2] प्रार्थना। [161]

भव हृदय साभिलाषं सम्प्रति सन्देहनिर्णयो जातः।
आशङ्कसे यदग्निं तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नम्॥ 1 -24॥ [162]

शकुन्तला- (सरोषमिव) अणसूए, गमिस्सं अहं। (अनसूये, गमिष्याम्यहम्।) [163]

अनसूया- किंणिमित्तं। (किं निमित्तम्।) [164]

शकुन्तला- इमं असंबद्धप्पलाविणिं पिअंवदं अज्जाए गोदमीए णिवेदइस्सं। (इमामसंबद्धप्रलापिनीं प्रियंवदाम् आर्यायै गौतम्यै निवेदयिष्यामि।) [165]

अनसूया- सहि, ण जुत्तं अकिदसक्कारं अदिहिविसेसं विसज्जिअ सच्छन्ददो गमणं। (सखि, न युक्तम्[3] अकृतसत्कारमतिथिविशेषं विसृज्य स्वच्छन्दतो गमनम्।) [166]

(शकुन्तला न किञ्चिदुक्त्वा प्रस्थितैव[4]।) [167]

राजा- [5](ग्रहीतुमिच्छन्निगृह्यात्मानम्[6]। आत्मगतम्।) अहो, चेष्टाप्रतिरूपिका कामिजनमनोवृत्तिः। [168], अहं हि

अनुयास्यन् मुनितनयां सहसा विनयेन वारितप्रसरः।
स्थानादनुच्चलन्नपि गत्वेव[7] पुनः प्रतिनिवृत्तः॥ 1 -25॥ [169]

---

1. का.-पाठ "आत्मसदृशेक्षण-वल्लभाभि०" इति। मै.-बं.-पाठयोः "सदृशेक्षणवल्लभाभि0" इति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति। (किन्तूपमाननेन सह न संगच्छते।)
2. का.-पाठे "दुर्लभैषे" ति। मै.-बं.-पाठयोर्नास्त्येतादृशं वाक्यम्। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति। तौ च का.-पाठमनुसरतः।
3. का.-पाठेष्वितः परम् "आश्रमवासिनो जनस्ये" त्यधिकम्। दाक्षि.-पाठे पदद्वयमिदं भिन्नेन पदक्रमेण दीयते। देव.-पाठेन तन्निष्कास्यते।
4. का.-पाठे "न किञ्चिदुक्त्वा प्रस्थितैवे" ति। मै.-बं.-पाठयो "रुत्तरमदत्त्वैव प्रस्थिते" ति। दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
5. का.-मै.-पाठयोरत्र "(अपवार्य) कथं गच्छती" त्यधिकम्। बं.-दाक्षि.-देव.-पाठेष्वपि नास्त्येतादृशमधिकम्।
6. मै.-बं.-पाठयो "रित्युत्थाय जिघृक्षुरिवेच्छां निगृह्ये" ति। दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
7. का.-पाठे "गत्वैवे" ति। बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रियंवदा- (शकुन्तलां निरूप्य) हला, ण दे जुत्तं गंतुं। (हला[1], न ते युक्तं गन्तुम्[2]।) [170]

शकुन्तला- (सभ्रूभङ्गम्) किंणिमित्तं। (किं निमित्तम्।) [171]

प्रियंवदा- रुक्खसेअणे दुवे धारेसि मे। एहि दाव। अत्ताणं मोचिअ तदो गमिस्ससि। (वृक्षसेचने द्वे धारयसि मे। एहि तावत्। आत्मानं मोचयित्वा ततो गमिष्यसि।) [172]

(इति बलादेनां निवर्तयति।) [173]

राजा- भद्रे, वृक्षसेचनादेव परिश्रान्तामत्रभवतीं लक्षये। तथा ह्यस्याः-[174]

स्रस्तांसावतिमात्रलोहिततलौ[3] बाहू घटोत्क्षेपणा-
दद्यापि स्तनवेपथुं जनयति श्वासः प्रमाणाधिकः।
स्रस्तं[4] कर्णशिरीषरोधि वदने घर्माम्भसां जालकं
बन्धे स्रंसिनि चैकहस्तयमिताः पर्याकुला मूर्धजाः[5]॥ 1 -26॥ [175]

तदहमेनामनृणां करोमि। (इत्यङ्गुलीयं दातुमिच्छति[6]।) [176]

(उभे नाममुद्राक्षराण्यनुवाच्य परस्परम् अवलोकयतः।) [177]

राजा- अलमस्मानन्यथा संभाव्य। राज्ञः परिग्रहोऽयमिति राजपुरुषं मामवच्छथ[7]। [178]

प्रियंवदा- तेण हि णारिहदि एदं अङ्गुलीअअं अंगुलीविओअं। अज्जस्स वअणेण अणिरिणा दाणिं एसा।
(किंचिद्विहस्य) हला सउंदले, मोइदा सि अणुअम्पिणा अज्जेण, अहवा महाराएण। गच्छ दाणिं।
(तेन हि नार्हत्येतद् अङ्गुलीयकम् अङ्गुलीवियोगम्। आर्यस्य वचनेनानृणेदानीमेषा।
हला शकुन्तले, मोचितास्यनुकम्पिनार्येण, अथवा महाराजेन। गच्छेदानीम्[8]।) [179]

शकुन्तला- (आत्मगतम्) जइ अत्तणो पहविस्सं। (प्रकाशम्)का तुमं विसज्जिदव्वस्स रुंधिदव्वस्स वा।
(यद्यात्मनः प्रभविष्यामि[9]। (प्रकाशम्)का त्वं विसर्जितव्यस्य रोद्धव्यस्य वा।) [180]

राजा- (शकुन्तलां विलोक्य, आत्मगतम्) किं नु खलु यथा वयमस्याम् एवमियमप्यस्मान्प्रति स्यात्। अथवा, लब्धावकाशा

---

1. काश्मीरादि-पाठेषु "हले चण्डि" इति। किन्तु दाक्षि.-देव.-पाठयोर्न तथा।
2. मै.-पाठे "न लम्भसि गन्तुमि" ति। बं.-पाठे "न लभ्यते गन्तुमि" ति। दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
3. का.-पाठे "लोहितकरा" विति। बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
4. का.-पाठे "बद्धमि" ति। दाक्षि.-पाठेऽपि तथैव। देव.-पाठे परिवर्तनं दृश्यते।
5. मै.-पाठे "कुन्तलाः" इति। बं.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।
6. का.-पाठे "स्वमङ्गुलीयं प्रयच्छती" ति। मै.-बं.-पाठयो "रित्यङ्गुरीयकं ददाती" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठम् अनुसरति। (दाक्षि.-देव. -रंगभूमौ सखीद्वयेन राज्ञोऽङ्गुलीयकं स्वहस्ते न गृह्यते। अभिनयभेदो भवेत्।)
7. काश्मीरादि-पाठेषु "राज्ञः परिग्रहोऽयमि" त्येव। दाक्षि.-पाठेऽपि तथैव। देव.-पाठे प्रक्षिप्तमधिकञ्चेदम्।
8. का.-पाठे "ऽथवा महानुभावेन। कृतज्ञेदानीं भविष्यसी" ति। मै.-पाठे "ऽथवा महाराजेन। तस्मात् कृतार्थेदानीमसि त्वम्। बं.-पाठे "ऽथवा महाराजेन। तत्कुत्रेदानीं गमिष्यसी"ति। किन्तु मै.-बं.-पाठयोर्वाक्यमिदम् अनुसूयाया मुखे स्थापितं वर्तते। देव.-पाठो दाक्षि. -पाठमनुसरति।
9. का.-मै.-पाठयोरस्माद् वाक्यात्पूर्वं "नेदं विस्मरिष्यते" / "ष्यामी" त्यधिकम्। बं.-पाठे "नैतत्परिहरिष्यामी" ति। देव.-पाठो दाक्षि. -पाठमनुसरति। (इतः परं काश्मीरादि-पाठेषु सखीनां मध्ये शकुन्तलाया गमनागमन-विषये वार्तालापो वर्तते। किन्तु लघुपाठ-परम्परयोः तस्य निष्कासनं कृत्वा पाठस्य संक्षेपीकरणं साध्यते।)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

मे प्रार्थना[1]। कुतः-[181]

वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः
कर्णं ददात्यभिमुखं[2] मयि भाषमाणे।
कामं न तिष्ठति मदाननसम्मुखीना
भूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्याः॥ 1-27॥ [182]

(नेपथ्ये) [183]

[<भो भोस्तपस्विनः। सन्निहिता[3] स्तपोवनसत्त्वरक्षायै भवत। प्रत्यासन्नः किल मृगयाविहारी पार्थिवो दुष्यन्तः। [184]

तुरगखुरहतस्तथा हि रेणु र्विटपविषक्तजलार्द्रवल्कलेषु।
पतति परिणतारुणप्रकाशः शलभसमूह इवाश्रमद्रुमेषु॥ 1-28॥ [185]

अपिच, >][4]

तीव्राघातप्रतिहततरुः स्कन्धलग्नैकदन्तः[5]
पादाकृष्टव्रततिवलयासङ्गसंजातपाशः।
मूर्तो विघ्नस्तपस इव नो भिन्नसारङ्गयूथो
धर्मारण्यं प्रविशति[6] गजः स्यन्दनालोकभीतः॥ 1-29॥ [186]

(सर्वाः कर्णं दत्त्वा किंचिदिव सम्भ्रान्ताः।) [187]

राजा - (आत्मगतम्)अहो धिक्, पौरा अस्मदन्वेषिण[7] स्तपोवनमुपरुन्धन्ति। भवतु, प्रतिगमिष्यामः तावत्। [188]

सख्यौ - अज्ज, इमिणा आरण्णअवुत्तंतेण पज्जाउल म्ह। अणुजाणीहि णो उडअगमणस्स। (आर्य, अनेनारण्यकवृत्तान्तेन[8] पर्याकुलाः स्मः। अनुजानीहि न उटज-गमनाय।) [189]

राजा - (ससंभ्रमम्) गच्छन्तु भवत्यः। वयमप्याश्रमपीडा यथा न भविष्यति तथा प्रयतिष्यामहे। [190]

(सर्व उत्तिष्ठन्ति।) [191]

---

1. का.-पाठे "ऽथवा लब्धगाधा मे प्रार्थने" ति। मै.-बं.-पाठयो "र्लब्धावकाशा मे मनोवृत्तिरि" ति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति। देव. - पाठे दाक्षि.- पाठस्यानुकरणं दृश्यते।
2. का.-पाठेषु "0त्यवहिते"। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
3. का.-पाठे "ऽवहिता" इति। मै.-पाठे "तपोवनसन्निहिता" इति। बं.-पाठे परिवर्तनं कृत्वा "तपोवनसन्निहित-सत्त्वरक्षणाये" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
4. कोष्ठान्तर्गतः श्लोकः प्रक्षिप्तः स्यात्। तपोवनसत्त्वरक्षायार्नास्ति काप्यावश्यकता। यतो हि- आश्रममृगोऽयमिति श्रुत्वा राजा बाणं प्रतिसंहृतवान्निति पूर्वमेवोक्तम्।
5. केवलं का.-पाठे श्लोकोऽयं राज्ञो मुखे वर्तते। अन्यत्र सर्वत्र नेपथ्योक्तिरूपेण प्रस्तूयते।
6. का.-पाठेषु "विरुजती" ति। दाक्षि.-पाठे "व्रजति चे"ति। देव.-पाठे परिवर्तनं कृतं दृश्यते।
7. का.-पाठेषु "मदन्वेषिणः सैनिका" इति। दाक्षि.-पाठे "सैनिका मदन्वेषिण" इति। देव.-पाठे परिवर्तनं दृश्यते, तच्चासमीचीनं प्रतिभाति। यतो हि, मृगयाकर्म-प्रसंगे राज्ञः संनिधौ सैनिका एव स्युः, न पौरजनाः।
8. का.-पाठे "ऽनेनाक्रन्दितेने" ति। मै.-बं.-पाठयोः "हस्तिसंभ्रमेणे" ति। दाक्षि.-पाठे "ऽनेनारण्यकगज वृत्तान्तेने" ति। देव.-पाठे परिवर्तनं दृश्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

सख्यौ- अज्ज, असम्भाविदअदिहिसक्कारं भूओ वि पेक्खणनिमित्तं लज्जेमो अज्जं विण्णविदुं। (आर्य, असम्भावितातिथि-सत्कारं भूयोऽपि प्रेक्षणनिमित्तं लज्जावहे आर्यं विज्ञापयितुम्[1]। [192]

राजा- मा मैवम्। दर्शनेनैवात्रभवतीनां पुरस्कृतोऽस्मि। [193]

(शकुन्तला राजानमवलोकयन्ती सव्याजं विलम्ब्य सह सखीभ्यां निष्क्रान्ता[2]।) [194]

राजा- [3]मन्दौत्सुक्योऽस्मि नगरगमनं प्रति। यावदनुयात्रिकान् समेत्य नातिदूरे तपोवनस्य निवेशयेयम्। न खलु शक्नोमि शकुन्तलाव्यापारादात्मानं निवर्तयितुम्। मम हि-[195]

गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चाद् असंस्तुत[4] चेतः।
चीनांशुकमिव[5] केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य॥ 1 -30॥ [196]

(निष्क्रान्ताः सर्वे[6]) [197]

॥ इति प्रथमोऽङ्कः[7]॥ [198]

---

1. का.-पाठ इतः परं "विदितभूयिष्ठोऽसि नस्साम्प्रतं यदिदानीमुपकारमध्यस्थतयाऽपराद्धास्स्म" इत्यधिकम्। मै.-बं.-पाठयोरप्येतादृशं वाक्यमस्ति। संक्षेपीकरणस्याशयेन दाक्षि.-देव.-पाठतः तन्निष्कास्यते।
2. का.-पाठ इतः पूर्वम् शकुन्तलाया मुखे "हा धिग्, ऊरुस्तम्भेन विकलास्मि संवृत्ते"ति वाक्यमपि वर्तते। मै.-बं.-पाठयोरपि तादृशमधिकं वाक्यमस्ति। येन शकुन्तलाया विलम्बेन गमनस्य कारणद्वयं तेषु पाठेषु प्राप्यते। दाक्षि.-देव.-पाठयोर्नास्ति तादृशं वाक्यम्।
3. मै.-बं.-पाठयोरितः पूर्वम् शकुन्तला भणति- "अभिनवकुशसूचिपरिक्षतो मम चरणः, कुरबकशाखापरिलग्नं च मे वल्कलम्। तस्मात् परिपालयत मां यावद् एनं मोचयामी" ति। का.-पाठ एतादृशं वाक्यं संक्षेपीकरणाय निष्कासितं दृश्यते। दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः। किन्तु मै.-बं.-पाठयोर्यदधिकं वाक्यं प्राप्यते, तस्यानुसन्धानं द्वितीयाङ्के (दर्भाङ्कुरेण क्षत इत्यकाण्डे0 इति श्लोके) दरीदृश्यते।
4. का.-पाठे "ऽसंवृतमि" ति। मै.-पाठे "ऽसंस्थितमि" ति। बं.-पाठेऽपि मै.-पाठवद्। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठम् अनुसरति।
5. का.-पाठे "चिह्नांशुकमिवे" ति। बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
6. का.-पाठे "सचिन्तः स्खलितानि पदानि दत्त्वा निष्क्रान्त" इति। बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
7. मै.-बं.-पाठयो "राखेटको नाम प्रथमोऽङ्क" इति। दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ द्वितीयोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशति विषण्णो[1] विदूषकः) [1]

विदूषकः- ([2]निःश्वस्य) भो दिट्ठं। एदस्स मअआसीलस्स रण्णो वअस्सभावेण णिव्विण्णो म्हि। अअं मओ अअं वराहो अअं सद्दूलो त्ति मज्झण्णे वि गिम्हविरलपाअवच्छाआसु वणराईसु आहिण्डीअदि अडवीदो अडवी। पत्तसंकरक- साआइं कडुआइं गिरिणईजलाइं पीअंति। अणिअदवेलं सुल्लमंसभूइट्ठो आहारो अण्हीअदि। तुरगाणुधावणकंडिदसंधिणो रत्तिम्मि वि णिकामं सइदव्वं णत्थि। तदो महन्ते एव्व पच्चूसे दासीए पुत्तेहिं सउणिलुद्धएहिं वणग्गहणकोलाहलेण पडिबोधिदो म्हि।

एत्तएण दाणिं वि पीडा ण णिक्कमदि। तदो गण्डस्स उवरि पिडओ संवुत्तो। हिओ किल अम्हेसु ओहीणेसु तत्तहोदो मआणुसारेण अस्समपदं पविट्ठस्स तावसकण्णआ सउंदला मम अधण्णदाए दंसिदा। संपदं णअरगमणस्स मणं कहं वि ण करेदि। अज्ज वि से तं एव्व चिन्तअन्तस्स अक्खीसु पभादं आसि। का गदी। जाव णं किदाचारपरिक्कमं पेक्खामि। [2]

(इति परिक्रम्यावलोक्य च) [3]

एसो बाणासणहत्थाहिं जवणीहिं वणपुप्फमालाधारिणीहिं पडिवुदो इदो एव्व आअच्छदि पिअवअस्सो। होदु। अङ्गभङ्गविअलो विअ भविअ चिट्ठिस्सं। जइ एव्वं वि णाम विस्समं लहेअं।। [4]

(इति दण्डकाष्ठम् अवलम्ब्य स्थितः।) [5]

(भोः दृष्टम्[3]। एतस्य मृगयाशीलस्य राज्ञो वयस्यभावेन निर्विण्णोऽस्मि। अयं मृगोऽयं वराहोऽयं शार्दूल[4] इति मध्याह्नेऽपि ग्रीष्मविरलपादपच्छायासु वनराजीष्वाहिण्ड्यतेऽटवीतोऽटवी[म्][5]।

पत्रसंकरकषायाणि[6] कटूनि[7] गिरिनदीजलानि पीयन्ते। अनियतवेलं शूल्यमांसभूयिष्ठ आहारो भूज्यते। तुरगानुधावनकंडितसंधे रात्रावपि निकामं शयितव्यं नास्ति। ततो महत्येव प्रत्यूषे दास्याःपुत्रैः शकुनिलुब्धकैर्वनग्रहणकोलाहलेन[8] प्रतिबोधितोऽस्मि।। इयतेदानीमपि पीडा न निष्क्रामति[9]। ततो गण्डस्योपरि पिटकः संवृत्तः। ह्यः किलास्मास्ववहीनेषु तत्रभवतो

---

1. का.-पाठे "परिश्रान्त" इति। मै.-बं.-पाठयोः परिश्रान्तेति पदं नास्ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
2. का.-पाठे "श्रमं नाटयती" त्यधिकम्। मै.-बं.-दाक्षि.-देव.-पाठेषु नास्ति तत्।
3. का.-पाठे "भोः दृढोऽस्मी" ति।मै.-बं.-पाठयोस्तु "हीमाणहे, भो हतोऽस्मी" ति। दाक्षि.-पाठे "हा हतोऽस्मी" ति। देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
4. का.-पाठेषु नास्त्ययं शब्दः। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
5. का.-पाठे "वष्टवीतोऽटवीमि" ति नास्ति। दाक्षि.-पाठेऽपि नास्ति। देव.-पाठे प्रक्षिप्तोऽयमंशः। (अटवीम् इत्यत्र कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे द्वितीया। पा. सू. 2-3-5)
6. मै.-बं.-पाठयोः "०कषायविरसानी" ति। दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
7. का.-पाठे "कटुकान्युष्णानी" ति। मै.-पाठे शब्दोऽयं नास्ति। बं.-पाठे "उष्णकटुकानी" ति। दाक्षि.-पाठे "कदुष्णानी" ति। देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
8. का.-पाठेऽस्य विशेषणत्वेन "कर्णघातिने" ति। मै.-बं.-पाठयोः "कर्णोपघातिने" ति। दाक्षि.-पाठे तन्निष्क्रास्यते। देव.-पाठस्तमनुसरति।
9. का.-पाठ "एतावतापि मे प्राणा न निष्क्रान्ता" इति। मै.-पाठ "एतावतापि न मे पीडा पर्यन्ते" ति। बं.-पाठ "एतावतापि तावत्पीडा न वृत्ते" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

मृगानुसारेणाश्रमपदं प्रविष्टस्य तापसकन्यका शकुन्तला ममाधन्यतया दर्शिता।

साम्प्रतं नगरगमनस्य मनः कथमपि न[1] करोति। अद्यापि तस्य तामेव चिन्तयतोऽक्ष्णोः प्रभातम्[2] आसीत्। का गतिः। यावत्तं कृताचारपरिक्रमं पश्यामि।।

एष बाणासनहस्ताभि-र्यवनीभिर्वनपुष्पमालाधारिणीभिः[3] परिवृत इत एवागच्छति प्रियवयस्यः। भवतु, अङ्गभङ्गविकल इव भूत्वा स्थास्यामि। यद्येवमपि नाम विश्रामं लभेय[4]।।)

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टपरिवारो[5] राजा) [6]

राजा- (आत्मगतम्) [7]

कामं प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भावदर्शनायासि।
अकृतार्थेऽपि मनसिजे रतिम् उभयप्रार्थना कुरुते[6]।। 2 - 1।। [8]

(स्मितं कृत्वा) एवमात्माभिप्रायसम्भावितेष्टजनचित्तवृत्तिः प्रार्थयिता विडम्ब्यते। [9]

स्निग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि नयने यत्प्रेरयन्त्या तया
यातं यच्च नितम्बयोर्गुरुतया मन्दं विलासादिव।
मा गा इत्युपरुद्धया यदपि सा सासूयमुक्ता सखी
सर्वं तत्किल मत्परायणमहो कामी[7] स्वतां पश्यति।। 2 - 2।। [10]

विदूषकः - (तथास्थित एव) भो वअस्स, ण मे हत्थपाआ पसरंति। वाआमेत्तएण जीआवइस्सं। (भो वयस्य, न मे हस्तपादं[8] प्रसरति। वाङ्-मात्रेण जापयिष्यामि[9]। [11]

राजा- (सस्मितम्) कुतोऽयं गात्रोपघातः। [12]

विदूषकः- कुदो किल सअं अच्छी आउलीकरिअ अस्सुकारणं पुच्छेसि। (कुतः किल स्वयमक्ष्याकुलीकृत्याऽश्रुकारणं पृच्छसि।) [13]

राजा - न खल्ववगच्छामि[10]। [14]

विदूषकः[11]- भो वअस्स, जं वेदसो खुज्जलीलं विडम्बेदि, तं किं अत्तणो पहावेण, णं णईवेअस्स। (भो वयस्य, यद्वेतसः

---

1. का.-पाठे "संकथामपी" ति। मै.-बं.-पाठयोः "कथमपी" ति। दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः।
2. का.-पाठे "ऽद्य तामेव सञ्चितयतो विभातमक्ष्णोरि" ति। मै.-पाठ "एतदेव चिन्तयतः अद्य पुनः सत्यं मम अधन्यायाः पुत्रस्याक्ष्णोः प्रभाता रजनी" ति। बं.-पाठ "एतदेव चिन्तयतः मम अक्ष्णोः प्रभाता रजनी" ति। दाक्षि.-पाठे "ऽद्य सविशेषं तदेव चिन्तयतो मे प्रभातमासीदक्ष्णोरि" ति। देव.-पाठे "०तस्य०" इति।
3. का.-पाठे "यवनीभिः परिवृतो वनपुष्पमालाधारीत" इति। मै.-बं.-पाठयोस्तु "बाणासनहस्तो हृदयनिहित-प्रियजनो वनपुष्पमालाधारी" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
4. का.-पाठेषु प्रवेशक इति नास्ति। दाक्षि.-पाठ "इति प्रवेशक" इति। देव.-पाठः का.-पाठमनुसरति।
5. मै.-बं.-पाठयो "र्यथानिर्दिष्ट" इत्येव। दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरति।
6. का.-बं.-दाक्षि.-पाठेषु "दर्शनाश्वासि, रतिमि" ति।मै.-पाठे "दर्शनाश्वासि, रतिः, प्रार्थनामि" ति। देव.-पाठे "दर्शनायासि, रतिमि" ति।
7. का.-पाठेषु "काम" इति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
8. का.-पाठेषु "हस्त" इति। दाक्षि.-पाठे "हस्तावि" ति। देव.-पाठे परिवर्तनं दृश्यते।
9. का.-पाठे "जाप्यसे। जयतु जयत्वि" ति। मै.-बं.-पाठयो "र्जाप्यस" इति। दाक्षि.-पाठे "वाङ्-मात्रेण विजयी भवे" ति। देव.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
10. मै.-बं.-पाठयोरितः परं "भिन्नार्थमभिधीयतामि" त्यधिकम्। का.-दाक्षि.-देव.-पाठेषु नास्ति तत्।
11. केवलं काश्मीर-पाठ इत आरभ्य चतस्र उक्तयो (16-18) न सन्ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

कुब्जलीलां विडम्बयति, तत्किमात्मनः प्रभावेण, ननु नदीवेगस्य।[1]) [15]

राजा- नदीवेगस्तत्र कारणम्। [16]

विदूषकः- मम वि भवं। (ममापि भवान्) [17]

राजा- कथमिव। [18]

विदूषकः- एव्वं राअकज्जाणि उज्झिअ तारिसे आउलप्पदेसे वणचरवुत्तिणा तुए होदव्वं। जं सच्चं पच्चहं सावदसमुच्छारणेहिं संखोहिअसंधिबन्धाणं मम गत्ताणं अणीसो म्हि संवुत्तो। ता पसादइस्सं विसज्जिदुं मं एक्काहं वि दाव विस्समिदुं। (एवं राजकार्याण्युज्झित्वा तादृश आकुलप्रदेशे वनचरवृत्तिना त्वया भवितव्यम्। यत्सत्यं प्रत्यहं श्वापदसमुत्सारणैः संक्षोभितसन्धिबन्धानां मम गात्राणामनीशोऽस्मि संवृत्तः। तत्प्रसादयिष्यामि विसर्जितुं मामेकाहमपि तावद् विश्रमितुम्।) [19]

राजा- (स्वगतम्) अयं चैवमाह। ममापि काश्यपसुतामनुस्मृत्य मृगया-विक्लवं चेतः[2]। [20]

[<कुतः-,

न नमयितुमधिज्यम् अस्मि शक्तो[3],
धनुरिदमाहितसायकं मृगेषु।
सहवसतिमुपेत्य यैः प्रियायाः
कृत इव मुग्धविलोकितोपदेशः[4]॥ 2 - 3॥ [21]>][5]

विदूषकः- (राज्ञो मुखं विलोक्य) अत्तभवं किं वि हिअए करिअ मंतेदि। अरण्णे मए रुदिअं आसि। (अत्रभवान् किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रयते। अरण्ये मया रुदितमासीत्।) [22]

राजा- (सस्मितम्) किमन्यत्। अनतिक्रमणीयं मे सुहृद्वाक्यमिति स्थितोऽस्मि। [23]

विदूषकः- चिरं जीअ। (चिरं जीव।) (इति गन्तुमिच्छति)[6] [24]

राजा - वयस्य, तिष्ठ। सावशेषं मे वचः। [25]

विदूषकः- आणवेदु भवं। (आज्ञापयतु भवान्।) [26]

राजा- विश्रान्तेन भवता ममाप्यनायासे कर्मणि सहायेन भवितव्यम्। [27]

विदूषकः- किं मोदअखंडिआए। तेण हि अअं सुगहीदो खणो। (किं मोदकखण्डिकायाम्[7]। तेन ह्ययं सुगृहीतः क्षणः[8]।) [28]

राजा- यत्र वक्ष्यामि। कः कोऽत्र भोः। [29]

दौवारिकः- (प्रविश्य) (प्रणम्य) आणवेदु भट्टा। (आज्ञापयतु भर्ता।) [30]

राजा- रैवतक, सेनापतिस्तावदाहूयताम्। [31]

---

1. का.-पाठे तु वाक्यमिदं नास्ति। मै.-पाठे प्रथमं प्रक्षिप्तं, तदनन्तरं सर्वैः स्वीकृतम्।
2. मै.-बं.-पाठयोः "कण्वदुहितरम् / कण्वसुताम् अनुस्मृत्य मृगयां प्रति निरुत्सुकं चेत" इति। दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
3. का.-पाठेषू "त्सहिष्य" इति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
4. का.-पाठेषु "लोचनकान्तिसंविभाग" इति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
5. श्लोकोऽयं प्रक्षिप्तः स्यात्। शकुन्तलाया अनुस्मरणमेव राजानं मृगयां प्रति निरुत्सुकं कर्तुमलम्। (एवञ्च, स्वगतोक्तिरूपेण प्रस्तावितत्वात्।)
6. मै.-बं.-पाठयो "रित्युत्थातुमिच्छती" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
7. का.-बं.-पाठयोः "किं मोदकखादिकायामि" ति। मै.-पाठे "किं मोदकखादन" इति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
8. का.-पाठे पृथगुक्तिरूपेण प्रदीयते। मै.-पाठेऽपि पृथगुक्तिरूपेण। किन्तु तत्र "गृहीतः प्रणय" इति। देव.-पाठे संक्षेपीकरणस्याशयेनैकस्यामेवोक्तौ वाक्यद्वयं दीयते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

दौवारिकः:- तह। (इति निष्क्रम्य सेनापतिना सह पुनः प्रविश्य) एसो अण्णावअणुक्कण्ठो भट्टा इदो दिण्णदिट्ठी एव्व चिट्ठदि। उवसप्पदु अज्जो। (तथा। एष आज्ञावचनोत्कण्ठो[1] भर्तेतो दत्तदृष्टिरेव[2] तिष्ठति। उपसर्पत्वार्यः।) [32]

सेनापतिः:- (राजानमवलोक्य) दृष्टदोषापि स्वामिनि मृगया केवलं गुण एव संवृत्ता[3]। [33]

[<तथा हि देवः:-,

अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरपूर्वं
रविकिरणसहिष्णु स्वेदलेशैरभिन्नम्।
अपचितमपि गात्रं व्यायतत्वादलक्ष्यं
गिरिचर इव नागः प्राणसारं बिभर्ति॥ 2 - 4॥ [34]>][4]

(उपेत्य) जयतु स्वामी। गृहीतश्वापदमरण्यम्। किमन्यत्रावस्थीयते[5]। [35]

राजा- मन्दोत्साह:[6] कृतोऽस्मि मृगयापवादिना माढव्येन[7]। [36]

सेनापतिः - (जनान्तिकम्[8]) सखे, स्थिरप्रतिबन्धो[9] भव। अहं तावत्स्वामिनश्चित्तवृत्तिमनुवर्तिष्ये। [37]

(प्रकाशम्) प्रलपत्वेष वैधवेयः[10]। ननु प्रभुरेव निदर्शनम्। [38]

मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः
सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः।
उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले
मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग्विनोदः कुतः[11]॥ 2 - 5॥ [39]

विदूषकः:- अत्तभवं पकिदिं आपण्णो। तुमं दाव अडवीदो अडवीं आहिडं तोणरणासिआलोलुवस्स जिण्णरिच्छस्स कस्स वि मुहे पडिस्ससि। (अत्रभवान् प्रकृतिमापन्नः। त्वं तावदटवीतोऽटवीम् आहिण्डमानो नरनासिकालोलुपस्य जीर्ण-ऋक्षस्य कस्यापि मुखे[12] पतिष्यसि। [40]

---

1. का.-मै.-पाठयो "रनुवचनदत्तकर्ण" इति। बं.-पाठ "आलापदत्तकर्ण" इति। दाक्षि.-पाठ "आज्ञापनोत्कण्ठ" इति। देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
2. मै.-बं.-पाठयोः पदमिदं नास्ति। दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
3. का.-पाठेषु "०गुणायैव संवृत्ते" ति। दाक्षि.-पाठे "अदृष्टदोषे स्वामिनि मृगया केवलं सगुणः संवृत्त" इति। देव.-पाठः का.-पाठमनुसरति।
4. कोष्ठान्तर्गतः श्लोकः प्रक्षिप्तः स्यात्। अस्यार्थस्त्वनुगामिना श्लोकेनापि कथ्यते।
5. का.-पाठे "किमन्यद् अवस्थीयत" इति। मै.-पाठे "तत्किमिति स्थीयत" इति। बं.-पाठे "किमन्यदनुष्ठीयतामि"ति। दाक्षि.-पाठे "किमद्यापि स्थीयत" इति। देव.-पाठे परिवर्तनं दृश्यते।
6. मै.-बं.-पाठयो "भग्नोत्साह" इति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति। देव.-पाठो का.-पाठमनुसरति।
7. का.-पाठेषु "माधव्येने" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति। (राज्ञः संस्कृतोक्तावपि प्राकृतं प्रयुज्यते)
8. बं.-पाठे "ऽपवार्ये" ति। मै.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।
9. मै.-पाठे "स्थिरप्रतिज्ञ" इति। बं.-पाठे "दृढप्रतिज्ञ" इति। दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति। देव.-पाठः का.-पाठमनुसरति।
10. का.-बं.-पाठयो "वैधेय" इति। मै.-पाठे "माधव्य" इति। दाक्षि.-पाठः का.-पाठमनुसरति। देव.-पाठे परिवर्तनं दृश्यते। विधवायाः पुत्र इति वैधवेयः। (राघवभट्टेन च क्वचिद् वैधेय इति पाठः, स श्रेयान्निति कथ्यते।)
11. का.-पाठ "उत्थान०, मिथ्या ही" ति। मै.-बं.-पाठयो "रुत्साह०, मिथ्या ही" ति। दाक्षि.-पाठः का.-पाठम् अनुसरति। देव.-पाठे का.-पाठमनुसृत्योत्थानेति स्वीक्रियते, किन्तु मिथ्यैवेति परिवर्तनं क्रियते।
12. का.-पाठे "सीमाशृगालस्येव जीर्णर्क्षस्य मुख" इति। मै.-पाठे "वृद्धशृगाललोलुपस्य कस्यापि जीर्ण0" इति। बं.-पाठे "शृगालमृगाललोलुपस्य कस्यापि जीर्णर्क्षस्य मुख" इति। दाक्षि.-पाठे "नरमांसलोलुपस्य कस्यापि०" इति। देव.-पाठे परिवर्तनं कृत्वा हास्यं जनयितुमुपक्रम्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा - भद्र सेनापते[1]। आश्रमसन्निकृष्टे स्थिताः स्मः। अतस्ते वचो नाभिनन्दामि। अद्य तावत्, [41]

गाहन्तां महिषा निपानसलिलं शृङ्गैर्मुहुस्ताडितं
छायाबद्धकदम्बकं मृगकुलं रोमन्थमभ्यस्यतु।
विश्रब्धं क्रियतां वराह-पतिभि[2]-र्मुस्ताक्षतिः पल्वले
विश्रामं[3] लभतामिदं च शिथिलज्याबन्धमस्मद्धनुः॥ 2 - 6॥ [42]

सेनापतिः - यत्प्रभविष्णवे रोचते। [43]

राजा - तेन हि निवर्तय पूर्वगतान् वनग्राहिणः। यथा न मे सैनिकास्तपोवनमुपरुन्धन्ति[4] तथा निषेद्धव्याः। पश्य- [44]

शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः।
स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्तास्तदन्यतेजोऽभिभवाद् वमन्ति[5]॥ 2 - 7॥ [45]

सेनापतिः- यथाज्ञापयति स्वामी। [46]

विदूषकः- धंसदु दे उच्छाहवुत्तंतो। (ध्वंसतां त उत्साहवृत्तान्तः[6]।) [47] (निष्क्रान्तः सेनापतिः) [48]

राजा- (परिजनं विलोक्य) अपनयन्तु भवत्यो मृगयावेषम्। रैवतक, त्वमपि स्वं नियोगमशून्यं कुरु। [49]

परिजनः- जं देवो आणवेदि। (यद्देव आज्ञापयति।) (इति निष्क्रान्तः) [50]

विदूषकः- किदं भवदा णिम्मच्छिअं। संपदं एदस्सिं पादवच्छाआए विरइदलदाविदाणदंसणीआए आसणे णिसीददु भवं, जाव अहं वि सुहासीणो होमि। (कृतं भवता निर्मक्षिकम्[7]। साम्प्रतम् एतस्यां पादपच्छायायां विरचितलतावितान[8] दर्शनीये आसने निषीदतु भवान्, यावदहमपि सुखासीनो भवामि।) [51]

राजा - गच्छाग्रतः। [52]

विदूषकः - एदु भवं। (एतु भवान्।) (इत्युभौ परिक्राम्योपविष्टौ) [53]

राजा- माढव्य, अनवाप्तचक्षुःफलोऽसि। येन त्वया दर्शनीयं न दृष्टम्[9]। [54]

विदूषकः- णं भवं अग्गदो मे वट्टदि। (ननु भवानग्रतो मे वर्तते।) [55]

राजा - सर्वः खलु कान्तमात्मीय[10] पश्यति। तामाश्रमललामभूतां शकुन्तलामधिकृत्य ब्रवीमि। [56]

---

1. केवलं दाक्षि.-पाठ इतः परं "किं बहुने" त्यधिकम्।
2. का.-पाठे "विश्वस्तैः क्रियतां वराहपतिभिरि" ति। मै.-बं.-पाठयो "विंस्रब्धैः0" इति। दाक्षि.-पाठे "विस्रब्धं क्रियतां वराहततिभिरि" ति। देव.-पाठे संमिश्रणं क्रियते।
3. का.-पाठे "विश्रान्तिमि" ति। मै.-बं.-पाठयो "विंश्राममि" ति। दाक्षि.-पाठः का.-पाठमनुसरति। देव.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
4. का.-मै.-पाठयोः "सैनिकास्तपोवनं दूरात् परिहरन्ती" ति। बं.-पाठे "सैनिकास्तपोवनं नाभिरुन्धन्ति दूरात् परिहरन्ति चे" ति। दाक्षि.-पाठे "मे सैनिकास्तपोवनं दूरात् परिहरिष्यन्ती" ति। देव.-पाठे संक्षेपः क्रियते।
5. मै.-बं.-पाठयो-"स्तपोवनेषु, दहन्ती" ति। दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
6. का.-पाठे "गच्छ, साम्प्रतं दास्याः पुत्र" इति। मै.-बं.-पाठयो "र्भो उत्साहयितः, निष्क्रामे" ति। दाक्षि.-पाठे "ध्वंसितस्त उत्साहवृत्तान्तः। गच्छ, दास्याः पुत्र" इति। देव.-पाठे संक्षेपीकरणं दृश्यते।
7. का.-पाठे "कृतो भवता निर्धूमको दंशप्रतिकार" इति। बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
8. का.-पाठे "निवासपादपच्छायापरिवृते वितानकसनाथ" इति। मै.-बं.-पाठयोः "पादपच्छायाविरचित-वितान-सनाथे शिलातल" इति। दाक्षि.-पाठे "ऽविरल-लता-वितान-सनाथ आसन" इति। (दाक्षि.-देव.-रंगभूमौ न वर्तते शिलातलमित्यवधेयम्।)
9. मै.-बं.-पाठयो- "स्त्वया द्रष्टव्यानां परं न दृष्टमि" ति। दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
10 का.-पाठेषु "०मात्मानमि" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

विदूषकः- (स्वगतम्[1]) होदु। से अवसरं ण दाइस्सं। (प्रकाशम्) भो वअस्य, ते तावसकण्णआ अब्भत्थणीआ दीसदि। (भवतु। अस्यावसरं न दास्ये[2]। भो वयस्य,ते तापसकन्यकाभ्यर्थनीया दृश्यते[3]।) [57]

राजा[4]- सखे, न परिहार्ये[5] वस्तुनि पौरवाणां[6] मनः प्रवर्तते[7]। [58]

सुरयुवतिसम्भवं[8] किल मुनेरपत्यं तदुज्झिताधिगतम्।
अर्कस्योपरि शिथिलं च्युतमिव नवमालिका[9] कुसुमम्॥ 2 - 8॥ [59]

विदूषकः- (विहस्य) जह कस्स वि पिण्डखज्जूरेहिं उव्वेजिदस्स तिन्तिणीए अहिलासो भवे, तह इत्थिआरअणपरिभाविणो भवदो इअं अब्भत्थणा। (यथा कस्यापि पिण्डखर्जूरैरुद्वेजितस्य तिन्तिण्यामभिलाषो भवेत्, तथा स्त्रीरत्नपरिभाविनो[10] भवत इयमभ्यर्थना।) [60]

राजा - न तावदेनां पश्यसि येनैवम् अवादीः। [61]

विदूषकः- तं खु रमणिज्जं जं भवदो वि विम्हअं उप्पादेदि। (तत्खलु रमणीयं यद्भवतोऽपि विस्मयम् उत्पादयति।) [62]

राजा- वयस्य, किं बहुना। [63]

चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा[11] रूपोच्चयेन मनसा विधिना[12] कृता नु।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः॥ 2 - 9॥ [64]

विदूषकः- जइ एव्वं पच्चादेसो दाणिं रूववदीणं। (यद्येवं प्रत्यादेश इदानीं रूपवतीनाम्।) [65]

राजा- इदं च मे मनसि वर्तते। [66]

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै-
रनाविद्धं[13] रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः[14]॥ 2 - 10॥ [67]

---

1. का.-पाठे "ऽपवार्य" ति। बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
2. का.-पाठेषु "नास्य प्रसरं वर्धयिष्यामी" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
3. का.-पाठेषु "यदा सा तापसकन्यकाऽप्रार्थनीया / अनभ्यर्थनीया, तत्किं तया दृष्टये" ति। दाक्षि.-पाठे "ऽद्य तापसकन्यका किमभ्यर्थनीया दृश्यत" इति। देव.-पाठेऽपि पुनरप्येकवारं काकु-परिवर्तनं क्रियते।
4. मै.-बं.-पाठयोः राज्ञो मुखे "निराकृतनिमेषाभिरि०" ति पाठभेदः। दाक्षि.-देव.-पाठयोर्निष्कासितः।
5. का.-पाठ एव शकुन्तलादर्शनस्य परिहरणाय विदूषकेन हेतुत्रयमुपस्थापितम्। तच्च मौलिकं स्यादित्येनेन शब्देन ज्ञायते। (परिहार्यशब्दस्य सर्वथा संगतिः काश्मीर-पाठ एव दृश्यते।)
6. का.-पाठेषु "दुष्ष्यन्तस्य / दुष्मन्तस्य / दुःषन्तस्ये" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
7. का.-पाठे "परिहार्येऽपि०" इति प्रश्नार्थकमिदं वाक्यम्। नान्यत्र। का.-पाठ एव पूर्वापरसन्दर्भे समीचीनम्।
8. का.-पाठे "ललितान्यसम्भवमि" ति। मै.-बं.-पाठयो "र्ललिताप्सरोभवमि" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठम् अनुसरति।
9. का.-मै.-पाठयो "र्नवमालती" ति। बं.-पाठे "नवमालिके" ति। दाक्षि.-देव.-पाठौ बं.-पाठमनुसरतः।
10. मै.-बं.-पाठयोः "परिभोगिन" इति। दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
11. का.-पाठे "चित्रे०, ०योगादि" ति। मै.-पाठे "चित्ते०, ०योगे" ति। बं.-पाठे "चित्ते०, ०योगान्०" इति। दाक्षि.-पाठे "चित्रे०, ०योगे" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
12. का.-पाठे "रूपोच्चयेन विहिता मनसे" ति। मै.-बं.-पाठयोः "0महता मनसे" ति। दाक्षि.-पाठे "०विधिना मनसे" ति। देव.-पाठे भिन्नेन पदक्रमेण पठ्यते।
13. का.-पाठेषु "०रनामुक्तमि" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
14. का.-पाठेषु "भुवी" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

विदूषकः- तेण हि लहु परित्ताअदु णं भवं। मा कस्स वि तवस्सिणो इङ्गुदीतेल्लमिस्सचिक्कणसीस्सस्स हत्थे पडिस्सदि। (तेन हि लघु परित्रायताम् एनां भवान्[1]। मा कस्यापि तपस्विन इङ्गुदीतैलमिश्रचिक्कणशीर्षस्य हस्ते पतिष्यति।) [68]

राजा- परवती खलु तत्रभवती। न च सन्निहितोऽत्र गुरुजनः। [69]

विदूषकः - अत्तभवंतं अंतरेण कीदसो से दिट्ठिराओ। (अत्रभवन्तम् अन्तरेण कीदृशस्तस्या दृष्टिरागः[2]।) [70]

राजा- निसर्गादेवाप्रगल्भस्तपस्विकन्याजनः। तथापि तु-[71]

> **अभिमुखे मयि संहृतमीक्षणं हसितमन्यनिमित्त-कृतोदयम्[3]।**
> **विनयवारितवृत्तिरतस्तया न विवृतो मदनो न च संवृतः॥** 2 - 11॥ [72]

विदूषकः- ण खु दिट्ठमेत्तस्स तुह अंकं समारोहदि। (न खलु दृष्टमात्रस्य तवाङ्कं समारोहति[4]।) [73]

राजा- मिथः प्रस्थाने पुनः शालीनतयापि काममाविष्कृतो भावस्तत्रभवत्या। तथा हि-[74]

> **दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा।**
> **आसीद्विवृत्तवदना च विमोचयन्ती शाखासु वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम्॥** 2 - 12॥ [75]

विदूषकः- तेण हि गहीदपाहेओ होहि। किदं तुए उववणं तवोवणं त्ति पेक्खामि। (तेन हि गृहीतपाथेयो भव[5]। कृतं त्वयोपवनं तपोवनमिति पश्यामि[6]।)। [76]

राजा- सखे, तपस्विभिः कैश्चित् परिज्ञातोऽस्मि। चिन्तय तावत्केनापदेशेन सकृदप्याश्रमे वसामः। [77]

विदूषकः- को अवरो अवदेसो, तुम राआणं। णीवारछट्ठभाअं अम्हाणं उवहरंतु त्ति। (कोऽपरोऽपदेशस्तव राज्ञः[7]। नीवारषष्ठभागम् अस्माकम् उपहरन्त्विति[8]।) [78]

राजा- मूर्ख, अन्यद्भागधेयमेतेषां रक्षणे निपतति, यद् रत्नराशीनपि विहायाभिनन्द्यम्। पश्य, [79]

> **यदुत्तिष्ठति वर्णेभ्यो नृपाणां क्षयि तत्फलम्।**
> **तपःषड्भागम् अक्षय्यं[9] ददत्यारण्यका हि नः॥** 2 - 13॥ [80]

(नेपथ्ये) [81]

हन्त, सिद्धार्थौ स्वः। [82]

राजा- (कर्णं दत्त्वा) अये, धीरप्रशान्तस्वरैस्तपस्विभिर्भवितव्यम्। [83]

---

1. का.-पाठे "लघु परिणयतु भवान्नि" ति। मै.-पाठे "लघु लघु गत्वा परिणयतु भवान्नि" ति। बं.-पाठे "लघु लघु गच्छतु भवान्नि" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
2. का.-पाठे "चित्तानुराग" इति। बं.-पाठे "चित्तराग" इति। दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः।
3. का.-पाठेषु "कथोदयमि" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
4. का.-पाठेषु " (विहस्य) किं खलु सा भवतो दृष्टमात्रस्यैवाङ्कमारोहत्वि" ति प्रश्नः। दाक्षि.-पाठेऽपि स एव प्रश्नः। देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
5. का.-पाठे "भोः गृहीतपाथेयो भवसी" ति। मै.-पाठे "गृहीतपाथेयो भवान् कृतस्तये" ति। बं.-पाठे "गृहीत-पाथेयः कृतोऽसि तये"ति। दाक्षि.-पाठे "यद्येवं गृहीतपाथेयो भवे" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
6. का.-पाठे "कथं पुनः पुनस्तपोवनगमनमिति प्रेक्ष" इति। मै.-पाठे "ऽनुरंजितं तपोवनमिति तर्कयामी" ति। बं.-पाठे "तदनुरक्तं तपोवने त्वां तर्कयामी" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
7. का.-पाठेषु "भोः कोऽन्य उपायो, ननु भवान् राजे" ति। दाक्षि.-पाठो का.-पाठमनुसरति। देव.-पाठे परिवर्तनं दृश्यते।
8. का.-पाठेषूक्तिरियं पृथक्तया प्रस्तूयते। दाक्षि.-पाठः का.-पाठमनुसरति। देव.-पाठे संक्षेपः क्रियते।
9. का.-पाठे "ऽक्षयमि" ति। मै.-बं.-पाठयो "रक्षय्यमि" ति। दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(प्रविश्य) [84]

दौवारिकः- जेदु भट्टा। एदे दुवे इसिकुमारआ पडिहारभूमिं उवट्ठिदा। (जयतु भर्ता। एतौ द्वौ ऋषिकुमारौ प्रतीहारभूमिमुपस्थितौ।) [85]

राजा- तेन ह्यविलम्बितं प्रवेशय तौ। [86]

दौवारिकः- एसो पवेसेमि। (इति निष्क्रम्य, ऋषिकुमाराभ्यां सह प्रविश्य) इदो इदो भवंतौ। (एषः प्रवेशयामि। (इत इतो भवन्तौ।) [87]

(उभौ राजानं विलोकयतः।) [88]

प्रथमः- अहो, दीप्तिमतोऽपि विश्वसनीयतास्य वपुषः। अथवोपपन्नमेतदृषिभ्यो नातिभिन्ने राजनि[1]। कुतः, - [89]

अध्याक्रान्ता वसतिरमुनाप्याश्रमे सर्वभोग्ये[2]
रक्षायोगादयमपि तपः प्रत्यहं सञ्चिनोति।
अस्यापि द्यां स्पृशति वशिनश्चारणद्वन्द्वगीतः
पुण्यः शब्दो मुनिरिति मुहुः केवलं राजपूर्वः॥ 2 - 14॥ [90]

द्वितीयः- गौतम, अयं स बलभित्सखो दुष्यन्तः। [91]

प्रथमः- अथ किम्। [92]

द्वितीयः - तेन हि ,

नैतच्चित्रं यदयमुदधिश्यामसीमां धरित्री-
मेकः कृत्स्नां नगरपरिघप्रांशुबाहुर्भुनक्ति।
आशंसन्ते सुरयुवतयो बद्धवैरा[3] हि दैत्यै-
रस्याधिज्ये धनुषि विजयं पौरुहूते च वज्रे॥ 2 - 15॥ [93]

उभौ - (उपगम्य) विजयस्व राजन्। [94]

राजा- (आसनादुत्थाय) अभिवादये भवन्तौ। [95]

उभौ- स्वस्ति भवते। (इति फलान्युपहरतः।) [96]

राजा- (सप्रणामं प्रतिगृह्य) आज्ञापयितुमिच्छामि[4]। [97]

उभौ- विदितो भवानाश्रमसदामिहस्थः, ते भवन्तं प्रार्थयन्ते। [98]

राजा - किमाज्ञापयन्ति। [99]

उभौ- तत्रभवतः कण्वस्य महर्षेरसान्निध्याद्रक्षांसि न इष्टिविघ्नमुत्पादयन्ति[5]। तत्कतिपयरात्रं सारथिद्वितीयेन भवता सनाथीक्रियतामाश्रम इति। [100]

---

1. का.-पाठे "ष्वस्मिन् ऋषिकल्पे राजनी" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
2. का.-पाठे "सर्वपूर्व" इति। बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
3. का.-पाठे "सुरसमितयस्सक्तवैरा" इति। मै.-बं.-पाठयोः "समितिषु सुराः सक्तवैरा" इति। दाक्षि.-पाठे "सुरयुवतयः त्यक्तभोगा" इति। देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते। तच्चासमीचीनम्।
4. का.-मै.-पाठयोः "किमाज्ञापयन्ती" ति। बं.-पाठ "आगमनप्रयोजनं ज्ञातुमिच्छामी" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
5. का.-पाठे "काश्यपमुनेरसांनिध्याद् रक्षांसि परापतिष्यन्ति, विघ्नमुत्पादयितुमिच्छन्ती" ति। मै.-बं.-पाठयोः "कुलपतेरसांनिध्याद् रक्षांसि नस्तपोविघ्नमुत्पादयन्ती" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- अनुगृहीतोऽस्मि। [101]

विदूषकः - (अपवार्य) एसा दाणिं अणुऊला ते अब्भत्थणा[1]। (एषेदानीमनुकूला तेऽभ्यर्थना।) [102]

राजा- (स्मितं कृत्वा) रैवतक[2], मद्वचनादुच्यतां सारथिः। सबाणासनं रथमुपस्थापयेति। [103]

दौवारिकः- जं देवो आणवेदि। (यद्देव आज्ञापयति) (इति निष्क्रान्तः) [104]

उभौ- (सहर्षम्)

> **अनुकारिणि पूर्वेषां युक्तरूप[3]मिदं त्वयि।**
> **आपन्नाभयसत्रेषु[4] दीक्षिताः खलु पौरवाः॥ 2 - 16॥ [105]**

राजा- (सप्रणामम्) गच्छतं पुरो भवन्तौ। अहमप्यनुपदमागत एव। [106]

उभौ- विजयस्व। (इति निष्क्रान्तौ) [107]

राजा- माढव्य, अप्यस्ति शकुन्तलादर्शने कुतूहलम्। [108]

विदूषकः - पढमं सपरीवाहं आसि। दाणिं रक्खसवुत्तंतेण बिन्दु वि णावसेसिदो। (प्रथमं सपरीवाह[5]मासीत्। इदानीं राक्षसवृत्तान्तेन बिन्दुरपि नावशेषितः[6]।) [109]

राजा- मा भैषीः। ननु मत्समीपे वर्तिष्यसे। [110]

विदूषकः- एसो रक्खसादो रक्खिदो म्हि। (एष राक्षसाद्रक्षितोऽस्मि[7]।) [111]

(प्रविश्य) [112]

दौवारिकः- सज्जो रधो भट्टिणो विजअप्पत्थाणं अवेक्खदि। एस उण णअरादो देवीणं आणत्तिहरओ करभओ आअदो। (सज्जो रथो भर्तुर्विजयप्रस्थानमपेक्षते। एषः पुनर्नगराद्देवीनामाज्ञप्तिहरः करभक आगतः।) [113]

राजा- (सादरम्) किमम्बाभिः प्रेषितः। [114]

दौवारिकः- अह इं। (अथ किम्।) [115]

राजा- ननु प्रवेश्यताम्। [116]

दौवारिकः- तह (इति निष्क्रम्य करभकेण सह प्रविश्य) एसो भट्टा, उवसप्प। (तथा, एष भर्ता। उपसर्प।) [117]

करभकः- जेदु भट्टा। देवी आणवेदि- आआमिणि चउत्थदिअहे पउत्थपारणो मे उववासो भविस्सदि। तहिं दीहाउणा अवस्सं संभाविदव्वा-त्ति। (जयतु भर्ता। देव्याज्ञापयति। आगामिनि चतुर्थदिवसे प्रवृत्तपारणो[8] मे उपवासो भविष्यति। तत्र दीर्घायुषावश्यं संभावनीया-इति।) [118]

---

1. का.-पाठे "गलत्था" इति। (प्रेरणार्थको देश्यशब्दः), मै.-बं.-पाठयोः "गलहत्थो" इति। (गलहस्तः), देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति। (सूक्ष्मेक्षिकयात्रापि का.-पाठानुसरणं दृश्यते।)
2. का.-पाठे "रेवक" इति। बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
3. मै.-पाठ "उपकारिणि सर्वेषामनुरूपमि" ति। बं.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।
4. का.-पाठ "आपन्नाभयसत्रेणे" ति। मै.-पाठ "आपन्नानां भयत्राण" इति। बं.-पाठे "०सत्त्वेष्वि" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
5. का.-पाठेषु "प्रथममपरिबाध०" इति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
6. का.-पाठे "पुनः साम्प्रतं विषाददर्शिना विशेषितमि" ति। मै.-बं.-पाठयोः "साम्प्रतं...सपरिबाधमि" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
7. का.-पाठ "एषश्चक्राकी भूतोऽस्मी" ति। मै.-पाठ "एषस्तव रक्षीभूतोऽस्मी" ति। बं.-पाठे "चक्ररक्षी भूतो-ऽस्मी" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
8. का.-पाठे "पुत्रपिण्डकदानक" इति। मै.-पाठे "पुत्रपिण्डपर्युपासन" इति। बं.-पाठे "पुत्रपिण्डपारण" इति। दाक्षि.-पाठे "निवृत्तपारण" इति। देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- इतस्तपस्विकार्यम्। इतो गुरुजनाज्ञा। द्वयमप्यनतिक्रमणीयम्।[1] किमत्र प्रतिविधेयम्। [119]

विदूषकः- तिसंकू विअ अंतराले[2] चिट्ठ। (त्रिशङ्कुरिवान्तराले तिष्ठ।) [120]

राजा- [3]सत्यमाकुलीभूतोऽस्मि। [121]

कृत्ययोर्भिन्नदेशत्वाद् द्वैधीभवति मे मनः।
पुरः प्रतिहतं शैले स्रोतः स्रोतोवहो यथा।। 2 - 17।। [122]

(विचिन्त्य) सखे, त्वमम्बया[4] पुत्र इति प्रतिगृहीतः। अतो भवानितः प्रतिनिवृत्य तपस्विकार्यव्यग्रमानसं मामावेद्य तत्रभवतीनां पुत्रकृत्यमनुष्ठातुमर्हति। [123]

विदूषकः- ण खु मं रक्खोभीरुअं गणेसि। (न खलु मां रक्षोभीरुकं गणय।) [124]

राजा- (सस्मितं) कथमेतद्भवति[5] सम्भाव्यते। [125]

विदूषकः- जह राआणुएण गंतव्वं तह गच्छामि। (यथा राजानुगेन[6] गन्तव्यं तथा गच्छामि।) [126]

राजा- ननु तपोवनोपरोधः परिहरणीय इति सर्वाननुयात्रिकांस्त्वयैव सह प्रस्थापयामि। [127]

विदूषकः- तेण हिं जुवराओ म्हि दाणिं संवुत्तो। (तेन हि युवराजोऽस्मीदानीं संवृत्तः।) [128]

राजा - (स्वगतम्) चपलोऽयं बटुः। कदाचिदस्मत्प्रार्थनामन्तःपुरेभ्यः कथयेत्। भवतु। एनमेवं वक्ष्ये।

(विदूषकं हस्ते गृहीत्वा, प्रकाशम्) वयस्य, ऋषिगौरवाद्[7] आश्रमं गच्छामि। न खलु सत्यमेव तापसकन्यकायां ममाभिलाषः। पश्य- [129]

क्व वयं, क्व परोक्षमन्मथो मृगशावैः सममेधितो जनः।
परिहास-विजल्पितं सखे[8] परमार्थेन न गृह्यतां वचः।। 2 - 18।। [130]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे) [131]

।। इति द्वितीयोऽङ्कः[9]।।

---

1. का.-पाठे "ऽनुलंघनीयमि" ति। बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
2. का.-पाठे "ऽन्तर" इति। मै.-बं.-पाठयो "रन्तरे" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
3. केवलं दाक्षि.-पाठ इतः पूर्वम् "अलं परिहासेने" त्यधिकम्। नान्यत्र।
4. का.-मै.-पाठयोः "त्वमज्जुभिरि" ति। बं.-पाठे "त्वमार्याभिरि" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
5. का.-मै.-बं.-पाठेषु "भो महाब्राह्मण" इति प्रथमं संबोधनं क्रियते। दाक्षि.-पाठेऽपि तथैव। देव.-पाठात् तन्निष्कास्यते।
6. का.-पाठे "राजानुराजेने" ति। मै.-पाठे "युवराजानुरूपेणे" ति। बं.-पाठे "राजानुज इवे" ति। दाक्षि.-पाठे "राजानुजेने" ति। देव.-पाठे परिवर्तनं दृश्यते।
7. केवलं दाक्षि.-पाठे "महर्षिगौरवादि" ति। नान्यत्र। देव.-पाठः का.-पाठमनुसरति।
8. का.-पाठेषु "विकल्पितमि" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
9. मै.-पाठे "तपोवनानुगमनो नाम द्वितीयोङ्क" इति। बं.-पाठ "आख्यानगुप्तिरि" ति। दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसृत्य प्रत्येकानामङ्कानां पृथङ्-नामानि न प्रदत्तः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ तृतीयोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशति कुशानादाय यजमानशिष्यः) [1]

शिष्यः- अहो, महानुभावः पार्थिवो[1] दुष्यन्तः। प्रविष्टमात्र एवाश्रमं तत्रभवति राजनि निरुपद्रवाणि नः कर्माणि प्रवृत्तानि भवन्ति। [2]

का कथा बाणसन्धाने ज्याशब्देनैव दूरतः।
हुङ्कारेणेव धनुषः स हि विघ्नानपोहति॥ 3 - 1॥ [3]

यावदिमान्वेदिसंस्तरणार्थं दर्भानृत्विग्भ्य उपनयामि। (परिक्रम्यावलोक्य च, आकाशे) प्रियंवदे, कस्येदमुशीरानुलेपनं मृणालवन्ति च नलिनीपत्राणि[2] नीयन्ते। (आकर्ण्य) किं ब्रवीषि। आतपलङ्घनाद्बलवदस्वस्था शकुन्तला। तस्याः शरीरनिर्वापणाये[3]ति। तर्हि, त्वरितं गम्यताम्। सखि, सा खलु भगवतः कण्वस्य कुलपतेरुच्छ्वसितम्। अहमपि तावद् वैतानिकं शान्त्युदकमस्यै गौतमी हस्ते विसर्जयिष्यामि। (इति निष्क्रान्तः) [4]

(विष्कम्भकः[4]) [5]

(ततः प्रविशति कामयमानावस्थो[5] राजा) [6]

राजा- (निःश्वस्य)

जाने तपसो वीर्यं सा बाला परवतीति मे विदितम्।
अलमस्मि ततो हृदयं तथापि नेदं निवर्तयितुम्[6]॥ 3 - 2॥ [7]

[7](मदनबाधां निरूप्य) भगवन् कुसुमायुध, त्वया चन्द्रमसा च विश्वसनीयाभ्यामतिसन्धीयते कामिजनसार्थः। कुतः, [8]

तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दो-
र्द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु।
विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखै-
स्त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारीकरोषि[8]॥ 3 - 3॥ [9]

---

1. का.-पाठे "महाप्रभावो दुष्ष्यन्त" इति। मै.-पाठे "महाप्रभावो राजा दुष्मन्त" इति। बं.-पाठे "महाप्रभावो राजा दुःषन्त" इति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
2. का.-पाठे "मृणाल-वलयवन्ति च कमलिनीपत्राणी" ति। मै.-बं.-पाठयो "र्मृणालवन्ति च नलिनीदलानी" ति। देव.-पाठो दाक्षि. -पाठमनुसरति।
3. का.-पाठे "दाहे निर्वापणाये" ति। मै.-बं.-दाक्षि.-पाठेषु "शरीरनिर्वापणाये" ति। देव.-पाठो मै.-पाठमनुसरति
4. का.-पाठेषु "प्रवेशक" इति। दशरूपकमनुसृत्य लघुपाठयोर्विष्कम्भक इति। उत्तरवर्तित्वमनयोः सिध्यति।
5. का.-पाठे "कामयानावस्थ" इति। मै.-बं.-पाठयो "र्मदनावस्थ" इति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
6. मै.-बं.-पाठयो "र्न च निम्नादिव सलिलं निवर्तते मे ततो हृदयमि" ति। दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
7. का.-पाठेष्वितः पूर्वम् "अद्यापि नूनं हरकोपवह्नि0" इत्यधिकः श्लोकः प्राप्यते। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठम् अनुसृत्य तं श्लोकं न स्वीकरोति।
8. मै.-पाठेऽस्मात्परम् "अथवा, अनिशमपि मकरकेतोर्मनसो रुजमावहन्नि" ति श्लोकोऽपि दृश्यते। ततश्च "वृथैव संकल्पशतैरजस्रमनङ्ग०" इत्यपि श्लोकः प्रक्षिप्यते। बं.-पाठोऽपि तथैव। किन्तु दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठम् अनुसृत्य तौ श्लोकौ नोपस्थापयतः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(परिक्रम्य) [10]

क्व नु खलु संस्थिते कर्मणि सदस्यैरनुज्ञातविश्रमः श्रमक्लान्तमात्मानं विनोदयामि। (निःश्वस्य) किं नु खलु मे प्रियादर्शनादृते शरणमन्यत्। यावदेनामन्विष्यामि। [11]

(सूर्यमवलोक्य) [12]

इमामुग्रातपवेलां प्रायेण लतावलयवत्सु मालिनीतीरेषु ससखीजना शकुन्तला गमयति। तत्रैव तावद् गच्छामि। (परिक्रम्य संस्पर्शं रूपयित्वा[1]) अहो, प्रवातसुभगोऽयम् उद्देशः। [13]

शक्यमरविन्दसुरभिः कणवाही मालिनीतरङ्गाणाम्।
अङ्गैरनङ्गतप्तैरविरलम्[2] आलिङ्गितुं पवनः॥ 3 - 4॥ [14]

(परिक्रम्यावलोक्य च) अस्मिन् वेतसपरिक्षिप्ते लतामण्डपे सन्निहितया तया भवितव्यम्।

तथाहि। (अधो विलोक्य) [15]

अभ्युन्नता[3] पुरस्तादवगाढा जघनगौरवात्पश्चात्।
द्वारेऽस्य पाण्डुसिकते पदपङ्क्तिर्दृश्यतेऽभिनवा॥ 3 - 5॥ [16]

यावद्विटपान्तरेणावलोकयामि। (परिक्रम्य तथाकृत्वा सहर्षम्) अये, लब्धं नेत्रनिर्वाणम्[4]। एषा मे मनोरथप्रियतमा सकुसुमास्तरणं शिलापट्टमधिशयाना सखीभ्यामन्वास्यते। भवतु। श्रोष्याम्यासां विस्रम्भकथितानि। (इति विलोकयन्स्थितः) [17]

(ततः प्रविशति यथोक्तव्यापारा सह सखीभ्यां शकुन्तला) [18]

सख्यौ - (उपवीज्य सस्नेहम्) हला सउंदले, अवि सुहेदि दे णलिणीपत्तवादो। (हला शकुन्तले, अपि सुखयति ते नलिनीपत्रवातः।) [19]

शकुन्तला- [5]किं वीअअंति मं सहीओ। (किं वीजयतो, मां सख्यौ[6]) [20]

(सख्यौ विषादं नाटयित्वा परस्परमवलोकयतः।) [21]

राजा- बलवदस्वस्थशरीरा शकुन्तला दृश्यते। (सवितर्कम्) तत्किमयमातपदोषः स्यात्, उत यथा मे मनसि वर्तते। (साभिलाषं निर्वर्ण्य) अथवा कृतं सन्देहेन, [22]

स्तनन्यस्तोशीरं शिथिलितमृणालैकवलयं
प्रियायाः साबाधं किमपि कमनीयं वपुरिदम्।
समस्तापः कामं मनसिजनिदाघप्रसरयो-
र्न तु ग्रीष्मस्यैवं सुभगमपराद्धं युवतिषु॥ 3 - 6॥ [23]

---

1. का.-पाठे "साह्लादं वायुस्पर्शं निरूपयन्नि" ति। मै.-बं.-पाठयोः "स्पर्शं रूपयित्वे" ति। दाक्षि.-पाठे "स्पर्शसुखं रूपयित्वे" ति। देव. -पाठे शब्दपरिवर्तनं क्रियते।
2. का.-पाठे "मदनग्लानैरङ्गैः पीडितमि" ति। मै.-बं.-पाठयो "रङ्गैरनङ्गतप्तैर्निर्दयमि" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
3. का.-पाठे "ऽल्पनिहिते" ति। बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
4. का.-पाठे "नेत्रनिर्वापणमि" ति। बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
5. का.-पाठ इतः पूर्वम् "वेदनां नाटयित्वे" ति रंगसूचना। मै.-पाठे "शून्याभिनयमि" ति रंगसूचना। बं.-पाठे "सखेदमि" ति। दाक्षि.-देव. -पाठयोर्नास्ति कापि रंगसूचना।
6. का.-पाठे "किं वा वीजयतः, मां सख्य" इति। मै.-पाठे "किं मां वीजयतः प्रियसख्यावि" ति। बं.-पाठे "किं वीजयतः मां, प्रियसख्यावि" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति। (काकु-परिवर्तनं प्रदर्श्यते नटीभिः)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रियंवदा - (जनान्तिकम्) अणसूए, तस्स राएसिणो पढमदंसणादो आरहिअ पज्जुस्सुआ विअ सउंदला। किं णु खु से तण्णिमित्तो अअं आतङ्को भवे। (अनसूये, तस्य राजर्षेः प्रथमदर्शनाद् आरभ्य पर्युत्सुकेव शकुन्तला। किं नु खलु तस्यास्तन्निमित्तोऽयमातङ्को भवेत्।) [24]

अनसूया - सहि, मम वि ईदिसी आसङ्का हिअअस्स। होदु। पुच्छिस्सं दाव णं। (प्रकाशम्) सहि, पुच्छिदव्वासि किं वि। बलवं खु दे संदावो। (सखि, ममापीदृश्याशङ्का हृदयस्य। भवतु, प्रक्ष्यामि तावदेनाम्। सखि, प्रष्टव्यासि किमपि। बलवान् खलु ते संतापः[1]।) [25]

शकुन्तला- (पूर्वार्धेन शयनादुत्थाय) हला, किं वत्तुकामासि। (हला, किं वक्तुकामासि[2]।) [26]

अनसूया- हला सउंदले, अणब्भन्तरा खु अम्हे मदणगदस्स वुत्तंतस्स। किंदु जादिसी इदिहासणिबन्धेसु कामअमाणाणं अवत्था सुणीअदि तादिसीं दे पेक्खामि। कहेहि किं णिमित्तं दे संदावो। विआरं खु परमत्थदो अजाणिअ अणारम्भो पडिआरस्स। (हला शकुन्तले, अनभ्यन्तरे खल्वावां मदनगतस्य वृत्तान्तस्य। किन्तु यादृशीतिहासनिबन्धेषु कामयमानानामवस्था श्रूयते तादृशीं तव पश्यामि। कथय, किन्निमित्तं ते सन्तापः। विकारं खलु परमार्थतो-ऽज्ञात्वा-ऽनारम्भः प्रतीकारस्य। [27]

राजा- अनसूयामप्यनुगतो मदीयस्तर्कः। न हि स्वाभिप्रायेण मे दर्शनम्[3]। [28]

शकुन्तला- (आत्मगतम्) बलवं खु मे अहिणिवेसो। दाणिं वि सहसा एदाणं णं सक्कणोमि णिवेदिदुं। (बलवान्खलु मेऽभिनिवेशः। इदानीमपि सहसैतयोर्न शक्नोमि निवेदयितुम्।) [29]

प्रियंवदा- सहि सउंदले, सुट्ठु एसा भणादि। किं अत्तणो आतंकं उवेक्खसि। अणुदिअहं खु परिहीअसि अङ्गेहिं। केवलं लावण्णमई छाआ तुमं ण मुञ्चदि। (सखि शकुन्तले, सुष्ठ्वेषा भणति।
किमात्मन आतङ्कम् उपेक्षसे[4]। अनुदिवसं खलु परिहीयसेऽङ्गैः। केवलं लावण्यमयी छाया त्वां न मुञ्चति। [30]

राजा- अवितथमाह प्रियंवदा। तथा हि-[31]

क्षामक्षामकपोलमाननमुरः काठिन्यमुक्तस्तनं
मध्यः क्लान्ततरः प्रकामविनतावंसौ छविः पाण्डुरा।
शोच्या च प्रियदर्शना च मदनक्लिष्टे[5]यमालक्ष्यते
पत्राणामिव शोषणेन मरुता स्पृष्टा लता माधवी॥ 3 - 7॥ [32]

शकुन्तला- (सलज्जम्) सहि, कस्स वा अण्णस्स कहइस्सं। आआसइत्तिआ दाणिं वो भविस्सं। (सखि, कस्य वान्यस्य कथयिष्यामि। आयासयित्रीदानीं वां भविष्यामि।) [33]

उभे- अदो एव्व णिब्बन्धो। सिणिद्धजणसंविभत्तं हि दुक्खं सज्झवेदणं होदि। (अत एव खलु निर्बन्धः। स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःखं[6] सह्यवेदनं भवति।) [34]

---

1. का.-पाठेषु 23-24 क्रमांके स्थितयोरुक्त्योः स्थानान्तरणं दृश्यते। दाक्षि.-देव.-पाठयोस्तु तयोरुपस्थितिः पूर्वत्र दृश्यते।
2. का.-पाठेषु नास्त्येतादृशी योजना। देव.-पाठोऽत्र दाक्षि.-पाठमनुसरति।
3. का.-पाठे नास्तीदृशं वाक्यम्। मै.-बं.-पाठयो "रनुसूययाप्यनुगतो मदीयस्तर्क" इति। पूर्वनिर्दिष्टञ्चाधिकं वाक्यमपि नास्ति। दाक्षि. -पाठेऽपि नास्त्येतादृशमधिकं वाक्यम्। देव.-पाठे नवीनः प्रक्षेपः।
4. का.-बं.-पाठयो "रुपद्रवं निगूहसी" ति। मै.-पाठ "उपद्रवमुपेक्षस" इति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
5. का.-पाठे "मध्यं कान्ततरं, पाण्डुरा, मदनक्लिष्टे०" इति। मै.-पाठे "मध्यः कान्ततरः, पाण्डुरा, मदन-ग्लाने०" इति। बं.-पाठे "मध्यः क्लान्ततरः, पाण्डरा, मदनग्लाने०" इति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति
6. का.-बं.-पाठयोः "संविभक्तमि" ति। मै.-पाठे "विभक्तमि" ति। दाक्षि.-पाठः का.-पाठमनुसरति। देव.-पाठे परिवर्तनं दृश्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा -

पृष्टा जनेन समदुःखसुखेन बाला
नेयं न वक्ष्यति मनोगतमाधिहेतुम्।
दृष्टो निवृत्य बहुशोऽप्यनया सतृष्णम्
अत्रान्तरे श्रवणकातरतां गतोऽस्मि॥ 3 - 8॥ [35]

शकुन्तला - सहि, जदो पहुदि मम दंसणपहं आअदो सो तवोवणरक्खिदा रायसी[1], तदो आरहिअ तग्गदेण अहिलासेण एतदवत्थम्हि संवुत्ता। (सखि, यतः प्रभृति मम दर्शनपथमागतः स तपोवनरक्षिता राजर्षिः, तत आरभ्य तद्गतेनाभिलाषेणैतदवस्थास्मि संवृत्ता।) [36]

राजा- (सहर्षम्) श्रुतं श्रोतव्यम्। [37]

स्मर एव तापहेतुर्निर्वापयिता[2] स एव मे जातः।
दिवस इवार्धश्यामस्तपात्यये जीवलोकस्य॥ 3 - 9॥ [38]

शकुन्तला- तं जइ वो अणुमदं ता तह वट्टह जह तस्स राएसिणो अणुकम्पणिज्जा होमि। अण्णहा अवस्सं सिञ्चध मे तिलोदअं। (तद्यदि वामनुमतं तथा वर्तेथां, यथा तस्य राजर्षेरनुकम्पनीया भवामि। अन्यथा सिञ्चतं मे तिलोदकम्[3]।) [39]

राजा- संशयच्छेदि[4] वचनम्[5]। [40]

प्रियंवदा - (जनान्तिकम्) अणसूए, दूरगअमम्महा अक्खमा इअं कालहरणस्स। जस्सिं बद्धहावा एसा, सो ललामहूदो पोरवाणं। ता जुत्तं से अहिलासो अहिणंदिदुं। (अनसूये, दूरगतमन्मथा, अक्षमेयं कालहरणस्य[6]। यस्मिन् बद्धभावैषा, स ललामभूतः पौरवाणाम्। तद्युक्तमस्या अभिलाषोऽभिनन्दितुम्।) [41]

अनसूया - तह जह भणासि। (तथा यथा भणसि।) [42]

प्रियंवदा- (प्रकाशम्) सहि, दिट्ठिआ अणुरूवो दे अहिणिवेसो। साअरं उज्झिअ कहिं वा महाणई ओदरइ। (सखि, दिष्ट्यानुरूपस्तेऽभिनिवेशः। सागरमुज्झित्वा कस्मिन् वा महानदी अवतरति।) [43]

को दाणिं सहआरं अंतरेण अदिमुत्तलदं पल्लविदं सहेदि। (क इदानीं सहकारमन्तरेण अतिमुक्तलतां पल्लवितां सहते।) [44]

राजा- किमत्र चित्रं यदि विशाखे शशाङ्कलेखाम् अनुवर्तेते[7]। [45]

अनसूया - को उण उवाओ भवे, जेण अविलम्बिअं णिहुअं अ सहीए मणोरहं संपादेम्ह। (कः पुनरुपायो भवेद्, येनाविलम्बितं निभृतं च सख्याः मनोरथं[8] संपादयावः।) [46]

---

1. मै.-बं.-पाठयोरितः पर "मित्यर्धोक्तेन लज्जां नाटयती" ति रंगसूचना। दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
2. शब्दोऽयं "लब्धं नेत्रनिर्वापणमि" ति काश्मीर-पाठस्य समर्थकः। (उशीरानुलेपोऽपि शरीर-निर्वापणाय)
3. का.-मै.-पाठयोः "सिञ्चतमिदानीमुदकेने" ति। बं.-पाठे "स्मरतं मामि" ति। दाक्षि.-पाठे "अथवा प्रसिञ्चतं मे उदकमि" ति। देव. -पाठे परिवर्तनं क्रियते।
4. का.-पाठेषु "विमर्शच्छेदी" ति। दाक्षि.-पाठेऽपि तथैव। किन्तु देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
5. मैथिल-बंगीय-पाठयोः 37-40 इत्येतासामुक्तीनां क्रमो लघुपाठापेक्षया भिन्नः परिलक्ष्यते। उक्तीनामासां क्रमविषये लघुपाठौ का. -पाठमनुसरतः।
6. अस्माद्वाक्यादनन्तरं सागर-महानद्योरेकमेवोपमानमौचित्यं भजते।
7. उपमानद्वयमिदं (44-45)का.-पाठात्स्वीकृत्य दाक्षि.-देव.-पाठयोः स्थापितम्, किन्तु ततु प्रक्षिप्तमेव।
8. का.-पाठे "निगूढं मनोरथमि" ति। बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रियंवदा - णिहुअंति चिन्तणिज्जं भवे। सिग्घंत्ति सुअरं। (निभृतमिति चिन्तनीयं भवेत्। शीघ्रमिति सुकरम्[1]।) [46]

अनसूया - कहं विअ। (कथमिव।) [47]

प्रियंवदा - णं सो राएसी इमस्सिं सिणिद्धदिट्ठीए सूइदाहिलासो, इमाइं दिअहाइं पजाअरकिसो लक्खीअदि। (ननु स राजर्षिरेतस्यां स्निग्धदृष्ट्या सूचिताभिलाषः, एतान् दिवसान् प्रजागरकृशो लक्ष्यते।) [48]

राजा- सत्यमित्थंभूत एवास्मि। तथाहि-[49]

इदमशिशिरै-रन्तस्तापाद् विवर्ण-मणीकृतं[2]
निशि निशि भुजन्यस्तापाङ्गप्रसारिभि[3]-रश्रुभिः।
अनभिलुलित[4]-ज्याघाताङ्कं मुहुर्मणिबन्धनात्
कनकवलयं स्रस्तं स्रस्तं मया[5] प्रतिसार्यते॥ 3 - 10॥ [50]

प्रियंवदा - (विचिन्त्य) हला, मअणलेहो से करीअदु। इमं देवप्पसादस्सावदेसेण सुमणोगोविदं करिअ से हत्थअं पावइस्सं। (हला, मदनलेखोऽस्य क्रियताम्। तं देवप्रसादस्यापदेशेन[6] सुमनोगोपितं कृत्वा तस्य हस्तं प्रापयिष्यामि।) [51]

अनसूया - रोअइ मे सुउमारो पओओ। किं वा सउंदला भणादि। (रोचते मे सुकुमारः प्रयोगः। किं वा शकुन्तला भणति।) [52]

शकुन्तला- को णिओओ विकप्पीअदि। (किं नियोगो विकल्प्यते[7]।) [53]

प्रियंवदा - तेण हि अत्तणो उवण्णासपुव्वं चिन्तेहि दाव ललिअपदबन्धणं। (तेन ह्यात्मन उपन्यासपूर्वं चिन्तय तावत् ललितपदबन्धनम्[8]।) [54]

शकुन्तला -हला, चिंते अहं। अवहीरणभीरुअं पुणो वेवइ मे हिअअं। (हला, चिन्तयाम्यहम्। अवधीरणाभीरु पुनर्वेपते मे हृदयम्।) [55]

राजा - (सहर्षम्)

अयं स ते तिष्ठति संगमोत्सुको
विशङ्कसे भीरु यतोऽवधीरणाम्।
लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं
श्रिया[9] दुरापः कथमीप्सितो भवेत्[10]॥ 3 - 11॥ [56]

---

1. का.-पाठेषु "शीघ्रमिति न दुष्करमि" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
2. मै.-पाठे "ऽशिशिरतरैरन्तस्तापैर्विवर्णमलीमसमि" ति। बं.-पाठे "ऽशिशिरतरैरन्तस्तापैर्विवर्णमणीकृतमि" ति। दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
3. का.-पाठे "प्रवृत्तिभिरि" ति। मै.-बं.-पाठयोः "प्रवर्तिभिरि" ति। दाक्षि.-पाठे "प्रसर्पिभिरि" ति। देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
4. मै.-बं.-पाठयो "रनतिलुलित0" इति। दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
5. केवलं मै.-पाठे "मुहुरि" ति। बं.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।
6. का.-बं.-पाठयो "र्देवताशेषापदेशेने" ति। मै.-पाठे "देवतापदेशेने" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
7. का.-बं.-पाठयो "र्नियोगोऽपि विकल्प्यत" इति। मै.-पाठे "सखि, नियोगोऽपि किं विकल्प्यत" इति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
8. का.-पाठे "सुललितं पदबन्धमि" ति। मै.-पाठे "ललितपदबन्धनां गीतिकामि" ति। बं.-पाठे "ललितोपनिबन्धकं गीतकमि" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
9. का.-पाठेषु "श्रिय" इति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
10. मै.-बं.-पाठयोरस्माच्छ्लोकात्पर "मयं स यस्मात् प्रणयावधीरणामि" त्यधिकः पठ्यते। दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः। (स च श्लोकः प्रक्षिप्तः प्रतिभाति।)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

सख्यौ - अत्तगुणावमाणिणि, को दाणिं सरीरणिव्वावत्तिअं सारदिअं जोसिणिं पडंतेण वारेदि। (आत्मगुणावमानिनि, क इदानीं शरीरनिर्वापयित्रीं[1] शारदीं ज्योत्स्नां पटान्तेन[2] वारयति।) [57]

शकुन्तला -(सस्मितम्) णिओइदा दाणिं म्हि। (नियोजितेदानीमस्मि[3]।) [58]

(उपविष्टा चिन्तयति[4]।) [59]

राजा - स्थाने खलु विस्मृतनिमेषेण चक्षुषा प्रियामवलोकयामि। [60] यतः,

उन्नमितैकभ्रूलतमाननमस्याः पदानि रचयन्त्याः।
कण्टकितेन प्रथयति[5] मय्यनुरागं कपोलेन॥ 3 - 12॥ [61]

शकुन्तला- हला, चिन्तिदं मए गीदवत्थु। ण खु संणिहिदाणि उण लेहणसाहणाणि। (हला, चिन्तितं मया गीतवस्तु। न खलु सन्निहितानि पुनर्लेखन-साधनानि।) [62]

प्रियंवदा - इमस्सिं सुओदरसुउमारे णलिणीपत्ते णहेहिं णिक्खित्तवण्णं करेहि। (एतस्मिन् शुकोदरसुकुमारे नलिनीपत्रे[6] नखैर्निक्षिप्तवर्णं कुरु।) [63]

शकुन्तला -(यथोक्तं रूपयित्वा[7]) हला, सुणुह दाणिं संगदत्थं ण वेत्ति। (हला, शृणुतमिदानीं सङ्गतार्थं[8] न वेति।) [64]

उभे - अवहिद म्ह। (अवहिते स्वः।) [65]

शकुन्तला - (वाचयति)

तुज्झ ण आणे हिअअं मम उण कामो दिवा वि रत्तिम्मि।
णिग्घिण, तवइ बलीअं तुइ वुत्तमणो रदाइं (इ)[9] अङ्गाइं॥ 3 - 13॥ [66]

(तव न जाने हृदयं, मम पुनः कामो दिवापि रात्रावपि[10]।
निर्घृण[11] तपति बलीयस्त्वयि वृत्तमनोरथान्यङ्गानि॥ 3 - 13)

राजा- (सहसोपसृत्य)

तपति तनुगात्रि मदनस्त्वामनिशं मां पुनर्दहत्येव।
ग्लपयति यथा शशाङ्कं न तथा हि कुमुद्वतीं दिवसः॥ 3 - 14॥ [67]

---

1. अयमपि शब्दो "नेत्रनिर्वापणमि" ति का.-पाठस्य समर्थकः।
2. का.-पाठे "ष्वातपत्रेणे" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
3. का.-पाठ उक्तिरियं नास्ति। मै.-पाठे सास्ति। बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
4. का.-पाठे नास्तीयं रंगसूचना। शकुन्तला शयनावस्थायामेव चिन्तयति, लिखति च। मै.-पाठे केवलं "चिन्तयती" त्येव रंगसूचना। बं.-पाठेऽपि "चिन्तयती" त्येव। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
5. मै.-बं.-पाठयोः "पुलकाचितेन कथयती" ति। दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
6. का.-पाठेष्वितः परं "पत्रच्छेदभक्त्ये" ति शब्दोऽधिकः। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
7. का.-पाठे "तथा कृत्वे" ति। मै.-बं.-पाठयोर्नास्त्येतादृशी रंगसूचना। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
8. का.-बं.-पाठयोः "संगतार्थे" ति। मै.-पाठे "विशदार्थे" ति। दाक्षि.-पाठः का.-पाठमनुसरति।
9. का.-पाठेषु "हुत्तमणोरहाइ" इति प्राकृतरूपम्। (तवाभिमुखमनोरथानि। हुत्तम्=अभिमुखम्। हैम. 8-2-158), दाक्षि.-पाठे "जुत्त=युक्त" इति। देव.-पाठे परवर्तिकालिकं तृतीयं परिवर्तनं क्रियते। गाथेयं गीतिः।
10. मै.-बं.-पाठयो "र्मदनो दिवा च रात्रौ चे" ति। दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
11. का.-पाठेषु "निष्कृप" इति। यथा तस्य राजर्षेरनुकम्पनीया भवामीति पूर्वोक्तेन वाक्येन सह त्विदमेव संबोधनं संगच्छते। नवीनेऽस्मिन् संबोधने शकुन्तलाया अपि राजर्षिकन्यात्वं प्रकटीकरणस्याशयो दृश्यते। दाक्षि.-पाठमनुसृत्यैव देव.-पाठेनात्र परिवर्तनं कृतम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

उभे - (सहर्षम्) साअदं अविलम्बिणो मणोरहस्स। (स्वागतमविलम्बिनो मनोरथस्य[1]।) [68]

(शकुन्तलाऽभ्युत्थातुमिच्छति) [69]

राजा - अलमलमायासेन। [70]

संदष्टकुसुमशयनान्याशु क्लान्त-बिसभङ्गसुरभीणि[2]।
गुरुपरितापानि न ते गात्राण्युपचारमर्हन्ति॥ 3 - 15॥ [71]

अनसूया - इदो सिलातलेक्कदेसं अलंकरेदु वअस्सो। (इतः शिलातलैकदेशमलंकरोतु[3] वयस्यः।) [72]

(राजोपविशति। शकुन्तला सलज्जा तिष्ठति[4]।) [73]

प्रियंवदा - दुवेणं णु वो अण्णोण्णाणुराओ पच्चक्खो। सहीसिणेहो मं पुणरुत्तवादिणीं करेदि।
(द्वयोर्नन्नु युवयोरन्योन्यानुरागः प्रत्यक्षः। सखीस्नेहो मां पुनरुक्तवादिनीं करोति।) [74]

राजा - भद्रे, नैतत्परिहार्यम्। विवक्षितं ह्यनुक्तमनुतापं जनयति। [75]

प्रियंवदा - आवण्णस्स विसअणिवासिणो जणस्स अत्तिहरेण रण्णा होदव्वं त्ति, एसो वो धम्मो।
(आपन्नस्य विषयनिवासिनो जनस्या[5]र्तिहरेण राज्ञा भवितव्यमित्येष युष्माकं धर्मः[6]।) [76]

राजा- नास्मात्परम्। [77]

प्रियंवदा - तेण हि इअं णो पिअसही तुमं उद्दिसिअ इमं अवत्थंतरं भवअता मअणेण आरोविदा। ता अरुहसि अब्भुववत्तीए जीविदं से अवलंबिदुं। (तेन हीयमावयोः प्रियसखी त्वामुद्दिश्येदमवस्थान्तरं भगवता मदनेनारोपिता। तदर्हस्यभ्युपपत्त्या जीवितं तस्या अवलम्बितुम्।) [78]

राजा- भद्रे, साधारणोऽयं प्रणयः[7]। सर्वथानुगृहीतोऽस्मि। [79]

शकुन्तला- (प्रियंवदामवलोक्य) हला, अलं अंतेउरविरह-पज्जुस्सुअस्स राएसिणो उवरोहेण। (हला, किम् अन्तःपुरविरह[8]-पर्युत्सुकस्य राजर्षेरुपरोधेन।) [80]

राजा-

इदमनन्यपरायणमन्यथा हृदयसन्निहिते हृदयं मम।
यदि समर्थयसे मदिरेक्षणे मदनबाणहतोऽस्मि हतः पुनः॥ 3 - 16॥ [81]

---

1. का.-मै.-पाठयोः "0चिन्तितफलस्याविलम्बिनो मनोरथस्ये" ति। बं.-पाठे "0यथासमीहितफलस्ये" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
2. का.-पाठे "संस्पृष्ट०, विवर्णितमृणालवलयानी" ति। मै.-पाठे "संदष्ट०, विवर्णितमृणालवलयानी" ति। बं.-पाठे "संदष्ट०, विमर्दितमृणाल-वलयानी" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
3. का.-पाठेऽप्य "-नुगृह्णात्वि" ति। दाक्षि.-पाठोऽपि का.-पाठमनुसरति। देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
4. रंगसूचनेयं प्रक्षिप्ता स्यात्। यतो हि- अङ्के निधाय चरणावुत पद्मताम्रौ, संवाहयामि करभोरु यथासुखं त इति शब्दानन्तरमेव शकुन्तलया शयनावस्था त्यक्तव्येति मूलतः कवेर्योजना दृश्यते। मै.-पाठे "शकुन्तला किञ्चित्पादावपसारयती" ति रंगसूचना। बं.-पाठे "शकुन्तला किंचिदपसरती" ति रंगसूचना। का.-पाठे पादापसारणस्य नास्ति रंगसूचना। अतः साऽपि प्रक्षिप्ता स्यात्।
5. का.-मै.-पाठयोर्नास्तीदं वाक्यम्। बं.-पाठ "आश्रमवासिनो जनस्ये" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठानुसारी।
6. का.-पाठे नास्तीदं वाक्यम्। मै.-पाठेऽनुसूयाया मुखे सखीधर्मविषये वर्तत "एषो नो धर्म" इति। दाक्षि.-पाठो बं.-पाठमनुसृत्य राज्ञो धर्मविषये प्रियंवदाया मुखे स्थापयतीदं वाक्यम्।
7. का.-पाठे "ऽनुगृहीतोऽस्मी" ति। बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
8. का.-पाठे "ऽन्तःपुरविहार०" इति। बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठनुसरन्ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अनसूया- वअस्स, बहुवल्लहा राआणो सुणीअंति। जह णो पिअसही बन्धुअण-सोअणिज्जा ण होइ, तइ णिव्वत्तेहि। (वयस्य, बहुवल्लभाः राजानः श्रूयन्ते। यथा नो प्रियसखी बन्धुजनशोचनीया न भवति, तथा निर्वर्तय।) [82]

राजा- भद्रे, किं बहुना। [83]

> **परिग्रहबहुत्वेऽपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य मे।**
> **समुद्रवसना चोर्वी[1] सखी च युवयोरियम्[2]॥ 3 - 17॥ [84]**

उभे- णिव्वुद म्ह। (निर्वृते स्वः[3]।) [85]

प्रियंवदा- (सदृष्टिक्षेपम्) अणसूए, जह एसो इदो दिण्णदिट्ठी उस्सुओ मिअपोदओ मादरं अण्णेसदि। एहि, संजोएम णं। (अनसूये, यथैष इतो दत्तदृष्टिरुत्सुको मृगपोतको मातरमन्विष्यति। एहि, संयोजयाव एनम्।) [86]

(इति उभे प्रस्थते।) [87]

शकुन्तला - हला, असरण म्हि। अण्णदरा वो आअच्छदु। (हला, अशरणाऽस्मि, अन्यतरा युवयोरागच्छतु।) [88]

उभे- पुहवीए जो सरणं, सो तुह समीवे वट्टइ। (पृथिव्या यः शरणं, स तव समीपे वर्तते।) [89]

(इति निष्क्रान्ते[4]) [90]

शकुन्तला- कहं गदाओ एव्व। (कथं गते एव।) [91]

राजा - अलमावेगेन। नन्वाराधयिता जनस्तव समीपे वर्तते। [92]

> **किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्र-वातान्**
> **संचारयामि नलिनीदलतालवृन्तैः।**
> **अङ्के निधाय करभोरु यथासुखं ते**
> **संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ[5]॥ 3 - 18॥ [93]**

शकुन्तला - ण माणणीएसु अत्ताणं अवराहइस्सं। (न माननीयेष्वात्मानमपराधयिष्ये।) [94]

(इत्युत्थाय गन्तुमिच्छति[6]।) [95]

---

1. का.-पाठे "धर्मेणोल्लिखिता लक्ष्मीरि" ति। मै.-बं.-पाठयोः "समुद्ररसना चोर्वी" ति। दाक्षि.-पाठे "समुद्र-रशना चोर्वी" ति। देव.-पाठे परिवर्तनं दृश्यते।
2. का.-पाठेऽस्माच्छ्लोकादनन्तरम् "अपराधमिमं ततः सहिष्ये०" इत्यादिः प्रक्षिप्तः श्लोको वर्तते। दाक्षि.-पाठात्सो निष्कासितः। देव. -पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
3. का.-पाठे "ऽनुगृहीतोऽस्मी" ति। बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
4. का.-पाठेऽत्र परं 1. दुष्यन्तः शकुन्तलाया हस्ते मृणालवलयं स्थापयति, 2. शकुन्तलायाश्च नेत्रं पुष्प-रजसा कलुषितं भवति, नायकश्च स्वकीयेन वदनमारुतेन तत्परिमार्जयतीति दृश्यद्वयं वर्तते। नास्ति तत्राश्लीलताया गन्धलेशोऽपि, तदप्यवधेयम्। नैसर्गिक-प्रेमसहचार एव विलसति। किन्तु दाक्षि.-पाठे तयोः निष्कासनं कृत्वा संक्षेपीकरणं साध्यते। दाक्षिणात्यरंगकर्मिणामिदमवदानं देव.-पाठशोधकैरपि स्वीक्रियते।
5. का.-पाठे- "ष्वङ्के निधाय चरणावुत पद्मताम्रौ, संवाहयामि करभोरु यथासुखं त" इति। (शकुन्तलायाः शयनावस्थामभिलक्ष्य श्लोकोऽयं विरचितः स्यात्। अत्र दुष्यन्तः शिलापट्टेऽधिशयानाया शकुन्तलायाः केवलं चरणौ स्वकीयाङ्के निधाय, तयोश्चरणयोः संवाहनं कर्तुमुद्यतो भवतीत्यर्थः।), देव.-पाठो दाक्षि.-पाठम् अनुसरति। (अत्र तृतीय-चतुर्थ-चरणयोः पाठपरिवर्तनेन दृश्य-योजनाऽपि परिवर्त्यते। तद्यथा-शिलापट्ट उपविष्टो दुष्यन्तः शिलापट्टस्य समीपे तिष्ठन्तीं शकुन्तलां स्वकीयाङ्के निधाय / निवेश्य, तस्याश्चरणौ संवाहयितुमिच्छतीति नवीनोऽर्थो स्फुरतितराम्।)
6. का.-पाठे "ऽवस्थासदृशमुत्थाय प्रस्थिते" ति रंगसूचना, सैव समीचीना। किन्तु "सलज्जा तिष्ठती" ति रंग-सूचनान्तरम् "उत्थाय गन्तुमिच्छती" ति रंगसूचनेयं सर्वथाऽसंगता। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- सुन्दरि, अनिर्वाणोऽयं दिवसः। इयं च ते शरीरावस्था। [96]

उत्सृज्य कुसुमशयनं नलिनीदलकल्पितस्तनावरणम्[1]।
कथमातपे गमिष्यसि परिबाधापेलवैरङ्गैः॥ 3 - 19॥ [97]

(इति बलादेनां निवर्तयति[2]।) [98]

शकुन्तला -पोरव, रक्ख अविणअं। मअणसंतत्ता वि ण हु अत्तणो पहवामि। (पौरव, रक्षाविनयम्। मदनसन्तप्ताऽपि न खल्वात्मनः प्रभवामि[3]।) [99]

राजा- भीरु! अलं गुरुजनभयेन। दृष्ट्वा ते विदितधर्मा तत्रभवान् न तत्र दोषं ग्रहीष्यति कुलपतिः।

अपि च। [100] -

गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो राजर्षिकन्यकाः[4]।
श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चाभि[5]नन्दिताः[6]॥ 3 - 20॥ [101]

शकुन्तला -मुञ्च दाव मं, भूयो वि सहीअणं अणुमाणइस्सं। (मुञ्च तावन्माम्। भूयोऽपि सखीजनम् अनुमानयिष्ये।) [102]

राजा- भवतु, मोक्ष्यामि। [103]

शकुन्तला- कदा। (कदा।) [104]

राजा-

अपरिक्षतकोमलस्य यावत् कुसुमस्येव नवस्य षट्पदेन।
अधरस्य पिपासता मया ते सदयं सुन्दरि गृह्यते रसोऽस्य[7]॥ 3 - 21॥ [105]

(इति मुखमस्याः समुन्नमयितुमिच्छति। शकुन्तला परिहरति नाट्येन[8]) [106]

(नेपथ्ये) [107]

चक्कवाकवहुए, आमन्तेहि सहचरं। उवट्ठिआ रअणी।
(चक्रवाकवधूः, आमन्त्रयस्व सहचरम्। उपस्थिता रजनी[9]।) [108]

शकुन्तला -(ससम्भ्रमम्) पोरव, असंसअं मम सरीरवुत्तंतोवलंभस्स अज्जा गोदमी इदो एव्व आअच्छदि। जाव विडवंतरिदो होहि। (पौरव, असंशयं मम शरीरवृत्तान्तोपलम्भायार्या गौतमीत एवागच्छति। यावद्विटपान्तरितो भव। [109]

---

1. का.-पाठे "कदलीदलकल्पित०" इति। मै.-बं.-पाठयो "र्नलिनी0...स्तनावरणे" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठम् अनुसरति।
2. का.-पाठेष्वितः परम् "अप्यौत्सुक्ये महति न वरप्रार्थनासु प्रतार्या:0" इत्यादिशब्दैरश्लीलांशः प्रक्षिप्यते। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसृत्य तमंशं न स्वीकरोति।
3. का.-पाठेषु शकुन्तला "पौरव, रक्ष विनयम्, इतस्ततः ऋषयः संचरन्ती" त्युक्तवा दुष्यन्तं संचेतयति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
4. का.-पाठे नास्त्ययं श्लोकः। मै.-बं.-पाठयो "र्मुनिकन्यका" इति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
5. मै.-बं.-पाठयोरनुमोदिता इति। दाक्षि.-पाठेऽभिनन्दिता इति परिवर्तनं क्रियते, देव.-पाठस्तमनुसरति।
6. का.-पाठे नास्त्ययं श्लोकः। मै.-पाठे प्रक्षिप्तोऽयं श्लोकः। बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
7. का.-पाठेष्वस्य श्लोकस्य स्थाने भिन्नः श्लोकः प्राप्यते। "इदमुपकृतम् अबले" ति। तत्र शकुन्तला दुष्यन्तं रतये प्रेरयति, अत्र दुष्यन्तः अधरामृतस्य याचनां करोति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठानुसारी।
8. का.-पाठ "इति व्यवसित" इति।मै.-पाठ "इति व्यवसितः। शकुन्तला वक्त्रं ढौकत" इति। बं.-पाठे तु "इति व्यवसितः वक्त्रं ढौकत" इति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति। (सर्वत्राभिनयभेदः परिलक्ष्यते।)
9. का.-पाठे नास्त्येतादृशीनेपथ्योक्तिः। तत्रास्ति नेपथ्योक्ति "रार्या गौतमी" त्युद्-घोषणा। मै.-पाठे प्रथमवारं दृश्यते सा। अनुगामिनि काले बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- तथा। (इत्यात्मानमावृत्य तिष्ठति।) [110]

(ततः प्रविशति पात्रहस्ता तापसी सख्यौ च।[1]) [111]

सख्यौ - इदो इदो अज्जा गोदमी। (इत इत आर्या गौतमी[2]।) [112]

गौतमी- (शकुन्तलामुपेत्य) जादे, अवि लहुसंदावाइं दे अङ्गाइं। (जाते, अपि लघु संतापानि तेऽङ्गानि।) [113]

शकुन्तला -अत्थि मे विसेसो। (अस्ति मे विशेषः।) [114]

गौतमी- इमिणा दब्भोदएण णिराबाधं एव्व दे सरीरं भविस्सदि। (शिरसि शकुन्तलामभ्युक्ष्य) वच्छे, परिणदो दिअहो। एहि। उडजं एव्व गच्छम्ह। (अनेन दर्भोदकेन निराबाधमेव ते शरीरं भविष्यति। वत्से, परिणतो दिवसः। एहि। उटजमेव गच्छामः।)

(इति प्रस्थिताः) [115]

शकुन्तला -(आत्मगतम्) हिअअ, पढमं एव्व सुहोवणदे मणोरहे कादरभावं ण मुञ्चसि। साणुसअविहडिअस्स अहं दे संपदं संदावो। (पदान्तरे स्थित्वा, प्रकाशम्) लदावलअ संदावहारअ, आमन्तेमि तुमं भूओ वि परिभोअस्स। (हृदय, प्रथथमेव सुखोपनते मनोरथे कातरभावं न मुञ्चसि[3]। सानुशयविघटितस्य कथं ते साम्प्रतं सन्तापः[4]।। लतावलय[5], संतापहरक, आमन्त्रये त्वां भूयोऽपि परिभोगाय। [116]

(इति दुःखेन निष्क्रान्ता शकुन्तला सहेतराभिः[6]।) [117]

राजा- (पूर्वस्थानमुपेत्य सनिःश्वासम्) अहो विघ्नवत्यः प्रार्थितार्थसिद्धयः।

मया हि-[118]

मुहुरङ्गुलिसंवृत्ताधरोष्ठं प्रतिषेधाक्षरविक्लवाभिरामम्।
मुखमंसविवर्ति पक्ष्मलाक्ष्याः कथमप्युन्नमितं, न चुम्बितं तु[7]।। 3 - 22।। [119]

क्व नु खलु गच्छामि। अथवा इहैव प्रियापरिभुक्तमुक्ते लतावलये मुहूर्तं स्थास्यामि।

(सर्वतोऽलोक्य) [120]

तस्याः पुष्पमयी शरीरलुलिता शय्या शिलायामियं।
क्लान्तो[8] मन्मथलेख एष नलिनीपत्रे नखैरर्पितः।

---

1. का.-पाठेषु "ततः प्रविशति पात्रहस्ता गौतमी" ति। (गौतम्या सह सख्यौ रंगं न प्रविशतः)। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
2. का.-पाठेषु नास्त्येतादृशं वाक्यम्। यतो हि- रंगमंचे गौतम्या सह सखीद्वयस्य प्रवेशो न जातः।
3. का.-पाठे "हृदय, मनोरथदुर्लभं जनं प्राप्य कालहरणं करोषी" ति। मै.-बं.-पाठयो "हृदय, प्रथमं सुखोपनते मनोरथे कालहरणं करोषी" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
4. का.-पाठे "ऽनुशयविघट्टितस्य कथं ते साम्प्रतमि". ति। मै.-पाठे "साम्प्रतमधन्यया वर्धितस्य किमपि प्रतिपद्यस" इति। बं.-पाठे "साम्प्रतमनुभव तावत्ते कृतमि" ति। दाक्षि.-पाठे "सानुशयं विकम्पितस्य कुत्र ते साम्प्रतं सन्ताप" इति। देव.-पाठे का.-पाठस्यानुसरणं दृश्यते।
5. का.-पाठेषु "लतागृहक" इति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
6. का.-पाठ "इति निष्क्रान्त" इति द्विवचनम्। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
7. मै.-बं.-पाठयो "र्न चुम्बितं तदि" ति। दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
8. का.-पाठेषु "कान्त" इति। दाक्षि.-पाठे "क्लान्त" इति सप्तम्यन्तं पदम्। देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

हस्ताद् भ्रष्टमिदं बिसाभरणम् इत्यासज्यमानेक्षणो[1]
निर्गन्तुं सहसा न वेतसगृहाच्छक्नोमि शून्यादपि[2]॥ 3 - 23॥ [121]

(आकाशे) [122]

राजन्,

सायंतने सवनकर्मणि संप्रवृत्ते वेदीं हुताशनवतीं परितः प्रयस्ताः।
छायाश्चरन्ति बहुधा भयमादधानाः सन्ध्यापयोदकपिशाः[3] पिशिताशनानाम्॥ 3 - 24॥ [123]

राजा- अयम् अयम् आगच्छामि[4]। [124]

(इति निष्क्रान्तः) [125]

॥ इति तृतीयोऽङ्कः[5]॥ [126]

---

1. का.-पाठे "हीनेक्षणन्त्रि" ति। बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
3. का.-पाठेष्वितः परं "रहः प्रत्यासत्तिं यदि सुवदना यास्यति पुनः०" इत्यधिकः श्लोकः प्रक्षिप्तः। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसृत्य तं न स्वीकरोति।
3. का.-पाठेषु "सन्ध्याभ्रकूटकपिशा" इति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
4. का.-पाठेषु "भो भो तपस्विनः, मा भैष्ट। अयमहमागतोऽस्मी" ति। देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
5. मै.-बं.-पाठयोः "शृङ्गारभोगो नाम तृतीयोऽङ्क" इति। दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसृत्य प्रत्येकानाम् अङ्कानां नामानि न दत्तः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ चतुर्थोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशतः कुसुमावचयं नाटयन्त्यौ सख्यौ[1]) [1]

अनसूया- पिअंवदे, जइ वि गन्धव्वेण विहिणा णिव्वुत्तकल्लाणा सउंदला अणुरुवभत्तुगामिणी संवुत्तेति णिव्वुदं मे हिअअं। तह वि एत्तिअं चिन्तणिज्जं। (प्रियंवदे, यद्यपि गान्धर्वेण विधिना निर्वृत्तकल्याणा शकुन्तलानुरूपभर्तृगामिनी[2] संवृत्तेति निर्वृतं मे हृदयं, तथाप्येतावच्चिन्तनीयम्[3]।) [2]

प्रियंवदा - कहं विअ। (कथमिव।) [3]

अनसूया - अज्ज सो राएसी इट्ठिं परिसमाविअ इसीहिं विसज्जिओ अत्तणो णअरं पविसिअ अंतेउरसमागदो इदोगदं वुत्तत्तं सुमरदि वा ण वेत्ति। (अद्य स राजर्षिरिष्टिं परिसमाप्य ऋषिभिर्विसर्जित आत्मनो नगरं प्रविश्यान्तःपुरसमागत इतोगतं वृत्तान्तं स्मरति वा न वेति[4]।) [4]

प्रियंवदा- वीसद्धा होहि। ण तादिसा आकिदिविसेसा गुणविरोहिणो होंति। तादो दाणिं इमं वुत्तंतं सुणिअ ण आणे किं पडिवज्जिस्सदि त्ति। (विस्रब्धा भव। न तादृशा आकृतिविशेषा गुणविरोधिनो भवन्ति। तात इदानीं[5]मिमं वृत्तान्तं श्रुत्वा न जाने किं प्रतिपत्स्यत इति।) [5]

अनसूया - जह अहं देक्खामि, तह तस्स अणुमदं भवे। (यथाहं पश्यामि, तथा तस्यानुमतं भवेत्।) [6]

प्रियंवदा - कहं विअ। (कथमिव।) [7]

अनसूया - गुणवदे कण्णआ पडिवादणिज्जे त्ति, अअं दाव पढमो संकप्पो। तं जइ देव्वं एव्व संपादेदि, णं अप्पआसेण किदत्थो गुरुअणो। (गुणवते कन्यका प्रतिपादनीयेत्ययं तावत्प्रथमः सङ्कल्पः। तं यदि दैवमेव सम्पादयति, नन्वप्रयासेन कृतार्थो गुरुजनः।) [8]

प्रियंवदा- (पुष्पभाजनं विलोक्य) सहि, अवइदाइं बलिकम्मपज्जत्ताइं कुसुमाइं। (सखि, अवचितानि बलिकर्मपर्याप्तानि कुसुमानि।) [9]

अनसूया - णं सहीए सउंदलाए[6] सोहग्गदेवआ अच्चणीआ। (ननु सख्याः शकुन्तलायाः सौभाग्यदेवताऽर्चनीया[7]।) [10]

प्रियंवदा - जुज्जदि। (युज्यते।) [11]

(इति तदेव कर्मारभते[8]) [12]

---

1. का.-पाठे "कुसुमावचयं तपस्विकन्यक" इति।, मै.-बं.-पाठयोः "सख्यावि" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठम् अनुसरतः। (बं.-पाठे "कुसुमावचयनम् अभिनयन्त्यौ सख्यावि" ति विशेषः।)
2. का.-पाठेषु "०भर्तृभागिनी" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
3. का.-पाठे "तथापि न निवृत्तं मे हृदयमि" ति।, मै.-पाठे "तथापि न निर्वृत्तं मे हृदयम्। एतावदिदानीं चिन्तनीयमि" ति।, बं.-पाठे "तथापि न मे निर्वृतं हृदयमि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
4. का.-पाठे "प्रविश्यान्तःपुरमितो गतं स्मरिष्यति वा न वेती" ति।, मै.-पाठे "ऽन्तःपुरिकासमागत इमं जनं स्मरिष्यति न वेती" ति।, बं. -पाठे "ऽन्तःपुरिकाशतसमागत इमं जनं स्मरति न वेती" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
5. मै.-पाठे "तात इदानीं तीर्थात् प्रतिनिवृत्त" इति।, बं.-पाठे "तातः तीर्थयात्रातः प्रतिनिवृत्त" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
6. का.-पाठेषु "सउन्तलाए" इत्यस्य कृते "शकुन्तलया" इति संस्कृतच्छाया दीयते।, किन्तु दाक्षि.-देव.-पाठयोः स एव शब्दः काटयवेमेन राघव-भट्टेन च "शकुन्तलायाः" इति (षष्ठ्यन्तेन) रूपेण परिवर्त्यते।
7. मै.-बं.-पाठयोरितः परं "तस्मादपराण्यवचिनुव" इत्यधिकम्।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
8. का.-पाठे "कर्म नाटयत" इति।, मै.-बं.-पाठयोः "कर्माभिनयत" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(नेपथ्ये) [13]

अयमहं[1] भोः ....। [14]

अनसूया - (कर्णं दत्त्वा) सहि, अदिधीणं विअ णिवेदिदं। (सखि, अतिथीनामिव[2] निवेदितम्।) [15]

प्रियंवदा - णं उडजसंणिहिदा सउंदला। (आत्मगतम्[3]) अज्ज उण हिअएण असंणिहिदा। (ननूटजसन्निहिता शकुन्तला। अद्य पुनर्हृदयेनासंनिहिता।) [16]

अनसूया - होदु। अलं एत्तिएहिं कुसुमेहिं। (भवतु। अलमेतावद्भिः कुसुमैः।) (इति प्रस्थिते) [17]

(नेपथ्ये) [18]

आः अतिथिपरिभाविनि[4], [19]

विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा तपोधनं[5] वेत्सि न मामुपस्थितम्।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन् कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव॥ 4 - 1॥ [20]

प्रियंवदा[6]- हद्धी, अप्पिअं एव्व संवुत्तं। कस्सिं पि पूआरुहे अवरुद्धा सुण्णहिअआ सउंदला। (पुरोवलोक्य) णहु जस्सिं कस्सिं पि। एसो दुव्वासो सुलहकोवो महेसी। तह सविअ वेअबलुप्फुल्लाए दुव्वाराए गईए पडिणिवुत्तो। को अण्णो हुदवहादो दहिहुं पहवदि। (हा धिक्, अप्रियमेव संवृत्तम्। कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शून्यहृदया शकुन्तला। न खलु यस्मिन् कस्मिन्नपि। एष दुर्वासाः सुलभकोपो महर्षिः। तथा शप्त्वा वेगबलोत्फुल्लया दुर्वारया गत्या प्रतिनिवृत्तः। कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति। [21]

अनसूया[7]- गच्छ, पादेसु पणमिअ णिवत्तेहि णं, जाव अहं अग्घोदअं उवकंपेमि। (गच्छ, पादयोः प्रणम्य निवर्तयैनम्, यावद् अहम् अर्घोदकमुपकल्पयामि।) [22]

प्रियंवदा- तह। (तथा) (इति निष्क्रान्ता।) [23]

अनसूया- (पदान्तरे स्खलितं निरूप्य) अहो, आवेगक्खलिदाए गईए पब्भट्टं मे अग्गहत्थादो पुप्फभाअणं। (अहो, आवेगस्खलितया गत्या प्रभ्रष्टं ममाग्रहस्तात्पुष्पभाजनम्[8]।) [24]

(इति पुष्पोच्चयं रूपयति[9]।) [25]

---

1. बं.-पाठे "ऽहम् अहम् भोः" इति।, अन्यत्र सर्वत्र का.-पाठमनुसृत्या "यमहं भोः" इति।
2. का.-पाठेष्व- "तिथिनेवे" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
3. का.-पाठे नास्तीयं रंगसूचना।, मै.-पाठेऽनसूयाया मुखे वर्तत इयमुक्तिः।, बं.-पाठेऽपि नास्तीयं रंगसूचना।, दाक्षि.-पाठे मै.-पाठवदुक्तिरियमनसूयाया मुखे वर्तते।, देव.-पाठे परिवर्तनं कृतं, तच्चासमीचीनं प्रतिभाति।
4. मै.-पाठ "आः, अतिथिं मां परिहरसी" ति।, बं.-पाठ "आः, कथमतिथिं मां परिभवसी" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
5. का.-पाठे "यतोऽतिथिमि" ति।, मै.-बं.-पाठयो "स्तपोनिधिमि" ति।, दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।, दुर्वासा तपोनिधिस्तपोधनो वा स्यात्, विशेषणेऽस्मिन् तस्याहंकार एव दरीदृश्यते। काश्मीर-पाठेऽतिथि-शब्दो वर्तते, तेनैव भारतीय-संस्कृतौ स्वीकृतोऽतिथेर्महिमा कथ्यते।
6. प्रियंवदाया उक्तिरियं का.-पाठेषु भागत्रयेणोपस्थाप्यते।, दाक्षि.-पाठे प्रलम्बेयमुक्तिरनसूयाया मुखे वर्तते।, देव.-पाठे प्रियंवदया सोक्तिरुच्यत इति परिवर्तनम्।
7. का.-पाठेषु प्रियंवदा दुर्वाससः कोपं शमयितुं, क्षमायाचनां च कर्तुं सखीमनसूयां प्रेषयति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति। किन्तु लघुपाठानुसारेण दुर्वासा कस्यां दिशि गत इति तु प्रियंवदयैव दृष्टमित्यवधेयम्।
8. का.-पाठेषु पुष्पभाजनं प्रियंवदाया हस्तात् परिभ्रष्टमिति कथ्यते।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
9. का.-पाठे "तत्पुनरप्यवचेष्यामि। (तथा करोति)" इति पठ्यते।, मै.-पाठे "पुष्पावचयमादत्त" इति।, बं.-पाठे "नाट्येन पुष्पावचयं विधत्त" इति।, दाक्षि.-पाठ "इति पुष्पोच्चयं निरूपयती" ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रियंवदा - (प्रविश्य) सहि, पकिदिवक्को सो कस्स अणुणअं पडिगेण्हदि। किं वि उण साणुक्कोसो किदो।
(सखि, प्रकृतिवक्रः[1] स कस्यानुनयं प्रतिगृह्णाति। किमपि पुनः सानुक्रोशः[2] कृतः।) [26]

अनसूया- (सस्मितम्) तस्सिं बहु एदं पि, कहेहि। (तस्मिन्बह्वेतदपि। कथय।) [27]

प्रियंवदा- जदा णिवत्तिदुं ण इच्छदि, तदा विण्णाविदो मए। भअवं, पढम त्तिं पेक्खिअ अविण्णादतव- प्पहावस्स दुहिदुजणस्स भअवदा एक्को अवराहो मरिसिदव्वोत्ति। (यदा निवर्तितुं नेच्छति, तदा विज्ञापितो[3] मया। भगवन्, प्रथम इति[4] प्रेक्ष्याविज्ञाततपःप्रभावस्य दुहितृजनस्य भगवतैकोऽपराधो मर्षितव्य इति।) [28]

अनसूया- तदो तदो। (ततस्ततः।) [29]

प्रियंवदा- तदो मे वअणं अण्णहा भविदुं णारिहदि। किंदु अहिण्णाणाभरणदंसणेण सावो णिवत्तिस्सदि त्ति मन्तअंतो सअं अंतरिहिदो। (ततो मे वचनमन्यथाभवितुं नार्हति, किन्त्वभिज्ञानाभरणदर्शनेन शापो निवर्तिष्यत इति मन्त्रयन् स्वयमन्तर्हितः।) [30]

अनसूया[5] - सक्कं दाणिं अस्ससिदुं। अत्थि तेण राएसिणा संपत्थिदेण सणामहेअंकिअं अङ्गुलीअअं सुमरणीअंति सअं पिणद्धं। तस्सिं साहीणोवाआ सउंदला भविस्सदि। (शक्यमिदानीमाश्वासितुम्। अस्ति तेन राजर्षिणा सम्प्रस्थितेन स्वनामधेयाङ्कितमङ्गुलीयकं स्मरणीयमिति स्वयं पिनद्धम्। तस्मिन् स्वाधीनोपाया शकुन्तला भविष्यति।) [31]

प्रियंवदा- सहि, एहि। देवकज्जं दाव णिव्वट्टेमो[6]। (सखि, एहि। देवकार्यं तावद् निर्वर्तयावः[7]।) [32]

(इति परिक्रामतः) [33]

प्रियंवदा- (विलोक्य) अणसूए, पेक्ख दाव, वामहत्थोवहिदवअणा आलिहिदा विअ पिअसही।
भत्तुगदाए चिंताए अत्ताणं पि ण एसा विभावेदि। किं उण आअंतुअं। (अनसूये, पश्य तावद् वामहस्तोपहितवदनालिखितेव प्रियसखी। भर्तृगतया चिन्तया आत्मानमपि नैषा विभावयति। किं पुनरागन्तुकम्[8]।) [34]

अनसूया- पिअंवदे, दुवेणं एव्व णं णो मुहे एसो वुत्तंतो चिट्ठदु। रक्खिदव्वा खु पकिदिपेलवा पिअसही।
(प्रियंवदे, द्वयोरेव ननु नौ मुख एष वृत्तान्त[9] स्तिष्ठतु[10]। रक्षितव्या खलु प्रकृतिपेलवा प्रियसखी।) [35]

प्रियंवदा- को णाम उण्होदएण णोमालिअं सिंचेदि। (को नामोष्णोदकेन[11] नवमालिकां[12] सिञ्चति। [36]

(इत्युभे निष्क्रान्ते) [37]

---

1. का.-पाठे "शरीरबद्धः कोप०" इति।, मै.-बं.-पाठयोः "शरीरीव कोप०" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठम् अनुसरति।
2. मै.-बं.-पाठयोः "सानुकम्प" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
3. मै.-बं.-पाठयोरितः पूर्वम् "पादयोः प्रणम्ये" ति।, का.-पाठमनुसृत्य दाक्षि.-देव.-पाठयोस्तद् पदद्वयं नास्ति।
4. का.-बं.-पाठयोः "प्रथमभक्तिमि" ति।, मै.-पाठे "प्रथमां भक्तिमि" ति।, दाक्षि.-पाठः का.-पाठानुसारी।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
5. का.-पाठ उक्तिरियमनसूया भणति।, मै.-बं.-पाठयोरुक्तिरियं प्रियंवदा वक्ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
6. का.-पाठे नास्त्येतादृशं वाक्यम्।, मै.-पाठे प्रथमवारं प्रक्षिप्तं, सर्वैश्चानुगामिपाठैः स्वीकृतमिदं वाक्यम्।, किन्तु बं.-पाठे वाक्येऽस्मिन् "देवकार्यं तावद् अस्याः (शकुन्तलायाः) निवर्तयाव" इति विशेषः।
7. का.-पाठे नास्तीदं वाक्यम्।, मै.-बं.-पाठयोः "निवर्तयाव" इति क्रियापदम्।, दाक्षि.-देव.-पाठयोस्तु "निर्वर्तयाव" इति भिन्नं पदम्।
8. मै.-पाठे "ऽतिथिविशेषमि" ति।, बं.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
9. का.-मै.-पाठयो "रेष शापवृत्तान्त" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ बं.-पाठमनुसरतः।
10. केवलं का.-पाठे शापवृत्तान्तस्य संगोपनं कर्तव्यमिति प्रियंवदया प्रस्तावितम्, नानसूयया।, मै.-पाठेऽनुसूया शाप-संगोपनं प्रस्तौति।, बं. -दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
11. का.-पाठे "तापोदकेने" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
12. का.-पाठेषु "नवमालिकामि" ति।, केवलं दाक्षि.-पाठे "केसरमालिकामि" ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(विष्कम्भः[1]) [38]

(ततः प्रविशति सुप्तोत्थितः शिष्यः[2]) [39]

शिष्यः - वेलोपलक्षणार्थमादिष्टोऽस्मि तत्रभवता प्रवासाद् उपावृत्तेन[3] काश्यपेन। प्रकाशं निर्गतस्तावद् अवलोकयामि कियद् अवशिष्टं रजन्या इति। (परिक्रम्यावलोक्य) हन्त प्रभातम्। तथा हि - [40]

यात्येकतो[4]ऽस्तशिखरं पतिरोषधीनामाविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः।
तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु॥ 4 - 2॥ [41]

अपि च-

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा।
इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि[5]॥ 4 - 3॥ [42]

(प्रविशत्यपटीक्षेपेण[6]) [43]

अनसूया- जइ वि णाम विसअपरम्मुहस्स वि जणस्स एदं ण विदिअं तह वि तेण रण्णा सउंदलाए अणज्जं आअरिदं। (यद्यपि नाम विषयपराङ्मुखस्यापि जनस्यैतन्न विदितं, तथापि तेन राज्ञा शकुन्तलायाम् अनार्यम्[7] आचरितम्।) [44]

शिष्यः - यावदुपस्थितां होमवेलां[8] गुरवे निवेदयामि। (इति निष्क्रान्तः) [45]

अनसूया- पडिबुद्धा वि किं करिस्सं। ण मे उइदेसु वि णिअकरणिज्जेसु हत्थपाआ पसरंदि। कामो दाणिं सकामो होदु। जेण असच्चसंधे जणे सुण्णहिअआ सही पदं कारिदा। अहवा दुव्वाससो कोवो एसो विआरेदि। अण्णहा कहं सो राएसी तारिसाणि मंतिअ एत्तिअस्स कालस्स लेहमत्तं पि ण विसज्जेदि। ता इदो अहिण्णाणं अङ्गुलीअअं से विसज्जेम। दुक्खसीले तवस्सिजणे को अब्भत्थीअदु। णं सहीगामी दोसो त्ति व्ववसिदा वि ण पारेमि, पवासपडिणिउत्तस्स तादकस्सवस्स दुस्संतपरिणीदं आवण्णसत्तं सउंदलं णिवेदिदुं। इत्थंगए अम्हेहिं किं करणिज्जं। (प्रतिबुद्धापि किं करिष्ये। न मे उचितेष्वपि निजकार्येषु हस्तपादं प्रसरति। काम इदानीं सकामो भवतु। येनासत्यसंधे जने शून्यहृदया[9] सखी पदं कारिता। अथवा दुर्वाससः कोप एष विकारयति। अन्यथा कथं स राजर्षिस्तादृशानि मन्त्रयित्वैतावत्कालस्य

---

1. का.-पाठेषु "प्रवेशक" इति।, दाक्षि.-पाठे काटयवेमेनापि प्रवेशक इत्येवाभिहितम्।, किन्तु राघवभट्टेनास्यार्थोपक्षेपकस्य नाम "विष्कम्भ" इति प्रदत्तः। ततश्च "विष्कम्भलक्षणं पूर्वोक्तम्। अयमपि शुद्धविष्कम्भः, केवलं प्राकृतेन कृतत्वाद्" (पृ. 121) इत्यपि लिखति। नन्नोचितम्। एवञ्च देव.-पाठे यत्परिवर्तनं तद्दशरूपकानुसारि।
2. का.-पाठे "काश्यपशिष्य" इति।, मै.-बं.-पाठयोः "कण्वशिष्य" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
3. का.-बं.-पाठयोः "प्रभासात् प्रतिनिवृत्तेने" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः।
4. का.-मै.-पाठयोरितः पूर्वं "कर्कन्धूनामुपरि तुहिनमि" ति, "पादन्यासं क्षितिधरगुरोरि" ति च श्लोकद्वयं वर्तते।, बं.-पाठेऽपि तच्छ्लोकद्वयं प्राप्यते, किन्तु तयोरुपस्थितिस्तृतीय-चतुर्थ-क्रमांके क्रियते।, दाक्षि.-पाठेन संक्षेपीकरणस्याशयेन तच्छ्लोकद्वयं निष्कास्यते।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
5. का.-पाठे वर्तमानं पूर्वोक्त-श्लोकद्वयं मौलिकौ प्रतिभातः। अपरौ च द्वौ ("यात्येकतोऽस्तशिखरमिति, अन्तर्हिते शशिनि०" इति च) श्लोकौ प्रक्षितावेव, पुनरुक्तिदोषग्रस्तत्वाद्।, दाक्षि.-देव.-पाठयोस्तु तयोरेव प्रक्षिप्तश्लोकयोः स्वीकारः क्रियते।
6. केवलं दाक्षि.-पाठे "पटाक्षेपेणे" ति। (पटाक्षेपेण यवनिकापनोदनेनेति काटयवेमः। पृ. 78), मै.-बं.-देव.-पाठाश्च का.-पाठमनुसरन्ति।
7. केवलं दाक्षि.-पाठे "ऽन्याय्यमि" ति।, अन्यत्र सर्वत्रा "नार्यमि" त्येव।
8. का.-पाठ "उपस्थितां वेलामि" त्येव।, बं.-दाक्षि.देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
9. का.-पाठे "स्निग्धहृदये" ति।, मै.-बं.-पाठयोः "शुद्धहृदये" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

लेखमात्रमपि[1] न विसृजति। तदितोऽभिज्ञानम् अङ्गुलीयकं तस्य विसृजावः। दुखःशीले[2] तपस्विजने कोऽभ्यर्थ्यताम्। ननु सखीगामी दोषः इति व्यवसितापि न पारयामि, प्रवासप्रतिनिवृत्तस्य तातकाश्यपस्य दुष्यन्तपरिणीताम् आपन्नसत्त्वां शकुन्तलां निवेदयितुम्। इत्थंगतेऽस्माभिः किं करणीयम्।) [46]

(प्रविश्य) [47]

प्रियंवदा - (सहर्षम्) सखि, तुवर। सउंदलाए पत्थाणकोदुअं णिव्वत्तिदुं। (सखि, त्वरस्व शकुन्तलायाः प्रस्थानकौतुक[3] निर्वर्तयितुम्।) [48]

अनसूया - सहि, कहं एदं। (सखि, कथमेतत्।) [49]

प्रियंवदा - सुणाहि। दाणिं सुहसइद्पुच्छिआ सउंदलासआसं गदम्हि। तदो जाव एणं लज्जावणदमुहिं परिस्सजिअ तादकस्सवेण एव्वं अहिणंदिदं- दिट्ठिआ धूमाउलिददिट्ठिणो वि जअमाणस्स पाअए एव्व आहुदी पडिदा। वच्छे, सुसिस्सपरिदिण्णा विज्जा विअ असोअणिज्जा संवुत्ता। अज्ज एव्व इसिरक्खिदं तुमं भत्तुणो सआसं विसज्जेमि त्ति। (शृणु, इदानीं सुखशयनपृच्छिका शकुन्तलासकाशं गतास्मि। ततो यावदेनां लज्जावनतमुखीं परिष्वज्य तातकाश्यपेनैवमभिनन्दितम् दिष्ट्या धूमाकुलितदृष्टेरपि यजमानस्य पावक[4] एवाहुतिः पतिता। वत्से, सुशिष्यपरिदत्ता विद्येवाऽशोचनीया संवृत्ता। अद्यैव ऋषिरक्षिता[5] त्वां, भर्तुः सकाशं विसर्जयामीति।) [50]

अनसूया- अह केण सूइदो तादकस्सवस्स वुत्तंतो। (अथ केन सूचितस्तातकाश्यपस्य[6] वृत्तान्तः।) [51]

प्रियंवदा - अग्गिसरणं पविट्ठस्स सरीरं विणा छन्दोमईए वाणिआए। (अग्निशरणं प्रविष्टस्य शरीरं विना छन्दोमय्या वाण्या।) [52]

(संस्कृतमाश्रित्य) [53]

दुष्यन्तेनाहितं तेजो[7] दधानां भूतये भुवः।
अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्निगर्भां शमीमिव॥ 4 - 4॥ [54]

अनसूया - (प्रियंवदामाश्लिष्य) सहि, पिअं मे। किंदु अज्ज एव्व सउंदला णीअदित्ति उक्कण्ठासाधारणं परितोसं अणुहोमि। (सखि, प्रियं मे, किंत्वद्यैव शकुन्तला नीयत इत्युत्कण्ठासाधारणं परितोषम् अनुभवामि।) [55]

प्रियंवदा- सखि, आवां दाव उक्कण्ठं विणोदइस्सामो। सा तवस्सिणी णिव्वुदा होदु। (सखि, आवां तावदुत्कण्ठां विनोदयिष्यावः। सा तपस्विनी निर्वृता भवतु।) [56]

अनसूया - तेण हि एदस्सिं चूदसाहावलम्बिदे णारिएरसमुग्गए एतण्णिमित्तं एव्व कालंतरक्खमा णिक्खित्ता मए केसरमालिआ। ता इमं हत्थसंणिहिदं करेहि। जाव अहंपि से मिअलोअणं तित्थमित्तिअं दुव्वाकिसलअणित्ति मङ्गलसमालम्भणाणि

---

1. मै.-पाठे "वार्तामात्रकमि" ति।, बं.-पाठे "वाङ्-मात्रकमि" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
2. का.-पाठे "ऽथवा दुःखशील" इति।, मै.-पाठे "ऽथवा नियमदुःखशील" इति।, बं.-पाठे "ऽथवा निर्दुःख-शीतल" इति।, दाक्षि.-पाठे "ऽथवा दुःखशीलान्नि" ति।, देव.-पाठे संक्षिप्ततर-पाठोपस्थापनाया "ऽथवे" ति निष्कास्यते।
3. का.-मै.-पाठयोः "प्रस्थानकौतुकानी" ति।, बं.-पाठे "प्रस्थानकौतुहलानी" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठम् अनुसरति।
4. मै.-पाठे "हुतवहस्यैव मुख" इति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।
5. का.-पाठे "ष्वृषिपरिगृहीतामि" ति।, दाक्षि.-पाठे "राजर्षिपरिगृहीतामि" ति।, दे.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
6. मै.-बं.-पाठयोः "तातकण्वस्ये" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
7. का.-पाठे "दुष्यन्तेनाहितं वीर्यमि" ति।, मै.-पाठे "दुष्मन्तेनाहितं तेज" इति।, बं.-पाठे "दुःषन्तेनाहितं तेज" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

विरएमि। (तेन ह्येतस्मिंश्चूतशाखावलम्बिते नालिकेरसमुद्गक एतन्निमित्तमेव कालान्तरक्षमा निक्षिप्ता मया केसरमालिका[1]। तदिमां हस्तसन्निहिता[2] कुरु। यावदहमपि तस्यै मृगरोचना[3] तीर्थमृत्तिकां दूर्वाकिसलयानीति मंगलसमालम्भनानि विरचयामि।) [57]

प्रियंवदा- तह करीअदु। (तथा क्रियताम्।) [58]

(अनुसूया निष्क्रान्ता। प्रियंवदा नाट्येन सुमनो गृह्णाति।) [59]

(नेपथ्ये) [60]

गौतमि, आदिश्यतां शार्ङ्गरवमिश्राः शकुन्तला-नयनाय। [61]

प्रियंवदा - (कर्णं दत्त्वा) अनसूए, तुवरसु, एदे खु हत्थिणाउरगामिणो इसीओ सद्दावीअंति। (अनसूये, एते खलु हस्तिनापुरगामिनः ऋषयः आकार्यन्ते।) [62]

(प्रविश्य समालम्भनहस्ता) [63]

अनसूया - सहि, एहि गच्छम्ह। (सखि, एहि गच्छावः।) (इति परिक्रामतः) [64]

प्रियंवदा[4] - (विलोक्य) एसा सुज्जोदए सिहामज्जिदा पडिच्छिदणीवारहत्थाहिं सोत्थिवाअणकाहिं तावसीहिं अहिणंदीअमाणा सउंदला चिट्ठइ। उवसप्पम्ह णं। (इत्युपसर्पतः) (एषा सूर्योदय एव शिखामज्जिता प्रतिहतनीवारहस्ताभिः स्वस्तिवाचनिकाभिः तापसीभिरभिनन्द्यमाना शकुन्तला तिष्ठति। उपसर्पाव एनाम्।) [65]

(ततः प्रविशति तथोद्दिष्टव्यापाराऽऽसनस्था शकुन्तला[5]) [66]

तापसीनामन्यतमा - (शकुन्तलां प्रति) जादे, भत्तुणो बहुमाणसुअअं महादेईसद्दं लहेहि। (जाते, भर्तुर्बहुमानसूचकं महादेवीशब्दम् लभस्व[6]।) [67]

द्वितीया - वच्छे, वीरप्पसविणी होहि। (वत्से, वीरप्रसविनी भव।) [68]

तृतीया- वच्छे, भत्तुणो बहुमदा होहि। (वत्से, भर्तुर्बहुमता भव[7]।) [69]

(इत्याशिषो दत्त्वा गौतमीवर्जं निष्क्रान्ताः।) [70]

सख्यौ - (उपसृत्य) सहि, सुहमज्जणं दे होदु। (सखि, सुखमज्जनं ते भवतु।) [71]

शकुन्तला- साअयं मे सहीणं। इदो णिसीदह। (स्वागतं मे सख्योः। इतो निषीदतम्। [72]

उभे - (मङ्गलपात्राण्यादायो[8]पविश्य) हला, सज्जा होहि। जाव मङ्गलसमालम्भणं विरएम।

---

1. का.-पाठे "सकेसरगुणे" ति।, मै.-पाठे "केसरचूर्णा" इति।, बं.-पाठे "केसरगुण्डा" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति। (आहार्याभिनये भेदः।)
2. मै.-बं.-पाठयो "र्नलिनीपत्रसंगतान्नि" ति। (आहार्याभिनये भेदः), दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
3. का.-पाठे "मृगरोचनामि" ति।, मै.-बं.-दाक्षि.-पाठेषु "गोरोचनामि" ति।, देव.-पाठः का.-पाठमनुसरति।
4. इत (65 उक्ति-क्रमांकाद्) आरभ्य, 70 उक्ति-क्रमांकं यावत् सर्वा उक्तयः प्रक्षिप्ताः स्युः। यतो हि- तापसीभिर्दीयमानान्याशीर्वचनानि पितुः कण्वस्य मुखादपि दीयन्ते। अतः पुनरुक्तिदोषात्, तापसीनां मुखे तेषां स्थानं न तथोचितं, यथा पितृ-मुखे तेषामौचित्यं स्यात्। (तापसीनां प्रवेशेन नयनरम्यं दृश्यमाक्रियते)
5. शकुन्तलाया उपस्थितिः सदा प्रियंवदाऽनसूयाभ्यां सहैव भवतीति पर्यालोच्य, तापसीवृन्देन सहात्र तस्याः प्रवेशो न सुसंगतः प्रतिभाति।
6. मै.-पाठेऽस्याशीर्वचनस्योच्चारणं गौतमी-मुखाद् भवति।, मै.-बं.-पाठयोश्च "देवीशब्दमि" त्येव।
7. का.-पाठेषु वाक्यमिदं नास्ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
8. का.-पाठेषु नास्त्येतादृशी रंगसूचना।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति। लघुपाठयोराहार्याभिनये भेदः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(हला, सज्जा भव[1]। यावन्मङ्गल-समालम्भनं विरचयावः। [73]

शकुन्तला - इदं पि बहु मन्तव्वं। दुल्लहं दाणिं मे सहीमण्डणं भविस्सदि त्ति। (इदमपि बहु मन्तव्यम्। दुर्लभमिदानीं मे सखीमण्डनं भविष्यति।) [74]

(इति बाष्पं विसृजति[2]) [75]

उभे - सहि, उइअं ण दे मङ्गलकाले रोइदुं। (सखि, उचितं न ते मङ्गलकाले रोदितुम्।) [76]

(इत्यश्रूणि प्रमृज्य नाट्येन प्रसाधयतः) [77]

प्रियंवदा - आहरणोइदं रूवं अस्समसुलहेहिं पसाहणेहिं विप्पआरीअदि। (आभरणोचितं रूपम्, आश्रमसुलभैः प्रसाधनैर्विप्रकार्यते।) [78]

(प्रविश्योपायनहस्तौ[3]) [79]

ऋषिकुमारकौ- इदमलङ्करणम्। अलङ्क्रियतामत्रभवती। [80] (सर्वा विलोक्य विस्मिताः) [81]

गौतमी- वच्छ णारअ, कुदो एदं। (वत्स नारद[4], कुत एतत्।) [82]

प्रथमः- तातकाश्यप-प्रभावात्[5]। [83]

गौतमी- किं माणसी सिद्धी। (किं मानसी सिद्धिः[6]।) [84]

द्वितीयः- न खलु, श्रूयताम्। तत्रभवता वयमाज्ञप्ताः शकुन्तलाहेतोर्वनस्पतिभ्यः कुसुमान्याहरतेति।

तत इदानीं-[85]

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं
निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुलभो[7] लाक्षारसः केनचित्।
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै[8] -
र्दत्तान्याभरणानि तत्किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः[9]।। 4 - 5।। [86]

प्रियंवदा - (शकुन्तलां विलोक्य) हला, इमाए अब्भुववत्तीए सूइआ दे भत्तुणो गेहे अणुहोदव्वा राअलच्छित्ति। (हला,

---

1. का.-पाठेषु "शकुन्तले, ऋजुकगता / ऋजुका / ऋज्वी" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
2. का.-पाठे "रुदत्युत्तिष्ठती" ति।, दाक्षि.-पाठे "बाष्पं विकिरती" ति।, बं.-देव.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः।
3. का.-पाठ "उपायनहस्तावि" ति।, मै.-पाठ "आभरणहस्तावि" ति।, बं.-पाठ "आभरणहस्त" इति। (ऋषि-कुमार एक एव प्रविशति बंगीय-रंगम्), दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
4. का.-पाठेषु "हारीत" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
5. का.-पाठे "तातकाश्यप-प्रसादादि" ति।, मै.-पाठे "तातकण्वस्य प्रभावादि" ति।, बं.-पाठे "तातकण्व-प्रभावादि" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठयोः संमिश्रणं कृत्वा देव.-पाठे "तातकाश्यप-प्रभावादि" ति।
6. का.-पाठेषु "सिद्धिरि" ति।, दाक्षि.-पाठे "सृष्टिरि" ति।, देव.-पाठः का.-पाठमनुसरति।
7. केवलं मै.-पाठे "०परागसुभग" इति।, अन्यत्र सर्वत्र "०पभोगसुभग" इति।
8. का.-पाठ "आपर्वमूलोत्थितैरि" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
9. का.-मै.-बं.-पाठेषु "०छायाप्रतिस्पर्धिभिरि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अनयाभ्युपपत्त्या सूचिता[1] ते भर्तुगेहेऽनुभवितव्या राजलक्ष्मीरिति[2]।) [87]

(शकुन्तला व्रीडां रूपयति[3]) [88]

प्रथमः- गौतम, एह्येहि। अभिषेकोतीर्णाय काश्यपाय वनस्पतिसेवां निवेदयावः। [89]

द्वितीयः- तथा। (इति निष्क्रान्तौ[4]।) [90]

सख्यौ[5] - अए, अणुवजुत्तभूसणो अअं जणो। चित्तकम्मपरिअएण अंगेसु दे आहरणविणिओअं करेम्ह।

(अये, अनुपयुक्तभूषणोऽयं जनः। चित्रकर्मपरिचयेनाऽङ्गेषु ते आभरणविनियोगं कुर्वः[6]।) [91]

शकुन्तला- जाणे वो णेउणं। (जाने वां नैपुणम्।) [92]

(उभे नाट्येनालङ्कुरुतः[7]।) [93]

(ततः प्रविशति स्नानोत्तीर्णः काश्यपः) [94]

काश्यपः-

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया[8]
कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुष[9] श्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लब्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं न[10] तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः॥ 4 - 6॥ [95]

(इति परिक्रामति) [96]

सख्यौ - हला सउंदले, अवसिदमण्डणासि। परिधेहि संपदं खोमजुउलं। (हला शकुन्तले, अवसितमण्डनासि। परिधत्स्व साम्प्रतं क्षौमयुगलम्[11]।) [97]

(शकुन्तलोत्थाय परिधत्ते[12]) [98]

---

1. का.-पाठे "हले, अद्भुतसम्पत्तिस्सूचिते" ति।, बं.-दाक्षि.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः।
2. का.-पाठे प्रियंवदाया वाक्यमिदं श्रुत्वा शकुन्तला भणति- "कोटरसम्भवेव मधुकरी पौष्करमुखम् अभिलषसी" ति।, मै.-बं.-पाठयोः 4-5 श्लोकानन्तरं प्रियंवदा भणति- "कोटरसम्भवापि मधुकरी पौष्करमधु एवाभिलषती" ति। ततश्च गौतमी-मुखे "जाते, अनयाभ्युपपत्या०" इति। (काश्मीर-पाठ एवात्र समीचीन इति प्रतीयते), देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसृत्य, "कोटरसम्भवा मधुकरी०" इत्यादि वाक्यं न स्वीकरोति, संक्षेपीकरणस्याशयात्।
3. का.-मै.-पाठयो "लज्जां निरूपयती" ति।, बं.-पाठे "लज्जां नाटयती" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
4. बं.-पाठ एक एव शिष्यो निष्क्रामति।
5. का.-पाठे प्रियंवदा भणत्युक्तिमिमाम्।, मै.-बं.-दाक्षि.-पाठेष्वनु(न)सूया भणति।, देव.-पाठे परिवर्तनम्।
6. का.-मै.-पाठयोर्वाक्यमिदं शिष्यनिष्क्रमणात्पूर्वं वर्तते।, बं.-पाठे तदेव शिष्यनिष्क्रमणानन्तरं स्थापितम्।, दाक्षि.-देव.-पाठौ बं.-पाठमनुसरतः।
7. का.-पाठ "आभरणम् आमुञ्चत" इति।, मै.-बं.-पाठयो "रलङ्कारमायुञ्जाते सख्यावि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
8. बं.-पाठे "स्पृष्टं समुत्कण्ठये" ति।, मै.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।
9. का.-पाठे "कण्ठस्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषमि" ति।, मै.-बं.-पाठयो "रन्तर्बाष्पभरोपरोधि गदितमि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
10. मै.-पाठे "कथं न्वि" ति।, बं.-दाक्षि.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः।, देव.-पाठः का.-पाठमनुसरति।
11. का.-पाठे "क्षौमनिर्मोकमि" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
12. का.-पाठे "शकुन्तला लतागृहान् निर्गत्य परिधाय पुनः प्रविश्योपविष्टे" ति।, मै.-पाठे "शकुन्तलोत्थाय परिधाय च पुनस्तथैवास्त" इति।, बं.-पाठे "शकुन्तलोत्थाय नाट्येन परिधत्त" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति। (वेशभूषाविषये रंगसज्जाविषये च भेदः परिलक्ष्यते।)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

गौतमी - जादे, एसो दे आणंदपरिवाहिणा चक्खुणा परिस्सजंतो विअ गुरू उवट्ठिदो। आआरं दाव पडिवज्जस्स। (जाते, एषः त आनन्दपरिवाहिणा चक्षुषा परिष्वजमान इव गुरुरुपस्थितः। आचारं तावत् प्रतिपद्यस्व।) [99]

शकुन्तला- (सव्रीडम्) ताद, वन्दामि। (तात वन्दे।) [100]

काश्यपः- वत्से,

ययातिरेव शर्मिष्ठा भर्तु[1]र्बहुमता भव।
सुतं[2] त्वमपि सम्राजं सेव पूरुमवाप्नुहि॥ 4 - 7॥ [101]

गौतमी - भअवं, वरो खु एसो, ण आसिसा। (भगवन्[3], वरः खल्वेषः, नाशिषः[4]।) [102]

काश्यपः- वत्से, इतः सद्यो हुतानग्नीन् प्रदक्षिणीकुरुष्व। [103]

(सर्वे परिक्रामन्ति) [104]

काश्यपः- (ऋक्छन्दसाऽऽशास्ते[5]) [105]

अमी[6] वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः[7]
समिद्वन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः[8]।
अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धै-
र्वैतानास्त्वां वह्नयः पावयन्तु[9]॥ 4 - 8॥ [106]

प्रतिष्ठस्वेदानीम्। (सदृष्टिक्षेपम्) क्व ते शार्ङ्गरवमिश्राः[10]। [107]

(प्रविश्य) [108]

शिष्यः- भगवन्, इमे स्मः[11]।, [109]

काश्यपः- भगिन्यास्ते मार्गमादेशय। [110]

शार्ङ्गरवः- इत इतो भवती। [111]

(सर्वे परिक्रामन्ति) [112]

---

1. का.-पाठेषु "पत्युरि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
2. का.-पाठेषु "पुत्रमि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
3. केवलं बं.-पाठे "जात" इति शकुन्तलामुद्दिश्योक्तिः।
4. केवलं दाक्षि.-पाठे "वरौ खल्वेतौ, नाशिषावि" ति।
5. का.-पाठेषु नास्त्येतादृशी रंगसूचना।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
6. श्लोकोऽयं "वातोर्मी-शालिन्योर्मिश्रणनादुपजातिभेद इति केचिदि" ति किशोरकेलिटीकायाम्। (पृ. 277)
7. मै.-पाठे "क्षिप्तधूमा" इति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।
8. बं.-पाठे "प्रान्तविस्तीर्णदर्भा" इति।, मै.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।
9. का.-पाठेषु "पालयन्त्वि" ति।, दाक्षि.-पाठेऽपि तथैव।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
10. मै.-बं.-पाठयोः "शार्ङ्गरव-शारद्वत-मिश्रा" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
11. का.-मै.-पाठयोः "प्रविश्य समं त्रय" इति।, बं.-पाठे "भगवन्, इमौ स्व" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठयो "रिमे स्म" इति। (किन्तु रंगभूमिं द्वौ शिष्यावेव प्रविशतः।)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

काश्यपः- भो भोः सन्निहितास्तपोवनतरवः[1], [113]

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु[2] या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये[3] यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।। 4 - 9।। [114]

(कोकिलरवं सूचयित्वा[4]) [115]

अनुमतगमना[5] शकुन्तला[6] तरुभिरियं वनवासबन्धुभिः।
परभृतविरुतं कलं यथा[7] प्रतिवचनीकृतम् एभिरीदृशम्[8]।। 4 - 10।। [116]

(आकाशे) [117]

रम्यान्तरः कमलिनीहरितैः सरोभि[9]श्छायाद्रुमैर्नियमितार्कमयूखतापः[10]।
भूयात्कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्याः शान्तानुकूलपवनश्च[11] शिवश्च पन्थाः।। 4 - 11।। [118]

(सर्वे सविस्मयमाकर्णयन्ति) [119]

गौतमी - जादे,णादिजणसिणिद्धाहिं अणुण्णादगमणासि तवोवणदेवदाहिं। पणम भअवदीणं। (जाते, ज्ञातिजनस्निग्धाभिरनुज्ञातगमनासि तपोवनदेवताभिः। प्रणम भगवतीः।) [120]

शकुन्तला -(सप्रणामं परिक्रम्य,जनान्तिकम्)हला पिअंवदे, णं अज्जउत्तदंसणुस्सुआए वि अस्समपदं परिच्चअन्तीए दुक्खेण मे चलणा पुरदो पवट्टंति। (हला प्रियंवदे, नन्वार्यपुत्रदर्शनोत्सुकाया अपि आश्रमपदं परित्यजन्त्या दुःखेन मे चरणौ पुरतः प्रवर्तेते।) [121]

---

1. का.-पाठे "वत्से शकुन्तले, विज्ञाप्यन्ताम् सन्निहितदेवतास्तपोवनतरव" इति।, मै.-बं.-पाठयोस्तु "भो भोः सन्निहितवनदेवतास्तपोवनतरव-,शृण्वन्तु भवन्त" इति।, दाक्षि.-पाठे "अहो, सन्निहितदेवतास्तपोवनतरव" इति।, देव.-पाठे देवता-शब्दं निष्कास्य संक्षेपीकरणं क्रियते। तच्च दोषावहं भवति।
2. का.-पाठेषु "०स्वसिक्तेष्वि" ति। देव.- पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
3. का.-मै.-पाठयोः "कुसुमप्रबोधसमय" इति।, बं.-पाठे "कुसुमप्रवृत्तिसमय" इति।, दाक्षि.-पाठे "प्रसवप्रसूति-समय" इति।, देव.-पाठः परिवर्तनं क्रियते।
4. का.-पाठे नास्त्येतादृशी रंगसूचना।, मै.-बं.-पाठयोः "कोकिलशब्दं सूचयित्वे" ति।, दाक्षि.-पाठे "कोकिलस्वनं सूचयित्वे" ति।, देव. -पाठे पर्यायशब्दप्रयोगः क्रियते।
5. का.-पाठे नेपथ्यतो "रम्यान्तर०" इति श्लोकानन्तरं शार्ङ्गरवस्य मुखाच्छ्लोकोऽयमुच्चार्यते।, मै.-बं.-पाठयोः शार्ङ्गरवेण प्रथममयं श्लोक उच्चार्यते, ततो नेपथ्योक्तिरूपेण "रम्यान्तर०" इति।, दाक्षि.-पाठे "ऽनुमतगमने" -ति श्लोकः काश्यपमुखादेवोच्चार्यते। तत "आकाश" इति रंगसूचनापुरस्सरं "रम्यान्तर०" इति गीयते।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
6. मै.-बं.-पाठयोः "शकुन्तला से" ति। (पुष्पिताग्रा + अपरवक्त्रयोः संमिश्रणं क्रियते।), दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः। (अपरवक्त्र-छन्दसि श्लोकः परिवर्त्यते।)
7. का.-पाठे "परभृतरसितं प्रियं यदे" ति।, मै.-पाठे "परभृतविरुतं कलं यद्ये" ति।, बं.-पाठे "परभृतविरुतं कलं यदे" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
8. का.-पाठे "स्वेभिरात्मन" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
9. का.-पाठे "कमलकीर्णजलैस्सरोभिरि" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
10. मै.-बं.-पाठयो "मरीचिताप" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
11. केवलं मै.-पाठे "शान्तोऽनुकूलपवनश्चे" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रियंवदा - ण केवलं तवोवणविरहकादरा सही एव्व। तुए उवट्ठिदविओअस्स तवोवणस्स वि दाव समवत्था दीसइ। (न केवलं तपोवनविरहकातरा[1] सख्येव। त्वयोपस्थितवियोगस्य तपोवनस्यापि तावत् समवस्था दृश्यते।) [122]

उग्गलि अदब्भकवला मिआ परिच्चत्तणच्चणा मोरा।
ओलरि अपण्डुपत्ता मुअन्ति अस्सू विअ लदाओ[2]॥ 4 - 12॥ [123]
उद्गलितदर्भकवला मृग्यः, परित्यक्तनर्तना मयूराः।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः[3]॥ 4 - 12॥

शकुन्तला- (स्मृत्वा) ताद, लदाबहिणिअं वणज्जोसिणिं दाव आमंतइस्सं। (तात, लताभगिनीं वनज्योत्स्नां[4] तावदामन्त्रयिष्ये।) [124]

काश्यपः- अवैमि ते तस्यां सोदर्यस्नेहम्। इयं तावद्दक्षिणेन। [125]

शकुन्तला -(लतामुपेत्य) वणजोसिणि, चूदसंगदा वि मं पच्चालिङ्ग इतो गदाहिं साहाबाहाहिं। अज्ज प्पहुदि दूरपरिवत्तिणी भविस्सं। (वनज्योत्स्ने, चूतसङ्गतापि मां प्रत्यालिङ्ग, इतो गताभिः शाखाबाहा(बाहु)भिः। अद्य प्रभृति दूरपरिवर्तिनी भविष्यामि।) [126]

काश्यपः-

सङ्कल्पितं प्रथममेव मया तवार्थे भर्तारमात्मसदृशं सुकृतै[5]र्गता त्वम्।
चूतेन संश्रितवती नवमालिकेयम् अस्यामहं त्वयि च सम्प्रति वीतचिन्तः[6]॥ 4 - 13॥ [127]

इतः पन्थानं प्रतिपद्यस्व। [128]

शकुन्तला- (सख्यौ प्रति) हला, एसा दुवेणं वो हत्थे णिक्खेवो। (हला, एषा द्वयोर्युवयोर्हस्ते निक्षेपः।) [129]

सख्यौ- अअं जणो कस्स हत्थे समप्पिदो। (अयं जनः कस्य हस्ते समर्पितः[7]।) [130]

(इति बाष्पं विहरतः।) [131]

काश्यपः- अनुसूये[8], अलं रुदित्वा। ननु भवतीभ्यामेव स्थिरीकर्तव्या शकुन्तला। [132]

(सर्वे परिक्रामन्ति) [133]

शकुन्तला- ताद, एसा उडजपज्जंतचारिणी गब्भमन्थरा मिअवहू जदा अणघप्पसवा होइ तदा मे कंपि पिअणिवेदइत्तअं विसज्जइस्सह। (तात, एषोटजपर्यन्तचारिणी गर्भमन्थरा मृगवधूर्यदाऽनघप्रसवा[9] भवति, तदा मह्यं कमपि प्रियनिवेदयितृकं विसर्जयिष्यथ।) [134]

---

1. का.-पाठे "विरहपर्युत्सुकास्सख्य एवे" ति।, मै.-बं.-पाठयो "स्तपोवनविरहकातरा त्वमेवे" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
2. अस्मिन् पद्ये पथ्यार्या गाथा वर्तते।
3. का.-पाठे "मृगी, परिशान्तनर्तना मयूरी, धुन्वन्त्यङ्गानीव लता" इति।, मै.-बं.-पाठयोः "मृगी, परित्यक्त-नर्तना मयूरी, मुञ्चन्त्यङ्गानीव वनलता" इति।, दाक्षि.-पाठे "मृगाः, मयूराः, निपतत्पाण्डुपत्राः, मुञ्चन्त्यश्रुणीव लता" इति।
4. का.-मै.-बं.-पाठेष्वितः परं माधवीलतामधिकृत्य तिस्र उक्तयो वर्तन्ते।, दाक्षि.देव.-पाठयोर्माधवीलता नास्ति, किन्तु तस्याः स्थाने वनज्योत्स्ना वर्तते।
5. का.-मै.-पाठयोः "सुकृतैरि" ति।, बं.-पाठे "स्वगुणैरि" ति।, दाक्षि.-देव.पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
6. का.-पाठे "ऽस्यास्तु सम्प्रति वरं त्वयि वीतचिन्तः, कान्तं समीपसहकारमहं करिष्य" इति।, मै.-बं.-पाठयोः "०समीपसहकारमिमं०" इति। (त्रिषु पाठेषु माधवीलतामुद्दिश्य वचनमिदम्), देव.-पाठो दाक्षि.-पाठम् अनुसरति।
7. का.-पाठे "कस्य संदिष्ट" इति।, मै.-पाठे "कस्य हस्ते समर्पयितव्य" इति।, बं.-पाठे "कस्मिन्निदानीं समर्पित" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
8. मै.-बं.-पाठयो "रनसूये, प्रियंवद" इति नामद्वयम्।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
9. का.-पाठ "आसन्नप्रसवे" ति।, मै.-बं.-पाठयोः "सुखप्रसवे" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

काश्यपः - नेदं विस्मरिष्यामः। [135]

शकुन्तला- (गतिभङ्गं रूपयित्वा) को णु खु एसो णिवसणे मे सज्जइ। (को नु खल्वेष निवसने मे सज्जते[1]।) [136]

(इति परावर्तते) [137]

काश्यपः- वत्से,

यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे।
श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति सोऽयं न पुत्रकृतकः[2] पदवीं मृगस्ते।। 4 - 14।। [138]

शकुन्तला- वच्छ, किं सहवासपरिच्चाइणिं मं अणुसरसि। अचिरप्पसूदाए जणणीए विणा वड्ढिदो एव्व। दाणिं पि मए विरहिदं तुमं तादो चिंतइस्सदि। णिवत्तेहि दाव। (वत्स, किं सहवासपरित्यागिनीं मामनुसरसि[3]। अचिरप्रसूतया जनन्या विना वर्धित एव। इदानीमपि मया विरहितं त्वां तातश्चिन्तयिष्यति। निवर्तस्व तावत्।) [139]

(इति रुदती प्रस्थिता) [140]

काश्यपः -

उत्पक्ष्मणोर्नयनयोरुपरुद्धवृत्तिं बाष्पं कुरु स्थिरतया विहतानुबन्धम्[4]।
अस्मिन्नलक्षितनतोन्नतभूमिभागे मार्गे पदानि खलु ते विषमीभवन्ति।। 4 - 15।। [141]

शार्ङ्गरवः - भगवन्, उदकान्तं स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्य इति श्रूयते। तदिदं सरस्तीरम्। अत्र संविश्य नः प्रतिगन्तुमर्हसि। [142]

काश्यपः- तेन हीमां क्षीरवृक्षच्छायामाश्रयामः। [143]

(सर्वे परिक्रम्य स्थिताः[5]) [144]

काश्यपः- (आत्मगतम्[6]) किं नु खलु तत्रभवतो दुष्यन्तस्य युक्तरूपमस्माभिः सन्देष्टव्यम्।

(इति चिन्तयति) [145]

शकुन्तला[7]- (जनान्तिकम्) हला, पेक्ख। णलिणीपत्तंतरिदं वि सहअरं अदेक्खंती आदुरा चक्कवाई आरडदि। दुक्करं अहं करेमि त्ति। (हला, पश्य। नलिनीपत्रान्तरितमपि सहचरम् अपश्यन्त्यातुरा चक्रवाक्यारौति। दुष्करम् अहं करोमीति।) [146]

अनसूया - सहि, मां एव्वं मन्तेहि। (सखि, मैवं मन्त्रय।) [147]

---

1. का.-पाठे "मात्रा क्रान्त इव पुनः पुनर्वसनस्यान्तं गृह्णाती" ति।, मै.-बं.-पाठयोः "०पदाक्रान्त इव०" इति।, दाक्षि.-पाठे "निवसनपटे मे सज्जती" ति।, देव.-पाठे संक्षेपीकरणाय परिवर्तनं क्रियते।
2. का.-पाठे "पुत्रककृत" इति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
3. का.-पाठे "कैतवस्नेहामन्वेषसी" ति।, मै.-बं.-पाठयो "रनुबध्नासी" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठानुसारी।
4. का.-पाठे "स्थिरतरं विहितानुबन्धमि" ति।, मै.-बं.-पाठयोः "स्थिरतया शिथिलानुबन्धमि" ति।, दाक्षि.-पाठे "स्थिरतया विरतानुबन्धमि" ति।, देव.-पाठे मै.-का.-पाठयोः संमिश्रणं दृश्यते।
5. का.-पाठे काश्यप उपविशति, सर्वे चान्ये तिष्ठन्ति।, मै.-पाठे सर्वे तथा स्थिता इति।, बं.-पाठे "सर्वे तथा नाटयन्ती" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः।
6. का.-मै.-पाठयो "रपवार्ये" ति।, बं.-पाठे नास्ति कापि रंगसूचना।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
7. का.-पाठेऽत्र शकुन्तलाया उक्तेः पूर्वम्-अनसूयाया मुखे "पद्मिनीपत्रान्तरिताम्०" इति गाथा वर्तते।, मै.-बं.-पाठयोरपि सास्ति।, किन्तु दाक्षि.-देव.-पाठाभ्याम् सा निष्कासिता, संक्षेपीकरणस्याशयात्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

एसा वि पिएण विणा गमेइ रअणिं विसाअदीहअरं।
गरुअं पि विरहदुक्खं आसाबन्धो सहावेदि॥ 4 - 16॥ [148]
(एषापि प्रियेण विना गमयति रजनीं विषाददीर्घतराम्[1]।
गुर्वपि विरहदुःखम् आशाबन्धः साहयति॥ 4 - 16॥)

काश्यपः- शार्ङ्गरव, इति त्वया मद्वचनात्स राजा शकुन्तलां पुरस्कृत्य वक्तव्यः। [149]

शार्ङ्गरवः- आज्ञापयतु भगवान्। [150]

काश्यपः -

अस्मान्साधु विचिन्त्य संयमधनान् उच्चैः कुलं चात्मन-
स्त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं[2] च ताम्।
सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया
भाग्यायत्तम् अतः परं न खलु तद्वाच्यं वधूबन्धुभिः[3]॥ 4 - 17॥ [151]

शार्ङ्गरवः- गृहीतः सन्देशः। [152]

काश्यपः- वत्से, त्वमिदानीमनुशासनीयासि। वनौकसोऽपि सन्तो लोकिकज्ञा[4] वयम्। [153]

शार्ङ्गरवः- न खलु धीमताम् कश्चिद् अविषयो नाम। [154]

काश्यपः- सा त्वमितः पतिकुलं प्राप्य। [155]

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी[5]
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः॥ 4 - 18॥ [156]

कथं वा गौतमी मन्यते। [157]

गौतमी- एत्तिओ वहूजणस्स उवदेसो। जादे, एदं खु सव्वं ओधारेहि। (एतावान्वधूजनस्योपदेशः। जाते, एतत्खलु सर्वमवधारय[6]।) [158]

काश्यपः- वत्से, परिष्वजस्व मां सखीजनं च। [159]

शकुन्तला -ताद, इदो एव्व किं पिअंवदामिस्साओ सहीओ णिवत्तिस्संदि। (तात, इत एव किं प्रियंवदामिश्राः सख्यः निवर्तिष्यन्ते।) [160]

काश्यपः- वत्से, इमे अपि प्रदेये। न युक्तमनयोस्तत्र गन्तुम्। त्वया सह गौतमी यास्यति। [161]

शकुन्तला -(पितरमाश्लिष्य) कहं दाणिं तादस्स अङ्कादो परिब्भट्ठा मलअतरुन्मूलिआ चंदणलदा विअ देसंतरे जीविअं

---

1. का.-मै.-पाठयो "विंसूरणादीर्घामि" ति।, बं.-पाठात् गाथैषा निष्कासिता, संक्षेपकरणाय।, दाक्षि.-पाठे "गमयति दीर्घतरामि" ति।, देव. -पाठे सरलीकरणस्याशयात् परिवर्तनं क्रियते।
2. का.-मै.-पाठयो "र्भावप्रवृत्तिमि" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ बं.-पाठमनुसरतः।
3. का.-पाठे "भाग्याधीनमतः परं,न खलु तत्स्त्रीबन्धुभिर्याच्यत" इति।, मै.-पाठे "भाग्याधीनमतः परं, न खलु तत्स्त्रीबन्धुभिर्याच्यत" इति।, बं.-पाठे "दैवाधीनमतः परं, न खलु तत्स्त्रीबन्धुभिर्याच्यत" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
4. का.-बं.-पाठयो "र्लोकज्ञा" इति।, दाक्षि.-पाठो का.-पाठमनुसरति।, देव.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
5. मै.-बं.-पाठयो "र्भोगेष्वनुत्सेकिनी" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
6. केवलं बं.-पाठे "मा विस्मरिष्यसी" ति।, मै.-दाक्षि.देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

धारइस्सं। (कथमिदानीं तातस्याङ्कात्परिभ्रष्टा मलयतरुन्मूलिता[1] चन्दनलतेव देशान्तरे जीवितं धारयिष्ये[2]।) [162]

काश्यपः- वत्से, किमेवं कातरासि- [163]

अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे
विभवगुरुभिः कृत्यैस्तस्य प्रतिक्षणमाकुला।
तनयमचिरात्प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनं
मम विरहजां न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि[3]॥ 4 - 19॥ [164]

(शकुन्तला पितुः पादयोः पतति) [165]

काश्यपः - यदिच्छसि ते तदस्तु[4]। [166]

शकुन्तला -(सख्यावुपेत्य) हला, दुवे वि मं समं एव्व परिस्सजह। (हला, द्वे अपि मां सममेव परिष्वजेथाम्।) [167]

सख्यौ - (तथा कृत्वा) सहि, जइ णाम सो राआ पच्चाहिण्णाणमंथरो भवे तदो से इमं अत्तणामहेअअंकिअं अङ्गुलीअअं दंसेहि। (सखि, यदि नाम स राजा प्रत्यभिज्ञानमन्थरो भवेत्ततस्तस्येदमात्मनामधेयाङ्कितम् अङ्गुलीयकं दर्शय।) [168]

शकुन्तला -इमिणा सन्देहेण वो आकंपिद म्हि। (अनेन सन्देहेन[5] वामाकम्पितास्मि।) [169]

सख्यौ - मा भाआहि। सिणेहो पावसङ्की। (मा भैषीः। स्नेहः पापशङ्की[6]।) [170]

शार्ङ्गरवः- युगान्तरमारूढः[7] सविता। त्वरताम् अत्रभवती। [171]

शकुन्तला- (आश्रमाभिमुखी स्थित्वा[8]) ताद, कदा णु भूओ तवोवणं पेक्खिस्सं। (तात, कदा नु भूयस्तपोवनं प्रेक्षिष्ये।) [172]

काश्यपः- श्रूयताम्,

भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी
दौष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं निवेश्य[9]।
भर्त्रा तदर्पितकुटुम्बभरेण सार्धम्[10]
शान्ते[11] करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन्॥ 4 - 20॥ [173]

---

1. का.-पाठे शब्दोऽयं नास्ति।, मै.-बं.-पाठयो "र्मलयपर्वतादुन्मूलितेवे" ति।, दाक्षि.-पाठे "मलयतटोन्मूलिते-वे" ति।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
2. का.-पाठे "कथमिदानीं तातेन विरहिता करिसार्थपरिभ्रष्टा करेणुकेव प्राणान् धारयिष्य" इति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
3. का.-मै.-पाठयोरितः परम्, "अपि चेदमवधारय, यदा शरीरस्य शरीरिणश्च पृथक्त्वमेकान्तत एव भावि०" इति श्लोकः प्राप्यते।, बं. -पाठात् स श्लोको निष्कासितः।, दाक्षि.-देव.-पाठौ बं.-पाठमनुसरतः।
4. मै.-बं.-पाठयो "र्यदहमीहे तदस्तु त" इति।, दाक्षि.-पाठः का.-पाठमनुसरति।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
5. का.-मै.-पाठयोः "सन्देशेने" ति।, सप्तमांके "सखीभिः संदिष्टमि" ति वचनाद् ब.-पाठानुसारीदं परिवर्तनं न संगच्छते। (दाक्षि.-देव. -पाठौ बं.-पाठमनुसरतः, तच्च नोचितम्।)
6. का.-पाठे "स्नेहो वाममाशङ्कत" इति।, मै.-बं.-पाठयोः स्नेहः पापमाशङ्कत इति।, दाक्षि.-पाठे "अतिस्नेहः पापशङ्की" ति।, देव.-पाठे संक्षेपीकरणं दृश्यते।
7. मै.-पाठे "दूरमारूढ" इति।, बं.-पाठे "ऽगान्तरमधिरूढ" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
8. का.-पाठे "भूयः पितरमाश्लिष्य सगद्‌गदमि" ति।, मै.-बं.-पाठयोः "पितुरङ्कमाश्लिष्ये" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
9. का.-पाठेषु "प्रसूये" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
10. का.-पाठे "तस्मिन् निवेशितधुरेण सहैव भर्त्रे" ति।, मै.-पाठे "तत्संनिवेशितभरेण०" इति।, बं.-पाठे "तत् सन्निवेशितधुरेण०" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
11. मै.-बं.-पाठयोः "शान्त्यायि" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

गौतमी - जादे, परिहीअदि गमणवेला। णिवत्तेहि पिदरं। अहवा चिरेण वि पुणो पुणो एसा एव्वं मंतइस्सदि। णिवत्तदु भवं। (जाते, परिहीयते गमनवेला। निवर्तय पितरमथवा चिरेणापि पुनःपुनरेषैवं मन्त्रयिष्यते। निवर्ततां भवान्।) [174]

काश्यपः- वत्से, उपरुध्यते तपोऽनुष्ठानम्[1]। [175]

शकुन्तला - (भूयः पितरमाश्लिष्य) तवच्चरणपीडिदं तादसरीरं। ता मा अदिमेत्तं मम किदे उक्कंठिदुं। (तपश्चरणपीडितं तातशरीरम्। तन्मातिमात्रं मम कृते उत्कण्ठितुंम्[2]।) [176]

काश्यपः- (सनिःश्वासम्[3])

शममेष्यति मम शोकः कथं नु वत्से त्वया रचितपूर्वम्[4]।
उटजद्वारविरुढं नीवारबलिं विलोकयतः॥ 4 - 21॥ [177]

गच्छ। शिवास्ते पन्थानः सन्तु। [178]

(निष्क्रान्ता शकुन्तला सहयायिनश्च[5]।) [179]

सख्यौ- (शकुन्तलां विलोक्य) हद्धी हद्धी। अंतलिहिता सउंदला वणराईए। (हा धिक्, हा धिक्। अन्तर्हिता शकुन्तला वनराज्या[6]।) [180]

काश्यपः- (सनिःश्वासम्) अनसूये, गतवती वां सहधर्मचारिणी[7]। निगृह्य शोकमनुगच्छतं मां प्रस्थितम्। [181]

उभे - ताद, सउंदलाविरहिदं सुण्णं विअ तवोवणं कहं पविसावो। (तात, शकुन्तलाविरहितं शून्यमिव तपोवनं कथं प्रविशावः।) [182]

काश्यपः- स्नेहप्रवृत्तिरेवंदर्शिनी[8]। (सविमर्शं परिक्रम्य) हन्त भोः, शकुन्तलां पतिकुलं विसृज्य[9] लब्धम् इदानीं स्वास्थ्यम्। कुतः-[183]

अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः।
जातो ममायं विशदः प्रकामं[10] प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा[11]॥ 4 - 22॥ [184]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे) [185]

॥ चतुर्थोऽङ्कः[12]॥ [186]

---

1. का.-पाठ इतः परम् "प्रतिनिवर्तितुमिच्छामी" त्यधिकं वाक्यम्।, मै.-पाठे "तत्परावर्तितुमिच्छामी" त्यधिकम्।, बं.-पाठे तदधिकं वाक्यं नास्ति।, संक्षेपविषयेऽत्र दाक्षि.-देव.-पाठौ बं.-पाठमनुसरतः।
2. का.-पाठेषु भिन्नमेव वाक्यमत्र, यथा- "तपो/तपोवनव्यापारेण तातो निरुत्कण्ठो भविष्यति। अहमिदानीम् उत्कण्ठाभागिनी संवृत्ते" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
3. का.-पाठेष्वत्र "अयि, किं मां जडीकरोषी" त्यधिकं वाक्यम्।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
4. का.-पाठे "शममेष्यति मम वत्से कथमिव शोकस्त्वया रचितपूर्वमि" ति।, मै.-पाठे "ऽपयास्यति मे शोकः कथं नु वत्से त्वया रचितपूर्वमि" ति।, बं.-पाठे "०वचितपूर्वमि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
5. का.-पाठे "निष्क्रान्ता शकुन्तलाऽनुयायिभिः सहे" ति रंगसूचनया शकुन्तलायाः पुरोगामित्वं सूचितम्।, अन्यत्र सर्वे सम्मिल्यैव गच्छन्ति।
6. का.-पाठे "ष्वन्तरिता शकु. वनराजिभिरि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
7. केवलं बं.-पाठे "सहचरी" ति।, मै.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।
8. का.-पाठे "स्नेहवृत्तिरिवे" ति।, मै.-बं.-पाठयोः "स्नेहवृत्तिरेवंदर्शिनी" ति।, दाक्षि.-पाठो मै.-पाठानुसारी।
9. का.-पाठेषु केवलं "विसृज्ये" ति।, दाक्षि.-पाठे "प्रतिविसृज्ये" ति।, देव.-पाठे सरलीकरणं दृश्यते।
10. का.-पाठेषु "जातोऽस्मि सद्यो विशदान्तरात्मे" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
11. का.-पाठेषु "चिरस्य निक्षेपमिवार्पयित्वे" ति।, देव.-पाठौ दाक्षि.-पाठमनुसरति।
12. मै.-बं.-पाठयोः "शकुन्तला-प्रस्थानो नाम चतुर्थोऽङ्क" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसृत्य प्रत्येकानाम् अंकानां नामानि न दत्तः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ पञ्चमोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशत्यासनस्थो राजा[1] विदूषकश्च) [1]

विदूषकः[2]- (कर्णं दत्त्वा) भो वअस्स। संगीदसालंतरे अवधाणं देहि। कलविसुद्धाए गीदीए सरसंजोओ सुणीअदि। जाणे तत्तहोदी हंसवदिआ वण्णपरिअअं करेदि त्ति। (भो वयस्य, संगीतशालान्तरेऽवधानं देहि। कलविशुद्धाया गीतेः[3] स्वरसंयोगः श्रूयते। जाने तत्रभवती हंसपदिका[4] वर्णपरिचयं करोतीति।) [2]

राजा - तूष्णीं भव, यावदाकर्णयामि। [3]

(आकाशे[5] गीयते) [4]

अहिणवमहुलोलुवो भवं तह परिचुम्बिअ चूअमञ्जरिं।
कमलवसइमेत्तणिव्वुदो महुअर विम्हरिओ सि णं कहं॥ 5 - 1॥
(अभिनवमधुलोलुपो भवां[6]स्तथा परिचुम्ब्य चूतमञ्जरीम्।
कमलवसतिमात्रनिर्वृतो मधुकर! विस्मृतोऽस्येनां कथम्)॥ 5 - 1॥ [5]

राजा - अहो रागपरिवाहिनी गीतिः। [6]

विदूषकः:- किं दाव गीदीए अवगओ अक्खरत्थो। (किं तावद् गीत्या अवगतोऽक्षरार्थः।) [7]

राजा - (स्मितं कृत्वा) सकृत्कृतप्रणयो[7]ऽयं जनः। तस्या देवीवसुमतीम्[8] अन्तरेण मदुपालम्भम् अवगतोऽस्मि। सखे माढव्य[9], मद्वचनादुच्यतां हंसपदिका। निपुणमुपालब्धोऽस्मीति। [8]

विदूषकः:- जं भवं आणवेदि। (उत्थाय) भो वअस्स, गहीदस्स ताए परकीएहिं हत्थेहिं सिहण्डए ताडीअमाणस्स अच्छराए वीदराअस्स विअ णत्थि दाणिं मे मोक्खो। (यद्भवानाज्ञापयति। भो वयस्य, गृहीतस्य तया[10] परकीयैर्हस्तैः शिखण्डके ताड्यमानस्याप्सरसा वीतरागस्येव[11]नास्तीदानीं मे मोक्षः।) [9]

---

1. का.-पाठे यद्यपि कञ्चुकिनः प्रथमं प्रवेशो भवति। ततश्चाग्रे "०आसनस्थः परिमितपरिवारो राजा विदूषकश्चे" ति।, मै.-बं.-पाठयोरपि तथैव। किन्तु तत्र "विभवतः परिवारो राजा०" इति।, देव.-पाठो दाक्षि. -पाठमनुसृत्य कञ्चुकिनं प्रथमं न प्रवेशयतः। किन्त्वासनस्थस्य राज्ञो विदूषकस्य च प्रवेशं प्रदर्शयतः।
2. का.-पाठेषु कञ्चुकिन उक्त्या दृश्यारम्भो भवति।, दाक्षि.-देव.-पाठयोर्विदूषकस्योक्त्या प्रारम्भो भवति।
3. का.-पाठे "तालगतिविशुद्धायाः खलु वीणाया" इति।, मै.-पाठे "ताललयशुद्धाया वीणाया" इति।, बं.-पाठे "लयशुद्धाया वीणाया" इति।, दाक्षि.-पाठे "कलविशुद्धायाः संगीत्या" इति।
4. का.-पाठे "हंसवतिके" ति।, मै.-बं.-पाठयो "हंसवती" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
5. का.-पाठेषु "नेपथ्य" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
6. का.-बं.-पाठयोः "०मधुलोभभावितस्तथे" ति मधुकरस्य विशेषणम्।, मै.-पाठे "०मधुलोभभाविता तथे" ति चूतमञ्जर्या विशेषणम्।, दाक्षि.-पाठे "०मधुलोलुपस्त्वमि" ति।, देव.-पाठे "०भवान्नि" ति परिवर्तनम्।
7. का.-पाठे "सत्कृतप्रणय" इति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
8. का.-पाठे "कुलप्रभामि" ति।, मै.-बं.-पाठयोस्तु "हंसवतीं देवीमि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
9. का.-पाठे "वयस्य" इति।, मै.-बं.-पाठयो "र्माधव्य" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
10. का.-बं.-पाठयो "स्त्वये" ति।, मै.-पाठे "तये" ति। दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः।, उभयत्र भिन्नैव वाक्यार्थ-प्रतिपत्तिर्भविष्यति।
11. का.-पाठे "शिखण्डको भल्लूकः। अवीतरागस्येवे" ति।, मै.-पाठे "शिखण्डके अच्छभल्लः। अवीतरागस्य सुजनस्येवे" ति।, बं.-पाठे "शिखण्डके ...। तदवीतरागस्येव श्रमणस्ये" ति।, दाक्षि.-पाठे "शिखण्डके अप्सरसेव वीतरागस्ये" ति।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा - गच्छ, नागरिकवृत्त्या संज्ञापयैनाम्। [10]

विदूषकः- का गई। (का गतिः) (इति निष्क्रान्तः) [11]

राजा- (आत्मगतम्) किं नु खलु गीतार्थमाकर्ण्येष्टजनविरहादृतेऽपि बलवदुत्कण्ठितोऽस्मि। [12]

अथवा -

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुकीभवति[1] यत्सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनम् अबोधपूर्वं[2]
भावस्थिराणि[3] जननान्तरसौहृदानि॥ 5 - 2॥ [13]

(इति पर्याकुलस्तिष्ठति[4]) [14]

(ततः प्रविशति कञ्चुकी) [15]

कञ्चुकी- अहो नु खल्वीदृशीमवस्थां प्रतिपन्नोऽस्मि। [16]

आचार इत्यवहितेन[5] मया गृहीता
या वेत्रयष्टिरवरोधगृहेषु राज्ञः।
काले गते बहुतिथे मम सैव जाता
प्रस्थानविक्लवगतेरवलम्बनार्था[6]॥ 5 - 3॥ [17]

भो, कामं[7] धर्मकार्यमनतिपात्यं देवस्य, तथापीदानीमेव धर्मासनादुत्थिताय पुनरुपरोधकारि कण्वशिष्यागमनमस्मै नोत्सहे निवेदयितुम्। अथवाऽविश्रामो लोकतन्त्राधिकारः। कुतः, [18]

भानुः सकृद् युक्ततुरङ्ग एव रात्रिंदिवं गन्धवहः प्रयाति।
शेषः सदैवाहितभूमिभारः[8] षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः॥ 5 - 4॥ [19]

यावन्नियोगमनुतिष्ठामि। (परिक्रम्यावलोक्य) एष देवः- [20]

प्रजाः प्रजाः स्वा[9] इव तन्त्रयित्वा निषेवतेऽशान्तमना विविक्तम्।
यूथानि सञ्चार्य रविप्रतप्तः शीतं दिवा स्थानमिव द्विपेन्द्रः॥ 5 - 5॥ [21]

---

1. का.-पाठे "पर्युत्सुकीभवती" ति।, मै.-बं.-पाठयोः "पर्युत्सुको भवती" ति।, देव.-पाठः का.-पाठमनुसरति।
2. का.-पाठे "ऽभोगपूर्वमि" ति।, मै.-बं.-पाठयो "रबोधपूर्वमि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
3. का.-पाठे "भाविस्थितानी" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
4. का.-पाठे नास्तीयं रंगसूचना।, मै.-पाठे दृश्यमानेयं रंगसूचना कथयति यच्छकुन्तलायाः प्रत्याख्यानावसरे राज्ञ उन्मनस्कता भवितुमर्हतीति तत्रत्यैर्नटैर्विचारितं स्यात्।, बं.-पाठो मै.-पाठानुसारी।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
5. का.-पाठे "ष्वहितेने" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
6. का.-पाठे "कालेन सैव परिहीननियोगशक्तेर्गन्तुं ममेयमवलम्बनवस्तु जाते" ति।, मै.-बं.-पाठे "काले गते बहुतिथे मम सैव जाता प्रस्थानविक्लवगतेरवलम्बनाये" ति।, दाक्षि.-पाठो मै.-पाठमनुसृत्य "काले गते ... अवलम्बनार्थे" ति पठति।, देव.-पाठो दाक्षि. -पाठमनुसरति।
7. का.-पाठेष्वितः पूर्वं कञ्चुकिनो विस्मरणशीलता, क्षणात्प्रबोधमायातीति श्लोकश्च प्रस्तूयते। अनेन राज्ञः स्मृतिभ्रंशो व्यज्यते। दाक्षि. -पाठमनुसृत्य तत्सर्वमत्र देव.-पाठान्निष्कासितम्, संक्षिप्तीकरणाय।
8. का.-पाठे "ऽवेक्ष्य दाह्यं न शमोऽस्ति वह्नेरि" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
9. का.-पाठे "मनुः प्रजास्वा॰" इति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(उपगम्य) जयतु जयतु देवः। एते खलु हिमगिरेरुपत्यकारण्यवासिनः काश्यपसन्देशमादाय सस्त्रीकास्तपस्विनः संप्राप्ताः। श्रुत्वा देवः[1] प्रमाणम्। [22]

राजा - (सादरम्) किं काश्यपसन्देशहारिणः। [23]

कञ्चुकी - अथ किम्। [24]

राजा - तेन हि मद्वचनाद् विज्ञाप्यतामुपाध्यायः सोमरातः[2]। अमूनाश्रमवासिनः श्रौतेन विधिना सत्कृत्य स्वयमेव प्रवेशयितुमर्हतीति। अहमप्यत्र तपस्विदर्शनोचिते प्रदेशे स्थितः प्रतिपालयामि। [25]

कञ्चुकी- यदाज्ञापयति देवः। [26] (इति निष्क्रान्तः।) [27]

राजा- (उत्थाय) वेत्रवति, अग्निशरणमार्गमादेशय। [28]

प्रतीहारी[3] - इदो इदो देवो। (इत इतो देवः।) [29]

राजा- (परिक्रामति। अधिकारखेदं निरूप्य।) सर्वः प्रार्थितमर्थमधिगम्य सुखी संपद्यते जन्तुः। राज्ञां तु चरितार्थता दुःखान्तरैव। [30]

औत्सुक्यमात्रमवसादयति प्रतिष्ठा क्लिश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेनम्।
नातिश्रमापनयनाय न च श्रमाय[4] राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम्।। 5 - 6।। [31]

(नेपथ्ये) [32]

वैतालिकौ[5]-विजयतां देवः। [33]

प्रथमः -

स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव[6]।
अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं[7] शमयति परितापं छायया संश्रितानाम्।। 5 - 7।। [34]

द्वितीयः-

नियमयसि कुमार्गप्रस्थितानात्तदण्डः प्रशमयसि विवादं कल्पसे रक्षणाय।
अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः सन्तु नाम[8] त्वयि तु परिसमाप्तं बन्धुकृत्यं प्रजानाम्।। 5 - 8।। [35]

राजा- एते क्लान्तमनसः पुनर्नवीकृताः[9] स्मः। (इति परिक्रामति) [36]

प्रतीहारी - अहिणवसम्मज्जणसस्सिरीओ सण्णिहिदहोमधेणू अग्गिसरणालिन्दो। आरुहदु देवो।

---

1. का.-पाठे "प्रभविष्णुरि" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
2. मै.-पाठे "सोमदत्त" इति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।
3. प्रतीहारी कथं रंगभूमिं समायात इति प्रश्नः। यतो हि, रंगमंचं तस्य प्रवेश एव न कथित एतावत्पर्यन्तम्। देव.-पाठोऽत्र क्षतिग्रस्तः प्रतीयते, संक्षेपीकरणप्रवृत्तेः कारणात्।
4. का.-पाठेषु "यथा श्रमाये" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
5. का.-पाठे "वैतालिका" इति बहुवचनान्तम्। ते सर्वे मिलित्वैव श्लोकद्वयस्य समूहगानं कुर्वन्ति।, मै.-बं.-पाठयोर्द्वौ वैतालिकावेव, तौ च पृथक्तयैवैकैकं श्लोकं गायतः।, दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः।
6. का.-पाठेषु "सृष्टिरेवं विधैवे" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
7. मै.-पाठे "पादपस्तीक्ष्णमंशुमि" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।
8. मै.-पाठे "संविभक्ता" इति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।
9. मै.-बं.-पाठयोः "कार्यानुशासनपरिश्रान्ता" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।, उभयविधेन पाठान्तरेण वैतालिकश्लोकगानस्य प्रयोजनं भिन्नमेव विलसति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(अभिनवसंमार्जनसश्रीकः[1] सन्निहितहोमधेनु[2]रग्निशरणालिन्दः। आरोहतु देवः।) [37]

राजा - (आरुह्य परिजनांसावलम्बी तिष्ठति।) वेत्रवति, किमुद्दिश्य भगवता काश्यपेन मत्सकाशम् ऋषयः प्रेषिताः स्युः। [38]

किं तावद् व्रतिनामुपोढतपसां विघ्नैस्तपो दूषितं
धर्मारण्यचरेषु केनचिदुत प्राणिष्वसच्चेष्टितम्।
आहोस्वित्प्रसवो ममापचरितैर्विष्टम्भितो वीरुधा-
मित्यारूढ[3] बहुप्रतर्कमपरिच्छेदाकुलं मे मनः॥ 5 - 9॥ [39]

प्रतीहारी - सुचरिदणंदिणो इसीओ देवं सभाजइदुं आअदेत्ति तक्केमि। ([4]सुचरितनन्दिन ऋषयो देवं सभाजयितुमागता इति तर्कयामि।) [40]

(ततः प्रविशन्ति गौतमीसहिताः शकुन्तलां पुरस्कृत्य मुनयः, पुरश्चैषां कञ्चुकी पुरोहितश्च।) [41]

कञ्चुकी - इतो इतो भवन्तः। [42]

शार्ङ्गरवः- शारद्वत,

महाभागः कामं नरपतिरभिन्नस्थितिरसौ
न कश्चिद्वर्णानामपथमपकृष्टोऽपि भजते।
तथापीदं शश्वत्परिचितविविक्तेन मनसा
जनाकीर्णं मन्ये हुतवहपरीतं गृहमिव[5]॥ 5 - 10॥ [43]

शारद्वतः- जाने भवान् पुरप्रवेशादित्थंभूतः संवृत्तः। अहमपि-[44]

अभ्यक्तमिव स्नातः, शुचिरशुचिमिव, प्रबुद्ध इव सुप्तम्।
बद्धमिव स्वैरगति-र्जनमिह सुख[6]सङ्गिनमवैमि॥ 5 - 11॥ [45]

शकुन्तला -(निमित्तं सूचयित्वा) अम्महे, किं मे वामेदरं णअणं विप्फुरदि। (अहो, किं मे वामेतरं नयनं विस्फुरति।) [46]

गौतमी- जादे, पडिहदं अमङ्गलं। सुहाइं दे भत्तुकुलदेवदाओ वितरंदु। (जाते, प्रतिहतममङ्गलम्। सुखानि ते भर्तृकुलदेवता वितरन्तु।) (इति परिक्रामति।) [47]

पुरोहितः- (राजानं निर्दिश्य) भो भोस्तपस्विनः, असावत्रभवान् वर्णाश्रमाणां रक्षिता प्रागेव मुक्तासनो वः प्रतिपालयति। पश्यतैनम्। [48]

शार्ङ्गरवः[7]- भो महाब्राह्मण[8], काममेतदभिनन्दनीयम्। तथापि वयमत्र मध्यस्थाः। कुतः, [49]

---

1. का.-पाठेषु "०सम्मार्जनरमणीय" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति। (रंगसज्जायां भेदः परिलक्ष्यते)
2. का.-पाठे "कपिलधेनुरि" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
3. केवलं का.-पाठे "धर्मारण्यगतेषु, आलीढ०" इति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
4. का.-पाठ इतः पूर्वम् "देवस्य भुवनपरिष्वङ्गनिर्वृते चतुराश्रमे कुत एतदि" त्यधिकम्।, तथैव मै.-पाठेऽपि "देवस्य भुजदण्डनिर्वृत आश्रमे कुत एतदि" त्यधिकम्।, बं.-पाठे च "देवस्य भुजशब्दनिर्वृते आश्रमे कुत एतदि" त्यधिकम्।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसृत्य संक्षिप्तं पाठं स्वीकरोति।
5. केवलं दाक्षि.-पाठे "वनमिवे" ति।, मै.-बं.-देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।
6. का.-पाठेषु "जनमवश" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
7. का.-पाठे वचनमिदम् "ऋषय" भणन्ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
8. देव.-पाठेऽत्र राघवभट्टो लिखति- "महाब्राह्मणेति राजपुरोहितत्वात्तं प्रति मुनेरुक्तिरिति नानौचित्यम्"।, मै.-बं.-पाठयोर्नास्तीदं संबोधनम्।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमैर्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्॥ 5 - 12॥ [50]

प्रतीहारी - देव, पसण्णमुहवण्णा दीसंदि। जाणामि विस्सद्धकज्जा इसीओ। (देव, प्रसन्नमुखवर्णा दृश्यन्ते। जानामि विश्रब्धकार्या ऋषयः।) [51]

राजा- (शकुन्तलां दृष्ट्वा) अथात्रभवती- [52]

का स्विद् अवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या।
मध्ये तपोधनानां किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम्॥ 5 - 13॥ [53]

प्रतीहारी - देव, कुतूहलगब्भो ण मे तक्को पसरदि। णं दंसणीआ उण से आकिदी लक्खीअदि। (देव, कुतूहलगर्भोपहितो न मे तर्कः प्रसरति। ननु दर्शनीया पुनरस्या आकृतिर्लक्ष्यते[1]।) [54]

राजा- भवतु, अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम्। [55]

शकुन्तला -(हस्तमुरसि कृत्वा,आत्मगतम्) हिअअ, किं एव्वं वेवसि। अज्जउत्तस्स भावं ओहारिअ धीरं दाव होहि। (हृदय, किमेवं वेपसे, आर्यपुत्रस्य भावमवधार्य धीरं तावद् भव।) [56]

पुरोहितः- (पुरो गत्वा) एते विधिवदर्चितास्तपस्विनः। कश्चिदेषामुपाध्यायसन्देशः। तं देवः श्रोतुम् अर्हति। [57]

राजा - अवहितोऽस्मि। [58]

ऋषयः- (हस्तानुद्यम्य) विजयस्व राजन्। [59]

राजा- सर्वान् अभिवादये। [60]

ऋषयः- इष्टेन युज्यस्व[2]। [61]

राजा- अपि निर्विघ्नतपसो मुनयः। [62]

ऋषयः-

कुतो धर्मक्रियाविघ्नः[3] सतां रक्षितरि त्वयि।
तमस्तपति घर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति॥ 5 -14॥ [63]

राजा- अर्थवान् खलु मे राजशब्दः। अथ भगवांल्लोकानुग्रहाय कुशली काश्यपः[4]। [64]

शार्ङ्गरवः- स्वाधीनकुशलाः सिद्धिमन्तः। स भवन्तमनामयप्रश्नपूर्वकमिदमाह। [65]

राजा- किमाज्ञापयति भगवान्। [66]

शार्ङ्गरवः- यन्मिथः समयादिमां मदीयां दुहितरं भवानुपायंस्तन्मया प्रीतिमता युवयोरनुज्ञातम्। कुतः-[67]

त्वमर्हतां प्राग्रसरः स्मृतोऽसि यच्छकुन्तला मूर्तिमती च सत्क्रिया।
समानयंस्तुल्यगुणं वधूवरं चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः॥ 5 - 15॥ [68]

तदिदानीमापन्नसत्त्वा प्रतिगृह्यतां सहधर्मचरणायेति। [69]

---

1. का.-पाठे परिजनस्येयमुक्तिः।, मै.-बं.-पाठयोः प्रतीहारी भणतीमामुक्तिम्।, दाक्षि.-देव.-पाठयोः परिजनस्य प्रवेश एव नास्ति।
2. का.-पाठेषु "स्वस्ति भवत" इति।, दाक्षि.-पाठे "स्वस्ति भवते। इष्टेन युज्यस्वे" ति च।, देव.-पाठे "स्वस्ति भवते" इति निष्कास्यते, संक्षेपीकरणाय। दाक्षि.-पाठमनुसृत्य "चेष्टेन युज्यस्वे" ति दीयते।
3. केवलं मै.-पाठे "धर्मविघ्नः कुतोऽस्माकमि" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।
4. केवलं मै.-बं.-पाठयोः "कण्व" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

गौतमी - अज्ज, किंपि वत्तुकाम म्हि। ण मे वअणावसरो अत्थि। कहंत्ति। (आर्य, किमपि वक्तुकामास्मि। न मे वचनावसरोऽस्ति। कथमिति।) [70]

णावेक्खिओ गुरुअणो इमाइ ण हु पुच्छिदो अ बन्धुअणो।
एक्कक्कमे व्व चरिए भणामि किं एक्कमेक्कस्स॥ 5 - 16॥
(नापेक्षितो गुरुजनोऽनया, न खलु पृष्टश्च बन्धुजनः[1]।
परस्परस्मिन्नेव चरिते[2] भणामि किमेकैकम्॥ 5 - 16॥) [71]

शकुन्तला -(आत्मगतम्) किं णु खु अज्जउत्तो भणादि। (किं नु खल्वार्यपुत्रो भणति[3]।) [72]

राजा - किमिदमुपन्यस्तम्। [73]

शकुन्तला -(आत्मगतम्) पावओ खु वअणोवण्णासो। (पावकः खलु वचनोपन्यासः[4]।) [74]

शार्ङ्गरवः- कथमिदं नाम। भवन्त एव सुतरां लोकवृत्तान्तनिष्णाताः[5]। [75]

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां जनोऽन्यथा भर्तुमतीं विशङ्कते।
अतः समीपे परिणेतुरिष्यते प्रियाप्रियापि[6] वा प्रमदा स्वबन्धुभिः॥ 5 - 17॥ [76]

राजा - किं चात्रभवती मया परिणीतपूर्वा। [77]

शकुन्तला -(सविषादमात्मगतम्) हिअअ, संपदं दे आसङ्का। (हृदय, साम्प्रतं ते आशङ्का[7]।) [78]

शार्ङ्गरवः[8]- **किं कृतकार्यद्वेषो, धर्मं प्रति विमुखता, कृतावज्ञा[9]।** [79]

राजा- कुतोऽयमसत्कल्पनाप्रश्नः[10]। [80]

शार्ङ्गरवः -

मूर्छन्त्यमी विकाराः प्रायेणैश्वर्यमत्तेषु[11]॥ 5 - 18॥ [81]

---

1. का.-पाठे "नापेक्षितो गुरुजनोऽनया न चात्र पृष्टा बन्धव" इति। (शकुन्तलापक्षे स्थितो दोषः कथ्यते), मै.-पाठे "नावेक्षितो गुरुजनोऽनया त्वयापि न पृष्टो बन्धुरि" ति। (उभयपक्षे स्थितो दोषो वर्ण्यते), बं.-पाठेऽपि तथैव।, दाक्षि.-पाठे "नापेक्षितो गुरुजनस्त्वया, ऽनया न पृष्टोबन्धुरि" ति। (शकुन्तलापक्षे प्रथमं दोषो विद्यते, ततो दुष्यन्तपक्षे दोषः कथ्यते।), देव.-पाठे का.-पाठस्यानुसरणं दृश्यते।
2. का.-पाठे "वरिते" इति।, बं.-पाठे "वृते" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः।
3. का.-पाठे शकुन्तलाया उक्तिरेव नास्ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
4. बं.-पाठे "हुं, सावलेपोऽस्य वचनावक्षेप" इति।, मै.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।
5. का.-पाठे "लोकयात्रानिष्णाता" इति।, बं.-देव.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः।, दाक्षि.-पाठे "लोकतन्त्र०" इति।
6. का.-पाठे "तदप्रियापी" ति।, मै.-बं.-पाठयोः "प्रियाप्रिया वे" ति।, दाक्षि.-पाठः का.-पाठमनुसरति।, देव.-पाठो मै.-पाठमनुसरति। (मैथिल-पाठेन प्राकरणिकार्थो न लभ्यते।)
7. का.-पाठे "संवर्द्धिता खलु त आशङ्के" ति।, मै.-पाठे "समुदिता०" ति।, बं.-पाठे "संवृत्ता०" इति।, दाक्षि.-पाठे "साम्प्रतं त आतङ्कः आसीदि" ति।, देव.-पाठे परिवर्तनम् क्रियते।
8. शार्ङ्गरवस्येयमुक्तिरार्या-जाति-छन्दसि वर्तते। (उक्ति-क्रमांकः- 79 एवं 81)
9. देव.-पाठेऽपि दाक्षि.-पाठमनुसृत्य प्रश्नत्रयाः प्रस्तूयन्ते। तन्नोचितम्, राज्ञो वचसि "असत्कल्पनाप्रश्न" इत्येकवचनमिति केचिद्। किन्तु रंगकर्मणि वाचिकाभिनये वैशिष्ट्यम्।, का.-पाठे "किं कृतकार्यद्वेषाद् धर्मं प्रति विमुखता राज्ञ" इत्येकः प्रश्नः प्रस्तूयते।, मै.-पाठे "किं कृत० ... विमुखता कृता राज्ञे" ति।, बं.-पाठे "०विमुखतोचिता राज्ञ" इति। (का.-पाठे यद्गद्यं, तत्त्वत्र मै.-बं.-पाठयोरार्याछन्दसि परिवर्तितमिति दृश्यते।
10. का.-बं.-पाठयोः"०कल्पनाप्रसंग" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः।
11. मै.-बं.-पाठयोः "०ऐश्वर्यमत्तानामि" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः। तेन चार्याछन्दोभङ्गः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा - विशेषेणाधिक्षिप्तोऽस्मि। [82]

गौतमी- जादे, मुहुत्तअं मा लज्ज। अवणइस्सं दाव दे ओउंठणं। तदो तुमं भट्टा अहिजाणिस्सदि।)

(जाते, मुहूर्तं मा लज्जस्व। अपनेष्यामि तावत्तेऽवगुण्ठनम्। ततस्त्वां भर्ताऽभिज्ञास्यति।) [83]

(इति यथोक्तं करोति) [84]

राजा- (शकुन्तलां निर्वर्ण्य आत्मगतम्) [85]

इदमुपनतमेवं रूपमक्लिष्टकान्ति
प्रथमपरिगृहीतं स्यान्न वेति व्यवस्यन्[1]।
भ्रमर इव विभाते[2] कुन्दमन्तस्तुषारं
न च खलु परिभोक्तुं नैव शक्नोमि हातुम्[3]॥ 5 - 19॥ [86]

(इति विचारयन् स्थितः।) [87]

प्रतीहारी[4] - अहो, धम्मावेक्खिआ भट्टिणो। ईदिसं णाम सुहोवणदं रूवं देक्खिअ को अण्णो विआरेदि।

(अहो, धर्मापेक्षिता भर्तुः। ईदृशं नाम सुखोपनतं रूपं दृष्ट्वा कोऽन्यो विचारयति।) [88]

शार्ङ्गरवः- भो राजन्, किमिति जोषमास्यते। [89]

राजा - भोस्तपोधनाः, चिन्तयन्नपि न खलु स्वीकरणमत्रभवत्याः स्मरामि। तत्कथमिमामभिव्यक्तसत्त्वलक्षणां प्रत्यात्मानं क्षेत्रिणम् आशङ्कमानः[5] प्रतिपत्स्ये। [90]

शकुन्तला- (अपवार्य) अज्जस्स परिणए एव्व सन्देहो। कुदो दाणिं मे[6] दूराहिरोहिणी आसा। (आर्यस्य परिणय एव सन्देहः। कुत इदानीं मे दूराधिरोहिण्याशा[7]।) [91]

शार्ङ्गरवः- मा तावत्-

कृताभिमर्शामनुमन्यमानः सुतां त्वया नाम मुनिर्विमान्यः।
मुष्टं[8] प्रतिग्राहयता स्वमर्थं पात्रीकृतो दस्युरिवासि येन॥ 5 - 20॥ [92]

शारद्वतः - शार्ङ्गरव, विरम त्वमिदानीम्। शकुन्तले, वक्तव्यमुक्तमस्माभिः। सोऽयमत्रभवानेवमाह। दीयतामस्मै प्रत्ययप्रतिवचनम्[9]। [93]

शकुन्तला -(अपवार्य) इमं अवत्थंतरं गदे तारिसे अणुराए[10] किं वा सुमराविदेण। अत्ता दाणिं मे सोअणीओ त्ति ववसिदं एदं। (प्रकाशम्) अज्जउत्त,... (इत्यर्धोक्ते-) संसइदे दाणिं ण एसो समुदाआरो। पोरव, ण जुत्तं णाम दे तह पुरा

---

1. का.-पाठेषु "वेत्यध्यवस्यन्नि" ति।, दाक्षि.-पाठे "वेत्यव्यवस्यन्नि" ति।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
2. मै.-बं.-पाठयो "र्निशान्त" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
3. मै.-बं.-पाठयो "र्मोक्तुमि" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
4. का.-पाठे परिजनस्येयमुक्तिः, जनान्तिकत्वेनोच्यते।, मै.-बं.-पाठयोः प्रतीहारी स्वगतोक्तिरूपेण वक्ति।, दाक्षि.-पाठे परिजनस्येयमुक्तिः, जनान्तिकत्वेनोच्यते। किन्तु कुतः परिजनस्य प्रवेशो जात इति न ज्ञायते।, देव.-पाठे प्रतीहारी प्रकटतया भणतीमामुक्तिम्। तच्च दोषावहम्।
5. का.-पाठे "ऽनाशंसमान" इति।, बं.-पाठे "मन्यमान" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः।
6. का.-पाठेषु "भग्नेदानीमि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
7. मै.-बं.-पाठयो "र्दूरारोहिण्याशालते" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठम् अनुसरतः।
8. का.-पाठे "जुष्टमि" ति।, मै.-बं.-पाठयो "र्दुष्टमि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
9. का.-बं.-पाठयोः "प्रतिवचनमि" ति।, मै.-पाठे "प्रत्ययवचनमि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
10. का.-पाठे "तादिसे मुहुत्तरागे" इति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अस्समपदे सहावुत्ताणहिअअं इमं जणं समअपुव्वं प्पतारिअ ईदिसेहिं अक्खरेहिं पच्चाचक्खिदुं। (इदम् अवस्थान्तरं गते तादृशेऽनुरागे किं वा स्मारितेन। आत्मेदानीं मे शोचनीय इति व्यवसितमेतत्[1]। आर्यपुत्र...।

(इत्यर्धोक्ते..) संशयित इदानीं नैष समुदाचारः। पौरव, न युक्तं नाम ते तथा पुराश्रमपदे स्वभावोत्तान[2]हृदयमिमं जनं समयपूर्वं[3] प्रतार्येदृशैरक्षरैः प्रत्याख्यातुम्।) [94]

राजा- (कर्णौ पिधाय) शान्तं पापम्। [95]

व्यपदेशमाविलयितुं किमीहसे[4] जनमिमं च पातयितुम्।
कूलङ्कषेव सिन्धुः प्रसन्नमम्भस्तटतरुं च[5]॥ 5 - 21॥ [96]

शकुन्तला- होदु, जइ परमत्थदो परिग्गहसङ्किणा तुए एव्वं पउत्तं, अहिण्णाणेण इमिणा तुह संदेहं अवणइस्सं। (भवतु, यदि परमार्थतः परिग्रहशङ्किना त्वयैवं प्रवृत्तं, अभिज्ञानेनानेन[6] तव सन्देहम् अपनेष्यामि।) [97]

राजा- उदारः कल्पः[7]। [98]

शकुन्तला- (मुद्रास्थानं परामृश्य) हद्धी। अङ्गुलीअअसुण्णा मे अङ्गुली। (हा धिक्, अङ्गुलीयकशून्या मेऽङ्गुलिः।) [99]

(इति सविषादं गौतमीमवेक्षते।) [100]

गौतमी- णूणं दे सक्कावदारब्भन्तरे सचीतित्थसलिलं वन्दमाणाए पब्भट्ठं अङ्गुलीअअं। (नूनं ते शक्रावताराभ्यन्तरे शचीतीर्थसलिलं वन्दमानायाः[8] प्रभ्रष्टमङ्गुलीयकम्।) [101]

राजा - (सस्मितम्) इदं तत्प्रत्युत्पन्नमति स्त्रैणमिति यदुच्यते[9]। [102]

शकुन्तला -एत्थं एव्व दाव विहिणा दंसिदं पहुत्तणं। अवरं दे कहिस्सं। (अत्र तावद्विधिना दर्शितं प्रभुत्वम्। अपरं ते कथयिष्यामि।) [103]

राजा - श्रोतव्यमिदानीं संवृत्तम्। [104]

शकुन्तला - णं एक्कास्सिं दिअहे णोमलिआमण्डवे णलिणीपत्तभाअणगदं उदअं तुह हत्थे संणिहिदं आसी।
(नन्वेकस्मिन् दिवसे नवमालिकामण्डपे[10] नलिनीपत्रभाजनगतमुदकं तव हस्ते सन्निहितम् आसीत्।) [105]

राजा- शृणुमस्तावत्। [106]

शकुन्तला- तक्खणं सो मे पुत्तकिदओ दीहापङ्गो णाम मिअपोदओ उवट्ठिओ। तुए अअं दाव पढमं पिअउ त्ति अणुअम्पिणा उवच्छन्दिदो उअएण। ण उण दे अपरिचआदो हत्थब्भासं उवगदो। पच्छा तस्सिं एव्व मए गहिधे सलिले णेण किदो

1. का.-पाठे "शोधनीयोऽस्ति, विवदिष्यामी" ति।, मै.-पाठे "शोचनीयः, भवतु, वदिष्याम्येनमि" ति।, बं.-पाठे "शोधनीयः, भवतु, व्यवसिष्यामी" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
2. का.-पाठेषु "सद्भावोत्तान०" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
3. मै.-पाठे "समयोपरुद्धमि" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।
4. मै.-पाठे "मलिनयितुं समीहस" इति।, बं.-पाठ "आविलयितुं समीहस" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
5. का.-पाठे "प्रसन्नमोघं तटरुहं चे" ति।, मै.-बं.-पाठयोः "प्रसन्नमोघं तटतरुं चे" ति।, दाक्षि.-पाठे "प्रसन्नमम्भः तटरुहं चे" ति।, देव. -पाठे सरलीकरणं दृश्यते।
6. का.-पाठे "ऽभिज्ञानेन गुरुणे" ति।, मै.-बं.-पाठयो "रभि० केनापी" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
7. का.-पाठ "उदारमि" त्येव।, मै.-बं.-पाठयोः "प्रथमः कल्प" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठयोः संमिश्रितः पाठः।
8. का.-पाठे "ऽवगाहमानाया" इति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
9. का.-पाठ "इदं तद् यौतुकं प्रत्युत्पन्नं स्त्रीणामिति यदुच्यत" इति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
10. मै.-बं.-पाठयो "वेंतसलतामण्डपक" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

पणओ। तदा तुमं पहसिदो सि एत्थं-सव्वो सगन्धेसु विस्ससदि। दुवेवि एत्थ अरणआ त्ति। (तत्क्षणं स मम पुत्रकृतको दीर्घापाङ्गो[1] नाम मृगपोतक उपस्थितः। त्वयायं तावत्प्रथमं पिबत्वित्यनुकम्पिनोपच्छन्दित उदकेन। न पुनस्तेऽपरिचयाद्धस्ताभ्याशम् उपगतः। पश्चात्तस्मिन्नेव मया गृहीते सलिलेऽनेन, कृतः प्रणयः[2]। तदा त्वमित्थं प्रहसितोऽसि। सर्वः सगन्धेषु विश्वसिति। द्वावप्यत्रारण्यकाविति।) [107]

राजा- एवमादिभिरात्मकार्यनिर्वर्त्तिनीनाम् अनृतमय-वाङ्मधुभिराकृष्यन्ते विषयिणः। [108]

गौतमी - महाभाअ, ण अरुहसि एव्वं मंतिदुं। तवोवणसंवद्धिढदो अणभिण्णो अअं जणो कइदवस्स।

(महाभाग, नार्हस्येवं मन्त्रयितुम्। तपोवनसंवर्धितोऽनभिज्ञोऽयं जनः कैतवस्य।) [109]

राजा-

स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु संदृश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्यः।
प्रागन्तरिक्षगमनात्[3] स्वमपत्यजातमन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु[4] पोषयन्ति॥ 5 - 22॥ [110]

शकुन्तला -(सरोषम्) अणज्ज,अत्तणो हिअआणुमाणेण पेक्खसि। को दाणिं अण्णो धम्मकञ्चुअप्पवेसिणो तिणच्छण्णकूवोवमस्स तव अणुकिदिं पडिवदिस्सदि। (अनार्य[5], आत्मनो हृदयानुमानेन पश्यसि। क इदानीमन्यो धर्मकञ्चुकप्रवेशिनस्तृणच्छन्न-कूपोपमस्य तवानुकृतिं प्रतिपत्स्यते।) [111]

राजा- (आत्मगतम्) सन्दिग्धबुद्धिं मां कुर्वन्नकैतव इवास्याः[6] कोपो लक्ष्यते। तथा ह्यनया, [112]

मय्येव विस्मरणदारुणचित्तवृत्तौ[7] वृत्तं रहः प्रणयमप्रतिपद्यमाने।
भेदाद्-भ्रूवोः कुटिलयोरतिलोहिताक्ष्या भग्नं शरासनमिवातिरुषा स्मरस्य॥ 5 - 23॥ [113]

(प्रकाशम्) भद्रे, प्रथितं दुष्यन्तस्य चरितम्। तथापीदं न लक्षये[8]। [114]

शकुन्तला- सुट्ठु दाव [9]अत्त सछन्दचारिणी किदम्हि, जा अहं इमस्स पुरुवंसपच्चएण मुहमहुणो हिअअट्ठिअ विसस्स हत्थब्भासं उवगदा। (सुष्ठु तावदत्र स्वच्छन्दचारिणी कृतास्मि। याहमस्य पुरुवंशप्रत्ययेन मुखमधो-हृदयस्थितविषस्य[10] हस्ताभ्याशमुपगता[11]।) [115]

---

1. का.-पाठे "कृतकपुत्रको हरिणक" इति।, मै.-पाठे "पुत्रकृतहरिणक" इति।, बं.-पाठे "पुत्रकृतको मृगशावक" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
2. का.-पाठे न स्त एतौ शब्दौ।, मै.-बं.-दाक्षि.-पाठेषु "कृतस्तेन प्रणय" इति।
3. मै.-पाठे "ऽन्तरिक्षपतनादि" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।
4. का.-पाठेषु "किले" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
5. का.-पाठे नास्त्यत्रा-"नार्य!" इति संबोधनम्।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
6. का.-पाठेषु "वनवासादविभ्रमः पुनरत्रभवत्या" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
7. का. पाठः श्लोकमिमं न स्वीकरोति। किन्तु तत्र "न तिर्यग् अवलोकितं भवति चक्षुराहितम्०" इत्यपरः श्लोकः स्वीक्रियते। मै.-बं.-पाठयोर्द्वयोरपि श्लोकयोः स्वीकरणं दृश्यते।, दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठमनुसृत्य "मय्येव विस्मरणदारुण०" इति (तत्प्रक्षिप्तं) श्लोकमेव स्वीकुरुतः। किन्तूभौ श्लोकौ प्रक्षिप्तौ स्याताम्।
8. का.-बं.-पाठयो "र्न चापीदं दृश्यत" इति।, मै.-पाठे "तवापीदं दृश्यत" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठम् अनुसरति।
9. का.-पाठ इतः पूर्वं शकुन्तलाया मुखे "युवामेव प्रमाणं जानीथः०" इति गाथा वर्तते।, मै.-पाठेपि तथैव। किन्तु सा प्रक्षिप्ता स्यात्, केनापि स्थानिकेन रंगकर्मिणा।, बं.-पाठे डॉ. रिचार्ड पिशेलेन गाथेयं न स्वीकृता, किन्तु टीकाकारेण चन्द्रशेखरेण सा व्याख्याता।, दाक्षि.-देव.-पाठयोः संक्षेपीकरणाय सा निष्कासिता।
10. का.-पाठे "हृदयशस्त्रधरस्ये" ति।, मै.-बं.-पाठयो "हृदयप्रस्तरस्ये" ति।, दाक्षि.-पाठे "हृदयविषस्ये" ति।, देव.-पाठे विशदीकरणं क्रियते। (सर्वेषु पाठेषु रंगकर्मिभिः परिवर्तनं कृतम्।)
11. केवलं मै.-पाठ उक्तिरियं गौतम्या मुखे स्थापिता वर्तते।, अन्यत्र शकुन्तलाया मुखे वर्तते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(इति पटान्तेन मुखमावृत्य रोदिति।) [116]

शार्ङ्गरवः[1]- इत्थमात्मकृतं प्रतिहतं चापलं दहति। [117]

अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात्सङ्गतं रहः[2]।
अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम्॥ 5 - 24॥ [118]

राजा- अयि भोः। किमत्रभवतीप्रत्ययादेवास्मान् संयुतदोषाक्षरैः क्षिणुथ[3]। [119]

शार्ङ्गरवः- (सासूयम्[4]) श्रुतं भवद्भिरधरोत्तरम्। [120]

आ जन्मनः शाठ्यमशिक्षितो यस्तस्याप्रमाणं वचनं जनस्य।
परातिसन्धान[5]मधीयते यैर्विद्येति ते सन्तु किलाप्तवाचः॥ 5 - 25॥ [121]

राजा- भो सत्यवादिन्, अभ्युपगतं तावदस्माभिरेवम्। किं पुनरिमाम् अतिसन्धाय[6] लभ्यते। [122]

शार्ङ्गरवः- विनिपातः। [123]

राजा - विनिपातः पौरवैः प्रार्थ्यत इति न श्रद्धेयम्[7]। [124]

शारद्वतः- शार्ङ्गरव, भोः राजन्, किमुत्तरेण। अनुष्ठितो गुरोः संदेशः। प्रतिनिवर्तामहे वयम्। [125]

(राजानं प्रति) -

तदेषा भवतः कान्ता[8], त्यज वैनां गृहाण वा।
उपपन्ना[9] हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी॥ 5 - 26॥ [126]

गौतमि, गच्छाग्रतः।

(इति प्रस्थिताः) [127]

शकुन्तला -कहं इमिणा किदवेण विप्पलद्ध म्हि। तुम्हे वि मं परिच्चअह। (कथं अनेन कितवेन विप्रलब्धास्मि। यूयमपि मां परित्यजथ[10]।) (इत्यनुप्रतिष्ठते।) [128]

गौतमी - (स्थित्वा) वच्छ सङ्गरव, अणुगच्छदि इअं खु णो करुणपरिदेविणी सउंदला। पच्चादेसपरुसे भत्तुणि किं वा मे पुत्तिआ करेदु। (वत्स शार्ङ्गरव, अनुगच्छतीयं खलु नः करुणपरिदेविनी शकुन्तला। प्रत्यादेशपरुषे[11] भर्तरि किं वा

---

1. का.-पाठे भागुरेरियमुक्तिः।, अन्यत्र भागुरिरिति नाम न कश्चिन्नटो वर्तते।
2. का.-पाठे "परीक्ष्य सर्वं कर्तव्यं विशेषात् संविदः क्रिया" इति।, मै.-बं.-पाठयोः "अतः समीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात् संगतं रह" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठयोः संमिश्रणं दृश्यते।
3. का.-पाठे "ऽतिबलेन क्षिण्वन्ति भवन्त" इति।, मै.-पाठे "ऽवलेपेन क्षिण्वन्ति भवन्त" इति।, बं.-पाठे "सम्भृतदोषैरधिक्षिपथे" ति।, दाक्षि.-पाठे "संभृतरोषाक्षरैरधिक्षिपसी" ति।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
4. का.-पाठे रंगसूचनेयं नास्ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
5. का.-पाठे "ष्वभिसन्धानमि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
6. का.-पाठे "ष्वभिसन्धाये" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
7. का.-पाठे "तं नाहं प्रार्थय" इति।, मै.-बं.-पाठयो-"र्विनिपातः पौरवैर्लभ्यत इत्यश्रद्धेयमेतदि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
8. का.-पाठेषु "पत्नी" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
9. का.-पाठे "षूपयन्तुर्हीं" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
10. का.-पाठे "यूयमपि मां परित्यक्तुमिच्छथ, तत्का गतिरि" ति।, मै.-बं.-पाठयोः "यूयमपि मां परित्यजथे" ति। दाक्षि.-पाठे "यूयमपि मां परिदेविनीं परित्यजथे" ति।, देव.-पाठे संक्षेपीकरणं क्रियते।
11. का.-पाठे "प्रत्यादेशकलुष" इति।, मै.-पाठे "प्रत्यादेशदारुण" इति।, ब.-पाठे "प्रत्यादेशपिशुन" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

मे पुत्रिका[1] करोतु।) [129]

शार्ङ्गरवः - (सरोषं निवृत्य) किं पुरोभागे, स्वातन्त्र्यमवलम्बसे। [130]

(शकुन्तला भीता वेपते) [131]

शकुन्तले,

यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा त्वमसि किं पितुरुत्कुलया[2] त्वया।
अथ तु वेत्सि शुचि व्रतमात्मनः पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम्।। 5 - 27।। [132]

तिष्ठ। साधयामो वयम्। [133]

राजा- भोस्तपस्विन्, किमत्रभवतीं विप्रलभसे। [134]

कुमुदान्येव शशाङ्कः, सविता बोधयति पङ्कजान्येव।
वशिनां हि परपरिग्रहसंश्लेष-पराङ्मुखी वृत्तिः[3]।। 5 - 28।। [135]

शार्ङ्गरवः- यदा तु पूर्ववृत्तम् [4]अन्यसङ्गाद् विस्मृतो भवांस्तदा कथमधर्मभीरुः[5]? । [136]

राजा - (पुरोहितं प्रति) भवन्तम् एवात्रगुरुलाघवं[6] पृच्छामि। [137]

मूढः स्यामहमेषा वा वदेन्मिथ्येति संशये।
दारत्यागी भवाम्याहो परस्त्रीस्पर्शपांसुलः।। 5 - 29।। [138]

पुरोहितः- (विचार्य) यदि तावदेवं क्रियताम्। [139]

राजा- अनुशास्तु मां भवान्। [140]

पुरोहितः- अत्रभवती तावदाप्रसवादस्मद् गृहे तिष्ठतु। कुत इदमुच्यत इति चेत्[7], त्वं साधुभिरादिष्टः प्रथममेव चक्रवर्तिनं पुत्रं जनयिष्यसीति। स चेन्मुनिदौहित्रस्तल्लक्षणोपपन्नो भविष्यति, अभिनन्द्य शुद्धान्तमेनां प्रवेशयिष्यसि। विपर्यये तु पितुरस्याः समीपनयनमवस्थितमेव। [141]

राजा- यथा गुरुभ्यो रोचते। [142]

पुरोहितः- वत्स, अनुगच्छ माम्। [143]

शकुन्तला- भअवदि वसुहे, देहि मे विवरं। (भगवति वसुधे, देहि मे विवरम्[8]।) [144]

(इति रुदती प्रस्थिता, निष्क्रान्ता सह पुरोधसा तपस्विभिश्च।) [145]

(राजा शापव्यवहितस्मृतिः शकुन्तलागतमेव चिन्तयति।) [146]

---

1. मै.-बं.-पाठयो-"स्तपस्विनी" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
2. का.-पाठे "किं पितृशोकदये" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
3. केवलं मै.-पाठे "पराङ्मुखं चेतसि" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।
4. का.-मै.-पाठयोः "राजन्, अथ पूर्वपरिग्रह" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ बं.-पाठमनुसरतः।
5. मै.-बं.-पाठयोः "कथमधर्मभीरोस्तव दारपरित्याग" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
6. मै.-पाठे "गुरुलाघवञ्ज्ञमि" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।
7. का.-पाठे वाक्यमिदं नास्ति।, मै.-पाठे राज्ञो मुखे "कुत इदमुच्यत" इति प्रश्नः।, बं.-पाठेऽपि राज्ञो मुखे "कुत इदमि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसृत्य संक्षेपीकरणाय पुरोहितस्यैव वाक्यान्तर्गतमिदं प्रस्तौति।
8. मै.-पाठे "वसुन्धरे, देहि मेऽवकाशमि" ति।, बं.-पाठे "भगवति वसुन्धरे, देहि म अन्तरमि" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(नेपथ्ये) [147]

आश्चर्यम्.......। [148]

राजा- (आकर्ण्य) किं नु खलु स्यात्। [149]

(प्रविश्य)

पुरोहितः- (सविस्मयम्) देव, अद्भुतं खलु संवृत्तम्। [150]

राजा- किमिव। [151]

पुरोहितः- देव, परावृत्तेषु कण्वशिष्येषु, [152]

सा निन्दन्ती स्वानि भाग्यानि बाला
बाहूत्क्षेपं क्रन्दितुं च प्रवृत्ता।..... [153]

राजा - किं च। [154]

पुरोहितः-

.....स्त्रीसंस्थानं चाप्सरस्तीर्थमाराद्।
उत्क्षिप्यैनां ज्योतिरेकं जगाम[1]॥ 5 - 30॥ [155]

(सर्वे विस्मयं रूपयन्ति) [156]

राजा- भगवन्, प्रागपि सोऽस्माभिरर्थः प्रत्यादिष्टः एव। किं वृथा[2] तर्कोणाकृष्यते। विश्राम्यतु भवान्। [157]

पुरोहितः- (विलोक्य) विजयस्व। (इति निष्क्रान्तः) [158]

राजा- वेत्रवति, पर्याकुलोऽस्मि। शयनभूमिमार्गमादेशय। [159]

प्रतीहारी - इदो इदो देवो। (इतो इतो देवः।) (इति प्रस्थिता) [160]

राजा-

कामं प्रत्यादिष्टां स्मरामि न परिग्रहं मुनेस्तनयाम्।
बलवत्तु दूयमानं प्रत्यायतीव मे हृदयम्॥ 5 - 31॥ [161]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे) [162]

॥ पञ्चमोऽङ्कः[3]॥ [163]

---

1. का.-पाठ "आक्षिप्यैव ज्योतिरेनां तिरोऽभूदि" ति।, मै.-पाठ "आक्षिप्येव ज्योतिरेनां तिरोऽभूदि" ति।, बं.-पाठे "क्षिप्त्वैवाशु ज्योतिरेनां तिरोऽभूदि" ति।, दाक्षि.-पाठ "आक्षिप्येनां ज्योतिरेकं तिरोऽभूदि" ति।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते। (किन्तु देव.-पाठे "जगामे" ति परोक्षे लिट्-प्रयोगश्चिन्त्य एव।)
2. का.-पाठे "वृथे" ति।, मै.-पाठे "मिथ्ये" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
3. का.-पाठे प्रत्येकस्याङ्कस्य नाम न दीयते।, मै.-बं.-पाठयोः "शकुन्तला-प्रत्याख्यानं नाम" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ षष्ठोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशति नागरिकः स्यालः, पश्चाद्-बद्धं[1] पुरुषमादाय रक्षिणौ च) [1]

रक्षिणौ- (ताडयित्वा) अले कुम्भीलआ, कहेहि कहिं तुए एशे मणिबन्धणुक्किण्णणामहेए लाअकीए अङ्गुलीअए शमाशादिए। (अरे कुम्भीरक, कथय कुत्र त्वयैतन्मणिबन्धनोत्कीर्ण[2] नामधेयं राजकीयम् अङ्गुलीयकं समासादितम्।) [2]

पुरुषः - (भीतिनाटितकेन) पशीदन्तु भावमिश्शे। हगे ण ईदिशकम्मकाली। (प्रसीदन्तु भावमिश्राः। अहं नेदृशकर्मकारी।) [3]

प्रथमः - किं सोहणे बम्हणेत्ति कलिअ रज्जा[3] पडिग्गहे दिण्णे। (किं शोभनो ब्राह्मण इति कलयित्वा राज्ञा परिग्रहो दत्तः।) [4]

पुरुषः- सुणध दाणिं। हगे शक्कावदालब्भंतरालवाशी धीवले। (शृणुतेदानीम्। अहं शक्रावताराभ्यन्तरालवासी धीवरः।) [5]

द्वितीयः- पाडच्चला, किं अम्हेहिं जादी पुच्छिदा। (पाटच्चर, किमस्माभिर्जातिः पृष्टा।) [6]

श्यालः - सूअअ[4], कहेदु शव्वं अणुक्कमेण। मा णं अन्तरा पडिबंधह। (सूचक,कथयतु सर्वमनुक्रमेण। मैनम् अन्तरे प्रतिबन्धय।) [7]

उभौ- जं आवुत्ते आणवेदि, कहेहि। (यदावुत्त आज्ञापयति कथय[5]।) [8]

पुरुषः - अहकेजालुग्गालादिहिं मच्छबन्धणोवाएहिं कुडुम्बभलणं कलेमि। (अहं जालोद्गालादिभिर्मत्स्यबन्धनोपायैः कुटुम्बभरणं करोमि।) [9]

श्यालः - (विहस्य) विसुद्धो दाणिं आजीवो। (विशुद्ध इदानीम् आजीवः[6]।) [10]

पुरुषः-

> **शहजे किल जे विणिन्दिए ण हु दे कम्म विवज्जणीअए।**
> **पशुमालणकम्मदालुणे अणुकम्पामिदु जेव्व शोत्तिए॥ 6 - 1॥ [11]**
> **(सहजं किल यद्विनिन्दितं न खलु तत्कर्म विवर्जनीयम्।**
> **पशुमारणकर्मदारुणोऽनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रियः[7]॥ 6 - 1॥) [11]**

श्यालः- तदो तदो। (ततस्ततः।) [12]

---

1. केवलं बं.-पाठे "बाहुबन्धमि" ति।, अन्यत्र सर्वत्र समानः पाठो वर्तते।
2. का.-पाठे "महामणिप्रस्तरोत्कीर्ण०" इति।, मै.-बं.-पाठयो "र्महारत्नभासुरमुत्कीर्णनामाक्षरमि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
3. का.-पाठेषु "लञ्ञा" इति मागधीरूपं प्रयुक्तम्। (ईदृशं रूपं सम्राजोऽशोकस्य शिलालेखे समुपलभ्यते।), दाक्षि.-पाठे "रण्णा" इति स्थानिकं रूपं प्रयुक्तम्।, देव.-पाठे महाराष्ट्री-प्राकृतं दृश्यते।
4. अत्र द्वितीयस्य नाम सूचक इति प्रतीयते। (किन्तु पश्चाद् भागे वैपरित्यं जायते।)
5. इतः परं दाक्षि.-पाठे "इति तूष्णीं तिष्ठती" ति।,
6. का.-वं.-पाठयोः "०इदानीं त आजीव" इति।, मै.-पाठे "०अस्येदानीमाजीव" इति।, दाक्षि.-पाठः का.-पाठमनुसरति।, देव.-पाठे संक्षेपः क्रियते।
7. मै.-पाठे "पशुमारणं करोति कारणात् षट्कर्मा विद्वान्नपि श्रोत्रिय" इति।, बं.-पाठे "पशुमारणं करोति दारुणमनुकम्पामृदुलोऽपि सौनिक" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

पुरुषः - एक्कशिशं दिअशे खण्डशो लोहिअमच्छे मए कप्पिदे जाव, तश्श उदलब्भन्तले एदं लदणभाशुलं अंगुलीअअं देक्खिअ, पच्छा अहके शे विक्कआअ दंशअन्ते, गहिदे भावमिश्शेहिं। मालेह वा मुञ्चेह वा[1]। अअं शे आअमवुत्तंते। (एकस्मिन् दिवसे खण्डशो रोहितमत्स्यो मया कल्पितो यावत्।

तस्योदराभ्यन्तर इदं रत्नभासुरमङ्गुलीयकं दृष्ट्वा पश्चादहं तस्य विक्रयाय दर्शयन् गृहीतो भावमिश्रैः। मारयत वा मुञ्चत वा। अयमस्यागमवृत्तान्तः।) [13]

श्यालः- जाणुअ[2], विस्सगन्धी गोहादी मच्छबन्धो एव्व णिस्संसअं। अङ्गुलीअअदंसणं से विमरिसिदव्वं। राअउलं एव्व गच्छामो। (जानुक, विस्रगन्धी गोधादी मत्स्यबन्ध एव निःसंशयम्[3]। अङ्गुलीयकदर्शनमस्य विमर्शयितव्यम्। राजकुलमेव गच्छामः।) [14]

रक्षिणौ - तह। गच्छ अले गंडभेदअ[4]। (तथा। गच्छ, अरे गंडभेदक।) [15]

(इति सर्वे परिक्रामन्ति) [16]

श्यालः- सूअअ, इमं गोपुरदुआरे[5] अप्पमत्ता पडिवालह जाव इदं अङ्गुलीअअं जहागमणं भट्टिणो णिवेदिअ तदो सासणं पडिच्छिअ णिक्कमामि। (सूचक, इमं गोपुरद्वारेऽप्रमत्तौ प्रतिपालयतं यावदिदमङ्गुलीयकं यथागमनं भर्तुर्निवेद्य ततः शासनं प्रतीक्ष्य निष्क्रमामि[6]।) [17]

उभौ - पविसदु आवुत्ते शामिप्पशादश्श। (प्रविशत्वावुत्तः स्वामिप्रसादाय।) [18]

(निष्क्रान्तः श्यालः।) [19]

प्रथमः- जाणुअ[7], चिलाअदि खु आवुत्ते। (जानुक, चिरायते खल्वावुत्तः।) [20]

द्वितीयः- णं अवशलोवशप्पणीआ लाआणो। (नन्ववसरोपसर्पणीयाः राजानः।) [21]

प्रथमः - जाणुअ, फुल्लंति मे हत्था इमश्श वहस्स शुमणा पिणद्धुं। (जानुक, प्रस्फुरतो मम हस्तावस्य वधार्थं सुमनसः पिनद्धुम्[8]।) (इति पुरुषं निर्दिशति।) [22]

पुरुषः- ण अलुहदि भावे अकालणमालणं भाविदुं। (नार्हति भावोऽकारण-मारणं भावयितुम्[9]।) [23]

---

1. का.-पाठे "०कुट्टेध वे" ति।, मै.-पाठे "०पिट्टेध वे" ति।, बं.-पाठे "०कुस्टेध वे" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठम् अनुसरति।
2. का.-पाठे "ष्वङ्गुलीयकमाघ्राये" ति रंगसूचनापूर्वकं जानुकेति संबोधनम्।, दाक्षि.-देव.-पाठयोर्नास्तीयं रंगसूचना। (पूर्वं तु बृहत्पाठेष्वंगुलीयकमाघ्राय संवादः प्रवर्तते, लघुपाठयोः धीवरस्य शरीरगन्धेन)
3. का.-बं.-पाठयो "र्मत्स्योदरसंस्थितमिति नास्ति संदेह" इति।, मै.-पाठे "मत्स्योदराभ्यन्तरगत इति न संदेह" इति।, दाक्षि.-पाठे "विस्रगन्धी घोराकृतिर्मत्स्यबन्ध एव निस्संशयमि" ति।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
4. का.-पाठे "गण्ठिभेदअ" इति।, मै.-पाठे "गण्ठिच्छेदआ" इति।, बं.-पाठे "गण्ठिश्चेदआ" इति।, दाक्षि.-पाठे "गन्धिभेअअ" इति।, देव. -पाठे परिवर्तनं दृश्यते। प्राकृतभाषाः / प्रादेशिक-शब्दाश्च भिन्ना एव वर्तन्ते।
5. का.-पाठेषु "गोउरदुव्वेए / गोउरदुआरए / गोउरदुआरे" इति। (गोकुलद्वारे?), दाक्षि.-पाठे "गोउरदुवारे" इति।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
6. का.-पाठे "सूचक, इह मां गोपुरद्वारेऽप्रमत्तौ प्रतिपालयतं यावद् इदं यथागममङ्गुलीयकं भर्तुरुपनीय तदीयशासनं प्रतीष्य निष्क्रमामी" ति।, मै.-बं.-पाठयोः "० यावद्राजकुलं प्रविश्य निष्क्रामामी" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
7. अत्र द्वितीयस्य कृते जानुकेति नाम प्रयुज्यते। पूर्वोक्त-व्यवस्थात्र विपरीता जायते।, विसंगतिरियं का.-पाठात् दाक्षिणात्य-पाठेऽपि प्रचलितेति दृश्यते।, मै.-बं.-पाठयोर्नास्त्येतादृशी विसंगतिः।
8. का.-पाठे "व्यसनं पिनद्धुमि" ति।, मै.-पाठ "इमं ग्रन्थिभेदकं घातयितुमि" ति।, बं.-पाठ "इमं ग्रन्थिछेदकं व्यापादयितुमि" ति।, दाक्षि. -पाठे "वध्यस्य सुमनसः पिनद्धुमि" ति।, देव.-पाठे किंचित् परिवर्तनं क्रियते।
9. का.-पाठे "नार्हति भ्रातृभ्रातृकोऽकालमारको भवितुमि" ति।, मै.-पाठे नास्तीदं वाक्यम्।, बं.-पाठे "नार्हति भावः, अकारणमारको भवितुमि" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ बं.-पाठमनुसरतः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

द्वितीयः- (विलोक्य) एशे अह्माणं शामी पत्तहत्थे लाअशाशणं पडिच्छिअ इदोमुहे देक्खीअदि। गिद्धबली भविश्शशि, शुणो मुहं वा देक्खिश्शशि। (एष नः स्वामी पत्रहस्तो[1] राजशासनं प्रतीक्ष्येतोमुखो दृश्यते। गृध्रबलिर्भविष्यसि, शुनो मुखं वा द्रक्ष्यसि[2]।) [24]

(प्रविश्य) [25]

श्यालः[3] - सूअअ, मुंचेदु एसो जालोअजीवी, उववण्णो खु अङ्गुलीअअस्स आअमो (सूचक, मुच्यतामेष जालोपजीवी। उपपन्नः खल्वङ्गुलीयकस्यागमः[4]।) [26]

सूचकः - जह आवुत्ते भणादि। (यथावुत्तो भणति।) [27]

द्वितीयः- एशे जमशदणं पविशिअ पडिणिवुत्ते। (एष यमसदनं प्रविश्य प्रतिनिवृत्तः[5]।) [28]

(इति पुरुषं परिमुक्तबन्धनं करोति[6]।) [29]

पुरुषः- (श्यालं प्रणम्य) भट्टा, अह कीलिशे मे आजीवे। (भर्तः, अथ कीदृशो मे आजीवः[7]।) [30]

श्यालः - एसो भट्टिणा अङ्गुलीअअमुल्लसम्मिदो पसादो वि दाविदो। (एष भर्त्राऽङ्गुलीयकमूल्यसम्मितः प्रसादोऽपि[8] दापितः।) [31]

(इति पुरुषाय स्वं प्रयच्छति[9]।) [32]

पुरुषः - (सप्रणामं प्रतिगृह्य) भट्टा अणुग्गहीदम्हि। (भर्तः, अनुगृहीतोऽस्मि।) [33]

सूचकः- एशे णाम अणुग्गहे, जे शूलादो अवदालिअ हत्थिक्कन्धे पडिट्ठाविदे। (एष नामानुगृहो, यच्छुलाद् अवतार्य हस्तिस्कन्धे प्रतिष्ठापितः।) [34]

जानुकः- आवुत्त, पलिदोशं कहेहि (= कधेदि)[10] , तेण अङ्गुलीअएण भट्टिणो शम्मदेण होदव्वं। (आवुत्त, पारितोषं कथय

---

1. का.-पाठेषु नास्त्ययं शब्दः।, दाक्षि.-पाठेऽपि नास्ति।, देव.-पाठे शब्दोऽयमधिकः प्राप्यते।
2. का.-पाठेषु "शकुलानां मुखं प्रेक्षसेऽथवा गृध्रशृगालानां बलिर्भविष्यती" ति।, दाक्षि.-पाठे "गृध्रबलिरि" त्येव।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते। एभिः पाठान्तरैस्तु सर्वेषां पाठानां रंगावृत्तित्वमेव दृढीभवति।
3. का.-पाठेषु स्यालस्योक्तिर्वर्तते- "शीघ्रं शीघ्रमेतम्।, **पुरुषः**- हा हतोऽस्मि। (इति विषादं नाटयती)" त्यधिकम्।, दाक्षि.-पाठे तादृशं नास्ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
4. का.-पाठेष्वितः परम् "अस्माकं स्वामिनैव कथितमि" त्यधिकम्।, दाक्षि.-देव.-पाठाभ्यां तन्निष्कास्यते।
5. का.-पाठे "यमवसतिं गत्वा गुडखण्डं च दत्त्वा प्रतिनिवृत्त" इति।, मै.-बं.-पाठयो "र्यमवसतिं खलु गत्वा, प्रतिनिवृत्त एष" इति।, देव. -पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
6. का.-पाठे "पुरुषं मुञ्चती" ति।, मै.-बं.-पाठयोः "पुरुषं बन्धनान्मोचयती" ति।, दाक्षि.-पाठे "पुरुषमुन्मुक्त-बन्धनं करोती" ति।, देव. -पाठे परिवर्तनं क्रियते।
7. का.-पाठेषु पुरुषः स्यालं प्रणम्य भणति- "भर्तः, त्वदीयो मे जीवित" इति।, मै.-पाठे "भट्टारक, तव क्रीतं / कृते साम्प्रतं मम जीवितमि" ति।, बं.-दाक्षि.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
8. का.-पाठे "पारितोषिकोऽपि०" इति।, मै.-पाठे "पारितोषिकस्ते प्रसादीकृत" इति।, बं.-पाठे "पारितोषिकं ते प्रसादीकृतमि" ति।, दाक्षि. -पाठे "पारितोषिकः प्रदापित" इति।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
9. का.-पाठे "सहर्षं प्रगृह्ये" त्येव।, मै.-बं.-पाठयोः "पुरुषाय / धीवराय कटकं ददाति / प्रयच्छती" ति।, दाक्षि.-पाठे "पुरुषायार्थं प्रयच्छती" ति।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते। (आहार्याभिनये भेदः परिलक्ष्यते।)
10. का.-पाठे "कहेदी" ति।, मै.-पाठे नास्तीदं वाक्यम्।, बं.-पाठे "कधेदी" ति।, दाक्षि.-पाठे "कहेदी" ति।, किन्तु देव.-पाठे "कहेही" ति। तस्य "कथये" ति राघवभट्टेन प्रदत्ता छाया क्षतियुक्ता।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(= कथयति), तेनाङ्गुलीयकेन भर्तुः सम्मतेन[1] भवितव्यम्।) [35]

श्यालः - ण तस्सिं महारुहं रदणं भट्टिणो बहुमदं त्ति तक्केमि। तस्स दंसणेण भट्टिणो अभिमदो जणो सुमराविदो। मुहुत्तअं पकिदिगम्भीरो वि पज्जुसुअणअणो आसी। (न तस्मिन्महार्हं रत्नं भर्तुर्बहुमतमिति तर्कयामि। तस्य दर्शनेन भर्तुरभिमतो जनः स्मारितः[2]। मुहूर्तं प्रकृतिगम्भीरोऽपि पर्युत्सुकनयन[3] आसीत्।) [36]

सूचकः- शेविदं णाम आवुत्तेण। (सेवितं नामावुत्तेन[4]।) [37]

जानुकः- णं भणाहि इमश्श कए मच्छिआभत्तुणो त्ति। (ननु भण, अस्य कृते मात्स्यिकभर्तु[5]रिति।) [38]

(इति पुरुषमसूयया पश्यति।) [39]

पुरुषः - भट्टालक, इदो अद्धं तुम्हाणं शुमणोमुल्लं होदु। (भट्टारक, इतोऽर्धं युष्माकं सुमनोमूल्यं[6] भवतु।) [40]

जानुकः - एत्तके जुज्जइ। (एतावद् युज्यते।) [41]

श्यालः- धीवर, महत्तरो तुमं पिअवअस्सओ दाणिं मे संवुत्तो। कादम्बरीसक्खिअं अम्हाणं पढमसोहिमदं इच्छीअदि। ता सोण्डिआपणं एव्व गच्छामो। (धीवर, महत्तरस्त्वं प्रियवयस्यक इदानीं मे संवृत्तः। कादम्बरीसखित्वम्[7]स्माकं प्रथमशोऽभिमतमिष्यते। तच्छौण्डिकापणम्[8] एव गच्छामः।) [42]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे) [43]

(प्रवेशकः) [44]

(ततः प्रविशत्याकाशयानेन सानुमती[9] नामाप्सराः।) [45]

सानुमती- णिव्वट्टिदं मए पज्जाअणिवत्तणिज्जं अच्छरातित्थसण्णिज्झं जाव साहुजणस्स अभिसेअकालो त्ति। संपदं इमस्स राएसिणो उदंतं पच्चक्खीकरिस्सं। मेणआसम्बन्धेण सरीरभूदा मे सउंदला। ताए अ दुहिदुणिमित्तं आदिट्ठ्पुव्व म्हि। (समन्तादवलोक्य) किं णु खु उदुच्छवे वि णिरुच्छवारम्भं विअ राअउलं दीसइ। अत्थि मे विहवो पणिधाणेण सव्वं परिण्णादुं। किंदु सहीए आदरो मए माणइदव्वो। होदु। इमाणं एव्व उज्जाणपालिआणं तिरक्खरिणीपडिच्छण्णा पस्सवत्तिणी भविअ उवलहिस्सं। (निवर्तितं मया पर्यायनिर्वर्तनीयमप्सरस्तीर्थसांनिध्यं यावत्साधुजनस्याभिषेककाल इति। साम्प्रतमस्य राजर्षेरुदन्तं प्रत्यक्षीकरिष्यामि। मेनकासम्बन्धेन शरीरभूता मे शकुन्तला। तया च दुहितृनिमित्तम्[10]

---

1. का.-पाठे "महार्घरत्नेन तेनाङ्गुलीयकेन भर्तुः प्रथमबहुमतेने" ति।, मै.-पाठे "ऽङ्गुरीयकेण स्वामिनो बहुमतेने" ति।, बं.-पाठे "महार्हरत्नेन तेनाङ्गुरीयकेन स्वामिनो बहुमतेने" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठम् अनुसरति।
2. का.-पाठे "कोऽप्यभिलषितो जनो भर्त्रा स्मृत" इति।, मै.-पाठे "कोऽपि हृदयवर्ती भर्त्रा स्मृत" इति।, बं.-पाठे "कोऽपि हृदयस्थितो जनो भर्त्रा स्मृत" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
3. का.-पाठेषु "पर्युत्सुकमना" इति।, दाक्षि.-पाठे "पर्यश्रुनयन" इति।, देव.-पाठे संमिश्रणं दृश्यते।
4. का.-पाठे "साधु मन्त्रितं नामावुत्तेने" ति।, मै.-बं.-पाठयोः "तोषित इदानीं भर्ता राउत्तेने" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
5. का.-पाठे "मत्स्यलिकाशत्तोरि" ति।,मै.-बं.-दाक्षि.-पाठेषु "मत्स्यशत्रोरि" ति।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
6. का.-पाठे "सुमनोमूल्यमि" ति।, मै.-पाठे "मूल्यकमि" ति।, बं.-पाठे "शुलामुल्लं=सुरामूल्यमि" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
7. का.-पाठे "कादम्बरीसाक्षिकमि" ति।, मै.-पाठे "कादम्बरीस्वस्तिकमि" ति।, बं.-पाठे "कादम्बरीसग्धिकमि" ति।, दाक्षि.-पाठः का.-पाठमनुसरति।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
8. का.-पाठे "शुण्डिकाशालामि" ति।, मै.-पाठे "शुण्डिकागारमि" ति।, बं.-पाठे "शौण्डिकागारमि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
9. का.-पाठेऽक्षमालेति।, मै.-बं.-पाठयोर्मिश्रकेशीति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति। (भिन्नेषु नामसु आहार्यभेदः / केशभूषाभेदः / वेशभूषाभेदः परिलक्ष्यते।)
10. का.-पाठे "तया चैतन्निमित्तमि" ति।, मै.-बं.-पाठयो-"स्तयापि संदिष्टास्मी" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठम् अनुसरति। (बृहत्पाठेषु शकुन्तलया अक्षमाला / मिश्रकेशी संदिष्टेति कथ्यते। लघुपाठयोस्तु मेनकया सानुमती संदिष्टेति कथ्यते।)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

आदिष्टपूर्वास्मि। किं नु खलु ऋतूत्सवेऽपि निरुत्सवारम्भमिव राजकुलं दृश्यते। अस्ति मे विभवः प्रणिधानेन सर्वं परिज्ञातुम्। किं तु सख्याः आदरो मया मानयितव्यः। भवतु। अनयोरेवोद्यानपालिकयोस्तिरस्करिणीप्रतिच्छन्ना पार्श्ववर्तिनी भूत्वोपलप्स्ये।) [46]

(इति नाट्येनावतीर्य स्थिता) [47]

(ततः प्रविशति चूताङ्कुरमवलोकयन्ती चेटी। अपरा च पृष्ठतस्तस्याः।) [48]

प्रथमा[1] -

आतम्महरिअपंडुर जीविद सत्तं वसंतमासस्स।
दिट्ठो सि चूदकोरअ उदुमंगल तुमं पसाएमि[2]॥
(आताम्रहरितपाण्डुर जीवित सत्यं वसन्तमासस्य।
दृष्टोऽसि चूतकोरक ऋतुमंगल त्वां प्रसादयामि[3]॥ 6 - 2॥) [49]

द्वितीया - परहुदिए, किं एआइणी मन्तेसि। (परभृतिके, किमेकाकिनी मन्त्रयसे।) [50]

प्रथमा - महुअरिए, चूतकलिअं देक्खिअ उम्मत्तिआ परहुदिआ होदि। (मधुकरिके[4], चूतकलिकां दृष्ट्वोन्मत्ता परभृतिका भवति।) [51]

द्वितीया - (सहर्षं त्वरयोपगम्य) कहं उवट्ठिदो महुमासो। (कथमुपस्थितो मधुमासः।) [52]

प्रथमा- महुअरिए, तव दाणिं कालो एसो मदविब्भमगीदाणं। (मधुकरिके, तवेदानीं काल एष मदविभ्रमगीतानाम्।) [53]

द्वितीया - सहि, अवलम्ब मं जाव अग्गपादट्ठिआ भविअ चूदकलिअं गेण्हिअ कामदेवच्चणं करेमि। (सखि, अवलम्बस्व मां[5] यावदग्रपादस्थिता भूत्वा चूतकलिकां गृहीत्वा कामदेवार्चनं करोमि।) [54]

प्रथमा- जइ मम वि खु अद्धं अच्चणफलस्स। (यदि ममापि खलु अर्धम् अर्चनफलस्य।) [55]

द्वितीया- अकहिदे वि एदं संपज्जइ। जदो एक्कं एव्व णो जीविदं दुधा ट्ठिदं सरीरं। (सखीमवलम्ब्य स्थिता चूताङ्कुरं गृह्णाति।) अए, अप्पडिबुद्धो वि चूदप्पसवो एत्थ बन्धणभङ्गसुरभी होदि।

(अकथितेऽप्येतत्संपद्यते। यत एकमेव नौ जीवितं द्विधा स्थितं शरीरम्[6]। अये, अप्रतिबुद्धोऽपि चूतप्रसवोऽत्र बन्धनभङ्गसुरभिर्भवति[7]।) [56]

(इति कपोतहस्तकं कृत्वा) [57]

तुमं सि मए चूदंकुर दिण्णो कामस्स गहीदधणुअस्स।
पहिअजणजुवइलक्खो पंचाब्भहिओ सरो होहि॥ 6 - 3॥ [58]

---

1. केवलं मै.-पाठे प्रथमा रंगभूमिं प्रविश्य "कथमुपस्थितो मधुमास" इति प्रश्नपूर्वकं गाथामिमां गायति।
2. का.-पाठेषु शब्दभेदे सत्यपि समानार्थावगतिः।, देव.-पाठः का.-पाठं बहुशोऽनुसरति।
3. केवलं दाक्षि.-पाठे "चूतं हर्षितपिककं जीवितसदृशं वसन्तमासस्य। षट्चरणचरणभग्नम् ऋतुमङ्गलमिव पश्यामि।।" इति (टीकाकारेण काटयवेमेन स्वीकृतः पाठः) दीयते। अन्यत्र सर्वत्र समानः पाठः।
4. केवलं बं.-पाठे "महुरिए=मधुरिक" इत्यपपाठः। (परभृतिकया सह मधुकरिकैव संगच्छते।)
5. मधुकरिका (=मधुमक्षिका) कथं परभृतिकामवलम्बनं प्रदातुं शक्नोतीति प्रश्नः। न तर्कसंगतेयं योजना। अत्र मैथिल-पाठ एव युक्तियुक्तः प्रतीयते। (परभृतिका-मधुकरिकयोश्चेटीरूपेणात्र प्रस्तुतिरप्यसमीचीना। निसर्ग-प्रधाने नाटकेऽस्मिन् पक्षिवेशधारिणी काऽपि नटी परभृतिका भवेत्, जन्तुविशेषत्वेनान्या च नटी मधुकरिकायाः पात्रमभिनयेत्- तदेव सुसंगतं स्यात्।)
6. केवलं मै.-पाठे "यथा एकमेव नः शरीरं द्विधा विभक्तं प्रजापतिने" ति।
7. का.-पाठेष्वितः परं "नमो भगवते मकरध्वजाये" त्यधिकं वाक्यम्।, देव.-दाक्षि.-पाठतो निष्कास्यते तत्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

त्वमसि मया[1] चूताङ्कुर दत्तः कामाय गृहीतधनुषे।
पथिकजनयुवतिलक्ष्यः[2] पञ्चाभ्यधिकः शरो भव॥ 6 - 3॥) [58]

(इति चूताङ्कुरं क्षिपति) [59]

(प्रविश्यापटीक्षेपेण[3] कुपितः) [60]

कञ्चुकी - मा तावत् अनात्मज्ञे, देवेन प्रतिषिद्धे वसन्तोत्सवे त्वमाम्रकलिकाभङ्ग[4] किमारभसे। [61]

उभे- (भीते) पसीददु अज्जो। अगहीदत्थाओ वअं। (प्रसीदत्वार्यः। अगृहीतार्थे आवाम्।) [62]

[<**कञ्चुकी**[5] - न किल श्रुतं युवाभ्यां यद् वासन्तिकैस्तरुभिरपि देवस्य शासनं प्रमाणीकृतं तदाश्रयिभिः पत्रिभिश्च। तथा हि-[63]

चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका बध्नाति न स्वं रजः
संनद्धं यदपि स्थितं कुरुबकं तत्कोरकावस्थया।
कण्ठेषु स्खलितं गतेऽपि शिशिरे पुंस्कोकिलानां रुतं
शङ्के संहरति स्मरोऽपि चकितस्तूणार्धकृष्टं शरम्॥ 6 - 4॥ [64]

उभे[6]- णत्थि संदेहो। महाप्पहाओ खु राएसी। (नास्ति सन्देहः। महाप्रभावो राजर्षिः।) [65]

प्रथमा - अज्ज, कति दिअहाइं अम्हाणं मित्तावसुणा रट्ठिएण भट्टिणीपाअमूलं पेसिदाणं। इत्थं अ णो पमदवणस्स पालणकम्म समप्पिदं। ता आअन्तुअदाए अस्सुदपुव्वो अम्हेहिं एसो वुत्तन्तो।

(आर्य, कति दिवसान्यावयोर्मित्रावसुना राष्ट्रियेण भट्टिनीपादमूलं[7] प्रेषितयोः। इत्थं च नौ प्रमदवनस्य पालनकर्म समर्पितम्[8]। तदागन्तुकतयाऽश्रुतपूर्व आवाभ्यामेष वृत्तान्तः।)>] [66]

कञ्चुकी- भवतु। न पुनरेवं प्रवर्तितव्यम्। [67]

उभे- अज्ज, कोदूहलं णो। जह इमिणा जणेण सोदव्वं, कहेदु अअं किं णिमित्तं भट्टिणा वसन्तुस्सवो पडिसिद्धो। (आर्य, कौतुहलं नौ। यद्यनेन जनेन श्रोतव्यं, कथयत्वयं किं निमित्तं भर्त्रा वसन्तोत्सवः[9] प्रतिषिद्धः।) [68]

सानुमती - उत्सवप्पिआ खु माणुस्सा। गुरुणा कारणेन होदव्वं। (उत्सवप्रियाः खलु मानुषाः[10]। गुरुणा कारणेन भवितव्यम्।) [69]

---

1. का.-पाठेषु "अरिहसि मे=अर्हसि मे / मया" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
2. का.-मै.-पाठयोः "संस्थापितयुवति०" इति।, बं.-पाठे "सत्याकृतयुवतिलक्ष" इति।, दाक्षि.-पाठे "परि-कुपितयुवतिलक्ष्य" इति। किन्तु काटयवेमेन "पथिकजन" इत्येव पठ्यते।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
3. का.-पाठेषु नास्त्येतादृशी रंगसूचना।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
4. का.-पाठे "मञ्जरीभङ्गमि" ति।, मै.-बं.-पाठयो "श्चूतकलिकाभङ्गमि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठानुसारी।
5. कोष्ठान्तर्गतोऽयं पाठः प्रक्षिप्तः सिध्यति। यतो हि पूर्वमुक्तमेव यत्- 1. वसन्तमासस्योच्छ्वसितमिव चूताङ्कुरः दृष्टः, 2. चूताङ्कुरं क्षिपति, 3. परभृतिकया गानं कृतम्। तेनेदानीं "चूतानां चिरनिर्गतापि०" इत्यादिकमसंगतमेव। नृपाज्ञया वासन्तिकतरूणां विकासस्तम्भनं स्यादिति नास्ति कविसमयश्च।
6. का.-पाठेषूक्तिरियमप्सरसो मुखे वर्तते।, दाक्षि.-पाठेऽपि सानुमती वक्ति।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
7. का.-पाठेषु "भर्तुः पादमूलादि" ति।, दाक्षि.-पाठे "भर्तुः पादमूलमि" ति।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
8. का.-पाठ "इहाक्रीडागृहे प्रतिकर्मार्पितमि" ति।, मै.-पाठे "प्रमदवने कलागृहकर्म समर्पितमि" ति।, बं.-पाठे "इह प्रमदवने चित्रकर्म अर्पयितुमि" ति।, दाक्षि.-पाठे "प्रमदवनस्य पालनकर्म समर्पितमि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति। (एकेनापि पाठान्तरेणोद्यानपालिकयोरत्रागमनप्रयोजनमुत्तरवर्तिना प्रसंगेन सह नानुसन्धीयते।)
9. का.-पाठे "वसन्तकौमुदी" ति।, मै.-बं.-पाठयो "र्वसन्तोत्सव" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः।
10. का.-पाठेषु "राजान" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

कञ्चुकी - बहुलीभूतमेतत्किं न कथ्यते। किमत्रभवत्योः कर्णपथं नायातं शकुन्तलाप्रत्यादेशकौलीनम्। [70]

उभे- सुदं रट्ठिअमुहादो जाव अङ्गुलीअअदंसणं। (श्रुतं राष्ट्रियमुखाद्यावदङ्गुलीयकदर्शनम्।) [71]

कञ्चुकी - (आत्मगतम्) तेन ह्यल्पं कथयितव्यम्। (प्रकाशम्) यदैव खलु स्वाङ्गुलीयकदर्शनादनुस्मृतं देवेन सत्यमूढपूर्वा मे तत्रभवती रहसि शकुन्तला मोहात्प्रत्यादिष्टेति, तदाप्रभृत्येव पश्चात्तापम् उपगतो देवः। तथा हि-[72]

रम्यं द्वेष्टि यथा पुरा प्रकृतिभिर्न प्रत्यहं सेव्यते
शय्याप्रान्तविवर्तनैर्विगमयत्युन्निद्र एव क्षपाः।
दाक्षिण्येन ददाति वाचमुचितामन्तःपुरेभ्यो यदा
गोत्रेषु स्खलितस्तदा भवति च व्रीडाविलक्षश्चिरम्॥ 6 - 5॥ [73]

सानुमती- पिअं मे। (प्रियं मे।) [74]

कञ्चुकी- अस्मात्प्रभवतो वैमनस्यादुत्सवः प्रत्याख्यातः। [75]

उभे - जुज्जइ। (युज्यते।) [76]

(नेपथ्ये) [77]

एदु एदु भवं। (एतु एतु भवान्।) [78]

कञ्चुकी - (कर्णं दत्त्वा) अये, इत एवाभिवर्तते देवः। स्वकर्मानुष्ठीयताम्। [79]

उभे- तह। (तथा) (इति निष्क्रान्ते) [80]

(ततः प्रविशति पश्चात्तापसदृशवेषो[1] राजा विदूषकः प्रतीहारी च।) [81]

कञ्चुकी - (राजानमवलोक्य) अहो सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम्। एवमुत्सुकोऽपि प्रियदर्शनो देवः। [82] तथा हि-

प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनविधिर्वामप्रकोष्ठार्पितं[2]
बिभ्रत् काञ्चनमेकमेव वलयं श्वासोपरक्ताधरः।
चिन्ताजागरणप्रतान्तनयनस्तेजोगुणादात्मनः
संस्कारोल्लिखितो महामणिरिव क्षीणोऽपि नालक्ष्यते॥ 6 - 6॥ [83]

सानुमती - (राजानं दृष्ट्वा) ठाणे खु पच्चादेसविमाणिदा वि इमस्स किदे सउंदला किलम्मदि त्ति। (स्थाने खलु प्रत्यादेशविमानिताप्यस्य कृते शकुन्तला क्लाम्यतीति[3]।) [84]

राजा - (ध्यानमन्दं परिक्रम्य) [85]

प्रथमं सारङ्गाक्ष्या प्रियया प्रतिबोध्यमानमपि सुप्तम्।
अनुशयदुःखायेदं हतहृदयं सम्प्रति विबुद्धम्॥ 6 - 7॥ [86]

सानुमती - णं ईदिसाणि तवस्सिणीए भाअहेआणि। (नन्वीदृशानि तपस्विन्या भागधेयानि।) [87]

विदूषकः - (अपवार्य[4]) लङ्घिदो एसो भूओ वि सउंदलावाहिणा। ण आणे कहं चिकिच्छिदव्वो भविस्सदि त्ति। (लङ्घित एष

---

1. का.-पाठे "पश्चात्तापसदृशवेष" इति।, मै.-पाठे "पश्चात्तापगृहीत" इति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.-पाठम् अनुसरन्ति।
2. का.-पाठेषु "वामप्रकोष्ठे श्लथमि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
3. का.-पाठे "ताम्यती" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
4. का.-पाठयो "रपवार्ये" ति।, बं.-दाक्षि.-पाठयोः "स्वगतमि" ति।, देव.-पाठः का.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

भूयोऽपि शकुन्तलाव्याधिना[1]। न जाने कथं चिकित्सितव्यो भविष्यतीति।) [88]

कञ्चुकी - (उपगम्य) जयतु जयतु देवः। महाराज, प्रत्यवेक्षिताः प्रमदवनभूमयः। यथाकाममध्यास्तां विनोदस्थानानि महाराजः। [89]

राजा - वेत्रवति, मद्वचनादमात्यमार्यपिशुनं ब्रूहि। चिरप्रबोधनान्न[2] संभावितमस्माभिरद्य धर्मासनम् अध्यासितुम्। यत्प्रत्यवेक्षितं पौरकार्यमार्येण, तत्पत्रमारोप्य दीयतामिति। [90]

प्रतीहारी - जं देवो आणवेदि। (यद्देव आज्ञापयति।) (निष्क्रान्ता) [91]

राजा - वातायन[3], त्वमपि स्वं नियोगमशून्यं कुरु। [92]

कञ्चुकी - यदाज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रान्तः।) [93]

विदूषकः - किदं भवदा णिम्मच्छिअं। संपदं सिसिरातवच्छेअरमणीए, इमस्सिं पमदवणुद्देसे अत्ताणं रमइस्ससि। (कृतं भवता निर्मक्षिकम्। साम्प्रतं शिशिरातपच्छेदरमणीयेऽस्मिन् प्रमदवनोद्देशे[4] आत्मानं रमयिष्यसि।) [94]

राजा- वयस्य, रन्ध्रोपनिपातिनोऽनर्था इति यदुच्यते तदव्यभिचारि वचः। कुतः-[95]

मुनिसुता[5]-प्रणयस्मृतिरोधिना मम च मुक्तमिदं तमसा मनः।
मनसिजेन सखे प्रहरिष्यता धनुषि चूतशरश्च निवेशितः[6]॥ 6 - 8॥ [96]

विदूषकः - चिट्ठ दाव। इमिणा दण्डकट्ठेणं कन्दप्पवाहिं णासइस्सं। (तिष्ठ तावत्। अनेन दण्डकाष्ठेन कन्दर्पव्याधिं नाशयिष्यामि[7]।) [97]

(दण्डकाष्ठमुद्यम्य चूताङ्कुरं पातयितुमिच्छति।) [98]

राजा- (सस्मितम्) भवतु, दृष्टं ब्रह्मवर्चसम्। सखे, क्वोपविष्टः प्रियायाः किंचिदनुकारिणीषु लतासु दृष्टिं विलोभयामि। [99]

विदूषकः - णं आसण्णपरिआरिआ चदुरिआ भवदा संदिट्ठा। माहवीमण्डवे इमं वेलं अदिवाहिस्सं। तहिं मे चित्तफलअगदं सहत्थलिहिदं तत्तहोदीए सउंदलाए पडिकिदिं आणेहि त्ति। (नन्वासन्नपरिचारिका चतुरिका[8] भवता सन्दिष्टा। माधवीमण्डप इमां वेलामतिवाहयिष्ये। तत्र मे चित्रफलकगतां स्वहस्तलिखितां तत्रभवत्याः शकुन्तलायाः प्रतिकृतिमानयेति।) [100]

राजा- ईदृशं हृदयविनोदनस्थानम्। तत्तमेव मार्गमादेशय। [101]

---

1. का.-पाठेषु "शकुन्तलावातेने" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
2. मै.-पाठे "चिराद् अप्रबोधान्ने" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।
3. का.-पाठेषु "पार्वतायने" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
4. एतैः शब्दैरपि सिध्यति यच् "चूतानां चिरनिर्गतापि न बध्नाति स्वं रजः" इति श्लोकः प्रक्षिप्तः।
5. का.-पाठेऽयं श्लोको नास्ति, किन्तु तस्य स्थान "उपहितस्मृतिरङ्गुलीमुद्रया०" इति वर्तते।, मै.-बं.-पाठयोस्तयोर्द्वयोः श्लोकयोः समावेशः क्रियते।, दाक्षि.-पाठे "मुनिसुता०" इत्यस्यैव स्वीकारः क्रियते।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति। (मुनिसुता० इत्येव श्लोको मौलिकः स्यादिति प्रतिभाति।)
6. एतैः शब्दैश्च सिध्यति यच् "चूतानां चिरनिर्गतापि०" इति श्लोकः, तत्सम्बन्धी संवादः प्रक्षिप्त एव।
7. का.-पाठ "इमं दण्डकं चूतमन्मथके पातये।" इति।, मै.-बं.-पाठयोः "कन्दर्पबाणमि"ति (चूतशरश्चेति शब्देन सह कन्दर्पबाण इत्यस्य संगतिः)।, दाक्षि.-पाठे "कन्दर्पव्याधमि" ति। (दण्डकाष्ठेनेति शब्देन सहास्य पाठान्तरस्य सम्बन्धः।), किन्तु प्रकरणसंगतिदृष्ट्या का.-पाठो ज्यायान्। देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
8. का.-पाठेषु "मेधाविनी लिपिकरी" ति।, दाक्षि.-पाठे "चतुरिके" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

विदूषकः - इदो इदो भवं। (इतो इतो भवान्।) [102]

(उभौ परिक्रामतः। सानुमत्यनुगच्छति।) [103]

विदूषकः - एसो मणिसिलापट्टअसणाहो माहवीमण्डवो उवहाररमणिज्जदाए णिस्संसअं साअदेण विअ णो पडिच्छदि। ता पविसिअ णिसीददु भवं। (एषः मणिशिलापट्टकसनाथो माधवीमण्डप उपहाररमणीयतया निःसंशयं स्वागतेनेव नौ प्रतीच्छति। तत् प्रविश्य निषीदतु भवान्।) [104]

(उभौ प्रवेशं कृत्वोपविष्टौ।) [105]

सानुमती - लदासंणिहिदा देक्खिस्सं दाव सहीए पडिकिदिं। तदो से भत्तुणो बहुमुहं अणुराअं णिवेदइस्सं।

(इति तथा कृत्वा स्थिता।) (लतासंनिहिता द्रक्ष्यामि तावत्सख्याः प्रतिकृतिम्। ततोऽस्याः भर्तुर्बहुमुखमनुरागं निवेदयिष्यामि[1]।) [106]

राजा - सखे, सर्वमिदानीं स्मरामि शकुन्तलायाः प्रथमवृत्तान्तम्। कथितवानस्मि भवते च। स भवान् प्रत्यादेशवेलायां मत्समीपगतो नासीत्। पूर्वमपि न त्वया कदाचित् संकीर्तितं तत्रभवत्या नाम। कच्चिद्अहमिव विस्मृतवानसि त्वम्[2]। [107]

विदूषकः[3]- ण विसुमरामि। किन्तु सव्वं कहिअ अवसाणे उणं तुए परिहासविअप्पओ एसो, ण भूदत्थो त्ति आचक्खिदं। मए वि मिप्पिण्डबुद्धिणा तह एव्व गहीदं। अहवा भविदव्वदा खु बलवदी। (न विस्मरामि। किन्तु सर्वं कथयित्वाऽवसाने पुनस्त्वया परिहासविजल्प एव, न भूतार्थ इत्याख्यातम्। मयापि मृत्पिण्डबुद्धिना[4] तथैव गृहीतम्। अथवा भवितव्यता खलु बलवती।) [108]

सानुमती - एव्वं णेदं। (एवमेवैतत्।) [109]

राजा- (ध्यात्वा) सखि, त्रायस्व माम्। [110]

विदूषकः - भो, किं एदं। अणुववण्णं खु ईदिसं तुइ। कदा वि सप्पुरिसा सोअ-वत्तव्वा ण होन्ति। णं पवादे वि णिक्कम्पा गिरीओ। (भोः किमेतत्। अनुपपन्नं खल्वीदृशं त्वयि[5]। कदापि सत्पुरुषाः शोकवक्तव्या[6] न भवन्ति। ननु प्रवातेऽपि निष्कम्पा गिरयः।) [111]

राजा- वयस्य, निराकरणविक्लवायाः प्रियायाः समवस्थामनुस्मृत्य बलवदशरणोऽस्मि। सा हि-[112]

इतः प्रत्यादेशात्स्वजनमनुगन्तुं व्यवसिता
मुहुस्तिष्ठेत्युच्चैर्वदति गुरुशिष्ये गुरुसमे।
पुनर्दृष्टिं बाष्पप्रसरकलुषामर्पितवती
मयि क्रूरे यत्तत् सविषमिव शल्यं दहति माम्॥ 6 - 9॥ [113]

---

1. का.-पाठे संक्षेपीकरणस्याशयेन "लतामाश्रित्य स्थिते"ति रंगसूचनैव।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठम् अनुसरन्ति।
2. का.-पाठे "न खल्वहमिव मिथस्संविदं स्मृतोऽसी" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
3. अत्र विदूषकस्योक्तेः प्राक् केवलं बं.-पाठे "**मिश्रकेशी**- अत एव महीपतिभिः क्षणमपि सहृदयाः सहायाः न विरहितव्या" इति वाक्यं प्राप्यते। (रंगमंचोपरि मिश्रकेश्याः सक्रियतां प्रदर्शयितुमेतादृशाः प्रक्षेपाः क्रियन्ते)
4. का.-पाठे "मृत्पिण्डमन्दबुद्धिने" ति।, मै.-बं.-पाठयो "मन्दबुद्धिने" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
5. का.-पाठे "किमेतत्। ईदृशमुपनतमि" ति।, मै.-पाठे "भोः किमिदम्, अनुपपन्नं तवे" ति।, बं.-पाठे "भोः वयस्य, एतत्किमुपपन्नं तवे" ति प्रश्नः।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
6. का.-पाठे "शोकबद्धधैर्या" इति।, मै.-पाठे "शोकावरुद्धा" इति।, बं.-पाठे "शोकवर्तव्या" इति।, दाक्षि.-पाठे "शोकपात्रात्मन" इति।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

सानुमती - अम्महे, ईदिसी सकज्जपरदा। इमस्स संदावेण अहं रमामि। (अहो ईदृशी स्वकार्यपरता[1]। अस्य संतापेना[2]ऽहं रमे[3]।) [114]

विदूषकः - भो, अत्थि मे तक्को। केण वि तत्तहोदी आआससंचारिणा णीदे त्ति। (भोः अस्ति मे तर्कः। केनापि तत्रभवत्याकाशसंचारिणा नीतेति[4]।) [115]

राजा- कः पतिदेवतामन्यः परामर्ष्टुमुत्सहेत[5]। मेनका किल सख्यास्ते जन्मप्रतिष्ठेति श्रुतवानस्मि। तत्सहचरिणीभिः सखी ते हृतेति मे हृदयमाशङ्कते। [116]

सानुमती- संमोहो खु विम्हअणिज्जो, ण पडिबोहो। (संमोहः खलु विस्मयनीयो, न प्रतिबोधः[6]।) [117]

विदूषकः- जह एव्वं अत्थि खु समाअमो कालेण तत्तहोदीए। (यद्येवम् अस्ति खलु समागमः कालेन तत्रभवत्या।) [118]

राजा- कथमिव। [119]

विदूषकः - ण खु मादापिदरा भत्तुविओअदुक्खिअं दुहिदरं पेक्खिदुं पारेन्ति। (न खलु मातापितरौ भर्तृवियोगदुःखितां[7] दुहितरं द्रष्टुं पारयतः।) [120]

राजा - वयस्य,

स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु क्लिष्ट[8] नु तावत्फलमेव पुण्यम्।
असंनिवृत्त्यै तदतीतमेते[9] मनोरथा नाम तटप्रपाताः[10]॥ 6 - 10॥ [121]

विदूषकः - मा एव्वं। णं अङ्गुलीअअं एव्व णिदंसणं, अवस्संभावी अचिन्तणिज्जो समाअमो होदि त्ति।
(मैवं, नन्वङ्गुलीयकमेव निदर्शनमवश्यंभाव्यचिन्तनीयः समागमो भवतीति।) [122]

राजा- (अङ्गुलीयकं विलोक्य) अये, इदं तावदसुलभस्थानभ्रंशि शोचनीयम्। [123]

तव सुचरितमङ्गुलीय नूनं प्रतनु ममेव विभाव्यते फलेन[11]।
अरुणनखमनोहरासु तस्याश्च्युतमसि लब्धपदं यदङ्गुलीषु॥ 6 - 11॥ [124]

सानुमती - जइ अण्णहत्थगदं भवे सच्चं एव्व सोअणिज्जं भवे। (यद्यन्यहस्तगतं भवेत्सत्यमेव शोचनीयं भवेत्[12]।) [125]

---

1. का.-पाठे "ऽहो, ईदृशी कष्टावस्थे" ति।, मै.-पाठे "ऽम्महे, ईदृशी कार्यस्य परवशते" ति।, बं.-पाठे "ऽम्महे, अस्येदृशी अकार्यता संतापयती" ति।
2. अत्र "संतापे, नाहं रम" इत्यपि केनापि रंगकर्मिणा सप्तम्यन्तेनोच्चार्यमाणे सति वाक्यार्थभेदो भवेद्।
3. मै.-पाठे "ऽस्य जनस्य संतापेनाधिकतरमहं रम" इति।, बं.-पाठे नास्तीदं वाक्यम्।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
4. का.-पाठ "आकाशगामिनाऽपहृतेती" ति।, मै.-बं.-पाठयो "राकाशचारिणा / संचारिणा नीतेती" ति।, देव.-पाठो बं.-पाठमनुसरति।
5. का.-मै.-पाठयोः "क इव देवताभ्योऽन्यः सम्भाव्यत" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ बं.-पाठमनुसरतः।
6. का.-पाठे "ऽहो मोहः खल्वेष रमणीयः, पुनः प्रतिबोध" इति।, मै.-पाठे "संमोहेऽपि विस्मयजनकः खल्वस्य प्रतिबोध" इति।, बं.-पाठे "संमोहः खलु विस्मयनीयः, न पुनः प्रतिबोध" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ बं.-पाठम् अनुसरतः।
7. का.-पाठेषु "भर्तृविरहितामि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरतः।
8. मै.-बं.-पाठयोः "क्लृप्तमि" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
9. का.-पाठ "आसन्नवृत्तेस्तदतीतमेष" इति।, मै.-पाठे "सासन्निवृत्त्यै सुदती ममैवे" ति।, बं.-पाठे "ऽसंनिवृत्त्यै तदतीव मन्य" इति।, दाक्षि.-पाठे "ऽसंनिवृत्त्यै तदतीतमेवे" ति।, देव.-पाठे स्वल्पं परिवर्तनं क्रियते।
10. का.-पाठेषु "मनोरथानाम् अतटप्रपात" इति।, दाक्षि.-पाठे "मनोरथानाम् अतटाः प्रपाता" इति।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
11. का.-पाठे "प्रतनु ममेव विभज्यते फलेने" ति।, मै.-पाठे "गतममुनेव विभाव्यते फलेने" ति।, बं.-पाठे "प्रतनु ममेव विभाव्यते फलेने" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ बं.-पाठमनुसरतः।
12. का.-पाठे नास्तीदं वाक्यम्।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

विदूषकः - भो, इअं णाममुद्दा केण उग्घादेण तत्तहोदीए हत्थाब्भासं पाविदा। (भोः इयं नाममुद्रा[1] केनोद्घातेन तत्रभवत्या हस्ताभ्यासं प्रापिता।) [126]

सानुमती - मम वि कोदूहलेण आआरिदो एसो। (ममापि कौतूहलेनाकारित एषः[2]।) [127]

राजा - श्रूयताम्, स्वनगराय प्रस्थितं मां प्रिया सबाष्पमाह, कियच्चिरेणार्यपुत्रः प्रतिपत्तिं दास्यतीति[3]। [128]

विदूषकः - तदो तदो। (ततस्ततः।) [129]

राजा- पश्चादिमां मुद्रां[4] तदङ्गुलौ निवेशयता मया प्रत्यभिहिता-[130]

एकैकमत्र दिवसे दिवसे मदीयं नामाक्षरं गणय गच्छति यावदन्तम्[5]।
तावत्प्रिये मदवरोधगृहप्रवेशं[6] नेता जनस्तव समीपमुपैष्यतीति॥ 6 - 12॥ [131]

तच्च दारुणात्मना मया मोहान् नानुष्ठितम्[7]। [132]

सानुमती - रमणीओ खु अवही विहिणा विसंवादिदो। (रमणीयः खल्ववधिर्विधिना विसंवादितः[8]।) [133]

विदूषकः - कहं धीवलकप्पिअस्स लोहिअमच्छस्स उदलब्भन्तले आसि। (कथं धीवरकल्पितस्य रोहितमत्स्योदराभ्यन्तर आसीत्[9]।) [134]

राजा- शचीतीर्थम् वन्दमानायाः सख्यास्ते हस्ताद् गङ्गास्रोतसि[10] परिभ्रष्टम्। [135]

विदूषकः - जुज्जइ। (युज्यते।) [136]

सानुमती- अदो एव्व तवस्सिणीए सउंदलाए अधम्मभीरुणो इमस्स राएसिणो परिणए सन्देहो आसि।

अहवा, ईदिसो अणुराओ अहिण्णाणं अवेक्खदि। कहं विअ एदं। (अत एव तपस्विन्याः शकुन्तलाया अधर्मभीरोरस्य राजर्षेः परिणये सन्देह आसीत्। अथवेदृशोऽनुरागोऽभिज्ञानम् अपेक्षते। कथमिवैतत्[11]।) [137]

राजा- उपालप्स्ये तावदिदमङ्गुलीयकम्। [138]

विदूषकः - (आत्मगतम्) गहीदो णेण पंथा उम्मत्तआणं। (गृहीतोऽनेन पन्था उन्मत्तानाम्[12]।) [139]

---

1. का.-पाठ "इदमङ्गुलीयकमि" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
2. का.-पाठे नास्तीयमुक्तिः।, मै.-पाठे "मिश्रकेशी - ममापि कौतुहलेन व्यापारित एष" इति।, बं.-पाठे "ममैव कौतुहलेनालापित एष" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
3. का.-बं.-पाठयो "रस्माकं संस्मरिष्यती" ति।, मै.-पाठे "प्रतिवार्तां दास्यती" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठम् अनुसरति।
4. का.-पाठेषु "नाममुद्रामि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
5. मै.-बं.-पाठयो "र्यासि न यावदन्तमि" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
6. का.-पाठे "मदवरोधगृहप्रवेशी" ति।, मै.-बं.-पाठयो "र्मदवरोधनिदेशवर्ती" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठम् अनुसरति।
7. का.-पाठे "तच्च मोहात्तथा दारुणमनुष्ठितमि" ति।, मै.-बं.-पाठयोः "तच्च मोहाद् दारुणमनुष्ठितमि" ति।, दाक्षि.-पाठे "तच्च दारुणेन मया मोहान्नानुष्ठितमि" ति।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
8. का.-पाठे "रमणीयस्ते विधिना दर्शितो मार्ग" इति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
9. का.-पाठेषु "कथं दास्याः पुत्रस्य रोहितमत्स्यस्य बडीशमिवैतदंगुलीयकं मुखे प्रविष्टमि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
10. बं.-पाठे नास्तीदं पदम्।, मै.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।
11. का.-पाठे निखिलापीयमुक्तिर्नास्ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
12. का.-पाठे नास्तीयमुक्तिः।, मै.-बं.-पाठयो "रहमपि एतद्-दण्डकाष्ठमुपालप्स्ये। कथमृजुकस्य मे कुटिलमसि त्वमि" ति।, दाक्षि.-पाठे नवीनं वाक्यं प्राप्यते।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा-

कथं नु तं बन्धुरकोमलाङ्गुलिं[1]
करं विहायासि निमग्नमम्भसि।,
अथवा -
अचेतनं नाम गुणं न लक्ष्येन्
मयैव कस्मादवधीरिता प्रिया[2]॥ 6 - 13॥ [140]

विदूषकः - (आत्मगतम्) कहं बुभुक्खाए खादिदव्वोम्हि। (कथं बुभुक्षया खादितव्योऽस्मि[3]।) [141]

राजा - अकारणपरित्यागानुशयतप्तहृदयस्तावद् अनुकम्प्यताम् अयं जनः पुनर्दर्शनेन। [142]

(प्रविश्यापटीक्षेपेण[4] चित्रफलकहस्ता) [143]

चतुरिका[5]- इअं चित्तगदा भट्टिणी। (इयं चित्रगता भट्टिनी।) [144]

(इति चित्रफलकं दर्शयति) [145]

विदूषकः - साहु वअस्स, महुरावत्थाणदंसणिज्जो भावाणुप्पवेसो। क्खलदि विअ मे दिट्ठी णिण्णुण्णअप्पदेसेसु। (साधु वयस्य, मधुरावस्थानदर्शनीयो भावानुप्रवेशः। स्खलतीव मे दृष्टिर्निम्नोन्नतप्रदेशेषु[6]।) [146]

सानुमती - अंमो, राएसिणो णिउणदा। जाणे सही अग्गदो मे वट्टदि त्ति। (अहो एषा राजर्षेर्निपुणता। जाने सख्यग्रतो मे वर्तत इति। [147]

राजा-

यद्यत्साधु न चित्रे स्यात्क्रियते तत्तदन्यथा।
तथापि तस्या लावण्यं रेखया किञ्चिदन्वितम्[7]॥ 6 - 14॥ [148]

सानुमती - सरिसं एदं पच्छादावगुरुणो सिणेहस्स अणवलेवस्स अ। (सदृशमेतत्पश्चात्तापगुरोः स्नेहस्यानवलेपस्य च।) [149]

विदूषकः - भो, दाणिं तिण्हिओ तत्तहोदीओ दीसंति। सव्वाओ अ दंसणीआओ। कदमा इत्थ तत्तहोदी सउंदला। (भोः, इदानीं तिस्रस्तत्रभवत्यो दृश्यन्ते। सर्वाश्च दर्शनीयाः। कतमात्र तत्रभवती शकुन्तला।) [150]

---

1. मै.-बं.-पाठयोः "कोमलबन्धुराङ्गुलिमि" ति भिन्नः पदक्रमः।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
2. का.-पाठेऽस्मात्परमक्षमाला भणति- "पूर्वापरविरोध्येष वृत्तान्त" इति।, मै.-बं.-पाठयोः "स्वयमेव प्रतिपन्नः यद् वक्तुकामे" ति।, दाक्षि. -देव.-पाठतः निष्कासितेयमुक्तिः।
3. का.-पाठे नास्तीयमुक्तिः।, मै.-बं.-पाठयोः "भो अहं सर्वथा बुभुक्षया मारयितव्य" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
4. का.-पाठेषु "ततः प्रविशति फलकहस्ता लिपिकरी"ति।, दाक्षि.-पाठे "प्रविश्य चतुरिका पटाक्षेपेणे"ति।, देव.-पाठे "ऽपटीक्षेपेण०" इति।
5. का.-मै.-पाठयो "लिंपिकरी (मेधाविनी)ति" नाम।, बं.-पाठे "चेटी (चतुरिके)" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ बं.-पाठमनुसरतः।
6. का.-पाठे "हे हे भोः, सभावमधुराकृतिः खलु। .... किं बहुना, स्वान्तानुप्रवेशशंकयालपनकुतूहलं मां जनयती" ति।, मै.-बं.-पाठयोरत्र "दीर्घापाङ्गविसारि०, अस्याः तुंगमिव स्तनद्वयम्० इति" श्लोकद्वयं प्रक्षिप्तम्। ततश्च विदूषकस्योक्तिः- "साधु वयस्य साधु।... स्खलतीव मे दृष्टिः निम्नोन्नतप्रदेशेषु। सत्त्वानुप्रवेशशंकया आलपनकौतूहलं मे जनयती" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः। (किन्तु प्रक्षिप्तौ श्लोकौ न स्तः।)
7. का.-पाठे नास्त्ययं श्लोकः।, मै.-पाठे प्रक्षिप्तोऽयं श्लोकः।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

सानुमती - अणभिण्णो खु ईदिसस्स रूवस्स मोहदिट्ठी अअं जणो। (अनभिज्ञः खल्वीदृशस्य रूपस्य मोघदृष्टिरयं जनः[1]।) [151]

राजा- त्वं तावत्कतमां तर्कयसि। [152]

विदूषकः- तक्केमि जा एसा सिढिलकेसबन्धणुव्वन्तकुसुमेण केसन्तेण उब्भिण्णस्सेअबिन्दुणा वअणेण विसेसदो ओसरिआहिं बाहाहिं अवसेअसिणिद्धतरुणपल्लवस्स चूअपाअवस्स पासे इसिपरिस्संता विअ आलिहिदा सा सउंदला। इदराओ सहिओ त्ति। (तर्कयामि यैषा शिथिलकेश-बन्धनो-द्वान्तकुसुमेन केशान्तेनोद्भिन्नस्वेदबिन्दुना वदनेन विशेषतोऽपसृताभ्यां बाहुभ्याम् अवसेकस्निग्ध-तरुणपल्लवस्य चूतपादपस्य पार्श्वे ईषत्परिश्रान्तेवालिखिता[2] सा शकुन्तला। इतरे- सख्याविति।) [153]

राजा - निपुणो भवान्। कुतः। अस्त्यत्र मे भावचिह्नम्। [154]

स्विन्नाङ्गुलीविनिवेशो रेखाप्रान्तेषु दृश्यते मलिनः।
अश्रु च कपोलपतितं दृश्यमिदं वर्तिकोच्छ्वासात्[3]॥ 6 - 15॥ [155]

चतुरिके[4], अर्धलिखितमेतद्विनोदस्थानम्। गच्छ। वर्तिकां तावदानय। [156]

चतुरिका - अज्ज माढव्व, अवलंब चित्तफलअं जाव आअच्छेमि। (आर्य माढव्य, अवलम्बस्व चित्रफलकं यावदागच्छामि।) [157]

राजा - अहमेवैतदवलम्बे[5]। (यथोक्तं करोति) [158]

(निष्क्रान्ता चेटी) [159]

राजा - अहं हि, -

साक्षात्प्रियामुपगतामपहाय पूर्वं
चित्रार्पितां पुनरिमां बहुमन्यमानः।
स्त्रोतोवहां पथि निकामजलामतीत्य
जातः सखे प्रणयवान् मृगतृष्णिकायाम्॥ 6 - 16॥ [160]

विदूषकः - (आत्मगतम्) एसो अत्तभवं णदिं अदिक्कमिअ मिअतिण्हिआं संकंतो। (प्रकाशम्) भो, अवरं किं एत्थ लिहिदव्वं। (एषोऽत्रभवान्नदीमतिक्रम्य मृगतृष्णिकां संक्रान्तः[6]। भोः अपरं किमत्र लिखितव्यम्।) [161]

सानुमती - जो जो पदेसो सहीए मे अहिरूवो तं तं आलिहिदुकामो भवे। (यो यः प्रदेशः सख्या मेऽभिरूपस्तं तमालिखितुकामो भवेत्।) [162]

राजा - श्रूयताम्। [163]

---

1. का.-पाठे "मोहदक्षस्तपस्वी। अवश्यं नास्य प्रत्यक्षा सखी" ति।, मै.-पाठे "ऽनभिज्ञ एष तपस्वी सखीरूपस्य मूढदृष्टिः। नेयं खलु तस्मै गता प्रत्यक्षतां सखी" ति।, बं.-पाठे "ऽनभिज्ञ एषः तपस्वी सख्याः रूपस्य। मोघचक्षुषः इयं न गतास्य प्रत्यक्षतामि" ति।, देव.-पाठो संक्षेपीकरणाय दाक्षि.-पाठमनुसरति।
2. का.-पाठे "ऽवसेकस्निग्धपल्लवामशोकलतिकां संक्षिते" ति।, मै.-पाठे "स्निग्धतरपल्लवस्य बालचूतवृक्षस्य पार्श्वे आलिखिते" ति।, बं.-पाठः का.-पाठमनुसरति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
3. का.-पाठेषु श्लोकोऽयं "साक्षात् प्रियामुपगताम्०" इत्यस्मात्पश्चाद् वर्तते।, दाक्षि.-देव.-पाठयोरनयोः श्लोकयोः क्रमपरिवर्तनं कृतम्।
4. का.-मै.-पाठयो "मेधाविनि!" इति संबुद्धिः।, दाक्षि.-देव.-पाठौ बं.-पाठमनुसरतः।
5. का.-पाठे नास्तीदं वाक्यम्। (विदूषकस्यैव हस्ते चित्रफलकं वर्तते।), बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठम् अनुसरन्ति।
6. का.-पाठेषु विदूषकस्येयमुक्तिर्नास्ति।, श्लोक-क्रमस्य परिवर्तनेन प्रक्षेपः क्रियते दाक्षि.-पाठे, तं चानुसरति देव.-पाठः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्त्रोतोवहा मालिनी
पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः[1]।
शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः
शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम्॥ 6 - 17॥ [164]

विदूषकः - (आत्मगतम्) जह अहं देक्खामि पूरिदव्वं णेण चित्तफलअं लम्बकुच्चाणं तावसाणं कदम्बेहिं। (यथाहं पश्यामि पूरितव्यमनेन चित्रफलकं लम्बकूर्चानां तापसानां कदम्बैः।) [165]

राजा - वयस्य, अन्यच्च शकुन्तलायाः प्रसाधनमभिप्रेतमस्माभिः। [166]

विदूषकः - किं विअ। (किमिव।) [167]

सानुमती- वणवासस्स सोउमारस्स अविणअस्स अ जं सरसिं भविस्सदि। (वनवासस्य सौकुमार्यस्याविनयस्य[2] च यत्सदृशं भविष्यति।) [168]

राजा -

कृतं न कर्णार्पितबन्धनं सखे शिरीषमागण्डविलम्बिकेसरम्।
न वा शरच्चन्द्रमरीचिकोमलं मृणालसूत्रं रचितं स्तनान्तरे॥ 6 - 18॥ [169]

विदूषकः - भो, किं णु तत्तहोदी रत्तकुवलअपल्लवसोहिणा अग्गहत्थेण मुहं ओवारिअ चइदचइदा विअ ठिआ। (सावधानं निरूप्य, दृष्ट्वा) आ, एसो दासीए पुत्तो कुसुमरसपाडच्चरो तत्तहोदीए वअणं अहिलङ्घेदि महुअरो। (भोः किं नु तत्रभवती रक्तकुवलयपल्लवशोभिनाग्रहस्तेन मुखमपवार्य चकितचकितेव स्थिता। आः,एषः दास्याः पुत्रः कुसुमरसपाटच्चरस्तत्रभवत्या वदनकमलम् अभिलङ्घते[3] मधुकरः।) [170]

राजा- ननु वार्यतामेष धृष्टः। [171]

विदूषकः - भवं एव्व अविणीदाणं सासिदा इमस्स वारणे पहविस्सदि। (भवानेवाविनीतानां शासिताऽस्य वारणे प्रभविष्यति।) [172]

राजा - युज्यते। अयि भोः कुसुमलताप्रियातिथे, किमत्र परिपतनखेदमनुभवसि। [173]

एषा कुसुमनिषण्णा तृषितापि सती भवन्तमनुरक्ता।
प्रतिपालयति मधुकरी न खलु मधु विना त्वया[4] पिबति॥ 6 - 19॥ [174]

सानुमती- अज्ज अभिजादं खु एसो वारिदो। (अद्याभिजातं खल्वेष वारितः।) [175]

विदूषकः - पडिसिद्धा वि वामा एसा जादी। (प्रतिषिद्धापि वामैषा जातिः।) [176]

राजा- एवं भोः, न मे शासने तिष्ठसि। श्रूयतां तर्हि सम्प्रति। [177]

अक्लिष्टबालतरुपल्लवलोभनीयं पीतं मया सदयमेव रतोत्सवेषु।
बिम्बाधरं स्पृशसि[5] चेद्भ्रमर प्रियायास्त्वां कारयामि कमलोदरबन्धनस्थम्॥ 6 - 20॥ [178]

---

1. का.-पाठे "पादान्ते निभृतं निषण्णचमरो गौरीगुरोः पावन" इति।, मै.-बं.-पाठयोः "पादस्तामभितो निषण्णचमरो गौरीगुरोः पावनः" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
2. का.-पाठे "तस्याश्च सौकुमार्यस्ये" ति।, मै.-बं.-पाठयोः "कन्यकाभावस्ये" ति।, दाक्षि.-पाठः का.-पाठम् अनुसरति।, देव.-पाठे "ऽविनयस्ये" ति प्रक्षेपः।
3. का.-पाठे "ष्वभिलषती" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
4. का.-पाठे "मधुकरी न खलु मधु त्वया विने"ति।,मै.-बं.-पाठयो "भ्रमरी न खलु मधु त्वां विने"ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का-पाठमनुसरतः।
5. का.-पाठेषु "दशसी" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

विदूषकः - एव्वं तिक्खणदण्डस्स किं ण भाइस्सदि। (प्रहस्य, आत्मगतम्) एदो दाव उम्मत्तो। अहं पि एदस्स संगेण ईदिसवण्णो विअ संवुत्तो। (प्रकाशम्)भो, चित्तं खु एदं। (एवं तीक्ष्णदण्डस्य किं न भेष्यति। एष तावदुन्मत्तः। अहमप्येतस्य संगेन[1] ईदृशवर्ण इव संवृत्तः।[2] भो, चित्रं खल्वेतत्।) [179]

राजा - कथं चित्रम्। [180]

सानुमती - अहं पि दाणिं अवगदत्था, किं उण जहालिहिदाणुभावी एसो। (अहमपीदानीमवगतार्था, किं पुनर्यथालिखितानुभाव्येषः[3]।) [181]

राजा- वयस्य, किमिदिमनुष्ठितं पौरोभाग्यम्। [182]

दर्शनसुखमनुभवतः साक्षादिव तन्मयेन हृदयेन।
स्मृतिकारिणा त्वया मे पुनरपि चित्रीकृता कान्ता॥ 6 - 21॥ [183]

(इति बाष्पं विहरति) [184]

सानुमती - पुव्वावरविरोही अपुव्वो एसो विरहमग्गो। (पूर्वापरविरोध्यपूर्व एष विरहमार्गः[4]।) [185]

राजा- वयस्य, कथमेवम् अविश्रान्तदुःखमनुभवामि[5]। [186]

प्रजागरात् खिलीभूतस्तस्याः स्वप्ने समागमः।
बाष्पस्तु न ददात्येनां द्रष्टुं चित्रगतामपि॥ 6 - 22॥ [187]

सानुमती - सव्वहा पमज्जिदं तुए पच्चादेसदुःक्खं सउंदलाए। (सर्वथा प्रमार्जितं त्वया प्रत्यादेशदुःखं शकुन्तलायाः[6]।) [188]

(प्रविश्य) [189]

चतुरिका- जेदु जेदु भट्टा, वट्टिआकरण्डअं गेण्हिअ इदोमुहं पत्थिद म्हि....। (जयतु जयतु भर्ता[7]। वर्तिकाकरण्डकं गृहीत्वेतोमुखं प्रस्थिताऽस्मि।) [190]

राजा - किं च। [191]

---

1. का.-पाठे "संसर्गेणे" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
2. केवलं का.-पाठे दृश्यमिदं किञ्चिद् विस्तीर्यते।, मै.-बं.-पाठयोर्दृश्यमिदं किञ्चित्परिवर्त्यते।, दाक्षि.-देव.-पाठयोरस्य दृश्यस्य संक्षेपः क्रियते।
3. का.-पाठेऽक्षमालाया मुखे भिन्नं वाक्यम्- "वयस्य, स्मृतं त्वया प्रत्यादेशविमाननं शकुन्तलायाः सख्याः, दृष्टं खलु प्रत्यक्षमस्माभिरि" ति।, मै.-पाठे "ममापि तावदात्मान्तरं न गणयति। यावदहमपीदानीं प्रतिबुद्धा, किं पुनः यथा चिन्तितानुभावी एष" इति।, बं.-पाठे "सर्वथा वयस्य संमार्जितं त्वया प्रत्यादेशदुःखं प्रियसख्याः शकुन्तलायाः प्रत्यक्षमेव सखीजनस्ये" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति। (सर्वत्र भिन्नैव पाठपरम्परा, तेनानुमीयते यद् अप्सरस उक्तिषु प्रक्षिप्तांशा एव विलसन्ति।)
4. का.-पाठेऽत्राक्षमालाया मुखे "बहुमान्याऽस्याः कुलप्रभा। अथवा नैतत् किञ्चित् विपञ्च्याः खलु असंनिधाने एकतन्तुरपि अर्घती" ति।, मै.-बं.-पाठयोर्नास्त्येतादृशं वाक्यम्।, दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः।, अत्र मै.-पाठे विदूषकस्य मुखे "सर्वः पूर्वापरविरुद्धो विधेर्मार्ग" वर्तते, तदेव वाक्यं बं.-पाठे मिश्रकेश्या मुखे वर्तते।, दाक्षि.-पाठे सानुमत्या मुखे- "पूर्वापरविरोध्यपूर्व एष विधानमार्ग" इति।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
5. का.-बं.-पाठयोः "कथम् अविश्रामदुःखम् अनुभवाम" इति।, मै.-पाठे "कथं विश्रामसुखम् अनुभवामी" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
6. का.-पाठे नास्तीदं वाक्यम्। तत्र तु भिन्नैव योजना।, मै.-बं.-पाठयोः "सर्वथा वयस्य, प्रमार्जितं त्वया प्रत्यादेशदुःखं प्रियसख्याः शकुन्तलायाः, प्रत्यक्षमेव सखीजनस्ये" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः।
7. का.-पाठेषु नास्तीदं वाक्यम्।, दाक्षि.-पाठे प्रक्षिप्तमिदं वाक्यम्।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

चतुरिका - सो मे हत्थादो अंतरा तरलिआदुदीआए देवीए वसुमदीए अहं एव्व अज्जउत्तस्स उवणइस्सं त्ति सबलक्कारं गहीदो। (स मे हस्तादन्तरा तरलिकाद्वितीयया देव्या वसुमत्याऽहमेवार्यपुत्रस्योपनेष्यामीति सबलात्कारं गृहीतः[1]।) [192]

विदूषकः - दिट्ठिआ तुमं मुत्ता। (दिष्ट्या त्वं मुक्ता।) [193]

चतुरिका - जाव देवीए विडवलग्गं उत्तरीअं तरलिआ मोचेदि ताव मए णिव्वाहिदो अत्ता। (यावद्देव्या विटपलग्नमुत्तरीयं तरलिका मोचयति तावन्मया निर्वाहित आत्मा।) [194]

राजा- वयस्य, उपस्थिता देवी बहुमानगर्विता च। भवानिमां प्रतिकृतिं रक्षतु[2]। [195]

विदूषकः[3] - अत्ताणं त्ति भणाहि। (चित्रफलकमादायोत्थाय च)जइ भवं अन्तेउरकालकूडादो मुंचीअदि तदो मं मेहप्पडिच्छंदे प्पासादे सद्दावेहि। (आत्मानमिति भण। यदि भवानन्तःपुरकालकूटान्[4] मोक्ष्यते, तदा मां मेघप्रतिच्छन्दे प्रासादे[5] शब्दापय।) [196]

(इति द्रुतपदं निष्क्रान्तः) [197]

सानुमती - अण्णसंकंतहिअओ वि पढमसंभावणं अवेक्खदि सिढिलसोहदो दाणिं एसो। (अन्यसंक्रान्तहृदयोऽपि प्रथमसम्भावनामपेक्षते शिथिलसौहार्द इदानीमेषः[6]।) [198]

(प्रविश्य पत्रहस्ता) [199]

प्रतीहारी - जेदु देवो। (जयतु जयतु देवः।) [200]

राजा- वेत्रवति, न खल्वन्तरा दृष्टा त्वया देवी। [201]

प्रतीहारी - अह इं। पत्तहत्थं मं देक्खिअ पडिणिउत्ता। (अथ किम्। पत्रहस्तां मां प्रेक्ष्य प्रतिनिवृत्ता।) [202]

राजा - कार्यज्ञा[7] कार्योपरोधं मे परिहरति। [203]

प्रतीहारी - देव, अमच्चो विण्णवेदि। अत्थजादस्स गणणाबहुलदाए एक्कं एव्व पोरकज्जं अवेक्खिदं। तं देवो पत्तारूढं पच्चक्खीकरेदु त्ति। (देव, अमात्यो विज्ञापयति। अर्थजातस्य गणनाबहुलतयैकमेव पौरकार्यमवेक्षितम्। तद्देवः पत्रारूढं प्रत्यक्षीकरोतु इति।) [204]

राजा- इतः पत्रिकां दर्शय[8]। [205]

---

1. का.-पाठे भिन्ना योजना।, मै.-बं.-पाठयो "र्यावन्मे पिङ्गलिकाद्वितीयया देव्या वसुमत्या-अहमेवार्यपुत्रस्योऽपनेष्यामीति भणित्वा सबलात्कारं गृहीत" इति।, दाक्षि.-पाठे "०तरलिकाद्वितीयया०" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति। (मैथिल-पाठादेव पूर्वपरिणीताया वसुमत्याः संघर्षः प्रारभ्यते प्रक्षिप्तश्च सः।)
2. का.-पाठे प्रथमं वाक्यं नास्ति।, मै.-पाठे "वयस्य, उपस्थिता देवी बहुमानगर्विता चे" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
3. का.-पाठेऽत्र विदूषकस्यैकान्याप्युक्तिः- "अपेत भोः, मेधाविनीं मृगीमिवानुसरन्त्युस्थितान्तःपुरव्याघ्री पिङ्गलिके" ति।,मै.-पाठे "भो अभिधावन्ती एषान्तःपुरव्याघ्री मेधाविनीं मृगीमिव कवलयितुमुपस्थिते" ति।, बं.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।, किन्तु दाक्षि.-देव.-पाठाभ्यां सोक्तिः संक्षेपीकरणाय निष्कासिता।
4. का.-पाठे नास्ति कुलप्रभाया ईर्ष्यायुक्तं मनः।, मै.-पाठे "ऽन्तःपुरकूटपाशादि" ति।, बं.-पाठे "ऽन्तःपुर-वागुरात" इति।, दाक्षि.-पाठे "ऽन्तःपुरकलहादि" ति।, देव.-पाठे परिवर्तनं दृश्यते।
5. का.-पाठे नास्तीदं नाम।, मै.-पाठे "मेघछन्दप्रासाद" इति।, बं.-पाठे "मेघछन्नप्रासाद" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
6. का.-पाठे "बहुमान्याऽस्याः कुलप्रभा। ... विपञ्च्याः खलु असंनिधाने एकतन्तुरपि अर्घती" ति।, मै.-पाठे "अम्मो, अन्यसंक्रान्तहृदयोपि प्रथमं सम्भावनं रक्षति। विरस न हुं इदानीमेष" इति।, बं.-पाठे "अम्मो, ...। स्थिरसौहृदः तावदेष" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ बं. -पाठमनुसरतः।
7. का.-बं.-पाठयोः "कालज्ञे" ति।, मै.-पाठे "समयज्ञे" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
8. का.-पाठे "मेधाविनि, वाच्यतामि" ति।, मै.-बं.-पाठयो "रितः पत्रं दर्शये" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठम् अनुसरतः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(प्रतीहार्युपनयति।) [206]

राजा - (अनुवाच्य[1]) कथं, समुद्रव्यवहारी सार्थवाहो धनमित्रो नाम नौव्यसने विपन्न:[2]। अनपत्यश्च किल तपस्वी। राजगामी तस्यार्थसञ्चय इत्येतदमात्येन लिखितम्। कष्टं खल्वनपत्यता। बहुधनत्वाद् बहुपत्नीकेन तत्रभवता भवितव्यम्। विचार्यतां यदि काचिदापन्नसत्त्वा तस्य भार्यासु स्यात्। [207]

प्रतीहारी - देव, दाणिं एव्व साकेदअस्स सेट्ठिणो दुहिदा णिव्वुत्तपुंसवणा जाआ से सुणीअदी। (देव, इदानीमेव साकेतकस्य श्रेष्ठिनो[3] दुहिता निर्वृत्तपुंसवना जायाऽस्य श्रूयते।) [208]

राजा- ननु गर्भ: पित्र्यं रिक्थमर्हति। गच्छ। एवममात्यं ब्रूहि। [209]

प्रतिहारी - जं देवो आणवेदि। (यद्देव आज्ञापयति।) [210]

(इति प्रस्थिता।) [211]

राजा- एहि तावत्। [212]

प्रतीहारी - इअ म्हि। (इयमस्मि।) [213]

राजा- किमनेन संततिरस्ति नास्तीति। [214]

येन येन वियुज्यन्ते प्रजा: स्निग्धेन बन्धुना।
स स पापादृते तासां दुष्यन्त[4] इति घुष्यताम्॥ 6 - 23॥ [215]

प्रतीहारी - एव्वं णाम घोसइदव्वं। (निष्क्रम्य, पुन: प्रविश्य) काले पवुट्ठं विअ अहिणन्दिदं देवस्स सासणम्। (एवं नाम घोषयितव्यम्। काले प्रवृष्टमिवाभिनन्दितं देवस्य शासनम्।) [216]

राजा- (दीर्घमुष्णं च नि:श्वस्य) एवं भो: संततिच्छेदनिरवलम्बानां कुलानां मूलपुरुषावसाने संपद: परमुपतिष्ठन्ति। ममाप्यन्ते पुरुवंशश्रीरकाल इवोप्तबीजा भूरेवं वृत्ता[5]। [217]

प्रतीहारी - पडिहदं अमङ्गलम्। (प्रतिहतम् अमङ्गलम्।) [218]

राजा- धिङ् मामुपस्थितश्रेयोऽवमानिनम्। [219]

सानुमती - असंसअं सहिं एव्व हिअए करिअ णिन्दिदो णेण अप्पा। (असंशयं सखीमेव हृदये कृत्वा निन्दितोऽनेनात्मा।) [220]

राजा -

संरोपितेऽप्यात्मनि धर्मपत्नी त्यक्ता मया नाम कुलप्रतिष्ठा।
कल्पिष्यमाणा महते फलाय वसुन्धरा काल इवोप्तबीजा॥ 6 - 24॥ [221]

सानुमती - अपरिच्छिण्णा दाणिं दे संददी भविस्सदि। (अपरिच्छिन्नेदानीं ते सन्ततिर्भविष्यति।) [222]

---

1. का.-पाठे "लिपिकरी- पत्रकं प्रसार्य वाचयती" ति रंगसूचना।, मै.-पाठेषु राजा स्वयमेव पत्रं वाचयति।
2. का.-पाठेषु "विदितमस्तु देवपादानां, यथा धनवृद्ध इति यथार्थनामा वणिग् वारिपथोपजिवी नौव्यसने विपन्न:। स चानपत्य:। तस्य कोटिशतसंख्यातं वसु। तदिदानीं राजार्थमापद्यते। श्रुत्वा राजा प्रमाणमिती" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
3. का.-पाठे "केशवश्रेष्ठिन" इति।, मै.-पाठे "साकेतस्य श्रेष्ठिन" इति।, बं.-पाठे "साकेतपुरस्य श्रेष्ठिन" इति।, दाक्षि.-पाठे "साकेतश्रेष्ठिन" इति।, देव.-पाठे स्वल्पं परिवर्तनं क्रियते।
4. का.-पाठे "दुष्यन्त" इति।, मै.-पाठे "दुष्मन्त" इति।, बं.-पाठे "दु:षन्त" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठम् अनुसरति।
5. का.-पाठेषु "ममाप्यन्ते पुरुवंशश्रिय एष एव वृत्तान्त" इति।, दाक्षि.-पाठो का.-पाठमनुसरति।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

चतुरिका - (जनान्तिकम्) अए, इमिणा सत्थवाहवुत्तन्तेण द्विउणुव्वेओ भट्टा। णं अस्सासिदुं मेहप्पडिच्छन्दादो अज्जं माढव्वं गेण्हिअ आअच्छामि। (अये, अनेन सार्थवाहवृत्तान्तेन द्विगुणोद्वेगो भर्ता। एनमाश्वासयितुं मेघप्रतिच्छन्दादार्यम् माढव्यं गृहीत्वाऽऽगच्छामि[1]।) [223]

प्रतीहारी - सुट्ठु भणसि। (सुष्ठु भणसि) (इति निष्क्रान्ता) [224]

राजा - अहो, दुष्यन्तस्य संशयमारुढाः पिण्डभाजः। कुतः, [225]

अस्मात्परं बत यथाश्रुति संभृतानि को नः कुले निवपवानि नियच्छतीति।
नूनं प्रसूतिविकलेन मया प्रसिक्तं धौताश्रुशेषम्[2] उदकं पितरः पिबन्ति॥ 6 - 25॥ [226]

(इति मोहम् उपगतः[3]) [227]

चतुरिका - (ससंभ्रममवलोक्य) समस्ससदु भट्टा। (समाश्वसितु भर्ता।) [228]

सानुमती - हद्धी हद्धी, सदि खु दीवे ववधाणदोसेण एसो अन्धआरदोसं अणुहोदि। अहं दाणिं एव्व णिव्वुदं करेमि। अहवा सुदं मए सउंदलं समस्ससअन्तीए महेंदजणणीए मुहादो। जण्णभाओस्सआ देवा एव्व तह अणुचिट्ठिस्संति जह अइरेण धम्मपदिणिं भट्टा अहिणंदिस्सदि त्ति। ता ण जुत्तं कालं पडिपालेदुं। जाव इमिणा वुत्तन्तेण पिअसहिं समास्ससेमि। (हा धिक्, हा धिक्, सति खलु दीपे व्यवधानदोषेणैषोऽन्धकारदोषमनुभवति[4]। अहमिदानीमेव निर्वृत्तं करोमि। अथवा श्रुतं मया शकुन्तलां समाश्वासयन्त्या महेन्द्रजनन्या मुखाद् यज्ञभागोत्सुका देवा एव तथानुष्ठास्यन्ति यथाचिरेण धर्मपत्नीं भर्ताऽभिनन्दिष्यतीति। तन्न युक्तं कालं प्रतिपालयितुम्[5]। यावदनेन वृत्तान्तेन प्रियसखीं समाश्वासयामि। [229]

(इत्युद्भ्रान्तकेन निष्क्रान्ता) [230]

(नेपथ्ये) [231]

अव्बम्हण्णं। (अब्रह्मण्यम्।) [232]

राजा - (प्रत्यागतचेतनः कर्णं दत्त्वा) अये, माढव्यस्येवार्तस्वरः[6]। कः कोऽत्र भोः। [233]

(प्रविश्य) [234]

प्रतीहारी - (ससंभ्रमम्) परित्ताअदु देवो संसअगदं वअस्सं। (परित्रायतां देवः संशयगतं वयस्यम्[7]।) [235]

---

1. का.-पाठे भिन्नैव योजना।, मै.-बं.-पाठयोर्लिपिकरी विदूषकमाह्वयितुं प्रतीहारीं प्रेषयति-"आर्य, एतत् पत्रं प्रेषयता द्विगुणानुतापः कृतो भर्तामात्येन। तन्मेघच्छन्नप्रासादावस्थितं संतापनिवारयितृकम् आर्य-माधव्यं गृहीत्वाऽऽगच्छे"ति।, दाक्षि.-पाठेऽपि चतुरिका प्रतीहारीं रंगाद्बहिः प्रेषयति।, राघवभट्टानुसारी देव.-पाठोऽत्राशुद्धः प्रतिभाति, यतो हि- चतुरिका "गृहीत्वागच्छामी" त्युक्त्वापि न गच्छति। किन्तु प्रतीहारी गच्छति।
2. का.-पाठे "प्रमुक्तं धौताश्रुशेषमि" ति।, मै.-बं.-पाठयोः "प्रसिक्तं धौताश्रुसेकमि" ति।, दाक्षि.-पाठे संमिश्रणं क्रियते।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
3. का.-पाठेषु राजा मोहं नोपगच्छति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
4. का.-पाठेष्वस्माद् वाक्यादनन्तरं राज्ञो मुखे- "आमूलशुद्धसंतति कुलमेतत्०" इति श्लोको वर्तते।, किन्तु संक्षेपीकरणाय दाक्षि.-देव.-पाठाभ्यां स श्लोको निष्कासितः।, एवञ्च- का.-पाठे तस्माच्छ्लोकादपि पूर्वम् प्रतीहारी राजानमाश्वासयति।, मै.-बं.-पाठयोः लिपिकरी (चेटी) राजानमाश्वासयति। लघुपाठतः सोऽपि पाठ्यांशो निष्कासितः।
5. का.-पाठे नास्त्येतादृशं वाक्यम्। किन्त्वक्षमाला मातलेरागमनं सूचयित्वा निष्क्रामति।, मै.-पाठे "तन्न युक्तमिमं कालं मम लङ्घयितुमि" ति।, बं.-पाठे "तन्न युक्तं ममात्र विलम्बितुमि"ति।, दाक्षि.-पाठे "तस्माद् युक्तमेतं कालं प्रतिपालयितुमि"ति।,देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
6. का.-पाठेषु "माधव्यस्येवार्तनाद" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
7. का.-पाठेषु लिपिकरी / चतुरिका शंकां प्रकटयति यत्कदाचिद्विदूषकः पिङ्गलिकाया हस्ते पतितः स्यात्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- केनात्तगन्धो माणवकः[1]। [236]

प्रतीहारी - अदिट्ठरूवेण केण वि सत्तेण अदिक्कमिअ मेहप्पडिच्छन्दस्स प्पासादस्स अग्गभूमिं आरोविदो। (अदृष्टरूपेण केनापि सत्त्वेनातिक्रम्य मेघप्रतिच्छन्दस्य प्रासादस्याग्रभूमिमारोपितः[2]।) [237]

राजा - (उत्थाय) मा तावत्। ममापि सत्त्वैरभिभूयन्ते गृहाः। अथवा-[238]

अहन्यहन्यात्मन एव तावज्ज्ञातुं प्रमादस्खलितं न शक्यम्।
प्रजासु कः केन पथा प्रयातीत्यशेषतो वेदितुमस्ति शक्तिः[3]।। 6 - 26।। [239]

(नेपथ्ये) [240]

भो वअस्स, अविहा अविहा[4]। (भो वयस्य, अविहा अविहा) [241]

राजा - (गतिभेदेन परिक्रामन्) सखे, न भेतव्यं न भेतव्यम्। [242]

(नेपथ्ये) [243]

(पुनस्तदेव पठित्वा) कहं ण भाइस्सं। एस मं को वि पच्चवणदसिरोहरं मिच्छुं विअ तिण्णभङ्गं करेदि। (कथं न भेष्यामि। एष मां कोऽपि प्रत्यवनतशिरोधरम् इक्षुमिव त्रिभङ्गं करोति[5]।) [244]

राजा- (सदृष्टिक्षेपम्) धनुस्तावत्। [245]

(प्रविश्य शार्ङ्गहस्ता) [246]

यवनी[6]- भट्टा, एदं हत्थावावसहिदं सरासणं। (भर्तः, एतद्धस्तावापसहितं शरासनम्।) [247]

(राजा सशरं धनुरादत्ते) [248]

(नेपथ्ये) [249]

एष त्वामभिनवकण्ठशोणितार्थी शार्दूलः पशुमिव हन्मि चेष्टमानम्।
आर्तानां भयमपनेतुमात्तधन्वा दुष्यन्तस्तव शरणं भवत्विदानीम्।। 6 - 27।। [250]

राजा - (सरोषम्) कथं मामेवोद्दिशति। तिष्ठ कुणपाशन[7], त्वमिदानीं न भविष्यसि। (शार्ङ्गमारोप्य) वेत्रवति, सोपानमार्गमादेशय। [251]

प्रतीहारी - इदो इदो देवो। (इत इतो देवः।) (सर्वे सत्वरम् उपसर्पन्ति) [252]

राजा - (समन्ताद्विलोक्य) शून्यं खल्विदम्। [253]

---

1. का.-पाठेषु नास्त्येतादृशं वाक्यम्।
2. का.-पाठेष्वत्र कञ्चुकिनो मुखे "तस्याग्रभूमेर्गृहनीलकण्ठैरि" ति श्लोकः।, किन्तु विदूषकस्य त्राणप्रसंगे श्लोकगानं नोचितम्, अतो लघुपाठयोस्तस्य श्लोकस्य गद्यवाक्यत्वेन परिवर्तनं क्रियते।
3. का.-पाठादपि पूर्वमेव समारब्धोऽस्य श्लोकस्य प्रक्षेपः, लघुपाठयोरपि स्वीक्रियते।
4. का.-पाठे "अयि धाव, भो" इति।, मै.-पाठे "अहिधाव भो भो (=अभिधाव भो)" इति।, बं.-पाठे "अविद अविद भो" इति।, देव. -पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
5. का.-पाठे "मोटितशिरोधरमिक्षुमिव स्थिरभङ्गमेव कर्तुमिच्छती" ति।, मै.-पाठे "पश्चात् पीडितशिरोधरम् उद्बद्धवास्थिभङ्गं करोती" ति।, बं.-पाठे "पश्चात् मोट्य शिरोधरम् इक्षुमिव भग्नग्रन्थिं कर्तुमिच्छती" ति।, दाक्षि.-पाठे "पश्चादवनतशिरोधरमिक्षुमिव तीक्ष्णभङ्गं करोती" ति।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
6. मै.-पाठे प्रतीहारी प्रविशति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.- पाठमनुसरन्ति।
7. का.-पाठे "कुलपांसन" इति।, मै.-पाठे "कुणपापसद" इति।, बं.-पाठे "कौणपापसद" इति।, दाक्षि.-पाठे "कोणपापसद" इति।, देव. -पाठे परिवर्तनं क्रियते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(नेपथ्ये) [254]

अविहा, अविहा। अहं अत्तभवन्तं पेक्खामि। तुमं मं ण पेक्खसि। बिडालगहीदो मूसओ विअ णिरासो म्हि जीविदे संवुत्तो। (अविहा, अविहा, अहमत्रभवन्तं पश्यामि। त्वं मां न पश्यसि। बिडालगृहीतो मूषिक इव[1] निराशोऽस्मि जीविते संवृत्तः।) [255]

राजा - भोस्तिरस्करिणीगर्वित। मदीयं शस्त्रं त्वां [न]द्रक्ष्यति।[2] एष तमिषुं संदधे, [256]

यो हनिष्यति वध्यं त्वां रक्ष्यं रक्षति च द्विजम्।
हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः॥ 6 - 28॥ [257]

(इत्यस्त्रं सन्धत्ते) [258]

(ततः प्रविशति विदूषकमुत्सृज्य मातलिः।) [259]

मातलिः - राजन्,

कृताः शरव्यं[3] हरिणा तवासुराः शरासनं तेषु विकृष्यतामिदम्।
प्रमादसौम्यानि सतां सुहृज्जने पतन्ति चक्षूंषि न दारुणाः शराः॥ 6 - 29॥ [260]

राजा- (अस्त्रमुपसंहरन्) अये, मातलिः। स्वागतं महेन्द्रसारथे[4]। [261]

(प्रविश्य) [262]

विदूषकः - अहं जेण इट्ठिपसुमारं मारिदो सो इमिणा साअदेण अहिणन्दीअदि। (अहं येनेष्टिपशुमारं[5] मारितः सोऽनेन स्वागतेनाभिनन्द्यते।) [263]

मातलिः - (सस्मितम्) आयुष्मन्, श्रूयतां यदस्मि हरिणा भवत्सकाशं प्रेषितः। [264]

राजा - अवहितोऽस्मि। [265]

मातलिः - अस्ति कालनेमिप्रसूतिर्दुर्जयो नाम दानवगणः। [266]

राजा - अस्ति। श्रुतपूर्वो मया नारदात्। [267]

मातलिः -

सख्युस्ते स किल शतक्रतोरजय्य[6] -
स्तस्य त्वं रणशिरसि स्मृतो निहन्ता[7]।
उच्छेत्तुं प्रभवति यन्न सप्तसप्ति-
स्तन्नैशं तिमिरमपाकरोति चन्द्रः॥ 6 - 30॥ [268]

---

1. का.-पाठेषु "मार्जारगृहीत इव उन्दुर" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
2. का.-पाठे "मदीयमस्त्रं त्वां पश्यती" ति।, मै.-पाठे "मदीयशस्त्रं त्वां न द्रक्ष्यती" ति प्रश्नः।, बं.-पाठे "किं मदीयमस्त्रमपि त्वां न पश्यती" ति काकु-परिवर्तनं क्रियते।, दाक्षि.-पाठे "मदीयमस्त्रं त्वां द्रक्ष्यती" ति।, देव.-पाठे प्रयुक्तः शस्त्र इति शब्दो नोचितः प्रतिभाति।
3. का.-मै.-पाठयोः "शरव्या" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ बं.-पाठमनुसरतः।
4. का.-पाठे "देवराजसारथय" इति चतुर्थी।, मै,-बं.-पाठयो "र्देवराजसारथ" इति संबोधनम्।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
5. का.-पाठेषु "पशुमारेण / पशुमारमि" ति।, दाक्षि.-पाठे "येनेष्टिपशुमारमि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति। (बृहत्पाठपरम्परायामेव वर्तमानं पाठान्तरमधिकं श्रद्धेयं प्रतिभाति।)
6. का.-पाठे "स्त्ववध्य" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
7. केवलं मै.-पाठे "तस्य त्वं शरसख एव संनिहन्ते" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

स भवानात्तशस्त्र एवेदानीं तम् ऐन्द्ररथमारुह्य[1] विजयाय प्रतिष्ठताम्। [269]

राजा - अनुगृहीतोऽहमनया मघवतः संभावनया। अथ माढव्यं प्रति भवता किमेवं प्रयुक्तम्। [270]

मातलिः- तदपि कथ्यते। किंचिन्निमित्तादपि मनःसंतापादायुष्मान् मया विक्लवो दृष्टः। पश्चात्कोपयितुम् आयुष्यन्तं तथा कृतवानस्मि। कुतः- [271]

ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निर्विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते।
प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात् प्रतिपद्यते हि जनः[2]॥ 6 - 31॥ [272]

राजा - (जनान्तिकम्[3]) वयस्य, अनतिक्रमणीया दिवस्पतेराज्ञा। तदत्र परिगतार्थं कृत्वा मद्वचनाद् अमात्यपिशुनं ब्रूहि-[273]

त्वन्मतिः केवला तावत्प्रतिपालयितुं प्रजाः।
अधिज्यमिदमन्यस्मिन्कर्मणि व्यापृतं धनुः॥ 6 - 32॥ इति। [274]

विदूषकः- जं भवं आणवेदि। (यद्भवानाज्ञापयति।) (निष्क्रान्तः) [275]

मातलिः- आयुष्मान् रथमारोहतु। [276]

(राजा रथाधिरोहणं नाटयति) [277]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे) [278]

॥ षष्ठोऽङ्कः[4]॥ [279]

---

1. मै.-बं.-पाठयो "देवरथमारुह्ये" ति।, दाक्षि.-देव.पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
2. का.-पाठे "०जन्तुरि" ति।, मै.-पाठे "तेजस्वी चाक्षेपात् प्रायः प्रतिपद्यते तेज" इति।, बं.-पाठे "तेजस्वी संक्षोभात् प्रायः प्रतिपद्यते तेज" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
3. का.-मै.-पाठयोरस्ति रंगसूचनेयम्।, बं.-पाठे नास्ति सा।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
4. का.-पाठे न सन्ति प्रत्येकानामङ्कानां नामानि।, मै.-बं.-पाठयोः "शकुन्तला-विरहो नाम षष्ठोऽङ्कः" इति। दाक्षि.-देव.-पाठयोरपि का.-पाठमनुसृत्य न सन्ति प्रत्येकानामङ्कानां नामानि।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ सप्तमोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशत्या[1] काशयानेन[2] रथाधिरूढो राजा मातलिश्च।) [1]

राजा - मातले, अनुष्ठितनिदेशोऽपि मघवतः सत्क्रियाविशेषादनुपयुक्तमिवात्मानं समर्थये। [2]

मातलिः - (सस्मितम्) आयुष्मन्, उभयमप्यपरितोषं समर्थये। [3]

प्रथमोपकृतं मरुत्वतः प्रतिपत्त्या लघु मन्यते भवान्[3]।
गणयत्यवदानविस्मितो भवतः सोऽपि न सत्क्रियागुणान्[4]॥ *7 - 1॥ [4]*

राजा - मातले, मा मैवम्। स खलु मनोरथानामप्यभूमिर्विसर्जनावसरसत्कारः। मम हि दिवौकसां समक्षमर्धासनोपवेशितस्य,[5]

अन्तर्गतप्रार्थनम् अन्तिकस्थं[5] जयन्तमुद्वीक्ष्य कृतस्मितेन।
आमृष्टवक्षोहरिचन्दनाङ्का[6] मन्दारमाला हरिणा पिनद्धा॥ 7 - 2॥ [6]

मातलिः- किमिव नामायुष्मान् अमरेश्वरान्ना[7]र्हति। [7] पश्य-

सुखपरस्य हरेरुभयैः कृतं त्रिदिवमुद्धृतदानवकण्टकम्।
तव शरैरधुना नतपर्वभिः[8] पुरुषकेसरिणश्च पुरा नखैः॥ 7 - 3॥ [8]

राजा - अत्र खलु शतक्रतोरेव महिमा स्तुत्यः। [9]

सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः सम्भावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम्।
किं वाऽभविष्यद[9]रुणस्तमसां बिभेत्ता[10] तं चेत्सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत्॥ 7 - 4॥ [10]

मातलिः - सदृशमेवैतत्। (स्तोकमन्तरमतीत्य) आयुष्मन्, इतः पश्य नाकपृष्ठप्रतिष्ठितस्य सौभाग्यम् आत्मयशसः। [11] -

विच्छित्तिशेषैः सुरसुन्दरीणां वर्णैरमी कल्पलतांशुकेषु[11]।
विचिन्त्य गीतक्षममर्थजातं[12] दिवौकसस्त्वच्चरितं लिखन्ति॥ 7 - 5॥ [12]

---

1. केवलं का.-पाठे "ततः प्रविशति नाकलासिके" ति रंगसूचनया प्रवेशकः समायाति। नाकलासिकाया दृश्यमिदं नान्यत्र कुत्रापि प्राप्नोति।
2. का.-पाठे "रथयानेने" ति।, मै.-बं.-पाठयो "राकाशवर्त्मने" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
3. का.-बं.-पाठयो "रुपकृत्य हरेस्तथा भवाल्लँघु सत्कारमवेक्ष्य मन्यत" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठम् अनुसरतः।
4. का.-पाठेषु "न सत्क्रियामिमामि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
5. का.-पाठे "ऽन्तरस्थमि" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
6. का.-पाठेषु "प्रमृज्य वक्षो हरिचन्दनाक्तमि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
7. का.-पाठे "परमेश्वरादि" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः।, बं.-पाठे "सुरेशादि" ति।
8. केवलं मै.-पाठ "आयतपर्वभिरि" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।
9. का.-बं.-पाठयोः "प्राभविष्यदि" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः।
10. का.-पाठेषु "वधाये" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.- पाठमनुसरति।
11. का.-बं.-पाठयोः "कल्पलतान्तरेष्वि" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः।
12. का.-पाठेषु "संचिन्त्य गीतिक्षममर्थतत्त्वमि" ति।, दाक्षि.-पाठे "संचिन्त्य गीतिक्षममर्थबन्धमि" ति।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा - मातले, असुरसंप्रहारोत्सुकेन पूर्वेद्युर्दिव[1] मधिरोहता न लक्षितः स्वर्गमार्गः। कतरस्मिन्[2] मरुतां पथि वर्तामहे। [13]

मातलिः -

त्रिस्रोतसं वहति यो गगनप्रतिष्ठां ज्योतींषि वर्तयति च प्रविभक्तरश्मिः।
तस्य द्वितीयहरिविक्रमनिस्तमस्कं वायोरिमं परिवहस्य वदन्ति मार्गम्[3]॥ 7 - 6॥ [14]

राजा - मातले, अतः खलु सबाह्यकरणो ममान्तरात्मा प्रसीदति। (रथाङ्गं विलोक्य) मेघपदवीम् अवतीर्णौ स्वः। [15]

मातलिः - कथमवगम्यते। [16]

राजा -

अयम् अरविवरेभ्य[4]श्चातकैर्निष्पतद्भिर्हरिभिरचिरभासां तेजसा चानुलिप्तैः।
गतमुपरि घनानां वारिगर्भोदराणां पिशुनयति रथस्ते शीकरक्लिन्ननेमिः॥ 7 - 7॥ [17]

मातलिः- क्षणादायुष्मान् स्वाधिकारभूमौ वर्तिष्यते। [18]

राजा - (अधो विलोक्य) वेगावतरणादाश्चर्यदर्शनः संलक्ष्यते मनुष्यलोकः। [19] तथा हि-

शैलानामवरोहतीव शिखरादुन्मज्जतां मेदिनी
पर्णस्वान्तरलीनतां विजहति स्कन्धोदयात्पादपाः।
सन्तानैस्तनुभावनष्टसलिला व्यक्तिं भजन्त्यापगाः[5]
केनाप्युत्क्षिपतेव पश्य भुवनं मत्पार्श्वमानीयते॥ 7 - 8॥ [20]

मातलिः- साधु दृष्टम्। (सबहुमानमवलोक्य) अहो, उदार[6]-रमणीया पृथिवी। [21]

राजा- मातले, कतमोऽयं[7] पूर्वापरसमुद्रावगाढः कनकरसनिस्यन्दः सांध्य इव मेघपरिघः सानुमान् आलोक्यते। [22]

मातलिः - आयुष्मन्, एष खलु हेमकूटो नाम किंपुरुषपर्वतस्तपः संसिद्धिक्षेत्रम्[8], [23] पश्य-

स्वायंभुवान्[9] मरीचेर्यः प्रबभूव प्रजापतिः।
सुरासुरगुरुः सोऽत्र सपत्नीकस्तपस्यति॥ 7 - 9॥ [24]

राजा- तेन ह्यनतिक्रमणीयानि श्रेयांसि। प्रदक्षिणीकृत्य भगवन्तं गन्तुमिच्छामि। [25]

मातलिः- प्रथमः कल्पः। [26] (नाट्येनावतीर्णौ[10]।) [27]

---

1. का.-पाठे "पूर्वम् दूरमि" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
2. का.-पाठे "कतमस्मिन्" निति।, मै.-पाठे "कस्मिन् पथी" ति।, बं.-दाक्षि.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः। देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते। (देवनागरी पाठे नास्त्यान्तरिकी सम्भावना।)
3. का.-बं.-पाठयोः "तस्य व्यपेतरजसः प्रवहस्य वायोर्मार्गो द्वितीयहरिविक्रमपूत एष" इति।, मै.-पाठे "तस्य द्वितीयहरिविक्रमपूतमेनं वायोरधः परिवहस्य रहस्यमार्गमि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
4. का.-पाठे "ऽरिविवरेभ्य" इति।, मै.-बं.-पाठयो "रगविवरेभ्य" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
5. का.-पाठे "तनुभावनष्टसलिला व्यक्ता व्रजन्त्यापगा" इति।, मै.-पाठे "०व्यक्तम्०" इति।, बं.-पाठे "०व्यक्त्या०" इति।, दाक्षि.-पाठे "०व्यक्तिम्०" इति।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
6. का.-पाठे-"षूदग्र०" इति।, दाक्षि.-पाठे "प्युदग्र०" इत्येव।, केवलं देव.-पाठे परिवर्तनं दृश्यते।
7. केवलं मै.-पाठे "कतरोऽयमि" ति।
8. का.-पाठेषु "परं तपस्विनां सिद्धिक्षेत्रमि" ति।, दाक्षि.-पाठे "परमि" ति नास्ति।, देव.-पाठे परिवर्तनम्।
9. का.-पाठे "स्वायम्भुव" इति।, अन्यत्र सर्वत्र "स्वायम्भुवादि" ति। एतदेव साधुः।
10. का.-पाठे "ऽवतरणं नाटयित्वे" ति।, मै.-पाठे "रथावतारं नाटयती" ति।, बं.-पाठे "रथावतरणं नाटयित्वे" ति। दाक्षि.-पाठो का.-पाठमनुसरति।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते। (मंचनविधौ भेदः परिलक्ष्यते।)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- (सविस्मयम्)

उपोढशब्दा न रथाङ्गनेमयः प्रवर्तमानं न च दृश्यते रजः।
अभूतलस्पर्शतयाऽनिरुद्धतस्तवावतीर्णोऽपि रथो न लक्ष्यते॥ 7 - 10॥ [28]

मातलिः - एतावानेव शतक्रतोरायुष्मतश्च विशेषः[1]। [29]

राजा- मातले, कतमस्मिन्[2] प्रदेशे मारीचाश्रमः। [30]

मातलिः - (हस्तेन दर्शयन्)

वल्मीकाग्रनिमग्नमूर्तिरुरसा संदष्टसर्पत्वचा[3]
कण्ठे जीर्णलताप्रतानवलयेनात्यर्थसंपीडितः।
अंसव्यापि शकुन्तनीडनिचितं बिभ्रज्जटामण्डलं
यत्र स्थाणुरिवाचलो मुनिरसावभ्यर्कबिम्बं स्थितः॥ 7 - 11॥ [31]

राजा - नमस्ये कष्टतपसे। [32]

मातलिः- (संयतप्रग्रहं रथं कृत्वा) महाराज, एतावदिति-परिवर्धितमन्दारवृक्षं प्रजापतेराश्रमं[4] प्रविष्टौ स्वः। [33]

राजा- स्वर्गादधिकतरं निर्वृतिस्थानम्। अमृतह्रदमिवावगाढोऽस्मि। [34]

मातलिः- (रथं स्थापयित्वा) अवतरत्वायुष्मान्। [35]

राजा- (अवतीर्य) मातले, भवान्कथमिदानीम्। [36]

मातलिः- संयन्त्रितो[5] मया रथः। वयमप्यवतरामः। (तथा कृत्वा) इत आयुष्मान्, (परिक्रम्य) दृश्यन्ताम् अत्रभवताम् ऋषीणां[6] तपोवनभूमयः। [37]

राजा - ननु विस्मयादवलोकयामि। [38]

प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता सत्कल्पवृक्षे वने
तोये काञ्चनपद्मरेणुकपिशे धर्माभिषेकक्रिया[7]।
ध्यानं रत्नशिलातलेषु[8] विबुधस्त्रीसन्निधौ संयमो
यत्काङ्क्षन्ति तपोभिरन्यमुनयस्तस्मिंस्तपस्यन्त्यमी॥ 7 - 12॥ [39]

मातलिः - उत्सर्पिणी[9] खलु महतां प्रार्थना। (परिक्रम्याकाशे) अये वृद्धशाकल्य, किमनुतिष्ठति भगवान् मारीचः[10]। किं ब्रवीषि।

---

1. का.-पाठे "शतमन्योरायुष्मतोश्च विशेष" इति।, मै.-पाठे "शतक्रतोस्तावकस्य च रथस्य विशेष" इति।, बं.-पाठ "आयुष्मतः शतक्रतोश्च रथस्य विशेष" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
2. का.-बं.-पाठयोः "कतमस्मिन्" निति।, मै.-पाठे "कतरस्मिन्" निति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
3. का.-पाठेषु "०रुरगत्वग्ब्रह्मसूत्रान्तर" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति। (वेशभूषायां भेदो भवेद्)
4. का.-पाठे "तपोवनमि" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठमनुसरन्ति।, (रंगसज्जायां भेदो भवेद्)
5. का.-पाठेषु "समययन्त्रित" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
6. का.-पाठे "सिद्धर्षीणामि" ति।, मै.-बं.-पाठयोः "सिद्धमुनीनामि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
7. का.-पाठे "तोये हैमसहस्रपत्रसुभगे नक्तंदिवं सद्-व्रतमि" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठमनुसरति।, बं.-पाठे "तोये काञ्चनपद्मरेणुकपिशे पुण्याभिषेकक्रिये" ति।
8. का.-बं.-पाठयोः "रत्नशिलागृहेष्वि" ति।, मै.-पाठे "रत्नशिलागुहाष्वि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठानुसारी।
9. का.-पाठ "उत्कर्षिणी" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
10. का.-पाठे "किं व्यापारो भवान्नि" ति।, मै.-बं.-पाठयोः "किं व्यापारो भगवान् मारीच" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

दाक्षायण्या पतिव्रताधर्ममधिकृत्य[1] पृष्टस्तस्यै महर्षिपत्नीसुहितायै कथयतीति। [40]

राजा- (कर्णं दत्त्वा) अये, प्रतिपाल्यावसरः खलु प्रस्तावः[2]। [41]

मातलिः- (राजानमवलोक्य) अस्मिन् अशोकवृक्षमूले तावदास्तामायुष्यमान् यावत्त्वामिन्द्रगुरवे निवेदयितुमन्तरान्वेषी भवामि[3]। [42]

राजा- यथा भवान्मन्यते। (इति स्थितः) [43]

मातलिः - आयुष्मन्, साधयाम्यहम्। (इति निष्क्रान्तः) [44]

राजा- (निमित्तं सूचयित्वा) [45]

मनोरथाय नाशंसे किं बाहो, स्पन्दसे वृथा।
पूर्वावधीरितं श्रेयो दुःखं हि परिवर्तते[4]॥ 7 - 13॥ [46]

(नेपथ्ये) [47]

मा खु चावलं करेहि। कहं गदो जेव अत्तणो पकिदिं[5]। (मा खलु चापलं कुरु। कथं गत एवात्मनः प्रकृतिम्।) [48]

राजा- (कर्णं दत्त्वा) अभूमिरियमविनयस्य। को नु खल्वेष निषिध्यते[6]।

(शब्दानुसारेणावलोक्य, सविस्मयम्)

अये, को नु खल्वयमनुबध्यमानस्तपस्विनीभ्यामबालसत्त्वो बालः। [49]

अर्धपीतस्तनं मातुरामर्दक्लिष्टकेसरम्।
प्रक्रीडितुं सिंहशिशुं बलात्कारेण[7] कर्षति॥ 7 - 14॥ [50]

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टकर्मा तपस्विनीभ्यां बालः।) [51]

बालः- जिम्भ सिङ्घ, दन्ताइं दे गणइश्शं। (जृम्भस्व सिंह, दन्तांस्ते गणयिष्ये।) [52]

प्रथमा - अविणीद, किं णो अपच्चणिव्विसेसाणि सत्ताणि विप्पअरेसि। हंत, वड्ढइ दे संरम्भो। ठाणे खु इसिजणेण सव्वदमणो त्ति किदणामहेओ सि। (अविनीत, किं नः अपत्यनिर्विशेषाणि सत्त्वानि विप्रकरोषि[8]। हन्त, वर्धते ते संरम्भः। स्थाने खलु ऋषिजनेन सर्वदमन इति कृतनामधेयोऽसि।) [53]

---

1. का.-बं.-पाठयोः "पतिव्रतापुण्यमि" ति।,मै.-पाठे "पतिव्रतया व्रतमि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठानुसारी।
2. का.-पाठेषु वाक्यमिदं मातलेर्मुखे वर्तते।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसृत्य राज्ञो मुखे तत्स्थापयति।
3. का.-पाठे "यावत् त्वां प्रजापतय आवेदयामी" ति।, मै.-बं.-पाठयो "र्यावत्त्वामहमिन्द्रगुरवे निवेदयामी" ति।, देव.-पाठो दाक्षि. -पाठमनुसरति।
4. केवलं मै.-पाठे "दुःखेन परिवर्तत" इति।
5. का.-पाठे "कधं कधं य्येव अत्तणो पकिदिं दंसेसी" ति।, मै.-पाठे "कधं गदो ज्जेव अत्तणो पइदिं" इति।, बं.-पाठे "जहिं तहिं जेव अत्तणो पइदिं दंसेसी" ति।, दाक्षि.-पाठे "कहं गदो एव्व अत्तणो पकिदिं" इति।, देव.-पाठेऽपि ध्वनि-परिवर्तनं दृश्यते प्राकृतभाषायाम्। (का.-पाठे शौरसेनीस्वरूपं बहुशः सुरक्षितं वर्तते।)
6. का.-पाठेषु "निषिध्यत" इति।, दाक्षि.-पाठे "शिक्ष्यत" इति।, देव.-पाठः का.-पाठमनुसरति।
7. का.-बं.-पाठे "विलम्बितं सिंहशिशुं करेणाहत्य कर्षती" ति।, मै.-पाठे "विलम्बिनं० ...बलात्कारेण०" इति।, देव.-पाठो दाक्षि. -पाठमनुसरति।
8. का.-पाठे "नोऽपत्यनिर्विशेषाणि सत्त्वानि विप्रकरोषी" ति।, मै.-पाठे "सोदरस्नेहनिर्विशेषेऽस्मिन् सिंहशावके-ऽपरुद्धस्ते समारम्भ" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ बं.-पाठमनुसरतः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा - किं नु खलु बालेऽस्मिन्नौरस इव पुत्रे स्निह्यति मे मनः। नूनमनपत्यता मां वत्सलयति। [54]

द्वितीया - एसा खु केसरिणी तुमं लङ्घेदि, जइ से पुत्तअं ण मुञ्चेसि। (एषा खलु केसरिणी त्वां लङ्घयिष्यति यदि तस्याः पुत्रकं न मुञ्चसि।) [55]

बालः- (सस्मितम्) अम्हहे, बलिअं खु भीदो म्हि। (अहो, बलीयः खलु भीतोऽस्मि।) [56]

(इत्यधरं दर्शयति[1]) [57]

राजा -

महतस्तेजसो बीजं बालोऽयं प्रतिभाति मे।
स्फुलिङ्गावस्थया वह्निरेधापेक्ष इव स्थितः॥ 7 - 15॥ [58]

प्रथमा- वच्छ, एदं बालमिइंदअं मुञ्च। अवरं दे कीलणअं दाइस्सं। (वत्स,एतं बालमृगेन्द्रं मुञ्च। अपरं ते क्रीडनकं दास्यामि।) [59]

बालः - कहिं। देहि णं। (इति हस्त[2] प्रसारयति) (कुत्र, देह्येतत्।) [60]

राजा- (बालस्य हस्तमवलोक्य) कथं चक्रवर्तिलक्षणमप्यनेन धार्यते। तथा ह्यस्य-[61]

प्रलोभ्यवस्तुप्रणयप्रसारितो विभाति जालग्रथिताङ्गुलिः करः।
अलक्ष्यपत्रान्तरमिद्धरागया नवोषसा भिन्नमिवैकपङ्कजम्॥ 7 - 16॥ [62]

द्वितीया[3] - सुव्वदे, ण सक्को एसो वाआमेत्तेण विरमयिदुं। गच्छ तुमं। मम केरए उडए मक्कण्डेअस्स[4] इसिकुमारअस्स वण्णचित्तिदो मित्तिआमोरओ चिट्ठदि। तं से उवहर। (सुव्रते, न शक्य एषो वाचामात्रेण विरमयितुम्। गच्छ त्वम्। मदीये उटजे मार्कण्डेयस्यर्षिकुमारस्य वर्णचित्रितो मृत्तिकामयूरस्तिष्ठति। तमस्योपहर।) [63]

प्रथमा- तह। (तथा) (निष्क्रान्ता) [64]

बालः- इमिणा एव्व दाव कीलिस्सं। (अनेनैव तावत्क्रीडिष्यामि) [65]

(इति तापसीं विलोक्य हसति) [66]

राजा - स्पृहयामि खलु दुर्ललितायास्मै[5]। [67]

आलक्ष्यदन्तमुकुलाननिमित्तहासैरव्यक्तवर्णरमणीयवचःप्रवृत्तीन्।
अङ्काश्रयप्रणयिनस्तनयान् वहन्तो धन्यास्तदङ्गरजसा मलिनीभवन्ति[6]॥ 7 - 17॥ [68]

तापसी - होदु। ण मं अअं गणेदि। (पार्श्वमवलोकयति।) को एत्थ इसिकुमाराणं। (राजानमवलोक्य) भद्दमुह, एहि दाव। मोएहि इमिणा दुम्मोअहत्थग्गहेण डिम्भलीलाए बाहीअमाणं बालमिएदअं।

(भवतु। न मामयं गणयति। कोऽत्र ऋषिकुमाराणाम्। भद्रमुख, एहि तावत्। मोचयानेन दुर्मोकहस्तग्रहेण डिम्भलीलया बाध्यमानं बालमृगेन्द्रम्।) [69]

राजा- (उपगम्य, सस्मितम्) अयि भो महर्षिपुत्र,

---

1. का.-पाठें"ष्वित्यधरं दशती" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति। (आङ्गिकाभिनये भेदो भवेद्।)
2. केवलं का.-पाठे "दक्षिणहस्तमि" ति।
3. बं.-पाठवदत्रापि प्रथमेति भवितुमर्हति।, ततश्चोत्तरवर्तिन्यामुक्तौ द्वितीयेति भवितुमर्हति।
4. का.-बं.-पाठयोः "मङ्कणकस्स" इति।, मै.-पाठे "सालंकाअणस्स (शालंकायनस्य)" इति।, देव.-पाठो दाक्षि. -पाठमनुसरति।
5. ईप्सिततमत्वेपि संप्रदानसंज्ञैव।, स्पृहेरीप्सितः। पा. सू. 1-4-36 इत्यत्र भट्टोजिना यदुक्तं तच्चिन्त्यमेव।
6. का.-पाठेषु "परुषीभवन्ती" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

एवमाश्रमविरुद्धवृत्तिना संयमः किमिति जन्मतस्त्वया[1]।
सत्त्वसंश्रयसुखोऽपि दूष्यते कृष्णसर्पशिशुनेव चन्दनम्॥ 7 - 18॥ [70]

तापसी- भद्दमुह, ण खु अअं इसिकुमारओ। (भद्रमुख, न खल्वयमृषिकुमारः।) [71]

राजा- आकारसदृशं चेष्टितमेवास्य कथयति। स्थानप्रत्ययात्तु वयमेवं तर्किणः[2]। (यथाभ्यर्थितमनुतिष्ठन् बालस्पर्शमुपलभ्य, आत्मगतम्।) [72]

अनेन कस्यापि कुलाङ्कुरेण स्पृष्टस्य गोत्रेषु सुखं ममैवम्।
कां निर्वृत्तिं चेतसि तस्य कुर्याद्यस्यायमङ्कात् कृतिनः प्ररूढः[3]॥ 7 - 19॥ [73]

तापसी - (उभौ निर्वर्ण्य) अच्छरिअं अच्छरिअं। (आश्चर्यमाश्चर्यम्) [74]

राजा - आर्ये, किमिव। [75]

तापसी - इमस्स बालअस्स दे वि संवादिणी आकिदि त्ति विम्हाविद म्हि। अपरिइदस्स वि दे अप्पडिलोमो संवुत्तो त्ति। (अस्य बालस्य तेऽपि संवादिन्याकृतिरिति विस्मापितास्मि। अपरिचितस्यापि तेऽप्रतिलोमः संवृत्त इति च।) [76]

राजा- (बालमुपलालयन्) न चेन्मुनिकुमारोऽयम्, अथ कोऽस्य व्यपदेशः। [77]

तापसी - पुरुवंसो। (पुरुवंशः[4]।) [78]

राजा- (आत्मगतम्) कथमेकान्वयो मम। अतः खलु मदनुकारिणमेनमत्रभवती मन्यते। अस्त्येतत् पौरवाणाम् अन्त्यं कुलव्रतम्। [79]

भवनेषु रसाधिकेषु[5] पूर्वं क्षितिरक्षार्थमुशन्ति ये निवासम्।
नियतैकपतिव्रतानि[6] पश्चात् तरुमूलानि गृहीभवन्ति तेषाम्॥ 7 - 20॥ [80]

(प्रकाशम्) न पुनरात्मगत्या मानुषाणामेव विषयः। [81]

तापसी - जह भद्दमुहो भणादि। अच्छरासम्बन्धेण इमस्स जणणी एत्थ देवगुरुणो तवोवणे प्पसूदा।
(यथा भद्रमुखो भणति। अप्सरःसंबन्धेनास्य जनन्यत्र देवगुरोस्तपोवने प्रसूता।) [82]

राजा- (अपवार्य[7]) हन्त, द्वितीयमिदमाशाजननम्[8]। (प्रकाशम्) अथ सा तत्रभवती किमाख्यस्य राजर्षेः पत्नी। [83]

तापसी - को तस्स धम्मदारपरिच्चाइणो णाम संकीतिदुं चिंतिस्सदि। (कस्तस्य धर्मदारपरित्यागिनो नाम संकीर्तयितुं चिन्तयिष्यति[9]।) [84]

---

1. का.-बं.-पाठयोः "संयमी किमिति जन्मदस्त्वये" ति।, मै.-पाठे "संयतेन किमिवात्र जन्तुने" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
2. का.-बं.-पाठयो "रतर्किण" इति।, मै.-पाठ "एवं तर्किण" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः।
3. का.-पाठे "ष्वङ्गात् कृतिनः प्रसूत" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
4. मै.-बं.-पाठयोः "पौरव" इति।, दाक्षि-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
5. का.-पाठेषु "सुधासितेष्वि" ति।, दाक्षि.-पाठेऽपि तथैव।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
6. का.-पाठे "नियतैकयतिव्रतानी" ति।, मै.-पाठे "विहितैकमुनिव्रतानी" ति।, बं.-पाठे "विहितैकयतिव्रतानी" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
7. का.-बं.-पाठयो "रात्मगतमि" ति।, मै.-पाठे "ऽपवार्ये" ति।, दाक्षि.-पाठ "आत्मगतमि" ति।, देव.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
8. का.-पाठे "दत्तं द्वितीयमिदमाशङ्काजननमि" ति।, मै.-बं.-पाठयो "राश्वासजननमि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
9. का.-पाठे "नामधेयं ग्रहीष्यती"ति।, मै.-बं.-पाठयो "र्नाम कीर्तयिष्यती"ति।, दाक्षि.-पाठे "नाम संकीर्तयिष्यती"ति।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- (स्वगतम्) इयं खलु कथा मामेव लक्ष्यीकरोति। यदि तावदस्य शिशोर्मातरं नामतः पृच्छामि। अथवा, अनार्यः परदारव्यवहारः[1]। [85]

(प्रविश्य मृण्मयूरहस्ता) [86]

तापसी - सव्वदमण, सउंदलावण्णं पेक्ख। (सर्वदमन, शकुन्तलावण्यं प्रेक्षस्व[2]।) [87]

बालः- (सदृष्टिक्षेपम्) कहिं वा मे अज्जू। (कुत्र वा मम माता।) [88]

उभे - णामसारिस्सेण वंचिदो माउवच्छलो। (नामसादृश्येन वञ्चितो[3] मातृवत्सलः।) [89]

द्वितीया - वच्छ, इमस्स मित्तिआमोरअस्स रम्मत्तणं देक्ख त्ति भणिदो सि। (वत्स, अस्य मृत्तिकामयूरस्य रम्यत्वं पश्येति[4] भणितोऽसि।) [90]

राजा- (आत्मगतम्) किं वा शकुन्तलेत्यस्य मातुराख्या। सन्ति पुनर्नामधेयसादृश्यानि। अपि नाम मृगतृष्णिकेव नाममात्रप्रस्तावो[5] मे विषादाय कल्पते। [91]

बालः - अज्जूए[6], रोअदि मे एसो भद्दमोरओ। (मातः, रोचते म एषो भद्रमयूरः[7]।) [92]

(इति क्रीडनकमादत्ते) [93]

प्रथमा- (विलोक्य सोद्वेगम्) अम्हहे, रक्खाकरंडअं से मणिबन्धे ण दीसदि। (अहो, रक्षाकरण्डकमस्य[8] मणिबन्धे न दृश्यते।) [94]

राजा- अलमलमावेगेन। नन्विदमस्य सिंहशावविमर्दात् परिभ्रष्टम्। (इत्यादातुमिच्छति।) [95]

उभे - मा खु एदं ओलंबअ। कहं गहीदं णेण। (मा खल्विदमवलम्ब्य। कथं गृहीतमनेन?।) [96]

(इति विस्मयादुरोनिहितहस्ते परस्परमवलोकयतः।) [97]

राजा- किमर्थं प्रतिषिद्धाः स्मः। [98]

प्रथमा- सुणादु महाराओ। एसा अवराजिदा णाम ओसही इमस्स जातकम्मसमए भअवदा मारीएण दिण्णा। एदं किल मादापिदरो अप्पाणं च वज्जिअ अवरो भूमिपडिदं ण गेण्हादि। (शृणोतु महाराजः[9]। एषाऽपराजिता नामौषधि[10]रस्य जातकर्मसमये[11] भगवता मारीचेन दत्ता। एतां किल मातापितरावात्मानं च वर्जयित्वाऽपरो भूमिपतितां न गृह्णाति।) [99]

---

1. का.-पाठे "ऽन्याय्यः परदाराणां व्यवहार" इति।, मै.-पाठे "न न्याय्यः परदारपृच्छात्मको व्यापार" इति।, बं.-पाठे "ऽनार्यः परदारव्यवहार" इति।, दाक्षि.-पाठः का.-पाठमनुसरति।, देव.-पाठो बं.-पाठमनुसरति।
2. का.-पाठे "सर्वदमन, शकुन्तला...." इति।, मै.-पाठे "सर्वदमन, प्रेक्षस्व शकुन्तलावण्यमि" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
3. का.-पाठे "छलित" इति।, मै.-बं.-पाठयो "रुपच्छन्दित" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
4. का.-पाठे "कृत्रिममयूरस्य रमणीयतां प्रेक्षस्वे" ति।, मै.-बं.-पाठयो "र्मयूरस्य" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
5. का.-पाठेषु "प्रस्ताव" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
6. का.-पाठे "ऽत्ताके" इति।, मै.-पाठे "ऽत्तके" इति (भगिनी-वाचकः शब्दः)।, बं.-पाठे "ऽन्तिके" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
7. का.-पाठे "भद्यालके" इति।, मै.-पाठे "चतुरे" इति।, बं.-पाठे "चटुले" इति सप्तम्यन्तम्।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठानुसारी।
8. मै.-पाठे "रक्षागेण्ठकमि" ति।, बं.-पाठे "रक्षागण्डकमि" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
9. का.-पाठ "आर्य" इति।, मै.-बं.-पाठयो "र्महाभाग" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
10. का.-पाठे "महौषधिरि" ति।, मै.-पाठे "परममहौषधिरि" ति।, बं.-पाठे "सुरमहौषधिरि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
11. केवलं मै.-पाठे "नामकरणसमय" इति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- अथ गृह्णाति। [100]

प्रथमा- तदो तं सप्पो भविअ दंसइ। (ततस्तं सर्पो भूत्वा दशति।) [101]

राजा- भवतीभ्यां कदाचिदस्याः प्रत्यक्षीकृता विक्रिया[1]। [102]

उभे- अणेअसो। (अनेकशः) [103]

राजा- (सहर्षम्, आत्मगतम्) कथमिव सम्पूर्णमपि मे मनोरथं नाभिनन्दामि। [104]

(इति बालं परिष्वजते) [105]

द्वितीया- सुव्वदे[2], एहि। इमं वुत्ततं णिअमव्वावुडाए सउंदलाए णिवेदेम्ह। (सुव्रते, एहि। इमं वृत्तान्तं नियमव्यापृतायै[3] शकुन्तलायै निवेदयावः।) [106]

(इति निष्क्रान्ते) [107]

बालः- मुञ्च मं। जाव अज्जुएसआसं गम्मिसं। (मुञ्च माम्। यावन्मातुः सकाशं गमिष्यामि।) [109]

राजा - पुत्रक, मया सहैव मातरमभिनन्दिष्यसि। [109]

बालः- मम खु तादो दुस्संदो। ण तुमं। (मम खलु तातो दुष्यन्तः। न त्वम्।) [110]

राजा - (सस्मितम्) एष विवाद एव प्रत्याययति। [111]

(ततः प्रविशत्येकवेणीधरा शकुन्तला) [112]

शकुन्तला - विआरकाले वि पकिदित्थं सव्वदमणस्स ओसहिं सुणिअ ण मे आसा आसि अत्तणो भाअहेएसु। अहवा जह साणुमदीए आचक्खिदं तह सम्भावीअदि एदं। (विकारकालेऽपि प्रकृतिस्थां सर्वदमनस्यौषधिं श्रुत्वा न म आशासीदात्मनो भागधेयेषु। अथवा यथा सानुमत्या[4]ख्यातं तथा सम्भाव्यत एतत्।) [113]

राजा- (शकुन्तलां विलोक्य) अये, सेयम[5]त्रभवती शकुन्तला। [114]

यैषा-

वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः[6]।
अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीला मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्ति।। 7 - 21।। [115]

शकुन्तला - (पश्चात्तापविवर्णं राजानं दृष्ट्वा) ण खु अज्जउत्तो विअ। तदो को एसो दाणिं किदरक्खामङ्गलं दारअं मे गत्तसंसग्गेण दूसेदि। (न खल्वार्यपुत्र इव। ततः क एष इदानीं कृतरक्षामङ्गलं दारकं मे गात्रसंसर्गेण दूषयति[7]।) [116]

बालः- (मातरमुपेत्य) अज्जुए, एसो कोवि पुरिसो मं पुत्तत्ति आलिङ्गदि। (मातः, एष कोऽपि पुरुषो मां पुत्र इत्यालिङ्गति[8]।) [117]

---

1. मै.-पाठे "कदाचिदेतत् प्रत्यक्षीकृतमि" ति।, बं.-पाठे "कदाचिदन्यत्र प्रत्यक्षीकृतमि" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
2. बं.-पाठवदत्रापि संजदे (संयते) इति संबोधनेन भाव्यम्। (केवलः का.-पाठ एव सुसंगतः प्रतीयते)
3. का.-पाठे "नियमनिर्वृतायै शकु." इति।, मै.-पाठे "नियमव्यावृतायै शकु." इति।, बं.-पाठे "नियम-व्याकुलायै शकु." इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
4. का.-पाठे "ऽक्षमालये" ति।, मै.-बं.-पाठयो "र्मिश्रकेश्ये" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
5. का.-पाठ "इयमि" ति।, मै.-पाठे "कथमि" ति काकुपरिवर्तनम्।, बं.-पाठः का.-पाठमनुसरति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
6. केवलं का.-पाठे "कृतैकवेणिरि" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
7. का.-मै.-पाठयो "र्हस्तसंसर्गेणे" ति।, बं.-पाठे "गात्रसङ्गेने" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
8. का.-पाठ "इत्यालपती" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- प्रिये, क्रौर्यमपि मे त्वयि प्रयुक्तम[1]नुकूलपरिणामं संवृत्तम्, यदहमिदानीं त्वया प्रत्यभिज्ञातम् आत्मानं पश्यामि। [118]

शकुन्तला- (आत्मगतम्) हिअअ, अस्सस अस्सस। परिच्चत्तमच्छरेण अणुअप्पिअ म्हि देव्वेण। अज्जउत्तो खु एसो। (हृदय, आश्वसिहि आश्वसिहि। परित्यक्तमत्सरेणानुकम्पितास्मि[2] दैवेन। आर्यपुत्रः खल्वेषः।) [119]

राजा- प्रिये,

स्मृतिभिन्नमोहतमसो दिष्ट्या प्रमुखे स्थितासि मे सुमुखि।
उपरागान्ते शशिनः समुपगता रोहिणी योगम्[3]॥ 7 - 22॥ [120]

शकुन्तला -जेदु जेदु अज्जउत्तो। (इत्यर्धोक्ते बाष्पकण्ठी विरमति[4]) (जयतु जयतु आर्यपुत्रः[5]।) [121]

राजा- सुन्दरि,

बाष्पेण प्रतिषिद्धेऽपि जयशब्दे जितं मया।
यत्ते दृष्टमसंस्कारपाटलोष्ठपुटं[6] मुखम्॥ 7 - 23॥ [122]

बालः- अज्जुए, को एसो। (मातः, क एषः।) [123]

शकुन्तला- वच्छ, दे भाअहेआइं पुच्छेहि। (वत्स, ते भागधेयानि[7] पृच्छ।) [124]

राजा - (शकुन्तलायाः पादयोः प्रणिपत्य[8]।) [125]

सुतनु हृदयात् प्रत्यादेश[9]व्यलीकमपैतु ते
किमपि मनसः संमोहो मे तदा बलवानभूत्।
प्रबलतमसाम्[10] एवंप्रायाः शुभेषु प्रवृत्तयः
स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया[11]॥ 7 - 24॥ [126]

शकुन्तला -उट्ठेदु अज्जउत्तो। णूणं मे सुअरिअप्पडिबन्धअं पुराकिदं तेसु दिअहेसु परिणाममुहं आसी। जेण साणुक्कोसो वि अज्जउत्तो मइ विरसो संवुत्तो। (उत्तिष्ठत्वार्यपुत्रः। नूनं मे सुचरितप्रतिबन्धकं[12] पुराकृतं तेषु

---

1. मै.-पाठे "ऽनार्यमपि मे त्वयि प्रसक्तमि" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।
2. का.-पाठे "प्रहृत्य निर्वृत्तमत्सरेणा०" इति।, मै.-पाठे "परिहृत्य निवृत्तमत्सरेणा०" इति।, बं.-पाठे "प्रहार्य निर्वृत्तमात्सर्येणानुकम्पितास्मी" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
3. का.-पाठे "समुपनतो ग्रोहिणीयोग" इति।, मै.-पाठे "समुपगतो रोहिणीयोग" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ बं.-पाठमनुसरतः।
4. का.-पाठे "बाष्पं विहरती" ति।, मै.-पाठे "बाष्पं विसृजती" ति, बाष्पकण्ठीति शब्दोऽपि नास्ति।, बं.-पाठे "विरमती" त्येव।, दाक्षि.-देव.-पाठौ बं.-पाठमनुसरतः।
5. मै.-बं.-पाठयोरयं शब्दो न वर्तते।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः। किन्तु तन्न संगतम्, यतो हि- 1. उत्तरवर्तिनि श्लोके जयशब्द इत्येव प्राप्यते। 2. बाष्पकण्ठी विरमतीति रंगसूचनयापि तदेव द्योत्यते।
6. मै.-पाठे "दृष्टमसंस्काराल्लोलालकमिदमि" ति।, का.-बं.-पाठयो "र्दृष्टमसंस्कारपाटलौष्ठमि" ति रूपं प्राप्यते। ओत्वोष्ठयोः समासे वेति वार्तिकेन वृद्धेर्विकल्पः।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
7. का.-मै.-पाठयोः "भागधेयानि मे पृच्छे" ति।, बं.-पाठे "भागधेयानि पृच्छे" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठानुसारी।
8. केवलं बं.-पाठे श्लोकगानानन्तरं राजा शकुन्तलां प्रणमति।, मै.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।
9. केवलं मै.-पाठे "प्रत्याख्यान०" इति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।
10. मै.-पाठे "चपलतमसामि" ति।, बं.-दाक्षि.-दे.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।
11. का.-पाठे तृतीयचरणत्वेनागच्छति पङ्क्तिरियम्।
12. का.-पाठेषु "सुखप्रतिबन्धकमि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

दिवसेषु परिणाममुखमासीद्, येन सानुक्रोशोऽप्यार्यपुत्रो मयि विरसः संवृत्तः।) [127]

(राजोत्तिष्ठति) [128]

शकुन्तला - अह कहं अज्जउत्तेण सुमरिदो दुक्खभाई अअं जणो। (अथ कथमार्यपुत्रेण स्मृतो दुःखभाग्यय[1] जनः।) [129]

राजा - उद्धृतविषादशल्यः[2] कथयिष्यामि। [130]

मोहान्मया सुतनु पूर्वमुपेक्षितस्ते यो बाष्पबिन्दुरधरं परिबाधमानः[3]।
तं तावदाकुटिल[4] पक्ष्मविलग्नमद्य बाष्पं प्रमृज्य विगतानुशयो भवेयम्॥ 7 - 25॥ [131]

(इति यथोक्तमनुतिष्ठति[5]) [132]

शकुन्तला - (नाममुद्रां दृष्ट्वा) अज्जउत्त, एदं ते अंगुलीअअं। (आर्यपुत्र, इदं तेऽङ्गुलीयकम्।) [133]

राजा - अस्मादङ्गुलीयोपलम्भात् खलु स्मृतिरुपलब्धा। [134]

शकुन्तला - विसमं किदं णेण, जं तदा अज्जउत्तस्स पच्चअकाले दुल्लहं आसि। (विषमं कृतमनेन यत्तदार्यपुत्रस्य प्रत्ययकाले[6] दुर्लभमासीत्।) [135]

राजा - तेन ह्यृतुसमवायचिह्नं[7] प्रतिपद्यतां लता कुसुमम्। [136]

शकुन्तला - ण से विस्ससामि, अज्जउत्तो एव्व णं धारेदि। (नास्य विश्वसिमि, आर्यपुत्र एवैतद्धारयतु।) [137]

(ततः प्रविशति मातलिः।) [138]

मातलिः - दिष्ट्या, धर्मपत्नीसमागमेन पुत्रमुखदर्शनेन चायुष्मान् वर्धते। [139]

राजा - अभूत् सम्पादितस्वादुफलो मे मनोरथः। मातले, न खलु विदितोऽयमाखण्डलेन वृत्तान्तः स्यात्। [140]

मातलिः - (सस्मितम्) किमीश्वराणां परोक्षम्। एत्वायुष्मान्। भगवान्मारीचस्ते दर्शनं वितरति। [141]

राजा - शकुन्तले, अवलम्ब्यतां पुत्रः। त्वां पुरस्कृत्य भगवन्तं द्रष्टुमिच्छामि। [142]

शकुन्तला - हिरिआमि अज्जउत्तेण सह गुरुसमीवं गन्तुं। (जिह्रेम्यार्यपुत्रेण सह गुरुसमीपे गन्तुम्[8]।) [143]

राजा - अप्याचरितव्यमभ्युदयकालेषु। एह्येहि। [144]

(सर्वे परिक्रामन्ति।) [145]

(ततः प्रविशत्यदित्या सार्धमासनस्थो मारीचः) [146]

मारीचः - (राजानमवलोक्य) दाक्षायणि, [147]

---

1. का.-पाठे "ऽयं जन" इत्येव।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
2. का.-मै.-पाठयो "रुद्धृतशल्यविषाद" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ बं.-पाठमनुसरतः।
3. का.-पाठे "परिधावमान" इति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
4. का.-पाठ "आकुलित०" इति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
5. केवलं मै.-पाठे "मुखमुन्नमयितुं हस्तं प्रसारयती" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।
6. का.-पाठे "प्रत्यक्षेण करेणे" ति।, मै.-पाठे "प्रत्ययकरण" इति।, बं.-पाठे "प्रत्ययकारणमि" ति।, दाक्षि.-पाठे "प्रत्यायनकाल" इति।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते।
7. का.-बं.-पाठयो "ऋतुसमागमाशंसी" ति।, मै.-पाठे "०समयाशंसी" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
8. का.-पाठ "ऽर्हाम्यार्यपुत्रेण सह समीपं गन्तुमि" ति प्रश्नः।, मै.-पाठे "लज्जामि आर्यपुत्रेण०" इति।, बं.-पाठे "लज्जे खलु आर्यपुत्रेण सार्धं गुरुजनसमीपं गन्तुमि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

पुत्रस्य ते रणशिरस्ययमग्रयायी[1] दुष्यन्त[2] इत्यभिहितो भुवनस्थ भर्ता[3]।
चापेन यस्य विनिवर्तितकर्म जातं तत्कोटिमत् कुलिशमाभरणं मघोनः॥ 7 - 26॥ [148]

अदितिः- सम्भावणीआणुभावा से आकिदी। (सम्भावनीयानुभावाऽस्याकृतिः।) [149]

मातलिः - आयुष्मन्, एतौ पुत्रप्रीतिपिशुनेन चक्षुषा[4] दिवौकसां पितरावायुष्मन्तमवलोकयतः। तावुपसर्प। [150]

राजा- मातले, एतौ-

प्राहुर्द्वादशधा स्थितस्य मुनयो यत्तेजसः कारणं
भर्तारं भुवनत्रयस्य सुषुवे यद्यज्ञभागेश्वरम्।
यस्मिन्नात्मभवः परोऽपि पुरुषश्चक्रे भवायास्पदं
द्वन्द्वं दक्षमरीचिसंभवमिदं तत् स्रष्टुरेकान्तरम्[5]॥ 7 - 27॥ [151]

मातलिः - अथ किम्। [152]

राजा- (उपगम्य) उभाभ्याम्[6] अपि वासवानुयोज्यो दुष्यन्तः[7] प्रणमति। [153]

मारीचः - वत्स, चिरं जीव, पृथिवीं पालय। [154]

अदितिः- वच्छ, अप्पडिरहो होहि। (वत्स, अप्रतिरथो भव।) [155]

शकुन्तला - दारअसहिदा वो पादवन्दणं करेमि। (दारकसहिता वां पादवन्दनं करोमि।) [156]

मारीचः- वत्से,

आखण्डलसमो भर्ता जयन्तप्रतिमः सुतः।
आशीरन्या न ते योग्या पौलोमीसदृशी[8] भव॥ 7 - 28॥ [157]

अदितिः - जादे, भत्तुणो अभिमदा होहि। अवस्सं दीहाऊ वच्छओ उहअकुलणंदणो होदु। उवविसह।
(जाते, भर्तुरभिमता भव। अवश्यं दीर्घायुर्वत्स उभयकुलनन्दनो भवतु। उपविशत। [158]

(सर्वे प्रजापतिमभित उपविशन्ति।) [159]

मारीचः- (एकैकं निर्दिशन्) [160]

दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी, सदपत्यमिदं, भवान्।
श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति त्रितयं तत्समागतम्॥ 7 - 29॥ [161]

राजा- भगवन्, प्रागभिप्रेतसिद्धिः, पश्चाद्दर्शनम्। अतोऽपूर्वः खलु वोऽनुग्रहः। [162] कुतः-

---

1. का.-पाठे "ऽग्रगामी" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
2. का.-पाठे "दुष्ष्यन्त" इति।, मै.-पाठे "दुष्मन्त" इति।, बं.-पाठे "दुःषन्त" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठम् अनुसरति।
3. केवलं मै.-पाठे "गोप्ते" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।
4. मै.-पाठे "पुत्रसमेन चक्षुषे" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठाः का.-पाठमनुसरन्ति।
5. का.-पाठे "ब्रह्मानन्तरविश्वयोनिसहितं द्वन्द्वं तदेतत् वशी" ति।, बं.-दाक्षि.-देव.-पाठा मै.-पाठमनुसरन्ति।
6. का.-पाठ "उभावपि वामि" ति।, मै.-पाठ "उभाभ्यामपी" ति।, बं.-पाठ "उभाभ्यामपि वामि" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
7. का.-पाठे "दुष्ष्यन्त" इति।, मै.-पाठे "दुष्मन्त" इति।, बं.-पाठे "दुःषन्त" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठम् अनुसरति।
8. का.-पाठेषु "०मंगले" ति।, दाक्षि.-पाठे "पौलोम्याः सदृशी" ति।, देव.-पाठे समासः क्रियते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलं घनोदयः प्राक् तदनन्तरं पयः।
निमित्तनैमित्तिकयोरयं क्रमस्तव प्रसादस्य पुरस्तु सम्पदः॥ 7 - 30॥ [163]

मातलिः - एवं विधातारः[1] प्रसीदन्ति। [164]

राजा- भगवन्, इमामाज्ञाकरीं वो गान्धर्वेण विवाहविधिनोपयम्य कस्यचित्कालस्य बन्धुभिरानीतां स्मृतिशैथिल्यात् प्रत्यादिशन्नपराद्धोऽस्मि, तत्रभवतो युष्मत्सगोत्रस्य कण्वस्य। पश्चादङ्गुलीयक- दर्शनादूढपूर्वां तद्दुहितरमवगतोऽहम्। तच्चित्रमिव मे प्रतिभाति। [165]

यथा गजो नेति समक्षरूपे[2] तस्मिन्नपक्रामति[3] संशयः स्यात्।
पदानि दृष्ट्वा तु भवेत्प्रतीति स्तथाविधो मे मनसो विकारः॥ 7 - 31॥ [166]

मारीचः- वत्स, अलमात्मापराधशङ्कया। संमोहोऽपि त्वय्यनुपपन्नः। श्रूयताम्। [167]

राजा- अवहितोऽस्मि। [168]

मारीचः - यदैवाप्सरस्तीर्थावतरणात् प्रत्यक्षवैक्लव्या[4] शकुन्तलामादाय मेनका दाक्षायणीमुपगता तदैव ध्यानाद् अवगतोऽस्मि दुर्वाससः शापादियं तपस्विनी सहधर्मचारिणी त्वया प्रत्यादिष्टा, नान्यथेति। स चायमङ्गुलीयकदर्शनावसानः। [169]

राजा- (सोच्छ्वासम्) एष वचनीयान्मुक्तोऽस्मि। [170]

शकुन्तला- (स्वगतम्) दिट्ठिआ, अकारणपच्चादेसी ण अज्जउत्तो। ण हु सत्तं अत्ताणं सुमरेमि। अहवा पत्तो मए स हि सावो विरहसुण्णहिअआए ण विदिदो। अदो सहीहिं संदिट्ठम्हि भत्तुणो अङ्गुलीअअं दंसइदव्वं त्ति। (दिष्ट्याऽकारणप्रत्यादेशी नार्यपुत्रः[5]। न खलु शप्तमात्मानं स्मरामि।

अथवा प्राप्तो मया स हि शापो विरहशून्यहृदयया न विदितः। अतः सखीभ्यां सन्दिष्टास्मि, भर्तुरङ्गुलीयकं दर्शयितव्यमिति।) [171]

मारीचः - वत्से, चरितार्थासि। सहधर्मचारिणं प्रति न त्वया मन्युः कार्यः। [172] पश्य -

शापादसि प्रतिहता स्मृतिरोधरूक्षे[6] भर्तर्यपेततमसि प्रभुता तवैव[7]।
छाया न मूर्च्छति मलोपहतप्रसादे शुद्धे तु दर्पणतले सुलभावकाशा[8]॥ 7 - 32॥ [173]

---

1. का.-बं.-पाठयो "र्विश्वगुरव" इति।, मै.-पाठे "विधाचाराः (विधातारः?)" इति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः।
2. का.-पाठे "गजे नेतरपक्षरूपे (?)" इति।, मै.-पाठे "गजो साधुसमक्षरूप" इति।, बं.-पाठे "गजे साधुसमक्ष-रूप" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
3. का.-मै.-पाठयोः "तस्मिन्नतिक्रामती" ति।, बं.-पाठे "कस्मिन्नपि क्रामती" ति।, दाक्षि.-पाठो का.-पाठम् अनुसरति।, देव.-पाठे परिवर्तनं क्रियते। (पाठान्तरेषु सत्स्वपि श्लोकार्थः संशयग्रस्तः प्रतिभाति।)
4. का.-मै.-पाठयोः "प्रत्यक्षवैक्लव्यामि" ति।, बं.-पाठे "प्रत्याख्यानविक्लवामि" ति।, दाक्षि.-पाठे "प्रत्यादेश-विक्लवामि" ति।, देव. -पाठः का.-पाठमनुसरति।
5. का.-पाठेषु "दिष्ट्याऽकामप्रत्यादेश्यार्यपुत्र" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
6. का.-पाठे "शापादिति प्रतिहतस्मृतिलोपरूक्ष" इति।, मै.-पाठे "शापादसि प्रतिहता स्मृतिलोपरौक्ष्यादि" ति।, बं.-पाठे "शापादसि प्रतिहता स्मृतिलोपरूक्ष" इति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
7. का.-पाठे "भर्तर्यपेततमसि प्रभूता तथैवे" ति।, मै.-पाठे "भर्तुर्यदैव चलितासि पुनः प्रभुत्वमि" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ बं.-पाठमनुसरतः।
8. का.-पाठे "सुभगावकाशे" ति।, मै.-पाठे "विमलप्रकाशे" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ बं.-पाठमनुसरतः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- यथाह भगवान्। [174]

मारीचः - वत्स, कच्चिदभिनन्दितस्त्वया विधिवदस्माभिरनुष्ठितजातकर्मा पुत्र एष शाकुन्तलेयः। [175]

राजा- भगवन्, अत्र खलु मे वंशप्रतिष्ठा। [175]

मारीचः- तथा भाविनमेनं चक्रवर्तिनमवगच्छतु भवान्। [176] पश्य,

रथेनानुद्घातस्तिमितगतिना तीर्णजलधिः
पुरा सप्तद्वीपां जयति[1] वसुधामप्रतिरथः।
इहायं सत्त्वानां प्रसभदमनात् सर्वदमनः
पुनर्यास्यत्याख्यां भरत इति लोकस्य भरणात्॥ 7 - 33॥ [177]

राजा- भगवता कृतसंस्कारे सर्वमस्मिन् वयमाशंसामहे। [178]

अदितिः- भअवं, इमाए दुहिदुमणोरहसंपत्तीए कण्णो वि दाव सुदवित्थारो करीअदु। दुहिदुवच्छला मेणआ इह एव्व मं उपचरन्ती चिट्ठदि। (भगवन्, अनया दुहितृमनोरथसम्पत्त्या कण्वोऽपि तावच्छ्रुतविस्तारः क्रियताम्। दुहितृवत्सला मेनकेहैवोपचरन्ती तिष्ठति[2]।) [179]

शकुन्तला- (आत्मगतम्) मणोरहो खु मे भणिदो भअवदीए। (मनोरथः खलु मे भणितो भगवत्या।) [180]

मारीचः- तपःप्रभावात् प्रत्यक्षं सर्वमेव तत्रभवतः। [181]

राजा- अतः खलु मम नातिक्रुद्धो मुनिः। [182]

मारीचः - तथाप्यसौ प्रियमस्माभिः श्रावयितव्यः। कः कोऽत्र भोः। [183]

(प्रविश्य)

शिष्यः - भगवन्, अयमस्मि। [184]

मारीचः - गालव, इदानीमेव विहायसा गत्वा मम वचनात्तत्रभवते कण्वाय प्रियमावेदय, यथा पुत्रवती शकुन्तला तच्छापनिवृत्तौ स्मृतिमता दुष्यन्तेन प्रतिगृहीतेति। [185]

शिष्यः- यथाज्ञापयति भगवान्। (निष्क्रान्तः) [186]

मारीचः - वत्स, त्वमपि स्वापत्यदारसहितः सख्युराखण्डलस्य रथमारुह्य ते राजधानीं प्रतिष्ठस्व। [187]

राजा- यथाज्ञापयति भगवान्[3]। [188]

मारीचः- वत्स, किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि। [189]

राजा- अतः परमपि प्रियमस्ति। यदिह भगवान् प्रियं कर्तुमिच्छति, तर्हीदमस्तु- [190]

---

1. मै.-बं.-पाठयो "रवती" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ का.-पाठमनुसरतः।
2. का.-पाठे "मेनका इहैव संनिहिते" ति।, मै.-बं.-पाठयो "मेनका पुनः इहैव दुहितृवत्सला परिचरन्ती संनिहिते" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठौ मै.-पाठमनुसरतः।
3. का.-पाठ इतः परं मारीचः "क्रतुभिरुचितभागांस्त्वं सुरान् भावयालमि" ति श्लोकं भणति।, मै.-पाठे तु "तव भवतु बिडौजाः प्राज्यवृष्टिः प्रजासु०" इति, "क्रतुभिरुचितभागांस्त्वं सुरान् प्रीणयालमि" ति च श्लोकौ भणति।, बं.-पाठे "तव भवतु बिडौजाः प्राज्यवृष्टिरि" त्येकमेव श्लोकं भणति मारीचः।, दाक्षि.-पाठोऽपि बं.-पाठम् अनुसृत्य "तव भवतु बिडौजाः०" इति श्लोकं मारीचस्य मुखे स्थापयति।, देव.-पाठे संक्षेपः क्रियते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(भरतवाक्यम्)

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः सरस्वती श्रुतमहतां महीयसाम्[1]।
ममापि च क्षपयतु नीललोहितः पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः[2]॥ 7 - 34॥ [191]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे) [192]

॥ सप्तमोऽङ्कः[3]॥ [193]

॥ समाप्तम् अभिज्ञानशाकुन्तलं[4] नाम नाटकम्॥

1. का.-बं.-पाठयोः "श्रुतिमहतां महीयतामि" ति।, मै.-पाठे "श्रुतमहतां महीयसामि" ति।, दाक्षि.-पाठो का.-पाठमनुसरति।, देव.-पाठो मै.-पाठमनुसरति।
2. का.-बं.-पाठयोः "परिगतभक्तिरात्मभूरि" ति।, मै.-पाठे "परिगतभक्तिरात्मने" ति।, देव.-पाठो दाक्षि.-पाठमनुसरति।
3. मै.-पाठे सप्तमाङ्कस्य नाम "शकुन्तला-संवर्धनमि" ति प्राप्यते।, बं.-पाठेऽस्यैवाङ्कस्य नाम न प्राप्यते।, दाक्षि.-देव.-पाठयोरपि का.-पाठवत् प्रत्येकानामङ्कानां नामामि न दीयन्ते।
4. का.-पाठे "ऽभिज्ञानशकुन्तले" ति।, मै.-बं.-पाठयो "रभिज्ञानशकुन्तलमि" ति।, दाक्षि.-देव.-पाठयो "रभिज्ञान-शाकुन्तलमि" ति शीर्षकं प्राप्यते।। (सर्वत्र शब्दार्थभेदेन काव्यार्थभेदो भवेत्।)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ अभिज्ञानशकुन्तला नाटक के पाठ का पुनर्गठन॥

(प्रथम अनुमित पाठ[1] के सम्पादन का मेरा पहला प्रयास)

[1]

भूमिकाः- इस ग्रन्थ का आरम्भ करते हुए कहा है कि संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हुए इस नाटक के पाठ के बारे में त्रिविध जिज्ञासाएँ/ प्रश्न होते हैं। इनमें से दूसरे एवं तीसरे प्रश्न के उत्तर प्राप्त करने के लिए जिन पाँचों रंगावृत्तियों के पाठों का यहाँ तुलनात्मक अध्ययन किया गया है- उससे कुछ प्रधान बिन्दु हमारे सामने आ रहे हैं। जैसे कि, (क) कवि के मूलपाठ की प्रतिलिपिभूत एक भी पाण्डुलिपि शायद आज हमारे सामने मौजूद नहीं है। एवमेव, (ख) पाँच तथाकथित वाचनाओं के पाठों में से किसी एक में ही कविप्रणीत पाठ की सीधी धारा संचरित हो कर आयी हो- ऐसा भी नहीं है। बल्कि यह निश्चित है कि इन पाँचों पाठों में जो पाठ संचरित हुआ है वह विभिन्न प्रदेश एवं विभिन्न कालखण्ड के अनेक अज्ञात रंगकर्मियों द्वारा बनाये रंगावृत्ति के ही ये पाठ हैं। (ग) इन रंगावृत्तियों के पाठो में, परस्पर से भिन्न हो ऐसे, ये अलग अलग रंगावृत्ति के पाँच स्वतन्त्र पाठ भी नहीं हैं। बल्कि ऐसे प्रकट प्रमाण मिलते हैं कि प्राचीनतम काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ को ही आधार बना कर, उसमें ही मिथिलादि प्रदेश के रंगकर्मियों ने संशोधन, परिवर्तन, परिवर्धन, संक्षेपादि करके अपनी अपनी रंगावृत्तियों के ये पाठ बनाये हैं। अर्थात् मैथिली, बंगाली, दाक्षिणात्य तथा देवनागरी रंगावृत्तियाँ काश्मीरी रंगावृत्ति की ही वंशज रंगावृत्तियाँ कही जा सकती हैं। अतः कवि-प्रणीत पाठ में ही अनेक अज्ञात रंगकर्मियों ने किये सुधार / विकार का सांकर्य हुआ दिखता है। (घ) इन पाँच रंगावृत्तियों के आविष्कार का कालानुक्रम जानने के लिए यद्यपि कोई दस्तावेजीय / पुरातात्त्विक प्रमाण तो उपलब्ध नहीं होते हैं, तथापि इन रंगावृत्तियों के पाठों में ही सर्वत्र बिखरे हुए अन्तःसाक्ष्यों से, निश्चयात्मक रूप से, सिद्ध किया जा सकता है कि - वर्तमान में उपलब्ध हो रही इन पाँचों में से सब से प्रथम क्रमांक पर 1. काश्मीरी रंगावृत्ति खड़ी है, द्वितीय क्रमांक पर, (विक्रमादित्य बिरुदधारी साहसाङ्क चन्द्रगुप्त-2 के समय में तैयार की गई) 2.मैथिली रंगावृत्ति आती है।, तत्पश्चात् तृतीय क्रमांक पर 3. बंगाली रंगावृत्ति आकारित हुई है।, तथा चतुर्थ एवं पञ्चम क्रमांक पर 4. दाक्षिणात्य एवं 5. देवनागरी रंगावृत्तियों का स्थान आता हैं।।

प्रस्तुत तुलनात्मक अध्ययन से, उपर्युक्त बिन्दुओं के उपरान्त, सविशेष रूप से यह भी ज्ञात हो रहा है कि इन पाँच रंगावृत्तियों में से जो प्रथम पायदान पर खड़ी प्राचीनतम काश्मीरी रंगावृत्ति का पाठ है, उसीमें ही अनेक स्थानों पर आन्तरिक सम्भावनायुक्त पाठ सुरक्षित रहा है। एवं काश्मीरी रंगावृत्ति के अनेक पाठान्तर अधिक श्रद्धेय एवं मौलिकता के नजदीक है ऐसा कृतिनिष्ठ अन्तःसाक्ष्यों से एवं प्राचीनतर अलंकारशास्त्रीय उद्धरणों से प्रमाणित हो रहा है। काश्मीरी पाठ के जिन जिन स्थानों में संक्षेप एवं परिवर्तन हुए हैं, उन स्थानों का पाठोद्धार (मूलगामी पाठ का पुनः प्रतिष्ठापन) मैथिली-आदि रंगावृत्तियों के सहारे हो भी सकता है। क्योंकि इन पाँचों रंगावृत्तियों के तुलनात्मक अध्ययन से यह जाना गया है कि मूलगामी हो सकता

---

1. इस नाटक का डॉ. एस. के. बेलवालकर द्वारा पुरस्कृत "नातिदीर्घ एवं नातिह्रस्व" पाठ, जो साहित्य अकादमी, दिल्ली, 1965 से प्रकाशित किया गया है, उसको पुनर्गठित पाठ नहीं कहा जा सकता। तत्पश्चात् डॉ. दिलीप कुमार काञ्जीलाल (1980) ने भी यद्यपि "Reconstructed Text" ऐसे शब्द का प्रयोग किया है, तथापि वह भी पुनर्गठित पाठ नहीं कहा जा सकता। उसमें बंगाली वाचना के पाठ को ही मौलिक पाठ मान लेने की गुजारीश की गई है। मैंने जिन पाँचों रंगावृत्तियों का पङ्क्तिशः तुलनात्मक अभ्यास किया है, उन सब पाठों का विनियोग करते हुए यह पुनर्गठित एवं पुनः प्रतिष्ठित (Reconstructed & Restored Text) किया गया पाठ है, अत उसको मैंने "प्रथम पुनर्गठित पाठ" कहा है। तथा यह भी, मेरा प्रथम प्रयास है। भविष्यति काले दूसरा, तीसरा अनुमान भी पेश करने की आवश्यकता एवं उम्मीद है। क्योंकि कतिपय देवनागरी एवं दाक्षिणात्य पाण्डुलिपियों में बृहत्पाठ भी संचरित हुआ है- ऐसी नई जानकारी मिल गई है।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

हो ऐसा पाठ्यांश आंशिकतया कहीं न कहीं सुरक्षित पड़ा है।। तुलनात्मक अध्ययन से इतनी जानकारी हस्तगत होने के बाद, उसके सहारे इस नाटक के अनुमानित सर्वाधिक श्रद्धेय यानी मूलगामी हो सकता हो ऐसे पाठ को पुनर्गठित (Restoration & Reconstruction of the text) करके, सम्पादित किया जा रहा है।।

[2]

प्रस्तुत प्रयास में, व्यापक तुलनात्मक अध्ययन के बाद, कालिदासीय अभिज्ञानशकुन्तला नाटक का जो पाठ सम्पादित किया गया है, **उसमें पाठ-सम्पादन के किन प्रचलित नियमों से सम्पादन नहीं किया गया है? वह प्रथम सोपान** पर कहना आवश्यक है:-

1. पाँचों रंगावृत्तियों के पाठों में जिन जिन पाठ्यांशों की **सर्वत्र प्राप्ति** हो रही है- उन निर्विवाद एवं सर्व साधारण पाठ्यांशों का संग्रह करके, यह सामान्य या सर्वमान्य पाठ का सम्पादन नहीं है।
2. पाँचों रंगावृत्तियों में से **बहुसंख्य रंगावृत्तियों में उपलब्ध** हो रहा पाठ भी पुनर्गठित पाठ के रूप में यहाँ नहीं रखा गया है। अर्थात् संदोहन पद्धति से भी किया गया यह पाठ-सम्पादन नहीं है।
3. जिन पाठ्यांशों में **सविशेष नाट्यक्षमता** है, एवं जिनसे **ध्वनिविशेष की अभिव्यक्ति** हो रही हो-उन पाठ्यांशों का चयन करके भी यह पाठ सम्पादित नहीं किया गया है। अत: इसको मधुकर-वृत्ति (Eelectic Principles) से किया गया पाठ-सम्पादन भी नहीं कहा जा सकता है।
4. संदिग्ध पाठ्यांश (पाठान्तरों) में कहीं पर "अनुलेखनीय सम्भावना" एवं "पाठ-सुधारणा" के नाम पर, कल्पनाजनित नवीन शब्दावली की रचना करने का भी प्रयास / साहस नहीं किया है[1]।
5. काश्मीरी रंगावृत्ति का पाठ प्राचीनतम होने के कारण, अथवा उसमें बहुश: आन्तरिक सम्भावना वाला पाठ मिलता है, इसी लिए उसीको ही साद्यन्त (यथावत् रूप में) नहीं स्वीकारा गया है।।

[3]

अनुमानत: जो कवि-प्रणीत हो ऐसे **मूलगामी पाठ** (Ur-Text) **की पुनःस्थापना एवं पुनर्गठन** करने के लिए पाठालोचना[2] के चतुर्थ चरण पर (= उच्चतर पाठसमीक्षा के लिए) निम्नोक्त दृष्टि-बिन्दु अनिवार्यतया ध्यानास्पद माने गये हैं:- (क) अभिज्ञानशकुन्तला नाटक के प्रस्तुत किये जा रहे इस पाठ्यांश में कहीं पर भी कृतिनिष्ठ आन्तर विरोध (any contradiction) नहीं होना चाहिए, (ख) पुनरुक्ति (repetition) वाला पाठ्यांश नहीं होना चाहिए, तथा (ग) विषयान्तर (digression) के रूप में सिद्ध होनेवाला पाठ्यांश भी नहीं होना चाहिए।। (घ) ई. स. प्रथम शताब्दी को कालिदास का प्रादुर्भाव-काल मान कर, उनसे पुरोगामी काल में हुए भरत मुनि के नाट्यशास्त्र-सम्मत अर्थोपक्षेपक के रूप में (नाटक के लिए केवल) "प्रवेशक" एवं "आत्मगतम्" जैसे पारिभाषिक शब्दों का सर्वत्र एक समान प्रयोग होना चाहिए। उसी तरह से, पिङ्गल-निर्दिष्ट छन्दो-बंधारण का परिपालन होना चाहिए। (उत्तरवर्ती काल के छन्द:शास्त्रीय ग्रन्थ एवं दशरूपकादि का प्रभाव

---

1. उदाहरणतया डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी जी ने नान्दी-पद्य में "प्रपन्नाँस्तनुभि:" ऐसा पाठान्तर कल्पित किया है।
2. पश्चिमी विद्वानों ने प्राचीन एवं मध्यकालिक ग्रन्थों की पाठालोचना करने के लिए चार सोपानवाली प्रक्रिया बताई है: (1) अनुसन्धान (Heuristics)- जिसमें पाण्डुलिपियों एवं सहायक सामग्री का एकत्रीकरण, तथा उनमें उपलब्ध होनेवाली सभी अशुद्धियों एवं पाठान्तरों का संतुलन-पत्रिकाओं में निरूपण करना है।, (2) संशोधन (Recension)- जिसमें प्राप्त की गई पाण्डुलिपियों का आनुवंशिक सम्बन्ध स्पष्ट करने के लिए उनका वंशवृक्ष सोचा जाता है, जिससे वाचना-निर्धारण एवं लुप्त मूलादर्श-प्रति के पाठ तक पहुँचने का मार्ग / दिशा निश्चित हो सकती है। (3) पाठ-सुधारणा (Emendation)- पाण्डुलिपियों में प्रविष्ट हुए अशुद्ध या व्याकरण-विरुद्ध या असम्बद्ध पाठान्तरों में से जब एक भी पाठान्तर पूर्वापर सन्दर्भ में सुसंगत प्रतीत नहीं होता है, तब अगतिकतया आंशिक पाठ-सुधारणा की जाती है। यहाँ तक की प्रविधि को प्राथमिक या निम्न स्तरीय (Lower Criticism)पाठालोचना कही जाती है।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अमान्य करना चाहिए। द्रष्टव्य- परिशिष्ट-5) एवञ्च, (ङ) नाट्यशास्त्रानुसारी शौरसेनी एवं मागधी के नियमों के अनुसार प्राकृत उक्तियों का स्वरूप होना चाहिए। अथवा यथासम्भव प्राचीनतम प्राकृत-व्याकरणों के नियमों एवं इसी नाटक के ही उद्धृत उदाहरणों के अनुसार होना चाहिए[1]। एवञ्च, अनिर्णयात्मक स्थिति में प्राचीनतम काश्मीरी प्राकृतपाठ सुरक्षित रहना चाहिए। (च) तथा प्राचीन से प्राचीनतर अलंकार-शास्त्रीय ग्रन्थों के उद्धरणों से यदि स्वीकृत/ अनुमानित पाठ को समर्थन मिलता है, तो उसको भी पादटिप्पणी में यथासम्भव निर्दिष्ट करना है। (छ) डॉ. एस. के. बेलवालकर जी ने 1923 में अभिज्ञानशाकुन्तल की उच्चतर समीक्षा करते समय कहा था कि इस नाटक में शकुन्तला एक निसर्ग-कन्या के रूप में प्रस्तुत की गई है। इस केन्द्रवर्ती बिन्दु को दृष्टि-समक्ष रखते हुए पाठनिर्धारण करना अतीव आवश्यक है[2]। (द्रष्टव्य:- TheApplication of a few canons of Textual & Higher Criticism to Kalidasa's S'akuntala, Asia Major, Vol.-2, Leipzig, Germany, 1923, pp. 79 to 104)। इसी तरह से, (ज) यह भी ध्यातव्य है कि इस नाटक के सभी प्रसंगों के आलेखन में एक रूप के सामने दूसरा प्रतिरूप खड़ा करने की निरूपण-विधा का साद्यन्त विनियोग किया गया है। (जिसका निरूपण हमने अभिज्ञानशकुन्तला नाटक की काश्मीरी वाचना का समीक्षित पाठसम्पादन- ग्रन्थ की प्रस्तावना में (पृ. 361 से 364) किया है।) अत: उस तरह की निरूपणविधा को भी उच्चतर समीक्षा के एक मानदण्ड के रूप में स्वीकारनी होगी।। (जैसे कि, तृतीयांक में पुष्प की पराग-रज से कलुषित हुए शकुन्तला के नेत्र को दुष्यन्त ने अपने वदनमारुत से प्रमार्जित कर दिया है। इस दृश्य के सामने, षष्ठांक में कवि ने, "शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम्" शब्दों से दुष्यन्त का संकल्पित चित्र रखा है। जब हम सोचते हैं कि विरही दुष्यन्त के मन में मृग के सींग पर अपना वामनेत्र खुजलाती हुई मृगी चित्रित करने की चाहत कैसे, कहाँ से पैदा हुई होगी? तो उसका उत्तर केवल तृतीयांक का वही प्रसंग दे सकता है कि जिसमें दुष्यन्त ने शकुन्तला के कलुषित हुए नेत्र का वदनमारुत से प्रमार्जन कर दिया था।) तो इस तरह की निरूपण-विधा से प्रस्तुत हुए तृतीयांक के उस दृश्य की मौलिकता प्रमाणित हो जाती है। उसी तरह से (उसी तृतीयांक के अन्दर), शकुन्तला के मृणालवलय को वक्ष:स्थल पर चिपकाते हुए दुष्यन्त ने जो उसको हृदयस्य निगडमिव कहा है, और उस मृणालवलय को वापस लेने के लिए आई शकुन्तला को देख कर दुष्यन्त ने उसे जीवितेश्वरी कही है। उसका प्रतिध्वनि षष्ठांक के गोत्रस्खलन के निर्देश में प्राप्त होता है। अत: मृणालवलय पहनाने के प्रसंग का भी मौलिकत्व नि:शंक हो जाता है।) (झ) कवि कालिदास ने प्रस्तावना में ही अपने इस नाटक के लिए "अपूर्वम् नाटकम्" एवं "नवेन नाटकेन" ऐसे दो विशेषण रखे हैं। अत: जहाँ द्विविध प्रसंगालेखन मिल रहा हो, वहाँ जिस पाठान्तर से नाटक की अपूर्वता की रक्षा हो रही हो- ऐसे ही पाठ को मूलगामी पाठ मान कर, उसीका स्वीकार करना चाहिए। उदाहरणतया, इस नाटक की काश्मीरी रंगावृत्ति में पूर्वपरिणीता रानी कुलप्रभा ईर्ष्या-कषायिता नहीं दिखाई है। उसके प्रतिपक्ष में मैथिली-आदि सभी रंगावृत्तियों में पूर्वपरिणीता रानी वसुमती राजा की दासी मेधाविनी के साथ सीधी स्पर्धा में आती है। विदूषक भी ज्येष्ठा नायिका के संघर्ष को अन्त:पुर का कलह, कालकूट-आदि कहता है। इनमें से कौन सा प्रसंगालेखन मौलिकता के नजदीक होगा? उसका निर्णय करते समय हमें याद रखना है कि कवि ने अपने पहले दो नाटकों में पूर्वपरिणीता रानियों का संघर्ष बहुविधतया आलिखित किया ही है। लेकिन जब वे अभिज्ञानशकुन्तला जैसे नाटक की रचना करते हैं, तो उसमें उन्होंने जो दुर्वासा के शाप का विनियोग किया है, वह एक अपूर्व योजना है। कवि ने इस शाप रूप नवीन संघर्ष प्रवर्तित किया है तो उसके साथ में पूर्वपरिणीता रानी का संघर्ष भी निरूपित करना आवश्यक नहीं है, क्योंकि ऐसे संघर्ष में कोई अपूर्वता नहीं है। यदि मैथिली पाठ का यहाँ स्वीकार

---

1. डॉ. रिचार्ड पिशेल के द्वारा परिष्कृत एवं सम्पादित बंगाली पाठ में प्राप्त होनेवाली शौरसेनी प्राकृत भाषा स्वीकारनी चाहिए- ऐसा भी अभिप्राय किसी का हो सकता है। किन्तु उसमें मेरा मतभेद है। क्योंकि उन्होंने आर्यपुत्र के लिए "अज्जउत्त", तथा खलु के लिए क्खु ऐसा जो ध्वनिरूप माना है, उसमें महाराष्ट्री प्राकृत की छाया संनिहित है। अत: उसका त्याग करके, इतिहासानुक्रम से जो प्राकृत ध्वनिरूप पहले प्रचार में आये हुए हैं, (परिशिष्ट -2), उनको पुन: प्रतिष्ठित (restored) करना चाहिए।।
2. I must here advert to one another point of higher criticism without a due appraisal of which a true understanding of the play and even a final fixing of its text is to my mind altogether impossible : I mean the philosophy of Nature which forms the ground-work of the play. (page-99)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

करेंगे तो मालविकाग्निमित्र एवं विक्रमोर्वशीय में दिखाये गये संघर्ष का ही पुनरावर्तन हो जायेगा। अतः नाटक की अपूर्वता बनाये रखने के लिए उन मैथिलादि रंगावृत्तियों के पाठों में जो पूर्वपरिणीता रानी का संघर्ष भी दाखिल किया गया है, वह यहाँ अस्वीकार्य एवं त्याज्य ही होगा।।

इतनी सैद्धान्तिक पूर्व-पीठिका के अनुसन्धान में पाठसम्पादन के लिए जो नियम यहाँ स्वीकारे गये हैं, वे निम्नोक्त हैं :- (1) शारदा-लिपि-निबद्ध काश्मीर की रंगावृत्ति का जो पाठ प्राचीनतम सिद्ध हो रहा है, तथा उसी पाठ में अनेक स्थान पर आन्तरिक सम्भावना-युक्त पाठ मिल रहा है- ऐसा बहुशः देखा गया है, इस लिए उसीको प्राथमिक स्तर पर वरणीय माना गया है, अर्थात् मूलाधार सामग्री के रूप में उसीका पाठ लिया गया है। (इस शारदा-पाठ की मेरी समीक्षितावृत्ति राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, 2018 में प्रकाशित हुई है।) (2) उस प्राचीनतम काश्मीरी रंगावृत्ति के पाठ में जिन श्लोकों एवं पाठ्यांशों को "विरासत में मिले प्रक्षिप्त अंश" के रूप में पहचाना गया है, (आन्तरिक सम्भावना की दृष्टि से जो मौलिक नहीं हो सकते हैं) वे हटाये गये हैं। (3) कालिदास के द्वारा प्रयुक्त किये गये "अपि च" एवं "अथवा" निपातों के प्रयोग का स्वारस्य ढूँढ कर, उस प्रमाण के आधार पर, इस नाटक के श्लोकों में रंगकर्मियों के द्वारा संक्षेपीकरण कार्य किया गया है, या कविंमन्यमान व्यक्तियों ने जो प्रक्षेप का खिलवाड़ किया है- उसको बहुशः पहचाना गया है[1]। (4) काश्मीर के स्थानिक रंगकर्मियों द्वारा किये हुए वे प्रक्षेप एवं परिवर्तन, जो आन्तरिक सम्भावना के विरुद्ध सिद्ध किये गये हैं- उनको मैथिली (या बंगाली)रंगावृत्ति के पाठ के आधार पर पुनर्गठित किया गया है। (जैसे कि, काश्मीरी पाठ के तृतीयांक में प्रयुक्त सहकार-अतिमुक्त लता, एवं चित्रा-विशाखावाले दो उपमान प्रक्षिप्त घोषित करके, मैथिली एवं बंगाली पाठ की साहाय्य लेकर वहाँ अधिक श्रद्धेय पाठ को पुनर्गठित किया है।) ऐसे स्थानों पर, मैथिली (या बंगाली) रंगावृत्ति के पाठ्यांशों को आन्तरिक सम्भावना का निश्चित समर्थन मिल रहा है, ऐसा देखने के बाद ही, उसे स्वीकार्य रखे गये हैं। (5) यदि कुत्रचित् बृहत्पाठवाली तीनों रंगावृत्तियों से भी प्रामाणिक एवं सुसंगत पाठ नहीं मिला है, तो दाक्षिणात्य (एवं देवनागरी) रंगावृत्ति के पाठ की ओर देखा गया है, तथा उसका चयन वहाँ से भी किया गया है। उदाहरणतया, माधवीलता से सम्बद्ध संवाद को निकाल ने के बाद, शकुन्तला जब नवमालिका को गले से लगा कर उससे बिदाई लेती है, तब वहाँ का (चतुर्थांक की उक्ति-संख्या 111से 117 पर्यन्त का) पाठ दाक्षिणात्य पाठानुरूप रखा है। (6) इस नाटक की कथावस्तु महाभारत के आदिपर्वान्तर्गत सम्भवपर्व के शकुन्तलोपाख्यान (अ. 62 से 69) से ली गई है। अतः उसमें दुःषन्त शब्द का प्रयोग हुआ है- इस बात को ध्यान में रखते हुए, प्रस्तुत पुनर्गठित पाठ में सर्वत्र दुःषन्त ऐसी ही वर्तनी का स्वीकार किया गया है। क्योंकि कालिदास के सामने तो वही शब्द-स्वरूप रहा होगा। (बंगाली पाठ परम्परा में भी उसी दुःषन्त शब्द को ग्राह्य रखा है।) इस दृष्टिबिन्दु से दुष्यन्त, दुष्यन्त, या दुष्मन्त / दुष्वन्त जैसे नामान्तरों को अस्वीकार्य माना गया है। (7) काश्मीरी पाठ में यद्यपि कण्व मुनि का दूसरा नाम काश्यप भी बीच बीच में प्रयुक्त हुआ है, किन्तु यहाँ सर्वत्र "कण्व" नाम ही स्थापित किया है। (8) इस नाट्य-कृति के तीन शीर्षक मिलते हैं। ये तीनों ही शीर्षक मौलिक होने का दावा एक समान रूप से कर सकते हैं। यानी तीनों की सम्भावना बराबर हो सकती है, अतः निर्णयात्मक प्रमाणान्तर के अभाव में, प्राचीनतम होने के नाते काश्मीरी शारदा-पाण्डुलिपियों में उपलब्ध हो रहा "अभिज्ञानशकुन्तला नाटकम्" ऐसा शीर्षक स्वीकार्य रखा गया है। (9) इस नाटक की पात्रसृष्टि के नामों के विषय में, (क) जो नाम अन्धकार में चले गये थे, जैसे कि- मारीचाश्रम की दो कन्याएँ अनुक्रम से संयता एवं सुव्रता है, वे पुनः प्रतिष्ठित किये हैं। (ख) जिस नाम में विकृति ने प्रवेश किया था, जैसे कि- उद्यानपालिकाओं

1. इस सन्दर्भ में कार्ल कैप्लर ने जो सम्पादन किया था, उसमें "अपि च", एवं "तथाहि" निपातों से अवतारित सभी श्लोकों को प्रक्षिप्त मान कर हटा दिये है। (द्रष्टव्य- Kalidasa'sSakuntala : Kurzer Textform, mit kristischen und erklarenden,Anmerkungen hrsg. Von Carl Cappeller, Kalidasa, Leipzing, H. Haessel, 1909) यद्यपि यह सही है कि उक्त निपातों से प्रस्तुत किये गये श्लोकों में प्रक्षेप होने की शक्यता है, तथापि ऐसे सभी श्लोकों को प्रक्षिप्त घोषित करने से पहले, कुछ विवेक की आवश्यकता भी थी। इस विषय में हमने बंगाली पाठ की विस्तृत एवं कड़ी आलोचना करते समय विवेक प्रस्थापित किया है, उसके लिए द्रष्टव्य है:- अभिज्ञानशकुन्तलम्, (सन्दर्भदीपिका टीका-समेतम्), सं. वसन्तकुमार म. भट्ट, राष्ट्रिय पाण्डुलिपि मिशन, दिल्ली, 2013, (पृ. 32 से 46), एवं धीमहि, वॉ.-3, एर्णाकुलम्, 2012, पृ. 76 से 89.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

परभृतिका एवं मधुकरिका में से मधुकरिका, जो बंगाली पाठ में मधुरिका बनाई गई है- वह मूल रूप में पुनः प्रतिष्ठित की गई है। (ग) जहाँ नवीन नामान्तर पेश किया गया है, जैसे कि- मेधाविनी को बंगाली पाठ में चतुरिका बनाया गया है, एवं दाक्षिणात्य पाठ में पिङ्गलिका को तरलिका बनाया गया है। तो उन दोनों को अपने प्राचीनतम परम्परागत नामों में स्थिर किया गया है। (10) संस्कृत भाषानिबद्ध पादटिप्पणियों में (क) जिन पाठ्यांशों को काश्मीरेतर पाठ में से लिया गया है, उसका सन्दर्भ उक्ति-क्रमांक के साथ दिया गया है , (ख) जिस काश्मीरी पाठ्यांशों को "विरासत में मिले प्रक्षेप" के रूप में पहचाना हैं, तथा अन्यान्य वाचनाओं में जिन श्लोकों का प्रक्षेप हुआ है- उन सब का "प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या" के साथ निरूपण किया है, (ग) "स्वगतम्" जैसी नाट्यशास्त्रेतर रंगसूचना का विनियोग करके जिन उक्तियाँ एवं श्लोकों का प्रक्षेप किया गया है- उनका निर्देश पाद-टिप्पणियों में किया गया है। (घ) जिन काश्मीरी पाठों को कृतिनिष्ठ अन्तःसाक्ष्य से समर्थन मिलता है- उनका सूत्रात्मक रूप से समुचित परामर्श किया गया है। (ङ) बृहत्पाठ के जिन श्लोकों को प्राचीनतर अलंकार-शास्त्रीय ग्रन्थों में उद्धृत किये गये हैं, उनका सन्दर्भ-निर्देश भी प्रायः किया गया है। (जिससे उस श्लोक की प्रामाणिकता / प्राचीनतमता या उसके प्रचलन का काल-निर्धारण करने में सहायता मिलेगी।) **निष्कर्षतः** उच्चतर समीक्षा की अपेक्षा के अनुसार, प्रस्तुत प्रयास में, आन्तरिक सम्भावना-युक्त एवं कृतिनिष्ठ अन्तःसाक्ष्य से समर्थित हो रहे पाठ को ही प्राधान्येन पुरस्कृत किया गया है। तथा परस्पर में (पूर्वापर सन्दर्भों में) विरुद्ध होनेवाले पाठ, विषयान्तर या पुनरुक्ति रूप सिद्ध होने वाले पाठ, या असम्बद्ध / विसंगत पाठ को (एवं ऐसी रंगसूचनाओं को, तथा उत्तरवर्ती काल के पारिभाषिक शब्दों को भी) हटाया गया है। तदनन्तर तृतीय क्रम पर, काश्मीरी रंगावृत्ति का पाठ (अपने साद्यन्त रूप में सम्पूर्णतया श्रद्धेय नहीं होते हुए भी) कुत्रचित् अगतिकतया प्राचीनतम होने के कारण ग्राह्य रखा गया है।।

[4]

आर्या छन्द में निबद्ध गाथाओं के पुनर्गठन की कोशिश करने से पहले अधिक समुचित समाधान की प्रतीक्षा करनी आवश्यक लगती है। डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल जैसे विद्वान् पिङ्गल-प्रोक्त लक्षणानुसारिणी ही आर्या गाथा होनी चाहिए- ऐसा मानते हैं। तथा उपलब्ध पाँचों पाठों में से केवल बंगाली पाठ में ही वह लक्षण घटित होता है, अतः सार्वत्रिक रूप से बंगाली पाठ को ही ग्राह्य बताते हैं। किन्तु आर्या छन्द का विनियोग प्राकृत गाथाओं के निबन्धन में जब होता है, तब प्राकृत भाषा में प्रादेशिक एवं कालिक सन्दर्भों के कारण हो रहे परिवर्तनों की भी हम उपेक्षा नहीं कर सकते हैं (जैसे कि, पिङ्गलप्रोक्त आर्या के लक्षण से हट कर, कदाचित् उत्तरवर्ती काल के श्रुतबोध में दिये गये आर्या के लक्षण का परिपालन भी दिखता है।) तथा राघव भट्ट ने आदिभरत के नाम से जिस द्विपदी गीति आर्या का निर्देश किया है, वह भी विचारणीय है। एवमेव, यदि इन सभी में विभिन्न कालखण्ड के रंगकर्मियों का ही खिलवाड़ हो तो, उनका पुनर्गठन करने में मार्गदर्शक हो सके ऐसे सिद्धान्तों की सोच शुरू करनी बहुत आवश्यक लगती है।।

[5]

किसी भी खण्डित या बहुशः परिवर्तित या संमिश्रित पाठ्यग्रन्थ (Text) के पुनर्गठन में, या फिर विविध पाठान्तरों में जब सर्वत्र समान सम्भावना दिखती हो तो वहाँ पाठचयन में 1. आन्तरिक सम्भावना का समर्थन होना चाहिए- ऐसा उच्चतर समीक्षा का प्रधान नियम है। किन्तु, इस तरह के समर्थन के अभाव में, 2. प्राचीनतम पाठ का आदर, या स्वीकार करने में सलामती ज्यादा है, एवं ज्यादा बुद्धिमानी है। क्योंकि इस नाटक का पाठ पुनर्गठित करने का जो मेरा प्रथम प्रयास है, उसमें कहीं कहीं ऐसे भी स्थान ध्यान में आ रहे हैं कि जहाँ पर परम्परागत सभी पाठ दुर्बोध या दुःसाध्य एवं कुत्रचित् संदिग्ध प्रतीत होते हैं। इन स्थानों की दुरुस्ती होने के लिए कुछ अनुपयुक्त अज्ञात पाण्डुलिपियों को प्रकाश में आने की हमें प्रतीक्षा करनी होगी। या फिर, उनके अभाव में कुछ नये तर्कों, अनुमानों की राह लेनी होगी। उदाहरणतया, (क) पुत्र सर्वदमन को जिस ऋषि का खिलौना देने का प्रस्ताव है, उस ऋषि का नाम मङ्कणक, मार्कण्डेय, या शालंकायन बताया जा रहा है। किन्तु इन तीनों पाठभेदों में से एकान्तिक निर्णय नहीं किया जा सकता है। (ख) काश्मीरी पाठ के सप्तमांक के आरम्भ में दो नाकलासिकाएँ जिस गाथा को प्रस्तुत करती हैं, वह प्राकृतभाषा में है। परन्तु उसमें एकाधिक शब्द दुर्बोध या दुःसाध्य है। इस

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

लिए अज्ञात एवं अप्राप्य पाण्डुलिपियाँ मिलने की प्रतीक्षा करनी होगी। उससे पहले उस गाथा के दुर्बोध होने मात्र से उसको प्रक्षिप्त घोषित करनी की चेष्टा हानिकारक सिद्ध हो सकती है। इतने अंश को यथावत् बनाये रखना उचित है, (जिसको हम "डिप्लोमेटीक टेक्स्ट" सम्पादन के नाम से पहचान सकते हैं)। 3. नेपाली पाण्डुलिपियों के आधार पर श्रीडमरुवल्लभ पन्त ने जो अभिज्ञानशाकुन्तल 1871 में प्रकाशित किया था, उसमें कतिपय नवीन श्लोक भी मिलते हैं। अतः इस नाटक की नेपाली पाठपरम्परा का भी अन्वेषण करना आवश्यक है। तथा उत्कलीय पाठपरम्परा से भी मैं अनभिज्ञ हूँ।। इति दिक्।।

[6]

इस नाटक के प्रथम अनुमानित पाठ की प्रस्तुति से पहले, तुलनात्मक दृष्टि से पाँचों रंगावृत्तियों की श्लोक-संख्या बताना जरूरी है :- -बंगाल के कुछ संस्करणों में 230 या 232 श्लोकवाला बृहत्तम पाठ प्रकाशित हुआ है। डॉ. रिचार्ड पिशेल ने 221 श्लोकवाला समीक्षित बंगाली पाठ दिया है। मैथिल पाठ में 225 श्लोक मिलते हैं। दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों में अनुक्रमतः 193 एवं 191 श्लोकोंवाला संक्षिप्त लघुपाठ मान्य किया गया है। इन सब के सामने इस पुनर्गठित पाठ में 198 श्लोकों को श्रद्धेय पाठ के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। (पादटिप्पणी में जिन श्लोकों को प्रक्षिप्त एवं अस्वीकार्य घोषित किये हैं, उनकी कुल संख्या 34 होती हैं। देखो- परिशिष्ट 3, 4) अब प्रत्येक अंक के किन किन प्रसंगों में, दृश्यों में, श्लोकों में, एवं रंगसूचना-आदि में पुनर्गठन[1] करने का प्रयास किया गया है उनका शृङ्ग-ग्राहिकतया परिगणन करके दिखाना उपकारक होगा:-

प्रथमांक की दृश्यावली में मुख्यतया निम्नोक्त स्थान पर परम्परागत पाठ को पुनर्गठित किया है:- (क) शारदा-पाण्डुलिपियों में संचरित हुआ पाठ प्राचीनतम सिद्ध हो रहा है- उस आधार पर इस नाटक का शीर्षक "अभिज्ञानशकुन्तला नाटकम्" स्वीकारा गया है। (ख) नाटक के प्रस्तावना-भाग में, 1. नटी-गीत की "खण-चुम्बिआइं भमरेहिं०" गाथा के शब्दों में आन्तरिक सम्भावना दिख रही है- उस लिए उसका पाठ मान्य रखा है। (यहाँ आर्या के लक्षणों की पूर्ति को ही एकमात्र मानदण्ड नहीं माना है।) 2. उसी तरह से सूत्रधार के "कतमत्प्रकरणमाश्रित्य" शब्दों में ही आन्तरिक सम्भावना होने से, वे मान्य किये हैं। तथा "कतमं प्रयोगम् आश्रित्य" वाला पाठभेद अमान्य किया है। (ख) मृगयाविहारी राजा दुष्यन्त के प्रवेशदृश्य में मैथिली-आदि में प्राप्त होनेवाला "न खलु न खलु बाणः०" श्लोक पुनरुक्तिदोषग्रस्त होने के कारण प्रक्षिप्त घोषित किया है। (ग) वैखानस के आशीर्वाद-प्रदान दृश्य में दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों द्वारा प्रक्षिप्त किया "जन्म यस्य पुरोर्वंशे युक्तरूपमिदं तव०" श्लोक भी अमान्य किया गया है। (घ) काश्मीरी रंगकर्मियों ने शकुन्तला के वल्कल शिथिली-करण-प्रसंग के पाठ में जो स्थानान्तरण किया है- उसको अमान्य किया है। तथा उसके स्थान पर मैथिल-पाठानुसारी पाठयोजना पुरस्कृत की गई है। (यद्यपि डॉ. बेलवालकर जी ने इस प्रसंग में काश्मीरी पाठ को ही मौलिक कहा है। (द्रष्टव्यः- The Original S'akuntala, Published in SirAshutosh Mookherjee Silver Jubilee Vol. 3, Orientalia, part-2, Calcutta, 1925, pp. 349 - 359) किन्तु उसमें "शुद्धान्त-दुर्लभम्०" श्लोक में रहा बहुवचनान्त प्रयोग उनके मत से विरुद्ध जा रहा है। अतः उनका अभिप्राय कथमपि ग्राह्य नहीं है। (ङ) शकुन्तला के वल्कल को लेकर जो संवादमाला परम्परागत पाठों में है, उनमें से अथवा-निपात से सुसम्बद्ध "इदम् उपहितसूक्ष्मग्रन्थिना०" तथा "सरसिजमनुविद्धम्०" श्लोकों को मान्य रखा है। तथा "कठिनमपि मृगाक्ष्या वल्कलं कान्तरूपम्०" को अमान्य किया है। किन्तु "इदम् उपहितसूक्ष्मग्रन्थिना०" श्लोक का राजा के मुख से उच्चारण होने के पूर्व जो उक्ति है:- "सम्यगियमाह प्रियंवदा"। उसके स्थान में "सम्यगियमाह शकुन्तला" ऐसा परिवर्तन करना सन्दर्भोचित लगता है। (च) वृक्षों को जलसिंचन करने का जो प्रसंग है उसमें माधवीलता से सम्बद्ध पूरा संवाद कृतिनिष्ठ आन्तरिक प्रमाणों से प्रक्षिप्त सिद्ध होता है, इस लिए उसको निरस्त किया गया है। (यह बात डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल के ध्यान में नहीं आयी है। हाँ, डॉ. बेलवालकर जी ने इस विषय को लेकर एक रोचक बात यह बताई है कि

1. पुनर्गठन शब्द से Restoration & Reconstruction of the text ऐसा अर्थ अभीष्ट है। जिसमें, पहले संक्षेपीकरण से हटाये गये पाठ का एवं नाट्यशास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली से विमुख किये गये शब्दों का पुनः प्रतिष्ठापन किया गया है। तत्पश्चात् पाठ-संशुद्धि के प्रयोजन से प्रक्षेपों को पहचान कर उनको हटाये गये हैं। तथा विकृत हुए स्थानों का आंशिक पुनर्योजन शामिल है।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

श्रीहर्षदेव की रत्नावली नाटिका का अनुकरण करते हुए किसीने उस माधवीलता का यहाँ प्रक्षेप किया है! द्रष्टव्यः- S'r-garic Elaboration in S'akuntala Act-3, 1929, pp. 187 to 192)। (छ) अंक के अन्त भाग में, शकुन्तला-निष्क्रमण के दृश्य का पाठ निश्चित करने के लिए द्वितीयांक के "दर्भांकुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे०" (2-12) श्लोक के शब्दों को ध्यान में लेना आवश्यक है। यहाँ काश्मीरी पाठ की अपेक्षा से मैथिली पाठ अधिक वरणीय प्रतीत हुआ है।।

द्वितीयाङ्क की दृश्यावली में मुख्यतया निम्नोक्त स्थान पर परम्परागत पाठ को पुनर्गठित किया है:- (क) विदूषक का मूल नाम माधव्य है, दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों में संस्कृतभाषी राजा के मुख से भी उसे "माढव्य" नाम से सम्बोधित करवाया जाता है, जो परवर्ती काल का पाठान्तर होने से अस्वीकार्य है। (ख) विदूषक ने रंगमंच पर पधार रहे राजा को बाणासनगृहीत यवनियों से परिवृत बताया है- उसी तरह की मंचन-योजना ही कवि को मान्य थी। यह बात आगे आनेवाले राजा के "(परिजनमवलोक्य) अपनयन्तु भवन्तो मृगयावेषम्, रेव (त)क! त्वमपि स्वनियोगमशून्यं कुरु।" वाक्य से, (यानी कृतिनिष्ठ अन्तःसाक्ष्य से ही) समर्थित होती है। अतः, यहाँ मैथिल एवं बंगीय पाठ "हृदयनिहितप्रियजन०" अग्राह्य सिद्ध होता है। (ग) विदूषक ने अपने कष्टों के लिए राजा स्वयं ही दोषी है- ऐसा सूचित करने के लिए दो नहीं, एक ही उपमा का प्रयोग किया है:- "स्वयमेवाक्षीण्याकुलीकृत्याश्रुकारणं पृच्छसि"। अन्यथा राजा मन्दबुद्धि सिद्ध होगा। (घ) विदूषक ने राजा के प्रणयालाप पर रोक लगाने के लिए त्रिविध हेतु प्रस्तुत किये थे, जिसका यहाँ काश्मीरी पाठ के आधार पर, पुनःप्रतिष्ठापन किया गया है। (इन तीन उक्तियों में संक्षेप करने के लिए ही ललितान्य-सम्भवा० श्लोक में पाठभेद करना शूरु हुआ है।) (ङ) शकुन्तला के पास किस उपाय से जाया जाय- यह सोचने के लिए राजा के कहने पर विदूषक रंगभूमि पर समाधि लगाता है। यह दृश्य केवल काश्मीरी पाठ में ही सुरक्षित रहा है। अन्यत्र ऐसा दृश्य ही नहीं है। किन्तु विक्रमोर्वशीय नाटक के द्वितीयांक में भी इसी तरह के शब्दों के साथ विदूषक समाधिमग्न होता है। अतः इस दृश्य की सम्भावना को नकारा नहीं जा सकता है।।

तृतीयाङ्क की दृश्यावली में मुख्यतया आठ स्थानों पर परम्परागत पाठ को पुनर्गठित किया है:- (क) कुसुमास्तरण वाले शिलापट्ट पर शकुन्तला को लम्बे समय तक लेटी हुई अवस्था में प्रस्तुत करने की दृश्य-योजना, जो मूल में कविसंकल्पित दृश्य-योजना थी, उसका पुनः प्रतिष्ठापन किया गया है। [जो दृश्य-योजना प्राचीनतम काश्मीरी रंगावृत्ति से ही अपने मूल रूप में से विचलित होना शुरू हुई थी, (और अद्यावधि दुनिया भर के किसी भी पाठालोचक एवं पाठसम्पादक का उसकी विचलित हुई दुर्दशा की ओर ध्यान ही नहीं गया था,) उसको अपने मूल रूप में पुनः प्रतिष्ठित (Restored) किया गया है। इसमें मदनलेख लिखते समय एवं मदनलेख के शब्दों को सुन कर सखियों के सामने दुष्यन्त प्रकट होने के बाद भी रंगमंच पर शकुन्तला लेटी हुई अवस्था में ही रहती है। तथा (दोनों सखियाँ के वहाँ से चली जाने के बाद) उसी शिलापट्ट पर समीप में बैठे नायक के द्वारा जब उसके पद्मताम्रवर्णी पाद को अपनी गोदी में लेकर, उनका संवाहन करने का प्रस्ताव रखा जाता है, तब ही वह शयनावस्था को छोड़ती है।] (ख) काश्मीरी रंगावृत्ति को विरासत में मिले सुरुचि का भङ्ग करनेवाले / अश्लीलता से भरे चार प्रक्षिप्त श्लोकों को हटाये गये हैं। (ग) मैथिली रंगावृत्ति द्वारा प्रक्षिप्त किये अन्य तीन श्लोकों को भी निरस्त किया गया है, जिनमें से एक "गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो मुनिकन्यकाः०" श्लोक भी है। कृतिनिष्ठ आन्तरिक प्रमाण से ही वह श्लोक प्रक्षिप्त सिद्ध हो रहा है। तथा च, बंगाली पाठ में प्रक्षिप्त हुआ "शशिकरविशदान्यस्याः०" श्लोक भी हटाया गया है। (घ) तीन सखियों के लिए प्रयुक्त किये गये चित्रा-विशाखे एवं शशाङ्कलेखा के उपमानों को हटाया गया है। (ङ) शकुन्तला को बिठाने के लिए प्रयुक्त मेघनादाहत मयूरी का उपमान भी हटाया गया है। (च) दाक्षिणात्य एवं देवनागरी रंगावृत्तियों में संक्षेपीकरण के आशय से हटाये गये दो दृश्य सप्रमाण पुनःप्रतिष्ठित किये गये हैं[1]। जैसे कि, 1. दुष्यन्त और शकुन्तला के एकान्त मिलन को (आन्तरिक सम्भावना के तर्कबल पर) जो लम्बे समय तक (मध्याह्न से सायंकाल

1. डॉ. एस. के. बेलवालकर ने 1929 में लिखा है कि इस नाटक के तृतीयांक के बृहत्पाठ की प्रसिद्धि सम्राट् हर्षवर्धन के (ई. स. 650) समय में भी थी। किन्तु संक्षेपीकरण के लिए हटाये गये दो दृश्यों की मौलिकता कैसे कृतिनिष्ठ अन्तःसाक्ष्यों से सिद्ध होती है?- यह नहीं बताया है। द्रष्टव्यः- S'r.garic Elaboration in S'akuntalaAct-3, Published in Indian Studies in Honour of C. R. Lanman, Harvard University Press, 1929, pp. 187 to 192.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

पर्यन्त) चलता रहा हो- उसको मान्य रखा गया है। इस दृश्य के दौरान दुष्यन्त ने शकुन्तला के हाथ में मृणालवलय को पहनाया है। इसको इसी तृतीय अंक के उपान्त्य श्लोक में विद्यमान "हस्ताद् भ्रष्टं बिसाभरणम्" शब्दों से (=कृतिनिष्ठ अन्तःसाक्ष्य से) समर्थित किया गया है। तथा इस एक रूप के सामने दूसरा प्रतिरूप खड़ा करने की निरूपण-विधा, जो इस नाटक में साद्यन्त प्रयुक्त हुई है, उसको मानदण्ड बना कर देखने से- 2. पुष्प की पराग-रज से कलुषित हुए शकुन्तला के नेत्र को नायक अपने वदनमारुत से प्रमार्जित कर देता है- उस तृतीयांक के दृश्य को षष्ठांक के "शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम्०" शब्दों का समर्थन भी मिल रहा है। इस तरह से उसकी मौलिकता प्रमाणित की गई है।। (छ) नायक-नायिका के एकान्त मिलन को रोकने ने के लिए, रंगावृत्तियों में उपलब्ध हो रही द्विविध (नेपथ्योक्ति की) व्यवस्थाओं में समान सम्भावनाएँ होते हुए भी मैथिली पाठानुसारी व्यवस्था अधिक स्वीकार्यतर मानी हैं। क्योंकि पूरे नाटक में शकुन्त-ला के लिए परभृतिका, चक्रवाकादि पक्षियों के भी प्रतीकों का विनियोग किया गया है। (ज) अंक के अन्त भाग में, जब गौतमी आ कर शकुन्तला को अपने साथ ले जाती है, तब उस गौतमी के साथ में दोनों सखियों का आगमन नहीं दिखाया है (यद्यपि इस विषय में पुनर्विचार की आवश्यकता है।))।

चतुर्थाङ्क की दृश्यावली में मुख्यतया निम्नोक्त दस स्थानों पर परम्परागत पाठ को पुनर्गठित किया है:- (क) दुर्वासा-शाप-प्रसंग के अवसर पर शाप-मोचन की याचना करने के लिए सखी अनसूया जाती है, और शाप-वृत्तान्त को शकुन्तला से संगोपित रखने का प्रस्ताव प्रियंवदा ने किया है- ऐसी काश्मीरी पाठ योजना ही आन्तरिक सम्भावना की दृष्टि से संरक्षणीया है। (ख) प्रातः काल का वर्णन करते समय शिष्य के मुख से कितने श्लोक निकले हैं एवं वे कौन कौन से श्लोक हैं? इस विवाद को समुच्चयार्थक "अपि च" निपातयुग्म के प्रयोग का स्वारस्य ध्यान में लेकर ही किया जा सकता है। तदनुसार कर्कन्धूनाम्० तथा पादन्यासं क्षितिधर० श्लोक ही मान्य हो सकते हैं। (ग) सखियों के आगमन से पूर्व, दो-तीन अज्ञात नामधारिणी तापसियाँ आकर शकुन्तला को महादेवी होने का, भर्ता को बहुमता होने का एवं वीरपुत्र-प्रसविनी होने का आशीर्वाद बारी बारी पर देती हैं- उस पाठ्यांश का निष्कासन किया गया है। (घ) काश्मीरी पाठ के अनुसार "क्षौमं केनचित्०" श्लोक के पीछे जो प्रियंवदा की उक्ति है कि- अनयाभ्युपपत्या भर्तुः गृहेऽनुभवितव्या राजलक्ष्मीः०,-तत्पश्चात् उसके पीछे लज्जावती शकुन्तला कहती है कि- "कोटरसम्भवेव मधुकरी पौष्करमुखम्-अभिलषसि", वही स्वीकार्य है। यहाँ मैथिली-बंगाली-पाठानुसारी योजना मान्य नहीं है, क्योंकि उनमें प्रियंवदा के सख्य एवं सद्भावना की परिरक्षा नहीं होती है। (ङ) नेपथ्य से कोकिलरव पैदा करने के लिए मैथिल-रंगकर्मियों ने जो श्लोक-क्रमांक परिवर्तित किया है, उसने एक गम्भीर शंका पैदा की है। क्योंकि, सोचने पर लगता है कि-1.शार्ङ्गरव के मुख में रखे गये "अनुमतगमना शकुन्तला०" श्लोक और गौतमी की उक्ति में पुनरुक्ति-दोष आ रहा है। 2. इस श्लोक के छन्दो विषय में भी विवाद है। एवं 3. कण्व की तपोवनदेवताओं से की गई अभ्यर्थना एवं नेपथ्य से उठी "रम्यान्तर:०" श्लोक की गुञ्ज के साथ ही गौतमी की उक्ति का सच्चा सम्बन्ध बैठता है। अतः हो सकता है कि "अनुमतगमना शकुन्तला०" वाला श्लोक प्रक्षिप्त ही हो। यद्यपि यह श्लोक काश्मीरी पाठ में भी है, तथापि उसको बीच में से उठा लिया जायेगा तो भी भाव की और पाठ की संगति अक्षुण्ण बनी रहती है। (च) पिता कण्व के मुख से "अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे०" श्लोक के बाद, "अपि च" निपात से अवतारित "यथा शरीरस्य शरीरिणश्च पृथक्त्वमेकान्तत एव भावि०" श्लोक का पुनःप्रतिष्ठापन भी करना अनिवार्य है। क्योंकि बिदाई ले रही पुत्री शकुन्तला का मन उभयत्र विभक्त / चिन्तित होना स्वाभाविक है। (छ) प्रथमांक की तरह यहाँ चतुर्थांक में से भी, माधवीलता से बिदाई लेने का प्रसंग निष्कासित करना अनिवार्य है। क्योंकि कण्व के "कान्तं समीपसहकारमिमं करिष्ये" ऐसा वचन कृतिनिष्ठ अन्तःसाक्ष्य के विरोध में जा रहा है। (ज) शकुन्तला अपने को "मलय-पर्वतोन्मूलिता चन्दनलता" का उपमान नहीं देती है, किन्तु "करिसार्थपरिभ्रष्टा करेणुका" का उपमान देती है- उसका पुनःस्थापन किया गया है। यहाँ एक मात्र काश्मीर पाठ में ही आन्तरिका सम्भावना सिद्ध होती है। (झ) बिदाई के सन्दर्भ को निरूपित करनेवाली तीन प्राकृत-गाथाएँ, जिनमें विशेष रूप से चक्रवाक-पक्षी सम्बन्धी गाथा का पुनःप्रतिष्ठापन करना भी सन्दर्भोचित है। परवर्ती काल में, संक्षेपीकरण के व्यामोह में इसी स्थान में कटौती की गई है। (ञ) "अर्थो हि कन्या परकीय एव०" अन्तिम श्लोक में न्यास शब्द के स्थान में, कृतिनिष्ठ अन्तःसाक्ष्य (उक्ति-116) से, धरोहर अर्थवाले "निक्षेप" शब्द

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

का पुनः प्रतिष्ठापन किया गया है। "धरोहर" अर्थ में प्रयुक्त होनेवाला (स्मृतिशास्त्रोक्त) जो निक्षेप शब्द है, वह विक्रमोर्वशीय नाटक में (2-13 के नीचे) भी प्रयुक्त हुआ है। तथा कालिदास की अन्य कोई भी कृति में धरोहर अर्थ में न्यास शब्द का प्रयोग हुआ ही नहीं है- ऐसा डॉ. श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी जी के "कालिदासशब्दानुक्रमकोश" (पृ. 258) से ही मालूम होता है! (ट) काश्यप शब्द के स्थान में, सार्वत्रिक रूप से कण्व शब्द का ही प्रयोग किया गया है।।

पञ्चमाङ्क की दृश्यावली में मुख्यतया निम्नोक्त स्थानों पर परम्परागत पाठ को पुनर्गठित किया है:- (क) इस अंक की प्रारम्भिक दृश्यावली का क्रम परम्परागत पाँच पाठों में अलग अलग है। किन्तु काश्मीरी पाठ प्राचीनतम होने के साथ साथ अधिकतर श्रद्धेय प्रतीत हो रहा है। अत: उसी के क्रम को मान्य पाठ के रूप में रखा गया है। जैसे कि, पहले कञ्चुकी की उक्ति, (जिसमें आकाशभाषित का भी विनियोग होता है), उसके बाद में राजा और विदूषक का प्रवेश हो जाने के पश्चात् हंसवतिका का गीत-श्रवण, तृतीय क्रम में वैतालिकों का श्लोक-गान होता है, (जिससे क्लान्तमना राजा नवीभूत होते हैं), ततः चौथे क्रम पर, कण्वाश्रम के ऋषिकुमार एवं शकुन्तला के साथ गौतमी का प्रवेश होता है। इस तरह की दृश्यानुक्रमिकता में कञ्चुकी की वार्धक्यवशात् हो रही विस्मृति की दशा के सामने राजा की शापवशात् हुई विस्मृति का विरोध आकारित होता है। (जो दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों में नहीं है।), एवं हंसवतिका-गीत के बाद आ रहे वैतालिकों के श्लोक-गान से राजा की धर्मबुद्धि को जागृत तथा सतेज करने का प्रयोजन सिद्ध होता है। (इस तरह की फलप्राप्ति मैथिली एवं बंगाली पाठों में से नहीं होती है।) सारांशतः काश्मीरी पाठ में नाटकीय-प्रयोजनों की संसिद्धि सर्वाधिक होती है, और उसीमें गुणपक्ष का आधिक्य एवं दोषपक्ष का अभाव होने से वही मान्य पाठ के रूप में स्थापित किया है। (ख) हंसवतिका के गीत को सुन कर दुष्यन्त के मुख से जो प्रतिभाव निकला है, "वयस्य, सत्कृत-प्रणयोऽयं जनः। तदस्याः कृते कुलप्रभामन्तरेण समुपालम्भम् उपागतोऽस्मि। तन्मद्वचनात्०" इत्यादि, उसको काश्मीरी पाठ के अनुसार यथावत् रखा है। क्योंकि मैथिली एवं बंगाली पाठों में से पूर्वपरिणीता रानी का (कुलप्रभा, या वसुमती) नाम हटा कर, हंसवती ही रखा है। उस तरह का पाठान्तर रखने में ऐसा लगता है कि उन्होंने हंसवतिका-गीत के अर्थघटन के साथ जुड़े विवाद को दूर या कम करने का प्रयास किया है। अतः प्राचीनतम होने के कारण काश्मीरी पाठ को संग्राह्य माना गया है, (जिसमें लघुपाठों का भी परोक्ष समर्थन सम्मिलित हुआ है)। (ग) शकुन्तला-प्रत्याख्यान प्रसंग में, रंगसज्जा के रूप में (मैथिल-पाठानुसार) होमधेनु नहीं, किन्तु कपिला धेनु को स्थान देना उचित समझा गया है। क्योंकि अग्निशरणालिन्द में खडे राजा के परिसर में होमधेनु न होने से भी, (काश्मीरी पाठक्रम से) वैतालिकों के श्लोक-गान से वह (राजा की धर्मबुद्धि को जागृत करने का) प्रयोजन सिद्ध किया ही गया है। अतः यहाँ काश्मीरी पाठ के अनुसार यदि कपिला धेनुवाले पाठ को मान्य रखते हैं, तो वह कपिला-धेनु दयनीय शकुन्तला का प्रतीक भी बन सकती है। (घ) कण्वाश्रम से शार्ङ्गरव एवं शारद्वत के साथ भागुरि नाम का कोई तीसरा व्यक्ति भी, काश्मीरी पाठ में उपस्थित होता है। लेकिन उसको पुनर्गठित पाठ में अमान्य किया है। क्योंकि चतुर्थाङ्क में शकुन्तला को लेकर जब दो ऋषिकुमार एवं गौतमी निकले थे, तब उसका कोई निर्देश नहीं किया गया है। यानी कृतिनिष्ठ आन्तरिक प्रमाण के अभाव में उसका निष्कासन करना आवश्यक है। (ङ) राजा के साथ वाद-विवाद करते समय, तीनों बृहत्पाठों में शकुन्तला के मुख में "तुम्हे य्येव पमाणं जाणध०" ऐसी गाथा मिलती है। किन्तु उसका अस्वीकार किया गया है। क्योंकि वह निसर्ग-कन्या शकुन्तला के स्वरूप से विरुद्ध है। (च) एवमेव, शकुन्तला के स्वाभाविक कोप को देख कर राजा दुष्यन्त उसकी भ्रूलताओं का वर्णन करने के लिए दो श्लोकों का गान "स्वगतोक्ति" के रूप में करता है, किन्तु वे दोनों ही श्लोक अप्रासंगिक हैं। क्योंकि जब दुष्यन्त के सामने खडी शकुन्तला के लिए जीवन-मरण का दुःख (संघर्ष)पराकाष्ठा पर पहुँच चूका है, तब राजा के द्वारा दो श्लोकों का काव्यालाप अप्रासंगिक एवं सर्वथा अनुचित कहा जायेगा। अतः काश्मीरी पाठ का "न तिर्यगवलोकि चक्षुरतिलोहितं०", तथा मैथिली पाठवाला "मय्येवमस्मरणदारुण०" श्लोक भी अग्राह्य है।।

षष्ठाङ्क की दृश्यावली में मुख्यतया निम्नोक्त स्थानों पर परम्परागत पाठ को पुनर्गठित किया है:- (क) प्रवेशक के दृश्य में धीवर-प्रसंग आता है। उसमें पाठनिर्धारण की दृष्टि से कुछ स्थान ध्यानास्पद हैं। 1. धीवर ने राजमुद्रा की कहीं से चोरी नहीं की है, बल्कि मछलीमारी करते हुए उसको वह किसी मत्स्य के उदर से प्राप्त हुई है। इस बयान

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

की सच्चाई प्रमाणित करने के लिए परम्परागत पाठों में त्रिविध पाठान्तर मिलते हैं। जिनमें से प्राचीनतम काश्मीरी पाठ तर्कसंगत लगता है। नागरिक (श्याल) ने अंगूठी अपनी नासिका से लगाई और सूँघने का अभिनय करके बताया कि धीवर की बात ठीक लगती है। अंगूठी में से ही ऐसी दुर्गन्ध आ रही है कि वह मत्स्य के उदर में रही हो। किन्तु धीवर की मुखाकृति से वह "घोराकृति" दिखता है, अथवा वह "गोधादी" हो ऐसी दुर्गन्ध उसके शरीर से निकल रही है, अतः उसका बयान ठीक है- ऐसी प्रस्तुतियाँ निश्चित तया परवर्ती काल की सिद्ध होती हैं। 2. जब राजा ने बताया कि धीवर का बयान सच्चा है, और उसको बन्धन से मुक्त किया जाय। तो उसके प्रतिभाव में, काश्मीरी पाठ के अनुसार "यमवसतिं गत्वा गुडखण्डं च दत्त्वा प्रतिनिवृत्तः।" ऐसा वाक्य मिलता है, जो संग्राह्य पाठ लगा है। (ख) प्रथम दृश्य में जो दो उद्यानपालिकाएँ आती हैं, उनको सभी पाठों में चेटी या दासी का सामाजिक दरजा दिया गया है। किन्तु लगता है कि कवि की मूल अवधारणा तो निसर्ग के / वसन्त ऋतु के ही प्रतिनिधिभूत मधुमक्षिका (मधुकरिका) एवं कोकिला (परभृतिका) को ही उद्यानपालिकाओं के नाम से प्रस्तुत करने की रही होगी। जो विचार शताब्दियों से अन्धकाराच्छादित रहा है। अतः हमने उनको चेटियाँ न कह कर, उद्यानपालिका के नाम से ही पुनर्गठित पाठ में रखा है, जिससे उनकी वेशभूषा भी तदनुरूप निश्चित होगी। (ग) कञ्चुकी के मुख से निकलनेवाला श्लोक "चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका बध्नाति न स्वं रजः०" को, एवं तदनुगामिनी दो उक्तियाँ को प्रक्षिप्त घोषित करने की आवश्यकता है। क्योंकि कञ्चुकी के निषेध करने से पहले तो परभृतिका (कोकिला) ने चूतमञ्जरी का भङ्ग कर लिया है, और उसको कामदेव को समर्पित भी कर दिया है! तथैव च, आगे चल कर जो विदूषक की उक्ति है कि- "साम्प्रतं शिशिरविच्छेदे रमणीयेऽस्मिन् प्रमदवने सुखं विहरिष्यामः" उसके साथ भी कञ्चुकी-निर्दिष्ट निषेधात्मक परिस्थिति के साथ विरोध पैदा हो रहा है। यद्यपि कञ्चुकी की इस उक्ति का सर्वत्र स्वीकार हुआ है, तथापि यह कृतिनिष्ठ आन्तरिक विरोध पैदा करनेवाला पाठ होने से अग्राह्य बनता है। (घ) उसी दृश्य में प्रथमा (परभृतिका) एवं द्वितीया (मधुकरिका) की आरम्भिक उक्तियों के क्रम में भी परम्परागत पाठों में विकृति पैदा हुई है, जिसको मैथिल पाठ के सहारे तर्कसंगत बनाया गया है। (ङ) शकुन्तला के चित्रफलक प्रसंग में, मैथिली पाठ से प्रविष्ट हुए 1. दीर्घापाङ्गविसारिनेत्र०, 2. अस्यास्तुंगमिव स्तनद्वयम्०, 3. यद्यत् साधु न चित्रेऽस्मिन्०।, तथा 4. उपहितस्मृतिरंगुली० श्लोकों को प्रक्षिप्त घोषित करके हटाये गये हैं। क्योंकि वे आन्तरिक सम्भावना के विरुद्ध जा रहे हैं। (च) मिश्रकेशी के मुख से निकलने वाले अमुक वाक्यों को भी, विषयान्तर पैदा करनेवाले होने से निरस्त करना आवश्यक समझा गया है। (छ) राजा की दासी का नाम मेधाविनी और रानी की दासी का नाम पिङ्गलिका ही संग्राह्य है, क्योंकि बंगाली पाठ से ही उसमें परिवर्तन आना शुरू हुआ है- ऐसा सिद्ध हो रहा है। (ज) मैथिली पाठशोधकों द्वारा दाखिल किया पूर्वपरिणीता रानी का संघर्ष सर्वथा अग्राह्य है। क्योंकि उसके कारण नाटक की अपूर्वता एवं नवीनता पर आघात हो रहा है। यानी कि यह पाठ्यांश कविप्रतिज्ञा विरुद्ध जा रहा है। दुर्वासा के शाप रूप एक नवीन संघर्ष को रखने के बाद इसकी आवश्यकता नहीं रहती है। एवञ्च, उस तरह का विरोध जिसमें न आता हो ऐसे पाठ की उपलब्धि भी प्राचीनतम काश्मीरी पाठ में से हो ही रही है। अतः उसकी पुनःप्रतिष्ठा होनी ही चाहिए। (जिसके कारण बहुमानगर्विता वसुमती, अन्तःपुरकलह, अन्तःपुरकालकूट, अन्तःपुर वागुरादि पाठान्तर निरस्त कर दिये गये हैं।) (झ) अक्षमाला की रंगभूमि से निवृत्ति का निरूपण जिस तरह का काश्मीरी पाठ में सुरक्षित है, वह नाट्यशास्त्रीय सूचना नासूचितस्य पात्रस्य प्रवेशः०। के अनुरूप होने से मान्य पाठ के रूप में स्वीकारा गया है। (ञ) अन्त में, मातलि के द्वारा विदूषक का ग्रहण होता है, तब कञ्चुकी एवं राजा के मुख में स्थित तीन श्लोक (1. प्रागेव जरसा०, 2. तस्याग्रभूमेर्नीलकण्ठ०, तथा 3. अहन्यहन्यात्ममनः०) भी कवितालाप रूप एवं अप्रासंगिक हैं। अतः वे भी प्रक्षिप्त घोषित किये हैं।।

सप्तमाङ्क की दृश्यावली में मुख्यतया निम्नोक्त स्थानों पर परम्परागत पाठ को पुनर्गठित किया है:- (क) इस अन्तिम अंक के प्रारम्भ में नाकलासिकाओं का प्रवेशक आता है, जो केवल काश्मीरी पाठ में ही उपलब्ध हो रहा है। उसमें प्राप्त हो रही प्राकृत-गाथा में आर्या छन्द के लक्षण घटित नहीं होते हैं। एवं उसके प्राकृत शब्दों का अर्थबोध कठिन लगता है। जिसके कारण, पूरे नाटक के साथ उसकी संगति कैसे बिठाई जाय? वह विचारणीय है। पाठालोचना की प्रक्रिया में पुनर्गठन से पहले अर्थघटन के प्रयास को भी अवकाश है। इस नियम से प्रेरित हो कर, मैंने उस दिशा में कुछ विचार रखे हैं। अन्यान्य पाण्डुलिपियाँ भविष्य में जब मिलें, और उस आर्या का पाठ परिशुद्धस्वरूप में सामने आये, तब इस प्रवेशक

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

का प्रयोजन ठीक तरह से समझ में आयेगा ऐसी हम आशा करते हैं। अतः उसको सर्वथा प्रक्षिप्त घोषित करके निरस्त करने की जल्दबाजी करना उचित नहीं है। डॉ. बेलवालकर जी ने भी कालिदास के अन्य नाटकों में जैसे संगीत-नृत्यादि का प्रस्तुतिकरण है, वैसे इस नाटक में भी नर्तन का दृश्य हो सकता है- ऐसी सम्भावना शब्दबद्ध की है। (ख) मारीच ऋषि के आश्रम में, दो मुनिकन्याएँ हैं। परम्परागत पाठों में उनको प्रथमा तापसी एवं द्वितीया तापसी से पहचाना गया है। तथा केवल प्रथमा तापसी द्वितीया तापसी को सुव्रता के नाम से संबोधित करती है। किन्तु प्रथमा तासपी का नाम क्या है? वह संदिग्ध रहता है। इसकी जानकारी काश्मीरी पाठ से मिलती है कि प्रथमा का नाम संयता है। एवञ्च, द्वितीया सुव्रता ने ही किसी ऋषिकुमार द्वारा बनाया मृत्तिकामयूर उटज से लाकर सर्वदमन को दिया है। इस प्रसंग से जुड़ी सारी अस्पष्टता, संदिग्धता हटाई गई है। (ग) दुष्यन्त ने जब इन मुनिकन्याओं को पूछा कि- "न चेन्मुनिकुमारोऽयम्, अथ कोऽस्य व्यपदेशः।" तो उसका उत्तर "पुरुवंशः" दिया जाता है। लेकिन यहाँ पर काश्मीरी (एवं तदनुगामिनी दाक्षिणात्य एवं देवनागरी) में दिया गया यह पाठ आन्तरिक सम्भावना के विरुद्ध है। सामान्यतः पूरे नाटक में, (नायक के मुख से निकला है कि- 1. कः पौरवे शासति वसुमतीम्०। तथा 2. नायिका के मुख से निकला है कि- पौरव, रक्ख विणअम्।) दुष्यन्त को पौरव ही कहा गया है। अतः मुनिकन्याओं के मुख से निकले उत्तर में (मैथिल एवं बंगाली पाठों के अनुसार) "पौरवः" ऐसा शब्द ही पुनः प्रतिष्ठित करना आवश्यक है। (घ) सामान्यतः नाटक के अन्त भाग में कवि के द्वारा लिखे गये भरत-वाक्य में शुभाशंसा रूप विचार रखे जाते हैं। किन्तु नाट्यकृति का मंचन करनेवाली नटमण्डली भी तत्-तत्कालिक राजाओं को उद्देश्य करके ऐसे ही शुभाशंसा व्यक्त करनेवाले अन्य श्लोकों का प्रक्षेप करती है। जैसा कि राजशेखर ने काव्यमीमांसा में कहा है कि साहसांक की राजसभा में कविपरीक्षा होती थी, और सभी मैथिली पाण्डुलिपियाँ भी कहती है कि- "आर्ये, रसभावविशेषदीक्षागुरोः श्रीविक्रमादित्यस्य साहसाङ्कस्य अभिरूपभूयिष्ठा परिषत्। अस्यां च कालिदासग्रथितवस्तुना...।" इत्यादि, तब उससे यह बातसिद्ध हो जाती है। अतः पुनर्गठित एवं अनुमित इस पाठ में से भरत-वाक्य के पूर्व में आनेवाले दो श्लोकों (1. तव भवतु बिडौजाः०। एवं 2. क्रतुभिरुचितभागांस्त्वं सुरान्०) को हटाना आवश्यक समझा गया है। (ङ) अन्तिम भरत-वाक्य में, प्राचीनतम होने से "श्रुतिमहताम्" काश्मीरी पाठ को मान्य रखा है, क्योंकि कवि ने अन्यत्र वेदधर्म एवं ब्राह्मण संस्कृति की ओर पक्षपात दिखाया है। (अतः "श्रुतिमहती" पाठभेद में भी समान सम्भावना दिखती है।) किन्तु "श्रुतमहताम्" पाठ तो परवर्ती ही हो सकता है, अतः उसको अमान्य किया हैं।।

[7]

अभिज्ञानशकुन्तला नाटक के पाठोद्धार की परिणति : - पाँचों रंगावृत्तियों के तुलनात्मक अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि काश्मीरी रंगावृत्ति में संचरित हुआ "अभिज्ञानशकुन्तला नाटकम्" ऐसा शीर्षक प्राचीनतम है। ऐसा तीसरा शीर्षक हस्तगत होने से इस नाटक का नया मर्मोद्घाटन हो रहा है :- अभिज्ञानपूर्विका या शकुन्तला, सा अभिज्ञानशकुन्तला। ताम् अधिकृत्य कृतं नाटकमपि (अभेदोपचाराद्) "अभिज्ञानशकुन्तला नाटकम्" उच्यते। इस व्युत्पत्ति के अनुसार, अब अभिज्ञान के रूप में (केवल) अंगूठी ही नहीं लेना है। यहाँ प्रस्तुत किये गये पुनर्गठित पाठ से मालूम होगा कि- नायक दुःषन्त हर कदम पर शकुन्तला का पहले अभिज्ञान खोजता है, बाद में उसको शकुन्तला मिलती (दिखती) है। किन्तु अन्ततोगत्वा वह स्वयं का भी नया अभिज्ञान प्राप्त करता है। यानी शिकारी (राजा) के रूप में प्रस्तुत होने से नहीं, किन्तु "विश्वनीय हिरण" (सगन्ध-मृग) होने से ही हरिणी स्वरूपा नायिका मिल सकेगी। एवमेव, अनुरक्त मधुकरी का अङ्गीकार (भ्रमर होकर नहीं), किन्तु मधुकर होकर ही किया जायेगा- इस जीवनदर्शन को (षष्ठांक में) आत्मसात् करता है। "अभिज्ञानपूर्विका शकुन्तला (वर्ण्यते यत्र)" का अर्थ क्या है? शकुन्तला को प्राप्त करने के लिए किस प्रकार के अभिज्ञान को पहले प्राप्त करने की अनिवार्यता है?। इसका मार्मिक अर्थ यही है कि समानाधिकरणवाले दाम्पत्य जीवन का अभिज्ञान जब तक नहीं मिलेगा, तब तक अनागस मुनिकन्या शकुन्तला पत्नी के रूप में नहीं मिल सकती है।।

दूसरा ध्यातव्य बिन्दु यह है कि कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने केवल दुःषन्त के लिए प्रयुक्त भ्रमर के प्रतीक को ही केन्द्र में रख कर अभिज्ञानशकुन्तल का मर्मोद्घाटन किया था। लेकिन वह एकदेशी दर्शन है। यहाँ शकुन्तला के लिए प्रयुक्त (क) कमल, शिरीषादि पुष्प, (ख) हरिणी एवं (ग) चक्रवाकादि शकुन्त (पक्षी)- जैसे त्रिविध प्रतीकों का भी कोई

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रयोजन है। रंगमंच पर मानवीय पात्रसृष्टि से प्रस्तुत हो रही प्रणय-कथा की पार्श्वभूमि में जब इन पुष्पों, पशु और पक्षियों की पात्रसृष्टि का अजस्र मंचन भी होता रहता है तब इसको देखते हुए लगता है कि मानवों की प्रणय-कथा का ही प्रतिघोष निसर्ग के इन पात्रों में हो रहा है, और वे दोनों परस्पर से अविभाज्य है। तात्त्विक रूप से यहाँ, नायक दुःषन्त (मनुष्य) और नायिका शकुन्तला (निसर्ग) के अद्वैत को साधने की प्रक्रिया चलती है।।

[8]

प्रस्तुत प्रयास की सिद्धि एवं मर्यादाएँः-

(क) इस नाटक के मूल पाठ में प्रविष्ट प्रक्षेपों एवं संक्षेपों की पहचान तर्कनिष्ठ एवं व्याकरणनिष्ठ प्रमाणों के आधार पर की गई है। जिसमें मुख्यतया (क) अपि च, (ख) अथवा जैसे अव्ययों के विनियोग का स्वारस्य निश्चित कर लिया गया है। तथा "स्वगतम्" जैसी दशरूपकानुसारी रंगसूचना से अवतारित कतिपय श्लोक एवं उक्तियाँ को प्रक्षेप के रूप में निश्चित की गई हैं। कुल मिला कर 34 श्लोकों के प्रक्षेपों को निष्कासित किये गये हैं।।

(ख) इस नाटक के तृतीयांक में कुसुमशयना शकुन्तला का जो दृश्य है, उसको कविसंकल्पित दृश्य-योजना के अनुरूप पुनःप्रतिष्ठित किया जा सका है। तथा इसी अंक में रंगकर्मियों के द्वारा जो अरुचिकर अश्लील पाठ्यांश प्रक्षिप्त किये गये थे, उनकी पहचान करके सब को हटा दिये हैं।।

(ग) पञ्चमांक की आरम्भिक दृश्यावली का क्रम काश्मीरी रंगावृत्ति में सुरक्षित रहा है, उसका पुनः प्रतिष्ठापन किया गया है।।

(घ) इस नाटक के षष्ठांक में से पूर्वपरिणीता रानी का संघर्ष निरस्त करके, नाटक की एक अपूर्वता को बरकरार रखी गई है। (यानी Restored पुनःस्थापित की गई है।)।

(ङ) इस नाटक के प्रत्येक श्लोक की छन्दःशास्त्रीय परीक्षा करके, उनका तदनुसारी पुनर्गठन भविष्य में किया जायेगा। (विशेष रूप से प्राकृत गाथाओं का पाठ अभी सम्यक् अवस्था में नहीं है।) नाट्यशास्त्र में जिस तरह से अमुक छन्दों के लक्षण दिये है, उससे हट कर परवर्ती काल में कुत्रचित् नवीन उपस्थापनाएं की गई है- ऐसा डॉ. मनःसुखलाल मोलिया, राजकोट का मन्तव्य है। अतः छन्दो-विधान में होते रहे ऐसे परिवर्तनों से भी इस नाटक के श्लोकों में पाठान्तर प्रविष्ट हुए होंगे।।

(च) सामान्यतया देवनागरी पाण्डुलिपियों में इस नाटक का केवल लघुपाठ ही मिलता है। तथापि देवनागरी पाण्डुलिपियाँ एकत्र करने के प्रयास से हम विरत नहीं हुए हैं। कूपखानक-न्याय से प्रोत्साहित होकर प्रयास करते रहने पर हमें कतिपय देवनागरी पाण्डुलिपियाँ ऐसी भी मिल गई हैं कि जिनमें इस नाटक का बृहत्पाठ संचरित हुआ है! किन्तु प्रस्तुत कार्य में उनका विनियोग नहीं किया गया है।

(छ) यहाँ केवल काटयवेम के द्वारा मान्य किये गये दाक्षिणात्य पाठ को ही आधार बनाया है।, क्योंकि दाक्षिणात्य वाचना की समीक्षितावृत्ति बनाने का कार्य अभी तक किसी ने नहीं किया है। हमने तेलुगु, ग्रन्थ, मळयालम, नन्दी-नागरी लिपियों में लिखी 85 से अधिक ताडपत्रीय पाण्डुलिपियाँ प्राप्त कर ली हैं, जिनमें कुत्रचित् काश्मीरी पाठ का सीधा प्रतिबिम्ब भी देखा जा रहा है- किन्तु उनका भी साङ्गोपाङ्ग अध्ययन अवशिष्ट है।

(ज) असंख्य पाण्डुलिपियों का विवरण उपलब्ध है, वे सभी हमने अभी देखी नहीं हैं। तथा जो शारदा पाण्डुलिपियाँ कहीं न कहीं विद्यमान होंगी, परन्तु हमें ज्ञात नहीं हैं, प्राचीनतम काश्मीरी पाठ के संदिग्ध स्थानों को सुधारने में उनका भी विनियोग नहीं हो पाया है। अतः हो सकता है कि कुछ नवीन जानकारी मिलने से, उपर्युक्त तीन मर्यादाओं से बाहर निकल जाने पर नया परिणाम / दूसरा आनुमानिक पाठ पुनर्गठित किया जा सकेगा, तथा अधिक श्रद्धेय एवं मूलगामी पाठ प्राप्त किया जायेगा।।

।। इति शिवमस्तु, सुन्दरमस्तु, सत्यमस्तु।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(अभिज्ञानशकुन्तला नाटकस्य पुनर्ग्रथितः प्रथमोऽनुमितश्च पाठः)

॥ अभिज्ञानशकुन्तला नाटकम्॥

॥ प्रथमोऽङ्कः॥

या स्त्रष्टुस्सृष्टिराद्या[1], पिबति[2] विधिहुतं या हवि, र्या च होत्री,
ये द्वे कालं विधत्तः, श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुस्सर्वबीजप्रकृतिरिति, यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रसन्नस्तनुभिरवतु नस्ताभिरष्टाभिरीशः॥ 1 - 1॥ [1]

(नान्द्यन्ते)

सूत्रधारः - (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) आर्ये, यदि नेपथ्यविधानमवसितं तदितस्तावद् आगम्यताम्। [2]

नटी- (प्रविश्य) अय्य, इअम्हि। आणवेदु अय्यो को णिओओ अणुचिट्ठहीअदु त्ति। (आर्य, इयमस्मि। आज्ञापयत्वार्यः को नियोगोऽनुष्ठीयताम् इति।) [3]

सूत्रधारः - (दृष्ट्वा) आर्ये, अभिरूपभूयिष्ठेयं[3] परिषत्। अस्यां च किल कालिदासग्रथितवस्तुना नवेन अभिज्ञानशकुन्तला[4] -नामधेयेन नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभिः। तत्प्रतिपात्रमास्थीयतां यत्नः। [4]

नटी - सुविहिदप्पओअदाए अय्यस्स ण किं चि परिहाइस्सदि। (सुविहितप्रयोगतयाऽऽर्यस्य न किंचित् परिहास्यते।) [5]

सूत्रधारः - (सस्मितम्) आर्ये, वेदयामि ते भूतार्थम्। [6]

आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः॥ 1 - 2॥ [7]

नटी - एवं णेदं। अणन्तरकरणीअं दाणिं अय्यो आणवेदु। (एवमेतत्। अनन्तरकरणीयमिदानीमार्य आज्ञापयतु।) [8]

सूत्रधारः - (दृष्ट्वा) किमन्यत्। अस्याः परिषदः श्रुतिप्रसादहेतोरिमम् एव नातिचिरप्रवृत्तमुपभोगक्षमं ग्रीष्मकालम् अधिकृत्य गीयतां तावत्। सम्प्रति हि - [9]

सुभगसलिलावगाहाः पाटलिसंसर्गसुरभिवनवाताः।
प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः॥ 1 - 3॥ [10]

---

1. अभिनवभारत्यामप्ययमेव पदक्रमो वर्तते, (द्रष्टव्यम् ना. शा. 9-173, पृ. 67) मैथिल-पाठे च।
2. हविर्घृतमित्यर्थः, पिबतिशब्दसाहचर्याद्, "तत्रैक एव जलहुताशनाभिनय उत्तमेनेत्यभिनवगुप्ताः" (ना. शा. 9-173)। अनेनास्य काश्मीर-पाठस्यैव प्राचीनतमत्वं सिध्यति।
3. का.-मै.-पाठयोरग्राह्यत्वादत्र बंगीय-पाठस्य ग्रहणं क्रियते।
4. अभिज्ञानपूर्विका शकुन्तलेति, अभिज्ञानशकुन्तला। (मध्यमपदलोपी समासः), तामधिकृत्य कृतं नाटकमपि, अभेदोपचाराद्, अभिज्ञानशकुन्तला नाटकमुच्यते। लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलमिति वार्तिकेन तद्धिताण्-प्रत्ययस्य लोपो भविष्यति। द्वितीय-चतुर्थाङ्कौ विहाय निखिलेऽपि नाटकेऽस्या अभिज्ञानस्य चिन्तनं, परीक्षणं, प्रदर्शनञ्च प्रस्तूयते। अस्मिन्नाटके सर्वत्राभिज्ञानपूर्विकैव शकुन्तला निरूप्यते, तद्विभावनीयं बुधैः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रयोजन है। रंगमंच पर मानवीय पात्रसृष्टि से प्रस्तुत हो रही प्रणय-कथा की पार्श्वभूमि में जब इन पुष्पों, पशु और पक्षियों की पात्रसृष्टि का अजस्र मंचन भी होता रहता है तब इसको देखते हुए लगता है कि मानवों की प्रणय-कथा का ही प्रतिघोष निसर्ग के इन पात्रों में हो रहा है, और वे दोनों परस्पर से अविभाज्य है। तात्त्विक रूप से यहाँ, नायक दुःषन्त (मनुष्य) और नायिका शकुन्तला (निसर्ग) के अद्वैत को साधने की प्रक्रिया चलती है।।

[8]

प्रस्तुत प्रयास की सिद्धि एवं मर्यादाएँ:-

(क) इस नाटक के मूल पाठ में प्रविष्ट प्रक्षेपों एवं संक्षेपों की पहचान तर्कनिष्ठ एवं व्याकरणनिष्ठ प्रमाणों के आधार पर की गई है। जिसमें मुख्यतया (क) अपि च, (ख) अथवा जैसे अव्ययों के विनियोग का स्वारस्य निश्चित कर लिया गया है। तथा "स्वगतम्" जैसी दशरूपकानुसारी रंगसूचना से अवतारित कतिपय श्लोक एवं उक्तियाँ को प्रक्षेप के रूप में निश्चित की गई हैं। कुल मिला कर 34 श्लोकों के प्रक्षेपों को निष्कासित किये गये हैं।।

(ख) इस नाटक के तृतीयांक में कुसुमशयना शकुन्तला का जो दृश्य है, उसको कविसंकल्पित दृश्य-योजना के अनुरूप पुन:प्रतिष्ठित किया जा सका है। तथा इसी अंक में रंगकर्मियों के द्वारा जो अरुचिकर अश्लील पाठ्यांश प्रक्षिप्त किये गये थे, उनकी पहचान करके सब को हटा दिये हैं।।

(ग) पञ्चमांक की आरम्भिक दृश्यावली का क्रम काश्मीरी रंगावृत्ति में सुरक्षित रहा है, उसका पुनः प्रतिष्ठापन किया गया है।।

(घ) इस नाटक के षष्ठांक में से पूर्वपरिणीता रानी का संघर्ष निरस्त करके, नाटक की एक अपूर्वता को बरकरार रखी गई है। (यानी Restored पुनःस्थापित की गई है।)।

(ङ) इस नाटक के प्रत्येक श्लोक की छन्द:शास्त्रीय परीक्षा करके, उनका तदनुसारी पुनर्गठन भविष्य में किया जायेगा। (विशेष रूप से प्राकृत गाथाओं का पाठ अभी सम्यक् अवस्था में नहीं है।) नाट्यशास्त्र में जिस तरह से अमुक छन्दों के लक्षण दिये है, उससे हट कर परवर्ती काल में कुत्रचित् नवीन उपस्थापनाएं की गई है- ऐसा डॉ. मन:सुखलाल मोलिया, राजकोट का मन्तव्य है। अत: छन्दो-विधान में होते रहे ऐसे परिवर्तनों से भी इस नाटक के श्लोकों में पाठान्तर प्रविष्ट हुए होंगे।।

(च) सामान्यतया देवनागरी पाण्डुलिपियों में इस नाटक का केवल लघुपाठ ही मिलता है। तथापि देवनागरी पाण्डुलिपियाँ एकत्र करने के प्रयास से हम विरत नहीं हुए हैं। कूपखानक-न्याय से प्रोत्साहित होकर प्रयास करते रहने पर हमें कतिपय देवनागरी पाण्डुलिपियाँ ऐसी भी मिल गई हैं कि जिनमें इस नाटक का बृहत्पाठ संचरित हुआ है! किन्तु प्रस्तुत कार्य में उनका विनियोग नहीं किया गया है।

(छ) यहाँ केवल काटयवेम के द्वारा मान्य किये गये दाक्षिणात्य पाठ को ही आधार बनाया है।, क्योंकि दाक्षिणात्य वाचना की समीक्षितावृत्ति बनाने का कार्य अभी तक किसी ने नहीं किया है। हमने तेलुगु, ग्रन्थ, मळयालम, नन्दी-नागरी लिपियों में लिखी 85 से अधिक ताडपत्रीय पाण्डुलिपियाँ प्राप्त कर ली हैं, जिनमें कुत्रचित् काश्मीरी पाठ का सीधा प्रतिबिम्ब भी देखा जा रहा है- किन्तु उनका भी साङ्गोपाङ्ग अध्ययन अवशिष्ट है।

(ज) असंख्य पाण्डुलिपियों का विवरण उपलब्ध है, वे सभी हमने अभी देखी नहीं हैं। तथा जो शारदा पाण्डुलिपियाँ कहीं न कहीं विद्यमान होंगी, परन्तु हमें ज्ञात नहीं हैं, प्राचीनतम काश्मीरी पाठ के संदिग्ध स्थानों को सुधारने में उनका भी विनियोग नहीं हो पाया है। अत: हो सकता है कि कुछ नवीन जानकारी मिलने से, उपर्युक्त तीन मर्यादाओं से बाहर निकल जाने पर नया परिणाम / दूसरा आनुमानिक पाठ पुनर्गठित किया जा सकेगा, तथा अधिक श्रद्धेय एवं मूलगामी पाठ प्राप्त किया जायेगा।।

।। इति शिवमस्तु, सुन्दरमस्तु, सत्यमस्तु।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(अभिज्ञानशकुन्तला नाटकस्य पुनर्ग्रथितः प्रथमोऽनुमितश्च पाठः)

॥ अभिज्ञानशकुन्तला नाटकम्॥

॥ प्रथमोऽङ्कः॥

या स्त्रष्टुस्सृष्टिराद्या[1], पिबति[2] विधिहुतं या हवि, र्या च होत्री,
ये द्वे कालं विधत्तः, श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुस्सर्वबीजप्रकृतिरिति, यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रसन्नस्तनुभिरवतु नस्ताभिरष्टाभिरीशः॥ 1 - 1॥ [1]

(नाद्यन्ते)

सूत्रधारः - (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) आर्ये, यदि नेपथ्यविधानमवसितं तदितस्तावद् आगम्यताम्। [2]

नटी- (प्रविश्य) अय्य, इअम्हि। आणवेदु अय्यो को णिओओ अणुचिट्ठहीअदु त्ति। (आर्य, इयमस्मि। आज्ञापयत्वार्यः को नियोगोऽनुष्ठीयताम् इति।) [3]

सूत्रधारः - (दृष्ट्वा) आर्ये, अभिरूपभूयिष्ठेय[3] परिषत्। अस्यां च किल कालिदासग्रथितवस्तुना नवेन अभिज्ञानशकुन्तला[4] -नामधेयेन नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभिः। तत्प्रतिपात्रमास्थीयतां यत्नः। [4]

नटी - सुविहिदप्पओअदाए अय्यस्स ण किं चि परिहाइस्सदि। (सुविहितप्रयोगतयाऽऽर्यस्य न किंचित् परिहास्यते।) [5]

सूत्रधारः - (सस्मितम्) आर्ये, वेदयामि ते भूतार्थम्। [6]

आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः॥ 1 - 2॥ [7]

नटी - एवं णेदं। अणन्तरकरणीअं दाणिं अय्यो आणवेदु। (एवमेतत्। अनन्तरकरणीयमिदानीमार्य आज्ञापयतु।) [8]

सूत्रधारः - (दृष्ट्वा) किमन्यत्। अस्याः परिषदः श्रुतिप्रसादहेतोरिमम् एव नातिचिरप्रवृत्तमुपभोगक्षमं ग्रीष्मकालम् अधिकृत्य गीयतां तावत्। सम्प्रति हि - [9]

सुभगसलिलावगाहाः पाटलिसंसर्गसुरभिवनवाताः।
प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः॥ 1 - 3॥ [10]

---

1. अभिनवभारत्यामप्ययमेव पदक्रमो वर्तते, (द्रष्टव्यम् ना. शा. 9-173, पृ. 67) मैथिल-पाठे च।
2. हविर्घृतमित्यर्थः, पिबतिशब्दसाहचर्याद्।, "तत्रैक एव जलहुताशनाभिनय उत्तमेनेत्यभिनवगुप्ताः" (ना. शा. 9-173)। अनेनास्य काश्मीर-पाठस्यैव प्राचीनतमत्वं सिध्यति।
3. का.-मै.-पाठयोरग्राह्यत्वादत्र बंगीय-पाठस्य ग्रहणं क्रियते।
4. अभिज्ञानपूर्विका शकुन्तलेति, अभिज्ञानशकुन्तला। (मध्यमपदलोपी समासः), तामधिकृत्य कृतं नाटकमपि, अभेदोपचाराद्, अभिज्ञानशकुन्तला नाटकमुच्यते। लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलमिति वार्तिकेन तद्धिताण्-प्रत्ययस्य लोपो भविष्यति। द्वितीय-चतुर्थाङ्कौ विहाय निखिलेऽपि नाटकेऽस्या अभिज्ञानस्य चिन्तनं, परीक्षणं, प्रदर्शनञ्च प्रस्तूयते। अस्मिन्नाटके सर्वत्राभिज्ञानपूर्विकैव शकुन्तला निरूप्यते, तद्विभावनीयं बुधैः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

नटी - (तथा गायति)

खणचुम्बिआइं[1] भमरेहिं उअ[2] सुउमारकेसरसिहाइं।
अवदंसअन्ति पमदा दअमाणाओ सिरीसकुसुमाइं॥ 1 - 4॥

(क्षणचुम्बुतानि भ्रमरैः पश्य, सुकुमार-केसर-शिखानि।
अवतंसयन्ति प्रमदा दयमानाः शिरीषकुसुमानि॥ 1 - 4॥) [11]

सूत्रधारः - आर्ये, सुष्ठु गीतम्। एष हि - गीतरागावबद्धचित्तवृत्तिरालिखित इव स्थितस्सर्वतो रङ्गः। तदिदानीं कतमत् प्रकरणम्[3] आश्रित्य जनमाराधयावः। [12]

नटी - णं पढमं येव अय्येण आणत्तं जधा ण अहिणाणसउन्तला नाम अपुरवं[4] णाडअं पओएण अधिअरीअदुत्ति। (ननु प्रथममेवार्येणाज्ञप्तं यथा न अभिज्ञानशकुन्तला नामापूर्वं नाटकं प्रयोगेणाधिक्रियताम् इति।) [13]

सूत्रधारः - भवतु, सम्यग् अनुप्रबोधितोऽहम्, अस्मिन् क्षणे खलु विस्मृतं मया तत्। [14]कुतः -

तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः।

(नेपथ्याभिमुखम् अवलोक्य)

एष राजेव दुःषन्त[5]स्सारङ्गेणाऽतिरंहसा॥ 1 - 5॥ [15]

(इति निष्क्रान्तौ) [16]

॥ प्रस्तावना॥ [17]

(ततः प्रविशतः रथयातकेन मृगानुसारी चापहस्तो राजा दुःषन्तस्सूतश्च।) [18]

सूतः - (राजानं मृगं चावलोक्य)

कृष्णसारे ददच्चक्षुस्त्वयि चाधिज्यकार्मुके।
मृगानुसारिणं साक्षात् पश्यामीव पिनाकिनम्॥ 1 - 6॥ [19]

राजा - सुदूरमनेन कृष्णसारेण वयमाकृष्टाः। अयमिदानीमपि - [20]

ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने दत्तदृष्टिः
पश्चार्द्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम्।
शष्पैरर्धावलीढैः श्रमविततमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतित्वाद् वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति॥ 1 - 7॥ [21]

---

1. खणचुम्बिआइं इति शब्द एवान्तरिकी सम्भावना दृश्यते। विश्वामित्रेण मेनकया सहैक एव वारं संयोगो विहितः, तदनन्तरं सा मेनका परित्यक्ता। दुःषन्तेनापि तथैवाचरितम्। एतादृश्यवस्थैव संततेः पैतृका-ऽभिज्ञानं संशयास्पदं करोति, परिणीतायाश्च कस्या अपि स्त्रियो जीवनमपि दयनीयं करोति। स्त्रियो दुःखं स्त्रिय एव जानन्ति। अतो दयमाना इति विशेषणं प्रयुक्तम्॥
2. का.-पाठे सुअअ (=सुभग) इति वर्तते।, किन्तु "पश्य" इत्यर्थस्य वाचक उअ इति शब्दो वर्तत इति वररुचिना हेमचन्द्राचार्येण चोक्तम्। (स च गाथाया लक्षणानुसारी सिध्यति।)
3. उच्चतर-समीक्षया समर्थितोऽयं पाठः। तद्यथा- सूत्रधारस्य विस्मृतिर्दुःषन्तस्य विस्मृतिं ध्वनयति।
4. हेमचन्द्राचार्यः पूर्वस्य पुरवः (8-4-270) इति सूत्रेण शौरसेन्यां पूर्वशब्दस्य पुरव इत्यादेशो वा भवतीति वृत्तौ लिखित्वा, "अपुरवं नाडयं" इत्युदाहरति।
5. का.-पाठे दुष्यन्तः, मै.-पाठे दुष्मन्तः, बं.-पाठे दुःषन्तः, दाक्षि.-देव.-पाठयोः दुष्यन्तः। किन्तु महाभारतस्यादिपर्वणः शकुन्तलोपाख्यानानुरोधाद् (सम्भवपर्वणि, अ. 62-69) अत्र दुःषन्त इति स्वीक्रियते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

कथमनुपातिन एव मे प्रयत्नप्रेक्षणीयस्संवृत्तः। [22]

सूतः - आयुष्मन्, उद्घातिनी भूमिरियम्, मया रश्मिसंयमनाद् रथस्य वेगो मन्दीकृतः। तेनैष ते मृगो विप्रकृष्टान्तरस्संवृत्तः। सम्प्रति तु समदेशवर्ती, न ते दूरासदो भविष्यति। [23]

राजा - मुच्यन्ताम् अभीषवः। [24]

सूतः - यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (तथा कृत्वा रथवेगान्तरं निरूपयन्) आयुष्मन् पश्य, पश्य। एते, [25]

मुक्तेषु रश्मिषु निरायतपूर्वकाया निष्कम्पचामरशिखानिभृतोच्चकर्णाः।
आत्मोद्धतैरपि रजोभिरलंघनीया धावन्ति ते मृगजवाऽक्षमयेव रथ्याः॥ 1 - 8॥ [26]

राजा - (सहर्षम्) सूत, कथमतीत्य हरिणं हरयो वर्तन्ते[1]। तथा हि - [27]

यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद् विपुलताम्
यदर्धे विच्छिन्नं भवति कृतसन्धानमिव तत्।
प्रकृत्या यद् वक्रं तदपि समरेखं नयनयो-
र्न मे दूरे किञ्चिन्, न च भवति पार्श्वे रथजवात्॥ 1 - 9॥ [28]

(नेपथ्ये)

भो भो राजन्, आश्रममृगोऽयम्, न हन्तव्यो न हन्तव्यः॥ [29]

सूतः- (आकर्ण्यावलोक्य च) आयुष्मन्, अस्य खलु बाणपथवर्तिनः कृष्णसारङ्गस्यान्तरे तपस्विनोऽवस्थिताः। [30]

राजा- (ससंभ्रमम्) तेन हि, निगृह्यन्ताम् वाजिनः। [31]

सूतः - तथा करोमि। (इत्युक्त्वा रथं स्थापयति) [32]

(ततः प्रविशत्यात्मना तृतीयस्तापसः) [33]

तापसः - (ससंभ्रमं हस्तम् उद्यम्य) राजन्,। आश्रममृगोऽयम्, न हन्तव्यो न हन्तव्यः[2]। [34]

तदाशु कृतसन्धानं प्रतिसंहर सायकम्।
आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि॥ 1 - 10॥ [35]

राजा- एषः प्रतिसंहृतः। (यथोक्तं करोति) [36]

तापसः - (सहर्षम्) साधु भोः। सदृशमेतत्पुरुवंशजातस्य भवतः। सर्वथा चक्रवर्तिनं पुत्रमवाप्नुहि[3]। [37]

राजा - (सप्रणामम्) प्रतिगृहीतं तपोधनवचनम्। [38]

तापसः - समिदाहरणाय प्रस्थिता वयम्। एष चास्मद्गुरोः कण्वस्य[4] संसक्तहिमवत् सानु[5]रनुमालिनीतीरमाश्रमो दृश्यते। न चेद्

---

1. काश्मीर-पाठे "सत्यम्, अतीत्य हरिहरीनपि हरयो वर्तन्ते" इति। काव्यत्वयुक्ताप्यभिव्यक्तिरियं नाट्यानुकूला नास्ति। अप्रासंगिकी च। अतो या मै.-बं.-पाठयोः प्रचलितोक्तिः सात्र स्वीक्रियते।
2. मै.-बं.-दाक्षि.-पाठेष्वितः परं "न खलु न खलु बाणः०" इति।, (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-1)
3. दाक्षि.-देव.-पाठयोरितः परं "जन्म यस्य पुरोर्वंशे युक्तरूपं०" इति।, (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-2), तथा च नाट्यशास्त्रेऽभिनवभारत्यां "तत्र चक्रवर्तिपुत्रलाभो मुनिजनाशीर्वचनद्वारेण फलस्वभावस्यैवाभिज्ञान-शकुन्तल (?)" इति (अ. 19-22, पृ. 13) कथ्यते।
4. का.-पाठे, तदनुसृत्य दाक्षि.-देव.-पाठयोरपि काश्यप इति नामान्तरं प्राप्यते। किन्तु महाभारतानुरोधात् कण्व इत्ययेव नाम मूलगामी स्यात्।
5. का.-पाठे प्रासंगिकता वरीवर्तते।, मै.-बं.-पाठयो "रस्मद्गुरोः कण्वस्य साधिदैवत इव शकुन्तलये" ति।, दाक्षि.-देव.पाठयोः संक्षिप्तीकृतः पाठः "कण्वस्य कुलपतेरि" ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अन्यकार्यातिपातस्तत् प्रविश्यात्र प्रतिगृह्यतामतिथिसत्कारः।

[39] अपि च,

धर्म्यास्तपोधनानां प्रतिहतविघ्नाः क्रियास्समवलोक्य।
ज्ञास्यसि कियद् भुजो मे रक्षति मौर्वीकिणाङ्क इति॥ 1 - 11॥ [40]

राजा - अपि संनिहितोऽत्र कुलपतिः। [41]

तापसः - अद्यैवानवद्याम् दुहितरं शकुन्तलाम् अतिथिसत्काराय संदिश्य, प्रतिकुलं दैवं चास्या शमयितुं सोमतीर्थं[1] गतः। [42]

राजा - (आत्मगतम्) भवतु, तां द्रक्ष्यामि, सा माम् विहितभक्तिं महर्षेः करिष्यति। [43]

तापसः - साधयामस्तावत्। (इति सशिष्यो निष्क्रान्तः) [44]

राजा - सूत, चोदयाश्वान्। पुण्याश्रमदर्शनेन तावदात्मानं पुनीमहे। [45]

सूतः - यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (परिक्रम्य रथयातकं निरूपयति) [46]

राजा - (समन्ताद् विलोक्य) सूत, अकथितोऽपि ज्ञायत एव यथायमाभोगस्तपोवनस्येति। [47]

सूतः- कथमिति। [48]

राजा- न पश्यति भवान्। इह हि - [49]

नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरूणाम् अधः
प्रस्निग्धाः क्वचिद् इङ्गुदीफलभिदस्सूच्यन्त एवोपलाः।
विश्वासोपगमाद् अभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगा-
स्तोयाधारपथाश्च वल्कलशिखा निष्यन्दलेखाङ्किताः॥ 1 - 12॥ [50]

सूतः- सर्वम् उपपन्नम्। [51]

राजा - (स्तोकमन्तरं गत्वा)

कुल्याम्भोभिः प्रसृतचपलैः शाखिनो धौतमूला
भिन्नो रागः किसलयरुचामाज्यधूमोद्गमेन।
एते चार्वागुपवनभुवि च्छिन्नदर्भाङ्कुरायां
नष्टाशङ्का हरिणशिशवो मन्दमन्दं चरन्ति॥ 1 - 13॥ [52]

मा तपोवनवासिनामुपरोधो भूत्। तद् एतावत्येव रथं स्थापय, यावद् अवतरामि। [53]

सूतः - धृताः प्रग्रहाः, अवतरत्वायुष्मान्। [54]

राजा - (अवतीर्य) विनीतवेषेण प्रवेश्यानि तपोवनानि। तदिदमाभरणं तावद् प्रगृह्यताम्। (इति सूतायाभरणं दत्त्वा धनुश्चोत्सृज्य) सूत, यावदहम् उपास्य महर्षीन् उपावर्ते, तावद् आर्द्रपृष्ठाः क्रियन्तां वाजिनः। [55]

सूतः - यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (इति निष्क्रान्तः) [56]

राजा - (परिक्रम्यावलोक्य च) इदमाश्रमद्वारं, यावत् प्रविशामि। [57]

(प्रविश्य निमित्तं सूचयन्) (विमृशति) [58]

1. का.-पाठे प्रभासमित्यधिकं प्राप्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शान्तमिदम् आश्रमपदं, स्फुरति च बाहुः, कुतः फलमिहास्य।
अथ वा, भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र॥ 1 - 14॥ [59]

(नेपथ्ये)

इदो इदो पिअसही। (इत इतः प्रियसखी) [60]

राजा - (कर्णं दत्त्वा) अये दक्षिणेन कुसुमपादपवीथीमालापम् इव श्रूयते, यावदत्र गच्छामि। [61]

(परिक्रम्यावलोक्य च) एतास्तपस्विकन्यकास्स्वप्रमाणानुरूपैस्सेचनघटकैर्बालपादपान् पयो दातुम् इत एवाभिवर्तन्ते। (निपुणं निर्वर्ण्य) अहो मधुरम् आसाम् दर्शनम्। [62]

शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनो यदि जनस्य।
दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः[1]॥ 1 - 15॥ [63]

तद् यावदेनां छायामाश्रित्य प्रतिपालयामि।

(विलोकयन् स्थितः) [64]

(ततः प्रविशति यथोक्तव्यापारा सह सखीभ्यां शकुन्तला) [65]

एका- हला सउन्तले, तइत्तो वि खु ताद कस्सवस्स अस्सम-रुक्खआ पिअ त्ति तक्केम्ह, जेण णवमालिआ पेलवावि तुममेदस्स आलवालपूरणे णिउत्ता। (हले शकुन्तले, त्वत्तोऽपि खलु तातकण्वस्याश्रमवृक्षकाः प्रिया इति तर्कयामो, येन नवमालिका-पेलवापि त्वमेतस्यालवालपूरणे नियुक्ता।) [66]

शकुन्तला- हला, ण केअलं तादणिओओ त्ति। ममावि एदेसुं सहोदरसिणेहो। (सखि, न केवलं तातनियोग इति। ममापि एतेषु सहोदरस्नेहः।) [67]

(वृक्षसेकं नाटयति) [68]

द्वितीया - हले सउन्तले, उदअं लम्भिदा गिम्हकालकुसुमदाइणो गुम्मआ। दाणिं अदिक्कन्तसमए वि रुक्खए सिञ्चम्ह। तसुणो अणहिसन्धिदपुरवो धम्मो भविस्सदि। (हले शकुन्तले, उदकं लम्भिता ग्रीष्मकालकुसुमदायिनो गुल्मकाः। इदानीमतिक्रान्तसमयेऽपि वृक्षकान् सिञ्चामः। तस्माद् अनभिसन्धितपूर्वो धर्मो भविष्यति।) [69]

शकुन्तला- हला प्रियंवदे, रमणीयं मन्त्रयसि।

(इति वृक्षसेचनं नाटयति) [70]

राजा - (निर्वर्ण्य सकौतुकम्) कथमियं सा कण्वदुहिता। अहो असाधुदर्शी तत्रभवान् कण्वः, य इमां वल्कलधारणे नियुङ्क्ते। [71]

इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया समिल्लतां छेत्तुम् ऋषिर्व्यवस्यति॥ 1 - 16॥ [72]

भवतु, पादपान्तरित एवैनां विश्वस्तभावां पश्यामि। [73]

शकुन्तला- हला अणसूए, अदिपिणद्धेण पिअंवदाए वक्कलेण णिअन्तिदाम्हि। ता सिढिलेहि दाव णं।

(हले अनसूये, अतिपिनद्धेन प्रियंवदया वल्कलेन नियन्त्रितास्मि, तच्छिथिलय तावदेनम्।) [74]

---

1. का.-पाठे श्लोकोऽयं केवलां शकुन्तलामेवोद्दिश्य प्रस्तूयते। तन्न समीचीनम्, यतो हि वनलताभिरिति विशेषणेन तिस्रः सख्य एवोद्दिष्टा इति सिध्यति। अत्र प्राचीनतरा मैथिल-पाठयोजना सुसंगता प्रतिभाति। का.-पाठे वल्कलशिथिलीकरणस्य स्थानान्तरणं प्राप्यते। विषयेऽस्मिन् The Original S'akuntala, 1925 इत्यत्र प्रदर्शितं डॉ. बेलवालकरमहोदयानां मतं चिन्त्यमेव।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(अनसूया शिथिलयति) [75]

प्रियंवदा - (सस्मितम्) पओहरवित्थारइत्तुअं अप्पणो जोव्वणं उवालह। (पयोधरविस्तारयितृकम् आत्मनो यौवनम् उपालभस्व।) [76]

राजा - सम्यगियम् आह शकुन्तला[1]। [77]

इदमुपहितसूक्ष्मग्रन्थिना स्कन्धदेशे स्तनयुगपरिणाहाच्छादिना वल्कलेन।
वपुरभिनवमस्याः पुष्यति स्वां न शोभां कुसुममिव पिनद्धं पाण्डुपत्रोदरेण[2]॥ 1 - 17॥ [78]

अथवा[3], कामम् अप्रतिरूपम् अस्य वयसो वल्कलम् न पुनरलंकारश्रियं न पुष्यति। [79] कुतः -

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्[4]॥ 1 - 18॥ [80]

शकुन्तला- (अग्रतोऽवलोक्य) सहि, एस वादेरिदपल्लवाङ्गुलीहिं किं पि वाहरदि विअ मं बउलरुक्खओ / केसररुक्खओ। ता जाव णं सम्भावेमि, (तथा करोति) (सखि, एष वातेरितपल्लवाङ्गुलीभिः किमपि व्याहरतीव माम् बकुलवृक्षकः[5] (अथवा केसरवृक्षकः)। तत् यावदेनम् सम्भावयामि।) [81]

प्रियंवदा- हला सउन्तले, इध ज्जेव मुहुत्तअं चिट्ठ। (सखि शकुन्तले, इहैव मुहूर्तकं तिष्ठ।) [82]

शकुन्तला- किं णिमित्तं। (किं निमित्तम्।) [83]

प्रियंवदा- तए समीवट्ठिदाए लदासणाहो विअ मे अअं पडिभादि बउलरुक्खओ / केसररुक्खओ। (त्वया समीपस्थितया लतासनाथ इव मे अयं प्रतिभाति बकुलवृक्षकः (केसरवृक्षकः)। [84]

शकुन्तला- अदो ज्जेव तुमं पिअंवदे त्ति वुच्चसे। (अत एव त्वम् प्रियंवदा उच्यसे।) [85]

राजा - प्रियमपि तथ्यमाहैषा। अस्याः खलु, [86]

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनम् अङ्गेषु सन्नद्धम्॥ 1 - 19॥ [87]

अनसूया - हला सउन्तले, इअं स्वअंवरवहूस्सहआरस्स तए किदणामधेअस्स वणदोसिणो णवमालिका।
(हले शकुन्तले, इयं स्वयंवरवधूः सहकारस्य, त्वया कृतनामधेयस्य वनतोषिणः, नवमालिका।) [88]

शकुन्तला- (उपगम्यावलोक्यच) हला रमणीये काले इमस्स पादवमिहुणस्य वदिअरो संवुत्तो। इअं णवकुसुमजोव्वणा अअं वि

---

1. मूलपाठेऽत्र शकुन्तलेति भवितुमर्हतीति मे मतिः। यतो ही"दमुपहितसूक्ष्म०" इति श्लोकेन सहैव शकुन्तलायाः पूर्वोक्त्याः (55) सम्बन्धो वर्तते। एवञ्च, नायकः शकुन्तलां प्रति समाकृष्टः, तस्मादपि स तस्या एव वचनं समर्थयेदिति प्रसंगोचितं प्रतिभाति।
2. अस्य श्लोकस्य मौलिकता कथं सिध्यतीति चेत्, पञ्चमाङ्के दुष्यन्तः शकुन्तलायाः कृते "मध्ये तपोधनानां किसलयमिव पाण्डुपत्राणामि" ति यामोपमां प्रयोजयति, तदेवात्रान्तःसाक्ष्यमित्यवलोकनीयम्।
3. कालिदासः पक्षान्तरनिरूपणावसरे "ऽथवे" ति निपातमनेकेषु स्थानेषु प्रयोजयति। यथा- "अथवा कृत-वाग्द्वारे वंशेस्मिन्०" (रघुवंशम्-1)। अतोऽत्र वल्कलविषये मतिद्वैविध्याद् अथवा-शब्देन पक्षान्तरमुपस्थापयति नायकः। स चान्तरिक-सम्भावनया युक्तः प्रतीयते। तेनात्र का. -पाठान्निष्कासितोऽपि1-17 इति श्लोकः स्वीकार्यो भवति, मैथिल-पाठानुरोधात्।
4. कुत्रचिदितः परम्, अपि चेति निपातेन "कठिनमपि मृगाक्ष्या वल्कलं कान्तरूपं०" इति श्लोकोऽप्यवतार्यते।, (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-3)
5. कण्वाश्रमस्य प्राङ्गणे द्वौ वृक्षौ (बकुलः वा केसरः, अपरश्च सहकारः), लता त्वेकैव, सा च नवमालिका।, शकुन्तलायाः संनिधिना बकुलवृक्षो लतासनाथः प्रतीयते। सहकारेण सह तु नवमालिका स्वयंवरवधूत्वेन संलग्नैव।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

बद्धफलदाए उवभोअक्खमो सहआरो। (हले, रमणीये काले अस्य पादपमिथुनस्य व्यतिकरस्संवृत्तः, इयं नवकुसुमयौवना, अयमपि बद्धफलतयोपभोगक्षमस्सहकारः।) (पश्यन्ती तिष्ठति) [89]

प्रियंवदा- हला अणसूए, जाणासि किं णिमित्तं सउन्तला वणदोसिणं अधिमेत्तं पेक्खदि त्ति। (हले अनसूये, जानासि किं निमित्तं शकुन्तला वनतोषिणम् अधिमात्रं प्रेक्षत इति।) [90]

अनसूया - ण खु विभावेमि। (न खलु विभावयामि।) [91]

प्रियंवदा - जधा वनदोसिणा अणुसदिसेण पादपेण सङ्गदा णवमालिआ। अवि णाम एवं अहम्पि अत्तणो अणुरूवं वरं लभेमि त्ति। (यथा वनतोषिणानुसदृशेन पादपेन संगता नवमालिका, अपि नाम एवमहम् अप्यात्मनोऽनुरूपं वरं लभ इति।) [92]

शकुन्तला - एस णूणं अत्तणो दे चित्तगदो मणोरहो। (एष नूनम् आत्मनस्ते चित्तगतो मनोरथः।) [93]

(इति नवमालिकां सिक्त्वा,[1] कलशम् आवर्जयति[2]) [94]

राजा - अपि नाम कुलपतेरियम् असवर्णक्षेत्रसम्भवा स्यात्। अथ वा, [95]

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदेवम् अस्याम् अभिलाषि मे मनः।
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः॥ 1 - 20॥ [96]

तथापि तत्त्वत एनां वेदितुमिच्छामि। [97]

शकुन्तला- (भ्रमरसम्पातं नाटयति) अम्हो, सलिलसेअसंवुत्तो णवमालिअं उज्झिअ वअणं मे महुअरो अणुवत्तदि। (अहो सलिलसेकसंवृत्तो नवमालिकामुज्झित्वा वदनं मे मधुकरोऽनुवर्तते।) [98]

(भ्रमरबाधां निरूपयति) [99]

राजा - (विलोक्य सस्पृहम्[3]) [100]

यतो यतः षट्चरणोऽभिवर्ततेततस्ततः प्रेरितवामलोचना।
विवर्तितभ्रूरियमद्य शिक्षते भयाद् अकामापि हि दृष्टिविभ्रमम्॥ 1 - 21॥ [101]

अपि च[4], (सासूयमिव) [102]

चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं,
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकगतः।
करौ[5] व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं
वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती[6]॥ 1 - 22॥ [103]

---

1. अत्र शब्दद्वयं विनिवेषनीयम्।, कलशमावर्जयति, भूमिं स्थापयतीत्यर्थः। तत एव "करौ व्याधुन्वत्याः०" इत्यस्य संगतिः स्यात्।
2. इतः परं माधवीलताया निर्देशो वर्तते, स च प्रक्षिप्त एव। यतो हि, भ्रमरबाधारम्भे विलम्बं जनयति।
3. का.-दाक्षि.-देव.-पाठेषु संक्षेपीकरणास्याशयेन "यतो यतः षट्चरणो०" श्लोकः निष्कासितः। किन्तु सस्पृहमिति रंगसूचनयावतारितेऽस्मिन् श्लोके नायको नायिकाया दृष्टिविभ्रमसौन्दर्यं पश्यति, तच्च निरूपति।
4. अनेन समुच्चयार्थकेन निपातयुग्मेन भ्रमरबाधा-प्रसंगस्य द्वितीयं पार्श्वम् आलिख्यते। अतो द्वितीयेन श्लोकेन नायको भ्रमरस्यासूयां करोति, तस्य निरूपणं क्रियते। (प्रसंगस्यास्य द्विपार्श्विनीं रमणीयतामालिखितुम् "अपि चे" ति निपातस्य प्रयोगश्चरितार्थो भवति, श्लोकद्वयस्य चानिवार्यता मौलिकता च सिध्यति।)
5. ध्वन्यालोके (2-22) द्विवचनान्तः पाठः स्वीक्रियते, शारदा-मातृकासु च।
6. बं.-पाठे इतः परं "लोलां दृष्टिमितस्ततो...वाद्यैर्विना नर्तकी" त्यपि श्लोकः। (प्रक्षिप्त-श्लोक-क्रमांक- 4)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला – परित्ताअध मं इमिणा कुसुमपाडच्चरेण अभिभूअमाणं। (परित्रायध्वं मामनेन कुसुमपाटच्चरेणाभिभूयमानाम्।) [104]

उभे – (विहस्य) केवअं परित्ताणे दुस्सन्तं आकन्द। राअरक्खिदाणि खु तवोवणाणि होन्ति।

(केवलं परित्राणे दुःषन्तम् आक्रन्द। राजरक्षितानि खलु तपोवनानि भवन्ति।) [105]

राजा- अवसरः खल्वयं ममात्मानं दर्शयितुम्। (उपसृत्य) न भेतव्यम्, न भेत्तव्यम्.....। [106]

(इत्यर्धोक्तेऽपवार्य) [107]

एवं राजाहमिति प्रतिज्ञातं भवति। भवत्वतिथिसमुचिताचारसत्कारम् अवलम्बिष्ये। [108]

शकुन्तला- (सत्रासम्) ण एसो मे पुरदो अइधट्ठो विरमदि। ता अण्णदो गमिस्सं। (इति पटान्तरेण स्थित्वा सदृष्टिक्षेपम्) हद्धी कधं इतो वि मं अणुसरदि। [109] (नैष मे पुरतोऽतिधृष्टो विरमति। तदन्यतो गमिष्यामि। हा धिक्, कथम् इतोऽपि मामनुसरति।) [110]

राजा – (सत्वरम् उपेत्य) [111]

कः पौरवे वसुमतीं[1] शासति शासितरि दुर्विनीतानाम्।
अयमाचरत्यविनयं मुग्धासु तपस्विकन्यासु॥ 1 – 23॥ [112]

(सर्वा राजानं दृष्ट्वा किञ्चिदिव सम्भ्रान्ताः।) [113]

अनसूया – ण खु किञ्चि अच्चाहिदं। इअं पुणो ण पिअसही महुअरेण आउलीकिअमाणा कादरीभूदा।

(न खलु किञ्चिदत्याहितम्। इयं पुनर्नः प्रियसखी मधुकरेणाकुलीक्रियमाणा कातरीभूता।) (शकुन्तलां दर्शयति) [114]

राजा – (शकुन्तलामुपेत्य) भवति, अपि तपस्ते वर्धते। [115]

(शकुन्तला ससाध्वसाऽवनतमुखी अवचना तिष्ठति) [116]

अनसूया – (राजानं प्रति) दाणिं अदिधिविसेसलाभेण। (इदानीमतिथिविशेषलाभेन।) [117]

प्रियंवदा – साअदं अय्यस्स। (स्वागतमार्याय[2]) [118]

अनसूया – हला सउन्तले, गच्छ तुमं उडआदो फलमिस्सं उवाहर, पादोदअं अत्थिय्येव। (हले शकुन्तले, गच्छ त्वं, उटजतः फलमिश्रम् उपाहर, पादोदकम् अस्त्येव।) [119]

राजा – भवतु, सुनृतयैव वाचा कृतमातिथ्यम्। [120]

प्रियंवदा – तेण इमस्सिं दाव पादवच्छाआसीअलाए सत्तवण्णवेदिआए अय्यो उपविसिअ मुहुत्तअं परिस्समं अवणेदु। (तेनास्मिन् तावत् पादपच्छायाशीतलायां सप्तपर्णवेदिकायाम् आर्य उपविश्य मुहूर्तं परिश्रमम् अपनयतु।) [121]

राजा – ननु यूयम् अप्यनेन धर्मकर्मणा परिश्रान्ताः, तन्मुहूर्तम् उपविशत। [122]

प्रियंवदा – (जनान्तिकम्) हला सउन्तले, उइदं णो अदिधिपय्युवासणं, ता इध उवविसम्ह। (सर्वा उपविशन्ति) (हले शकुन्तले, उचितं नोऽतिथि-पर्युपासनम्। तद् इहोपविशामः।) [123]

शकुन्तला –(आत्मगतम्) किं णु खु इमं पेक्खिअ तवोवणविरोधिणो विआरस्स गमणीअम्हि संवुत्ता।

---

1. काश्मीर-पाठे राज्ञो पूर्वपरिणीतायाः कुलप्रभेति यन्नाम वर्तते, तदेव मौलिकमित्यनेन शब्देन सिध्यति। यदि मैथिल-पाठानुसारेण पूर्वपरिणीता राज्ञी वसुमतीति नामधेया स्यात्, तर्हि श्लोकेऽस्मिन् तस्या नाम कथं दुःषन्त प्रयोजयेदिति प्रश्नो जायते। अतः काश्मीर-पाठ एव ज्यायान्, विरोधाभावात्।
2. विक्रमोर्वशीयस्य "अये गन्धर्वराजः!, स्वागतं प्रियसुहृदे" (अंक-1) इति प्रयोगदर्शनाच्चतुर्थी करणीया।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(किं नु खल्विमं प्रेक्ष्य तपोवनविरोधिनो विकारस्य गमनीयास्मि संवृत्ता।) [124]

राजा - (सर्वा विलोक्य) अहो समानवयोरूपरमणीयं सौहार्दं भवतीनाम्। [125]

प्रियंवदा - (जनान्तिकम्) को णु खु एसो महुरगम्भीराकिदी, महुरं पिअं आलवन्तो पहवन्तं दक्खिणं विअ करेदि। (को नु खल्वेष मधुरगम्भीराकृतिर्मधुरं प्रियमालपन् प्रभवन्तं दाक्षिण्यमिव करोति।) [126]

अनसूया - (जनान्तिकम् एव) सहि, ममावि कोदूहलम् अत्थि य्येव। ता पुच्छिस्सं दाव णं। (प्रकाशम्) अय्यस्स णो महुरालावजणिदो विसम्भो मन्तावेदि। कदमं पुण अय्यो वण्णं अलंकरेदि। किं णिमित्तं वा सुउमारेण अय्येण तवोवणागमणपरिसमस्स अत्ता पत्थिकिदो। (सखि, ममापि कौतूहलम् अस्त्येव। तत् प्रक्ष्यामि तावदेनम्। आर्यस्य नो मधुरालापजनितो विस्रम्भो मन्त्रयति। कतमं पुनरार्यो वर्णम् अलंकरोति।[1] किं निमित्तं वा सुकुमारेण आर्येण तपोवना-गमनपरिश्रमस्यात्मा पात्रीकृतः[2]।) [127]

शकुन्तला -(आत्मगतम्) हिअअ, मा उत्तम्म जं तए चिन्तिदं तं अणसूआ मन्तेदि। (हृदय, मा उत्ताम्य, यत्त्वया चिन्तितं तद् अनसूया मन्त्रयति।) [128]

राजा- भवति[3], वेदविदस्मि पौरवेण राज्ञा धर्माधिकारे नियुक्तः। पुण्याश्रमदर्शनप्रसंगेन[4] धर्मारण्यम् इदमायातः। [129]

अनसूया - सणाधा धम्मआरिणो। (सनाथा धर्मचारिणः।) [130]

(शकुन्तला शृङ्गारलज्जां निरूपयति) [131]

सख्यौ- (उभयोराकारं विदित्वा) (जनान्तिकम्) हला सउन्तले, जदि अज्ज तादो इध सण्णिहिदो भवे। (हले शकुन्तले, यद्यद्य तात इह संनिहितो भवेत्।) [132]

शकुन्तला- (सभ्रूभेदम्) तदो किं भवे। (ततः किं भवेत्।) [133]

उभे - तदो इमं अदिधिं जीविदसव्वस्सेणावि कदत्थं करे। (तत इमम् अतिथिम् जीवितसर्वस्वेनापि कृतार्थं कुर्यात्।) [134]

शकुन्तला -(सरोषम्) इं अवेध, किं पि हिदए कदुअ मन्तेध, ण खु सुणिस्सं। (परावृत्य तिष्ठति)

(युवाम् अपेतम्। किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रयथः। न खलु श्रोष्यामि।) [135]

राजा- वयमपि तावद् भवत्यौ सखीगतं पृच्छामः। [136]

उभे - अय्य, अणुग्गहेवि अब्भत्थणा। (आर्य, अनुग्रहेऽप्यभ्यर्थना।) [138]

राजा - भगवान् कण्वः शाश्वते ब्रह्मणि वर्तते, इयं च वां सखी तदात्मजेति कथमेतत्। [139]

अनसूया - सुणादु अय्यो। अत्थि कोसिओ त्ति गोत्तणामधेओ महाप्पहावो राएसी। (शृणोत्वार्यः, अस्ति कौशिकइति गोत्रनामधेयो महाप्रभावो राजर्षिः।) [140]

राजा- प्रकाशस्तत्रभवान्। [141]

अनसूया - तं सहीअणे पहवं अवगच्छ। उज्झिअसरीरसंरक्खणादीहिं उण तादकण्णो से पिदा। [142]

(तं सखीजने प्रभवम् अवगच्छ। उज्झितशरीरसंरक्षणादिभिः पुनस्तातकण्वोऽस्याः पिता।)

---

1. पूर्वं दुःषन्तेन "अपि नाम कुलपतेरियम् असवर्ण-क्षेत्रसम्भवा स्यादिति" भणितम्। तेन आन्तरिक-सम्भानया प्रश्नस्यास्येयमेवानुपूर्वी स्यादित्यनुमीयते। न तु "कतम आर्येण राजर्षेर्वंशोऽलंक्रियत" इति।
2. प्रसंगेऽस्मिन् प्रश्नद्वयमेव पर्याप्तम्। "कतमो वा विरहपर्युत्सुकजनः कृतो देश" इति तृतीयप्रश्नः प्रक्षिप्त एव।
3. इतः पूर्वम् स्वगतोक्तिरूपेण "कथमिदानीम् आत्मानं निवेदये। कथं वात्मपरिहारं करोमि। भवत्वेवं तावदेनां वक्ष्ये।" इति वाक्यमपि प्राप्यते, तच्च प्रक्षिप्तं प्रतिभाति।
4. अत्र शब्दोऽयं मैथिल-पाठाद् गृहीतः, आश्रमप्रवेशस्य पूर्वोक्तं प्रयोजनमिदमेवासीत्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- उज्झितशब्देन जनितं मे कुतूहलम्। तदामूलाच्छ्रोतुमिच्छामि। [143]

अनसूया - पुराकिल तस्स कोसिअस्स राएसिणो उग्गे तवसि वट्टमाणस्स किं वि जादसंकेहिं देवेहिं मेणआ णाम अच्छरा णिअमविग्घकारिणि पहिदा। (पुराकिल तस्य कौशिकस्य राजर्षेरुग्रे तपसि वर्तमानस्य किमपि जातशङ्कैर्देवैर्मेनका नामाप्सरा नियमविघ्नकारिणी प्रहिता।) [144]

राजा - अस्त्येतद् अन्यसमाधिभीरुत्वं देवानाम्, ततस्ततः। [145]

अनसूया - तदो वसन्तोदयसमए तए उम्मादइत्तअं रूवं पेक्खिअ .... (इत्यर्धे लज्जया विरमति।) [146]

(ततो वसन्तोदयसमये तस्या उन्मादयितृकं रूपं प्रेक्ष्य ...) [147]

राजा - भवतु, पुरस्ताद् अवगम्यत एव। अप्सरस्सम्भवैषा। [148]

अनसूया- अध इं। (अथ किम्।) [149]

राजा - युज्यते।

मानुषीषु कथं वा स्याद् अस्य रूपस्य सम्भवः।
न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्॥ 1 - 24॥ [150]

(शकुन्तलाऽधोमुखी तिष्ठति) [151]

राजा - (आत्मगतम्) लब्धावकाशो मे मनोरथः। किन्तु परिहासोदाहृतां वरप्रार्थनां श्रुत्वापि न श्रद्-दधते कातरं मे मनः। [152]

प्रियंवदा - (शकुन्तलां सस्मितं विलोक्य) (नायकाभिमुखी) पुणो वि वत्तुकामो अय्यो। (पुनरपि वक्तुकाम आर्यः।) (शकुन्तला सखीम् अङ्गुल्या तर्जयति) [153]

राजा - सम्यगुपलक्षितं भवत्या। अस्ति नस्सच्चरितश्रवणलोभाद् अन्यद् प्रष्टव्यम्। [154]

प्रियंवदा - तेण हि विआरिदेण अलम्। णियन्तणाजुत्तो तवस्सिअणो। (तेन हि, विचारितेनालम्। नियन्त्रणायुक्तस्तपस्विजनः।) [155]

राजा - उपपद्यते। भवति, सखीं ते विज्ञातुमिच्छामि। [156]

वैखानसं किम् अनया व्रतम् आप्रदानाद्
व्यापाररोधि मदनस्य निषेवितव्यम्।
अत्यन्तम् आत्मसदृशेक्षण-वल्लभाभि-
राहो निवत्स्यति समं हरिणाङ्गनाभिः॥ 1 - 25॥ [157]

प्रियंवदा - अय्य, धम्माचरणे वि एस पराधीणो जणो। गुरुणो उण से अणुरूववरपडिवादणे संकप्पो।

(आर्य, धर्माचरणेऽप्येष पराधीनो जनः। गुरोः पुनरस्या अनुरूपवरप्रदाने सङ्कल्पः।) [158]

राजा - न खलु दुर्लभैषा प्रार्थना। (आत्मगतम्) [159]

भव हृदय साभिलाषं, सम्प्रति सन्देहनिर्णयो जातः।
आशङ्कसे यदग्निं तद् इदं स्पर्शक्षमं रत्नम्॥ 1 - 26॥ [160]

शकुन्तला -(सरोषमिव) अणसूए, गमिस्से अहं। (अनसूये, गमिष्याम्यहम्।) [161]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अनसूया - किं णिमित्तं। (किं निमित्तम्।) [162]

शकुन्तला- इमं असम्बद्धालाविणीं पियंवदां अय्याए गोदमीए णिवेदयिस्से। (इत्युत्तिष्ठति)
(इमाम् असम्बद्धालापिनीं प्रियंवदाम् आर्यायै गौतम्यै निवेदयिष्ये।) [163]

अनसूया - सहि, ण जुत्तं अस्समवासिणो जणस्स अकिदसक्कारं अदिधिविसेसं उज्झिअ सच्छन्ददो गमणं।
(सखि, न युक्तम् आश्रमवासिनो जनस्य अकृतसत्कारमतिथिविशेषमुज्झित्वा स्वच्छन्दतो गमनम्।) [164]
(शकुन्तला न किञ्चिद् उक्त्वा प्रस्थितैव।) [165]

राजा - (अपवार्य) कथं गच्छति। (इत्युत्थाय जिघृक्षुरिवेच्छां[1] निगृह्य) अहो चेष्टाप्रतिरूपिका कामिनो मनोवृत्तिः। अहं हि, [166]

अनुयास्यन् मुनितनयां सहसा विनयेन वारितप्रसरः।
स्थानाद् अनुच्चलन्नपि गत्वैव पुनः प्रतिनिवृत्तः॥ 1 - 27॥ [167]

प्रियंवदा - (शकुन्तलामुपसृत्य) हला चण्डि, ण लब्भदि गन्तुं। (हले चण्डि, न लभ्यते गन्तुम्।) [168]

शकुन्तला- (सभ्रूभङ्गम्) किं ति। (किमिति) [169]

प्रियंवदा - रुक्खसेचके दुए मे धारयसि। (वृक्षसेचनके द्वे मे धारयसि।) तेहिं दाव अत्ताणअं मोआवेहि।
तदो गमिस्ससि। (बलादेनां निवारयति) (ताभ्यां तावद् आत्मानं मोचय। ततो गमिष्यसि।) [170]

राजा - भद्रे, वृक्षसेचनकाद् एव परिश्रान्ताम् अत्रभवतीं लक्षये। तथा ह्यस्याः, [171]

स्रस्तांसावतिमात्रलोहित-करौ बाहू घटोत्क्षेपणाद्
अद्यापि स्तनवेपथुं जनयति श्वासः प्रमाणाधिकः।
बद्धं कर्णशिरीषरोधि वदने घर्माम्भसां जालकं,
बन्धे स्रंसिनि चैकहस्तयमिताः पर्याकुला मूर्धजाः॥ 1 - 28॥ [172]

तदहमेनाम् अनृणां त्वयि करोमि। (स्वम् अङ्गुलीयं प्रयच्छति) [173]
(उभे नाममुद्राक्षराण्यनुवाच्य परस्परं मुखमवलोकयतः) [174]

राजा- अलम् अस्माकम् अन्यथा सम्भावितेन। राज्ञः परिग्रहोऽयम्। [175]

प्रियंवदा - तेण हि णारहदि इदं अण्णो अङ्गुलीकविओगकारणं। अय्यस्स तुह वअणेण एसा अरिणा येव मम। (तेन हि नार्हतीदमन्योऽङ्गुलीयक-वियोगकारणम्। आर्यस्य तव वचनेनैषाऽनृणैव मम।) [176]

प्रियंवदा - (परिवृत्यापवार्य च) हला सउन्तले, मोइदासि अणुअम्पिणा अय्येण, अह वा महाणुभावेण। किदण्णा दाणिं होहिसि। (हले शकुन्तले, मोचितास्यनुकम्पिनार्येणाथ वा महानुभावेन। कृतज्ञेदानीं भविष्यसि।) [177]

शकुन्तला- (अपवार्य निःश्वस्य) ण इदं विसुमरिस्सदि जदि अत्तणो पहवे। (न इदं विस्मरिष्यते, यद्यात्मनः प्रभवामि।) [178]

प्रियंवदा - हला, किं दाणिं सम्पदं जदि ण गच्छसि। (हला, किमिदानीं साम्प्रतं यदि न गच्छसि।) [179]

शकुन्तला- दाणिं किं पि तए वत्तव्वं। जदा रोइस्सदि तदा गमिस्सं। (इदानीं किमपि त्वया वक्तव्यम्। यदा मे रोचिष्यते तदा गमिष्यामि।) [180]

---

1. मैथिल-पाठादियं रंगसूचना स्वीकृता।, काश्मीर-पाठेऽत्र सरलीकरणस्याशयो दृश्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा - (शकुन्तलां विलोकयन् आत्मगतम्) किं नु खलु यथा वयम् अस्याम्, एवम् इयमपि अस्मान् प्रति स्यात्। अथवा लब्धगाधा मे प्रार्थना। कुतः - [181]

वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः कर्णं ददात्यवहिता मयि भाषमाणे।
कामं न तिष्ठति मदाननसम्मुखीयं भूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्याः॥ 1 - 29॥ [182]

(नेपथ्ये[1]) [183]

भो भोस्तपस्विनः,पर्याकुलयन् स्त्रीवृद्धकुमारानेष हस्ती संप्राप्तः। [184]

तीव्रापातप्रतिहततरुस्कन्धलग्नैकदन्तः
प्रौढासक्तव्रततिवलयासङ्गसञ्जातपाशः।
मूर्तो विघ्नस्तपस इव नो भिन्नसारंगयूथो
धर्मारण्यं विरुजति गजस्स्यन्दनालोकभीतः॥ 1 - 30॥ [185]

(सर्वाः कर्णं दत्त्वा ससंभ्रमम् उत्तिष्ठन्ति) [186]

राजा- (आत्मगतम्) धिक् कथमपराद्धस्तपस्विनामस्मि। भवतु, प्रतिगच्छामि तावत्। [187]

सख्यौ - अय्य इमिणा अक्कन्दिदेण पय्याउलम्ह। ता अणुजाणिहि णो उडअगमणाअ। (आर्य, अनेनाक्रन्दितेन पर्याकुलास्स्मः। तदनुजानीहि न उटजगमनाय।) [188]

अनसूया- हला सउन्तले, पय्याकुला अय्या गोदमी भविस्सदि। ता एहि सिग्घं एकत्था होम्ह। (हला शकुन्तले, पर्याकुला आर्या गौतमी भविष्यति। तर्हि एहि, शीघ्रमेकस्था भविष्यामः।) [189]

राजा - (ससम्भ्रमम्) गच्छन्तु भवत्यः। आश्रमबाधा यथा न भविष्यति, तथा प्रयतिष्यामहे। [190]

सख्यौ - असम्भाविदसक्कारं भूओ वि दाव पच्चवेक्खणनिमित्तं लज्जामो अय्यं विण्णवेदुं। विदिदभूइट्ठो सि णो सम्पदं जं दाणिं उवआर मज्झत्थदाए अवरद्धम्ह तं मरिसेसि। (असम्भावितसत्कारं भूयोऽपि तावत्प्रत्यवेक्षणनिमित्तं लज्जाम आर्याय विज्ञापयितुम्। विदितभूयिष्ठोऽसि नस्साम्प्रतं यदिदानीम् उपकारमध्यस्थतयाऽपराद्धास्स्मः, तन्मर्षयसि।) [191]

राजा- मा मैवम्। दर्शनेनैव भवतीनां सत्कृतो[2]ऽस्मि[3]। [192]

शकुन्तला- अहिणवकुससूइपरिक्खदो मे चरणो, कुरुवअसाहापरिलग्गं च मे वक्कलं। ता पलिवालेध मं, जाव णं मोआवेमि। (अभिनवकुशसूचिपरिक्षतो मे चरणः, कुरबकशाखापरिलग्नं च मे वल्कलम्, तत् प्रतिपालय मां, यावदेतत् मोचयामि।)[4] [193]

---

1. इतः पूर्वम्, यद्यपि "भोस्तपस्विनः, तपोवनसत्त्वरक्षायै सज्जीभवन्त्वि" ति। ततश्च "तुरगखुरहतस्तथा हि रेणुरिति" श्लोकसहितः नेपथ्योक्तिरूपः पाठ्यांशः सर्वासु वाचनासु / रंगावृत्तिषु प्राप्यते। तथापि सः प्रक्षिप्त एव स्यात्। स्मर्तव्यमत्र यत्तपोवनसत्त्वरक्षायै नास्ति काप्यावश्यकता, यतो हि राजा तु पूर्वमेव "आश्रममृगोऽयमिति" इति वैखानसवचनं श्रुत्वा, स्वकीयं बाणं प्रतिसंहृतवान्नित्युक्तमेव। (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-5)
2. पूर्वस्मिन् वाक्येऽतिथिसत्कारेति शब्दप्रयोगात्। दाक्षिणात्यपाठेन च समर्थ्यतेऽयं पाठः।
3. का.-मै.-बं.-पाठेष्वितः परं शकुन्तला "हा धिक्, ऊरुस्तम्भेन विकलास्मी" त्यपि भणति। किन्तु विलम्बनाय व्याजद्वयं नोचितम्, पुनरुक्तिग्रस्तत्वात्।
4. अभिनवकुशसूचिक्षतो मे चरणः० इति मैथिल-पाठेन सूचितो वाचिकाभिनय एवोचितः, द्वितीयाङ्के "दर्भाङ्कुरेण क्षत इत्यकाण्डे०" इति श्लोकेन सह सम्बद्धत्वात्।, (शकुन्तला सव्याजविलम्बितं कृत्वा परिक्रम्य सखीभ्यां सह निष्क्रान्तेत्यपि का.-पाठे रंगसूचनाऽस्ति। तत्र केवलमाङ्गिकाभिनयस्य स्थानम्।)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- (उत्थाय सखेदम्) मन्दौत्सुक्योऽस्मि नगरं प्रति, यावद् अनुयात्रिकजनं समेत्य नातिदूरे तपोवनस्य निवेशयामि। न खलु शक्नोमि शकुन्तलाव्यापाराद् आत्मानं निवर्तयितुम्। [194]

मम हि,

गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चाद् असंवृतं चेतः।
चिह्नांशुक[1] मिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य॥ 1 - 31॥ [195]

(सचिन्तः स्खलितानि पदानि दत्त्वा निष्क्रान्तः) [196]

॥ इति प्रथमोऽङ्कः[2]॥

---

1. काश्मीर-पाठस्यास्य "चेत" इत्यस्य विशेषणत्वेन साभिप्रायत्वं सिध्यति।
2. मै.-बं.-पाठयोः प्रत्येकानामङ्कानां नामानि दीयन्ते। किन्तु का.-पाठे तेषामनुपलब्धिः, विक्रमोर्वशीये मालविकाग्निमित्रे च प्रत्येकानामङ्कानां नोपलभ्यन्ते पृथङ्नामानि।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ अथ द्वितीयोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशति परिश्रान्तो विदूषकः) [1]

विदूषकः- (श्रमं नाटयति, निःश्वस्य) भोः दिढ म्हि। एदस्स मिगआ सीलस्स रण्णो वअस्सभावेण णिविण्णो। अअं मिगो, अअं वराहो त्ति। मज्झंदिणे वि गिम्हविरलपादवच्छायासु वणराईसु आफ(ह?)ण्डीयदि। पत्तसङ्कर-कसाआणि पीअन्ते, कडुआणि उण्हाइं गिरिणदीजलाइं अणिअदवेलं सूलमंस-सउण-मंसभूइट्ठं अण्हीअदि। तुरगआण-कण्ठइद-सन्धि-बन्धणाणं अङ्गाणं रत्तिं पि णत्थि पकामं सयितव्वं। तदो मम महन्ति य्येव पच्चीसे दासीए पुत्तेहिं, सउणलुब्धएहिं कण्णघादिणा वणगहण-कोलाहलेण पडिबोधीआमि। [2]

(विचिन्त्य)

एत्तिएण वि मे पाणा ण णिक्कन्ता। (सासूयं विहस्य) तदो गण्डोवरि पिडिआ संवुत्ता। हिय्यो अम्हेसु ओहीणेसु तत्थभवदो मआणुसारेण अस्समपदं पइट्ठस्स किल तावसकण्णआ सउन्तला णाम म अधण्णदाए दसिदा। सम्पदं णअरगमणस्स सङ्कधं पि ण करेदि। अज्ज तं य्येव सञ्चिन्तअन्तस्स विभादं अच्छीसु। ता का गदी। जाव णं किदाचारपरिक्कमं कहिं पेक्खामि। [3]

(परिक्रम्यावलोक्य च)

एसो राआ बाणासणहत्थाहिं जवणीहिं परिवुदो वणपुप्फमालाधारी इदो य्येवागच्छदि। ता जाव णं उवसप्पामि। (किञ्चिद् उपसृत्य) भोदु। अंगसम्मड्डविहलो दाणिं भविअ इध य्येव चिट्ठिसं। जदो एवं पि दाव विसामं लभेमि।। [4]

(दण्डकाष्ठम् अवलम्ब्य तिष्ठति)।। [5]

(भोः दृढोऽस्मि, एतस्य मृगयाशीलस्य राज्ञो वयस्यभावेन निर्विण्णः, अयं मृगोऽयं वराह इति। मध्यंदिनेऽपि ग्रीष्मविरलपादपच्छायासु वनराजिसु आहिण्ड्यते। पत्रसंकरकषायाणि पीयन्ते कटुकान्युष्णानि गिरिनदीजलानि, अनियतवेलं शूलमांसशकुनमांसभूयिष्ठं अद्यते। तुरगयानकण्ठ- कृतसन्धिबन्धनानाम् अङ्गानां रात्रिमपि नास्ति प्रकामं शयितव्यम्। ततो मम महत्येव प्रत्यूषे दास्याः पुत्रैः शकुनलुब्धकैः कर्णघातिना वनग्रहणकोलाहलेन प्रतिबोध्ये। एतावतापि मे प्राणा न निष्क्रान्ताः। ततो गण्डोपरि पिटिका संवृत्ता। ह्योऽस्मास्वहीनेषु तत्रभवतो मृगानुसारेणाश्रमपदं प्रविष्टस्य किल तापसकन्यका शकुन्तला नाम ममाधन्यतया दर्शिता। साम्प्रतं नगरगमनस्य संकथामपि न करोति। अद्य तमेव सञ्चितयतो विभातम् अक्ष्णोः। तत्का गतिः। यावदेनं कृताचारपरिक्रमं कुत्र प्रेक्ष्ये। ..... एष राजा बाणासनहस्ताभिर्यवनीभिः[1] परिवृतो वनपुष्पमालाधारीत इवागच्छति। तद् यावद् एनम् उपसर्पामि। भवतु, अङ्गसम्मर्दविह्वल इदानीं भूत्वेहैव स्थास्यामि। यत एवमपि तावद् विश्रामं लभे।।)

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टपरिवारो राजा।) [6]

राजा- (सचिन्तम्। निःश्वस्यात्मगतम्)

---

1. मै.-बं.-पाठयोरस्य स्थाने "हृदयनिहितप्रियजन" इति। किन्तु तन्न युक्तम्। यतो हि- सेनापतिं परावृत्य राजा भणति "(परिजनं विलोक्य) मृगयावेषमपनयन्तु भवन्त" इति। तत्कथं संभवेत्, यदि यवनीभिः परिवृतो राजा रंगभूमिं न समायातो भवेत्। अतः पूर्वापरविरोधादत्र तौ पाठौ न सुसंगतौ सिध्यतः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

कामं प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भावदर्शनाश्वासि।
अकृतार्थे मनसिजे रतिम् उभयप्रार्थना कुरुते॥ 2 - 1॥ [7]

(स्मृतिमभिनीय) (विहस्य) एवमात्माभिप्रायसंभावितेष्टजनचित्तवृत्तिः प्रार्थयिता विडम्ब्यते। कुतः,

स्निग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि नयने यत्प्रेरयन्त्या तया,
यातं यच्च नितम्बयोर्गुरुतया मन्दं विलासादिव।
मा गा इत्यवरुद्धया यदपि सा सासूयम् उक्ता सखी,
सर्वं तत् किल मत्परायणमहो कामः स्वतां पश्यति॥ 2 - 2॥ [8]

(परिक्रामति)

विदूषकः- (तथा स्थित एव) भो राअं, ण मे हत्थो पसरदि। वाआमेत्तकेण जआवीअसि। जअदु जअदु भवं। (भो राजन्, न मे हस्तः प्रसरति। वाङ्मात्रकेण जाप्यसे। जयतु जयतु भवान्।) [9]

राजा- (विलोक्य सस्मितम्) वयस्य, कुतोऽयं गात्रोपघातः। [10]

विदूषकः- कुदो किल। स्वअं मेवं अच्छी आकूलीकदुअ अंसुकारणं पुच्छसि। (कुतः किल, स्वयमेवाक्षीण्याकुलीकृत्याऽश्रुकारणं पृच्छसि[1]।) [11]

राजा- वयस्य, न खल्वगच्छामि। [12]

विदूषकः- (सरोषमिव) भोः तए णाम राअकय्याइं उज्झिअ तादिसे अ कीलापसादे, वणअरेकवित्तिणा होदव्वं। जं सच्चं पच्चहं सावदसऊणाणुगमणेहिं सङ्खोहिद-सन्धिबन्धणाणं अङ्गाणं अणीसोम्हिं संवुत्तो। (सप्रणयम्) ता पसीद। मं वज्जेहि एक्काहं पि दाव विसमीअदु। (भोः त्वया नाम राजकार्याण्युज्झित्वा तादृशाञ्च क्रीडाप्रसादान्, वनचरैकवृत्तिना भवितव्यम्। यत्सत्यं प्रत्यहं श्वापदशकुनानुगमनैः सङ्क्षोभितसन्धिबन्धानाम् अङ्गानाम् अनीशोऽस्मि संवृत्तः। तत्प्रसीद, मां वर्जय एकाहमपि तावद् विश्राम्यताम्।) [13]

राजा- (आत्मगतम्) अयमेवमाह। ममापि कण्वदुहितरम् अनुसृत्य मृगयां प्रति निरुत्सुकं चेतः[2]। [14]

विदूषकः- (राज्ञो मुखमवलोक्य) भो अत्थभवं हिअएण किं पि मन्तेदि। अरण्णे मए रुदिदं।
(भोः अत्रभवान् हृदयेन किमपि मन्त्रयति। अरण्ये मया रुदितम्।) [15]

राजा- (सस्मितमिव) किमन्यत्। अनतिक्रमणीयं सुहृद्वाक्यमिति स्थितोऽस्मि। [16]

विदूषकः- चिरं जीव। (चिरं जीव) [17]

राजा- तिष्ठ। सावशेषं मे वचः। [18]

विदूषकः- आणवेदु भवं। (आज्ञापयतु भवान्।) [19]

राजा- विश्रान्तेन भवता ममान्यस्मिन्ननायासे कर्मणि सहायेन भवितव्यम्। [20]

विदूषकः- (साभिलाषम्) अवि मोदअखज्जिआए। (अपि मोदकखादिकायाम्।) [21]

राजा- यत्र वक्ष्यामि। [22]

---

1. मैथिलादि-पाठेष्वितः परं "यद् वेतसः कुब्जलीलां विडम्बयति, तत् किमात्मनः प्रभावेण, अथ नदीवेगस्ये" ति वाक्येन यदपि भणति, तत्सर्वम् पुनरुक्तिदोषग्रस्तत्वात्प्रक्षिप्तं प्रतिभाति।, विदूषकेन तु स्वकीयस्य दुःखस्य निमित्तं दुःषन्त एवेति स्पष्टमेव भणितम्। तथापि राज्ञा नावगम्यते, तर्हि राज्ञो बुद्धिमान्द्यमेव सिध्येत्।
2. इतः परम्- सर्वासु वाचनासु / रंगावृत्तिषु "न नमयितुमधिज्यमुत्सहिष्ये०" इति श्लोकः प्राप्यते, स च प्रक्षिप्तः प्रतिभाति। विनापि तयोः नयनसादृश्यं, प्रियायाः अनुस्मरणमेव नायकं मृगयां प्रति निरुत्साहिनं कर्तुमलम्। (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-6)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ अथ द्वितीयोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशति परिश्रान्तो विदूषकः) [1]

विदूषकः- (श्रमं नाटयति, निःश्वस्य) भोः दिढ म्हि। एदस्स मिगआ सीलस्स रण्णो वअस्सभावेण णिविण्णो। अअं मिगो, अअं वराहो त्ति। मज्झंदिणे वि गिम्हविरलपादवच्छायासु वणराईसु आफ(ह?)ण्डीयदि। पत्तसङ्कर-कसाआणि पीअन्ते, कडुआणि उण्हाइं गिरिणदीजलाइं अणिअदवेलं सूलमंस-सउण-मंसभूइट्ठं अण्हीअदि। तुरगआण-कण्ठइद-सन्धि-बन्धणाणं अङ्गाणं रत्तिं पि णत्थि पकामं सयितव्वं। तदो मम महन्ति य्येव पच्चीसे दासीए पुत्तेहिं, सउणलुब्धएहिं कण्णघादिणा वणगहण-कोलाहलेण पडिबोधीआमि। [2]

(विचिन्त्य)

एत्तिएण वि मे पाणा ण णिक्कन्ता। (सासूयं विहस्य) तदो गण्डोवरि पिडिआ संवुत्ता। हिय्यो अम्हेसु ओहीणेसु तत्थभवदो मआणुसारेण अस्समपदं पइट्ठस्स किल तावसकण्णआ सउन्तला णाम म अधण्णदाए दसिदा। सम्पदं णअरगमणस्स सङ्कधं पि ण करेदि। अज्ज तं य्येव सञ्चिन्तअन्तस्स विभादं अच्छीसु। ता का गदी। जाव णं किदाचारपरिक्कमं कहिं पेक्खामि। [3]

(परिक्रम्यावलोक्य च)

एसो राआ बाणासणहत्थाहिं जवणीहिं परिवुदो वणपुप्फमालाधारी इदो य्येवागच्छदि। ता जाव णं उवसप्पामि। (किञ्चिद् उपसृत्य) भोदु। अंगसम्मड्डविहलो दाणिं भविअ इध य्येव चिट्ठिसं। जदो एवं पि दाव विसामं लभेमि।। [4]

(दण्डकाष्ठम् अवलम्ब्य तिष्ठति)।। [5]

(भोः दृढोऽस्मि, एतस्य मृगयाशीलस्य राज्ञो वयस्यभावेन निर्विण्णः, अयं मृगोऽयं वराह इति। मध्यंदिनेऽपि ग्रीष्मविरलपादपच्छायासु वनराजिसु आहिण्ड्यते। पत्रसंकरकषायाणि पीयन्ते कटुकान्युष्णानि गिरिनदीजलानि, अनियतवेलं शूलमांसशकुनमांसभूयिष्ठं अद्यते। तुरगयानकण्ठ- कृतसन्धिबन्धनानाम् अङ्गानां रात्रिमपि नास्ति प्रकामं शयितव्यम्। ततो मम महत्येव प्रत्यूषे दास्याः पुत्रैः शकुनलुब्धकैः कर्णघातिना वनग्रहणकोलाहलेन प्रतिबोध्ये। एतावतापि मे प्राणा न निष्क्रान्ताः। ततो गण्डोपरि पिटिका संवृत्ता। ह्योऽस्मास्वहीनेषु तत्रभवतो मृगानुसारेणाश्रमपदं प्रविष्टस्य किल तापसकन्यका शकुन्तला नाम ममाधन्यतया दर्शिता। साम्प्रतं नगरगमनस्य संकथामपि न करोति। अद्य तमेव सञ्चितयतो विभातम् अक्ष्णोः। तत्का गतिः। यावदेनं कृताचारपरिक्रमं कुत्र प्रेक्ष्ये। ..... एष राजा बाणासनहस्ताभिर्यवनीभिः[1] परिवृतो वनपुष्पमालाधारीत इवागच्छति। तद् यावद् एनम् उपसर्पामि। भवतु, अङ्गसम्मर्दविह्वल इदानीं भूत्वेहैव स्थास्यामि। यत एवमपि तावद् विश्रामं लभे।।)

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टपरिवारो राजा।) [6]

राजा- (सचिन्तम्। निःश्वस्यात्मगतम्)

---

1. मै.-बं.-पाठयोरस्य स्थाने "हृदयनिहितप्रियजन" इति। किन्तु तन्न युक्तम्। यतो हि- सेनापतिं परावृत्य राजा भणति "(परिजनं विलोक्य) मृगयावेषमपनयन्तु भवन्त" इति। तत्कथं संभवेत्, यदि यवनीभिः परिवृतो राजा रंगभूमिं न समायातो भवेत्। अतः पूर्वापरविरोधादत्र तौ पाठौ न सुसंगतौ सिध्यतः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

कामं प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भावदर्शनाश्वासि।
अकृतार्थे मनसिजे रतिम् उभयप्रार्थना कुरुते॥ 2 - 1॥ [7]

(स्मृतिमभिनीय) (विहस्य) एवमात्माभिप्रायसंभावितेष्टजनचित्तवृत्तिः प्रार्थयिता विडम्ब्यते। कुतः,

स्निग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि नयने यत्प्रेरयन्त्या तया,
यातं यच्च नितम्बयोर्गुरुतया मन्दं विलासादिव।
मा गा इत्यवरुद्धया यदपि सा सासूयम् उक्ता सखी,
सर्वं तत् किल मत्परायणमहो कामः स्वतां पश्यति॥ 2 - 2॥ [8]

(परिक्रामति)

विदूषकः- (तथा स्थित एव) भो राअं, ण मे हत्थो पसरदि। वाआमेत्तकेण जआवीअसि। जअदु जअदु भवं। (भो राजन्, न मे हस्तः प्रसरति। वाङ्मात्रकेण जाप्यसे। जयतु जयतु भवान्।) [9]

राजा- (विलोक्य सस्मितम्) वयस्य, कुतोऽयं गात्रोपघातः। [10]

विदूषकः- कुदो किल। स्वअं मेवं अच्छी आकूलीकदुअ अंसुकारणं पुच्छसि। (कुतः किल, स्वयमेवाक्षीण्याकुलीकृत्याऽश्रुकारणं पृच्छसि[1]।) [11]

राजा- वयस्य, न खल्वगच्छामि। [12]

विदूषकः- (सरोषमिव) भोः तए णाम राअकय्याइं उज्झिअ तादिसे अ कीलापसादे, वणअरेकवित्तिणा होदव्वं। जं सच्चं पच्चहं सावदसऊणाणुगमणेहिं सङ्खोहिद-सन्धिबन्धणाणं अङ्गाणं अणीसोम्हिं संवुत्तो। (सप्रणयम्) ता पसीद। मं वज्जेहि एक्काहं पि दाव विसमीअदु। (भोः त्वया नाम राजकार्याण्युज्झित्वा तादृशाञ्च क्रीडाप्रसादान्, वनचरैकवृत्तिना भवितव्यम्। यत्सत्यं प्रत्यहं श्वापदशकुनानुगमनैः सङ्क्षोभितसन्धिबन्धानाम् अङ्गानाम् अनीशोऽस्मि संवृत्तः। तत्प्रसीद, मां वर्जय एकाहमपि तावद् विश्राम्यताम्।) [13]

राजा- (आत्मगतम्) अयमेवमाह। ममापि कण्वदुहितरम् अनुसृत्य मृगयां प्रति निरुत्सुकं चेतः[2]। [14]

विदूषकः- (राज्ञो मुखमवलोक्य) भो अत्थभवं हिअएण किं पि मन्तेदि। अरण्णे मए रुदिदं।
(भोः अत्रभवान् हृदयेन किमपि मन्त्रयति। अरण्ये मया रुदितम्।) [15]

राजा- (सस्मितमिव) किमन्यत्। अनतिक्रमणीयं सुहृद्वाक्यमिति स्थितोऽस्मि। [16]

विदूषकः- चिरं जीव। (चिरं जीव) [17]

राजा- तिष्ठ। सावशेषं मे वचः। [18]

विदूषकः- आणवेदु भवं। (आज्ञापयतु भवान्।) [19]

राजा- विश्रान्तेन भवता ममान्यस्मिन्ननायासे कर्मणि सहायेन भवितव्यम्। [20]

विदूषकः- (साभिलाषम्) अवि मोदअखज्जिआए। (अपि मोदकखादिकायाम्।) [21]

राजा- यत्र वक्ष्यामि। [22]

---

1. मैथिलादि-पाठेष्वितः परं "यद् वेतसः कुब्जलीलां विडम्बयति, तत् किमात्मनः प्रभावेण, अथ नदीवेगस्ये" ति वाक्येन यदपि भणति, तत्सर्वम् पुनरुक्तिदोषग्रस्तत्वात्प्रक्षिप्तं प्रतिभाति।, विदूषकेन तु स्वकीयस्य दुःखस्य निमित्तं दुःषन्त एवेति स्पष्टमेव भणितम्। तथापि राज्ञा नावगम्यते, तर्हि राज्ञो बुद्धिमान्द्यमेव सिध्येत्।
2. इतः परम्- सर्वासु वाचनासु / रंगावृत्तिषु "न नमयितुमधिज्यमुत्सहिष्ये०" इति श्लोकः प्राप्यते, स च प्रक्षिप्तः प्रतिभाति। विनापि तयोः नयनसादृश्यं, प्रियायाः अनुस्मरणमेव नायकं मृगयां प्रति निरुत्साहिनं कर्तुमलम्। (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-6)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

विदूषकः- गहिदो खणो। (गृहीतः क्षणः।) [23]

राजा- कः कोऽत्र भोः। [24]

(प्रविश्य) **दौवारिकः-** आणवेदु भट्टा। (आज्ञापयतु भर्ता।) [25]

राजा- रेवक, सेनापतिस्तावद् आहूयताम्। [26]

रेवकः- जं भट्टा आणवेदि। (यद् भर्ता आज्ञापयति।) (इति निष्क्रान्तः।) [27]

(ततः प्रविशति सेनापतिर्दौवारिकश्च।) [28]

सेनापतिः- (राजानं विलोक्यात्मगतम्) दृष्टदोषापि मृगया स्वामिनि खलु केवलं गुणायैव संवृत्ता[1]। [29]

दौवारिकः- अय्य, एसो खु अणुवअणदिण्णकण्णो इदो दिण्णदिट्ठी एव भट्टा तुमं पडिवालेदि। ता उवसप्पदु अय्यो। (आर्य, एष खल्वनुवचनदत्तकर्ण इतो दत्तदृष्टि[2]रेव भर्ता त्वां प्रतिपालयति। तस्माद् उपसर्पत्वार्यः।) [30]

सेनापतिः- (उपसृत्य सप्रणामम्) जयतु जयतु स्वामी। स्वामिन्, गृहीतं प्रचारसूचितश्वापदमरण्यम्। किम् अन्यद् अवस्थीयते। [31]

राजा- भद्र सेनापते, मन्दोत्साहः कृतोऽस्मि मृगयापवादिना माधव्येन[3]। [32]

सेनापतिः- (जनान्तिकम्) माधव्य, स्थिरप्रतिबन्धो भव। अहमपि तावत्स्वामिनश्चित्तम् अनुवर्तिष्ये। [33]

(प्रकाशम्) देव, प्रलपत्वेष वैधेयः। ननु प्रभुरेव निदर्शनं मृगया-गुणानाम्। [34]

मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः
सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः।
उत्कर्षस्स च धन्विनां यदिषवः सिद्ध्यन्ति लक्ष्ये चले
मिथ्या हि[4] व्यसनं वदन्ति मृगयाम् ईदृग्विनोदः कुतः॥ 2 - 3॥ [35]

विदूषकः- (कृतकरोषम्) अत्थभवं दाव पकिदिम् आवण्णो। तुमं पुण अडवीदो अडविं आहिण्ड जाव सीमासिआलो विअ जुण्णरिक्खस्स मुहे पडिस्ससि। (अत्रभवांस्तावत् प्रकृतिम् आपन्नः। त्वं पुनरटवीतोऽटविं भ्रम, यावत् सीमाशृगालस्येव जीर्णर्क्षस्य मुखे पतिष्यसि।) [36]

राजा- भद्र सेनापते, आश्रमसंनिकर्षे वर्तामहे। अतस्ते वचो नाभिनन्दामि। [37]

अद्य तावत् -

---

1. इतः परम्- "अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूर०" इति श्लोकः सर्वासु वाचनासु / रंगावृत्तिषु प्राप्यते, किन्तु स पुनरुक्तिरूपोऽनावश्यकश्च प्रपञ्चोऽस्ति। अतः प्रक्षिप्तत्वेन निष्कास्यते। (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-7)
2. राज्ञः कृते "ऽनुवचनदत्तकर्णः" एवञ्च "इतो दत्तदृष्टिरि" ति विशेषणद्वयमावश्यकम्। अन्ये च ये पाठभेदाः प्राप्यन्ते ते सर्वे तूत्तरवर्तिनि काले समुद्भूतानि सन्ति।
3. मधुबभ्र्वोर्ब्राह्मण-कौशिकयोः। (पा. सू. 4-1-106) सूत्रेण गोत्रे यञ्। यदा ब्राह्मण-वाचकः स्यात् तर्हि माधव्य इति। मधुमासे जातः, सो माधवः।, दाक्षि.-देव.-पाठयोस्तु संस्कृतोक्तिष्वपि माढव्येति, तन्न युक्तम्।
4. का.-मै.-बं.-दाक्षि.-पाठेषु "मिथ्या ही" ति।, देव.-पाठे सरस्वतीकण्ठाभरणे च "मिथ्यैवे" ति। किन्तु अभिनव-भारत्यां (अ. 16, पृ. 301) "मिथ्या ही" ति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

गाहन्तां महिषा निपानसलिलं शृङ्गैर्मुहुस्ताडितं
छायाबद्धकदम्बकं मृगकुलं रोमन्थमभ्यस्यतु।
विश्वस्तैः क्रियतां वराहपतिभिर्मुस्ताक्षतिः पल्वले
विश्रान्तिं[1] लभतामिदं च शिथिलज्याबन्धम् अस्मद्धनुः॥ 2 - 4॥ [38]

सेनापतिः- यथा प्रभविष्णवे रोचते। [39]

राजा- तेन निवर्त्यन्तां वनग्राहिणः। यथा च सैनिकास्तपोवनं दूरात्परिहरन्ति तथा निषेद्धव्याः। [40]
पश्य -

शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकम् अस्ति तेजः।
स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्तास्तद् अन्यतेजोऽभिभवाद् वमन्ति॥ 2 - 5॥ [41]

सेनापतिः- यदाज्ञापयति देवः। [42]

विदूषकः- गच्छ, सम्पदं दासीए पुत्त। (गच्छ, साम्प्रतं दास्याः पुत्र।) (इति निष्क्रान्तस्सेनापतिः) [43]

राजा- (परिजनमवलोक्य) अपनयतु भवन्तो मृगयावेषम्। रेवक, त्वमपि स्वनियोगम् अशून्यं कुरु। [44]

परिजनः- जं भट्टा आणवेदि। (यद् भर्ताज्ञापयति) (इति निष्क्रान्तः परिजनः) [45]

विदूषकः- (सहासम्) किदो भवदा णिद्धूमको दंसपडीआरो[2]। ता सम्पदं एदस्सिं आवासपादवच्छाआपरिवुदे विदाणअ-सणाहे आसणे जहा सुहं उवविसदु भवं, जाव अहं पि सुहासन त्थो होमि। (कृतो भवता निर्धूमको दंशप्रतिकारः। तत् साम्प्रतम् एतस्मिन् पादपच्छायाविरचितवितानसनाथे[3] शिलातले यथासुखम् उपविशतु भवान्, यावदहमपि सुखासनस्थो भवामि।) [46]

(उभावुपविष्टौ)

राजा- सखे, माधव्य, अनवाप्तचक्षुः फलोऽसि, येन त्वया दर्शनीयं न दृष्टम्। [47]

विदूषकः- णं भवं अग्गदो मे चिट्ठदि। (ननु भवान् अग्रतो मे तिष्ठति।) [48]

राजा- सर्वः कान्तमात्मानं पश्यति। किन्तु तामेवाहम् आश्रमललामभूतां शकुन्तलाम् अधिकृत्य ब्रवीमि। [49]

विदूषकः- (अपवार्य) भोदु। ण से पसरं वद्धयिस्सं। (प्रकाशम्) जदा दाव सा तावसकण्णआ अप्पात्थणीया, ता किं तए दिट्ठए। (भवतु, नास्य प्रसरं वर्धयिष्यामि। यदा तावत् सा तापसकन्यकाऽप्रार्थनीया, तत् किं तया दृष्टया।) [50]

राजा- मूर्ख, परिहार्येऽपि वस्तुनि दुःषन्तस्य मनः प्रवर्तते?। [51]

विदूषकः- ता कधं एदं। (तत् कथमेतत्।) [52]

राजा-

ललिताऽन्यसम्भवं[4] किल मुनेरपत्यं तदुज्झिताधिगतम्।
अर्कस्योपरि शिथिलं च्युतमिव नवमालती कुसुमम्॥ 2 - 6॥ [53]

---

1. मै.-बं.-पाठयो "विंश्राममि" ति।, किन्तु का.लं.सू. (1-2-11), अभिनवभारत्यां (अ.16, पृ. 336), काव्यप्रकाशे (उ.-7, श्लोकः-250) च "विश्रान्तिमि" त्येव।
2. मैथिलादीषु पाठेषु "कृतं भवता निर्मक्षिकमि" ति।, प्राचीनतमपाठानुरोधादत्र काश्मीर-पाठः स्वीक्रियते।
3. का.-पाठे "पादपच्छायापरिवृत्ते वितानक-सनाथ आसने०" इति प्राप्यते। किन्तु कण्वाश्रमे राज्ञः कृते वितानकरूपम् आहार्यम् न स्यात्। अतोऽत्र मैथिल-पाठानुसारी पाठः प्रयुज्यते।
4. अनेनैव शब्देन दुष्यन्तस्य शकुन्तलायामहैतुकी प्रीतिर्वतत इति सिध्यति, नान्येन पाठभेदेन।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

विदूषकः- जदि वि ण कण्णस्स महेसिणो ओरसा दूधा, तधा वि किं तए दिट्ठए। (यद्यपि न कण्वस्य महर्षेरौरसा दुहिता[1], तथापि किं तया दृष्टया।) [54]

राजा- अविशेषज्ञ,

चिरं गतनिमेषाभिर्नेत्रपङ्क्तिभिर् उन्मुखः
नवाम् इन्दुकलां लोकः केन भावेन पश्यति।
न च सा मादृशानाम् अप्रार्थनीया
समासतः समिन्मध्यकालागुरुखण्डवत्[2]॥ 2 - 7॥ [55]

विदूषकः- (विहस्य) भो जधा कस्सा वि पिण्डखज्जूरीहिं उव्वेजिदस्स तिन्तिआणं अहिलासो होदि तधा इत्थीरअणपरिभाविणो भवदो इअं पत्थणा। (भोः यथा कस्यापि पिण्डखर्जूरिभिरुद्वेजितस्य तिन्तिकानाम् अभिलाषो भवति, तथा स्त्रीरत्नपरिभाविनो[3] भवत इयं प्रार्थना।) [56]

राजा- सखे, न तावद् एनां पश्यसि, येन त्वमेवं वादी। [57]

विदूषकः- तं खु रमणीअं णाम जं भवदो वि विम्हअं जनदि। (तत्खलु रमणीयं नाम यद् भवतोऽपि विस्मयं जनयति।) [58]

राजा- वयस्य, किं बहुना,

चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगाद्
रूपोच्चयेन विहिता मनसा कृता नु।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे
धातुर्विभुत्वम् अनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः॥ 2 - 8॥ [59]

विदूषकः- (सविस्मयम्) पच्चादेसो दाणिं रूववदीणं। (प्रत्यादेश इदानीं रूपवतीनाम्।) [60]

राजा- इदं च मे मनसि वर्तते। [61]

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै-
रनामुक्तं[4] रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं,
न जाने भोक्तारं कमिव समुपस्थास्यति भुवि॥ 2 - 9॥ [62]

विदूषकः- तेण हि लघु परिणदु भवं, मा कस्स वि तपस्सिणो इङ्गुदीतिलचिक्कणसीसस्स आरण्णकस्स हत्थे पडिस्सदि। (तेन हि, लघु परिणयतु भवान्, मा कस्यापि तपस्विन इङ्गुदीतैल चिक्कणशीर्षस्य आरण्यकस्य हस्ते पतिष्यति।) [63]

राजा- परवती खलु तत्रभवती, न च सन्निहितगुरुजना। [64]

विदूषकः- अध भवन्तं अन्तरेण कीदिसो से चित्ताणुराओ। (अथ भवन्तम् अन्तरेण कीदृशोऽस्याश्चित्तानुरागः।) [65]

---

1. अनेन, शकुन्तला कण्वस्यावैधानिकी कन्येति संसूच्य विदूषकः राजानं निवारयितुं पुनरपि यतते।
2. श्लोकेनानेन विदूषकस्य पूर्वोपस्थापितौ तर्कौ परिहृतौ, तेन स तृतीय-तर्करूपेण पिण्डखर्जूरिभिरित्यादिकं भणति। नास्त्येतादृशी सुसंगता पाठयोजनाऽन्यत्र। तुलनात्मकदृष्ट्या काश्मीर-पाठ एवाविकलो ज्यायांश्च सन्दर्भेऽस्मिन्।
3. परिभोगिन इत्यनेन पाठभेदेन नायकस्य केवलं विषयिता कथ्यते। किन्तु परिभाविन इति पाठेन तु राज्ञि दुःषन्ते संनिष्ठताया अभावो द्योत्यते।
4. अनेन नायिकाया मौग्ध्यं द्योत्यते, तदेव च सन्दर्भोचितम्। तत्रैवान्तरिकी सम्भावना स्यात्। (नरेन्द्रप्रभ-सूरि (ई.स.1225)प्रणीतः अलंकारमहोदधिः (8-713) इत्यत्राप्ययमेव पाठ उद्धृतः।)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- सखे, स्वभावाद् अप्रगल्भस्तपस्विकन्यकाजनः। तथापि तु-

अभिमुखं मयि संहृतमीक्षितं हसितमन्यनिमित्तकथोदयम्।
विनयबाधितवृत्तिरतस्तया न विवृतो मदनो, न च संहृतः॥ 2 - 10॥ [66]

विदूषकः- (विहस्य) किं खु सा भवदो दिट्ठमेत्तस्स य्येव अङ्कं आरुहदु। (किं खलु सा भवतो दृष्टमात्रस्यैवाङ्कमारोहतु।) [67]

राजा- सखे, सखीभ्यां मिथः प्रस्थाने शालीनयापि तत्रभवत्या मयि भूयिष्ठम् आविष्कृतो भावः। तदा खलु -[68]

दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे
तन्वी स्थिता कतिचिद् एव पदानि गत्वा।
आसीद् विवृत्तवदना च विमोचयन्ती
शाखासु वल्कलम् असक्तमपि द्रुमाणाम्[1]॥ 2 - 11॥ [69]

विदूषकः- भो गिहीदपाधेओ होसि। कधं पुणो उण तवोवणगमणं त्ति पेक्खामि। (भोः गृहीतपाथेयो भवसि। कथं पुनः पुनस्तपोवनगमनमिति प्रेक्षे।) [70]

राजा- सखे, चिन्तय तावत् केनोपायेन पुनराश्रमपदं गच्छामः। [71]

विदूषकः- एसो चिन्तेमि। मा खु से अलिअपरिदेविदेहिं समाधिं भञ्जिहिसि। (एषश्चिन्तयामि, मा खल्वस्यालीकपरिदेवितैः समाधिं भाङ्क्षीः[2]।) (चिन्तयित्वा) भो को अण्णो उपाओ, णं भवं राआ। (भोः कोऽन्य उपायो, ननु भवान् राजा।) [72]

राजा- ततः किम्। [73]

विदूषकः- णिवारच्छब्भाअं दाव सामिणो उवहरदु त्ति। (निवारषड्भागं तावत् स्वामिने उपहरत्विति) [74]

राजा- मूर्ख, अन्यं भागम् एते रक्षिणे निर्वपन्ति, रत्नराशीन् अपि विहायाभिनन्द्यम्। पश्य, [75]

यद् उत्तिष्ठति वर्णेभ्यो नृपाणां क्षयि तत् फलम्।
तपष्षड्भागम् अक्षय्यं ददात्यारण्यको जनः॥ 2 - 12॥ [76]

(नेपथ्ये) हन्त, सिद्धार्थौ स्वः। [77]

राजा- (कर्णं दत्वा) अये धीरप्रशान्तस्वरैस्तपस्विभिर् भवितव्यम्। [78]

(प्रविश्य) **दौवारिकः-** जअदु जअदु भट्टा। एदे दुवे इसिकुमारआ पडिहारभूमिं उवत्थिदा। (जयतु, जयतु भर्ता। एतौ द्वावृषिकुमारकौ प्रतिहारभूमिम् उपस्थितौ।) [79]

राजा- अविलम्बितं प्रवेशय। [80]

दौवारिकः- अअं पवेसामि। (अयं प्रवेशयामि।) (इति निष्क्रान्तः) [81]

(ततः प्रविशतस्तापसौ दौवारिकश्च।) [82]

दौवारिकः- इदो इदो भवन्तो। (इत इतो भवन्तः।) [83]

---

1. एतैः शब्दैः प्रथमांकस्यान्ते शकुन्तलायारुक्तिः समर्थिता भवति। तत्र शकुन्तला न केवलमाङ्गिकाभिनयेन रंगान्निष्क्रमणं करोति। किन्तु वाचिकाभिनयपूर्वकमेव तस्या रंगान्निष्क्रमणं भवतीत्यनेन श्लोकेन सिध्यति।
2. विक्रमोर्वशीयेऽपि द्वितीयाङ्क एतादृशैरेव शब्दैः समाधिमभिनयति, नायिकाप्राप्त्युपायं च चिन्तयति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

तापसौ- (राजानं दृष्ट्वा) अहो दीप्तिमतोऽपि विश्वसनीयता वपुषः। अथवा, उपपन्नमेतद् अस्मिन्नृषिकल्पे राजनि। तथाहि, [84]

अध्याक्रान्ता वसतिरमुनाऽप्याश्रमे सर्वपूर्वे
रक्षायोगाद् अयमपि तपः प्रत्यहं सञ्चिनोति।
अस्यापि द्यां स्पृशति वशिनश्चारणद्वन्द्वगीतः
पुण्यः शब्दो मुनिरिति मुहुः केवलं राजपूर्वः॥ 2 - 13॥ [85]

द्वितीयः- गौतम, अयं स बलभित्सखो दुष्यन्तः। [86]

प्रथमः- अथ किम्। [87]

द्वितीयः- तेन हि,

नैतच्चित्रं यदयमुदधिश्यामसीमां धरित्रीम्,
एकः कृत्स्नां नगरपरिघप्रांशुबाहुर्भुनक्ति।
आशंसन्ते सुर-समितयस्सक्तवैरा हि दैत्यैर्
अस्याधिज्ये धनुषि विजयं पौरहूते च वज्रे॥ 2 - 14॥ [88]

उभौ- (उपसृत्य) स्वस्ति भवते। (फलान्युनयतः) [89]

राजा- (सादरम् उत्थाय) अभिवादये भवन्तौ। [91]

(सप्रणामं गृहीतासन उपविश्य) किमाज्ञापयतो भवन्तौ। [92]

ऋषिः- विदितो भवान् आश्रमवासिनाम् इहस्थः। तेन भवन्तम् अभ्यर्थयन्ते। [93]

राजा- किमाज्ञापयन्ति। [94]

उभौ- तत्रभवतः कण्वमुनेरसांनिध्याद् रक्षांसि परापतिष्यन्ति, विघ्नमुत्पादयितुम् इच्छन्ति।

तत्कतिपयरात्रं सारथिद्वितीयेन भवता सनाथीक्रियताम् आश्रम इति। [95]

राजा - अनुगृहीतोऽस्मि। [96]

विदूषकः- (अपवार्य) इअं दाणिं अणुऊल-गलत्था[1]। (इयमिदानीम् अनुकूलप्रार्थना।) [97]

राजा- रेवक, मद्वचनाद् उच्यतां सारथिः। सबाणकार्मुकं रथम् उपनयेति। [98]

दौवारिकः- जं भट्टा आणवेदि। (यद् भर्ताऽऽज्ञापयति।) (इति निष्क्रान्तः) [99]

ऋषिः- (सहर्षम्)

अनुकारिणि पूर्वेषां युक्तरूपमिदं त्वयि।
आपन्नाभयसत्रेण दीक्षिताः खलु पौरवाः॥ 2 - 15॥ [100]

राजा- गच्छतां भवन्तौ। अहम् अप्यनुपदम् आगत एव। [101]

ऋषिः- विजयस्व। (इत्युत्थाय निष्क्रान्तौ) [102]

राजा- माधव्य, अप्यस्ति शकुन्तलादर्शनकौतुकम्। [103]

---

1. देश्य-शब्दोऽयं प्रार्थनार्थक इति "पाइअ-सद्द-महण्णवो" (पृ. 437) कोशाज्ज्ञायते। अतः सः संरक्षणीयः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

विदूषकः- पढमं अपरिबाधं आसि। (सभयम्) रक्खसवुत्तान्तेण उण सम्पदं विसाददंसिणा विसेसिदम्।
(प्रथमं अपरिबाधमासीत्। राक्षसवृत्तान्तेन पुनस्साम्प्रतं विषाददर्शिना विशेषितम्।) [104]

राजा- मा भैषीः। ननु मत्समीपे भविष्यसि। [105]

विदूषकः- एस चक्काकी भूदो म्हि। (एषः चक्राकी भूतोऽस्मि।) [106]

(प्रविश्य) **दौवारिकः-** भट्टा, सज्जो रहो भट्टिणो विजअपत्थाणं उदीक्खदि। एसो उण णअरादो देवीणं सआसादो करभओ उपत्थिदो। (भर्तः, सज्जो रथो, भर्तुर्विजयप्रस्थानम् उदीक्षते। एष पुनर्नगरतो देवीनां सकाशतः करभकः उपस्थितः।) [107]

राजा- सादरम्। किमज्जुभिः प्रेषितः। [108]

दौवारिकः- अध इं। (अथ किम्)। [109]

राजा- प्रवेश्यताम्। [110]

दौवारिकः- जं भट्टा आणवेदि। (यद् भर्ताज्ञापयति) (इति निष्क्रान्तः) [111]

।। ततः प्रविशति दौवारिकेण सह करभकः।। [112]

करभकः- (उपसृत्य) जयदु जयदु भट्टा। देविओ आणवेन्ति, जधा आगामिणि चउत्थे दिअसे पुत्तपिण्डओदाणओ णाम उववासो भविस्सदि। तत्थ दीहाउणा अवस्सं सण्णिहिदेण होदव्वम्।

(जयतु जयतु भर्ता। देव्य आज्ञापयन्ति यथागामिनि चतुर्थे दिवसे पुत्रपिण्डकदानको[1] नामोपवासो भविष्यति। तत्र दीर्घायुषाऽवश्यं सन्निहितेन भवितव्यम्।) [113]

राजा- साकुलम्। माधव्य, इतस्तपस्विकार्यम् इतो गुरुजनाज्ञा। उभयमपि अनुल्लङ्घनीयं मया।
कथमत्र प्रतिविधेयम्। [114]

विदूषकः- तिसङ्कु विअ अन्तरे चिट्ठ। (त्रिशङ्कुरिवान्तरे तिष्ठ।) [115]

राजा- सत्यम् आकुलोऽस्मि। [116]

कृत्ययोर्भिन्नदेशत्वाद् द्वैधीभवति मे मनः।
पुरः प्रतिहतं शैले स्त्रोतस्त्रोतोवहो यथा।। 2 - 16।। [117]

(सखेदं चिन्तयित्वा) सखे माधव्य, त्वमज्जुभिः पुत्र इति परिगृहीतस्तद्भवान् इतः प्रतिनिवृत्य, तत्रभवतीनां पुत्रकार्यम् अनुष्ठातुमर्हति। तपस्विकार्यव्यग्रितास्स्मः इत्यावेदय। [118]

विदूषकः- (सगर्वम्) साधु, रक्खसभीरुअं मं गणयिसदि। (साधु, राक्षसभीरुकं मां गणयिष्यति।) [119]

राजा- (सस्मितम्) महाब्राह्मण[2], कथमेतद् भवति सम्भाव्यते। [120]

विदूषकः- तेण हि जधा राआणुराजेण गन्तव्वं तधा गमिस्सं। (तेन हि राजानुराजेन गन्तव्यम्, तथा गमिष्यामि।) [121]

राजा- ननु तपोवनोपरोधः परिहरणीय इति सर्वम् अनुयात्रिकजनम् त्वया सह प्रस्थापयामि। [123]

---

1. नाटकस्यारम्भ एव चक्रवर्तिनः पुत्रस्य प्राप्तिर्भविष्यतीत्याशीर्वचनं प्रदत्तम्। तच्च नाटकस्य चरमं लक्ष्यम् इत्यभिनवगुप्तपादाः। (ना. शा. अभिनवभारती, अ.19-22), अतः प्रत्येकस्मिन् अङ्के पुत्रप्राप्तिरूपं लक्ष्यं स्मार्यते। तेनायमेव पाठः स्वीकार्यः। न च "प्रवृत्तपारणो नाम०" अथवा "निर्वृतपारणो नाम०" इति।
2. मालविकाग्निमित्रे (अंकः-2) गणदासेनापि विदूषकं संबोद्धुं शब्दोऽयं प्रयुज्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

विदूषकः- (सगर्वम्) तेण हि, जुअराआ खु अम्हि संवुत्तो। (तेन हि, युवराजः खल्वस्मि संवृत्तः।) [124]

राजा- (आत्मगतम्) चपलोऽयं बटुः। कदाचिद् अस्मत्प्रार्थनाम् अन्तःपुरेभ्यः कथयेत्। भवतु, एवं तावद् वक्ष्यामि। (प्रकाशम्) (विदूषकं हस्ते गृहीत्वा) वयस्य, ऋषिगौरवाद् आश्रमं गच्छामि। न खलु सत्यमेव तापसकन्यकायाम् ममाभिलाषः। [125]

पश्य,

क्व वयं क्व परोक्षमन्मथो मृगशावैस्सममम् एधितो जनः।
परिहासविकल्पितं सखे परमार्थेन न गृह्यते वचः॥ 2 - 17॥ [126]

विदूषकः- एवम् णेदं। सोत्थि भवदे।, (एवमेतत्। स्वस्ति भवते।) [127]

(इति निष्क्रान्तास्सर्वे॥) [128]

॥ इति द्वितीयोऽङ्कः॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ अथ तृतीयोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशति यजमानशिष्यः।) [1]

शिष्यः - (कुशान् आदाय) अहो महाप्रभावो दुष्यन्तः। प्रविष्टमात्र एव सारथिद्वितीये तत्रभवतीदम् आश्रमपदं निवृत्तरक्षोविघ्नं संवृत्तम्, निरुपप्लवानि च नः कर्माणि सिद्धानि। [2]

का कथा बाणसन्धाने ज्याशब्देनैव दूरतः।
हुङ्कारेणेव धनुषस्स हि विघ्नान् अपोहति॥ 3 -1॥ [3]

यावदिमान् वेदिसंस्तरणार्थं दर्भान् ऋत्विग्भ्य उपाहरामि। (परिक्रम्याकाशे) प्रियंवदे, कस्येदम् उशीरानुलेपनं मृणालवलयवन्ति च कमलिनीपत्राणि नीयन्ते। (श्रुतिमभिनीय) किं ब्रवीषि। आतपलङ्घनाद् बलवद् अस्वस्था शकुन्तला। तस्या दाहे निर्वापणायेति। अहो यत्नाद् उपक्रम्यतां सखी, यतस्तत्रभवतः कुलपतेस्तद् उच्छ्वसितम्। अहमपि वैतानिकशान्त्युदकम् अस्यै गौतमीहस्ते प्रहेष्यामि। (इति निष्क्रान्तः) [4]

॥ प्रवेशकः[1]॥ [5]

(ततः प्रविशति कामयानावस्थो[2] राजा) [6]

राजा - (सवितर्कम्)

जाने तपसो वीर्यं सा बाला परवतीति मे विदितम्।
अलमस्मि ततो हृदयं तथापि नेदं निवर्तयितुम्[3]॥ 3 - 2॥ [7]

(सासूयम्) कुसुमायुध, त्वया चन्द्रमसा च विश्वसनीयाभ्यामभिसन्धीयते कामिजनसार्थः।

कथमिति। [8]

तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दो-
र्द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु।
विसृजति हिमगर्भैरग्निम् इन्दुर्मयूखै-
स्त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारीकरोषि॥ 3 - 3॥ [9]

अथवा,

अनिशमपि[4] मकरकेतुर्मनसो रुजमावहन्नभिमतो मे।
यदि मदिरायतनयनां तामधिकृत्य प्रहरति[5]॥ 3 - 4॥ [10]

---

1. अर्थोपक्षेपकस्यास्य नामाभिधानं नाट्यशास्त्रानुसारि। बृहत्पाठपरम्परायामपीदमेव नाम संचरितम्।
2. कामयानशब्दः सिद्धोऽनादिश्चेत्। इति शब्दोऽयं वामनस्य का.सू.वृत्तौ 5-82, रघुवंशे 19-50 इत्यत्र च प्रयुक्तः।
3. का.-मै.-बं.-पाठेष्वितः परम् "अद्यापि नूनं हरकोपवह्नि०" इति। 3-26 श्लोकानुरोधात् पुनरुक्तिग्रस्तोऽयं श्लोकः। अतः प्रक्षिप्तः सिध्यति। (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-8)
4. काश्मीर-पाठात् संक्षेपीकरणस्याशयात् निष्कासितोऽप्ययं श्लोकः मैथिल-पाठानुरोधात् स्वीक्रियते। अत्र "अथवे"ति निपातेनावतारितेऽस्मिन् श्लोके पक्षान्तरमपि प्रस्तूयते, तेनास्य श्लोकस्य मौलिकत्वं सिध्यति।
5. मै.-बं.-पाठयोरितः परं "वृथैव संकल्पशतैरजस्रमनङ्ग०"। (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-9)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(सखेदम्) क्व नु खलु संस्थिते कर्मणि सदस्यैरनुज्ञातविश्रान्तिः श्रान्तम् आत्मानं विनोदयामि। (निःश्वस्य) किं नु खलु प्रियादर्शनाद् ऋते शरणम् अन्यत्। यावदेनाम् अन्विष्ये। (सूर्यम् अवलोक्य) इमाम् उग्रतमां वेलां प्रायेण लतावलयवत्सु मालिनीतीरेषु तत्रभवती ससखीजना गमयति। तत्रैव तावद् गमिष्यामि[1]। [11]

(परिक्रम्य साह्लादं वायुस्पर्शं निरूपयन्)

अहो, प्रवातसुभगोऽयमुद्देशः। [12]

शक्योऽरविन्दसुरभिः कणवाही मालिनीतरङ्गाणाम्।
मदनग्लानैरङ्गैः पीडितमालिङ्गितुं पवनः॥ 3 - 5॥ [13]

(परिक्रम्यावलोक्य च) अस्मिन् वेतसपरिक्षिप्ते लतामण्डपके शकुन्तलया भवितव्यम्। तथा हि, (अधोऽवलोक्य) [14]

अल्पनिहिता पुरस्तादवगाढा जघनगौरवात्पश्चात्।
द्वारेऽस्य पाण्डुसिकते पदपङ्क्तिर्दृश्यतेऽभिनवा॥ 3 - 6॥ [15]

यावद्विटपान्तरेणावलोकयामि। (तथा कृत्वा सहर्षम्) अये, लब्धं खलु नेत्रनिर्वापणम्[2]। एषा मनोरथभूमि-प्रियतमा मे सकुसुमास्तरणं शिलापट्टमधिशयाना[3] सखीभ्याम् अन्वास्यते। भवतु। लताव्यवहितः श्रोष्यामि यावदासां विस्रब्धकथितानि। (तथा कुर्वन् स्थितः) [16]

(ततः प्रविशति यथा निर्दिष्टा शकुन्तला सख्यौ च) [17]

सख्यौ - (उपवीज्य सस्नेहम्) सहि सउन्तले, अवि सुहाअदि दे णलिणीपत्तवादो। (सखि शकुन्तले, अपि सुखायते ते नलिनीपत्रवातः।) [18]

शकुन्तला- (वेदनां नाटयित्वा) किं वा वीजअन्ति, मं सहीओ। (किं वा वीजयतः, मां सख्यः।) [19]

(उभे सविषादं मुखम् अन्योन्यं पश्यतः।) [20]

(शकुन्तला सखेदं निश्वसिति।) [21]

राजा - बलवदस्वस्था खल्वत्रभवती। (सवितर्कम्) किमत्रायमातपदोषः स्याद्, उत यथा मे मनसि वर्तते। (साभिलाषं निर्वर्ण्य) अथवा कृतं सन्देहेन। [22]

स्तनन्यस्तोशीरं प्रशिथिलमृणालैकवलयं
प्रियायाः साबाधं तदपि कमनीयं वपुरिदम्।
समस्तापः कामं मनसिजनिदाघप्रसरयो-
र्न तु ग्रीष्मस्यैवं सुभगमपराद्धं युवतिषु॥ 3 - 7॥ [23]

प्रियंवदा - (जनान्तिकम्) अणसूए, तस्स राएसिणो पढमदंसणादो आरभिअ पज्जुस्सुअमणा सउन्तला। ण खु से अण्णणिमित्तो आदङ्को भवे। (अनसूये, तस्य राजर्षेः प्रथमदर्शनादारभ्य पर्युत्सुकमनाः शकुन्तला। न खल्वस्याः अन्यनिमित्त आतङ्को भवेत्।) [24]

---

1. मै.-बं.-पाठयोरितः परं "संमीलन्ति न तावद् बन्धनकोशाः०" इति। "नादत्ते प्रियमण्डनापि०" इति वक्ष्यमाणेन वचनेन सहास्य श्लोकस्य विरोधादयं श्लोकः प्रक्षिप्तः सिध्यति। (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या- 10)
2. कृतिनिष्ठान्तरिकप्रमाणेन समर्थितः। यथा- प्रवेशक एवोक्तम् "तस्याः दाहे निर्वापणाये" ति। तथा चाग्रे नायको भणिष्यति- "स्मर एव तापहेतुर्निर्वापयिता स एव मे जातः" (3-10) इति।
3. रंगभूमौ नायिकायाः शयनावस्था निरूप्यते, सा च "अङ्के निधाय चरणावुत पद्मताम्रौ०" (3-20) पर्यन्तं प्रवर्तते। दीर्घकालपर्यन्तं प्रवर्तनीया सेति कविसंकल्पिता दृश्य-योजना।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अनसूया- ममावि एरिसी आसङ्का। भोदु। पुच्छस्सं। सहि पुच्छिदव्वा सि किं पि। बलीओ खु अङ्गसंतावो। (ममापि ईदृश्याशङ्का। भवतु। प्रक्ष्यामि। सखि, प्रष्टव्यासि किमपि। बलीयान् खल्वङ्गसन्तापः[1]।) [25]

शकुन्तला- (पूर्वार्धेन शयनादुत्थाय) हला, भण जं वत्तुकामासि। (सखि, भण यद् वक्तुकामासि[2]।) [26]

अनसूया - हला सउन्तले, अनन्तरण्णा अम्हे मअणगदस्स वुत्तन्तस्स। तहावि जादिसी इदिहास- गदेसु मअणवुत्तन्तेसु कामअमाणस्स अवत्था सुणीअदि तादिसं च लक्खम्ह। ता कहेहि किं णिमित्तं दे अअं आआसो, विआरं खु परमत्थदो अआणिअ अणारम्भो पडीआरस्स।

(हला शकुन्तले, अनन्तरज्ञा वयं मदनगतस्य वृत्तान्तस्य। तथापि यादृशीतिहासगतेषु मदनवृत्तान्तेषु कामयमानस्यावस्था श्रूयते तादृशीञ्च लक्षावहे। तत्कथय, किं निमित्तं तेऽयम् आयासो, विकारं खलु परमार्थतोऽज्ञात्वाऽनारम्भः प्रतिकारस्य।) [27]

राजा - अनसूययाप्यनुगतो मदीयस्तर्कः। [28]

शकुन्तला - (आत्मगतम्) बलवं च मे अहिणिवेसो। ण अ सक्कणोमि सहसा णिवट्टिदुम्। (बलवान् च मेऽभिनिवेशः। न च शक्नोमि सहसा निवर्तितुम्।) [29]

प्रियंवदा - सहि, सुट्ठु एसा भणादि। किं णेदं अत्तणो उवद्दवं निगूहसि। अणुदिअसं च परिहीअसे अङ्गेहिं।

केवलं लावण्णमई च्छाआ तुमं ण मुञ्चदि। (सखि, सुष्ठ्वेषा भणति। किमेतमात्मन उपद्रवं निगूहसि। अनुदिवसं च परिहीयसेऽङ्गकैः। केवलं लावण्यमयीच्छाया त्वां न मुञ्चति।) [30]

राजा - अवितथमाह प्रियंवदा। तथा ह्यस्याः - [31]

क्षामक्षामकपोलमाननमुरः काठिन्यमुक्तस्तनं
मध्यं कान्ततरं प्रकामविनतावंसौ छविः पाण्डुरा।
शोच्या च प्रियदर्शना च मदनक्लिष्टेयमालक्ष्यते
पत्राणामिव शोषणेन मरुता स्पृष्टा लता माधवी॥3 - 8॥ [32]

शकुन्तला - कस्स वा अण्णस्स इदं कधइदव्वं। आआसइत्ति दाणिं वो भविस्सं। (कस्य वान्यस्येदं कथयितव्यम्। आयासयित्रीदानीं वो भविष्यामि।) [33]

उभे - अदो य्येव णो णिब्बन्धो। संविभत्तं खु दुःखं सज्झवेअणं होदि। (अत एव नो निर्बन्धः। संविभक्तं खलु दुःखं सह्यवेदनं भवति।) [34]

राजा -

पृष्टा जनेन समदुःखसुखेन बाला नेयं न वक्ष्यति मनोगतमाधिहेतुम्।
दृष्टो विवृत्य बहुशोऽप्यनया सहावम् अत्रोत्तरं श्रवणकातरतां गतोऽस्मि॥ 3 - 9॥ [35]

शकुन्तला - (सलज्जम्) जदो पहुदि सो तवोवणरक्खिदा राएसि मम दंसणपधं गदो,.....। (यतः प्रभृति स तपोवनरक्षिता राजर्षिः मम दर्शनपथं गतः .....।) [36]

(इत्यर्धोक्तेन लज्जां नाटयति) [37]

उभे- कधेदु पिअसही। (कथयतु प्रियसखी।) [38]

---

1. इतः परं राज्ञो मुखे "शशिकरविशदान्यस्यास्तथे" ति श्लोकः बंगीय-पाठे प्राप्यते।, (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-11)
2. अयम् पाठ्यांशो (उक्ति-क्रमांकाः 24-26) बंगीय-पाठात् गृहीतः। काश्मीर-मैथिल-पाठयोर्न विद्यते पाठ्यांशोऽयमिति। यद्यपि तत्र "शशिकरविशदानी" ति श्लोकस्तु प्रक्षिप्त इति पूर्वं कथितं, तदवधेयम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला- तदो आरभिअ तग्गदेण अहिलासेण एदावत्थ म्हि संवुत्ता। (तत आरभ्योद्गतेनाभिलाषेण एतदवस्थास्मि संवृत्ता।) [39]

उभे - दिट्ठिआ, दाणिं दे अणुरूअवराहिलासो। अहवा साअरं वज्जिअ कहिं वा महाणदीए पविसिदव्वं?। (दिष्ट्या, इदानीम् ते अनुरूपवराभिलाषः। अथवा सागरं वर्जयित्वा कुत्र वा महानद्या प्रवेष्टव्यम्।)[1] [40]

राजा - (सहर्षम्) श्रुतं श्रोतव्यम्। [41]

स्मर एव तापहेतुर्निर्वापयिता[2] स एव मे जातः।
दिवस इवाभ्रश्यामस्तपात्यये जीवलोकस्य।।3 - 10।। [42]

शकुन्तला - एवं जदि वो अहिमदं तत् तधा मन्तेधं मं जधा तस्स राएसिणो अणुअम्पणीआ होमि। अण्णधा मां सिञ्चध दाणिं उदएण। (एवं यदि वोऽभिमतं तत्तथा मन्त्रयेथां मां यथा तस्य राजर्षेरनुकम्पनीया भवामि। अन्यथा मां सिञ्चतमिदानीम् उदकेन।) [43]

राजा - विमर्शच्छेदि वचनम्[3]। [44]

प्रियंवदा - (जनान्तिकम्) अणसूए, दूरेगदमम्महा इअं अक्खमा कालहरणस्स। जस्सिं बद्धभावा सो वि ललामभूदो पोरवाणं। ता तुरिदव्वं येव से अहिलासं अणुवट्टिदुं। (अनसूये, दूरेगतमन्मथेयम् अक्षमा कालहरणस्य। यस्मिन् बद्धभावा सोऽपि ललामभूतः पौरवाणाम्, तत् त्वरितव्यम् एवास्या अभिलाषम् अनुवर्तितुम्।) [45]

अनसूया - (अपवार्य) जधा भणसि। (यथा भणसि[4]) [46]

अनसूया - को उण उवाओ भवे जेण सहीए अविलम्बिदं णिगूढं मणोरहं संपादेम्ह। (कः पुनरुपायो भवेद् येन सख्या अविलम्बितं निगूढं मनोरथं सम्पादयावः।) [47]

प्रियंवदा- णिगूढं पअदिदव्वं त्ति चिन्तणीअं भवे। सिग्घं त्ति ण दुक्करं। (निगूढं प्रयतितव्यम् इति चिन्तनीयं भवेद्। शीघ्रमिति न दुष्करम्।) [48]

अनसूया - कधं विअ। (कथमिव।) [49]

प्रियंवदा - सो राएसी इमाए सिणद्धदृट्ठि सूइदाहिलासो, इमाइं दिवसाइं पआअरकिसो विअ लक्खेअदि। (स राजर्षिरस्यां स्निग्धदृष्टिः सूचिताभिलाष, इमानि दिवसानि प्रजागरकृश इव लक्ष्यते।) [50]

राजा - सत्यमित्थंभूतोऽस्मि। तथा हि - [51]

इदमशिशिरैरन्तस्तापैर्विवर्णमणीकृतं
निशि निशि भुजन्यस्तापाङ्गप्रवृत्तिभिरश्रुभिः।
अनभिलुलितज्याघाताङ्कान्मुहुर्मणिबन्धनात्
कनकवलयं स्रस्तं स्रस्तं मया प्रतिसार्यते।। 3 - 11।। [52]

---

1. अयं पाठो (उक्ति-क्रमांकाः 38-41) मैथिल-पाठानुरोधेन द्विभागे विभज्य स्थापितः। कदाचित् तथैव पाठः मौलिकः स्यादित्यनुमीयते।
2. अयं "निर्वापयिते" ति शब्दोऽपि "लब्धं मया नेत्रनिर्वापणमि" त्यस्यैव पाठस्य समर्थको भवति।
3. काश्मीर-पाठ इतः परम् "एतावत् कामफलं, यत्लफलमन्यदि" ति।, मै.-पाठे "एतदवस्थापि मां सुखयती"- ति।, (एतावान् कामिनः इत्यारभ्य। शृ. प्र. 29-105, पृ. 1300 मालविकाग्निमित्रस्य च तृतीयांके पर्याप्तमेतावता कामिनामिति दृष्ट्वा का.मै.पाठयोः मौलिकत्वं स्यादपि॥)
4. का.-पाठ इतः परं नायक-नायिकयोः कृते 1. सागर-महानद्योः, 2. सहकारातिमुक्तलतयोरुपमानद्वयं प्रयुक्तं दृश्यते। एवञ्च, दुःषन्तेन प्रयुक्तमुपमानं (चित्राविशाखे शशाङ्कलेखामनुवर्तत इति) तच्च सर्वं प्रक्षिप्तमेव, यतो हि "अक्षमेयं कालहरणस्ये" ति निश्चयात् परं काव्यस्य / वाग्विलासस्य नैवावकाशः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रियंवदा - (विचिन्त्य) अणसूए, मअणलेहो दाणिं करीअदु। तं सुमणोगोविदं कदुअ देवसेसावदेसेण तस्स रण्णो हत्थे पाडइस्सं। (अनसूये, मदनलेख इदानीं क्रियताम्। तं सुमनोगोपितं कृत्वा देवशेषापदेशेन तस्य राज्ञो हस्ते पातयिष्यामि।) [53]

अनसूया - रोअदि मे सुउमारपओओ। किं वा सउन्तला भणादि। (रोचते मे सुकुमार-प्रयोगः। किं वा शकुन्तला भणति।) [54]

शकुन्तला -(सलज्जम्) णिओओ वि विकप्पीअदि। (नियोगोऽपि विकल्प्यते?।) [55]

प्रियंवदा - (शकुन्तलां प्रति) तेण हि उवण्णासपुरवं अत्तणो चिन्तेहि किंपि सुललिदं पदबन्धं। (तेन हि, उपन्यासपूर्वम् आत्मनश्चिन्तय किमपि सुललितं पदबन्धम्।) [56]

शकुन्तला -चिन्तइस्सं। अवधीरणाभीरुअं पुणो वेवदि मे हिअअं। (चिन्तयिष्यामि। अवधीरणाभीरुकं पुनर्वेपते मे हृदयम्।) [57]

राजा - (सहर्षम्)

अयं स ते तिष्ठति संगमोत्सुको विशङ्कसे भीरु यतोऽवधीरणाम्।
लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं श्रियो दुरापः कथमीप्सितो भवेत्[1]॥3 - 12॥ [58]

सख्यौ - अत्तगुणावमाणिणि। को दाणिं सारदिअं जोण्हं आदवत्तेण वारयिस्सदि। (आत्मगुणावमानिनि, क इदानीं शारदीयां ज्योत्स्नाम् आतपत्रेण वारयिष्यति।) [59]

राजा - (विलोकयन्) स्थाने खलु विस्मृतनिमेषेण चक्षुषा प्रियामवलोकयामि। [60]

उन्नमितैकभ्रूलतमाननमस्याः पदानि रचयन्त्याः।
कण्टकितेन प्रथयति मय्यनुरागं कपोलेन॥ 3 - 13॥ [61]

शकुन्तला- हला, चिन्तिदा मए गीदिया। असण्णिहिदाणि उण लेहसाहणाणि। (हले, चिन्तिता मया गीतिका। असन्निहितानि पुनर्लेखसाधनानि।) [62]

प्रियंवदा - णं इमस्सिं सुओदरसुउमारे णलिणीवत्ते पत्तच्छेदभत्तीए णहेहिं णिक्खित्तवण्णं करेहि। तदो सुणम्ह से अक्खराइं। (नन्वस्मिंश्शुकोदरसुकुमारे नलिनीपत्रे पत्रच्छेदभक्त्या नखैर्निक्षिप्तवर्णं कुरु। ततः शृणुमोऽस्याक्षराणि।) [63]

शकुन्तला- (तथा कृत्वा[2]) सुणेह दाव णं संगदत्था ण वेत्ति। (शृणुतं तावदेनां सङ्गतार्था न वेति।) [64]

उभे - अवहिदम्ह। (अवहिते स्वः।) [65]

शकुन्तला -(पठति)

तुज्झ ण आणे हिअअं मम उण मअणो[3] दिवा अ रत्तिं अ।
णिक्कीव तवेइ बलिअं तुह हुत्तमणोरहाइ अङ्गाइं॥ 3 - 14॥

(तव न जाने हृदयं मम पुनः मदनो दिवा च रात्रिञ्च।
निष्कृप, तपति बलीयस्तवाभिमुखमनोरथान्यङ्गानि)॥ 3 - 14॥ [66]

राजा - (सहर्षमुपगम्य)

---

1. मै.-बं.-पाठयोरितः परं "अयं स यस्मात् प्रणयावधीरणाम्०" इति।, (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या- 12)
2. शकुन्तला तूदरमाधारीकृत्य शयनावस्थायां मदनलेखं लिखतीत्यवधेयम्।
3. मैथिलपाठाद् गृहीतमिदं पाठान्तरम्। तच्च समीचीनम्, राज्ञ उक्तावपि मदनशब्दस्यैव संनिवेशाद्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

तपति तनुगात्रि मदनस्त्वामनिशं, मां पुनर्दहत्येव।
ग्लपयति यथा शशाङ्कं न तथा हि कुमुद्वतीं दिवसः॥ 3 -15॥ [67]

सख्यौ- (विलोक्य सहर्षमुत्थाय) सागदं जधा चिन्तिदफलस्स अवलम्बिणो मणोरहस्स। (स्वागतं यथा चिन्तितफलाय अवलम्बिने मनोरथाय। [68]

शकुन्तला- (आत्मगतं ससाध्वसं च) हिअअ, तधा उत्तम्मिअ दाणिं ण किंचि पडिवज्जसि।
(हृदय, तथोत्ताम्येदानीं न किञ्चित् प्रतिपद्यसे। (इत्युत्थातुमिच्छति) [69]

राजा- अलमायासेन। [70]

संस्पृष्टकुसुमशयनान्याशुर्विवर्णितमृणालवलयानि।
गुरुसंतापानि न ते गात्राण्युपचारमर्हन्ति॥ 3 - 16॥ [71]

अनसूया- इदो सिलादलेक्कदेसं अणुगेण्हदु वअस्सो। (इतः शिलातलैकदेशमनुगृह्णातु वयस्यः।) [72]

राजा - (उपविश्य) प्रियंवदे, कच्चित् सखीं वो नातिबाधते शरीरसंतापः। [73]

प्रियंवदा - (सख्या सहोपविष्टा) लब्धोसधो संपदं उवसमं गमिस्सदि कालेण। (लब्धौषधस्साम्प्रतम् उपशमं गमिष्यति कालेन[1]।) [74]

प्रियंवदा - महाभाअ, दोण्हं पि वो अण्णोण्णाणुराओ पच्चक्खो। सहीसिणेहो उण मं पुणरुत्तवादिणीं करेदि। (महाभाग, द्वयोरपि वाम् अन्योऽन्यानुरागः प्रत्यक्षः। सखीस्नेहः पुनर्माम् पुनरुक्तवादिनीं करोति।) [75]

राजा - उच्यताम्, विवक्षितं ह्यनुक्तम् अनुतापं जनयति। [76]

प्रियंवदा - तेण हि सुणादु महाराओ। (तेन हि शृणोतु महाराजः।) [77]

राजा - अवहितोऽस्मि। [78]

प्रियंवदा - इअं णो सही तुमं य्येव उद्देसिअ भअवदा मअणेण इमं ईदिसं अवत्थन्तरं णीदा। ता अरिहसि अब्भुवत्तीए से जीविदं अवलम्बिदुं। (इयं नस्सखी त्वामेवोद्दिश्य भगवता मदनेनेदमीदृशम् अवस्थान्तरं नीता। तदर्हस्यभ्युपपत्त्याऽस्या जीवितम् अवलम्बितुम्।) [79]

राजा - भद्रे, साधारण एषः प्रणयः। सर्वथा अनुगृहीतोऽस्मि[2]। [80]

शकुन्तला- (सस्मितम्) हला, अलं वो अन्तेउर-विहार[3]-पय्युस्सुएण राएसिणा उवरुद्धेण। (हला, अलं वोऽन्तःपुर-विहार-पर्युत्सुकेन राजर्षिणोपरोधेन।) [81]

राजा- सुन्दरि,

इदमनन्यपरायणमन्यथा हृदयसन्निहिता हृदयं मम।
यदि समर्थयसे मदिरेक्षणे मदनबाणहतोऽपि हतः पुनः॥ 3 - 17॥ [82]

अनसूया - वअस्स, बहुवल्लभा राआणो सुणीअन्ति। जधा णो सही बन्धुअणे असोअणीआ होदि तधा णिव्वाहेहि। (वयस्य, बहुवल्लभा राजानः श्रूयन्ते। यथा नः सखी बन्धुजनेऽशोचनीया भवति, तथा निर्वाहय।) [83]

---

1. इतः परं "मेघनादाहतां मयूरीमिव०" इत्युपमानं प्रयुज्य, शकुन्तला सलज्जा तिष्ठतीति पाठान्तरं मैथिलादि-पाठेषु, किन्तु तत्तु प्रक्षिप्तमेव। यतो हि, शकुन्तलया तु शयितव्यमेवेति कविसंकल्पिता योजना।
2. मै.-पाठाद् गृहीतेयमुक्तिः। यया चोक्त्या दम्पत्योर्मध्ये समान उपाकार्योपकारकभावो भवितुमर्हतीति ध्वन्यते। (का.-पाठे-"ऽनुगृहीतोऽस्मी" त्येव। अत्र तु दुष्यन्तः स्वयमुपकृत इति कथयन्नपि केवलम् उपकारक-व्यक्तिरूपेणैव प्रदर्श्यते।)
3. का.-पाठस्यास्य समर्थनमुत्तरवर्तिन्यामुक्त्यां (बहुवल्लभेति शब्देन) प्राप्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- भद्रे,

परिग्रहबहुत्वेऽपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य मे।
धर्मेणोल्लिखिता[1] लक्ष्मीस्सखी च युवयोरियम्।। 3 - 18।। [84]

उभे - अणुगिहिद म्ह। (अनुगृहीते स्वः[2]।) [85]

अनसूया - (बहिर्विलोक्य) पिअंवदे, एसो मिअपोदओ इदो तदो दिण्णदिट्ठी उस्सुओ णूणं मादरं परिब्भट्टं अण्णेसदि। ता संजोजइस्सं दाव णम्। (इत्युत्तिष्ठति) (प्रियंवदे, एष मृगपोतक इतस्ततो दत्तदृष्टिरुत्सुको नूनं मातरं परिभ्रष्टाम् अन्वेषति। तत्संयोजयिष्यामि तावदेनम्।) [86]

प्रियंवदा - णं चवलओ खु एसो। एआइणी णिओजेदुं ण पारेसि। ता अहं पि दे अणुवत्तिदुं करयिस्सं।
(ननु चपलकः खल्वेषः। एकाकिनी नियोजयितुं न पारयसि। तदहमपि ते अनुवर्तितुं करिष्यामि।) [87]

(इत्युभे प्रस्थिते) [88]

शकुन्तला - हला अण्णदरा वो गच्छदु, अण्णधा असरण म्हि। (हले, अन्यतरा वो गच्छतु। अन्यथाऽशरणाऽस्मि।) [89]

उभे- (सस्मितम्) जो पुहवीए सरणं, सो तुह समीवे। (यः पृथिव्याः शरणं स तव समीपे।) [90]

(इति निष्क्रान्ते) [91]

शकुन्तला - कधं गदं य्येव। (कथं गतम् एव।) [92]

राजा- अलमावेगेन। नन्वयमाराधयिता जनस्तव सखीभूमौ वर्तते। तदुच्यताम् - [93]

किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातं
संचालयामि नलिनीदलतालवृन्तैः।
अङ्के निधाय चरणावुत पद्मताम्रौ[3]
संवाहयामि करभोरु यथासुखं ते।। 3 - 19।। [94]

शकुन्तला - ण माणणीए जणे अत्ताणअं अवराधइस्सं। (न माननीये जने आत्मानम् अपराधयिष्यामि।) [95]

(अवस्थासदृशमुत्थाय प्रस्थिता) [96]

राजा- (अवष्टभ्य) सुन्दरि, अपरिनिर्वाणोऽयं दिवसः। इयं च तेऽवस्था। [97]

उत्सृज्य कुसुमशयनं कदलीदलकल्पितस्तनावरणम्।
कथमातपे गमिष्यसि परिपाण्डुरपेलवैरङ्गैः[4]।। 3 - 20।। [98]

शकुन्तला - (कृतककोपा) पोरव, रक्ख विणअं। इदो इदो इसिओ सञ्चरन्ति। (पौरव, रक्ष विनयम्। इत इत ऋषयः सञ्चरन्ति[5]।) [99]

---

1. का.-पाठस्यास्य समर्थनं षष्ठांके धनमित्रस्य प्रसंगे दृश्यते। तस्यानपत्यस्य धनं नापहरति दुःषन्तः।
2. का.-मै.-बं.-पाठेष्वितः परम् "अपराधमिमं ततः सहिष्ये०" इति। (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या- 13)
3. दाक्षि.-देव.पाठयोः पदक्रमं परिवर्त्य, "अङ्के निधाय (त्वां, हे) करभोरु! यथासुखं ते" इति पठ्यते। अत्र उपविष्टो दुःषन्तः समीपे सलज्जं तिष्ठन्तीं शकुन्तलां प्रथममङ्के स्थापयित्वा, (ततः) पादसंवादनस्येच्छां प्रकटीकरोति! एतादृशी दृश्या-योजना विसंगता, त्याज्या च॥
4. का.-मै.-बं.-पाठेष्वितः परम् "अप्यौत्सुक्ये महति न वरप्रार्थनासु प्रतार्याः" इति। (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-14)
5. मै.-बं.-दाक्षि.-देव.-पाठेष्वितः परं "गान्धर्वेण विवाहेन बह्वयो हि मुनिकन्यकाः०" इति।, (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या- 15), केवलं का.-पाठे तु नास्त्येतादृशः श्लोकः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा - (दिशोऽवलोक्य) कथं प्रकाशम् अस्मि निर्गतः। [100]

(ससंभ्रमम्, शकुन्तलां मुक्त्वा तैरेव पदैर्निवर्तते।) [101]

शकुन्तला -(स्तोकमुपगम्य साङ्गभङ्गम्) पोरव, अणिच्छापूरओ वि दंसणमेत्तसुहदो ण ते अअं जणो विसुमरिदव्वो। (पौरव, अनिच्छापूरकोऽपि दर्शनमात्रसुखदो न तेऽयं जनो विस्मर्तव्यः) [102]

राजा- सुन्दरि, [103]

त्वं दूरमपि गच्छन्ती हृदयं न जहासि मे।
दिनावसानच्छायेव[1] पुरोमूलं वनस्पतेः[2]॥ 3 - 21॥ [104]

शकुन्तला -(स्तोकमिव गत्वा) हद्धी, ण मे चरणा पुरोमुहा पहवन्ति। इमेहिं कुरवएहिं ववहिदा पच्छादो लदामण्डवअस्स पेक्खिस्सं दाव से भावानुबन्धं। (तथा करोति) (हा धिक्, न मे चरणौ पुरोमुखौ प्रभवतः। एतैः कुरबकैर्व्यवहिता पश्चाल्लतामण्डपकस्य प्रेक्षिष्ये तावद् अस्य भावानुबन्धम्।) [105]

राजा- प्रिये, माम् एवम् अनुरागैकरसं समुत्सृज्य प्रस्थितैवासि निरपेक्षं गन्तुम्[3]। [106]

अनिर्दयोपभोग्यस्य रूपस्य मृदुनस्तथा।
दारुणं खलु ते चेतः शिरीषस्येव बन्धनम्[4]॥ 3 - 22॥ [107]

शकुन्तला -इमं सुणिअ ण मे अत्थि विहवो गन्तुम्। (इमं श्रुत्वा न मेऽस्ति विभवो गन्तुम्।) [108]

राजा - किमिहाहं सम्प्रति प्रियाशून्ये करोमि। गमिष्यामि। (प्रस्थितः। भूमिं विलोक्य) हन्त, व्याहतं मे गमनम्। [109]

मणिबन्धविगलितमिदं संक्रान्तोशीरपरिमलं तस्याः।
हृदयस्य निगडमिव मे मृणालवलयं स्थितं पुरतः[6]॥ 3 - 23॥ [110]

(सबहुमानमादत्ते) [111]

शकुन्तला -(हस्तमवलोक्य) अम्मो, दुब्बलसिधिलदाए पब्भट्टं पि एदं मुणालवलअं मए ण विण्णादं।

(अहो, दुर्बलशिथिलतया प्रभ्रष्टमपि एतन्मृणालवलयं मया न विज्ञातम्।) [112]

राजा - (वलयाभरणमुरसि विन्यस्य) अहो सुखस्पर्शः। [113]

अनेन लीलाभरणेन ते प्रिये विहाय कान्तं भुजमत्र तिष्ठता।
जनः समाश्वासित एष दुःखभाग् अचेतनेनापि सता, न तु त्वया॥ 3 - 24॥ [114]

शकुन्तला -अदो अवरं असमत्थ म्हि विलम्बिदुं। भोदु। एदेण य्येव ववदेसेण से अत्ताणअं दंसयिस्सं।

(अतोऽपरमसमर्थास्मि विलम्बितुम्। भवतु। एतेनैव व्यपदेशेनास्यात्मानं दर्शयिष्यामि।) [115]

(इत्युपगच्छति) [116]

राजा - (दृष्ट्वा सहर्षम्) अये, जीवितेश्वरी[6] मे प्राप्ता।

---

1. मध्याह्नकालात्समारब्धोऽयं मिलनप्रसंगः सायंकालपर्यन्तं प्रचलतीत्यवधेयम्।
2. शृङ्गारप्रकाशे (28-155, पृ. 1270) समुद्धृतोऽयं श्लोकः।
3. असमञ्जसपदक्रमेऽस्मिन् दुःषन्तस्य मनोविचलनं द्योत्यते।
4. शृङ्गारप्रकाशे (33-68, पृ. 1528) समुद्धृतोऽयं श्लोकः। (श्रीरेवाप्रसादैर्द्विवेदिभिर्न समाकलितः कालिदासीय-पद्यत्वेन)
5. गणरत्नमहोदधौ (2-70, पृ. 110) समुद्धृतोऽयं श्लोकः।
6. अत्र नायकेन सा जीवितेश्वरीति शब्देन निरूप्यते, तदवधेयम्। (अस्मादेव च संबोधनात्तु षष्ठाङ्कस्य चतुर्थे श्लोके निर्दिष्टस्य गोत्रस्खलनस्य निराधारत्वं न प्रतीयते।)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

परिदेवितानन्तरं प्रसादेनोपकर्तव्योऽस्मि खलु दैवस्य। [117]

पिपासाक्षामकण्ठेन याचितं चाल्पयाचिना।
नवमेघोज्झिता चास्य धारा निपतिता मुखे॥ 3 - 25॥ [118]

शकुन्तला -(राज्ञः प्रमुखे स्थिता) अज्ज, अद्धपहे सुमरिअ एदस्स हत्थब्भंसिणो मुणालवलअस्स किदे सण्णिअत्त म्हि। आचक्खिअं विअ मे हिअएण तए गिहीदं त्ति। ता क्खिव इदं, मा मुणिअणे अत्ताणअं मं च सुअइस्ससि। (अङ्ग, अर्धपथे स्मृत्वैतस्य हस्तभ्रंशिनो मृणालवलयस्य कृते सन्निवृत्तास्मि। आख्यातमिव मे हृदयेन त्वया गृहीतमिति। तत् क्षिपेदम्। मा मुनिजन आत्मानं मां च सूचयिष्यसि।) [119]

राजा- एकेनाभिसन्धिना प्रत्यर्पयेयम्, नान्यथा। [120]

शकुन्तला- केण। (केन।) [121]

राजा- यदीदमहमेव यथास्थानं निवेशये। [122]

शकुन्तला- एवं करेहि। (एवं कुरु।), (इत्युपसर्पति।) [123][1]

राजा- इमं शिलापट्टमेव संश्रयावः। [124]

(उभौ परिक्रम्योपविष्टौ) [125]

राजा - (शकुन्तलाया हस्तमादाय, आत्मगतम्) [126]

अहो स्पर्शः[2]। [127]

शकुन्तला- (हर्षरोमाञ्चं रूपयति) [128]

तुवरअदु अय्यउत्तो। (त्वरयत्वार्यपुत्रः।) [129]

राजा- सुन्दरि[3], नातिश्लिष्टः सन्धिरस्य मृणालवलयस्य। यदि तेऽभिप्राय एतद् अन्यथा घटयिष्यामि। [130]

शकुन्तला- (विहस्य) कालक्खेवकुसलो, जं दे रोअदि। (कालक्षेपकुशलः, यत् ते रोचते।) [131]

राजा- (सव्याजं विलम्बितम् अवमुच्यावलम्ब्य च) सुन्दरि, दृश्यताम् इदम् - [132]

अयं हि ते श्यामलतामनोहरो विशेषशोभार्थमिवोज्झिताम्बरः।
मृणालरूपेण नवो निशाकरः करं समेत्योभयकोटिराश्रितः॥ 3 - 26॥ [133]

शकुन्तला- ण दाव णं पेक्खामि। पवणकम्पिणा कण्णुप्पलरेणुणा कलुसीकिदा मे दिट्ठि। (न तावद् एनं प्रेक्षे। पवनकम्पिना कर्णोत्पलरेणुना कलुषीकृता मे दृष्टिः।) [134]

राजा- (सस्मितम्) यदि मन्यसे तदाहमेनां वदनमारुतेन विशदां करिष्ये[4]। [135]

शकुन्तला- अणुकम्पिदा भवेअं। ण उवणदे विस्ससामि॥ (अनुकम्पिता भवेयम्। (किन्तु) नोपनते विश्वसिमि।) [136]

राजा- मा मैवम्। नवो हि परिजनः सेव्यानामादेशात्परं न वर्तते। [137]

शकुन्तला- एसो य्येव दे अच्चुवआरो अविसम्भजणओ। (एष एव तेऽत्युपचारोऽविश्रम्भजनकः।) [138]

---

1. [123] उक्तिरियं रंगसूचना च मैथिल-पाठाद् गृहीते।
2. इतः परं "हरकोपाग्निदग्धस्य०" इति श्लोकात्मिका स्वगतोक्तिः, अतः सा प्रक्षिप्ता स्यात्। (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-16)।
3. इतः पूर्वं दुःषन्तस्य स्वगतोक्ति "रिदानीमस्मि विश्वस्तो भर्तुराभाषणेने" ति, सा रंगकर्मिभिः प्रक्षिप्ता स्यात्।
4. का.-मै.-बं.-पाठेषु दृश्यमानस्यास्य कलुषितनेत्रसंमार्जनस्य प्रसंगस्य षष्ठांके "कार्या सैकतलीन .... कण्डूयमानां मृगीम्०" इति श्लोकेन सह सम्बन्धो वर्तते, सो ध्यानार्हः। अनेन च प्रसंगस्यास्य मौलिकत्वं सिध्यति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा - (आत्मगतम्) नाहमेवं रमणीयम् आत्मनस्सेवाकालं शिथिलयिष्यामि। [139]

(मुखम् उन्नमयितुं प्रवृत्तः। शकुन्तला अकामप्रतिषेधं रूपयन्ती विहरति।) [140]

राजा- अये पर्यश्रुतां ते गतं चक्षुः। अलमस्मान् प्रत्यविनयशङ्कया। उन्नीयतामाननम्। [141]

(शकुन्तला किंचिद् दृष्ट्वा स्थिता[1]) [142]

शकुन्तला -पडिण्णादमन्थरो विअ अय्यउत्तो संवुत्तो। (प्रतिज्ञातमन्थर इवार्यपुत्रस्संवृत्तः।) [143]

राजा- सुन्दरि, कर्णोत्पलसन्निकर्षाद् ईक्षणसादृश्येन मूढोऽस्मि। [144]

(मुखमारुतेन नेत्रं सिञ्चति।) [145]

शकुन्तला -भोदु। पकिदित्थ म्हि संवुत्ता। लज्जामि उण अणुवआरिणी पिअआरिणो अय्यउत्तस्स।

(भवतु, प्रकृतिस्थाऽस्मि संवृत्ता। लज्जे पुनरुनुपकारिणी प्रियकारिण आर्यपुत्रस्य।) [146]

राजा - किमन्यत्। [147]

इदमप्युपकृतमबले सुरभि मुखं ते मया यदाघ्रातम्।

(सस्मितम्) [148]

न तु कमलस्य मधुकरस्सन्तुष्यति गन्धमात्रेण?[2]॥ 3 - 27॥ [149]

शकुन्तला -असंतोसे उण किं करयिस्ससि। (असंतोषे पुनः किं करिष्यसि।) [150]

राजा- इदम्। (इति व्यवसितः) [151]

(नेपथ्ये) [152]

अइ चक्कवाअवहु, आमन्तेहि सहअरं। उवत्थिदा रअणी[3]।

(अयि चक्रवाकवधु, आमन्त्रयस्व सहचरम्। उपस्थिता रजनी।) [153]

शकुन्तला- (कर्णं दत्त्वा ससंभ्रमम्) पोरव, एसा मम सरीरवुत्तान्तोवलम्भाअ तादस्स धम्म-कणिअसी उवत्थिदा, ता विडवान्तरिदो होहि। (पौरव, एषा मम शरीरवृत्तान्तोपालम्भाय तातस्य धर्मकनीयस्युपस्थिता। तद् विटपान्तरितो भव।) [154]

राजा- (तथा करोति।) [155]

(ततः प्रविशति पात्रहस्ता गौतमी) [156]

गौतमी - (उपसृत्य) अच्चाहिदं। इदो देवदासहाआ चिट्ठसि। (अत्याहितम्, इत देवतासहाया तिष्ठसि।) [157]

शकुन्तला -इदाणिं य्येव मालिणिं अवदीण्णाओ पिअंवदामिस्साओ। (इदानीमेव मालिनीम् अवतीर्णाः प्रियंवदामिश्राः।) [158]

गौतमी - (दर्भोदकेन शकुन्तलामभ्युक्ष्य) वत्से, निराबाधा त्वं चिरं जीव। अवि लहुसंतावाइं दे अङ्गाइं। (वत्से, निराबाधा त्वं चिरं जीव। अपि लघुकसन्तापानि तेऽङ्गानि।) [159]

---

1. इतः परम् "चारुणा स्फुरितेनायमपरिक्षतकोमल०" इति श्लोकः त्रिषु बृहत्पाठेषूपलभ्यते। किन्त्वन्तिमे पादे "प्रियाधरः ममानुज्ञां करोति", यद्वा "प्रियाधरः ममानुज्ञां ददाती" ति व्याकरणदृष्ट्या सुसंगतं न प्रतिभाति। अतः प्रक्षिप्तो भवेत्। (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या- 17)
2. का. पाठेषु दुःषन्तेन काक्वा भणितं प्रश्नं श्रुत्वा, शकुन्तलैव दुःषन्तं रतये प्रेरयति।
दाक्षि.-देव.-पाठयोरस्य श्लोकस्य स्थाने "अपरिक्षतकोमलस्य यावत्०" इत्यपरः श्लोकः स्थाप्यते। (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-18क)
3. का.-पाठे "आर्या गौतमी" त्येव।, किन्तु नाटकेऽस्मिन् शकुन्तलायाः कृते चक्रवाकादीनां पक्षिणां नैकानि प्रतीकानि प्रयुक्तानि प्राप्यन्ते। अत उक्तिरियं मैथिल-पाठात् स्वीक्रियते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला –अत्थि विसेसो। (अस्ति विशेषः।) [160]

गौतमी– वच्छे, परिणदो दिअसो। ता एहि। उडअं य्येव गच्छम्ह। (वत्से, परिणतो दिवसः। तदेहि। उटजमेव गच्छामः।) [161]

शकुन्तला –(अपवार्य) हिअअ, मणोरहदुल्लहं जणं पाविअ कालहरणं करेसि। अणुसअ विघट्टिदस्स कधं दे सम्पदं। (पदानि गत्वा प्रतिनिवृत्य, प्रकाशम्) लदागहअ, आमन्तए तुमं पुणो वि परिभोआअ। (इति निष्क्रान्ता) (हृदय, मनोरथदुर्लभं जनं प्राप्य कालहरणं करोषि। अनुशयविघट्टितस्य कथं ते साम्प्रतम्। लतागृहक, आमन्त्रये त्वां पुनरपि परिभोगाय।) [162]

(इति निष्क्रान्ते) [163]

राजा– (पूर्वस्थानमेत्य सनिःश्वासम्) अहो विघ्नवत्यः प्रार्थितसिद्धयः। मया हि, [164]

मुहुरङ्गुलिसंवृत्ताधरोष्ठं प्रतिषेधाक्षरविक्लवाभिधानम्।
मुखमंसविवर्ति पक्ष्मलाक्ष्याः कथमप्युन्नमितं, न चुम्बितं तु[1]॥ 3 – 28॥ [165]

क्व नु खलु साम्प्रतं गच्छामि। अथवा इहैव तावत् प्रियापरिभुक्तेऽतिमुक्तकलतावलये स्थास्यामि। [166]

(सर्वतो विलोक्य) [167]

तस्याः पुष्पमयी शरीरलुलिता शय्या शिलायामियं
कान्तो मन्मथलेख एष नलिनीपत्रे नखैरर्पितः।
हस्ताद्भ्रष्टमिदं बिसाभरण[2] **मित्यासाद्य ह्रीनेक्षणान्**
निर्गन्तुं सहसा न वेतसगृहादीशोऽस्मि शून्यादपि[3]॥ 3 – 29॥ [168]

(नेपथ्ये)

राजन् .. राजन्...। [169]

सायन्तने सवनकर्मणि संप्रवृत्ते
वेदीं हुताशनवतीं परितः प्रयस्ताम्।
छायाश्चरन्ति बहुधा भयमादधानाः
सन्ध्याभ्रकूटकपिशाः पिशिताशनानाम्॥ 3 – 30॥ [170]

राजा – (ससम्भ्रमम्) भो भोस्तपस्विनः, मा भैष्ट। अयमहमागतोऽस्मि। [171]

(इति निष्क्रान्तः) [172]

॥ इति तृतीयोऽङ्कः॥

---

1. आनन्दवर्धनेन ध्वन्यालोके (3-16) त्विति निपातस्य व्यंजकतामुदाहर्तुमुद्धृतोऽयं श्लोकः।, मंचनावसरे तु-निपातस्योच्चारणसमये चुम्बनाकृतिर्जायते द्वयोरोष्ठयोः। अतो "न चुम्बितं तदि" ति पाठभेदो न प्रासंगिकः।
2. अस्य बिसाभरणस्योल्लेख एव दुःषन्तेन शकुन्तलाहस्ते मृणालवलयस्य समारोपणं यत्कृतं, तस्य प्रसंगस्य / दृश्यस्य मौलिकतां व्यनक्ति। तस्य च प्रसंगस्य / दृश्यस्य प्रक्षिप्तत्वं निराकरोति।
3. का.-मै.-बं.-पाठेष्वितः परं "रहः प्रत्यासत्तिं यदि सुवदना यास्यति पुनः" इति। (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-19)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ अथ चतुर्थोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशतः कुसुमावचयं नाटयन्त्यौ तपस्विकन्यके) [1]

अनसूया - पिअंवदे, जदपि गन्धव्वेण विवाहविहिणा णिव्वुत्तकल्लाणा सउन्तला अणुरूवभत्तिभाइणी संवुत्ता तहावि ण णिवुत्तं मे हिअअं। (प्रियंवदे, यद्यपि गान्धर्वेण विवाहविधिना निर्वृत्तकल्याणा शकुन्तलानुरूपभर्तृभागिनी संवृत्ता, तथापि न निवृत्तं मे हृदयम्।) [2]

प्रियंवदा - कधं विअ। (कथमिव।) [3]

अनसूया- अज्ज सो राआ इट्ठिपरिसमत्तीए इसीहिं विसज्जिदो अत्तणो णअरं। पविसिअ अन्दउरे इदोगदं सुमरिस्सदि वा ण वेत्ति। (अद्य स राजेष्टिपरिसमाप्तावृषिभिर्विसर्जित, आत्मनो नगरं प्रति। प्रविश्याऽन्तःपुरम् इतो गतं स्मरिष्यति वा न वेति।) [4]

प्रियंवदा - इत्थ विसत्था होहि। ण तादिसा आकिदिविसेसा गुणविरोहिणो होन्ति। इत्थिअं उण चिन्तणिज्जं। तादो दाणिं इमं वुत्तान्तं सुणिअ ण जाणे किं पडिवज्जिस्सदित्ति। (अत्र विश्वस्ता भव। न तादृशा आकृतिविशेषा गुणविरोधिनो भवन्ति। एतावत्पुनश्चिन्तनीयम्। तात इदानीम् इमं वृत्तान्तं श्रुत्वा न जाने किं प्रतिपत्स्यत इति।) [5]

अनसूया - सहि, जधा मं पुच्छसि तधा तादस्स अणुमदं पिअं च। (सखि, यथा मां पृच्छसि तथा तातस्यानुमतं प्रियञ्च।) [6]

प्रियंवदा - कधं विअ अणुमदं पिअं च। (कथमिवानुमतं प्रियं च।) [7]

अनसूया - किम् अण्णं। गुणवदे कण्णआ पडिवादइदव्वेत्ति अअं दाव पढमो से संकप्पो। तं जदि देव्वं सम्पादेदि णणु अप्पआसेण कदत्थो गुरुअणो। (किमन्यत्। गुणवते कन्यका प्रतिपादयितव्येत्ययं तावत्प्रथमोऽस्य संकल्पः। तद्यदि दैवं सम्पादयति नन्वप्रयासेन। कृतार्थो गुरुजनः।) [8]

प्रियंवदा - एवं णेदं। (पुष्पभाजनमवलोक्य) सहि, अवचिदाइं खु बलिकम्मपय्यत्ताइं कुसुमाइं।
(एवमेतत्। सखि, अवचितानि खलु बलिकर्मपर्याप्तानि कुसुमानि।) [9]

अनसूया - सहि, सउन्तलाए वि सोहग्गदेवदा अच्चणीआ। (सखि, शकुन्तलयापि सौभाग्यदेवताऽर्चनीया।) [10]

प्रियंवदा - जुज्जदि। (युज्यते।) (तदेव कर्म नाटयतः) [11]

(नेपथ्ये)

अयम् अहं भोः ....। [12]

अनसूया - (श्रुत्वा) अदिधिणा विअ णिवेदिदं। (अतिथिनेव निवेदितम्।) [13]

प्रियंवदा - सहि, णं उडजसण्णिहिदा सउन्तला। आं, अज्ज उण हिअएण असण्णिहिदा। (सखि, नन्वुटजसंनिहिता शकुन्तला। आम् अद्य पुनर् हृदयेनासंनिहिता।) [14]

अनसूया - (सत्वरम्) तेण हि होन्दु (भोदु)। इत्तिआइं कुसुमाइं। (प्रस्थिता) (तेन हि भवतु, एतावन्ति कुसुमानि।) [15]

(नेपथ्ये)

आः, अतिथिपरिभाविनि...., [16]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

विचिन्तयन्ती यम् अनन्यमानसा यतोऽतिथिं[1] वेत्सि न मामुपस्थितम्।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन् कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव॥ (4-1)॥ [17]

उभे- (श्रुत्वा विषण्णे) हद्धि य्येव संवुत्तं। कस्सिं वि पूआरहे अवरद्धा सुण्णहिअआ सही।
(हा धिग् एव संवृत्तम्, कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शून्यहृदया सखी।) [18]

अनसूया - (विलोक्य) ण खु, ण खु जस्सिं तस्सिं। सुलहकोओ खु एसो दुव्वासा महेसि। हुदासो विअ तुरिदपादुद्धाराए गदीए गच्छिदुं पउत्तो। (न खलु न खलु यस्मिन् तस्मिन्, सुलभकोपः खल्वेष दुर्वासा महर्षिः। हुताश इव त्वरितपादोद्धारया गत्या गन्तुं प्रवृत्तः।) [19]

प्रियंवदा - को अण्णो हुदवहादो दहिदुं पहविस्सदि। अणसूये, गच्छ पादेसु पडिअ पसाएहि णं। जाव अहं से अग्घादिअं उपकप्पेमि। (कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभविष्यति। अनसूये, गच्छ[2] पादेषु पतित्वा प्रसादयैनम्। यावद् अहम् अस्य अर्घादिकम् उपकल्पयामि।) (अनसूया निष्क्रान्ता) [20]

प्रियंवदा - (पादान्तरे स्खलितं निरूप्य) अम्मो, आवेगक्खलिदाए पब्भट्ठं अग्गहत्थादो पुप्फभाअणं मे।
ता पुणोवि अवचिणिस्सं। (अहो आवेगस्खलितायाः प्रभ्रष्टमग्रहस्तात् पुष्पभाजनं मे। तत् पुनरप्यवचेष्यामि।) (तथा करोति) [21]

(प्रविश्य) **अनसूया** -सहि, सरीरबद्धो कोओ विअ कस्स सो अणुणअं गेण्हदि। किं च उण साणुक्कोसो कदो।
(सखि, शरीरबद्धः कोप इव कस्य सोऽनुनयं गृह्णाति। किं च पुनस्सानुक्रोशः कृतः।) [22]

प्रियंवदा - तस्सिं बहुअं एदं। ततः (तदो) कहेहि कधं विअ। (तस्मिन् बहुकं एतत्। ततः कथय कथमिव।) [23]

अनसूया - जदा णिवत्तिदुं ण इच्छदि। तदा विण्णाविदो मए भगवं, पढमभत्तिं अवेक्खिअ अज्ज अत्तपहावविण्णाद[सा]मत्थस्स दुहिदाजणस्स भअवदा अवराहो मरिसिदव्वो त्ति। (यदा निवर्तितुं नेच्छति तदा विज्ञापितो मया। भगवन्, प्रथमभक्तिम् अवेक्ष्याद्यात्मप्रभावविज्ञातसामर्थ्यस्य दुहितृजनस्य भगवताऽपराधो मर्षितव्य इति।) [24]

प्रियंवदा - तदो तदो। (ततः ततः।) [25]

अनसूया - तदो ण मे वअणं अण्णधा भविदुं अरिहदि। आहरणाहिण्णाणदंसणेण से सावो णिवट्टिस्सदिति मन्तअन्तो य्येव अन्तरिहिदो। (ततः न मे वचनं अन्यथा भवितुम् अर्हति। आभरणाभिज्ञानदर्शनेनास्याः शापो निवर्तिष्यत इति मन्त्रयन्नेवान्तर्हितः।) [26]

प्रियंवदा - सक्कं दाणिं अस्ससिदुं। अत्थि तेण राएसिणा सम्पत्थिदेण सणामधेआङ्किदं अङ्गुलीअं सुमरणिअं त्ति सउन्तलाए सअं य्येव हत्थे पिणद्धम्। तस्सिं च साहिणे अअं उवाओ भविस्सदि त्ति। (शक्यमिदानीमाश्वासितुम्। अस्ति तेन राजर्षिणा संप्रस्थितेन स्वनामधेयाङ्कितमङ्गुलीयं स्मरणीयमिति शकुन्तलायास्स्वयमेव हस्ते पिनद्धम्। तस्मिंश्च स्वाधीनेऽयमुपायो भविष्यतीति।) [27]

(परिक्रामतः) [28]

अनसूया - हला पिअंवदे, पेक्ख पेक्ख वामहत्थोवणिहिद वअणा आलिहिदा विअ सहि भट्टिगडाए चिन्ताए अत्ताणअं वि एसा ण विभावेदि, किं उण आगन्तुअं। (हले प्रियंवदे, प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व। वामहस्तोपनिहितवदनाऽलिखितेव सखी भर्तृगतया चिन्तयाऽत्मानम् अप्येषा न विभावयति, किं पुनरागन्तुकम्।) [29]

---

1. अत्र मै.-आदिपाठेषु "तपोनिधिमि" ति। अनेन दुर्वाससोऽहंकारोऽपि कथ्यते। तेन चातिथिपरिभावनस्य दोषेण सह किमप्यन्यत्कारणमपि संमिश्रीक्रियते शापप्राप्तौ। अतः काश्मीर-पाठ एवात्र ज्यायान् संग्राह्यश्च।
2. काश्मीर-पाठानुसारेण शापमोचनस्य याचनां कर्तुमनसूया गच्छति।, तत्र कालान्तरे परिवर्तनं जायते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्रियंवदा - हला अणसूए, दोण्हं येव अम्हेसु एसो साववुत्तन्तो चिट्ठदु। रक्खणीआ खु पकिदिपेलवा सही।
(हला अनसूये, द्वयोरेवावयोरेष शापवृत्तान्तस्तिष्ठतु[1]। रक्षणीया खलु प्रकृतिपेलवा सखी।) [30]

अनसूया - को दाणिं तावोदएण णवमालिअं सिञ्चदि। (क इदानीं तापोदकेन नवमालिकां सिञ्चति।) [31]

(इति निष्क्रान्ते।)

॥ प्रवेशकः[2]॥ [32]

॥ ततः प्रविशति सुप्तोत्थितः कण्वशिष्यः॥ [33]

शिष्यः - वेलोपलक्षणार्थमादिष्टोऽस्मि तत्रभवता प्रवासात्प्रतिनिवृत्तेनोपाध्यायकण्वेन। तत् प्रकाश्यं निर्गत्य तावद् अवलोकयामि किमवशिष्टं रजन्या इति। (परिक्रम्यावलोक्य च) हन्त प्रभातम्।

तथा हि - [34]

कर्कन्धूनाम् उपरि तुहिनं रञ्जयत्यग्रसन्ध्या
दार्भं मुञ्चत्युटजपटलं वीतनिद्रो मयूरः।
वेदिप्रान्तात् खुरविलिखिताद् उत्थितश्चैष सद्यः
पश्चाद् उच्चैर्भवति हरिणो गात्रम् आयच्छमानः॥ 4-2॥ [35]

अपि च[3] - [36]

पादन्यासं क्षितिधरगुरोर्मूर्ध्नि कृत्वा सुमेरोः
क्रान्तं येन क्षपिततमसा मध्यमं धाम विष्णोः।
सोऽयं सोमः पतति गगनाद् अल्पशेषैर्मयूखैस्
दूरारोहो भवति महतामप्यपभ्रंशनिष्ठः[4]॥ 4-3॥ [37]

॥ ततः प्रविशत्यपटीक्षेपेणानसूया॥ [38]

अनसूया - एवं णाम विसयपराम्मुहस्स वि एदं ण विदिदं जधा तेण रण्णा सउन्तलाए अणय्यदा आअरिदव्व त्ति। (एवं नाम विषयपराङ्मुखस्यापि एतद् न विदितं यथा तेन राज्ञा शकुन्तलाया अनार्यताऽचरितव्येति।) [39]

शिष्यः - यावद् उपस्थितां वेलां निवेदयामि। (इति निष्क्रान्तः) [40]

अनसूया - पडिबुद्धा वि किं करयिस्सं। ण मे उत्थिदाए चिन्तीदेसु पहादव्वावारकरणीएसु हत्था पादा वा पहवन्ति। सकामो दाणिं कामो होदु। जेण सिणद्धहिअआ सही असच्चसन्धे जणे पदं कारिदा।

(स्मृत्वा) अधवा ण तस्स राएसिणो अवराहो दुव्वासकोवो ईत्थ विप्पकरेदि। अण्णधा कधं तादिसो राएसि तादिसाइं वअणाइं मन्तिअ एत्तिअस्स वि कालस्स लेहमेत्तं वि ण विस्सज्ज इस्सदि। (विचिन्त्य) इदं अङ्गुलीअं से अहिण्णाणं विसज्जेम्ह। अह वा दुक्खसीले तवस्सिअणे को अब्भत्थिअदु। ण सहीगमणेण दोसो त्ति ववसिदुं दाणिं पारेम्ह। पवासणिव्वुत्तस्स तादकस्सवस्स दुस्सन्तपरिणीदां आवण्णसत्तां कोवि सउन्तलां णिवेदयिस्सदि। इत्थंगदे किं णु खु अम्हेहिं कादव्वम्। (प्रतिबुद्धाऽपि किं करिष्यामि। न म उत्थितायाश्चिन्तितेषु प्रभातव्यापारकरणीयेषु हस्तौ

---

1. काश्मीर-पाठानुसारेण शापवृत्तान्तस्य संगोपनस्य प्रस्तावः प्रियंवदया क्रियते।, उत्तरवर्तिनि काले परिवर्तनं क्रियते तत्र।
2. अर्थोपक्षेपकस्यास्य नामाभिधानं नाट्यशास्त्रानुसारि। बृहत्पाठपरम्परायामपि सर्वत्रेदमेव प्रचलति।
3. समुच्चयार्थकस्य "अपि चे" ति निपातद्वयस्य स्वारस्यमत्र सिध्यति। तद्यथा- शिष्यः प्रथमं सम्मुखे यद् वर्तते तन्निरूपयति। ततश्चोर्ध्व आकाशे यद् दृश्यते, तन्निरूपयति। अतश्चैतौ श्लोकौ मूलगामिनौ स्याताम्।
4. का.-मै.-पाठयोरितः परं "यात्येकतोऽस्तशिखरम्०", "अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वतीम्०" इति च श्लोकौ प्रक्षिप्तौ वर्तेते, पुनरुक्तिदोषग्रस्तत्वात्।, बं.-पाठे तयोश्च प्राथम्यं दीयते। (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्ये -20-21)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

पादौ वा प्रभवन्ति। सकाम इदानीं कामो भवतु। येन स्निग्धहृदया सखी असत्यसन्धे जने पदं कारिता। (स्मृत्वा) अथ वा, न तस्य राजर्षेरपराधो,दुर्वाससः कोपोऽत्र विप्रकरोति। अन्यथा कथं तादृशो राजर्षिस्तादृशानि वचनानि मन्त्रयित्वैतावतोऽपि कालस्य लेखमात्रमपि न विसर्जयति। (विचिन्त्य) इदमङ्गुलीयमस्याभिज्ञानं विसर्जयामः। अथवा, दुःखशीले तपस्विजने कोऽभ्यर्थताम्। न सखिगमनेन दोष इति व्यवसितुम् इदानीं पारयामः। प्रवासनिवृत्तस्य तातकण्वस्य दुःषन्तपरिणीताम् आपन्नसत्त्वां कोऽपि शकुन्तलां निवेदयिष्यति। इत्थंगते किं नु खल्वस्माभिः कर्तव्यम्।) [41]

।। ततः प्रविशति प्रियंवदा।। [42]

प्रियंवदा - अणसूये, सउन्तलाए पत्थाणकोदुआणि करेअन्तु। (अनसूये, शकुन्तलायाः प्रस्थानकौतुकानि क्रियन्ताम्।) [43]

अनसूया - सहि, कधं णेदं। (सखि, कथमेतत्।) [44]

प्रियंवदा - अणसूये, सुणिस। दाणिं सुहसयिदविबुद्धाए सउन्तलाए समीवं गदम्हिं, जाव तं लज्जावणदमुहिं परिसजिअ तादकण्णो अहिणन्ददि। दिट्ठिआ धूमोवरुद्धदिट्ठिणो विअ जणस्स पावक एव आहुदी पडिदा। सुसिस्सपडिपादिआ विअ विज्जा असोअणिज्जासि मे संवुत्ता। ता अज्ज य्येव इसिपरिगृहीदं तुमं भत्तुणो सआसं विसज्जेमि त्ति। (अनसूये, शृणु, इदानीं सुखशयितविबुद्धायाः शकुन्तलायास्समीपं गतास्मि, यावत् तां लज्जावनतमुखीम् परिष्वज्य तातकण्वोऽभिनन्दति। दिष्ट्या धूमोपरुद्धदृष्टेरपि जनस्य पावक एव आहुतिः पतिता। सुशिष्यप्रतिपादितेव विद्याऽशोचनीयासि मे संवृत्ता। तद् अद्यैवर्षिपरिगृहीतां[1] त्वां भर्तुस्सकाशं विसर्जयामीति।) [45]

अनसूया - अध केण आचक्किदो तादस्स अअं सउन्तलावुत्तान्तो। (अथ केन आख्यातस्तातस्यायं शकुन्तलावृत्तान्तः।) [46]

प्रियंवदा - तादस्स अग्गिसरणं पविट्ठस्स किल सरीरं विणा छन्दोवदीए वाआए। (तातस्याग्निशरणं प्रविष्टस्य किल शरीरं विना छन्दोवत्या वाचा।) [47]

अनसूया - (सविस्मयम्) कधं विअ। (कथमिव।) [48]

प्रियंवदा - सहि, सुणु। (सखि, शृणु।) (संस्कृतमाश्रित्य पठति) [49]

दुःषन्तेनाहितं वीर्यं दधानां भूतये भुवः।
अवेहि तनयां ब्रह्मन्, नग्निगर्भां शमीमिव।। 4-4।। [50]

अनसूया - (सहर्षं प्रियंवदामाश्लिष्य) सहि, पिअं मे। किं तु अज्ज य्येव सउन्तला णीअदि त्ति उक्कण्ठासाहारणं खु दाणिं परितोसं समुव्वहामि। (सखि, प्रियं मे। किन्तु अद्यैव शकुन्तला नीयत इत्युत्कण्ठासाधारणं खल्वीदानीं परितोषं समुद्वहामि।) [51]

प्रियंवदा - उक्कण्ठं विणोदयिस्सामो, सा दाणिं णिव्वुदा होदु। (उत्कण्ठां विनोदयिष्यामः। सेदानीं निर्वृत्ता भवतु।) [52]

अनसूया - तेण हि एदस्सिं चुदसाहावलम्बिदे णालिएर समुग्गए तण्णिमित्तं एव कालान्तर[क्ख]मा क्खित्ता मए सकेसरगुणा। ते तुमं हत्थसण्णिहिदे करेहि, जाव अहं से आमयरोहणं तित्थमित्तिअं दुव्वाकिसलआइं मङ्गलसमालहणत्थं विरएमि। (इति निष्क्रान्ता) [53]

(प्रियंवदा नाट्येन सुमनसो गृह्णाति।) [54]

(तेन हि, एतस्मिंश्चूतशाखावलम्बिते नारिकेलसमुद्गके तन्निमित्तम् एव कालान्तरक्षमा क्षिप्ता मया सकेसरगुणा (तथा) त्वं हस्तसन्निहिताम् कुरु। यावद् अहम् अस्या आमयरोधनां तीर्थमृत्तिकां दूर्वाकिसलयानि मङ्गलसमालम्भनार्थं विरचयामि।) (इति निष्क्रान्ता) [55]

1. दाक्षि.-देव.-पाठयोस्तु "राजर्षिपरिगृहीतामि" ति, किन्तु कथनमिदमप्रासंगिकम्, अतोऽग्राह्यः पाठभेदोऽयम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(नेपथ्ये)

गौतमि, आदिश्यन्ताम् शार्ङ्गरवमिश्राः शकुन्तलानयनाय सज्जीभवन्त्विति। [56]

प्रियंवदा - (आकर्ण्य) अणसूए, तुवर तुवर, एदे खु हत्थिणाउरगामिण इसिओ सद्दावीअन्ति। (अनसूये, त्वरस्व त्वरस्व। एते खलु हस्तिनापुरगामिना ऋषयः शब्दाय्यन्ते।) [57]

(प्रविश्य समालभनहस्ता) [58]

अनसूया - सहि पिअंवदे, एहि गच्छम्ह। (सखि प्रियंवदे, एहि गच्छावः।) [59]

(उभे परिक्रामतः) [60]

प्रियंवदा- (अवलोक्य) एसा सुज्जोदअ य्येव निमज्जिदा गोदमीसहिदा सउन्तला चिट्ठदि। ता उवसप्पम्ह णं। (एषा सूर्योदय एव निमज्जिता गौतमीसहिता शकुन्तला तिष्ठति। तर्हि उपसर्पाव एनाम्।) [61]

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टा[1] शकुन्तला गौतमी च) [62]

शकुन्तला- भअवदि पणमामि। (भगवति, प्रणमामि।) [63]

गौतमी- जाद, भत्तुणो बहुमाणसुहइत्तअं देवीसद्दं अधिगच्छ। (जाते, भर्तुः बहुमानसुखयितारं देवीशब्दम् अधिगच्छ।) [64]

सख्यौ - (उपगम्य) सहि, सुमज्जणं दे होदु। (सखि, सुमज्जनं ते भवतु।) [65]

शकुन्तला -(दृष्ट्वा सादरम्) साअदं पिअसहीणं। इदो णिसीदध। (स्वागतं प्रियसखीभ्याम्[2]। इतो निषीदतम्।) [66]

उभे - (उपविश्य) हला सउन्तले। उज्जुअगदा होहि। जाव दे मङ्गलसमालद्धं अङ्गं करीअदु।
(हला शकुन्तले, ऋजुकगता भव। यावत् ते मङ्गलसमालब्द्धं अङ्गं क्रियताम्।) [67]

शकुन्तला -उचितं, इदं पि बहुमणिदव्वं, दुल्लहं दाणिं मे सहीमण्डणं भविस्सदि। (रुदत्युत्तिष्ठति)
(उचितमिदमपि बहुमन्तव्यम्। दुर्लभम् इदानीं मे सखीमण्डनं भविष्यति।) [68]

उभे- सहि, ण दे इच्छिदव्वे मङ्गलकाले रोइदव्वं। (सखि, न त एष्टव्ये मङ्गलकाले रोदितव्यम्) [69]

(अश्रूणि प्रमृज्य नाट्येन प्रसाधयतः) [70]

प्रियंवदा - आहरणारहं रूपं। अस्समसुलहेहिं पसाहणेहिं विप्पआरीअदि। (आभरणार्हं रूपम्। आश्रमसुलभैः प्रसाधनैर्विप्रक्रियते।) [71]

।। ततः प्रविशत उपायनहस्तावृषिकुमारकौ।। [72]

ऋषिकुमारौ - इदमलङ्करणम्। तावदलङ्क्रियताम् अत्रभवती। (तथा विलोक्य विस्मिताः) [73]

गौतमी - वच्छ हारीद, कुदो एदं। (वत्स हारीत, कुत एतत्।) [74]

प्रथमः - तातकण्वप्रसादात्। [75]

---

1. का.-पाठेषु "यथानिर्दिष्टपरिवारा०" इति वर्तते। अन्याश्च तापस्योऽपि रंगभूमिं समागत्य विविधा आशिषो वितरन्ति, ततश्च ता रंगाद् बहिर्गच्छन्ति। सर्वन्तन्निराकृत्य पुनर्गठितः (उक्ति-क्रमांकाः-61तः 64 पर्यन्तः) पाठ्यांशः प्रस्तावितः। यतो हि- का.-दाक्षि.-देव. -पाठेषु नैकमप्याशीर्वचनं गौतमी भणति। (केवलं मै.-बं.-पाठयोराशीर्वचनं गौतमी ददाति।) अत्र, कथं विना सखिद्वयेन शकुन्तलया नद्यां निमज्जनमपि कृतमि-त्याश्चर्यं जनयति परम्परागतः पाठः। सख्यागमनात्पूर्वम् अन्याभिस्तापसीभिः शकुन्तलायै "भर्तुर्बहुमता भव", "वीरप्रसविनी भव", "महादेवीशब्दमधिगच्छे" त्यादय आशिषो वितीर्यन्ते- तदपि सूचयति यन्मूलपाठे तापसीनां प्रवेशविषये कश्चित् प्रक्षेपः स्यात्।
2. मालविकाग्निमित्रस्य "स्वागतं देव्यै" (अंक-1) इति प्रयोगाच्चतुर्थ्यैव संस्कृतच्छायानुवादः करणीयः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

गौतमी- किं माणसी सिद्धी। (किं मानसी सिद्धिः।) [76]

द्वितीयः- न खलु। श्रूयताम् - तत्रभवता वयमाज्ञापिताः। शकुन्तलाहेतोर्वनस्पतिभ्यः कुसुमान्याहरतेति। तत इदानीं, [77]

क्षौमं केनचिद् इन्दुपाण्डुतरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं,
निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुभगो लाक्षारसः केनचित्।
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैर् आपर्वमूलोत्थितै-
र्दत्तान्याभरणानि नः किसलयच्छायाप्रतिस्पर्धिभिः॥ 4-5॥ [78]

प्रियंवदा - (शकुन्तलां विलोक्य) हला, अब्भुदसम्पत्ति सूइदा। भट्टिणो गेहे अणुभविदव्वा दे राअलच्छी। (हले अद्भुतसम्पत्तिस्सूचिता। भर्तुर्गृहेऽनुभवितव्या ते राजलक्ष्मीः।) [79]

शकुन्तला -(लज्जां निरूपयति) सहि, कल्याणिणी दाणिं सि। कोडरसम्भवा विअ महुअरी पुक्खरमुहं अहिलससि[1]।) (सखि, कल्याणिनीदानीमसि। कोटरसम्भवेव मधुकरी पुष्करमुखम् अभिलषसि[2]।) [80]

ऋषिकुमारः-गौतम, एहि अभिषेकाद् अवतीर्णाय तातकण्वाय वनस्पतिसेवां निवेदयावः। [81]

द्वितीयः- एवं कुर्वः[3]। (इति निष्क्रान्तौ) [82]

प्रियंवदा - (मण्डयन्ती) अणुभूदभूसणो अअं जणो। चित्तकम्मपरिचएण दाणिं दे अङ्गेसु आहरणणिओअं करेदि। (अननुभूतभूषणोऽयं जनः। चित्रकर्मपरिचयेनेदानीं तेऽङ्गेषु आभरणनियोगं करोति।) [83]

शकुन्तला -(सस्मितम्) जाणे वो णिउणत्तणं। (जाने वो निपुणत्वम्।) [84]

(उभे नाट्येनाभरणम् आमुञ्चतः) [85]

॥ ततः प्रविशति स्नानोत्थितः कण्वः॥ [86]

कण्वः- (निश्श्वस्य)

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठस्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषं चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं न तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः॥ 4-6॥ [87]

(परिक्रामति) [88]

सख्यौ- हला सउन्तले, अवसिदमण्डनासि। परिधेहि संपदं इमं पवित्तं खोमणिम्मोअं। (हले, शकुन्तले, अवसितमण्डनासि। परिधेहि साम्प्रतम् इमं पवित्रं क्षौमनिर्मोकम्।) [89]

(शकुन्तला लतागृहान् निर्गत्य परिधाय, पुनः प्रविश्योपविष्टा। कण्व उपसर्पति।) [90]

गौतमी - एसो दे आनन्दवप्फपरिवाहिणा चक्खुणा परिस्सजन्तो विअ गुरू उवत्थिदो। ता आआरं से पडिवज्ज। (एष ते

---

1. अत्र का.-पाठानुसारिणी संवादमाला स्वीकर्तव्येति मतिः। क्षौमं केनचिदिति श्लोकानुसन्धाने समागता प्रियंवदाया उक्तिरियं प्रियंवदायाः सखित्वं परां कोटिं नयति। दाक्षि.-देव.-पाठयोः प्रियंवदायाः सद्भावनायाः परिरक्षा पाठपरिवर्तनेन क्रियते। किन्तु मै.-बं.-पाठयोस्तु कृतैरन्यैः परिवर्तनैः प्रियंवदायाः सख्यं निर्मलम् उदात्तञ्च यथा स्यात्तथा न प्रतिपाद्यते। आन्तरिक-सम्भवनाविहीनानि तयोः पाठयोः परिवर्तनानि दृश्यन्ते।
2. प्रियंवदाया वाक्येऽस्मिन् "(मदर्थे त्वम्) अभिलषसी" ति किञ्चिदध्याहृतं पदं वर्तते।, शकुन्तलायाः कृते प्रयुक्तमिदं "मधुकरी" त्युपमानं तस्याः प्रतीकान्तरं भवति, यस्य च षष्ठांके "तृषितापि सति मधुकरी त्वया विना न पिबती" ति श्लोके पुनरुल्लेखः क्रियते। नायक-नायिकयोः कृते भ्रमर-मधुकर्योः प्रतीके स्याताम्।
3. बंगीय-पाठानुरोधादुक्तिद्वय (81-82) मत्र स्थापितम्, कण्वप्रवेशात्पूर्वम् (उचितकालक्षेप-प्रदर्शनाय) तयोर्निष्क्रमणं समीचीनं सिध्यति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

आनन्दबाष्पपरिवाहिना चक्षुषा परिष्वजन्निव गुरुरुपस्थितः। तद् आचारमस्य प्रतिपद्यस्व।) [91]

शकुन्तला- (उत्थाय सव्रीडम्) ताद वन्दामि। (तात वन्दे) [92]

कण्वः - वत्से,

ययातेरिव शर्मिष्ठा पत्युर्बहुमता भव।
पुत्रं त्वमपि सम्राजं सेव पूरुं समाप्नुहि॥ 4-7॥ [93]

गौतमी- भअवं, वरो खु एसो, ण आसिसा। (भगवन्, वरः खल्वेष, न आशीः।) [94]

कण्वः- वत्से, इतः सद्यो हुतान् अग्नीन् प्रदक्षिणीकुरुष्व। (सर्वे परिक्रामन्ति) [95]

अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्यास्समिद्वन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः।
अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धैर् वैतानास्त्वां वह्नयः पालयन्तु॥ 4-8॥ [96]

(शकुन्तला प्रदक्षिणीकरोति) [97]

कण्वः- वत्से, प्रतिष्ठस्वेदानीम्। (सदृष्टिक्षेपम्) क्व ते शार्ङ्गरवमिश्राः। [98]

(प्रविश्य) भगवन्, इमे वयम्। [99]

कण्वः- शार्ङ्गरव, भगिन्या मार्गम् आदेशय। [100]

शार्ङ्गरवः- इत इतो भवती। (सर्वे परिक्रामन्ति) [101]

कण्वः - वत्से शकुन्तले, विज्ञाप्यन्ताम् सन्निहितदेवतास्तपोवनतरवः। [102]

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वसिक्तेषु या,
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवान्।
आद्ये वः कुसुमप्रबोधसमये यस्या भवत्युत्सवः,
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥ 4-9॥ [103]

॥ नेपथ्ये॥

रम्यान्तरः[1] कमलकीर्णजलैस्सरोभि-
श्छायाद्रुमैर्नियमितार्कमयूखतापः।
भूयात् कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्याः
शान्तानुकूलपवनश्च शिवश्च पन्थाः॥ 4-10॥ [104]

(सर्वे सविस्मयम् आकर्णयन्ति) [105]

शार्ङ्गरवः-

अनुमतगमना शकुन्तला सा तरुभिरियं वनवासबन्धुभिः।
परभृतरसितं प्रियं यदा प्रतिवचनीकृतमेभिरात्मनः[2]॥ 4-11॥ [106]

---

1. पुरोगामिनि श्लोके कण्वेन संनिहितदेवतास्तपोवनतरूनुद्दिश्य याभ्यर्थना प्रकटीकृता, तामेवानुसृत्याचिरान् नेपथ्यतः श्लोकोऽयं समागच्छेदिति समीचीनम्। मैथिल-रंगकर्मिभिरत्र कोकिलरवः प्रस्तावितः। किन्तु विना कयापि रंगसूचनया कोकिलरवः प्रकटीकर्तुं शक्यते। अतो नास्त्यत्र श्लोक-क्रमांके परिवर्तनस्यावश्यकता।

2. पद्यमिदं केवलमपरवक्त्र-छन्दसि स्यात्, वा डॉ. रिचार्ड मतेन संयोजितछन्दसि। (अपरवक्त्रं पुष्पिताग्रा चेति द्वयोश्छन्दसोः संमिश्रणम्) किन्तु विवादास्पदोऽयं श्लोकः। नेपथ्यतः कोकिलरवमुत्पादयितुं मैथिल-रंगकर्मिभिरयं प्रक्षिप्तः स्यादित्यनुमीयते। यतो हि गौतमी यद्वक्ति तेन सहैव "रम्यान्तरः॰" इति श्लोकस्य संगतिः सिध्यति। अन्यथाऽनुमतगमन-विषये पुनरुक्तिर्भवति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

गौतमी - जादे, णादिजणसिणिद्धं अब्भणुण्णादगमणासि तवोवणदेवदाहिं। ता पणम भअवदीओ।
(जाते ज्ञातिजनस्निग्धम् अभ्यनुज्ञातगमनासि तपोवनदेवताभिः। तत्प्रणम भगवतीः।) [107]

शकुन्तला- (तथा कृत्वा) (परिक्रम्य जनान्तिकम्) हला पिअंवदे, अय्यउत्तदंसणोस्सुआए वि अस्समं परिच्चअन्तीए दुक्खदुक्खेण मे चलणा पुरदोमुहा पहवन्ति। (हले प्रियंवदे, आर्यपुत्रदर्शनोत्सुकयाऽप्याश्रमं परित्यजन्त्या दुःखदुःखेन मे चरणौ पुरतोमुखौ प्रभवतः।) [108]

प्रियंवदा - ण केवलं तवोवणविरहकादरा तुमं य्येव। जाव तए उवत्थिअविओअस्स तवोवणस्स वि अपेक्खं अवत्थन्तरं। तधा अ,

उल्लदिदव्वकवला मई, परिसन्त-णच्चणा मोरी।
ओसरिअ-पण्डुपत्ता धुअन्ति अङ्गाइ व लदाओ॥ 4-12॥

(न केवलं तपोवनविरहकातरा त्वमेव[1], यावत् त्वयोपस्थितवियोगस्य तपोवनस्याप्यवेक्ष्यम् अवस्थान्तरम्। तथा च, [109]

उद्गीर्णदर्भकवला मृगी, परिश्रान्तनर्तना मयूरी।
अपसृतपाण्डुपत्रा धुन्वन्त्यङ्गानीव लताः[2]॥ 4-12॥) [110]

शकुन्तला- (स्मृत्वा) ताद, लदाबहिणीअं णवमालिअं दाव आमन्तयिस्सं। (तात, लताभगिनीं नवमालिकां तावद् आमन्त्रयिष्ये।) [111]

कण्वः- अवैमि तेऽस्यां सोदरस्नेहम्। इमां तावद् दक्षिणेनामन्त्रयताम्। [112]

शकुन्तला- (लतामुपेत्यालिङ्ग्य च ससस्नेहगद्गदम्) चूदसंगदा वि पच्चालिंग मं इदोगदाहिं साहाबाहुहिं।
अज्ज पहुदि दूरवट्टिणी खु अहं दे भविस्सं। (चूतसंगतापि प्रत्यालिङ्ग मामितो गताभिः शाखाबाहुभिः। अद्य प्रभृति दूरवर्तिनी खल्वहं ते भविष्यामि।) [113]

कण्वः - वत्से, इयमिदानीं चिन्तनीया मे। पश्य, [114]

सङ्कल्पितं प्रथममेव मया तवार्थे भर्तारमात्मसदृशं सुकृतैर्गता त्वम्।
चूतेन संगतवती नवमालिकेयम् अस्यामहं त्वयि च सम्प्रति वीतचिन्तः[3]॥ 4-13॥ [115]

शकुन्तला- (सख्यावुपेत्य) एसा दोण्हं पि हत्थे णिक्खेवो। (एषा द्वयोरपि हस्ते निक्षेपः।) [116]

सख्यौ - (सास्रम्) अअं जणो दाणिं कस्स सन्दिट्ठो। (रुदतः) (अयं जनः इदानीं कस्य सन्दिष्टः।) [117]

कण्वः - अनसूये, अलं रुदित्वा। ननु भवतीभ्यामेव शकुन्तला स्थापयितव्या। (परिक्रामन्ति) [118]

शकुन्तला - (विलोक्य) ताद एसा उडजपय्यन्तचारिणी गब्भमन्थरा मअवहू जदा आसण्णपसविणी भवे तदा मे किं पि पिअं णिवेदइत्तअं विसज्जइस्सध। (तात, एषोटजपर्यन्तचारिणी गर्भमन्थरा मृगवधू-र्यदासन्नप्रसविणी भवेत् तदा मे कम् अपि प्रियं निवेदयितारं विसर्जयिष्यथ।) [119]

कण्वः - वत्से, नेदं विस्मरिष्यति। (शकुन्तला गतिभङ्गं निरूपयति) [120]

---

1. मै.-बं.-पाठानुरोधाद्वाक्यमिदं दीयते।, का.-पाठे "न केवलं तव विरहपर्युत्सुकासख्य एवे" ति। (किन्तु शकुन्तलायाः पूर्वोक्ति (108) मनुलक्ष्य मैथिल-पाठ एव समीचीनः प्रतीयते।)
2. का.-पाठेऽिवतः परं माधवीलतामुद्दिश्य संवादमाला वर्तते, किन्तु कण्वाश्रमे नासीदेतादृशी कापि लतेति पूर्वमेवोक्तम्। अतः प्रक्षिप्तत्वेन सा संवादमालात्र निष्कासिता।, एवञ्च, सहकारेण सह तु नवमालिका स्वयंवरवधूत्वेन संलग्नेति पूर्वमेव कथितम्। तर्हि कथं "कान्तं समीपसहकारमहं करिष्य" इति कण्वो वक्तुं पारयेत्?। अनेनापि तस्या माधवीलतायाः प्रक्षिप्तत्वं दृढीभवति।
3. का.-पाठेषु माधवीलतायाः सन्दर्भं निष्कास्यात्र दाक्षिणात्यपाठमवलम्ब्य (उक्ति-क्रमांकः 111 तः आरभ्य, 115 पर्यन्तः)पाठ्यांशःपुनर्गठितः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला- को णु खु एसो मादक्कन्तो विअ पुणो पुणो वसणस्स अन्तं गण्हदि। (को नु खलु एष मात्रा क्रान्त इव पुनःपुनर्वसनस्यान्तं गृह्णाति।) [121]

कण्वः - वत्से,

यस्य त्वया व्रणविरोहणमिङ्गुदीनां
तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे।
श्यामाकमुष्टिपरिवर्द्धितको जहाति,
सोऽयं न पुत्रककृतः पदवीं मृगस्ते॥ 4-14॥ [122]

शकुन्तला -(दृष्ट्वा) वच्छ, किं मं सहवासपरिच्चाइणिं केदवसिणेहं अण्णेससि। अचिरपसूदो वरदाए जणणिए विणा वड्ढिदोसि। इदाणिं पि मए विरहिदं तुमं तादो चिन्तइस्सदि। ता पडिणिअत्तसु। (रुदती प्रस्थिता) (वत्स, किं मां सहवासपरित्यागिनीं कैतवस्नेहाम् अन्वेषसि। अचिरप्रसूतोपरतया जनन्या विना वर्द्धितोऽसि। इदानीमपि मया विरहितं त्वां तातः चिन्तयिष्यति। तत् प्रतिनिवर्तस्य।) [123]

कण्वः - वत्से,

उत्पक्ष्मणोर्नयनयोरुपरुद्धवृत्ति-
र्बाष्पं कुरु स्थिरतरं विहितानुबन्धम्।
अस्मिन्नलक्षितनतोन्नतभूमिभागे
मार्गे पदानि खलु ते विषमीभवन्ति॥ 4-15॥ [124]

शार्ङ्गरवः - आ उदकान्तात् स्निग्धोऽनुगम्यत इति स्मर्यताम्। तदिदं सरस्तीरम्। अत्र संदिश्य ततः प्रतिगन्तुमर्हसि। [125]

कण्वः - तेन हीमां क्षीरवृक्षच्छायाम् आश्रयामः। (उपविश्य) (सर्वे तथा कृत्वा तिष्ठन्ति।) [126]

कण्वः - (अपवार्य) किं नु खलु तत्रभवतो दुःषन्तस्य युक्तरूपम् अस्माभिस्संदेश्यम्। [127]

(चिन्तयति) [128]

अनसूया - सहि, ण सो अस्समे चिन्तणिज्जो अत्थि। जो तए विरहअन्तीए ण उस्सुओकदो अज्ज, पेक्ख दाव, (सखि, न स आश्रमे चिन्तनीयोऽस्ति यस्त्वया विरहयन्त्या नोत्सुकीकृतोऽद्य। प्रेक्षस्व तावत् -[129]

पडमिणीपत्तन्तरिदं वाहरिदं णाणुवाहरदि जाअं।
मुहोउब्भोढमिणालो तयि दिट्ठिं देइ चक्काओ॥ 4-16॥
(पद्मिनीपत्रान्तरितां व्याहृतां नानुव्याहरति जायाम्[1]।
मुखोद्व्यूढमृणालस्त्वयि दृष्टिं ददाति चक्रवाकः॥ 4-16॥) [130]

शकुन्तला -(विलोक्य) सहि, सच्चं य्येव णलिणीपत्तन्तरिदं पिअं सहअरं अवेक्खन्ती आदुरं चक्कवाइ आरसदि, दुक्करं खु अहं करेमि। (सखि, सत्यमेव नलिनीपत्रान्तरितं प्रियं सहचरम् अप्रेक्षन्ती आतुरं चक्रवाक्यारसति, दुष्करं खल्वहं करोमि[2]।) [131]

प्रियंवदा -

अज्ज वि विणा पिएण गमअदि राइं विसूरणा[3]दीहं।
हन्त गुरुअं पि दुक्खं आसाबन्धो सहावेदि॥ 4-17॥

---

1. डॉ. बेलवालकरमतेन निसर्गकन्यायाः शकुन्तलाया भाग्ये किं लिखितं वर्तते, तच्चक्रवाकेनानेन संसूच्यते।
2. सखिद्वयेन पित्रा च शकुन्तलायै शापवृत्तान्तः संगोपितः। किन्तु निसर्गकन्यायै चक्रवाकः कथयति।
3. खिदेर्जूर-विसूरौ। (हेम. 8-4-132) इत्यनेन ज्ञायते यत् खेदार्थकोऽयं देश्यशब्दः। स च संरक्षणीयः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(अद्यापि विना प्रियेण गमयति रात्रिं विसूरणादीर्घाम्।
हन्त गुरुकमपि दुःखम् आशाबन्धस्सहयति॥ 4-17॥) [132]

कण्वः- शार्ङ्गरव, इति त्वया मद्वचनाद् राजा शकुन्तलाम् पुरस्कृत्य वक्तव्यः। [133]

शार्ङ्गरवः - आज्ञापयतु भगवान्। [134]

कण्वः -

अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधनान् उच्चैः कुलं चात्मन
स्त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां भावप्रवृत्तिं च ताम्।
सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया।
भाग्याधीनमतः परं, न खलु तत्स्त्रीबन्धुभिर्याच्यते॥ 4-18॥ [135]

शार्ङ्गरवः - गृहीतस्सन्देशः। [136]

कण्वः - (शकुन्तलां प्रति) वत्से, त्वमिदानीमनुशासनीया। पश्य, वनौकसोऽपि लोकज्ञा वयम्। [137]

शार्ङ्गरवः - भगवन्, न खलु धीमतां कश्चिद् अविषयो नाम। [138]

कण्वः - वत्से, सा त्वम् इतः पतिकुलम् अवाप्य,

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः॥ 4-19॥ [139]

किं वा गौतमी ब्रवीति। [140]

गौतमी- इत्तिअं खु य्येव एदं वहूअणे उवदेसो। (शकुन्तलां प्रति) जादे, एवं खु अवधारेहि।
(एतावत् खलु एवैतद् वधूजन उपदेशः। जाते, एवं खल्ववधारय।) [141]

कण्वः - वत्से, एहि परिष्वजस्व मां सखीजनं च। [142]

शकुन्तला- ताद, किं इदो य्येव पिअसहिओ णिअत्तन्ति। (तात, किं इत एव प्रियसख्यौ निवर्तेते।) [143]

कण्वः - वत्से, इमे अपि प्रदेये। तन्न युक्तमनयोस्तत्रागन्तुम्। त्वया सह गौतमी यास्यति। [144]

शकुन्तला- (उत्थाय पितरमालिङ्ग्य) कधं दाणिं तादेण विरहिदा करिसत्थपरिब्भट्ठा करेणुआ विअ पाणा धारइस्सं।
(इति रोदिति)
(कथमिदानीं तातेन विरहिता करिसार्थपरिभ्रष्टा करेणुकेव[1] प्राणान् धारयिष्ये।) [145]

कण्वः - किमेवं कातरासि। [146]

---

1. मै.-आदिपाठेषु "मलयपर्वतोन्मूलितेव चन्दनलता०" इत्युपमा शकुन्तलायाः कृते प्रयुक्ता। सा चोपमा पश्चात्कालिकी पाठान्तरत्वेन च प्रविष्टा दृश्यते। केवलं का.-पाठे सा शकुन्तला करिसार्थपरिभ्रष्टया करेणुकया सहोपमीयते। एतादृश्येवोपमा सुसंगता प्रतीयते। यतो हि- हिमगिरेरुपत्यकायां कण्वाश्रमस्य समीपवर्तिनि प्रदेश एव हस्तिसमूहो वर्तते। नास्ति तत्र चन्दनलतायाः कोऽप्यवकाशः। एवञ्च, करिसार्थ-परिभ्रष्टा करेणुका यथा निःसहाया दयनीया भवति, तथैव शकुन्तलेदानीं भविष्यतीति ध्वनयितुमियम् एवोपमा सन्दर्भोचिता। अत्रैवास्त्यान्तरिकी सम्भावना।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे
विभवगुरुभिः कृत्यैरस्य प्रतिक्षणम् आकुला।
तनयमचिरात् प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनं
मम विरहजं न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि।। 4-20।। [147]

अपि चे[1]दमवधारय - [148]

यदा शरीरस्य शरीरिणश्च पृथक्त्वम् एकान्तत एव भावि।
आहार्ययोगेन विभज्यमान परेण को नाम भवेद् विषादी[2]।। 4-21।। [149]

(शकुन्तला पितुः पादयोः पतति।) [150]

कण्वः - वत्से, यदिच्छसि तत् तेऽस्तु। [151]

शकुन्तला -(सख्यावुपगम्य) हला एध दुवे य्येव मं समं परिस्सजधं। (एतं द्वे एव मां समं परिष्वजेथाम्।) [152]

उभे - (तथा कृत्वा) सहि, सो राआ जदि पच्चभिण्णाणमन्थरो भवे, तदा से इमं तदीअणामधेअङ्किदं अङ्गुलीअं दंसेढि। (इत्यङ्गुलीयकं दत्तः) (सखि, स राजा यदि प्रत्यभिज्ञानमन्थरो भवेत्तदास्येदं तदीयनामधेयाङ्कितमङ्गुलीयकं दर्शय।) [153]

शकुन्तला -(साशङ्कम्) इमिणा सन्देसेण अणुकम्पिदम्हि। (अनेन सन्देशेनानुकम्पितास्मि।) [154]

उभे - मा भाआहि। सिणिहो वामं आसङ्कदि (मा भैषीः। स्नेहो वामम् आशङ्कते।) [155]

शार्ङ्गरवः - (ऊर्ध्वम् अवलोक्य) युगान्तरमधिरूढस्सविता। तत् त्वरतां भवती। [156]

शारद्वतः - (उत्थाय) इत इतो भवती। (सर्वे परिक्रामन्ति) [157]

शकुन्तला- (भूयः पितरमाश्लिष्य सगद्गदम्) ताद, कदा णु खु भूओ तवोवणं पेक्खिस्सं। (तात, कदा नु खलु भूयस्तपोवनं प्रेक्षिष्ये।) [158]

कण्वः - वत्से, श्रूयताम्-

भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी दौःषन्तिम् अप्रतिरथं तनयं प्रसूय।
तस्मिन् निवेशितधुरेण सहैव भर्त्रा शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन्।। 4-22।। [159]

गौतमी - जादे, परिहीअदि गमणवेला। ता णिवट्टेहि पिदरं। (काश्यपं प्रति) अध वा, चिरेण एसा पिदरं ण णिवट्टयिस्सदि। ता णिवट्टदु भवं। (जाते परिहीयते गमनवेला। तन्निवर्तय पितरम्।

अथ वा, चिरेण एषा पितरं न निवर्तयिष्यति। तन्निवर्तयतु भवान्।) [160]

कण्वः - वत्से, उपरुद्ध्यते मे तपोऽनुष्ठानम्। प्रतिनिवर्तितुमिच्छामि। [161]

(शकुन्तला पुनः पितरमाश्लिष्य) [162]

शकुन्तला- तवोवापारेण तादो णिरुक्कण्ठो भविस्सदि। अहं दाणिं उक्कण्ठाभाइणि संवुत्ता। (तपोव्यापारेण तातो निरुत्कण्ठो भविष्यति। अहमिदानीं उत्कण्ठाभागिनी संवृत्ता।) [163]

---

1. समुच्चयार्थकस्य "अपि चे" ति निपातद्वयस्य स्वारस्यमत्रापि सिध्यति। तद्यथा- शकुन्तला पतिगृहे कीदृशानि सुखानि प्राप्स्यतीत्युक्त्वा, कण्वाश्रमेऽस्मिन् यदा कदापि पितुः शरीररूपमाहार्यं परावर्त्यते, परिवर्त्यतेऽथवा (तस्य देहावसानमपि जातमिति श्रूयते) तदापि विषादो नैव कर्तव्य इत्यप्यारण्यकः पितोपदिशति। कन्यानां मनस्सु सदैव पतिकुलचिन्तया सममेव पितृकुलस्यापि चिन्ता वरीवर्तते एव। कण्वमहर्षिरेतज्- जानाति, तच्च "अपि चे" ति निपातेनावतारितेन श्लोकेन महाकविर्निरूपयति।
2. शृङ्गारप्रकाशे (21-16, पृ. 1082) उद्धृतोऽयं श्लोकः। (किन्तु श्रीरेवाप्रसादद्विवेदिभिर्नैवाकलितोऽयं कालिदासीय-श्लोकः)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

कण्वः - अयि, किं मां जडीकरोषि। [164]

शममेष्यति मम वत्से कथमिव शोकस्त्वया रचितपूर्वम्।
उटजद्वारविरूढं नीवारबलिं विलोकयतः॥ 4-23॥ [165]

वत्से, गच्छ। शिवास्ते पन्थानस्सन्तु। [166]

(इति निष्क्रान्ता शकुन्तलाऽनुयायिभिः सह) [167]

सख्यौ- (चिरं विलोक्य) हद्धी अन्तरिदा सउन्तला वणराइहिं। (हा धिक्, अन्तरिता शकुन्तला वनराजिभिः।) [168]

कण्वः - अनसूये, गता वां सहधर्मचारिणी, निगृह्यतां शोकावेगः। अनुगच्छतं मां प्रस्थितम्। [169]

उभे - ताद, सउन्तलाविरहिदं सुण्णं विअ तवोवणं पविसामो। (तात, शकुन्तलाविरहितं शून्यमिव तपोवनम् प्रविशामः।) [170]

कण्वः - स्नेहवृत्तिरिव दर्शनीया। (सविमर्शं परिक्रम्य) [171]

हन्त भोः, शकुन्तलां विसृज्य लब्धमिदानीं स्वास्थ्यम्। कुतः-[172]

अर्थो हि कन्या परकीय एव ताम् एव सम्प्रेष्य परिगृहीतुः।
जातोऽस्मि सद्यो विशदान्तरात्मा चिरस्य निक्षेपम्[1] इवार्पयित्वा॥ 4-24॥ [173]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे) [174]

॥ इति चतुर्थोऽङ्कः॥ [175]

---

1. शकुन्तलया नवमालिकाविषये पूर्वमुक्तं यद् "एष द्वयोरपि हस्ते निक्षेप" (उक्ति-क्रमांकः 116) इति। तेनात्रापि "निक्षेप" इत्येव स्यात्। कृतिनिष्ठेनान्तरिकेण प्रमाणेन सिध्यति यदत्र "न्यास" इति पाठान्तरम् अकालिदासीयम्। (विक्रमोर्वशीये (2-13 इत्यस्याधस्ताद्) अपि निक्षेपशब्दस्यैव प्रयोगात्, कालिदासस्य कृतिषु च धरोहरेत्यर्थे न्यासशब्दस्य प्रयोगाभावाच्च।)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ अथ पञ्चमोऽङ्कः॥

॥ ततः प्रविशति कञ्चुकी॥ [1]

कञ्चुकी - (आत्मानं विलोक्य) (निःश्वस्य) अहो बत कीदृशीं वयोऽवस्थां प्राप्तोऽस्मि। [2]

आचार इत्यधिकृतेन मया गृहीता या वेत्रयष्टिरवरोधगृहेषु राज्ञः।
कालेन सैव परिहीननियोगशक्तेर्गन्तुं ममेयम् अवलम्बनवस्तु जाता॥ 5-1॥ [3]

यावद् अभ्यन्तरगताय देवायानुष्ठेयम् अकालक्षेपार्हं निवेदयामि। (द्वे पदे गत्वा) किं पुनस्तत्।

(संस्मृत्य) आम्, कण्वशिष्याः तपोधना देवं द्रष्टुम् इच्छन्ति। भोश्चित्रम् इदम्-[4]

क्षणात्प्रबोधमायाति लङ्घ्यते तमसा पुनः।
निर्वास्यतः प्रदीपस्य शिखेव जरतो मतिः॥ 5-2॥ [5]

(परिक्रम्याकाशे) [6]

मौद्गल्य, धर्मकार्यमनतिपात्यं, तद्देवस्य तदावेदयितुमिच्छामि। किं ब्रवीषि। नन्विदानीमेव धर्मासनाद् उत्थितः पुनरुपरुध्यते देव इति। न त्वीदृशो लोकतन्त्राधिकारः। पश्य, [7]

भानुस्सकृद् युक्ततुरङ्ग एव रात्रिन्दिवं गन्धवहः प्रयाति।
अवेक्ष्य दाह्यं न शमोऽस्ति वह्नेष्षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः॥ 5-3॥ [8]

किं ब्रवीषि। तेन सङ्गीतकशालासङ्गतं मण्डपं गच्छ, अनुष्ठीयतां नियोग इति। यावत् तत्र गच्छामि। (परिक्रम्यावलोक्य च) एष देवः। [9]

मनुः प्रजास्स्वा इव तन्त्रयित्वा निषेवते शान्तमना विविक्तम्।
यूथानि संचार्य रविप्रतप्तः शीतं दिवा स्थानमिव द्विपेन्द्रः॥ 5-4॥ [10]

(ततः प्रविशत्यासनस्थः परिमितपरिवारो राजा विदूषकश्च) [11]

विदूषकः - (कर्णं दत्त्वा) भोः णं सङ्गीदसालअं। तेण अवधानं देहि। तालगतिविसुद्धाए खु वीणाए सरसञ्जोआ सुणीअन्ति। जाणे तत्थभोदी हंसवदिआ वण्णपरिचअं करेदित्ति। (भोः, ननु सङ्गीतशालकम्। तेनावधानं देहि। तालगतिविशुद्धायाः खलु वीणायाः स्वरसंयोगाः श्रूयन्ते। जाने तत्रभवती हंसवतिका वर्णपरिचयं करोतीति।) [12]

राजा - (आकर्णयन्) माधव्य, तूष्णीं भव, यावद् आकर्णयामि। [13]

कञ्चुकी - अये, व्यासक्तचित्तो देवः। अवसरं तावत् प्रतिपालयामि। (विलोकयन् स्थितः) [14]

(नेपथ्ये गीयते) [15]

अहिणव-महुलोहभाविदं तह परिचुम्बिअ चूदमञ्जरिं।
कमलवसतिमेत्तणिव्वुदो महुअर वीस्सरदो सि णं कधं॥ 5-5॥

(अभिनव-मधुलोभभावितस्तथा परिचुम्ब्य चूतमञ्जरीम्।
कमलवसतिमात्रनिर्वृतो मधुकर विस्मृतोऽस्येनां कथम्॥ 5-5॥) [16]

राजा - अहो रागपरिवाहिणी गीतिः। [17]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

विदूषकः – किं दाव से गीतिआए। अवि गिहिदो भवदा अक्खरत्थो। (किं तावदस्या गीतिकायाः, अपि गृहीतो भवताक्षरार्थः।) [18]

राजा – (स्मितं कृत्वा) वयस्य, सत्कृतप्रणयोऽयं[1] जनः। तदस्याः कृते कुलप्रभाम्[2] अन्तरेण समुपालम्भम् उपागतोऽस्मि। तन्मद्वचनाद् उच्यतां हंसवतिका। निपुणम् उपालब्धास्म इति। [19]

विदूषकः – जं भवं आणवेदि। (उत्थाय) भो वअस्स। गिहीदो तए परकीहिं हत्थेहिं सिखण्डए अच्छभल्लो अवीदराअस्स विअ णत्थि मे मोक्खो। (यद् भवान् आज्ञापयति। भो वयस्य, गृहीतस्त्वया परकीयैर्हस्तैः शिखण्डके भल्लूकः। अवीतरागस्येव नास्ति मे मोक्षः।) [20]

राजा – वयस्य, गच्छ, नागरकवृत्त्या संज्ञापयैनाम्। [21]

विदूषकः – का गदी। (का गतिः।)

(इति निष्क्रान्तः) [22]

राजा – (आत्मगतम्) किं नु खलु गीतमाकर्ण्येदम् एवं विधार्थमिष्टजनविरहाद् ऋतेऽपि बलवदुत्कण्ठितोऽस्मि। अथवा, [23]

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुकीभवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनमभोगपूर्वम्
भाविस्थितानि जननान्तरसौहृदानि[3]॥ 5-6॥ [24]

कञ्चुकी – (उपसृत्य) (प्रणिपत्य) जयतु जयतु देवः। एते खलु हिमगिरेरुपत्यकारण्यकाः कण्वसन्देशम् आदाय सस्त्रीकास्त–पस्विनस्सम्प्राप्ताः। श्रुत्वा प्रभविष्णुः प्रमाणम्। [25]

राजा – किं कण्वसन्देशहारिणः सस्त्रीकाः तपस्विनः। [26]

कञ्चुकी – अथ किम्। [27]

राजा – तेन हि, मद् वचनाद् विज्ञाप्यताम् उपाध्यायस्सोमरातः। अमूनाऽऽश्रमवासिनः श्रौतेन विधिना सत्कृत्य स्वयमेव प्रवेशयितुमर्हसि। अहमप्येनांस्तपस्विदर्शनोचिते देशे प्रतिपालयामीति। [28]

कञ्चुकी – यद् आज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रान्तः) [29]

राजा – (उत्थाय) वसुमति, अग्निशरणम् आदेशय। [30]

प्रतीहारी – इदो इदो देवः। (परिक्रामन्ती) (इतः इतः देवः।) [31]

राजा – (अधिकारखेदं रूपयित्वा) सर्वाः प्रार्थितमधिगम्य सुखी सम्पद्यते, राज्ञां तु चरितार्थतापि दुःखोत्तरैव। कुतः – [32]

---

1. मै.–पाठेषु "सकृत्कृतप्रणयोऽयमि" ति पाठान्तरम्। किन्तु तेन नाटकस्यास्य नायकस्योदात्तता नितरां व्याहन्यते।, का.–पाठेनानेन तस्य रक्षा भवति। एवञ्च, प्राचीनतमत्वादपि का.–पाठो विचारणीयोऽस्ति।
2. मै.–बं.–पाठयोरत्र "हंसवतीमि" ति पाठान्तरम्।, अन्यत्र (का.–दाक्षि.–देव.) पूर्वपरिणीतायाः कुलप्रभायाः / वसुमत्याश्च नामान्तरं प्राप्यते। द्विविधयोः पाठयोर्मध्ये को ज्यायान्निति निश्चेतुं सुकरं न प्रतीयते। उभयत्र विवादः कर्तुं शक्यते। तथापि मै.–बं.–पाठयोर्विवादं दूरीकर्तुं प्रयत्यत इति संशितिः।
3. का.–पाठस्यात्र स्वीकारः क्रियते, प्राचीनतमत्वानुरोधादर्थान्तरस्य प्रतिपादकत्वाच्च। बहुपत्नीकत्वे सत्यपि राज्ञि, प्रणयस्यास्यापूर्वत्वं निरूपयितुं प्रवृत्तत्वाच्च कवेः। काश्मीर–पाठोऽनुपेक्ष्यः। षष्ठांकेऽपि न वर्तते पूर्वपरिणीतानां संघर्षः, विदूषकोऽपि तम् "अन्तःपुरकालकूट / कलह / वागुरादि" शब्दैः न निरूपयति।) तस्यापि समीक्षाऽपेक्षतेतराम्।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

औत्सुक्यमात्रमवसादयति प्रतिष्ठा
क्लिश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेव।
नातिश्रमापनयनाय यथा श्रमाय
राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम्।। 5-7।। [33]

(नेपथ्ये)

वैतालिकाः- विजयतां देवः। [34]

स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः
प्रतिदिनमथवा ते सृष्टिरेवंविधैव।
अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम्।। 5-8।। [35]

अपि च,

नियमयसि विमार्गप्रस्थितान् आत्तदण्डः
प्रशमयसि विवादं कल्पसे रक्षणाय।
अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः सन्तु नाम
त्वयि तु परिसमाप्तं बन्धुकृत्यं प्रजानाम्।। 5-9।। [36]

राजा - (आकर्ण्य) एते क्लान्तमनसः पुनर्नवीभूतास्स्मः[1]। (परिक्रम्य) [37]

प्रतीहारी- एसो अहिणवसम्मज्जनरमणीओ सण्णिहिदकविलधेणू अग्गिसरणालिन्दो। ता आरुहदु देवो। (एषोऽभिनव सम्मार्जनरमणीयस्सन्निहितकपिलधेनुरग्निशरणालिन्दः। तदारोहतु देवः।) [38]

राजा - (आरोहणं नाटयित्वा) (परिजनांसावलम्बी तिष्ठति) (सवितर्कम्) वसुमति, किम् उद्दिश्य तत्रभवता कण्वेन मत्सकाशम् ऋषयः प्रहितास्स्युः। [39]

किं तावद् व्रतिनाम् उपोढतपसां विघ्नैस्तपो दूषितं
धर्मारण्यगतेषु केनचिद् उत प्राणिष्वसच्चेष्टितम्।
आहोस्वित् प्रसवो ममापचरितैर्विष्टम्भितो वीरुधाम्
इत्यालीढबहुप्रतर्कम् अपरिच्छेदाकुलं मे मनः।। 5-10।। [40]

प्रतीहारी - देवस्स भुअणपरिसङ्गणिव्वुदे चतुरस्समे कुदो एदं। किं तु सुअरिदाभिणन्दिणो इसओ देवं सभाजइदुं आगदित्ति तक्केमि। (देवस्य भुवनपरिष्वङ्गनिर्वृते चतुराश्रमे कुत एतत्। किन्तु सुचरिताभिनन्दिन ऋषयो देवं सभाजयितुम् आगता इति तर्कयामि।) [41]

(ततः प्रविशन्ति गौतमीसहिताः शकुन्तलां पुरस्कृत्य मुनयः। पुरतश्चैषां पुरोहित-कञ्चुकिनौ।) [42]

कञ्चुकी - इत इतो भवन्तः। (सर्वे परिक्रामन्ति) [43]

शार्ङ्गरवः -

महाभागस्सत्यं नरपतिरभिन्नस्थितिरसौ
न कश्चिद् वर्णानाम् अपथम् अपकृष्टोऽपि भजते।
तथापीदं शश्वत् परिचितविविक्तेन मनसा
जनाकीर्णं मन्ये हुतवहपरीतं गृहमिव।। 5-11।। [44]

1. का.-पाठे येन क्रमेण दृश्य-योजना सुरक्षिता वर्तते, सैवात्राङ्गीकृता। तद्यथा- 1. कञ्चुकिन उक्तयः, 2. हंसवतिकाया-गीतम्, 3. वैतालिकानां श्लोक-गानं, क्लान्तमनसो राज्ञो नवीकरणम्, 4. कण्वशिष्यानाम् शकुन्तलया सह प्रवेशः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शारद्वतः - स्थाने भवतः पुरप्रवेशाद् इत्थंभूतस्संवेगः। अहमपि, [45]

अभ्यक्तमिव स्नातः, शुचिरशुचिमिव, प्रबुद्ध इव सुप्तम्।
बद्धमिव स्वैरगतिर्जनम् अवशस्सङ्गिनमवैमि॥ 5-12॥ [46]

शकुन्तला -(दुर्निमित्तं सूचयन्ती) (सखेदम्) अम्मो, किं पि वामेदरं मे णअणं विप्पकरेदि। (अहो किम् अपि वामेतरं मे नयनं विप्रकरोति।) [47]

गौतमी - पडिहदं अमङ्गलं। सुहाइं दे भत्तु-कुलदेवदाओ विदरन्तु। (परिक्रामन्ति) (प्रतिहतम् अमङ्गलं, सुखानि ते भर्तृकुलदेवता वितरन्तु।) [48]

पुरोहितः - (राजानं निर्दिशन्) भोस्तपस्विनः। असावत्रभवान् वर्णाश्रमाणां रक्षिता प्रागेव मुक्तासनः प्रतिपालयति। पश्यतैनम्। [49]

ऋषयः- महाब्राह्मण, काममेतद् अभिनन्दनीयम्। तथापि वयमत्र मध्यमस्थाः। कुतः - [50]

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैर्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धतास्सत्पुरुषास्समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्॥ 5-13॥ [51]

प्रतीहारी - देव, पसण्णमुहराआ दीसन्ति सत्थकय्या इसओ। (देव, प्रसन्नमुखरागा दृश्यन्ते स्वस्थकार्या ऋषयः।) [52]

राजा - (शकुन्तलां दृष्ट्वा) अथात्रभवती - [53]

कास्विद् अवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या।
मध्ये तपोधनानां किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम्॥ 5-14॥ [54]

प्रतीहारी - देव, कुदूहलदाए विम्हिदम्हि। ण मे तक्को पसीददि। (देव, कुतूहलतया विस्मितास्मि। न मे तर्कः प्रसीदति।) [55]

परिजनः - भट्टा, दंसणीआ खु से आकिदी लक्खीअदि। (भर्तः, दर्शनीया खल्वस्या आकृतिर्लक्ष्यते।) [56]

शकुन्तला -(आत्मगतम्) (उरसि हस्तं दत्त्वा) (ससाध्वसम्) हिअअ, किं एवं वेवसि। अय्यउत्तस्स भावत्थिदिं सुमरिअ धीरं दाव होहि। (हृदय, किमेवं वेपसि। आर्यपुत्रस्य भावस्थितिं स्मृत्वा धीरं तावद् भव।) [57]

पुरोहितः- (पुरो गत्वा) देव, एते विधिवदर्चितास्तपस्विनः। कश्चिदेतेषाम् उपाध्यायसन्देशः। तं देवः श्रोतुम् अर्हति। [58]

राजा - (सादरम्) अवहितोऽस्मि। [59]

ऋषयः- (उपसृत्य) (हस्तान् उद्यम्य) विजयस्व राजन्। [60]

राजा - (सप्रणामम्) सर्वान् अभिवादये वः। [61]

ऋषयः - स्वस्ति भवते। [62]

राजा- अपि निर्विघ्नं तपः। [63]

ऋषयः-

कुतो धर्मक्रियाविघ्नस्सतां रक्षितरि त्वयि।
तमस्तपति घर्मांशौ कथम् आविर्भविष्यति॥ 5-15॥ [64]

राजा- अर्थवान् मे खलु राजशब्दः। अथ तत्रभवाल्ँलोकानुग्रहाय कुशली कण्वः। [65]

शार्ङ्गरवः - स्वाधीनकुशलास्सिद्धिमन्तः। स भवन्तमनामयप्रश्नपूर्वम् इदम् आह। [66]

राजा- किम् आज्ञापयति। [67]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शार्ङ्गरवः- (शकुन्तलाम् उद्दिश्य) यन् मिथस्समयाद् इमाम् मदीयां दुहितरम् उपयेमे। तन्मया प्रीतमनसा युवयोरनुज्ञातम्। कुतः - [68]

त्वमर्हतां प्राग्रहरः स्मृतो हि नः, शकुन्तला मूर्तिमतीव सत्क्रिया।
समानयंस्तुल्यगुणं वधूवरं चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः॥ 5-16॥ [70]

तदियम् इदानीं आपन्नसत्त्वा प्रतिगृह्यतां सहधर्मचारणायेति। [71]

गौतमी - भद्दमुह, वत्तुकामा त्थिदा म्हि। ण अ मे वअणावकासो अत्थि। कधं त्ति - [72]

णावेक्खिदो गुरुअणो इमा इणा इह पुच्छिदा बन्धू।
एक्केक्कमेण वरिए किं भणणत एक्कम् एक्कमि॥ 5-17॥

(भद्रमुख, वक्तुकामा स्थिताऽस्मि। न च मे वचनावकाशोऽस्ति। कथमिति-

नापेक्षितो गुरुजनो, ऽनया न चात्र पृष्टा बन्धवः।
एकैकेन वरिते किं भण्यताम् एकम् एकस्मिन्॥ 5-17॥) [73]

राजा - (साशङ्काकुलम् आकर्ण्य) अयि, किमिदम् उपन्यस्तम्। [74]

शकुन्तला- (आत्मगतं, साशङ्कम्) हुं पावो से वअणोवक्खेवो। (हुँ, पावकोऽस्य वचनोपक्षेपः।) [75]

शार्ङ्गरवः - कथं नाम अत्रभवन्त एव सुतरां लोकयात्रानिष्णाताः। [76]

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयाम् जनोऽन्यथा भर्तृमतीं विशङ्कते।
अतः समीपे परिणेतुरिष्यते तद् अप्रियापि प्रमदा स्वबन्धुभिः॥ 5-18॥ [77]

राजा - किम् अत्रभवती मया परिणीतपूर्वा?। [78]

शकुन्तला- (सविषादमात्मगतम्) हिअअ, संवदिदा खु दे आसङ्का। (हृदय, संवर्द्धिता खलु त आशङ्का।) [79]

शार्ङ्गरवः - राजन्!,

किं कृतकार्यद्वेषाद् धर्मं प्रति विमुखता राज्ञः। [80]

राजा- कुतोऽयम् असत्कल्पनाप्रसङ्गः?। [81]

शार्ङ्गरवः -

मूर्च्छन्त्यमी विकाराः प्रायेणैश्वर्यमत्तेषु॥ 5-19॥ [82]

राजा- विशेषेणाधिक्षिप्तोऽस्मि। [83]

गौतमी - (शकुन्तलां प्रति) जादे, मा मुहुत्तअं लज्ज, अवणयिस्सं दाव दे अवगुण्ठनं। तदो भट्टा तुमं अहिजाणइस्सदि त्ति। (जाते, मा मुहूर्तकं लज्जस्व। अपनेष्यामि तावत् तेऽवगुण्ठनम्। ततो भर्ता त्वाम् अभिज्ञास्यतीति।) [84]

(गौतमी यथोक्तं करोति) [85]

राजा- (शकुन्तलां निर्वर्णयन् सविस्मयम् आत्मगतम्) [86]

इदमुपनतमेवं रूपम् अक्लिष्टकान्ति
प्रथमपरिगृहीतं स्यान्न वेत्यध्यवस्यन्।
भ्रमर इव विभाते कुन्दमन्तस्तुषारम्
न च खलु परिभोक्तुं नापि शक्नोमि हातुम्॥ 5-20॥ [87]

परिजनः - (जनान्तिकम्) अहो धम्मावेक्खिदा भट्टिणो। ईदिसं णाम सुहोवणदं इत्थीरदणं पेक्खिअ को अण्णो विआरेदि। (अहो धर्मापेक्षिता भर्तुः। ईदृशं नाम सुखोपनतं स्त्रीरत्नं प्रेक्ष्य कोऽन्यो विचारयति।) [88]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शार्ङ्गरवः - राजन्, किम् एवम् जोषम् आस्यते?। [89]

राजा- भोस्तपस्विन्, चिन्तयन्नपि न खलु स्वीकरणम् अत्रभवत्याः स्मरामि। तत्कथमनभिव्यक्तसन्धिलक्षणम् आत्मानं क्षेत्रिणम् अनाशंसमानः प्रतिपत्स्ये। [90]

शकुन्तला- (अपवार्य) हद्धी कधं परिणए य्येव सन्देहो। भग्गा दाणिं मे दूरारोहिणी आसा। (हा धिक्, कथं परिणय एव सन्देहः। भग्नेदानीं मे दूरारोहिण्याशा।) [91]

शार्ङ्गरवः- मा तावत्।

कृताभिमर्शाम् अवमन्यमानस्सुतां त्वया नाम मुनिर्विमान्यः।
जुष्टं प्रतिग्राहयता स्वम् अर्थं पात्रीकृतो दस्युरिवासि येन॥ 5-21॥ [92]

शारद्वतः - शार्ङ्गरव, विरम त्वमिदानीम्। शकुन्तले, वक्तव्यमुक्तमस्माभिः। सोऽयमत्रभवान् इदमाह। तद् दीयताम् अस्मै प्रतिवचनम्। [93]

शकुन्तला- अय्यउत्त[1] ......, (इत्यर्धोक्ते) (आर्यपुत्र ....।) [94]

(आत्मगतम्) अधवा, संसइदो दाणिं मे समुदाआरो। (अथवा, संशयित इदानीं मे समुदाचारः।) [95]

(प्रकाशम्) पोरव, जुत्तं णाम पुरा अस्समपदे सब्भावुत्ताण हिअअं इमं जणं समयपुरवं पदारिअ, इदिसेहिं अक्खरेहिं पच्चाचक्खिदुं। (पौरव, युक्तं नाम पुराश्रमपदे सद्भावोत्तानहृदयम् इमं जनं समयपूर्वम् प्रतार्येदृशैरक्षरैः प्रत्याख्यातुम्।) [96]

राजा- (कर्णौ स्पृष्ट्वा) शान्तं पापम्। [97]

व्यपदेशम् आविलयितुं किम् ईहसे माम् च पातयितुम्।
कूलङ्कषेव सिन्धुः प्रसन्नमोघं तटरुहं च॥ 5-22॥ [98]

शकुन्तला -जदि परमत्थदो परपरिग्गहणसङ्किणा तए एवं वुत्तं। दा अहिण्णाणेण गुरुणा तुह सन्देहं अवनइस्सं। (यदि परमार्थतः परपरिग्रहणशङ्किना त्वयैवमुक्तम्। तदभिज्ञानेन गुरुणा तव सन्देहम् अपनेष्यामि।) [99]

राजा- उदारम्। [100]

शकुन्तला- (मुद्रास्थानम् परामृश्य) हद्धी, अङ्गुलीअसुण्णा मे अङ्गुली। (तापसीं पश्यति) (हा धिक्, अङ्गुलीयशून्या मेऽङ्गुली।) [101]

गौतमी- ण खु दे सक्कावदारे सचितित्थोदअं अवगाहमाणाए पब्भट्ठो अङ्गुलीओ। (न खलु ते शक्रावतारे शचीतीर्थोदकम् अवगाहमानायाः प्रभ्रष्टोऽङ्गुलीयकः।) [102]

राजा- (सस्मितम्) इदम् तद् यौतुकं प्रत्युपन्नं स्त्रीणाम् इति यदुच्यते। [103]

शकुन्तला -एत्थ दाव विहिणा दंसिदं पहुत्तणं, अवरं दे कधयिस्सं। (अत्र तावद्विधिना दर्शितं प्रभुत्वम्, अपरं ते कथयिष्यामि।) [104]

राजा - श्रोतव्यमिदानीं संवृत्तम्। [105]

शकुन्तला -ण खु तत्थइक्कदिअसे णवमालिआमण्डवके णलिणीपत्तभाअणगदं उदअं तव हत्थसण्णिहिदं आसी। (न खलु तत्रैकदिवसे नवमालिकामण्डपके नलिनीपत्रभाजनगतमुदकं तव हस्तसन्निहितम् आसीत्।) [106]

---

1. इतः पूर्वम्- शकुन्तलायाः स्वगतोक्तिरूपेण "इदं अवत्थान्तरं गदे तादिसे मुहुत्तरागे, किं वा सुमराविदेण सम्पदं तेण। अधवा, अत्ता दाणिं मे सोधणीओ त्थि, विवदिस्सं एदं।" इति यद्वाक्यं वर्तते, तत्प्रक्षिप्तं प्रतिभाति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा - शृणुमस्तावत्। [107]

शकुन्तला - तक्खणं च मम सो किदअपुत्तओ हरिणओ उवत्थिदो। तदो तए अअं दाव पढुमं पिवदु त्ति अणुकम्पिणा उवच्छन्दिदो। ण उण दे अवरिइदस्स हत्थब्भासो उवगदो। पच्छा तस्सिं य्येव उदए मए गिहीदे पणअपकासपुरवं तुमं पहसिदो सि, भणिदं च तए, सव्वो सगन्धे विससिदि, दुवेवि एत्थ आरण्णआ त्ति। (तत्क्षणं च मम स कृतकपुत्रको हरिणक उपस्थितः। ततस्त्वयायं तावत् प्रथमं पिबत्वित्यनुकम्पिनोपच्छन्दितः। न पुनस्तेऽपरिचितस्य हस्ताभ्यास उपगतः। पश्चात् तस्मिन्नेवोदके मया गृहीते, प्रणयप्रकाशपूर्वं त्वं प्रहसितोऽसि, भणितं च त्वया सर्वस्सगन्धे विश्वसिति। द्वावप्यत्रारण्यकाविति।) [108]

राजा- (विहसन्) एभिरात्मकार्यनिर्वर्त्तिनीनां योषितामनृतवाङ्मधुभिराकृष्यन्ते विषयिणः। [109]

गौतमी - महाभाअ, णारहसि इत्तिकं मन्तइदुं। तवोवणसंवड्ढिदो खु अअं जणो अणभिण्णो केदवस्स।
(महाभाग, नार्हस्येतावन्मन्त्रयितुम्। तपोवनसंवर्द्धितः खलु अयं जनोऽनभिज्ञः कैतवस्य।) [110]

राजा- तापसवृद्धे,

स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वम् अमानुषीषु
सन्दृश्यते किम् उत याः परिबोधवत्यः।
प्राग् अन्तरिक्षगमनात् स्वम् अपत्यजातम्
अन्यद्विजैः परभृताः किल पोषयन्ति॥ 5-23॥ [111]

शकुन्तला - (सरोषम्) अणय्य[1], अत्तणो हिअआणुमाणेण सव्वं पेक्खसि। को अण्णो धम्मकञ्चुअपवेसिणो तणच्छणन्नकूवोपमस्स तवाणुकारी भविस्सदि। (अनार्य, आत्मनो हृदयानुमानेन सर्वं प्रेक्षसे, कोऽन्यो धर्मकञ्चुकप्रवेशिनस्तृणच्छन्नकूपोपमस्य तवानुकारी भविष्यति।) [112]

राजा- भद्रे[2], दुःषन्तचरितं प्रजासु प्रथितम्। न चापीदं दृश्यते[3]। [115]

शकुन्तला- सुट्ठु दाव सच्छन्दआरिणी कदम्हि जा अहं इमस्स पुरुवंसपच्चएण हिअअसत्थधारस्स मुहमहुणो हत्थब्भासं उवगदा। (सुष्ठु तावत् स्वच्छन्दचारिणी कृतास्मि, याहं अस्य पुरुवंशप्रत्ययेन हृदयशस्त्रधरस्य मुखमधुनो हस्ताभ्याशम् उपगता।) [117]

(इति मुखमावृत्य रोदिति।) [118]

शार्ङ्गरवः- इत्थम् अप्रतिहतं चापलं दहति। अतः खलु, [119]

परीक्ष्य सर्वं कर्तव्यं विशेषात् संविदः क्रियाः।
अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम्॥ 5-24॥ [120]

राजा- अयि भोः, किमत्रभवतीप्रत्ययाद् एवास्मान् अतिबलेन क्षिण्वन्ति भवन्तः। [121]

शार्ङ्गरवः- श्रुतं भवद्भिरधरोत्तरम्। [122]

आ जन्मनः शाठ्यम् अलक्षितो यः, तस्याप्रमाणं वचनं जनस्य।
पराभिसन्धानमधीयते यैर्विद्येति ते सन्तु किलाप्तवाचः॥ 5-25॥ [123]

---

1. का.-पाठे नास्तीदं पदम्। मै.-पाठे सुरक्षितमिदं संबोधनं प्रसंगोचितं प्रतिभाति। अतोऽत्रेदं स्वीक्रियते।
2. इतः पूर्वम्- स्वगतोक्तिरूपेण राज्ञो मुखे "न तिर्यगवलोकि०", "मय्येवमस्मरणदारुण०" इति च श्लोकद्वयं प्राप्यते, किन्तु पूर्वापरसन्दर्भे तावप्रासंगिकौ प्रतीयेते। अतो निष्कास्येते। (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्ये- 22-23)
3. का.-मै.-बं.-पाठेऽवितः परं "तुम्हे य्येव पमाणं जाणीध०" इति प्राकृत-गाथा। (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-24)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा- हन्त भोस्सत्यवादिन्, अभ्युपगतं तावदस्माभिः। एवं विधा वयम्। किं पुनरिमाम् अभिसन्धाय लभ्यते। [124]

शारद्वतः - विनिपातः। [125]

राजा- तं नाहं प्रार्थये। [126]

शारद्वतः - भो राजन्, किमुत्तरोत्तरैः, अनुष्ठितगुरुनिदेशाः स्मः। सम्प्रति प्रतिनिवर्तामहे वयम्, [127]

तदेषा भवतः पत्नी त्यज वैनां गृहाण वा।
उपयन्तुर्हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी॥ 5-26॥ [128]

गौतमि, गच्छ गच्छाग्रतः। (सर्वे प्रस्थिताः) [129]

शकुन्तला- (सदैन्यम्) हुं इमिणा दाव केतवेण विप्पलब्ध म्हि। तुम्हे वि मं परिच्चइदुमिच्छध। ता का गदी। (इति गौतमीम् अनुगच्छति।) (हुं अनेन तावत् कैतवेन विप्रलब्धाऽस्मि। यूयमपि मां परित्यक्तुम् इच्छथ, तत्का गतिः।) [130]

गौतमी- (स्थित्वा) वच्छ साङ्गरव, अणुगच्छदि एसा करुणपरिदेविणी सउन्तला। पच्चादेसकलुसे भत्तारे किंवा पुत्तिआ मे करेदु। (वत्स शार्ङ्गरव, अनुगच्छत्येषा करुणपरिदेविणी शकुन्तला प्रत्यादेशकलुषे भर्तरि किं वा पुत्रिका मे करोतु।) [131]

शार्ङ्गरवः - (पुरोधसा संज्ञितः प्रतिनिवृत्त्य) आः पुरोभागे, किम् इदम् स्वातन्त्र्यम् अवलम्ब्यते। [132]

(शकुन्तला भीता वेपते) [133]

शार्ङ्गरवः - शृणोतु भवती। [134]

यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा त्वम् असि किं पितृशोकदया त्वया।
अथ तु वेत्सि शुचि व्रतमात्मनः पतिगृहे तव दास्यमपि क्षमम्॥ 5-27॥ [135]

तिष्ठ, साधयामो वयम्। [136]

राजा - भोस्तपस्विन्, किमत्रभवतीम् विप्रलभसे। पश्य, [137]

कुमुदान्येव शशाङ्कस्सविता बोधयति पङ्कजान्येव।
वशिनां हि परपरिग्रहसंश्लेषपराङ्मुखी वृत्तिः॥ 5-28॥ [138]

शार्ङ्गरवः - राजन्, अथ पूर्वपरिग्रहोऽन्यासङ्गाद् विस्मृतो भवेत्, तदा कथम् अधर्मभीरुः। [139]

राजा- (सोमरातं प्रति[1]) भवन्तम् एव गुरुलाघवं प्रक्ष्यामि। [140]

मूढः स्याम् अहमेषा वा वदेन् मिथ्येति संशये।
दारत्यागी भवाम्यहो परस्त्रीस्पर्शपांसुलः॥ 5-29॥ [141]

पुरोधाः- देव, विचारय, यदि तावद् एवम् क्रियते। [142]

राजा - अनुशास्तु मां भवान्। [143]

पुरोधाः - अत्रभवती तावद् आप्रसवाद् आपन्नसत्त्वा मद्गृहे तिष्ठतु। भूतमिदम् उच्यते - त्वं साधुभिरादिष्टः प्रथमं चक्रवर्तिनं जनयिष्यसीति। स चेन्मुनिदौहित्रस्तल्लक्षणोपपन्नो भविष्यति इति ततः प्रतिनन्द्य शुद्धान्तमेनां प्रवेशयिष्यसीति। विपर्यये पितुरस्यास्समीपगमनम् उपस्थितम् एव। [144]

राजा- यथा गुरुभ्यो रोचते। [145]

---

1. इयमस्मद्-योजना।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

पुरोधाः- वत्से, अनुगच्छ माम्। [146]

शकुन्तला -(रुदती)भअवदि वसुहे, देहि मे विअरं। (भगवति वसुधे, देहि मे विवरम्।) [147]

(इति निष्क्रान्ता सह सकलैः पुरोधसा च) [148]

राजा- (शापव्यवहितस्मृतिः शकुन्तलाम् एव चिन्तयति।) [149]

॥ नेपथ्ये॥

आश्चर्यम् आश्चर्यम्। [150]

राजा- (कर्णं दत्त्वा) किं नु खलु स्यात्। [151]

(प्रविश्य पुरोहितः) देव, अद्भुतम् खलु संवृत्तम्। [152]

राजा- किमिव। [153]

पुरोधाः- परावृत्तेषु कण्वशिष्येषु,

सा निन्दन्ती स्वानि भाग्यानि
बाला बाहूत्क्षेपं क्रन्दितुं च प्रवृत्ता। [154]

राजा- किं च, [155]

पुरोधाः-

स्त्रीसंस्थानं चाप्सरस्तीर्थमाराद्।
आक्षिप्यैव ज्योतिरेनाम् तिरोऽभूत्॥ 5-30॥ [156]

(सर्वे विस्मिताः) [157]

राजा - भगवन्, प्रागेव सोऽस्माभिरर्थः प्रत्यादिष्ट एव। किं वृथा तर्केणान्विष्टेन। विश्रमामि। [158]

पुरोधाः- विजयस्व। (इति निष्क्रान्तः) [159]

राजा- (सखेदम्) वसुमति, पर्याकुलोऽस्मि। शयनभूमिम् आदेशय। [160]

प्रतीहारी- (सादरम्) इदो इदो देवो। (इत इतो देवः।) (परिक्रामति) [162]

राजा - (आत्मगतम्)

कामं प्रत्यादिष्टां स्मरामि न परिग्रहं मुनेस्तनयाम्।
बलवत् तु दूयमानं प्रत्यायतीव सा हृदयम्॥ 5-31॥ [163]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे) [164]

॥ इति पञ्चमोऽङ्कः॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ षष्ठोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशति नागरिकस्यालः, पश्चाद् बद्धं पुरुषमादाय रक्षिणौ च) [1]

रक्षिणौ - (पुरुषं ताडयित्वा) अले कुम्भिलआ, कहेहि कहिं तए एशे महामणिपत्थलुक्किण्ण णामक्खले लाअकीअङ्गुलीअए समासादिदे। (अरे कुम्भिलक, कथय कुत्र त्वयैषा महामणिप्रस्तरोत्कीर्ण नामाक्षरो राजकीयाङ्गुलीयकस्समासादितः।) [2]

पुरुषः - (भयं नाटयित्वा) पसीदन्तु पसीदन्तु भादुअमिच्चा। हगे खु ईदिसस्स कम्मणो कले?।
(प्रसीदतु, प्रसीदतु भ्रातृकमिश्राः। अहम् खलु ईदृशस्य कर्मणः कुर्वे?।) [3]

प्रथमः - किं णु खु शोहणो बम्हणे त्ति कलिअ लञ्ञा पदिग्गहे दिण्णे। (किं नु खलु शोभनो ब्राह्मण इति कृत्वा राज्ञा प्रतिग्रहो दत्तः।) [4]

पुरुषः - जाणअ, दाणिं हगे सक्कावदालवासिके धीवले। (जानक, इदानीम् अहम् शक्रावतारवासिको धीवरः।) [5]

द्वितीयः - पाडच्चल, किं खु दे अम्हेहिं जादी पुच्छिदा। (पाटच्चर, किं खलु तेऽस्माभिर्जातिः पृष्टा।) [6]

स्यालः - सूचअ, कधेदु सव्वं अणुक्कमेण। मा णं अन्तरा पडिबन्धिट्ठ। (सूचक, कथयतु सर्वमनुक्रमेण।
मा एनम् अन्तरा प्रतिबन्धिष्ठ।) [7]

रक्षिणौ- जं आउत्ते आणवेदि। (पुरुषं प्रति) भण भण। (यदावुत्त आज्ञापयति। भण भण।) [8]

पुरुषः- से हगे जालपडिसादेहिं मश्चबन्धणोवाएहिं कुडुम्बभलणं कलेमि। (सोऽहं जालपडिसादिभि- र्मत्स्यबन्धनोपायैः कुटुम्बभरणं करोमि।) [9]

स्यालः - (प्रहस्य) विशुद्धो दाणिं दे आजीओ। (विशुद्ध इदानीं त आजीवः।) [10]

पुरुषः - भट्टा,

सहजं किल जं पि णिन्दिदं ण हि तं कम्म विवज्जणीअए।
पशुमालककम्म दालुणे अणुकम्पामिदु एव सोत्तिए॥ 6-1॥

(सहजं किल यदपि निन्दितं न हि तत्कर्म विवर्जनीयकम्।
पशुमारककर्म्मदारुणोऽनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रियः॥ 6-1॥) [11]

स्यालः - तदो तदो। (ततस्ततः) [12]

पुरुषः - अधेक्कदिअशे खण्डशो लोहिदमच्छे मए कप्पिदे। जाव तस्स उदलब्भन्तला एदं रअण-भासुलं अङ्गुलीअं पेक्खामि।। पश्चा इध णं विक्कआअ दंशअन्ते गहिदे भावमिश्शेहिं। इत्तिके दाव एदश्श आगमे। अधुणा मालेध कुट्टेध वा। (अथैकदिवसे खण्डशो रोहितमत्स्यो मया कल्पितः यावत् तस्योदराभ्यन्तर एतद् रत्नभासुरम् अङ्गुलीयकं प्रेक्षे। पश्चाद् इहैतद् विक्रयाय दर्शयन् गृहीतो भावमिश्रैः। एतावान् तावद् एतस्यागमः, अधुना मारयत कर्तयत वा।) [13]

स्यालः - (अङ्गुलीयकम् आघ्राय) जाणअ, मच्छोदरसण्ठिदं ति णत्थि संदेहो। तधा अअं से विसगन्धो, आगमो दाणिं एदस्स विमरिसिदव्वो। ता एध राअउलं येव गच्छम्ह। (जानक, मत्स्योदर-संस्थितम् इति नास्ति सन्देहः। तथायम् अस्य विस्रगन्धः, आगम इदानीमेतस्य विमर्ष्टव्यः। तद् एतम् राजकुलम् एव गच्छामः।) [14]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

रक्षिणौ - गश्च णाध गण्ठिभेदआ। (सर्वे परिक्रामन्ति) (गच्छ नाथ ग्रन्थिभेदक।) [15]

स्यालः - सूचअ, इह मं गोउलदुव्वारे अप्पमत्ता पडिवालेद, जाव इमं जहागमं अङ्गुलीअअं भट्टिणो उवणिअतदीअसासणं पडिच्छअ णिक्कमामि। (सूचक, इह मां गोकुल[1]द्वारेऽप्रमत्तौ प्रतिपालयतं यावद् इदं यथागमं अङ्गुलीयकं भर्तुरुपनीय तदीयशासनं प्रतीष्य निष्क्रमामि।) [16]

उभौ - पविसदु आउत्ते सामिपसादाअ। (प्रविशत्वाबुत्तस्स्वामिप्रसादाय) [17]

(स्यालो निष्क्रान्तः।) [18]

प्रथमः - जाणआ, चिलाअदि आउत्ते। (जानक, चिरायत्याबुत्तः।) [19]

द्वितीयः - णं अवशलोवशप्पअणिआ लाआणो। (ननु अवसरोपसर्पणीया राजानः।) [20]

प्रथमः - वअश्शा, फुलन्ति मम हत्था इमश्श वशणं पिणद्धुं। (वयस्य, स्फुरतो मम हस्तावस्य व्यसनं पिनद्धुम्।) [21]

(पुरुषं निर्दिशति) [22]

पुरुषः- णालहदि भादुभादुके अकालमालके भविदुम्। (नार्हति भ्रातृभ्रातृकोऽकालमारको भवितुम्।) [23]

द्वितीयः - (विलोक्य) आगच्छदु अम्हाणं ईशले, पदिगिण्हिअ लाअशाशणं। (पुरुषं प्रति) शउलाणं मुहं पेक्खशि, अध वा गिद्धशिआलाणं बली भविश्शशि। (आगच्छतु अस्माकमीश्वरः, प्रतिगृह्य राजशासनम्। शकुलानां मुखं प्रेक्षसेऽथवा गृध्रशृगालानां बलिर्भविष्यसि।) [24]

(प्रविश्य) स्यालः - सिग्घं सिग्घं एदम्। (इत्यर्धोक्ते) (शीघ्रं शीघ्रम् एतम्।) [25]

पुरुषः - हा हदे म्हि। (हा हतोऽस्मि।) (इति विषादं नाटयति) [26]

स्यालः - मुञ्चेध रे मुञ्चेध जालोवजीविणं। उववण्णो से किल अङ्गुलीअअस्स आगमो। अम्हसामिणा येव मे कधिदं। (मुञ्चतं रे मुञ्चतं जालोपजीविनम्। उपपन्नोऽस्य किल अङ्गुलीयकस्यागमः। अस्मत्स्वामिनैव मे कथितम्।) [27]

रक्षिणौ- जं आणवेदि आउत्ते। (यद् आज्ञापयत्याबुत्तः।) [28]

प्रथमः - जमवशदिं गदुअ गुडखण्डं च दइअ पडिणिअत्ते। (पुरुषं मुञ्चति) (यमवसतिं गत्वा, गुडखण्डं च दत्त्वा[2] प्रतिनिवृत्तः।) [29]

पुरुषः- (पुरुषः स्यालं प्रणम्य) भट्टा, तव केलके मे जीविदे। (भर्तः, त्वदीयो मे जीवितः[3]।) [30]

स्यालः - उत्थेहि। एस भट्टिणा अङ्गुलीअअ-मुल्लसम्मिदो पारितोसको वि दे दाविदो। (उत्तिष्ठ। एष भर्त्राङ्गुलीयकमूल्यसम्मितः पारितोषिकोऽपि ते दापितः।) [31]

पुरुषः - (सहर्षम् प्रगृह्य) अणुगिहिदो म्हि। (अनुगृहीतोऽस्मि।) [32]

प्रथमः- तं णाम अणुगिहिदे जं शूलादो अवदालिअ हत्थिकन्धे पडिच्छिदे। (तथा नामानुगृहीतो यच्छूलाद् अवतार्य हस्तिस्कन्धे प्रतिष्ठापितः।) [33]

द्वितीयः - आउत्त, पालिदोस कधेदि महालह-लअणेण तेण अङ्गुलीअएण भट्टिणो पढमबहुमदेण होदव्वम्। (आबुत्त, पारितोषिकः कथयति महार्घरत्नेन तेनाङ्गुलीयकेन भर्तुः प्रथमबहुमतेन भवितव्यम्।) [34]

---

1. प्राकृतप्रकाशे "(अयुक्तस्यानादौ) इत्यधिकारे, कगचजतदपयवां लोपः। (अ. 2- सू. 2)" इत्यनेन गोकुल-शब्दात् ककारस्य लोपे सति "गोउल" इति प्राप्यते, यथा बकुलः - बउल इति भवति।
2. का.-पाठ एव यमसदनात्प्रतिनिवर्तनस्य समुपलभ्यतेऽयं हेतुः। स च संग्राह्यः पाठः।
3. देव.-पाठ एव "अथ कीदृशो मे आजीव" इति। एतच्चासङ्गतम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

स्यालः - ण अ तस्सिं महालह-लअणं त्ति बहुमाणं भट्टिणो तक्केमि। (न च तस्मिन् महार्घरत्नम् इति बहुमाणं भर्तुः तर्कयामि।) [35]

उभौ - किं खु। (किं खलु) [36]

स्यालः - तक्केमि तस्स दंसणेण कोवि अहिलइदो जणो भट्टिणा सुमरिदो त्ति, जदो तं [पेक्खिअ] मुहूत्तं पकिदिगम्भीरो वि पय्युस्सुअमनो संवुत्तो। (तर्कयामि तस्य दर्शनेन कोऽप्यभिलषितो जनो भर्त्रा स्मृत इति। यतस्तद् प्रेक्ष्य मुहूर्तं प्रकृतिगम्भीरोऽपि पर्युत्सुकमनास्संवृत्तः।) [37]

द्वितीयः - साधु मन्तिदं णाम आउत्तेण। (साधु मन्त्रितं नामावुत्तेन।) [38]

प्रथमः - णं भणामि इमश्श कदे मच्छालिआ-शत्तुणो त्ति। (पुरुषं सासूयं[1] पश्यति) (ननु भणाम्यस्य कृते मत्स्यलिका-शत्रोरिति।) [39]

पुरुषः - भट्टा, इदो अद्धं तुम्हाणंशुमणोमुल्लं होदु। (भर्तः, इतोऽर्धम् युष्माकं सुमनोमूल्यं भवतु।) [40]

उभौ- इत्तिके जुज्जदि। (एतावत् युज्यते।) [41]

स्यालः - धीवल, महत्तलए हि सम्पदं पिअवअस्सकोसि मे संवुत्तो। कादम्बिलिसक्खिअं च अम्हाणं पढमसोहिदं इच्छिअदि। ता एहि सुण्डिअसालं गच्छम्ह। (धीवर, महत्तरको हि साम्प्रतं प्रियवयस्यकोऽसि मे संवृत्तः। कादम्बरीसाक्षिकं च अस्माकं प्रथमसौहृदम् इष्यते। तद् एहि शुण्डिकशालां गच्छामः।) [42]

(इति निष्क्रान्ताः) [43]

॥ प्रवेशकः॥ [44]

॥ ततः प्रविशत्याकाशयानेनाऽक्षमाला॥ [45]

अक्षमाला - णिव्वत्तिदं मए पय्याअणिव्वटत्तणीअं अच्छरा-तित्थ-सण्णीज्झं। ता जाव इमस्स राएसिणो उदन्तं पच्चक्खीकरेमि। मेणआ-सम्बन्धेण सरीरभूदा मे सउन्तला। ताए अ एतण्णिमित्तं य्येव संदिट्ठपूरव म्हि। (परिक्रम्य पुरस्समन्ताद् अवलोक्य च)किं णु खु उसवंदिणे वि णिरूसवारम्भं विअ राअउलं दीसदि। अध वा, अत्थि मे विभवो पणिधानेन सव्वं जाणिदुं।

किं तु सहिए आदरो मे आणिदव्वो। भोदु, इमाणां दाव उज्जाणवलिणं तिरक्करिणीपच्छण्णा पासपरिवत्तिणी भविअ उवालभिस्से। (तथा करोति)। (निर्वर्तितं मया पर्यायनिर्वतनीयम् अप्सरस्तीर्थसान्निध्यम्। तद् यावद् अस्य राजर्षेरुदन्तं प्रत्यक्षीकरोमि। मेनकासम्बन्धेन शरीरभूता मे शकुन्तला। तया चैतन्निमित्तम् एव सन्दिष्टपूर्वास्मि। किं नु खलूत्सवंदिनेऽपि निरुत्सवारम्भमिव राजकुलं दृश्यते। अथ वास्ति मे विभवः प्रणिधानेन सर्वं ज्ञातुम्। किन्तु सख्यादरो म आनीतव्यः। भवतु, एषां तावदुद्यानपालिनीनां तिरस्करिणी-प्रच्छन्ना पार्श्वपरिवर्तिनी भूत्वोपालभिष्ये।) [46]

(ततः प्रविशति चूताङ्कुरम् अवलोकयन्त्युद्यानपालिका[2] तस्याश्च पृष्टतोऽपरा) [47]

प्रथमा- कधं उवत्थिदो मधुमासो[3]। [48]

---

1. एतस्मादेव कारणाद् धीवरः स्वकीयस्य पारितोषिकात् किमपि द्रव्यं रक्षकाय / नागरिकाय प्रददाति।
2. का.-पाठेषु सर्वत्र "चेटी" ति प्राप्यते। किन्तु कोकिला मधुमक्षिका चात्रोद्यान-पालिका-रूपेण ते स्त्रीवेश-धारिण्यौ प्रस्ताविते स्यातामिति प्रतीयते, निसर्गप्रधानत्वादस्य नाटकस्य। न स्यातामेते सामान्ये चेट्यौ।
3. मैथिल-पाठानुरोधात्स्वीकृतमिदं गद्यवाक्यम्। इत आरभ्य (48 उक्ति-क्रमांकात्) 53 पर्यन्तं पुनर्गठितः पाठ्यांशः प्रायो मैथिलपाठनुसारी दीयते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

आअम्बहरिअवेण्टं ऊससिअं विअ वसन्तमासस्स।
दिट्ठं चूअङ्कुरअं छणमङ्गलअं णिअच्छामि[1]॥ 6-2॥

आताम्रहरितवृन्तम्[2] उच्छ्वसितमिव वसन्तमासस्य।
दृष्टम् चूताङ्कुरं क्षणमङ्गलं पश्यामि॥ 6-2॥ [49]

द्वितीया - (उपसृत्य) हला परहुदिए, किं णेदं एआइणी मन्तेसि। (हले परभृतिके, किम् इदानीम् एकाकिनी मन्त्रयसि।) [50]

प्रथमा - सहि महुअरिए, चूदकलिअं[3] पेक्खिअ उम्मत्ता परहुदिआ भोदि। तव उण कालो मदविब्भमुग्गीअदाणं। सहि, अवलम्बस्स जाव अग्गपादपडिट्ठापिदा भविअ कामदेवस्स अच्चणं करेमि।

(सखि मधुकरिके,चूतकलिकां प्रेक्ष्योन्मत्ता परभृतिका भवति। तव पुनः कालो मदविभ्रमोद्गीतानाम्। सखि, अवलम्बस्व यावद् अग्रपादप्रतिष्ठापिता भूत्वा कामदेवस्यार्चनं करोमि[4]।) [51]

द्वितीया[5] - जदि ममा वि अद्धं अच्चणअफलस्स। (यदि ममाप्यर्धम् अर्चनकफलस्य।) [52]

प्रथमा[6] - हला, अभणीदे पि एदं भोदि। जदो एक्कम् येव णो दुधात्थिदं सरीरम्। (हले अभणितेऽप्येतद् भवति, यत एकम् एव नो द्विधास्थितं शरीरम्।) [53]

(सख्यावलम्बितं कृत्वा[7] चूतभङ्गं नाटयति) [54]

अम्महे, चूदपसवो एसो बन्धणभङ्गसुरहि वादि। (कपोतकं कृत्वा) णमो भअवदे मअरद्धजाअ। (अहो[8], चूतप्रसव एष बन्धनभङ्ग-सुरभिर्वाति। नमो भगवते मकरध्वजाय।) [55]

अरिहसि मे चूअङ्कुर दिण्णो कामस्स गहिअधनुअस्स।
सण्ठविअ-जुवइ-लक्खो पच्छपच्छाखदिदो सरो होदुं॥ 6 -3॥

(अर्हसि मे चूताङ्कुर दत्तः कामस्य गृहीतधनो-।
स्संस्थापितयुवतिलक्षः पश्चात् प्रतिस्खलितश्शरो भवितुम्॥ 6 -3॥) [56]

(चूताङ्कुरं क्षिपति) [57]

कञ्चुकी - (प्रविश्य रुषितः कञ्चुकी) मा तावद् अनात्मज्ञे, देवेनाप्रमुखत एव प्रतिषिद्धे वसन्तोत्सवे त्वमत्र मञ्जरीभङ्गम् आरभसे। [58]

उभे - (भीते) पसीदद्दु अय्यो। अगहीदत्था खु अम्हे। (प्रसीदत्वार्यः। अगृहीतार्थाः खलु वयम्[9]।) [59]

कञ्चुकी - भवतु, पुनर्न एवम् वर्तितव्यम्। [60]

---

1. केवलं बं.-पाठे समुपलभ्यते परिशुद्धा पथ्याऽऽर्या, नान्यत्र। अतो बं.-पाठानुरोधादियं प्रदीयते।
2. दाक्षिणात्य-पाठेऽत्र "चूतं हर्षितपिककमि" ति नवीनार्या प्रदीयते। (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-25)
3. का.-मै.-बं.-पाठेषु "चूदलतिअं=चूतलतिकामि" ति प्राप्यते। किन्तु आम्रमञ्जरी चूतलतिकेति पदवाच्या न भवति। अतो दाक्षि.-देव. -पाठानुरोधादत्र "चूदकलिअं=चूतकलिकामि" ति स्वीकृतम्।
4. परभृतिकामवलम्ब्य मधुकरिकावतिष्ठेदित्येव तर्कसंगतं प्रतिभाति। अत्र मैथिल-पाठ एव श्रद्धेयः प्रतीयते।
5. का.-बं.-दाक्षि.-देव.-पाठेषूक्तिरियं प्रथमाया मुखे वर्तते। तादृशी योजना तु न समीचीना प्रतिभाति।
6. का.-बं.-दाक्षि.-देव.-पाठेषूक्तिरियं द्वितीयाया मुखे वर्तते। तादृशी योजना तु न समीचीना प्रतिभाति।
7. मैथिल-पाठे "सख्यवलम्बितकेन नाट्येने" ति।, बंगीय-पाठे "सख्यामि" ति सप्तमी।
8. इतः परम् "अप्रतिबुद्धोऽपी" ति शब्दः प्रक्षिप्तः प्रतिभाति। अतश्च निष्कासितः।
9. का.-मै.-बं.-दाक्षि.-देव.-पाठेष्वितः परं "चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका०" इति श्लोकः प्राप्यते। किन्तु 57 87, एवं 89 इत्युक्ति-क्रमांकेषु पूर्वापरविरोधादयं प्रक्षिप्त एवेति सिध्यति। (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-26)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

उभे- अय्य, कोदूहल्लं जं इमिणा जणेण सोदव्वं ता कधेदु, अय्यो किं णिमित्तं भट्टिणा वसन्तकोमुदी पडिसिद्ध त्ति। (आर्य, कौतुहल्यं यद् अनेन जनेन श्रोतव्यं तत् कथयत्वार्यः किं निमित्तं भर्त्रा वसन्तकौमुदी प्रतिषिद्धेति।) [61]

अक्षमाला- ऊसवपिआ राआणो। एत्थ गुरुणा कारणेण होदव्वं। (उत्सवप्रिया राजानः। अत्र गुरुणा कारणेन भवितव्यम्।) [62]

कञ्चुकी - बहुलीभूतम् एतत्। तत् किं न कथ्यते। अस्ति भवत्योः कर्णपथम् आयातं शकुन्तलाप्रत्यादेशकौलीनम्। [63]

उभे - अय्य, सुदं रट्ठिअमुहादो जाव अङ्गुलीअअदंसणं। (आर्य, श्रुतं राष्ट्रियमुखाद् यावद् अङ्गुलीयकदर्शनम्।) [64]

कञ्चुकी - तेन हि स्वल्पं कथयितव्यम्। यदा खलु स्वाङ्गुलीयकदर्शनाद् अनुस्मृतं देवेन सत्यम् ऊढपूर्वा मया रहसि तत्रभवती शकुन्तला। मोहात् प्रत्यादिष्टेति, तदा प्रभृत्येव पश्चात्तापपरिगतो देवः। [65]

कुतः -

रम्यं द्वेष्टि यथासुखं प्रकृतिभि र्न प्रत्यहं सेव्यते
शय्योपान्तविवर्तनैर्विगमयत्युन्निद्र एव क्षपाः।
दाक्षिण्येन ददाति वाचम् उचिताम् अन्तःपुरेभ्यो यदा
गोत्रेषु स्खलितं तदा भवति च व्रीडा-विलक्ष्यश्चिरम्॥ 6-4॥ [66]

अक्षमाला - पिअं मे। (प्रियं मे।) [67]

कञ्चुकी - प्रभवतो वैमनस्याद् उत्सवप्रतिषेध इति। [68]

प्रथमा - जुज्जदि। (युज्यते) [69]

(नेपथ्ये) [70]

एदु एदु भवं। (एतु एतु भवान्।) [71]

कञ्चुकी - (कर्णं दत्त्वा) अयं इत एवाभिवर्तते देवः। तत्स्वकर्मानुष्ठीयताम्। (इति निष्क्रान्ते उद्यानपालिके) [72]

(ततः प्रविशतः पश्चात्तापसदृशवेषो राजा विदूषकः प्रतीहारी च) [73]

कञ्चुकी - (राजानम् अवलोक्य) अहो सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वम् एवाकृतिविशेषाणाम्। समुत्सुकोऽपि शकुन्तलां प्रति प्रियदर्शनो देवः। [74], यः एषः -

प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनविधिर्वामप्रकोष्ठे श्लथं
बिभ्रत् काञ्चनम् एकमेव वलयं श्वासोपरक्ताधरः।
चिन्ताजागरणप्रतान्तनयनस्तेजोगुणाद् आत्मनः
संस्कारोल्लिखितो महामणिरिव क्षीणोऽपि नालक्ष्यते॥ 6-5॥ [75]

अक्षमाला - थाणे खु पच्चादेसविमाणिदा वि सउन्तला जं इमस्स किदे किल तम्मदि। (स्थाने खलु प्रत्यादेश-विमानितापि शकुन्तला यदस्य कृते किल ताम्यति।) [76]

प्रतीहारी - एदु एदु महाराओ। (एतु एतु महाराजः।) [77]

राजा - (ध्यानमन्दं परिक्रम्य) [78]

प्रथमं सारङ्गाक्ष्या प्रियया प्रतिबोध्यमानमपि सुप्तम्।
अनुशयदुःखायेदं हतहृदयं सम्प्रति विबुद्धम्॥ 6-6॥ [79]

अक्षमाला - ईदिसाइं से तवस्सिणीए भागधेआइं। (ईदृशान्यस्यास्तपस्विन्या भागधेयानि।) [80]

विदूषकः - (अपवार्य) लङ्घिदो एसो भूओ सउन्तलावादेण। ण आणे कधं किच्छिदव्वो भविस्सदि।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(लङ्घित एष भूयः शकुन्तलावातेन। न जाने कथं चिकित्सितव्यो भविष्यति।) [81]

कञ्चुकी – (उपगम्य) जयतु जयतु देवो महाराजः। मया तावद् राज्ञः प्रत्यवेक्षिताः प्रमदवनभूमयः यथाकामम् अध्यास्ताम् विनोदस्थानानि देवः। [82]

राजा – (प्रतीहारीं प्रति) वसुमति, मद्वचनाद् अमात्यपिशुनं ब्रूहि। चिरप्रबोधान्न सम्भावितम् अस्माभिरद्य धर्मासनमध्यासितुम्। यत् प्रत्यवेक्षितमार्येण पौरकार्यं तत् पत्रकमारोप्य दीयतामिति। [83]

प्रतीहारी – जं देवो आणवेदि। (यद् देव आज्ञापयति।) (इति निष्क्रान्ता) [84]

राजा – पार्वतायन, त्वमपि स्वनियोगम् अशून्यं कुरु। [85]

कञ्चुकी – तथा। (इति निष्क्रान्तः) [86]

विदूषकः – किदं भवदा णिम्मक्खिअं। सम्पदं सिसिरविच्छेदे रमणीए इमस्सिं पमदवणे सुहं विहरिस्सामो। (कृतं भवता निर्मक्षिकम्। साम्प्रतं शिशिरविच्छेदे रमणीयेऽस्मिन् प्रमदवने सुखं विहरिष्यामः।) [87]

राजा – वयस्य, यदुच्यते रन्ध्रोपरिपातिनोऽनर्था इति, तद् अव्यभिचारि[1]। पश्य, [88]

मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना
मम च मुक्तमिदं तमसा मनः।
मनसिजेन सखे, प्रहरिष्यता
धनुषि चूतशरश्च निवेशितः॥ 6-7॥ [89]

विदूषकः – दिट्ठ जाव। इमं दण्डअं चूदमम्मधए पाडए। (तिष्ठ यावत्। इमं दण्डकं चूतमन्मथके पातये[2]।) [90]

राजा– (सस्मितम्) भवतु, दृष्टं ब्रह्मवर्चसम्। सखे, अत्रोपविष्टः प्रियायाः किंचिद् अनु[प]कारिणीषु लतासु दृष्टिं विलोभयामि। [91]

विदूषकः – णं खु भअदा मेधाविणी लिविकरी सन्दिट्ठा। माहवीमण्डवे इमं खणं पडिवालइस्सं। तहिं मे चित्तफलए सुहत्थलिहिदं तत्थभोदीए सउन्तलाए पडिकिदिं आणेहि त्ति। (ननु खलु भवता मेधाविनी लिपिकरी सन्दिष्टा, माधवीमण्डप इमं क्षणं प्रतिपालयिष्यामि। तत्र मे चित्रफलके स्वहस्तलिखितं तत्रभवत्याः शकुन्तलायाः प्रतिकृतिम् आनयेति।) [92]

राजा – ईदृशं मे हृदयसंस्थानम्। तत् तम् एवादेशय माधवीमण्डपम्। [93]

विदूषकः – एदु भवं। (परिक्रामतः) (एतु भवान्।) [94]

(अक्षमालाऽनुगच्छति) [95]

विदूषकः – (विलोक्य) एसो मणिसिलापट्टकसणाहो माहवीमण्डवको विवित्तदाए णिसद्दं सागदेण विअ पडिच्छदि पिअवअस्सं। उवविसम्ह। णिसीददु भवं। (उभौ प्रविश्योपविष्टौ)

(एष मणिशिलापट्टकसनाथो माधवीमण्डपको विविक्ततया निश्शब्दं स्वागतेनेव प्रतिच्छति प्रियवयस्यम्। उपविशामः। निषीदतु भवान्।) [96]

अक्षमाला –(लतामाश्रित्य स्थिता[3]) [97]

---

1. इतः परं "उपहितस्मृतिरङ्गुलीमुद्रया०" इति श्लोकः प्राप्यते, स च प्रक्षिप्तः। (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-27)
2. विदूषकस्यानयैवोक्त्या सह पूर्वोक्तश्लोकस्यान्तिमचरणस्य सम्बन्धो वर्तते। न तूपहितस्मृतिरिति श्लोकस्य।
3. मैथिल-पाठे "लतासंस्थिता भूत्वा प्रेक्षिष्ये तावत् सख्याः प्रतिकृतिमि" त्यादिभिर्वचनैः स्वस्यागमनस्य प्रयोजनं विनिवेद्यते।, बंगीय-पाठेऽपि तादृशं वाक्यं श्रूयते।, काश्मीर-पाठे संक्षेपीकरणस्याशयो दृश्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा - (स्मरणमभिनीय) सखे माधव्य, सर्वम् इदं स्मरामि शकुन्तलायाः प्रथमदर्शनवृत्तान्ते, यत् कथितवान् अस्मि भवते, स भवान् प्रत्यादेशदिवसे मत्समीपगो नासीत्। प्रथममपि न त्वया कदाचित् संकथासु तत्रभवत्याः कीर्तितं नाम। न खलु अहमिव मिथस्संविदं स्मृतोऽसि। [98]

विदूषकः - ण विसुमरामि। किं तु सव्वं कहिअ तए [य्ये]व रहस्सभेदभीरुणा वुत्तं। परिहासविअप्पो एसो, ण भूदत्थो त्ति। मए वि मिप्पिण्ड-मन्द-बुद्धिणा तधा येव गिहिदम्। अवि अ, भविदव्वदा बलवदी। (न विस्मरामि। किन्तु सर्वं कथयित्वा, त्वयैव रहस्यभेदभीरुणा उक्तम्। परिहासविकल्प एष, न भूतार्थ इति। मयापि मृत्पिण्डमन्दबुद्धिना तथैव गृहीतम्। अपि च, भवितव्यता बलवती।) [99]

अक्षमाला - एवं णेदं। (एवमेतत्।) [100]

राजा - (ध्यात्वा) सखे, परित्रायस्व माम्, परित्रायस्व माम्। [101]

विदूषकः- किं णेदं। ईदिसं उवणदं। कदा उण सप्पुरिषा सोअबद्धधिय्या होन्ति। णं पवादेण वि गिरिओ णिप्पकम्पा। (किम् एतत्। ईदृशम् उपनतम्। कदा पुनस्सत्पुरुषाः शोकबद्धधैर्या भवन्ति। ननु प्रवातेनाऽपि गिरयो निष्प्रकम्पाः।) [102]

राजा - वयस्य, निराकरणविप्लवायाः प्रियायास्समवस्थाम् अनुस्मृत्य बलवद् अस्वस्थोऽस्मि। [103]

सा मया,

ततः प्रत्यादिष्टा स्वजनमनुगन्तुं व्यवसिता
स्थिता तिष्ठेत्युच्चैर्वदति गुरुशिष्ये गुरुसमे।
पुनर्दृष्टिं बाष्पप्रसरकलुषाम् अर्पितवती
मयि क्रूरे यत् तत् सविषमिव शल्यं दहति माम्॥ 6-8॥ [104]

अक्षमाला - अम्महे, ईदिसी कट्ठावत्था। इमस्स सन्तावेण अहं रमे। (अहो ईदृशी कष्टावस्था। अस्य सन्तापेनाहं रमे।) [105]

विदूषकः - अत्थि देव तक्को। केण तत्थभोदी आकासगामिणा अवहित त्ति। (अस्ति देव तर्कः। केन तत्रभवत्याऽकाश-गामिनाऽपहृतेति।) [106]

राजा - क इव देवताभ्योऽन्यः सम्भाव्यते। मेनका किल सख्यास्ते जन्मप्रतिष्ठेति श्रुतवान् अस्मि। तत्सखीभिस्ताम् [हृताम् इति] एव हृदयम् आशङ्कते। [107]

अक्षमाला - अम्मो, मोहो खु एसो रमणीओ, उण पडिबोहो।
(अहो मोहः खल्वेष रमणीयः, पुनः प्रतिबोधः।) [108]

विदूषकः - जदि एवं ता अत्थि खु समागमो वि कालेन तत्थभवदीए।
(यद्येवं तदस्ति खलु समागमोऽपि कालेन तत्रभवत्या।) [109]

राजा - कथमिव। [110]

विदूषकः - ण खु मादापिदरो भत्तुविरहिदं दुहिदरं चिरं पेक्खिदुं पारेदि।
(न खलु मातापितरौ भर्तृविरहितां दुहितरं चिरं प्रेक्षितुं पारयेते।) [111]

राजा - वयस्य,

स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो वा
क्लिष्टं नु तावत् फलमेव पुण्यम्।
आसन्नवृत्तेस्तद् अतीतम् एष,
मनोरथानाम् अतटप्रपातः॥ 6-9॥ [112]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

विदूषकः- भो, मा एवं भण। णं खु अङ्गुलीअअं येव णिदरसणं। एवं येव संभाविणो चिन्तणीया समागमा होन्ति। (भोः मैवं भण। ननु खल्वङ्गुलीयकम् एव निदर्शनम्। एवमेव संभाविनोऽचिन्तनीयास्समागमा भवन्ति।) [112]

राजा - (अङ्गुलीयं विलोक्य) अये, इदं तद् असुलभस्थानभ्रंशि शोचनीयम्। [114]

तव सुचरितम् अङ्गुलीय नूनं प्रतनु ममेव विभज्यते फलेन।
अरुणनखमनोहरासु तस्याश्च्युतमसि लब्धपदं यद् अङ्गुलीषु।। 6 - 10।। [115]

अक्षमाला - (आत्मगतम्) सहि, दूरे वत्तसे। एआइणि दाव कण्णसुहं अनुभवामि।

(सखि, दूरे वर्तस, एकाकिनी तावत् कर्णसुखमनुभवामि।) [116]

विदूषकः - भो वअस्स, इदं अङ्गुलीअअं केण उग्घादेण तत्थभोदिए हत्थसंसग्गं पाविदं।

(भो वयस्य, इदम् अङ्गुलीयकं केनोद्घातेन तत्रभवत्या हस्तसंसर्गम् प्रापितम्।) [117]

राजा - श्रूयताम्। यदा तपोवनात् स्वनगरगमनाय प्रस्थितं मां प्रिया सबाष्पमिदम् आह, कियच्चिरेणार्यपुत्रोऽस्माकं संस्मरिष्यतीति। [118]

विदूषकः - तदो तदो। (ततः ततः।) [119]

राजा - पश्चाद् इमां नाममुद्रां तदङ्गुलौ निवेशयता मया प्रत्यभिहितम्। [120]

एकैकमत्र दिवसे दिवसे मदीयं
नामाक्षरं गणय, गच्छसि यावदन्तम्।
तावत् प्रिये, मदवरोधगृहप्रवेशी
नेता जनस्तव समीपमुपेष्यतीति।। 6-11।। [121]

तच्च मोहात्तथा दारुणम् अनुष्ठितम्। [122]

अक्षमाला - रमणीओ दे विहिणा दंसिदो मग्गो। (रमणीयस्ते विधिना दर्शितो मार्गः।) [123]

विदूषकः - अध कधं दासीए पुत्तस्स रोहिदमच्छस्स बलिसं विअ एदं अंगुलीअअं मुहे पविट्ठम्।

(अथ कथं दास्याः पुत्रस्य रोहितमत्स्यस्य बडीशम् इवैतद् अंगुलीयकं मुखे प्रविष्टम्।) [124]

राजा - शचीतीर्थसलिलं किल वन्दमानायास्ते सख्या गङ्गास्रोतसि परिभ्रष्टम्। भवतु, उपालप्स्ये तावदेतत्। [125]

कथं नु तं बन्धुरकोमलाङ्गुलिं करं विहायासि निमग्नमम्भसि।

अथवा-

अचेतनं नाम गुणान् न लक्षयेन् मयैव कस्माद् अवधीरिता प्रिया।। 6-12।। [126]

अक्षमाला - पुव्वावरविरोधी एसो वुत्तन्तो वट्टदि। (पूर्वापरविरोध्येष वृत्तान्तो वर्तते।) [127]

राजा - अकारणपरित्यक्ता कदा नु प्रेक्षणीया भविष्यति। [128]

(ततः प्रविशति फलकहस्ता लिपिकरी) [129]

लिपिकरी -(समन्ताद् अवलोक्य) एसो खु भट्टा जाव णं उपसप्पामि। (उपसृत्य) जअदु जअदु भट्टा। इअं चित्तगदा भट्टिणी। (एषः खलु भर्ता, यावद् एनम् उपसर्पामि। जयतु जयतु भर्ता। इयं चित्रगता भर्त्री।) [130]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(चित्रफलकं दर्शयति[1]) [131]

विदूषकः - (विलोक्य) हे हे भो, सभावमहुरा आकीदि खु। साहु वअस्स साहु। किं बहुणा। सत्तानुप्पवेस संकाए आलवणकुदूहलं मं जणअदि। (हे हे भोः, स-भावमधुरा आकृतिः खलु। साधु वयस्य साधु। किं बहुना। सत्त्वानुप्रवेशशङ्कयालपनकुतूहलं मां जनयति।) [132]

अक्षमाला - अहो वअस्ससस्स वत्तिकारेहाए णिउणदा। जाणे सही अग्गदो मे तिट्ठदि। (अहो वयस्यस्य वर्तिकारेखाया निपुणता। जाने सख्यग्रतो मे तिष्ठति[2]।) [133]

राजा - (निःश्वस्य)

साक्षात् प्रियाम् उपगताम् अपहाय पूर्वं
चित्रार्पितामहमिमां बहु मन्यमानः।
स्रोतोवहां बहुनिकामजलाम् अतीत्य
जातोऽस्मि रे प्रणयवान् मृगतृष्णिकायाम्॥ 6-13॥ [134]

अक्षमाला - अअं य्येव सव्वं पडिवण्णो जम्हि वत्तुकामा। (अयमेव सर्वं प्रतिपन्नो यद् अस्मि वक्तुकामा।) [135]

विदूषकः - (निर्वर्ण्य) भो तिण्हो अत्थभोदीए(ओ) दीसन्ति। सव्वाओ दंसणीआ। कदमा इत्थ दीसदे सउन्तला। (भोः तिस्रोऽत्रभवत्यो दृश्यन्ते। सर्वा दर्शनीयाः। कतमा इह दृश्यते शकुन्तला।) [136]

अक्षमाला - मोहदक्खो तवस्सी। अवस्सं ण से पच्चक्खा सही। (मोहदक्षस्तपस्वी। अवश्यं नास्य प्रत्यक्षा सखी।) [137]

राजा - त्वं तावत् कतमां तर्कयसि। [138]

विदूषकः - (चिरं विलोक्य) तक्केमि जा एसा अवसेअसिणिद्ध पल्लवं असोअलदिअं संसिदा सिहिलकेसबन्धोव्वमन्तकुसुमेण बद्धसेअबिन्दुणा वदणकेण विसेस-णमिद-सा[हा]हिं बाहुलदाहिं ऊससिद-णीविणा वसणेण ईसि परिसन्ता विअ आलिहिदा एसा अत्थभोदी सउन्तला। इदराओ सहीओ। (तर्कयामि यैषावसेकस्निग्धपल्लवाम् अशोकलतिकाम् संश्रिता शिथिलकेशबन्धोद्वमत्कुसुमेन बद्धस्वेदबिन्दुना वदनकेन विशेष-नमित-शाखाभ्यां बाहुलताभ्यामुच्छ्वसित-नीविना वसनेनेषत्-परिश्रान्तेवालिखितैषात्रभवती शकुन्तला। इतरे सख्यौ।) [139]

राजा - निपुणो भवान्। अस्त्यत्र मे भावचिह्नम्। [140]

स्विन्नाङ्गुलीनिवेशो रेखाप्रान्तेषु दृश्यते मलिनः।
अश्रु च कपोलपतितं लक्ष्यमिदं वर्तिकोच्छ्वासात्॥ 6-14॥ [141]

मेधाविनि, अवलिखितम् एतद् विनोदनम् अस्माभिस्तद् गच्छ, वर्तिकास्तावद् आनय। [142]

लिपिकरी - अय्य माधव, अवलम्भ चित्तफलअं जाव गच्छामि। (इति विदूषकाय दत्त्वा निष्क्रान्ता) (आर्य माधव्य, अवलम्बस्व चित्रफलकं, यावद् गच्छामि।) [143]

विदूषकः - किं अवरं इत्थ अभिलिहिदव्वं। (किमपरम् इहाभिलिखितव्यम्।) [144]

अक्षमाला - असंसअं, जो जो सहीए मे अभिरुइदो पदेसो तं आलिहिदुकामो भविस्सदि त्ति तक्केमि। (असंशयम्। यो यस्सख्या मेऽभिरुचितः प्रदेशस्तं तम् आलिखितुकामो भविष्यतीति तर्कयामि।) [145]

---

1. मै.-पाठ इतः परं राजा भणति यदहो रूपमस्यालेख्यस्य। तथा हि- "दीर्घापाङ्गविसारि नेत्रयुगलम्०" इत्यादि। स च श्लोकः प्रक्षिप्तः। विप्रलब्धावस्थायां स्वकीयस्य चित्रालेखनस्य प्रशंसानर्हत्वात्। (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-28), ततश्च "अस्यास्तुङ्गमिव स्तनद्वयं०" इत्यपि श्लोकः प्रक्षिप्तः। (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-29)
2. मै.-पाठ इतः परं "यद्यत् साधु न चित्रेऽस्मिन् क्रियते तत्तदन्यथा०" इति क्षेपकः। (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-30)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा - माधव्य, श्रूयताम् -

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी
पादान्ते निभृतं निषण्णचमरो गौरीगुरोः पावने।
शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः
शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां[1] मृगीम्॥ 6-15॥ [146]

विदूषकः - (आत्मगतम्) तधा तक्केमि पूरिदमणेण चित्तफलअं कुच्चालआणं तवसाणं त्ति। (तथा तर्कयामि पूरितमनेन चित्रफलकं कूर्चालकानां तापसानाम् इति।) [147]

राजा - माधव्य, अन्यच्च शकुन्तलायाः प्रसाधनम् अभिप्रीतम् अत्र विस्मृतम् अस्माभिः। [148]

विदूषकः - किं विअ। (किमिव।) [149]

अक्षमाला - वणवासस्स तस्सा अ सोउमय्यस्स जं अणुसदिसं भविस्सदि त्ति। (वनवासस्य तस्याश्च सौकुमार्यस्य यद् अनुसदृशं भविष्यतीति।) [150]

राजा -

कृतं न कर्णार्पितबन्धनं सखे
शिरीषमागण्डविलम्बिकेसरम्।
न वा शरच्चन्द्रमरीचिकोमलं
मृणालसूत्रं रचितं स्तनान्तरे॥ 6-16॥ [151]

विदूषकः - किं णु अत्थभोदी रत्तकुवलअसोहिणा अग्गहत्थेण मुहं ओवारिअ चकिदचकिदा विअ ट्ठिदा।
(किं नु अत्रभवती रक्तकुवलयशोभिनाग्रहस्तेन मुखमपवार्य चकितचकितेव स्थिता।)
(दृष्ट्वा) [157]हे हे भो, एसो दासीए पुत्तो कुसुमपाडच्चरो महुअरो अत्थभोदीए वअणकमलं अभिलसदि। (हे हे भोः, एष दास्याः पुत्रः कुसुमपाटच्चरो मधुकरोऽत्रभवत्या वदनकमलम् अभिलषति।) [152]

राजा - ननु निवार्यताम् एष धृष्टः। [153]

विदूषकः - भवं य्येव अविणीदाणुसासी वारणे पभवदि। (भवान् एवाविनीतानुशासी वारणे प्रभवति।) [154]

राजा - युज्यते। अयि भोः, कुसुमलताप्रियातिथे! किं इतः परिपतनखेदम् अनुभवसि। [155]

एषा कुसुमनिषण्णा तृषितापि सती भवन्तम् अनुरक्ता।
प्रतिपालयति मधुकरी न खलु मधु त्वया विना पिबति॥ 6-17॥ [156]

अक्षमाला - अभिजादं खु वारिदो। (अभिजातं खलु वारितः।) [157]

विदूषकः - पडिसिद्धवामा एसा जादी। (प्रतिषिद्धवामैषा जातिः।) [158]

राजा - एवं भोः, न मे शासने तिष्ठसि। श्रूयताम् तर्हि सम्प्रति। [159]

अक्लिष्टबालतरुपल्लवलोभनीयं, पीतं मया सदयमेव रतोत्सवेषु।
बिम्बाधरं दशसि चेद् भ्रमर प्रियायास्त्वां कारयामि कमलोदरबन्धनस्थम्॥ 6-18॥ [160]

विदूषकः - एवं तिक्खदण्डस्स कधं ते ण भाईस्सदि। (प्रहस्य) एस(सो) उम्मत्तको खु। अहं पि ईदिसस्स संसग्गेण ईदिसवण्णो विअ संवुत्तो। (एवं तीक्ष्णदण्डस्य कथं ते न भेष्यति। एष उन्मत्तकः खलु। अहमपीदृशस्य संसर्गेण

1. यदा शकुन्तलाया नेत्रं कर्णोत्पलरेणुना कलुषितं भवति, तदा दुःषन्तेन तस्य प्रमार्जनं वदनमारुतेन कृतमिति तृतीयांकस्य प्रसंगस्य / दृश्यविशेषस्य स्मारणं समर्थनञ्चानेन (षष्ठांकस्य) श्लोकेन भवति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

ईदृशवर्ण इव संवृत्तः।) [161]

अक्षमाला – ममावि अत्तणो अनन्तरं गुणेहि जा अहं दाणिं पडिबुद्धा। (ममाप्यात्मनोऽनन्तरं गणय याहमिदानीं प्रतिबुद्धा।) [162]

राजा – प्रिये, स्थितोऽहम् एतावति। [163]

अक्षमाला – अहो धीरे वि जणे रसो पदं करेदि। (अहो धीरेऽपि जने रसः पदं करोति।) [164]

विदूषकः – भो चित्तम् खु एदम्। (भोः चित्रम् खलु एतत्।) [165]

राजा – (सविषादम्) वयस्य, किमिदम् अनुष्ठितम् पौरोभाग्यम्। [166]

दर्शनसुखम् अनुभवतस्साक्षाद् इव तन्मयेन हृदयेन।
स्मृतिकारिणा त्वया मे पुनरपि चित्रीकृता कान्ता॥ 6-19॥ (रोदिति) [167]

अक्षमाला– वअस्स, सुमरिदं तए पच्चादेसविमाणणं सउन्तलाए सहीए, दिट्ठं खु पच्चक्खं अम्हेहिं। (वयस्य, स्मृतं त्वया प्रत्यादेशविमाननं शकुन्तलायाः सख्याः, दृष्टं खलु प्रत्यक्षमस्माभिः।) [168]

लिपिकरी –(प्रविश्य लिपिकरी) भट्टा, देवीए कुलप्पभाए परिजणेण अन्तरा अवच्छिण्णो दे वत्तिकाकरण्डओ। (भर्तः, देव्याः कुलप्रभायाः परिजनेन[1] अन्तरावच्छिन्नस्ते वर्तिकाकरण्डकः।) [169]

राजा – भवतु, वयमप्यक्षमास्सम्प्रति वर्तिकाकर्मणि। [170]

अक्षमाला – बहुमाणा असे कुलप्पभा। अह वा,ण एदम् किं चि। विपञ्चीए खु असण्णिधाने एकतन्तुरपि अग्घदि। (बहुमान्याऽस्य कुलप्रभा[2]। अथ वा, नैतत् किञ्चित्। विपञ्च्याः खल्वसंनिधान एकतन्तु[3] रप्यर्घति।) [171]

राजा – वयस्य, पश्य, कथम् अविश्रामदुःखम् अनुभवामः। [172]

प्रजागरात् खिलीभूतस्तस्याः स्वप्नसमागमः।
बाष्पोऽपि न ददात्येनाम् द्रष्टुं चित्रगतामपि॥ 6-20॥ [173]

लिपिकरी –भट्टा, इदं पि दाणिं चित्तपडिकिदं पिङ्गलिआमिस्सीओ अवहट्टिदं यदन्ति (जं अत्थि)।
(भर्तः, इदमप्यिदानीं चित्रप्रतिकृतं पिङ्गलिकामिश्राभिः अवघट्टितं यदस्ति।) [174]

विदूषकः – छिण्णा दाणिं से आसा। (छिन्ना इदानीम् अस्य आशा।) [175]

राजा – हुं। (स्तनान्तरे हस्तं निक्षिपति) [176]

॥ नेपथ्ये॥ [177]

जअदु जअदु भट्टिणी। (जयतु जयतु भर्त्री।) [178]

विदूषकः – (कर्णं दत्त्वा) अवेध भो, मेधाविणिं मिगीं विअ अनुसरन्ती उवत्थिदा अन्तेउरव्वग्गी पिङ्गलिआ। (अपेत भोः, मेधाविनीं मृगीम् इवानुसरन्त्युपस्थितान्तःपुर-व्याघ्री पिङ्गलिका[4]।) [179]

---

1. मै.-पाठेषु राज्ञः पूर्वपरिणीता राज्ञी वसुमत्येव वर्तिकाकरण्डकमाच्छिनत्ति। केवलं काश्मीर-पाठे नास्ति तादृशमालेखनम्, तदवधेयम्। मैथिल-पाठादेव समारब्धः पूर्वपरिणीतायाः संघर्षः। ततश्चान्यैः पाठैस्तस्या-ऽनुसरणं कृतम्।
2. मै.-पाठ एव राज्ञो मुखादुच्यते "वयस्य, उपस्थिता देवी बहुमानगर्विते" ति। का.-पाठे नास्ति तादृशं वचः।
3. केवलं का.-पाठे समुपलभ्यमानेयमुपमा ध्यानार्हा। दुःषन्तस्य कृते शकुन्तला तु विपञ्ची वीणेवाभिमता, तस्याश्चाभाव एवेयं कुलप्रभा केवलमेकतन्तुवाद्यस्वरूपा वर्तते। अनया चोपमया शकुन्तलाविषयकप्रणयस्यापूर्वत्वं संसूच्यते, प्रमाणीक्रियते च तदक्षमालयेत्यपि ध्यानार्हम्॥
4. का.-पाठे राज्ञ्यः दासी पिङ्गलिकैवान्तःपुरव्याघ्रीरूपेणोल्लिखिता। तदनन्तरं मै.-पाठेषु विदूषकमुखात् सा वसुमत्येवान्तःपुरव्याघ्रीरूपेणोल्लिख्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा - वयस्य, रक्षेमाम् प्रियाप्रतिकृतिम्। [180]

विदूषकः - अत्ताणअं त्ति भणाहि। (आत्मानमिति भण।) [181]

अक्षमाला - सहि एसा पदिकिदी वि दे पडिवक्खस्स अलङ्घणीआ करीअदि। (सखि, एषा प्रतिकृतिरपि ते प्रतिपक्षस्यालङ्घनीया क्रियते।) [182]

विदूषकः - (फलकमादाय) एसो णं तहिं गोएमि जत्थ पारावदिं वज्जिअ अवरो ण पेक्खदि। (द्रुतपदं निष्क्रान्तः) (एष एनं तत्र गोपयामि यत्र पारावतीं वर्जयित्वाऽपरो न प्रेक्षते[1]।) [183]

(प्रविश्य पत्रहस्ता प्रतीहारी) [184]

जअदु जअदु देवो। (जयतु जयतु देवः) [185]

राजा - वसुमति, न खलु देव्यागता। [186]

प्रतीहारी - भट्टा, पत्तकहस्तं मं पेक्खिअ पडिणिवुत्ता। (भर्तः, पत्रकहस्तां मां प्रेक्ष्य प्रतिनिवृत्ता।) [187]

राजा - कालज्ञा कार्योपरोधं मे परिहरति। [188]

प्रतीहारी - देव, अमच्चो विण्णवेदि। अत्थजादस्स गणणाबहुलदाए एक्कं येव पूरकय्यं अवेक्खिदं। तं देवो सोढुं अरिहदि। (देव, अमात्यो विज्ञापयति। अर्थजातस्य गणनाबहुलतयैकमेव पौरकार्यम् अपेक्षितम्। तद् देवस्सोढुम् अर्हति।) [189]

राजा - मेधाविनि, वाच्यताम्। [190]

लिपिकरी - जं भट्टा आणवेदि। (यद् भर्ता आज्ञापयति।) (पत्रकं प्रसार्य वाचयति) "विदितम् अस्तु देवपादानां, यथा धनवृद्ध इति यथार्थनामा वणिग् वारिपथोपजिवी नौ-व्यसने विपन्नः। स चानपत्यः। तस्य कोटिशतसंख्यातं वसु। तदिदानीं राजार्थमापद्यते। श्रुत्वा राजा प्रमाणमिति।" [191]

राजा - (आकम्पितः) कष्टा खल्वनपत्यता। वसुमति, महाधनत्वाद् बहुपत्नीकेन तत्रभवता भवितव्यम्। विचार्यतां यदि कदाचिद् आपन्नसत्त्वा कापि तस्य भार्या स्यात्। [192]

प्रतीहारी - देव, इदाणीमेव केसवसेट्ठिणो दुहिदा णिव्वुत्तपुंसवणा जाआ सुणीअदि। (देव, इदानीमेव केशवश्रेष्ठिनो दुहिता निर्वृत्तपुंसवना जाया श्रूयते।) [193]

राजा - ननु स गर्भः पित्र्यं रिक्थम् अर्हति। गच्छ एवम् आर्यपिशुनं ब्रूहि। [194]

प्रतीहारी - जं देवो आणवेदि। (यद् देव आज्ञापयति।) (प्रस्थिता) [195]

राजा - एह्येहि तावत्। [196]

प्रतीहारी - (निवृत्य) इअम्हि। (इयमस्मि।) [197]

राजा - अपि च, तत्रभवान् वक्तव्यः। किम् अनेन सन्ततिरस्ति नास्ति वेति। [198]

येन येन वियुज्यन्ते प्रजाः स्निग्धेन बन्धुना।
स स पापाद् ऋते तासां दुःषन्त इति घोष्यताम्॥ 6-21॥ [199]

प्रतीहारी - इदं णाम इत्थ घोसिदव्वम्। (निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य च) देव, काले घुट्ठमिव अहिणन्दिदं देवसासणं महाअणेण। (इदम् नामात्र घोषितव्यम्। देव, काले घुष्टम् इव अभिनन्दितं देवशासनं महाजनेन।) [200]

1. मै.-पाठे विदूषकस्य मुखे "यदि भवान् अन्तःपुरकूटपाशान्मोक्ष्यसे, तदा मां मेघप्रतिछन्नप्रासादे शब्दापये" त्यधिकं निरूप्यते। का.-पाठे नास्ति कुत्राप्यन्तःपुरकूटपाशः, अन्तःपुरवागुरा, अन्तःपुरकलहेत्यादि। अतो मैथिल-पाठादेव विविधैः प्रक्षेपैः समारभ्यते पूर्वपरिणीतानां पत्नीनां संघर्ष इति सुतरां सिध्यति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा - एवं, (दीर्घं निःश्वस्य) एवं सन्ततिच्छेदनिरवलम्बानां मूलपुरुषाणाम् अवसाने सम्पदः परम् उपतिष्ठन्ते। ममाप्यन्ते पुरुवंशश्रिय एष एव वृत्तान्तः। [201]

प्रतीहारी - पडिहदं आसङ्किदम्। (प्रतिहतम् आशङ्कितम्।) [202]

राजा - धिङ् माम् उपस्थितश्रेयोऽवमानिनम्। [203]

अक्षमाला - असंसअं सहिं य्येव हिदए करिअ णिन्दिदो णेण अत्ता। (असंशयं सखीम् एव हृदये कृत्वा निन्दितोऽनेनात्मा।) [204]

राजा-

> **संरोपितेऽप्यात्मनि धर्मपत्नी**
> **त्यक्ता मया नाम कुलप्रतिष्ठा।**
> **कल्पिष्यमाणा महते फलाय**
> **वसुन्धरा काल इवोप्तबीजा।। 6-22।।** [205]

लिपिकरी - (जनान्तिकम्) इमं पत्तकं पेसअन्तेण किं स्मारिदं अमच्चेण जं पेक्खिअ दाव भट्टिणो जलावसेको संवुत्तो। (विचिन्त्य) अध वा, ण सो अबुद्धिपुरवं पवट्टदि। (इमं पत्रकं प्रेषयता किं स्मारितम् अमात्येन, यत् प्रेक्ष्य तावत् भर्तुर्जलावसेकः संवृत्तः। अथवा, न सोऽबुद्धिपूर्वकं प्रवर्तते।) [206]

राजा - अहो दुःषन्तस्य संशयम् आरूढाः पिण्डभाजः। [207]

> **अस्मात् परं बत यथाश्रुतसंभृतानि**
> **को नः कुले निवपनानि करिष्यतीति।**
> **नूनं प्रसूतिविकलेन मया प्रमुक्तं**
> **धौताश्रुशेषम् उदकं पितरः पिबन्ति।। 6-23।।** [208]

अक्षमाला - सदिसं खु दे, ववधान-दोसेण अन्धआरो होदि। (सदृशं खलु ते, व्यवधानदोषेणान्धकारो भवति।) [209]

प्रतीहारी- देव, अलं सन्तापितेन। वअत्थो पहु अवरासु देवीसु अणुरूवपुत्तजम्मणा पुव्वपुरिसाणां अरिणो भविस्सदि त्ति[1]। (देव, अलं सन्तापितेन। वयःस्थः प्रभुरपरासु देवीष्वनुरूपपुत्रजन्मना पूर्वपुरुषाणाम् अनृणो भविष्यतीति।) [210]

राजा - (शोकावेगनाटितकेन) सर्वथा, [211]

> **आमूलशुद्धसंतति कुलमेतत् पौरवं प्रजावन्ध्ये।**
> **मय्यस्तमितमनार्ये देश इव सरस्वतीस्त्रोतः।। 6-24।।** [212]

(संमोहं गतः) [213]

परिजनः - (ससंभ्रमम् अवलोक्य) समस्ससदु समस्ससदु भट्टा। (समाश्वासितु समाश्वासितु भर्ता।) [214]

अक्षमाला- इदाणिं य्येव णं णिव्वुदं करेए। अधवा महदीहिं उण देवदाहिं एदं दंसिदम्। ण सक्कं मए अणणुण्णादाए हत्थसंसग्गं णेदुं। भोदु, जण्णभाओस्सुआओ देवाओ य्येव तहा करइस्सन्ति जधा एसो राएसि ताए सहधम्मचारिणीए समागमिस्सदि। [215]

---

1. इतः परं स्वगतोक्तिरूपेण "न मे वचनं प्रतिगृह्णाति। अथवानुरूपमेवौषधमातङ्कं निवारयती" ति वाक्यं वर्तते, तच्च प्रक्षिप्तत्वाद् दूरीकर्तव्यम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(नभोऽवलोक्य[1]) [216]

(सहर्षम्) करयिस्सन्ति कधं य्येव, तहि पेक्खामि। जाव इमिणा वुत्तान्तेण पिअसहिं समस्सासेमि। [217]

(उद्भ्रान्तकेन निष्क्रान्ता) [218]

(इदानीमेवैनं निर्वृतं कुर्वे। अथवा महतीभिः पुनर्देवताभिरेतद् दर्शितम्। न शक्यं मयाननुज्ञातया हस्तसंसर्गं नेतुम्। भवतु, यज्ञभागोत्सुका देवा एव तथा करिष्यन्ति यथैष राजर्षि-स्तया सहधर्मचारिण्या समागमिष्यति।। करिष्यन्ति कथमेव, तत्र प्रेक्षे। यावद् अनेन वृत्तान्तेन प्रियसखीं समाश्वासयामि।) [219]

(नेपथ्ये) [220]

अब्बम्हण्णं अब्बम्हण्णं भो। अब्बम्हण्णं।

(अब्रह्मण्यम् अब्रह्मण्यम् भोः। अब्रह्मण्यम्) [221]

राजा - (शनैः प्रत्याशवस्य।) (कर्णं दत्त्वा) अये माधव्यस्येवार्तनादः। [222]

लिपिकरी -तवस्सी, पिङ्गलिआमिसीणं मुहे पडिदो भविस्सदि। (तपस्वी पिङ्गलिकामिश्राणां मुखे पतितो भविष्यति।) [223]

राजा - वसुमति, गच्छ मद्वचनाद् अनिषिद्धपरिजनां देवीम् उपालभस्व[2]। [224]

प्रतीहारी - तथा। (इति निष्क्रान्ता) [225]

(नेपथ्ये) [226]

अब्बम्हण्णं अब्बम्हण्णं भो। (अब्रह्मण्यम् अब्रह्मण्यम् भोः।) [227]

राजा - परमार्थभीत एव भिन्नस्वरो ब्राह्मणः। कः कोऽत्र भोः। [228]

कञ्चुकी- (प्रविश्य) आज्ञापयतु देवः। [229]

राजा - किम् एष माधव्यो माणवकः क्रन्दति। [230]

कञ्चुकी - देव, यावद् अवलोकयामि। (निष्क्रम्य संभ्रमात् पुनः प्रविष्टः) [231]

राजा - पार्वतायन, न खलु किञ्चिद् अत्ययिकम् / अत्याहितम्। [232]

कञ्चुकी - नैवम्। परित्रायतां सुहृदं महाराजः[3]। [233]

(नेपथ्ये) [234]

अयि, धाव भो। (अयि, धाव भोः।) [235]

राजा - (सहसोत्थाय) (गतिभङ्गेन परिक्रामन्) वयस्य, न भेतव्यम्। न भेतव्यम्। [236]

---

1. केवलं का.-पाठ एव समुपलभ्यत एतादृशी रंगसूचना। नासूचितस्य पात्रस्य प्रवेशो निर्गमोऽपि वेति वचनानुसारं मातलेरागमनं संसूच्यतेऽत्र। न प्राप्यत एतादृशी दृश्य-योजनाऽन्यत्र कुत्रापि। तेन का.-पाठ एव ज्यायान् श्रद्धेयश्च।।
2. का.-मै.-बं.-पाठेषूक्तिद्वयमिदं (223 एवं 224) प्राप्यते। तदवधेयम्।, (दाक्षि.-देव.-पाठयोस्तन्नास्ति)
3. का.-मै.-बं.-पाठेष्वितः परं कञ्चुकिनो मुखे श्लोकद्वयं प्राप्यतेः- "प्रागेव जरसा कम्पस्सविशेषं तु साम्प्रतं॰" इति। (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-31), ततश्च "तस्याग्रभूमेर्गृहनीलकण्ठैरनेक॰" इति। (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-32) (दाक्षि.-देव.-पाठयोरस्यैव श्लोकस्यार्थो गद्येन वाक्येन निरूप्यते)।, एवञ्च राज्ञो मुखे "अहन्यहन्यात्मन एव तावज्ज्ञातुं प्रमादस्खलितं॰" इति। (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्या-33), अप्रासङ्गिकत्वात्सर्वे चैते निष्कासिताः। विदूषकस्यार्तस्वरस्य सम्भावितं कारणं यन्मेधाविन्योक्तं, राज्ञा च यथाऽनिषिद्धपरिजनायै देव्यै संदिष्टं, स एव मूलपाठः स्यात्। मूलपाठस्य संरक्षणेन सहैव केनापि कविंमन्यमानेन रंगकर्मिणा स्वकवित्वं प्रदर्शयितुं विदूषकग्रहणस्य कारणान्तरं परिकल्प्य प्रक्षिप्ताश्चैते त्रयः श्लोकाः। राज्ञो गृहाः केनापि प्रकाशेतरमूर्तिना सत्त्वेनाऽभिभूयन्त इत्यादिकं सर्वमनुपकारकम्, अप्रासंगिकञ्च, अतस्त्याज्यञ्च।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(नेपथ्ये) [237]

विदूषकः - कधम् दाणिं ण भाइस्सं। एसो मं को वि पच्छामोडिदसिरोधरं इक्खुं विअ थीरभङ्गं य्येव करेदुं इच्छदि। (कथमिदानीं न भेष्यामि। एष मां कोऽपि पश्चान्मोटितशिरोधरम् इक्षुम् इव स्थिरभङ्गम् एव कर्तुम् इच्छति।) [238]

राजा - (सदृष्टिक्षेपम्) धनुर्धनुस्तावत्। [239]

यवनी- (प्रविश्य शार्ङ्गहस्ता यवनी) जअदु जअदु भट्टा। एदं सरासणं हत्थावापसहिदम्। (जयतु, जयतु भर्ता। एतच्छरासनं हस्ताचापसहितम्।) [240]

राजा - (सशरं धनुरादत्ते।) [241]

(नेपथ्ये) [242]

एष त्वाम् अभिनवकण्ठशोणितार्थी,
शार्दूलः पशुमिव हन्मि वेष्टमानम्।
आर्तानाम् भयमपनेतुम् आत्तधन्वा
दुःषन्तस्तव शरणं भवत्विदानीम्॥ 6-25॥ [243]

राजा - (सरोषम्) कथं माम् एवम् उद्दिशति। तिष्ठ तिष्ठ कुलपांसन, अयम् इदानीं न भवसि।
(चापमादाय) पार्वतायन, सोपानमार्गम् आदेशय। [244]

कञ्चुकी - इत इतो देवः। (सर्वे सत्वरम् उपसर्पन्ति) [245]

राजा - (समन्ताद् विलोक्य) शून्यं खल्विदम्। [246]

(नेपथ्ये) [247]

विदूषकः - अभिधाव भो, अहं भवं पेक्खामि। एसो भवं मं न पेक्खदि। मज्जारगिहीदो विअ उन्दुरो णिरासो म्हि जीविदे संवुत्तो। (अभिधाव भोः, अहं भवन्तं प्रेक्षे। एष भवान् माम् न प्रेक्षते। मार्जारगृहीत इवोन्दुरो निराशोऽस्मि जीविते संवृत्तः।) [248]

राजा - भोः तिरस्करिणीगर्वित, मदीयम् अस्त्रं त्वां पश्यति। स्थितो भव। मा च वयस्यसम्पर्काद् विश्वासोऽभूत्। एष त्वदर्थं तमिषुम् संदधे। [249]

यो हनिष्यति वध्यं त्वां रक्ष्यं रक्षिष्यति द्विजम्।
हंसोऽपि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः॥ 6-26॥ [250]

(अस्त्रं सन्धत्ते) [251]

(प्रविश्य सम्भ्रान्तो विदूषकमुत्सृज्य मातलिर्विदूषकश्च) [252]

मातलिः - आयुष्मान्,

कृताः शरव्या हरिणा तवासुराः
शरासनं तेषु विकृष्यताम् इदम्।
प्रसादसौम्यानि सतां सुहृज्जने
पतन्ति चक्षूंषि न दारुणाः शराः॥ 6-27॥ [253]

राजा - (अस्त्रमुपसंहरन्) अये मातलिः। स्वागतम् देवराजसारथये। [254]

विदूषकः - (निकटमेत्य) भो अहं णेण पसुमारेण मारिदो इमम्हि। साअदेण अभिनन्दासि। (भोः अहम् अनेन पशुमारेण मारितः अस्मि। स्वागतेन अभिनन्दसि।) [255]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

मातलिः - (सस्मितम्) आयुष्मन्, श्रूयतां यदस्मि हरिणा भवत्सकाशं प्रेषितः। [256]

राजा - अवहितोऽस्मि। [257]

मातलिः - अस्ति कालनेमिप्रसूतिर्दुर्जयो नाम दानवगणः। [258]

राजा - श्रुतपूर्वो मया नारदात्। [259]

मातलिः -

सख्युस्ते स किल शतक्रतोरवध्यः
तस्य त्वं रणशिरसि स्मृतो निहन्ता।
उच्छेत्तुं प्रभवति यन्न सप्तसप्तिः
तन् नैशं तिमिरमपाकरोति चन्द्रः॥ 6-28॥ [260]

तद् भवान् गृहीतचाप एवेदानीम् ऐन्द्रं रथम् अधिरुह्य विजयाय प्रतिष्ठताम्। [261]

राजा - अनुगृहीतम् अनया मघवतस्सम्भावनया। अथ भवद्भिर्माधव्यं प्रति किमेवं प्रयुक्तम्। [262]

मातलिः - (सस्मितम् विदूषकम् अवलोक्य) तदपि कथ्यते। कुतोऽपि निमित्तान् मनस्तापाद् आयुष्मान् मया विक्लवो दृष्टः। पश्चात् कोपयितुम् आयुष्मन्तं तथा कृतवान् अस्मि। [263]

कुतः -

ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निर्विकृतः पन्नगः फणां कुरुते।
प्रायस्स्वं महिमानं क्षोभात् प्रतिपद्यते जन्तुः॥ 6-29॥ [264]

राजा - (जनान्तिकम्) वयस्य माधव्य, अनतिक्रमणीया दिवस्पतेराज्ञा। तदत्र परिगतार्थं कृत्वा मद् वचनाद् अमात्यपिशुनं ब्रूयाः - [265]

त्वन्मतिः केवला तावत् परिपालयितुं प्रजाः।
अधिज्यमिदम् अन्यस्मिन् कर्मणि व्यापृतं धनुः॥ 6-30॥ [266]

विदूषकः - जं भवं आणवेदि। (यद् भवान् आज्ञापयति।) (इति निष्क्रान्तः।) [267]

मातलिः - इत इत आयुष्मान्। [268]

(इति परिक्रम्य निष्क्रान्ताः सर्वे) [269]

॥ इति षष्ठोऽङ्कः॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ अथ सप्तमोऽङ्कः॥

(ततः प्रविशति नाकलासिका[1]) [1]

नाकलासिका – आणत्तं हि गुरुणा णारएण जधा-एदेसु य्येव दिवसेसु मच्चलोआदो उत्तिण्णेण राएसिणा दुस्सन्तेण भअवदो पुरन्दरस्स पिअआरिणा दाणव-वह-णिमिद्दं गन्तव्वं। जाव अभि[च्चि]अ इमं आपुच्छिअमाणो णिक्खिवदि ताव य्येव मए विबुहपच्चक्खं मङ्गलणिमित्तं किं पि पेक्खणअं दरसइदव्वं। ता तुमं कं पि लासिअं अण्णेसिअ सङ्गीदसालाअं आगच्छत्ति। ता जाव लासिअं अण्णेमि। (परिक्रम्यावलोक्य च) का पुण एसा गिहीदवरणा पच्छा हरिसिदुक्कण्ठिदा विअ इदो एवागच्छदि। (निपुणमवलोक्य) कधं पिअसही चूदमञ्जरी। ता जाव एदाए सह उवज्झाअसमीपं गच्छामि। (इति प्रतिपालयति) (आज्ञप्तं हि गुरुणा नारदेन यथैतेष्वेव दिवसेषु मर्त्यलोकाद् उत्तीर्णेन राजर्षिणा दुःषन्तेन भगवतः पुरन्दरस्य प्रियकारिणा दानववधनिमित्तं गन्तव्यं, यावद् अभ्यर्च्यममापृच्छ्यमानं निक्षिपति तावदेव मया विबुधप्रत्यक्षं मङ्गलनिमित्तं किमपि प्रेक्षणकं दर्शयितव्यम्। तत् त्वं कामपि लासिकाम् अन्वेष्य सङ्गीतशालामागच्छेति। तद् यावल्लासिकाम् अन्वेषयामि। का पुनरेषा गृहीतवर्णा पश्चाद् हर्षितोत्कण्ठेवेत एवागच्छति। कथं प्रियसखी चूतमञ्जरी। तद् यावद् एतया सहोपाध्यायसमीपं गच्छामि।) [2]

॥ ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टा लासिका सविस्मयं सहर्षं च॥ [3]

अहो, महप्पभावो राएसी दुस्सन्तो। (सासूयम्) अहो महाबलो सो हदो दुज्जओ दाणवबलो। (विचार्य)अहवा, दुस्सन्तो य्येव, जेण सारधि-दुदीएण य्येव अणेअ पहरण साहस्सइं विकिरन्तो खणेण य्येव णिहदो सो दुज्जअदाणवबलो॥ [4]

(नृत्यति) [5]

(अहो महाप्रभावो राजर्षिर्दुःषन्तः। अहो महाबलस्स हतो दुर्जयो दानवबलः। अथवा दुःषन्तः एव, येन सारथि-द्वितीयेनैवानेक-प्रहरण-साहसानि विकिरता क्षणेनैव निहतः स दुर्जयदानवबलः।) [6]

प्रथमा – (उपसृत्य) सहि चूदमञ्जरिए उक्कण्ठिदा विअ लक्खीअसि। (सखि चूतमञ्जरिके, उत्कण्ठितेव लक्ष्यसे।) [7]

द्वितीया – (विलोक्य) कधं पारिजाअमञ्जरी[2]। सहि, सव्वं कधयिस्सं। तुअं दाव कहिं पत्थिद त्ति पुच्छिस्सं। (कथं पारिजातमञ्जरी। सखि, सर्वं कथयिष्यामि। त्वं तावत् कुत्र प्रस्थितेति प्रक्ष्यामि।) [8]

प्रथमा – सहि, सङ्खेवेण कधइस्सं। अहं खु राएसिणो दुस्सन्तस्स दाणवविजअ-ववदेसेण अज्ज मङ्गलनिमित्तं किं पि पेक्खणअं दंसीअदि त्ति, उवज्झाअस्स आणाए उभे य्येव सआसं। (सखि, सङ्क्षेपेण कथयिष्यामि, अहं खलु

---

1. केवलं का.-पाठे समुपलभ्यमानोऽयं प्रवेशको विदुषां मतेन प्रक्षिप्तः। डॉ. एस. के. बेलवल्करमहाशयेन तस्य मौलिकता स्वीकृता, यतो हि- यथैव कालिदासस्यान्ययोर्नाटकयोः संगीत-नृत्ययोः समावेशस्तथैवात्रापि भवितुमर्हतीति तेषां मतिः। मदीयेन मतेन तु यावत्पर्यन्तम् "अविषयगमनमि" ति प्राकृतगाथायाः पाठशुद्धिर्न जायते, न च ज्ञायते तस्याः स्वारस्यं / प्रयोजनं तावत्पर्यन्तमस्य प्रवेशकस्य प्रक्षिप्तत्वं न घोषयितव्यम्। [काश्मीररंगावृत्तौ सा प्रावेशिकी ध्रुवारूपेणापि संनिवेशिता स्यात्।]

2. नाटकेऽस्मिन् 1. अनसूया-प्रियंवदा, 2. परभृतिका-मधुकरिका, 3. मेधाविनी-पिङ्गलिका, 4. संयता-सुव्रतादीनां स्त्रीयुगलं नैकत्र प्रयुक्तम्। तद्-दृष्ट्वाऽस्मिन् प्रवेशकेऽपि वर्तमानं पारिजातमञ्जरी-चूतमञ्जर्योः स्त्रीयुगलमपि मौलिकं स्यादिति प्रतीयते। तेनाप्ययं प्रवेशकः कदाचिन्मूलपाठे भवेदित्यनुमातुं शक्यते। एवञ्च, पारिजातमञ्जरी-पदेन मेनकात्मजा शकुन्तला, चूतमञ्जरी-पदेन च पार्थिवो दुःषन्तः (सहकारवृक्षस्वरूपः) संसूच्यते। स्वर्ग-पृथिव्योर्मेलनं द्योतयितुं लासिकाद्वयस्यात्र नर्तनं प्रस्तूयतेतरामिति दिक्॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजर्षेर्दुःषन्तस्य दानवविजयव्यपदेशेनाद्य मङ्गलनिमित्तं किमपि प्रेक्षणकं दर्शयत इति उपाध्यायस्याज्ञया उभे एव सकाशम् - - -।) [9]

द्वितीया - (सोत्कण्ठम्) आसि अवसरो एदस्स दाणिं पुणो मच्चलोअं पत्थिदे एदस्सिं महाराए कस्स दंसीअदि। (आसीदवसर एतस्य। इदानीं पुनर्मर्त्यलोकं प्रस्थित एतस्मिन् महाराजे कस्य दृश्यते।) [10]

प्रथमा - (साशङ्कम्) सहि, किं महेन्दस्स मनोरहाइं सम्पादिअ गदो, आद अण्णदि त्ति।

(सखि, किम् महेन्द्रस्य मनोरथान् सम्पाद्य गत, उतान्यथेति।) [11]

द्वितीया - सहि, सुणु। अज्ज य्येव गोसग्गसमए णवरं दुज्जयदाणवजीविअसव्वस्ससेसं गिहितुण एव अतिदसविलासिणि सरसहिअआइं अवणिं अहिपडिदो अदो अ मए हरिसोकण्ठाणं कारणं।

(सखि, शृणु। अद्यैव गोसर्गसमये केवलं दुर्जयदानवजीवितसर्वस्वशेषं गृहीत्वा, एवञ्च, त्रिदशविलासिनीसरसहृदयान्यवनिम् अभिप्रस्थितः। अतश्च मे हर्षोत्कण्ठानां कारणम्।) [12]

प्रथमा - सहि तए पिअं णिवेदिदं जं य्येव उवज्झाएण पुरुवंसराएसिणो पुरओ कय्यं कादुं आणत्तं। तं य्येव गीअं कादुण इत्थ य्येव करेम्ह। (सखि, त्वया प्रियं निवेदितं यद् एवोपाध्यायेन पुरुवंशराजर्षेः पुरतः कार्यं कर्तुम् आज्ञप्तम्। तदेव गीतं कृत्वाऽत्रैव कुर्वः।) [13]

द्वितीया - जं दे रोअदि,य्येव ता ज य्येव गीअं मए लविदं, तए वा, सह णच्छम्म।

(यत्ते रोचते, एवं तत् यदेव गीतं मया लपितं, त्वया वा, सह नृत्यावः।) [14]

प्रथमा - सहि, एवं करेम्ह। (उभे गायतः) [15]

अविसअगमणं कंचन अण्णं अ सराअमालि महुसमओ।
अण्णं कुणइं विसण्णं पाडीइमाणं भूमीए।। 7-1।।

(सखि, एवं कुर्वः।

अविषयगमनं कंचनान्यं च सरागम् आलिं मधुसमयः।
अन्यं करोति विषण्णं पात्यमानं भूम्याः (भूम्याम्)।। 7-1।।) [16]

(इत्यन्ते नर्तित्वा निष्क्रान्ते।) [17]

(प्रवेशकः) [18]

(ततः प्रविशति रथयानेन रथाधिरूढो राजा दुःषन्तो मातलिश्च) [19]

राजा - मातले, अनुष्ठितनिदेशोऽपि मघवतस्सत्क्रियाविशेषाद् अनुपयुक्तमिवात्मानं समर्थये। [20]

मातलिः - आयुष्मान् उभयमप्यपरितोषम्। कुतः - [21]

उपकृत्य हरेस्तथा भवाल्लँघु सत्कारम् अवेक्ष्य मन्यते।
गणयत्यवदानम्मितां भवतस्सोऽपि न सत्क्रियाम् इमाम्।। 7-2।। [22]

राजा - मा मैवम्। स खलु मनोरथानाम् अप्यतिभूमिवर्ती विसर्जनावसरे सत्कारः। मम हि दिवौकसां समक्षम् अर्धासनोपवेशितस्य। [23]

अन्तर्गतप्रार्थनम् अन्तरस्थं जयन्तमुद्वीक्ष्य कृतस्मितेन।
प्रमृज्य वक्षो हरिचन्दनाक्तं मन्दारमाला हरिणा पिनद्धा।। 7-3।। [24]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

मातलिः - किमिव नायुष्मान् परमेश्वराद् अर्हति। पश्य - [25]

सुखपरस्य हरेरुभयैः कृतं त्रिदिवम् उद्धृतदानवकण्टकम्।
तव शरैरधुना नतपर्वभिः पुरुषकेसरिणश्च पुरा नखैः॥ 7-4॥ [26]

राजा - अत्र शतक्रतोरेव महिमा। पश्य, [27]

सिद्ध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः
संभावनागुणम् अवेहि तमीश्वराणाम्।
किं प्राभविष्यद् अरुणस्तमसां वधाय
तं चेत् सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत्॥ 7-5॥ [28]

मातलिः - सदृशं तवैतत्। (स्तोकम् अन्तरमतीत्य) आयुष्मान्, इतः पश्य, नाकपृष्ठप्रतिष्ठितस्य सौभाग्यम् आत्मयशसः। [29]

विच्छित्तिशेषैस्सुरसुन्दरीणां वर्णैरमी कल्पलतान्तरेषु।
संचिन्त्य गीतिक्षमम् अर्थतत्त्वं दिवौकसस्त्वच्चरितं लिखन्ति॥ 7-6॥ [30]

राजा - मातले, असुरसंप्रहारोत्सुकेन पूर्वं दूरम् अधिरोहता न लक्षितो मया स्वर्गमार्गः। तत् कतमस्मिन् पथि मरुतां वर्तामहे। [31]

मातलिः -

त्रिस्रोतसं वहति यो गगनप्रतिष्ठां ज्योतींषि वर्तयति चक्रविभक्तरश्मिः।
तस्य व्यपेतरजसः प्रवहस्य वायो- र्मार्गो द्वितीयहरिविक्रमपूत एषः॥ 7-7॥ [32]

राजा - ततः खलु मे सबाह्यान्तःकरणोऽन्तरात्मा प्रसीदति। (रथाङ्गे विलोक्य) शङ्के मेघपथम् अवतीर्णौ स्वः। [33]

मातलिः- (सस्मितम्) कथम् अवगम्यते। [34]

राजा -

अयम् अरिविवरेभ्यश्चातकैर्निष्पतद्भिः
हरिभिरचिरभासां तेजसा चानुलिप्तैः।
गतमुपरि घनानां वारिगर्भोदराणां
पिशुनयति रथस्ते शीकरक्लिन्ननेमिः॥ 7-8॥ [35]

मातलिः - क्षणम् ऊर्ध्वम् आयुष्मान् नात्माधिकारभूमौ वर्तिष्यते। [36]

राजा - (अधोऽवलोक्य) मातले, वेगावरणाद् आश्चर्यदर्शनः खलु सम्पद्यते मनुष्यलोकः। [37] तथा,

शैलानाम् अवरोहतीव शिखरादुन्मज्जतां मेदिनी
पर्णेष्वन्तरलीनतां विजहति स्कन्धोदयात् पादपाः।
सन्धानं तनुभावनष्टसलिला व्यक्ता व्रजन्त्यापगाः
केनाप्युत्क्षिपतेव पश्य भुवनं मत्पार्श्वम् आनीयते॥ 7-9॥ [38]

मातलिः- (सबहुमानम् आलोक्य) अहो उदग्ररमणीया पृथिवी। [39]

राजा - मातले, कतमोऽयं पूर्वापरसमुद्रावगाढः कनकनिष्यन्दशोभी सान्ध्य इव मेघपरिघः सानुमान् आलोक्यते। [40]

मातलिः- आयुष्मान् एष हेमकूटो नाम किम्पुरुषपर्वतः, परं तपस्विनां सिद्धिक्षेत्रम्। पश्य, [41]

स्वायम्भुवो मरीचेर्यः प्रबभूव प्रजापतिः।
सुरासुरगुरुः सोऽस्मिन् सपत्नीकस्तपस्यति॥ 7-10॥ [42]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा - (सादरम्) तेन हि अनतिक्रमणीयानि श्रेयांसि। प्रदक्षिणीकृत्य भगवन्तं [गन्तुम्] इच्छामि यावत्। [43]

मातलि:- प्रथम: कल्प:। (अवतरणं नाटयित्वा) एताववतीर्णौ स्व:। [44]

राजा - (सविस्मयम्) मातले,

उपोढशब्दा न रथाङ्गनेमय: प्रवर्तमानं च न दृश्यते रज:।
अभूतलस्पर्शतया निरुद्धतिस्तवावतीर्णोऽपि रथो न लक्ष्यते।। 7-11।। [45]

मातलि: - एतावान् एव शतमन्योरायुष्मतश्च विशेष:। [46]

राजा - कतमस्मिन् प्रदेशे मारीचाश्रम:। [47]

मातलि: - (हस्तेन दर्शयन्)

वल्मीकार्धनिमग्नमूर्तिरुरगत्वग्ब्रह्मसूत्रान्तर:
कण्ठे जीर्णलताप्रतानवलयेनात्यर्थसंपीडित:।
अंसव्यापि शकुन्तनीडनिचितं[1] बिभ्रज्जटामण्डलं
यत्र स्थाणुरिवाचलो मुनिरसावभ्यर्कबिम्बं स्थित:।। 7-12।। [48]

राजा- नमोऽस्मै कष्टतपसे। [49]

मातलि: - (संयतप्रग्रहं कृत्वा) एतावदिति परिवर्धितमन्दारवृक्षकं प्रजापतेस्तपोवनं प्रविष्टौ स्व:। [50]

राजा - अहो विस्मय:। स्वर्गाद् अधिकनिवृत्तिस्थानम्। अधिक(अमृत)ह्रदमिवावगाढोऽस्मि। [51]

मातलि: - (रथं स्थापयित्वा) अवतीर्यताम्। [52]

राजा - (साभिनयम् अवतीर्य) भवान् कथम् इदानीम्। [53]

मातलि: - समययन्त्रितोऽयम् आस्ते रथ:। वयमप्यवतराम:। [54]

(तथा कृत्वा) इत इत आयुष्मान्। [55]

(उभौ परिक्रम्य) [56]

मातलि: - आयुष्मन्, दृश्यन्ताम् अत्रभवतां सिद्धर्षीणां तपोवनभूमय:। [57]

राजा - ननु विस्मयाद् उभयमप्यवलोकयामि। [58]

प्राणानाम् अनिलेन वृत्तिरुचिता सत्कल्पवृक्षे वने
तोये हैमसहस्रपत्रसुभगे नक्तंदिवं सद्-व्रतम्।
ध्यानं रत्नशिलागृहेषु विबुधस्त्रीसंनिधौ संयमो
यत्काङ्क्षन्ति तपोभिरन्यमुनयस्तस्मिंस्तपस्यन्त्यमी।। 7-13।। [59]

मातलि: - उत्कर्षिणी खलु महतां प्रार्थना। (परिक्रामत:) [60]

मातलि:- (आकाशे) वृद्धशाकल्य, किं व्यापारो भवान्। (कर्णं दत्त्वा) किं ब्रवीषि। एष दाक्षायण्या पतिव्रतापुण्यम् अधिकृत्य पृष्ट:। तस्यास्तद् व्याकरोतीति प्रतिपाल्यावसर: खलु प्रस्ताव:।

(राजानं दृष्ट्वा) अस्मिन् नशोकपादपे तावद् आयुष्मान् आस्ताम्। यावत् त्वां प्रजापतय आवेदयामि। [61]

राजा - यथा भवान् मन्यते। (स्थित:), [62]

(निष्क्रान्तो मातलि:।) [63]

---

1. कोऽयं स्यान्मुनि:? किमयं "शकुन्त-नीड-निचित०" इति पदेन शकुन्तलाया: पिता विश्वामित्रो वर्ण्यते?! इति शंका जायते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

राजा - (निमित्तं सूचयित्वा) [64]

मनोरथाय नाशंसे बाहो स्फुरसि किं वृथा।
पूर्वावधीरितं श्रेयो दुःखं हि परिवर्तते॥ 7-14॥ [65]

(नेपथ्ये)

मा खु मा खु चवलदं करेहि। सिङ्घ.....। कधं कधं य्येव अत्तणो पकिदिं दंसेसि। [66]

(मा खलु मा खलु चपलतां कुरु। सिंह ....। कथं कथमेवात्मनः प्रकृतिं दर्शयसि।)

राजा - (कर्णं दत्त्वा) अभूमिरियम् अविनयस्य। को नु खल्वविनयात् निषिध्यते। (शब्दानुसारेणाऽवलोक्य) (विस्मयाभिनयपूर्वकम्) अये, अनुरुध्यमानस्तापसीभ्याम् अबालसत्त्वो बालः। [67]

अव(र्ध)पीतस्तनं मातुरामर्दक्लिष्टकेसरम्।
विलम्बितं सिंहशिशुं करेणाहत्य कर्षति॥ 7-15॥ [68]

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टकर्मा तापसीभ्याम्[1] अनुरुध्यमानो बालः।) [69]

बालः - जिम्भ जिम्भ, ले सिङ्घ। दन्ताइं दे गणइस्सं। (जृम्भ जृम्भ, रे सिंह, दन्तानि ते गणयिष्यामि।) [70]

तापसी - अविणीद, किं ति णो अवच्चणिव्विसेसाइं सत्ताइं विप्पकरोसि। पवट्टदि[दे] संरम्भो। थाणे क्खु इसिजणेण सव्वदमणो त्ति किदणामधेओ सि। (अविनीत, किमिति नोऽपत्य-निर्विशेषाणि सत्त्वानि विप्रकरोषि। प्रवर्तते [तव] संरम्भः। स्थाने खल्वृषिजनेन सर्वदमन इति कृतनामधेयोऽसि।) [71]

राजा - किं नु खलु बालेऽस्मिन् नौरस इव पुत्रे स्निह्यति मे मनः। (विचिन्त्य) नूनमनपत्यता मां वत्सलयति। [72]

द्वितीया - एसा केसरिणी तुमं लङ्घेदि, जदि से पुत्तकं ण मुञ्चेसि। (एषा केसरिणी त्वाम् लङ्घयति यद्यस्याः पुत्रकं न मुञ्चसि।) [73]

बालः - (सस्मितम्) अम्महे, बलिअं खु भीदे म्हि। (इत्यधरं दशति) (अहो बलीयः खलु भीतोऽस्मि।) [74]

राजा -

महतस्तेजसो बीजं बालोऽयं प्रतिभाति मे।
स्फुलिङ्गावस्थया वह्निरेधोपेक्ष इव स्थितः॥ 7-16॥ [75]

प्रथमा - वच्छक, मुञ्च एदं बालं मइन्दं। अण्णं दे कीलणकं दाइस्सं। (वत्सक, मुञ्चैतम् बालं मृगेन्द्रम्। अन्यं ते क्रीडनकं दास्यामि।) [76]

बालः - कहिं शे। देहि मे एणं। (कुत्र सः। देहि म एनम्) (इति दक्षिणहस्तं प्रसारयति) [77]

राजा - कथं चक्रवर्तिलक्षणम् अनेन धार्यते। तथा ह्यस्य, [78]

प्रलोभ्यवस्तुप्रणयप्रसारितो
विभाति जालग्रथिताङ्गुलिः करः।
अलक्ष्यपत्रान्तरम् इद्धरागया
नवोषसा भिन्नमिवैकपङ्कजम्॥ 7-17॥ [79]

प्रथमा - सुव्वदे, ण सक्को एसो आआसमित्तेण सअमिदुं। ता गच्छ। मम केरए उडए [मङ्कणअस्स] इसिकुमारअस्स वण्णअचित्तिदो मिट्टिआमऊरओ चिट्ठदि। तं से उवाहर। (सुव्रते, न शक्य एष आश्वासमात्रेण संयमितुम्। तद्

---

1. प्रथमायास्तापस्या नाम संयतेति। द्वितीयायाश्च नाम सुव्रतेति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

गच्छ। मामक उडजे [मङ्कनकस्य] ऋषि कुमारकस्य वर्णकचित्रितो मृत्तिकामयूरकस्तिष्ठति। तम् अस्योपाहर।) [80]

द्वितीया- तधा। (तथा) (इति निष्क्रान्ता) [81]

बालः - ताव इमिणा य्येव कीलयिस्सं। (तावद् अनेनैव क्रीडिष्यामि।) [82]

(तापसी विलोक्य हसति) [83]

राजा - स्पृहयामि दुर्ललितकायास्मै। (निश्श्वस्य) [84]

आलक्ष्यदन्तमुकुलान् अनिमित्तहासै-
रव्यक्तवर्णरमणीयवचः प्रवृत्तीन्।
अङ्काश्रयप्रणयिनस्तनयान् वहन्तो
धन्यास्तदङ्गरजसा परुषीभवन्ति।। 7-18।। [85]

तापसी - (साङ्गुलितर्जनम्) भोदु। ण मं गणअसि। (पार्श्वम् अवलोक्य) को एत्थ इसिकुमारकाणं। (राजानं दृष्ट्वा) भद्दमुह, एहि मोएहि दाव इमिणा दुम्मोहहत्थग्गेण डिम्बकलिणा बाधीअमाणं बालमइन्दअं। (भवतु, न मां गणयसि। कोऽत्र ऋषिकुमारकाणाम्। भद्रमुख, एहि मोचय तावद् अनेन दुर्मोचहस्ताग्रेण डिम्बकरिणा बाध्यमानं बालमृगेन्द्रम्।) [86]

राजा - तथे- (त्युपगम्य) अयि महर्षिपुत्र, [87]

एवमाश्रमविरुद्धवृत्तिना संयमी किमिति जन्मदस्त्वया।
सत्त्वसंश्रयसुखोऽपि दूष्यते कृष्णसर्पशिशुनेव चन्दनः।। 7-19।। [88]

तापसी - भोदु। ण खु अअं इसिकुमारओ। (भवतु। न खलु अयम् ऋषिकुमारकः।) [89]

राजा - आकारसदृशं चेष्टितम् एवास्य कथयति। स्थानप्रत्ययात् तु वयम् अतर्किणः। (सिंहं मोचयित्वा, यथाभ्यर्थितम् अनुष्ठितम्। बालस्पर्शम् अनुभूयात्मगतम्।) [90]

अनेन कस्यापि कुलाङ्कुरेण स्पृष्टस्य गात्रेषु सुखं ममैवम्।
कां निर्वृतिं चेतसि तस्य कुर्याद् यस्यायम् अङ्गात् कृतिनः प्रसूतः।। 7-20।। [91]

तापसी - (उभावलोक्य) अच्छरीअं अच्छरीअं। (आश्चर्यम् आश्चर्यम्।) [92]

राजा - किम् इव। [93]

तापसी - अस्स बालस्स असम्बद्धे वि भद्दमुहे संवादिणी आकिदि त्ति विम्हिद म्हि। अवि अ, अच्चन्तपरिइदस्स विअ अप्पडिलोमो एसो दे संवुत्तो। (अस्य बालस्यासम्बद्धेऽपि भद्रमुखे संवादिन्याकृतिरिति विस्मिताऽस्मि। अपि च, अत्यन्तपरिचितस्येवाप्रतिलोम एष ते संवृत्तः।) [94]

राजा - (बालम् उपलालयन्) न चेन्मुनिकुमारोऽयम्, अथ कोऽस्य व्यपदेशः।

तापसी - पोरवो इति। (पौरवः इति)[1] [95]

राजा- (अपवार्य[2]) कथम् एकान्वयोऽयमस्माकम्। अतः खलु मदनुकारिणम् अत्रभवती मन्यते। (प्रकाशम्) अस्त्येतत् पौरवाणाम् अन्त्यं कुलव्रतम्। [96]

---

1. काश्मीर-पाठे दाक्षि.-पाठे च पुरुवंश इति। किन्तु पूर्वापरसन्दर्भेषु सर्वत्र दुष्यन्तः पौरव इति शब्देनैव सम्बोध्यते। (1. कः पौरवे शासति वसुमतीम्०, 2. पोरव, रक्ख विणअं। इत्यादिषु स्थलेषु)
2. अपवार्यत्वेनेयं रंगसूचना मैथिल-पाठाद् गृहीता।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

भवनेषु सुधासितेषु पूर्वं क्षितिरक्षार्थम् उशन्ति ते निवासम्।
नियतैकमुनिव्रतानि[1] पश्चात् तरुमूलानि गृहीभवन्ति तेषाम्।। 7-21।। [97]

न पुनरात्मगत्या मानुषाणाम् एष विषयः। [98]

तापसी - णं जधा भद्दमुहो भणादि। अच्छरासम्बन्धेण पुणो इमस्स बालस्स जणणी एत्थ य्येव गुरुणो तवोवणे पसूदा। (ननु यथा भद्रमुखो भणति-अप्सरसम्बन्धेन पुनरस्य बालस्य जनन्यत्रैव गुरोस्तपोवने प्रसूता।) [99]

राजा - (आत्मगतम्) दत्तं द्वितीयमिदमाशङ्काजननम्। (प्रकाशम्) तत्रभवती किमाख्यस्य राजर्षेः पत्नी। [100]

तापसी - को तस्स धम्मदारपरिच्चाइणो णामधेअं गिण्हीसदि। (कस्तस्य धर्मदारपरित्यागिनो नामधेयं ग्रहीष्यति।) [101]

राजा - (अपवार्य[2]) इयं खलु कथा मामेव लक्षीकरोति। किं तावद् अस्य शिशोर्मातरं नामतः पृच्छेयम्। अथवा, अन्याय्यः परदारव्यवहारः। [102]

(प्रविश्य मृन्मयमयूरहस्ता द्वितीया) [103]

तापसी - सव्वदमण, सउन्तलावण्णं पेक्ख[3]। (सर्वदमन, शकुन्तलावण्यं पश्य।) [104]

बालः - (सदृष्टिक्षेपम्) कहिं अज्जू। (कुत्रार्या माता) [105]

(उभे प्रहसिते) [106]

प्रथमा - णामसादिस्सेण छलिदो मादुअच्छलओ। (नामसादृश्येन छलितो मातृवत्सलकः।) [107]

द्वितीया - वच्छ, सउन्तला भणादि। इमस्स कित्तिम-मऊरस्स रमणीअदं पेक्खत्ति। (वत्स, शकुन्तला भणति। अस्य कृत्रिम-मयूरस्य रमणीयतां प्रेक्षस्वेति।) [108]

राजा- (अपवार्य[4]) किं शकु[न्त]लेति मातुराख्या। सन्ति पुनर्नामसादृश्यानि। अपि नाम मृगतृष्णिकेव नायमन्तेन प्रस्तावो विषादाय कल्पते। [109]

बालः - अत्ताके, लोअदि मे भद्दालके एहे मऊले। (अत्ताके, रोचते मे भद्रालक एष मयूरः। [110]

(क्रीडणकमादत्ते) [111]

द्वितीया- (आलोक्य ससंभ्रमम्) अम्मो, रक्खाकरण्डकं से मणिबन्धे ण दीसदि। (अहो रक्षाकरण्डकमस्य मणिबन्धे न दृश्यते।) [112]

राजा - अलमावेगेन। नन्वयम् अस्य सिंहशावकमर्दात् परिभ्रष्टम्। (आदातुमिच्छति) [113]

उभे - मा खु णं आलबिट्ठ। कधं .... गिहीदं येव णेण। (सविस्मयम्) (मा खल्वेनमालम्बिष्ठाः। कथं गृहीतमेवानेन।) [114]

(उरो-निहितहस्ते परस्परम् अवलोकयतः) [115]

राजा - किमर्थं प्रतिषिद्धोऽस्मि। [116]

प्रथमा - सुणादु अय्यो। महाप्पहावा एसा खु अवराइदा णाम महोसहि इमस्स दारअस्स जादकम्मसमए भअवदा मारीएण दिण्णा। एदं किल मादापिदरो अत्ताणअं वा वज्जिअ अवरो भूमिपदिदं ण गिण्हादि। (शृणोत्वार्यः। महाप्रभावैषा

---

1. का.-दा.-पाठयोः "नियतैकयतिव्रतानी" ति।, किन्तु रघुवंशे "वार्धक्ये मुनिवृत्तीनामि" ति वचनात्।
2. अपवार्यत्वेनेयं रंगसूचना मैथिल-पाठाद् गृहीता।
3. का.-पाठे "सव्वदमण, सउन्तला-" इत्येव प्राप्यते।, किन्तु मै.-पाठस्यात्र ग्रहणं करणीयम्, अभिनवगुप्तेना-पि "तापसी - सर्वदमन, शकुन्तलावण्यं पश्य" इत्यस्यैव ग्रहणात्। (द्रष्टव्यम् ना. शा., षोडशाध्यायानुबन्धाः 16-6 इत्यत्राभिनवभारती, पृ. 350)
4. इयमपि रंगसूचना "ऽपवार्ये" त्येव भवितुमर्हति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

खल्वपराजिता नाम महौषधिरस्य दारकस्य जातकर्मसमये भगवता मारीचेन दत्ता, एताम् किल मातापितरावात्मानं वा वर्जयित्वाऽपरो भूमिपतितां न गृह्णाति।) [117]

राजा - अथ गृह्णाति, किं भवति। [118]

प्रथमा - तदो सप्पो भविअ अण्णं दंसेदि। (ततस्सर्पो भूत्वाऽन्यं दशति।) [119]

राजा - अथ भवतीभ्यां कदाचिदस्याः प्रत्यक्षीकृता विक्रिया। [120]

उभे - अणेअसो। (अनेकशः) [121]

राजा - (सहर्षम्) तत्किम् खल्विदानीं पूर्णमपि मनोरथं नाभिनन्दामि। [122]

(बालं परिष्वजते) [123]

द्वितीया - सञ्जदे, एहि, इमं वुत्तान्तं णिअमणिव्वुदाए सउन्तलाए णिवेदेम्ह। (संयते, एहि इमं वृत्तान्तं नियमनिर्वृतायै शकुन्तलायै निवेदयामः।) [124]

प्रथमा - एवम् करेम्ह। (इति निष्क्रान्ते तापस्यौ) [125]

बालः - मुञ्च मं, जाव अज्जूसकासं गच्छामि। (मुञ्च मां, यावद् मातृसकाशं गच्छामि।) [126]

राजा - पुत्रक, मयैव सह मातरं नन्दयिष्यसि। [127]

बालः - मम खु तादे दुश्शन्ते, ण तुवं। (मम खलु तातो दुःषन्तो, न त्वम्।) [128]

राजा- (सस्मितम्) एष विवाद एव मां प्रत्याययति। [129]

(ततः प्रविशति एकवेणीधरा शकुन्तला) [130]

शकुन्तला - विआरकाले वि पकिदित्थं तं सव्वदमणस्स ओसहिं सुणिअ ण मे आसासो अत्तणो भाअधेएसु। अह वा, जधा मे अक्खमालाए आचक्खिदं तदा(धा) सम्भावो एदं। (विकारकालेऽपि प्रकृतिस्थां तां सर्वदमनस्यौषधिं श्रुत्वा न म आश्वास आत्मनो भागधेयेषु। अथवा, यथा मेऽक्षमालया आख्यातं, तथा सम्भाव्यत एतत्।) (परिक्रामति) [131]

राजा- (शकुन्तलां दृष्ट्वा) अये इयमत्रभवती शकुन्तला। [132]

वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी कृतैकवेणिः।
अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीला मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्ति॥ 7-22॥ [133]

शकुन्तला - (राजानं दृष्ट्वा) ण क्खु अय्यउत्तो विअ। ता को णु खु एसो किदरक्खामङ्गलं दारअं मे हत्थसंसग्गेण दुसेदि। (न खल्वार्यपुत्र इव। तत् को नु खल्वेष कृतरक्षामङ्गलं दारकं मे हस्तसंसर्गेण दूषयति।) [134]

बालः - (मातरमुपेत्य) अय्युए, एस कोवि परो, को मं माणुसो पुत्तके त्ति आलवदि। (अज्जुके, एष कोऽपि परः। को मां मानुषः पुत्रक इत्यालपति।) [135]

राजा - प्रिये, क्रौर्यमपि मे त्वयि प्रयुक्तम् अनुकूलपरिणामं संवृत्तम्। यतोऽहमिदानीं त्वया प्रत्यभिज्ञातम् आत्मानमिच्छामि। [136]

शकुन्तला - (सहर्षम्) अय्यउत्त[1]य्येव एसो। (आर्यपुत्र एवैषः।) [137]

राजा -

---

1. इतः पूर्वम्- "हिअअ, समस्सस समस्सस। पहरिअ णिव्वुत्तमच्छरेण अणुकम्पिदम्हि देव्वेण।" इत्येका स्वगतोक्तिरपि वर्तते। किन्तु सा प्रक्षिप्ता प्रतिभाति।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

स्मृतिभिन्नमोहतमसो दिष्ट्या प्रमुखे स्थितासि मे सुमुखि।
उपरागान्ते शशिनस्समुपनतो रोहिणीयोगः॥ 7-23॥ [138]

शकुन्तला- जअदु जअदु .....।[1] (जयतु जयतु ....।) [139]

(इत्यर्धोक्ते बाष्पकण्ठी बाष्पं विहरति) [140]

राजा - प्रिये,

बाष्पेण प्रतिषिद्धेऽपि जयशब्दे जितं मया।
यत्ते दृष्टम् असंस्काराल्लोलालकम्[2] इदं मुखम्॥ 7-24॥ [141]

बालः- अय्युए। के एशे। (अज्जुके, क एषः।) [142]

शकुन्तला- वच्छ, भाअधेआणि मे पुच्छ। (रोदिति) (वत्स, भागधेयानि मे पृच्छ।) [143]

राजा - (प्रणिपत्य) [144]

सुतनु हृदयात् प्रत्यादेश-व्यलीकम् अपैतु ते
किमपि मनसस्सम्मोहो मे तदा बलवान् अभूत्।
स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया
प्रबलतमसाम् एवं प्रायः शुभेष्वपि वृत्तयः॥ 7-25॥ [145]

शकुन्तला - उत्थेदु अय्यउत्तो। णं मम सुहपदिबन्धअं पुराकिदं तेसु दिअसेसु परिणामाभिमुहआसि। जेण साणुक्कोसो वि अय्यउत्तो मए तधाविओ संवुत्तो। (उत्तिष्ठत्वार्यपुत्रः। ननु मम सुखप्रतिबन्धकं पुराकृतं तेषु दिवसेषु परिणामाभिमुखम् आसीद्। येन सानुक्रोशोऽप्यार्यपुत्रो मयि तथाविधस्संवृत्तः।) [146]

(राजोत्तिष्ठति) [147]

शकुन्तला - अध कधं अय्यउत्तेण सुमरिदो अअं जणो। (अथ कथमार्यपुत्रेण स्मृतोऽयं जनः।) [148]

राजा - उद्धृतशल्यविष(श)दः करोमि, करिष्यामि। [149]

मोहान् मया सुतनु पूर्वम् उपेक्षितस्ते
यो बाष्पबिन्दुरधरं परिधावमानः।
तं तावद् आकुलित-पक्ष्म-विलग्नम् अद्य
कान्ते प्रमृज्य विगतानुशयो भवामि॥ 7-26॥ [150]

(यथोक्तमनुतिष्ठति) [151]

शकुन्तला - (प्रमृष्टबाष्पा, नाममुद्रां दृष्ट्वा) अय्यउत्त, णणु तं अङ्गुलीअं। (आर्यपुत्र, ननु तद् अङ्गुलीयम्।) [152]

राजा - अथ किम्। अस्माद् अद्भुतोपलम्भान् मया स्मृतिर्लब्धा। [153]

शकुन्तला - सुमुहिकादुं खणेण जं तदा अय्यउत्तस्स पच्चक्खकरणे दुल्लहं मे संवुत्तम्। (सुमुखीकर्तुं क्षणेन यत् तदार्य्यपुत्रस्य प्रत्यक्षकरणे दुर्लभं मे संवृत्तम्।) [154]

राजा - तेन ह्यृतुसमागमाशंसि प्रतिपाद्यतां लता कुसुमम्। [155]

---

1. काश्मीर-पाठे, दाक्षि.-पाठे च "आर्यपुत्र" इत्यधिकं पठ्यते। मै.-बं.-पाठयोर्नास्त्ययं शब्दः। यतो ह्यत्रो-त्तरवर्तिनि श्लोके जयेत्यस्यैवोल्लेखो विद्यते।
2. विरहिण्याः शकुन्तलायाः कृते मैथिल-पाठान्तरमेव समीचीनं प्रतिभाति।, का.-पाठे "ऽसंस्कारपाटलोष्ठमि" ति विशेषणं न प्रसंगोचितम्, अतस्त्याज्यम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

शकुन्तला -ण से वीससामि। अय्यउत्तो एव णं धारेदु। (नास्य विश्वसामि। आर्यपुत्र एवैनद् धारयतु।) [156]

(प्रविश्य)

मातलिः - दिष्ट्या धर्मपत्नीसमागमेन पुत्रमुखदर्शनेन चायुष्मान् वर्धते। [157]

राजा- सुहृत्संपादितत्वाद् उत्तरफलो हि मनोरथः। मातले, न खलु विदितोऽयम् आखण्डलस्यार्थः। [158]

मातलिः - (सस्मितम्। किमीश्वराणां परोक्षम्[1]। एहि, भगवांस्ते मारीचो दर्शनं वितरति। [159]

राजा - शकुन्तले, अवलम्ब्यतां पुत्रः। त्वां पुरस्कृत्य भगवन्तं द्रष्टुमिच्छामि। [160]

शकुन्तला - अरिहामि अय्यउत्तेण सह समीवं गन्तुम्। (अर्हाम्यार्यपुत्रेण सह, समीपं गन्तुम्?।) [161]

राजा - आचरितमेतद् अभ्युदयकालेषु। एहि एहि। (सर्वे परिक्रामन्ति) [162]

(ततः प्रविशत्यदित्या सार्धम् अर्धासनस्थो मारीचः) [163]

मारीचः - (राजानम् अवलोक्य) दाक्षायणि, [164]

पुत्रस्य ते रणशिरस्ययम् अग्रगामी
दुःषन्त इत्यभिहितो भुवनस्य भर्ता।
चापेन यस्य विनिवर्तितकर्म जातं
तत्कोटिमत् कुलिशम् आभरणं मघोनः॥ 7-27॥ [165]

अदितिः - संभावणीआ से खु आकिदि। (सम्भावनीयास्य खल्वाकृतिः।) [166]

मातलिः - भूतलपते, एतौ पुत्रप्रीतिपिशुनेन चक्षुषा दिवौकसां पितराववलोकयतः। तदुपसर्पतु। [167]

राजा - मातले,

प्राहुर्द्वादशधा स्थितस्य मुनयो यत्तेजसः कारणं
भर्तारं भुवनत्रयस्य सुषुवे यद् यज्ञभागेश्वरम्।
यस्मिन्नात्मभवः परोऽपि पुरुषश्चक्रे भवायास्पदं
ब्रह्मानन्तरविश्वयोनिसहितं द्वन्द्वं तदेतद् वशी॥ 7-28॥ [168]

मातलिः - अथ किम्। [169]

राजा - (प्रणिपत्य) उभावपि वां वासवनियोज्यो दुःषन्तः प्रणमति। [170]

मारीचः - वत्स, चिरं पृथिवीं पालय। [171]

अदितिः - अप्पदिरहो होहि। (अप्रतिरथो भव।) [172]

शकुन्तला -दारकेण सहिता पादवन्दणं करेमि। (दारकेण सहिता पादवन्दनं करोमि।) [173]

मारीचः - वत्से, चिरम् अविधवा भव। [174]

आखण्डलसमो भर्ता जयन्तप्रतिमस्सुतः।
आशीरन्या न ते योज्या पौलोमीमङ्गला भव॥ 7-29॥ [175]

अदितिः - जादे, भट्टिणो बहुमदा होहि। अअं च दे देहओ वच्छओ उभअपक्खं अलंकरेदु। ता उवविसध। (जाते, भर्तुर्बहुमता भव। अयं च ते देहजो वत्सक उभयपक्षम् अलङ्करोतु। तद् उपविशत।) [176]

(सर्वे प्रजापतिनाभिहितम् आसनम् उपविशन्ति) [177]

1. काश्मीर-पाठे वाक्यमिदं नास्ति। किन्तु तद् भवितुमर्हति। मै.-पाठानुरोधाद् गृहीतमिदम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

मारीचः - (एकैकम् निर्दिशन्) [178]

दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी, सदपत्यमिदम्, भवान्।
श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति त्रितयं तत् समागतम्।। 7-30।। [179]

राजा - भगवन्, प्राग् अभिप्रेता सिद्धिः, पश्चात् दर्शनम्। इत्यपूर्वो भगवतोऽनुग्रहः।

पश्यतु भगवान्। [180]

उदेति पूर्वं कुसुमं, ततः फलं, घनोदयः प्राक् तदनन्तरं पयः।
निमित्तनैमित्तकयोरयं विधिस्तव प्रसादस्य पुरस्तु संपदः।। 7-31।। [181]

मातलिः - एवं विश्वगुरवः प्रसीदन्ति। [182]

राजा - भगवन्, इमामाज्ञाकरीं वो गान्धर्वेण विवाहविधिनोपयम्य कस्यचित्कालस्य बन्धुभिरानीतां स्मृतिशैथिल्यात् प्रत्यादिशन् नपराद्धोऽस्मि तत्रभवतः कण्वस्य। पश्चाद् एनाम् अङ्गुलीयक - दर्शनाद् आरूढस्मृतिरूढपूर्वाम् अनुगतोऽस्मि। तच्चित्रमेव मे प्रतिभाति। [183]

यथा गजे नेतरपक्षरूपे (?), तस्मिन्नतिक्रामति संशयस्स्यात्।
पदानि दृष्ट्वा तु भवेत् प्रतीतिस्तथाविधो मे मनसो विकारः।। 7-32।। [184]

मारीचः - वत्स, अलम् आत्मापचारशङ्कया। सम्मोहोऽपि त्वय्युपपन्नः। यतः श्रूयताम् - [185]

राजा - अवहितोऽस्मि। [186]

मारीचः - यदैवाप्सरस्तीर्थावतरणात् प्रत्यक्षवैक्लव्यां शकुन्तलाम् आदाय मेनका दाक्षायणीसकाशमागता। तदैव ध्यानादधिगतोऽस्मि। दुर्वाससः शापादियं तपस्विनी सहधर्मचारिणी प्रत्यादिष्टा, नान्यथेति। स चाङ्गुलीयकदर्शनावसरः। [187]

राजा - (सोच्छ्वासम्) एषोऽहं वचनीयान् मुक्तोऽस्मि। [188]

शकुन्तला -(आत्मगतम्) दिट्ठिआ अकामंपच्चादेसी अय्यउत्तो। ण उण सत्तं अत्ताणअं सुमरामि।

अधवा, ण सुदो धुवं अण्णहिअआए मए सावो। जदो सहीहिं अच्चादरेण सन्दिट्ठम्हि भत्तुणो अङ्गुलीअअं देसहे त्ति। (दिष्ट्याऽकामप्रत्यादेश्यार्यपुत्रः। न पुनश्शप्तम् आत्मानं स्मरामि।

अथवा न श्रुतो ध्रुवम् अन्यहृदयया मया शापः। यतस्सखीभ्याम् अत्यादरेण सन्दिष्टाऽस्मि भर्तुरङ्गुलीयकं दर्शयेति।) [189]

मारीचः - वत्से, विदितार्थाऽसि। तदिदानीं सहधर्मचारिणं प्रति न त्वया मन्युः कर्तव्यः। [190] पश्य,

शापाद् इति प्रतिहतस्मृतिलोपरूक्षे भर्तर्यपेततमसि प्रभुता तथैव।
छाया न मूर्छति मलोपहतप्रसादे, शुद्धे तु दर्पणतले सुभगावकाशा[1]।। 7-33।। [191]

राजा- यथा भगवान् आह। [192]

मारीचः- वत्स, कच्चिद् अभिनन्दितस्त्वया विधिवदस्माभिरनुष्ठितजातकर्मा पुत्र एष शाकुन्तलेयः। [193]

राजा - भगवन्नत्र खलु मे वंशप्रतिष्ठा। [194]

मारीचः - तथा तत्। भाविनं चक्रवर्तिनं एनम् अवगच्छतु भवान्। [195] पश्य,

---

1. निखिलाप्युक्तिरियं शकुन्तलामुद्दिश्य कथिता, किन्तु नास्ति तस्याः प्रतिवचनम्। अतोऽनुमीयते यदत्र शकुन्तलायाः किमपि वाक्यं विलुप्तं स्याद्।, मैथिल-बंगीयादिषु पाठेष्वपि नोपलभ्यते तस्याः प्रतिवचनम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

रथेनानुद्धातस्तिमितगतिरातीर्णजलधिः
पुरा सप्तद्वीपां जयति वसुधाम् अप्रतिरथः।
इहायं सत्त्वानां प्रसभदमनात् सर्वदमनः
पुनर्यास्यत्याख्यां भरत इति सर्वस्य भरणात्।। 7-34।। [196]

राजा- भगवता कृतसंस्कारे सर्वम् अस्मिन् आशंसामहे। [197]

अदितिः - इमाए आनन्दमणोरहसम्पत्तिए कण्णो वि दाव सुदवित्थारो करिअदु। मेणआ इध य्येव सण्णिहिदा। (अनया आनन्दमनोरथसम्पत्त्या कण्वोऽपि तावच्छ्रुतविस्तारः क्रियताम्। मेनकेहैव सन्निहिता।) [198]

शकुन्तला -मणोगदं मे मन्तिदं भअवदीए। (मनोगतं मे मन्त्रितं भगवत्या।) [199]

मारीचः - सर्वमेतत् तपःप्रभावात् प्रत्यक्षं तत्रभवतः कण्वस्य। [200]

राजा - हन्त खलु न स्स(स)मभिक्रुद्धो गुरुः। [201]

मारीचः - तथाप्यसौ प्रियमस्माभिः श्रावयितव्यः। कः कोऽत्र भोः। [202]

(प्रविश्य)

शिष्यः - भगवन्, अयमस्मि। [203]

मारीचः - वत्स गालव, मद् वचनाद् इदानीमेव विहायसा गत्या तत्रभवते कण्वाय प्रियम् आवेदय। यथा शकुन्तला दुर्वाससः शापविनिवृत्तिसमुपागतस्मृतिना दुःषन्तेन प्रतिगृहीतेति। [204]

शिष्यः - यदाज्ञापयति भगवान्। (प्रणम्य निष्क्रान्तः) [205]

मारीचः - (राजानं प्रति) वत्स, त्वमपि सापत्यदारः सन्निहितं सख्युराखण्डलस्य रथमारुह्य स्वराजधानीं प्रतिष्ठस्व। [206]

राजा - यदाज्ञापयति भगवान्[1]। [207]

मारीचः - वत्स, तद् उच्यताम्। किं ते भूयः प्रियम् उपहरामि। [208]

राजा - (सहर्षम् प्रणमन्) यद् अतः परं मे भगवान् प्रसादं कर्तुम् अर्हति। [209]

ततः - **(भरतवाक्यम्)**

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवस्सरस्वती श्रुतिमहतां[2] महीयताम्।
ममापि च क्षपयतु नीललोहितः पुनर्भवं परिगतभक्तिरात्मभूः।। 7-35।। [210]

।। इति निष्क्रान्तास्सर्वे।। [211]

।। इति सप्तमोऽङ्कः।। [212]

।। समाप्तं चेदम् अभिज्ञानशकुन्तलाख्यं नाटकम्।।

1. का.-मै.-बं.-पाठेष्वितः परं मारीचस्य मुखे "क्रतुभिरुचितभागास्त्व०", "तव भवतु बिडौजाः प्राज्यवृष्टिः०" इति च। उभावपि श्लोकौ प्रक्षिप्तौ।, (का.-पाठे केवलं प्रथम एव), (प्रक्षिप्त-श्लोक-संख्ये- 34 एवं 35)

2. "श्रुतिमहती"त्येतस्मिन् पाठभेदेऽपि समाना मौलिकता दरीदृश्यते।, किन्तु "श्रुतमहताम्" पाठः परवर्तिनि काले समायातः स्यात्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

विभिन्न रंगावृत्तियों में प्रयुक्त नाटक की पात्रसृष्टि के नामाभिधान

क्र.	पात्रविशेष	काश्मीरी	मैथिली	बंगाली	दाक्षिणात्य	देवनागरी
1.	सूत्रधार	सूत्रधार	सूत्रधार	सूत्रधार	सूत्रधार	सूत्रधार
2.	नटी	नटी	नटी	नटी	नटी	नटी
3.	नायक - राजा	दुष्यन्त	दुष्मन्त	दुःषन्त	दुष्यन्त, दुष्यन्त-च.	दुष्यन्त
4.	सूतः- सारथि	सूतः	सूतः	सूतः	सूतः	सूतः
5.	नायिका	शकुन्तला सउन्तला	शकुन्तला सउन्तला	शकुन्तला सउन्तला	शकुन्तळा सउन्दला	शकुन्तला सउंदला
6.	सखी-1	अनसूया	अनुसूया	अनुसूया	अनसूया	अनसूया
7.	सखी-2	प्रियंवदा	प्रियंवदा	प्रियंवदा	प्रियंवदा	प्रियंवदा
8.	रानी ज्येष्ठा-नायिका	कुलप्रभा	वसुमती	वसुमती	वसुमती	वसुमती
9.	अपरा-ज्येष्ठा	हंसपदिका	हंसवती	हंसवतिका	हंसपदिका	हंसपदिका
10.	विदूषकः	माधव्यः	माधव्यः	माधव्यः	माढव्यः, मांडव्यः	माढव्यः
11.	अमात्यः	पिशूनः	अमात्यः	अमात्यः	अमात्यः	अमात्यः
12.	सेनापतिः	सेनापतिः	सेनापतिः	सेनापतिः	सेनापतिः	सेनापतिः
13.	पुरोहितः, राज्ञः उपाध्यायः	सोमरातः	सोमदत्तः	सोमरातः	सोमरातः	सोमरातः
14.	दौवारिकः	रेवकः	रैवतकः	रैवतकः	रैवतकः	रैवतकः
15.	परिजन-1	यवनिकाः	परिजनः-1	परिजनः-1	यवन्यः	यवन्यः
16.	परिजन-2	यवनी	प्रतीहारी	यवनी	यवनिका	यवनी
17.	प्रति (ती)हारी	वेत्रवती	प्रतीहारी	प्रतीहारी	प्रतीहारी	प्रतीहारी
18.	अप्सरा-1	मेनका	मेनका	मेनका	मेनका	मेनका
19.	अप्सरा-2	अक्षमाला	मिश्रकेशी	मिश्रकेशी	सानुमती	सानुमती
20.	विश्वामित्रः	विश्वामित्रः	विश्वामित्रः	विश्वामित्रः	विश्वामित्रः	विश्वामित्रः
21.	दुर्वासा ऋषिः	दुर्वासा ऋषिः	दुर्वासा ऋषिः	दुर्वासा ऋषिः	दुर्वासा ऋषिः	दुर्वासा ऋषिः
22.	कण्व-काश्यप	काश्यपः, कण्वः	कण्वः	कण्वः	कण्वः-काश्यपश्च	कण्वः-काश्यपश्च
23.	वैखानस	तापसः	तापसः	वैखानसः	वैखानसः	वैखानसः
24.	तापस-1	शिष्य-1	शिष्यः-1	शिष्यः-1	तापसः-1	तापसः-1

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

25.	तापस-2	शिष्य:-2	नास्ति	नास्ति	तापस:-2	तापस:-2
26.	शार्ङ्गरव:	शार्ङ्गरव:	शार्ङ्गरव:	शार्ङ्गरव:	शार्ङ्गरव:	शार्ङ्गरव:
27.	शारद्वत:	शारद्वत:	शारद्वत:	शारद्वत:	शारद्वत:	शारद्वत:
28.	भागुरि:	भागुरि:	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति
29.	शिष्य-1	हारीत	हारीत	हारीत	नारद	नारद
30.	शिष्य-2	गौतम	गौतम	पात्राभाव:	गौतम	गौतम
31.	आश्रम-माता	गौतमी	गौतमी	गौतमी	गौतमी	गौतमी
32.	राजा की दासी	मेधाविनी	मेधाविनी	चतुरिका, मेधाविनी	चतुरिका	चतुरिका
33.	रानी की दासी	पिङ्गलिका	पिङ्गलिका	पिङ्गलिका	तरलिका	तरलिका
34.	कञ्चुकी	पार्वतायन:	पार्वतायन:	पार्वतायन:	वातायन:	वातायन:
35.	मौद्गल्य	मौद्गल्य,अं-5	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति
36.	यवनिका:	यवनी	न सन्ति	न सन्ति	यवनी	यवनी
37.	वैतालिक	वैतालिकौ	वैतालिकौ	वैतालिकौ	वैतालिकौ	वैतालिकौ
38.	उद्यान-पालिका-1	मधुकरिका	मधुकरिका	मधुरिका	मधुकरिका	मधुकरिका
39.	उद्यान-पालिका-2	परभृतिका	परभृतिका	परभृतिका	परभृतिका	परभृतिका
40.	वारिपथोपजिवी समुद्रव्यवहारी	धनवृद्ध:, वारिपथो०	धनवृद्धि:, वारिपथो०	धनवृद्धि:, वारिपथो०	धनमित्र:, समुद्रव्यव०	धनमित्र:, समुद्रव्यव०
41.	केशवश्रेष्ठिन: दुहिता	केशवश्रेष्ठिन:	साकेतस्य श्रेष्ठिन:	साकेतक-पुरस्य	साकेत-श्रेष्ठिन:	साकेतस्य श्रेष्ठिन:
42.	धीवर (पुरुष:)	पुरुष:	पुरुष:	धीवरक:	पुरुष:	पुरुष:
43.	नगर-रक्षक	प्रथम: / सूचक: (सूचअ)	प्रथम: / जानुक: (जानुअ)	एक: / जानुक: (याणुअ)	प्रथम: / जानुक:	प्रथम: / सूचक:
44.	नगर-रक्षक	द्वितीय: / जानक: (जाणआ)	द्वितीय: / सूचक: (सूअअ)	द्वितीय: / सूचक:	द्वितीय: / सूचक:	द्वितीय: / जानुक:
45.	नागरिक (श्याल)	आवुत्त, स्याल:	लाउत्त, श्यालक:	लाउत्त, नागरक:	आवुत्त, स्याल:	श्याल:
46.	मारीच:	मारीच:	मारीच:	मारीच:	मारीच:	मारीच:
47.	अदिति:	अदिति:	अदिति:	अदिति:	अदिति:	अदिति:

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

48.	मातलि-सारथि	मातलिः	मातलिः	मातलिः	मातलिः	मातलिः
49.	नाकलासिका-1	पारिजातमञ्जरी	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति
50.	नाकलासिका-2	चूतमञ्जरी	नास्ति	नास्ति	नास्ति	नास्ति
51.	शकुन्तला-पुत्र	सर्वदमन भरत	सर्वदमन, भरतः	सर्वदमन, भरतः	सर्वदमन, भरतः	सर्वदमन, भरतः
52.	मारीच-आश्रमकन्या-1	संयता	सुव्रता	सुव्रता	सुव्रता	सुव्रता
53.	मारीच-आश्रमकन्या-2	सुव्रता	संयता, संजदे	नास्ति नाम अन्तिका	नास्ति नाम	नास्ति नाम
54.	मार्कण्ड-ऋषि	मङ्कनकः	शालंकायनः	मङ्कणकः	मार्कण्डेयः	मार्कण्डेयः
55.	बकुलवृक्ष	बकुलवृक्ष	नास्ति	नास्ति	केसरवृक्षः	केसरवृक्षः
56.	सहकार-वृक्ष वनतोषिन्	सहकारवृक्षः, वनतोषिन्	सहकारवृक्षः	सहकारवृक्षः	बालसहकार-वृक्षः	सहकार-वृक्षः
57.	नवमालिका वनज्योत्स्ना	नवमालिका	नवमालिका, वनतोषिणी	नवमालिका, वनतोषिणी	नवमालिका, वनज्योत्स्नी	नवमालिका, वनज्योत्स्ना
58.	माधवीलता	माधवीलता	माधवीलता	माधवीलता	नास्ति	नास्ति
59.	अपराजिता	अपराजिता	अपराजिता	अपराजिता	अपराजिता	अपराजिता
60.	भ्रमर	भ्रमरः	भ्रमरः	भ्रमरः	भ्रमरः	भ्रमरः
61.	मृगपोतक	पुत्रकृतक	कृतकपुत्र	मृगशावक	दीर्घापाङ्ग	दीर्घापाङ्ग
62.	चक्रवाक-युगल	चक्रवाक-युगल	चक्रवाक-युगल	चक्रवाक-युगल	चक्रवाक-युगल	चक्रवाक-युगल
63.	परभृतिका	परभृतिका	परभृतिका	परभृतिका	परभृतिका	परभृतिका
64.	हंस-युगल	हंस-युगल	हंस-युगल	हंस-युगल	हंस-युगल	हंस-युगल
65.	मालिनी नदी	मालिनी नदी	मालिनी नदी	मालिनी नदी	मालिनी नदी	मालिनी नदी
66.	मत्स्य	मत्स्य	मत्स्य	मत्स्य	मत्स्य	मत्स्य
67.	अंगुलीयक	अंगुलीयक	अंगुरीयक	अंगुलीयक	अंगुलीयक	अंगुलीयक
68.	गज	गज	गज	गज	गज	गज
69.	धेनु	कपिलाधेनुः	होमधेनुः	होमधेनुः	होमधेनुः	होमधेनुः
70.	सिंह-शावक	सिंह-शावक	सिंह-शावक	सिंह-शावक	सिंह-शावक	सिंह-शावक
71.	मृत्तिका-मयूर	मृत्तिका-मयूर	मृत्तिका-मयूर	मृत्तिका-मयूर	मृत्तिका-मयूर	मृत्तिका-मयूर
72.	कमल	कमल	कमल	कमल	कमल	कमल
73.	शिरीष-पुष्प	शिरीष-पुष्प	शिरीष-पुष्प	शिरीष-पुष्प	शिरीष-पुष्प	शिरीष-पुष्प

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

परिशिष्ट - (ख)

क.	काश्मीर-पाठे शीर्षकम्	मैथिल-पाठे शीर्षकम्	बंगीय-पाठे शीर्षकम्	दाक्षिणात्य-पाठे शीर्षकम्	देवनागरी-पाठे शीर्षकम्
	अभिज्ञानशकुन्तला नाटकम्	अभिज्ञान-शकुन्तलम्	अभिज्ञान-शकुन्तलम्	अभिज्ञान-शाकुन्तलम्	अभिज्ञान-शाकुन्तलम्
ख.	**अङ्क-नाम**	**अङ्क-नाम**	**अङ्क-नाम**	**अङ्क-नाम**	**अङ्क-नाम**
1.	नास्ति	आखेटकः	आखेटकः	नास्ति	नास्ति
2.	नास्ति	तपोवनानुगमनः	आख्यानगुप्तिः	नास्ति	नास्ति
3.	नास्ति	शृङ्गार-भोगः	शृङ्गार-भोगः	नास्ति	नास्ति
4.	नास्ति	शकुन्तला-प्रस्थानः	शकुन्तला-प्रस्थानः	नास्ति	नास्ति
5.	नास्ति	शकुन्तला-प्रत्याख्यानम्	शकुन्तला-प्रत्याख्यानः	नास्ति	नास्ति
6.	नास्ति	शकुन्तला-विरहः	शकुन्तला-विरहः	नास्ति	नास्ति
7.	नास्ति	शकुन्तला-वर्धनम्	किमपि नाम न	नास्ति	नास्ति

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

परिशिष्ट-2

पाँचों रंगावृत्तियों में प्रयुक्त प्राकृत-भाषाएँ।।

(ध्वनिरूपों की परिवर्तन-यात्रा)

भूमिकाः- प्राकृत भाषा की उत्पत्ति एवं विकास का इतिहास यद्यपि अनेक मत-मतान्तर से भरा हुआ है। तथापि वैदिक संस्कृत भाषा के विनियोग के साथ साथ बहुविध प्राकृत बोलियों का प्रचलन भी सामान्य-जनों के व्यवहार में था, ऐसा अनुमान भी मान्य हुआ है। वैदिक संस्कृति के बाद जो श्रमण संस्कृति का उदय हुआ और उनके प्रधान प्रवर्तक भगवान् बुद्ध (ई. पूर्व 600) और भगवान् महावीर ने अपने धर्मोपदेश को जन-जन तक पहुँचाने के लिए पालि एवं अर्धमागधी भाषा का विनियोग किया था। जिसके कारण उनका गौरव बढा था तथा उन दोनों में काव्य-साहित्य की रचनाएं भी होने लगी थी। भिन्नरुचि वाले लोक-समुदाय का समाराधन करने वाले संस्कृत नाट्य-साहित्य में भी, अलग अलग प्राकृत भाषाओं का उपयोग करने का सुझाव भी भरत मुनि ने ही दिया था। इन प्राकृतों को साहित्य में स्थान मिलने का यही सुदृढ प्रमाण है। दूसरे शब्दों में कहे तो संस्कृत के साथ साथ इन प्राकृत-भाषाओं ने भी अपनी प्रस्तुतता / अनिवार्यता बहुत प्राचीन काल से हांसिल कर ली थी। संस्कृत नाटकों में शौरसेनी एवं मागधी अर्धमागधी प्रकार की प्राकृत-भाषाओं का विनियोग करने का नाट्यशास्त्र में जो विशेष रूप से कहा गया है, वे पूर्विय मगध (बिहार) से लेकर शूरसेन (मथुरा) के मध्यवर्ती प्रदेशों में व्यवहृत होनेवाली प्राचीनतर बोलियाँ (Dialects) हैं। इन दोनों की अपेक्षा से महाराष्ट्री प्राकृत एवं "जैन महाराष्ट्री प्राकृत" (जिसमें य-श्रुति का अधिक प्रचलन था, वह) उत्तरवर्ती काल की बोलियाँ हैं।।

भरत मुनि ने दिये नियमों के अनुसार शकुन्तला-प्रियंवदादि स्त्री-पात्रों के मुख में शौरसेनी, एवं राजपुत्र (=सर्वदमन भरत) तथा धीवर के मुख में मागधी का प्रयोग होना चाहिए। किन्तु इस नाटक की देवनागरी पाण्डुलिपियों में शौरसेनी एवं मागधी की उक्तियाँ यथावत् सुरक्षित नहीं रही हैं। उनमें तो प्रायः महाराष्ट्री प्राकृत का प्रभाव देखा जाता है। अतः अभिज्ञानशकुन्तला नाटक की पाँच रंगावृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन करते समय, इसकी प्राकृत उक्तियों में दृश्यमान हो रहे पाठान्तरों के वैविध्य को कालिक सन्दर्भ में पहचानना चाहिए।।

[1]

संस्कृत नाटकों में प्राकृत का विनियोग करने के लिए भरत मुनि ने (अध्याय 17, श्लोक 45 से 57) प्रदेशभेद के हिसाब से भाषाभेद बताया है। जिससे पता चलता है कि भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों में भिन्न भिन्न प्रकार की प्राकृत भाषाएँ चलती थी। भाषा-वैविध्य का वर्णन करनेवाले इन श्लोकों का पाठ निम्नोक्त हैः-

सर्वास्वेव हि शुद्धासु जातिषु द्विजसत्तमाः।
शौरसेनीं समाश्रित्य भाषां काव्येषु योजयेत्।। 17-45।।

अथवा छन्दतः कार्या देशभाषा प्रयोक्तृभिः।
नानादेशसमुत्थं हि काव्यं भवति नाटके।। 46

मागध्यवन्तिजा प्राच्या शौरसेन्यर्धमागधी।
वाह्लीका दाक्षिणात्या च सप्त भाषाः प्रकीर्तिताः।। 47।।

शकाराभीरचण्डालशबरद्रमिलान्ध्रजाः।
हीना वनेचराणां च विभाषा नाटके स्मृताः।। 48।।

मागधी तु नरेन्द्राणामन्तःपुरसमाश्रया।
चेटानां राजपुत्राणां श्रेष्ठिनाञ्चार्धमागधी।। 49।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

प्राच्या विदूषकादीनां धूर्तानामप्यवन्तिजा।
नायिकानां सखीनाञ्च शूरसेन्यविरोधिनी।। 50।।

व्यसने नायकानां चाप्यात्मरक्षासु मागधी।। 55।।
गङ्गासागरमध्ये तु ये देशाः संप्रकीर्तिताः।
एकारबहुलां भाषां तेषु तज्ञः प्रयोजयेत्।। 17-57 इत्यादि 61।।

भरत मुनि ने इन श्लोकों के पूर्व, अ. 17, श्लोक 3 से 23 में प्राकृत भाषा में तीन तरह के शब्दों का निर्देश किया है। (क) समानशब्द (तत्सम), (ख) विभ्रष्ट (तद्भव) एवं (ग) देशीगत (देश्य)। तत्पश्चात् प्राकृत भाषा के शब्दरूपों में प्रचलित जो ध्वनि-परिवर्तन के नियम हैं, उनका निरूपण किया है। उदाहरणतया- संस्कृत शब्दों में आये हुए ख-घ-थ-भ व्यञ्जनों के स्थान में ह-कार हो जाता है। मुख से मुह, मेघ से मेह, कथा से कहा, वधू से वहू, प्रभु से पहू इत्यादि। षकार के स्थान में छकार होता है। जैसे कि, षट्पद से छटपद। किल शब्द का किर तथा खलु के स्थान में खु हो जाता है। श-कार एवं ष-कार के स्थान में स-कार होता है। जैसे कि, विष से विस तथा शंका से संका बन जाता है। पदादि मे न हो ऐसे त-कार के स्थान में अस्पष्ट द-कार हो जाता है। न-कार से स्थान में सर्वत्र ण-कार होता है। जैसे कि, नयन के स्थान में णअणं। एवमेव, मृतः तथा मृग शब्दों का प्राकृत रूपान्तर मओ ही होता है। निश्चित व्यञ्जनों के ध्वनिविकार कहने के उपरान्त कुछ शब्दों के स्थान में कैसा रूप होता है? वह भी उन्होंने बताया है। उदाहरणतया- आश्चर्यम् का अच्छरियं, निश्चयं का णिच्छयं, उत्साह का उच्छाह, पथ्यं का पच्छं, तुभ्यं का तुज्हं, मह्यं का मज्हं, ग्रीष्म का गिम्ह, उष्णं का उण्हं, यक्ष का जक्खो .... इत्यादि हो जाता है।।

[2]

महर्षि पाणिनि ने जैसे संस्कृत भाषा के व्याकरण का सूत्रशैली में निरूपण किया है, वैसे प्राकृत भाषा के व्याकरण भी सूत्रशैली में लिखे गये हैं। जैसे कि, वररुचि ने (इ. स. 600 में) प्राकृतप्रकाश, हेमचन्द्राचार्य ने (इ. स. 1088-1172 में) सिद्धहेमशब्दानुशासन के अष्टम अध्याय, क्रमदीश्वर ने (इ.स. 1200 में) प्राकृत-संक्षिप्तसार, त्रिविक्रम ने (इ.स. 1300 में) प्राकृतशब्दानुशासन, मार्कण्डेय ने (इ.स. 1700 में) प्राकृतसर्वस्व, लक्ष्मीधर ने षड्भाषाचन्द्रिका आदि की रचनाएँ की है। इनसे अलावा चण्ड कवि ने लिखा प्राकृतलक्षण नाम का लघुग्रन्थ है, जिसमें भी प्राकृत भाषा का स्वरूप निरूपित है। विद्वानों का मत है कि चण्ड का प्राकृतलक्षण ही सब से पहला प्राकृत व्याकरण है, जो वररुचि के प्राकृतप्रकाश से भी पुरोगामी काल में लिखा गया है।।

प्रॉफेसर होर्नल (1880) का मत है कि चण्ड कवि ने जिस प्राकृतभाषा के लक्षण बताये हैं, वह सब से पुरानी प्राकृत है[1] , जिसको "जैन आगम ग्रन्थों की अर्धमागधी" या "आर्षम्" भी कही गई है। वह इतनी "पुरानी" है कि उसमें से ही क्रमशः द्वितीय स्तर की अर्धमागधी निकली है। तीसरे क्रम में शौरसेनी प्राकृत बनी है। चतुर्थ क्रम में, उसी शौरसेनी से पैशाची-प्राकृत निकली है। (गुणाढ्य की बृहत्कथा में प्रयुक्त पैशाची प्रथम युग की है। लेकिन उसका कोई निदर्श आज उपलब्ध नहीं है। तत्पश्चात् जो मध्ययुग की पैशाची है, उसका काल-खण्ड 200 से 500 ई. स. का है।) इसके ध्वनिरूपों के उदाहरण हमें संस्कृत नाटकों में कहीं कहीं मिल जाते हैं। अन्तिम चरण में यानी पञ्चम एवं षष्ठ क्रमांक पर महाराष्ट्री प्राकृत एवं अपभ्रंश का उदय होता है, जो परवर्ती काल में हुआ है।

पाइअ-सद्द-महाण्णवो के सम्पादक श्री हरगोविन्ददास शेठ (1925 में) ने प्राकृत भाषाओं को तीन युगों में विभक्त की है:- (1) ख्रिस्त-पूर्व 400 से ख्रिस्त के बाद 100, जिसमें त्रिपिटक, जैन अंगसूत्रों, अशोक के शिलालेखों में प्रयुक्त प्राकृत

1. It thus seem to me very clear that the Prakrit of Chanda is theAarsha or ancient (porana) form of Ardhamagadhi, Maharashtri and Shauraseni- Intoduction page 19, The Prakrit & Lakshanam OR Chanda's Grammar of Ancient Prakrit, Ed-A- F- Rudolf Hoernle, Part & 1, Calcutta, 1880- (प्राकृत-लक्षण की रचना ई.स. 3-4 शती में और वररुचि के प्राकृतप्रकाश की रचना षष्ठी शती में हुई होगी।)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

भाषा, अश्वघोष के नाटकों की प्राकृत का समावेश होता है। (2) मध्ययुग, जो खिस्तीय 100 से 500, जिसमें भास, कालिदास, शूद्रकादि के नाटकों की अर्धमागधी तथा शौरसेनी का समावेश होता है, एवं विक्रमोर्वशीय की गाथाओं की अपभ्रंश का भी। (3) शेष युग, ख्रिस्तीय 500 से 1000 वर्ष, जिसमें विभिन्न प्रदेशों की अपभ्रंश का समावेश होता है।।

इस क्रम को दृष्टिसमक्ष रखते हुए, कालिदास के अभिज्ञानशकुन्तला नाटक की पाँच रंगावृत्तिओं की प्राकृत-उक्तियाँ में प्रयुक्त प्राकृत-भाषा के ध्वनिरूपों की परिवर्तन-यात्रा (यानी शौरसेनी एवं मागधी के ध्वनिरूपों में किये गये परिवर्तनों की आनुक्रमिकता) देखना उपकारक सिद्ध होगा।।

[3]

यहाँ प्रश्न होगा कि प्राकृत भाषा के ध्वनि-परिवर्तनों की आनुक्रमिकता कैसे निश्चित की जा सकती है। प्राकृत भाषा की शब्दराशि में जिन शब्दों का ध्वन्यात्मक शब्द-स्वरूप संस्कृत जैसा ही उपलब्ध होता है, (जिनको "तत्सम" शब्दों के नाम से पहचाने जाते हैं) उनमें तो ध्वनिविकार पैदा हुआ ही नहीं है, अतः उनका प्राचीनतमत्व निर्विवाद है। परन्तु जिन संस्कृत शब्दों में आंशिक ध्वनिपरिवर्तन होने के बाद प्राकृत शब्द आये हैं, (जिनको "तद्भव" शब्द कहते हैं), उन प्राकृत शब्दों में होनेवाले ध्वनिपरिवर्तन (ध्वनिशास्त्र के नियमानुसार) निश्चित क्रम में ही होता है, अतः उनकी आनुक्रमिकता असंदिग्ध रूप में निर्धारित की जा सकती है। एवञ्च, जिन देश्य शब्दों ने प्राकृत भाषा में मान्यता प्राप्त कर ली है, तो उन का अस्तित्व भी अनादि मानना होगा। यद्यपि ऐसे शब्दों का उल्लेख किस प्राकृत-व्याकरण में सब से पहले हुआ है, उस व्याकरण के रचना-समय के हिसाब से भी कुत्रचित् / कदाचित् पूर्वापर क्रम निश्चित किया जा सकता है।। इस परामर्श के मार्गदर्शन में, अभिज्ञानशकुन्तला की प्राकृत-उक्तियों में प्राप्त होनेवाले पाठान्तरों की आनुक्रमिकता पर प्रकाश डाला जा सकता है।। उदाहरणतया-

1. नवमालिका - इस संस्कृत शब्द का शौरसेनी में णवमालिआ में परिवर्तन होता है। (यहाँ न-कार का ण-कार में परिवर्तन हुआ है, तथा मालिका शब्द में आये मध्यवर्ती क-कार का लोप हुआ है।) इस तरह का रूपान्तर केवल काश्मीरी रंगावृत्ति में ही सुरक्षित रहा मिलता है। किन्तु मैथिली एवं बंगाली रंगावृत्तियों में इसी शब्द का णोमालिआ में परिवर्तन हो गया है। इसका मतलब यह हुआ कि नवमालिका से णवमालिआ बनने के बाद, ध्वनिविकार की प्रक्रिया ओर आगे बढती है, जिसके कारण णवमालिआ में आये लघुप्रयत्नतर व-कार की सन्धि पुरोगामी अ-कार के साथ होने से, वह ओ-कार में रूपान्तरित होकर णोमालिआ बन गया है। यह निश्चिततया उत्तरवर्ती काल में हुई ध्वनि-परिवर्तन की प्रक्रिया है, जो विशेषतया महाराष्ट्री-प्राकृत में देखी जाती है। अतः, ध्वनिशास्त्रीय नियमों के आधार पर, काश्मीरी पाठ की अपेक्षा से मैथिली-आदि पाठों का उत्तरवर्तित्व निर्धारित हो जाता है:-

ध्वनि-नियमः	संस्कृत शब्दः	काश्मीर-पाठे अंकक्रमः, उक्त्याश्च क्रमः	मैथिलपाठे उक्ति-क्रमः	बंगीयपाठे उक्ति-क्रमः	दाक्षिणात्य उक्ति-क्रमः	देवनागरी उक्ति-क्रमः
न-ण	नव-मालिका	1. इअं स्वअंवरवहूस्सह-आरस्स णवमालिआ (68)	णोमालिआ (75)	णोमालिआ (74)	णोमालिआ (94)	णोमालिआ (93)
न-ण	नव-मालिका	1. जधा वनदोसिणा पादपेण णवमालिआ (72)	णोमालिआ (79)	......	.....	.....
न-ण	नव-मालिका	1. सलिलसेअसंवुत्तो णवमालिअं उज्झिअ वअणं (77)	णोमालिअं (99)	णोमालिअं (94)	णोमालिअं (105)	णोमालिअं (104)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

2. कवि चण्डकृत प्राकृतलक्षण में विभक्तिविधान नामके प्रथम अध्याय में, "संख्याया ण्हः" (1-6) सूत्र से द्वि शब्द के षष्ठी विभक्ति में जो द्वयोः रूप होता है, उसके लिए प्राकृत में "दोण्हं" शब्द का प्रयोग बताया है। उसके बाद, वररुचि ने भी "एषाम् आमो ण्हं" (6-59) सूत्र से कहा है कि द्वयोः धनम् के लिए दोण्हं धणं, एवं त्रयाणां धनम् के लिए तिण्हं धणं - जैसे प्रयोग होते हैं। एवमेव, हेमचन्द्राचार्य ने भी "संख्याया आमो ण्ह-ण्हं" (सि. हे.श. 3-123) सूत्र से यही दोण्हं, तिण्हं आदि प्राकृत रूप कहे हैं। अब इस सन्दर्भ में अभिज्ञानशकुन्तला की अलग अलग पाँच रंगावृत्तियों के पाठों का तुलनात्मक अध्ययन करेंगे तो मालूम होगा कि दोण्हं शब्द का प्रयोग केवल काश्मीरी रंगावृत्ति में ही मिल रहा है:-

ध्वनि-नियमः	संस्कृत शब्दः	काश्मीर-पाठे अंकक्रमः, उक्त्याश्च क्रमः	मैथिलपाठे उक्ति-क्रमः	बंगीयपाठे उक्ति-क्रमः	दाक्षिणात्य उक्ति-क्रमः	देवनागरी उक्ति-क्रमः
दोण्हं आदेश	द्वयोः	3. महाभाअ, दोण्हं पि वो अण्णोण्णाणुराओ पच्चक्खो (64)	दोण्णं (69)	दोण्णं (70)	दुवेण (74)	दुवेणं (74)
दोण्हं आदेश	द्वयोः	4. दोण्हं येव अम्हेसु एसो साववुत्तन्तो चिट्ठदु। (30)	दोहिं (33)	दोण्णं (32)	दुवेण (36)	दुवेणं (35)
दोण्हं आदेश	द्वयोः	4. एसा दोण्हं पि हत्थे णिक्खेवो। (120)	दोण्हं (120)	दोण्णं (123)	दुवेणं (131)	दुवेणं (129)

3. काश्मीरी रंगावृत्ति में खलु निपात के लिए खु का सार्वत्रिक प्रयोग मिलता है। लेकिन मैथिली एवं बंगाली रंगावृत्तियों में क्खु ऐसा प्राकृत रूप उपयुक्त हो रहा है। (डॉ. रिचार्ड पिशेल ने भी खलु के लिए क्खु को ही मान्य रखा है।) अब प्रश्न होगा कि प्राकृत-व्याकरणों की दृष्टि में इन दोनों में से कौन सा रूप शौरसेनी एवं मागधी में मान्य होगा? तो, वररुचि ने "हुं क्खु निश्चय-वितर्क-सम्भावनेषु। (प्राकृतप्रकाशः, 9-6)" सूत्र से खलु के लिए क्खु निपात का प्रयोग कहा है। उसके प्रतिपक्ष में, हेमचन्द्राचार्य ने "हु-खु निश्चय-वितर्क-संभावन-विस्मये" (8-2-198) सूत्र से, खलु निपात के लिए खु का प्रयोग होता है- ऐसा बताया है! यानी प्राकृत-व्याकरणकारों ने दो अलग अलग मत प्रकट किये हैं। किन्तु वररुचि एवं हेमचन्द्र से भी पहले, भरत मुनि ने "किलशब्दान्त्यो रेफो भवति, तथा खु त्ति खलुशब्दः" (ना. शा., अ. 17-10) इस श्लोक में कहा है कि किल शब्द के स्थान में किर होता है, तथा खलु के लिए खु शब्द का विनियोग होता है।। भरत मुनि के इस विधान के अनुरोध पर कालिदास ने इस नाटक के मूल पाठ में खलु के लिए खु का प्रयोग ही किया होगा।। एवमेव, वररुचि के प्राकृतप्रकाश से भी पहले, चण्ड ने प्राकृतलक्षण नाम के अपने लघु व्याकरण में लिखा है कि "खलोः खु" (2-29) अर्थात् खलु निपात के स्थान में खु आदेश होता है। इससे भी निश्चित होता है कि प्राकृत में खु निपात का प्रचलन ही पुरोगामी रहा होगा। अतः मैथिली एवं बंगाली रंगावृत्तियों के पाठ में सर्वत्र मिल रहा क्खु का प्रयोग उत्तरवर्ती काल का ही सिद्ध होता है। दाक्षिणात्य तथा देवनागरी रंगावृत्तियों में खु का प्रचलन दिखता है, जिनमें काश्मीरी पाठपरम्परा का प्रतिबिम्ब देखाई रहा है।।

---

1. श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी जी ने कालिदास-ग्रन्थावली (1986 एवं 2008) में मालविकाग्निमित्र एवं विक्रमोर्वशीय के पाठ में सर्वत्र क्खु का प्रयोग मान्य रखा है, किन्तु अभिज्ञानशाकुन्तल में सर्वत्र खु निपात को मान्य रखा है!

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

ध्वनि-नियमः	संस्कृत शब्दः	काश्मीर-पाठे अंकक्रमः, उक्त्याश्च क्रमः	मैथिलपाठे उक्ति-क्रमः	बंगीयपाठे उक्ति-क्रमः	दाक्षिणात्य उक्ति-क्रमः	देवनागरी उक्ति-क्रमः
खलु-खु	खलु (वितर्के)	1. किं णु खु इमं पेक्खिअ तवोवणविरोधिणो विआरस्स (97)	क्खु (117)	क्खु (113)	क्खु (126)	खु (125)
खलु-खु	खलु (वितर्के)	6. किं णु खु शोहणो बम्हणे त्ति कलिअ लञ्जा (4)	क्खु (4)	क्खु (4)	खु (4)	.....
खलु-खु	खलु (वितर्के)	6. किं णु खु ऊसवंदिणे वि णिरूसवारम्भं विअ (45)	क्खु (41)	क्खु (49)	खु (49)	खु (46)

4. प्राकृत व्याकरणकारों ने संस्कृत ऋ-स्वर का प्राकृत भाषा के विभिन्न शब्दों में होनेवाले बहुविध परिवर्तनों का निरूपण किया है। जैसे कि, वररुचि ने 1. ऋतोऽत् (1-27) सूत्र से कहा है कि शब्द के आदि में आये ऋ-कार के स्थान में अ-कार होता है। उदाहरणतया- तृणम् के स्थान में तणं एवं मृगः के स्थान में मअ होता है। 2. इद् ऋष्यादिषु (1-28) सूत्र से कहा है कि ऋषि-इत्यादि शब्दों के आदि ऋ-कार के स्थान में इ-कार होता है। उदाहरणतया- ऋषि का इसी, तथा दृष्टि का दिट्ठी होता है। इत्यादि।। अभिज्ञानशकुन्तला नाटक की अलग अलग वाचनाओं के पाँच पाठों का निम्नोक्त तुलनात्मक अध्ययन करने से मालूम होता है कि उनमें तो मृग के लिए मिअ एवं मअ इन दोनों का प्रयोग चलता है। अतः प्रश्न होगा कि इन द्विविध प्रयोगों में से प्राचीनतर प्रयोग किस को माना जाय?।

ध्वनि-नियमः	संस्कृत शब्दः	काश्मीर-पाठे अंकक्रमः, उक्त्याश्च क्रमः	मैथिलपाठे उक्ति-क्रमः	बंगीयपाठे उक्ति-क्रमः	दाक्षिणात्य उक्ति-क्रमः	देवनागरी उक्ति-क्रमः
ऋ-इ	मृगया	2. एदस्स मिगआ सीलस्स (2)	मिअआ (1)	मिअआ (2)	मिअआ (2)	मअआ (2)
ऋ-इ	मृगः	2. अअं मिगो, अअं वराहो त्ति (2)	मिओ (1)	मिओ (2)	मिओ (2)	मओ (2)
ऋ-अ	मृगा-नुसारेण	2. तत्थभवदो मआणुसारेण अस्समपदं पइट्ठस्स (3)	मिआणुसा-रेण (1)	मिआणुसा -रिणा (2)	मिआणुसा-रिण (2)	मआणुसारेण (2)
ऋ-इ	मृगपोतक	3. एसो मिअपोदओ इदो तदो दिण्णदिट्ठी... (80)	मिअपोदओ (86)	मिअपोदओ (91)	मिअपोदओ (87)	मिअपोदओ (86)
ऋ-अ	मृगी	4. उल्लदिदकवला मई (114)	मई (114)	मई (117)	मिआ (125)	मिआ (123)
ऋ-अ	मृगवधूः	4. उडजपय्यन्तचारिणी गब्भमन्थरा मअवहू जदा (123)	मिअवहू (124)	मिअवहू (127)	मिअवहू (136)	मिअवहू (134)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

इस सन्दर्भ में भी भरत मुनि ने जो मार्गदर्शन दिया है, वह द्रष्टव्य है :- "यस्तु मृतः सोऽपि मओ, यश्च मृगः सोऽपि हि तथैव" (नाट्यशास्त्रम् , अ.17, श्लोक-15) अर्थात् भरत मुनि कहते हैं कि मृत शब्द हो, चाहे मृग शब्द हो, किन्तु दोनों शब्दों में आये आदि ऋ-कार का अ-कार में परिवर्तन किया जाता है। जिससे दोनों शब्दों के लिए "मओ" ऐसा प्राकृत रूप ही चलता है।। यदि भरत मुनि कालिदास के निकटवर्ती पुरोगामी अनुशासन-कर्ता है तो अभिज्ञानशकुन्तला की काश्मीरी रंगावृत्ति में मृग के लिए जो मओ ऐसा प्राकृत रूप बहुशः मिलता है, उससे सिद्ध होता है कि काश्मीरी रंगावृत्ति ही प्राचीनतम है। इसी लिए पुनर्ग्रथित पाठ में भरत मुनि ने दिखाये प्राकृत रूपों का ही विशेष आदर करना चाहिए।।

[4]

प्राकृत भाषा के ध्वनि-सम्बन्धी नियमों का सब से पहले निरूपण करनेवाले आचार्य तो भरत मुनि ही है। उन्हों ने ही नायिका, सखियाँ, चेटी आदि स्त्री पात्रों के लिए शौरसेनी का विधान किया है। तथा राजपुत्रादि के मुख में मागधी (यानी अर्धमागधी) प्राकृत का विनियोग करने का कहा है। किन्तु भरत मुनि ने विशेष रूप से शौरसेनी एवं मागधी के लक्षण नहीं बताये हैं। उन्होंने तो जो नियम बतायें हैं, वे बहुत साधारण तरह के है। (द्रष्टव्यः- ना. शा., अ. 17-3 से 23, भाग-2, वडोदरा)। एवमेव, चण्ड ने तथा वररुचि ने भी शौरसेनी एवं अर्धमागधी के नियम विस्तार से नहीं बताये हैं। अतः आचार्य हेमचन्द्र जी के प्राकृत-व्याकरण के आधार पर, संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त हुई इन दोनों प्राकृतों के नियम पहले समझ लेना चाहिए:-

हेमचन्द्राचार्य ने शौरसेनी के कुछ प्रधान नियमों इस तरह के बताये हैः-

1. तो दोऽनादौ शौरसेन्याम् अयुक्तस्य। (हेम. 8-4-260) अर्थात् अपदादि त-कार का द-कार हो जाता है, लेकिन वह त-कार संयुक्ताक्षर में प्रयुक्त नहीं होना चाहिए। उदाहरणतया- ततः का तदो होता है। किन्तु शकुन्तला शब्द में न्त (संयुक्ताक्षर) में त-कार का द-कार नहीं होता है। अतः हला शकुन्तले → हला सउन्तले।।
2. न वा र्यो य्यः। (हेम. 8-4-266) से रेफोत्तरवर्ती य-कार के स्थान में विकल्प से य्य-कार होता है। उदा.- आर्यपुत्र, पर्याकुलीतास्मि। → अय्यउत्त, पय्याकुलीकदम्हि। (तत्पश्चात् उस य्य-कार का ज्ज-कार में परिवर्तन होता है। जिसके कारण अज्जउत्त बनता है।)
3. थो धः। (हेम. 8-4-267) सूत्र से शौरसेनी में थ-कार का ध-कार में परिवर्तन होता है। तत्पश्चात् कालान्तर में उसी ध-कार का ह-कार में परिवर्तन होता है। उदा.- कथयति→ कधेदि। (तत्पश्चात् कहेदि में परिवर्तन होता है।)
4. भुवो भः। (हेम. 8-4-269) सूत्र से भू (भवति) धातु के भ-कार का परिवर्तन नहीं होता है। जैसे कि- भवति → भवदि एवं भोदि। (कालान्तर में, उसका हवदि एवं होदि रूप प्रचार में आएं।)
5. भविष्यति स्सिः। (हेम. 8-4-275) सूत्र से कहा है कि शौरसेनी में कालवाचक क्रियापद में स्सि प्रत्यय लगता है। जैसे कि- भविष्यति का भविस्सिदि होगा।
6. कृ-गमो डडुअः। (हेम. 8-4-272) से कृ एवं गम् धातु से लगनेवाले क्त्वा प्रत्यय के स्थान में अदुअ आदेश होता है। कृत्वा → कदुअ, गत्वा → गदुअ। (परवर्ती काल में, महाराष्ट्री प्राकृत → में करीअ, गच्छिय रूप होते हैं।)
7. पूर्वस्य पुरवः। (हेम. 8-4-270) सूत्र से शौरसेनी में, पूर्व शब्द के स्थान में पुरव ऐसा आदेश होता है। जैसे कि, अपूर्वम् नाटकम् → अपुरवं नाडअं।
8. एवार्थे य्येव। (हेम. 8-4-280) सूत्र से एव अव्यय के स्थान में, शौरसेनी में, य्येव ऐसा आदेश होता है। (किन्तु कालान्तर में महाराष्ट्री के प्रभाव से एव्व तथा ज्जेव रूप प्रचार में आये थे)।।
9. इसी तरह से, शौरसेनी में कतिपय अव्ययों के भी विशेष ध्वनि-परिवर्तन उल्लिखित किये गये हैं। जैसे कि-

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

यदि का जदि (कालान्तर में महाराष्ट्री के प्रभाव से जदि में से द-कार का लोप होकर जइ बनता है।), यथा-तथा जैसे युगल अव्ययों के स्थान में शौरसेनी में जधा-तधा होता है। (कालान्तर में महाराष्ट्री के प्रभाव से जहा-तहा ही प्रचलित हो गये हैं।)

10. प्राकृत भाषा के विनियोग में जैसे तत्सम एवं तद्भव शब्दों का विनियोग होता है, वैसे ही देशी शब्दों का भी संनिवेश होता है। उसकी सुरक्षा में ही पाठ की मौलिकता झलकती है। लेकिन ऐसे शब्द कालान्तर में जब दुर्बोध हो जाते हैं, तब उनको सुबोध करने के लिए अन्य शब्द स्थानापन्न किये जाते हैं।

11. सामान्यतः प्राकृत में सम्प्रदानार्थक चतुर्थी विभक्ति के अर्थ में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग किया जाता है। किन्तु जब तादर्थ्ये चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है, तब उसके स्थान में षष्ठी विभक्ति नहीं होती है। ऐसी चतुर्थी यथावत् बनी रहती है। यदि कुत्रचित् तादर्थ्ये चतुर्थी को भी षष्ठी में परिवर्तित की गई है ऐसा देखा जाता है, तब वह परवर्ती काल की प्रवृत्ति ही हो सकती है।।

अब हमें देखना यह है कि इन निदर्शभूत ग्यारह नियमों के अनुसार पाँच रंगावृत्तियों में शौरसेनी की रक्षा कहाँ पर अधिक दृष्टि-गोचर हो रही है, और कहाँ पर शौरसेनी का ध्वनिरूप बदल कर, उत्तरवर्ती काल की महाराष्ट्री के प्रभाव से कुछ अन्य ध्वनिरूप प्रचार में आ गये है:-

ध्वनि-नियमः	संस्कृत शब्दः	काश्मीर-पाठे अंकक्रमः, उक्त्याश्च क्रमः	मैथिलपाठे उक्ति-क्रमः	बंगीयपाठे उक्ति-क्रमः	दाक्षिणात्य उक्ति-क्रमः	देवनागरी उक्ति-क्रमः
1. न्त	शकुन्तला	1. अहिण्णाणसउन्तला नाम अपुरवं णाडअं (11)	सउन्तलम्	सउन्तलम्	साउन्दलं	साउंदलम्
2. र्य	आर्य	1. नटी- अय्य, इअम्हि (3)	अज्ज (3)	अज्ज (2)	अय्य (5)	अज्जउत्त (4)
2. र्य	आर्यपुत्रः	5. अय्यउत्तस्स भावत्थिदिं सुमरिअ (57)	अज्जउत्तस्स (58)	अज्जउत्तस्स (62)	अज्जउत्तस्स (59)	अज्जउत्तस्स (56)
2. र्य	राज-कार्याणि	2. भोः तए णाम राअकय्याइं उज्झिअ (12)	राजकज्जाइं (15)	राजकज्जाइं (14)	राअकज्जाइ (15)	राअकज्जाणि (19)
3. थ-ध-ह	अतिथि	1. उइदं णो अदिधिपज्जुपासणं (116)	अदिधि	अदिधि (112)	अदिहीणं (124)	अदिहीणं (123)
3. थ-ध-ह	पाथेय	2. भो गिहीदपाधेओ होसि (63)	पाधेओ	पाधेओ (66)	पाहेओ (72)	पाहेओ (76)
3. थ-ध-ह	अन्यथा	4. अण्णधा कधं तादिसो राएसि तादिसाइं मन्तिअ (44)	अण्णधा	अण्णधा (45)	अण्णहा (47)	अण्णहा (46)
3. थ-ध-ह	लता-सनाथः	1. लदासणाहो विअ (65)	लदासणाहो (72)	लतासणाधो (71)	लदास-णाहो (90)	लदास-णाहो (89)
3. थ-ध-ह	मनोरथः	1. एस णूणं अत्तणो दे चित्तगदो मणोरहो (73)	मणोरहो	मणोरधो (80)	मणोरहो (100)	मणोरहो (99)
4. भवति	भवति	6. भवं य्येव अविणीदाणुसासी वारणे पभवसि (161)	पहवसि	पहवसि (178)	पहविस्सदि (175)	पहविस्सदि (172)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

5. -ष्यति	०ष्यति	6. असंसअं, .. अभिरुइदो पदेसो तं आलिहिदुकामो भविस्सदि त्ति (150)	भविस्सदि (153)	नास्ति	भवे (165)	भवे (162)
6. कृत्वा	कृत्वा	6. असंसअं सहिं हिदए करिअ णिन्दिदो णेण अत्ता (211)	कदुअ (213)	कदुअ (229)	करिअ (222)	करिअ (220)
6. कृत्वा	आकुली-कृत्य	2. स्वअं मेव अच्छी आकूलीकरेअ (10)	आउलीकदुअ (9)	अच्छिंभञ्जिअ (9)	०करिअ (9)	०करिअ (13)
7. पूर्वम्	अपूर्वम्	1. अहिण्णाणसउन्तला नाम अपुरवं णाडअं (11)	नास्ति	अउव्वं (11)	अपुव्वं (18)	अपुव्वं (15)
7. पूर्वम्	श्रुतपूर्वम्	6. अदो ण कदावि सुदपुरवो एसो अम्हेहिं वुत्तन्तो (64)	सुदपुव्वो (57)	सुदपुव्वो (67)	अस्सुद-पुव्वो (69)	अस्सुद-पुव्वो (66)
8.एव-य्येव	एव	4. किं तु अज्ज य्येव सउन्तला णीअदि त्ति (54)	ज्जेव (56)	ज्जेव (56)	एव्व (59)	एव्व (55)
9. यदि	यदि	1. जदि अज्ज तादो इध सण्णिहिदो भवे (105)	जइ (124)	जइ (121)	जइ (134)	जइ (133)
9. कथम्	कथम्	1. हद्धी कधं इतो वि मं अणुसरदि (83)	कधम् (106)	कधम् (101)	कहम् (113)	कहम् (111)
9. यथा-तथा	यथा-तथा	2. भो जधा कस्सा वि पिण्ड-खज्जूरीहिं...तहा (51)	जधा-तधा (57)	जधा-तधा (54)	जह-तह (56)	जह (60)
10 गलत्था (देशी)	प्रार्थना	2. इअं दाणिं अणुऊल-गलत्था (88)	गलहत्थो (94)	गलहत्थो (89)	अब्भत्थणा (99)	अब्भत्थणा (102)
10 विसूरणा (देशी)	विषाद	4. गमअदि राइं विसूरणादीहं (136)	विसूरणा-दीहं (137)	नास्ति	दीहअरं (150)	विसाअ-दीहअरं (148)
11 तादर्थ्ये चतुर्थी	परि-भोगाय	3. लदागहअ, आमन्तए तुमं पुणो वि परिभोआआ। (162)	परिभोअत्थं (158)	परिभोअत्थं (160)	प्रत्यवेक्ख-णाअस्स (158)	परिभोअस्स (158)

परीक्ष्य बिन्दुः- (1) शौरसेनी के उपर्युक्त प्रथम नियम का परिपालन काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली पाठों में सुरक्षित रहा मिलता है। लेकिन लघुपाठों में उसमें परिवर्तन हुआ है। संयुक्ताक्षर में आये तकार का दकार भी हुआ है, और न्द को बदल करके सउंदला ऐसा बिन्दु (अनुस्वार) भी बनाया गया है। (2) द्वितीय नियम के हिसाब से र्य का य्य होना अपेक्षित है। इस नियम की रक्षा तो केवल काश्मीर पाठ में ही हुई है। मैथिली, बंगाली सहित दाक्षिणात्य एवं देवनागरी में सर्वत्र ज्ज ने स्थान ले लिया है। (3) तीसरे नियम के अनुसार तो थ-कार का ध-कार में परिवर्तन होना चाहिए। इस नियम की रक्षा बहुशः काश्मीरी, मैथिली वं बंगाली में हुई है। किन्तु

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

दाक्षिणात्य एवं देवनागरी में तो वह सीधे ह-कार में विकृत हो चुका है। (4) चतुर्थ नियम के मुताबिक भू-धातु के क्रियापद में, शौरसेनी में, भ-कार अपरिवर्त्य रहता है। इसका बहुशः परिपालन काश्मीरी पाठ में देखा जाता है, किन्तु तदितर चारों पाठों में उस भ-कार का ह-कार में परिवर्तन हो चुका है- ऐसा देखा जाता है। (5) भविष्यति क्रियापद के ष्यति के स्थान में स्सदि का प्रयोग भी दाक्षिणात्य एवं देवनागरी में सुरक्षित नहीं रहा है। (6) षष्ठ नियम के अनुसार कृत्वा रूप के स्थान में कदुअ होना अपेक्षित है। किन्तु इस कदुअ एवं गदुअ रूपों की रक्षा मैथिली एवं बंगाली में हो पायी है। परन्तु काश्मीरी, दाक्षिणात्य एवं देवनागरी में करिअ रूप मिलता है। (इतने अंश में काश्मीरी रंगावृत्ति में शौरसेनी की रक्षा नहीं हुई है।) (7) पूर्व शब्द के लिए शौरसेनी का विशेष नियम है कि उसके स्थान में पुरव होता है। यानी शौरसेनी में पूर्व शब्द में स्वरभक्ति होकर पुरव बनता है। इस नियमानुसार काश्मीरी पाठ में पुरव की प्राप्ति होती है। परन्तु मैथिली एवं बंगाली में र्व-कार में समीकरण होकर पुव्व रूप बनाया गया है, जो शौरसेनी का लक्षण नहीं था। दाक्षिणात्य एवं देवनागरी ने भी पुव्व परिवर्तन को मान लिया है। (8) संस्कृत का एव अव्यय शौरसेनी में य्येव हो जाता है। इसकी सुरक्षा केवल काश्मीरी पाठ में ही देखी जाती है। कालान्तर में वह, मैथिली एवं बंगाली पाठों में ज्जेव में परिणत किया गया है। जो महाराष्ट्री का लक्षण है। तथा लघुपाठ में एव्व बनाया गया है। (9) संस्कृत के कुछ अव्यय, यदि, कथम्, यथा-तथा का परिवर्तन शौरसेनी में जदि, कधं, जधा-तधा के रूप में होता है। इस तरह की शौरसेनी की सुरक्षा भी काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली में ही देखी जाती है। परन्तु दाक्षिणात्य एवं देवनागरी में महाराष्ट्री के प्रभाव से जइ, कहं, जहा-तहा का ही प्रवर्तन हो गया है। (10) काश्मीरी पाठ में कुत्रचित् देशी शब्दों का प्रयोग भी उपलब्ध होता है, जैसे कि- गलत्था, विसूरणा। किन्तु इन देशी शब्दों का प्रदेशान्तर में प्रचलन या ज्ञान नहीं होने से, भ्रमवशाद् उसको गलहस्त में परिवर्तित करके, एक विकृतार्थ को जन्म दिया गया है। किन्तु दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों का यहाँ एक गुणपक्ष भी उल्लेखनीय है कि उन दोनों ने इन दो देशी शब्दों के अभीष्टार्थ को सुरक्षित रखते हुए अभ्यर्थना एवं विषाद(दीर्घतराम्) जैसे पर्यायों का प्रवर्तन किया है। (11) प्राकृत में (सम्प्रदानार्थक) चतुर्थी के अर्थ में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है। किन्तु इसका एक अपवाद यह है कि वाक्य में यदि तादर्थ्ये चतुर्थी का विनियोग हुआ हो तो, वहाँ (प्राचीन काल की) प्राकृत में चतुर्थी बनी रहती है। किन्तु उत्तरवर्ती काल में, पहले मैथिली एवं बंगाली में परिभोगार्थम् किया गया। (चतुर्थी का प्रत्यय हटाया गया, और उसके स्थान में प्रयोजन वाचक अर्थम् शब्द का संनिवेश किया गया।) तथा उससे भी पश्चाद्वर्ती काल में, दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों में तो सार्वत्रिक रूप से षष्ठी का ही प्रवर्तन किया गया।।

निष्कर्षः- इससे दो विचार बिन्दु प्रमाणित हो रहे हैः- (क) इस नाटक के परम्परागत पाँचों पाठ रंगावृत्तियों के ही पाठ है। तथा (ख) इन पाँचों पाठों की जो आनुक्रमिकता निर्धारित की गई है, उसी आनुक्रमिकता का समर्थन इन प्राकृतों के पौर्वापर्य में भी प्रतिबिम्बित हो रहा है।।

विशेष-विमर्शः- भरत मुनि एवं प्राकृतलक्षण के रचयिता चण्ड कवि के द्वारा मध्यवर्ती क-ग-च-ज-त-द-प-यादि व्यंजनों का लोप नहीं कहा गया है। जिससे उन दोनों की प्राचीनतमता सूचित होती हैं। लेकिन संस्कृत नाटकों की प्राकृत उक्तियों में तो इन मध्यवर्ती अल्पप्राण व्यंजनों का लोप देखा जाता है। इस तरह के ध्वनि-विकार की आनुक्रमिक यात्रा देखी जाय तो मदन शब्द में आये द-कार का पहले लोप होता है। (मदन → मअण), तत्पश्चात् अवशिष्ट रहे अ-कार के स्थान में, कालान्तर में (महाराष्ट्री में) य-श्रुति भी होती है (मदन → मअण → मयण)। इसके साथ साथ ध्वनिपरिवर्तन से सम्बद्ध अन्य बिन्दु भी जानना आवश्यक है कि शौरसेनी में अनादि एवं असंयुक्त त-कार को द-कार होने के बाद, उस द-कार का, फिर से मध्यवर्ती अल्पप्राण व्यंजन होने के नाते, लोप नहीं होता है। (अंकितम् → अंकिदम्)। परन्तु देवनागरी रंगावृत्ति का पाठ आकारित होते होते, परवर्ती काल में, अवशिष्ट रहे द-कार का लोप भी होने लगा है। (अंकितम् → अंकिदम् → अंकिअं)। इस सन्दर्भ में निम्नोक्त उदाहरण द्रष्टव्य हैः-

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

ध्वनि-नियमः	संस्कृत शब्दः	काश्मीर-पाठे अंकक्रमः, उक्त्याश्च क्रमः	मैथिलपाठे उक्ति-क्रमः	बंगीयपाठे उक्ति-क्रमः	दाक्षिणात्य उक्ति-क्रमः	देवनागरी उक्ति-क्रमः
तकार को दकार	अंकितम्	4. सणामधेआङ्किदं अंगुलीअं सुमरणिअं त्ति सअं य्येव हत्थे पिणद्धं। (27)	णामधे-अङ्किदं आत्तणो (30)	णामाङ्किदं अङ्गुलीअअं (28)	सणामहे-अंकिदं (32)	सणामहे-अंकिअं (31)
तथैव	अंकितम्	4. इमं तदीअ-णामधेयङ्किदं अंगुलीअं दंसेढि (156)	णामङ्किदं (159)	णामधेअ-ङ्किदं (157)	सणामहे-अंकिदं (170)	अत्तणामहेअ अंकिअं (168)
तथैव	जीवितं	4. तादेण विरहिदा करिसत्थ-परिब्भट्ठा करेणुआ॰ (149)	जीविदं (151)	जीविदं (151)	जीविदं (164)	जीविअं (162)

[2]

अब परीक्षणीय है- **मागधी प्राकृत के नियमों का संरक्षण एवं परिवर्तन का इतिहास।**

मागधी प्राकृत के कुछ नियम हेमचन्द्राचार्य जी ने इस तरह के बताये हैः-

1. अत एत्सौ पुंसि मागध्याम्। (हेम. 8-4-287) सूत्र से कहा है कि अकारान्त प्रकृति से परे प्रथमा विभक्ति के स्थान में ए-कार होता है। जैसे कि- एषः पुरुषः के स्थान में एशे पुलिशे। होता है।।
2. (संस्कृत शब्द में आये हुए) रेफ के स्थान में ल-कार होता है। उदाहरणतया-नरः के स्थान में नले होता है। पुरुषः → पुलिशे।।
3. (संस्कृत शब्द में आये दन्त्य स-कार के स्थान में तालव्य श-कार होता है। हंसः → हंशे।
4. संयुक्ताक्षर के रूप में आये न्य, ण्य और ज्ञ के स्थान में ञ्ञ-कार होता है। उदा. कन्यका → कञ्ञका। पुण्य → पुञ्ञ।, प्रज्ञा → पञ्ञा।।
5. मागधी में छ-कार के स्थान में श्च-कार होता है। उदा. गच्छ → गश्च।
6. मागधी प्राकृत में (धातु + उत्तरवर्ती त्वा प्रत्यय के स्थान में दुअ आदेश होता है। कृत्वा → कदुअ। गत्वा → गदुअ।
7. संस्कृत के अहम् एवं वयम् शब्दरूपों के स्थान में, मागधी-प्राकृत में हगे शब्दरूप का प्रयोग होता है। जैसे कि, अहं शक्रावतारतीर्थनिवासी॰। → हगे शक्कावदालतिस्तणिवाशी॰।
8. सामान्यतः "चतुर्थ्याः षष्ठी"। (हेम. 8-3-131) सूत्र से (सम्प्रदानार्थक) चतुर्थी विभक्ति के स्थान में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है। किन्तु अतिप्राचीन मागधी, अर्धमागधी में, तादर्थ्य चतुर्थी (एकवचन) का प्रत्यय यथावत् बना रहता है।
9. संस्कृत स्था (तिष्ठ) धातु के स्थान में, (मागधी में) चिट्ठ आदेश होता है।।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

ध्वनि-नियमः	संस्कृत शब्दः	काश्मीर-पाठे अंकक्रमः, उक्त्याश्च क्रमः	मैथिल पाठे	बंगीय पाठे	दाक्षिणात्य पाठे	देवनागरी पाठे
1 अन्त में अ →ए	धीवरः	6. हगे सक्कावदालवासिके धीवले। (5)	धीवले (5)	धीवले (5)	धीवले (5)	धीवले (5)
1 अन्त में अ →ए	जीवितं	6. भट्टा, तव केलके मे जीविदे (30)	जीविदे (28)	यीविदे (31)	जीविदे (33)	आजीवे (30)
1 अन्त में अ →ए	मयूरः	7. अत्ताके, लोअदि मे भद्दालके एहे मऊले (108)	मोरके (91)	मऊलके (93)	भद्दमोरो (93)	मऊले (110)
2 रेफ→ल	राजानः	6. णं अवशलोवशप्पअणिआ लाआणो (19)	लाआणो (21)	लाआणो (22)	लाआणो (24)	लाआणो (21)
2रेफ→ल	रत्नम्	6. ण अ तस्सिं महालह-लअणं त्ति बहुमाणं भट्टिणो तक्केमि (35)	महालअण (33)	०लदण (37)	रदणं (39)	रदणं (36)
2 रेफ→ल	रे	जिम्भ, ले सिङ्घ (67)	ले (50)	ले (51)	नास्ति	ले (70)
3 स→श	वयस्य	6. वअश्शा, फुलन्ति मम हत्था इमश्श वशणं पिणद्धुं (20)	वअश्श (22)	नास्ति	जाणुअ (25)	जाणुअ (22)
3 स→श	सः	7. कहिं शे, देहि मे एणं (74)	से (58)	शे (58)	नास्ति	शे (77)
4 न्य-ण्य-ज्ञ-→ ञ्ञ	राज्ञा	6. किं णु खु शोहणो बम्हणे त्ति कलिअ लञ्ञा पदिग्गहे दिण्णे (4)	लञ्ञा (4)	लञ्ञा (4)	रण्णा (4)	रज्ञा (4)
4 न्य-ण्य-ज्ञ → ञ्ञ	कन्यका	2.जदा दाव सा तावसकञ्ञका अपार्थनीया (45)	कण्णआ (53)	कण्णआ (49)	कण्णआ (53)	कण्णआ (57)
5 छ→श्च	गच्छ	6 गश्च णाध गण्ठिभेदअ, (15)	आगच्छ (16)	गश्च (16)	गच्छ (18)	गच्छ (15)
6 धातु+ त्वा→दुअ	गत्वा	6 जमवशदि गमिअ, गुडखण्डं दइअ पडिणिअत्ते (28)	गदुअ (27)	गदुअ (29)	पविशिअ (31)	पविशिअ (28)
7 अहं-वयं → हगे	अहम्	6 हगे खु ईदिसस्स कम्मणो कले (3)	हगे (3)	हगे (3)	अहके (3)	हगे (3)
8 तादर्थ्ये चतुर्थी	विक्रयाय	6 पश्चा इध णं विक्कआअ दंशअन्ते गहिदे भावमिश्शेहिं (13)	विक्कअं (14)	विक्कअस्तं (14)	विक्कअस्स (16)	विक्कआअ (13)
8 तादर्थ्ये चतुर्थी	स्वामि-प्रसादाय	6. पविसदु आउत्ते सामिपसादाअ (17)	सामिपसादत्थं (18)	शामिप्पशादस्तं (19)	शामिप्पशादा हा (21)	शामिप्पशादश (18)
9 स्था (तिष्ठ) →चिट्ठ	तिष्ठति	वण्णअचित्तिदो मिट्टिआमउरओ चिट्ठदि (77)	चिट्ठदि (61)	चिट्ठदि (61)	चिट्ठदि (63)	चिट्ठदि (80)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

परीक्षणीय बिन्दुः- इस नाटक में मागधी प्राकृत का विनियोग विशेष रूप से षष्ठांक एवं सप्तमांक में देखा जाता है। अतः वहीं से कुछ उदाहरण लेकर हमें यह परीक्षा करनी होगी कि मागधी का ध्वनि-स्वरूप कहाँ कहाँ सुरक्षित रहा है, और कहाँ पर परिवर्तन किये गये हैं। (1) उपर्युक्त प्रथम नियम के अनुसार अकारान्त शब्द रूपों को एकारान्त बनाये गये हैं। इस नियम की सुरक्षा सर्वत्र हुई है। (2) लेकिन दूसरे नियम की रक्षा केवल काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली पाठों में हुई है। दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों में रेफ का ल-कार में परिवर्तन करने की परिपाटी का पालन प्रायः छोड दिया है। (3) सकार का शकार में परिवर्तन सर्वत्र देखा जाता है। (4) उपर्युक्त चतुर्थ नियम (ज्ञ →ञ्ञा) की सुरक्षा भी काश्मीरी में देखी जाती है, आंशिकतया मैथिली एवं बंगाली में भी हुई है। लेकिन दाक्षिणात्य एवं देवनागरी में वह अन्य ध्वनि के रूप में परिवर्तित होता है। (5) च्छ का श्च में परिवर्तन होने का नियम केवल काश्मीरी में सुरक्षित रहा मिलता है। (6) षष्ठ नियमोक्त ध्वनि-स्वरूप केवल मैथिली एवं बंगाली में सुरक्षित रहा है, अन्यत्र उसका स्वरूप सुरक्षित नहीं रहा है। (7) सप्तम नियमानुसारी अहं → हगे रूप की प्राप्ति केवल दाक्षिणात्य पाठ में नहीं होती है। (8) तादर्थ्ये चतुर्थी का परिरक्षण केवल काश्मीरी पाठ में दिखता है। एवं देवनागरी में वह आंशिकतया दिखता है। अन्यत्र उसका षष्ठी में परिवर्तन करने की प्रवृत्ति सक्रिय होती हुई मिलती है। (9) तिष्ठति का चिट्ठदि में हुआ ध्वनि-परिवर्तन भी समान रूप से सभी पाठों में हुआ मिलता है।।

निष्कर्षः- काश्मीरी पाठ में मागधी प्राकृत की सर्वाधिक सुरक्षा हुई है, दूसरे क्रम में मैथिली-बंगाली में सुरक्षा हुई है। किन्तु दाक्षिणात्य और देवनागरी पाठों में बहुत अल्प मात्रा में उसकी सुरक्षा हो पायी है।।

❖ ❖ ❖

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

परिशिष्ट - 3

॥ प्रक्षिप्त श्लोक सूचि॥

क्रम	अंक	प्रथम चरण की पदावली	वाचना का नाम
1क	1	इसि चुम्बिआइं भमरेहिं० (परिवर्तित-पाठ)	दाक्षिणात्य
1	1	न खलु न खलु बाणः संनिपात्योऽयमस्मिन्०	मैथिली वाचना
2	1	जन्म यस्य पुरोर्वंशे युक्तरूपमिदं तव०	दाक्षिणात्य
3	1	कठिनमपि मृगाक्ष्या वल्कलं कान्तिरूपम्०	बंगाली
4	1	लोलां ..वाद्यैर्विना नर्तकी० डमरुवल्लभ-पृ.21	उत्कलीय
5	1	तुरगखुरहतस्तथा हि रेणु०।	काश्मीरी-आदि
6	2	न नमयितुमधिज्यमुत्सहिष्ये०।	काश्मीरी-आदि
7	2	अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरपूर्वम्०।	काश्मीरी-आदि
8	3	अद्यापि नूनं हरकोपवह्निः०	काश्मीरी-मै.-बं.
9	3	वृथैव संकल्पितशतै०	मैथिली
10	3	संमीलन्ति न बन्धनकोशाः०	मैथिली
11	3	शशिकरविशदान्य०	बंगाली
12	3	अयं स यस्मात् प्रणयावधीरणाम्०	मैथिली
13	3	अपराधमिमं ततः सहिष्ये०	काश्मीरी
14	3	अप्यौत्सुक्ये महति दयितप्रार्थना०	काश्मीरी
15	3	गान्धर्वेण विवाहेन बह्वयोः मुनिकन्यका०	मैथिली
16	3	हरकोपाग्निदग्धस्य दैवेनामृतवर्षिणा०।	काश्मीरी-मै.-बं.
17	3	चारुणा स्फुरितेनायमपरिक्षतकोमलः०।	का-मै-बं.
18क	3	अपरिक्षतकोमलस्य यावत्० (परिवर्तति-पाठ)	दाक्षिणात्य
19	3	रहः प्रत्यासत्तिं यदि सुवदना यास्यति०	काश्मीरी
20	4	यात्येकतोस्तशिखरं पतिरोषधीनाम्०	काश्मीरी
21	4	अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वतीम्०	काश्मीरी
22	5	न तिर्यगवलोकितं भवति चक्षुरालोहितं०	काश्मीरी
23	5	मय्येवमस्मरणदारुणचित्तवृत्तौ०	मैथिली
24	5	तुम्हे य्येव पमाणं जाणीध, धम्मत्थिदिं०	काश्मीरी
25	6	चूतं हर्षितपिककं जीवित० (परिवर्तित-पाठ)	दाक्षिणात्य

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

26	6	चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका बध्नाति०	काश्मीरी
27	6	उपहितस्मृतिरङ्गुलिमुद्रया०	काश्मीरी
28	6	दीर्घापाङ्गविसारि नेत्र०	मैथिली
29	6	अस्यास्तुंगमिव स्तनद्वयम्०- (श्रीडमरुवल्लभ)	बंगाली-उत्कलीय
30	6	यद्यत् साधु न चित्रेस्मिन्०	मैथिली
31	6	प्रागेव जरसा कम्पः०	काश्मीरी-
32	6	तस्याग्रभूमेर्गृहनीलकण्ठै०	मैथिली
33	6	अहन्यहन्यात्मनः एव०	मैथिली
34	7	क्रतुभिरुचितभागांस्त्व०	काश्मीर
35	7	तव भवतु बिडौजाः प्राज्यवृष्टिः प्रजासु०	मैथिली

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

परिशिष्ट - 4

॥ पाँच रंगावृत्तियों में श्लोकों का स्वीकार / अस्वीकार॥

इस परिशिष्ट में काश्मीरी रंगावृत्ति से आरम्भ करके मैथिली, बंगाली, दाक्षिणात्य और देवनागरी रंगावृत्ति तक की पाठयात्रा में श्लोक-सम्बन्धी वृद्धि-ह्रास का एवं अमुक श्लोकों के उपस्थिति क्रमांक में हुए परिवर्तनों का जो चित्र दिख रहा है उसको कोष्टकाकार में दिया जाता है। तथा विशेष रूप में पुनर्गठित प्रथम अनुमित पाठ में किन श्लोकों का स्वीकार हुआ है?- वह भी जोड दिया है:-

संख्या	अंक	श्लोक का प्रथम चरण	काश्मीरी-क्रम	मैथिली-क्रम	बंगाली-क्रम	दाक्षिणात्य-क्रम	देवनागरी-क्रम	पुनर्गठित-क्रम
		प्रथमोऽङ्कः॥						
1	1	या सृष्टिः स्रष्टुराद्यावहति विधिहुतं	1	1	1	1	1	1
2	1	आपरितोषाद् विदुषां न साधु	2	2	2	2	2	2
3	1	सुभगसलिलावगाहा:पाटलि०	3	3	3	3	3	3
4	1	खणचुम्बिआइँभमरेहिँ उअह०	4	4	4	–	–	4
5क	1	इसि चुम्बिआइं भमरेहिं०	–	–	–	4	4	–
6	1	तवास्मिगीतरागेण हारिणा०	5	5	5	5	5	5
7	1	कृष्णसारेददच्चक्षुस्त्वयि ०	6	6	6	6	6	6
8	1	ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहु०	7	7	7	7	7	7
9	1	मुक्तेषुरश्मिषु निरायतपूर्व०	8	8	8	8	8	8
10	1	यदालोकेसूक्ष्मं व्रजति सहसा०	9	9	9	9	9	9
11	1	न खलु न खलु बाणः संनिपात्यो०	–	10	10	(10)	–	–
12	1	तत्साधु कृतसंधानं प्रतिसंहर०	10	11	11	11	10	10
13	1	जन्म यस्य पुरोर्वंशे युक्तरूपं०	–	–	–	12	11	–
14	1	धन्यास्तपोधनानांप्रतिहतविघ्ना०	11	12	12	13	12	11
15	1	नीवाराःशुककोटरार्भकमुख०	12	13	13	14	13	12
16	1	कुल्याम्भोभिःपवनचपलैः ०	13	14	14	–	–	13
17	1	शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति ०	14	15	15	15	14	14

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

18	1	शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रम०	15	16	16	16	15	15
19	1	इदं किलाव्याजमनोहरं वपु०	16	17	17	17	16	16
20	1	इदमुपहितसूक्ष्मग्रन्थिना०	–	18	18	–	–	17
21	1	सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि०	17	19	19	18	17	18
22	1	कठिनमपिमृगाक्ष्या वल्कलं०	–	–	20	–	–	–
23	1	अधर:किसलयराग: कोमल०	18	20	21	19	18	19
24	1	असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा०	19	21	22	20	19	20
25	1	यतो यत: षट्चरणोऽ भिवर्तते०	–	22	23	–	–	21
26	1	चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि०	20	23	24	21	20	22
27	1	लोलां दृष्टिं... वाद्यैर्विना नर्तकी	–	–	24क	–	–	–
28	1	क: पौरवे वसुमतीं शासति०	21	24	25	22	21	23
29	1	मानुषीभ्य: कथं नु स्यादस्य०	22	25	26	23	22	24
30	1	वैखानसं किमनया व्रतमाप्र०	23	26	27	24	23	25
31	1	भव हृदय साभिलाषं संप्रति०	24	27	28	25	24	26
32	1	अनुयास्यन्मुनितनयां सहसा०	25	28	29	26	25	27
33	1	स्रस्तांसावतिमात्रलोहिततलौ०	26	29	30	27	26	28
34	1	वाचं न मिश्रयति यद्यपि०	27	30	31	28	27	29
35	1	तुरगखुरहतस्तथाहि रेणुर्विटप०	28	31	32	29	28	–
36	1	तीव्राघातादभिमुखतरुस्कन्ध०	29	32	33	30	29	30
37	1	गच्छति पुर: शरीरं धावति०	30	33	34	31	30	31

संख्या		द्वितीयोऽङ्क:॥	का.-क्रम	मै.-क्रम	बं.-क्रम	दाक्षि.-क्रम	देव.-क्रम	पुर्नगठित
38	2	कामं प्रिया न सुलभा मनस्तु०	1	1	1	1	1	1
39	2	स्निग्धं वीक्षितमन्यतो पि नयने	2	2	2	2	2	2
40	2	न नमयितुमधिज्यमुत्सहिष्ये०	3	3	3	3	3	–
41	2	अनवरतधनुर्ज्यास्फालन०	4	4	4	4	4	–
42	2	मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्यु०	5	5	5	5	5	3
43	2	गाहन्तां महिषा निपानसलिलं०	6	6	6	6	6	4
44	2	शमप्रधानेषु तपोवनेषु गूढं०	7	7	7	7	7	5
45	2	ललितोप्सरोभवं किलमुनेरप	8	9	9	8	8	6

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

46	2	निराकृतनिमेषाभिर्नेत्रपंक्ति॰	9	8	8	–	–	7
47	2	चित्ते निवेश्य परिकल्पित॰	10	10	10	9	9	8
48	2	अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं॰	11	11	11	10	10	9
49	2	अभिमुखे मयि संवृतमीक्षितं॰	12	12	12	11	11	10
50	2	दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत॰	13	13	13	12	12	11
51	2	यदुत्तिष्ठति वर्णेभ्यो नृपाणां॰	14	14	14	13	13	12
52	2	अध्याक्रान्ता वसतिरमुना॰	15	15	15	14	14	13
53	2	नैतच्चित्रं यदयमुदधि॰	16	16	16	15	15	14
54	2	अनुकारिणि पूर्वेषां युक्ति॰	17	17	17	16	16	15
55	2	कृत्ययोर्भिन्नदेशत्वाद्॰	18	18	18	17	17	16
56	2	क्व वयं क्व परोक्षमन्मथो मृग॰	19	19	19	18	18	17

सं ख्या		तृतीयोऽङ्कः॥	का.-क्रम	मै.-क्रम	बं.-क्रम	दाक्षि.-क्रम	देव. क्रम	पुर्नघटित
57	3	का कथा बाणसंधाने ज्या॰	1	1	1	1	1	1
58	3	जाने तपसो वीर्यं सा बाला॰	2	2	2	2	2	2
59	3	अद्यापि नूनं हरकोपवह्नि॰	3	3	3	–	–	–
60	3	तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मि॰	4	4	4	3	3	3
61	3	अनिशमपि मकरकेतुर्मनसो॰	–	5	5	–	–	4
62	3	वृथैव संकल्पशतैरजस्रमनङ्ग॰	–	6	6	–	–	–
63	3	संमीलन्ति न तावद् बन्धनको	–	7	7	–	–	–
64	3	शक्योऽरविन्दसुरभिः कणवाही	5	8	8	4	4	5
65	3	अभ्युन्नता पुरस्तादवगाढा॰	6	9	9	5	5	6
66	3	स्तनन्यस्तोशीरं शिथिल॰	7	10	10	6	6	7
67	3	शशिकरविशदान्यास्तथा॰	–	–	11	–	–	–
68	3	क्षामक्षामकपोलमानन॰	8	11	12	7	7	8
69	3	पृष्टा जनेन समदुःखसुखेन॰	9	12	13	8	8	9
70	3	स्मर एव तापहेतुर्निवापयिता॰	10	13	14	9	9	10
71	3	अशिशिरतरैरन्तस्तापैर्विवर्ण॰	11	14	15	10	10	11
72	3	अयं स ते तिष्ठति संगमोत्सुको॰	12	15	16	11	11	12
73	3	अयं स यस्मात् प्रणयावधीरणा	–	16	17	–	–	–

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

74	3	उन्नमितैकभ्रूलतमाननमस्याः०	13	17	18	12	12	13
75	3	तुज्झ ण आणे हिअअं मम०	14	18	19	13	13	14
76	3	तपति तनुगात्रि मदनस्त्वाम्०	15	19	20	14	14	15
77	3	संदष्टकुसुमशयनान्याशु०	16	20	21	15	15	16
78	3	इदमनन्यपरायणमन्यथा०	17	21	22	16	16	17
79	3	परिग्रहबहुत्वेपि द्वे प्रतिष्ठे०	18	22	23	17	17	18
80	3	अपराधमिमं ततः सहिष्ये यदि	19	23	24	–	–	–
81	3	किं शीकरैः क्लमविमर्दिभि०	20	24	25	18	18	19
82	3	उत्सृज्य कुसुमशयनं नलिनी०	21	25	26	19	19	20
83	3	अप्यौत्सुक्ये महति दयित०	22	26	27	–	–	–
84	3	गान्धर्वेण विवाहेन बह्वयो थ०	–	27	28	20	20	–
85	3	त्वं दूरमपि गच्छन्ती हृदयं०	23	28	29	–	–	21
86	3	अनिर्दयोपभोग्यस्य रूपस्य०	24	29	30	–	–	22
87	3	मणिबन्धनगलितमिदं संक्रान्तो	25	30	31	–	–	23
88	3	अनेन लीलाभरणेन ते प्रिये०	26	31	32	–	–	24
89	3	पिपासा क्षामकण्ठेन याचितं०	27	32	33	–	–	25
90	3	हरकोपाग्निदग्धस्य दैवेनामृत०	28	33	34	–	–	–
91	3	अयं स ते श्यामलतामनोहरं०	29	34	35	–	–	26
92	3	चारुणा स्फुरितेनायमपरिक्षत०	30	35	36	–	–	–
93	3	इदमप्युपकृतिपक्षे सुरभि मुखं०	31	36	37	–	–	27
94क	3	अपरिक्षतकोमलस्य यावत्कुसुम	–	–	–	21	21	–
95	3	मुहुरङ्गुलि संवृत्ताधरोष्ठं०	32	37	38	22	22	28
96	3	तस्याः पुष्पमयी शरीरलुलिता	33	38	39	23	23	29
97	3	रहः प्रत्यासत्तिं यदि सुवदना०	34	39	40	–	–	–
98	3	सायंतने सवनकर्मणि संप्रवृत्ते०	35	40	41	24	24	30

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

संख्या	अंक	चतुर्थोऽङ्कः॥	का.-क्रम	मै.-क्रम	बं.-क्रम	दाक्षि. क्रम	देव. क्रम	पुर्नगठित
99	4	विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा०	1	1	1	1	1	1
100	4	कर्कन्धूनामुपरि तुहिनं रञ्जय०	2	2	4	–	–	2
101	4	पादन्यासं क्षितिधरगुरोर्मूर्ध्नि०	3	3	5	–	–	3
102	4	यात्येकतोस्तशिखरं पतिरोष	4	4	2	2	2	–
103	4	अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती	5	5	3	3	3	–
104	4	दुःषन्तेनाहितं तेजो दधानां०	6	6	6	4	4	4
105	4	क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा०	7	7	7	5	5	5
106	4	यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं०	8	8	8	6	6	6
107	4	ययातेरिव शर्मिष्ठा पत्युर्बहुमता	9	9	9	7	7	7
108	4	अमी वेदीं परितः क्लृप्तधिष्ण्या	10	10	10	8	8	8
109	4	पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं०	11	11	11	9	9	9
110	4	अनुमतगमना शकुन्तला सा तरु	13	12	12	10	10	11
111	4	रम्यान्तरः कमलिनीहरितैः सरो	12	13	13	11	11	10
112	4	उल्ललइ दब्भकवलं मई०	14	14	14	12	12	12
113	4	संकल्पितं प्रथममेव मया०	15	15	15	13	13	13
114	4	यस्य त्वया व्रणविरोहणम्०	16	16	16	14	14	14
115	4	उत्पक्ष्मणोर्नयनयोरुपरुद्धवृत्तिं०	17	17	17	15	15	15
116	4	पुडइणिवत्तन्तरिअं वाहरिओ०	18	18	18	–	–	16
117	4	अज्ज पिएणविणा जं गमेइ	19	19	–	16	16	17
118	4	अस्मान्साधु विचिन्त्य संयमध	20	20	19	17	17	18
119	4	शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखी०	21	21	20	18	18	19
120	4	अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये०	22	22	21	19	19	20
121	4	यदा शरीरस्य शरीरिणश्च पृथ	23	23	–	–	–	21
122	4	भूत्वा चिराय सदिगन्तमही०	24	24	22	20	20	22
123	4	अपयास्यति मे शोकः कथं०	25	25	23	21	21	23
124	4	अर्थो हि कन्या परकीय एव०	26	26	24	22	22	24

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

संख्या	अंक	पञ्चमोऽङ्कः॥	का.-क्रम	मै.-क्रम	बं.-क्रम	दाक्षि. क्रम	देव. क्रम	पुर्नगठित
125	5	आचार इत्यधिकृतेन मया॰	1	1	1	3	3	1
126	5	क्षणात्प्रबोधमायाति लंघ्यते॰	2	2	2	–	–	2
127	5	भानुः सकृद्युक्ततुरंग एव॰	3	4	4	4	4	3
128	5	मनुः प्रजाः स्वा इव तन्त्रयित्वा	4	3	3	5	5	4
129	5	अहिणवमहुलोह भाविओ॰	5	8	8	1	1	5
130	5	रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च॰	6	9	9	2	2	6
131	5	औत्सुक्यमात्रमवसादयति॰	7	5	5	6	6	7
132	5	स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे॰	8	6	6	7	7	8
133	5	नियमयसि विमार्गप्रस्थिता॰	9	7	7	8	8	9
134	5	किं तावद्-व्रतिनामुपोढतपसां॰	10	10	10	9	9	10
135	5	महाभागः कामं नरपतिरभिन्न॰	11	11	11	10	10	11
136	5	अभ्यक्तमिव स्नातः शुचिर॰	12	12	12	11	11	12
137	5	भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै॰	13	13	13	12	12	13
138	5	केयमवगुण्ठनवती नातिपरि॰	14	14	14	13	13	14
139	5	कुतो धर्मक्रियाविघ्नः सतां॰	15	15	15	14	14	15
140	5	त्वमर्हतां प्राग्रहरः स्मृतो॰	16	16	16	15	15	16
141	5	णावेक्खिओ गुरुअणो इमीअ॰	17	17	17	16	16	17
142	5	सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां॰	18	18	18	17	17	18
143	5	किंकृतकार्यद्वेषाद् धर्मं प्रति॰	19	19	19	18	18	19
144	5	इदमुपनतमेवं रूपमक्लिष्ट॰	20	20	20	19	19	20
145	5	कृतावमर्शामनुमन्यमानः॰	21	21	21	20	20	21
146	5	व्यपदेशमाविलयितुं समीहसे॰	22	22	22	21	21	22
147	5	स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वम्॰	23	23	23	22	22	23
148	5	न तिर्यगवलोकितं भवति चक्षु॰	24	24	24	–	–	–
149	5	मय्येव विस्मरणदारुणचित्तवृ	–	25	25	23	23	–
150	5	तुम्हे य्येव पमाणं जाणध धम्म	25	26	26	–	–	–
151	5	अतः समीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात॰	26	27	27	24	24	24
152	5	आ जन्मनः शाठ्यमशिक्षितो॰	27	28	28	25	25	25
153	5	तदेषा भवतः पत्नी त्यज वैनं॰	28	29	29	26	26	26

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

154	5	यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा०	29	30	30	27	27	27
155	5	कुमुदान्येव शशाङ्कः सविता०	30	31	31	28	28	28
156	5	मूढः स्यामहमेषा वा वदेन्मिथ्ये	31	32	32	29	29	29
157	5	सा निन्दन्ती स्वानि भाग्यानि०	32	33	33	30	30	30
158	5	कामं प्रत्यादिष्टां स्मरामि न०	33	34	34	31	31	31

संख्या	अंक	षष्ठोऽङ्कः॥	का.-क्रम	मै.-क्रम	बं.-क्रम	दाक्षि. क्रम	देव. क्रम	पुर्नगठित
159	6	शहये किल ये वि णिन्दिदे०	1	1	1	1	1	1
160	6	आअम्बहरिअवेण्टं ऊससिअं वि	2	2	2	–	2	2
161क	6	चूतं हर्षितपिककं जीवितसदृशं	–	–	–	2	–	–
162	6	अर्हसि मे चूताङ्कुर दत्तः ०	3	3	3	3	3	3
163	6	चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका	4	4	4	4	4	–
164	6	रम्यं द्वेष्टि यथा पुरा प्रकृतिभिः	5	5	5	5	5	4
165	6	प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनविधि०	6	6	6	6	6	5
166	6	प्रथमं साराङ्गाक्ष्या प्रियया ०	7	7	7	7	7	6
167	6	मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना०	–	8	8	8	8	7
168	6	उपहितस्मृतिरङ्गुलिमुद्रया०	8	9	9	–	–	–
169	6	इतः प्रत्यादिष्टा स्वजनमनुगन्तुं	9	10	10	9	9	8
170	6	स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो०	10	11	11	10	10	9
171	6	तव सुचरितमङ्गुरीय नूनं०	11	12	12	11	11	10
172	6	एकैकमत्रदिवसे दिवसे मदीयं०	12	13	13	12	12	11
173	6	कथं नु तं कोमलबन्धुरा०	13	14	14	13	13	12
174	6	दीर्घापाङ्गविसारिनेत्र०	–	15	15	–	–	–
175	6	अस्यास्तुंगमिवस्तनद्वयमिदं०	–	–	16	–	–	–
176	6	यद्यत्साधु न चित्रे स्मिन्०	–	16	17	14	14	–
177	6	साक्षात्प्रियामुपगतामपहाय०	14	17	18	16	16	13
178	6	स्विन्नांगुलीनिवेशाद्रेखा०	15	18	19	15	15	14
179	6	कार्या सैकतलीनहंसमिथुना०	16	19	20	17	17	15
180	6	कृतं न कर्णार्पितबन्धनं०	17	20	21	18	18	16
181	6	एषा कुसुमनिषण्णा तृषिता०	18	21	22	19	19	17

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

182	6	अक्लिष्टबालतरुपल्लव०	19	22	23	20	20	18
183	6	दर्शनसुखमनुभवतः साक्षादिव०	20	23	24	21	21	19
184	6	प्रजागरात्खिलीभूत०	21	24	25	22	22	20
185	6	येन येन वियुज्यन्ते प्रजाः०	22	25	26	23	23	21
186	6	संरोपितेप्यात्मनि धर्मपत्नी०	23	26	27	24	24	22
187	6	अस्मात्परं बत यथास्मृति०	24	27	28	25	25	23
188	6	आमूलशुद्धसंततिकुलमेतत्०	25	28	29	–	–	24
189	6	प्रागेव जरसा कम्पः सविशेषेण	26	29	30	–	–	–
190	6	तस्याग्रभागाद् गृहनीलकण्ठै०	27	30	31	–	–	–
191	6	अहन्यहन्यात्मन एव ताव०	28	31	32	26	26	–
192	6	एष त्वामभिनवकण्ठशोणिता	29	32	33	27	27	25
193	6	यो हनिष्यति वध्यं त्वां रक्ष्यं०	30	33	34	28	28	26
194	6	कृताः शरव्यं हरिणा तवासुरा०	31	34	35	29	29	27
195	6	सख्युस्ते स किल शतक्रतोरवध्य	32	35	36	30	30	28
196	6	ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निर्विप्रकृ	33	36	37	31	31	29
197	6	त्वन्मतिः केवला तावत् प्रतिपा	34	37	38	32	32	30

संख्या	अंक	सप्तमोऽङ्कः॥	का.-क्रम	मै.-क्रम	बं.-क्रम	दाक्षि. क्रम	देव. क्रम	पुर्नगठित
198	7	अविअगमणं कंचण अण्णं च	1	–	–	–	–	1
199	7	उपकृत्यहरेस्तस्या भवाल्लंघु०	2	1	1	1	1	2
200	7	अन्तर्गतप्रार्थनमन्तिकस्थं०	3	2	2	2	2	3
201	7	सुखपरस्य हरेरुभयैः कृतं०	4	3	3	3	3	4
201	7	सिध्यन्ति कर्मसु महत्त्स्वपि०	5	4	4	4	4	5
203	7	विच्छित्तिशेषैः सुरसुन्दरीणां	6	5	5	5	5	6
204	7	त्रिस्रोतसं वहति यो गगनप्रति	7	6	6	6	6	7
205	7	अयमगविवरेभ्यश्चातकैर्नि०	8	7	7	7	7	8
206	7	शैलानामवरोहतीव शिखराद्०	9	8	8	8	8	9
207	7	स्वायंभुवान्मरीचेर्यः प्रबभूव०	10	9	9	9	9	10
208	7	उपोढशब्दा न रथाङ्गनेमयः०	11	10	10	10	10	11
209	7	वल्मीकार्धनिमग्नमूर्तिरुरग्०	12	11	11	11	11	12

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

210	7	प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता॰	13	12	12	12	12	13
211	7	मनोरथाय नाशंसे किं बाहो॰	14	13	13	13	13	14
212	7	अर्धपीतस्तनं मातुरामर्दक्लिष्ट॰	15	14	14	14	14	15
213	7	महतस्तेजसो बीजं बालो यं॰	16	15	15	15	15	16
214	7	प्रलोभ्यवस्तुप्रणयप्रसारितो॰	17	16	16	16	16	17
215	7	आलक्ष्यदन्तमुकुलान॰	18	17	17	17	17	18
216	7	एवमाश्रमविरुद्धवृत्तिना॰	19	18	18	18	18	19
217	7	अनेन कस्यापि कुलांकुरेण॰	20	19	19	19	19	20
218	7	भवनेषु सुधासितेषु पूर्वं क्षिति॰	21	20	20	20	20	21
219	7	वसने परिधूसरे वसाना नियम	22	21	21	21	21	22
220	7	स्मृतिभिन्नमोहतमसो दिष्ट्या॰	23	22	22	22	22	23
221	7	बाष्पेन प्रतिषिद्धेऽ पि जयशब्दे॰	24	23	23	23	23	24
222	7	सुतनु हृदयात् प्रत्यादेशव्यलीक	25	24	24	24	24	25
223	7	मोहान्मया सुतनु पूर्व॰	26	25	25	25	25	26
224	7	पुत्रस्य ते रणशिरस्ययम्॰	27	26	26	26	26	27
225	7	प्राहुर्द्वादशधास्थितस्य मुनयो॰	28	27	27	27	27	28
226	7	आखण्डलसमो भर्ता जयन्त॰	29	28	28	28	28	29
227	7	दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी॰	30	29	29	29	29	30
228	7	उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलं॰	31	30	30	30	30	31
229	7	यथा गजे साधुसमक्षरूपे॰	32	31	31	31	31	32
230	7	शापादसिप्रतिहता स्मृतिलोप॰	33	32	32	32	32	33
231	7	रथेनानुद्धातस्तिमितगतिना॰	34	33	33	33	33	34
232	7	तव भवतु बिडौजाः प्राज्यवृष्टि	–	34	34	34	–	–
233	7	क्रतुभिरुचितभागांस्त्वंसुरान्॰	35	35	–	–	–	–
234	7	प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः	36	36	35	35	34	35

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

निष्कर्षः-

अंक	काश्मीरी	मैथिली	बंगाली	दाक्षिणात्य	देवनागरी	पुनर्गठित
1	30	33	34	31	30	31
2	19	19	19	18	18	17
3	35	40	41	24	24	30
4	26	26	24	22	22	24
5	33	34	34	31	31	31
6	34	37	38	32	32	30
7	36	36	35	35	34	35
योग	**213**	**225**	**225**	**193**	**191**	**198**

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

परिशिष्ट - 5

॥ भरत मुनि एवं कालिदास ॥

भूमिकाः- अभिज्ञानशकुन्तला की पाँच रंगावृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन करते समय (क) अर्थोपक्षेपकों की पारिभाषिक शब्दावली में, (ख) आत्मगतम् तथा स्वगतम् जैसी उक्तियों के सन्दर्भ में, (ग) एवञ्च विदूषक के नाम में कुछ पाठभेद प्राप्त हो रहे हैं। तथा (घ) इस नाटक की प्रस्तावना में "अलम् अतिविस्तरेण" जैसा वाक्य सभी रंगावृत्तियों में नहीं मिलता है। अतः इन पाठभेदों में से कौन सा पाठान्तर मूलगामी हो सकता है- यह निश्चित करने के लिए भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में इन चार विषयों में क्या मार्गदर्शन दिया गया है? उनको देखने की अनिवार्य आवश्यकता पैदा हुई है।।

(क) अभिज्ञानशकुन्तला नाटक की काश्मीरी वाचना / रंगावृत्ति के तृतीयांक के आरम्भ में कण्व मुनि के शिष्य की एकोक्ति आती है, जिसमें वह आकाशोक्ति से प्रियंवदा से बातचीत करता मालूम होता है। यह संवाद केवल संस्कृत भाषा में ही प्रस्तुत होता है। तथापि उस अर्थोपक्षेपक को "प्रवेशक" नाम दिया गया है। उसी तरह से चतुर्थांक के आरम्भ में पुष्पावचयन कर रही प्रियंवदा एवं अनसूया की बातचीत प्राकृत भाषा में आती है, तथा कुछ ही क्षणों में नेपथ्योक्ति से दुर्वासा का शाप-वचन भी सुनाई पड़ता है। दुर्वासा का श्लोक-बद्ध शाप संस्कृत में प्रस्तुत हुआ है। यानी इस अर्थोपक्षेपक में प्राकृत-संस्कृत उभय का विनियोग हुआ है। तथापि उसे भी "प्रवेशक" नाम दिया गया है। धनञ्जय के दशरूपक के अनुसार जिस अर्थोपक्षेपक में नीच-पात्रों के द्वारा (अतश्च प्राकृत भाषा में) सूच्य कथांश प्रयुक्त होता है उसको "प्रवेशक" नाम दिया जाता है[1]। जिसमें वृत्त एवं वर्तिष्यमाण (सूच्य) कथानक मध्यम पात्रों से (अतश्च केवल संस्कृत भाषा में) प्रस्तुत होता है तो उसको "विष्कम्भक" नाम दिया जाता है[2]। किन्तु तृतीयांक में तो कण्व मुनि के शिष्य की एकल उक्ति केवल संस्कृत में होते हुए भी उसको "प्रवेशक" नाम दिया गया है।। एवमेव, चतुर्थांक के आरम्भ में जो अर्थोपक्षेपक रखा गया है उसमें प्राकृत एवं संस्कृत दोनों ही भाषाओं का विनियोग हुआ है। तथापि उसे भी (काश्मीरी वाचना के पाठ में) "प्रवेशक" नाम दिया गया है। दशरूपक के अनुसार उसको तो "विष्कम्भक" नाम मिलना चाहिए।। तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं के पाठों में भी उपर्युक्त दोनों ही अर्थोपक्षेपकों को "प्रवेशक" नाम ही दिया गया है। इन तीनों वाचनाओं के पाठों से विपरित दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचना के पाठ में इन दोनों अर्थोपक्षेपकों को "विष्कम्भक" नाम दिया गया है। अतः इस पाठान्तर को पैदा होने का क्या कारण हो सकता है? वह हमारी गवेषणा का विषय है।।

(ख) इसी तरह से, इस नाटक की पाँचों वाचनाओं के पाठों का परीक्षण करने से मालूम होता है कि कहीं पर "आत्मगतम्" जैसी रंगसूचना मिलती है, तो कुत्रचित् "स्वगतम्" शब्द का विनियोग करके रंगसूचना दी जाती है। किसी एक ही नाटककार की कृति में दो तरह की शब्दावली का विनियोग पाया जाना अपने आप में संदेहजनक बन जाता है। मतलब कि कालिदास के अवसान के बाद, किसी अन्य व्यक्ति या रंगकर्मी के हाथ से दूसरे तरह के शब्द का प्रयोग किया गया होगा ऐसा अनुमान करना पड़ता है। यहाँ केवल नाट्यशास्त्रीय

---

1. तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः। दशरूपकम् (1-60)।
2. तद्वद्वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः। संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यमपात्रप्रयोजितः।। दशरूपकम् (1-59)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

पारिभाषिक शब्दावली से विभिन्न/नवीन शब्दावली के विनियोग होने की ही समस्या नहीं है। ऐसे स्थानों में किन्हीं रंगकर्मियों के द्वारा कुछ उक्तियाँ एवं नवीन श्लोकों का प्रक्षेप करने की भी प्रवृत्ति भी शामिल है। अतः इस विषय की गहेराई से पर्यालोचना करनी आवश्यक है।।

(ग) कालिदास के इस नाटक में विदूषक का नाम मूल में क्या रखा गया होगा? वह भी विवाद से ग्रस्त है। जैसे कि बृहत्पाठवाली (काश्मीरी-मैथिली-बंगाली) तीनों रंगावृत्तियों में विदूषक का नाम माधव्य उपलब्ध होता है। किन्तु लघुपाठवाली दाक्षिणात्य एवं देवनागरी रंगावृत्तियों में उसीका नाम माढव्य प्राप्त होता है। इन दोनों पाठों में राजा दुष्यन्त ने अपनी संस्कृत-भाषामयी उक्तियों में भी उसीको "माढव्य" नाम से पुकारा है। तथा डॉ. गोविन्द केशव भट (पूणें) तथा पं. श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी जी (काशी) ने इस तरह के माढव्य नाम पर कुछ विशेष विचारणा भी की है। विदूषक की मूर्खता को सूचित करने के लिए डॉ. गोविन्द केशव भट के मत से "माढव्य" नाम रखा गया है, तथा श्रीरेवाप्रसाद जी के मत से "माधव्य" रखा गया है। अतः दो प्रश्न ऊठ रहे हैं कि कालिदास ने अपने विदूषक के लिए इन दोनों नामों में से कौन सा नाम दिया होगा? तथा इस नाम का चयन करते समय उसकी मूर्खता सूचित करना कालिदास को अभीष्ट होगा या नहीं?। इन दोनों प्रश्नों के उत्तर ढूँढने के लिए भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में क्या कहा है- वही देखना होगा।।

[1]

कालिदास ने अपने विक्रमोर्वशीय नाटक में नाट्यशास्त्र के रचयिता भरत मुनि का नामोल्लेख किया है[1]। इन निर्देशों से अनुमान होता है कि भरतमुनि निश्चिततया कालिदास के निकटवर्ती पुरोगामी रहे होंगे। अतः कालिदास ने मंचनलक्ष्यी जो जो रंगसूचनाएँ अपने नाटकों में दी होंगी, उनमें नाट्यशास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली का ही विनियोग किया गया होगा। भरत मुनि ने नाटक प्रकार के रूपक के लिए (केवल) "प्रवेशक" का ही विधान किया है, (विष्कम्भक नामका कोई पृथक् अर्थोपक्षेपक उन्होंने नाटक के लिए कहा ही नहीं है! अर्थात् भरत मुनि के मत से नाटक का बाह्य शिल्प "अंक एवं प्रवेशक" से ही बनाया जाता है)। नाट्यशास्त्र के अष्टादश अध्याय के निम्नोक्त (11, 25-26, 28 एवं 44) श्लोकों को देखने से इस बात की स्पष्टता होती है :-

नानाविभूतिभिर्युतमृद्धिविलासादिभिर्गुणैश्चैव।
अङ्क-प्रवेशकाढ्यं भवति हि तन्नाटकं नाम।।11।।
विभजेत्सर्वमशेषं पृथक्-पृथक्कार्यमङ्केषु।। 25।।

दिवसावसानकार्यं यद्यङ्के नोपपद्यते सर्वम्।
अङ्कच्छेदं कृत्वा प्रवेशकैस्तद्विधातव्यम्।। 26।।

सन्निहितनायकोऽङ्कः कर्तव्यो नाटके प्रकरणे वा।
परिजनकथानुबन्धः (? बद्धः) प्रवेशको नाम विज्ञेयः।। 28।।

नाटकलक्षणमेतन्मया समासेन कीर्तितं विधिवत्।
प्रकरणमतः परमहं लक्षणयुक्त्या प्रवक्ष्यामि।। 44।।

इन श्लोकों में, 1. अंक में समाविष्ट नहीं होनेवाले कार्य (को सूचित करने) के लिए प्रवेशक का विधान किया गया है, 2. अंक में (मुख्य) नायक की संनिधि होनी चाहिए- ऐसा कहा गया है, और प्रवेशक में परिजन-वर्ग की बातचीत होने का निर्देश है। किन्तु 3. ऐसे प्रवेशक में किस भाषा का विनियोग होना चाहिए? वह नहीं कहा गया है। (प्रवेशक में केवल संस्कृत, या केवल प्राकृत भाषा, या दोनों प्रकार की भाषाओं का विनियोग किया जा सकता है- इस विषय में, नाट्यशास्त्र में यहाँ कुछ नहीं कहा गया है। ऐसी सूचनाएँ तो परवर्ती काल में निर्धारित की गई है।)।।

1. ततः प्रविशतो भरतशिष्याविति तृतीयाङ्कस्यारम्भे रंगसूचना। विक्रमोर्वशीयम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अभिनव गुप्तपादाचार्य ने उपर्युक्त 18-26 श्लोक की टीका में लिखा है कि- ऐसे सभी कार्य जो अङ्क में प्रत्यक्षतया नहीं दिखाये जाते, उनको प्रवेशकों के द्वारा दिखाना है। इनको "प्रवेशक" इसी लिए कहे गये हैं कि जो कथांश अदृष्ट रखा जाता है (यानी जिसको प्रत्यक्ष नहीं दिखाया जाता है) उसे भी प्रेक्षकों के हृदय में प्रविष्ट करा देते हैं। विशेष में यह भी कहते हैं कि यहाँ ("प्रवेशकैः" ऐसे बहुवचनान्त प्रयोग से) प्रवेशक के साथ साथ चूलिका, अङ्कावतार, अङ्कमुख एवं विष्कम्भक भी अभिप्रेत है। आचार्य कोहल ने इस तरह के पाँच अर्थोपक्षेपकों का विधान भी किया है[1]।। लेकिन अर्थोपक्षेपकों का कोहल ने किया यह विस्तार निश्चिततया अभिनवगुप्त से पुरोवर्ती काल का, किन्तु (आदि) भरत से परवर्ती काल का है। यानी अभिनव गुप्त ने जो टीका लिखी है वह नाट्यशास्त्र में हुए द्वितीय स्तर के विस्तार के बाद की है, (जिसका प्रतिबिम्ब हमें धनञ्जय के "दशरूपक" में देखने को मिलता है), अतः भरत के मतानुसार नाटक प्रकार के रूपक के लिए तो केवल "प्रवेशक" का होना ही मान्य है। यहाँ एक विशेष स्पष्टता यह भी करनी चाहिए कि 18-26 श्लोक में आये "प्रवेशकैः" ऐसे बहुवचनान्त प्रयोग का अर्थ कोहल ने "बहुविध प्रवेशक" लिया है, किन्तु भरत मुनि के मन में किसी एक नाटक में "एकाधिक प्रवेशक" हो सकते हैं- ऐसा ही अर्थ रहा होगा।।

क्योंकि, भरत मुनि के मूल नाट्यशास्त्र में तो (नाटक के लिए अर्थोपक्षेपक के रूप में चूलिका, अङ्कावतारादि नहीं थे, और) केवल "प्रवेशक" का ही विधान था- इसका दूसरा प्रमाण नाट्यशास्त्र के उन्नीसवें अध्याय में मिलता है। इस अध्याय में भरत मुनि ने सन्धि एवं सन्ध्यङ्गों का निरूपण किया है। किन्तु, आश्चर्यकारकतया, इस निरूपण में सहसा चूलिका इत्यादि पाँच अर्थोपक्षेपकों का विधान शुरू हो जाता है। जैसे कि,

[विष्कम्भश्चूलिका चैव तथा चैव प्रवेशकः।
अङ्कावतारोऽङ्कमुखमर्थोपक्षेपपञ्चकम्।। 19-110।।]

मध्यमपुरुषनियोज्यो नाटकमुखसन्धिमात्रसंचारः।
विष्कम्भकस्तु कार्यः पुरोहितामात्यकञ्चुकिभिः।। 111।।

शुद्धः संकीर्णो वा द्विविधो विष्कम्भकस्तु विज्ञेयः।
मध्यमपात्रैः शुद्धः संकीर्णो नीचमध्यमकृतः।। 112।।

अन्तर्यवनिकासंस्थैः सूतादिभिरनेकधा।
अर्थोपक्षेपणं यत्तु क्रियते सा हि चूलिका।। 113।।

अङ्कान्तरानुसारी संक्षेपार्थमधिकृत्य बिन्दूनाम्।
प्रकरणनाटकविषये प्रवेशको नाम विज्ञेयः।। 114।।

[नोत्तममध्यमपुरुषैराचरितो नान्यथान्तवचनकृतः।
प्राकृतभाषाचारः प्रवेशको नाम विज्ञेयः।। 114 अ।।]

अङ्कान्त एव चाङ्को निपतति यस्मिन् प्रयोगमासाद्य।
बीजार्थयुक्तियुक्तो ज्ञेयो ह्यङ्कावतारोऽसौ।। 115।।

विश्लिष्टमुखमङ्कस्य स्त्रिया वा पुरुषेण वा।
यदुपक्षिप्यते पूर्वं तदङ्कमुखमुच्यते।। 116।।]

---

1. सर्वं कार्यं यद्यङ्के प्रत्यक्षेण प्रदर्शयितुं न युज्यते, तद् अङ्कच्छेदं कृत्वा प्रवेशकैः प्रदर्शनीयम्। अदृष्टमप्यर्थम् हृदि प्रवेशयन्तीति प्रवेशकाः। चूलिका-ङ्कावतारा-ङ्कमुख-प्रवेशक-विष्कम्भका इहाभिप्रेताः। तथा च कोहलोऽर्थोपक्षेप-पञ्चकमुक्तवान्। (नाट्यशास्त्रम्, भाग-2, पृ. 421)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

नाट्यशास्त्र के प्रधान सम्पादक महोदय श्री रामकृष्ण कवि ने इन श्लोकों की पादटिप्पणी में लिखा है कि ये सात श्लोक प्रक्षिप्त ही हैं। हो सकता है कि कोहल के मतानुसारी या संग्रहकार के मतानुसारी किसी अज्ञात व्यक्ति ने इन श्लोकों को यहाँ प्रक्षिप्त कर दिये होंगे[1]।।

निष्कर्ष यही है कि (आदि) भरत के मत से नाटक प्रकार (के रूपक) के लिए केवल "प्रवेशक" नामक एक ही प्रकार का अर्थोपक्षेपक हो सकता है, जिसका सम्बन्ध मध्यम पात्र या नीच पात्र के प्रयोग के साथ नहीं है। तथा किसी भाषा-विशेष के प्रयोग के साथ भी भरत ने कहा नहीं है। (मतलब कि यह प्रवेशक चाहे केवल संस्कृतभाषा में निबद्ध हो, या केवल प्राकृतभाषा में निबद्ध हो, या उभयभाषा में निबद्ध हो इससे कोई फर्क नहीं पडता है)।। इस निष्कर्ष से प्रमाणित होता है कि कालिदास के अभिज्ञानशकुन्तला नाटक की बृहत्पाठपरम्परा (काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं) के तृतीयांक एवं चतुर्थांक के आरम्भ में जो "प्रवेशक" शब्द का प्रयोग मिलता है वही प्राचीनतम पाठ है, और वही आदि भरत के नाट्यशास्त्र के प्रथम स्तर के पाठ के अनुकूल नामाभिधान है।।

अभिज्ञानशकुन्तला नाटक की दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनाओं / रंगावृत्तियों के पाठ में तृतीयांक एवं चतुर्थांक के आरम्भ में आये दोनों ही अर्थोपक्षेपकों को "विष्कम्भक" ऐसा ही पारिभाषिक नाम दिया गया है। इससे यही सिद्ध होता है कि ये दोनों ही लघुपाठवाली वाचनाओं का ग्रथन काल काश्मीरी-आदि बृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं के बाद का है। तथा उस समय, दसवीं शती में लिखे गये धनञ्जय के दशरूपक का प्रभाव एवं प्रचलन सुस्थिर हो गया होगा। जिसके कारण उक्त दोनों ही अंकों के अर्थोपक्षेपकों का नाट्यशास्त्रानुसारी "प्रवेशक" ऐसा नाम बदल कर, (दशरूपक के अनुसार) "विष्कम्भक" कर दिया गया होगा। इस नाटक की दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाण्डुलिपियों में भले ही इन अर्थोपक्षेपकों का नया नाम (पाठान्तर के रूप में) दाखिल हो गया हो, किन्तु आश्वसनीय हकीकत यह भी है कि दक्षिण के टीकाकार काटयवेम ने तो दुर्वासा-शाप प्रसंग को सूचित करनेवाले अर्थोपक्षेपक को "प्रवेशक" नाम ही दिया है। दूसरी ओर, देवनागरी वाचना के सम्मान्य टीकाकार राघवभट्ट इन अर्थोपक्षेपकों का सही नाम, यानी नाट्यशास्त्रीय नाम क्या रहा होगा, एवं पाण्डुलिपियों में ऐसा पाठान्तर कहाँ से पैदा हो गया? यह ठीक तरह से समझ नहीं पाये हैं। जिसके कारण उन्होंने कुछ चिन्त्य व्याख्यान ही लिख दिया है[2]। इस तरह से ये दोनों ही टीकाकारों के वचन हमारे लिए इस बात का प्रमाण बन जाता है कि इन दोनों ही अर्थोपक्षेपकों का मूल नाम प्रवेशक ही था, और "विष्कम्भक" ऐसा नवीन नाम पाठान्तर के रूप में उत्तरवर्ती काल में ही (एवं नाट्यशास्त्रेतर परम्परा के वचनों से प्रेरित होकर) दाखिल किया गया है[3]।।

उपर्युक्त चर्चा का उपसंहार करते हुए मेरा एक निरीक्षण कहना भी आवश्यक है :- जिस तरह से काव्यशास्त्रियों ने किये काव्यदोष-विमर्श के कारण (उससे प्रेरित होकर) कालिदास के पद्य-काव्यों में जहाँ जहाँ काव्यदोष दिखाये गये थे वहाँ पर सार्थक पाठान्तरों ने जन्म लिया है[4], उसी तरह से कालिदासोत्तर काल में लिखे गये दशरूपकादि (नाट्यशास्त्रेतर) प्रकरण-ग्रन्थों में प्रयुक्त हुई नवीन पारिभाषिक शब्दावली के प्रचार एवं प्रभाव के कारण कालिदास के दृश्य-काव्यों (नाटकों) में भी कुछ स्थानों पर पाठान्तरों ने प्रवेश किया है।।

---

1. अर्थोपक्षेप-पञ्चकोद्देशलक्षणविधायिन एते सप्त श्लोकाः प्रक्षिप्ता एव, यतः पूर्वाध्यायेऽङ्कलक्षणावसरे यत्रार्थस्य समाप्तिरित्यत्र (18-37) तल्लक्षणानि सूचितानि मुनिना व्याख्यात्रा (= अभिनवगुप्तेन) च, कोहलमतानुसारेण वा, संग्रहकारमतेन वा श्लोकाश्चैते कैश्चिद्विनिवेशिताः। नाट्यशास्त्रम्, भा.-2, पृ.64
2. विष्कम्भकलक्षणं पूर्वोक्तम्। अयमपि शुद्धविष्कम्भः केवलं प्राकृतेन कृतत्वात्।। (पृ. 121)
3. इस सन्दर्भ में डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है :- नाटकेषु संपादनं कृच्छ्रसाध्यमिति सर्वेषामनुभूतिः। अत्रापि सैव स्थितिः। अत्र ये विशेषास्तान्नामतः सारतश्चोद्धरामः। तत्र सर्वत्रैवावश्यकानि नामान्यपि परिवर्तितान्येव किन्तु दशरूपकादीन्यनुसृत्यैव, न तु भरतनाट्यशास्त्रम्, तत्र प्रवेशकमात्रस्यैव लाभात्। विष्कम्भकस्य च कथञ्चिदिव प्रकरणप्रस्तावे पश्चाद् योजितत्वेन लाभात्।। कालिदास-ग्रन्थावली, सं. श्री रे. प्र. द्विवेदी, (प्रस्तावना पृ. 49), वाराणसी, 1986. किन्तु सम्पादन के ये सिद्धान्त अतार्किक है।
4. द्रष्टव्यः-काव्यदोष-विमर्श के आलोक में कालिदास के मौलिक पाठ में प्रविष्ट पाठान्तर, शीर्षकवाला मेरा शोध-आलेख, जर्नल ओफ ध संस्कृत अकादेमी, वो. 19, पृ. 192-209, ओस्मानिया युनि., हैदराबाद 2009

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

[2]

भरत मुनि ने वाचिकाभिनय का निरूपण करते हुए, अध्याय 25 (श्लोक 85 से 88) में आकाश-वचन, आत्मगत, अपवारितक, जनान्तिक जैसी पारिभाषिक संज्ञाओं का निर्देश किया है, तथा उनकी व्याख्या भी की है। इन पारिभाषिक शब्दों में "स्वगतम्" का उल्लेख नहीं है, "आत्मगतम्" का ही उल्लेख है। जैसे कि,

नानाकारणसंयुक्तैः काव्यभावसमुत्थितैः।
हृदयस्य (स्थं?) वचो यत्तु तदात्मगतमिष्यते॥

(नाट्यशास्त्रम्, अ. 25, श्लोक - 88)

इससे विपरीत, धनञ्जय ने दशरूपक में "स्वगतम्" शब्द को प्रचालित किया है। जैसे कि, सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्याद्, अश्राव्यं स्वगतं मतम्॥ (द. रू. 1-64) अभिज्ञानशकुन्तला नाटक की पाण्डुलिपियों में बहुशः "आत्मगतम्" शब्द का विनियोग करके रंगसूचना दी गई है, परन्तु कुत्रचित् "स्वगतम्" का भी उपयोग हुआ है- ऐसा देखा जाता है। इस तरह के पाठभेद को देख कर प्रश्न होता है कि इन दोनों में से कौन सी रंगसूचना कालिदास के हाथ से लिखी गई होगी?। तो उसका उत्तर स्पष्ट है कि कालिदास ने भरत मुनि ने निर्दिष्ट की हुई पारिभाषिक शब्दावली का ही विनियोग किया होगा॥

डॉ. श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी जी को जब अपनी "कालिदास-ग्रन्थावली" के लिए इस नाटक का पाठ सम्पादित करना था, तब उन्होंने भी पाण्डुलिपियों में ("आत्मगतम्" तथा "स्वगतम्") जैसी समानार्थक द्विविध रंगसूचनाएँ देखी हैं। इस समस्या पर कोई विशेष चिन्तन किये बिना ही उन्होंने लिख दिया है कि- "स्वगतम् इत्यस्य स्थाने कालिदासाभ्यस्त आत्मगतम् इति पाठः (स्वीकृतः)"। (अर्थात् कालिदास तो केवल "आत्मगतम्" शब्द से ही अभ्यस्त थे। इस लिए हमने सर्वत्र "स्वगतम्" शब्द के स्थान में "आत्मगतम्" शब्द का ही विनियोग किया है[1]।) यहाँ वे विचार नहीं करते हैं कि इस तरह की समानार्थक द्विविध रंगसूचनाएँ क्यूं मिल रही है, उसका क्या कारण हो सकता है?॥

जैसा कि उपरि भाग में हमने बताया है वैसे इस नाटक की परवर्ती काल में लिखी गई देवनागरी एवं दाक्षिणात्य पाण्डुलिपियों में, दशरूपककार की पारिभाषिक संज्ञाओं का प्रभाव पड़ा है। अतः भरत मुनि ने बताई शब्दावली का प्रचलन कम होने लगा है। तदुपरान्त, रंगकर्मियों ने जब कभी मंचनलक्ष्यी किसी प्रयोजन से प्रेरित होकर नवीन उक्ति या श्लोक को प्रक्षिप्त करने का सोचा है, तब उन्हों ने भी "आत्मगतम्" जैसी भरत-प्रोक्त रंगसूचना का उपयोग नहीं किया है। किन्तु उन्होंने भी परवर्ती काल में प्रचार में आयी "स्वगतम्" जैसी रंगसूचना का विनियोग किया है। अतः "स्वगतम्" शब्द से अवतारित की गई उक्तियाँ एवं श्लोक की मौलिकता संशयग्रस्त बन जाती है॥ इस दृष्टि से परीक्षण करने पर निम्नोक्त (स्वगतोक्तिवाले) स्थान ऐसे ध्यान में आ रहे हैं कि जहाँ पर रंगकर्मियों का हस्तक्षेप हुआ होगाः-

1. प्रथमांक में राजा की निम्नोक्त स्वगतोक्ति है "कथमिदानीम् आत्मानं निवेदये। कथं वात्मपरिहारं करोमि। भवत्वेवं तावदेनां वक्ष्ये।" वह प्रक्षिप्त हो सकती है।

2. द्वितीयांक में स्वगतोक्ति के रूप में राजा के मुख में "न नमयितुमधिज्यमुत्सहिष्ये०"। (श्लोक-3), तथा सेनापति की स्वगतोक्ति "अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरपूर्वम्०" (श्लोक-4) प्रक्षिप्त लगती है।

3. तृतीयांक में राजा शकुन्तला का हाथ अपने हाथ में लेकर, स्वगतोक्ति के रूप में "हरकोपाग्नि-दग्धस्य०" श्लोक बोलता है, वह प्रक्षिप्त हो भी सकता है। तथा राजा शकुन्तला का मुख अपनी अंगुली से उपर ऊठाते हुए स्वगतोक्ति में "चारुणा स्फुरितेनायमपरिक्षतकोमलः०" श्लोक बोलता है, वह भी प्रक्षिप्त हो सकता है। शकुन्तला के मुख से जब दुष्यन्त के लिए "आर्यपुत्र" शब्द निकला है, तब वह बोलता है कि- "इदानीमस्मि विश्वस्तो भर्तुराभाषणेन।" तो वह भी प्रक्षिप्त लगता है। क्योंकि वह भी "स्वगतम्" रंगसूचना से अवतारित है॥

---

1. कालिदास-ग्रन्थावली, सं. श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी, वाराणसी, (1986) की प्रस्तावना, पृ. 49

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

4. पञ्चमांक में शकुन्तला की स्वगतोक्ति है :- "इदमवस्थान्तरं गते तादृशे मुहूर्तरागे, किं वा स्मारितेन साम्प्रतं तेन। अथवा आत्मेदानीं शोधनीयोऽस्ति, विवदिष्यामि।", प्रक्षिप्त प्रतीत होती है। उसी तरह से, राजा के मुख में जो स्वगतोक्ति है, :- "न तिर्यग् अवलोकि चक्षु-रतिलोहितं केवलम्०" एवञ्च "मय्येवमविस्मरणदारुण०" वे श्लोक भी प्रक्षिप्त हो सकते हैं।

5. षष्ठांक में राजा अनपत्यता को लेकर संतप्त होता है, तब प्रतीहारी की स्वगतोक्ति है :- "वयःस्थः प्रभुरपरासु देवीष्वनुरूपपुत्रजन्मना पूर्वपुरुषाणाम् अनृणो भविष्यतीति।" वह प्रक्षिप्त हो सकती है।।

6. सप्तमांक में शकुन्तला की एक स्वगतोक्ति है :- "हृदय, समाश्वसिहि समाश्वसिहि। प्रहृत्य निर्वृत्तमत्सरेणानुकम्पिताऽस्मि दैवेन।" जो भी प्रक्षिप्त प्रतीत होती है।।

[3]

जैसा कि पहले कहा है कि अभिज्ञानशकुन्तला नाटक की पाँच रंगावृत्तियों में विदूषक का नाम दो तरह का मिलता है:- काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली रंगावृत्तियों में विदूषक के लिये "माधव्य" नाम प्रचलन में है। किन्तु लघुपाठवाली दाक्षिणात्य एवं देवनागरी रंगावृत्तियों में उसी विदूषक का नाम "माढव्य" मिलता है। घनश्याम नामके टीकाकार ने उसका "मांडव्य" ऐसा भी नामान्तर दिया है। इस तरह के दो-तीन नामों के प्रचलन की ओर पुरोगामी विद्वानों का भी ध्यान गया है और उन्होंने इस विषय पर अपने अभिप्रायों को व्यक्त किये हैं। अतः उन विद्वानों की सोच क्या है? वह प्रथम ज्ञातव्य है।

(1) प्रोफेसर डॉ. गोविन्द केशव भट ने अपने "ध विदूषक" (1959) नामक ग्रन्थ में संस्कृत की सभी नाट्यकृतियों के विदूषकों को लेकर विस्तृत चर्चा की है, जिसमें विदूषक की क्रमिक उत्पत्ति से आरम्भ करके उसकी चोटी और टोपी पर्यन्त सभी विषयों पर विचार किया है। इसमें उन्होंने लिखा है कि अभिज्ञानशाकुन्तल का विदूषक मूर्ख है, मृत्पिण्ड-बुद्धिवाला है ऐसा सूचित करने के लिए कालिदास ने उसका नाम "माढव्य" रखा है[1]।

(2) दूसरी ओर आचार्य श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी जी लिखते हैं कि उन्होंने अन्य संस्करणों के माढव्य को अपनी कालिदास ग्रन्थावली में, माधव्य बनाया है। क्योंकि माधव्य नाम से ही उसका वैशाखनन्दनत्व प्रकट होता है[2]।

लेकिन इन दोनों ही विद्वानों के विचार कथमपि ग्राह्य नहीं हैं। क्योंकि भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में संस्कृत नाट्यकृतियों में विदूषक के पात्र का विनियोग करने के लिए जो मार्गदर्शन दिया है, उसमें किस तरह के नायक के साथ में कैसा पीठमर्द, कैसा विदूषक रखना चाहिए? वह निश्चित किया है। जैसे कि,

अत्र चत्वार एव स्युर्नायकाः परिकीर्तिताः। मध्यमोत्तमप्रकृतौ नानालक्षणलक्षिताः।।
धीरोद्धता धीरललिता धीरोदात्तास्तथैव च। धीरप्रशान्तकाश्चैव नायकाः परिकीर्तिताः।।
देवा धीरोद्धता ज्ञेयाः, स्युर्धीरललिता नृपाः। सेनापतिरमात्याश्च धीरोदात्तौ प्रकीर्तितौ।।
धीरप्रशान्ता विज्ञेया ब्राह्मणा वणिजस्तथा। एतेषां तु पुनर्ज्ञेयाश्चत्वारस्तु विदूषकाः।।
लिङ्गी द्विजो राजजीवी शिष्यश्चेति यथाक्रमम्। देव-क्षितिभृता-मात्य-ब्राह्मणानां प्रयोजयेत्।।
विप्रलम्भसुहृदोऽमी संकथालापपेशलाः।। (नाट्यशास्त्रम् 24-16 से 21)

---

1. Kalidasa's Maad.havya indicates an idiot. See:- The Vidushaka, (p. 83) by G. K. Bhat, The New Order Book Co., Ahmedabad, 1959.
2. माढव्य of other editions is taken here as Maadhavya = माधव्य to suggest his वैशाख-नन्दनत्व or foolishness. (द्रष्टव्य : कालिदास ग्रन्थावली, 1986 की अंग्रेजी प्रस्तावना, पृ. 31)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

इन नियमों के अनुसार किस तरह के नायक के लिए कैसा विदूषक होना चाहिए- वह स्पष्ट हो जाता है:-

नायकः	प्रकारः	विदूषक का स्वरूप
1. देवता	धीरोद्धत प्रकार का होना चाहिए	ऋषि-कोटि का होना चाहिए
2. नृप, राजवंश का नायक	धीरललित प्रकार का होना चाहिए	ब्राह्मण वर्ण का होना चाहिए
3. सेनापति या अमात्य वर्ग का नायक	धीरोदात्त प्रकार का होना चाहिए	राजजीवी वर्ग का व्यक्ति होना चाहिए
4. ब्राह्मण या वणिज् वर्ण नायक	धीरप्रशान्त प्रकार का होना चाहिए	शिष्य कोटि का होना चाहिए

इस तरह से नाट्यशास्त्र में किस तरह के नायक के लिए कैसा विदूषक होना चाहिए? वह निर्धारित किया गया है। अतः भरत मुनि के बाद आये नाट्यकार कालिदास के लिए उनके वचन मार्गदर्शक रहे होंगे- ऐसा सोचना अयुक्तियुक्त नहीं होगा। तो धीरललित प्रकार के राजा दुःषन्त के लिए कालिदास ने ब्राह्मण वर्ण का ही विदूषक रखा होगा यह अवश्यंभावि है। अब केवल इतना जानना अवशिष्ट रहता है कि इस नाटक की पाण्डुलिपियों में संचरित हुआ माधव्य (या माढव्य) नाम क्या ब्राह्मण वर्ण के व्यक्ति का वाचक है कि नहीं? भरत मुनि से भी पहले हुए भगवान् पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में निम्नोक्त एक सूत्र लिखा है:- मधु-बभ्र्वोर्ब्राह्मण-कौशिकयोः। पा. सू. 4-1-106 इस अनुशासन के हिसाब से मधु नाम के ब्राह्मण का पुत्र "माधव्य" कहलाता है, किन्तु मधुमास में पैदा हुए (अन्य जीव, वनस्पति आदि) को "माधव" कहा जाता है। इससे सिद्ध हो जाता है कि महाकवि कालिदास ने भरत मुनि के दिये नियमानुसार इस नाटक के धीरललित नायक राजा दुःषन्त के लिए ब्राह्मण-कुलोत्पन्न विदूषक निश्चित किया है, और उस ब्राह्मण विदूषक का नामाभिधान पाणिनीय सूत्रानुसार "माधव्य" रखा होगा।। निष्कर्षतः, इस नाटक के विदूषक का नाम माधव्य हो, या माढव्य, लेकिन उन शास्त्रपूत नामों में से मूर्खता की अभिव्यञ्जना कथमपि नहीं हो सकती है। एवञ्च, माधव्य नाम संस्कृत है, उसी का प्राकृत में ध्वनि-परिवर्तन होने से माढव्य शब्द बना है तथा वह ब्राह्मणकुलोत्पन्न है- उसकी ओर भी विद्वानों को देखना चाहिता था।।

[4]

इस नाटक की पाँच रंगावृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन करते समय एक अन्य पाठभेद भी अतीव ध्यानास्पद बनता है कि नान्दी-पद्य के बाद सूत्रधार के मुख में सब से पहले आने वाला "अलम् अतिविस्तरेण" जैसा वाक्य सभी रंगावृत्तियों में नहीं मिलता है। काश्मीरी रंगावृत्ति में ऐसा वाक्य नहीं है। तथा दाक्षिणात्य एवं देवनागरी रंगावृत्तियों में भी वह नहीं मिलता है। किन्तु ऐसा वाक्य मैथिली तथा बंगाली रंगावृत्तियों में समान रूप से मिलता है। ऐसा क्यूँ? ऐसा प्रश्न ऊठाना बहुत आवश्यक है। क्योंकि इसके साथ प्राचीन काल से चली आ रही संस्कृत नाटकों की मंचन-परम्परा का कोई ऐतिहासिक परिवर्तन जुड़ा हुआ हो सकता है। अतः "अलमतिविस्तरेण" वाक्य का होना या नहीं होना - इसी प्रश्न का समाधान प्राप्त करने के लिए, संस्कृत नाटकों की कतिपय पाण्डुलिपियों में "नान्द्यन्ते (ततः प्रविशति सूत्रधारः)" ऐसा लिखा हुआ जो मिलता है, अथवा भास के रूपकों में काव्य एवं कवि का नामोल्लेखादि क्यों नहीं मिलता है - इत्यादि विषयों पर भी प्रासंगिकतया सोचना आवश्यक होगा। इस सन्दर्भ में भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र के पञ्चमाध्याय में जिस पूर्वरंग विधि का विधान किया है, उसकी ओर दृष्टि-क्षेप करना होगा। भरतोक्त पूर्वरंग नामक विधि में 22 अंग होते हैं। जिसमें से कतिपय विधियाँ नेपथ्य में (अन्तर्यवनिका) की जाती है, तो अन्य विधियाँ (बहिर्यवनिका, यानी प्रेक्षकों के सामने) रंगमञ्च पर की जाती हैं। इन सब में प्रत्याहार, कुतप-विन्यास (वाद्य-साधनों का विन्यास), गीत, नृत्य, ध्रुवा गीति, जर्जरपूजा, नान्दीपाठ आदि का विस्तार के साथ निरूपण किया है। तथा उसमें, त्रिगत नाम के अंग में सूत्रधार, पारिपार्श्वक एवं विदूषक के बीच में सम्बद्ध-असम्बद्ध वार्तालाप भी रंग पर प्रस्तुत करना है ऐसा कहा गया है। इस वार्तालाप के माध्यम से प्रस्तूयमान रूपक का परिचय, नाट्यकार का परिचय आदि भी दिया जाता है। जिसको "प्ररोचना" कहते है। इससे प्रेक्षकों को आवश्यक जानकारियाँ मिल जाती हैं।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

अत एव, श्री टि. गणपति शास्त्री द्वारा सम्पादित भास-प्रणीत माने गये त्रिवेन्द्रम् रूपकों की पाण्डुलिपियों में नाट्यकृतियों के शीर्षक एवं भास कवि का नामादि नहीं मिलने का कारण यही है कि भास के समय में, नटमण्डली के द्वारा ही भरतोक्त "पूर्वरंग" नामक विधि में ये सब जानकारियाँ दी जाती होगी। इसी लिए नाट्यकार की कृति में इन आवश्यक सूचनाएँ आज नहीं मिलती हैं[1]। एवमेव, इसी नटमण्डलियों के द्वारा बनाये गये नान्दी-पद्य का गान भी "नान्दी-पाठकों" के द्वारा किया जाता होगा, और पूर्वरंग विधि परिपूर्ण होने के बाद, (नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः। जैसी रंगसूचना के बाद), रंगमंच पर आये अकेले सूत्रधार के द्वारा नाट्यकार ने लिखा हुआ मंगल-श्लोक प्रस्तुत किया जाता होगा। भरत मुनि ने नाट्यप्रयोग से पहले, पूर्वरंग का जो विधान किया था, उसकी फलश्रुति एवं विभीषिका बताते हुए यह भी लिखा है कि -

य इमं पूर्वरंगं तु विधिनैव प्रयोजयेत्। नाशुभं प्राप्नुयात् किञ्चित् स्वर्गलोकं च गच्छति॥

यश्चापि विधिमुत्सृज्य यथेष्टं संप्रयोजयेत्। प्राप्नोत्यपचयं घोरं तिर्यग्योनिं च गच्छति॥

नाट्यशास्त्रम्। (अ. 5-17-171), पृ. 248

लेकिन कालान्तर में इस विधि-विधान का परिष्कार करने की आवश्यकता भी प्रतीत होने लगी होगी। भरत मुनि ने जिन 22 अंगों वाले पूर्वरंग विधि का विधान किया था, वह बहुत प्रलम्ब होने के कारण उसका प्रयोग दीर्घकाल पर्यन्त चलता रहता था, जो प्रेक्षकों को असह्य हो जाता होगा। अतः उसमें परिवर्तन करना आवश्यक था। इसी लिए, भरत मुनि के उसी नाट्यशास्त्र (की सम्भवतः द्वितीय स्तर की रचना) में ही इस पञ्चम अध्याय के अन्त भाग में निम्नोक्त श्लोक भी मिलते हैं:-

कार्यो नातिप्रसंगोऽत्र नृत्तगीतविधिं प्रति। गीते वाद्ये च नृत्ते च प्रवृत्तेऽतिप्रसंगतः॥

खेदो भवेत् प्रयोक्तृणां प्रेक्षकाणां तथैव च। खिन्नानां रसभावेषु स्पष्टता नोपजायते॥

ततः शेषप्रयोगस्तु न रागजनको भवेत्॥ नाट्यशास्त्रम्, अ. 5-158 से 160। (पृ. 244)।

पूर्वरंग-विधि के विषय में इस तरह के संशोधन के बाद, पश्चाद्वर्ती समय में कालिदास की नाट्यकृतियाँ आती हैं। जिनमें नाट्यकृति के प्रणेता के द्वारा ही नाटक का शीर्षक एवं कवि का नाम निर्देशादि सहित आवश्यक परिचय दिया जाता है और नाट्यकृति को देखने की रुचि पैदा हो जाय ऐसी "प्ररोचना"सहित की "प्रस्तावना" लिखी जाती है। (यानी कविपरिचय एवं नाट्यकृति की प्ररोचना करने की जिम्मेदारी अब नटमण्डली की नहीं रही। अब पेशावर रंगकर्मियों ने बनाये शब्दों से प्ररोचना का कार्य नहीं होता था।) इस तरह से, भरत मुनि के द्वारा अनुशासित पूर्वरंग विधि का अस्त हो जाने के बाद, उत्तरवर्ती काल के नाट्यशास्त्रियों ने उस विस्तृत पूर्वरंग में से नान्दी गान रूप एक अंग का स्वीकार अनिवार्य माना। इसकी ओर अंगुलि-निर्देश करते हुए (मैथिली रंगावृत्ति के) टीकाकार शंकर अपनी रसचन्द्रिका नामक टीका में "अलमतिविस्तरेण" वाक्य का आशय स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि -

अलमिति। अलंशब्दस्य तृतीयान्तपदसहायेनैव निष्फलाभिधायित्वम्। ......। आनन्त्यात् सकलपूर्वरंगस्य निर्वाहयितुम् अशक्यत्वात् नान्दीपठनेनैवोपपत्तेः। तथा चोक्तम् - यद्यप्यङ्गानि भूयांसि पूर्वरंगस्य नाटके। तथाप्यवश्यं कर्तव्या नान्दी विघ्नोपशान्तये॥ (रसचन्द्रिका टीका, पृ. 160)यही बात दूसरे शब्दों में विश्वनाथ ने भी कही है :-

प्रत्याहारादिकान्यङ्गान्यस्य भूयांसि यद्यपि।
तथाप्यवश्यं कर्तव्या नान्दी विघ्नोपशान्तये॥ (साहित्यदर्पणम्, 6-22)

काश्मीर की प्राचीनतम रंगावृत्ति में, नान्दी-गान के बाद सूत्रधार का प्रवेश होता है, तब उसके मुख में "अलम् अतिविस्तरेण" जैसा वाक्य नहीं है। किन्तु उत्तरवर्ती काल की मैथिली और बंगाली रंगावृत्तियों के पाठ में, सूत्रधार के मुख में ऐसा वाक्य है, जो मैथिल नटमण्डली ने लिखा होगा। इसका मतलब स्पष्ट है कि इन दोनों प्रदेशों के रंगकर्मी लोग भरत मुनि-प्रोक्त पूर्वरंग-विधि का अनुपालन छोड रहे हैं- ऐसा "अलमतिविस्तरेण" वाक्य से सूचित कर रहे हैं।। **इति दिक्॥**

---

1. द्रष्टव्यः-Bharata-Natya-Manjari (Vol. 1) by G.K. Bhat, BORI, Poona, 1975, (p. 73)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

परिशिष्ट - 6

शृङ्गारप्रकाश में उद्धृत अभिज्ञानशकुन्तला के श्लोक एवं उनके सूचितार्थ

भूमिका:- [क] कालिदास का अभिज्ञानशकुन्तला नाटक सर्वश्रेष्ठ होने के कारण उसका अभिनयन पौन: पुन्येन होता रहा है। मंचन के हर मौके पर विभिन्न प्रदेश के रंगकर्मियों ने कवि-प्रणीत पाठ में बहुविध परिवर्तन किये हैं। जिसके कारण, दो हजार वर्षों की कालावधि में, इस नाटक के शीर्षक से लेकर भरत-वाक्य पर्यन्त प्राय: सभी श्लोकों एवं उक्तियों में अनेक पाठान्तरों ने प्रवेश किया है। ऐसे मंचनलक्षी पाठ-परिवर्तनों का कोई दस्तावेजीय इतिहास तो हमारे पास नहीं है। तथापि साहित्य-रसिकों का यह जिज्ञास्य विषय रहा है कि किस कालखण्ड में कौन सा पाठान्तर आकारित हुआ होगा। वर्तमान में हमारे सामने इस नाटक की पाँच वाचनाएँ प्रचलित हैं। उनमें से कौन सी वाचना का पाठ सब से प्राचीनतम कालखण्ड का सिद्ध होता है, एवं उसमें क्रमश: कैसे परिवर्तन होते रहे हैं?। इस तरह की जिज्ञासा से प्रेरित हो कर भोजराज के शृङ्गारप्रकाश में उद्धृत हुए इस नाटक के पाठ्यांशों का यहाँ विश्लेषण किया जाता है। ऐसा करेंगे तो, भोजराज के समय (ई. स. 1005 से 1050) में और महाकालेश्वर धाम[1], यानी धारा नगरी में, बल्कि मध्य भारत में, कौन सा पाठ या पाठान्तर प्रचलित था? उसका अनुमान हो सकेगा।।

[ख] इस नाटक के पाठ की अनेकरूपता उजागर करनेवाली पाँच वाचनाएँ अद्यावधि प्रकाश में आयी हैं। जैसे कि, (क) अभिज्ञानशकुन्तला शीर्षक से 1. काश्मीरी वाचना[2], (ख) अभिज्ञानशकुन्तलम् शीर्षक से 2. मैथिली[3] एवं 3. बंगाली[4] वाचनाएँ, (ग) अभिज्ञानशाकुन्तलम् शीर्षक से 4. दाक्षिणात्य एवं 5. देवनागरी वाचनाएँ। इनमें से जो पहली तीन वाचनाएँ हैं, उन में इस नाटक का बृहत्पाठ संचरित हुआ है। तथा अवशिष्ट दो वाचनाओं की पाण्डुलिपियों में लघुपाठ संचरित हुआ है।। इस तरह के पञ्चविध पाठों को देख कर जिज्ञासा होती है कि ग्यारहवीं शताब्दी में इस नाटक के पाठ का स्वरूप कैसा था।

[ग] इस परामर्श का मार्ग प्रशस्त करनेवाले दो ग्रन्थों की जानकारी देना प्रासंगिक है। जैसे कि, 1. डॉ. श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी जी ने अनेक प्रयासों से वर्तमान में शृङ्गारप्रकाश का पूर्ण सम्पादन उपलब्ध करवाया है[5]। [शृङ्गारप्रकाश:, (भाग: 1 एवं 2), सं. रेवाप्रसाद द्विवेदी एवं डॉ. सदाशिवकुमार द्विवेदी, प्रका. इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, नई दिल्ली, 2007.]। इस ग्रन्थ का मूल्य बताते हुए पं. श्रीरेवाप्रसाद जी ने लिखा है कि इसमें 7389 श्लोकों के उद्धरण प्राप्त होते हैं, जिनमें 1394 प्राकृत गाथाओं का भी समावेश हुआ है। उन्होंने इसको Great Anthology of Quotations कहा है। इसमें अभिज्ञानशाकुन्तल के ही उद्धरण कुल मिला कर 87 दिये गये हैं। इतनी बड़ी मात्रा में इसी नाटक के उद्धरण अन्य किसी भी काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ में नहीं मिलते हैं।। 2. शारदा पाण्डुलिपियों के आधार पर मैं ने तैयार कियां अभिज्ञानशकुन्तला नाटक

---

1. द्रष्टव्य:- संस्कृत-काव्यशास्त्र का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी, वाराणसी, 2007
2. अभिज्ञानशकुन्तला (काश्मीरी वाचना), सं. वसन्तकुमार म. भट्ट, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, 2018
3. अभिज्ञानशकुन्तलम् (मैथिल-पाठानुगम्), सं. रमानाथ झा, मिथिला विद्यापीठ, दरभङ्गा, 1957 (यद्यपि डॉ. वी.राघवन् ने मैथिली वाचना के पृथक् स्वतन्त्र अस्तित्व को अस्वीकार्य घोषित किया है। लेकिन उनका अभिप्राय केवल एक सामान्य निरीक्षण पर ही दिया गया है, जो सर्वथा त्याज्य है, एवं तिरस्कार्य है।
4. अभिज्ञानशकुन्तलम् (बंगाली वाचना), रिचार्ड पिशेल, हार्वर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1922 द्वितीय संस्करण
5. इससे पहले यह ग्रन्थ डॉ. वी. राघवन् ने तैयार किया था, जो हार्वर्ड युनिवर्सिटी, अमेरिका में विस्मृत सा होकर अन्धकार में चला गया था। तथा मैसूरु से भी जोसियर ने चार भागों में उसका प्रकाशन किया था।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

की काश्मीरी वाचना का समीक्षित सम्पादन राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली के द्वारा मार्च 2018 में प्रकाशित हुआ है। हमने काश्मीरी वाचना का यह पाठ पाँच शारदा पाण्डुलिपियों का विनियोग करके निर्धारित किया है, जिनका यहाँ प्रथम बार उपयोग किया गया है[1]। इन दोनों पूर्वोक्त ग्रन्थों के अभाव में निम्नोक्त परामर्श करना सम्भव ही नहीं था।।

[1]

अभिज्ञानशकुन्तला नाटक की पाँच में से तीन वाचनाएँ बृहत्पाठवाली हैं। तथा दो अन्य वाचनाएँ लघुपाठ-वाली है। इसको लेकर विद्वानों के बीच में दो तरह के मतभेद प्रवर्तमान हैं :- कुछ विद्वान् ऐसे हैं जो कहते हैं कि कालिदास ने पहले लघुपाठवाला ही अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक लिखा था। तत्पश्चात् उसमें नवीन श्लोकादि का प्रक्षेप करके बृहत्पाठवाला अभिज्ञानशकुन्तल नाटक बनाया गया है। इस मत के पुरस्कर्ता म. म. श्रीईश्वरचन्द्र विद्यासागर, प्रोफे. शारदा रंजन राय, प्रोफे. पी. एन. पाटणकर, डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी जी आदि अनेक मनीषी विद्वान् हैं। दूसरी ओर कुछ विरल विद्वान् ऐसे भी हैं कि जो मानते हैं कि कालिदास ने मूल में ही बृहत्पाठवाला नाटक लिखा था। किन्तु कालान्तर में उसमें संक्षेपीकरण के आशय से कुछ श्लोकों एवं अमुक[2] दृश्यों की कटौती की गई है। जिससे लघुपाठवाला अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक बना है। इस दूसरे मत को माननेवाले विद्वानों में डॉ. रिचार्ड पिशेल, डॉ. एस. के. बेलवालकर तथा डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल है। लेकिन इस सन्दर्भ में प्राचीन काल के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में उद्धृत हुए इस नाटक के श्लोकों के आधार पर देखा जाय तो, उनमें किस वाचनानुसारी पाठ का प्रचलन था? वह भी ज्ञातव्य है। जैसे कि,

(क) तृतीयांक में दुष्यन्त का रंगमंच पर जब प्रवेश होता है तब (काश्मीरी पाठ में-) "ततः प्रविशति कामयानावस्थो राजा" ऐसी रंगसूचना है। किन्तु इसमें दूसरे दो पाठान्तर भी मिलते है:- (मैथिली तथा बंगाली पाठों में-) "ततः प्रविशति मदनानावस्थो राजा" एवं (दाक्षिणात्य तथा देवनागरी पाठों में-) "ततः प्रविशति कामयमानावस्थो राजा"। पाण्डुलिपियों में उपलब्ध हो रहे इन तीनों पाठान्तरों में से किसको काव्यशास्त्र में स्थानं मिला है? यह जानने के लिए वामन के लिखे "कामयानशब्दः सिद्धोऽनादिश्चेत्।" (का. सू. वृत्ति 5-2-83) सूत्र को देखते हैं तो मालूम होता है कि वे कामयान शब्द को सिद्ध घोषित करते हैं, क्योंकि वह शब्द अनादि काल से चला आ रहा है। (तथा रघुवंश (19-50) में भी उसका प्रयोग हुआ है।) यानी काश्मीरी पाठान्तर वामन के सामने रहा था।

(ख) उसी तरह से तृतीयांक का "मुहुरङ्गुलिसंवृताधरोष्ठं प्रतिषेधाक्षरविक्लवाभिरामम्। मुखमंस-विवर्ति पक्ष्मलाक्ष्याः कथमप्युन्नमितं, न चुम्बितं तु।। (3-32)" इस काश्मीरी पाठ के सामने मैथिली तथा बंगाली पाठों में "०कथमप्युन्नमितं, न चुम्बितं तत्।।" ऐसा पाठभेद उपलब्ध होता है। आनन्दवर्धन का ध्वन्यालोक जब देखते हैं, तो उसमें काश्मीरी पाठानुसारी उद्धरण मिलता है, और उस श्लोक में आये "न चुम्बितं तु" पदों में प्रयुक्त तु-निपात की व्यंजकता वहाँ पर कही जाती है।।

(ग) इसी तरह से अभिनवगुप्ताचार्य ने भी नवम अध्याय में इस नाटक का नान्दी-पद्य उद्धृत किया है:- या स्रष्टुः सृष्टिराद्या०। इस तरह का पदक्रम तो केवल काश्मीरी पाठ में ही मिलता है, अन्यत्र सर्वत्र (यानी मैथिली,

1. डॉ. एस. के. बेलवालकर जी के द्वारा तैयार किया हुआ काश्मीरी वाचना का तथाकथित पाठ-सम्पादन डॉ. वी. राघवन् ने 1965 में साहित्य अकादेमी, दिल्ली की ओर से प्रकाशित किया था। किन्तु उसमें साद्यन्त रूप में काश्मीरी वाचना का पाठ नहीं है। तथा उसमें प्रस्तावना, उपयुक्त पाण्डुलिपियों का विवरण एवं पादटिप्पणी-आदि भी नहीं दिया है। एवञ्च, डॉ. वी. राघवन् ने जो दो-तीन पृष्ठ की भूमिका लिखी है, वह भी निराशाजनक है। (क्योंकि वे मैथिली वाचना का पार्थक्य देख नहीं पाये, तथा पाठालोचना की उपादेयता भी नहीं समझते हैं।) डॉ. वी. राघवन् ने डॉ. बेलवालकर जी के द्वारा इक्लेक्टीक प्रिन्सिपल्स पर बनाई गई एक साधारण आवृत्ति को ही काश्मीरी वाचना के नाम पर पुरस्कृत किया था।
2. जिसमें तृतीयांक में आये हुए 1. दुष्यन्त शकुन्तला को मृणाल-वलय पहनाता है, तथा 2. कर्णोत्पलरेणु से कलुषित हुए शकुन्तला के नेत्र को दुष्यन्त अपने वदन-मारुत से प्रमार्जित कर देता है- इन दो दृश्यों का समावेश होता है।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

बंगाली, दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों में) या सृष्टिः स्रष्टुराद्या०।[1] ऐसा पदक्रम प्रचलन में है।। इन उदाहरणों से कह सकते हैं कि आठवीं से लेकर दसवीं शती के आलंकारिकों ने काश्मीरी पाठ का समादर किया है। किन्तु डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल जैसे पूर्वपक्षी विद्वान् ऐसा कहेंगे कि ये तीनों ही आलंकारिक तो काश्मीर के ही हैं[2], इस लिए उन्होंने काश्मीरी वाचनानुसारी उद्धरण दिये हैं। अतः काश्मीर प्रदेश के न हो ऐसे दूसरे प्रदेश के कोई आलंकारिक के सामने अभिज्ञानशाकुन्तल का कौन सा पाठ प्रचलन में था?। इस दृष्टि से भी इस विषय की परीक्षा होनी चाहिए।।

अतः प्रस्तुत आलेख में, दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी में ही, भोजराज के सामने, यानी मध्यभारत में (डॉ. रेवाप्रसाद जी के शब्दों में "महाकालेश्वर धाम" में) कौन सा पाठ प्रचलित रहा होगा? उसकी पर्यालोचना भी रसप्रद होगी। एवमेव, इस नाटक की पञ्चविध वाचनाओं के उद्भव-विकास के क्रम को आलोकित करने में मार्गदर्शक सिद्ध होगी।।

[2]

(क) भोजराज ने दूतकर्म में उपाय-प्रयोग का निरूपण करते समय शृङ्गारप्रकाश में "त्वं दूरमपि गच्छन्ति (न्ती) हृदयं न जहासि मे। दिनावसानच्छायेव पुरोमूलं वनस्पतेः।।" ऐसा श्लोक उद्धृत किया है। (द्रष्टव्यः - शृ. प्र. 28-155, पृ. 1270)[3] यद्यपि भोजराज ने उस श्लोक को स्पष्ट रूप से कालिदास-प्रणीत नहीं कहा है, किन्तु यह श्लोक अभिज्ञानशकुन्तला (ल) की बृहत्पाठवाली तीन वाचनाओं में ही मिलता है। तथा यह श्लोक तृतीयांक के जिन दो दृश्यों के विषय में विवाद है, उन्हीं दृश्यों का भाग है। अतः ऐसा कह सकते हैं कि तृतीयांक का बृहत्पाठ भोजराज के समय में, (यानी 11वीं शती में) प्रचलित था।।

(ख) शृङ्गारप्रकाश में कन्याएँ लज्जाशील होने से प्रेम-प्रसंगों में उनका कैसा व्यवहार रहता है[4] उसका निरूपण करने के लिए निम्नोक्त श्लोक उद्धृत किया गया है:- अप्यौत्सुक्ये महति दयितप्रार्थनाभिः प्रयाताः, काङ्क्ष्यन्त्योऽपि व्यतिकरसुखं कातराः स्वाङ्गदाने। आबध्यन्ते न खलु मदनेनैव लब्धास्पदत्वाद्, आबाधन्ते मनसिजमपि क्षिप्तकालाः कुमार्यः।। (शृ. प्र. 33-09, पृ. 1515) यह श्लोक अभि. शकु. की बृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं में उपलब्ध होता है[5]। यद्यपि यह श्लोक प्रक्षिप्त ही सिद्ध होता है, तथापि उसका बृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं में होना- वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि यह एक दस्तावेजीय गवाह है कि भोजराज के सामने प्रक्षेपों से भरा ऐसा बृहत् पाठ उपलब्ध था।।

(ग) केवल काश्मीरी वाचना का ही जिसमें निर्देश हो ऐसा एक दूसरा स्थान शृङ्गारप्रकाश में सुरक्षित रहा है, जिसकी ओर किसी भी विद्वान् का ध्यान अद्यावधि नहीं गया है:- (राजा) सहर्षम्। श्रुतं श्रोतव्यम्। विमर्शच्छेदि वचनम्। एतावान् कामिन इत्यारभ्य।। (शृ. प्र. 29-105, पृ. 1300) यद्यपि भोजराज ने यहाँ दुष्यन्त की उक्ति पूर्णतया उद्धृत नहीं की है। किन्तु इस नाटक की पाँचों शारदा पाण्डुलिपियों में देखा जायेगा तो मालूम होगा कि भोजराज उपर्युक्त उद्धरण के द्वारा काश्मीरी वाचना के पाठ की ओर ही इशारा कर रहे हैं। जैसे कि, राजा - (सहर्षम्) श्रुतं श्रोतव्यम्। ... विमर्शच्छेदि वचनम्। एतावत् कामफलं यत्लफलम् अन्यत्। (इनमें से तीसरा वाक्य मैथिली एवं बंगाली पाठों में नहीं मिलता है।) यहाँ भोजराज के द्वारा दिये गये उद्धरण के पूर्वोक्त शब्द केवल काश्मीरी पाठ की ओर ही अंगुलीनिर्देश कर रहे हैं।।

---

1. द्रष्टव्यः नाट्यशास्त्रम्, (अभिनवभारतीसहितम्), जी. ओ. एस., वडोदरा, वॉ.-2, (9-178), पृ. 67-68
2. It appears that Kashmir tradition was probably sectarian for which it was not popular with the people.-A Reconstruction of theAbhijnanas'akuntalam, D. K. Kanjilal, 1980, p. 134.
3. शृङ्गारप्रकाशः (भाग 1 एवं 2), सं. श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी, इ. गाँ. रा. कला केन्द्र, दिल्ली, 2007
4. सर्वा एव हि कन्याः पुरुषेण प्रयुज्यमानमभियोगं विषहन्ते, किन्तु लज्जया परिलघुमिश्रामपि वाचं न मिश्रयन्ति। - शृ. प्र. 33, पृ. 1515
5. तीन वाचनाओं में इस श्लोक के प्रयाताः के स्थान में प्रतार्याः एवं प्रतीपाः जैसे एक-दो पाठान्तर मिलते हैं।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

(घ) भोजराज ने शृङ्गारप्रकाश में शरीरादि पर अनात्मबुद्धि का उदाहरण देते हुए निम्नोक्त श्लोक उद्धृत किया है :- यदा शरीरस्य शरीरिणश्च पृथक्त्वमेकान्तत एव भावि। आहार्ययोगेन विमुच्यमानः परेण को नाम भवेत् सशोकः।। (प्रकाशः 21-16, पृ. 1082) इसमें ससुराल जा रही अपनी पुत्री शकुन्तला को कण्व मुनि ने औपनिषदिक उपदेश देते हुए यह भी कहा है कि कल मैं रहूँ या न रहूँ- मेरा शोक नहीं करना। दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठानुसारी शाकुन्तल नाटक को पढ़नेवालों के लिए यह श्लोक अनजान है[1]। किन्तु बृहत्पाठवाले इस नाटक के पाठ में यह श्लोक आदिकाल से संचरित हुआ है। यानी काश्मीरी एवं मैथिली वाचनाओं के पाठ में यह श्लोक सुरक्षित है। (यद्यपि रिचार्ड पिशेल ने अपने समीक्षित बंगाली वाचना के पाठ में इस श्लोक को निकाल दिया है। किन्तु डॉ. दिलीपकुमार काञ्जीलाल ने उसको स्वीकारा है।) सारांशतः, भोजराज के समय में इस नाटक का बृहत्पाठ सुचारु रूपेण विद्यमान एवं प्रचलित रहा है।।

[3]

बृहत्पाठवाली तीनों वाचनाओं में से केवल काश्मीरी वाचना में जो प्रचलित पाठान्तर हैं, वही भोजराज ने शृङ्गारप्रकाश में उद्धृत किये हैं - इतना सोदाहरण दिखाने के बाद, कुछ उदाहरण ऐसे भी दिखाना आवश्यक है कि जिससे मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं में जो नवीन पाठान्तर आकारित किये गये हैं, उनका उत्तरवर्तित्व भी सिद्ध होता हो:-

(क) भोजराज ने शृङ्गारप्रकाश में प्रेम का स्वरूप वर्णित करते हुए "पालनसंक्षेप" का उदाहरण एक श्लोक में पेश किया है। जैसे कि "अनिर्दयोपभोग्यस्य रूपस्य मृदुनः कथम्। दारुणं सखि ते चेतः शिरीषस्येव बन्धनम्।।" (शृ. प्र. 33-68, पृ. 1528) यद्यपि भोजराज ने इस श्लोक को स्पष्ट शब्दों में कालिदास-प्रणीत नहीं कहा है, तथापि वह श्लोक अभिज्ञानशकुन्तला का ही है[2]। तथा काश्मीर की शारदा पाण्डुलिपियों में मिलता है। यहाँ उल्लेखनीय है कि भोजराज ने इस श्लोक को "दारुणम्" शब्द के साथ उद्धृत किया है, वैसा ही पाठ काश्मीरी वाचना (3-24) में उपलब्ध होता है। परन्तु मैथिली एवं बंगाली वाचना के पाठ में यह श्लोक कुछ पाठभेद के साथ मिलता है। जैसे कि, "अनिर्दयोपभोग्यस्य रूपस्य मृदुनः कथम्। कठिनं खलु ते चेतः शिरीषस्येव बन्धनम्।।" (3-30)। मतलब कि भोजराज के सामने काश्मीरी वाचना का (दारुणम्) पाठ ही रहा होगा, एवं मैथिली तथा बंगाली का (कठिनम्) पाठ तदुत्तरवर्ती काल का होगा[3]।।

(ख) कालिदास ने अभिज्ञानशकुन्तला के प्रथमांक में भ्रमरबाधा-प्रसंग का निरूपण किया है। कण्व मुनि के आश्रम में शकुन्तला, प्रियंवदा एवं अनसूया वृक्षों को जल-सिञ्चन कर रही थीं, तब नवमालिका लता को जलसिंचन करने के बाद रंगसूचना दी गई है कि "इति कलशमावर्जयति"। (यानी नायिका शकुन्तला ने नवमालिका को जलसिंचन करने के बाद, रंगमंच पर किसी एक कोने में अपने हाथ में रहे जलकुम्भ को जमीन पर रख दिया है।) तत्पश्चात् नवमालिका लता से जब भ्रमर उड़ता है और शकुन्तला के मुख पर मंडराना शुरू करता है, तब शकुन्तला भ्रमर का अपसारण करने के लिए अपने दोनों हाथों का उपयोग करती है। जिसका निरूपण करनेवाला श्लोक निम्नोक्त है:-

चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं,
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकगतः।
करौ व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं,
वयं देवैर्मौग्ध्यान् (तत्त्वान्वेषान्) मधुकर हतास्त्वं खलु कृती।।

---

1. डॉ. रेवाप्रसादजी ने शृ.प्र. के परिशिष्ट-5, भोजराजे कालिदास-सन्दर्भाः में इसका समावेश नहीं किया है।
2. डॉ. रेवाप्रसादजी के शृ.प्र. के परिशिष्ट-5, भोजराजे कालिदास-सन्दर्भाः में यह भी अनुल्लिखित है।
3. डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित शृङ्गारप्रकाशः (भा.-2, पृ.1528) में यह श्लोक है, किन्तु परिशिष्टों में उसका निर्देश छूट गया है।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

यह पाठ काश्मीरी वाचना का है, जिसमें करौ शब्द द्विवचन में है- वह ध्यानास्पद है[1]। उसके प्रतिपक्ष में, मैथिली तथा बंगाली वाचनाओं में "करं व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरम्" ऐसा एकवचन का प्रयोग किया गया है। उसका मतलब यह है कि मिथिला एवं बंगाल के रंगमंच पर शकुन्तला ने "इति कलशम् आवर्जति" रंगसूचना के बाद भी अपने हाथ में रहा जलकुम्भ जमीन पर नहीं छोड़ दिया है। अतः वह केवल एक हाथ से ही भ्रमर का अपसारण करती होगी तथा उसने दूसरे हाथ में जलकुम्भ को पकड़ कर रखा होगा। अब हमें देखना है कि भोजराज ने जब शृङ्गारप्रकाश में इस श्लोक को उद्धृत किया है, तब कौन सा पाठ लिया है। तो, उन्होंने भी "करं व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरम्" ऐसा एकवचनान्त पाठवाला श्लोक ही लिखा है। इससे अनुमान हो सकता है कि भोजराज ने भले ही काश्मीरी पाठ को अनेकत्र उद्धृत किया हो, लेकिन उनके समय तक मैथिली एवं बंगाली रंगकर्मियों के द्वारा नवीन दृश्य-योजनानुसार कतिपय नवीन पाठान्तरों को जन्म दे दिया था, एवं वे प्रचार में भी आ गये थे। जिसके कारण वे भी भोजराज के द्वारा उद्धृत हुए हैं ऐसा दिखता है।।

[4]

दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनानुसारी अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रथमांक में नायक दुष्यन्त सोचता है कि जैसे मैं शकुन्तला में अनुरक्त हूँ वैसे क्या शकुन्तला भी मुझ में अनुरक्त होगी या नहीं? उसके उत्तर में वह कहता है कि- अथवा लब्धाऽवकाशा मे प्रार्थना। कुतः,

वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः कर्णं ददात्यभिमुखं मयि भाषमाणे।
कामं न तिष्ठति मदाननसंमुखीना, भूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्याः।। (1-27)

यहाँ पर भोजराज ने शृङ्गारप्रकाश में नायक के इङ्गिताकारज्ञता नामक गुण को निरूपित करने के लिए इस श्लोक को उद्धृत किया है। लेकिन उन्होंने उपर्युक्त श्लोक के "ददात्यभिमुखम्" के स्थान में "ददात्यवहिता" ऐसा पाठभेदवाला शब्द रखा है[2]। अब पुनरपि ध्यातव्य बिन्दु प्राप्त होता है कि भोजराज द्वारा दिया हुआ पाठान्तर ही काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं के पाठ में एक समान रूप से प्रचलित है। उसका मतलब यह भी हो रहा है कि दाक्षिणात्य और देवनागरी वाचनाओं का यह पाठान्तर ग्यारहवीं शती तक यानी भोजराज के समय तक नहीं था। अतः देवनागरी एवं दाक्षिणात्य वाचनाओं के लघुपाठों में "ददात्य-भिमुखम्" जैसा पाठभेद परवर्ती काल में ही आविष्कृत हुआ होगा।।

अभिज्ञानशाकुन्तल के द्वितीयांक में नायिका शकुन्तला का सौन्दर्य वर्णित करनेवाला सुप्रसिद्ध श्लोक भी द्रष्टव्य है:-

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयम् अलूनं कररुहैः,
अनाविद्धं रत्नं मधुनवमनास्वादितरसम्।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघम्,
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः।।

इसमें जो "अनाविद्धं रत्नम्" वाला पाठ्यांश है, वह दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनाओं में प्रचलित है। इससे पहले काश्मीरी, मैथिली तथा बंगाली पाठों में जो प्रचलन में था, वह तो "अनामुक्तं रत्नम्" वाला पाठ था। अतः इस नवीन पाठान्तर के प्रवेश का काल सोचना जरूरी है। भोजराज ने शृङ्गारप्रकाश में छह स्थानों पर, [जैसे कि- (1) शृ. प्र. 10-371, (2) 12-419, (3) 15-153, (4) 17-32, (5) 21-11, विद्धं - मुक्तं (6) 33-33। एवं च, (7) सरस्वतीकंठाभरण 4-44 में व्यतिरेकवद् रूपक के उदाहरण के रूप में] जब इस श्लोक को उद्धृत किया है तब वहाँ पर, एक अपवाद स्थान को छोड कर, "अनाविद्धं रत्नम्" वाला पाठ दिया है।।

---

1. आनन्दवर्धन (850 ई. स.) ने ध्वन्यालोकः (2-19) में इस श्लोक को उद्धृत किया है, तब उन्होंने भी करौ व्याधुन्वत्याः ऐसा द्विवचनान्त प्रयोग ही लिखा है। मतलब कि काश्मीर में प्रचलित पाठ निश्चिततया पुरोगामी है। (एवमेव, 12वीं शती में हेमचन्द्राचार्य ने भी काव्यानुशासन में काश्मीरी पाठ ही उद्धृत किया है।)
2. द्रष्टव्य:- शृङ्गारप्रकाशः, 21 - 89, (पृ. 1094), सं. श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी, दिल्ली, 2007

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

इसका सीधा मतलब यही हो रहा है कि भोजराज के समय (1005 से 1050 ई.स.) में ही दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनाओं के (सभी नहीं, केवल) कतिपय नवीन पाठान्तरों का प्रादुर्भाव होने लगा था, जिसको भोजराज ने अपने दोनों ही ग्रन्थों में उद्धृत करना शुरू किया है।।

[5]

कालिदास के अभिज्ञानशकुन्तला नाटक का काश्मीरी पाठ भोजराज के सामने रहा होगा, इतना सिद्ध करने वाले अनेक प्रमाणभूत उद्धरण हमने देख लिए। तथापि इतना ही कहना पर्याप्त नहीं है। क्योंकि हमने यह भी देखा कि शृङ्गारप्रकाश में कुत्रचित् दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनाओं के कतिपय पाठान्तरों को भी स्थान मिला है। अतः दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनाओं के नवीन पाठान्तरों का आविष्कार-काल निश्चित करने के लिए कुछ अधिक उद्धरणों का विश्लेषण करना होगा।।

इस नाटक के तृतीयांक में नायक-नायिका जब रंगमंच पर अकेले हैं, तब दुष्यन्त कहता है कि,

किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातं
संचालयामि नलिनीदलतालवृन्तैः।
अङ्के निधाय चरणावुत पद्मताम्रौ
संवाहयामि करभोरु यथासुखं ते।। (काश्मीरी वाचना, 3-20)

इस श्लोक के तीसरे एवं चौथे चरण का जो पदक्रम है, वे तीनों बृहत्पाठवाली वाचनाओं में एक समान है। तीसरे अंक में कालिदास ने सोची हुई मंचन-योजना ऐसी है कि मदन-संतप्ता शकुन्तला कुसुमास्तरण पर लेटी हुई हो। यह मदनावस्था इतनी भारी है कि शकुन्तला को मदनलेख लिखते समय भी लेटे रहना है और उस मदनलेख को सुन कर रंगमंच पर सहसा उपस्थित हुआ दुष्यन्त जब उनके ही साथ शिलातल पर (अनसूया के कहने से) बैठ जाय तब भी उसको लेटे रहना है। तत्पश्चात् मृगपोतक को उसकी माता के पास पहुँचाने के निमित्त से दोनों सहेलियाँ रंगमंच से चली जायँ, और नायक दुष्यन्त एकान्त में उपर्युक्त श्लोक से उसके पाद-संवाहन का प्रस्ताव रखे, तब शकुन्तला को कुसुमास्तरण से उठना है। उपर्युक्त श्लोक के तीसरे चरण का तात्पर्य ऐसा है कि दुष्यन्त कुसुमास्तरण पर लेटी हुई शकुन्तला के (केवल) दो पद्मताम्र चरणों को अपनी गोदी में लेकर, उसका संवाहन करने का प्रस्ताव रखता है।। लेकिन जिन रंगकर्मियों को नायिका शकुन्तला की रंगमंच पर लेटी हुई अवस्था लम्बे समय तक नहीं दिखानी थी, उन्होंने मदनलेख लिखवाते समय ही, उसी बहाने "आसीना चिन्तयति / उपविष्टा चिन्तयति" जैसी रंगसूचनाओं से, शकुन्तला को कुसुमास्तरण पर बिठा दिया है। एवञ्च, जब नायक दुष्यन्त (अनसूया के कहने से) उसी शिलातल पर बैठते है, तब "सलज्जा तिष्ठति" की नवीन रंगसूचना का प्रक्षेप करके, शकुन्तला को पास में खड़ी की गई है। अब उपर्युक्त श्लोक के चरणों का पद- क्रम परिवर्तित करना अनिवार्य बन जाता है!क्योंकि राजा दुष्यन्त शिलातल पर बैठे हों, और शकुन्तला जब पास में खड़ी हो तब उसके पाँव को अपनी गोदी में लेकर उनका संवाहन करने का कहना असम्भव ही है, जो भद्दा ही लगेगा। अतः उपर्युक्त श्लोक को नवीन परिवर्तित पदक्रम के साथ रखा जाता है:-

किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातान् संचारयामि नलिनीदलतालवृन्तैः।
अङ्के निधाय करभोरु यथासुखं ते, संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ।।

अब इस नवीन पाठभेद के अनुसार वाक्यार्थ ऐसा होगा कि- हे करभोरु, मैं तुम्हें मेरी सुखदायक गोदी में बिठा कर, तेरे पादों का संवाहन करने को तैयार हूँ।। शृङ्गारप्रकाश में भोजराज ने इसी नवीन पाद-योजनानुसारी श्लोक को ही चार स्थान में (16-210 (पृ. 967), 20-56 (पृ. 1060), 21-41 (पृ.1086) एवं 34-185 (पृ. 1577)) उद्धृत किया है। यानी भोजराज के समय में इस नाटक का जब मंचन होता होगा, तब नायक-नायिका के एकान्त मिलन के क्षणों का चित्र बदल जाता है। दाक्षिणात्य और देवनागरी वाचनाओं में उपरि निर्दिष्ट नवीन योजनावाला पाठभेद सुस्थिर हुआ प्राप्त होता है।।

किन्तु विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में जब इसी श्लोक को उद्धृत किया है, तब उसमें तो, काश्मीरी-मैथिली-बंगाली

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

वाचनाओं में जो पदक्रम है, उसीके अनुसार ही यह श्लोक दिया है[1]। यहाँ ध्यातव्य बात यह है कि विश्वनाथ का समय भले ही ई. स. 1300 से 1384 तक का निश्चित किया गया हो, लेकिन वे बंगाल के आलंकारिक हैं। अतः उनके सामने बंगाल का बृहत्पाठ ही विद्यमान था, तथा दाक्षिणात्य और देवनागरी पाठान्तर का प्रचार बंगाल प्रदेश तक नहीं हुआ होगा। इसी लिए उन्होंने बंगाली पाठानुसार उद्धरण दिया है[2]। किन्तु उनके समय से पहले, मध्य भारत में जब भोजराज ने दाक्षिणात्य एवं देवनागरी में प्राप्त होनेवाला पाठान्तर ग्राह्य रखा है तो उसका मतलब यही है कि ग्यारहवीं शती में, लघुपाठवाली वाचनाओं में मिलनेवाले नवीन पाठान्तर का अवतार हो चुका होगा। इस तरह से शृङ्गारप्रकाश के एकाधिक उदाहरणों से सिद्ध होता है कि ग्यारहवीं-बारहवीं शती का काल नवीन पाठान्तरों की उद्भावना एवं संक्रान्ति का काल रहा होगा।।

निष्कर्षः- शृङ्गारप्रकाश के इन उद्धरणों से निम्नोक्त बिन्दु स्पष्ट हो रहे हैं :- (1) भोजराज के सामने इस नाटक का बृहत्पाठ प्रवर्तमान था, तथा इन तीनों में भी विशेष रूप से काश्मीरी वाचना के पाठ से भोजराज सुपरिचित थे। (2) इन तीनों बृहत्पाठों में काश्मीरी पाठ पुरोगामी है और तदुत्तरवर्ती काल में मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं के पाठ प्रचलन में आये होंगे ऐसा उपर्युक्त (3-क) उदाहरण से सिद्ध होता है। (3) इस नाटक की दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनाओं के दोनों पाठ बृहत्पाठ वाली तीनों वाचनाओं की अपेक्षा से उत्तरवर्ती काल के सिद्ध होते हैं, (4) तथा उन दोनों वाचनाओं में उपलब्ध हो रहे नवीन पाठान्तरों का आविष्कार ग्यारहवीं शती में शुरू हुआ होगा ऐसा कहा जा सकता है।।

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूचिः-

1. अभिज्ञानशाकुन्तलनाटकम्।, सं. एस. के.बेलवालकर, साहित्य अकादेमी, दिल्ली, 1965
2. अभिज्ञानशकुन्तला नाटकम् (काश्मीर-वाचनानुसारी पाठः), सं. वसन्तकुमार म. भट्ट, राष्ट्रिय संस्कृतसंस्थान, दिल्ली, 2017
3. अभिज्ञानशकुन्तलम् (मैथिल-पाठानुगम्), सं. रमानाथ झा, मिथिला विद्यापीठ, दरभङ्गा, 1957
4. अभिज्ञानशकुन्तलम् (बंगाली-पाठ का समीक्षित पाठसम्पादन), सं. रिचार्ड पिशेल, हार्वर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1922 (द्वितीयसंस्करण)
5. अभिज्ञानशकुन्तलम् (पुनर्गठित बंगाली पाठ), सं. दिलीपकुमार काञ्जीलाल, संस्कृत कॉलेज, कोलकाता, 1980
6. अभिज्ञानशाकुन्तलम् (राघवभट्टकृतयाऽर्थद्योतनिकया टीकया समेतम्), सं. नारायण राम, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, 2006
7. अभिज्ञानशाकुन्तलम् (काटयवेमकृतव्याख्यानसहितम्), सं. चेलमचेर्ल रंगाचार्य, आन्ध्रप्रदेश साहित्य अकादेमी, हैदराबाद, 1982
8. ध्वन्यालोकः, सं. अनु. आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, 1985
9. संस्कृत-काव्यशास्त्र का आलोचनात्मक इतिहास, श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी, वाराणसी, 2007
10. साहित्यदर्पणम्।, सं. सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1970
11. शृङ्गारप्रकाशः (भाग 1 एवं 2), सं. डॉ. श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रिय कला केन्द्र, नयी दिल्ली, 2007

---

1. साहित्यदर्पणम्। (षष्ठः परिच्छेदः,188 के नीचे), सं. सत्यव्रत सिंह, प्रका. चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1970, पृ. 485
2 किं शीकरैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातं संचारयामि नलिनीदलतालवृन्तम्। अंके निवेश्य चरणावुत पद्मताम्रौ संवाहयामि करभोरु यथासुखं ते।। साहित्यदर्पणे प्रदत्तः पाठः।। पृ. 485

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

सन्दर्भ-ग्रन्थसूचिः-

(क) संस्कृत ग्रन्थाः-

1. अभिज्ञानशकुन्तलम्। (बंगाली वाचना का समीक्षित पाठसम्पादन), सं. रिचार्ड पिशेल, हार्वर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, (प्रथमावृत्ति- 1876, द्वितीयावृत्ति- 1922)
2. अभिज्ञानशकुन्तलम्। (चन्द्रशेखर चक्रवर्ती की सन्दर्भ-दीपिका टीका एवं बंगाली पाठ की समालोचना), सं. वसन्तकुमार म. भट्ट, राष्ट्रिय पाण्डुलिपि मिशन, दिल्ली, 2013
3. अभिज्ञानशकुन्तलम्। (मैथिल-पाठानुगम्), (शङ्कर-नरहरि-कृतव्याख्याद्वयसंयुतम्), सं. श्री रमानाथ झा, मिथिला विद्यापीठ, दरभङ्गा, (बिहार), 1957
4. अभिज्ञानशकुन्तलम्। (अंग्रेजी अनुवाद के साथ), सं. शारदा रंजन राय, कलकत्ता, 1908
5. अभिज्ञानशकुन्तलम्। (देवनागरी वाचनानुसारी पाठ), सं. गौरीनाथ शास्त्री, केन्द्रीय साहित्य अकादमी, दिल्ली, 1983
6. अभिज्ञानशकुन्तलम्। (देवनागरी वाचना का शुद्धतर समीक्षित पाठसम्पादन), सं. पी. एन. पाटणकर, इन्दौर, 1889, 1902
7. अभिज्ञानशकुन्तलम्। (बंगाली वाचनानुसारि), (A Reconstruction of theAbhijnana-sakuntalam),सं. दिलीपकुमार काञ्जीलाल, संस्कृत कॉलेज, कोलकाता-700073, 1980
8. अभिज्ञानशाकुन्तलम् (रूपप्रकाशन-नाम-टीकया सहितम्), सं. डमरुवल्लभ पन्त, कलकत्ता, 1871
9. अभिज्ञानशकुन्तला नाटकम्। (शारदा-पाण्डुलिपियों में संचरित हुई काश्मीरी वाचना का समीक्षित पाठ-सम्पादन), सं. वसन्तकुमार म. भट्ट, प्रका. राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, 2018.
10. अभिज्ञानशाकुन्तलम्। (किशोरकेलि व्याख्या एवं राष्ट्रभाषानुवाद), सं. कान्तानाथ शास्त्री तेलंग, चौखम्बा संस्कृत सीरीझ आफिस, वाराणसी, 1960
11. अभिज्ञानशाकुन्तलम्। (राघवभट्टकृतार्थद्योतनिकया सनाथीकृतम्), सं. नारायण राम, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, 2006
12. अभिज्ञानशाकुन्तलम्। (काटयवेम-कृत-टीकया सहितम्), सं. श्रीचेलमचेर्ल रङ्गाचार्य, आन्ध्रप्रदेश साहित्य अकादेमी, हैदराबाद, 1982
13. अभिज्ञानशाकुन्तलम्। (अभिरामस्य टीकया संभूषितम्), प्रका. श्रीवाणी-विलास मुद्रणालय, श्रीरंगम्, 1917
14. अभिज्ञानशाकुन्तलम्। (श्रीनिवासाचार्यकृतटीकया सहितम्), निर्णय सागर प्रेस, मुंबई, 1966
15. अभिज्ञानशाकुन्तलम्। (घनश्यामकृतसंजीवनटिप्पणसमेतम्), सं.पूनम पंकज रावळ, प्रकाशन - सरस्वती पुस्तक भण्डार, अहमदावाद, 1999
16. अभिज्ञानशाकुन्तलम्। (काश्मीरी वाचना के तथाकथित समीक्षित पाठ के साथ), सं. एस. के. बेलवालकर, (डॉ. वी. राघवन्) साहित्य अकादेमी, दिल्ली, 1965

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

17. अलंकारमहोदधिः। (नरेन्द्रप्रभसूरिप्रणीतः), सं. लालचन्द्र गांधी, गायकवाड ओरिएन्टल सीरीझ-45, वडोदरा, 1942

18. काव्यप्रकाशः।, सं. सत्यव्रत सिंहः, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पुनर्मुद्रित-2009

19. काव्यमीमांसा (राजशेखरकृता), सं. सी. डी. दलाल, ओरिएन्टल इन्स्टीट्युट, वडोदरा, 1934

20. काव्यालंकारसूत्राणि।, वामनाचार्य-प्रणीतानि।, सं. बेचन झा, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण, 1989

21. कालिदास ग्रन्थावली, (हिन्दी अनुवाद के साथ), अनुवादक एवं सम्पादक- श्रीसीताराम चतुर्वेदी, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ, 1963

22. कालिदास ग्रन्थावली। सं. श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी, बी. एच. यु., वाराणसी, 1986

23. कालिदास ग्रन्थावली। (हिन्दी अनुवाद के साथ), सं. श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी, कालिदास अकादेमी, उज्जयिनी, 2008

24. कालिदास-शब्दानुक्रम-कोशः।, सं. श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी एवं डॉ. सदाशिवकुमार द्विवेदी, कालिदास संस्थान, 28, महामना पुरी, वाराणसी- (221005), 2017

25. कुट्टनीमतं काव्यम् (दामोदर गुप्त), अनुवादक- श्रीजगन्नाथ पाठक, सं. नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, मित्र प्रकाशन प्राईवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, 1961.

26. दशरूपकम्। (धनिककृतावलोकटीकासहितः), सं. केशवराव मुसलगाँवकर, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण, 2009

27. नाट्यशास्त्रम् (अभिनवभारतीसहितम्), भाग-1-2-3, गायकवाड ओरिएन्टल सीरीझ-36, 68, 124, ओरिएन्टल इन्स्टीट्युट, वडोदरा, 1992, 2001, 2003

28. पाइअ-सद्द-महण्णवो (प्राकृत-शब्द-महार्णवः), सं. हरगोविन्द त्रिकमचंद शेठ, चतुर्थ संस्करण, प्रकाशक- श्रीअरिहन्तसिद्ध सूरि ग्रन्थमाला, लुणावा मंगल भुवन, पालीताणा, 2011

29. प्राकृत-प्रकाशः। (भामहकृतमनोरमाव्याख्यासहितः), सं. मथुराप्रसाद दीक्षित, चौखम्भा संस्कृत संस्थान,वाराणसी, वि.सं. 2063 का पुनर्मुद्रण।

30. प्राकृत-व्याकरणम् (श्रीसिद्धहेमशब्दानुशासनस्याष्टमोऽध्यायः।), सं. वज्रसेनविजयजी, श्रीजैन श्वे. मूर्तिपूजक संघ-शिव, मुंबई, 1994, द्वितीयावृत्तिः।

31. भारतीय नाट्य स्वरूप और परंपरा।,, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, सागर, 1988

32. भारतीय प्राचीन लिपिमाला।, पं. गौरीशंकर हीराचंद ओझा, मुन्शीराम मनोहरलाल, दिल्ली, 1918, (परिवर्धित तृतीय संस्करण 1959).

33. महाभारतम् (आदिपर्वन्), सं. वी. एस. सुकथंकर, समीक्षितावृत्ति का प्रथम-भाग, भाण्डारकर ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीट्युट, पूना, 1933.

34. रसार्णवसुधाकरः। (सिंहभूपाल-विरचितः), त्रावणकोर संस्कृत सिरीझ-50, त्रिवेन्द्रम्, 1916

35. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी।, सं-अनु. (अस्मद्-गुरवः) श्रीबालकृष्ण पञ्चोलिनः, चौखम्बा संस्कृत सीरीझ, वाराणसी, 1969

36. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी। सं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1971

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

37. शृङ्गारप्रकाशः (भाग 1 एवं 2), सं. श्रीरेवाप्रसाद द्विवेदी एवं डॉ. सदाशिवकुमार द्विवेदी, प्रका. इन्दिरा गाँधी राष्ट्रिय कला केन्द्र, दिल्ली एवं कालिदास संस्थान, वाराणसी, 2007

38. सरस्वतीकण्ठाभरणम्।, काव्यमाला सिरीझ, मुंबई, 1924

39. सूक्तिमुक्तावली (जल्हण-विरचिता), गायकवाड ओरिएन्टल सिरीझ-85, सं. बी. भट्टाचार्य, एवं श्रीकृष्णमाचार्य (वडताल, गुजरात), वडोदरा,1938

40. हर्षचरितम् (बाणभट्टकृतम्), सं. पी. वी. काणे, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1986

(ख) अंग्रेजी ग्रन्थः-

1. An Alphabetical Index of Sanskrit Manuscripts in the Government Oriental Manuscripts Library, (Vol. 1 & 2)] Ed. S. KuppuswamySastru& P. P. SubrahmanyaSastri, Chennai, Re-printed in 2015.
2. Bharat Natya-Manjari, (Vol. 1& 2)] Dr. G. K. Bhat, B.O.R.I., Poona, 1975-1981.
3. Ganaratna-Mahodadhi by Vardhamana (flourished in 1140A. D.), Ed. Julius Eggeling, 1879.
4. Kalidasa Bibliography, Ed. Prof. Satya Pal Narang, Nag Publishers, Delhi, 1975.
5. Kalidasa Citations, by Dr. N. R. Subbanna, Meharchand Lachhmandas, Delhi, 1973.
6. Kalidasa : Complete Collection of the Various Readings of the Madras Manuscripts, (Vol. 1-4)] Ed. T. Foulkes, Published by the Govt. of Madras, 1904.
7. Kalidasa - Lexicon, Ed. By A. Scharpe', published by Rijksuniversiteit Te Gent, De Tempel, Templhof 37, BRUGGE (Belgie),1954.
8. Kalidasa's Sakuntala : KurzerTextform, Ed. Von Carl Cappeller, Leipzing, 1909.
9. Le The'atreIndien, Sylvain Le'vi, Emile Bouillon, Libraire, Editeur, Paris, 1890.
10. Priyadars'ika by Harsha, Ed.A. V. William Jackson, Columbia University Press, New York, 1923.
11. Sacontala- Or The Fatal Ring : An Indian Drama by Calidas, Translated from the original Sanscrit and Pracrit, by Sir William Jones, 1789.
12. Sakuntala - Prepared for the English Stage by KedarNath Das Gupta in a new version written by Laurence Binyon, with an Introductory Essay by RabindraNath Tagore, Its Inner Meaning, Published in Mecmillan & Co. Ltd., 1920. (Reprinted in 1937, 1944, 1945, 1947 & 1953)
13. The Prakrita-Lakshana OR Chanda's Grammar of Ancient Prakrit, (Part-1) Ed.A. F. Rudolf Hoernel, Calcutta, 1880.
14. The Recognition of Shakuntala by Kalidasa, Ed. Translated by Soma deva Vasu deva, Clay Sanskrit Library, New York University Press, 2006
15. The Text of Shakuntala, by Prof. Balavantaray Thakor, Bombay, 1922.
16. The Vidushaka, by G. K. Bhat, The New Order Book Co., Ahmedabad, 1959.

(ग) हिन्दी ग्रन्थः-

1. अभिज्ञानशाकुन्तल - कृतिसमीक्षा से पाठसमीक्षा। वसन्तकुमार म. भट्ट, संस्कृत अकादेमी, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, 2010
2. अभिज्ञानशाकुन्तल का पाठपरामर्श। वसन्तकुमार म. भट्ट, आर्य गुरुकुल, माउन्ट आबु, 2016
3. कालिदास अपनी बात (भारतीय दृष्टि), श्री रेवाप्रसाद द्विवेदी जी, कालिदास संस्थान, वाराणसी, 2004

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

4. कालिदास परिशीलन, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत विभाग, हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, 1988

5. कालिदास की समीक्षा परम्परा, सं. राधावल्लभ त्रिपाठी, हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, 1988

(घ) पत्रिकाएँ/ सामयिकों में प्रकाशित शोध-आलेख:-

1- Roopa-Lekha, Vol. 38 (1-2), All India FineArts & Crafts Society, New Delhi, 1969 (pp. 195 to 199) for the article : Sakuntala in Sunga Sculpture by Bahadur Chand Chhabra

2- Sir William Jones Bicentenary (1746 - 1946) of his Birth Commemoration Volume, published by theAsiatic Society, Kolkata, in 1948l, for the article : The Sakuntala Problem, by Kshetresh Chandra Chattopadhyay, pp. 167.

3. एस. के. बेलवालकर (1962), "निसर्ग-कन्या शकुन्तला", कालिदास ग्रन्थावली, हिन्दी अनुवाद के साथ, परिशिष्ट भाग में प्रकाशित शोध-आलेख, प्रका. भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ, सं. 2011 (ई. स. 1962), तृतीय संस्करण, पृ. 59-69.

4. वसन्तकुमार (2010) म. भट्ट, "अभिज्ञानशकुन्तल - बंगालीवाचना की मौलिकता के समर्थक नवीन प्रमाण"। संस्कृत - विमर्श, (नवशृङ्खला), अङ्क - 4, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नव देहली, पृ. 147 - 160 (ISSN - 0975), 2010

5. वसन्तकुमार (2012) म. भट्ट, "अभिज्ञानशाकुन्तल में" अपि च "से सम्बद्ध संक्षेप एवं प्रक्षेप की पहेचान"।, धीमहि।, सं. डॉ. दिलीपकुमार राणा, चिन्मय इन्टरनेशनल फाउन्डेशन शोध संस्थान, एरणाकुलम्, अंक-3, 2012.

6. वसन्तकुमार (2012) म. भट्ट, "पाटण में संगृहीत शाकुन्तल की प्राचीनतर पाण्डुलिपि"।, हैमप्रपा, हेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी, पाटण, अंक-3, (2012) पृ. 200 से 213, (ISSN - 2250 - 3064)

7. वसन्तकुमार (2012) म. भट्ट, "अभिज्ञानशाकुन्तल के देवनागरी पाठ में संक्षेपीकरण के पदचिह्न"।, नाट्यम्, सं. श्री राधावल्लभ त्रिपाठी, डॉ. हरिसिंह गौर युनिवर्सिटी, सागर, अंक- 71-74 (पृ. 27 से 57)

8. वसन्तकुमार (2012) म. भट्ट, "अभिज्ञानशाकुन्तल में प्रतीकों से व्यञ्जित होने वाला नाट्यकार्य"। संस्कृत विमर्श, (नवशृङ्खला), अङ्क -7, पृ. 70 - 92, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नव देहली (ISSN - 0975- 1769), 2012

9. वसन्तकुमार (2014) म. भट्ट, "हंसपदिका-गीत एवं भ्रमर का प्रतीक", संस्कृत मञ्जरी, (वर्ष-12, अंक-) दिल्ली संस्कृत साहित्य अकादेमी, दिल्ली, (पृ. 89 से 101)

10. वसन्तकुमार (2014) म. भट्ट, "अभिज्ञानशाकुन्तल के पाठविचलन की आनुक्रमिकता"।, नाट्यम्, सं. श्री राधावल्लभ त्रिपाठी, डॉ. हरिसिंह गौर युनिवर्सिटी, सागर, अंक- 76, (पृ. 26 से 54)

11. वसन्तकुमार (2015) म. भट्ट, "अभिज्ञानशाकुन्तलम् : देवनागरी एवं दाक्षिणात्य वाचनाओं की पाठालोचना"।, नाट्यम्, सं. श्री राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर युनिवर्सिटी, सागर, अंक- 77, (पृ. 33 से 58)

12. वसन्तकुमार (2015) म. भट्ट, "कुसुमशयना शकुन्तला : अभिज्ञानशाकुन्तल (अंक-3) के पाठविचलन का क्रम", संस्कृत विमर्श (नवशृङ्खला अंक-10), राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, (पृ. 109 से 144) 2015

13. वसन्तकुमार (2015) म. भट्ट, "कालिदास एवं विक्रमादित्य"- नवोन्मेष। विक्रम, विक्रम युनिवर्सिटी, उज्जयिनी, कालिदास स्पेश्यल नंबर - 17, 2015

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

14. वसन्तकुमार (2015) म. भट्ट, "शारदा पाण्डुलिपियों में शकुन्तला के श्लोकों में वृद्धि-ह्रास का विश्लेषण" बा, संबोधि।, सं. डॉ. जितेन्द्र शाह, एल. डी. इन्स्टीट्युट ओफ इन्डोलोजी, अहमदावाद, अंक-38, पृ. 50 से 69)

15. वसन्तकुमार (2016) म. भट्ट, "हेमचन्द्राचार्य के प्राकृत व्याकरण में अभिज्ञान-शाकुन्तलम्"।, सम्बोधि। (अंक-39), सं. डॉ. जितेन्द्र बी. शाह, एल. डी.इन्स्टीट्युट ऑफ इन्डोलोजी, अहमदावाद, (पृ. 90 से 97) 2016

16. वसन्तकुमार (2017) म. भट्ट, अभिज्ञानशाकुन्तल (षष्ठांक का प्रथम दृश्य)- पाठसंशुद्धि के आलोक में नाट्यतत्त्व। नाट्यम्, वो. 82-83, पृ. 125-138, सागर युनि., सागर

17. Belvalkar (1923) S. K.- TheApplication of a few canons of teñtual & Higher Criticism to Kalidasa's S'akuntala, Published inAsia Major, Leipzig - 2 (1), 1923, pp. 79-104.

18. Belvalkar (1925) S. K.- The Original Sakuntala, Published in SirAsutoshMookherjee Silver Jubilee Vol. 3, Orientia part-2, Calcutta, 1925, pp. 349 -359.

19. Belvalkar (1929) S. K.- S'ringaricEloboration in S'akuntala -Act-3, Published in Indian Studies in Honor of C. R. Lanman, Harvard University Press, 1929, pp. 187-192.

20. Belvalkar (1949) S. K.- Kalidasa's Abhijnanas'akuntala - it's Dramatic Setting, Published in Vikrama Volume, Scindia Oriental Institute, Ujjain, 1949, pp. 45 - 55.

21. Belvalkar (1950) S.K.- Entracte toAct-7, (= Natak and Nartan), by Bulletin of Deccan College Research Institute, Poona, Vol. 20, 1950, pp. 19-24.

22. Belvalkar (1969) S. K.- TheArt of Text-editing and Textual Criticism in Sanskrit Literature, Published in Our Heritage, 1969, Vol. 17, pp. 41-49.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

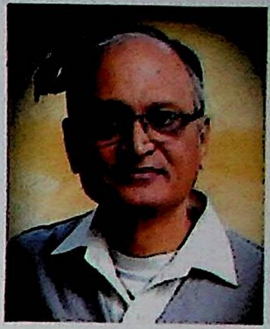

वसन्तकुमार म. भट्ट, (जन्म 21 फरवरी, 1953) पूर्व-निदेशक, भाषा-साहित्य भवन, गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदावाद ने 35 वर्ष पर्यन्त स्नातकोत्तर संस्कृत कक्षाओं में अध्यापन-कार्य किया। उनके मार्गदर्शन में 22 छात्रों ने सफलतापूर्वक पीएच. डी. का शोधकार्य किया है। 40 से अधिक ग्रन्थों का लेखन-कार्य, 150 से अधिक शोध-आलेखों का प्रकाशन, पाण्डुलिपि-विज्ञान विषयक 45 कार्यशालाओं में समग्र देश के नवोदित छात्रों को पीपीटी. के माध्यम से प्रशिक्षण दिया है। पाणिनीय व्याकरण शास्त्र का अध्यापन कराने के साथ 'पाणिनीय व्याकरण विमर्श' तथा 'संस्कृत वाक्य-संरचना' आदि ग्रन्थों का प्रणयन किया है। विगत 15 वर्षों से कालिदास के अभिज्ञान-शाकुन्तल नाटक की देश-विदेश में संगृहीत पाण्डुलिपियाँ एकत्र करके, इस नाटक के पाठोद्धार करने का कार्य कर रहे हैं। जिसके फल स्वरूप इस नाटक के बंगालीपाठ पर लिखी गई सन्दर्भदीपिका टीका का सम्पादन किया है। तथा शारदा पाण्डुलिपियों के आधार पर इस नाटक के काश्मीरी पाठ का प्रथम बार समीक्षित पाठसम्पादन किया है, जिसका प्रकाशन राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली ने किया है। वर्तमान में इस नाटक की शताधिक देवनागरी पाण्डुलिपियाँ लेकर, देवनागरी वाचना के प्राचीन से प्राचीनतर त्रिविध रूपान्तरणों की खोज कर रहे हैं। तथा ग्रन्थ, तेलुगु, मळयालम, नन्दीनागरी लिपिनिबद्ध 85 से अधिक पाण्डुलिपियों के आधार पर दाक्षिणात्य वाचना का समीक्षित पाठ भी तैयार करने में व्यस्त हैं। भारत के महामहिम राष्ट्रपतिश्री ने 2018 में उनको सम्मानित किया है तथा कविकुलगुरु कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय, नागपुर ने 'महाकवि कालिदास संस्कृत-व्रती राष्ट्रिय पुरस्कार' से विभूषित किया है।

सम्पर्क-सूत्रः-v-k-bhatt53@gmail.com

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्त्रोतोवहा मालिनी, पादास्तामभितो निषण्णचमरा गौरीगुरोः पावनाः।
शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम्॥ 5-17 ॥

केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः

(प्राक्तनं राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, मानितविश्वविद्यालयः)

56-57, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, जनकपुरी, नवदेहली-110058

दूरभाष : 011-28524993, 28521994, 28520977

email : rsks@nda.vsnl.net.in website : www.sanskrit.nic.in

Vasant Bhatt Collection, Gujarat